

□ प्रकाशक :
आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५ रथान क्लासी सोसायटी
नारायणपुरा कोसिंग
अहमदाबाद-१३

□ संपर्क सूत्र :
श्री हिम्मत लाल एस० शाह
अमर निवास, सोहरावजी कम्पाउन्ड
वाडुंज, अहमदाबाद-१३

□ प्रथम संस्करण :
वीर निर्वाण संवत् २५०६
विक्रम संवत् २०४०
ईस्वी सन् १९८३ मई

□ प्रकाशन पर्व :
१५ मई १९८३
अक्षय तृतीया

□ मूल्य :
१५१ रुपये

□ मुद्रक :
श्रीचन्द्र सुराना 'सरस' के लिए
मयंक प्रिन्टर्स, आगरा

DHAMMA-KAHĀNUOGO

(Original text with Hindi Translation)

(Part I & II)

Compilers

Anuyoga-Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalal 'Kamal'

&

Dalsukhbhai Malvania

Translator

Devakumar Jain

Managing Editor

Srichand Surana 'Saras'

Publishers

Agama Anuyoga Trust

AHMEDABAD-13

Agama Anuyoga Publication No. 1

Compilers :

Anuyoga Pravartaka Muni Sri Kanhaiyalal 'Kamal'
&
Dalsukhbhai Malvania

Managing Editor :

Sri Chand Surana 'Saras'

Translator :

Devakumar Jain

Contact :

Sri Himmat Lal S. Shah
Amar Nivas
Sorabji Compound
Wadaz, AHMEDABAD-13

First Edition :

Vir Nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2040, (Akshaya Tritiya)
May 15, 1983

Publishers :

Agama Anuyoga Trust
15, Sthanakvasi Society
Narayanapura Crossing
Ahmedabad-13

Printers :

Mayank Printers, Agra-2
under the guidance of Srichand Surana 'Saras'

Price :

Rs. 151/-



समर्पण



गुरुदेव !

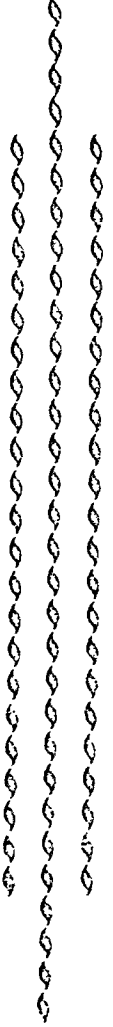
सर्वप्रथम अक्षर-बोध के पश्चात् आगम-अध्ययन एवं आगम अनुयोग संकलन के आप ही प्रबल प्रेरक रहे हैं। इस अनन्त उपकार के लिए यह अन्तेवासी सदैव आप-श्री का कृतज्ञ रहेगा।

गुरुदेव !

प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का संकलन आपकी ही असीम कृपा का प्रसाद है। यदि यह संकलन आपके ही कर-कमलों में समर्पित कर पाता तो असीम आनन्द की अनुभूति होती, परन्तु अब आपकी स्मृति में समर्पित करके ही सन्तुष्ट हो रहा हूँ।

वीर संवत् २५०६
अक्षय तृतीया पर्व
श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
बावू पर्वत, राजस्थान।

अन्तेवासी
मुनि कन्हैयालाल 'कमल'



प्रकाशन योजना

हिन्दी अनुवाद सहित गणितानुयोग का द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण आगरा में मुद्रित हो रहा है। धर्म कथानुयोग का गुजराती अनुवाद एक विद्वान् कर रहे हैं। अंग्रेजी अनुवाद का कार्य प्रारम्भ करवाने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है।

आभार प्रदर्शन

अनेक ग्रन्थों के लेखक मूर्धन्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी म० शास्त्री ने प्रस्तुत ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है।

आपने वैदिक, बौद्ध एवं जैन आगम कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके शोध निबन्ध लेखकों के लिए प्रशस्त मार्गदर्शन किया है। अतः ट्रस्ट मण्डल आपका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

श्री विनयमुनिजी "वागीश" अनुयोगप्रवर्तक श्री जी की सेवा में अहर्निश रत रहकर भी अनुयोग संकलन कार्य को वेग प्रदान करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं।

पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया, पं० श्री अमृत भाई भोजक आदि विद्वान् समय-समय पर योग्य मार्गदर्शन करते रहते हैं।

इस महान् ज्ञानयज्ञ की सफलता के लिए अनेक आगम प्रेमी सज्जन आगम-अनुयोग ट्रस्ट को उदार हृदय से अर्थ सहयोग देते रहते हैं।

श्री हिम्मत भाई सामलदास शाह आगम अनुयोग प्रकाशन सम्बन्धी व्यवस्थाओं में सदैव उत्साहपूर्वक सहयोग प्रदान करते रहते हैं।

मुद्रण कला के आचार्य श्रीमान् श्रीचन्दजी सुराणा आगरा निवासी ने धर्म कथानुयोग के अनुवाद तथा प्रूफ संशोधन एवं मुद्रण आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व स्वीकार करके कार्यभार हलका कर दिया तथा इसे गतिशील बनाया है।

ये सभी उपकारी एवं सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं, ट्रस्ट-मण्डल आप सबका हृदय से कृतज्ञ हैं एवं आभार मानता है।

प्रकाशन में विलम्ब के कारण

धर्म कथानुयोग के अनुवाद की पाण्डुलिपि कराना, प्रेस कर्मचारियों की हड़तालें, विजली की कटौती का होना आदि प्रकाशन में विलम्ब के प्रमुख कारण हैं। इस विवशता के लिए अनुयोग प्रकाशनों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने वाले महानुभावों से क्षमा चाहते हैं। और अब प्रसन्नतापूर्वक यह प्रथम ग्रन्थ सेवा में प्रस्तुत है।

ट्रस्ट प्रमुख

बलदेव भाई पटेल

प्रा. कथन

अनुयोग—प्राचीन और अर्वाचीन व्याख्या पद्धति:

अतीत में आगमों के प्रत्येक गद्य-पद्य सूत्र की व्याख्या अनुयोगचतुष्टय के अनुसार चार प्रकार से की जाती थी; इस प्रकार की गई क्लिष्ट व्याख्याओं की वाचनार्थे विशिष्ट प्रज्ञासम्पन्न श्रुतधर ही दे सकते थे और उन्हें विचक्षण विनयी ही ग्रहण कर सकते थे अतः यह प्राचीन पद्धति दुर्गम थी ।

अवसर्पिणी काल के प्रभाव से धारणा शक्ति का क्रमशः ह्रास होता गया और इससे चतुर्विधा अनुयोग व्याख्या की निपुणता एवं क्षमता तथा विनेयजनों की ग्रहणशीलता भी क्रमशः क्षीण होती गई, शेष रह गई थी केवल प्रत्येक सूत्रगत प्रमुख अनुयोगानुसार व्याख्या की जाने वाली अर्वाचीन सुगम पद्धति ।

आगमों में अन्तर्निहित प्रमुख अनुयोग:

उपलब्ध आगमों में से किन-किन आगमों में कितने-कितने अनुयोग अन्तर्निहित हैं अर्थात् किस-किस में एक, दो, तीन या अनुयोग चतुष्टय है यह जानने के लिए सामान्यतया यह वर्गीकरण पर्याप्त एवं उपयोगी होगा ।

आगम-अनुयोग-वर्गीकरण

१ चरणानुयोग	२ द्रव्यानुयोग	३ गणितानुयोग	४ धर्मकथानुयोग
१ व्यवहार सूत्र	१ प्रज्ञापना	१ चन्द्रप्रज्ञप्ति	१ ज्ञाताधर्मकथा
२ वृहत्कल्प सूत्र	२ नन्दीसूत्र	२ सूर्यप्रज्ञप्ति	२ उपासकदशा
३ दशाश्रुतस्कन्ध	३ जीवाभिगम	३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	३ अन्तर्कृद्दशा
४ निशीथसूत्र	४ अनुयोगद्वारा		४ अनुत्तरोपपातिकदशा
५ प्रश्नव्याकरण			५ विपाकदशा
६ दशवैकालिक			६-१० निरयावलिक्का आदि ५ उपांग
७ आवश्यक-सूत्र			११ राजप्रश्नीय

शेष सात आगमों में से किसी आगम में दो किसी में तीन और किसी में चारों अनुयोग हैं ।

अनुयोग वर्गीकरण : एक समस्या

(१) ग्यारह आगमों में से प्रत्येक आगम के प्रत्येक गद्य-पद्य सूत्र का अनुयोगानुसार पृथक्करण कर के उनका विषयानुक्रम से वर्गीकरण करना

(२) विभिन्न प्रकाशन संस्थानों से प्रकाशित प्रत्येक आगम की प्रतियों में सूत्रांकों की विभिन्नता,

(३) "जात्र" आदि सांकेतिक वाक्यों के प्रयोग से संक्षिप्त कृत पाठों की प्रचुरता,

—सांकेतिक वाक्यों के असमान प्रयोग और अव्यवस्थित प्रयोग

—सांकेतिक वाक्य से सूचित पाठ के स्थल निर्देश का अभाव

(४) वाचनाभेद के पाठ और पाठान्तरों की प्रचुरता,

(५) आगमों के सर्वथा शुद्ध संस्करणों का अभाव,

अनेक हाथ : अनेक अशुद्धियाँ:

एक युग था, हजारों लिपिक लेखन-व्यवसाय में संलग्न थे। धार्मिक-दार्शनिक तथा व्यावसायिक पुस्तकों पद्याकार एवं पुस्तकों के विविध आकारों में लिखी जाती थी, आवश्यकतानुसार आगम भी लिखे.....लिखवाये जाते थे।

उस युग के श्रमण अपने लिये और अभ्यासियों के लिए आगम आदि की प्रतियां लिखते थे, किन्तु आवश्यकता की पूर्ति के लिये लेखकों से भी लिखवाना पड़ता था।

किसी भी ग्रन्थ की प्रतिलिपि करना ही लिपिक का काम होता था। जो प्रति प्रतिलिपि के लिए दी जाती थी उसी के अनुसार लिखने का ही वह अपना उत्तरदायित्व मानता था; "नकल में अकल का क्या काम" यह लोकोक्ति उसी युग की देन लगती है।

जिस लिपिक की लिपि सुन्दर एवं सुवाच्य होती थी उसी का लेखन व्यवसाय समृद्ध होता था क्योंकि उस युग में अधर-सौन्दर्य का प्राधान्य था, शुद्ध लेखन गौण हो गया था।

किसी एक आगम के लेखन में एक लिपिक के हाथ से जितनी अशुद्धियाँ होती थी उन सबकी पुनरावृत्ति उसी आगम की प्रतिलिपि करने वाले के हाथ से तो होती ही थी, तथा प्रतिलिपिक के हाथ से हुई कुछ नई अशुद्धियाँ उनमें सम्मिलित हो जाती थी, इस प्रकार अशुद्धियों का अंवार लगते रहने से संशोधन दुरूह होता जा रहा था। यदि कोई संशोधन के लिए प्रयत्न करता तो अनेक लिपिकों के हाथ से लिखी गई अनेक प्रतियों का संशोधन तो सर्वथा असंभव था अतः एक दो प्रतियों का ही संशोधन हो पाता था।

अशुद्ध प्रतियों की अधिक उपलब्धि होने से स्वाध्याय एवं पठन-पाठन आदि में उनका ही अधिक उपयोग होता था। प्राचीन ज्ञान भण्डारों में भी असंशोधित प्रतियाँ अधिक और संशोधित प्रतियाँ अल्प उपलब्ध होती हैं।

मुद्रणकला और अशुद्धियाँ:

विकसित मुद्रणकला के इस युग में भी सर्वथा शुद्ध मुद्रण प्रूफरिडिंग करने वालों की कर्त्तव्यनिष्ठा पर निर्भर है।

लिपिक युग और मुद्रण युग में अन्तर केवल इतना ही है कि लिपिक युग में अनेक हाथों से अनेक अशुद्धियाँ होती थीं। मुद्रण युग में एक हाथ से अनेक अशुद्धियाँ होती हैं।

लिपिक युग में हजार प्रतियाँ हजार प्रकार की होती थी। मुद्रण युग में हजार प्रतियाँ समान होती हैं।

संशोधन कार्य पहले जैसा ही वर्तमान में भी दुरूह है।

लिपिक युग में प्रत्येक प्रतिका शुद्धिपत्रक भिन्न भिन्न होता था। मुद्रण युग में हजार प्रतिका शुद्धिपत्रक एक होता है किन्तु शुद्धिपत्रक का उपयोग करके शुद्ध प्रति पर स्वाध्यायादि करने वाले विरल होते हैं।

अशुद्धियों के अभिशाप:

मेघकुमार मुनि को संयममें स्थित करने के लिए उसके पूर्वभव का वर्णन सुनाते हुये भगवान महावीर ने कहा—

“हे मेघ ! तुम उस बैचैन कर देने वाली यावत्-दुस्सह वेदना को सात दिन-रात तक भोगकर एकसौ बीस वर्ष की आयु पूर्ण होने पर अत्यधिक आर्तध्यान के वशीभूत एवं दुःख से पीड़ित हुए, मृत्यु के समय मरण प्राप्त करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भारत में, गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विध्यगिरि की तलहटी में एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गंधहस्ती से एक श्रेष्ठ हस्तिनी की कुक्षि में हाथी के वच्चे के रूप में उत्पन्न हुए।

“तएणं सा गयकलभिया नवण्हं मासाणं, वसंतमासंमि तुमं पयाया ।”

—ज्ञाता धर्मकथा. अ० १ मेघकुमार वर्णन

तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौमास पूर्ण होने पर वसंत मास में तुम्हें जन्म दिया।

इस मूल पाठ में कहा गया है कि मेघकुमार का जीव हथिनी के गर्भ में नौ मास रहकर हाथी के वच्चे के रूप में उत्पन्न हुआ।

यह प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन आगम में कैसे आ गया ? क्योंकि जिस काल का यह कथन है उस काल में राजाओं के यहां चार प्रकार की सेनायें होती थी, उनमें हाथियों की भी एक सेना होती थी अतः उस युग में हाथियों के सामान्य जीवन का ज्ञान प्रायः अनेक लोगों का होता था; अतः प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन का पाठ लिपिकों की असावधानी से ही आया है—यह मानना सर्वथा उचित लगता है ।

भ० महावीर राजवंश में जन्मे थे, वे हाथियों के जीवन से परिचित थे और जिस समय मेघकुमार को दीक्षित किया था उस समय तो वे सर्वज्ञ थे, उनके मुख से प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन सर्वथा असंभव था ।

वर्तमान में उपलब्ध सभी प्रतियों में नौ मास वाला पाठ ही मिलता है क्योंकि सभी लिपिक "मधिकास्थाने मधिका" इम लोकोक्ति के अनुसार ही लेखन करते रहे हैं इसलिए किस प्रतिका आधार लेकर संशोधन किया जाय ? यह एक समस्या है और इस समस्या का समाधान असंभव नहीं है : आधुनिक प्राणिविज्ञान की पुस्तकें देखकर निर्णय किया जा सकता है ।

मानव जाति की स्त्री के गर्भ काल में और हथिनी के गर्भ काल में समानता नहीं है । यह निश्चित है अन्तर भी इतना अधिक है कि किसी प्रकार से समानता सिद्ध नहीं कि जा सकती है । आशा है स्वाध्यायशील आगमपाठी प्रत्यक्ष-विरुद्ध कथन का संशोधन करने के लिए प्रयत्न करेंगे ।

अविवेकपूर्ण उत्तर:

कुछ विद्वान् सहसा यह कह देते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य स्त्री का गर्भस्थिति काल सामान्यतया नौ मास और कुछ अधिक दिनों का होता है किन्तु अपवादरूप ७ या ८ मास बाद भी प्रसव हो जाता है; पूर्ण सशक्त न होने पर भी जीवित रहता है । इसी प्रकार ९ मास बाद उस हाथी के बच्चे का जन्म हो गया होगा ।

इस प्रकार के उत्तर प्रायः पर्याप्त ज्ञान के अभाव के ही सूचक हैं, क्योंकि अपवाद रूप में एक-दो मास पूर्व प्रसव होना संभव है किन्तु पूर्ण गर्भस्थिति काल का आधा समय बीतने पर या इसके पूर्व ही यदि भ्रूण बाहर आ जाय तो क्या वह पूर्ण विकसित होगा ? स्वस्थ एवं जीवित रह सकेगा ?

हथिनी का गर्भस्थिति काल जितना होता है उसके आधे काल से भी कम नौ मास होते हैं अतः उक्त अविवेकपूर्ण उत्तर सर्वथा असंगत है ।

सामान्य विज्ञान के ज्ञान से शून्य वर्तमान के परम्परावादी श्रुतधर तो ऐसे प्रत्यक्ष-विरोधी पाठों के सम्बन्ध में ऊहापोह करना ही नहीं चाहते ।

आश्चर्य तो यह है कि वर्तमान में प्रकाशित हो रहे जैनागमों के नए संस्करणों में और अद्यावधि बने आगम-मन्दिरों में भी यही प्रत्यक्ष-विरोधी पाठ स्थान पा चुका है ।

संकलन पद्धति:

सभी आगमों के शुद्ध संस्करण तैयार करके धर्मकथानुयोग का संकलन करना हमारे लिए सम्भव नहीं था । क्योंकि सभी आगमों के शुद्ध संस्करण तैयार करना चिरकालमाध्य एवं श्रमसाध्य कार्य है ।

क्या सभी आगमों की प्रतियाँ अशुद्ध हैं ? यह प्रश्न कोई भी व्यक्त कर सकता है । इनका समाधान नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव स्वयं अपने अनुभव से अपने ही शब्दों में दे गये हैं । देखिए—

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सद्गृहस्य वियोगतः ।

सर्वस्व-पर-शास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥ १ ॥

वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः ।

सूत्राणामतिगाम्भीर्याद्, मतभेदाश्च कुत्रचित् ॥ २ ॥

१. सत् सम्प्रदाय प्राप्त नहीं होने ने अर्थात् सूत्रार्थ के सत्यज्ञाना गुरुजनों की परम्परा न रहने से

२. यथार्थ तर्क-संगत अर्थ प्राप्त न होने से

३. अनेक वाचनार्थ होने से
४. पुस्तकों अणुद्ध होने से
५. सूत्रों के अति गम्भीर होने से
६. अर्थ विषयक मतभेद होने से

ऐसी स्थिति में पं. दलसुखभाई मालवणिया के परामर्श के अनुसार प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का पाठ संकलन सुत्तागमे की तथा अंगसुत्ताणि की मुद्रित प्रतियों के कटिंग लेकर किया गया है ।

इस पद्धति के अपनाने का मुख्य हेतु यह था कि अल्पकाल में अधिक कार्य सम्पन्न हो । वास्तव में इसके अतिरिक्त सरल एवं सुविधा वाली अन्य कोई पद्धति थी भी नहीं । किन्तु इस पद्धति से प्रस्तुत धर्मकथानुयोग के संकलित मूल पाठों में कुछ त्रुटियाँ भी रही हैं, जिसका अनुभव हमें वाद में हुआ है ।

त्रुटियाँ रहने का प्रमुख कारण हैं सुत्तागमे और अंगसुत्ताणि की मुद्रित प्रतियाँ

आगमों का परिशीलन करने वाले कतिपय विद्वानों ने यह अनुभव किया होगा कि सुत्तागमे में दोनों भागों में पूरे वत्तीस आगमों के सम्पूर्ण मूल पाठ हैं ।

उनके सम्पादक श्रीपुष्पभिक्षू अपनी एक स्वतन्त्र विचारधारा के व्यक्ति थे । उन्हें अपनी मान्यता से विपरीत जितने पाठ जैनागमों में दिखाई दिये उन सब पर केंची चलाकर मूल से अलग कर दिया ।

अन्यान्य संस्थानों से प्रकाशित आगमों के मूलपाठ और सुत्तागमे के मूलपाठ इसी कारण से अक्षरशः नहीं मिलते हैं ।

अंगसुत्ताणि के सम्पादन की पद्धति भी एक स्वतन्त्र पद्धति है । अतः धर्मकथानुयोग में संकलित मूलपाठ अन्य प्रतियों के मूलपाठों से अक्षरशः नहीं मिलते हैं ।

सुत्तागमे और अंगसुत्ताणि के उपयोग का मुख्य हेतु:

वर्तमान में सुत्तागमे का ही एक ऐसा संस्करण है जिसमें सम्पूर्ण वत्तीस आगमों का मूलपाठ केवल दो पुस्तकों में उपलब्ध है । यह लघुकाय ग्रन्थराज आगमों का अभूतपूर्व संस्करण है—यदि ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है ।

अंगसुत्ताणि के तीन पुस्तकों में ग्यारह अंग है; इनके अतिरिक्त एक भी ऐसा संस्करण उपलब्ध नहीं है जिसमें सभी आगम उपलब्ध हो सके ।

अनुयोगों के संकलन एवं वर्गीकरण के लिए ये दो संस्करण ही सुलभ थे अतः इनका ही अधिक से अधिक उपयोग किया गया है ।

अनुवाद का परिशीलन

सम्पूर्ण धर्मकथानुयोग का अनुवाद पं० देवकुमार जी जैन ने किया है । वे दिगम्बर जैन विद्वान हैं । पं० दलसुख भाई मालवणिया के निर्देशानुसार धर्मकथानुयोग के अनुवादक नियुक्त किये गये थे ।

स्वास्थ्य प्रतिकूल होने से अनुवाद का वाचन न मैं कर सका और न पं० दलसुख भाई मालवणिया ही कर सके ।

मुझे आशा है, उन्होंने पूरी निष्ठा से कार्य किया है, फिर भी आगमों के स्वाध्यायशील पाठक अनुवादका वाचन करते समय कहीं कोई संशोधन योग्य स्थल देखें तो ट्रस्ट के पतेपर सूचित करें जिससे द्वितीय संस्करण के सम्पादक संशोधन करने का प्रयत्न कर सकेंगे ।

दृष्टिवाद का विच्छेद : धर्मकथानुयोग का ह्रास:

बारहवें अंग दृष्टिवाद के ५ विभाग हैं, उनमें चौथे विभाग का नाम अनुयोग है । इसके दो विभाग हैं १ मूल प्रथमानुयोग और २ गण्डिकानुयोग ।

नदीसूत्र में मूल प्रथमानुयोग की विषय-सूची दी हुई है जिस समय यह सूची दी गई उस समय मूल प्रथमानुयोग कितना विच्छिन्न हुआ और कितना अवशिष्ट रहा था यह जानने का साधन आज अनुपलब्ध है ।

प्रथमानुयोग धर्मकथानुयोग का ही अपर पर्यायवाची है, चारों अनुयोगों में प्रथम अनुयोग धर्मकथानुयोग है। मूल विशेषण इस बात का सूचक है कि धर्मकथाओं का मूल अरिहन्त भगवन्तों की कथायें हैं।

मूल प्रथमानुयोग की विषय सूची:

१ अरिहन्त भगवन्तों के पूर्वभव २ देवलोक में जाना ३ देवभव का आयु. ४ देवलोक से च्यवन. ५ तीर्थंकर भवका जन्म ६ अभियेक. ७ राज्यश्री. ८ प्रव्रज्या. ९ उग्रतप. १० केवल ज्ञान की उत्पत्ति. ११ तीर्थप्रवर्तन. १२ शिष्य समुदाय. १३ गण व गणधर १५ आर्यायें. १६ प्रवर्तनियां. १७ चतुर्विध संघ का प्रमाण. १८ जिनकल्पी, १९ मन.पर्यवजानी. २० अवधिजानी. २१ सम्यक् श्रुत-ज्ञानी. २२ वादी. २३ अनुत्तरविमानों में उत्पन्न होने वाले. २४ उत्तर वैक्रिय करने वाले मुनि २५ सिद्ध होने वाले. २६ सिद्धि पथ के देशक. २७ पादोपगमन का काल. २८ जितने भक्तों का छेदनकर अन्त करने वाले. २९ अज्ञानान्धकार से सर्वथामुक्त अनुत्तर मोक्ष सुख प्राप्त करने वाले। ऐसे अन्य अनेक भाव मूल प्रथमानुयोग में कहे गये हैं।

इस विषय सूची के अनुसार एक भी अरिहन्त भगवन्त की जीवन कथा उपलब्ध आगमों में नहीं है।

गण्डिकानुयोग की विषय सूची:

१ कुलकरगंडिका. २ तीर्थंकरगंडिका. ३ चक्रवर्तीगंडिका. ४ दशारगंडिका. ५ बलदेवगंडिका. ६ वासुदेव गंडिका. ७ गणधर गंडिका. ८ भद्रवाहु गंडिका. ९ तपःकर्म गंडिका. १० हरिवंश गंडिका ११ उत्सर्पिणी गंडिका. १२ अवसर्पिणी गंडिका. १३ चित्रान्तर गंडिका, देव. मनुष्य. तिर्यञ्च और नरकगति. इन चारों गतियों में परिभ्रमण तथा विविध प्रकार से संसार में पर्यटन, १

विषय सूची में व्युत्क्रम

१ गणधरगंडिका का नाम तीर्थंकर गंडिका के बाद ही आना चाहिए.

२ हरिवंश गंडिका का नाम दशार गंडिका के पूर्व होना चाहिए.

३ वासुदेव गंडिका के बाद प्रतिवासुदेव गंडिका का नाम होना चाहिए.

प्रतिवासुदेव गंडिका का नाम इस सूची में से सर्वथा लुप्त कैसे हो गया ? यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है.

मेरा अनुमान यह है कि वे व्युत्क्रम लिपिकयुग के हैं। आगम होने के कारण सामान्य पाठक इन व्युत्क्रमों के सन्बन्ध में कुछ सोच ही नहीं पाता और प्रबुद्ध पाठक इन की उपेक्षा कर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं इनका यथाक्रम होना अब असंभव है।

धर्मकथानुयोग कृश हो गया

समवायांग और नन्दी सूत्र में आगमों का संक्षिप्त परिचय है। उसमें छठा अंग ज्ञाताधर्मकथा का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—इस अंग के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उन्नीस अध्ययन हैं. उन्नीस उद्देशक हैं इत्यादि।

धर्मकथा के दस वर्ग हैं, प्रत्येक धर्मकथा में पांच सौ पांच सौ आख्यायिकायें हैं, प्रत्येक आख्यायिका में पांचसौ पांचसौ उपाख्यायिकायें हैं। प्रत्येक उपाख्यायिका में पांच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकायें हैं।

इस प्रकार नाड़ें तीन कराड़ कथायें इन अंग में थी। कालप्रभाव से यह कथा कोश आज कितना कृश हो गया है ? पाठक अनुमान लगा सकते हैं।

इस परिचय पाठ में एक भी वाक्य ऐसा नहीं है जो प्रत्येक श्रुतस्कन्ध के पृथक्-पृथक् अध्ययनों का सूचक हो। द्वितीय श्रुत स्कन्ध के दस वर्गों का परिचय देकर बादमें प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययनों का निर्देशन है. इस व्युत्क्रम का देयक ऐसा अनुमान होता है कि इन संक्षिप्त परिचय पाठ के कुछ वाक्य आगे पीछे हो गये हैं। अतः ऐसा हुआ है।

समवायांग में संकलित ज्ञाताधर्मकथा के परिचय पाठ में द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अन्तर्गत धर्मकथाओं के दस वर्ग का पाठ क्रमानुसार है, और नन्दी में वही पाठ व्युत्क्रम से लिखा हुआ है।

इस प्रकार व्युत्क्रम से लिखे गये अनेक पाठ आगमों में हैं। श्रद्धानु स्थाप्यायनिक पाठों के लिए उनका संशोधन अत्यावश्यक है।

जैनागमों के पद और वेद मंत्रोंका परिमाण:

जाताधर्मकथा के आठवें अध्ययन में भगवती मल्ली का कथानक है ।

एक दिन राजमहलों में चोखा परिव्राजिका आई । वह ऋग्-यजु आदि चारों वेदों की जाता थी । अन्य अनेक कथानकों में भी चारों वेदों के नामों का उल्लेख है किन्तु वे सभी कथानक भगवती मल्ली के कथानक के बाद के हैं । भगवती मल्ली का काल वर्तमान काल से ६५, ८६, ७५० वर्ष पूर्व का है इससे यह स्वतः सिद्ध है कि इतने वर्षों पहले भी वेद थे, यदि भगवान् ऋषभदेव के समय में ही अन्य अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हो गया था तो वेदों का भी प्रादुर्भाव हो गया होगा ? इसका फलितार्थ यह होगा कि वेद भी जैनागम जितने ही प्राचीन हैं ।

इस पर से यह जिज्ञासा जागृत होती है कि जिस प्रकार जैनागमों में दृष्टिवाद तथा ग्यारह अंगों के बहुसंख्यक पद काल प्रभाव से विच्छिन्न हुए हैं क्या उसी प्रकार वेदमंत्र भी विच्छिन्न हुए हैं या एक भी वेदमंत्र विच्छिन्न नहीं हुआ ? पहले ये जितने ही अत्र हैं ? इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है ।

भगवान् ऋषभ देव के समय में होने वाले उनके ही पीत्र मरीचि के जीवन काल में ही अनेक दर्शनों का प्रादुर्भाव हो गया था; उनमें चारों वेदों के नाम हैं या नहीं ? यह अन्वेपणीय है ।

सूर्यप्रज्ञप्ति में भी कृत्तिका नक्षत्र से प्रारम्भ में होने वाले नक्षत्र मण्डल का कथन है । यह नक्षत्र मण्डल कितने वर्ष पूर्व था यह भी अन्वेपणीय है । सूर्यप्रज्ञप्ति में प्ररूपित कृत्तिका से प्रारम्भ होने वाला नक्षत्र मण्डल यदि शाश्वत है तो सूर्यप्रज्ञप्ति आगम भी गणपिटक के समान शाश्वत है, यदि अशाश्वत है तो सूर्य प्रज्ञप्ति की संकलना का काल उसी कृत्तिका से प्रारम्भ होने वाला नक्षत्रमण्डल काल है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है ?

आगम-मन्दिर बने : आगमों के शुद्ध संस्करण नहीं बने:

शासन-प्रभावना की अनेक योजनाओं में प्रतिवर्ष उदारमन से अर्थराशि का जहां सदुपयोग होता है, वहां आगमों के लिए कोई कमी नहीं है ।

आगम तो जैनदर्शन के हार्द हैं उनके स्थायित्व के लिये आगम-मन्दिरों का निर्माण एक महत्वपूर्ण आयोजन है, इसी प्रकार ताम्रपटों पर आगमों का आलेखन भी उपयोगी है, अब तक कितने आगममन्दिर बने हैं इस की पूरी सूची मेरे पास नहीं है किन्तु आगम-मन्दिर के निर्माण में जितनी अर्थराशिका उपयोग बिया जाता है उतनी ही अर्थराशि से आगमों के शुद्ध संस्करण भी सम्पन्न हो सकते हैं, प्रकाशन व्यवस्था विशेषज्ञों का यह अभिमत है ।

यदि शुद्ध की गई प्रतियों के पाठ ही आगम-मन्दिरों में अंकित किये गये हों तो उनका आयोजन सफल है, उनके ही आधार पर शुद्ध संस्करण भी सम्पन्न हो सकते हैं ।

स्वर्गीय मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज ने आगमों के शुद्ध संस्करणों के लिए भगीरथ प्रयत्न किया था और आगमों के शुद्ध संस्करण प्रकाशित भी हुये थे, किन्तु शासन देवों के औदासिन्य से कार्य अधूरा रह गया । अब उसे पूरा करने के योग्य श्रुतधर का प्रयत्न कब प्रारम्भ होगा ? यह तो कोई दैवज्ञ ही जान सकता है ।

यह केवल संकलन है:

इस धर्मकथानुयोग में अंग उपांगादि आगमों में से केवल धर्मकथाओं का, कथांशों का, रूपकों का, उदाहरणों का, जीवन-प्रसंगों का तथा घटनाओं आदि का संकलन मात्र है ।

धर्मकथाओं के गद्य-पद्य मूल पाठों का तथा अनुवाद के संशोधन का संकल्प प्रारम्भ से ही नहीं था, क्योंकि यह कार्य समूहगत श्रमसाध्य था ।

प्रथम संस्करण प्रायः सर्वथा व्यवस्थित नहीं हो पाता, संकलित ग्रन्थों के सम्बन्ध में सर्वत्र ऐसा ही अनुभव हुआ है, विद्वज्जन देखते हैं, मौलिक संशोधन सुझाव देते हैं । तदनुसार परिष्कृत परिमार्जित संस्करण सम्पन्न होते रहते हैं ।

अनुवादक विद्वान को मूलानुसारी अनुवाद देने का कहा गया था, इसमें वे कितने सफल हुये हैं यह निर्णय तो स्वाध्याय शील पाठक ही करेंगे ।

प्रस्तावना लेखन:

वर्तमान युवा श्रमणों में श्री देवेन्द्रमुनि जी शास्त्री अद्वितीय साहित्य ज्ञाता हैं, अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों के लेखक हैं, अनेक आगमों के एवं सन्दर्भ ग्रन्थों के भूमिका लेखक हैं, आपके कई शोधनिबन्ध प्रकाशित हुए हैं फिर भी उपाधियों से विरत हैं। आपकी लेखन शैली अप्रतिम हैं। आपने ही प्रस्तुत धर्मकथानुयोग की समीक्षात्मक भूमिका लिखकर आगम कथाओं का अमृत पान कराया है, स्वाध्यायशील साधक आपकी इस कृपाके लिये सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

संकलन सहयोग:

धर्मकथानुयोग का छह स्कंधों में विभाजन-तथा श्रमण-श्रमणियों का एवं श्रावक श्राविकाओं का, तीर्थकरों के शासन काल का क्रमानुसार वर्गीकरण का श्रेय सुविख्यात विद्वान् पं० श्रीदलसुख भाई मालवणिया को है, इस आत्मीयभाव से किया सहयोग के लिए मैं उनका सदैव कृतज्ञ हूँ।

श्री विनयमुनि 'वागीश' ने इस संकलन कार्य में सभी संभव सहयोग प्रदान किये हैं, अतएव वह भी धन्यवाद का पात्र है।

—अनुयोग प्रवर्तक

मुनि कन्हैयालाल 'कमल'



प्रस्तुत धर्मकथानुयोग का संक्षिप्त परिचय

धर्मकथानुयोग का यह संकलन और वर्गीकरण अभूतपूर्व है। इसमें छ स्कन्ध है।

प्रथम स्कन्ध में उत्तम पुरुषों के कथानक हैं। इस स्कन्ध के ग्यारह अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन में कुलकरोँ का संक्षिप्त वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन में भगवान् ऋषभदेव का संक्षिप्त वर्णन है।

तृतीय अध्ययन में भगवती मल्ली का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्थ अध्ययन में भगवान् अरिष्टनेमी का संक्षिप्त वर्णन है।

पंचम अध्ययन में भगवान् पार्श्वनाथ का संक्षिप्त वर्णन है।

छठे अध्ययन में भगवान् महावीर का संक्षिप्त वर्णन है।

सप्तम अध्ययन में भावी चौबीसी के प्रथम तीर्थकर महापद्म का संक्षिप्त वर्णन है।

अष्टम अध्ययन में आगमों में उपलब्ध तीर्थकरोँ से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

नवम अध्ययन में भरतचक्रवर्ती का विस्तृत वर्णन है।

दशम अध्ययन में आगमों में उपलब्ध चक्रवर्तियों से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

ग्यारहवें अध्ययन में आगमों में उपलब्ध बलदेव और वासुदेवों से सम्बन्धित विकीर्ण पाठों का संकलन और वर्गीकरण है।

द्वितीय स्कन्ध में श्रमण कथानक के सैंतालीस अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन में महवल श्रमण का संक्षिप्त वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन से बारहवें अध्ययन पर्यन्त भगवान् अरिष्टनेमि के धर्मशासन में होने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन है।

तेरहवें और चौदहवें अध्ययन में भगवान् पार्श्वनाथ के धर्म शासन में होने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन है।

पन्द्रहवें से सैंतालीसवें अध्ययन पर्यन्त भगवान् महावीरके धर्मशासन में हाने वाले श्रमणों के संक्षिप्त वर्णन हैं।

विशेष सूचना

धर्मकथानुयोग के इस प्रथम विभाग में दो स्कन्धों का ही संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

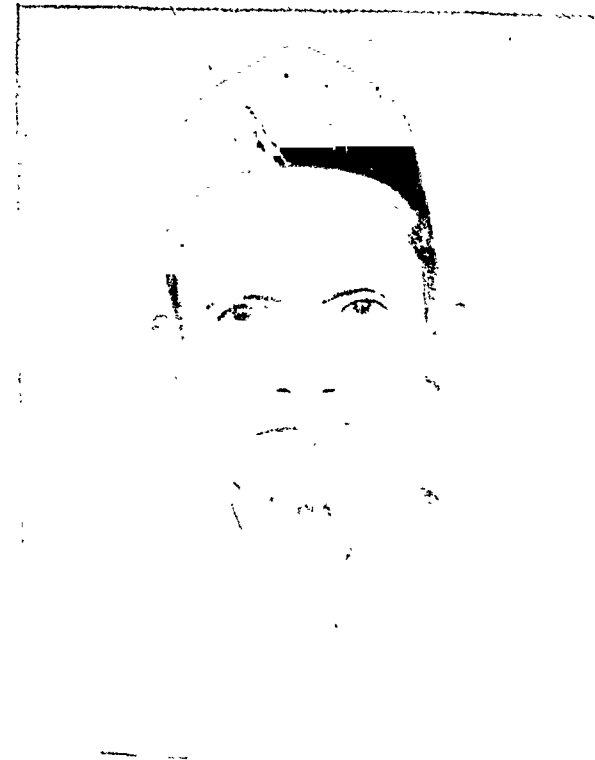
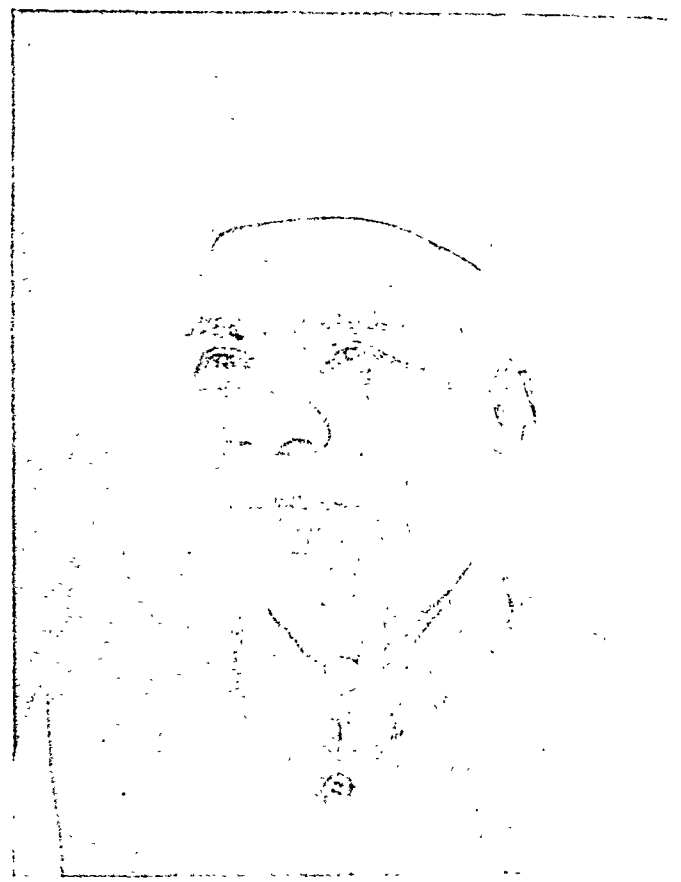


श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद

आप मूलतः साणंद (गुजरात) के निवासी हैं। बहुत वर्षों से अहमदाबाद में ही व्यापार व्यवसाय कर रहे हैं। व्यापारी समाज में आपकी महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। आपके कोटन का बहुत बड़ा काम है, आप गुजरात व्यापारी महामंडल के प्रमुख भी रहे हुए हैं। आप अखिल भारतीय शास्त्रोद्धार समिति के प्रमुख हैं एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। लोककल्याण के कार्यों में सदा आप तत्पर रहते हैं। अनेक वर्षों से आप ब्रह्मचर्य व्रत एवं रात्रि में चौविहार आदि का पालन करते हैं। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही आपकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है। आप दृढ़ धर्मो, उदार हृदयी श्रावक हैं अतः स्थानीय समाज के अग्रणी माने जाते हैं। कालूपुर बैंक के आप चेयरमेन हैं।

अनुयोग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालालजी म० 'कमल' के सम्पर्क में सन् 1976 में आये। उनके अनुयोग लेखन कार्य से प्रभावित होकर आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट की स्थापना की, इस समय ट्रस्ट के प्रमुख भी आप ही हैं। आपको धर्मपत्नि श्रीमती रुक्मणी वहिन भी धार्मिक भावना वाली हैं, आपके सुपुत्र वच्चूभाई, वकुलभाई में धर्म के सुसंस्कार दृढ़ हैं।

□



श्री हिममतलाल शामलभाई शाह, अहमदाबाद

आप बहुत ही उत्साही कार्यकर्ता हैं। शामलभाई अमरणी के आप सुपुत्र हैं। आपके घर पर एक विशाल पुस्तकालय है, उसमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह है। शोध निबन्ध लेखकों के लिए यह संग्रह अत्यन्त उपादेय है। आप साधु-साधिवियों की ज्ञान वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं। प्रकाशनों की प्रगति में आपका महत्वपूर्ण सक्रिय योगदान रहता है। वृद्धावस्था में भी आपका पुरुषार्थ, धर्म एवं स्वाध्याय की रुचि अनुकरणीय है।

□





श्री रमणलाल माणेकलाल शाह, अहमदाबाद



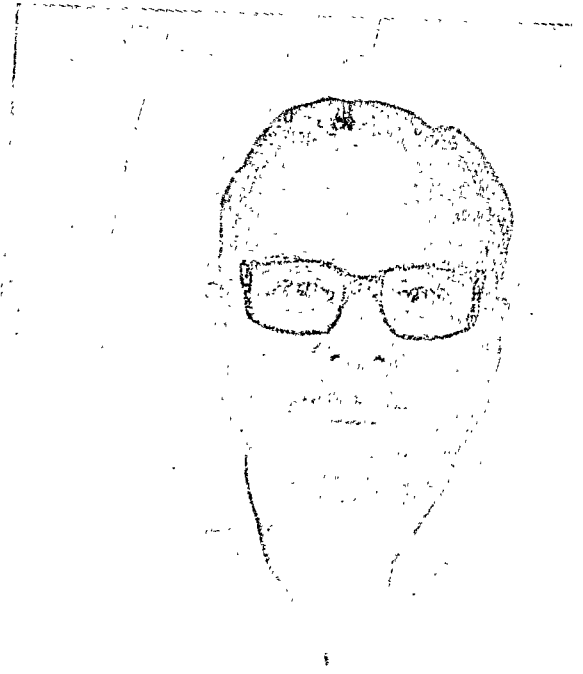
आप नवरंगपुरा अहमदाबाद के निवासी हैं। आपके मातुश्री लहरी बहन तथा धर्मपत्नी सुभद्रा बहन बहुत ही धार्मिक भावना वाली श्राविका हैं। आपने स्था० जैन उपाश्रयों में बहुत बड़ा योगदान दिया है। अभी पूज्य गुरुदेव के दीक्षा अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर श्री वर्धमान महावीर बाल निकेतन के उद्घाटन पर भी आपने बहुत बड़ा योगदान दिया है। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। अनेक बार व्यापार के कारण विदेश जाना होता है परन्तु वहां भी धर्म के प्रति वही दृढ़ श्रद्धा रहती है। मानव राहत कार्यों में अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग विशेष रूप से करते रहते हैं।



श्री बलवन्तलाल शान्तीलाल शाह, अहमदाबाद



आप अहमदाबाद में रूई के प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। आपके आत्माराम माणेकलाल नाम का बहुत बड़ा फर्म है। बहुत ही धार्मिक, उदार, गुप्तदानी श्रावक हैं। दरियापुरी स्थानकवासी जैन संघ छीपापोल एव अनेक संस्थाओं के आप सक्रिय कार्यकर्ता हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।





स्व० श्री राजमल रिखवचन्द्र मेहता

एवं

स्व० श्रीमती मणीवेन राजमल मेहता

पालनपुर

पू० मातुश्री तथा पिताजी;

आपका हमारे ऊपर बहुत उपकार है। क्योंकि संस्कार सिंचन करने वाले एवं जीवन में धर्म प्रपाया शालक के माता पिता ही होते हैं। हम आपके बहुत-से श्रेणी हैं।

लि० रमणिकलाल राजमल

सी० सुशीला वहन रमणिकलाल

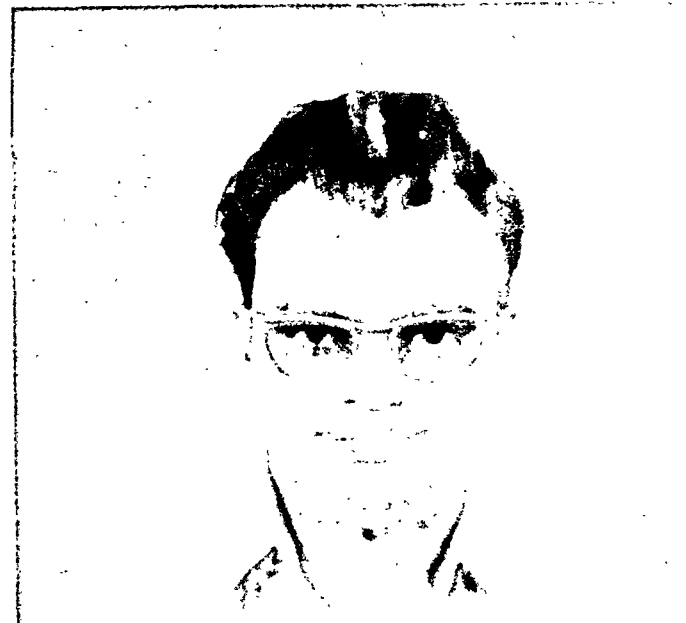
[श्रीमती सुशीला वहन मेहता — पालनपुर स्व० समाज की अग्रणी महिला हैं। वर्तमान में बालकेदार संघ की प्रमुख हैं। बहुत ही उदार दानवीर महिला हैं। उपाध्यक्ष आदि के लिए आपका विशेष योगदान रहता है।]

श्री नवनीत भाई चुन्नीलाल पटेल, अहमदाबाद

आपने अनेक स्थानकों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तपस्वियों का सम्मान करने में आपकी विशेष रुचि रही है। पार्श्व-नाथ कॉर्पोरेशन के आप मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। बरवाला संप्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनि जो म० के अनन्य भक्त हैं। हरसिद्ध कोपरेटिव बैंक के आप चेयरमैन हैं। अपनी जन्मभूमि मुणाव में होस्पिटल के लिए पाँच लाख का महत्वपूर्ण दान दिया है। नवरंगपुरा, नारायण-पुरा, नवावाडज आदि अनेक संघों के एवं संस्थाओं के ट्रस्टी एवं प्रमुख हैं।

आपके पिता श्री चुन्नीलाल भाई, माता मूरजवेन भी बहुत ही धर्मपरायण हैं। नाथु माधवी जी की वैयावृत्त हेतु अग्रणी रहते हैं।

आराम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।



अब्मंगेत्ता, गंधकसाएहि उल्लोलेति, उल्लोलित्ता सुद्धोदएणं
मज्जावेद, मज्जावित्ता जस्स जंतपलं सयसहस्सेणं तिपडोलत्तिएणं
साहिएणं सरसीएण गोसीस-रत्त-चंदणेणं अणुलिपति, अणुलिपित्ता
ईसिणिहसासवातवोज्झं वरणगरपट्टणुगयं कुसलणरपसंसितं
अस्सलालापेलवं छेपायरियकणगखचियंतकम्मं हंसलवखणं पट्टजुयलं
णियंसावेद,

णियंसावेत्ता हारं अद्धहारं उरत्थं एगावति पालंवसुत्तं-पट्ट-
मउड-रयणमालाई आविधावेति, आविधावेत्ता गंधिम-वेडिम-
पुरिम-संघातिमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समालंकेति,

२६१. समालंकेत्ता दोच्चंपि महया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ,
समोहणित्ता एगं महं चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणि विउव्वइ,
तं जहा—

ईहामिय-उत्तम-तुरग-गर-मकर-विहग-वाणर -कुञ्जर - रुह-
सरम-चमर-सव्दूल-सीह-वणलय-विचित्तविज्जाहर-मिहुण - जुयल-
अंत-जोग-सुत्तं, अच्चीसहस्समालिणीयं, सुणिरुवित्त-मिसिमिसित-
ह्वगसहस्सकलियं, ईसिनिममाणं, निदिमसमाणं, चक्खुल्लो-
पणवेस्तं, मुत्ताहलमुत्तजालंतरोवियं तवणीय-पवरलंवूरा-
पत्तंयंतमुत्तदामं, हारद्वहार-भूषणसमोणयं, अहियपेच्छणिज्जं,
पउमत्तयभत्तिचित्तं, असोणलयभत्तिचित्तं, कुन्दलयभत्तिचित्तं,
पाणालयभत्ति-विरदयं मुगं चावकंतहवं पाणामणिपंचवणघंटा-
पडाय-परिमंडिपगसिहरं पासादीयं दरिसणीयं सुखं ।^१

१. मंगलगी-मात्राओ—

मोच उरसीमा, जिणवरस्स जरमरुणविष्णुमुक्कस्स । ओसत्तमल्लदामा, जलथलयंदिक्कसुमेहि ॥
मोचरसाणं म.अन्नारे, दिव्वं थररुणगवंचवइयं । मोहासणं महरिहं सपादपीढं जिणवरस्स ॥
जातदग्गा इमइओ, भावु रसोदी पराभरणधारी । योमयवत्थणियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं ॥
उरुद्वेण भवेणं, अत्थसमायेण मोहणेन जिणो । वेसाहिं विसुच्छंतो, आरुहई उत्तमं सीयं ॥
मोहणेणं विरिदुओ, वरुणीमाणा व सोहिं तावेत्ति । धीवत्ति चामराहिं मणिरयणविचित्तदंडाहिं ॥
पुण्ड्रि इतिवत्ता, भावुनेहिं नाहृदुमेवत्तणहिं । पच्छा वदंति देवा, सुरथनुरागकलणागिदा ॥
पुण्ड्रि इतिवत्ता, वरुणी पुण्ड्रि शक्तिवतिं पावमि । अवरं वदंति गक्का, पागा पुण उत्तरे पासे ॥

मालिश करता है, मालिश करके सुगन्धित उबटनों से उबटन करता है, उबटन करके शुद्ध-स्वच्छ जल से स्नान कराया, स्नान कराके जिनका एक लाख सुवर्णमुद्रा से भी अधिक मूल्य है, ऐसे बहुमूल्यवान अत्यन्त शीतल गोशीर्ष रक्तचन्दन का लेप करता है, लेप करके अल्पतम घ्राणवायु-धीमी सी श्वास-प्रश्वास से कंपित होने वाले, प्रसिद्ध नगर में निर्मित, प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अश्व की जैसी लाल झाँई मारने वाले, विशिष्ट कारीगरों द्वारा स्वर्ण तारों से कशीदा निकाला गया है, ऐसे हंस के समान श्वेत धवल वस्त्र युगल को पहनाया ।

पहनाकर गले में हार अर्धहार एकावली—इकलड़ी, जटकती हुई मालायें झूमकों वाली तथा कटिसूत्र, मुकुट, रत्न मालाएँ पहनाई, पहनाने के पश्चात् ग्रन्थिम, वेष्टिम, पुरिम और संघातिम इन चार प्रकार की मालाओं द्वारा कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत करता है ।

२६१. इस प्रकार से समलंकृत करने के पश्चात् महान् वैक्रिय समुदघात की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके एक विराट सहस्र-वाहिनी चन्द्रप्रभ नामक शिविका की विकुर्वणा की अर्थात् बनाई, वह शिविका इस प्रकार की है—

उसमें ईहामृग, वृषभ, अश्व, मगरमच्छ, पक्षी, वन्दर, हाथी, रुह—मृग विशेष वारहसिगा, शरभ-अष्टापद, चमरी गाय, शादूलसिह आदि के तथा वनलताओं अनेक विद्याधरों के युगल यंत्र, मनुष्य युगल के चित्राम बने हुए हैं तथा जो सहस्र रश्मि सूर्य प्रभा के समान तेजवाली, रमणीय, जगमगाती हुई, हजारों रूपकों-चित्तों से युक्त, दीप्यमान, देदीप्यमान है । जिससे देखते ही, पलक झपक जाती हैं, मोतियों की मालायें और मोतियों के जाल—पदें झूल रहे हैं, श्रेष्ठ सुवर्ण के मणकों से गुन्थी हुई मोतियों की मालायें लटक रही हैं, हार, अर्धहार आदि भूषणों से जिसे शृंगारित किया गया है, अत्यधिक दशंनीय, पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता तथा इसी प्रकार और दूसरी लताओं से चित्रित है, शुभ, चारु, कांतरूप, विविध प्रकार—अनेक घाट की रंग-विरंगी मणियों, घंटों, पताकाओं से जिसका शिखर भाग परिमंडित है, आकर्षक, दशंनीय एवं परम सुन्दर है ।

पडिवज्जइ^१, सामाइयं चरित्तं पडिवज्जेत्ता देवपरिसं च मणुयपरिसं च आलिक्ख-चित्तभूयमिव दुवेइ ।^२

करने के समय देव परिषद और मनुष्य परिषद भीत पर लिचे हुए चित्र की भांति अवस्थित हो गई अर्थात् उपस्थित सभी देव और मनुष्य चित्रवत निश्चेष्ट-निस्तब्ध हो गये ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१२

१ संगहणी गाहाओ

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण । खिप्पामेव णिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ।
पडिवज्जित्तु चरित्तं, अहोर्णिसि सव्वपाणभूतहितं । साहट्टलोमपुलया, पयया देवा निसार्मिति ॥

२ समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिक्खे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेह-जच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहि देवत्तगएहि गुरुमहत्तरएहि अब्भणुत्ताए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंति-एहि जियकप्पिएहि देवेहि तार्हि इट्ठाहि-जाव-वग्गुहि अणवरयं अभिनंदमाणा य अभियुव्वमाणा य एवं वयासी—

“जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा ! वुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्तं हियमुह-निस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई ति” कट्टु जय-जयसद्दं पउंजंति ।

पुर्व्वि पियं नं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाइं नाण-दंसणे होत्था ॥

तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं नाण-दंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ,

अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चेच्चा हिरण्णं,-जाव- दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं पढमे मासे, पढमे पक्खे, मग्गसिरवहुले तस्स णं मग्गसिरवहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयामुराए परिसाए समणुग्गममाणमग्गे संखिय-चक्किय-नंगलिय-मुहसंगलिय-वद्धमाणग-पूसमाणा-वंटियगणेहि तार्हि इट्ठाहि-जाव-वग्गुहि अभिनंदमाणा अभिसंधुवमाणा य एवं वयासी—

“जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अभग्गेहि णाणदंसणचरित्तोहि अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालोहि समण-धम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्जे निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियवद्धकच्छे मद्दाहि अट्टकम्मसत्तु ज्ञाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्जे, पावय वितिभिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं ।

जय जय खत्तियवरवसहा ! वहुइं दिवसाइं, वहुइं पक्खाइं, वहुइं मासाइं, वहुइं उऊइं, वहुइं अयणाइं, वहुइं संवच्छराइं, अभोए परीसहोवसग्गाणं खंतिक्खे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घ भवउ ति” कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ॥

तए णं समणे भगवं महावीरे—

नयणमालासहस्सेहि पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे,
वयणमालासहस्सेहि अभियुव्वमाणे अभियुव्वमाणे,
हिययमालासहस्सेहि अभिनंदिज्जमाणे अभिनंदिज्जमाणे,
मणोरहमालासहस्सेहि विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे,
कंतिरुवसोहग्गुणेहि पत्तियज्जमाणे पत्तियज्जमाणे,
अंगुलिमालासहस्सेहि दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे,
दाहिणहत्थेणं वहुणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे,
भवणपंतिहस्साइं समतिच्छमाणे समतिच्छमाणे,

तंतो-तल-तल-नुडिय-नीय-वाइयरवेणं महुरेण य मगहरेण जयजयसद्दोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिवुज्जमाणे पडि-वुज्जमाणे, मन्विइडीए सव्वजुईए सव्ववलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूतीए सव्वविभूसांए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं सव्वपगतीइ सव्वपाडएहि सव्वतालायरेहि सव्वोरोहेणं सव्व-पुप्फ-वत्य-बंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडिय-सद्दसग्गिणादेणं महता इइडीए महता जुतीए महता वलेणं महता वाहणेणं महता समुदएणं महता वरतुडित्त-जमग-समग-पत्तयदिनेणं मंज-पणव-पडह-भेरि-सल्लारि वरमुहि-हुडुक्क-हु-दुमि-निग्घोस-नादियरवेणं कुण्डपुरं नगरं मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेनेव पायमंडवणे उज्जाणे जेनेव अनोगवरनायवे तेणेव उवागच्छइ ।

पडिवज्जइ^१, सामाद्यं चरित्तं पडिवज्जेत्ता देवपरिसं च करने के समय देव परिषद और मनुष्य परिषद भीत पर लिखे मणुयपरिसं च आलिकख-चित्तभूयमिव दृवेइ ।^२ हुए चित्र की भांति अवस्थित हो गई अर्थात् उपस्थित सभी देव

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१२ और मनुष्य चित्रवत् निश्चेष्ट-निस्तब्ध हो गये ।

१ संगहणी गाहाओ

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण । खिप्पामेव णिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ।
पडिवज्जित्तु चरित्तं, अहोर्णिसि सव्वपाणभूतहितं । साहट्टलोमपुलया, पयया देवा निसार्मिति ॥

२ समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिख्वे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेह-
जच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहि देवत्तएर्हि गुरुमहत्तरएर्हि अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंति-
एर्हि जियकप्पिएर्हि देवेहि ताहि इट्ठाहि-जाव-वग्गुहि अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी—

“जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा ! वुज्जाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुह-
निस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई ति” कट्टु जय-जयसद्दं पउंजंति ।

पुर्व्वि पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्मओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाण-दंसणे होत्था ॥
तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं नाण-दंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ,

अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चेच्चा हिरणं,-जाव- दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं पढमे मासे, पढमे पक्खे, मगसिरवहुत्ते
तस्स णं मगसिरवहुत्तस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं
मुहुत्तेणं, चदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमगे संखिय-चक्किय-नंगलिय-मुहंसंगलिय-वद्धमाणग-
पूसमाणा-वंटियगणेहि ताहि इट्ठाहि-जाव-वग्गुहि अभिनंदमाणा अभिसंथुव्वमाणा य एवं वयासी—

“जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अभग्गेहि णाणदंसणचरित्तोहि अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालोहि समण-
धम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्जे निहणाहि रागदोसमत्तले तवेणं धिइधणियवद्धकच्छे मद्दाहि अट्टकम्मसत्तु
ज्ञाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्जे, पावय वित्तिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ
य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं ।

जय जय खत्तियवरवसहा ! वहुइं दिवसाइं, वहुइं पक्खाइं, वहुइं मासाइ, वहुइं उऊइं, वहुइं अयणाइं, वहुइं संवच्छराइं, अभीए
परीसहोवसगाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घ भवउ ति” कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ॥

तए णं समणे भगवं महावीरे—

नयणमालासहस्सेहि पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे,
वयणमालासहस्सेहि अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे,
हियमालासहस्सेहि अभिनंदिज्जमाणे अभिनंदिज्जमाणे,
मणोरहमालासहस्सेहि विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे,
कंठियसोहग्गुणेहि पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे,
अंगुलिमालासहस्सेहि दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे,
दाइमहस्सेणं वहुगं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे,
भयणसंतिमज्जसाइं समतिच्छमाणे समतिच्छमाणे,

समी-तन-नाल-नुडि-नीय-वाइयरवेणं महुरेण य मयहुरेण जयजयसद्दोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिवुज्जमाणे पडि-
पुत्तनाणे, मन्निइओए सव्वनुइए सव्ववलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूतीए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं
नमसंभमेणं सव्वभगवीहि सव्वभाडगहि सव्वतालायरेहि सव्वोरोहेणं सव्व-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडिय-
सइमभियारेणं मद्दा इडोए महता व्रुतीए महता वलेणं महता वाहणेणं महता समुदएणं महता वरतुडित-जमग-समग-
पणसिनेणं सव्व-गण-पड-नेरि-अल्लदि वरमुहि-इडुक्क-टुं-दुभि-निग्घोस-नादियरवेणं कुण्डपुरं नगरं मज्जमज्जेणं निगगच्छइ,
निगगच्छता जेणेव भावसंभवने उज्जाणे जेणेव असोणवरतायवे तेणेव उवागच्छइ ।

मणपज्जवणाणोप्पत्ति—

२६६. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खाओवसमियं चरित्तं पडिवज्जस्स मणपज्जवणाणे णामं णाणे समुप्पन्ने-अड्ढाड्जेहि दीवेहिं दोहि य समुद्देहिं सण्णीणं पंचेदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ ॥

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०१५

तेरसमासाणंतरं अचेले—

२६७. समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं-जाव-चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेले पाणपडिग्गहए ॥

—कप्प० सु० ११५

अणगाररूपसंसणं—

२६८. तए णं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाए १ इरिया-समिए, २ भासासमिए, ३ एसणासमिए, ४ आयाण-भंड-मत्त-निकखेवणासमिए, ५ उच्चार-पासवण-खेल-सिघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए, ६ मणसमिए, ७ वइसमिए, ८ कायसमिए, १ मणगुत्ते, २ वयगुत्ते, ३ कायगुत्ते, गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तवंभयारी अकोहे अमाणे असाए अलोभे संते पसंते उवसंते परिनिव्वडे अणासवे अममे अकिचणे छिन्नगंथे निरुवलेवे, १ कंसपाई इव मुक्कतोए (२१) जीवो व्व अप्पडिहय-गइ त्ति ।^१

—कप्प० सु० ११७

पडिवंधाभावो—

२६९. नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिवंधो भवति । से य पडिवंधे चउद्विहे पणत्ते, तं जहा—

१ दव्वओ, २ खेत्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ ।

१. दव्वओ णं सचित्ताचित्तम्भोसिएसु दव्वेसु ।

२. खेत्तओ णं गामे वा-जाव-णहे वा ।

३. कालओ णं समए वा-जाव-अणयरे वा दोहकालसंजोगे वा ।

मनःपर्यवज्ञानोत्पत्ति—

२६६. तदनन्तरं क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही श्रमण भगवान् महावीर को मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ जिसके द्वारा वे अढ़ाई द्वीप और ११ दो समुद्रों में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त व्यक्त मन वाले जीवों के मनोगत भावों को जानने लगे ।

तेरह मासानन्तर अचेल—

२६७. श्रमण भगवान् महावीर एक मास अधिक एक वर्ष तक-यावत्-चीवरधारी (वस्त्र को धारण करने वाले) थे, उसके बाद अचेल-निर्वस्त्र एवं पाणिपात्र हुए ।

अनगाररूप प्रशंसा—

२६८. उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर अनगार हुए १—ईर्या समिति, २—भाषासमिति, ३—एषणा समिति, ४—आदान भांडमात्र निक्षेपणा समिति, ५—उच्चार पासवणखेल सिघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति, ६—मनः समिति, ७—वचन समिति ८—कायसमिति, १—मनगुप्ति, २—वचनगुप्ति, ३—कायगुप्ति इन सबसे समित एवं गुप्त तथा गुप्तेन्द्रिय, गुप्त बह्वचारी, क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित हुए शांत, प्रशान्त, उपशांत और संताप से मुक्त हुए, आश्रव रहित, ममता रहित, परिग्रह रहित, अकिचन निर्ग्रन्थ हुए, निर्लेप हुए, १ जल से भी लिप्त न होने वाले श्रेष्ठ निर्मल कांस्य पात्र की तरह -यावत् - (२१ उपमाएँ कहना) जीव की तरह अप्रतिहत गति वाले हुए ।

प्रतिबंधाभाव—

२६९. उन भगवान् को कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था, वे अप्रतिबन्ध विहारी थे । प्रतिबन्ध चार प्रकार का होता है, यथा—

१—द्रव्य, २—क्षेत्र, ३—काल, ४—भाव ।

१—द्रव्य से—सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

२—क्षेत्र से—ग्राम में—यावत्—आकाश ।

३—काल से—समय में—यावत्—अन्य किसी भी दीर्घ काल का संयोग ।

जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छिता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, अहे सीयं ठावित्ता सीयाओ पच्चोःरुहइ, सीयाओ पच्चोःरहित्ता सयमेव आहरणमल्लालंकारं ओमुयइ, आहरणमल्लालंकारं ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करेइ, सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अवाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एणं देवदूसमादाय एणे अवीए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अगारारियं पव्वइए ।

—कप्प० सु० ११०-११४

१ एतेसि पदाणं इमातो दुन्नि संग हणी गाहाओ—

१ कंसे २ संखे ३ जीवे, ४ गगणे ५ वायु य ६ सरयसलिले य । ७ पुक्खरपत्ते ८ कुम्भे, ९ विहगे १० खग्गे य ११ भारंटे ॥ १॥

१२ कुञ्जर १३ वसभे १४ सीहे, १५ णगराया चेव १६ तागरनखोभे । १७ चंदे १८ नूरे १९ कएणे, २० वमुन्धरा चेव २१ हूपवहे ॥ २॥

३. एगं च णं महं चित्तविचित्तपदखगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

४. एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

५. एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

६. एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

७. एगं च णं महं सागरं उम्मीवोयीसहस्सकलियं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

८. एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

९. एगं च णं महं हरिवेहलियवण्णाभेणं नियणेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेडियं परिवेडियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

१०. एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उव्वरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

३०४. (१) जण्णं समणे महावीरे एगं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहिणिज्जे कम्मं मूलाओ उग्घाइए ।

(२) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किलपदखगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुवकज्जापोवगए विहरति ।

(३) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्त-पदखगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे विचित्तं ससमयपरत्तमइयं डुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति पुरुवेत्ति दंसेति निदंसेति उव्वदंसेति, तं जहा—आयारं सूयगडं-जाव-दिट्ठिवायं ।

(४) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे डुविहं धम्मं पण्णवेति, तं जहा—आगारधम्मं वा, अणगार धम्मं वा ।

(५) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे समणसंघे, तं जहा—समणा, समणीओ, तावया तावियाओ ।

(६) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं

३. एक वड़े चित्र-विचित्र पंख वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर जागे ।

४. एक महान् सर्व रत्नमय मालायुगल को स्वप्न में देखकर जागे ।

५. एक वड़े और श्वेत गोसमूह को स्वप्न में देखकर जागे ।

६. एक विशाल चौतरफ से कुसुमित-आच्छादित हुए पद्म सरोवर को स्वप्न में देखकर जागे ।

७. हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को भुजाओं से तरकर पार किया, ऐसा स्वप्न देखकर जागे ।

८. तेज से चमचमाते हुए एक वड़े सूर्य को स्वप्न में देखकर जागे ।

९. एक विशाल मानुषोत्तर पर्वत को हरे वंदूर्य के रंग जैसे अपनी अंतडियों द्वारा चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ ऐसा स्वप्न देखकर जागे ।

१०. एक महान् मन्दर (मेरु) पर्वत की मन्दर चूलिका के ऊपर सिंहासन पर स्वयं को बैठा देखकर स्वप्न से जागे ।

३०४. (१) श्रमण भगवान् महावीर जो एक वड़े भयंकर, तेजस्वी रूप वाले ताड़ जैसे पिशाच को पराजित किया हुआ देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय-कर्म को मूल से नष्ट किया ।

(२) श्रमण भगवान् महावीर जो एक वड़े श्वेत पंखों वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर शुक्ल-ध्यान को प्राप्त करके विचरण करते हैं ।

(३) श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में जो एक वड़े चित्र-विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को देखकर जागे, उसका फल है कि श्रमण भगवान् महावीर ने विचित्र स्वसमय, परसमय के विचारों से युक्त द्वादशांग गणिपिटक का सामान्य कथन, विशेष कथन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन करते हैं, यथा—आचारांग, सूत्रकृतंग—यावत्—दृष्टिवाद ।

(४) श्रमण भगवान् महावीर ने जो एक महान् सर्व रत्नमय माला युगल देखा और देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा की, यथा—आगार धर्म और अनगार धर्म ।

(५) श्रमण भगवान् महावीर जो एक सफेद गायों के समूह को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर का चार प्रकार का संघ हुआ, वह इस प्रकार है—१. श्रमण २. श्रमणी ३. श्रावक ४. श्राविका ।

(६) श्रमण भगवान् महावीर एक विशाल पद्म-सरोवर को सब तरफ से कुसुमित हुआ देखकर स्वप्न से जागे, उनसे

महावीरे चञ्चलिवहे देवे पणवेति, तं जहा—१ भवणवासी, २ वाणमंतरे, ३ जोतिसिए, ४ वेमाणिए ।

(७) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं उम्मीवीयी सहस्सकलियं भूवाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं नगवया महावीरेणं अणादीए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारे तिण्णे ।

(८) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने ।

(९) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलिय-यण्णानेणं नियणेणं अंतेणं माणुमुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवे-दियं परिवेदियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोया सदेवमणुया-सुरे लोए परितुयंति—इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे ।

(१०) जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरि सीहासणवरणयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झणए केवली धम्मं आघयेति पणवेति पक्खेनि दंभेति निदंसे तिउवदंसेति ।

सुधिण-फल—

३०५. इत्थो वा पुरिसे वा सुधिणंते एगं महं हयपंति वा गयपंति वा भरपंति वा किन्नरपंति वा किगुरिसपंति वा महोरगपंति वा गंधव-पंति वा वमभपंति वा पासमाणे पासति, द्रुहमाणे द्रुहति, द्रुढमिति अग्धान मज्जाते, तपधानेव बुज्जाति, तेणेव भवणहणेणं सिज्जाति-आर-मय्यदुवचामं अंतं करेति ।

इत्थो वा पुरिसे वा सुधिणंते एगं महं वामिणि पाईणपडि-यासं बुद्धओ ममुद्धे पुट्टुं वाममाणे पासति, संवेल्लेमाणे संवेल्लड, मधिणियमिणो अणायं मज्जाति, तपधानेव बुज्जाति, तेणेव भवणहणेणं सिज्जाति-आर-मय्यदुवचामं अंतं करेति ।

इत्थो वा पुरिसे वा सुधिणंते एगं महं रत्तुं पाईणपडिणायसं बुद्धो ममुद्धे बुद्धपासमाणे पासति, छिरिसाणे छिरिति, छिरिमिति

श्रमण भगवान् ने १—भवनवासी २—वाणव्यंतर ३—ज्योतिष्क ४—वैमानिक इन चार प्रकार ॐ देवों को प्रतिबोधित किया ।

(७) श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक विशाल महासागर को अपने हाथों से तैरकर पार किया हुआ देखा और जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर ने अनादि, अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कांतार भवाटवी को पार किया ।

(८) श्रमण भगवान् महावीर तेज से चमचमाते एक महान् सूर्य को स्वप्न में देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर को अनन्त, अनुत्तर, निरावाध, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुए ।

(९) श्रमण भगवान् महावीर एक विशाल मानुषोत्तर पर्वत को नीलवैडूर्यमणि के रंग जैसी अपनी अंतर्दियों द्वारा चारों ओर से आवेष्टित परिवेष्टित किया हुआ देखा और देखकर स्वप्न से जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर की उदार कीर्ति, स्तुति सम्मान और वश देव, मनुष्य और असुरलोक में परिव्याप्त हुआ कि 'यह श्रमण भगवन्त महावीर हैं ।'

(१०) श्रमण भगवान् महावीर ने अपने को स्वप्न में मंदर (मिेर) पर्वत की चूलिका के ऊपर सिंहासन पर बैठा देखा और देखकर जागे, उससे श्रमण भगवान् महावीर देव मनुष्य और असुर युक्त परिपद में केवली प्रज्ञप्त धर्म का सामान्य कथन, विशेष कथन, प्ररूपण दर्शन, निदर्शन उपदेश करते हैं ।

स्वप्न फल—

३०५. कोई भी स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ी अश्वपंक्ति, गजपंक्ति, मनुष्यपंक्ति, किन्नरपंक्ति, किपुरुषपंक्ति महोरगपंक्ति, गंधर्वपंक्ति अथवा वृषभपंक्ति को देखे और उसके ऊपर चढ़े और उस पर स्वयं चढ़ा है ऐसा अपने को माने तथा इस प्रकार देखकर यदि तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्वं दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष यदि स्वप्न के अन्त में समुद्र के दोनों ओरों से अड़ा हुआ और पूर्व तथा पश्चिम तरफ लम्बा एक बड़ा दामण देखे और उसे लपेटे तथा स्वयं ने उसे लपेटा है ऐसा स्वयं को माने तथा इस प्रकार देखकर कोई शीघ्र जागता है तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्वं दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में लोक के दोनों ओरों को स्वयं किया हुआ और पूर्व व पश्चिम लम्बा एक बड़ा रस्ता

अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं क्पहसुत्तगं वा नील-सुत्तगं वा लोहियसुत्तगं वा हालिदुसुत्तगं वा सुविकलसुत्तगं वा पासमाणे पासति, उग्गोवेमाणे उग्गोवेति, उग्गोवितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं अयरारिसि वा तंबरारिसि वा तउयरारिसि वा सीसगरारिसि वा पासमाणे पासति, दुह्हमाणे दुह्हति, दुह्हमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हिरण्णरारिसि वा सुवण्णरारिसि वा रयणरारिसि वा वहरारिसि वा पासमाणे पासति, दुह्हमाणे दुह्हति, दुह्हमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं तणरारिसि वा कट्टरारिसि वा पत्तरारिसि वा तयरारिसि वा तुसरारिसि वा भुसरारिसि वा गोमयरारिसि वा अवकरारिसि वा पासमाणे पासति, विक्खिरमाणे विक्खिररति, विक्खिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं मरयंभं वा वीरणयंभं वा वंसीमूलयंभं वा वल्लीभूलयंभं वा पासमाणे पासति, उम्मूलेमाणे उम्मूलेति, उम्मूलितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं खीरकुम्भं वा दधिकुम्भं वा घयकुम्भं वा मधुकुम्भं वा पासमाणे पासति, उप्पाडेमाणे वा उप्पाडेति उप्पाडितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सुराविण्डकुम्भं वा सोवीरविण्डकुम्भं वा तेलकुम्भं वा वसाकुम्भं वा पासमाणे पासति, भिदमाणे भिदति, निन्ननिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

देखे और उसे काट डाले तथा स्वयं ने उसे काट दिया है, ऐसा स्वयं को माने तथा इस तरह से देखकर तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ा लम्बा काला सूत या नीले सूत या लाल सूत या पीले सूत या सफेद सूत का धागा देखे और उसे उकेले और स्वयं ने उसे उकेला है ऐसा स्वयं को माने और ऐसा देखकर वह तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक बड़े लोहे के ढेर को, तांबे के ढेर को, रांगे के ढेर को, सीसे के ढेर को देखे और स्वयं उस पर चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा ऐसा देखकर शीघ्र जागे तो वह दो भव में सिद्ध होता है—यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक विशाल हिरण्य-चांदी के ढेर को, सुवर्ण के ढेर को, रत्न के ढेर को, वज्र के ढेर को देखे और उस पर स्वयं चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा उसी क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े घास के ढेर को या लकड़ियों के ढेर को या पत्तों के ढेर को या वृक्ष की छाल या तुरु के ढेर को, या धूसे के ढेर को या गेहूँ के ढेर को, या कूड़ा कचरा के ढेर को देखे और उसे बिलोरे और स्वयं ने उसे बिलोरा है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े शरस्तम्भ को अथवा वीरण स्तम्भ को अथवा वंशी मूल स्तम्भ को अथवा वल्लीमूल स्तम्भ को देखे और उसे उखाड़े और स्वयं ने उसे उखाड़ा है, ऐसा स्वयं को माने और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक बड़े खीर कुम्भ को या दधि कुम्भ को या घृत कुम्भ को मधु-कुम्भ को देखे और उसे उठाये और उसे उठाया है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में बड़ा नुग के विकट कुम्भ को, साँवीर के विकट कुम्भ को, या तेलकुम्भ को या वनाकुम्भ को देखता है और देखकर भेदन करता है, फोड़ता है, और स्वयं ने उसे फोड़ा है ऐसा स्वयं को मानता है और तत्काल जागता है तो दूसरे भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं पउमसरं कुसुमियं पासमाणे पासति, ओगाहमाणे ओगाहति, ओगाढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सागरं उम्मीवीयीस-हस्तकलियं पासमाणे पासति, तरमाणे तरति, तिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं भवणं सव्वरयणाभयं पासमाणे पासति, अणुप्पविसमाणे अणुप्पविसति, अणुप्पविट्ठमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं विमाणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, द्रुहमाणे द्रुहति, द्रुढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ।

—भग० स० १६, उ० ६, सु० २०-३५

भगवओ वीहतवो

भगवओ चरिया—

३०६. १. अहामुयं वदिस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाय । संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रोयत्था ॥

२. णो चेविमेण वत्थेण, मिहिस्सामि तंसि हेमंते । से पारए आवकहाए, एयं खु अणुधम्मियं तस्स ॥

३. चत्तारि साहिए मासे, बह्वे पाण-जाती आगम्म । अमिइज्ज कायं विहरिमु, आरुसियाणं तत्थ हिंसिमु ॥

४. संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं । अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ॥

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक विशाल कुसुमित पद्मसरोवर को देखता है, देखकर उसमें प्रवेश करता है और प्रवेश करके और स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है, ऐसा अपने को मानता है और तत्काल जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को देखता है, देखकर तैरता है और तैरकर उसे तैर चुका है ऐसा स्वयं माने और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक विशाल रत्नों से बना हुआ भवन देखे, देखकर उसमें प्रवेश करें, प्रवेश करके स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है ऐसा स्वयं मानता है और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में सर्व रत्नमयी एक विशाल विमान को देखता है, देखकर उस पर चढ़ता है, चढ़कर स्वयं उस पर चढ़ा ऐसा स्वयं मानता है और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करता है ।

भगवान का दीर्घ तप

भगवान की चर्या—

३०६. (आर्य सुवर्मा स्वामी आर्य जम्बूस्वामी से कहते हैं—)
१—जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर की चर्या का श्रवण किया है, वैसा ही मैं कहूँगा । जिस प्रकार उन्होंने कर्मक्षय के लिये उद्यत होकर और तत्त्व को जानकर उस हेमन्त ऋतु में तत्काल ही प्रव्रजित होकर विहार किया था ।

२—मैं इस वस्त्र से हेमन्त काल में शरीर को ढकूँगा, इस अभिप्राय से उसे ग्रहण नहीं किया था । क्योंकि वे तो संसार से पारगामी थे और यावज्जीवन इसी वृत्ति को धारण करने वाले थे । किन्तु पूर्ववर्ती अन्य तीर्थंकरों ने भी ग्रहण किया था, इसीलिये उन्होंने भी ग्रहण किया ।

३—उनके शरीर से निकलने वाली सुवास से आकर्षित होकर बहुत सी जातियों के प्राणी उनके शरीर पर बैठने एवं रहने लगे । चार मास से अधिक समय तक मांस एवं रुधिर का आस्वादन करने के लिए शरीर पर चढ़कर डंक मारते रहे ।

४—वे अनगार भगवान् एक मास अधिक एक वर्ष अर्थात् तेरह महीने तक वस्त्र को धारण किये हुए रहे, तत्पश्चात् उसे छोड़कर वस्त्र त्यागी अचेलक हो गये ।

३०७. ५. अदु पोरिसि तिरियं भित्ति, चक्खुमासज्ज अंतसो झाइ ।
अह चक्खु-भीया सहिया, तं “हंता हंता” वहवे कंदिसु ॥

३०७. ५—वे पुरुष प्रमाण आगे के मार्ग को अर्थात् रथ की धुरी प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासिमिति में तल्लीन हो चलते थे । उनको इस प्रकार चलते देख बहुत से बालक डरकर धूलि आदि फैंकते हुए हो-हल्ला मचाकर कोलाहल करते थे ।

६. सयणेहिं वित्तिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिणाय ।
सागारियं ण से सेवे, इति से सयं पवेसिया ज्ञाति ॥

६—यदि गृहस्थों एवं अन्यतीर्थिकों से मिश्रित वस्तियों में विश्राम हेतु ठहरने पर वहाँ की स्त्रियाँ कामेच्छा प्रगट करतीं तो वे मँथुन क्रीड़ा के परिणाम को जानकर उसका सेवन नहीं करते थे किन्तु आत्मा में रमण करते हुए सदा धर्म एवं शुक्ल ध्यान में संलग्न रहते थे ।

७. जे के इमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से ज्ञाति ।
पुट्ठो वि णाभिभासिसु, गच्छति णाइवत्तई अंजू ॥

७—वे ऋजु परिणामी भगवान् इस प्रकार से विचरते थे कि यदि कभी गृहस्थों से युक्त स्थान पर ठहरने का अवसर आ जाता था तो इनकी ओर लक्ष्य न रखकर ध्यान में लीन रहते थे । पूछने या न पूछने पर भी वे बोलते नहीं थे किन्तु अपने अभीप्सिल लक्ष्य प्राप्ति के लिये गमन करते थे ।

८. णो सुगरमेतमेगेसि, णाभिभासे अभिवायमाणे ।
हयपुव्वो तत्थ वंडेहिं, लूसियपुव्वो अपुण्णेहिं ॥

८—विहार के प्रसंग में यदि कोई पुण्यहीन पुरुष डंडों से घायल करते, बालों या शरीर के हाथ पैर आदि अंगों को पकड़कर खींचते या अन्य तरह से कष्ट देते अथवा कोई नमस्कार करता तो उन दोनों प्रकार की वृत्ति बालों से बात नहीं करते (अर्थात् पीड़ा देने वाले पर न तो क्रोध करते और न वन्दना करने वाले से प्रसन्न होते) किन्तु समभाव पूर्वक मान-अपमान सहन करते थे । इस प्रकार की साधना सामान्य साधक के लिए मुगमन नहीं हैं ।

९. फरसाइं दुत्तिवखाइं, अत्तिअच्च मुणी परक्कममाणे ।
भाघाय - णट्ट - गीताइं, वंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ॥

९—दुष्ट अनार्य पुरुषों द्वारा कहे हुए अत्यन्त तीक्ष्ण कटु एवं असहनीय कठोर वचनों को सुनकर भी वे महामुनि उन पर ध्यान नहीं देते थे । नृत्य, गीतों को सुनकर एवं दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध देखकर हर्षित व विस्मित नहीं होते थे ।

१०. गठिए मिहो-कहामु, समयंमि णायसुए विसोगे अदक्खु ।
एताइं सो उरालाइं गच्छइ णायपुत्ते अशरणाए ॥

१०—जब कभी या जहाँ कहीं लोगों को विषय विकार में गूढ़ करने वाली कथाओं को कहते व करते हुए देखते तो उन्हें ऐसा देखकर भी उन ज्ञातपुत्र के मन में किसी प्रकार का हर्ष व शोक नहीं होता था । किन्तु इन अनुकूल और प्रतिकूल उत्कृष्ट परीपहों को दुःख का स्मरण न करते हुए या दुःखों से घबराकर दूसरे की शरण न लेते हुए अपनी संयम साधना में निमग्न रहते थे ।

३०८. ११. अवि साहिए दुवे वासे, तीतोइं अमोच्चा गिखंते ।
एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिग्गायदंसगे संते ॥

३०८. ११—दो वर्ष से भी कुछ अधिक समय तक सचित्त-जल को विरे विना दीक्षित हुए थे तथा जिन्होंने एकत्व भावना से अपने अन्तःकरण को भावित किया था, क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी ऐंसे वे ज्ञान दर्शन तंपन्न भगवान् इन्द्रियों एवं अन्तःकरण का उपशमन दमन करते हुए विचरण करते थे ।

१२. पुडवि च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।
पणगाइं पीय-हरियाइं, तसकायं च सव्वतो पच्च ॥

१२—वे श्रमण भगवान् महावीर पूर्विकाय, अप्पकाय, तेउकाय, वायुकाय और जैवाल आदि व चीज और नाना प्रकार की हठी वनस्पतियों एवं वनकाय इन सबको भर्त्सना प्रकार से जानकर यतनापूर्वक विचरण करते थे ।

१३. एयाइं संति पडिलेहे, चित्तमंताइं से अमिण्णाय । १३—ये पृथ्वीकाय आदि के जीव सजीव हैं, इनमें चेतना
परिवज्जियाण विहरित्था, इति संखाए से महावीरे ॥ है, इस प्रकार विचार कर तथा इनके स्वरूप को भली प्रकार से
अधिगत कर वे भगवान् इनके आरम्भ समारम्भ का त्याग करके
विचरते थे ।
३०९. १४. अदु थावरा तसत्ताए, तसजीवा य थावरत्ताए । ३०९. १४—स्यावर जीव दमकायरूप में और तसकाय जीव
अदु सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो वाला ॥ स्यावरपने से उत्पन्न होते हैं । अथवा संसारीप्राणी सब योनियों
में आवागमन करने वाले हैं, तथा अज्ञानी जीव अपने-अपने कर्म
के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से संसार में स्थित हैं अर्थात् स्वकृत
कर्मानुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हैं ।
१५. भगवं च एवं मन्नेसि सोवहिण्णं हु लुप्पती वाले । १५—उन भगवान् ने यह जान लिया था कि ममत्व युक्त
कम्मं च सव्वसो णच्चा, त पडियाइक्खे पावगं भगवं ॥ अज्ञानी जीव कर्म से पीड़ित होता है और सब प्रकार के कर्म के
स्वरूप को समझकर भगवान् ने उस पाप कर्म का परित्याग कर
दिया था ।
१६. बुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेत्तिसि णाणी । १६—उन मेघावी-बुद्धिमान सर्वभाव ज्ञाता भगवान् ने दो
आयाण-सोयमत्तिवार्यं-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ॥ प्रकार की क्रियाओं (सांपरायिक और ईयांप्रत्यय) को सम्यक्
प्रकार से जानकर दूसरी को अनुपम कहा है तथा उन ज्ञानी ने
पहली को कर्मों के आने का स्रोत बताया है । अतः इसको और
अतिपात-हिंसा स्रोत एवं योगरूप स्रोत को सब प्रकार से कर्म-
बन्धन का कारण जानकर उनसे निवृत्त होने एवं संयमानुष्ठान
का प्रतिपादन किया है ।
३१०. १७. अइवात्तियं अणाउट्ठे, सयमण्णेसि अकरणयाए । ३१०. १७—पाप से अतिक्रान्त होने से निर्दोष अहिंसा का उन्होंने
जस्सित्थीओ परिणयाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खु ॥ स्वयं आचरण किया था और दूसरों को हिंसा न करने का
उपदेश दिया था, तथा स्त्रियों के यथार्थ स्वरूप और उनके साथ
भोगे जाने वाले भोगों के परिणाम से परिज्ञात थे कि काम-भोग
समस्त पाप कर्मों के मूल कारण हैं, ऐसा जानकर भगवान् ने स्त्री-
संसर्ग का परित्याग कर दिया था ।
३११. १८. अहाकडं न से सेवे, सव्वसो कम्मुणा य अदक्खु । ३११. १८—सब तरह से कर्मबन्ध का कारण जानकर भगवान्
जं किंचि पावगं भगवं, तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था ॥ ने आधाकर्म आहार का सेवन नहीं किया था तथा भविष्य में जो
आहार अल्पतम—थोड़े से पाप का कारण हो, उसको भी न करते
हुए प्राप्तुं निर्दोष आहार को ग्रहण करते थे ।
१९. णो सेवती य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था । १९—और उन्होंने दूसरे व्यक्ति के वस्त्र का भी सेवन नहीं
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छति संखंडि असरणाए ॥ किया अथान् शरीर पर नहीं पहना और न दूसरे के पात्र में
भोजन ही किया । वे मान-अपमान को छोड़कर बिना किसी का
सहारा लिये भिक्षार्थ गृहस्थ की भोजनशाला में जाते थे ।
२०. मायण्णे असण-पाणस्स, णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे । २०—वे मुनि—महावीर—अन्न-पानी के परिमाण को
अच्छिपि णो पमज्जिया, णोवि य कंडूयये मुणी गायं ॥ जानने वाले थे, रसों में गृद्ध न होकर और सरस आहार प्राप्ति
के लिये बिना किसी प्रकार की धारणा आकांक्षा के जैसा भी
नीरस रूखा सूखा मिल जाता था, ग्रहण करते थे, आँखों में
रजकण आदि पड़े जाने पर भी उसे दूर करने के लिए आँख को
पोंछते नहीं थे और न खाज आने पर शरीर को खुजलाते थे ।

३१२. २१. अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्ठो उपेहाए ।
अप्पं बुइए पडिभाणी, पंथपेही चरे जयमाणे ॥

३१२. २१—वे चलते हुए न तो तिरछे देखते थे, न खड़े होकर या मुड़कर पीछे की ओर देखते थे और न किसी के बुलाने पर या पुकारने पर बोलते थे, किन्तु यतनापूर्वक मार्ग को देखते हुए चलते थे ।

२२. सिसिरंसि अट्ठपडिवन्ने, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।
पसारित्तु बाहुं परक्कमे, णो अवलंविद्याण कंधंसि ॥

२२—वे अनगार शीतकाल में मार्ग में चलते हुए उस वस्त्र (इन्द्रप्रदत्त देवदूष्य) को छोड़कर भुजाओं को पसार कर चलते थे अर्थात् शीत से संतप्त होकर भुजाओं को सिकोड़ते नहीं थे और कंधों पर हाथ रखकर खड़े ही होते थे ।

३१३. २३. एस विही अप्पुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
वहुसो अवडिण्णेणं भगवया एवं रीयं ति त्ति वेमि ॥
—आया० सु० १, अ० ६, उ० १

२३—मतिमान् महर्षि माहण महावीर ने सर्वथा निदान कर्म से रहित होकर इस प्रकार की विहारचर्या विधि का आचरण-अनुसरण किया था । इस प्रकार मैं कहता हूँ ।

भगवानो सेज्जा—

३१४. १. चरियासणाइं सेज्जाओ, एगतियाओ जाओ बुइयाओ ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरे ॥

भगवान की शैया—

३१४. १—किसी एक समय भगवान् महावीर ने विहार के समय जिस शैया और आसन का सेवन किया था, उसके सम्बन्ध में (जम्बूस्वामी के) पूछने पर आर्य सुधर्मा ने उस शैया और आसन के बारे में इस प्रकार कहा—

२. आवेरण-सभा-पवासु, पणियसालासु एगदा वासो ।
अट्टरा पलियट्टाणेसु, पलालपुञ्जेसु एगदा वासो ॥

२—किसी समय तो उन भगवान् महावीर ने शून्य घर में, सभाभवन में, प्याऊ में, दुकानों में निवास किया । अथवा कभी लुहार की शाला में या पलालघास का ढेर रखा हुआ था, ऐसे स्थान में निवास किया ।

३. आगंतारे आरामागारे, गामे णगरे वि एगदा वासो ।
सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगदा वासो ॥

३—किसी समय पन्थागार (धर्मशाला, गांव के बाहर पथिकों के ठहरने के लिये बने स्थान) में, उद्यानगृह में, ग्राम में, नगर में निवास किया । किसी समय श्मशान में अथवा शून्यगृह में अथवा वृक्ष के नीचे वास किया ।

४. एतेहिं पुणी सयणेहिं, समणे आसो पतेरसवासे ।
राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिंए ज्ञाति ॥

४—श्रमण भगवान् महावीर इन पूर्वोक्त स्थानों में तपःसाधना में निमग्न रहते हुए बारह वर्ष छः मास और पन्द्रह दिन तक रात-दिन यतना पूर्वक प्रमाद रहित और समाधियुक्त होकर ध्यानस्थ रहे ।

३१५. ५. णिहं पि णो पगामाए, सेवया भगवं उट्ठाए ।
जग्गावती य अप्पाणं, ईसिं साईं य पि अपडिण्णे ॥

३१५. ५—भगवान् निद्रा का सेवन नहीं करते थे, यदि कभी नींद का झोंका आता तो उठकर अपनी आत्मा को जागृत करते, उसकी झलक भी देखते तो सावधान होकर चलने लगते, वे निद्रा लेने की आकांक्षा से अतीत थे अर्थात् रहित थे ।

६. संबुज्जमाणे पुणरवि, आसिसु भगवं उट्ठाए ।
णिवल्लम्म एगया राओ, वहिं चं कमिया मुहुत्ताणं ॥

६—फिर भी निद्रा के स्वभाव को जानने वाले भगवान् तयमानुष्णान में व्यवस्थित होकर अप्रमत्त भाव से विचरन करते थे । यदि कभी रात में झपकी आने लगती तो बाहर निकलकर मुहूर्त भर तक घ्रमण करके पुनः आत्म-चिन्तन में लीन हो जाते थे ।

३१६. ७. सयणेहिं तम्बुवत्तमा, भोना आत्तो उणेगळ्ळया य ।
संतप्पया य जे पाणा, अट्टया जे पस्सिणो उच्चरंति ॥

३१६. ७—उन शून्य स्थानों में नर्पादि विषम जन्तुओं अथवा गृध्रादि नांनाहारी पक्षियों द्वारा उन पर अनेक प्रकार के भयंकर उपमगं हुए ।

८. अद्बु कुचरा उवचरंति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य ।
अद्बु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगतिया पुरिसा य ॥
९. इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं ।
अवि सुब्बि-दुब्बि-गंधाइं, सहाइं अणेगरूवाइं ॥
१०. अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ।
अरइं रइं अभिभूय, रीयईं माहणे अबहुवाई ॥
११. स जणेहि तत्थ पुच्छिषु, एगचरा वि एगदा राओ ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥
३१७. १२. अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु ।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए सकसाइए ज्ञाति ॥
१३. जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे माहए पवायंते ।
तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए णिवायमेसंति ॥
१४. संघाडीओ पविसिस्सामो, एहा य समादहमाणो ।
विहिया वा सक्खामो, अत्तिदुक्खं हिमग-संफासा ॥
१५. तंसि भगवं अपडिण्णे, अहे वियडे अहियासए दविए ।
णिकखम्म एगदा राओ, चाएइ भगवं समियाए ॥
३१८. १६. एस त्रिही अणुक्कंती, माहणेण सईमया ।
बहुत्तो अपडिण्णेणं भगवया एवं रीयं ति त्ति वेमि ॥
—आया० सु० १, अ० ९, उ० २
- ८—इसके अतिरिक्त उन एकाकी विचरने वाले भगवान् महावीर को चोर सशस्त्र ग्रामरक्षक अथवा विषय-वासना में मत्त गांव की स्त्रियाँ या दुष्ट पुरुष भी आकर उपसर्ग—कष्ट देते थे ।
- ९—भगवान् इस लोक के मनुष्य, तिर्यंचों द्वारा और परलोक के देवों आदि द्वारा दिये जाने वाले अनेक प्रकार के उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करते थे एवं सुगन्धित, दुर्गन्धित पदार्थों से आने वाली सुगंध व दुर्गन्ध के लिये और अनेक प्रकार के कटु-मधुर शब्दों को सुनकर भी हर्ष-विषाद नहीं करते थे ।
- १०—वे पांचों समितियों से युक्त रहते हुए विविध प्रकार के दुःख रूप स्पर्शों, उपसर्ग, परीपहों को सहन करते थे । भगवान् महावीर अत्यल्प प्रमाण में बोलने वाले थे और रति-अरति पर विजय प्राप्त करके संयमानुष्ठान में स्थित रहते थे ।
- ११—वे भगवान् महावीर लोगों के पूछने पर कि तुम कौन हो ? यहाँ क्यों खड़े हो ? अथवा कभी रात्रि में एकान्त स्थान की तलाश में घूमने वाले व्यभिचारी व्यक्तियों के द्वारा भी उक्त प्रश्न पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं देते । जिससे वे क्रोधित होकर उन्हें मारने पीटने लगते, फिर भी भगवान् समाधिस्थ शांत रहते किन्तु उनसे प्रतिशोध—बदला लेने की भावना नहीं रखते थे ।
३१७. १२—इस स्थान में यह कौन हैं ? ऐसा पूछने पर भगवान् कहते कि 'मैं भिक्षु हूँ यह सुनकर यदि वे चले जाने की कहते तो वहाँ से चले जाते और जाने की न कहकर उन पर क्रोधित होते तो आत्म-चिन्तन और सहिष्णुता उत्तम—श्रेष्ठ धर्म है यह चिन्तन कर वे उनके क्रोधित होने पर भी मौन रहकर आत्मध्यान से विचलित नहीं होते थे, उसमें लीन रहते थे ।
- १३—जिस शिशिर ऋतु में ठंडी हवा चलती है, तब कई एक साधु कांपने लगते हैं और उस शीतकाल में हिम-वर्षा के पड़ने पर निर्वात-वायु रहित स्थान की खोज करते हैं ।
- १४—अत्यन्त दुःख देने वाले उस हिमजन्य शीत स्पर्श के कारण कई व्यक्ति सोचते हैं कि ठंड से बचने के लिये कपड़े पहनेंगे और वे अग्नि जलाने के लिये ईंधन खोजते हैं और शरीर को ढांकने के लिये कंबल ओढ़ते हैं ।
- १५—ऐसे समय में भी भगवान् वायु रहित स्थान आदि की वांछा से रहित होकर चारों तरफ की दीवारों से रहित केवल ऊपर से आच्छादित निर्जनवन स्थान में ठहरकर कभी रात्री में बाहर निकलकर और वहाँ कुछ समय ठहरकर शीत-परिपह को समभाव पूर्वक सहन करते थे ।
३१८. १६—मतिमान् माहन भगवान् महावीर ने सर्वथा निदान रहित होकर अनेक वार इस विधि का परिपालन किया था । ऐसा मैं कहता हूँ ।

भगवओ परीसह-उवसगा—

३१६. १. तणक्तासे सीयफासे य, तेउकासे य दंस-मसगे य ।
अहियासए सया तमिए, फासाईं विरुवरुवाइं ॥
२. अह दुच्चर-लाढमचारी, वज्जभूमि च सुवमभूमि च ।
पंतं सेज्जं सेविसु, आसणगाणि चेव पंताइं ॥
३. लाढेहि तस्सुवसगा, वहवे जाणवया लूसिसु ।
अह लूहदेसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु णिवत्तिसु ॥
४. अप्पे जणे णिवारेइ, लूसणए सुणए दसमाणे ।
लुलुकारंति आहं तु, समणं कुक्कुरा उंसंतु त्ति ॥
५. एल्लिखए जणे भुज्जो, वहवे वज्जभूमि फहसासी ।
लट्ठि गहाय णालीयं, समणा तत्थ एव विहरिसु ॥
६. एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेत्ति सुणएहि ।
संलुचमाणा सुणएहि, दुच्चरगाणि तत्थ लाढेहि ॥
७. निघाय बंडं पाणेहि, तं वोसज्जकायमणगारे ।
अह गामकंटे भगवं, ते अहियासए अभिसमेच्चा ॥
८. णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे ।
एवं पि तत्थ लाढेहि, अलद्धुव्वो वि एगया गानो ॥
३२०. ६. उवत्तं कम्मंतनपडिणं, गामंतियं पि अप्पत्तं ।
पडिणवत्तमित्तु लूसिसु, एत्तात्तो परं पत्तेहि त्ति ॥

भगवान् को परीपह उपसर्ग—

३१६. १—समिति-गुप्ति ने युक्त श्रमण भगवान् महावीर तृण-स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशकस्पर्श तथा इनके अतिरिक्त और दूसरे विविध प्रकार के स्पर्शों को सदा समभाव पूर्वक सहन करते थे ।
- २—जब भगवान् महावीर ने दुर्गम्य लाड़ देश के वज्जभूमि और शुभ्रभूमि नामक दोनों विभाग में विहार किया तो वहाँ उन्होंने प्रान्त शैया (अति तुच्छ) व प्रान्त आसन का सेवन किया ।
- ३—उस लाड़ देश में उनको बहुत से उपसर्ग हुए । बहुत से लोग मारते-पीटते थे । अत्यन्त रुक्ष अन्न पानी का सेवन किया । वहाँ के कुत्ते भगवान् को कष्ट देते और लोग उन्हें काटने के लिये छोड़ जाते थे ।
- ४—वहाँ के अनार्य और असंस्कारी लोगों में से कोई एक उन कष्ट देते हुए और काटने के लिए दौड़ते हुए कुत्तों को रोकता था । शेष लोग तो कुत्तुहल से छू-छू करके उन कुत्तों को काटने के लिए प्रेरणा करते । वे अनार्य लोग भगवान् को दण्डादि से मारते भी थे ।
- ५—उस वज्जभूमि में तामसी भोजन करने के कारण ऐसे कठोर स्वभाव वाले बहुत से लोग थे जो भिक्षुओं के पीछे कुत्ते छोड़ देते थे । जिससे भिक्षु (बौद्ध) लाठी या नालिका लेकर वहाँ विचरते थे । फिर भी ऐसे अनार्य क्षेत्र में श्रमण भगवान् महावीर ने अकेले वार-वार विहार किया था ।
- ६—इस प्रकार लकड़ी रखकर विचरने पर भी कुत्ते उनके पीछे लगे रहते और उन्हें काट खाते थे । उस लाड़ प्रदेश में विचरना आयीं, साधु सन्तों के लिए बड़ा विकट था ।
- ७—अनगार भगवान् महावीर प्राणियों में मन, वचन, कायरूप दण्ड एवं शरीर के प्रति ममत्त्व का त्याग कर विचरण करते थे । जिससे ग्रामीणों के उन कंटक रूप वाक्यों को निर्जरा हेतु जानकर समभाव पूर्वक सहन किया था ।
- ८—अथवा जैसे हाथी संग्राम को जीतकर पारगामी होता है इस प्रकार भगवान् महावीर भी उस लाड़ प्रदेश में परिपह रूपी शत्रु सेना को जीतकर पारगामी हुए । एक बार उस लाड़ देश में ग्राम के न मिलने पर वे वन में ही ध्यानस्थ हो गये ।
३२०. ६—जब अप्रतिवद्ध विहारी भगवान् भिक्षा या स्थान के लिये ग्राम के समीप पहुँचते अथवा नहीं पहुँचते या गाँव में बाहर निकलते तो पहले वे उन्हें मारते पीटते और फिर कहते कि तू न यहाँ से दूर चले जाओ ।

१०. ह्यपुत्रो तस्य दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा फलेण ।
अदु लेलुणा कवाल्लेण, हंता हंता बहवे कंदिसु ॥

११. मंसूणि छिन्नपुव्वाइं, उट्ठम्मियाए एगया कायं ।
परोसहाइं लुच्चिसु, अहवा पंसुणा अवकिरिसु ॥

१२. उच्चालइय णिर्हाणिसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु ।
वोसट्ठकाए पणयात्तो, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे ॥

१३. सूरों संगामसीसे वा, संवुडे तस्य से महावीरे ।
पडिसेवमाणे फरसाइं, अचले भगवं रोइत्या ॥

३२१. १४. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
वट्ठो अपडिण्णे णं भगवया एवं रोपति त्ति वेमि ॥
—आया सु० १, अ० ६, उ० ३

भगवन्तो तिगिच्छाइवज्जणं—

३२२. १. ओसोसरियं चाएति, अदुट्ठे वि भगवं रोगेहि ।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा, णो से सातिज्जति तेइच्छं ॥

२. संशोधनं च वमनं च, गायत्रमंगणं सिणाणं च ।
संशोधनं च मे कप्पे, संतपस्यालणं परिष्णाए ॥

३. विण्णं गामभस्सेहि, रोपति मात्थणं प्रवट्ठुमाई ।
विण्णं विण्णं मयसं भणय, छायाए ताद आसी य ॥

१०—उस लाड़ देश में पहले तो बहुत से लोग डण्डों से मुक्कों से, कुन्तों से, फलकों से, पत्थरों से, ठोकरों से मारते और बाद में शोर मचाते कि अरे लोगो आओ, देखो (यह नंगा व्यक्ति कौन है ?)

११—वहाँ के लोगों ने किसी समय ध्यान मुद्रा में खड़े उन भगवान् को पकड़कर उनके शरीर का मांस काटा; नाना प्रकार के कष्ट दिये, अनेक तरह से दुःखित किया और धूल की वर्षा की थी ।

१२—कभी-कभी वे लोग ऊपर उठाकर जमीन पर पटक देते थे अथवा आसन से बैठे हुए भगवान् को धक्का देकर आसन से दूर फेंक देते थे, परन्तु भगवान् अपने शरीर का ममत्व छोड़कर परीषर्हों को सहन करने में सावधान थे । परीषर्ह जन्म दुःख को सहन करने वाले एवं निदान कर्म से रहित अप्रतिबद्ध विहारी थे ।

१३—जिस प्रकार कवच से सुसज्जित वीर-सुभट युद्ध के अग्रभाग पर रहना हुआ भी शस्त्रों से छिन्न-भिन्न नहीं होता है इसी प्रकार धैर्य से सुरक्षित भगवान् भी परीषर्हों को झेलत हुए तनिक भी विचलित न हुए ।

३२१. १४—काश्यप गोत्री मतिमान् माहन भगवान् महावीर ने निदान कर्म से रहित (अप्रतिज्ञ) होकर इस विधि के अनुसार विहार किया—ऐसा मैं कहता हूँ ।

भगवान् का चिकित्सादि वर्जन (त्याग)—

३२२. १—भगवान् रोगों का स्पर्श न होने पर भी ऊनोदरी तप करने में समर्थ थे । रोग के होने पर या न होने पर भी औषधि सेवन चिकित्सा की इच्छा नहीं करते थे ।

२—शरीर को अणुचिमय जानकर भगवान् रोग की शान्ती के लिए शरीर संशोधन हेतु विरेचन (जुलाव) लेना, वमन करना, शरीर पर तेल-मर्दन करना, स्नान करना, चंपी व राना, दन्त मन्जन करना इत्यादि कार्यों को नहीं करते थे ।

३—वे श्रमण भगवान् इन्द्रियों के धर्मों—विषयों से विरक्त रहते थे और अल्पभाषी होकर विचरते थे । कभी-कभी शीत-काल में भी छाया में ध्यानस्थ रहते थे ।

भगवान् का आहार-चर्या—

३२३. १—वे पीठम-ऋतु में उत्कटु आसन से सूर्य के सन्मुख होकर आतापना लेते थे और धर्म साधना के कारण रूप शरीर को टिकाने रखने के लिए चावल, बेर का चूर्ण, उड़द आदि नीरस आहार विकर अपना निर्वाह करते थे ।

५—भगवान् ने तीन वस्तुओं का सेवन करके आठ मास रोज का निर्वाह किया, समथ पापन किया । एक बार कभी-कभी भगवान् आठ मास या एक मास तक निराहार-निव्रत रहे अर्थात् तपस्व-तपी कुछ नहीं लेते थे ।

६. अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा अपविच्त्ता ।
रायोवरायं अपडिण्णे, अन्नगिलायमेगया भुञ्जे ॥
७. छट्ठेणं एगया भुञ्जे, अदुवा अट्टमेणं दसमेणं ।
दुवालसमेण एगया भुञ्जे, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥
३२४. ८. णच्छाणं से महावीरे, णो वि य पावगं सयमकासी ।
अण्णेहिं वि ण कारित्था, कीरंतं पि णाणुजाणित्था ॥
९. गामं पविसे णयरं, वा, घासमेसे कडं परट्ठाए ।
सुविभुद्धमेसिया भगवं, आयत-जोगयाए सेवित्था ॥
१०. अदु वायसा विगिच्छत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता ।
घासेसणाए चिट्ठंते, सययं णिवत्तिते य पेहाए ॥
११. अदु माहणं व समणं वा, गार्मापिडोलगं च अतिहिं वा ।
सोवागं मूसियारं वा, कुक्कुरं वा वि विट्ठियं पुरतो ॥
१२. वित्तिच्छेदं वज्जंतो, तेसप्पत्तियं परिहरंतो ।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥
(त्रिभिः कुलकम्)
१३. अवि मूडयं व सुक्कं वा, तीयपिडं पुराणकुम्मासं ।
अदु वक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिडे अलद्धए रविए ॥
३२५. १४. अवि ज्ञाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कए ज्ञाणं ।
उड्ढमहे य तिरियं च, पेहमाणे समाहिमरडिग्गे ॥
६. कभी-कभी दो मास से भी अधिक समय तक और कभी-कभी छह-छह मास तक आहार पानी का सर्वथा त्याग कर भगवान् महावीर रात-दिन निरीह होकर विचरते थे । एक बार अचलित रस वाले वासे आहार का सेवन किया था ।
- ७—वे भगवान् कभी दो-दो दिन के अन्तर से, कभी तीन तीन दिन के अन्तर से, कभी चार-चार दिन के अन्तर से, कभी पाँच-पाँच दिन के अन्तर से, कभी छह-छह दिन के अन्तर से आहार करते थे । वे उपवास के पारणे में वासी आहार करते थे । इस तरह से आत्मा का पर्यालोचन करते हुए निदान रहित होकर समाधि में लीन रहते थे ।
३२४. ८—वे महावीर भगवान् हेय-ज्ञेय और उपादेय रूप पदार्थों को जानकर न तो स्वयं पापकर्म करते थे, न दूसरों से कराते थे और न करने वालों की अनुमोदना भी करते थे ।
- ९—वे भगवान् महावीर ग्राम या नगर में प्रवेश करके दूसरों के द्वारा बनाय शुद्ध आहार की गवेपणा करते और उस शुद्ध आहार की गवेपणा करके विवेकपूर्वक सयतयोग से उस आहार का सेवन करते थे ।
- १०—जब भगवान् महावीर भिक्षा के लिए पधारते तब मार्ग में क्षुधा से आर्त कोवा आदि पक्षियों को या पान की अभिलाषा वाले प्राणियों को भूमि पर एकत्रित हुए देवकर विवेकपूर्वक चलते थे कि जिससे उनके आहार में विघ्न न पड़े ।
- ११—अथवा ब्राह्मण को या शाक्यादि भिक्षुओं को अथवा गाँव के भिखारियों को और अतिथियों, चांडाल को, विल्ली को, कुत्ते को अथवा दूसरे प्राणियों को भागे छोड़ा देयते ता
- १२—उनकी आजीविका में बाधा न आलते हुए उनके लिये अप्रीतिकर न होते हुए, धीरे-धीरे चलते एवं किसी भी जीव की हिंसा विराधना न करते हुए आहार-दानों की गवेपणा करते थे ।
- १३—दही आदि से मिश्रित आहार, शुष्क आहार, वासा, आहार, पुराने कुल्माप का आहार अथवा पुराने जीर्ण धान्य का आहार, जौ आदि का आहार, स्वादिष्ट आहार आदि मिलने पर अथवा नहीं मिलने पर हर्ष-विषाद नहीं करके अपनी आधना में दत्तचित्त रहते थे ।
३२५. १४—वे भगवान् महावीर स्थिर जाग्रत से प्रकृत और निश्चल मन होकर धर्म-गुण ध्यान ध्याते थे । वे उन ध्यान में जर्ष्य, अधी और तिर्यक् लोक के स्वरूप का विमलन करते थे । वे सदा निदान कर्म से रहित होकर आत्मस्वरूप को देखते हुए समाधिस्थ रहते थे ।

१५. अकसाई विगयगोही, य सद्वृत्तेसुमुच्छिष्टे ज्ञाति ।
छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमायं सईं पि कुव्वित्था ॥

१६. सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए ।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समिआसी ॥

३२६. १७. एस विही अणुक्कंतो, माहणेणं मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेणं भगनाया एवं रीयति—त्ति वेमि ॥

—आया० सु० १, अ० ६, उ० ४

केवलणाण-दंसणुप्पत्ति—

३२७. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं
विहरमाणस्स बारसवासा वीइक्कंता, तेरसमस्स य वासस्स
परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे—
वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं, सुच्चएणं
दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगतेणं,
पाईणगामिणीए छायाए, वियत्ताए, पोरिसीए, जंभियगामस्स
णगरस्स बहिया णईए उजुवालियाए उत्तरे कूले, सामागस्स गाहा-
वइस्स कट्ठकरणंसि, वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसी-
भाए, सालरुक्खस्स अदूरसामंते, उक्कुडुयस्स, गोदोहियाए आयाव-
णाए आयावेमाणस्स, छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं^१, उड्डंजाणु अहो-
सिरस्स, धम्मज्जाणोवगयस्स, ज्ञाणकोट्ठीवगयस्स, सुक्कज्जाण-
तरियाए वट्टमाणस्स, निव्वाणे, कसिणे, पडिपुण्णे, अव्वाहए,
निरावरणे, अणंते, अणुत्तरे, केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे ।^२

१. ठाणं अ० ६, सु० ५३१ ।

२. तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेण, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं चरित्तेणं, अणुत्तरेणं आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं,
अणुत्तरेणं वीरिएणं, अणुत्तरेणं अज्जवेणं, अणुत्तरेणं मद्वेणं, अणुत्तरेणं लाघवेणं, अणुत्तराए खंतीए, अणुत्तराए मुत्तीए,
अणुत्तराए गुत्तीए, अणुत्तराए तुट्ठीए, अणुत्तरेणं सच्च-संजम-तव-सुचरिय-सोवचइय-फलपरिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं
भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं । तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे
पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीए पक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए
सुच्चएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उजुवालियाए नईए तीरे वेयावत्तस्स चेइयस्स अदूरसामंते
सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुयनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं
अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं ज्ञाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे
केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे ॥

—कप्प० सु० १२०

१५—वे भगवान् महावीर कपाय रहित होकर, रसगृद्धि को त्यागकर, शब्द रूप आदि इन्द्रिय-विषयों में अस्मृच्छित होकर ध्यान करते थे । छद्मस्थ होने पर भी सद्गुणान में पराक्रम करते हुए उन्होंने एक बार भी प्रमाद नहीं किया ।

१६—भगवान् महावीर स्वयं ही तत्त्व-लोकस्वरूप को जानकर आत्मशुद्धि के द्वारा मन, वचन, काया आदि तीनों योगों को वश में करके यावज्जीवन के लिए कपायों से निवृत्त हो गये थे और माया रहित होकर वे समिति-गुप्ति के परिपालक थे ।

३२६. १७—काश्यपगोत्री अप्रतिबद्धविहारी मत्तिमान महर्षि भगवान् महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए उक्त विधी का आचरण किया था । ऐसा मैं कहता हूँ ।

केवलज्ञान—दर्शन-उत्पत्ति—

३२७. श्रमण भगवान् महावीर को इस प्रकार विचरते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये । तदनन्तर तेरहवें वर्ष के मध्यभाग में ग्रीष्मऋतु के दूसरे मास, चौथे पक्ष अर्थात् वैशाख शुक्ल पक्ष में, वैशाख शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन सुत्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त में हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर दिन के पिछले प्रहर में वियत नाम की पौरुषी में अर्थात् पिछली पौरुषी में जृम्भक ग्राम नाम के नगर के बाहर ऋजुवालिका नदी के उत्तर तट पर श्यामाक नामक गाथापति के खेत में वेयावत्त चंद्र्य के उत्तर-पूर्व दिशा-ईशान कोण में शान वृक्ष के अदूरसामन्त—न अति दूर और न अति पास अर्थात् कुछ दूरी पर ऊपर की घुटने और नीचे की सिर करके गो दुहासन से बैठे आतापना लेते हुए निर्जल षष्ठभक्त (दो उपवास) तप पूर्वक धर्म ध्यान में लीन, ध्यान कोष्ठ में उपगत शुक्ल ध्यानान्तरिका में आरूढ़ भगवान् को निर्दोष, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याधातरहित, निरावरण, अनन्त, अनुत्तर-सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठ केवल-ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ ।

से भगवं अरिहं जिणे णए, केवली सब्बणू सब्बभावदरिसी, सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा—

आर्गात गती द्वितीचयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवितं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सब्बलोए सब्बजीवाणं सब्बभावाइं जाणमाणे पात्तमाणे, एवं च णं विहरइ ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०२०

देवागमणं—

३२८. जणं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स णिव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अब्वाहए णिरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे तणं दिवसं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विभाणवासिदेवेहि य देवीहि य ओवयंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवज्जोए देव-सण्णिवाते देव-कहक्कहे उप्पिजलगभूए यावि होत्या ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० १०२२

भवणवासी देवा आगया—

३२९. तेण कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बह्वे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउव्ववित्थ्या, काल-महाणील-सरिस-णील-गुलियगवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियसयवत्तभिव पत्तलनिम्मला ईसीसिय-रत्त-तंबणयणा गरुलायय-उज्जुतुंग-णासा ओघविय-सिलप्पवाल-विब्रफल-सण्णिमाहरोट्ठा पंडुर-ससि-सयल-विमल-णिम्मल-संख-गोखीर-फेण-दगरय-भुणालिया-धवल-दंत-सेदी हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घण-कसिण-रयण-रमणिज्ज-णिद्धकेसा वामेगकुण्डल-धरा अट्ठदंणाणुलित्तगत्ता ईसी-सिलिध-पुष्प-प्पगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुत्तुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया वयं च पढमं तमइवकंता विइयं च असंपत्ता भइं जोव्वणे वट्ठमाणा तलभंगय-तुडिय-पवर-भूत्तण-निम्मल-मणि-रयण-मंडियभुया दत्त-मुद्दा-मंडियग-हत्था चूलामणि-चिधगया सुह्वा महिड्ढिया महज्जुइया महव्वला महायसा महासोव्वा महाणुमागा हारविराइयवच्छा कडग-तुडिय-यंनिय-भुया अंगयकुण्डलमट्ठगंडल —

वे भगवान् अहंत्, जिन, ज्ञात (ज्ञानी), केवली, सर्वभाव-दर्शी, देव, मनुष्य, असुर तथा लोक की समस्त पर्यायों को जानने वाले हो गये, यथा—

जीवों की आगति—गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, भुक्त, पीत (पिया हुआ) कृत, प्रतिसेवित, प्रकट कर्म, गुप्त बात को, जीव के मन के भावों को, सर्व लोक को, सब जीवों के सभी भावों को जानते देखते हुए विचरण करते हैं ।

देवागमन—

३२८. जिस समय श्रमण भगवान् महावीर को निर्दोष, पूर्ण, प्रतिपूर्ण, व्याघातरहित निरावरण, अनन्त, अनुत्तर प्रधान केवल-ज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, उस समय भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव और देवियों के आवागमन से वहाँ का वातावरण एक महान दिव्य देवोद्योत से, देव समूह से, देवों के कहकहों से व्याप्त हो रहा था ,

भवनवासी देवों का आगमन—

३२९. उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में बहुत से असुरकुमार देव आये, जैसे—काल, महानील, नील, गुलिक, भैस के सींग, अलसी के फूल के सदृश कृष्ण शरीर वर्ण वाले, सुन्दर पद्मल—सूक्ष्मवरीनी से कलित, कुछ श्वेत, कुछ रक्त-लाल, विकसित कमल के समान नेत्र वाले, गहड़ के सदृश सरल एवं ऊँची नासिका वाले, संस्कारित शिलाप्रवाल—भूंगा एवं विम्ब फल के समान अतीव अरुण ओष्ठ वाले, श्वेत-धवल चन्द्र, विमल, निर्मल शंख गोखीर-फेन जलकण, मृणाल के समान शुभ्र दन्त पंक्तिवाले आग में तपाये गये, पश्चात् धार पदार्थों से धोये गये और पुनः अग्नि में तपाकर उज्ज्वल किये गये सुवर्ण के समान रक्ताभा से युक्त तालु जिह्वा वाले, अजून एवं काले मेघ के जैसे एवं रुचकर (मणि विशेष) के समान स्निग्ध केशवाले, बायें कान में कुण्डल को धारण करने वाले, आद्र चन्दन से लिप्त शरीर वाले, तिलीन्द्र पुष्प के वर्ण जैसे कुछ लाल निर्दोष, महीन, वस्त्रों को पहनने वाले, प्रथम पय का उल्लंघन कर दिया और अनो तरणावस्था को प्राप्त नहीं हुए ऐसे किशोरावस्था, अर्पान् अभिनव योजनावस्था वाले, उलनगक (ज्ञायों में पहनने का आभूषण विशेष) वृद्धि आदि निर्मल, मणिरत्नों से बने हुए श्रेष्ठ आभूषणों से सुनोन्निभ मुद्राओं वाले, हाथों की दस्तों अंगुलियों में मुद्रिकाओं-अंगूठियों की धारण करने वाले, चूडामणि चिन्ह के धारक, सुन्दर महान शक्ति के धारक महादृति, बल, यत्न कीर्ति, मोक्ष अधिगम प्रभाव वाले, हार आदि से शोभित बभ्रु स्वन वाले, कटक वृद्धि आदि से शोभित मुद्राओं वाले अर्ध कुण्डल आदि से शोभित कर्णिक — आदि आदि

कण्णपविचारी^१ विचिच्चवत्थाभरणा विचिच्चमालामउलिमउडा
कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिया कल्लाणग-पवर-मन्लाणुत्तेवणा
भासुरबोदी पल्लव-वण-मालधरा दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं,
दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं
दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए,
दिव्वाए अच्चोए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस विसाओ
उज्जीवेमाणा पभासेमाणा—

समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता
समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेन्ति करित्ता
वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता साइ साइं णामगोयाइं सावेगित्ति
णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं
पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥

—आव० सु० २२

३३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
वहवे असुरिदवज्जिया भवनवासी देवा अंतियं पाउभविस्था
णाग-पइणो सुवण्णा विज्जू अग्गी य दीवा उदही विसाकुमारा
य, पवणथणिया य, भवनवासी णागफडा-गरुल-वइर-पुण्णकलस-
सीह-हयवर-गयवर वर-मउड-वद्धमाण-णिज्जुत्त-विचिच्च-चिधगया
सुहुवा महिड्ढिया सेसं तं चव-जाव-पज्जुवासंति ।

—ओव० सु० २३

वाणमंतरा देवा आगया—

३३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
वहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउभविस्था पिसाया भूया य
जक्ख-रक्खस किनर-किपुरिस-भुयगपइणो य महाकाया गंधव्व-
णिकायगणा णिउण-गंधव्व-गीयरइणो अणवणिय-पणवणिय-
इसिवादिय-भूयवादिय-कंदिय-महाकंदिया य कुहंड-पययदेवा
चंचल-चवल-चित्त-कीलण-इवप्पिया गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-
गीय-णच्चण-रई वणमालामेल-मउड-कुण्डल-सच्छंद-विउच्चिया-
हरण-चारु-विभूसणधरा सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पल्लव-
सोभंत-कंत-वियसंत-चित्त-वणमाल-रइय-वच्छा कामगमा काम-
रूवधारी णाणाविह-वण्णरागवर-वत्थ-चित्त-चिल्लय-णियंसणा
विविह-देसी-गेव-उ-गहियवेसा पमुइय-कंडप्प-कलह-केली-कील(हल-

एवं अन्य कणभूषणों को धारण करने वाले, हाथों में विविध प्रकार के आभरणों—आभूषणों को धारण करने वाले, विविध प्रकार की मालाओं एवं मुकुट से शोभित कल्याणकारी श्रेष्ठ-उत्तम वस्त्रों के धारक आनन्दप्रद उत्तम गन्ध और विलेपनों से सुवासित शरीर वाले, विनिष्ट आमावाले प्रज्ञमान वन मालाओं के धारक अनेक असुरकुमार देव दिव्य धर्म से, दिव्य गन्ध से, दिव्य रूप से एवं इसी प्रकार के दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य श्रुति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य कांति से, दिव्य तेज से, लेख्या से, दशों दिशाओं को उद्योतयुक्त, प्रमायुक्त करते हुए—

श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित हुए । वारम्बार श्रमण भगवान् महावीर के समीप आ आकर बड़ी भक्ति के साथ श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके अपने-अपने नाम और गोत्रों का उच्चारण करके न तो अति निकट और न अति दूर सेवा श्रयुपा नमस्कार करते हुए विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर सामने बैठ जाते हैं ।

३३०. उस काल उस समय में असुरेन्द्र (असुरकुमार) जाति के भवनवासी देवों को छोड़कर नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत-कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, पवन-कुमार, स्तनितकुमार जाति के भवनवासी देव जिनके मुकटों में क्रमशः नागफल गरुड, वज्र, पूर्णकलश शोभायमान भयंकर सिंह, अश्व, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वास्तिक) के विचित्र चिन्ह अंकित हैं, स्वरूपवान महती ऋद्धि से युक्त होकर श्रमण भगवान् महावीर के सामने—पास उपस्थित हुए, शेष वर्णन पूर्वानुसार — यावत्—सेवा करते हैं ।

वाणव्यंतर देवों का आगमन—

३३१. उस काल एवं उस समय श्रमण भगवान् महावीर के पास अति चंचल, चपल चित्त वाले, क्रीड़ा, हास-परिहास, प्रिय स्मित हास्य वचनोच्चार प्रिय अर्थात् हँसी मजाक, गपशप करने में चतुर, गीत, नृत्य के अनुरागी, वन के पुष्पों से निर्मित माला, मुकुट कुण्डल एवं अपनी इच्छानुसार निष्पादित और दूसरे सुन्दर आभूषणों से सुशोभित, सभी ऋतुओं के सुगन्धित कुसुमों से सुरचित लम्बी-लम्बी शोभित, मनोहर विकसित चित्र-विवित्र वनमालाओं द्वारा शोभायमान वक्षस्थल वाले, इच्छानुसार गमन एवं इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, रंग बिरंगे तथा चित्र-विवित्र प्रभा वाले भड़कीले, चमकते हुए वस्त्रों को पहनने वाले, विविध देशों के शृंगार प्रसाधनों एवं वेषभूषा से अपने शरीर

पिया हासबोलबहुला अणेगमणि-रयण-विविह-णिज्जुत्त-विचित्त-
चिधमया सुख्वा महिड्डिया -जाव-पज्जुवासंति ।

—ओव० सु० २४

जोइसिया देवा आगया—

३३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
(वद्धमाणस्स) जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्थ्या, विहस्सती
चंव-सूर-सुयक-सणिच्छरा राहू धूमकेतू-बुहा य अंगारका य तत्त-
तवणिज्ज-कणग-वण्णा जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति केऊ य
गइरइया अट्ठावोसतिविहा य णक्खत्तदेवगणा णाणासंठाण-
संठियाओ य पंचवण्णाओ ताराओ ठियलेसा चारिणो य अविस्सा-
ममंडलमई पत्तेयं णामंक-पागडिय-चिधमउडा महिड्डिया-जाव-
पज्जुवासंति ।

—ओव० सु० २५

वेमाणिया देवा आगया—

३३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्थ्या । सोहम्मोसाण-सणकुमार-
माहिब-वंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्साराणयपाणयारण-अच्चुयवई सा-
माणियतायत्तोससहिया सलोगपालअणमहिंसिपरिसाणोअअप्प-
रयवेहि संपरिवुडा समणुगम्मंतसस्तिरोया सव्वायरवूसिया सुरत्त-
मूहणायगा तोम्मचारुया देवसंपजयसहकयालोया भिग-महिस-
पराह-छगल-वद्ध-र-हय-गयवइ-भुयग-खग-उसमंकविडिमपागडिय-
चिधमउडा पालग-मुप्फग-सोमणस-सिरिवच्छ-णंदि-यावत्त-कानगन-
पोइगम-मणोगम-विमल-सट्ठओभइणाम-धेज्जेहि तरुणदिवारक-
रतिरेगप्पहेहि मणिकणगरयणघडियजालुज्जलहेमजालपेरंत-
परिगएहि सपपरवरमुत्तसमलंबंतभूतणेहि, पचलियघटावलि-

को श्रुंगारित करने वाले, प्रमोद जन्य कंदर्प प्रधान कलह क्रीड़ा
जन्य कोलाहल प्रिय, हंसी मजाक में रत रहने वाले, विविध
प्रकार के मणिरत्नों से निष्पादित चित्र-विचित्र चिन्ह वाले,
सुन्दर पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किपुष्य भुजगपति
(महोरग) तथा नाट्य गीत एवं सामान्य गीतों में रति रखने
वाले सुन्दर विशाल शरीर धारी गंधर्व निव्वाय—जाति के और
अप्रज्ञप्तिक, पंचज्ञप्तिक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दिल महा-
क्रन्दिल कुष्माण्ड पतगदेव आदि अनेक प्रकार के वापयंतर देव
महाऋद्धि वैभव के साथ आये—यावत्—सेवा करते हैं ।

ज्योतिष्क देवों का आगमन—

३३२. उस काल उस समय में तप्त तपनीय-रक्तमुवर्ण और
कनक-पीतमुवर्ण के सदृश वर्ण वाले वृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र,
शनिश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध और अंगारक-मंगल नामक ज्योतिषी
देव तथा इनके अतिरिक्त और जो सदा गतिशील ग्रह ज्योतिष
चक्र में भ्रमण करते हैं, ऐसे जलकेतु आदि केतुग्रह एवं अट्ठाईस
प्रकार के नक्षत्र देवता और विविध प्रकार के आकार-प्रकार
संस्थान वाले, पंचवर्ण वाले, स्थिर लेश्या-शरीर प्रभा वाले,
निरन्तर ज्योतिषमण्डल में संचरणशील ऐसे तारामण्डल के
ज्योतिष्क देव अपने-अपने नामों से युक्त स्पष्ट चिन्हों से अंकित
मुकुटों को धारण करके महाऋद्धि वैभव के साथ भ्रमण भगवान्
महावीर के पास आये—यावत्—पशुपासना करते हैं ।

वैमानिक देवों का आगमन—

३३३. उस काल उस समय भ्रमण भगवान् महावीर की सेवा में
(वन्दना के लिए) वैमानिक देव उपस्थित हुए । (वि) नोधर्म-
ईशान-सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लावक, महागुरु, सहधार
आनत, प्राणत, आरुण, अच्युत नामक कल्प के अधिपति
(स्वामी) सामानिक, त्रयस्त्रिंशक देवों के साथ, लोकपाल, षट्-
रानियां परिपदा, सेना और आत्म-रत्नक देवों के धिरे हुए थे ।
अपनी सम्पूर्ण श्रेणी—कान्ति, वैभव से भूषित, नुर मसूह के साथ
सोन तथा चास—सुन्दर रूप वाले थे । देव गंध के द्वारा उष
जयकार के शब्दोच्चारण से गगन मण्डल सुजाते हुए, सुय,
महिष, पराह, छगल (बकरा) ददुंर, अरुव, गत्र, सूर्य, यद्ग,
वृषभ के स्पष्ट चिन्हों से अंकित मुकुटों को मन्दिर पर धारण
किये हुए थे । पालक, पुष्पक, मोमनन, श्रीवल, नन्दार्ध, आन-
गन, प्रीतिगन, मनोगन, विजय, सर्वशोभन, नामक विमानों में
(बैठकर आये) (वि विमान —) मण्यगठ के भूर्त्त की क्रिया से
भी अधिक प्रभा वाले थे, और दिवने शीतली भद्रिणी, खली
एवं सुदर्भ निर्मित वायव्यनाल सुन्दरी लटके रते हैं, उभय
मोक्षियों की नासार्थ, लुनके आदि वायुपुत्र उन पर उरक रते
हैं तथा उन विमानों की दिवती हुई भद्रिणीओ से मसूर उरक

महुरसद्द्वंसंततितलतालगीववाइपरवेगं महुरेणं पूरयंता अंवरं,
 विसाओ य सोभेमाणा संपट्टिवा विरजता वेविदा । हृष्टमुष्ट-
 मणसा सेसा वि य कप्पवरविमाणाहिवा सविमाणयेचित्ताधिध-
 नामंक्विगडपागडमउडाडोवमुमदंसणिज्जा समग्गिति । लोयंत-
 विमाणवातिणो यावि देवसंघाया पत्तेवविरावमागरिरइयमणि-
 रयणकुण्डलमिसंतनिम्मलनियगंक्रियविचित्तागडिवाचिधमउडा दा-
 यंता अप्पणो समुदयं, पेच्छंता वि य परस्स रिद्धोओ जिणिदवंद-
 णनिमित्तभत्तीए चोइयमई जिणदंसणुसुयागमणजणिवहासा
 विउलवलसमूदविडिया संभमेणं गयणतलविमलविउलगमग-
 इचवलचलियमणपवणजइणसिग्घवेगा णाणाविहजाण-वाहणगया,
 उच्छिधधवलायवत्ता विउव्वियजाणवाहणविमाणवेहरयणप्पभारा
 उज्जोएंता नहं विरतिमिरं करेता सव्विड्ढीए हुलियं (पयाया) ।
 पहिट्ठा देवा पसिदिल-वर-मउड-तिरीड-धारी कुण्डलउज्जो-
 वियाणणा मउडदित्तिसिरया रत्ताभा पउम-पम्हगोरा सेया सुभव-
 ण्णगंधफासा उत्तमवेउध्विणो विविह-वस्य-गंध-मल्ल-धरा
 महिड्ढिया-महज्जुलिया-जाव-पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥

—ओव० सु० २६

अच्छरगणसंघाया आगया—

३३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
 बहवे अच्छरगणसंघाया अंतियं पाउव्ववित्था ।

ताओ णं अच्छराओ धंतधोय-कणग-रुयग-सरिसप्पभाओ
 समइक्कंताओ य बालभावं अणइवरसोम्मचारुहवाओ निरुव्वहय-
 सरस-जोव्वण-कक्कस-तरुणवयभावं उवगयाओ निच्चं अवट्ठिय-
 सहावाओ सव्वंगसुन्दरीओ इच्छिय-वेवच्छ-रइय-रमणिज्ज-गहिय-
 वेसाओ,

किं ते ?

एवं वंशी, वीणा, हस्तावन, गीत वाजों की मधुर ध्वनियों से
 गगन मग्न और दिगंत पूरे रही थीं । उतनी रमा से दिगाएँ
 सोमित हो रही थीं । उन विमानों में आगे देव हृष्ट-मुष्ट मन
 वाले (भगवान् महावीर के पास आगे) इसी प्रकार और दूसरे
 सामानिक देव आदि उत्तम कर्त्तव्यमानों के अतिरिक्त देव भी
 मस्तकों पर विभिन्न चिन्हों से अंकित मुकुटों को धारण किये
 हुए, जो पुन दर्शनीय थे, वे आगे । इसी प्रकार सोलान्त
 विमानवासी देव संघ भी आगे, उनमें प्रत्येक देव के कानों में
 मणिरत्नों से विरचित देवीप्यमान कुण्डल सोमित हो रहे थे और
 जो अपने-अपने मस्तकों पर नामानि स्पष्ट चिन्हों से अंकित
 मुकुटों को धारण किये हुए थे । अपने-अपने वैभव का प्रदर्शन
 करते हुए और दूसरों की श्रद्धा को देखते हुए त्रिनेन्द्र भगवान्
 की वन्दना भक्ति के निमित्त प्रेरित हुए जाने, त्रिन दर्शन के
 लिए उत्सुकतापूर्वक आगे से आनन्दित, विमान संघ समूह के
 साथ भक्ति की प्रचलता से सन्नतित, विस्तृत विभक्त गगनतल में
 अत्यधिक चपल गति से, मन और पवन की गति से भी अधिक
 तीव्र गति वाले विविध यान, वाहन, विमान आदि में, (जिन
 विमानों पर) विमल श्वेत छत्र लगे हुए हैं, (बैठकर) चित्तुर्गता
 द्वारा बनाये हुए यान, वाहन, विमान, शरीर और रत्नों को
 प्रभा से आकाश को प्रकाशमान करते हुए, अंधकार रहित करते
 हुए समस्त श्रद्धा वैभव के साथ, शीघ्र प्रयाण करते हुए आये ।
 (वे देव) प्रशियिल के ग विन्यास से शोभित मस्तक वाले, मुकुट
 की काति से दीप्तिमान केशराशि वाले, स्वताभ, पद्मराग सदृश
 गौर एवं शुक्ल वर्ण वाले' शुभ वर्ण-गंध-स्पर्श वाले, उत्तम
 वैक्तिय शक्ति वाले, विविध वस्त्र-गंधमाला को धारण किये
 हुए महान श्रद्धा एवं महान श्रुति वाले थे । वे देव अंजलि बढ़
 होकर (दोनों हाथ जोड़े) भगवान् की सेवा में उत्सवित
 हुए ।

अप्सरगणसंघात का आगमन—

३३४. उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के
 सन्निकट अप्सराओं के अनेक समूह आये ।

वे अप्सरार्ये अग्नि से तपाकर जल से धोये गये सुवर्ण की
 प्रभा के समान रमणीय प्रभा वाली थीं, अर्थात् गौरवर्णा थीं,
 शोभावावस्था का अतिक्रमण करके युवावस्था को प्राप्त कर चुकी
 थीं, अनुपम सौम्य सुन्दर रूप से सम्पन्न थीं, निरोग, शृंगार रस
 से समन्वित यौवन-सम्पन्न थीं, उनके अंग-प्रत्यंग में ताहण्य
 छलक रहा था, वे चिरयौवना थीं, सर्वांग सुन्दरी थीं, इष्ट
 वस्त्राभूषणों द्वारा रमणीय वेशभूषा से विभूषित थीं,

वे वस्त्राभूषण कौन से ? (उनके नाम इस प्रकार हैं—)

हारद्वहार-पाउत्त-रयण-कुण्डल-वामुत्तग-हेमजाल-मणिजाल-
कणगजाल-मुत्तगउरितिय-कडगखुड्डग-एगावलि-कंठमुत्तमगहग-धर-
सच्छ-भेवेज्ज-सोणिसुत्तग-तिलग-फुल्लग-सिद्धतियय-कणवालय-ससि
-सूर-उत्तम-चक्कय-तलमंगय-तुडिय-हृथ्यमालय-हरिस-केऊर-वल्य-
पालंय-पलंब-अंगुलिज्जगवलक्खदीणारमालिया-चंद-सूर-मालिया-
कंचिमेहल-कलाव-पयरग-परिहेरग-पायजाल-घंटिया-खिखिणि-रय-
णोहजाल खुडिडयवर-नेउर-चलनमालियाकणग णिगलजालग-मग-
रमुह-विरायमाण-नेउर-पचलियसद्दाल-मूसणधरोओ ।

वसद्धवण-रागरइय-रत्तमणहरे हयलालापेलवाइरेगे धवले
कणग-खचियंतकमे आगासफालियसरिसप्पहे असुएणियत्याओ
आयरेणं-तुसार-गोक्खीर-हार-उगरय-पंडुर-दुगुल्ल-सुकुमाल-मुक्य-
रमणिज्ज-उत्तरिज्जाइं पाउयाओ, वरचंदणचच्चियाओ वरामरण-
भूसियाओ सव्योउय-सुरभि-कुमुम-रइय-विचित्त-वरमल्लधारिणीओ
सुगंध-सुण्णगराग-वरवास-पुफ-पूरगविराइयाओ अहियसस्तिरो-
याओ उत्तमवर-धूव-धूवियाओ सिरोत्तमाणवेसाओ दिव्व-कुमुम-
मल्लदाम-पन्नंजसिपुडाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंद-
दत्तमललाडाओ चंदाहिय-सोम्मवंसणाओ उक्काओ विव उज्जोए-
माणाओ विज्जुघणमिरीइसूरविष्पंततेयअहियतरत्तनिगासाओ
सिगारागारत्ताहवेसाओ संगय-गय-हृत्तिय-नणिय-वेट्ठिय-विजात-

हार, अर्धहार, रत्नों से बने हुए कुण्डल, लटकते हेमजाल,
मणिजाल, कनकजाल, (सुवर्ण आदि से बने आभूषण विशेष)
सूत्र तिलड़ी, कंगन, खुड्डग—अंगूठी विशेष एकावलि, कंठसूत्र,
मगधक, धराक्ष, त्रैवेयक श्रोगिसूत्र—कटिसूत्र, तिलक, पुष्पक,
सिद्धार्थिका, कर्णवालिका, शशि, सूर्यश्रवण, चक्रक, तलमंगक
वृटिक, हस्तमालक, हृत्ति, केयूर, वज्र, प्राञ्जव—जूमरु, प्रञ्ज—
गले का आभूषण, अंगूठी, बलाक्ष, दीनारमालिका, चन्द्रमालिका,
सूर्यमालिका, कांची—मेखलाकटिका आभूषण, कलाप, प्रतरक,
परिहेरक, पादजालघंटिका, किक्किणी, रत्नोंहजाल—रत्नों से
बना जंघाओं का आभरण विशेष, क्षुद्रिका—जिसमें लटकती
हुई साँकलों में छोटी-छोटी घंटिकाएँ लगी रहती हैं, तूपुर, चलन-
मालिका—पैरों का आभूषण, कनकनिकर—पैरों में पहनने का
आभूषण, जालक-मछली आदि के मुप जिनमें बने हैं ऐसे तूपुर
आदि आभूषणों को धारण किये हुई थीं ।^१

उनमें बहुत सी मन को आकर्षित करने वाले घोड़े की लार
से भी अधिक सुकुमाल तथा जिनके किनारों पर सोने
के तारों के द्वारा बेलबूटे बने हुए हैं, ऐसे पंचरंगे वस्त्र पहने हुई
थीं, तो किमी ने गहर लाल रंग के किमी के श्वेत और किमी
ने स्वच्छ आकाश की प्रभा जैसे नीले वस्त्र पहन रखे थे और
उन पर हिम-वर्ष गीक्षीर—गाय के दूध के फेन जल कणों के
समान श्वेत धवल, सुकोमल और जिन पर धनबूटे कमीश
निकला हुआ है, ऐसे बहुत ही बारीक वस्त्रों के उत्तरीय-ओडना
ओढ़ रखे थे, जिनके शरीर पर उत्तम चन्दन का नेप लगा हुआ
था, सुन्दर श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित थीं, सभी श्वेतुओं के
सुगन्धित पुष्पों से मुरचित्त मालायें धारण कर रखी थीं,
सुगन्धित अंगराग से देह को रंजित करने के कारण उत्तम
सुगन्धमयी थीं, विविध प्रकार के पुष्पों ने बने आभूषणों द्वारा
विशेष रूप से सजी हुई थीं, अधिक शोभा-लम्पट थीं, उत्तम
श्रेष्ठ धूप से घूपायमान होने से सुगन्धमयी हो रही थीं, सभी
के समान वेगधारिणी थीं जोर जो धरनी-धरती प्रवृत्ति—
मुट्ठियों में दिव्य कुमुम, सुगन्धित मातायें आदि बिबे हुई थीं,
जिनके मुख चन्द्र के समान थे, चन्द्र के सदृश जिनकी कान्ति थी,
अर्धचन्द्र सरीया जिनका ललाट था, चन्द्रमा ने चंद्रर भी
जिनका नोम्पदगंन था, उक्का की तरह उद्योत्तमान थीं, विद्युत्
की चमकमाहट और सूर्य के प्रकाश से भी अधिक दीप्तमान थीं,
जन्मे सुन्दर वेगन्धुवा थे शृंगार के श्रेय देवी प्रतीक होती थीं,
अथवा शृंगारमूह के सदृश जिनकी सुन्दर वेगन्धुवा थीं, सुन्दर-
पूर्वक चलने, खोलने, पिष्टा—इतने आदि की प्रवृत्ति, विनाश

१ कल्याणीय लोक व्यवहार में प्रचलित शब्दों को प्रयोग किया है । वर्तमान में इन आभूषणों के बराबर ही, नारद जलकारी रूप
मिलती है ।

सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसलाओ सुन्दर-थण-जघण-
वयण-कर-चरण-नयण-लावण-रूवजोव्वण-विलास-कलियाओ सुर
वधूओ सिरिस-नवणीय-मउय-सुकुमालतुल्लफासाओ ववगयकलि-
कलुस-धोयनिद्धंतरयमलाओ सोमाओ कंताओ पियदंसणाओ
सुरूवाओ जिणभत्तिदंसणाणुराणेणं हरिसियाओ ओवइयाओ यावि
जिणसगासं दिव्वेणं सेसं तं चेव नवरं ठियाओ चेव ।

—ओव० सु० ३३-३५

भगवओ महावीरस्स वण्णओ—

३३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे
तिदथगरे सहसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुण्डरीए पुरिस-
वरगंधहत्थी अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए दीवो
ताणं सरणं गई पइठ्ठा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्ठी अप्पडिह्य-वर-
नाण-दंसणधरे वियट्ठउमे

जिणे जाणए, तिण्णे तारए, मुत्ते मोयए, बुद्धे वोहए, सव्वण्ण
सव्वदरिसी सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वावाहमपुणरावत्तगं
सिद्धिगइ-णामधेज्जं ठाणं सपाविउकामे ।

३३६. अरहा जिणे केवली सत्तहत्थुस्सेहे समचउरंस-संठाणसंठिए
वज्जरिसहनारायसंधयणे अणुलोमवाउवेगे कंकगहणी कवोयपरि-
णामे सउणिपोत्तपिट्ठंतरोरुपरिणए, पउमुप्पल-गंध-सरिस-निस्सास-
सुरनित्रयणे, द्दवी निरायंक-उत्तम-पसत्थ-अइसेय-निरुवमपले,
जल्लमल्ल-कलंक-सेय-रय-दोत्त-वज्जिय-सरीर-निरुवलेवे, छाया-
उज्जोडयंगमगे

सुमधुर सलाप—आपस में वार्तालाप करना, यथोचित आदर,
मान सम्मान करने में निपुण थीं, सुन्दर स्तन, कटि प्रदेश,
मुख, हाथ, पैर, नेत्र आदि अंगोपांगों एवं सलीने रूप यौवन,
हाव-भाव-विलास आदि से युक्त थीं, शिरीष पुष्प और मक्खन
से श्री मृदु-नरम एवं सुकुमाल जिनका स्पर्श था, वैर विरोध
कलह आदि का जिनमें सर्वथा अभाव था, अपनी स्वच्छन्दता
और निर्मलता से देखने में सौम्य कान्त प्रियदर्शनी और सुन्दर
प्रतीत होती थीं, ऐसी वे देवांगनायें जिन भक्ति जनित दर्शाना-
राग से हर्षित हो जिन भगवान् के सन्निकट आईं, शेष वर्णन देवों
के आगमन की तरह आकाश में अधर स्थित होने तक जानना
चाहिए ।

भगवान् महावीर का वर्णन—

३३५. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर (जो
निम्नलिखित विशेषणों से सम्पन्न है)—वे आदिकर हैं—स्व-
शासन की अपेक्षा श्रुत चारित्र धर्म की आदि करने वाले—
प्रारम्भक हैं, तीर्थंकर हैं, स्वयं संबुद्ध हैं, पुरुषोत्तम हैं, पुरुषों में
सिंह के समान हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक (श्वेत कमल) के
समान हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्ध हस्ती के समान हैं, अभयद हैं,
ज्ञानरूपी नेत्र के दाता हैं, मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं, शरण-
प्रदायक हैं, जीवदय हैं अर्थात् जीव मात्र के प्रति करुणाशील हैं,
भवसागर में द्वीप के समान, त्राणरूप, शरणरूप, आश्रयरूप हैं,
चातुर्गतिकरूप संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती
हैं, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक हैं, विगत छद्म-घाति
कर्मों से रहित हैं ।

राग-द्वेष को जीतने से जिन हैं, दूसरों को जिताने वाले हैं,
तीर्ण—तिरे हुए हैं, दूसरों को तारने वाले हैं, कर्म मुक्त हैं,
दूसरों को मुक्त कराने वाले हैं, बुद्ध हैं, दूसरों को बोध देने वाले
हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, शिव-कल्याण रूप, अचल, अरुज-रोग-
रहित, अनन्त, अक्षय, अव्यावाध, अपुनरावर्तन रूप ऐसी सिद्धगति
नामक स्थान को प्राप्त करने वाले हैं ।

३३६. वे केवलज्ञान सम्पन्न अर्हत् जिन महावीर सात हाथ ऊंचे हैं,
समचतुरस्र संस्थान एवं वज्र ऋपभ नाराच संहनन युक्त शरीर
वाले हैं, शरीरान्तर्वर्ती वायु के अनुकूल वेग से सम्बन्धित हैं,
कंकपक्षी के गुदाशय के समान गुदाशय वाले हैं, कपोल के समान
जठराग्नि वाले हैं, शकून पक्षी के गुदाशय की तरह पुरीपसंस्पर्ग
से रहित (गुदाशय वाले) एवं सुन्दर पृष्ठ पार्श्व भाग तथा
जंघा वाले हैं, पद्म एवं नील कमलों की गंध के सदृश सुगन्धित
श्वासोच्छ्वास युक्त मुख वाले हैं, कांति युक्त रोग मुक्त उत्तम,
प्रशस्त श्वेत, निरुपम मांस वाले हैं, पसीना, मूत्र, तिल; मसा
आदि कलंक, स्वेद, प्रस्वेद रज-धूलि के दोष से वर्जित निर्मल
शरीर वाले हैं, कांति से चमचमाते अंगोपांग वाले हैं ।

घण-निचिय-सुवुद्ध-लक्खणुणय-कूडागार-निम-पिडियगसिरए
सामलि-वोंड-पण-निचिय-चओडिय-मिउविसय-पसत्य-सुहुम-लक्खण
-सुगंध-सुन्दर-सुयमोयग-मिग-नेल-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण-णिद्ध-
निकुह-व-निचिय-कुं चिय-ययाहिणावत्तमुद्धसिरए

अतिनिविड़, स्पष्ट रूप से प्रकटित गुम तमन सम्पन्न,
उन्नत, कूडाकार तुल्य निर्माण नामकमां द्वारा नुरचित मस्तक
वाले हैं, तेमन वई के समान मृदु अनिनिविड़ (घने) धिग्द,
प्रशस्त, सूक्ष्म, मुलभग युक्त, सुगंध सम्पन्न, सुन्दर नीतरत्न
विशेष, भ्रमर, नीले, कज्जल उल्लसित भ्रमर समूहवत् कृष्णवर्ण,
चिकने घुंघराले वालों वाले हैं,

दात्तिमपुष्प-प्पगास-तवणिज्ज-सरिस-निम्मल-मुणिद्ध-केसंतकेस
भूमो-घण (निचिय) छत्तागारत्तिमगदेसे

दाडिप (अनार) वृक्ष तरे इए नुवर्ण को प्रभा के समान
लाल चिकनी मस्तक की त्वचा वाले, छत्र के समान गोत्राकार
मस्तक वाले अर्थात् जिनका मस्तक छत्र के सदृश गोल था,

णिग्घण-समलट्ठ-मट्ठ-चंदद्ध-सम-णिडाले

व्रण-फोड़ा फुन्सी आदि के चिन्ह से रहित समतल, अष्टमी
के चन्द्र के समान लनाट है, मुखमण्डल गरद श्वेतु के पूर्ण
चन्द्रमण्डल के समान है,

उडुवइ-पडिपुण-सोमवपणे

प्रमाणोपेत कान होने से सुन्दर कान वाले हैं,

अल्लोणपमाणजुत्तसवणे सुस्सवणे

पुष्ट मांसल भरे हुए सुन्दर कपोल हैं ।

पीणमंसलकवोलदेसभाए

आणामिय-चाव-इइलकिण्ह-भराइ-तणु-कसिण-णिद्ध-ममुहे

वक्रित ध्रुव के सदृश खरिरे एवं इग्गरेव रश्मि के समान
काली, पतली चिकनी भौंहें हैं,

अवदासिय-पुण्डरीय-गयणे कोयासियधवलपत्तलच्छे

विकसित कमल के समान श्वेत नेत्र हैं, जो विकसित स्वच्छ
एवं पद्मल पतली पीपणी से आच्छादित है,

गरुसायय-उज्जु-तुंगणत्ते

गरुड़ की चोंच के समान दीर्घ नखन एवं उन्नत नासिका है,
संस्कारित गिल प्रवाल मूंगा एवं धिम्बरुन के समान जात
ओष्ठ हैं,

उवचियतिलप्पवाल-बिबफल-सणिग्घाहरोट्ठे

पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मल-संख-गोखलीर-केण-कुन्द-वगरय

श्वेत चंद्र के समान विमल, निर्मल शंख, गोदुग्ध—पेला,
कुन्दपुष्प, जलकण, मृगाल के समान धवल दंत पंक्ति है अथवा
दंत, अस्फुटित (एक से एक सटे हुए) दंत, एक दंत श्रेणी के
समान जो दंत पंक्ति मालूम होती है,

मुणालियाभवलदंतसेदो, अखंडवन्ते अफुडियवन्ते अबिरलवन्ते

मुणिद्धवन्ते मुजायवन्ते एगवन्तसेदो विव अणेगवन्ते

हुपवह-णिउंत-धोय-त्त-तवणिज्ज-रत्ततल-तालुओहे

अग्नि से तप्त पश्चात् जल आदि से धोये गये और पुनः
तपाये गये नुवर्ण के समान तालु और बिद्धा है,

अषट्ठिय-मुबिभल-चित्तमंमू

अवर्द्धनगोल एवं दो भागों में विभक्त दाढ़ी मूँछ है,

मंसल-संठिय-पत्तपसद्धल-विउल-हणुए

पुष्ट सुन्दर आकार युक्त अतिरमणीय सिंह के समान बिबुद्ध
(दाढ़ी) है,

बउरंगुल-मुप्पमाण-भंबुवर-सरिसगोवे

स्वअगुली की प्रवेशा धार अगुन प्रमाण सानो एवं उष के
समान जोसा है,

परमहिंस-बराह-सोह-लद्धल-उत्तम-नागवर-रडिपुण-

श्रेष्ठ मन्दिर, बराह, सिंह, जाहूँल, इंस, अष्टदारी के
संघ के समान पूर्ण बिबुद्ध अंगे वे,

विउलरखंधे

सुगससिभ-पोण-रइय-सीवर-उउट्ठ-मुसंठिय-मुत्तिअड्ड-वित्ति-

रइय-पण-पिर-सुबड-सोपिउरय-र-कसिह-बट्टियमु

भुयगीसर-विउल-भोग-आयाण-पलिह-उच्छूढ-दीहवाह

रत्तलोवइय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसस्थ-अच्छिहजाल-
पाणी

पीवरकोमलवरंगुली

आयवंतंबतलिणसुइइलणिद्धणखे

चंदपाणिलेहे सूरपाणिलेहे संखपाणिलेहे चक्कपाणिलेहे
दिसासोत्थियपाणिलेहे चंद-सूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे

कणग-सिलायलुज्जलपसस्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-पिहुल-
वच्छे, सिरिवच्छकियवच्छे

अकरंडुय-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहयदेहधारी

अठ्ठसहस्स-पडिपुण्ण-वर-पुरिस-लक्खणधरे

सणयपासे संगयपासे सुन्दरपासे सुजायपासे मियमाइयपीण-
रइयपासे

उज्जुय-समसहिय-जच्चत्तणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-रमणि-
ज्जरोमराई

झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी झसोयरे सुइकरणे पउमवियड-
णाभे गंगावत्तण-पयाहिणावत्त-तरंग-भंगुर-रविकिरण-तरुणबोहिय-
अकोसायंत-पउमगंभीर-वियडणाभे साहयसोणंदमुसल-इप्पण-णिक्क-
रिय-वर-कणगच्छह-सरिसवरवइर-वलियमज्जे पमुइयवरतुरगसीह-
वरट्टियकडी

वरतुरगसुजायसुगुज्जदेसे आइण्णहउव्व निरुवलेवे

वरवारणतुल्ल-विवकम-विलसियगई

गय-ससण-सुजायसन्निभोह

समुग्ग-णिमग्ग-गूढजाणू

एणीकुहविदावत्त-वट्टिणुपुव्वजंघे

वांछित वस्तु की प्राप्ति के लिए सर्पराज द्वारा फैलाये गये
अपने विशाल देह के समान दीर्घ वाह हैं,

तल भाग में लाल, पृष्ठ भाग में उन्नत, मृदुल, मांसल-मुष्ट,
शुभ लक्षण चिन्हों से युक्त, प्रशस्त छिद्र रहित हाथ हैं,
पुष्ट कोमल एवं सुन्दर उत्तम अंगुलियाँ हैं,
कुछ लाल पतले, शुद्ध, रुचिर, चिकने नख हैं,

हाथों में चन्द्र रेखा है, सूर्य रेखा है, शंखरेखा है, चक्र
रेखा है, दक्षिणावर्त स्वास्तिक रेखा है, इस प्रकार चंद्र, सूर्य,
शंख, चक्र दिशा स्वस्तिक की रेखाओं से सुशोभित हाथ हैं,

कनक शिला के सदृश उज्ज्वल-देदीप्यमान, प्रशस्त लक्षणों
युक्त, समतल, विस्तीर्ण अति विशाल वक्षस्थल है, वह वक्षस्थल
श्रीवत्स के चिन्ह से अंकित हैं।

अदृश्यमान रीढ़ की हड्डीयुक्त सुवर्ण के जैसा निर्मल,
सुप्रमाणोपेत, निरोग शरीर है, जो प्रतिपूर्ण एक हजार आठ पुरुषों
के योग्य श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हैं,

शरीर का पार्श्व भाग क्रमिक अवनत, उचित प्रमाणयुक्त,
सुन्दर, शोभन, दर्शनीय, परिमित मात्रा वाला पुष्ट एवं रम्य हैं,

रोमराज सरल, सम-मिलित, उत्तम, पतली, काली, विकनी
आदेय, ललित, रमणीय हैं, मत्स्य एव पक्षी के समान सुन्दर
और पुष्ट कुक्षि वाले हैं, उदर मत्स्य के जैसा सुन्दर है, इन्द्रियाँ
स्वच्छ निर्लेप हैं, पद्मकोश के समान गहरी, तथा गंगा से
उठने वाली लहरों के समान अर्थात् अन्दर की ओर छोटी
और बाहर क्रमशः फैलती हुई, तरंग के समान मंगुर मध्याह्न
के सूर्य की किरणों के समान उत्तरोत्तर फैली हुई, विकसित
पद्म के समान गंभीर एवं विशाल नाभि है, कटि-प्रदेश
त्रिकाष्ठिका के मध्य भाग समान मूसल के मध्य भाग समान,
दर्पण के दण्डे के मध्य भाग समान-श्रेष्ठ सोने की खड्ग मुष्टि के
मध्यभाग समान और वज्र के मध्यभाग समान पतला है तथा
वह कटिप्रदेश रोगादिक रहित होने से प्रसन्न श्रेष्ठ घोड़े के
समान एवं सिंह के समान गोल है,

गुह्य प्रदेश सुन्दर घोड़े के गुह्य प्रदेश के समान हैं तथा वह
गुह्य प्रदेश आकीर्ण जाति के घोड़े के गुह्यप्रदेश के समान निरूप-
लेप है,

पराक्रम एवं गति उत्तम हाथी के समान सुन्दर है,

हाथीकी सूंड के समान सुन्दर जंघायें हैं,

डिविया के समान डकनी से गुप्त गूढ़ घुटने हैं,

हरिणी की जंघा के समान और-कुहविन्द-तूण विशेष और
डोरी के वल सदृश अथवा-कुहविन्दावर्त नामक भ्रूषण के-समान
गोल पतली ऊपर से मोटी नीचे की ओर चढ़ाव उतार की पतली
दोनों जंघायें हैं,

संठियसुत्तित्ठं गूढगुण्णे

सुप्पइत्थियकुम्मचारुचलणे
अणुपुब्बसुसंहयंगुलीए,

उष्णयतणुतंवणिद्वणक्ये रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतले

अट्ठसहस्स-वरपुरिस-लक्खणधरे, नग-नगर-भगर-सागर-
चक्क-वरंग-मंगलंफिय-वलणे, विसिट्ठरुवे, हुयवह-निद्वूम-
जलिय-तडित्तिय-तरुण-रवि-फिरण-सरिसतेए

३३७. अणासये अममे अकिचणे. छिन्नसोए निरुवलेवे ववगयपेम-
रागदोसमोहे निगंयस्स पवयणस्स देसए, सत्यनायगे पइट्ठावए
समणगई समणगविदपरिअट्टए चउतीसपुब्बवयणाइसेसपत्ते पणतीस-
सच्चययणाइसेसपत्ते

३३८. आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं
चामराहिं आगासकालियामएणं सपायवीडेणं सीहासणेणं धम्मज्ज-
एणं पुरजो पक्कडिज्जमाणेणं चउट्ठसहिं समणसाहस्सोहिं, छत्तीसाए
अजिजया-पाहस्सोहिं सद्धिं संपरिबुड....।

—ओव० सु० २०

महावीरस्स अंतेवासी बह्वे समणा भगवंतो—

३७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
अंतेवासी बह्वे समणा भगवंतो अप्पेगइया उगपव्वइया भोगप-
व्वइया राइण-जाय-कोरव्वसत्तियपव्वइया भडा जोहा सेपावई-
पसत्थारी सेट्ठी इव्वा अण्णे य बह्वे एयमाइणो उत्तम-आइ-कुल
-एव-दियव-विष्णाण-अण्ण-सावण्ण-दियवम-वहाण-सोमग्ग-संति
सुपा।

बहुधम-धरुण-विचर-परिपास-विडिया धरवइसुमाहरेगा-
इच्छिन्नभोसा सुहांसरुत्तिया किराकरोरमं य मुलिय वित्तय-सोक्खं
अल्लु-सुपसगएणं कृत्तण्णव्वइव्वुव्वरत्तं ओधिय य जाज्ज अट्टव-

सुन्दर आकार युक्त, अच्छी तरह से मिलित गूढ-मांसल पैरों
के गुल्फ हैं,

ग्रीवा को सिकोड़कर अंदर किये कटुर के समान पांव हैं,
पैरों की अंगुलियां अनुक्रम से उचित आकार वाली मंहत
सम्मिलित हैं,

जिनके नख समुन्नत प्रतल—पतले रक्त और चिकने हैं,
रक्त कमल के दल के समान सुकुमाल कोमल तलवे हैं.

एक हजार आठ श्रेष्ठ पुरुष लक्षण युक्त हैं. पर्वत, नगर,
मकर, सागर, चक्र इनके शुभ चिन्हों तथा स्वास्तिक आदि शुभ
चिन्हों तथा मंगल चिन्हों से शोभित चरण हैं अनाधारण
अनुपम रूप सौंदर्य हैं, निर्धूम अग्नि के समान, चमकती हुई
विद्युत् और मध्याह्न कालिक सूर्य सदृश तेज हैं।

३३७. वे कर्माक्षय से रहित हैं. ममत्वरहित हैं. अक्रिय-
परिग्रह रहित हैं. उन्होंने भव परम्परा के कारण को नष्ट कर
दिया है, उपलेप—द्रव्य भाव रूप मलिनता का तप कर दिया
है, राग-द्वेष मोह को नष्ट कर दिया है. वे निगंय प्रयत्न के
उपदेशक हैं. सार्थनायक-मोक्षाभिलाषि भव्य पुरुषों के समूह के
नेता हैं. धर्म संस्थापक हैं, श्रमणों के स्वामी हैं श्रमण आदि रूप
चतुर्विध संघ के वर्द्धक—वढ़ाने वाले हैं तीर्थंकरों के चोतीस
अतिशयो से युक्त हैं. पैंतीस वचनातिशयो से युक्त हैं।

३३८. आकाशगत-चक्र से, आकाशगत छत्र से, आकाशगत
चामरों से, आकाशगत स्फटिक मणिमय एवं पारशीठ
सहित सिंहासन, आगे-आगे चलने वाले अर्ध-अष्टमी के शम्भुमा
के समान धर्मध्वज युक्त हैं एवं चौदह हजार श्रमणों तथा
छत्तीस हजार आशिकाओं के समूह के माध संपरिबृत्त....

महावीर के अनेक अन्तेवासी श्रमण भगवन्त—

३३६. उन काल एवं उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के
अनेक अन्तेवासी श्रमण भगवन्तों में किञ्चित् उदासी, प्रश्रित
हुए थे. भोगवंतो प्रश्रित हुए थे, राज-व आन, कोरव-सत्तिय
वंश के तथा किञ्चित् सुभट, पौडा, वेणागि, प्रगाथा मयो,
सेठ, इव्व प्रश्रित हुए थे, ये सभी उत्तम आदि सुभ, वर,
धिय, विमान, वयो, नावण्य, विजय, प्रधान श्रेष्ठ कीर्त्तय
भाति सम्पन्न थे।

इनके अतिरिक्त इन श्रमण भगवन्तों में अनेक ऐसे भी थे
जो शीघ्र ही वे के दूर प्रभूत धर्म धाम, दास-दासी अदि परि-
वार से युक्त होकर राजसी छत्र-पाट वाले थे और शीघ्र ही
रूप आदि इन्द्रिय दिव्यो में उत्तम रहते थे. इनके अतिरिक्त
और सुख-साधनों एवं ईश्वर के श्रेष्ठ अतिशयोक्त-साधन हुए
थे। ये सभी इन्द्रिय-विरागी अतिशयोक्त के समान उत्तम-उत्तम

मिणं रयमिव पडग्गलमं संविधुणित्ताणं, चइत्ता हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं-एवं धण्णं वलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं रज्जं रट्ठं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्त-रयणमाइयं संतसार-सावतेज्जं, विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता मुण्डा भवित्ता अगा-राओ अणमारियं पव्वइथा,

अप्पेगइया अद्धमासपरियाया, अप्पेगइया मासपरियाया,— एवं दुमास तिमास - जाव - एवकारस नासपरियाया अप्पेगइया वासपरियाया. दुवास तिवास - जाव - अप्पेगइया अणेगवासप रियाया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

—ओव० सु० १४

३४०. तेणं कालेणं तेणं समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बह्वे निग्गंथा भगवंतो-अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणो-जाव-केवलणाणी

अप्पेगइया मणवलिया वयवलिया कायवलिया णाणवलिया दंसणवलिया चारित्तवलिया

अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गहसमत्था एवं वएणं काएणं

अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता एवं जल्लोसहि विप्पोसहि आमोसहि सव्वोसहि,

अप्पेगइया कोट्ठवुद्धी एवं वीयवुद्धी, पडवुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी,

अप्पेगइया संभिन्नतोया, अप्पेगइया खीरासवा, अप्पेगइया महयासवा, अप्पेगइया सुप्पियासवा, अप्पेगइया अक्खीगमहा-णसिया,

अप्पेगइया उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई, विउव्वणिड्डि-पत्ता, चारणा विज्जहारा, आणासाइवाइणो,

३४१. अप्पेगइया कणगावलितवोक्कमं पडिवण्णा

एवं एगावलि, खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोक्कमं पडिवण्णा, अप्पेगइया महालयं सीहनिक्कीलियं तवोक्कमं पडिवण्णा, एवं भट्टपडिमं, महामट्टपडिमं, सव्वओमट्टपडिमं,^१ आयंवलिवट्टमानं तवोक्कमं पडिवण्णा,

१ भट्टपडिमं सुमट्टपडिमं महामट्टपडिमं सव्वओमट्टपडिमं भट्टवरपडिमं....पाठान्तर ।

परिणाम वाले, जीवन को पानी के बुलबुले के समान क्षणमंगुर एवं कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जल बिन्दु के समान चंचल, अध्रुव जानकर कपड़े पर लगी हुई धूल के झटकारने के समान हिरण्य-चाँदी, सुवर्ण, धन-धान्य, बल, वाहन कोष, कोष्ठागार, राज्य, राष्ट्र, पुर, अन्तःपुर का परित्याग कर एव विपुल धन, कनक-सुवर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल, रक्तरत्न—पद्मराग मणियों एवं सारभूत सुरक्षित सम्पत्ति आदि को छोड़कर उस पर से ममत्व का परित्याग कर, प्रकट करके उदारतापूर्वक दान देकर, स्वजनों में बाँटकर मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर आनर्गारिक साधना के लिए प्रव्रजित हुए थे,

इनमें से कितनेक ऐसे थे जिन्हें दीक्षा के लिये अर्धमास हुआ था, कितनेक एक मास एवं द्वा मास, तीन मास—यावत्—को दीक्षा पर्याप्त वाले अनेक मास की दीक्षा पर्याप्त वाले थे अर्थात् इन श्रमण भगवन्तों ने भिन्न-भिन्न समय में दीक्षा ली थी और संयम एवं तप साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

३४०. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के उन अनेक अन्तेवासी निर्ग्रन्थ भगवन्तों में से कितनेक आभिनेवाधिक ज्ञानी—यावत्—केवलज्ञानी थे,

कितनेक मनावलधारी, वचनवलधारी, कायवलधारी, ज्ञानवान, दर्शन सम्पन्न चारित्रवान थे,

कितनेक मन स ही शरणानुग्रह करने में समर्थ एवं इसी प्रकार वचन और काय स भी

कितनेक ऐसे थे जिन्हें खलौपधिह्य लब्धि प्राप्त थी एवं जस्लौपधिह्य, विप्रौपधि, आमपौपधिह्य, सर्वौपधिह्य लब्धियाँ प्राप्त थीं ।

कितनेक ऐसे थे जिन्हें कोष्ठबुद्धि प्राप्त थी, इसी प्रकार वीजबुद्धि, पटबुद्धि प्राप्त थी, कितनेक पदानुसारी बुद्धि सम्पन्न थे,

कितनेक सम्मिन्नश्रोता थे, कितने ही क्षीराश्रवलब्धि सम्पन्न थे, कितने ही मयुराल्लवा, कितने ही सर्पिराल्लवा, कितने ही अक्षीगमहानस लब्धियों से सम्पन्न थे ।

कितने ही ऋजुमति मनः पर्यवज्ञानधारी, कितने ही विपुल-मतिमनःपर्यवज्ञानधारी थे, कितने ही चारणलब्धिधारी, विद्याधर आकाशगामी थे ।

३४१. कितने ही कनकावलि तवोक्कमं में तल्लीन थे, इसी प्रकार एकावलि तप को तपते थे, कितनेक क्षुल्लक (लड्डु) सिंह निष्कीडित तप की आराधना करते थे, कितनेक महासिंह निष्कीडित तप करते थे, इसी प्रकार भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा, आयंवलिव वट्टमान तप करते थे ।

वणभूया परवाइपमद्दणा चोद्दसपुव्वी^१ -दुवालसंगिणो समत्तगणि-
पिडगधरा सव्वक्खरसण्णिवाइणो सव्वभासाणुगामिणो
अज्जिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

—ओव० सु० २६

३४५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
अंतेवासी बह्वे अणगारा भगवंतो इरियासमिया-जाव-पारिदुठा-
वणियासमिया, १ मणगुत्ता, २ वयगुत्ता, ३ कायगुत्ता, गुत्ता
गुत्तिदिया गुत्तवंभयारी, अममा अक्किचणा अकोहा अमाणा अमाया
अलोभा संता पलांता उवसांता परिणिव्वुया अणासवा अगंथा
छिण्णगंथा छिण्णसोया निरुवलेवा विमल-वरकंसभायणं व
मुक्कतोया -जाव- जीवो व्व अप्पडिहयगइया....तेयसा जलंता ।

३४६. नत्थि णं तेसिं णं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे भगइ । से य
पडिबंधे चउविहहे पण्णत्ते, तं जहा—

१ दव्वओ, २ छेत्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ ।

दव्वओ णं—सच्चित्तचित्तमीसिएसु दव्वेसु,

छेत्तओ णं—गामे वा -जाव- णहे वा,

कालओ णं—समए वा -जाव-अण्यरे वा दीहकालसंजोगे ।

भावओ णं—कोहे वा, माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा
हामे वा एवं तेसिं ण भवइ ।

३४७. ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतियाणि
मासाणि गामे एगराइया, णयरे पंचराइया वासीचंदणसमाणकप्पा
समत्तेदुत्तं चपा समसुहदुक्खा इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धा संसार-
पारगामो कम्मणिग्घायणदुआए अबुद्धिया विहरंति ।

कमलवन से पूर्ण परिचित थे । निरन्तर धारावाहिकरूप से—
अविच्छिन्नतया प्रश्नों का उत्तर देने में निपुण थे । कुत्रिकापण
(सभी प्रकार की वस्तुयें मिलने का बाजार, दुकान) तुल्य थे,
रत्नकरण्डक (मंजूषा) के समान थे, प्रतिवादी का मानमर्दन
करने में समर्थ थे, चौदह पूर्वों के पाठी, द्वादशांग के वेत्ता,
समस्त गणिपिटक के धारक, सर्वाक्षर संयोग वेदी, सर्वभाषाविद,
जिन नहीं, किन्तु जिनसदृश सर्वज्ञ जिन की तरह अवितथ—
याथातथ्यरूप से व्याख्या करने वाले थे । ये सभी संयम और तप
से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

३४५. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से
अन्तेवासी अनगर भगवन्त् ईर्यासमिति—यावत्—परिष्ठापनिका-
समिति से युक्त थे, १—मनोगुप्त, २—वचनगुप्त, ३—काय-
गुप्त होने से अशुभयोग निग्रहरूप गुप्तियुक्त थे. गुप्तेन्द्रिय,
गुप्तब्रह्मचारी, ममत्वरहित, अक्किचन, क्रोधरहित, मानरहित,
माया रहित, लोभरहित, शांत, प्रशांत, उग्रशांत, कर्मविकार
रहित, आलवरहित, ग्रन्थि,मूच्छा रहित—निग्रन्थ, छिन्नग्रन्थ,
छिन्नस्रोत—संसार के कारणभूत कर्मरहित. रागादिलेपरहित,
निर्मल श्रेष्ठ कांसे का बर्तन पानी से लिप्त नहीं होता है, वैसे
ही संसार में लिप्त होने के कारणों से मुक्त—यावत्—जीव की
तरह अव्याहत अप्रतिहतगति तेजस से जाज्वल्यमान दीप्त थे....।

३४६. उन भगवन्तों को किसी के प्रति कहीं पर भी प्रतिबंध
नहीं था । वह प्रतिबंध चार प्रकार का है—यथा—

१—द्रव्यतः २—क्षेत्रतः ३—कालतः ४—भावतः ।

द्रव्य से—सचित्त अचित्त, मिश्र द्रव्य में ।

क्षेत्र से—ग्राम में अथवा—यावत् - आकाश में ।

काल से—समय में अथवा—यावत्—अन्य किसी दीर्घकाल
के संयोग में ।

भाव से—क्रोध में, मान में, माया में, लोभ में, भय में,
हास्य में । इस प्रकार उनको प्रतिबंध नहीं था ।

३४७. वे भगवन्त वर्षावास को छोड़कर ग्रीष्म और हेमन्त
(शीत) ऋतु के आठ मासों में ग्राम में एक रात और नगर में
पाँच रात्रि पर्यन्त, वसूला से छीलने वाले और चंदन से चर्चित
करने वाले (अपकारी और उपकारी) दोनों पर समभाव रखते
हुए, पापाण और सुवर्ण को समान मानते हुए, सुख-दुःख में तुल्य
परिणाम रखते हुए, इहलोक-परलोक सम्बन्धी वाञ्छा से विहीन
होकर, संसार पारगामी, कर्म निर्जरा के लिये संयमाराधान में
तत्पर होकर विचरते थे ।

१ परवाइइ नगोसंठा अण्णउत्थिएहि अणोद्धसिग्गमाणा विहरंति अप्पेगइया आयाएधरा -जाव- विवागसुयधरा चोद्दसपुव्वी ।

अण्णाण-भ्रमंत-मच्छपरिहृत्य-अणिहुंघियदिय-महामगर-तुरिय-चरिय-
खोखुडभमाण-नच्चंत-चवल-चंचल-चलंत-घुमंत-जलसमूहं, अरइ-
भय-विसाय-सोग-मिच्छत्त-सेल-संकडं अणाइसाणतां-कम्मबंधण-
किलेस-च्चिखल्लसुदुत्तारं अमर-णर-तिरिय-णरयगइ-गमण-कुडिल-
परियत्तविउल्लवेलं चउरंतं महंतमणवयगं रुंदं संसारसागरं भीम-
दरिसणिज्जं तरंति ।

३५०. धिइधणियनिप्पकंपेण तुरियचवलं संवर-वेरग-तुंग-कूवय-
सुसंपउत्तेणं णाण-सिय-विमलभूसिएणं सम्मत्त-विसुद्ध-लद्धणिज्जा-
मएणं धीरा संजम-पोएण सीलकलिया पसत्थज्जाण-तव-वाय-
पणोल्लिय-पहाविएणं उज्जम-ववसाय-गहिय-णिज्जरण-जयण-
उवओग-णाणदंसणचरित्त-विसुद्धवयभंडभरियसारा जिणवर-
वयणोवदिट्ठ-मग्गेण अकुडिलेण सिद्धिमहापट्टणाभिमुहा समण-
वरसत्थवाहा सुसुइसुसंभाससुपणहसासा

गामे गामे एगरायं णगरे णगरे पंचरायं दूइज्जंता जिइंदिया
णिब्भया गयमया सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु विरागयं गया
संजया विरता मुत्ता लहुया णिरवकंखा साहू णिहुया चरंति धम्मं ।
—ओव० सु० २१

महावीरेण एगनिसज्जाए चउपण्णाइं वागरणाइं—

३५१. समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनित्सेज्जाए चउप्प-
ण्णाइ वागरणाइं वागरित्था ।

—सम० स० ५४, सु० ३

अज्ञान ही घूमते हुए मत्स्य और परिहृत—जलजन्तु विशेष
हैं, अनुशांत इन्द्रियाँ ही महासागर हैं और इन्द्रियरूपी महा-
मगरों की चंचल चेष्टाओं से अज्ञानियों का समूह रूप जलसमूह
क्षुब्ध हो रहा है, नाच रहा है, विद्युद्भेग से घूम रहा है—चक्कर
मार रहा है, अरति, भय, विपाद, शोक और मित्यात्वरूप
प्रच्छन्न पर्वतों से यह संसार समुद्र अत्यन्त विकट बना हुआ है;
अनादिकाल से जीव के साथ संबद्ध कर्मों से उद्भूत रागादि
परिणामरूप कीचड़ से भरा हुआ होने के कारण जिससे तिरना—
निकलना दुष्कर है, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकगति, इन
चार गतियों में जीव का परिभ्रमण होना इसकी वक्र चारों ओर
फैली हुई विस्तृत वेला है जो चारों गतिरूपा चारों दिशाओं के
विभाग से विभक्त हैं, यह बड़ी विशाल है, उसका उलांघना
कठिन है, विकराल रुद्र स्वरूप वाला है जिसका देखना ही भय-
भीत बना देता है, ऐसे संसारसागर को संयमीजन पार करते हैं ।

३५० (संयमीजन कैसे पार करते हैं ? इसको स्पष्ट करते हैं)—
धृतिरूपी रज्जुबंधन से जो अत्यन्त निष्प्रक्रम्य है, जिसकी गति
अत्यन्त शीघ्रगामी है, संवर और वरामय—ये दोनों ही जिसके
बीच के दोनों ऊँचे कूपक—स्तम्भ हैं, जिन पर ज्ञानरूपी श्वेत
विमल वस्त्र का पाल तना हुआ है, जिसमें विशुद्ध सम्यक्त्व
नियामक—कर्णधार हैं—मल्लाह, खेवटिया है, प्रशस्त ध्यानरूपी
तपो वायु से प्रेरित होकर जो आगे-आगे बढ़ता रहता है, उद्यम-
शील—अप्रमादी एवं व्यवसायी मोक्ष प्राप्त करने के लिये दृढ़
निश्चय वाले हैं तथा जिन्होंने निर्जरा यतना उपयोग, ज्ञान,
दर्शन, चारित्ररूपी पदार्थों से भरे हुए विशुद्ध महान्तरूप भांडोप
करणों को लिया है, जिनवरवचनोपदिष्ट सीधे सरल मार्ग से
सिद्धगतिरूपी पत्तन—बंदरगाह की ओर जाने वाले संयम पोत
के द्वारा शील के अठारह हजार भेदों को धारण करने वाले हैं,
श्रमणश्रेष्ठ जिनके साथवाह हैं और जो स्वयं सत् सिद्धांतों में
पारंगत हैं, मनोमुग्धकारी भाषा बोलने वाले हैं प्रमाणोपेत प्रश्न
करते हैं, सुप्रणीत इच्छा वाले हैं, अर्थात् मोक्षाभिलाषी हैं, ऐसे
धीरवीर मुनिराज इस संसार सागर को पार करते हैं ।)

ये श्रमण भगवन्त ग्रामों में एक रात और नगरों में पाँच
रात निवास करते थे, जितेन्द्रिय थे निर्भय होने से वीतभय
सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त (मिश्र) द्रव्यों में वरामय युक्त,
संयमी, विरत, मुक्त लोभ रहित लाघव गुण सम्पन्न, आकांक्षा
रहित साद्गु मदरहित होने के कारण विनीत होकर धर्म की
आराधना करते थे ।

महावीर के द्वारा एक निषद्या से चउवन वागरण (उत्तर)
३५१. श्रमण भगवान् महावीर ने एक दिन में एक निषद्या
(आसन) से चउवन प्रश्नों का व्याकरण किया था, चउवन प्रश्नों
के उत्तर कहे थे ।

महावीरकया पज्जुवासणा—

३५२. समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीत्तिकंते सत्तरिएहि राइंदिएहि सेसेहि वासावासं पज्जोसवेइ^१।।

—सम० स० ७०, सु० १

वासावासगणणा—

३५३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे—

अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए ।

चंपं च विट्ठिचंपं च निस्साए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए ।

वेसालि नगरि वाणियगामं च निस्साए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए ।

रायगिहं नगरं नालंदं च बाहरियं निस्साए चोहस अंतरावासे वासावासं उवागए ।

छ म्महिलाए,

दो भदियाए,

एगं आलंभियाए,

एगं सावत्थीए,

एगं पणीयभूमिीए,

एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रत्तो रज्जुगसहाए अपच्छिभं अंतरावासं वासावासं उवागए ।

—कप्प० सु० १२२

महावीरकृत पयुं वासना—

३५२. श्रमण भगवान् महावीर वर्षा ऋतु का एक मास और बीस रात्रि व्यतीत होने पर और सत्तर दिन रात शेष रहने पर वर्षावास रहे ।

वर्षावास गणना—

३५३. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने—

अस्थिक ग्राम की निश्राय में प्रथम वर्षावास किया ।

चम्पा और पण्डचम्पा नगरी में (तीन वर्षावास (चातुर्मास) किये ।

वैशाली नगरी में और वाणियग्राम में भगवान् का बारह बार चातुर्मासार्थ पदार्पण हुआ ।

राजगृह नगर में और उसके बाहर नालन्दा की निश्राय में चातुर्मास करने हेतु भगवान् चौदह बार पधारे ।

मिथिला नगरी में छह बार ।

भदिया नगरी में दो बार ।

आलंभिका नगरी में एक बार ।

श्रावस्ती नगरी में एक बार ।

प्रणीत भूमि (वज्रभूमि) में एक बार चातुर्मास हेतु भगवान् का पदार्पण हुआ, और

अंतिम चातुर्मास करने के लिए मध्यम पावा के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में भगवान् पधारे ।

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ?

जतो णं पाएणं अगारीण अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपभूमियाइं खाओदगाइं खातनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कयाइं परिभोत्ताइं परिणामियाइं भवंति ।

से एतेण ऽट्ठेणं एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ।

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ तथा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइति ।

जहा णं गणहरा वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति तथा णं गणहरसीसा वि वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति ।

जहा णं गणहरसीसा वासाणं-जाव-पज्जोसवेइति तथा णं थेरा वि वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति ।

जहा णं थेरा वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति तथा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निगंया विट्ठरंति एए वि णं वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति ।

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निगंया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइति तथा णं अम्हं पि आयरियउवज्जाया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइति ।

जहा णं अम्हं आयरियउवज्जाया वासाणं - जाव - पज्जोसवेइति तथा णं अम्हे वि अज्जो ! वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइमो । अंतरा वि य से कप्पइ पज्जोसवेइत्ताए नो से कप्पइ तं रयणि उवायणावित्तए ।

—कप्प० सु० २२४-२३१

णिव्वाणं देवेहि उज्जोयकरणं य—

३५४. एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराणं चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—ठाणं० अ० १, सु० ५३

३५५. तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रत्तो रज्जुग-सन्नाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए, तस्स ण अंतरा-वासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे, सत्तमे पक्खे, कत्तियवहुले तस्स णं कत्तियवहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमा रयणी तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्न-जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे,

३५६. चंदे नामं से दोच्चे संवच्छरे, पीतिवद्धणे मासे, नंदिवद्धणे पक्खे, सुव्वयग्गी नामं से दिवसे, उवसमि त्ति पवुच्चइ, देवानपा नामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ, अच्छे लवे, मुहुत्ते पाणू, थोवे सिद्धे, नागे करणे, सव्वदुत्तिसिद्धे मुहुत्ते, साइणा नव्वत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

३५७. जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी व्हर्ही देवेहि य देवेहि य ओवय-माणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि होत्था ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्व-दुक्खप्पहीणे सा णं रयणी व्हर्ही देवेहि य देवेहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिजलगमाणभूया क्हकहगभूया यावि होत्था ।

महावीरस्सायुकालगणणा अंतिमोवदेशो य—

३५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणं भगवं महावीरे—
तीसं वासाइं अगारवासमज्जे वसित्ता^१,

साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता,
देसूणाइं तीसं वासाइं केवलपरियागं पाउणित्ता,

वायालीसं वासाइं सामन्न-परियायं पाउणित्ता^२,

निर्वाण और देवों द्वारा उद्योतकरण—

३५४. इस अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत सब दुःखों का क्षय करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

३५५. मध्यम पावा नगरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा में अन्तिम चातुर्मास करने के लिये भगवान् रहे हुए ये, उस वर्षावास के चतुर्थ मास, सातवें पक्ष अर्थात् कार्तिक कृष्ण पक्ष में अमावस्या के दिन जब रात्रि का अन्तिम प्रहर या तव श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, संसार का त्याग कर दिया, जन्म-जरा-मरण के बंधन को छिन्न-भिन्न करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए । सब दुःखों का अन्त करके परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

३५६. जिस समय भगवान् कालधर्म को प्राप्त हुए, संसार का त्याग कर चले गये—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये थे, तब उस समय चन्द्र नाम का द्वितीय संवत्सर चल रहा था प्रीतिवर्धन नामक मास था, नन्दिवर्द्धन पक्ष था, अग्निवेश नामक दिन था, जिसको 'उवसम' भी कहते हैं, देवानन्दा नामक रात्रि थी, जिसका दूसरा नाम 'निरड' कहा जाता है । उस रात्रि में अर्थ नामक लव था, मुहूर्त नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामक करण था, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त था और स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आया हुआ था ।

३५७. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आगमन और ऊपर गमन अर्थात् आवागमन से वह रात्रि उद्योतमयी हो गई थी ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, उस रात्रि में बहुत से देव और देवियाँ आ-जा रही थीं जिससे वह अत्यधिक कोलाहल एवं शब्दमय हो रही थी ।

महावीर की आयुकाल गणना और अन्तिम उपदेश—

३५८. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर—
तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर,

कुछ अधिक समय बारह वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहकर,
उसके पश्चात् तीस वर्ष से कुछ कम समय तक केवली पर्याय को प्राप्त कर,

इस प्रकार कुल बयालीस वर्ष तक श्रमण पर्याय को प्राप्त कर,

वावत्तारि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता^१, खीणे वेयणिज्जाउय-
नाम-गोत्ते इमीसे ओत्तपिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए
तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसएहिं^२ पावाए मज्झिमाए
हृदियपालगस्स रत्तो रज्जुगसभाए एगे^३ अवीए छट्ठेणं भत्तेणं
अयाणएणं^४ साइणा नखत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि
संपलियंकनिसत्ते-

पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपन्नं अज्झय-
णाइं पावफलविवागाइं,^५

छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पधाणं नाम अज्झयणं
विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए वित्तिक्कंते समुज्जाए छिन्न-
जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्व-
दुक्खप्पहीणे ।

—कप्प० सु० १४६

गोयमस्स केवलं—

३५६. जं रयाणि च णं भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्वदुक्ख-
प्पहीणे तं रयाणि च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स
अंतेवासिस्स नायए पेज्जबंधणे वोच्छिन्ने अणंते अणुत्तरे -जाव-
केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पन्ने ।

—कप्प० सु० १२६

गणरायकयोज्जोओ—

३६०. जं रयाणि च णं समणे -जाव- सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयाणि च
णं नव मल्लईं नव लिच्छईं कासीकोसलगा अट्ठारस वि गण-
रायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु, गते से
भावुज्जोए दव्वुज्जोयं करिस्सामो ।

—कप्प० सु० १२७

कुल बहुत्तर वर्ष का आयु पूर्ण कर वेदनीय, आयु, नाम,
गोत्र कर्मों का क्षय होने के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल का
दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरे का बहुत सा समय व्यतीत होने
पर तथा उस आरे के तीन वर्ष एवं साढ़े आठ मास शेष रहने
पर मध्यम पावा नगरी में हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा में
एकाकी निर्जल षष्ठ भक्त तप के साथ स्वातिनक्षत्र का योग
होते ही प्रद्यूषकाल के समय (प्रातः सूर्योदय होने से पूर्व चार
घटिका रात्रि शेष रहने पर—भोरानभोर) पद्मासन से बैठे
हुए—

कल्याणफलविपाक के पचपन अध्ययन और पापफलविपाक
के पचपन अध्ययन,

अपुट्ठ वागरणा (किसी के द्वारा प्रश्न न किये जाने पर
भी, उनके समाधान करने वाले) के छत्तीस अध्ययनों का विवेचन
करके प्रधान नामक अध्ययन को कहते-कहते कालगत हुए, संसार
को त्याग कर चले गए, जन्म-जरा-मरण के बंधन को
छिन्न-भिन्न करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, सम्पूर्ण कर्मों का अन्त
करने वाले हुए, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके परिनिर्वाण को प्राप्त
हुए ।

गौतम को केवलज्ञान—

३५६. जिस रात्रि में भगवान् महावीर कालगत हुए—यावत्—
सर्व दुःखों को नष्ट कर चुके, उस रात्रि में ज्येष्ठ (प्रथम)
अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम अनगर का भगवान् महावीर के
साथ जो प्रेम बंधन था, वह विच्छिन्न हो गया और अन्त,
अनुत्तर—सर्वोत्तम—यावत्—केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न
हुआ ।

गणराजा कृत उद्योत—

३६०. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—सर्व
दुःखों को नष्ट कर चुके, उस रात्रि में काशी देश के मल्लवीवंशी
नौ और कौशल देश के लिच्छत्री वंशी नौ, इस प्रकार कुल
अठारह गणराजा अमावस्या के दिन आठ प्रहर का प्रीषधीपत्रास
करके वहाँ रहे हुए थे, उन्होंने विचार किया कि वह भावोद्योत
अर्थात् तीर्थकररूपी ज्ञान उद्योत—प्रकाश चला गया है अतः अब
द्रव्योद्योत करेंगे ।

१ सम० स० ७२, सु० ३ ।

२ सम० स० ८६, सु० २ ।

३ ठाणं, अ० १, सु० ७६ ।

४ ठाणं, अ० ६, सु० ५३१ ।

५ सम० स० ५५, सु० ४ ।

निव्वाणाणंतरं भासरासीगहो तप्पभावो य—

३६१. जं रयाणं च णं समणे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयाणं च णं खुड्डाए भासरासी महगहो दो वाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तां संकंते ।

—कप्प० सु० १२८

३६२. जप्पभिइं च णं से खुड्डाए भासरासी महगहो दो वाससह-स्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तां संकंते तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तति ।

—कप्प० सु० १२९

३६३. जया णं से खुड्डाए-जाव-जम्मनक्खत्ताओ वीत्तिक्कंते भविस्सइ तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तिस्सति ।

—कप्प० सु० १३०

निव्वाणाणंतरं संजमदुराराहणा—

३६४. जं रयाणं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए-जाव-सव्व-दुक्खप्पहीणे तं रयाणं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खु-फासं हव्वमागच्छइ,

जा अठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जं पासित्ता बहूहि निग्गंथेहि निग्गंथीहि य भत्ताइं पच्चक्खायाइ ।

से किमाहु भंते !

अज्जप्पभिइ दुराराहए संजमे भविस्सइ ।

—कप्प० सु० १३१-१३२

महावीरस्स समणाइसंपया—

३६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं—

समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामोक्खाओ चोइस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपया होत्था^१

समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था^२ ।

समणस्स भगवओ महावीरस्स संख-सयगपामोक्खाणं समणो-वासणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठि च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयाणं संपया होत्था ।

१ सम० स० १४, सु० ४ ।

निर्वाणानन्तरं भस्मराशि ग्रह और उसका प्रभाव—

३६१. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए— यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, उस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर क्षुद्र क्रूर स्वभाव का दो हजार वर्ष तक रहने वाला भस्मराशि नामक महाग्रह संक्रान्त हुआ था—आया था ।

३६२. दो हजार वर्ष तक रहने वाला यह क्रूर स्वभाव वाला भस्मराशि नामक महाग्रह जब से श्रमण भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर आया, तब से श्रमण (भगवान् महावीर) निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों की पूजा और सत्कार में उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं होती है ।

३६३. जब यह क्षुद्र क्रूर स्वभाव वाला भस्मराशि ग्रह भगवान् के जन्म नक्षत्र से हट जायेगा तब श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों की पूजा सत्कार में उत्तरोत्तर दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि होगी ।

निर्वाणानन्तरं संयम दुराराधना—

३६४. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुए— यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हुए, उस रात्रि में बचाई न जा सके ऐसी कुन्थुवा नामक सूक्ष्म जीवराशि उत्पन्न हो गई, यदि वे जीव स्थिर हों, हलन-चलन न करते हों तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को दृष्टिगोचर नहीं होते,

जब वे जीव चलते-फिरते तब छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को दिखलाई देते थे । इस प्रकार जीवों की उत्पत्ति को देखकर बहुत से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों ने अनशन स्वीकार कर लिया ।

हे भदन्त ! यह क्या सूचित करता है ?

यह अनशन सूचित करता है कि आज से संयम का पालन करना अत्यन्त कठिन होगा ।

महावीर की श्रमण सम्पदा—

३६५. उस काल उस समय में—

श्रमण भगवान् महावीर के इन्द्रभूति आदि चौदह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण-संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर की आर्या चंदना प्रमुख छत्तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर की शंख शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक-संपदा थी ।

२ सम० स० ३६, सु० ३ ।

समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा-रेवईपामोवखाणं समणो-वासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ अट्ठारस य सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था ।

३६६. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्र सया चोहसपुव्वीणं अजिणाणं जिण-संकासाणं सव्वक्खर-सन्निवाईणं जिणो धिव अविहं वागरमाणं उक्कोसिया चोहसपुव्वीणं संपया होत्था ।^१

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया होत्था ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया केवलनाणीणं संमिन्न-वरनाणदंसण-उराणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया होत्था ।^२

३६७. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया वेउव्वीणं अदे-वाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था ।^३

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाड्ज्जेसु दीवेषु दोसु य समुद्देशु सण्णीणं पंचिदियाणं पज्जत्त-गाणं जीवाणं मणोगए भावे जाणमाणं उक्कोसिया विउलमई-संपया होत्था ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेव-मणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ।^४

३६८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाईं -जाव- सव्वडुक्खप्पहीणाईं, चउहस अज्जियासयाइं सिद्धाईं ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोव-वाइयाणं गड्कल्लाणाणं ठिड्कल्लाणाणं आगमेसिभट्ठाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ।^५

—कप्प० सु० १४४

महावीरस्स अणुत्तरदेवलोयगांमणो सिस्सा—

३६९. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्न अणगारा संवच्छर-परियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेषु देवत्ताए उववत्ता ।

—सम० स० ५३, सु० ३

श्रमण भगवान् महावीर की सुलसा, रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका-संपदा थी ।

३६६. श्रमण भगवान् महावीर की जिन नहीं तथापि जिन के समान, सर्वाक्षर सन्निपाती, जिन के समान अवितथ स्पष्टीकरण करने वाले चौदह पूर्व ज्ञाताओं की तीन सौ चतुर्दश पूर्वधरों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर के विशेष प्रकार की लब्धिवाले तेरह सौ अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर के सम्पूर्ण उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त ऐसे सात सौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

३६७. श्रमण भगवान् महावीर की देव नहीं, किन्तु देवों की ऋद्धि को प्राप्त ऐसे सात सौ वैक्रिय लब्धिवाले श्रमणों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर की ढाई द्वीप में और दो समुद्रों में रहने वाले, मनवाले, पर्याप्त पंचेन्द्रिय प्राणियों के मनोभावों को जानने वाले, पाँच सौ विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी श्रमणों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर की देव, मनुष्य और असुरों वाली परिषदाओं में वाद करते हुए अपराजित रहने वाले ऐसे चार सौ वादियों की उत्कृष्ट वादि संपदा थी ।

३६८. श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ अन्तेवासी सिद्ध हुए—यावत्—उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, चौदह सौ आर्यिकार्यों सिद्ध हुई ।

श्रमण भगवान् महावीर के भविष्य में कल्याण प्राप्त करने वाले, वर्तमान में कल्याण अनुभव करने वाले और आगामी समय में भद्र प्राप्त करने वाले ऐसे आठ सौ अनुत्तरोपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

भगवान् महावीर के अनुत्तर देवलोकगामी शिष्य—

३६९. श्रमण भगवान् महावीर के तिरपेन अनगार शिष्य एक वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले होकर महामहिमाशाली पाँच अनुत्तर महाविमानों में देव उत्पन्न हुए ।

१ सम० स० ३००, सु० ४ । ठाणं, अ० ३, उ० ४, सु० २३० । ५ सम० स० ८००, सु० ३ । ठाणं, अ० ८, सु० ६५३ ।

२ सम० स० ७००, सु० २ ।

३ सम० स० ७००, सु० ३ ।

४ सम० स० ४००, सु० ५ । ठाणं, अ० ४, उ० ४, सु० ३८२ ।

महावीरस्स अंतकडभूमि—

३७०. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमि
होत्था, तं जहा—

जुगंतकडभूमि य परियायंतकडभूमि य - जाव - तच्चाओ
पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमि, चउवासपरियाए अंतमकासी ।

—कप्प० सु० १४५

महावीरदिक्खियरायाणो—

३७१. समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुण्डे भवेत्ता
अगराओ अणगारित्तं पच्चाइया, तं जहा—

संगहणी-गाहा—

वीरंगए वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी ।

सेये सिवे उट्ठायेणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥१॥

—ठाणं, अ० ८, सु० ६२१

महावीरतित्थे तित्थयरकम्मबंधया—

३७२. समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णवहि जीवेहि
तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तित्ते, तं जहा—

सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा,
संखेणं, सतएणं, सुलसाए सावियाए, रेवतीए ।

—ठाणं, अ० ९, सु० ६९१

महावीरतित्थे पवयण-णिण्हगा—

३७३. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयण-
णिण्हगा पणत्ता, तं जहा—

वहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया,
तेरासिया, अबद्धिया ।

एएसि णं सत्तहं पवयणणिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था,
तं जहा—

जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोठ्ठा-
माहिले ।

एतेसि णं सत्तहं पवयणणिण्हगाणं सत्त उत्पत्तिणगरा हुत्था,
तं जहा—

संगहणी-गाहा—

सावत्यी उसभपुरं, सेयविया मिहिल उल्लगातीरं ।

परिमंतरंजि दसपुर णिण्हगउत्पत्तिणगराई ॥१॥

—ठाणं, अ० ७, सु० ५८७

॥ इइ महावीर जिग चरियं ॥

भगवान् महावीर की अन्तकृत भूमियाँ—

३७०. श्रमण भगवान् महावीर के समय में दो प्रकार की अन्त-
कृत भूमि थीं । यथा—

१—युगान्तकृत भूमिका २—पर्यायान्तकृत भूमिका—यावत्
—उनसे तीसरे युगपुरुष तक युगान्तकृत भूमिका चलती रही और
चार वर्ष बाद पर्यायान्तकृत भूमि का अंत आया । अर्थात् भगवान्
को केवलज्ञान होने के चार वर्ष बाद उनके शिष्यों का मुक्तिगमन
प्रारम्भ हुआ ।

भगवान् महावीर द्वारा दीक्षित राजा—

३७१. श्रमण भगवान् महावीर से मुण्डित होकर, गृहवास त्याग
कर आठ राजाओं ने अनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार की, यथा—

१ वीरागंद, २ क्षीर (वीर) यश, ३ संजय, ४ एण्यक ।

५ श्वेत, ६ शिव, ७ उदायन, ८ शंख (काशिवर्धन) ॥

भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर कर्मबंधक—

३७२. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकर
नाम गोत्र कर्म का उपाजन किया, यथा—

१—श्रेणिक, २—सुपाश्वं, ३—उदायन, ४—पोटिल
अणगार, ५—दृढायु, ६—शंख, ७—शतक, ८—सुलसा श्राविका,
९—रेवती ।

महावीर-तीर्थ में प्रवचन निह्व—

३७३. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निह्व
हुए, यथा—

१—वहुरत, २—जीवप्रदेशिका, ३—अव्यक्तिका, ४—
सामुच्छेदेका, ५—दो क्रिया, ६—त्रैराशिका, ७—अबद्धिका, ।

इन सात निह्वों के सात धर्माचार्य थे, यथा—

१—जमाली, २—तिष्यगुप्त, ३—आषाढ, ४—अश्वमित्त,
५—गंग, ६—षड्लुक (रोहगुप्त) ७—गोष्ठामाहिल ।

इन सात प्रवचन निह्वों के सात उत्पत्ति नगर थे, यथा—

१—श्रावस्ती, २—ऋषभपुर, ३—श्वेताम्बिका, ४—
मिथिला, ५—उल्लुकातीर, ६—अंतरंजिका, ७—दशपुर ।

॥ महावीर चरित्र समाप्त ॥



७. महापउमचरियं

सेणियस्स नरकगमणं—

३७४. एस णं अज्जो ! सेणिए राया भिभिसारे कालमासे कालं किञ्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए नरए चउरासीइ-वास-सहस्स-ट्ठिइयंसि निरयंसि नेरइयत्ताए उव्वज्जिहित्ति ।

से णं तत्थ नेरइए भविस्सइ काले कालोभासे - जाव - परम-किण्हे वण्णेणं, से णं तत्थ वेयणं वेदिहिइ उज्जलं - जाव - दुरहि-यासं ।

सेणियस्स नरकाओ आगामि-उस्सप्पिणीए कुलकरगिहे जम्मो—

३७५. से णं तओ नरयाओ उव्वट्टेत्ता आगमेस्साए उस्सप्पिणीए इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरियायमूले पुण्डेसु जणवप्पसु सतदुवारे नयरे संमुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुमत्ताए पच्चायाहिइ ।

तए णं सा भद्दा भारिया नवण्हं भासाणं वहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदिषाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्णपंचिदियसरीरं लक्खणवज्जण - जाव - सुरूवं दारगं पयाहिइ ।

३७६. जं रयाणं च णं से दारए पयाहिई तं रयाणं च णं सतदुवारे नगरे सडिभंतरबाहिरए भारग्गसो य कुम्भग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिइ ।

महापउमनामकरणं—

३७७. तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते - जाव - वारसाहे दिवसे अयमेयारूवं गोणं गुण-णिष्णं नामधिज्जं काहिंति—जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि जायंसि समागंसि सयदुवारे नगरे सडिभंतरबाहिरए भारग्गसो य, कुम्भग्गसो य, पउमवासे य, रयणवासे य वासे वुट्ठे, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधिज्जं महापउमे ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधिज्जं काहिंति महापउमे त्ति ।

रज्जाभिसेओ—

३७८. तए ण महापउमं दारगं अम्मापियरो साइरेगं अट्ठवास-जायगं जाणित्ता महया रायाभिसेएणं अभिंसिचिंहित्ति ।

से णं तत्थ राया भविस्सइ महता हिमवंतमहंतमलयमंदरराय-यणओ - जाव - रज्जं पताहेमाणे विहरिस्सइ ।

७. महापद्म चरित

श्रेणिक का नरक गमन—

३७४. हे आर्य ! यह श्रेणिक राजा (विबिसार) मर कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमंतक नरकावास में चौरासी हजार वर्ष की नारकीय स्थिति वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न होगा ।

नरक में वह अत्यन्त कृष्णवर्ण वाला हागा और वहाँ अति तीव्र—यावत्—असह्य वेदना भोगेगा ।

आगामी उत्सर्पिणी में नरक से च्यवकर श्रेणिक का कुलकर गृह में जन्म—

३७५. यह नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी में इसी जम्बु-द्वीप के भरतक्षेत्र में वैताड्य पर्वत के समीप पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर में संमति कुलकर की भद्रा भार्या की कुक्षी में पुत्र रूप में उत्पन्न होगा ।

नौ मास और साढ़े सात अहोरात्र वीतने पर सुकुमार हाय पर, प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर और उत्तम लक्षण—व्यंजनयुक्त—यावत्—सुरूपवान पुत्र पैदा होगा ।

३७६. जिस रात्रि में यह पुत्र रूप पैदा होगा उस रात्रि में शत-द्वार नगर के अन्दर और बाहर भाराग्र तथा कुम्भाग्र प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा होगी ।

महापद्म नामकरण—

३७७. तत्पश्चात् उसके माता-पिता इग्यारवां दिन वीतने पर—यावत्—वारहवें दिन उसका गुणसम्पन्न नाम देंगे । क्योंकि उस बालक के जन्म होने पर शतद्वारनगर के अन्दर और बाहर भार एवं कुम्भ प्रमाण पद्म एवं रत्नों की वर्षा होने से इस पुत्र का महापद्म नाम देंगे ।

इसलिए उस बालक के माता-पिता उसका 'महापद्म' नाम-करण करेंगे ।

राज्याभिषेक—

३७८. तत्पश्चात् महापद्म के माता-पिता महापद्म को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर राज्याभिषेक का महोत्सव करेंगे ।

अनन्तर वह गुणवान राजा महाराजा के समान—यावत्—राज्यशासन करेगा ।

३७६. तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णया कयाइ दो देवा महिड्ढिया - जाव - महेसक्खा सेणाकम्मं काहिति तं जहा—पुण्ण-भद्दए, माणिभद्दए ।

देवसेणे त्ति दुतीयं नाम—

३८०. तए णं सतदुवारे नगरे बह्वे राईसर-तलवर-मांडविय-कोडुम्बिय-इब्भसेट्ठि-सेणावइ-सत्यवाहप्पभियओ अण्णमण्णं सद्दा-वेहिति एवं वइस्संति ।

जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढिया - जाव - महेसक्खा सेणाकम्मं करेत्ति तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य ! तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया ! महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे 'देवसेणे' ।

तए णं तस्स महापउमस्स दोच्चे वि नामधेज्जे भविस्सइ देवसेणे देवसेणे त्ति ।

३८१. तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाइ सेयसंखतल-विमलसण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिइ ।

तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतलविमलसण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणं डुरूढे समाणे सतदुवारं नगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं अभिक्खणं अइज्जाहि य निज्जाहि य ।

विमलवाहणे त्ति नाम—

३८२. तए णं सतदुवारे नगरे बह्वे राईसरतलवर - जाव - अण्णमण्णं सद्दाविति एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेए संखतलविमलसण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पणे तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया ! देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे विमलवाहणे ।

तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे भविस्सइ विमलवाहणे विमलवाहणे ।

महापउमस्स पव्वज्जा—

३८३. तए णं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्जे वसित्ता अम्पापिईहि देवत्तगएहि गुरुमहत्तरएहि अब्भणुणाए समाणे उडुम्मि सरए संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंति-एहि जीयकप्पितेहि देवेहि ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मणुणाहि मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहि धण्णाहि सिवाहि मंगलाहि सस्सिरीआहि वग्गूहि अभिणंदिज्जमाणे अभियुवमाणे य वहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसमादाय मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिइ ।

उवसग्गसहणं—

३८४. तस्स णं भगवंतस्स साइरेगाइं दुवालस वासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिस्संति तं जहा— दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पणे सम्मं सहिस्सइ, खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ, अहियासिस्सइ ।

३७६. उसके राज्यकाल में पूर्णभद्र और महाभद्र नाम के दो देव महर्षिक—यावत्—महान् ऐश्वर्य वाले उनकी सेना का संचालन करेंगे ।

'देवसेन' यह द्वितीय नाम—

३८०. उस समय शतद्वार नगर के बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह आदि (तलवर, मांडलिक, कौटुम्बिक, इभ्यसेठ, सेनापति) परस्पर बातें करेंगे ।

हे देवानुप्रियो ! हमारे महापद्म राजा की सेना का संचालन महर्षिक—यावत्—महान् ऐश्वर्य वाले दो देव (पूर्णभद्र और मणिभद्र) करते हैं, इसलिए हे देवानुप्रियो ! महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' हो ।

उस समय से महापद्म का दूसरा नाम देवसेन भी होगा ।

३८१. कुछ समय पश्चात् उस देवसेन राजा को श्वेत शंख जैसा श्रेष्ठ निर्मल, श्वेत चार दांत वाला हस्तिरत्न प्राप्त होगा ।

तब वह देवसेन राजा उस श्वेत शंखतल जैसे निर्मल चतुरदन्त हस्तिरत्न पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के मध्य भाग में से बार-बार आव-जाव करेगा ।

विमलवाहन नाम—

३८२. तब शतद्वार नगर के अनेक राजेश्वर तलवर—यावत्—परस्पर मिलने पर एक-दूसरे से इस प्रकार वार्तालाप करेंगे— हे देवानुप्रियो ! हमारे देवसेन राजा को शंखतल जैसा निर्मल श्वेत चार दांत वाला हस्तिरत्न प्राप्त हुआ है, इसलिये हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम "विमलवाहन" हो ।

उस समय से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन भी होगा ।

महापद्म की प्रव्रज्या—

३८३. पश्चात् वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष गृहस्थावास में रहेगा और माता-पिता के स्वर्गवासी होने पर गुरुजनों की आज्ञा लेकर शरद ऋतु में स्वयं बोध को प्राप्त होगा तथा अनुत्तर मोक्ष मार्ग में प्रस्थान करेगा । उस समय लोकांतिकदेव इष्ट—यावत्—कल्याणकारी वाणी से उनका अभिनन्दन एवं स्तुति करेंगे । नगर के बाहर स्थित सुभूमिभाग उद्यान में एक देवद्वय वस्त्र ग्रहण करके वह प्रव्रज्या लेगा ।

उपसर्ग-सहन—

३८४. शरीर का व्युत्सर्जन करने वाले, शरीर पर ममत्व न रखने वाले उन भगवान् को साधिक बारह वर्ष तक देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी जो उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन्हें वे समभाव पूर्वक सहन करेंगे, क्षमा एवं सहिष्णुता से सहन करेंगे—यावत्—अकम्पित रहेंगे ।

तए णं से भगवं इरियासमिए भासासमिए - जाव - गुत्तवं-
मयारी अममे अकिचणे छिण्णगंथे निरुवलेवे कंसपाइ व मुक्कतोए
जहा भावणाए - जाव - सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते ।

गाहाओ—कंसे संखे जीवे, गगणे वाए य सारए सलिले ।
पुवखरपत्ते कुम्भे, विहगे खगे य भारंडे ॥१॥
कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सागरमखोभे ।
चंदे सूरे कणगे, वसुधरा चेव सुहुयहुए ॥२॥

पडिबंधविरहो—

३८५. नत्थिय णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे भवइ । से य
पडिबंधे चउट्ठिवहे पणत्ते तं जहा—

अंडएइ वा, पोयएइ वा, उग्गहिएइ वा, पग्गहिएइ वा ।

जं णं जं णं दिसं इच्छइ तं णं तं णं दिसं अपडिबद्धे सुचिभूए
लहुभूए अणप्पगंथे संजमेणं अप्पाणं भावेमाणं विहरिस्सइ तस्स
णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं, अणुत्तरेणं
चरिएणं एवं आलएणं विहारेणं अज्जवे मद्दे लाघवे खंती मुत्ती
गुत्ती सच्च-संजम-तव-गुणसुचरियसोवच्चियफलपरिनिव्वाणमग्गेणं
अप्पाणं भावेमाणस्स ज्ञाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे
निव्वाघाए -जाव - केवलवरनाणवंसणे समुप्पज्जिहिति ।

केवलनाणं दंसणं च—

३८६. तए णं से भगवं अरहा जिणे भविस्सइ केवली सव्वणू
सव्वदरिसी सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स परियागं जाणइ पासइ
सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइ गइं ठिइं चवणं उववार्यं तवकं
मणोमाणसियं भुत्तं कडं परिसेवियं आवोक्कम्मं र्होक्कम्मं अरहा
अरहस्स भागी तं तं कालं मणस-वयस-काइए जोगे वट्टमाणायं
सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

पश्चात् वे विमलवाहन भगवान् ईर्या समिति, भाषा समिति
—यावत्—ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, वे निर्मल निष्परिग्रही
कांस्य पात्र के समान अलिप्त होंगे—यावत्—भावना अध्ययन में
कहे गये भगवान् महावीर के वर्णन के समान कहें, यावत् घृता-
हुति में प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी होंगे । (वे विमल-
वाहन भगवान्)।—

गाथा—१—कांस्यपात्र के समान अलिप्त, २—शंख के
समान निर्मल, ३—जीव के समान अप्रतिहतगति, ४—गगन के
समान आलम्बन रहित, ५—वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी, ६—
शरद्-ऋतु के जल के समान स्वच्छ हृदय वाले, ७—पद्म पत्र के
समान अलिप्त, ८—कूर्म के समान गुप्तेन्द्रिय, ९—पक्षी के समान
एकाकी, १०—गंडा के सींग के समान एकाकी, ११—भारंड
पक्षी के समान अप्रमत्त, १२—हाथी के समान धैर्यवान, १३—
वृषभ के समान बलवान, १४—सिंह के समान दुर्धर्ष, १५—मेरु
के समान निश्चल, १६—समुद्र के समान गम्भीर, १७—चन्द्र के
समान शीतल, १८—सूर्य के समान उज्ज्वल, १९—शुद्ध सुवर्ण
के समान सुन्दर, २०—पृथ्वी के समान सहिष्णु, २१—आहुति
के समान प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञानादि गुणों से तेजस्वी होंगे ।
प्रतिबन्ध अभाव—

३८५. उन विमलवाहन भगवान् का किसी में प्रतिबन्ध (ममत्व)
नहीं होगा । प्रतिबंध चार प्रकार के हैं यथा—

१—अण्डज, २—पोतज, ३—अवग्रहिक, ४—प्रग्रहिक

वे विमलवाहन भगवान् जिस-जिस दिशा में विचरना चाहेंगे
उस-उस दिशा में स्वेच्छापूर्वक शुद्धभाव से, गर्वरहित तथा
सर्वथा ममत्व रहित होकर संयम से आत्मा को पवित्र करते हुए
विहार करेंगे । उन विमलवाहन भगवान् को ज्ञान-दर्शन,
चारित्र्य, वसति और विहार की उत्कृष्ट आराधना करने से
सरलता, मृदुलता, लघुता, क्षमा, निर्लोभता, मन, वचन, काया
की गुप्ति सत्य, संयम, तप, शौच और निर्वाण मार्ग की विवेक-
पूर्वक आराधना करने से शुक्ल ध्यान ध्याते हुए अनन्त, सर्वोत्कृष्ट
वाधा रहित—यावत्—केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न होगा तब वे
भगवान् अर्हन्त एवं जिन होंगे ।

केवलज्ञान और दर्शन—

३८६. वे केवली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी देव, मनुष्यों और असुरों से परि-
पूर्ण लोक के समस्त पर्यायों को जानने और देखने वाले होंगे तथा
सम्पूर्ण लोक के सभी जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन
(मरण) उपपात (जन्म) तक, मानसिक भाव, मुक्त, कृत, सेवित,
प्रकट कर्मों और गुप्त कर्मों को जानेंगे अर्थात् उनसे कोई कार्य
छिपा नहीं रहेगा ।

वे पूज्य भगवान् सम्पूर्ण लोक में उस समय के मन-वचन-
कायिक योग में वर्तमान सर्व जीवों के सर्व भावों को जानते और
देखते हुए विचरण करेंगे ।

तए णं से भगवं तेणं अणुत्तरेणं केवलवरनाण-वंतणेणं सदेव-
मणुआनुरलीगं आभसमिच्च तनणणं निग्गंथाणं [३८४ तमसूत्रा-
दारभ्य ३८७ तमसूत्रगत'पंच'पदपर्यन्तपाठसन्दर्भस्थान वाचनान्तरे
इत्थं पाठ उपलभ्यते—

“से ण भगवं जं चं व दिवसं मु डे भवित्ता -जाव- पव्वयाही
तं चेव दिवसं सयमेतारुवभाभगहं अभिगिण्हिहिति—जे केइ
उवसग्गा उप्पज्जति त जहा-दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्ख
जाणिया वा त सव्वे सम्मं सहेज्जा, खमेज्जा, तित्तिक्खज्जा,
अहियासिज्जा

तए णं से भगवं अणगारे भविस्सइ इरियासमिए भासासमिए
एवं जहा- वद्धमाणसामी तं चेव निरवसेसं - जाव - अव्वावार-
विउसजोगजुत्ते ।

३८७. तस्स ण भगवत्तस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसहि
संवच्छरोहं विइक्कतोहं तेरसहि य पक्खोहं तेरसमस्स
णं संवच्छरस्स अंतरा वद्धमाणस्स अणुत्तरेणं नाणेणं जहा भावणाए
केवलवरनाणदंसणं समुप्पज्जिहिति जिणे भविस्सइ केवली सव्वण्णु
सव्वदरिती सणेरइए - जाव - पच'] पंच महव्वयाइं सभावणाइं
छच्च जीवनिकायधम्मं देसेमाणे विहरिस्सइ ।

महावीरस्स महापउमस्स य देसणासामण्ण—

३८८. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं, निग्गंथाणं एगे
आरंभठाणे पणत्ते,^१

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं एगं आरंभ-
ठाणं पणवेहिइ ।

३८९. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं डुविहे
बंधणे पणत्ते तं जहा - पेज्जबंधणे, दोसबंधणे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं डुविहं
बंधणं पणवेहिइ तं जहा - पेज्जबंधणं च, दोसबंधणं च ।

३९०. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं तओ
दंडा पणत्ता तं जहा - मणदंडे - जाव - कायदंडे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं तओ दंडे
पणवेहिइ तं जहा - मणदंडं - जाव - कायदंडं ।

३९१. से जहा णामए एएणं अभिल्लवेणं चत्तारि कसाया पणत्ता
तं जहा -

कोहकसाए - जाव - लोहकसाए ।

उस समय व भगवान् केवल ज्ञान, केवल दयान से समस्त
लोक को जानकर श्रमण निर्ग्रन्थों के पञ्चास भावना सहित पांच
महाव्रतों तथा छजीवनिकाय धर्म का उपदेश देगे [वाचनान्तर
पाठ—सूत्र ३८४ से ३८७ तक]

व भगवान् जिस दिन मुष्टिउत होकर—यावत्—प्रव्रज्या
स्वीकार करेंगे, उसी दिन स्वयंभू इस प्रकार का अभिव्रह प्रहण
करेंगे कि—आ कोई भा देव मनुष्य और शिष्य सन्ध्यो उपसर्ग
उत्पन्न होंगे उन सबका व सन्ध्यहोति से समभाव पूर्वक,
सहिष्णुता से पूर्णरूपेण सहन करेंगे ।

पश्चात् वे भगवान् अनगर हाकर ईयांसनिति, भापासनिति,
का पालन करेंगे, इस प्रकार उनका नभ्युगं जीवन वर्तमान
महावीर स्वामी की तरह—यावत्—

३८७. तब उन भगवान् को इस प्रकार विहारचर्या करते हुए
वारह वर्ष, तरहवा पञ्च (साडे छ मास) व्यतीत होने पर तेरहवें
वर्ष के मध्य वर्तते हुए अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान-केवलदर्शन
उत्पन्न होगा । जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी नैरयिक सहित
समस्त जीवाजीव को जानने वाले होंगे, जैसा भावनाध्ययन में
वर्णन कहा, वैसा जानना ।

महावीर और महापद्म का देशता में साम्य—

३८८. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने निर्ग्रन्थों का एक आरम्भ
स्थान (प्रमाद) कहा है;

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का एक
आरम्भ स्थान कहेंगे ।

३८९. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के दो बन्धन
कहे हैं;

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के दो
बन्धन कहेंगे यथा—राग बन्धन और द्वेष बन्धन ।

३९०. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन दण्ड
कहे हैं,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के तीन
दण्ड कहेंगे यथा—१—मनदण्ड, २—वचनदण्ड, ३—कायदण्ड ।

३९१. इसी प्रकार उनके नामोल्लेख पूर्वक जैसे मैंने चार कषाय
कहे यथा—

क्रोधकषाय—यावत्—लोभकषाय ।

३६२. पंच कामगुणे पणत्ते तं जहा - सद्दे - जाव - फासे ।

३६३. छज्जीवनिकाया पणत्ता तं जहा - पुढविकाइया - जाव - तसकाइया,

एवामेव पुढविकाइया - जाव - तसकाइया ।

३६४. से जहा णामए एएणं अभिलावेणं सत्त भयट्ठाणा पणत्ता तं जहा -

इहलोगभए - जाव - असिलोगभए,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निर्गंथाणं सत्त भयट्ठाणा पणवेहिइ ।

३६५. एवं अट्ठ मयट्ठाणे नव वंभचेरगुत्तीओ दसविहे समण-धम्मे, एवं - जाव - तेत्तीसनासातणाउ त्ति ।^१

३६६. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निर्गंथाणं नग्गभावे, मुण्डभावे, अण्हाणए, अदंतवणे, अच्छत्तए, अणुवाहणए, भूमिसेज्जा, फलगसेज्जा, कट्टुसेज्जा, केसलोए, वंभचेरवासे, परघरपवेसे - जाव - लद्धावलद्धवित्तीओ पणत्ताओ,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निर्गंथाणं नग्गभावं - जाव - लद्धावलद्धवित्तीओ पणवेहिइ ।

३६७. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निर्गंथाणं आधाकम्मिएइ वा, उट्ठेसिएइ वा, मोसज्जाएइ वा, अज्जोयरएइ वा, पूइए, कीए, पामिच्छे. अच्छेज्जे, अणिसिट्ठे, अभिहडे वा, कंसारभत्तेइ वा, दुग्गिभक्खभत्तेइ वा, गिलाणभत्तेइ वा, वहलिया-भत्तेइ वा, पाहुणभत्तेइ वा, मूलभोयणेइ वा, कंदभोयणेइ वा, फलभोयणेइ वा, वीयभोयणेइ वा, हरियभोयणेइ वा पडिसिट्ठे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निर्गंथाणं आधाकम्मियं वा - जाव - हरियभोयणं वा पडिसेहिस्सइ ।

३६८. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं पंचमहव्वइए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पणत्ते,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निर्गंथाणं पंचम-हव्वइयं - जाव - अचेलगं धम्मं पणवेहिइ ।

३६९. से जहा णामए अज्जो ! मए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए दुवालसविहे सावगधम्मे पणत्ते ।

एवामेव महापउमे वि अरहा पंचाणुव्वइयं - जाव - सावग-धम्मं पणवेस्सइ ।

३६२. पाँच कामगुण कहे, यथा शब्द—यावत्—स्पर्श ।

३६३. छह जीवनिकाय कहे, यथा—पृथ्वीकाय—यावत्—त्रस-काय ।

उसी प्रकार पृथ्वीकाय—यावत्—त्रसकाय ।

३६४. इसी प्रकार उनके नामोल्लेख पूर्वक सात भय स्थान कहे यथा—

इहलोक—यावत्—परलोक भय ।

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमणों के सात भय स्थान कहेंगे ।

३६५. इसी प्रकार आठ मद स्थान, नो ब्रह्मचर्यं गुप्ति, दश श्रमण धर्म—यावत्—तेतीस आशातना पर्यन्त कहें ।

३६६. हे आर्यों ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का नग्न भाव, मुण्ड भाव, अस्नान, अदन्तधावन, छत्ररहित रहना, जूते न पहनना, वाहन का उपयोग न करना, भू-शय्या, फलक शय्या, काठ शय्या, केशलोच, ब्रह्मचर्यं पालन गृहस्थ के घर से आहार आदि लाना, मान अपमान में समान रहना आदि बतलाया है ।

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों के नग्नभाव—यावत् मान अपमान में समान भाव की प्ररूपणा करेंगे ।

३६७. हे आर्यों ! मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को आघाकर्म, औद्देशिक, मिश्रजात, अद्यवपूर्वक, पूतिक, क्रोत, अपमित्यक, अच्छेद्य, अनिसृष्ट अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुग्गिभक्त, ग्लान भक्त, वहलिका भक्त, प्राघूर्णक, मूल भोजन, कन्द भोजन, फल भोजन, हरित भोजन लेने का निषेध किया है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को आघा कर्म—यावत्—हरित भोजन लेने का निषेध करेंगे ।

३६८. हे आर्यों ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत अचेलक धर्म कहा है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रतिक्रमण सहित—यावत्—अचेलक धर्म कहेंगे ।

३६९. हे आर्यों ! जिस प्रकार मैंने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप वारह प्रकार का श्रावक धर्म कहा है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी पाँच अणुव्रत—यावत्—श्रावक धर्म कहेंगे ।

४००. से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं सेज्जा-
यरपिडेइ वा, रायपिडेइ वा पडिसिद्धे,

एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं निग्गंथाणं सेज्जायर-
पिडेइ वा रायपिडेइ वा पडिसेहिस्सइ ।

संपत्तिसामणं—

४०१. से जहा णामए अज्जो ! मम नव गणा, एगारस गणधरा ।

एवामेव महापउमस्स वि अरहओ नव गणा, एगारस गण-
धरा भविस्संति ।

आयुसो सामणं—

४०२. से जहा णामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्जो
वसित्ता मुण्डे भवित्ता - जाव - पव्वइए- दुवालस संवच्छराइं तेरस
पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहिं उगगाइं तीसं
वासाइ केवलपरियागं पाउणित्ता, वायालीसं वासाइं सामण-
परियागं पाउणित्ता, वावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता,
सिज्जिस्सं - जाव - सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं,

एवामेव महापउमे वि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्जो
वसित्ता - जाव - पव्वहिइ, दुवालस संवच्छराइं - जाव - वावत्त-
रिवासाइ सव्वाउयं पालइत्ता सिज्जिहिइ - जाव - सव्वदुक्खाणमंतं
काहिइ

गाहा—जं सीलसमायारो, अरहा तित्थंकरो महावीरो ।

तस्सीलसमायारो, होइ उ अरहा महापउमे ॥१॥

—ठाणं अ० ९, सु० ६९३

अरहया महापउमेण अट्ठरायाणो दिक्खिया भविस्संति—

४०३. अरहा णं महापउमे अट्ठ रायाणो मुण्डा भवित्ता अगाराओ
अणगारितं पव्वावेस्सति, तं जहा -

१ पउमं, २ पउमगुम्मं, ३ णलिनं ४ णलिनगुम्मं, ५ पउमद्धयं,
६ धणुद्धयं, ७ कणगरहं, ८ भरहं ।

—ठाणं अ० ९, सु० ६२५

॥ इइ महापउम जिग चरियं ॥

४०० हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर-
पिंड और राजपिंड लेने का निषेध किया है,

उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त भी श्रमण निर्ग्रन्थों को शय्यातर-
पिंड और राजपिंड लेने का निषेध करेंगे ।

संपत्तिसाम्य—

४०१. हे आर्यो ! जिस प्रकार मेरे नौ गण और इग्यारह गणधर

हैं, उसी प्रकार महापद्म अर्हन्त के भी नौ गण और इग्यारह
गणधर होंगे ।

आयुष्य साम्य—

४०२. हे आर्यो ! जिस प्रकार मैं तीस वर्ष गृहस्थ पयांय में
रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुआ, वारह वर्ष और तेरह
पक्ष न्यून तीस वर्ष का केवली पर्याय, विवालीस वर्ष का श्रमण
पर्याय और बहत्तर वर्ष का पूर्णायु भोगकर, सिद्ध होऊंगा—
यावत्—सब दुःखों का अन्त कहेगा, उसी प्रकार महापद्म
अर्हन्त भी तीस वर्ष गृहस्थावास में रहकर—यावत्—सब दुःख
का अन्त करेंगे ।

गाथा—जो शील समाचार (कार्यकलाप) अर्हन्त तीर्थंकर
महावीर का था वह शील समाचार महापद्म अर्हन्त का होगा ।

अर्हन्त महापद्म आठ राजाओं को दीक्षा देंगे—

४०३. महापद्म अर्हन्त आठ राजाओं को मुण्डित करके तथा
गृहस्थ का त्याग करा करके अणगार प्रव्रज्या देंगे । यथा—

१—पद्म, २—पद्मगुल्म, ३—नलिन, ४—नलिनगुल्म,
५—पद्मध्वज, ६—धनुध्वज, ७—कनकरथ, ८—भरत ।

॥ महापद्म जिन-चरित्र समाप्त ॥



द. तित्थयर-साणमणं

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु अरहंताइवंससमुप्पत्ती—

४०४. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंतवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४०५. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टिवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४०६. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।।

—ठाणं० अ० २, उ० ३, सु० ८६

४०७. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उत्सप्पिणीए तओ वंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे ।

४०८. एवं जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे ।

—ठाणं० अ० ३, उ० १, सु० १४३

अड्ढाइज्जेसु दीवेसु अरहंताईणमुप्पत्ती—

४०९. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४१०. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४११. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

४१२. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

—ठाणं० अ० २, उ० ३, सु० ८६

४१३. जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उत्सप्पिणीए तओ उत्तमपरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा ।

४१४. एवं जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे ।

—ठाणं० अ० ३, उ० १, सु० १४३

द. तीर्थकर-सामान्य

अढाई द्वीपों में अरहंतादिवंश-समुत्पत्ति—

४०४. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो अर्हंत वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४०५. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो चक्रवर्ती वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४०६. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो दशर वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४०७. जम्बूद्वीप वर्ती भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में यह तीन वंश उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे । यथा—अर्हंतवंश, चक्रवर्ती-वंश और दशार्ह-वंश ।

४०८. इसी तरह—यावत्—पुष्करवर द्वीपार्ध, पूर्वार्ध एवं पश्चिमार्ध के लिये भी समझना चाहिए ।

अढाई द्वीपों में अरहंतादि की उत्पत्ति—

४०९. जम्बूद्वीप के भरत ऐरावत वर्ण में एक समय एक युग में दो अर्हंत उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

४१०. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४११. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो बलदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४१२. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक समय एक युग में दो वासुदेव उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे ।

४१३. जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । वे इस प्रकार—अर्हंत, चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव ।

४१४. इसी प्रकार—यावत्—पुष्करवर द्वीपार्ध के पश्चिमार्ध के बारे में भी समझना चाहिये ।

जंबुद्वीवे एरवए भावो तित्थयरा—

४२३. जंबुद्वीवे णं दीवे एरवएवासे आगमिस्साए उस्सपिणीए चउवीसं तित्थकरा भविस्संति तं जहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे ।
 धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥१॥
 सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
 सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥२॥
 सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
 सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥३॥
 सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
 सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ॥४॥
 सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले ।
 अरहा अणंतविजए, आगमिस्साण होक्खइ ॥५॥
 विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महावले ।
 देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ॥६॥
 एए वुत्ता चउवीसं, एरवयम्मि केवली ।
 आगमिस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥७॥

—सम० सु० १५८

जंबुद्वीवे तित्थयरा—

४२४. जंबुद्वीवे णं भन्ते ! दीवे जहणपए वा उक्कोसपए वा केवइया तित्थयरा सव्वग्गेणं पणत्ता ?

गोयमा ! जहणपए चत्तारि, उक्कोसए चोत्तीसं तित्थयरा सव्वग्गेणं पणत्ता ।

—जंबु० व० ७, सु० १७३

जंबुद्वीवतित्थयराणं उक्किट्ठा सखा—

४२५. जंबुद्वीवे णं दीवे उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थकरा समुप्प-ज्जंति ।

—सम० स० ३४, सु० ४

जंबुद्वीवे भारहे वासे तित्थयराण नामाइ—

४२६. जंबुद्वीवे णं भन्ते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसपिणीए कति तित्थयरा पणत्ता ?

गोयमा ! चउवीस तित्थयरा पणत्ता, तं जहा—

उत्तम-अजिय-सम्मभव-अभिनंदण-सुमति-मुप्पम-सुपास-सत्ति-पुप्फदंत-सोयल-सेज्जंत-वासुपुज्ज-विमल-अणंत-धम्म-सत्ति-कुन्धु-अर-मल्लि-मुणिमुव्वय-नमि-नेमि-पास-वद्धमाणा ।

—भग० स० २०, उ० ८, सु० ७

—सम० स० २४, सु० १

जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष के भावी तीर्थकर—

४२३. जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थकर होंगे, यथा—

१—सुमंगल, २—सिद्धार्थ, ३—निर्वाण, ४—महायश,
 ५—धर्मध्वज, ६—श्रीचन्द्र, ७—पुष्पकेतु, ८—महाचन्द्र, ९—
 श्रुतसागर, १०—पुण्यघोष, ११—महाघोष, १२—सत्यसेन,
 १३—शूरसेन, १४—महासेन, १५—सर्वानन्द, १६—देवपुत्र,
 १७—सुपाशर्व, १८—सुव्रत, १९—सुकोशल, २०—अनन्तविजय,
 २१—विमल, २२—उत्तर, २३—महावल, २४—देवानन्द ।

जम्बूद्वीप में तीर्थकर—

४२४. हे भदन्त ! जम्बूद्वीप में जघन्यतः और उत्कृष्टतः कुल मिलाकर कितने तीर्थकर होते हैं ।

हे गौतम ! सब मिलाकर जघन्य चार और उत्कृष्ट चौतीस तीर्थकर होते हैं ।

जम्बूद्वीप के तीर्थकरों की उत्कृष्ट संख्या—

४२५. जम्बूद्वीप में उत्कृष्ट चौतीस तीर्थकर उत्पन्न होते हैं ।

जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में तीर्थकरों के नाम—

४२६. हे भदन्त ! जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी में कितने तीर्थकर कहे हैं ?

हे गौतम ! चौबीस तीर्थकर होते हैं, यथा—

१—ऋषभ, २—अजित, ३—संभव, ४—अभिनन्दन,
 ५—सुमति, ६—पद्मप्रभ, ७—सुपाशर्व, ८—चंद्रप्रभ, ९—
 सुविधि, १०—शीतल, ११, श्रेयांस, १२—वामुपुज्य, १३—
 विमल, १४—अनंत, १५—धर्म, १६—शांती, १७—कुंघु,
 १८—अर, १९—मल्लि, २०—मुनिसुव्रत, २१—नमि, २२—
 नेमि, २३—पाशर्व, २४—वर्धमान ।

पियरो—

४२७. जंबुद्वीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं
तित्थगराणं पियरो होत्था, तं जहा—

संगहणीगाहाओ—

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संघरे इ य ।
मेहे धरे पइठ्ठे य, महसेणे य खत्तिए ॥१॥
सुग्गीवे वडरहे विण्हू, वसुपुज्जे य खत्तिए ।
कयवम्मा सीहसेणे य भाणू विस्ससेणे इ य ॥२॥
सूरे सुदंसणे कुम्भे, सुमित्तविजए समुद्विजये य ।
राया य आससेणे य, सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए ॥३॥
उदित्तोदित्तकुलवंसा, विमुद्धवंसा गुणेहि उव्वेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, एए पियरो जिणवराणं ॥४॥

मायरो—

४२८. जंबुद्वीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं
तित्थगराणं मायरो होत्था, तं जहा—

संगहणीगाहाओ—

मरुदेवा विजयसेणा, सिद्धत्था मंगला सुसीमा य ।
पुहवी लक्खण रामा, नंदा विण्हू जया सामा ॥१॥
सुजसा सुव्वय अइरा, सिरिया देवी पमावई ।
पउमा वप्पा सिवा य, वामा तिसला देवी य जिणमाया ॥२॥

पुव्वभव—

४२९. एएसि चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पुव्वभविया णाम-
धेज्जा होत्था, तं जहा—

संगहणी गाहाओ—

पढमेत्थ वडरणाभे, विमले तह विमलवाहणे च्वेव ।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्ते तह धम्ममित्ते य ॥१॥
सुन्दरवाहू तह दीहवाहू जुगवाहू लट्ठवाहू य ।
द्विण्णे य इवदत्ते, सुन्दर माहिदरे च्वेव ॥२॥
सीहरहे मेहरहे, रूपी य सुदंसणे य बोद्धव्वे ।
तत्तो य नंदणे खल्लु, सीहगिरी च्वेव वीसइमे ॥३॥
अदीणसत्तु संखे, सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे ।
ओसप्पिणीए ए ए, तित्थकराणं तु पुव्वभवा ॥४॥

—सम० सु० १५७

पुव्वभवसुयणाणं—

४३०. जंबुद्वीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थकरा
पुव्वभवे एवकारसंगिणो होत्था, तं जहा—

पिता—

४२७. जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी के तीर्थकरों के पिता उभ प्रकार थे—

संग्रहणी गाथा—

१—नाभि, २—जित्तवाहु, ३—त्रितागि, ४—मंघर, ५—
मेघ, ६—धर, ७—प्रविण्ड, ८—महासंन, ९—सुधीर, १०—
दडरथ, ११—विण्णु, १२—वसुपुज्ज, १३—कयवमां, १४—
सिहसेन, १५—भाणू, १६—विस्ससेण, १७—सूर, १८—
सुदर्शन, १९—कुम्भ, २०—सुमिध, २१—विजय, २२—समुद-
विजय, २३—अश्वसेन, २४—विद्यायं ।

तीर्थ प्रयत्नक जिनघरों के पिता सभी उक्त लेखनी कुल
एवं गुणोपेत विगुह्य वंश वाले थे ।

माता—

४२८. जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में वर्तमान अवसर्पिणी
में होने वाले तीर्थकरों की माता के नाम इस प्रकार थे—

संग्रहणी गाथा—

१—मरुदेवी, २—विजया, ३—सेणा, ४—सिद्धायां,
५—मंगला, ६—सुसीमा, ७—पुव्वी, ८—लक्ष्मणा, ९—
रामा, १०—नन्दा, ११—विण्णु, १२—जया, १३—श्यामा,
१४—सुवशा, १५—सुव्रता, १६—अचिरा, १७—श्री, १८—
देवी, १९—प्रभावती, २०—पद्मा, २१—वप्रा, २२—सिवा,
२३—वामा, २४—त्रिशला ।

पूर्वभव—

४२९. इन चौबीस तीर्थकरों के पूर्वभव में ये चौबीस नाम थे
(इन चौबीस तीर्थकरों के पूर्वभव में क्रमशः चौबीस नाम इस
प्रकार थे)।

१—वज्रनाभ, २—विमल, ३—विमलवाहन, ४—धर्मसिंह,
५—सुमित्र, ६—धर्ममित्र, ७—सुन्दरवाहु, ८—दीर्घवाहु, ९—
युगवाहु, १०—लण्डवाहु, ११—दिन्न, १२—इन्द्रदत्त, १३—
सुन्दर, १४—माहेन्द्र, १५—सिहरथ, १६—मेघरथ, १७—
रूपी, १८—सुदर्शन, १९—नन्दन, २०—सिंहगिरि, २१—
अदीनशत्रु, २२—शंख, २३—सुदर्शन, २४—नन्दन ।

पूर्वभव में श्रुतज्ञान—

४३०. जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थकर पूर्वभव में
इग्यारह अंग के ज्ञाता थे, यथा—

—अजिए संभवे अग्निणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुन्धू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य ।

उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्या ।

पुव्वभवा—

४३१. जंबुद्वीचे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थगरा पुव्वभवे मंडलियरायाणो होत्या, तं जहा—अजिए संभवे अग्निणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुन्धू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य ।

उसभे णं अरहा कोसलिए चक्कवट्टी होत्या ।

—सम० स० २३, सु० ३४

तित्थयरानं वण्णे—

४३२. दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पणत्ता, तं जहा—मुणिसुव्वए चव, अरिट्ठणेमी चव ।

दो तित्थगरा पियंगुसामा वण्णेणं पणत्ता, तं जहा—मल्ली चव, पासे चव ।

दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेणं पणत्ता, तं जहा—पउमप्पहे चव, वासुपुज्जे चव ।

दो तित्थगरा चंदगोरा वण्णेणं पणत्ता, तं जहा—चंदप्पभे चव, पुक्कदंते चव ।^१

—ठाणं० अ० २, उ० ४, सु० १०८

—ज्ञाता० अ० ८

उच्चत्तां—

४३३. अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्या ।

—सम० स० ४५०, सु० १

संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्या ।

—सम० स० ४००, सु० १

अग्निणंदणे णं अरहा अद्धट्ठाइं धणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्या ।

—सम० स० ३५०, सु० २

सुमईं णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्या ।

—सम० स० ३००, सु० १

—अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपाश्वरं, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्धू, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान ।

कौशलिक अर्हत ऋषभदेव चौदह पूर्व के ज्ञाता थे ।

पूर्वभव—

४३१. जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में मांडलिक राजा थे, यथा—

अजित; संभव—यावत्—वर्धमान ।

अरहत ऋषभदेव कौशलिक पूर्वभवमें चक्रवर्ती थे ।

तीर्थंकरों का वर्ण—

४३२. दो तीर्थंकर नील-कमल के समान वर्ण वाले थे यथा—

मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि ।

दो तीर्थंकर प्रियंगु (वृक्ष-विशेष) के समान वर्ण वाले थे, यथा—मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ ।

दो तीर्थंकर पद्म के समान गौर (लाल) वर्ण वाले थे, यथा—पद्मप्रभ और वासुपूज्य ।

दो तीर्थंकर चन्द्र के समान गौर वर्ण—शुक्ल वर्ण वाले थे, यथा—चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) ।

उच्चत्व (ऊँचाई)—

४३३. अजित अरहन्त साढ़े चार सौ धनुष ऊँचे थे ।

अरहन्त संभवनाथ चार सौ धनुष ऊँचे थे ।

अरहन्त अभिनन्दन साढ़े चार सौ धनुष ऊँचे थे ।

अरहन्त सुमतिनाथ तीन सौ धनुष ऊँचे थे ।

१ पउम-वासुपुज्जरत्ता, तसि-सुविहि तेज नेमि-मुणि काला । मल्ली पासो नीला, कणयनिहा चोलवेस जिणा ॥१॥

पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं
होत्था ।

—सम० स० २५०, सु० १

सुपासे णं अरहा दो धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० २००, सु० १

चंदप्पभे णं अरहा दिचड्ढं धणुसय उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० १५०, सु० १

सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं
होत्था ।

—सम० स० १००, सु० ३

सीयले णं अरहा नउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ६०, सु० १

सेज्जंसे णं अरहा असोइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ८०, सु० १

वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ७०, सु० ३

विमले णं अरहा सट्ठिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ६०, सु० ३

अणंते णं अरहा पण्णासं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ५०, सु० २

धम्मि णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ४५, सु० ५

संती णं अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ४०, सु० ३

कुन्धू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ३५, सु० २

अरे णं अरहा तीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ३०, सु० ४

मल्ली णं अरहा पणवीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० २५, सु० २

मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० २०, सु० २

णमी णं अरहा पण्णरस धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० १५, सु० २

णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढ उच्चत्तेणं, होत्था ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

अरहन्त पद्मप्रभ डाई सो धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त सुपासनाय दो सो धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त चन्द्रप्रभ डेइ सो धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त सुविधिनाय (पुष्पदन्त) एठ सो धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त सीतलनाय को ऊंचाई नये धनुष को यो ।

अरहन्त श्रेयांसनाय अस्सी धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त वासुपुज्य सत्तर धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त विमलनाय साठ धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त अनंतनाय पचास धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त धर्मनाय पैंतालीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त शांतिनाय चालीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त कुन्धुनाय पैंतीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त अरनाय तीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त मल्लिनाय पच्चीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त मुनिसुव्वत वीस धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त नमिनाय पन्द्रह धनुष ऊंचे ये ।

अरहन्त अरिष्टनेमी दस धनुष ऊंचे ये ।

पासे णं अरहा पुरिसावाणीए नव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं
त्या ।

—सम० स० ६, सु० ४

समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्या ।^१

—सम० स० ७, सु० ३

आगरवासो—

४३४. उसभे णं अरहा कोसल्लिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगार-
त्समज्जे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ८३, सु० १

अजिते णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्जे
सित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७१, सु० ३

संभवे णं अरहा एगुणसद्धिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्जे
सित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ५६, सु० २

सीत्तले णं अरहा पणत्तरिं पुव्वसहस्साइं अगारमज्जे वसित्ता
मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७५, सु० २

संती णं अरहा पणत्तरिं वाससहस्साइं अगारवासमज्जे
सित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ७५, सु० ३

अरिद्धनेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्जे
सित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ।

—सम० स० ३००, सु० २

पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्जे वसित्ता [मुण्डे
भवित्ता ?] अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ३०, सु० ६

समणं भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्जे वसित्ता
मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ३०, सु० ७

कुमारकालो—

४३५. पांच तित्थगरा कुमारवासमज्जे वसित्ता मुण्डा भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं जहा—वासुपुज्जे, मल्ली,
अरिद्धणेमी, पासे, वीरे ॥

अरहन्त पाश्वर्नाथ नौ हाथ ऊँचे थे ।

श्रमण भगवान महावीर सात हाथ ऊँचे थे ।

आगारवास—

४३४. अरहन्त कौशलिक ऋषभदेव तियासी लाख पूर्व गृहवास
में रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त अजितनाथ इकहत्तर लाख पूर्व गृहवास में रहकर
मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त सम्भवनाथ उनसठ हजार पूर्व गृहवास में रहकर
मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त शीतलनाथ पचहत्तर हजार पूर्व गृहवास में रहकर
मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त शांतिनाथ पचहत्तर हजार वर्ष गृहवास में रहकर
मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त अरिष्टनेमिनाथ तीन सौ वर्ष कुमारवास में
रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

अरहन्त पाश्वर्नाथ तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित
हुए ।

श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित
हुए ।

कुमारकाल—

४३५. पांच तीर्थंकर कुमारवास में मुण्डित—यावत् प्रव्रजित
हुए, तथा—१. वासुपूज्य, २. मल्ली, ३. अरिष्टनेमी ४. पाश्व-
र्नाथ, ५. महावीर ।

अगारवासकालो—

४३६. एगुणवीसं तित्थयरा अगारवासमज्जे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइआ ।^१

—सम० स० १६, सु० ५

सव्वायू—

४३७. उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्व-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—सम० स० ८४, सु० २

चंदप्पभे णं अरहा दस-पुव्व-सत्तसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

सेज्जंसे णं अरहा चउरासीइं !वास-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—सम० स० ८४, सु० ३

आगारवास काल—

४३६. उत्तीस तीर्थकर गृहवास का त्यागकर मुण्डित हुए अर्थात्—उन्होंने राज्यभोगकर अनगार प्रव्रज्या स्वीकार की ।

सर्वायु—

४३७. अरहंत कौशलिक ऋषभदेव चौरासी लाख पूर्व का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

चन्द्रप्रभ अरहन्त दस लाख पूर्व का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—मुक्त हुए ।

अरहन्त श्रेयांसनाथ चौरासी लाख वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

१ तित्थयराणं कुमारत्तं रज्जं च :

गाहाओ : १ उसमस्स कुमारत्तं, पुव्वाणं वीसई सयसहस्सा । तेवट्ठी रज्जंमी, अणुपालेऊण णिक्खंतो ॥१॥

२ अजिअस्स कुमारत्तं, अट्ठारस पुव्वसयसहस्साइं । तेवण्णं रज्जंमी, पुव्वंगं चैव बोद्धव्वं ॥२॥

पण्णरस सयसहस्सा, कुमारवासो अ संभवजिणस्स ३ । चोआलीसं रज्जे, चउरंगं चैव बोद्धव्वं ॥३॥

अद्धतेरसलक्खा, पुव्वाणंअभिणदणे ४ कुमारत्तं । छत्तीसा अद्धं विअ, अट्ठंगा चैव रज्जंमि ॥४॥

५ सुमइस्स कुमारत्तं, हवंति दस पुव्वसयसहस्साइं । अउणातीसं रज्जे, बारस अंगा य बोद्धव्वा ॥५॥

६ पउमस्स कुमारत्तं, पुव्वाणंअट्ठमा सयसहस्सा । अद्धं च एगवीसा, सोलस अंगा य रज्जंमि ॥६॥

पुव्वसय सहस्साइं, पंच सुपासे ७ कुमारवासो उ । चउदस पुण रज्जंमी, वीसं अंगा य बोद्धव्वा ॥७॥

अड्ढाइज्जा लक्खा, कुमारवासो ससिप्पहे ८ होइ । अद्धं छच्चिय रज्जे, चउवीसंगा य बोद्धव्वा ॥८॥

पण्णं पुव्वसहस्सा, कुमारवासो उ पुत्तादंतस्स ९ तावइअं रज्जंमी, अट्ठावीसं च पुव्वंगा ॥९॥

पणवीससहस्साइं, पुव्वाणं सीअले १० कुमारत्तं । तावइअं परिआओ, पण्णासं चैव रज्जंमि ॥१०॥

वासाण कुमारत्तं, इगवीसं लक्ख हुन्ति सिज्जंसे ११ । तावइअं परिआओ, वायालीसं च रज्जंमि ॥११॥

गिहवासे अट्ठारस, वासाणं सयसहस्स निअमेणं । चउपण्ण सयसहस्सा, परिआओ होइ वसुपुज्जे १२ ॥१२॥

पण्णरस सयसहस्सा कुमारवासो अ तीसई रज्जे । पण्णरस सयसहस्सा, परिआओ होइ विमलस्स १३ ॥१३॥

अद्धट्ठमलक्खाइं, वासाणमणतई १४ कुमारत्ते । तावइअं परिआओ, रज्जंजमी हुन्ति पण्णरस ॥१४॥

१५ धम्मस्स कुमारत्तं, वासाणड्ढाइआइं लक्खाइं । तावइअं परिआओ, रज्जे पुण हुन्ति पंचेव ॥१५॥

१६ संतिस्स कुमारत्तं, मंडलिअ चविक परिआअ चउसु पि । पत्तेअं पत्तं अं, वाससहस्साइं पणवीसं ॥१६॥

एमेव य कुन्नुस्स १७ वि, चउसु वि ठाणेसु हुन्ति पत्तेअं । तेवीस सहस्साइं, वरिसाणद्धट्ठमसया य ॥१७॥

एमेव अरज्जिणदस्स १८, चउसु वि ठाणेसु हुन्ति पत्तेअं । इगवीस सहस्साइं, वासाणं हुन्ति णायव्वा ॥१८॥

१९ मल्लिस्स वि वासनयं, गिहवासे सेसयं तु परिआओ । चउपण्णसहस्साइं, नव चैव सयाहं पुण्णाइं ॥१९॥

अद्धट्ठमा सहस्सा, कुमारवासो उ सुव्वयजिणस्स २० । तावइअं परिआओ, पण्णरससहस्स रज्जंमि ॥२०॥

ननिगो २१ कुमारवासो, वास सहस्साइं दुण्णि अद्धं च । तावइअं परिआओ, पंचसहस्साइं रज्जंमि ॥२१॥

तिग्गेव य वासनवा, कुमारवासो अरिट्ठनेमिस्स २२ । सत्तं य वाससयाइं, सामण्णे होइ परिआओ ॥२२॥

सवन्न २३ कुमारत्तं, तीसं परिआओ सत्तरी होई । तीसा य वद्धमाणे २४, वायालीसा उ परिआओ ॥२३॥

धम्मे णं अरहा दस वास-सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

कुन्थू णं अरहा पंचाणउइं वास-सहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—सम० स० ९५, सु० ४

मल्ली णं अरहा पणपणं वास-सहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—सम० स० ५५, सु० १

णमी णं अरहा दस-वास-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

णेमी णं अरहा दस वास-सयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३५

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एकं वास-सयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।

—सम० स० १००, सु० ४

समणे भगवं महावीरे वावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्बुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे ।^१

—सम० स० ७२, सु० ३

चंदप्पभस्स छउमत्थकालो—

४३८. चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था^२ ।

—ठाणं० अ० ६, सु० ५२०

कल्लाणगाणि—

४३९. पडमप्पहे णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—

धर्मनाथ अरहन्त दश लाख वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध— यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

अरहन्त कुन्थुनाथ पंचानवे हजार वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

अरहन्त मल्लिनाथ पचपन हजार वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

अरहन्त नमिनाथ दश हजार वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

अरहन्त नेमनाथ एक हजार वर्ष का पूर्णायु भोगकर सिद्ध—यावत्—मुक्त हुए ।

पुरुषादानी अरिहन्त पाश्वनाथ एक सौ वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

श्रमण भगवान महावीर बहत्तर वर्ष आयु पूर्ण करके सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

चन्द्रप्रभु का छद्मस्थ काल—

४३८. चन्द्रप्रभ अरहन्त छह मास पर्यन्त छद्मस्थ रहे ।

कल्याणक—

४३९. पद्मप्रभ अरहन्त के पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए हैं । यथा—

१ तित्थयराणं सव्वाउ—

गाहाओ—

चउरासीइं विसत्तरिं सट्ठीं पण्णासमेव लक्खाइं४ । चत्ता५ तीसा६ वीसा७ दस८ दोइ एगं च पुव्वाणं१० ॥१॥

चउरासीइं१ वावत्तरी१२ य सट्ठी य होइ वासाणं१३ ॥ तीसा१४ य दस१५ य एगं च एवमेए सयसहस्सा१६ ॥२॥

पंचाणउइ सहस्सा१७, चउरासीइं१८ य पंचपण्णा१९ य ॥ तीसा२० य दस२१ य एगं२२, सय२३ च वावत्तरी२४ चैव ॥३॥

२ गाहाओ—वाससहस्सं१ वारस२ चउदस३ अट्ठार४ वीसवरिसा५ य ॥ मासा६ छन्नव७ तिमिन्न य, चउइ त्रिग१० दुग११ मिक्कग१२ दुगं१३ च ॥१॥ तिय१४ दुग१५ इक्कग१६ सोलत्त, वासा१७ तिमिन्न य उह्वस्सोरत्तं१८ ॥ मासिककारत्तं२० नवगं२१, चउपण्ण दिणाइं२२ चुलत्तीइं२३ ॥२॥ पक्खइहिय सइड वारस२४, वासा छउमत्थ-कालपरिमाणे ॥

१. चित्ताहिं चुते चइत्ता गढं वक्कंते । २. चित्ताहिं जाते ।
 ३. चित्ताहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए ।
 ४. चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिग्वाघाए णिरावरणे कसिणे
 पडिपुणे केवखवरणाणदंसणे समुप्पणे । ५. चित्ताहिं परिणिव्वुते ।
 पुप्फदंते णं अरहा पंचमूले हुत्था, तं जहा—मूलेणं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

सीयले णं अरहा पंचपुग्वासाडे हुत्था, तं जहा—पुग्वासाडाहिं
 चुते चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

विमले णं अरहा पंचउत्तराभइए हुत्था, तं जहा—उत्तरा-
 भइवयाहिं चुते चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

अणंते णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतिहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

धम्मे णं अरहा पंचपूसे हुत्था, तं जहा—पूसेणं चुते चइत्ता
 गढं वक्कंते० ॥

संती णं अरहा पंचभरणीए हुत्था, तं जहा—भरणीहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

कुन्धु णं अरहा पंचकत्तिए हुत्था, तं जहा—कत्तियाहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

अरे णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतीहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

मुणिसुव्वए णं अरहा पंचसवणे हुत्था, तं जहा—सवणेणं
 चुते चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

णमी णं अरहा पंचआसिणीए हुत्था, तं जहा—आसिणीहिं
 चुते चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

णेमी णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—चित्ताहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

पासे णं अरहा पंचविसाहे हुत्था, तं जहा—विसाहाहिं चुते
 चइत्ता गढं वक्कंते० ॥

समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा—

१. हत्थुत्तराहिं चुते चइत्ता गढं वक्कंते । २. हत्थुत्तराहिं
 गम्भाओ गढं साहृत्ति

१. चित्रा नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ में
 उत्पन्न हुए । २. चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ । ३. चित्रा नक्षत्र में
 प्रव्रजित हुए । ४. अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, पूर्ण, प्रतिपूर्ण
 केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ । ५. चित्रा नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त
 हुए ।

२. पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) अरहन्त के पाँच कल्याणक मूल
 नक्षत्र में हुए, यथा—१. मूल नक्षत्र में देवलोक से च्यवकर गर्भ
 में उत्पन्न हुए, २—५. मूल नक्षत्र में जन्म—यावत्—निर्वाण
 कल्याणक रहे ।

३. शीतल अरहन्त के पाँच कल्याणक पूर्वाषाढा नक्षत्र में
 हुए ।

४. विमल अरहन्त के पाँच कल्याणक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र
 में हुए ।

४. अनन्त अरहन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में हुए ।

६. धर्मनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक पुष्य नक्षत्र में
 हुए ।

७. शान्तिनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक भरणी नक्षत्र में
 हुए ।

८. कुन्धुनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक कृत्तिका नक्षत्र में
 हुए ।

९. अरनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक रेवति नक्षत्र में
 हुए ।

१०. मुनिसुव्वत अरहन्त के पाँच कल्याणक श्रवण नक्षत्र में
 हुए ।

११. नमि अरहन्त के पाँच कल्याणक अश्विनी नक्षत्र में
 हुए ।

१२. नेमिनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में
 हुए ।

१३. पार्श्वनाथ अरहन्त के पाँच कल्याणक विशाखा नक्षत्र
 में हुए ।

१४. श्रमण भगवान महावीर के पाँच कल्याणक हस्तोत्तरा
 (चित्रा) नक्षत्र में हुए । यथा—

१. भ० महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में देवलोक से
 नक्षत्र में गर्भ में उत्पन्न हुए । २. भ० महावीर हस्तोत्तरा
 च्यवकर देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये ।

३. हत्युत्तराहिं जाते ।^१ ४. हत्युत्तराहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए । ५. हत्युत्तराहिं अणंते अणुत्तारे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवल- वरणणदंसणे समुप्पण्णे ॥^२

—ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११

सीया सीयावाहया य—

४४०. एएसि णं चउवीसाए तित्थकरणं चउवीसं सीयाओ होत्था, तं जहा—

सीया सुदंतणा सुप्पभा सिद्धथ सुप्पसिद्धा य ।
विजया य वेजयंति, जयंति अपराजिया चैव ॥१॥
अरुणप्पम चंदप्पम, सूरप्पह अग्गितप्पभा चैव ।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥२॥
अन्यकर णिव्वुत्तिकरा, मणोरमा तह मणोहरा चैव ।
देवकुरु उत्तरकुरा, विसाल चंदप्पभा सीया ॥३॥
एयातो सीयाओ, सर्व्वेति चैव जिणवरिदाणं ।
सव्वजगवच्छलाणं, सव्वोत्तुपसुमाए छायाए ॥४॥
पुंवि उक्खित्ता, माणुसेहि साहट्ठरोमकुवोहे ।
पच्छा वहति सीयं, असुरिदसुरिदनाग्गिदा ॥५॥
चलच्चवलकुण्डलधरा, सच्छंदविउक्खियाभरणधारी ।
सुरअसुरवदिवागं, वहति सीयं जिग्गिदाणं ॥६॥
पुरओ वहति देवा, नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थियेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासि ॥७॥^३

३. भ० महावीर हस्तोत्तर नक्षत्र में जन्म हुआ । ४. भ० महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में दीक्षित हुए । ५. भ० महावीर को हस्तोत्तरा नक्षत्र में केवल ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ ।

शिविका और शिविकावाहक—

४४०. इन चौबीस तीर्थकरों की चौबीस शिविका (पालखी) थी, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सुदर्शना, २. सुप्रभा, ३. सिद्धार्यो, ४. सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९. अरुण-प्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्नि, १३. सुप्रभा, १४. पंचवर्णा, १५. सागरदत्ता, १६. नागदत्ता, १७. अभयकरा, १८. निवृत्तिकरा, १९. मनोरमा, २०. मनोहरा, २१. देवकुरा, २२. उत्तरकुरा, २३. विशाला, २४. चन्द्रप्रभा ।

सर्व जगत वत्सल इन सभी जिनवरों (तीर्थकरों) की पाल-खियाँ सभी ऋतुओं के योग्य छायावाली होती हैं ।

आगे हर्षोत्फुल्ल मनुष्य तथा पीछे स्वविक्रिया रक्षित द्वारा विकुवित चंचल कुण्डलों और आभूषणों को धारण करने वाले सुर असुरों द्वारा बंदित असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र इन पाल-खियों को वहन करते हैं ।

पूर्व में देव दक्षिण में नाग, पश्चिम में असुर और उत्तर में गरुड़ उनका वहन करते हैं ।

१ दु चउत्थ नवम वारस, तेरस पन्नरस सेस गव्वमिडि । मासा अड नव तदुवरि, उसहाइकमेणिमे दिवसा ॥१॥
चउ पणवीसं छट्ठिण, अडवीसं छच्च छच्चिगुणवीसं । सगछवीसं छ च्छ य, वीसिगवीसं छ छवीसं ॥२॥
छ पण अड सत्त अट्ठथ, अट्ठडट्ठ छ सत्त हुन्ति गव्व दिणा ।

२ (क) गाहाओ—

एवमेएण अभिलावेणं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ—

पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुण होइ पुप्फदंतस्स । पुव्वाइ आसाढा, सीयलस्सुत्तर विमलस्स भद्दवया । १॥
मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि नमिणो य नेमिणो चित्ता । पासस्स विसाहाओ, पंच य हत्युत्तरो वीरो ॥२॥
रेवइया अणंतजिणो, पूसो धम्मस्स संतिणो भरणी । कुन्धुस्स कत्तियाओ, अरस्स तह रेवइओ य ॥३॥

(घ) उत्तरसाढा१ रोहिणि२, मियसीस३ पुणव्वसू४ महा५ चित्ता६ ॥ वइसाहउणुराहाण मूल६, पुव्व१० सवणो११
सासयभिसा१२ य ॥१॥

उत्तरभद्दव१३ रेवइ१४, पुस्स१५ भरणि१६ कत्तिया१७ य रेवइ१८ य ॥ अस्सिणि१९ सवणो२० अस्सिणि२१ चित्तर२
विसाहुर३ तरा२४ रिव्व्या ॥२॥

३ तित्थयरारणं दिक्खाकालो—

गाहाओ : उसभस्स पुव्वलवजं, पुव्वंगुणमज्जिअस्स तं चैव । चउरगुणं लक्ख, पुणो पुणो जाव नुविहिति ॥१॥
पणवीस तु सहस्सा, पुव्वाण सीअलस्स परिआओ । लक्खाइ इक्कवीसं, सिजंस जिणस्स वान्नाणं ॥२॥
चउपणं पण्णरस, ततो अट्ठट्ठमाइ लक्खाइ । अट्ठाइज्जाइ तओ, वाससहस्साइ पणवीसं ॥३॥
तेवीस च सहस्सा, सयापि अट्ठट्ठमाणि अ हवति । इगवीस च सहस्सा, वागसज्जण य पणव्वया ॥४॥
अट्ठट्ठमा सहस्सा, अट्ठाइज्जा य सत्त य सयाइ । नयरो दिवत्तयाजा, दिक्खाकालो विजिदाणं ॥५॥

दिक्खानगराडं—

४४१. उसभो य विणोयाए, बारवईए अरिट्ठवरणेमी ।
अवसेसा तित्थयरा, निक्खंता जम्मभूमिसु ॥१॥

दिक्खाकाले एगदूस—

४४२. सब्बे वि एगदूसेण, णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं ।
ण य णाम अण्णल्लिगे ण य गिहिल्लिगे कुल्लिगे य ॥१॥

सहदिक्खियाणं संखा—

४४३. एक्को भगवं वीरो, पासो मल्ली य तिहि-तिहि-सएहि^१ ।
मयवंपि वासुपुज्जो, छहिं पुंरंससएहि निक्खंतो ॥१॥

उग्गाणं भोगाणं, राइण्णाणं च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहि उसभो, सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥२॥

दिक्खापुव्वं तवो—

४४४. सुमइत्थ णिच्चभत्तेण, णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं ।
पासो मल्ली वि य., अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥१॥
—सम० सु० १५७

पढमभिक्षादायगा—

४४५. एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं पढमभिक्षादायारो
होत्था, तं जहा—

सेज्जंसे वंभदत्ते, सुरिददत्ते य इंददत्ते य ।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्ते तह धम्ममित्ते य ॥१॥

(पाठान्तर) [पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह सोमदत्ते य]

पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद, सुणंदे जये य विजये ण ।
पउमे य सोमदेवे, माहिंददत्ते य सोमदत्ते य ॥२॥

(पाठान्तर) [तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे अ]

अपराजिय वीससेणे, वीसत्तिमे होइ उसभसेणे य ।
दिण्णे वरदत्ते, धणे बहुले य आणुपुव्वीए ॥३॥
एते विसुद्धलेसा, जिणवरभत्तीए पंजलिउडा य ।
त कालं तं समयं, पडिलाभेई जिणवरिदे ॥४॥

दीक्षा नगरियां—

४४१. तीर्थकर ऋषभ अरहंत ने धिनीता नगरी से, अरिष्टेति
अरहंत ने द्वारका नगरी से और शेष तीर्थकरों ने अपनी-अपनी जन्म-
भूमि नगरियों से आनगारिक प्रयत्न हेतु अभिनिष्क्रमण किया था।

दीक्षाकाल में एक दूप्य (वस्त्र)—

४४२. सभी चौबीस तीर्थकरों ने एक दूप्य (वस्त्र) के साथ दीक्षा
ली थी, किन्तु अन्यलिग, गृहस्थलिग अथवा कुल्लिग अवस्था में
किसी ने दीक्षा नहीं ली।

सहदीक्षितों की संख्या—

४४३. भगवान महावीर ने अकले, मल्लिनाथ और पायवंताय ने
तीन सौ-तीन सौ, भगवान वासुपूज्य ने जह सौ पुत्रों के साथ
दीक्षा ली थी। तथा—

ऋषभदेव तीर्थकर ने उग्र, भोग, राजन्य और शत्रिय कुलों
के चार हजार एवं शेष तीर्थकरों ने एक हजार पुत्रों के साथ
दीक्षा ली थी।

दीक्षा पूर्व के तप—

४४४. तीर्थकर सुमतिनाथ ने नित्य भोजन (उपवास के बिना)
पूर्वक, वासुपूज्य ने चतुर्यभक्त (एक उपवास) करके, पार्श्व और
मल्लि ने अष्ट भक्त (तीन उपवास) करके और शेष तीर्थकरों ने
षष्ठ भक्त (दो उपवास) करके दीक्षा ली थी।

प्रथम भिक्षा दाता—

४४५. इन चौबीस तीर्थकरों के चौबीस प्रथम भिक्षा दातार थे,
यथा—

श्रेयांस, ब्रह्मदत्त, सुरेन्द्रदत्त, इन्द्रदत्त, धर्मसिंह, सुमित्र,
धर्ममित्र।

पुष्य, पुनर्वसु, पूर्णानन्द, सुनन्द, जय, विजय, पद्म,
सोमदेव, महेन्द्रदत्त, सोमदेव,

अपराजित, विश्वसेन, ऋषभसेन, दित्त, वरदत्त, धन्य,
बहुल—यों क्रमशः जानना चाहिए।

जिनेन्द्रों को प्रथम भिक्षा दातार थे सभी विशुद्ध अथवासाय
वाले होकर सभक्ति हाथ जोड़कर (नमस्कार करके) उन्हें भिक्षा
देते हैं।

१ ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० २२६ ।

(क) मल्ली णं अरहा अत्पसत्तमे मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा—मल्ली विदेहरायवरकण्णगा, पडिबुद्धी
इक्खागराया, चंदच्छाये अंगराया, रूपी कुणालाधिपती, संखे कासीराया, अदीणसत्तु कुरराया, जितसत्तु पंचालराया ॥

—ठाणं अ० ७, सु० ५६४

(ख) नायाधम्मकहाए (घ) पुण अट्ठराजकुमारोहिं सह मल्ली दिक्खियति ।

पढमभिव्खाकालो—

४४६. संवच्छरेण भिव्खा, लद्धा उसभेण लोगणाहेण ।
सेतेहि वीयदिवसे लद्धाओ पढमभिव्खाओ ॥१॥

उसभस्स पढमभिव्खा, खोयरसो आसि लोगणाहस्स ।
सेसाणं परमणं, अमयरसरसोवमं आसि ॥२॥

सध्वेसि पि जिणाणं, जहियं लद्धाओ पढमभिव्खातो ।
तहियं वसुधाराओ, सरोरमेत्तोओ वुट्ठाओ ॥३॥

चेइयरुक्खा—

संगहणी गाथाओ—

४४८. एतेसि णं चउवीसाए तित्यगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा
होत्या, तं जहा—

णमोह-सत्तिवण्णे, साले पियए पियंगु छत्ताहे ।
मिरिसे य णागरुक्खे, माली य पिलंबुवुक्खे य ॥१॥
तेंदुग पाडल जंबू, आसोत्थे खलु त्थेव दधिवण्णे ।
णंदीरुक्खे तिलए अंबयरुक्खे असोगे य ॥२॥
चंपय वउले य तहा, वेडसरुक्खे य घायईरुक्खे ।
साले य वड्डमाणस्स, चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥३॥
वत्तीसं धणुयाई, चेइयरुक्खो य वड्डमाणस्स ।
णिच्चोउगो असोगे, ओच्छणो सालरुक्खेणं ॥४॥
तिण्णेव गाउयाई, चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा, सरोरतो वारसगुणा उ ॥५॥

सच्छत्ता सपडागा, सवेइया तोरणेहि उववेया ।
सुरअसुरगरुलमहिया, चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥६॥

पढमसिस्सा—

४४८. एतेसि णं चउवीसाए तित्यगराणं चउवीसं पढमसीसा
होत्या, तं जहा—

पढमेत्थ उसभत्तेणे, वीए पुण होइ सीहत्तेणे उ ।
चारु य वज्जणाने, चमरे तह सुव्वय विददने ॥१॥
दिष्णे य वराहे पुण, आणंदे गोथुने सुहम्मे य ।
मंदर जसे अरिट्ठे, चयकाह तयंभु कुम्भे य ॥२॥
इंदे कुम्भे य सुभे वरदत्ते दिष्णे इंदभूती य ।
उदितोदितकुलपंसा, विसुद्धयंता गुणेहि उववेया ।
तित्ययरसंसाणं, पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥३॥

पढमसिस्सिणीओ—

४४८. एतेसि णं चउवीसाए तित्यगराणं चउवीसं पढमसिस्सिणीओ
होत्या, तं जहा—

प्रथम भिक्षा काल—

४४६. लोकनाय ऋषभ प्रभु को दीक्षा लेने के पश्चात् एक वर्ष
वाद और शेष तीर्थंकरों को दो दिन के पश्चात् प्रथम भिक्षा
मिली ।

लोकनाथ ऋषभ को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला और
शेष तीर्थंकरों को अमृत के समान सरस खीर (परमात्र)
मिली थी ।

सभी जिनेश्वरों को जब प्रथम भिक्षा मिली, तब शरीर ढक
जाये उतनी धन वर्षा हुई ।

चैत्य वृक्ष—

संग्रहणी गाथाएँ—

४४७. इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चैत्यवृक्ष थे, वे इस
प्रकार—

न्यग्रोध, सक्तिवर्ण, शाल, प्रियक, प्रियंगु, छत्राभ, शिरीष,
नागवृक्ष, मालि, पिलंबुवृक्ष (पलाश),
तिदुक, पाटल, जम्बू, अश्वत्थ, दधिवर्ण, नन्दीवृक्ष, तिलक,
आम्रवृक्ष,
अशोक, चंपक, वकुल, वेतस, घातकी और शाल । वर्धमान
भगवान् का दर्शनीय, शोकहारी, शोभासम्पन्न शाल चैत्यवृक्ष
वत्तीस धनुष ऊँचा था ।

ऋषभ जिनका चैत्यवृक्ष तीन कोस ऊँचा था और शेष
तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष उन उनके शरीर प्रमाण से बारह गुने ऊँचे
जानना चाहिए ।

सभी तीर्थंकरों ये चैत्यवृक्ष ध्वजा, पताका, वेदिका तथा तोरणों
से सजाये हुए एवं सुर असुर और गरुड़ देवों से पूजित होते हैं ।

प्रथम शिष्य—

४४८. इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस प्रथम शिष्य थे, यथा—

ऋषभसेन, मिहसेन, चारु, वचनाभ, चमर, मुन्नत, विदमं ।
दिन, वराह, आनन्द, गोस्तुन, सुधर्म, मंदर, पन, अरिट्ट,
चक्राह, स्वयंभु, कुम्भ और
इन्द्र, कुम्भ, शुभ, वरदत्त, दिन्न और इन्द्रभुति ।
तीर्थप्रवर्तक जिनेश्वर के दो मनी प्रथम शिष्य उचरुत्त,
उच्चवन्न, विमुद्धवन्न बाने एवं गुणलम्पन्न होते हैं ।

प्रथम शिष्या—

४४८. इन चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस प्रथम शिष्याएँ थी,
यथा—

वंभी फग्गु सामा अजिया कासवी रई सोमा ।
सुमणा वारुणि सुलसा, धारिणि धरणी य धरणिधरा ॥१॥
पढम सिवा सुई तह अंजुया, भावियप्पा य रविख्या ।
बंधू-पुप्फवती चेव, अज्जा धणिला य आहिया ॥२॥
(पाठान्तर)

[रक्खी य बंधुवती पुप्फवती अज्जा अमिला य अहिया]
जक्खिणी पुप्फचूला य, चंदणज्जा य आहिया ।
उदितोदितकुलवंसा, विमुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।
तित्यप्पवत्तयाणं, पढमा सिस्सी जिणवराणं ॥३॥
—सम० सु० १५७

केवलनाण-दंसणोत्पत्तिकालो—

४५०. जंबुद्वीवे णं दीवे मारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए
तेवीसाए जिणाण सुखगमणमुहुत्तंसि केवलवरनाणदंसणे समुप्पणे ॥
—सम० स० २३, सु० २

तित्थयराणं अतिसेसा—

४५१. चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पणत्ता, तं जहा—

१. अवट्ठिण्णं केसमसुरोमनहे ।
२. निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी ।
३. गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ।
४. पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे ।
५. पच्छन्ने आहारनीहारे, अट्ठिस्से मंसचक्खुणा ।
६. आगासगयं चक्कं ।
७. आगासगयं छत्तं ।
८. आगासगयाओ सेयवरचामराओ ।
९. आगासफालियामयं सपायपीढं सीहासणं ।

१०. आगासगओ कुडभोसहस्सपरिमंडिआभिरामो इंदज्जओ पुरओ गच्छइ ।
११. जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीर्यंति वा तत्थ तत्थ वि य णं जवख। देवा संछन्नपत्त-पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्जओ सवटो सपडाओ असोगवरपायवो अभिसंजायइ ।
१२. इंसि पिट्ठओ मउडठारणमि तेयमंडलं अभिसंजायइ, अंधकारे वि य णं दस दिसाओ पभासेइ ।
१३. बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे ।
१४. अहोसिरा कंटया जायंति ।

ब्राह्मी, फग्गु, श्यामा, अजिता, कारयपी, रति, सोमा, सुमना,
वारुणी, सुलसा, धारिणी, धरणी और धरणीधरा,
प्रथमा, शिवा, मूत्ति, अंजुका, भावितात्मा, रक्षिका, बंधुमती,
पुष्पवती, और धनिला ।

यक्षिणी, पुष्पचूला और चंदना ।
तीर्थप्रवर्तक जिनेश्वर की ये सभी प्रथम त्रिव्यायें उच्चकुल,
उच्चवंश, विमुद्धवंश की एवं गुणवती होती हैं ।

केवलज्ञान-दर्शन-उत्पत्तिकाल—

४५०. जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में तेइस जिन
भगवान् को सूर्योदय के समय केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न
हुवा था ।

तीर्थंकरों के अतिशय—

४५१. बुद्धातिशय चिंतीस हैं, यथा—

१. मस्तक के केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम और नखों का मर्यादा से अधिक न बढ़ना ।
२. शरीर का स्वस्थ एवं निर्मल रहना ।
३. रक्त और मांस का गाय के दूध के समान श्वेत रहना ।
४. पद्मगंध के समान श्वासोच्छ्वास का सुगंधित होना ।
५. आहार और शौच क्रिया का प्रच्छन्न होना ।
६. तीर्थंकर देव के आगे आकाश में धर्मचक्र रहना ।
७. उनके ऊपर तीन छत्र रहना ।
८. दोनों ओर श्रेष्ठ चंवर रहना ।
९. आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणी का बना हुआ पादपीठ वाला सिंहासन होना ।
१०. तीर्थंकर देव के आगे आकाश में इन्द्रध्वज का चलना ।
११. जहाँ-जहाँ अरिहंत भगवंत ठहरते हैं या बैठते हैं वहाँ-वहाँ उसी क्षण पत्र, पुष्प और पल्लव से सुशोभित छत्र, ध्वज, घंट एवं पताका सहित अशोकवृक्ष का उत्पन्न होना ।
१२. कुछ पीछे मुकुट के स्थान पर तेजोमण्डल का होना तथा अन्धकार होने पर दस दिशाओं में प्रकाश होना ।
१३. जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ के भूभाग का समतल होना ।
१४. जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ कंटकों का अधोमुख होना ।

१५. उद्धविवरीया सुहफासा भवन्ति ।
 १६. सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जति ।
 १७. जुत्तफुसिएण य मेहेण निहय-रय-रेणुयं कज्जइ ।
 १८. जल-थलय-भासुर-पभूतेणं विट्ठ्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेह्पमाणमित्ते पुफोवयारे कज्जइ ।
 १९. अमणुण्णाणं सट्ट-फरिस-रस-रुव-गंधाणं अवकरिसो भवइ ।
 २०. मणुण्णाणं सट्ट-फरिस-रस-रुव-गंधाणं पाउव्वावो भवइ ।
 २१. पच्चाहरओवि य णं हिययगमणीओ जोयणनीहारी सरो ।
 २२. भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ ।
 २३. सावि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसि सव्वेसि आरियमणारियाणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पविखसिरोसिवाणं अप्पणो हिय-सिच-सुहदभासत्ताए परिणमइ ।
 २४. पुव्ववद्धेरा वि य णं देवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रवखस-फिन्नर-किपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं नितामंति ।
 २५. अण्णउत्थिय-पावयणिया वि य णमागया वंदंति ।
 २६. आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिच्चयणा हवन्ति ।
 २७. जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओ वि य णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवइ ।
 २८. मारी न भवइ ।
 २९. सचक्कं न भवइ ।
 ३०. परचक्कं न भवइ ।
 ३१. अइवुट्ठी न भवइ ।
 ३२. अणावुट्ठी न भवइ ।
 ३३. दुब्भिवर्षं न भवइ ।
 ३४. पुट्टुप्पणावि य णं उप्पाइया वाही खिप्पामेव उव-समंति ।^१

—सम० स० ३४, सु० १

१५. जहाँ जहाँ पधारे वहाँ वहाँ ऋतुओं का अनुकूल होना ।
 १६. जहाँ जहाँ पधारे वहाँ वहाँ संवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यंत क्षेत्र का शुद्ध हो जाना ।
 १७. मेघ द्वारा रज का उपशान्त होना ।
 १८. जानुप्रमाण देवकृत पुष्पों की वृष्टी होना एवं पुष्पों के डंठलों का अधोमुख होना ।
 १९. अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श का न रहना ।
 २०. मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श का प्रकट होना ।
 २१. योजन पर्यन्त सुनाई देने वाला हृदयस्पर्शी स्वर होना ।
 २२. अर्धभागघी भापा में उपदेश करना ।
 २३. उस अर्धभागघी भापा का उपस्थित आर्य, अनायं, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, और सर्पिणियों की भापा में परिणत होना तथा उन्हें हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होना ।
 २४. पूर्वभव के वैरानुबन्ध से वद्धदेव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किपुल्ल, गरुड, गंधर्व, और महोरग का अरहंत के समीप प्रसन्नचित्त होकर धर्म सुनना ।
 २५. अन्यतीर्थिकों का नत मस्तक होकर वंदना करना ।
 २६. अरहंत के समीप आकर अन्यतीर्थिकों का निरुत्तर होना ।
 २७. जहाँ जहाँ अरहंत भगवंत पधारें वहाँ वहाँ पच्चीस योजनपर्यंत चूहे आदि का उपद्रव न होना ।
 २८. प्लेग आदि महामारी का उपद्रव न होना ।
 २९. स्व सेना का विप्लव न करना ।
 ३०. अन्य राज्य की सेना का उपद्रव न होना ।
 ३१. अधिक वर्षा न होना ।
 ३२. वर्षा का अभाव न होना ।
 ३३. दुर्भिक्ष न होना ।
 ३४. पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियों का उपशान्त होना ।

१ पउत्तीसाइसयगाहाओ—

रपरोयसेयरहिओ, देहो१ धवलाइं मस - रहिराइं२ । आहारा नीहारा, अइस्ता३ मुरहिणो सावा४ ॥१॥
 जम्माउ इमे चउरो, एक्कारंस कम्मचयभवा इण्हं । येत्ते जोयणमेत्तो, विजयणो माइ यदुओवि५ ॥२॥
 नियभाभाए नर-विरि-सुराण धम्मावबोहया पाणी६ । पुच्चभवा रोगा उवसमंति७ न य हुन्ति रेराइं८ ॥३॥
 दुब्भिवर्ष९ उमर१० दुम्मारि ११, ईइ१२ अइवुट्ठी१३ अणभिवुट्ठीओ१४ ।

हुन्ति न बहु जियवरणी. पसरइ भासंडलुज्जोओ१५ ॥४॥ (नंजल्ल दूट्ट १०२)

४५२. पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पणत्ता^१

—सम० स० ३५, सु० १

चाउज्जामधम्मोवदेसगा तित्थयरा—

४५३. भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिम-पच्छिम-वज्जा मज्झमगा वावीसं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पणवयंति, तं जहा— सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं ।

सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पणवयंति, तं जहा—

सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं ॥

—ठाणं० अ० ४, उ० १, सु० २६६

कण्हाइभावीतित्थयरा चाउज्जामधम्मोवएसगा—

४५४. एस णं अज्जो ! कण्हे वासुदेवे, रामे बलदेवे, उदए पेढाल-पुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावती, दाहए णियंठे, सच्चई णियंठीपुत्ते, सावियबुद्धे अंब[म्म?]डे परिव्वायए, अज्जावि णं सुपासा पासा-वच्चिज्जा आगमेस्साए उस्सपिणीए चाउज्जामं धम्मं पणवइत्ता सिज्झिंहिति बुज्झिंहिति मुच्चिंहिति परिणिव्वाइंहिति सव्वदुक्खाणं अंतं कांहिति ॥

—ठाणं० अ० ६, सु० ६६२

(पृष्ठ १७१ का शेष)

सुरइया इगुवीसा, मणिमयसीहासणं सपयवीढं२३ । छत्तत्तय१७ इदज्जय१८, सियचामर१९ धम्मचक्काइं२० ॥५॥ सह जगगुरुणा गयणट्ठियाइं पंच वि इमाइं वियरंति । पाउवभवइ असोओ२१, चिट्ठइ जत्थ प्पहू तत्थ ॥६॥ चउमुहमुत्तिचउक्कं२२, मणि-कंचण-तार-रइय,सालतिगं२३ । नवकणयपंकयाइं२४, अहोमुहा कंटया हुन्ति२५ ॥७॥ निच्चमवट्ठियमित्ता, पहुणो चिट्ठंति केस-रोम-नहा२६ । इंदिय अत्था पंचवि, मणोरमार७ हुन्ति छप्पि रिऊर८ ॥८॥ गंधोदयस्स वुट्ठी२९, कुसुमाणं पंचवत्ताणं३० । दिति पयाहिण सउणा३१, पहुणो पवणोऽवि अणुकूलो३२ ॥९॥ पणमंति दुमा३३ वज्जति दुन्दुहीओ गहीरघोसाओ३४ । चउतीसाइसया णं, सव्वजिणिदाण हुन्ति इमा ॥१०॥

—प्रव० गा० ४४१—४५० ।

१ वयणगुणा सग सद्दे, अत्ये अडवीस मिलिअ पणतीसं । तेहि गुणेहि मणुत्त, जिणाण वयणं कमेण इमं ॥१॥ वयणं सक्कार-गभीर-घोस-उवयारुदत्तयाजुत्तं । पडिनायकर दक्खिन्नसहिअमुवणीअराय च ॥२॥ सुमहत्थं अवाहयमसंसयं तत्तनिट्ठिअं सिट्ठं । पत्थावुच्चियं पडिहयपरुत्तरं हिययपीईकरं ॥३॥ अनुत्तसाभिकंखं, अभिजायं अइसिणिद्धमहुरं च । ससलाहापरनिदावज्जिअमपइन्नपसरजुअं ॥४॥ पयडक्खरपयवक्कं सत्तपहाणं च कारगाइजुअं । ठविअविसेसमुत्थारं अणेगजाई विचित्तं च ॥५॥ परमम्मविःभमाईविलंबवुच्छेयलोयरहिअं च । अदुअं धम्मत्थजुयं, सलाहणिज्जं च चित्तकरं ॥६॥

—सत्त० स्था० ६८, गा० २०३-२०७ ।

४५२. सत्य-वचनातिशय पंतीस हैं ।

चातुर्याम धर्मोपदेशक तीर्थकर—

४४३ भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थकर को छोड़कर मध्य के बावीस अरहंत भगवान चातुर्याम (चार महाव्रत रूप) धर्म की प्ररूपणा करते हैं, यथा—१. सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त होना, २. सब प्रकार के झूठ से निवृत्त होना, ३. सब प्रकार के अदत्तादान से निवृत्त होना, ४. सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत्त होना,

सब महाविदेहों में अरहंत भगवान चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करते हैं, यथा—

सब प्रकार के प्राणातिपात से निवृत्त होना—यावत्—सब प्रकार के बाह्य पदार्थों के आदान से निवृत्त होना ।

चातुर्याम धर्मोपदेशक कृष्ण आदि भावी तीर्थकर—

४५४. हे आर्य ! कृष्ण वासुदेव, राम बलदेव, उदक पेढाल पुत्र, पोटिलमुनि, शतक गाथापति, दालक निर्ग्रन्थ, सत्य की निर्ग्रन्थी-पुत्र, सुलसाश्राविका से प्रतिशोधित अम्बड़ परिव्राजक, भगवान पाशवंताथ की प्रशिष्या सुपाश्रा आर्या । ये आगामी उत्सर्पिणों में चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा करके सिद्ध होंगे—यावत्—सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

आगामि-उत्सर्पिणीए तित्थयरा—

तित्थयरनामाइं

४५५. जंबुद्वीवे णं द्वीवे भरहे वात्ते आगमिस्साए उत्सर्पिणीए उवोसं तित्थयरा भविस्संति, तं जहा—

गहणी गाहाओ—

महापउमे सूरदेवे, सुपात्ते य सयंपमे ।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होखत्ति ॥१॥
उदए पेडालपुत्ते य, पोडिले सत्तकित्ति य ।
मुणिनुद्वए य अरहा, सव्वभावविदू जिणे ॥२॥
अममे णिवक्काए य, निप्पुलाए य निम्ममे ।
चित्तउत्ते समाही य, आगमिस्साए होखइ ॥३॥
संवरे अणियट्ठी य, विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए ति य ॥४॥
एए वुत्ता चउवीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगमेस्साण होखत्ति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥५॥

पुव्वभवनामाइं—

४५६. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं पुव्वमविया चउवीसं नामधेज्जा भविस्संति, तं जहा—

सेणिय मुपात्त उदए, पोडिल अणगार तह दडाज्ज य ।
कत्तिय संघे य तथा, नंद मुनंदे सतए य बोद्धव्वा ॥१॥
देवई च्चेव सच्चइ, तह वासुदेव वलदेवे ।
रोहिणि सुलसा च्चेव, ततो खलु रेवई च्चेव ॥२॥
ततो हवइ सयाली, बोद्धवे खलु तथा भयाली य ।
दीवापणे य कण्हे, ततो खलु नारए च्चेव ॥३॥
अंबडे दाहमडे य, साईवुडे य होइ बोद्धवे ।
भावीतित्थगराणं नामाईं पुव्वमवियाइं ॥४॥

तित्थयरअम्मा-पियरे—

४५७. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पियरो भविस्संति, चउवीसं मायरो भविस्संति, चउवीसं पढमसोसा भविस्संति, चउवीसं पढमसिस्तिणोओ भविस्संति, चउवीसं पढमभिराशयगा भविस्संति, चउवीसं चेइयरुत्ता भविस्संति ॥

—सम० सु० १५८

तित्थयरस्स उवदेसस्स दुग्गम-सुगमता—

४५८. पंचाहं ठाणेहं पुरिम-पच्छिमगाणं सिणाणं दुग्गमं भवति, तं जहा—

दुआइरजं, दुधियभज्जं, दुपस्सं, पुनित्तिरजं, दुरणुचरं ॥

आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थकर—

(तीर्थकरों के नाम)

४५५. जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थकर होंगे, यथा—

संग्रहणी गाथाएँ—

१. महापद्म, २. सूरदेव, ३. सुपाश्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. सर्वा-
नुभूति, ६. देवश्रुत, ७. उदय, पेडालपुत्र, ८. पोडिल, ९. शतकीर्ति, १०. मुनिसुव्रत, ११. अमम, १२. निष्कपाय, १३. निष्पुलाक, १४. निर्मम, १५. चित्रगुप्त, १६. समाधि, १७. संवर १८. अनिवृत्ति, १९. विजय, २०. विमल, २१. देवोपपात, २२. अनन्त विजय, २३. भद्रजिन ।

ये धर्म तीर्थ की देशना करने वाले चौबीस तीर्थकर आगामी उत्सर्पिणी में होंगे ।

पूर्वभव के नाम—

४५६. उक्त चौबीस तीर्थकरों के पूर्वभव में चौबीस नाम इस प्रकार होंगे, यथा—

१. श्रेणिक, २. सुपाश्व, ३. उदक, ४. पोडिल, अनगार ५. दडायु, ६. कार्तिक, ७. शंख, ८. नंद, ९. मुनंद, १०. रतक, ११. देवकी, १२. सत्यकी, १३. वासुदेव, १४. वलदेव, १५. रोहिणी, १६. सुलसा, १७. रेवती, १८. मियाली, १९. भयाली, २०. द्विपायन, २१. कृष्ण, २२. नारद, २३. अंबड, २४. स्वाति-
बुद्ध—भावी तीर्थकरों के ये पूर्वभव के नाम हैं ।

तीर्थकरों के माता-पिता—

४५७. इन चौबीस तीर्थकरों के चौबीस पिता होंगे, चौबीस माता होंगी, चौबीस प्रथम निष्य होंगे, चौबीस प्रथम निष्यार्य होंगी; चौबीस प्रथम भिक्षा दाता होंगे और चौबीस संत्वकृदा होंगे ।

तीर्थकरों के उद्देश की दुर्गम-सुगमता—

४५८. पांच कारणों से प्रथम और प्रथिम दिन जो उद्देश्य उनके निष्यों को उन्हें समझने में कठिनाई होती है । यथा—

१. दुर्गमदेव—जायास साधर व्याख्या मुक्त २. दुर्गमपण—विभाग करने में कष्ट होता है । ३. दुर्गम—कठिनाई के समझ में आता है । ४. दुर्गम—सहीपन मह्य करन में कठिनाई होती है । ५. दुर्गम—विनाशानुसार साधरन करने में कठिनाई होती है ।

पंचाहं ठाणोहं मज्झिमगाणं जिणाणं सुगमं भवति,
तं जहा—

सुआइवखं सुविभज्जं, सुपस्सं, सुत्तितिवखं, सुरणुचरं ॥

—ठाण० अ० ५, उ० १, सु० ३६६

समण-संपया—

४५६. उत्तमस्स णं कोसलियस्स उत्तमत्तेणपामोवखाओ चउरासीइं
समणसाहस्सीओ होत्था ॥

—सम० स० ८४, सु० १६

विमलस्स णं अरहओ अट्ठसट्ठिं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया
समणसंपया होत्था ॥

—सम० स० ६८, सु० ५

पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ
उक्कोसिया समण-संपदा होत्था ॥

—सम० स० १६, सु० ४

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउट्ठस समणसाहस्सीओ
उक्कोसिया समणसंपया होत्था ॥^१

—सम० स० १४, सु० ४

समणी-संपया—

४६०. संत्तिस्स णं अरहओ एगूणणउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया
अज्जिया संपया होत्था ॥

—सम०स० ८६, सु० ४

मुणिसुववयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था ।

—सम० स० ५०, सु० १

नमिस्स णं अरहओ एककचत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ
होत्था ।

—सम० स० ४१, सु० १

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ
होत्था ।

—सम० स० ४०, सु० १

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठतीसं अज्जिया-
साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ॥

—सम० स० ३८, सु० १

१ गाहाओ—

चुलसीइं च सहस्सा१, एगं च दुवे३ य तिण्णि लक्खाइं४ ॥ तिण्णि य वीसइहियाइं५, तीसइहियाइं६ च त्तिन्नेव७ ॥१॥
तिन्नि य अइहाइज्जा८, दुवे९ य एगं च सयसहस्साइं १० ॥ चुलसीइं च सहस्सा११, बिसत्तरि१२ अट्ठसट्ठिं च १३ ॥२॥
छावट्ठिं१४ चोवट्ठिं१५, वावट्ठिं१६ सट्ठिमेव१७ पत्तासा१८ ॥ चत्ता१९ तीसा२० वीसा२१, अट्टारस२२ सोलस सहस्सा२३ ॥३॥
चोइस य सहस्साइं२४, जिणाण जइसीसपमाणं ।

अट्टावीसं लक्खा, अड्यालीसं च तह सहस्साइं । सव्वेसिं पि जिणाणं, जइप्पमाणं विणिदिट्ठं ॥१॥

पांच कारणों से मध्य के २२ जिनका उपदेश उनके शिष्यों को
सुगम होता है, यथा—

१. सुआख्येय—व्याख्या सफलतापूर्वक करते हैं । २. सुवि-
भाज्य—विभाग करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता ।
३. सुदर्श—सरलतापूर्वक समझ लेते हैं । ४. सुसह—शांतिपूर्वक
परीपह सहन करते हैं । ५. सुचर—प्रसन्नतापूर्वक जिज्ञानुसार
आचरण करते हैं ।

श्रमण-संपदा—

४५६. अरहन्त कौशलिक ऋपभदेव के ऋपभसेन प्रमुख चौराती
हजार श्रमण थे ।

अरहन्त विमलनाथ के अड़सठ हजार उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी ।

पुरषों में प्रख्यात पार्श्वनाथ अरिहंत की उत्कृष्ट श्रमण
सम्पदा सोलह हजार थी ।

श्रमण भगवान महावीर के चौदह हजार श्रमणों की
उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी ।

श्रमणी-संपदा—

४६०. अरहन्त शान्तिनाथ की आर्या संपदा उत्कृष्ट नवासी
हजार थी ।

अरहन्त मुनिसुव्रत की पचास हजार आर्या थीं ।

अरहन्त नमिनाथ की इगतालीस हजार आर्या थीं ।

अरहन्त अरिष्टनेमि के चालीस हजार आर्या थीं ।

पुरुषादानी अरहन्त पार्श्वनाथ के उत्कृष्ट अड़तीस हजार
आर्या संपदा थी ।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्या ॥^१

—सम० स० ३६, सु० ३

श्रमण भगवान महावीर के छत्तीस हजार आर्या थी ।

साविया-संपया—

४६१. पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साई उक्कोसिया साविया-संपया होत्या ॥

—सम० सु० १२६

श्राविका-संपदा—

४६१. अरहंत पार्श्वनाथ के संघ में उत्कृष्ट श्राविका संपदा तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की थी ।

वाइ-सपया^२—

४६२. सुपासस्स णं अरहओ छलसीई वाइसया होत्या ॥

—सम० स० ८६, सु० २

वादी संपदा—

४६२. अरहन्त सुपार्श्वनाथ के छियासी सौ वादी मुनि थे ।

अरहओ णं अरिठ्ठनेमिस्स अट्ठ सयाई वाईण सदेवमणुया-सुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसया होत्या ॥^३

—सम० स० ८००, सु० १११

अरहन्त अरिष्टनेमि के देव, मनुष्य, असुरलोकों से वाद में पराजित न होने वाले बाठ सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी ।

पासस्स णं अरहओ छ सया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्या ॥^४

—सम० स० ६००, सु० १०६

देव, मनुष्य और असुरलोकों से वाद में पराजित न होने वाले छः सौ वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा अरहंत पार्श्वनाथ के थी ।

१ गाहाओ—

तिण्णेव य लक्खाइं१, तिण्णि य तीसाइं२ तिन्नि छत्तीसा३ ॥ तीसा य छच्च४ पंच य, तीसा५ चउरो य वीसाइं६ ॥१॥ चत्तारि य तीसाइं७, तिण्णि असोया८ य तिण्णि मित्तो९ य । वीसुत्तरं१० छलसहियं११, ति-सहस्ससहियं च लक्ख११ च ॥२॥ लक्खं१३ अट्ठसयाणि य१४, वासट्ठिसहस्स चउसयसमगा१५ ॥ एगट्ठो छच्च सया१६, सट्ठिसहस्सा सया छच्च१७ ॥३॥ सट्ठि१८ पणपन्न१९ पन्नेग२० चत्तर२१ चत्तर२२ सहसुत्तीसं२३ च । छत्तीसं च सहस्सा२४, अज्जाणं संगहो एसो ॥४॥ अओ अणंतरं सावय-संपया परुविगाओ इमाओ गाहाओ—

पडमस्स तिन्नि लक्खा, पंचसहस्सा दुलक्ख जा संतो (२-१६) ॥ लक्खोवरि अउत्तइं२, तेणउत्तइं अट्ठसीइं४ य ॥१॥ एगासी५ छावत्तरि६, सत्तावन्ना७ य तह य पन्नात्ता८ ॥ एगुणतीसं नवासी१०, इगुणासी११ पन्नरसट्ठे व१३ ॥२॥ छ च्चिय सहस्स१४ चउरो, सहस्स१५ नउई सहस्स संतिस्स१६ ॥ तत्तो एगो लक्खो, उवरि (१७-२४) गुणयो१७ पुत्तसी१८ य ॥३॥

तेपासी१८ वावत्तरि२०, सत्तरि इगुणत्तरी१२ य चउत्तरी२३ ॥ एगुणत्तट्ठिसहस्सा२४, य सावयाणं विपवयानं ॥४॥

२ गाहाओ—

नड्ठ छ सया दुवालस१, महस्स वारसय चउमयअभट्ठिपा२ । यानेक्कारत-सहस्सा३,४, अमहस्सा छ मय पन्नाया५ ॥१॥ छप्रउत्तइं६ पुत्तसीइं७, छत्तरी८ नट्ठि अट्ठपन्ना१० य । पन्नाता य नयाणं११, मोसा मा अट्ठ पन्नाया१२ ॥२॥ वत्तीसा१३ वत्तीसा१४, अट्ठायीसा१५ नयाण चउत्तीसा१६ । रितात्तवा१७ नीलसया१८, चउत्तरी२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००

अट्ठमवारं छच्च नवारं, चत्तारि नयाई मुनि वीरम्मि२३ । गइसुभोच पन्नाणं, अट्ठमवारं अट्ठमवारं ॥४॥

१ सम० स० ८, सु० १५१ ।

४ सम० स० ६, सु० १५०

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि राधा चाईणं
सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजिधाणं उक्कोसिया
वाइसंपया होत्था ॥^१ —सम० स० ४००, सु० १०६

वेउव्विय-संपया—

४६३. पासस्स णं अरहओ इक्कारससयाइं वेउव्वियाणं होत्था ॥
सम० स० ११००, सु० ११४

समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था ॥^२
—सम० स० ७००, सु० ११०

चोद्दस-पुव्वि-संपया—

४६४. संतिस्स णं अरहओ तेणउइं चउद्दसपुव्विसया होत्था ॥
—सम० स० ६३, सु० २

अरहतो ण अरिदुठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणम-
जिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णियाईणं जिणो इव अचितथं
वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था ॥

—ठाणं० अ० ४, उ० ४, सु० ३८१

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणोयस्स अद्धायाइं चोद्दस-
पुव्वीणं संपया होत्था ॥ —सम० स० ३५०, सु० १०५

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सयाणि चोद्दस-
पुव्वीणं होत्था ॥^३ —सम० स० ३००, सु० १०४

ओहिनाणि-संपया—

४६५. अजियस्स णं अरहओ चउणउइं ओहिनाणिसया होत्था ॥
—सम० स० ६४, सु० २

कुन्थुस्स णं अरहओ एक्काणउईं आहोहियसया होत्था ॥
—सम० स० ६१, सु० ३

देव, मनुष्य और अनुरत्नों के बाद में पराजित न होने
वाले चार ती वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा श्रमण भगवान
महावीर के थी ।

वैक्रियलव्वि-संपदा—

४६३. अरहन्त पाश्वंनाय के उग्यारत्त ती शिष्य वैक्रियलव्वि
वाले थे ।

श्रमण भगवान महावीर के सात ती वैक्रियलव्वि सम्पत्त
मुनि थे ।

चतुर्दश पूर्वी सम्पदा—

४६४. अरहन्त शान्तिनाय के तिरानवे ती चतुर्दश पूर्व के
ज्ञाता मुनि थे ।

अरहंत अरिप्टनेमि—(नेमिनाय) के चार ती चौदह पूर्व
धारी श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । वे जिन न होते हुए भी
जिनसदृश थे । जिन की तरह पूर्ण ययायं वक्ता थे और सर्व ब्रह्म
संयोगों के पूर्ण ज्ञाता थे ।

पुरुपादानी अरहन्त पाश्वंनाय के साढ़े तीन ती चौदह पूर्वी
मुनि थे ।

श्रमण भगवान महावीर के तीन ती चौदह पूर्वी मुनि थे ।

अवधिज्ञानी-सम्पदा—

४६५. अरहंत अजितनाथ के चौरानवे ती (नौ हजार चार ती)
अवधिज्ञानी मुनि थे ।

अरहंत कंधुनाय के एकानवे ती (नौ हजार एक ती) अवधि-
ज्ञानी मुनि थे ।

१ ठाणं अ० ४, उ० ४, सु० ३८१ ।

२ गाहाओ—

वेउव्वियलद्धीणं, वीस-सहस्सा य सयछगऽभहिया१ । वीस-सहस्सा चउसयर, इगुणीस-सहस्स अट्ठसया३ ॥१॥

इगुणीस-सहस्स४-अट्ठार, चउसया५ सोल-सहस्स अट्ठसया६ । सतिसय-पनरस७-चउदस८, -तेरस९-वारस-सहस्र दसमे१० ॥२॥

इक्कारस११-दस१२-नव१३-अट्ठ ४, सत्त१५-छ-सहस्स१६, एगवन्न-सया१७ । सत्त-सहस्स सतिसया१८, दुन्नि य सहस्स

नवसयाइं१९ ॥३॥

दुन्नि सहस्सा२० पंच य, सहस्स२१ पनरस सयाइं नेमिम्मि२२ । इक्कारस सय पासे२३, सयाइं सत्तेव वीरजिणे२४ ॥४॥

३ गाहाओ—

चउदसपुव्विसहस्सा, चउरो अद्धऽदुठमाणि य सयाणि१ । वीसऽहिय सत्ततीसा२, इगवीससया य पन्नासा३ ॥१॥

पनरस४-चउवीससया५, तेवीससया६ य वीससय तीसा७ । दो सहस्र८ पनरस सया, सय चउदस१० तेरस-सयाइं११ ॥२॥

सय वारस१२ इक्कारस१३, दस१४, नव१५ अट्ठेव१६ छच्च सय सयरी१७ । दसऽहिय छच्चेव सया१८, छच्च सया

अट्ठसट्ठऽहिया१९ ॥३॥

सय पंच२० अद्धपंचम२१, चउरो२२ अद्धऽहिय२३ तिव्वि य सयाइं २४ । उसभाइजिणिदाणं, चउवस पुव्वीस परिमाणं ॥४॥

मल्लिस्स णं अरहओ अगुणसट्ठिं ओहिनाणिया होत्वा ॥

—सम० स० ५६, सु० ३

नमिस्स णं अरहओ अगुणचत्तालीसं आहोहिपत्तया होत्वा ॥^१

—सम० स० ३६, सु० १

मणपज्जवनाणि-संपया—

४६६. कुन्धुस्स णं अरहओ एककालीति मणपज्जवनाणिसया होत्वा ॥

—सम० स० ८१, सु० २

मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावण्णं मणपज्जवनाणिसया होत्वा ॥^२

—सम० स० ५७, सु० ४

तित्ययरारणं जिण-संपया—

४६७ सुविहिस्स णं पुक्कदंतस्स अरहओ पणत्तरि जिणसया होत्वा ॥

—सम० स० ७५, सु० १

कुन्धुस्स णं अरहओ वत्तीसहिया वत्तीसं जिणसया होत्वा ॥

—सम० स० ३२, सु० ३

पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्वा ॥

—सम० १०००, सु० ११३

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्वा ॥^३

—सम० स० ७००, सु० ११०

अरहंत मल्लिनाथ के उनसठ सौ (पांच हजार नौ सौ)

अवधिज्ञानी मुनि थे ।

अरहंत नमिनाथ के उनचालीस सौ (तीन हजार नौ सौ)

अवधिज्ञानी मुनि थे ।

मनःपर्यवज्ञानो-सम्पदा—

४६६. अरहंत कुन्धुनाथ के इक्यासी सौ (आठ हजार एक सौ)

मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे ।

अरहंत मल्लिनाथ के सत्तावन सौ (पांच हजार सात सौ)

मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे ।

तीर्थंकरों की जिन-सम्पदा—

४६७. अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के पचहत्तर सौ सामान्य

केवली थे ।

अरहंत कुन्धुनाथ के वत्तीस सौ वत्तीस सामान्य

केवली थे ।

अरहंत पार्वनाथ के एक हजार गिष्य केवलज्ञानी

हुए थे ।

श्रमण भगवान महावीर के सात सौ गिष्य केवली हुए थे ।

१ गाहाओ—

अह ओहिनाणि नवईं१, चउनवईं२ छणवइ ३ अट्टणवईं४य । एयाइं सयाइ तओ, इगार५ दस६ नव७ अउतहस्सा८ ॥१॥
धुलसी९ विसयरि१० सट्ठी११, चउपत्त१२ऽडयाल१३ तह य तेयाला१४ । छत्तीसं१५ तीसनया१६, पण१७ धी
छब्बीस१८ धावीसा१९ ॥२॥

अट्टार२० सोल२१ पनरम२२, चउदस२३ तेरस सया२४ अवधिनाणी । सक्केक तित्तिस महं चत्तारि सयाइ सक्के
(— १३३४००), ॥३॥

२ गाहाओ—

वारस-सहस्स तिण्हं, सपसड्ढा सत्त१ पंच२ य दिवड्डं३ । इगदस सड्डं छत्तव४, दस-सहस्सा चउमया नड्ढा५ ॥१॥
दस-सहसा तिणि सया६, नवदिवड्ड-सया७ य अट्ट-सहस्सा८य । पचमय सत्त-सहस्सा, सुविहिजिणे९ नीयने१० येव ॥२॥
छसहस्स दोण्हमित्तो११-१२, पंच सहस्सा य पंच य सयाइं१३ । पच-सहस्सा१४ चउरो, सहस्स सय पंच यऽअहिया१५ ॥३॥
चउरो सहस्स१६ तिणि य, तिन्नेव सया हवति चालोसा१७ । महंनुणं पंचसया, इगदसा अरविण्णिदस्स१८ ॥४॥
सत्तर सयाइ पया१९, पच दस सया२० य वार सय सट्ठी२१ । महंसो२२ सय अट्टजुम२३, पंचेव सया उवीरस्स२४ ॥५॥
.....सब्बे मणनाणि एगलवया य ॥ पणयालीस सहस्सा, पचमया इगदवइअहिया ॥६॥

३ गाहाओ—

वीनसहस्सा उत्तहे१, धीमं बावीन अहव अजियस्स२ । पनरस३ चउदस४ तेरस५, वारस६ इगदस७ दनेव८ ॥१॥
अट्टुस९ नवो१० य, छत्तवइ११ छत्तवइ१२ पंच सड्डा य१३ य । पंचेवइ१४ अट्टपयम१५, चउ सहसा तिणि य सयाइं१६ यया१७
धवीन सया अहवा, धावीन सयाइं हुति कुन्धुस्स१७ । अट्टासीन१८ धावीस१९, उट्ट य अट्टार२० असा२१ ॥२॥
सोलस२२ पत्तर२३ दस सय२४, सत्तेव सया हुवति वीरस्स२५ ॥
एइं केवलिनाजं ॥

अणुत्तरोववाइय-संपया—

४६८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्टसया अणुत्तरोव-
वाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभट्टाणं
उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था ॥

—ठाणं०, अ० ८, सु० ६५३

तित्थयराणसंतरकालो—

४६९. उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवट्टमाणस्स
एगा सागरोवमकोडाकोडी अवाहाए अतरे पणत्ते ॥

—सम० स० (अगको०) सु० १३५

संभवाओ णं अरहतो अभिनंदणे अरहा दसहिं सागरोवम-
कोडिसतसहस्सेहिं वीतिवकंतेहिं समुप्पण्णे ॥

—ठाणं० अ० १०, सु० ७३०

अभिनंदणाओ णं अरहओ सुमती अरहा णवहिं सागरोवम-
कोडिसयसहस्सेहिं वीइवकंतेहिं समुप्पण्णे ॥

—ठाणं० अ० ९, सु० ६६४

धम्माओ णं अरहओ संतो अरहा तिहिं सागरोवमेहिं ति-
चउवभाणपलिओवमऊणएहिं वीतिवकंतेहिं समुप्पण्णे ॥^१

—ठाणं० अ० ३, अ० ४, सु० २२८

उसहाइतित्थयरेहितो पज्जोसवणाकप्पनिज्जूहणसमय-
निरुवणं—

४७०. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कात्तगयस्स - जाव -
सव्वदुवखप्पहीणस्स तिननि वासा अद्धनवमा य मासा विइवकंता,
तओ वि परं एगा सागरोवमकोडाकोडी तिवासअद्धनवमासाहिंएहिं

अनुत्तरोपपातिक सम्पदा—

४६८. श्रमण भगवान महावीर के उत्कृष्ट ८०० ऐसे शिष्य थे
जिनकी कल्याणकारी अनुत्तरोपपातिक देवगति—यावत्—मद्विष्य
में (भद्र) मोक्ष गति निश्चित है ।

तीर्थंकरों का अंतर काल—

४६९ भगवान श्री ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर भगवान
महावीर वर्धमान का अव्यवहित अन्तर एक कोटा-कोटि
सागरोपम का है ।

सम्भवनाथ अरहन्त की मुक्ति के पश्चात् दस लाख
क्रोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर अभिनन्दन अरहन्त उत्पन्न
हुए ।

अभिनन्दन अरहन्त के पश्चात् सुमतिनाथ अरहन्त नव लाख
क्रोड़ सागर के पश्चात् उत्पन्न हुए ।

श्री धर्मनाथ तीर्थंकर के पश्चात् त्रिचतुर्मांश (तीने) पल्योपम
न्यून सागरोपम व्यतीत हो जाने के बाद श्री शांतिनाथ भगवान्
उत्पन्न हुए ।

ऋषभादि अरहन्तों का पर्युषण कल्प निर्युहण समय
निरुपणं—

४७०. कौशलिक अरहन्त ऋषभदेव की निर्वाण हुए—यावत्—
सब दुःखों से मुक्त हुए जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत
हो गये और उसके पश्चात् वयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े

- १ एत्तो जिणंतराई वोच्छं किल उसभसामिणो अजिओ । पण्णासकोडिलवखेहिं सायराणं समुप्पण्णो ॥१॥
तीसाए संभवजिणो, दसहिं उ अभिनंदणो जिणवरिंदो । नवहिं उ सुमइजिणिंदो, उप्पण्णो कोडिलक्खेहिं ॥२॥
नउईह सहस्सेहिं कोडीणं वोलियाणं पउमाओ । नवहिं सहस्सेहिं तओ सुपासभामो समुप्पण्णो ॥३॥
कोडिसएहिं नवहिं उ जाओ चंदप्पहो जणाणंदो । नउईए कोडीहिं सुविहिजिणो देसिओ समए ॥४॥
सीयलजिणो महप्पा, तत्तो कोडीहिं नवहिं निहिट्टो । कोडीए सेयंसो ऊणाइ इमेण कालेण ॥५॥
सागरसएण एगेण, तह य छावट्टिवरिसलक्खेहिं । छवीसइसहसेहिं तओ पुरो अंतरेसु त्ति ॥६॥
चउपण्णाअयरेहिं त्रसुपुज्जजिणो जगुत्तमो जाओ । विमलो विमलगुणोहो, तीसहिं अयरेहिं रयरहिओ ॥७॥
नवहिं अयरेहउणंतो, चउहिं उ धम्मो उ धम्मधुरधवलो । तिहिं ऊणेहिं संती, तिहिं चउभागेहिं पलियस्स ॥८॥
भागेहिं दोहिं कुन्धू पलियस्स अरो उ एगभागेणं । कोडिसहस्सेगेणं वासाणं जिणेसरो भणिओ ॥९॥
मल्ली तिसल्लरहिओ जाओ वासाणं कोडिसहस्सेणं । चउपण्णवासलक्खेहिं सुव्वओ सुव्वओ सिद्धो ॥१०॥
जाओ छहिं नमिनाहो, पंचहिं लक्खेहिं जिणवरो नेमी । पासो अद्धट्ठममयस महियतेसीइसहसेहिं ॥११॥
अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं वीरो जिणेसरो जाओ । इसमअइइसमाणं दोण्हिंपि दुचत्तसहसेहिं ॥१२॥
पुज्जइ कोडाकोडी उसहजिणाओ इमेण कालेण । भणिअं अन्तरदारं, एयं समयाणुसारेणं ॥१३॥

बायालीसाए वाससहस्सेहि ऊणिया वीइक्कंता, एयम्मि समये समणे भगवं महावीरे परिनिब्बडे, तथो वि परं नव वाससया वीइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं अत्तीइमे संबच्छरकाले गच्छइ ।
—कप्प० २००

अजियस्स णं - जाव - प्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसय-सहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअट्ठनवमासाहिय-वायालीसवाससहस्सेहि इच्चाइयं ।
—कप्प० १८६

संभवस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स वीसं सागरो-वमकोडिसयसहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअट्ठ-नवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहि इच्चाइयं ।
—कप्प० १८८

अभिनं वणस्स णं - जाव - प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडिसय-सहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअट्ठनवमासाहिय-बायालीसवाससहस्सेहि इच्चाइयं ।
—कप्प० १८७

मुमदरस णं - जाव - प्पहीणस्स एणे सागरोवमकोडिसयसहस्से वीइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअट्ठनवमासाहियवायालीस-वाससहस्सेहि इच्चाइयं ।
—कप्प० १८६

पउमप्पभस्स णं - जाव - प्पहीणस्स दससागरोवमकोडि-सहस्सा वीइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअट्ठनवमासाहिय-वायालीसवाससहस्सेहि ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइयं ।
—कप्प० १८५

आठ मास कम एक कोटा कोटि नागरोपम का समय बीत चुका, तब श्रमण भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, तदनन्तर भी नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये हैं और अभी दसवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष चल रहा है ।

अजितनाथ अरहन्त को—यावत्—सर्वं दुःखों ने मुक्त हुए पचास लाख करोड़ नागरोपम व्यतीत हो गये, शेष अभी वृत्तान्त जैसा शीतलनाथ अरहन्त के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही जानना चाहिए, इस सम्बन्ध में बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास न्यून समय इत्यादि सभी पूर्ववत् समझना चाहिए अर्थात् उक्त समय को कम करके जो समय आता है, उन समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए ।

संभवनाथ अरहन्त को—यावत्—सर्वं दुःखों से मुक्त हुए बीस लाख करोड़ नागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया है, शेष वर्णन शीतलनाथ अरहन्त के सम्बन्ध में कहे गये वृत्तान्त के अनुसार समझना चाहिए, अर्थात् बीस लाख करोड़ नागरोपम जितने समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास को कम करके जो समय आता है इत्यादि—उस समय महावीर का निर्वाण हुआ ।

अरहन्त अभिनन्दन को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्णतया मुक्त हुए दस लाख करोड़ नागरोपम का समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन शीतलनाथ अरहन्त के प्रसंग में कहे गये अनुसार जानना चाहिये, अर्थात् उक्त दस लाख करोड़ नागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम करने पर जो समय आता है, इत्यादि सभी पूर्ववत् समझना चाहिये ।

अरहन्त मुमतिनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्णतया मुक्त हुए एक लाख करोड़ नागरोपम जितना समय व्यतीत गया, शेष सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये अर्थात्—एक लाख करोड़ नागरोपम जितने समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करने से जो समय आता है, उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

अरहन्त पउमप्पभ को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस हजार करोड़ नागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सर्ववृत्त शीतलनाथ अरहन्त के प्रसंगानुसार समझना चाहिये अर्थात् इस दस हजार करोड़ में से भी समय में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

सुपासस्स णं - जाव - प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसहस्से वीइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासा-हियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइ ।

—कप्प० १८४

चंदप्पहस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगं सागरो-वमकोडिसयं वीइक्कंते, सेसं जहा सीअलस्स, तं च इमं—तिवास-अद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियामिच्चाइ ।

—कप्प० १८३

सुविहिस्स णं अरहओ पुक्कदंतस्स काल - जाव - सव्वदुक्ख-प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीओ वीइक्कंताओ, सेसं जहा सीअलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवास-सहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता इच्चाइ ।

—कप्प० १८२

सीयलस्स णं - जाव - प्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता एयम्मि समए वीरे निव्वुए, तओ वि य णं परं नव वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स असं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १८१

सेज्जंसस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे सागरोवमसए वीइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १८०

वासुपुज्जस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं, वीइक्कंताइं सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७९

विमलस्स णं - जाव - प्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं वीइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७८

अरहन्त सुपाश्वं को—यावत्—सर्वं दुःखों से मुक्त हुए एक हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये, अर्थात् उस एक हजार करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम करके ओ समय आता है उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

अरहन्त चन्द्रप्रभ को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक सौ करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये, अर्थात् इन सौ करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर जो समय आता है, उस समय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि ।

अरहन्त सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस करोड़ सागरोपम का समय व्यतीत हो गया, अन्य सभी वर्णन अरहन्त शीतलनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये, वह इस प्रकार—उक्त दस करोड़ सागरोपम में से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम करने पर जो समय आता है, उस समय भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ इत्यादि ।

अरहन्त शीतलनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ और उसके पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उसके बाद यह दशवीं शताब्दी का अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है ।

अरहन्त श्रेयांसनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक सौ सागरोपम समय व्यतीत हो चुका है, उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी वर्णन भगवान् मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये ।

अरहन्त वासुपूज्य को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए छयालीस सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ और उसके बाद शेष सभी वृत्तान्त अरहन्त मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार जानना चाहिये ।

अरहन्त विमलनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों से पूर्णरूपेण मुक्त हुए सोलह सागरोपम व्यतीत हो गये हैं, और उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए इत्यादि शेष सभी वर्णन अरहन्त मल्लिनाथ के प्रसंगानुसार समझना चाहिये ।

अणंतस्स णं - जाव - प्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं वीइक्कं-
ताइं पन्नट्ठि च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७७

धम्मस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स तित्थि सागरोवमाइं
वीइक्कंताइं पन्नट्ठि च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७६

सत्तिस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे चउत्तामूणे
पलितोपमे वीइक्कंते पन्नट्ठि च, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७५

कुन्नुस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे चउत्तामपलितो-
वमे वीइक्कंते पन्नट्ठि च सयसहस्सा, सेसं जहा मल्लिस्स ।

—कप्प० १७४

अरस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स एगे वात्तकीडि-
सहस्से वीत्तिक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स । तं च एयं—पंचत्तट्ठि
सवणा चउत्तासोइसहस्सा वीइक्कंता तम्मि नमए महावीरो
निष्पुओ, ततो परं नय वात्तसया वीइक्कंता, यसमस्स य वात्त-
सयस्स अयं अतोइमे संवच्छरेकाले गच्छइ । एवं अग्गओ - जाव -
सेयंते ताव दट्ठव्वं ।

—कप्प० १७३

मल्लिस्स णं अरहओ - जाव - प्पहीणस्स पन्नट्ठि वात्तसय-
सहस्साइं चउत्तासोइं वात्तसहस्साइं नय य वात्तसयाइं वीइक्कंताइं,
यसमस्स य वात्तसयस्स अयं अतोइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥

—कप्प० १७२

मुत्तमुत्तव्वमए णं अरहओ वात्तसयसय - जाव - प्पहीणस्स
एवमारत्त वात्तसयसहस्साइं चउत्तासोइं च वात्तसहस्साइं नय य
वात्तसयाइं वीइक्कंताइं, यसमस्स य वात्तसयस्स अयं अतोइमे
संवच्छरे गच्छइ ।

—कप्प० १७१

अरहंत अनन्तनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया
मुक्त हुए सात सागरोपम त्रितना समय व्यतीत हो गया, उनके
वाद पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे भगवती
मल्लि के सम्बन्ध में कहा है वैसे ही समझना
चाहिये ।

अरहन्त धर्मानाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया मुक्त
हुए तीन सागरोपम त्रितना समय व्यतीत हुआ, उनके पश्चात्
पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे भगवती
मल्लि के सम्बन्ध में कहा है वैसे ही यह भी समझना
चाहिये ।

अरहंत शांतिनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया मुक्त
हुए चार भाग कम एक पल्पोपम अर्थात् अर्धपल्पोपम त्रितना
समय व्यतीत हो गया, उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत
हुए, इत्यादि सभी वृत्तान्त जैसा भगवती मल्लि के सम्बन्ध में
कहा है वैसे ही समझना चाहिये ।

अरहंत कुन्नुनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया मुक्त
हुए एक पल्पोपम का चतुर्थ भाग त्रितना समय व्यतीत हो गया ।
उमके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी
कथन भगवती मल्लिनाथ के सम्बन्ध में कहा है वैसे ही यह
समझना चाहिये ।

अरहंत अरनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया मुक्त
हुए एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके । यही मधुपूर्व युग भी
मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा वैसे ही समझना और जानना
चाहिये । यह उस प्रकार कहा है—“अरहन्त ‘अर’ के निर्वाण
गमन के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष में भी मल्लि अरहन्त का
निर्वाण हुआ, जोर अरहन्त मल्लि के निर्वाण के बाद, पैंसठ लाख
चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गए उस गमन भगवान् महावीर
निर्वाण को प्राप्त हुए । उनके निर्वाण के बाद भी भी वर्ष
व्यतीत हो गये, उन पर यह दशवीं शताब्दी का अरनाथ
वर्ष चल रहा है । इसी प्रकार श्रीमाननाथ का दशहजार वर्ष
समझना चाहिये ।

अरहन्त मल्लिनाथ को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया
मुक्त हुए पैंसठ लाख चौरासी हजार भी वर्ष व्यतीत हो गये ।
अब उन पर दशवीं शताब्दी का अरनाथ वर्ष का गमन चल
रहा है ।

अरहन्त मुत्तमुत्तव्वमए को—यावत्—सर्वं दुःखों ने पूर्वतया
मुक्त हुए पैंसठ लाख चौरासी हजार भी वर्ष व्यतीत हो गये ।
अब उन पर दशवीं शताब्दी का अरनाथ वर्ष का गमन चल
रहा है ।

नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स - जाव - प्पहीणस्स पंच वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइवकंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १७०

अरहओ णं अरिठ्ठनेमिस्स कालगयस्स - जाव - सब्बदुक्ख-प्पहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं वीइवकंताइं, पंचासीइमस्स य वाससहस्सस्स नव वाससयाइं वीइवकंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।

—कप्प० १६९

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स कालगतस्स - जाव - सब्बदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइं वीइवकंताइं, तेरसमस्स य वाससयस्स अयं तीसइमे संवच्छरकाले गच्छइ ।

—कप्प० १६०

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स - जाव - सब्बदुक्ख-प्पहीणस्स नव वाससयाइं वीइवकंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरकाले गच्छइ । वायणंतरे पुण - अयं तेणउए संवच्छरकाले गच्छइ इति वीसइ ।

—कप्प० १४७

गणा गणहरा य—

४७१. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा, गणहरा चउरासीइं होत्था । —सम० स० ८४, सु० २

अजियस्स णं अरहओ नउइं गणा, नउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९०, सु० २

सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइं गणा, पंचाणउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९५, सु० १

चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा, तेणउइं गणहरा होत्था । —सम० स० ९३, सु० ३

सुविहिस्स णं पुप्फवंतस्स अरहओ सलसीइं गणा, सलसीइं गणहरा होत्था । —सम० स० ८६, सु० १

सीयलस्स णं अरहओ तेसीति गणा, तेसीति गणहरा होत्था ॥ —सम० ८३

सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठि गणा, छावट्ठि गणहरा होत्था । —सम० ६६

वासुपुजस्स णं अरहओ वावट्ठि गणा, वावट्ठि गणहरा होत्था । —सम० स० ६२, सु० २

धिमलस्स णं अरहओ छप्पणं गणा, छप्पणं गणहरा होत्था । —सम० स० ५६, सु० २

अरहंत नमि को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्ण-तया मुक्त हुए पांच लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर दशवीं शताब्दी का यह अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है ।

अरहंत अरिष्टनेमि को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए, चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये । और उस पर पचासीवें हजार वर्ष के नौ सौ वर्ष भी व्यतीत हो गये । उस पर दशवीं शताब्दी का यह अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है । अर्थात् अरहन्त अरिष्टनेमि को कालगत हुए चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष व्यतीत हो गये ।

पुरुषादानीय पार्श्व अरहंत को कालगत हुए—यावत्—सर्व दुखों से पूर्णरूप से मुक्त हुए बारह सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अब यह तेरह सौ वर्ष का समय चल रहा है ।

श्रमण भगवान महावीर को—यावत्—सर्व दुखों से पूर्ण-तया मुक्त हुए नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तत्पश्चात् यह हजारवें वर्ष के अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है । (वाचनान्तर से तिरानवें वर्ष का समय चल रहा है)

गण और गणधर—

४७१. कौशलिक अरहंत ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे ।

अजितनाथ अरहन्त के नव्वे गण और नव्वे गणधर थे ।

अरहन्त सुपार्श्वनाथ के पंचानवे गण तथा पंचानवे गणधर थे ।

अरहंत चन्द्रप्रभ के तेरानवे गण और तेरानवे गणधर थे ।

अरहंत सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) के छियासी गण और छियासी गणधर थे ।

अरहन्त शीतलनाथ के तेरासी गण और तेरासी गणधर थे ।

अरहन्त श्रियासनाथ के छियासठ गण और छियासठ गणधर थे ।

अरहंत वासुपूज्य के वासठ गण और वासठ गणधर थे ।

अरहन्त विमलनाथ के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ।

अणंतस्स णं अरहओ चउप्पणं गणा, चउप्पणं गणहरा होत्या ।
—सम० स० ५४, सु० ४

धम्मस्स णं अरहओ अउयालीसं गणा, अउयालीसं गणहरा होत्या ।
—सम० स० ४८, सु० २

संतिस्स णं अरहओ नउइं गणा, नउइं गणहरा होत्या ।
—सम० स० ६०, सु० २

कुन्नुस्स णं अरहओ सत्तत्तीसं गणा, सत्तत्तीसं गणहरा होत्या ।
—सम० स० ३७, सु० २

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स अट्ठ गणा, अट्ठ गणहरा होत्या, तं जहा—

सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे वंभयारि य ।

सोमे त्तिरिधरे चेय, वीरभद्दे जसे इ य ॥१॥^१

—सम० स० ८, सु० ८ । कप्प० १५६

समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्या, तं जहा—
गोदासगणे, उत्तर—वत्तिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्वाइय-
गणे, विसववाइयगणे, कामड्डिठयगणे, माणवगणे, कोडियगणे ॥

—ठाणं० अ० ६, सु० ६८०

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एककारस गणहरा होत्या,
तं जहा—इंयभूतो अग्गिभूतो वासुभूतो विअत्ते सुहम्मि मंडिए
मोरियुत्ते अकंपिए अयलभाया मेतज्जे पभासे ।^२

—सम० स० ११, सु० ४

महावीरस्स गणा-गणहरा य—

४७२. तेणं कालेणं तेणं समण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स
नव गणा, एककारस गणहरा होत्या ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं सुच्चइ—समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स नव गणा, एककारस गणहरा होत्या ?

१ वासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्या, तं जहा—सुभे, अउयालीसे, वसिट्ठे, वंभयारी, सोमे,
त्तिरिधरिणे, वीरिण, भद्दज्जे ॥

— ठाण ८० ८, सु० ६१७ ।

२ गाहाओ—

फुनगीइ १ पंचनउई २ अउतरं मोलसुतर मय ३, ४, ५ य । सत्तहिंयं ६ पणनउई ७ वेणउई ८ अट्ठवीरइ ९ अ १०।।
एककारसोई १० छावतरी ११ अ, छावट्ठि १२ मत्तवण्णा १३ य । पण्णा १४ उपाणीया १५ उपाणीया १६ येव । पलीउा १७।।
तिलीस १८ अट्ठवीरिया १९ अट्ठारस २० येव उउव मत्तरस २१ ।

एककारस २२ एव २३ मय २४, मयाण मयं विविदाणं ॥६॥

—सम० स० ८, सु० ६१७ ।

एककारस उ अउतरा, विविदाणं वीरस उपाणीय पु । अउतरा अउत एव, अउतरा अउतरा अउत ।

—सम० स० ८, सु० ६१७ ।

अरहंत अनन्त के चउवन गण और चउवन गणधर से ।

अरहंत धमनाय के अउतालीस गण और अउतालीस गण-
धर से ।

अरहंत सांतिनाय के नव गण और नव गणधर से ।

अरहंत कुन्नुनाय के तीस गण और तीस गणधर से ।

प्रख्यात पुरुष अरहंत पार्वनाय के आठ गण और आठ
गणधर थे, यथा—

१. शुभ, २. सुभघोष, ३. वसिष्ठ, ४. ब्रह्मचारी, ५. सोम,
६. श्रीधर, ७. वीरभद्र, ८. यश ।

श्रमण भगवान महावीर के नौ गण थे, वे इस प्रकार हैं—
गोदास गण, उत्तर वत्तिस्सह गण, उद्देह गण, चारण गण,
उर्ध्ववातिक गण, विश्ववादी गण, कामाडिक गण, मानव गण,
कोटिक गण ।

श्रमण भगवान महावीर के इग्यारह गणधर थे, यथा—
इन्दुभूति, अग्निभूति, वासुभूति, व्यास, सुपमां, मंडितुप,
मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतायं, प्रभाग ।

महावीर के गण और गणधर

४७२. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के नौ गण
और ग्यारह गणधर थे ।

भगवद् ! यह कित दृष्टि से कहा जाता है कि श्रमण
भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ।

समणस्स भगवओ महावीरस्स—१ जेट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

२ मज्झिमे अणगारे अग्गिभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

३ कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

४ थेरे अज्जवियत्ते भारद्वाजे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

५ थेरे अज्जसुहम्मे अग्गिवेसायणे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,

६ थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठे गोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ,

७ थेरे मोरियपुत्ते कासवगोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ,

८-९ थेरे अकंपिए गोयमे गोत्तेणं, थेरे अयलभाया हरियायणे गोत्तेणं ते दुत्ति वि थेरा तित्ति तित्ति समणसयाइं वाइंति,

१०-११ थेरे मेयज्जे, थेरे य पभासे एए दोत्ति वि थेरा कोट्ठिना गोत्तेणं तित्ति तित्ति समण-मयाइ वाएइति,

से एतेणं अट्ठेण अरुजो ! एवं सुच्चइ-समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एवकारस्स गणहरा होत्था ।

—कप्पसुत्तं

महावीरगणहराणं अगारवासकालो—

४७३. थेरे णं अग्गिभूई सत्तनालीस वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ४७, सु० २

थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० स० ६५, सु० २

मंडियपुत्तस्स सामणपरियाओ—

४७४. थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामणपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे । —सम० स० ३०, सु० २

१. श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार पाँच सौ श्रमणों को वाचना देते थे ।

२. द्वितीय शिष्य अग्निभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी ।

३. तृतीय शिष्य लघु अनगार वायुभूति गौतम गोत्रीय ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी ।

४. चतुर्थ शिष्य आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीय स्थविर ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी ।

५. पाँचवें शिष्य आर्य सुधर्मा नामक अग्निवैशायन गोत्रीय स्थविर ने पाँच सौ श्रमणों को वाचना दी ।

६. छठे शिष्य मण्डितपुत्र नामक वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी ।

७. सातवें शिष्य मौर्यपुत्र नामक काश्यप गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी ।

८. आठवें शिष्य अकंपित नामक गौतम गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी ।

९. नौवें शिष्य अचलभ्राता नामक हरितायन गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी ।

१०. दशवें शिष्य मेतार्य नामक कौडिन्य गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी ।

११. ग्यारहवें शिष्य प्रभास नामक कौडिन्य गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी ।

एतदर्थं हे आर्यो ! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ।

महावीर के गणधरों का गृहवास काल—

४७३. स्थविर अग्निभूति सैंतालीस वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित एवं प्रव्रजित हुए ।

स्थविर मौर्यपुत्र पैसठ वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

मण्डितपुत्र की श्रामण्यपर्याय—

४७४. मण्डितपुत्र गणधर तीस वर्ष तक श्रमण जीवन में रहकर सिद्ध—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

४७८. परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया ॥६॥

इन्द्रभूती गोयमो—

४७९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे गोयमसगोत्तेण सत्तस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगाधिघ-सपम्होरे उगतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरं घोरगुणे घोरतवस्सी घोरवंभचेरवासी उच्चूढत्तरीरे संखित्त-विउल्लतेयलेसे चोहसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्डंजाणू अहोसिरे ज्ञाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥७॥

४८०. तए णं से भगधं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए जायकोऊहल्ले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोऊहल्ले समुप्पन्नसड्ढे समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोऊहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं—

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदई नमंसइ, नमसित्ता णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सुसमाणे णमंसमाणे अभिसुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी ।

—भगवई स० १, उ० १, सु० ४

—ओव० सु० ६२, ६३

४८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥१॥

४८२. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ? ॥२॥

४८३. समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अभिगभूई

४७८. परिपदा निकमी, धर्मोदेश दिया पश्चात् परिपदा यास लोटी अर्थात् राजगृह नगर के सभी जन धर्मोपायें गये, धर्मोदेशना सुनी और पुनः अपने घरों की लीटे ॥६॥

इन्द्रभूति गीतम—

४७९. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के गेट्ठ (प्रथम) शिष्य, गीतम गोत्रीय, समनपुरस्ससंस्थान सम्पन्न, सात हाथ की ऊँचाई वाले, वज्र-रूपम संतनन वाले, विगुद्ध मुग्धों की चमचमाती कांति वाली कमल केसर के समान गौर धर्ण वाले उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्ततपस्वी (व्यापिधि तपस्वा तपस्वते वाले) महान तपस्वी, उदार, धीर धीर गुण सम्पन्न, धीर तपस्वी, धीर ब्रह्मचर्यवासी, उदकृष्ट शरीरी (शरीर के प्रति ममत्व का सर्वथा त्याग करने वाले), अतर्हित विनिन्द-तपस्या से प्राप्त विपुल तेजो लेखा वाले, चतुर्दश पूर्वों के ज्ञाता चार ज्ञानों से सम्पन्न (मति आदि मनः पर्यवज्ञान पर्यन्त चार ज्ञानों से युक्त) सर्व अक्षर संनिवेश संयोगवेदी इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर के अदूर-सामन्त में—न अति दूर और न अति निकट—प्रवायोग्य स्थान में घुटनों को ऊँचा करके और मस्तक को नमित करके ध्यानरूपी कोष्ठक में विराज-मान—ध्यानस्थ—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ॥७॥

४८०. तत्पश्चात् जातश्रद्धा—तत्त्व निर्णय करने के लिए उत्पन्न वांछा वाले, जात संशय वाले—तत्त्व निर्णय हेतु जिज्ञासु, जात कुतूहल—उत्पन्न उत्कंठा उत्सुकता वाले, उत्पन्न श्रद्धा, उत्पन्न संशय, उत्पन्न कुतूहल सजात श्रद्धा, संजात संशय, संजात कुतूहल, समुत्पन्न श्रद्धा, समुत्पन्न संशय, समुत्पन्न कुतूहल वाले वे भगवान् गीतम अपने स्थान से उठे, उठकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर को;

तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं, नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर से व उपासना एवं नमस्कार करके विनय से नमित मस्तक ही हाथ जोड़ बैठकर इस प्रकार बोले ।

४८१. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ती गण और ग्यारह गणधर थे ॥१॥

४८२. हे भदन्त ! यह किस दृष्टि से कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के ती गण और ग्यारह गणधर थे ? ॥२॥

४८३. श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गीतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार पाँच सौ श्रमणों की वाचना देते हैं, मध्यम

इइ गणहराइथेरावली समत्ता ॥^१—कप्पं० सु० २०१-२०५

इस प्रकार गणधरादि स्वधिरावली समाप्त होती है ।

अच्छेरगा—

अच्छेरक (आश्चर्य, अपूर्व घटना)—

४६२. दस अच्छेरगा पणत्ता, तं जहा—गाहाओ—

४६२. आश्चर्य दस प्रकार के हैं, यथा—

१. उवसग

१. उपसर्ग—भगवान महावीर की कवली अवस्था में भी गोशालक ने उपसर्ग किया ।

२. गवमहरण

२. गर्भहरण—हरिणगम्पी देव ने भगवान महावीर के गर्भ को देवानन्दा की कुक्षी से लेकर त्रिशला माता की कुक्षी में स्थापित किया ।

३. इत्थीतित्थं

३. स्त्री-तीर्थकर—भगवान मल्लीनाथ स्त्रीलिंग में तीर्थकर हुए ।

४. अभाविद्या परिसा

४. अभावित परिपदा—केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् भगवान महावीर की देशना निष्कल गई, अर्थात् किमी ने संवररूप धर्म स्वीकार नहीं किया ।

५. कण्हस्स अवरकंका

५. कृष्ण का अपरकंका गमन, कृष्ण वासुदेव द्रोपदी को लाने के लिए अपरकंका नगरी गये ।

६. उत्तरणं चंदसूरणं ॥१॥

६. चन्द्र-सूर्य का आगमन—कोशाम्बि नगरी में भगवान महावीर की वन्दना के लिए शाश्वत विमान सहित चन्द्र-सूर्य आये ।

७. हरिवंसकुलुप्पत्ती

७. हरिवंश कुलोत्पत्ति—हरिवर्ष क्षेप के युगलिये का भरत क्षेत्र में आगमन हुआ और उससे हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई । युगलिये का निरूपक्रम आयु घटा और उसकी नरक में उत्पत्ति हुई ।

८. चमरुप्पाओ य

८. चमरोत्पात—चमरेन्द्र का सीधर्म देवलोक में जाना ।

९. अट्ठसयसिद्धा ।

९. एक सौ आठ सिद्ध—उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में एक सौ आठ सिद्ध हुए ।

१०. अस्संजएसु पूआ

१०. असंयत पूजा—आरम्भ और परिग्रह के धारण करने वाले असंयतजनों की पूजा होना ।

दस वि अणंतेण कालेणं ॥२॥

ये दस आश्चर्य अनन्त काल के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल में हुए ।

—ठाणं० अ० १०, सु० ७७७

काल में हुए ।

॥ तित्थयर सामणं समत्तं ॥

॥ तीर्थकर-सामान्य समाप्त ॥

□ □

१ “अम्हाणमइपाईणायरिसे एत्तिओ चेव पाढो लब्भइ जो ‘अज्जभइवाहुणा इमस्स रयणा कया’ अस्स पुट्ठि करेइ ।” इति मुनिवरश्रीपुष्पभिक्षुसम्पादिते ‘कप्पसुत्त’ ग्रन्थे टिप्पनकम् ॥

दं. भरहचक्कवट्टिचरियं

दं. भरतचक्रवर्ती चरित्र

भरहचक्कवट्टिस्स वण्णओ—

भरत चक्रवर्ती का वर्णन—

४९३. तस्य णं विधीयाए रायहाणीए भरहे पामं राया चाउरंत-
चयकयट्टी समुत्ताज्जत्था, महावाह्मियत-महंत-मलय-मदर-जाय-
रउजं पसात्तेमाणे विहरइ ।

४९३. उन विनीता नगरी में भरत नामक महानगर था वहीं
राजा हुआ, वह महाहिमयत बड़ा महालय में लड़ाई का प्रभाव
अचल प्रतापनापी था ।

विइओ गमो रायवण्णगस्स इमो—

राजा के वर्णन का द्वितीयमम उम प्रहार है—

४९४. तस्य अनेउज्जकालयामंतरेण उप्पज्जए जसंसी उत्तमे-
अभिजाए तस-वीरिय-गरयकम-गुणे पमत्तव-वण्ण-मर-सार-मघघण
तणुम-बुद्धि-धारण-मेहा-मंठाण-भीलवग्गई पहाण-गारव-च्छायागइए
अणेग-वपण-वपहाणे तेव-जाउ-वल-वीरियवुत्ते अनुत्तिरघण-निधिय-
सोह-मंकल-गाराय-वइर-उसह-संपयण-वेहधारी

४९४. यहाँ (विनीता राजधानी में) जगकर वर्षों का समय राजा
के परधान पदपयी, उत्तम और अभिजात गुण प्राप्त, जो न जाने
और पराक्रम गुण युक्त, प्रशस्तनीय रत्न रत्न, सुदूर दाला का प्रहार
संहननवाला, भूषण (कुमार) बुद्धि, धारणा शक्ति तथा प्रभाव का,
दार्ढ्य शरीर मर्यादा उत्तम नीतवान एवं प्रहृष्टिवाला, प्रभाव-
मान मनोहर गौरव, क्षान्ति गतिगता, अनेक प्रकार के प्रभाव-
शाली अचल बोलने वाला, नेत्र-जासु-रत्न-वीर्य युक्त विभव प्राप्त
जोहो की शक्ति के समान सुदूर प्रभाव प्रभावशाली अचल गुण
शरीर धारण करने वाला.

१ जस, २ गुण, ३ भिगार, ४ पद्धमाणग, ५ महासण, ६ तंघ,
७ छत्त, ८ धीयणि, ९ पडाग, १० चरक, ११ पंगल, १२ मुसल,
१३ रह, १४ सोत्थिय, १५ अंजुम, १६-१७ अंदाइच्च, १८ अग्गि,
१९ जूय, २० नागर. २१ इंदग्गय, २२ पुहयि, २३ पउत्त, २४
कुम्भर, २५ गीहासण, २६ वंड, २७ कुम्भ, २८ गिरियर, २९ तुरग-
पर, ३० धरमउट्ट, ३१ कुण्डल, ३२ पंदावत्त, ३३ अणु, ३४ सोत्त,
३५ गाणर, ३६ जयपिमाज-अणेग-३७ जयपयत्त-मुत्तिवत्त-रित्त-
कर-चरप-वेवप्राण, उट्टामुत्त-भीम-जाल-मुत्तुमात्त-मंघट्ट-मउप्रायत्त-
पगाप-भीम-विरह्व-गिरियर-उत्त-उत्त-विउलवट्टे.

तुलगांधी छत्तीसाहिय-पसत्य-पस्विधगुणोहिं बुत्ते, अशोचिच्छणाय-
पत्ते, पागड-उभय-जोणी, धिसुद्ध-णियम-कुलमयण-गुणनधि, चंये
इय सोमयाए णयण-मण-णिवुद्धकरे, अशोभे सागरो य धिमिए
धणवइ एव भोग-समुद्यय-सद्वययाए सगरे अपराइए परम-धियकन-
गुणे अमरवइ-समाण-सरिसद्धये, मणुमधई भरह-नाकवट्टी भरहं
धुङ्गइ पणहुसत्तू ॥४२॥

चक्ररयणुपपत्ती—

४६५. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ आउह-घर-
सालाए दिव्वे चक्ररयणे समुपपज्जस्या ।

तए णं से आउह-घरिए भरहस्स रण्णो आउह-घरसालाए
दिव्वं चक्ररयणं समुपपणं पासइ, पासित्ता हट्ट-तुट्ट-चित्तमाणंदिए
णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए जेणा-
मेव दिव्वे चक्ररयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिवयुत्तो
आयाहियण-पयाहियणं करेइ, करित्ता करयल-जाव-कट्टु चक्ररयणस्स
पणामं करेइ, करित्ता आउह-घरसालाओ पडिणिवलमइ पडिणिवल-
मित्ता जेणामेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणामेव भरहे राया
तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-जाव-जएणं विजएणं
वट्ठावेइ, वट्ठावित्ता एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुपियमाणं आउहघरसालाए दिव्वे चक्ररयणे
समुपपण्णे तं एयणं देवानुपियमाणं पियट्ठयाए पियं णिवेएमि,
पियं मे भवउ ।”

४६६. तए णं से भरहे राया तस्स आउहघरियस्स अंतिए एयमट्ठं
सोच्चा णिसम्म हट्ठ-जाव-सोमणस्सिए वियसिय-वर-कमल-
णयण-वयणे, पयल्लिअ-वर-कडग-तुडिअ-केऊर-मउउ-कुण्डल-हार-

मोगरा का पुत्र) जाई (माचनी) हूरी खंडे धरक पुत्र नाम-
केसर मारम (कस्तूरी) ही मध के समान है, राजाओं के पास
प्रशंसनीय असीम गुणों के मुक्त अति-शुद्ध प्रदूत, प्रजापति
विमकी प्रजा का उत्पन्न प्रोधा करना समझ नहीं है) एक
छत्र राज्य का स्वामी, प्रत्यक्ष उभय कुल वाचा (विमका मातृ-
पितृ पत्रा विख्यात है), अपने विदुष्य वृत्तकते मणमण्डल में
पूर्ण चंद्र के समान योग्य, जेठ और मज ही मानदशापक, समुद्र
के समान निराल स्थिर, स्थिर-रत्न, (निर्मलमय, सुख के
समान सभी प्रकार की भोगोभोग सामग्री और समर्पित का
भोग करने वाला, युद्ध में मर्देव प्रारामित, पराक्रम कुम्भुक
इन्द्र के समान रूप वाला, सोःसंवासी, नराधिन (राजा) प्रसष्ट
शत्रु (विमका कोई शत्रु न हो) भरत जैसे का वास्तव कर्ता भरत
नामक चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ था ।

चक्ररत्न की उत्पत्ति—

४६५. राज्य करते समय उस भरत राजा की आयुधशाला में
किसी एक दिन दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ ।

तब भरत राजा की आयुधशाला के रक्षक ने समुत्पन्न चक्र-
रत्न को देखा, देखकर हर्षित, तुष्ट, आनंदित एवं नर्दित हुआ
प्रीतियुक्त मन वाला होने से उसके चित्त में मूढ़ ही प्रसन्नता हुई
और हर्ष के कारण उसका रोम-रोम घड़ा हां गवा अर्थात् हर्षो-
तिरेक से सारा शरीर रोमांचित हो गया. रोम-रोम में हर्ष की
लहर दौड़ गई. हृदय हर्ष से व्याप्त हो गया और जहाँ दिव्य
चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था, उस ओर आया, वहाँ आकर उस
चक्ररत्न की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके हाथ
जोड़कर नम्रभाव से चक्ररत्न को प्रणाम किया, प्रणाम करके
आयुधशाला से बाहर आया, बाहर आकर जहाँ वाल उपस्थान
शाला (राजा के बाहर बैठने का स्थान) थी, जहाँ भरत राजा
बैठा था वहाँ उसके पास गया, जाकर हाथ जोड़—यावत्—
जय विजय घोष से बधाई देता है और बधाई देकर इस प्रकार
बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! आपकी आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न
उत्पन्न हुआ है, यह बात आप देवानुप्रिय को प्रीतिदायक
हो, प्रिय लगे, इसीलिये मैं यह प्रिय बात आपसे निवेदन
करता हूँ ।’

४६६. तब राजा भरत आयुधशाला के रक्षक से इस बात को
सुनकर समझकर अत्यन्त हर्षित हुआ—यावत्—विशेष प्रसन्न
हुआ जिससे उसके कमल जैसे नेत्रयुगल एवं मुख विकसित
हो गये तथा हाथों में पहने हुए श्रेष्ठ कटक त्रुटित केयूर,
मस्तक का मुकुट कानों के कुण्डल आदि आभूषण चंचल हो गये,

पडिसुणंति, पडिसुणित्ता भरहस्स० अंतियाओ पडिणिव्वमंति, पडिणिव्वमित्ता विणीयं रायहारिण-जाव-करेत्ता कारवेत्ता य तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

४६८. तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजाला-कुलाभिरामे विचित्त-मणिरयण-कुट्टिम-तले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयण-भत्ति-चित्तंसि ण्हाणपीठंसि सुहणिसण्णे, सुहोद-एहि गंधोदएहि पुष्पोदएहि सुद्धोदएहि य पुण्णे कल्लाणग-पवर-मज्जण-विहीए मज्जिए तस्य कोउय-सएहि बहुविहेहि कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंध-कासाइय-लूहियंगे, सरस-सुरहि-गोसीस-चंदणाणुलित्तंगत्ते, अहय-सुमहाघ-दूस-रयण-सुसंबुडे, सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्ध-मणि-सुवण्णे कप्पिय-हारद्ध-हार-तिसरिय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्त-सुकयसोहे,

पिणद्ध-गेविज्जग-अंगुलिज्जग-ललियगय, ललिय-कयाभरणे, णाणा-मणि-कडग-तुडिय-थंभियभुए-अहिय-ससिसरीए, कुण्डल-उज्जो-इयाणणे मउड-दित्तिसरिए, हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे, पालंब-पलंबमाण-सुकय-पड-उत्तरिज्जे, मुट्ठिया-पिगलंगुलीए, णाणा-मणि-कणग-विमल-महरिह-णिउणोयविय-मिसिमिसित-विरइय-सुसि-लिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीरवलए ।

किं बहुणा ?, कप्परुक्खए चेव अलंकिए-विभूसिए णरिडे सकोरंट - जाव - चउ-चामर-वाल-

कहकर उस आज्ञा को एव वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके भरत राजा के पास से बाहर आते हैं, बाहर आकर विनीता राजधानी को आज्ञानुसार सुशोभित करके एवं करवाके आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं ।

४६८. इसके बाद भरत राजा मज्जणगृह (स्नान घर) है उस ओर गया, उस ओर जाकर मज्जणगृह में प्रविष्ट हुआ, उसमें प्रविष्ट होकर मुक्ताजालों से युक्त गवाओं से दर्शनीय एवं अनेक मणि रत्नों से मंडित रमणीय कुट्टिमतल (फर्श) वाले स्नान मंडप में रखे हुए अनेक प्रकार के मणि रत्नों से निर्मित चित्र-विचित्र चित्रामों से शृंगारित स्नान पीठ पर सुखपूर्वक बैठता है, सुखपूर्वक बैठकर वह राजा भरत शुभ उदक (उत्तमजल) से गंधोदक से, पुष्पोदक से और शुद्ध उदक से पूर्ण कल्याणकारी, उत्तम मज्जन विधि से स्नान करता है, तब उस समय उसे सैंकड़ों कौतुक दिखाये गये, कल्याण कर श्रेष्ठ स्नान करने के पश्चात् पक्षमल सदृश सुकुमाल काषायिक गंध से सुगन्धित वस्त्र खण्ड (तौलिया) से शरीर को पोंछा, पोंछने के बाद सरस सुरभित गोशीर्ष चंदन का लेप किया, अखंड-महामूल्यवान् दृष्य रत्न (श्रेष्ठ उत्तम वस्त्र) से उसे ढाँका अर्थात् सुन्दर वस्त्र पहने, शुचि पवित्र माला पहनी तथा कुंकुम आदि वर्तकों का विलेपन किया गया, मणि-सुवर्ण से निर्मित हार, अर्घहार, तिसरि-रिक हार, पैरों तक लटकने वाला पालव (झूमका), कटिसूत्र- (करधौनी, कंदोरा) आदि आभूषण यथास्थान शरीर पर धारण किये,

गले में श्रवणिक (कांठा) अंगुलियों में अंगुठियाँ पहनीं मस्तक के वालों में आभरण रूप पुष्प धारण किये, नाना प्रकार की मणियों से खचित कटक (कड़ा) त्रुटित (वाजुवन्द) आदि आभूषण हाथों में पहने जिससे उसकी शोभा-कांति द्विगुणित हो गई, कुण्डलों की मनोहर कांति से उसका मुखमंडल चमचमाने लगा, मूकुट की दीप्ति से मस्तक दैदीप्यमान हो गया, हारों से आच्छादित उसका वक्षस्थल दर्शकजनों को आनन्दप्रद बन गया, लम्बे और लटकते हुए सुन्दर वस्त्र से निर्मित उत्तरीय (दुपट्टा) कंधों पर शोभित है, मुद्रिकाओं से जिसकी अंगुलियाँ पिगलवर्णी (पीले रंग की) दिखती हैं, अनेक मणियों से खचित, महामूल्य-वान, कुशल कारीगरों के द्वारा बनाया हुआ अत्यन्त मजबूत सुन्दर घाट (आकार) वाला, प्रशस्त सुवर्ण का वीरवलय हाथ में पहना ।

इससे अधिक और विशेष क्या कहा जाये ? कल्पवृक्ष की तरह अलंकारों से विभूषित राजा भरत के ऊपर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र—यावत्—दोनों पार्श्वों में (आजूवाजू में) चार चामर ढोरे जा रहे थे, जिनके बाल उसका स्पर्श करते

बोद्धयंते मंगल-जय-जयमह-रुयालोए, अणंग-गणनायग-वट्टणायग
- जाय - नूय-संधिवाल-संठि संपरिषुडे, धवल-महामेह-जिग्गए
द्वय - जाय - सतिध्व विपवंनणे, णरवट्टे धूव-तुप्प-गंध-मत्त-
हृत्वगए मज्जनघराओ पडिजिक्कमट्ट, पडिजिक्कमिता वेजेय
धाउट्टपरमात्ता जेणेय चक्करयणे नेणामेय पहारेत्थ गमणाए ।

ये, दमैकज्ज मगलमय जय-जय म म का उ-वागम मर रणे ए
ओर जनेक गणनायक उट्टणायक—वाउट्ट—दूत परिपार मीट
ने पिरा दूना या, उम ममय वट्ट ऐव सोमित ती वटा का मया
श्रेत यणे वदि मयायणे के मट्टर विट्ट उतरे वट्ट ती म मया
वट्ट - राधिय ज्ञाणे मे मगलित एव पुट्टी म मिया दूत म म म म
मे मानाणे को पाने दूत म्मानाउट्ट मे म्माना उम म म म म
निकल कर जिन ओर जायु उट्टा-ता मी ओर उम म म म म म म
वा उमी ओर जाने मे निज उट्टा दूरा

४२६. तए णं तस्म भरहस्म रण्णो बहुवे ईसर-वभिर्दोओ अप्पेगइआ
पउमहृत्वगया अप्पेगइया उप्पलहृत्वगया- जाय-अप्पेगइआ सय-
महरस-वत्त-हृत्वगया भरहं रायाणं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति ।

४२६ जय वट्ट राया भरह वलन मी उट्टा दूत म म म म
ईसर जाइ जनेक राय पुग्ग, जिनमे म्माना म म म म म म
निये दूए ये, किये मी उट्टा म म म म म म—वाउट्ट—म म म म
म
पीछे पीछे करणे म म ।

तए णं तरस भरहस्म रण्णो बहुदोओ—

जय राया भरह उम रायपुग्ग मे म म म म म म म म म म

(गाहाओ) पुग्गजा धिलाइ वामणिउओओ मयरी वउत्तिया
जोणिय-उट्टविवाओ इत्तिणिय-वाहगिणियाओ
सात्तिय-सउत्तिय-रमितो मिहत्ति तहं जारयो पुत्तियं
पववणि वत्तिय मुहंओ मयरीओ पारसीओ प

अप्पेगइआओ तालिअंटहत्थगयाओ, अप्पेगइयाओ धूवक्कड्डु-
चळुअ-हत्थगयाओ भरहं रायाणं पिट्टओ पिट्टओ अणुगच्छति ।

५००. तए णं से भरहे राया सव्विड्डीए सव्वजुईए सव्ववलेणं
सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूसाए सव्वविभूईए सव्व-वत्थ-
पुष्फ-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडिय-सद्-सण्णिणाएणं महया
इड्डीए - जाव - महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-
पणव, पडह-भेरि-अल्लरि-खरमुहि-मुरय-मुडंग-कुट्टुहि-णिग्घोस-णाइ-
एणं जेणेव आउह-घरसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता
आलोए चक्करयणस्स पणामं करेइ, करित्ता जेणेव चक्करयणे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता लोमहत्थयं परामुसइ, परामुसित्ता
चक्करयणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ,
अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिपइ, अणुलिपित्ता
अग्गेहि वरेहि गंधेहि मल्लेहि अ अच्चिणइ, पुष्फारुहणं मल्ल-
गंध-वण्ण-सुण्ण-वत्थाहरुहणं आभरणाहरुहणं करेइ, करित्ता अच्छेहि
सण्हेहि सेएहि रययामएहि अछरसातंडुलेहि चक्करयणस्स पुरओ
अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ, तं जहा—

१ सोत्थिय, २ सिरिवच्छ, ३ णंदिआवत्त, ४ वट्टमाणग,
५ भद्दासन, ६ मच्छ, ७ कलस, ८ दप्पण । अट्ठमंगलए आलि-
हित्ता काऊणं करेइ उबयारंति किं ते—

पाडल-मल्लिअ-चंपग-असोग-पुण्णाग-चूअमंजरि-णवमालिअ-
वकुल-तिलग-कणवीर-कुन्द-कोज्जय-कोरंटय-पत्त-दमणयवर-सुरहि-
सुगंध-गंधिअस्स कयग्गह-गहिअ-करदल-पठ्ठट्ठ-विप्पमुक्कस्स दस-
द्धवण्णस्स कुमुगिगरस्स तत्थ चित्तं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहि-
निगरं करेत्ता चंदप्पम-वडर-वेहलिअ-विमलदंडं कंचण-मणि-रयण-
भत्तिचित्तं कालागुरु-पवर-कुन्दुहक्क-तुरुक्क-धूव-गंधुत्तमाणुविट्ठं च
धूमवाट्टि विणिम्मुअंतं वेहलिअमयं कड्छुअं पगहेत्तु पयते धूवं
दहइ, दहित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसयकइ, पच्चोसविकत्ता वामं
जाणुं अंचेइ - जाव - पणामं करेइ, करित्ता आउहघरसालाओ

कितनीक दासियों के हाथों में तालपत्र (पंखा) था, कितनीक
दासियाँ धूपदान लिय हुए थीं—भरत राजा के पीछे-पीछे चल
रही थीं ।

५००. इस प्रकार राजा भरत अपनी समस्त ऋद्धि, समस्त वृत्ति,
समस्त सेना, समस्त समुदाय, आदरणीयजनो, गृंगार, वैभव,
समस्त वस्त्र, पुष्प, गंध, अलंकारों की शोभा, सभी प्रकार के
वाद्यों के शब्द निनाद, महान ऋद्धि-समृद्धि—यावत्—एक साथ
बड़े जोर से वजाय जा रहे श्रेष्ठ शब्द प्रणव (डोल) पटह
(नगाड़ा) भेरी, झल्लरी (झालर) खरमुख (एक प्रकार का वाद्य
विशेष) मूरज, मृदंग, दुन्दुभि आदि की ध्वनियों के साथ चलते
हुए जहाँ आयुधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर चक्ररत्न के
देखते ही प्रणाम किया, प्रणाम करके जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ
आया, वहाँ आकर मयूरचिह्न हाथ में ली, मयूरचिह्न को लेकर
चक्ररत्न को पाछा, पीछेकर दिव्य जलधारा द्वारा उसका सिंचन
किया, सिंचन करके, श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन से लप किया, अनुलेप
करके, श्रेष्ठ नूतन गंधमालाओं से उसकी पूजा की, पुष्प चढ़ाये,
मालायें, सुगन्धित द्रव्य, वर्णक, चूर्ण, वस्त्र चढ़ाये, आभरण
चढ़ाये, पुष्पादि चढ़ाकर उस चक्ररत्न के समक्ष स्वच्छ, स्निग्ध,
श्वेत, रत्नमय अक्षत तंदुलों—चावलों-से अष्ट मंगल द्रव्यों का
आलेखन किया, यथा—

१. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्दावर्त, ४. वर्धमान, ५.
भद्रासन, ६. मत्स्य, ७. कलश, ८. दपर्ण । अष्ट मंगल द्रव्यों
का आलेखन करके योग्यकृत्य पूर्वक उपचार किया, वह इस
प्रकार—

पाडल (गुलाब), मल्लिका (मालती), चम्पक, अशोक,
पुन्नाग (सुपारी), आम्रमंजरी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक,
कनेर, कुन्द (मोगरा), कुब्जक, कोरट, पत्र (मरुवा), दमनक
इन सभी के सुगन्धित एवं उत्तम रंग विरगे वर्ण वाले पुष्पों को
हाथ में लेकर चढ़ाया और इतनी अधिक मात्रा में चढ़ाया कि
इन हाथों चढ़ाये पचरंगी पुष्पों का चक्ररत्न के सामने आश्चर्य-
कारी जानु प्रमाण (धुटनों जितना ऊँचा) ढेर बना दिया,
तदनन्तर निर्मल चन्द्रकात. वज्र (होरा) वैडूर्य मणियों से निर्मित
दण्ड वाले एवं जिसमें सुवर्ण मणिरत्नों द्वारा अनेक प्रकार के
चित्र बनाये गये हैं और जो श्रेष्ठ कालागुरु, कुन्दुहक्क, तुरुहक
से बनी हुई धूप की गन्ध से व्याप्त हैं एवं जिस धूप की सुवास
लहरें सर्वत्र सुगन्ध फैला रही थीं ऐसे वैडूर्य मणि से बने हुए
धूप कडुच्छ (धूपदान) को हाथ में लेकर आदरपूर्वक धूप की
जलाया, धूप दहन कर सात-आठ पग पीछे खिसका पीछे
खिसककर अपने बाँये धुटने को मोड़कर ऊँचा किया—यावत्—
प्रणाम किया, प्रणाम करके आयुधशाला से बाहर निकलता है,

आभिसेकहृत्थिरयणारूढस्स भरहस्स चक्ररयणाणु-
गमण—

५०२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं गंगाए महाणईए
वाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिस्सि मागहत्थियाभिमुहं पयायं
पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ - जाव - हियए कोडुम्बियपुरिसे सदा-
वेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेकं हृत्थिरयणं
पडिक्कप्पेह, पडिक्कप्पेत्ता ह्य-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणं
सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्थियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुम्बिय - जाव - पच्चप्पिणंति ।

तए णं से भरहे राया जेगेव मज्जणघरे तेगेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्त-
जालाभिरामे तहेव - जाव - धवल-महामेह-णिग्गए इव - ससिक्क
पियदंसणं णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमित्ता
ह्य-गय-रह-पवर-त्राहण-भड-चडगर-पहगर-संकुलाए सेणाए पहिय-
कित्ती जेगेव वाहिरिया उवट्ठानसाला जेगेव आभिसेकके हृत्थिर-
यणे तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरि-कडय-सण्णिभं
गयवइं णरवई डुरुडे ।

५०३. तए णं से भरहाहिवे णरिदे हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे,
कुण्डल-उज्जोइयाणणे, मउडदित्तिसरए, णरसीहे णरवई णरिदे
णरवसहे मरुय-राय-त्रसभकप्पे, अट्ठमहिय-राततेय-लच्छीए दिप्प-
माणे, पसत्थ-मंगल-सएहिं संयुव्वमाणे जय-जय-सट्ठकयालोए
हृत्थिखध-वरगए सकोरंटमल्लवामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-
चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं जवख-सहस्स-संपरिवुडे
वेसमणे चेव णरवई—

आभिपेक्य हृत्थिरत्नारूढ भरत द्वारा चक्ररत्नानुगमन—

५०२. भरत राजा ने जब उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी
के दक्षिण दिशा के तट से पूर्व दिशा में विद्यमान मागध तीर्थ
की ओर जाते हुए देखा तो देखकर हृष्ट, तुष्ट—यावत्—हृदय
में आनन्दित होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे
इस प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिपेक्य (अभिपेक योग्य
—प्रधान) हृत्थिरत्न को सुसज्जित करो सुसज्जित करके श्रेष्ठ
अश्व-गज-रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को
तैयार करो, तैयार करके पश्चात् आदेश पूर्ति होने की मुझे
सूचना दो ।”

तव वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—आदेश पूर्ति की सूचना
देते हैं ।

तत्पश्चात् वह भरत राजा जहाँ स्नान घर था वहाँ गया,
जाकर स्नानघर में प्रविष्ट होकर मोतियों से खचित गवाक्षों
वाले, अभिराम (मनोहर) आदि पूर्व वर्णानुसार—यावत्—
शरद श्रुत के धवल महामेघों से निर्गत चन्द्रमा की तरह—
यावत्—चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन वाला वह नराधिप मज्जन-
गृह से बाहर निकला, बाहर निकलकर अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ
वाहन, भट-सुभट आदि के समूह से सुसज्जित सेना द्वारा जिसकी
कीर्ति फैल रही है ऐसा भरत राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला
थी और उसमें भी जहाँ आभिपेक्य हृत्थिरत्न था, वहाँ आया,
वहाँ आकर अंजनगिरि के समूह जैसे अत्यन्त श्याम हृत्थिरत्न
पर सवार हुआ ।

५०३. हृत्थिरत्न पर आरूढ़ उस भरताधिपति नरेन्द्र का वक्षस्थल
श्रेष्ठ रीति से सुधड सुवर्णकारों द्वारा बनाये गये हारों से
आच्छादित था, कुण्डलों की दीप्ति से मुख दैदीप्यमान हो रहा
था, मुकुट से मस्तक दीप्तिमान था अपनी शूरवीरता से पुरुषों
में सिंह के समान था, नरपति था, नरेन्द्र था, पुरुषों में वृषभ के
समान था, भरत राजाओं (व्यन्तर आदि देवों के इन्द्रों) में
वृषभ के समान श्रेष्ठ उत्तम था, अव्यवहित राजतेज की लक्ष्मी
(राज्य की अधिक तेजस्विनी लक्ष्मी) से उज्ज्वलित था, वन्दि-
जनों द्वारा उच्चारित प्रशस्त मंगल वचनों से जिसकी स्तुति हो
रही थी, दशकजनों द्वारा जिसके लिये जय जय शब्द घोष किया
जा रहा था, ऐसा वह राजा हाथी के उत्तम स्कन्ध—पीठ पर
बैठा । उस समय उस पर कोरंट पुष्प की मालाओं से शोभित
छत्र धारियों ने तान रखा था, दोनों पाश्र्वों में चामरधारियों
द्वारा श्वेत श्रेष्ठ चामर ढोरे जा रहे थे, जिससे यक्षसहस्र से
घिरा हुआ धनपति वैश्रमण (कुबेर) जैसा प्रतीत हो रहा था,

आभिसेकहृत्थिरयणारूढस्स भरहस्स चक्करयणाणु-
गमण—

५०२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिस्सि मागहत्तित्याभिमुहं पयायं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ - जाव - हियए कोडुम्बियपुरिसे सद्दा-वेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पासेव भो देवानुप्पिया ! आभिसेकं हृत्थिरयणं पडिक्कपेह, पडिक्कपेत्ता ह्य-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुम्बिय - जाव - पच्चप्पिणंति ।

तए णं से भरहे राया जेगेव मज्जणघरे तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्त-जालाभिरामे तहेव - जाव - धवल-महामेह-णिग्गए इव - ससिन्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता ह्य-गय-रह-पवर-वाहण-भड-चडगर-पहगर-संकुलाए सेणाए पहिय-क्कित्ती जेगेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेगेव आभिसेके हृत्थिर-यणे तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरि-कडय-सण्णिभं गयवई णरवई डुरुडे ।

५०३. तए णं से भरहाहिवे णरिदे हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे, कुण्डल-उज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, णरसोहे णरवई णरिदे णरवसहे मस्य-राय-वसभकप्पे, अब्भहिय-राततेय-लच्छीए दिप्प-माणे, पसत्थ-मंगल-सएहि संथुव्वमाणे जय-जय-सहकयालोए हृत्थिक्ख-वरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहि उद्धुव्वमाणोहि उद्धुव्वमाणोहि जक्ख-सहस्स-संपरिवुडे वेसमणे चेव णणवई—

आभिपेक्य हस्तिरत्नारूढ भरत द्वारा चक्ररत्नानुगमन—

५०२. भरत राजा ने जब उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिण दिशा के तट से पूर्व दिशा में विद्यमान मागध तीर्थ की ओर जाते हुए देखा तो देखकर हृष्ट, तुष्ट—यावत्—हृदय में आनन्दित होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिपेक्य (अभिपेक योग्य—प्रधान) हस्तिरत्न को सुसज्जित करो सुसज्जित करके श्रेष्ठ अश्व-गज-रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो, तैयार करके पश्चात् आदेश पूर्ति होने की मुझे सूचना दो ।”

तव वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—आदेश पूर्ति की सूचना देते हैं ।

तत्पश्चात् वह भरत राजा जहाँ स्नान घर था वहाँ गया, जाकर स्नानघर में प्रविष्ट होकर मोतियों से खचित गवाक्षों वाले, अभिराम (मनोहर) आदि पूर्व वर्णानुसार—यावत्—शरद ऋतु के धवल महामेघों से निर्गत चन्द्रमा की तरह—यावत्—चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन वाला वह नराधिप मज्जन-गृह से बाहर निकला, बाहर निकलकर अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ वाहन, भट-भुभट आदि के समूह से सुसज्जित सेना द्वारा जिसकी कीर्ति फैल रही है ऐसा भरत राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी और उसमें भी जहाँ आभिपेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया, वहाँ आकर अंजनगिरि के समूह जैसे अत्यन्त श्याम हस्तिरत्न पर सवार हुआ ।

५०३. हस्तिरत्न पर आरूढ़ उस भरताधिपति नरेन्द्र का वक्षस्थल श्रेष्ठ रीति से सुघड सुवर्णकारों द्वारा बनाये गये हारों से आच्छादित था, कुण्डलों की दीप्ति से मुख दैदीप्यमान हो रहा था, मुकुट से मस्तक दीप्तिमान था अपनी शूरवीरता से पुरुषों में सिंह के समान था, नरपति था, नरेन्द्र था, पुरुषों में वृषभ के समान था, भरत राजाओं (व्यन्तर आदि देवों के इन्द्रों) में वृषभ के समान श्रेष्ठ उत्तम था, अव्यवहित राजतेज की लक्ष्मी (राज्य की अधिक तेजस्विनी लक्ष्मी) से उज्ज्वलित था, वन्दि-जनों द्वारा उच्चारित प्रशस्त मंगल वचनों से जिसकी स्तुति हो रही थी, दर्शकजनों द्वारा जिसके लिये जय जय शब्द घोष किया जा रहा था, ऐसा वह राजा हाथी के उत्तम स्कन्ध—पीठ पर बैठा । उस समय उस पर कोरंट पुष्प की मालाओं से शोभित छत्र धारियों ने तान रखा था, दोनों पार्श्वों में चामरधारियों द्वारा श्वेत श्रेष्ठ चामर ढोरे जा रहे थे, जिससे यक्षसहस्र से घिरा हुआ धनपति वैश्रमण (कुवेर) जैसा प्रतीत हो रहा था,

अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती गंगाए नहाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं गामागरणगर-खेड-कड्ढड-मडंढ-दोणमुह-पट्टणासम-संवाह-सहसस-मंडियं थिमिय-मेइणीयं वसुहं अभिजिण-माणे अभिजिणमाणे अग्गाहं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे पांडच्छ-माणे तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे जोयणंतरि-याहिं वसहीहिं वसमाणे वसमाणे जेणेव मागहत्तिये तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छत्ता मागहत्तियस्स अदूरसामंते दुवालस-जोयणा-यासं णवजोयण-वित्थियणं वर-णगर-सरिच्छं विजय-खंधावारणि-वेसं करेइ, करित्ता वड्ढइरयणं सहावेइ, सहावइत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! ममं आवसहं पोसहसालं च करेहि, करेत्ता मभेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहिं”

तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठत्तुट्ठचित्तमाणंदिए पीडमणे - जाव - अंजलिं कट्टु ‘एवं सामी ! तहंत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिमुणेइ, पडिमुणित्ता भरहस्स रण्णे आवसहं पोसहसालं च करेइ, करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ।

भरहेण मागहत्तिये अट्ठमभत्त-पोसहकरणं—

५०४. तए णं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्तियरयणाओ पच्चोरहइ, पच्चोरहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता दढमसंयारणं संथरइ, संथरित्ता दढमसंयारणं दुहहई दुहहित्ता मागहत्तियकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी उम्मक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेयणे णिक्खित्त-सत्थमुसले दढमसंयारोवगए एगे अबीए अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ ।

अमराधिपति—इन्द्र के समान ऋद्धि से जिसकी प्रशस्त कीर्ति चतुर्दिग् व्याप्त हो रही थी, ऐसा वह राजा भरत गंगा महानदी के दक्षिण दिग्वर्ती तट पर स्थित हजारों गाँव, आकर, नगर, खेट, कवंट, मडंढ, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संवाह आदि से मण्डित ऐसी स्थिर वसुधरा और प्रजाजनों से युक्त मेदनी (पृथ्वी) को जीतते-जीतते एवं वहाँ-वहाँ के अधिपतियों से भेंट नजराने के रूप में उत्कृष्ट रत्नों को स्वीकार करते हुए उस दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए, योजन-योजन के अन्तराल से अर्थात् एक-एक योजन पर विश्राम करते हुए जहाँ मागध तीर्थ था, वहाँ आया, वहाँ आकर मागध तीर्थ के अदूर सामन्त प्रदेश में—न अति दूर और न अति निकट ऐसे प्रदेश में—वारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े विस्तार वाले उत्तम नगर के जैसे विजय स्कन्धावार (छावनी) की स्थापना की अर्थात् अपनी विजयी सेना का पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर वर्धकीरत्न (सूत्रधारों के प्रमुख) को बुलाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! अतिशीघ्र ही तुम मेरे लिये एक आवास स्थान और पौषधशाला का निर्माण करो और निर्माण करके मुझे इस आदेश पूर्ति होने की सूचना दो ।’

तब वह वर्धकीरत्न हृष्ट तुष्ट होता हुआ चित्त में आनंदित होता हुआ प्रीतिमना होता हुआ—यावत्—अंजलि करके ‘हे स्वामिन ! आप की आज्ञानुसार कलंगा’ इस प्रकार कहकर उसने विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया और स्वीकार करके आदेशानुरूप भरत राजा के लिये योग्य निवास स्थान और पौषधशाला बनाता है और बनाकर शीघ्र ही यथावत आज्ञा-पालन होने की सूचना देता है ।

मागध तीर्थ में भरत द्वारा अष्टम भक्त-पौषधकरण—

५०४. तत्पश्चात् वह भरत राजा अभिपेक योग्य—पट्ट—प्रधान हस्तिरत्न से नीचे उतरा, उतरकर जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ जाता है, वहाँ जाकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके पौषधशाला का प्रमार्जन—सफाई—करता है, प्रमार्जन करके दर्भ संस्तारक (आसन) विछाया, विछाकर दर्भासन पर बैठता है, आसन पर बैठकर मागधतीर्थ कुमार देव की साधना के लिये अष्टमभक्त (तीन उपवास) करता है अर्थात् तीन उपवास तप का प्रत्याख्यान धारण करता है, धारण करके पौषधशाला में पौषधव्रती की तरह ब्रह्मचारी रहता है, मणि-मुवर्ण को छोड़ देता है, माला, शृंगार विलेपन का त्याग कर देता है तथा मूखल एवं अन्य शस्त्रों को छोड़ देता है और दर्भासन पर अकेला बैठकर अद्वितीय अष्टमभक्त और धर्म जापरना धाराधना करते हुए रहता है ।

आस्रह्णस्स भरहस्स लवणसमुद्दे ओगाहणं—

५०५. तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिवल्लमइ, पडिणिवल्लमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुम्बियपुरित्ते सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियं, चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह चाउग्घंटं आस्रहं पडिकप्पेह” त्ति कट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्त - तहेव - जाव धवल-महामेह-णिग्गए - जाव - मज्जण-घराओ पडिणिवल्ल-मइ, पडिणिवल्लमित्ता हय-गय-रह-पवर-वाहण - जाव - सेणाए पहियफित्ती जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आस्रहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आस-रहं डुळ्ढे ।

५०६. तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आस-रहं डुळ्ढे समाणे हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सट्ठि संपरि-वुडे महया-मउ-वउगर-पहगर-वंद-परिविखत्तो-चक्करयण-वेसिय-मग्गे, अणेग-राय-वर-सहस्साणुयाय-मग्गे, महया उविकट्ठि-सीहणाय-वोल-कलकल-रयेणं पक्खुमिय-महासमुद्द-रव-भूयं पिव करेमाणे फरेमाणे पुरत्थिम-दिसामिमुहे मागह-तिथेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ, - जाव - से रहवरस्स कुप्परा उल्ला, तए णं से भरहे राया तुरगे निगिगइ, निगिगइत्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता धणुं परामुसइ ।

भरहनिस्सट्ठसरस्स मागहतित्थाहिवइदेवभवणे निवडणं—

५०७. तए णं तं अइहगय-त्रालचंद्र-इंद-धणु-संनिकासं, वर-महिस-वरिय-रपिय-रउ-घण-सिग-रउव-तारं, उरगवर-गवरगवल-पवर-परहुय-भमर-कुल-गोति-णिद्धंत-धोषणट्टं, णिउगोविय-मिसिनि-मित्त-मणि-रपय-घंटिया-जाल-परिमित्तं, तडित्तवण-किरण-तव-मिउव-रउ-धियं रइ-मलयगिरि-सिहर-केसर-

अश्वरथारूढ भरत का लवण समुद्र में अवगाहन (प्रवेश) —

५०५. अष्टमभक्त तप की आराधना करने के पश्चात् वह भरत राजा पौषधशाला से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला (वैठक) थी वहाँ आता है, वहाँ आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो तथा जिसमें चार घटे लगे हुए हैं ऐसे अश्वरथ को सज्जित करो’, ऐसा कहकर मज्जनगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके मोतियों से युक्त गवाक्ष आदि पूर्ववत्—यावत्—धवल महामेवो में से निर्गत चन्द्र के समान—यावत्—मज्जनगृह से बाहर निकलता है, निकलकर अश्व, गज, रथ श्रेष्ठ वाहन—यावत्—जिसकी कीर्ति फैल रही है ऐसा वह भरत राजा जहाँ बाहरी उपस्थान-शाला है, जहाँ चार घंटों से युक्त अश्व रथ है, वहाँ आया और वहाँ आकर चातुर्घटक अश्व रथ पर बैठता है ।’

५०६. तत्पश्चात् चार घंटों वाले अश्वरथ पर आसीन, उत्तम अश्व, गज, रथ, योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से घिरा हुआ, उत्कृष्ट सिहनाद घोषों के कल-कल शब्दारवों के द्वारा प्रक्षुभित महासमुद्र की गर्जना के समान आकाश मण्डल को गुंजाता हुआ अनुगामी हजारों श्रेष्ठ राजाओं के साथ विविध महाभटों—सुभटों के समूहों द्वारा परिरक्षित चक्ररत्न के द्वारा दिखाये गये मागधतीर्थ से पूर्व दिशा के मार्ग पर चलता हुआ राजा भरत लवण समुद्र में प्रवेश करता है—यावत्—उसके उत्तम रथ के पहिये मध्य भाग तक भीग गये, तब वह राजा भरत घोड़ों को रोकता है, रोककर रथ को खड़ा करता है और खड़ा करके धनुष को हाथ में लेता है ।

भरत द्वारा निःसृष्ट शर का मागधतीर्थाधिपति देव भवन में निपतन—

५०७. वह धनुष अर्थात् उस धनुष का आकार अचिरोद्गत तत्काल ही उदित हुए बालचंद्र (द्वितीया का चन्द्र) इन्द्र धनुष के समान बक्र या, मदनोन्मत्त गर्वाले श्रेष्ठ महिष (भैंसा) के मुद्दह निगड़ मीनों के मध्यभाग से बनाया गया था, तथा श्रेष्ठ नाग, श्रेष्ठ महिष, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमरों के समूह, नीलराशि के समान अत्यन्त श्यामल (कृष्ण वर्णी) उस धनुष का पृष्ठभाग तेजस्वी, निर्मल और स्निग्ध था, निपुण शिल्पियों द्वारा सजाये जाने से वह चमचमाहट करता था, मणि रत्नों की घंटिकाओं (घुंघरुओं) से वेष्टित था, उस पर विजली के समान चमचमाहट करने वाली मुनहरी किरणों के चिन्ह लगे हुए थे, दहर पर्वत, मलयपर्वत, के शिखरों पर वास करने वाले सिंह के केशर

चामर-बालद्ध-चंदच्चिंधं काल-हरिय-रत्त-पीय-सुक्किल्ल-वहु-ण्हाण्णि-
संपिणद्धजीवं जीवियंत-करणं चलजीवं धणुं गहिऊण से णरवई,
उसुं च वरवइर-कोडियं वइर-सारत्तोडं, कंचण-मणि-कणग-रयण-
घोइट्ट-सुकय-पुंखं, अणेग-मणि-रयण-विविह-सुविरइय-णाम-रच्चिंधं
वइसाहं ठाइऊण ठाणं आयय-कण्णाययं च काऊण उसुमुदारं इमाइं
वयणाइं तत्थ भाणीअ से णरवई—

गाहाओ—हंदि सुणंतु भवंतो, वाहिरओ खलु सरस्स जे देवा ।
णागासुरा सुवण्णा, तेसि खु णमो पणिवयासि ॥१॥

हंदि सुणंतु भवंतो अहिंभतरओ सरस्स जे देवा ।
णागासुरा सुवण्णा सब्बे मे ते विसयवासी ॥२॥

इति कट्टु उसुं णिसिरइ त्ति ।

परिगरणिरियमज्झो वाउद्धयसोअमाणकोसेज्जो ।
चित्तेण सोमए धणुवरेण इंदो व्व पच्चवखं ॥३॥

तं चंचलायमाणं पंचमिचंदोवमं महाचावं ।
छज्जइ वामे हत्थे, णरवइणो तंमि विजवंमि ॥४॥

तए णं से सरे भरहेणं रण्णा णिसट्ठे समाणे विष्पामेव
बुवालस जोयणाइं गंता मागहत्तित्थाहिंवइस्स देवस्स चवणंति
निवइए ।

णामंकियसरं दट्ठूण मागहत्तित्थाहिंवइणो भरहसम्मुह-
सबभुवगमणं—

५०८. तए णं से मागहत्तित्थाहिंवइं देवे भवणंति सरं णिवइए
पासइ, पातित्ता आसुरेत्ते दट्ठे चंडिक्कए कुचिए—

(गदंत के बाल) चमरी गाय की पूँछ के बाल तथा अर्धचन्द्र के
चिन्ह से अंकित थे, काले, हरे, लाल, पीले और श्वेत रंगों वाले
अनेक स्नायुओं से बनी हुई प्रत्यंचा (डोरी) से सज्जित था,
शत्रुओं के जीवन का अन्त करने वाला तथा जिसका टंकार मन
को कंपकपा देने वाला था ऐसे धनुष को लेकर और उस धनुष
पर जिसके दोनों सिरे श्रेष्ठ वज्रमणि (हीरा) से बने हुए हैं,
अगला सिरा वज्र के सार भाग द्वारा बनाया गया है और जित
पर सुवर्ण, मणिरत्नों द्वारा अपने नाम का चिन्ह बना हुआ है,
इस प्रकार के बाण को चढ़ाकर वैशाख नामक आसन विशेष में
स्थित होकर और धनुष की प्रत्यंचा को कान तक धींचकर वह
राजा भरत इन वचनों को बोला—

‘हे देवगण ! आप सब ध्यानपूर्वक सुनें जो देवगण मेरे
बाण के बाह्य स्थान में रहे हुए हैं अर्थात् उनके रक्षक हैं,
तथा नाग, असुर, सुवर्णकुमार आदि इन सभी देवताओं को भक्ति-
पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥

हे देवगण ! आप ध्यानपूर्वक सुनें कि नाग, असुर, सुवर्णकुमार
आदि जो देव बाण के आभ्यन्तर भाग के अधिष्ठायाक हैं और
मेरे देश में वास करने वाले हैं, उनको मैं नमस्कार करता
हूँ ॥२॥

ऐसा कहकर राजा भरत ने बाण छोड़ा ।

(उस समय राजा भरत कैसा दिख रहा था, उसका वर्णन
निम्नलिखित दो गायार्थों में इस प्रकार किया है—)

युद्ध के समय जैसे योद्धा अपने शरीर के मध्य भाग को
मजबूत बाँधता है, वैसे ही राजा भरत ने अपने शरीर के मध्य-
भाग को मजबूती से बाँध रखा है, मन्द-मन्द बहती पवन की
लहरों से शरीर पर धारण किया हुआ कौशेय वस्त्र लहलहा
रहा है, दर्शनीय श्रेष्ठ धनुष को हाथ में लिये हुए वह राजा
भरत ऐसा शोभित हो रहा है कि मानो साक्षात् इन्द्र ही
हो ॥३॥

पंचमी के चन्द्रमा के समान अत्यन्त चंचल विजय का
साधन वह महाधनुष राजा भरत के बायें हाथ में शोभित हो
रहा है ॥४॥

जब राजा भरत ने वह बाण छोड़ा तो छूटते ही बारह
योजन की दूरी पर स्थित मागधतीर्थ के अधिपति देव के भवन
में आकर पड़ा ।

नामांकित शर को देखकर मागधतीर्थाधिपति का भरत के
सम्मुख अभ्युपगमन—

५०८. तदनन्तर वह मागधतीर्थाधिपति देव भवन में गिरे पड़ा
बाण का देखता है, देखकर अत्यन्त क्रोधित—शोध ने माग-
बबूला हो गया, दष्ट, प्रचण्ड चंडिकावन्—कुचित हो गया और

मिसिमिसेमाणे तिवलियं मिउडि णिडाले साहरइ, साहरित्ता एवं वयासी—

“केस णं भो ! एस अपत्थियपत्थए दुरंत-पंत-लवखणे हीण-पुण्ण-चाउहसे हिरि-सिरि-परिवज्जिए जे णं मम इमाए एयाणु-ह्वए दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए देवजुईए दिव्वेणं देवाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पि अप्पुस्सुए भवर्णसि सरं णिसिरइ’त्ति कट्ठु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं णामाहयंके सरं नेणहइ, नेण्हित्ता णामंके अणुप्पवाएइ, णामंके अणुप्पवाएमाणस्स इमे एयारूवे अज्जत्थिए च्चितिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-ज्जित्था—

५०६. “उप्पण्णे खलु भो ! जंजुट्ठीवे दीवे भारहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्ठी तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागयाणं मागह-तित्थकुमारानं देवाणं राईणमुवत्थाणियं करेत्तए । तं गच्छामि णं अहं पि भरहस्स रण्णे उवत्थाणियं करेमि” त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता हारं मउडं कुण्डलाणि य कडगाणि य तुडियाणि य वत्थाणि य आभरणाणि य सरं च णामाहयंके मागह-तित्थोदगं च नेणहइ, गिण्हित्ता ताए उविकट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए सीहाए सिग्घाए उद्धयाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ,

५१०. उवागच्छित्ता अंतलिवखपडिवण्णे सखिखिणियाइ पंचवण्णाइ वत्थाइ पवरपरिहिए करयलपरिगहियं दसणहं सिर-जाव-अंजलि कट्ठु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—

“अमिजिए णं देवाणुप्पिएहि केवलकप्पे भरहे वासे पुरत्थियेणं मागहत्तियमेराए, तं अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी,

क्रोध के कारण दांतों को मिशमिसाते हुए, ललाट को त्रिवली (तीन सलें, रेखायें) युक्त करके भ्रुकुटि को तानकर—टेडी करके इस प्रकार बोला—

‘अरे ऐसा कौन है यह ! जो अप्रार्थितप्रार्थी है अर्थात् जिसकी प्रार्थना नहीं की गई है, ऐसी मृत्यु का अभिलाषी है, अपनी मौत को बुला रहा है ? जिसका लक्षण अशुभ परिणाम वाला तथा तुच्छ है ऐसा यह कौन है ? अर्थात् दुःखद अन्त का आकांक्षी यह कौन है ? कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जन्म लेने वाला यह अभागा कौन है ? तथा श्री ह्री से रहित अर्थात् कंगाल और निर्लज्ज यह कौन है ? जो मेरी इस प्रत्यक्ष में अनुभूयमान दिव्य देवद्वि दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव से उपाजित अर्थात् जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से उपाजित, प्राप्त, अधिकृत—अधीन की हुई, सम्पत्ति वैभव की प्राप्ति का इच्छुक ईर्ष्यालु होकर मेरे भवन में बाण फँक रहा है; ऐसा सोचकर सिंहासन पर से उठता है, उठकर जहाँ वह नामांकित बाण पड़ा हुआ था, उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर उस नामांकित बाण को हाथ में लेता है, बाण को लेकर नामांकन (नाम का निशान) को वाँचता है । नाम के चिह्न अक्षर को पढकर उस मागधतीर्थ के अधिपति देव के मन में इस प्रकार का विचार, चिंतन, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

५०६. ‘अरे ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में सार्वभौम चक्रवर्ती भरत नाम का राजा उत्पन्न हुआ है तो अतीत, वर्तमान और भविष्य काल में होने वाले प्रत्येक मागधतीर्थवासी देव-कुमारों का यह परम्परागत आचार है कि वे राजाओं का सत्कार करें अर्थात् राजाओं की सेवा में भेंट—नजराना उप-स्थित करके उनका सम्मान करें । तो मैं भी जाऊँ और भरत राजा का सत्कार करूँ’ ऐसा विचार करता है, विचार करके हार-मुकुट, कुण्डल, कटक (कड़ा) त्रुटित (वाजूवंद) वस्त्र और आभरण एवं नामांकित बाण तथा मागधतीर्थ का जल आदि लेता है, लेकर उत्कृष्टगति से, त्वरितगति से, चपलगति से, वेगवाली गति से, सिंह जैसी गति से, शीघ्र गति से विशेष वेगवाली गति से, दिव्य देवगति से चलते-चलते जहाँ भरत राजा है वहाँ आया ।

५१०. वहाँ आकर घुंघरुओं से युक्त पंचरंगी उत्तम वस्त्रों को धारण करके, दसों अंगुलियों से सुशोभित हाथों को जोड़ मस्तक पर—यावत्—अंजलि करके आकाश में अधर स्थित होकर वह देव भरत राजा को जय विजय शब्दों से बधाता है. बधाकर इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! आपने समग्र भारतवर्ष के मागधतीर्थ तक के पूर्व दिशावर्ती क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली है अर्थात् जीत

अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तीकिकरे, अहण्णं देवाणुप्पियाणं पुरत्थिमिल्ले अंतेवाले, तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! ममं इमेया-
रूवं पीडाणं” ति कट्टु हारं मउडं कुण्डलाणि य कडगाणि य-
जाव-भागहृत्तियोदगं च उवणेइ ।

तए णं से भरहे राया मागहृत्तियकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं
पीडाणं पडिच्छइ, पडिच्छता मागहृत्तियकुमारं देवं सक्करेइ
सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।

भरहृस्स अट्ठमभत्तपारणं मागहृत्तियाहिवदेवमुद्दिस्स
अट्ठाहिय-महिमकरणादेसो य—

५११. तए णं से भरहे राया रहं परावत्तइ, परावत्तित्ता मागहृ-
त्तियेणं लवणसमुद्दाओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव विजय-
खंघावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता तुरए णिगिण्हइ, णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता
रहाओ पच्चोहइ, पच्चोहित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरे अणुपविसइ, अणुपविसित्ता-
जाव-ससि-व्व पियवंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणक्खमइ,
पडिणक्खमित्ता जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं परेइ,
पारित्ता भोयणमंडवाओ पडिणक्खमइ, पडिणक्खमित्ता जेणेव
बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता
अट्ठारस तेणिप्पत्तेणीओ सट्ठावेइ, सट्ठावित्ता एवं वयासी —

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं- उक्करं - जाव -
मागहृत्तियकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियं महामहिमं करेइ, करित्ता
मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ताओ अट्ठारस तेणिप्पत्तेणीओ भरहेणं रण्णा एवं
पुत्ताओ समाणीओ हट्ठ - जाव - करेत्ति, करित्ता एयमाणत्ति यं
पच्चप्पिणंति ।

चक्करयणस्स वरदामत्तित्थान्निमुहप्पयाणं—

५१२. तए णं से दिव्वे चक्करयणे वड्डामपत्तुव्वे लोहिपरधानया-

लिया है, जिससे मैं भी आप देवानुप्रिय देश का निवासी बन गया
हूँ, मैं भी आप देवानुप्रिय का आज्ञाकारी किकर-दास, नौकर बन
गया हूँ, मैं भी आप देवानुप्रिय के पूर्व दिग्बर्ती क्षेत्र का अन्तवाल
बन गया हूँ, तो हे देवानुप्रिय ! आप मेरी ओर से सेवा में
उपस्थित इस प्रकार के प्रीतिदान (भेंट, नजराना) को स्वीकार
करो, यह कहकर हार, मुकुट, कुण्डल, कटक आदि—यावत्—
मागधतीर्थ का जल भेंट करता है ।

तब वह राजा भरत मागधतीर्थ के कुमार देव द्वारा दिये
जा रहे इस प्रकार के प्रीतिदान को स्वीकार (ग्रहण) करता है,
स्वीकार करके मागधतीर्थाधिपति देवकुमार का सत्कार करता है,
सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदा करता है ।

भरत द्वारा अष्टमभक्त का पारणा और मागधतीर्थाधिपति
के लक्ष्य से अष्टदिवसीय महामहोत्सव करने का
आदेश—

५११. तत्पश्चात् वह भरत राजा रथ को लौटाता है, लौटकर
मागधतीर्थ से होता हुआ लवणसमुद्र से वापस भरत क्षेत्र में
उतरता है, उतरकर जहाँ विजय स्कन्धावारनिवेश यानी सेना का
पडाव है और उसमें जहाँ बाह्य उपस्थानशाला है, वहाँ आता
है, वहाँ आकर घोड़ों को रोकता है, घोड़ों को रोककर रथ को
खड़ा करता है, खड़ा करके रथ से उतरता है, रथ से उतरकर
जिस ओर मज्जनगृह है, उस ओर आता है वहाँ आकर मज्जन-
गृह में प्रवेश होता है, प्रवेश करके—यावत्—चन्द्र के समान
प्रियदर्शन वाला वह नरपति भरत राजा स्नानघर से बाहर
निकलता है, बाहर आकर जिस ओर भोजन मण्डप (भोजन-
शाला या रसोई घर) है, वहाँ आता है, भोजन मण्डप में आकर
श्रेष्ठ सुखासन पर बैठकर अष्टमभक्त का पारणा करता है,
पारणा करके भोजन मण्डप से बाहर निकलता है, बाहर
निकलकर जिस तरफ बाहर की बैठक (दीवानखाना) है, जहाँ
सिंहासन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर सिंहासन के ऊपर पूर्व-
दिशा को मुख करके मुखपूर्वक बैठता है, बैठकर अठारह श्रेणी-
प्रश्रेणियों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिया ! तुम लोग शीघ्र ही नगर को शुद्ध और
करमुक्त आदि करके—यावत्—मागधतीर्थकुमार देव के सम्मान
में महामहिमा वाला अष्ट दिवसीय महोत्सव करो—मनाओ और
ऐसा करके मुझे सूचना दो ।’

तब वे अठारह श्रेणियाँ-प्रश्रेणियाँ भरत राजा के इस
आदेश को सुनकर हर्षित हुई—यावत्—महामहोत्सव करती हैं,
करके वापस महामहोत्सव सम्पन्न होने की सूचना देती हैं ।

चक्ररत्न का वरदामतीर्थाभिमुख प्रयाण—

५१२. तदनन्तर वह दिव्य चक्ररत्न त्रिनता त्रिवेग स्थान वचनय

रए जंवूणयणेमीए, णाणा-मणि-खुरप्प-थाल-परिगए, मणि-मुत्ता-जाल-मूसिए, सणंदिघोसे सखिखिणीए दिव्वे, तरुण-रवि-मंडल-णिमे, णाणा-मणि-रयण-घंटियाजाल-पदिकिखत्ते, सव्वोउय-सुरभि-कुमुम-आसत्त-मल्लदामे अंतलिवख-पडिवण्णे-जक्ख-सहस्स-संपरि-वुडे, दिव्व-तुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं, पूरंते चेव अंवरत्तं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे मागहत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउह-घरसालाओ पडिणक्खमइ, पडिणक्खमित्ता दाहिणपच्चत्थिमं दिंसि वरदाम-तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था ॥

भरहस्स वरदामतित्थाणुगमणाइं—

५१३. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं दाहिणपच्च-त्थिमं दिंसि वरदाम-तित्थाभिमुहं पयायं चावि पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ कोडुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय-गय-रह-पवर चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेइ, सण्णाहेत्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह” त्ति कट्ठ मज्जणघरं अणुपत्रिसइ, अणुपविसित्ता तेणेव कमेणं-जाव-धवल-महामेह-णिग्गए-जाव-सेयवरचामराहि उट्ठुक्वमाणीहि उट्ठुव्वमा-णीहि माइय-वर-फलय-पवर-परिगर-खेडय-वरवम्म-कवय-माढी सहस्स-कलिए उक्कड-वर-मउड-तिरोड-पडाग-अय-वेजयंति-चामर-चलंत-छत्तंघयार-कलिए, असिखेवणिखग्ग-चाव, णाराय-कणय-कप्प-

हैं जिसके आरे लोहिताक्ष (मणि विशेष) नामक लाल रत्नों से बने हैं, जिसकी नेमि (मध्यभाग) जाम्बूनदसुवर्ण (लाल झाँई मारने वाला सुवर्ण) से बनी हुई है, अनेक मणियों से निर्मित अन्तःपरिघिरूप स्थल से युक्त है, मणिमुक्ताओं के जाल से विभूषित हैं तथा जो नंदिघोष (भंभा, मृदंग आदि वारह प्रकार के वाद्यों के शब्द समूह) सहित है, घुंघरुओं से शोभित हैं, दिव्य, मध्यान्ह के सूर्यमण्डल के समान तेजस्वी हैं, अनेक प्रकार के मणि-रत्नों की घंटियों के समूह के चारों तरफ से व्याप्त हैं, सर्व ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से निर्मित, मालाओं से आकर्षक हैं, आकाश में अधर ठहरा हुआ है, हजारों यक्षों से परिवृत्त हैं अर्थात् हजारों यक्षों द्वारा रक्षा की जाती है, रक्षा के लिए हजारों यक्ष नियुक्त हैं, अपने दिव्य वाद्यों की ध्वनि से आकाश-मण्डल को गुंजायमान कर रहा है और जिसका नाम सुदर्शन है, मागधतीर्थ कुमारदेव के सम्मानार्थ किये जाने वाले अष्टदिवसीय महामहोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् नराधिप भरत की आयुधगृहशाला से निकलता है, बाहर निकलकर दक्षिण-पश्चिम दिशा नैऋत्य कोण में स्थित वरदाम नामक तीर्थ की ओर प्रयाण करने लगा ।

भरत का वरदाम तीर्थानुगमन—

५१३. तव वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न का दक्षिण-पश्चिम दिशावर्ती वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण करके देखता है, देखकर हृष्ट तुष्ट होकर—यावत्—कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनको ऐसा आदेश देता है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही अश्व, गज, रथ, श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, अभिषेक योग्य हस्तिरत्न को मूसज्जित करो ।’ और ऐसा कहकर स्नानगृह में प्रवेश करता है, प्रवेश करके पूर्व वर्णन की तरह स्नान करके—यावत्—धवल महामेघों से निर्मित चन्द्र के समान स्नानगृह से निकलता है—यावत्—दोनों वाजुओं में श्वेत-धवल श्रेष्ठ चामरों का ढोरना प्रारम्भ कर दिया । उस समय वह भरत राजा जिन्होंने अपने हाथों में वरफलक—लकड़ी से बनी हुई उत्तम ढाल ले रखी है, श्रेष्ठ कमरबंद से जिनकी कटि—कमर बंधी हुई है, खेटक—त्रांस की सलाइयों से बने बाण, उत्तम दस्तर, कवच तथा माढ़ी की सुरक्षा के लिए शरीर पर धारण किये हुए है, ऐसे हजारों योद्धाओं से युक्त था, उत्कृष्ट उत्तम मुकुट किरीट (शिरोभूषण रूप मुकुट विशेष) पताकाओं, ध्वजाओं, वंजयन्तियों (दोनों भुजाओं में दो छोटी-छोटी पताकाओं से युक्त पताकाओं), चामरों और छत्रों की छाया से उसका मार्ग आच्छादित ढका हुआ था जिससे सूर्यास्तकालीन अन्धकार की प्रतीति होती थी, अति—विशेष प्रकार की तलवार, खेव—गोफन,

णिमूल-लउड-भिडिमाल-घणुह-तोण-सर-पहरणेहि य काल-णील-
रुहिर-पीय-सुक्किल्ल-अणेग-चिध-सय-सण्णिविट्ठे अप्फोडिय-
सीहणाय--छेलिय-हयहेलिय-हत्थियगुलुगुलाइय-अणेगरह--सयसहस्स-
घणघणेत-णीहम्ममाण-सद्दासहिण, जमगसमग-भंभा-होरंभ-
किणित-खरमुहि-मुगुन्द-संखिय-परिलि-वच्चग-परिवाइणि-वंसवेणु-
विपंचि-महइकच्छभिरिगिसिगिय-कलताल-कंसताल-करघाणुत्थियएण
महया सद्द-सण्णियाएण सयलमवि जीवलोगं पूरयंते बल-वाहण-
समुदएणं एवं जवख-सहस्स-परिवुडे वेसमणे चव घणवई अमरवइ-
सण्णिभाए इड्ढोए पहियकित्ति गामागर-णगर-खेड-कब्बड त्हेव
सेसं - जाव - विजयखंघावारणिवेसं करेइ, करित्ता वड्ढइरयणं
सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खड्ग, घनुप, बाल, कणक—वाण विशेष, कल्पघुरी, जूल, लगुड—
लाठी विशेष वल्लम घनुप, तूणीर—तरकश, शर आदि प्रहरणों
शस्त्रों से, जिन पर काले, नीले, लाल, पीले, श्वेत रंगों से चिन्ह
बनाये गये थे, वह युक्त था तथा जिसके कितने ही थोड़ा ताल
ठोक रहे थे, कोई सिंह जैसी गर्जना कर रहे कोई थे, हर्षोल्लास से
खिलखिला रहे थे, कोई घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की बल-
बलाहट जैसी ध्वनियाँ कर रहे थे, साथ ही लाखों रथों की घन-
घनाहट, घोड़ों को ठीक प्रकार से रोकने, खड़े रखने के लिए फटकारी
जाने वाली चातुकों के सड़-सड़ शब्द ध्वनियाँ बूँज रही थीं, तथा
एक साथ बजाये जा रहे भंभा—हाक—होरंभ—डपला वीणा
—खरमुली, मुकुन्द—विशेष प्रकार का नगाड़ा, शंख, परली,
वच्चक, परिवाहिनी, बाँसुरी, वेणु, विपंची, महती, कच्छणी,
रिगिसिगि, करताल, कंसताल, करघनी आदि विविध वाद्यों से
धमधमाहट ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो समस्त जीवलोक में
व्याप्त हो। इस प्रकार की साज-सज्जा हजारों यक्षों से घिरे हुए
वैश्रमण धनपति जैसा और ऋद्धि सम्पन्नता से अमरपति इन्द्र
जैसा, प्रख्यात कीर्ति वाला वह राजा भरत बल-सेना, वाहन रथ
आदि के समुदाय के साथ सैकड़ों ग्राम, आकर. नगर, खेट,
कर्वट आदि से युक्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता हुआ आदि
सब पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—विजय स्कन्धावार निवेश
करता है अर्थात् पड़ाव डालता है, पड़ाव डालकर वर्धकी-
रत्न (श्रेष्ठ सुतार) को बुलाता है और बुलाकर यह आदेश
देता है—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! मम आवसहं पोसहसालं च
करेहि, करेत्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि” ।

५१४. तए णं से आसम-वोणमुह-गाम-पट्टण-पुरवर-खंघावा र-
गिहावण-विभागकुसले एगासीइपएमु सव्वेसु चव वत्थुसु गेगगुण-
जाणए पंडिए विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं वत्थुपरिच्छाए
णेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणीसु य वासघरेसु य विभागकुसले
छेज्जे वेज्जे य दाणकम्मे पहाणबुद्धी जलयाणं भूमियाण य भायणे
जल-यल-गुहासु अंतेसु परिहासु य कालनाणे त्हेव सद्दे वत्थुप्पएसे

‘हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही मेरे लिये आवास और पोषण-
शाला का निर्माण करो, निर्माण करके आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न
होने की सूचना दो ।

५१४. वह वर्धकीरत्न आश्रम, द्रोणमुख. ग्राम, पत्तन, उत्तमपुर,
स्कन्धावार. घर, आपण—दुकान—इन सबकी विभागपूर्वक
रचना करने में कुशल, वास्तु के सब इक्यासी पदों में से अनेक
गुणों को जानने में पण्डित, देवयानों की पैतालीस प्रकार की
वास्तु परीक्षा में कुशल, नेमि, पार्वी, भक्तशालाओं—रसोईवरों
कोट्टिनियों और शयनगृहों आदि इन सभी की विभागपूर्वक रचना
करने में कुशल छेद्य—छेदन करने योग्य वेध्य—वेधन करने
योग्य, दानकर्म लकड़ी आदि को वेरने के लिए गेस आदि से नूत
को गीला करके काष्ठ पर निशान करना आदि में प्रख्यात बुद्धि
वाला, जलयान, भूमियान आदि साधनों को बनाने में कुशल,
जलगत, स्थलगत गुफाओं-भुरंगों का जानकार तथा उनको बनाने
के लिए प्रयोग में आने वाले यन्त्रों के निर्माण में कुशल,
परिखाओं के निर्माण में कुशल, निर्माण योग्य समय का जानकार
अथवा बनाये जा रहे गृहादि के प्रवृत्त, अग्रगस्त यद्यपि का

पहाणे गडिभिणि-कणरुख-वहिल-वेडिय-गुण-दोस-वियाणए, गुणड्डे,
सोलस-पासाय-करणकुसले चउसट्ठ-विकप्प-वित्थियमई णंदावत्तो
य वद्धमाणे सोत्थिय-रुयग तह सव्वओ भद्दसणिवेसे य वहुविसेसे
उहंडिय-देव-कोट्ठ-दारु-गिरि-खाय-वाहण-विभागकुसले ।

गाहाओ—इय तस्स बहुगुणड्डे थवईरयणे णरिदचंदस्स ।
सवसंजमणिविड्ढे 'किं करवाणी' तुवट्ठाई ॥१॥

सो देवकम्मविहिणा खंधावारं णरिदवयणेणं ।
आवसह-भवण-कलियं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥

करेत्ता पवरपोसहघरं करेइ, करित्ता जेणेव भरहे राया -
जाव - एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ, सेसं तहेव - जाव -
मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमिन्ता जेणेव बाहिरिया
उवट्ठाणसाला जेणेव चाउघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ ॥

५१५. तए णं तं धरणिस्तल-गमणलहुं तओ बहुलवखण-पसत्थं
हिमवन्त-कंदरंतर-णिवाय-संवड्ढिय-चित्त-तिणिस-वलियं जंबूणय-
सुकयकूवरं, कणय-दंडियारं, पुलय-वरिदणील-सासग-पवाल-
फलिह-वर-रयण-लेट्ठु-मणि चिद्दुम-विभूसियं, अडयालीसार-रइय-
तवणिज्ज-पट्ट-संगहिय-जुत्त-तुम्बं, पघसिय-पसिय-णिम्मिय-णव-
पट्ट-पुट्ठ-परिणिट्ठियं, विसिट्ठ-लट्ठ-णव-लोह-वद्धकम्मं, हरि-

जानकार तथा इसी प्रकार शब्द के परमार्थ का जानकार, वास्तु
प्रदेश का विधान करने में प्रवीण—प्रधान गर्भिणी वेलों फला-
भिमुखवेलों, कन्यारूपवेलों अर्थात् वर्तमान में कौन-कौन सी वेलें
फल बिना की हैं अथवा भविष्य में फल देने वाली हैं, वृक्षवेलों—
किस-किस वृक्ष से कौन-कौन सी वेल लिये लिये हैं, इत्यादि
प्रकार के वृक्षों और वेलों के गुणदोषों का जानकार, गुण सम्पन्न,
सोल्ह प्रकार के प्रासादों का निर्माण करने में कुशल, वास्तुशास्त्र
प्रसिद्ध चौसठ प्रकार के गृहों को बनाने में विशिष्ट विपुलज्ञान
अनुभव वाला और नन्दावर्त, वर्धमान, स्वास्तिक, रुचक आदि
नामक प्रासादों तथा सर्वतोभद्र सन्निवेश इन सबके निर्माण कार्य
में विशेष निपुण, ध्वज, देवगृह (मन्दिरों) कोष्ठ, काष्ठ—
इमारती लकड़ी, गिरि—किला, खात—खाई, वाहन आदि इन
सभी के विभागों में कुशल था ।

पूर्वोक्त प्रकार के अनेक गुणरत्नों से सम्पन्न एवं तप संयम से
युक्त अथवा जिसे भरत चक्रवर्ती ने तप और संयम साधना से प्राप्त
किया है ऐसा वह स्थपितरत्न (वर्धकीरत्न—सुतार) में क्या कल
ऐसा कहते हुए भरत राजा के समक्ष उपस्थित हुआ ।

राजा की सेवा में उपस्थित उस वर्धकीरत्न ने देवकर्मविधि
द्वारा अर्थात् जैसे देवों द्वारा समय मात्र में कार्य सम्पन्न किया
जाता है उसी प्रकार से एक मुहूर्त में आवास, भवन, स्कन्धावार
आदि की रचना कर दी ।

उनकी रचना करके उत्तम पीषघशाला का निर्माण करता
है, पश्चात् जहाँ राजा भरत था—यावत्—शीघ्र ही आज्ञापूर्ति
की सूचना देता है, इसके बाद का शेष कथन पूर्वोक्तवत समझ
लेना चाहिए—यावत्—स्नानगृह में से निकलता है, निकलकर
जिस ओर बाह्य उपस्थानशाला थी जहाँ चार घंटों वाला रथ
था, वहाँ आता है ।

५१५. वह रथ पृथ्वीतल पर चलने में अत्यन्त शीघ्र गतिवाला
है, अनेक शुभ लक्षणों से प्रशस्त—सुन्दर है, हिमवन्त पर्वत की
कंदराओं गुफाओं में पवन बिना के (निर्वात) स्थान में उत्पन्न
एवं संवर्धित आश्चर्यकारी तिनिस वृक्ष विशेष के काष्ठ से बनाया
गया है, जम्बूनद जाति के सुवर्ण से निर्मित जिसका कूवर—
जुआ है, पहियों के अर (डाँडियाँ) व डाँडे सोने से बने हुए हैं
तथा पुलक, श्रेष्ठ इन्द्र नीलरत्न, सासक, प्रवाल, स्फटिक,
उत्तमरत्न, लेष्ठ—विजातीय रत्न, मणि विद्दुम आदि रत्नों
से विभूषित है, उसमें अड़तालीस आरे हैं, जिनके तुम्बे सोने से
बने हैं, भली प्रकार से घिस-घिसकर चिकनी की गई और
चमचमाती हुई पुंठी पर बराबर दृढ़ता से रखे हैं, विशिष्ट
लठ—विशेष प्रकार से अति मनोहर नवीनतम लोहे की कीला-
कीलियों से जोड़ा गया है अर्थात् मजबूती के लिये जगह-जगह

पहरण-रयण-सरिसचक्कं, कक्केयण-इंदणील-सासग-सुसमाहिय
 वट्टजाल-कडगं, पसत्थ-विच्छिण्ण-समधुरं पुरवरं च गुत्तं, सुकिरण-
 तवणिज्ज-जुत्त-कलियं, कंकटय-णिजुत्त-कप्पणं, पहरणाणुजायं,
 खेडग-कणग-धणु-मंडलग-वरसत्ति-कोत्त-तोमर-सरसय-वत्तीसतोण-
 परिमंडियं, कगग-रयण-चित्तं, जुत्तं हलीमुह-वलाग-गयवंत-चंद-
 मोत्तिय-तण-सोल्लिय-कुन्द-कुडय-वरसिदुवार-कंदल-वर-केण-णिगर-
 हारकासप्पगास-धवलेहि अमर-मण-पवण-जइण-चवल-सिग्घ-
 गामीहि चउहि चामरा-कणग-विभूसियंगेहि, तुरगेहि, सच्छत्तं
 सज्जयं सघटं सपडागं सुकपसधिकम्मं, सुसमाहिय-समर-कणग-
 गंभीर-तुल्लघोसं—

कीलें पत्ती आदि लगाई गई हैं । वायुदेव के शस्त्र-प्रहरणरत्न —
 चक्ररत्न जैसे गोल जिसके पहिये हैं, जिसके जाली झरोखे
 कर्कतनरत्न, इन्द्रनीलमणि, सासक आदि रत्नों द्वारा सुन्दर रीति
 से बनाये गये हैं, जिसकी धुरी प्रशस्त है, विस्तीर्ण है और सम-
 वक्रतारहित है, श्रेष्ठ पुर (नगर) की तरह चारों ओर से
 सुरक्षित है, सुन्दर किरणों वाले तपनीय सुवर्ण से बना हुई घोड़ों
 की लगामें हैं, वस्त्रों से ढका हुआ है, प्रहार करने के साधन
 अस्त्र-शस्त्र आदि जिसमें रखे हैं, खेड—डाल कनक—विशेष
 प्रकार के वाण, धनुष मण्डलाग्र तलवार, वरशक्ति—त्रिशूल,
 कुन्ता—भाला, तोमर विशेष प्रकार का वाण सैकड़ों सामान्य
 शर—वाण जिनमें रखे हैं ऐसे वत्तिस तूणीर—तरकस आदि
 यथास्थान रखे हैं, सुवर्ण और मणियों के चित्राम बने हैं, अथवा
 सुवर्ण और मणियों की चित्रकारी से चित्र जैसा प्रतीत होता है,
 इसमें हलीमुख—एक प्रकार का श्वेत पदार्थ, बगुला, हाथीदांत,
 चन्द्र, मोती, तूण—मालती पुष्प, कुन्दपुष्प, कुटजपुष्प, उत्तम
 सिदुवार निगुण्डीपुष्प, कलन्द वृक्ष विशेष—पुष्प उत्तम फेन
 समूह, हार, कांस के सदृश धवल—श्वेत और देव, मन, पवन
 के वेग से भी अधिक वेगवाले, चपल, शीघ्रगामी तथा चामर
 और सुवर्ण के आभूषणों से शृंगारित, अश्व जुते हुए हैं तथा
 जिस पर छत्र ताना गया है, ध्वजा लहरा रही है, घंटा लगे
 हुए हैं, पताका फहरा रही हैं, जिसकी संघियों की मजबूती से
 जोड़ा गया है, युद्ध के योग्य समर करणक नामक वाद्य के धोप
 के सदृश गम्भीर घोष वाला है,

वरकुप्परं सुचक्कं वरणेमीमंडलं, वरधुरातोडं, वरवइरवट्ट-
 तुम्भं, वरकंचण-भूसियं वरायरिय-णिम्मियं, वरतुरग-संपउत्तं,
 वरसारहि-सुसपगहियं, वरपुरिसे वरमहारहं दुरूडे आरुडे पवर-
 रयण-परिमंडियं कणय-खिखिणीजाल-सोभियं, अउज्जं सोयामणि-
 कणग-तविय-पंकय-जामुवण-जलण-जलिय-सुय-तोडरागं, गुंजड-
 बंधुजीवग-रत्तिहिगुलग-णिगरसिदूररइल-कुं कुम-पारेवग-चलण-
 णयणकोइला-दत्तणावरण-रइयाइरेग-रत्तासोगक-ग-केसुय-गयतालु-
 सुरिदगोवग-समप्पसप्पगासं, विवकल-सिलप्पवाल-उट्ठित्तसूर-
 सरिसं, सव्वोउय-सुरहि-कुमुम-आसत्त-मल्लवामं, जलिय-सेय-उज्जयं,

जिसके दोनों कूपर—रथ के अवयव विशेष उत्तम हैं, सुन्दर
 चक्र—पहिये हैं, नेमिमण्डल—पहियों का मध्यभाग, उत्तम है
 घुरा के दोनों कोने उत्तम हैं, अग्रभाग उत्तम वचरत्न से बंधे हुए
 हैं, उत्तम भुवर्ण से विभूषित हैं, श्रेष्ठ शिल्पी द्वारा निर्मित हैं,
 श्रेष्ठ घोड़े जुते हुए हैं जो उत्तम सारथी के द्वारा चलाये जाते
 हैं, उत्तम पुरुषों के बैठने के योग्य उत्तम महारथ है तथा जो
 श्रेष्ठ रत्नों से भूषोभित है, सुवर्ण निर्मित घुँघरनों से शोभाय-
 मान है, अयोद्ध है अर्थात् जिनका सामना कोई घोड़ा नहीं कर
 सकता है, जिसका रंग सोदामिनी—विजली के समान धराये हुए
 सोने, पंकज, जषा पुष्प, ज्वाला और तोंते की बाँध के समान
 लाल है, रथ की कांति आधी गुम्भची, बंधुजीवक, रण-
 हिगलुक के समूह, सिदूर, रचिर, कुं कुम, कबूतर के पैर शोचन
 की बाँध, अघरोष्ठ, रतिद, अत्यधिक लाल अक्षोभक ध्वज—
 तपाया हुआ सुवर्ण, किमूक पद्मपुष्प गजतालु, इन्द्रगण, इन
 सभी पदार्थों, तथा विम्बकल निवाप्रवाल—मृंगा, उभय दूर
 सूर्य जैसी लाल प्रभाव वाली है, जिन रथ पर छत्र धनुषों व
 युग्मित घुँघरों की माताये लटक रही है, उभय पक्षी ५१५

महामेह- रसिय-गंभीर-णिद्ध-घोसं, सत्तु-हियय-कंपणं, पभाए य सस्सिरीयं णामेणं पुहवि-विजय-लंभं ति विस्सुयं लोगविस्सु-यजसोऽह्यं चाउघटं आसरहं पोसहिए णरवई दुरूढे ।

तए णं से भरहे राया चाउघटं आसरहं दुरूढे समाने सेसं तहेव दाहिणाभिमुहे वरदामतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ - जाव - से रहवरस्स कुप्परा उल्ला - जाव - पीइदाणं से । णवरं चूडामणिं च दिव्वं उरत्थगेविज्जगं सोणियसुत्तगं कडगाणि य त्ठुडियाणि य - जाव - दाहिणिल्ले अंतवाले - जाव - अट्ठाहियं महामहिमं करेति, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

भरहस्स पभासतित्थविजयो—

५१६. तए णं से दिव्वे चक्करयणे वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिव्वमइ, पडिणिव्वमिन्ता अंतलिक्खपडिवण्णे - जाव - पूरंते च्चेव अंवरतलं उत्तरपच्चत्थिमं दिस्सि पभासतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था ।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं - जाव - उत्तर-पच्चत्थिमं दिस्सि तहेव - जाव - पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पभासति-त्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ, ओगाहिन्ता - जाव - से रहवरस्स कुप्परा उल्ला - जाव - पीइदाणं से । णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणि य त्ठुडियाणि य आभरणणि य सरं च णामा-ह्यंके पभासतित्थोदगं च गिण्हइ, गिण्हिन्ता - जाव - पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी - जाव - पच्चत्थिमिल्ले अंतवाले । सेसं तहेव - जाव - अट्ठाहिया णिव्वत्ता ।

भरहस्स सिन्धुदेवीकयं उवत्थाणियं—

५१७. तए णं से दिव्वे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिव्वमइ, पडिणिव्वमिन्ता - जाव - पूरंते च्चेव अंवरतलं सिधूए महाणइए दाहिणिल्ले णं कूलेणं पुरच्छमं दिस्सि सिधुदेवी-भवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था ।

फहरा रहा है, महामेघ की गर्जना जैसा गम्भीर और स्निग्ध जिसका घोप है, शत्रुओं के हृदय में कंपकपी मचा देने वाला है, पृथ्वी विजय लाभ के नाम से प्रसिद्ध है तथा लोक में जिसका यश फैला हुआ है, सब अवयवों से युक्त है, चार घंटाओं से जोयुक्त है ऐसे अथव रथ पर प्रातःकाल में वह शोभा सम्पन्न राजा भरत आरूढ़ हुआ ।

इसके बाद का समय वर्णन पूर्व में उल्लिखितवत् समझना चाहिए कि चानुघटक रथ पर आरूढ़ हुआ राजा भरत वरदामतीर्थ से दक्षिण दिशावर्ती लवण समुद्र में उतरा—यावत्—उस उत्तम रथ के कूपर—थुरी तक का अवयव विशेष—भीग गये—यावत्—प्रीतिदान ग्रहण किया । लेकिन इतना विशेष समझना कि चूडामणि—मुकुट वक्षस्थल पर पहनने का दिव्य आभूषण कटिसूत्र—कंदोरा, कडा, तोडा—यावत्—दक्षिण दिशा का अन्तपाल—यावत्—आठ दिन का महोत्सव करता है, उत्सव करके आदेशानुसार कार्य सम्पन्न होने की सूचना देता है ।

भरत का प्रभासतीर्थ विजय—

५१६. वरदामतीर्थ कुमार देव के सम्मान में किये गये अष्ट-दिवसीय महोत्सव सम्पन्न होने के पश्चात् वह दिव्य रत्न चक्ररत्न आयुधगृहशाला में से बाहर निकला, बाहर निकलकर आकाश में अधर स्थित—यावत्—आकाश मण्डल को गुंजाता हुआ उत्तर पश्चिम दिशा—वायव्य दिशा में अवस्थित प्रभासतीर्थ की ओर चलने लगा ।

तत्पश्चात् वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न को—यावत्—उत्तर पश्चिम दिशा में आदि पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—पश्चिम दिशा की ओर सन्मुख होकर प्रभासतीर्थ से लवण समुद्र में प्रवेश करता है, प्रवेश करके—यावत्—उसके उत्तम रथ के कूपर भीग गये—यावत्—प्रीतिदान को स्वीकार किया । यह है कि माला, मुकुट, मुक्ता विशेष राशि, सुवर्ण राशि, कड़ा तोड़ा आभरण नामांकितशर और प्रभासतीर्थ का जल इन सबको ग्रहण करता है, ग्रहण करके—यावत्—प्रभासतीर्थ तक के पश्चिम दिशावर्ती क्षेत्र पर विजय प्राप्त करली है, इसलिए इस प्रभासतीर्थ मर्यादा से मैं भी आप देवानुप्रिय का देशवासी बन गया हूँ—यावत्—पश्चिम दिशा का अंतवाल (सीमारक्षक) हो चुका हूँ । शेष वर्णन पूर्ववत्—यावत्—अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हुआ ।

भरत का सिन्धुदेवीकृत उपस्थान—

५१७. प्रभासतीर्थकुमार देव के सम्मानार्थ किये जाने वाले आष्टान्हिक महामहोत्सव के सम्पन्न होने के अनन्तर वह दिव्य चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकलता है, निकलकर—यावत्—अपने निनाद से आकाश मण्डल को व्याप्त करता हुआ सिन्धु-महानदी के दक्षिण तट से होता हुआ पूर्व दिशा की ओर सिन्धुदेवी के भवन की ओर चला ।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं सिधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं विसिं सिधूदेवीभवणाभिमृहं पयायं पासइ, पासित्ता हट्ठत्तुट्ठच्चित्तमाणंविए तहेव - जाव - जेणेव-सिधूए देवीए भवणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते दुवाल्सजोयणायामं णवजोयणविच्छिण्णं वर-णगर-सारिच्छं विजयखंधावार-णिवेसं करेइ - जाव - सिधुदेवीए अट्ठमभत्तं पणिण्हइ, पणिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव - दम्मसंथारोवगए अट्ठमभत्तिए सिधुदेविं मणसिं करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णे अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सिधूए देवीए आसणं चलइ, तए णं सा सिधुदेवी आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउजइ, पउजित्ता भरहं रायं ओहिणा आमोएइ, आमोइत्ता इमे एयारूवे अज्जत्थियए चित्तिए पत्थियए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

“उप्पण्णे खलु भो ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण-मणागयाणं सिधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणियं करेत्तए । तं गच्छामि णं अहं पि भरहस्स रण्णे उवत्थाणियं करेमि” त्ति कट्ठं कुम्भट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणा-मणि-कणग-रयण-भत्ति-चित्ताणि य दुवे कणग-भट्टासणाणि य कडगाणि य तुडियाणि य - जाव - आमरणाणि य गेहइ, गिण्हित्ता ताए उविकट्ठाए - जाव - एवं वयासी—

“अभिजिए णं देवाणुप्पिएहि केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासिणी, अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्ति-किकरी, तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं एयारूवं पीइ-दाणं” त्ति कट्ठं कुम्भट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणि-कणग-कड-गाणि य - जाव - सो चेंव गमो - जाव - पडिविसज्जेइ ।

५१८. तए णं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणियल्लमइ, पडि-णिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ग्हाए, कयवत्तिरुम्मे सुत्तुप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घामरणात्तिकपत्तरीरे मज्जणघराओ पडिणियल्लमइ पडि-

तव वह राजा भरत उस दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण कूल से होते हुए पूर्व दिशा में स्थित सिधुदेवी के भवन की ओर जाते हुए देखता है, देखकर मन में हृष्ट तुष्ट आनन्दित होता है आदि शेष सभी पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—जिस ओर सिधुदेवी का भवन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर सिधुदेवी के भवन से अदूर सामन्त में—न अति दूर और न अति पास में बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा श्रेष्ठ नगर जैसा विजय स्कन्धा-वार का निवेश करता है—यावत्—सिधुदेवी के निमित्त अष्टम-भक्त तप स्वीकार करता है, स्वीकार करके पीपधशाला में पीपधव्रतधारी की तरह ब्रह्मचारी—यावत्—दम्ब के आसन पर बैठकर अष्टमभक्त वाला वह सिधुदेवी को मन में करते हुए अर्थात् उसका ध्यान करते हुए रहता है ।

तत्पश्चात् जब भरत राजा द्वारा किया गया अष्टमभक्त तप पूर्णरूपेण पदिणमान अर्थात् पूरा होता है तो इस तप के पूर्ण होते ही सिधुदेवी का आसन कंपायमान होता है. तब वह सिधु-देवी अपने आसन को कंपायमान होता देखती है, देखकर अधि-ज्ञान का प्रयोग करती है, प्रयोग करके अधिज्ञान द्वारा भरत राजा को देखती है, देखकर उसको इस प्रकार का विचार चिन्तन, प्रार्थित और मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ—

‘जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भरत नामक राजा चातुरंत चक्र-वर्ती उत्पन्न हुआ है तो अतीत, वर्तमान और अनागत में होने वाले सिधुदेवियों का यह परम्परागत आचार है कि वे भरत राजाओं का उपस्थान—सम्मान करें ।’ तो मैं भी जाऊँ और भरत राजा का आदर—सम्मान करूँ ऐसा विचार करके रत्नों से बने हुए एक हजार आठ कलश और जिन पर अनेक प्रकार के मणि-सुवर्ण रत्नों से चित्रकारी की गई है ऐसे दो भद्रासन, कड़ा, तोड़ा—यावत्—आभरण लेकर उत्कृष्ट गति से आकर—यावत्—इस प्रकार बोली—

‘आप देवानुप्रिय ने केवलकल्प भरतवर्ष को जीत लिया है, जिससे हे देवानुप्रिय ! मैं भी आपकी देशवासिनी हो चुकी हूँ अर्थात् आपकी प्रजा हूँ आप देवानुप्रिय की आज्ञाकारिणी किकरी—सेविका हूँ तो हे देवानुप्रिय आप मेरी यह भेंट स्वीकार करो’, रत्नों द्वारा चित्रित एक हजार आठ कलश विभिन्न मणियों से खचित सुवर्ण के कड़ा आदि स्वीकार करो—यावत्—पूर्वोक्त पाठानुसार तब वर्णन करना चाहिए—यावत्—विदा करता है ।

५१८. तत्पश्चात् वह भरत राजा पीपधशाला में बहुर निकलता है, निकलकर जिस ओर स्नानगृह था, वहाँ जाता है वहाँ आकर स्नान करता है, बलिर्कर्म करता है, शूद्र पवित्र मंगलकारी श्रेष्ठ वस्त्रों—पोशाक को पहनता है, अत्यन्त महामूर्खवान् आभरणों

पणिहत्ता पोसहसालाए पोसहिए वंमयारी-जाव-कयमालगं देव्वं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ, तहेव-जाव-वेयड्ढगिरिकुमारस्स ।
णवरं पीइदाणं हत्थोरयणस्स तिलगचोहंसं मंडालंकारं कड-गाणि य -जाव- आभरणाणि य गेण्हइ, गिणिहत्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ-जाव-मोयणमंडवे । तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति ।

भरहस्स सुसेणसेणावइणा ससेणं चम्मरयणनावाभूएण सिधुनईसमुत्तीरणं—

५२१. तए णं से भरहे राया कयमालस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए ममाणोए सुसेणं सेणावइं सहावेइ, सहावित्ता एव्वं वयासी—

“गच्छाहि णं भो देवानुप्पिया ! सिधूए महाणईए पच्चत्थिय-मिल्लं णिव्वुड्ढं ससिधु-सागर-गिरि-भेरागं, सम-विसम-णिव्वु-डाणि य ओअवेहि, ओअवेत्ता अगाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि, अगाइं० पडिच्छित्ता नमेयमाणत्थियं पच्चप्पिणाहि ।

५२२. तए णं से सेणावई बलस्स णेया भरहे वामंमि विस्सुय-जसे महाबलपरबकमे महएणा ओयंती तेय-लखणजुत्ते मिल्लखु-भासा-वित्सारए वित्तचारुमासी भरहे वामंमि णिव्वुडाणं णिण्णाण य दुग्गमाण य दुग्गवेसाण य विघाणए अत्य-सत्य-कुसले रयणं सेणा-वई सुसेणे भरहेणं रण्णा एव्वं वुत्ते समाणे हट्ठत्तुट्ठचित्तमाणविए-जाव-ररयल-परिग्गहियं वसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु एव्वं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसु-गित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिव्वसमइ, पडिणिव्वसमित्ता जेणेय तए आवासे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुम्बिय-पूरिसे सहावेइ, सहावित्ता एव्वं वयासी—

“सिधुपामेव भो देवानुप्पिया ! आमिसेवकं हत्थिरयणं पटि-कपेहं हय-गय-रह-यवर-जाव-बाउरंणिणं सेणं सण्णाहेहं” ति

तप स्वीकार करता है, स्वीकार करके पीपघसाला में पीपघयुक्त की तरह ब्रह्मचारी हो—यावत्—कृतमालदेव को मन में करते हुए वहाँ रहता है ।

तत्पश्चात् जब उस भरत राजा का अष्टमभक्त सविधिपूर्ण होता है तब कृतमाल देव का आसन चलायमान होता है, उसी प्रकार—यावत्—वेताड्यगिरि कुमार के वर्णन की तरह समझना चाहिए । लेकिन यहाँ इतना विशेष है कि प्रोतिदान हस्तिरत्न का तिलक नामक चौदहवाँ आभरण भांड और अलंकार, कटक—यावत्—आभरणों को लेता है, लेकर वह उत्कृष्ट गति—यावत्—सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदा करता है—यावत्—भोजन मण्डप में आता है । उसी प्रकार महामहोत्सव करता है, कृतमाल देव की आज्ञा वापस सौंपता है ।

भरत के सुसेन सेनापति द्वारा ससैन्य नौकाभूत चर्मरत्न द्वारा सिधुनदी समुत्तीरण—

५२१. कृतमाल देव का महामहिमावाला अष्टान्हिक उत्सव सम्पन्न होने के अनन्तर भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सिधुमहानदी के पश्चिम दिशावर्ती निष्कुट को—कोने को—सिधु सागर गिरि की मर्यादा—सीमा—तक के जो सम विषम निष्कुट प्रदेश हैं, उसको अधीन करो । अधीन करके अग्र और उत्तम रत्नों को लाओ, अग्र आदि रत्नों को लाकर मेरे पास आकर आदेश पूर्ति होने की मुझे सूचना दो ।

५२२. इसके बाद वह सेना का अधिपति, बल का नेता, भरतवर्ष में विश्रुत यशवाला, महान बल एवं पराक्रम वाला महात्मा, ओजस्वी, तेजस्—लक्षणों से युक्त, म्लेच्छ भाषा विहारद, मनो-रमणीय भाषी, भरतवर्ष के निष्कुट प्रदेशों, नौवारणों और दुर्गम और दुग्गप्रदेश स्थानों का जानकार, अत्य-सत्य में कुशल, सेनापति रत्न मुनेन सेनापति भरत राजा की इस बात की सुनकर हृष्ट तृष्ट आनंदित हुआ—यावत्—जिनने इस नद्य इकट्ठे हो जायें इस तरह करतलो को जोड़ मन्त्रक पर लगाकर अंजलि करके बोला—‘हे स्वामिन् ! तवास्तु—यंभी आज्ञा से बंसा ही होगा, विनयपूर्वक आज्ञा उचनों की स्वीकार करता है, स्वीकार करके भरत राजा के पास ने वापस निकलता है, निकल-कर जहाँ अपना आवास था, वहाँ आता है, वापस कोट्टिचरिय पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हत्थिरत्न को मुत्तगिज्ज करो, अरय, मय, रय, उतम जोटाओ से वृत्त—यावत्—बसुरगियो सेना को उंयार को’, ऐता इत्येव ज्ञे

क्रद्दु जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता मज्जण-
घरं अणुपविसइ, अणुपविसिता प्हाए कयवलिकम्मे कयकोउअ-
मंगलपायच्छित्ते सण्णद्ध-वद्धवम्मियकवए उप्पोलियसरासणपट्टिए,
पिणद्ध-गेविज्ज-वद्ध-आविद्ध-विमल-वर-विधपट्टे गहियाउहपहरणे
अणेग-गणणायग-वंडणायग-जाव-सिद्धि संपरिवुडे सकोरंटमत्तलदामेणं
छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मंगलजय-जय-सहकयालोए मज्जणघराओ
पडिणिवलमइ, पडिणिवलमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला
जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता
आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुब्बडे ।

तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमत्तलदामेणं
छत्तेणं धरिज्जमाणेणं हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगि-
णीए सेणाए सिद्धि संपरिवुडे, सहया-भड-चडगर-पहगर-वंदपरि-
विखत्ते, सहया उक्किट्ठि-सोहणाय-बोल-कलकल-सट्ठेणं, समुद्-
रव-भूयं पिव करेमाणे करेमाणे सविड्डीए सव्वज्जुईए सव्व-
वलेणं-जाव-निग्घोसनाइएणं जेणेव सिधु महानई तेणेव उवा-
उच्छइ, उवागच्छिता चम्मरयणं परामुसइ ।

तए णं तं सिरिवच्छसरिसख्वं मुत्त-तारद्ध-चंद-चित्तं अयल-
सकंपं अभेज्जकवयं जंतं सलित्तासु सागरेसु य उत्तरणं दिव्वं चम्म-
रयणं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वावि-
याइं, वासं णाऊण चक्कवट्टिणा परामुद्धे दिव्वे चम्मरयणे दुवालस
जोषणाइं तिरियं पवित्थरइ, तत्थ साहियाइं ।

तए णं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुद्धे समाने
खिप्पामेव णावाभूए जाए यावि होत्था ।

तए णं से सुसेणे सेणावई सखंधावार-बलवाहणे णावाभूयं
चम्मरयणं दुब्बहइ, दुब्बहिता मिधु महानई विमलजलत्तं गवीचि
णावाभूएणं चम्मरयणेणं सव्वलवाहणे ससेणे समुत्तिणं ।

सुसेणसेणावइणा सिंहलाइविजयो—

५२३. तओ महानइमुत्तरित्तु सिधुं अप्पडिहयसासणं सेणावई
अ कंहिचि गामागर-णगर-पव्वयाणि खेड-कव्वड-मडंवाणि पट्ट-
णाणि सिंहलए वव्वरए य सव्वं च अंगलोयं वलायालोयं च

स्नानगृह या वहाँ आया, आकर स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट
होकर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके
सन्नद्ध हुआ अर्थात् युद्ध में जाने के लिए तैयार हुआ, शरीर रक्षा
के लिए कवच धारण किया, ग्रीवा की रक्षा के लिए ग्रीवा पर
ग्रीवावंद पहना, विमल और उत्तम चिह्न पट्ट शरीर पर सजा
लिये, प्रहार करने के साधन ले लिये तथा अनेक गणनायकों,
दण्डनायकों आदि से परिवृत्त होकर, कोरंट पुष्पों की मालाओं
से सुशोभित छत्र को धारण करके, लोगों द्वारा मंगल सूचक जय-
जय शब्द किये जा रहे हैं, स्नानगृह से निकलकर जहाँ बाह्य
उपस्थानशाला (बैठक) थी, जहाँ आमिपेक्क हस्तिरत्न था, वहाँ
आकर आमिपेक्क हस्तिरत्न पर आरूढ़ हुआ ।

तत्पश्चात् वह सुसेन सेनापति, जो हाथों पर बँठा हुआ और
सिर पर कोरंट पुष्पमालाओं वाला छत्र लगाये हुए अश्व, गज, रथ
और प्रवर योद्धाओं वाली चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त, बड़े-
बड़े सुभटों के समूह से घिरा हुआ था, महान गगनभेदी सिंहनाद
आदि अनेक प्रकार के कोलाहलों द्वारा समुद्र गर्जना जैसा वाता-
वरण सजित करता हुआ सर्व प्रकार की ऋद्धि, द्युति, समस्त बल
के साथ—यावत्—निर्घोष नादपूर्वक जहाँ सिन्धु महानदी थी,
वहाँ आया, आकर चर्मरत्न को हाथों में लेता है ।

उस चर्मरत्न का आकार श्रीवत्स के आकार जैसा है और
उसमें मोती जैसे, आधे तारे जैसे और चन्द्र जैसे चित्र बने हुए हैं
तथा जो अचल एवं अकंप वन जाता है, अभेद्य कवच है ऐसा
यत्ररूप बन जाता है जिससे नदियों और तमुद्रों को पार करने
में सहायभूत—समर्थ बन जाता है, ऐसे इस दिव्य चर्मरत्न पर
सत्तर घान्य उग सकते हैं, जिनमें शण सत्तरवाँ घान्य है जो बने
पर एक ही दिन में उग जाता है, वर्षा की आशंका होने पर
चक्रवर्ती द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह दिव्य चर्मरत्न तिरछा
कुछ अधिक बारह योजन लम्बा फैल जाता है ।

तत्पश्चात् सुसेन सेनापति के द्वारा स्पर्श किये जाने पर
वह दिव्य चर्मरत्न शीघ्र ही नाव के जैसा बन गया ।

तब वह सुसेन सेनापति नाव के समान बने हुए इस दिव्य
चर्मरत्न पर अपने स्कन्धावार, बल, वाहन सहित चढ़ जाता है,
चढ़कर निर्मल पानी की जिसमें तरंगें उछल रही हैं ऐसी सिन्धु
महानदी को इस नौकारूप बने हुए चर्मरत्न के द्वारा बल वाहन
और सेना के साथ पार करता है ।

सुसेन सेनापति द्वारा सिंहलादि विजय—

५२३. महानदी को पार करके सिधु प्रदेश पर अप्रतिहत शासन
स्थापित करने के पश्चात् कितने ही ग्रामों, आगारों, नगरों,
पर्वतों के ऊपर बसे खेटों, कर्वरों, मण्डवों और पट्टणों पर तथा
सिंहल देश, वव्वर देश एवं समस्त अंगलोक, वलाया लोक और

परम-रम्मं जवणदीवं च पवर-मणि-रयण-कणग-कोतागार-समिद्धं
आरवए रोमए य अलसंड-विसयवासी य पिवखुरे कालमुहे जोणए
य उत्तरवेयड्ड-संसियाओ य मेच्छजाई बहुप्पगारा दाहिणअवरेण-
जाव-सिधुसागरंतो त्ति सच्चपवर-कच्छं च ओअवेऊण पडिणियत्तो
बहुसमरमणिज्जे य भूमिमागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे,

ताहे ते जणवयाग गगराण पट्टणाण य जे य तहि सामिया
पभूया आगरवई य मंडलवई य पट्टणवई य सव्वे घेत्तूण पाहुडाई
आभरणाणि य भूत्तणाणि रयणाणि य वत्थाणि य महुरिहाणि
अण्णं च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छियच्चं एयं सेणावइस्स
उवणोति मत्थय-कयंजलि-पुडा, पुणरवि काऊण अंजलि मत्थयंमि
पणया तुइमे अम्हेस्सय सामिया देवयं व सरणागया मो, तुइमं
विसयवासिणो त्ति विजयं जंपमाणा सेणावइणा जहारिहं ठविप
सत्कारिय विसज्जिया णियत्ता सगाणि गगराणि पट्टणाणि अणुप-
विट्ठा ।

परुचागयसुसेणसेणावइकयं भरहसमकखं पाहुडस्सपणं—

५२४. ताहे सेणावई सविणओ घेत्तूण पाहुडाई आभरणाणि भूत्त-
णाणि रयणाणि य पुणरचि तं सिधुणामधेज्जं उत्तिण्णे अणह-
सासण-वले, तहेव भरहसम रणो णिवेइ, णिवेइत्ता य अम्पि-
णित्ता य पाहुडाई सत्कारियमम्माणिए सहुरित्ते विसज्जिए त्तं
पडमंडपमइणए ।

तए णं सुसेणे सेणावई ष्हाए कयवत्तिकम्मे कयकोउय-मंगल-
पावत्तिहत्ते जिमिपभुत्तरागए त्तानो - जाय - सरत्त-गोतोत्त-
चंदपुत्तित्त-गायत्तरोरे उच्चि पात्ताववरणए कुट्टुमाणेहि मुईगन-
त्थएहि पत्तीसइत्तएहि पाइएहि परत्तगोत्तरउत्तेहि उच्चिच्चि-
अज्जाणे उच्चिच्चिअज्जाणे उच्चिच्चिअज्जाणे उच्चिच्चिअज्जाणे उच्चिच्चि-
(समि)अज्जाणे उच्चिच्चि(समि)अज्जाणे अहया एव-मट्ट-सोव-
वाइय-संयो-अत्त-सत्त-व-

उत्तम मणि, रत्न सुवर्ण के कोष्ठागारों से समृद्ध परम रमणीय
यवनद्वीप को तथा अरब, रोम और अलसण्ड देगवानी, फिरकुण्ड
देश के लोगों को तथा काले रंग वाले लोगों को, जोण (यवन)
लोगों को, तथा उत्तम वैताड्य पर्वत के किनारे बसी हुई समस्त
म्लेच्छ जातियों आदि सभी प्रकार की प्रजाओं को तथा दक्षिण
पश्चिम में—नैऋत्यकोण में—यावत्—सिधु सागर के अन्तर-
वर्ती द्वीपों की प्रजाओं को और समस्त प्रवर कच्छ को अधीन
करके सुसेन सेनापति वापस लौटा और बहुत ही समतल,
रमणीय कच्छ प्रदेश में आकर विश्राम करने के लिए बैठा है ।

उस समय उन-उन देशों, नगरों और पट्टनों को जो-जो
स्वामी थे, वे सब तथा आकरपति, मण्डलपति और पट्टनपति
थे, वे सब भेंटों को लेकर, आभरणों को लेकर, भूषणों को लेकर,
रत्नों को लेकर, मूल्यवान वस्त्रों को लेकर तथा और दूसरी-
दूसरी उत्तम वस्तुओं एवं राजाओं को देने योग्य पदार्थों को
लेकर, राजाओं को अभीष्ट चीजों को लेकर सेनापति के सामने
उपहार स्वरूप उपस्थित करते हैं और बारम्बार मस्तक पर
अंजलि करके तथा नतमस्तक होकर इस प्रकार बोले—

आप हमारे स्वामी हैं और जैसे देव की शरण लेते हैं, वैसे
ही आपकी शरण में आये हैं. हम आपके देगवासी हैं अर्थात्
प्रजा हैं और सेनापति की जय-जयकार करने लगे तब सुसेन
सेनापति के योग्यतानुसार उनको उनकी राजगद्दी स्थापित कर,
सत्कार कर, सत्सम्मान विदा किया और वे सब अपने नगरों,
पट्टनों आदि को लौट गये ।

**प्रत्यागत सुसेन सेनापतिकृत भरत के समक्ष प्रानृत
(उपहार) अर्पण—**

५२४. तत्पश्चात् अप्रतिहत शासन एवं बल वाले सुसेन सेनापति
ने सविनय प्राप्त उपहारों, आभरणों, आभूषणों, रत्नों आदि को
लेकर पुनः उन सिधु नामक स्थान की पार क्रिया, मग्न मय अर्पण
पूर्वजनुनार समझना, आकर अपना सारा बलागत भरत राजा से
निवेदन किया, निवेदन करके प्राप्त सब उपहारों को अर्पित
किया, मत्कारित, सम्मानित एवं मह्यं विदा होकर वह अपने
पट्टनपट्टन में आया ।

तत्पश्चात् सुसेन सेनापति ने स्नान क्रिया, अतिक्रमं शौचक,
मनन तथा प्रायश्चित्त करके भोजन किया—यावत्—अरबके
शरीर पर मरुत गोवीर्य चन्दन का लेप किया गया ऐसा वह
सुसेन सेनापति उत्तम प्रायास में गया, और पदा २२३ के
मूर्त्तियों के साथ उत्तम वस्त्रियों द्वारा अर्पित आ २२२ वर्तमान प्रकार
के सारकी को देखा हुआ, संकीर्ण को पुष्टता हुआ तथा अरब-
और से बचारे आ रहे मादम, मीठ बाट, तथा अर-रत्न,

तुडिप-वणमुङ्ग-पडुप्पवाइय-रवेणं इट्टे सद्-फरिस-रस-रुव-गंधे पंचविहे माणस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरइ ।

सुसेणसेणावइकयं तिमिसगुहादारुघाडणं—

५२५. तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइं सद्दा-वेइ. सद्दावित्ता एवं वयासी—

गच्छ णं खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! तिमिसगुहाए दाहि-णिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि विहाडित्ता मम एयमाण-त्तियं पच्चपिणाहि त्ति ।

तए णं से सुसेणे सेणावई भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठत्तुट्ठचित्तमाणंदिए - जाव - करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु - जाव - पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिवल्लमइ, पडिणिवल्लमित्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता द्दभसंथारगं संथरइ - जाव कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पणिण्हइ पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी - जाव - अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिवल्लमइ, पडिणिवल्लमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ. उवागच्छित्ता ण्हाए कय-वल्लिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे धूवपुष्फगंधमल्लहत्थ-गए मज्जणघराओ पडिणिवल्लमइ, पडिणिवल्लमित्ता जेणेव तिमिस-गुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बह्वे राईसर-त्तल-वर-मांडविय - जाव - सत्थवाहप्पभियओ अप्पेगइया उप्पलहत्थ-गया - जाव - सुसेणं सेणावइं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति ।

तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहुईओ खुज्जाओ चिलाइ-याओ - जाव - इंगिय-चित्तिय-पत्थिय-वियाणियाओ णिउणकुसलाओ विणीयाओ, अप्पेगइयाओ कलसहत्थगयाओ - जाव - अणुगच्छंती ।

५२६. तए णं से सुसेणे सेणावई सच्चिइहीए सच्चुईए - जाव - णिगघोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, परामुसित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थयं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदग-धाराए अब्भुक्खेइ,

तूर्यं, मृदंग आदि की ध्वनियों के साथ इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगता हुआ आनन्द करता है ।

सुसेन सेनापति कृत तिमिस्र गुफा द्वारोद्घाटन—

५२५. तत्पश्चात् अन्य किसी एक दिन भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही जाओ और तिमिस्रगुफा की दक्षिण बाजू के द्वार के किवाड़ों को उघाड़ दो, उघाड़कर मरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् द्वार धोलने की सूचना दो ।

तदनन्तर भरत राजा के इस आदेश को सुनकर वह सुसेन सेनापति हृष्ट तुष्ट आनन्दित हुआ—यावत्—दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवतंकर और मस्तक पर अजलि करके—यावत्—स्वीकार करता है, स्वीकार करके भरत राजा के पास से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ अपना आवासगृह था, जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर दर्म के संघारे (आसन) पर बैठता है—यावत्—कृतमाल देव के निमित्त अष्टमभक्त तप करता है, पौषधशाला में पौषधव्रती की तरह ब्रह्मचर्य धारण कर—यावत्—अष्टमभक्त तप के पूर्ण रूप से परिणत होने पर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया. आकर स्नान किया, वलिकर्म किया, कीतुकमंगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध स्वच्छ मंगलरूप वस्त्र पहने, अल्प किन्तु महामूल्यवान आभरणों से शरीर को अलंकृत किया तथा हाथ में धूप, पुष्प, सुगंधी मालाओं को लेकर स्नानगृह से बाहर निकला, निकलकर जहाँ तिमिस्रगुफा के दक्षिण दिग्वर्ती द्वार थे उस ओर गमन कर दिया ।

तब उस सुसेन सेनापति के बहुत से राजा, ईश्वर, कोत-वाल, मांडलिक—यावत्—सार्थवाह प्रभृति जिनमें से कितने ही हाथों में कमल लिये हुए थे—यावत्—सुसेन सेनापति के पीछे-पीछे अनुगमन करते हैं ।

तत्पश्चात् उस सुसेन सेनापति की बहुत सी कुञ्जा, चिलात देश आदि की दासियाँ - यावत्—इंगित, चिन्वित, इच्छित बात को समझने में निपुण, कुशल, विनीत कुछ एक के हाथों में कलश थे—यावत्—पीछे-पीछे चलती हैं ।

५२६. तत्पश्चात् समस्त ऋद्धि, समस्त द्युति—यावत्—वाद्यों के निर्घोष नादों के साथ वह सुसेन सेनापति जहाँ तिमिस्र गुफा के दक्षिण भाग का द्वार है, वहाँ आता है, वहाँ जाकर किवाड़ों को देखते ही प्रणाम करता है, प्रणाम करके लोमहस्तक—पीछी हाथ में लेता है, लोमहस्तक को हाथ में लेकर तिमिस्र गुफा के दक्षिण दिग्वर्ती द्वार के किवाड़ों को प्रमाजित करता है, प्रमाजित कर दिव्य जलधारा के द्वारा उनका अभिषेक करता है,

अधुविलत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचगुलितले चच्चए दलइ, दलित्ता अगेहि वरेहि गंधेहि अ मल्लेहि अ अच्चिणेइ, अच्चिणिता पुःसाहणं -जाव- वःयावणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविपुलवट्ट - जाव - करेइ, करित्ता अच्चेहि सण्हेहि रययामएहि अच्चरसातंडुलेहि तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्टट्ठमंगलाए आलिहइ,

तं जहा—सोत्तिय सिरिवच्छ - जाव - कयमह-गहिअकर- यलपमट्ठचंदप्पमवइरवेहलिअविमलवंडं -जाव- धूवं दलयइ, दलइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता करयल - जाव - मत्यए अंजलि कट्टु कवाडाणं पणामं करेइ, करित्ता वंडरयणं परामुसइ, तए णं तं वंडरयणं पंचलइयं वइरसारमइयं विणासणं सव्वसत्तु- सेण्णाणं खंधावारे णरवइस्स गड्ड-इरि-विसम-पवमार-गिरिवर- पवायाणं समीकरणं संतिकरं सुमकरं हियकरं रण्णो हिय- इच्छिप-मणोरह-पूरणं विच्चमप्पडिहयं वंडरयणं गहाय सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसवकइ पच्चोसविकत्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे वंडरयणेणं म्हाया म्हाया सहेणं तिक्खुत्तो आउडेइ ।

तए णं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेण- सेणावइणा वंडरयणेणं म्हाया म्हाया सहेणं तिक्खुत्तो आउडिया समाना म्हाया म्हाया सहेणं कौचारवं करेणाणा सरसरस्स सगाइं सगाइं ठागाइं पच्चोसविकत्ता ।

तए णं ते सुसेणं सेणावइं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स - कवाडे विहाडेइ, विहाडित्ता जेणं भग्हे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता - जाव - भरहं रायं करयलपरिमोहयं अएणं विजएणं अट्टापेट, यत्तचित्ता एए पवामी -

विहाडिया णं देवाणुप्पिया ! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा, एएणं देवाणुप्पियाणं विधं विडेएमि, विधं भे भवउ ।

अभिपेक करके सरस गोसीसचन्दन के पाँचों अंगुलियों के द्वारा चापे लगाता है, चापे लगाकर उत्तम श्रेष्ठ गंध और मानाओं द्वारा अर्चना-पूजा करता है, पूजा करके पुष्प चढ़ाता है—यावत्— वस्त्र चढ़ाता है, वस्त्र आदि अपित करके आतिचन, उत्सिनन, विपुलवट्ट—यावत्—करता है, ऐसा करके स्वच्छ स्निग्ध, रजत सद्ग अक्षरस तंदुलों द्वारा तिमिलगुफा के दक्षिण भाग के द्वार के किवाड़ों के सामने आठ-आठ मंगलों का ज्ञापन करता है,

यथा—स्वस्तिक, श्रीवत्स—यावत्—हाथ में एकड़ा हुआ करतल प्रभृष्ट चन्द्र के जैसा प्रभाव वाला तथा वज्र और वेदुप्य- मणि से निर्मित जिसका हाथा है, ऐसा धूपदान लेकर—यावत्— धूप खेता है धूप खेकर बाया घुटना ऊचा कर और दाहिना घुटना नीचा कर दोनों हाथ जोड़—यावत्—मस्तक पर अभंगि करके किवाड़ों को प्रणाम करता है, प्रणाम करके दण्डरत्न ही हाथ में लेता है, तत्पश्चात् पांच लता वाले, वज्र के सारभाग से निर्मित होने के कारण विशेष मजबूत समस्त वस्तु लेना ही विनाशक राजा का स्कन्धावार करना ही तो यहाँ जमान पर यदि कहीं खड्डे हों, गुफायें हों, विषम भूमि हो, बड़े-बड़े पर्वत हों तो उन सबको दूर करके समतल मैदान बनाने वाला है, शांतिकर है, शुभ-कर है, हितकर है, राजा का हितपी है, मनोरथ पूर्ण करने वाला है, दिव्य है, अप्रतिहत है ऐसे उद्य दण्डरत्न को हाथ में लेकर सात-आठ उग पीछे हटवा है, हटकर तिमिल गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों को उस दण्डरत्न के द्वारा बड़ी जोर की आवाज करके तीन बार ताड़ित करता है ।

तब तिमिल गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ सुसेन सेनापति द्वारा दण्डरत्न द्वारा जोर-जोर की आवाज के साथ तीन बार ताड़ित किये जाने पर शीघ्रतया ही आवाज जैसी आवाज करते हुए पड़े जोर की आवाज के साथ अपने-अपने स्थान पर सरक जाते हैं अर्थात् जतना स्थान छ.इ देते हैं ।

तत्पश्चात् वह सुसेन सेनापति तिमिल गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों को विपरीत कर देता है—उपाइ देता है, उपाइ कर जहाँ भरत राजा था, वही जाता है, अक्षर—यावत्—शेनों हाथ जोड़ इस विजय मन्त्री से भरत राजा की बधाई है, यथाकर इस प्रकार कहता है—

हे देवानुग्रिय ! तिमिल गुफा के दक्षिणी भाग के द्वार के किवाड़ों की उपाइ दिया है, यह जमाना भरत राजा का है, उसकी विवेदिह करता है, यह जमाना भरत राजा का है ।

गिरयणसहियस्स भरहस्स तिमिसगुहादारे पयाणं—

५२७. तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एय-
मट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठत्तुट्ठच्चित्तमाणंविए-जाव-हियए सुसेणं
सेणावइं सवकारेइ सम्माणेइ, सवकारित्ता सम्माणित्ता कोडुम्भिय-
पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पंडि-
कप्पेह ह्य-गय-रह-पवर तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवरं
णरवई दुख्खे ।

५२८. तए णं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ तोतं चउरं गु-
ल्लप्पमाणमित्तं च अणग्घं तंसियं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणि-
रयणपइसमं वेरुलियं सव्वभयकंतं जेण य मुद्धागएणं दुक्खं ण
किच्चि - जाव - हवइ आरोग्गे य सव्वकालं तेरिच्छियदेव-माणुस-
कया य उवसग्गा सव्वे ण करेत्ति तस्स दुक्खं, संगामेऽवि असत्य-
वज्जो होइ णरो मणिवरं धरेत्तो ठियजोव्वण-केस-अवट्ठिय-णहो
हवइ य सव्वभयविप्पमुक्को ।

तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए
कुम्भीए णिविखवइ ।

तए णं से भरहाहिवे णरिदे हारोत्थय-मुक्कय-रइय-वच्छे
- जाव - अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती मणिरयणक-
उज्जोए चक्करयणदेसियमग्गे अणेगरायसहस्साणुयायमग्गे महया
उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकलरवेणं समुद्धरवभूयं पिब करेमाणे
करेमाणे जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससि व्व
मेहंघयारणिवहं ।

मणिरत्नसहित भरत का तिमित्र गुफा द्वार का और
प्रयाण—

५२७. तत्पश्चात् मुसेन सेनापति द्वारा निवेदित समाचार का
सुनकर और समझकर भरत राजा तृष्ट तृष्ट आनंदित हुआ—
यावत्—हर्षित होकर मुसेन सेनापति का सत्कार सम्मान करता
हैं, सत्कार सम्मान करके कोटुम्बित्त पुत्रों को बुलाया, बुलाकर
इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिवेक्य हस्तिरत्न की सजाओं—
तैयार करो, अश्व, हाथी, रथ, प्रवर योद्धाओं की चतुरंगिणी
सेना को सुसज्जित करो आदि वर्णन पूर्व की तरह यही भी
समझ लेना चाहिए—यावत्—अजगिरिकूट सद्ग श्रेष्ठ हाथी
पर नरपति आरुढ़ हुआ ।

५२८. तत्पश्चात् भरत राजा मणिरत्न को हाथ में लेता है, वह
मणिरत्न तोत—अंकुश के समान है, चार अंगुल लम्बा है और
अनर्घ—अमूल्य है, तिरछा छह कोने वाला है, जिसकी चुति
अनुपम है, दिव्य है, मणिरत्नों के प्रति समान है अर्थात् सर्व
प्रकार के मणिरत्नों में प्रधान है, वैदूर्यमणि की आभा जैसी
आभावाला है, सभी प्राणियों के कान्त—प्रिय है और मस्तक पर
धारण करने पर किसी भी प्रकार के दुःख को सम्भावना नहीं
रहती अर्थात् दुःख फटक ही नहीं सकता—यावत्—सदैव
आरोग्य ही रहता है, इस मणिरत्न को धारण करने वाले को
तिर्यंचकृत, देवकृत और मनुष्यकृत उपसर्ग किञ्चिन्मात्र भी दुःखी
नहीं कर सकते हैं, संग्राम में निःशस्त्र होने पर भी इस मणिरत्न
को धारण करने वाले मनुष्य को कोई मार नहीं सकता, घायल
नहीं कर सकता, मणिरत्न को धारण करने वाला मनुष्य सदा
युवा रहता है, उसके केश व नख बढ़ते नहीं हैं, किन्तु जितने हों
उतने ही रहते हैं और वह समस्त भयों से मुक्त रहता है ।

उस मणिरत्न को लेकर वह नरपति हस्तिरत्न के कुम्भस्थल
के दक्षिणी भाग में रखता है ।

तत्पश्चात् वह भरताधिपति नरेन्द्र जिसका वक्षस्थल रति
उत्पन्न करने वाले हार से शोभित हो रहा है—यावत्—अमर-
पति—इन्द्र के समान ऋद्धि के द्वारा प्रथित कीर्ति वाला होकर,
जिस मार्ग में मणिरत्न द्वारा प्रकाश किया जा रहा है और चक्र-
रत्न द्वारा जिसको मार्ग बतलाया जा रहा है और जिसके पीछे-
पीछे अनेक हजारों राजा चल रहे हैं, महान् उत्कृष्ट सिंहादों
एवं कलकल ध्वनि द्वारा गगन मण्डल को समुद्र की ध्वनि के
समान करता हुआ जहाँ तिमित्र गुफा के दक्षिणी भाग द्वार थे,
वहाँ आता है, आकर मेघ समूह से अंधकारमय बने हुए आकाश
में जैसे शशि—चन्द्र प्रवेश करता है, वैसे ही तिमित्र गुफा के
द्वार द्वारा उस स्थान में प्रवेश करता है ।

कागणिरयण-सहियस्स भरहस्स तिमिसगुहापवेसो—

५२६. तए णं ते भरहे राया छत्तलं दुवालसंसियं अट्टकणियं अट्टकणिसंसियं अट्टकसोवणियं कागणिरयणं परामुसइ त्ति ।^१ तए णं तं चउरंनुत्तपमापमित्तं अट्टकमुवणं च विसहरणं अउलं चउरंसंठाणसंसियं समतलं माणम्ममाणजोगा जओ लोणे चरंति सव्वजणपवणवगा । ण इव चंदो ण इव तत्थ मूरे ण इव अग्गो ण इव तत्थ मणियो तिमिरं णासेति अंधयारे । जत्थ तयं दिव्यं भावजुत्तं दुवालसजोयणाइं तस्स लेसाओ विवड्डंति तिमिर-णिगर-पडिसेहिष्साओ । रत्तिं च सव्वकालं खंधावारे करेइ आलोयं दिवसभूयं तस्स पभावेण चक्कवट्टी तिमिसगुहं अईइ सेणसहिए अभिजेत्तुं विडयमद्धभरहं रायवरे कागणि गहाय तिमिसगुहाए पुरत्थिमिल्ल-पच्चत्थिमिल्लेसुं कडएणुं जोयणंतरियाइं पंचधणु-सपविमखंसाइं जोयणुज्जोयकराइं चक्कणेसोसंठियाइं चंदमंडल-पडिणिगासाइं एणुणवणं मंडलाइं आलिहमाणे आलिहमाणे अणुपचित्तइ ।

तए णं ता तिमिसगुहा भरहेगं रग्गा तेहि जोयणंतरिएहि-जाय-जोडणुज्जोयकरेहि एणुणवण्णाए मंडलेहि आलिहिजमाणेहि आलिहिजमाणेहि सिप्पामेव आलोणभूया उज्जोयभूया दिवसभूया जाया पापि होष्सा ।

तिमिसगुहामज्जदेसे उम्मग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ—

५२७. तोसे ष तिमिसगुहाए वहुमज्जइत्तभाए एत्थ षं उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ षासं दुवे महाणईओ वणत्ताओ, जाओ ष तिमिस-गुहाए पुरत्थिमिल्ल-ओ भित्तिवट्टाओ, पण्णाओ तमाणोओ पच्च-त्थिमेष निधं महाणइ सजपेति ।

ते सेणट्ठेणं भत्ते ! एव पुरवट्ट—उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ ?

काकणीरत्त सहित भरत का तिमिल्ल गुफा प्रवेश—

५२६. तत्पश्चात् वह भरत राजा छह तल वाला, बारह कोने वाला, आठ कणिकावाला, एरण की घाट वाला, आठ मुवणं प्रमाण वजन वाला काकणीरत्त को हाथ में लेता है । यह काकणी-रत्त प्रमाण में मात्र चार बंधुल है, आठ मुवणं जितने भार वाला है, विष का हरण करने वाला है, दूसरा रत्त जिनकी तुलना नहीं कर सकता, आकार में समचतुरस्रसंस्वान वाला है, समतल है, मानोमानपेत है अर्थात् इस रत्त को ध्यान में रखकर माप और उन्मान यानी दोवाल आदि बनाने के माप का प्र-हार लोक में प्रचलित है जिससे तबं जन प्रजापक है, जैसे चन्द्र ही न हो, सूर्य ही न हो, अग्नि ही न हो, बने ही यह भवि अंधकार का नाश कर देता है । यह काकणीरत्त दिव्य भार मुक्त होने से उसकी लेख्याएँ—किरणे बारह योजन तक व्याप्त हो जाती हैं और ये किरणें घनांधकार को दूर करने वाली हैं । रात्रि में समस्त स्कंधावार को आलोकनय कर देती हैं जिससे वह ऐसा हो जाता है कि मानो दिन ही न हो, जिनके प्रकाश से चक्रवर्ती अर्धभरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी सेना के साथ तिमिल्ल गुफा में प्रवेश करता है तथा वह उत्तम राजा काकणीरत्त को लेकर तिमिल्ल गुफा के पूर्व और पश्चिम के भाग में आगत कटकों में एक-एक योजन के अन्तर से पांच ती घणुप चौड़े और एक योजन तक प्रकाश फैलाने वाले चक्र की नेमि के आकार के तथा चन्द्रमण्डल के जैसे प्रकाश फैलाने वाले उननचास माण्डलाओ का आदेश करता हुआ प्रवेश करता है ।

तत्पश्चात् भरत राजा द्वारा एक-एक योजन के अन्तर से प्रकाश की व्यवस्था किये जाने के लिये उननचास भांडलों का आदेश किये जाने पर वह तिमिल्ल गुफा गीघ्र ही वरहास एक धन प्रकाशनय, उद्योतमय होने से दिन जैसी बन गई ।

तिमिल्ल गुफा के मध्य भाग में उम्मग्ग निमग्गजला महाणदियाँ—

५२७. उन तिमिल्ल गुफा के टीक मध्य भाग में उम्मग्गजला और निमग्गजला नामक दो महा नदियाँ हैं, जो तिमिल्ल गुफा के पूर्व के भित्तिप्रदेश से प्रवाहित होती हुई पश्चिम में किणु मूलतः में आकर मिल जाती है ।

हे भगवन् ! उन महाणदियों की उम्मग्गजला और निमग्ग-जला जो जय जाता है ?

“गोयमा ! जण्णं उम्मग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा आसे वा हत्थि वा रहे वा जोहे वा मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं उम्मग्गजला महाणई तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय एगंते थलंसि एडेइ ।

जण्णं णिमग्गजलाए महाणईए तणं वा, पत्तं वा, कट्ठं वा, सक्करं वा-जाव-मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं णिमग्गजला महाणई तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय अंतोजलंसि णिमज्जावेइ । से तेण-ट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ ।”

उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महानईसु वड्ढइरयणेण सुहसंकम-निम्माणं ससेणस्स भरहस्स उत्तरणं च—

५३१. तए णं से भरहे राया चक्करयण-देसियमग्गे अणेगराय महया उक्किट्ठ-सीहणाय-जाव-करेमाणे करेमाणे सिधूए महाणईए पुरित्थिमिल्लेणं कूलेणं जेणेव उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छिता वड्ढइरयणं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महा-णईसु अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठे अयलमकंपे अभेज्जकवए सालं-वणवाहाए सव्वरयणामए सुहसंकमे करेहि, करेत्ता मम एयमाण-त्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ।

तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए-जाव-विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता खिप्पामेव उम्मग्ग-णिमग्गजलासु महाणईसु अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठे-जाव-सुहसंकमे करेइ, करित्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता-जाव-एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तए णं से भरहे राया सखंधावारवले उम्मग्ग-णिमग्गजलाओ महाणईओ तेहि अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठेहि-जाव-सुहसंकमेहि उत्तरइ ।

तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडोहि सयमेव मग्गदाणं—

५३२ तए णं तीसे तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया महया कौंवारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं सगाइं ठाणाइं पच्चोसविकत्था ।

उत्तरड्ढभरहे सुसेणसेणावइकओ आवाडचिलाय-पराजओ—

५३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरड्ढभरहे वासे वहवे आवाडा

हे गौतम ! उम्मग्गजला महानदी में जो कोई तृण अथवा पत्र, अथवा काष्ठ, अथवा कंकर, अथवा अश्व, अथवा हाथी, अथवा रथ, अथवा योद्धा, अथवा मनुष्य उला जाये वा गिर जाये तो उम्मग्गजला महानदी तीन बार घुमा-घुमाकर दूर एकान्त में फेंक देती है ।

यदि निमग्गजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ठ, कंकर, अश्व, हाथी, रथ, योद्धा, मनुष्य गिर जाये तो निमग्गजला महानदी तीन बार घुमा-घुमाकर अपन पानी में निमग्ग कर देती है इस-लिये हे गौतम ! यह कहा जाता है कि वे दोनों उम्मग्गजला और निमग्गजला महानदियाँ हैं ।

उम्मग्ग निमग्गजला महानदियों पर वर्धकारत्त द्वारा सुख-संक्रम निर्माण और ससैन्य भरत का उत्तरण—

५३१. तत्पश्चात् चक्ररत्त जिसका मार्ग प्रदर्शित कर रहा है ऐसा वह भरत राजा अनेक राजाओं आदि के साथ उत्कृष्ट सिंहनाद द्वारा—यावत्—करता हुआ सिंधु महानदी के पूर्वी किनारे से होता हुआ जहाँ उम्मग्गजला महानदी है, वहाँ आया, आकर वर्धकीरत्त को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

“हे देवानुग्रिय ! उम्मग्ग निमग्गजला महानदियों पर सैकड़ों खंभों से सन्निविष्ट अचल, अकंप जिसका कवच अभेद्य हो, दोनों बाजुओं आलम्बन व सुरक्षा के लिए वाड़ लगाई गई हों, सबका सब रत्नों का वना हुआ सुसंक्रम (पुल) बनाओ, बनाकर मेरे आदेश पूर्ति की शीघ्र ही मुझे सूचना दो ।

तत्पश्चात् वह वर्धकीरत्त भरत राजा के इस आदेश को सुनकर हृष्ट तुष्ट आनन्दित हुआ—यावत्—विनयपूर्वक आदेश को स्वीकार किया, स्वीकार करके शीघ्र ही उम्मग्ग निमग्ग-जला महानदियों पर सैकड़ों खंभों से सन्निविष्ट—यावत्—सुसंक्रम (पुल) बनाता है, बनाकर जहाँ भरत राजा था वहाँ आया, आकर—यावत्—आदेश पूर्ति होने की सूचना देता है ।

तत्पश्चात् भरत राजा स्कंधावार एवं सेना सहित सैकड़ों खंभों के ऊपर बनाये गये—यावत्—सुसंक्रमों (पुलों) द्वारा उम्मग्गजला और निमग्गजला महानदियों को पार करता है ।

तिमिस्र गुफा के उत्तरी द्वार के किवाड़ों द्वारा स्वयमेव मार्गदान—

५३२. इसके बाद उस तिमिस्र गुफा के उत्तर बाजु के द्वार के किवाड़ स्वयमेव क्रौंचपक्षी की आवाज जैसी आवाज करते हुए अपने-अपने स्थान को छोड़ देते हैं अर्थात् द्वार खुल जाता है ।

उत्तरार्ध भरत में सुसेन सेनापति कृत आवाड़ चिलात पराजय—

५३३. उस काल उस समय में उत्तरार्ध भरतवर्ष बहुत से आवाड़

णामं चित्ताया परिवसंति । अद्ढा दित्ता वित्ता वित्थियण-विउल-
भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णा बहुधण-बहुजायहवरयया
आओग-वओगसंपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा, बहुदासो-दास-
गोमहित्त-गवेल्ल-स्पनूया बहुजणस्स अपरिभूया सूरा धोरा विक्कंता
वित्थियण-विउल-वलवाहणा बहूनु समर-संपराएनु लद्धलक्खा यापि
होत्था ।

५३४. तए णं त्तिमावाडचिलायाणं अण्णया कयाई विसयंसि
वहूइ उप्पाइय-सयाइं पाउब्भविट्था, तंजहा-अकाले गज्जियं, अकाले
विज्जुया, अकाले पायया पुक्कंति, अभिवलणं अभिवलणं आगस्से
.ययाओ णच्चंसि ।

तए णं ते आवाडचिलाया विसयसि वहूइ उप्पाइयसयाइं
पाउब्भयाइं पासंसि, पासित्ता अण्णमण्ण सहायेंति, सहायित्ता एव
पयासी—

“ एवं खनु देवानुप्पिया ! अहं विसयंसि वहूइ उप्पाइय-
सयाइं पाउब्भयाइं तंजहा—अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुया,
अकाले पायया पुक्कंति, अभिवलणं अभिवलणं आगस्से देववाओ
णच्चंसि, तं पा उज्जइ णं देवानुप्पिया ! अहं विसयस्त के मन्ने
उपइये भवित्थइ” त्ति वट्टइ ओहयमणसंक्कया चित्तातोणसागरं
पयिट्ठा करयत्त-पहत्थ-मुहा अट्टवताणोवणया भूमिपवडिट्ठिया
विवायति :

५३५. तए णं ते भरहे राया चवकरयण-इत्थियमयो-आय-मनुइ-
रवभूय विथ करेयाने करेयापे तिमित्तपुहाओ उत्तरित्थेयं यारेणं
एवे तति तसि थय सेहंयपारपियहा ।

चित्तात (आवाड़ा जाति के भील जपवा बायारा—इधर-उधर
परिभ्रमण करने वाले भील) बनते थे । जो धनाइय, अभिमानो,
अपने आपको श्रेष्ठ, विख्यात मानते थे, जिनके पास वित्तात
भवन थे, अनेक रायन थे, आसन थे, यान-रथ, वाहन थे तथा
बहुत सा धन था, बहुत सा सोना था, जवाहरात था, और धन
को बढ़ाने के लिए धीरधार करते थे, व्यापार में धन लगाने थे,
उनके पास पानी और अन्न के बड़े-बड़े भण्डार थे तथा इनके
लोगों को चिताते थे जिससे उनके भवनों के आन पान बहुत
बहुत अधिक पड़ा रहता था, तथा बहुत सी दासो रात, पायें,
वैल-भैलें, भेड़ें आदि थीं, ये लोग इतने वलवासी थे कि उनको
बहुत से लोग मिलकर भी पराजित नहीं कर सकते थे, सुरभीर
पराक्रमी थे, इनके पास विस्तीर्ण और विपुल भेना तथा वाहन
थे और बड़े-बड़े समरांगणों में अपना लक्ष्य प्राप्त किया था
अर्थात् बड़े-बड़े युद्धों में विजय प्राप्त की थी ।

५३४. तत्पश्चात् उन आवाड़ चिलातीं के देश में अन्य किसी
एक समय बौद्धों उत्पात उत्पन्न हुए, यथा—अजमय म मय-
गजेंना, अकाल में दिवली चमकना, अकाल में पृथी में धूलो का
पंदा होना, बार-बार आकाश में देवताओ का नाचना ।

तब ये आवाड चिलात अपने देश में भौंडो उल्लावो को
प्रादुर्भूत होता हुआ देखते थे, उल्लावों को देखकर एक दूसरे
को बुलाते थे, बुलाकर आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कही
हे—

“हे देवानुप्पिया ! नाहम गेता हे भू हमारे देश में गेहड़ो
उत्पात उत्पन्न हो गई है, यथा—अजमय में भेषजयता होना,
अजमय में दिवली का चमकना, अजमय में पृथी में धूलो का
नाचना, बार-बार आकाश में देवताओ का नाचना, जो न नाहम
हमारे देश में कौन सा उपद्रव होने वाला है, एना नाहकर
जिनकी माननिक शक्ति क्षीण हो गई, ये चिलाउ चित्ता उ लीक
सागर में डूब गए और मांकापुर होकर हृषीओ रर डूब या
टेकर आनंभ्यात में डूब गए और पृथीय में इष्टि परावत्त
चित्ता मय्य हो गये ।

५३५. तबन्तु चवकरयण द्वारा विज्जुया मण्डरयण चलाया था
यहा है, एना वट्ट मण्ड राया—वाणु—धुइ को चवका क
समान वातावरण देना करवा दूरा उचितिय युवा के उपर वाट्ट
के दार में मेष में प्रसन्न अवधार के मण्डु वं देव वाट्टावणय
हे, वेगे विकारता हे ।

“एष णं देवाणुप्पिया ! केइ अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलवसणे
हीणपुण्णचाउहसे हिरि-विरि-परिवज्जिए जे णं अहं विसयस्स
उवरि विरिएणं हव्वमागच्छइ, तं तथा णं घत्तामो देवाणुप्पिया !
जहा णं एस अहं विसयस्स उवरि विरिएण णो हव्वमागच्छइ”
त्ति कट्टु अणमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता
सण्णद्धवद्धवम्मियकवया उप्पोलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेविज्जा
बद्धआविद्धविमलवररिचघपट्टा गहियाउहप्पहरणा जेणेव भरहस्स
रणो अग्गाणीयं तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भरहस्स रणो
अग्गाणीएण सद्धि संपलग्गा यावि होत्था ।

तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रणो अग्गाणीयं ह्य-
मसिय-पवर-वीरघाइय-विविडिय-रिचघ-द्वयपडागं किच्छप्पाणोव-
गयं दिसोदिंसि पडिसोहिंति ।

५३६. तए णं ते सेणावलस्स णेया वेढो-जाव-भरहस्स रणो
अग्गाणीयं आवाडचिलाएहि ह्यमहियपवरवीर-जाव-दिसोदिंसि
पडिसोहिंयं पासड, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिकिए कुविए
निहिंसिमाणे कमलामेलं आमरणं दुख्हइ, दुख्हित्ता तए णं तं
असीइअंगुलमूसियं णवणउइमंलपरिणाहं अट्ठसयसंगुलमाययं
वत्तीसमंगुलमूसियसिरं चउरंगुलकण्णागं वीसइअंगुलबाहागं चउरं-
गुलजाणूकं सोलसअंगुलजंघागं चउरंगुलसूसयखूरं मुत्तोलीसंवत्त-
वत्तियमज्जं ईंसि अंगुलपणयपट्ठं सणयपट्ठं संगयपट्ठं मुजाय-
पट्ठं पत्तथपट्ठं विसिट्ठपट्ठं एणीजाणुणयवित्थयथद्वपट्ठं
वित्तलक्कस-णिवाय-अंकेत्तणमहारपरिवज्जियं तवणिज्जथास-

‘हे देवानुप्रियो ! यह कौन अनिष्ट की प्रायंता करने वाला,
दुरंतपंत लक्षणवाला, भाग्यहीन, कृष्णाचतुर्दशी को जन्म लेने
वाला, ल्ही (लज्जा) श्री विहीन हे जो हमारे देश पर आक्रमण
करने के लिये तेजी से बढ़ा चला आ रहा है, तो हे देवानुप्रियो !
हम उसे इस तरह पीछे भगा दें कि जिससे वह अपने देश पर
अपने पराक्रम द्वारा आगे न बढ़े—आक्रमण न कर सके,’ ऐसा
विचार कर वे भील एक दूसरे की बात को स्वीकार करते हैं,
बात स्वीकार करके युद्ध के लिए सन्नद्ध होते हैं, शरीर पर बर्म
और कवच बांधते हैं, शरासन—बाण की पट्टिका को बांधते
हैं, गले की रक्षा के लिये गलाबन्द बांधते हैं अपने-अपने होंदा
के अनुरूप विमल और उत्तम चिह्न पट्टक पहनते हैं, आयुधों
और प्रहारों के साधनों को लेते हैं और इस प्रकार युद्ध के लिए
तत्पर होकर जिस ओर भरत राजा का आगे आने वाला सेना
दल था, वहाँ आते हैं और वहाँ आकर भरत राजा के उस आगे
आने वाले सैन्यदल के साथ लड़ने लगते हैं ।

तत्पश्चात् वे आवाड़ चिलात भरत राजा के उस आगे
आने वाले सैन्यदल को आहत करके, मथित करके, उत्तमवीर
योद्धाओं को घायल करके और उनके चिन्ह वाली ध्वजा
पताकाओं को नष्ट भ्रष्ट—फाड़ फूड़ कर एवं गले में प्राण
अटके हुए के समान करके दिश विदिशाओं में भगा देते हैं ।

५३६. तत्पश्चात् सैन्यदल का नेता वेढो,—यहाँ का वर्णन पूर्व के
अनुसार समझना—यावत्—भरत राजा के आगे चलने वाले
सैन्यदल को आवाड़ चिलातों (भीलों) द्वारा आहत, मथित और
उत्तम वीर योद्धाओं को घायल किया जाना—यावत्—दिशा-
विदिशाओं में भागते हुए देखता है, देखकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट,
प्रचण्ड और कुपित होकर दौंतों को मिसमित्ताते हुए काल (यम-
राज) जैसा होकर कमलामेल नामक अश्वरत्न पर सवार होता है।
वह अश्वरत्न अस्सी अंगुल ऊँचा था निन्यानवे अंगुल प्रमाण उसका
विस्तार था एक सौ आठ अंगुल ल-वा था, उसका सिर वत्तीस अंगुल
ऊँचा था अर्थात् घोड़े के मस्तक का नीचे का भाग और घुटनों
से ऊपर का भाग वत्तीस अंगुल ऊँचा था, उसके कान चार
अंगुल के थे, ब्राह्म मस्तक के नीचे का भाग और घुटनों से ऊपर
का भाग बीस अंगुल का था, घुटने चार अंगुल के थे, जंघायें
सोलह अंगुल की थीं और चार अंगुल की क्षुर थी, घोड़े के पेट
का नीचे और ऊपर का भाग सांकड़ा, मध्यभाग और बीच में
थोड़ा चौड़ा और मुड़ने के स्वभाव वाली कोठी जैसा था, पलान
रखने का भाग कुछ अंगुल नमा हुआ था, जिससे सवार को
सुखकर था, उसकी पीठ संनत, सुजात और प्रशस्त थी विशिष्ट
प्रकार की थी, पीठ हरिणी के घुटने जैसी विशाल और उन्नत
थी, उसके अंग प्रत्यंग प्रहार वजित थे यानी इसको चलाने के
लिए चाबुक आदि मारने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, घोड़े

णामेणं आसरयणं सेणावई कमेण समभिरुद्धे कुवलयदलसामलं च रयणियर-मंडलणिभं सत्तुजण-विणासणं कणगरयणदंडं णवमालियपुष्फसुरहिगंधि णाणामणि-लयभत्तिचित्तं च पहोय-मिसिमिसित-तिक्खधारं दिव्वं खग्गरयणं लोए अणोवमाणं तं च पुणो वंस-रुक्ख-सिग-ट्टि-दत-कालायस--विउल--लोहदंडय-वरवडर-भेयगं-जाव-सव्वत्थअप्पडिहयं किं पुण देहेसु जंगमाणं ।

गाहा—पण्णासंगुलदीहो, सोलस से अंगुलाई विद्विण्णो ।
अद्धंगुलसोणीको, जेठपमाणो असी भणिओ ॥१॥

असिरयणं णरवइस्स हत्थाओ तं गहिऊण जेणेव आवाड-चिलाया तेणेव उवाउच्छइ, उवागच्छत्ता आवाडचिलाएहिं सद्धि संपलग्गे यावि होत्था ।

तए णं से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिलाए हयमहियपवर-चीरघाइय-जाव-दिसोदिंसि पडिसेहेइ ॥

आवाडचिलायपत्थणाए भरहसेणोवरि नागकुमारदेवकयं महामेहवरिसणं—

५३७. तए णं से आवाडचिलाया सुसेणे-सेणावइणा हयमहिय-जाव-पडिसेहिया समाणा भीया तत्था वहिया उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अचीरिया अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्ज-मिति कट्टु अणेगाइं जोयणाइं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता एगयओ मिलायंति, मिलइत्ता जणेव सिंधु महाणईं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता बालुयासंधारए संथरेंति, संथरिता बालुयासंधारए दुह्हंति, दुह्हित्ता अट्ठमभत्ताइं पगिण्हंति, पगिण्हित्ता बालुया-संधारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिया जे तेसिं कुलदेवया मेहमुहा णामं णागकुमारा देवा ते मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठंति ।

५३८. तए णं तेसिमावडचिलायाणं अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं आसणाइं चलंति, तए णं ते मेह-मुहा णागकुमारा देवा आसणाइं चलिआइं पासंति, पासित्ता ओहिं

कमलामेल नामक अश्वरत्न पर आरुढ़ होकर और नीलकमल के समूह के समान श्यामल, चन्द्रमण्डल सदृश चमचमाता, शत्रुजनों का विनाशक कनक और रत्नों से जिसकी मूठ मण्डित हे जो नवमल्लिका के पुष्प जैसी गंधवाली हे तथा जिस पर अनेक प्रकार के मणिरत्नों द्वारा भांति-भांति के चित्र बने हुए हैं, जिसकी तीक्ष्ण धार सात पर रखे जाने से चमचमा रही हे और जो लोक में अनुपम हे तथा कठिन से कठिन गांठ वाले वंसवृक्ष के सींग को, हड्डी को, हाथी दांत को, फौलाद से बने मोटे लोह दण्ड को और उत्तम वज्र को भेदने वाला—यावत्—सर्वत्र अप्रतिहत गतिवाला वह दिव्य खड्ग रत्न हे तो फिर जंगम प्राणियों को भेदने में कैसे कुण्ठित हो सकता हे । उस दिव्य खड्गरत्न का माप इस प्रकार हे—

पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा हे । खड्गरत्न (तलवार, असि) का अधिक से अधिक यह माप होता हे ।

ऐसे खड्गरत्न को नरपति (भरत राजा) से लेकर वह सेनापति जहाँ आवाड़ किरात ये वहाँ पहुँचता हे और पहुँचकर आवाड़ किरातों के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गया ।

तत्पश्चात् सुसेन सेनापति ने उन आवाड़ किरातों को आहूत करके, मथित करके, बड़े-बड़े सुभटों को घायल करके—यावत्—दिशा विदिशाओं में भगा दिया ।

आवाड़ किरातों की प्रार्थना से भरत सेना पर नागकुमार कृत महामेघवर्षण—

५३७. तत्पश्चात् सुसेन सेनापति द्वारा आहूत, मथित—यावत् भगा दिये गये वे आवाड़ किरात भयग्रस्त, त्रसित, व्यथित, उद्विग्न हो गये और भयभीत होकर आत्मविश्वास—विहीन हो गये, बलहीन हो गये, वीर्य-रहित हो गये, पुरुषार्थ और पराक्रम विहीन हुए वे अब सामना करना शक्य नहीं हे ऐसा सोचकर अनेक योजन दूर-दूर चले गये अर्थात् सैकड़ों योजन दूर भाग गये, भागने के बाद वे एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर जिस ओर सिंधु महानदी हे वहाँ आते हैं, आकर बालु रेती की शैया बनाते हैं, बनाकर उस पर बैठते हैं, बैठकर अष्टम-भक्त तप करते हैं, बालु के संधारे पर अवस्थित ऊपर को मुख किये निर्वस्त्र (अथवा निर्व्यसन) अष्टमभक्त तप धारक वे अपने कुल देवता मेघमुखनायक नागकुमार देवों का मन में स्मरण करते हुए समय व्यतीत करते हैं ।

५३८. तत्पश्चात् जब आवाड़ किरातों का अष्टमभक्त तप पूर्ण हुआ तब मेघमुख नामक नागकुमार देवों के आसन चलायमान होते हैं, तदनन्तर वे मेघमुख नामक नागकुमार देव अपने अपने आसनों को चलायमान होते देखते हैं, देखकर कारण को

पउंजंति, पउंजित्ता आवाउच्चिताए ओहिणा आनोएति, आनोइत्ता अणमणं सदावेत्ति, सदाइत्ता एव ययासी—

एवं लनु देवाणुणिया ! जंबुद्वीपे दीपे उत्तरद्वन्द्वरहे वामे आवाउच्चिताया त्तिपूए महाणइए वातुपासंयारोवग्वा उत्ताणमा अयसणा अट्टमभत्तिवा अग्हे कुलदेवए मेहमुहे पाणकुमार देवे मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठंति, त देवं लनु देवाणु-
णिया ! अग्हे आवाउच्चितायाणं अतिए पाउव्वभित्तए” त्ति अट्ट अणमणसस अतिए एवमट्ठं पडिमुणेति, पडिमुणेत्ता ताए उचिरुट्टाए तुरियाए-जाव-धीइवयमाणा वोइवयमाना जेणेव जंबुद्वीपे दीपे उत्तरद्वन्द्वरहे वामे जेणव त्तिपू महाणइ जेणव आवाउच्चिताया जेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अंतत्तिव-
पडिअण्णा मणियिणियाइ पंचवण्णाइं वत्थइ पवरपरिहिवा ते आवाउच्चिताए एवं ययासी—

“हं भो आवाउच्चिताया ! जणं तुमं देवाणुणिया ! वातुवा-
पंयारोवग्वा उत्ताणमा अयसणा अट्टमभत्तिवा अग्हे कुलदेवए मेह-
मुहे पाणकुमार देवे मणसीकरेमाणा मणसीकरेमाणा चिट्ठंति ।
तए णं अग्हे मेहमुहा पाणकुमारा देवा तुमं कुलदेवया तुमं
अतिवण्णं पाउव्वुवा, तं पउट्ठं देवाणुणिया ! ति करेभो ? [ति
आनिट्ठामो] के व भं मणसाइए ।”

५३६. तए णं मे आवाउच्चिताया मेहमुहाणं पाणकुमारानं देवाणं
अतिए एवमट्ठं वीरवा णिमम्व हट्टुद्विजित्तवणिया-जाव-
त्तिपयाउट्टाए उट्ठंति, अट्ठित्ता जेणेव मेहमुहा पाणकुमारा देवा
जेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पवरपरिहिणं-जाव-भत्तए
अतिव वट्टु मेहमुहे पाणकुमार देवे अणं विअण्व पडिसेति,
अट्ठित्ता एवं ययासी—

जानने के लिए अवधिजान का प्रयोग करते हैं, अनुकूल रूप
अवधिजान द्वारा आवाड़ किरातों का श्रेय है, श्रेयकर एव दूसर
को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहते हैं—

‘हैं देवानुप्रियो ! जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरदार वामे दु
महानदी के किनारे, वातु के नंदार पर अयसस जण ही बुद्ध
किय हुए, निर्व्यसन अष्टमभक्त पण के धारक आवाउच्चिता
अपने कुल श्रेयता रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देवी का
मन में धारण करते हुए—अपान करने हुए बैठे हैं, जो है देवानु-
प्रियो ! अपने लिए वही श्रेयकर है कि हम उन आवाउच्चिताओं
के पान जाकर प्रगट हों अर्थात् उनके सामने आये, ऐसा विचार
कर उन्होंने एक दूसरे की इस बात की स्वीकार किया, स्वीकार
करके ये अपनी उच्छुष्ट गति में रहने लगे थे—पारु—मन
करते-करते जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप का उत्तरार्ध भरदार नामक
क्षेत्र है, जहाँ विष्णु महानदी है और वहाँ भी जहाँ आवाउच्चिता
हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर अवस्थि में अवसरों जाकर
पुंचव्रतों वाले पंचरंगी वस्त्रों को अपनी वरदान रूप में आवाउ
किरातों से इस प्रकार कहते हैं—

‘प्रहो आवाउ किरातो ! तुम लोग वातु के नंदार पर बैठ
कार की ओर मुख किए हुए अयसस रहित तथा अष्टमभक्त पर
धारण किए कुल श्रेयता रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देवी
को मन में धारण करके बैठे हुए हो, इसलिये तुम्हारे हुए अयस
रूप हम मेघमुख नामक नागकुमार देवी तुम्हारे सामने पगट हुए
ह, तो है देवानुप्रियो ! हम ही वही कि हम तुम्हारा लोभ का
कार्य करें, अयसस मन में क्या विचार कर रहे हो ?

५३७. अयससपुं वे आवाउ किरात उव मेघमुख नामक नाग-
कुमार देवी ही इस बात की बुझकर, अयसस हुए हुए लोभ
मन में आनयित हुए—अपानु—अयसस दूसरे हुए लोभ अयस
स्वयम में बैठे, उठकर अयस लोभ मेहमुहा नामक नागकुमार देव
पे, वहाँ आते, आकर अपने हाथ जोड़े—पारु—अयसस पर
अतिव करके और मेघमुख नामकुमार देवी का स्वीकार अयस
के यथासा, उवाउच इव प्रकार कहा—

“एस णं भो देवानुप्पिया ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्क-
वट्ठी महिड्ढिए महज्जुए -जाव- महासोवखे, णो खलु एस सक्को
केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, किण्णरेण वा, किणुरिसेण वा महो
रगेण वा, गंधवेण वा, सत्थप्पओगेण वा, अग्गिप्पओगेण वा,
संतप्पओगेण वा, उद्दवित्तए पडिसेहित्तए वा, तहा वि य णं तुव्वं
पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो उवसगं करेमो” त्ति कट्ठु तेत्ति
आवाडच्चिलायाणं अंतियाओ अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-
सन्नुघाएणं समोहणंति समोहणित्ता मेहाणीयं विउव्वंति, विउव्वित्ता
जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खंधावारणिवेसे तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता उप्पि विजयक्खंधावारणिवेस्स खिप्पामेव पत्तण-
तणायंति, पत्तणतणाइत्ता खिप्पामेव विज्जुयायंति, विज्जुयाइत्ता
खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं
वासं वासित्तं पवत्ता यावि होत्था ।

भरहेण छत्तरयणपवित्थरणं—

५४१. तए णं से भरहे राया उप्पि विजयक्खंधावारस्स जुगमुसल-
मुट्ठिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं
पासइ, पासित्ता चम्मरयणं परामुसइ । तए णं तं सिरिवच्छसरिस
ख्वं वेढो भाणियव्वो-जाव-दुवालसजोयणाइं तिरियं पवित्थरइ,
तत्थ साहियाइं ।

तए णं से भरहे राया ख्वंधावारबले चम्मरयणं डुल्लहइ,
डुल्लहित्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ ।

तए णं णवणउइ-सहस्स-कंचण-सलाग-परिमंडियं महरिहं
अउज्जं णिव्वण-मुपत्तत्थ-विसिट्ठ-लट्ठ-कंचण-सुपुट्ठदंडं, मिउरा-
ययवट्ठ-मट्ठ-अरविद-कण्णिय-समाणख्वं; वत्थिएसे य पंजर-
विराइयं, विविहभत्तिचित्तं, मणि-मुत्त-पवाल-तत्ततवणिज्ज-पंच-

हे देवानुप्रियो ! यह तो पृथ्वी की चारों दिशाओं में राज्य
करने वाला महाशक्ति—वैभव, महाशक्ति—नेत्र—यावत्—
महान सुख सम्पन्न भरत नामक चक्रवर्ती राजा है, जिसे कोई
यहाँ से हटा सके, उद्विग्न कर सके ऐसा कोई देव शक्तिशाली
नहीं है, दानव नहीं है, किन्नर नहीं है, किंपुत्र नहीं है, महोरग
या गंधर्व नहीं है तथा पक्ष-प्रयोग द्वारा, अग्नि-प्रयोग द्वारा
अथवा मंत्र-प्रयोग द्वारा भी कोई उपद्रव कर सके, रोक सके,
ऐसा नहीं है, ऐसी स्थिति होने पर भी तुमको जो प्रिय है—
इष्ट है—उसके लिए भरत राजा पर उपसर्ग करते हैं अर्थात्
हटाने के लिए कुछ न कुछ उपाय तो करते हैं, ऐसा कहकर वे
आवाड़ किरातों के पास से एक-दूसरे स्थान पर चले गये, वहाँ
जाकर उन देवों ने वैक्रियसमुद्घात द्वारा समुद्घात किया,
समुद्घात करके मेघसेना की विक्रयणा की ओर विक्रयणा करके
जिस ओर भरत राजा का विजय स्कन्धावार निवेश था, वहाँ
आये, वहाँ आकर विजय स्कन्धावार निवेश के ऊपर तत्काल
तण-तण इस प्रकार की ध्वनि करते हुए मेघ वर्षा करने लगे,
चारों ओर विजलियाँ चमकाने लगे और विजलियाँ चमकाकर
अर्गला जंसी मूशल जैसी धाराओं में मेघ बरमाने लगे । एक धारा
बरसाने लगे और इस प्रकार मेघ की घटाओं का सात रात्रि तक
बरसाने में प्रवृत्त हो गये ।

भरत द्वारा छत्ररत्न प्रविस्तरण—

५४१. तत्पश्चात् वह भरत राजा विजय स्कन्धावार पर अर्गला,
मूशल और मुष्टिप्रमाण जैसी धाराओं द्वारा मेघ मण्डल को
सात रात तक बरसता देखता है, उस प्रकार देखकर चर्मरत्न
को हाथ में लेता है, हाथ में लेने से वह चर्मरत्न शीवस के
स्वरूप जैसा आकार धारण करता है, आदि वेढो—वर्णन पूर्वानु-
सार समझना चाहिए—यावत्—वह चर्मरत्न तिरछा बरह
योजन से अधिक प्रमाण तक फैल जाता है ।

तब वह भरत राजा स्कन्धावार की सेना सज्जित चर्मरत्न
पर चढ़ जाता है, चढ़कर दिव्य छत्ररत्न को हाथ में ग्रहण
करता है ।

वह छत्ररत्न निम्नानवै हजार सोने की ताड़ियों से परि-
मण्डित—सुशोभित है, महामूल्यवान है, अयोध्य है, अर्थात्
जिसके पास यह छत्ररत्न है उससे कोई युद्ध नहीं कर सकता है,
इस छत्र का डण्डा किसी भी प्रकार की दरार, गांठ आदि से
रहित है, प्रशस्त है, विशिष्ट प्रकार का है, सुन्दर है और अच्छी
तरह पुष्ट मजबूत है तथा जो घिसकर खूब चिकना स्निग्ध
बनाया गया है और सुन्दर रजत कमलों के किनारों जैसा है,
छत्र के ठीक बीच में दण्ड लगा होने से पिंजरे के घाट जैसा
दिखता है, विविध प्रकार के चित्र उस पर बने हैं, मणि, मुक्ता,
प्रवाल तपे हुए सोने पाँच प्रकार के रत्नों, चमचमाते रत्नों के

तउस-तुम्ब-कालिग-कविट्ठ-अंब-अंबिलिय-सव्वणिप्फायए सुकुसले
गाहावइरयणे त्ति सव्वजणवीचुयगुणे ।

गाहावईरयणकओ भरहसेणाए सत्तदिणणिव्वाहो—

५४२. तए णं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्विजस-प्पइण्ण-
णिप्फाइय-पूइयाणं सव्वधण्णानं अणेगाई कुम्मसहस्साई उवट्ठवेइ ।

तए णं से नरहे राया चम्मरयण-समारुद्धे-छत्तरयण-समोच्छण्णे
मणिरयण-ऊउज्जोए समुग्गयभूएणं सुहंसुहेणं सत्तरत्तं परिवसइ ।

गाहा—ण वि से खुहा ण विलियं, णेव भयं णेव विज्जए दुक्खं ।
भरहाहिवस्स रण्णो, खंधावारस्स वि तहेव ॥१॥

देवसहस्सेहि नागकुमारं पइ भरहसरणगमणोवएसो—

५४३. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि
इमेयारुद्धे अज्जत्थियए चित्थियए पत्थियए मणोगए संकप्पे समुप्प-
ज्जित्था—

“केस णं मो ! अपत्थियपत्थयए दुरंतपतलवखणे-जाव-परि-
वज्जिए जे णं मनं इमाए एयाणुक्खाए-जाव-अन्निसमग्गागयाए
उत्ति विजयउंधावारस्स जुगनुत्तलमुट्ठि-जाव-वासं वासइ ।”

तए णं तस्स नरहस्स रण्णो इमेयारुद्धं अज्जत्थियं चित्थियं
पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पणं जाणित्ता सोलस देवसहस्सा
सत्तमिज्जउं पयत्ता याप्ति होत्था ।

तए णं वे देवा सत्तजुवत्तयन्मियकवया-जाव-गहियाउहप्प-
हरया देवेव ते मेह्मन्हा नागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता मेह्मन्हा नागकुमारि देवे एवं वयासी—

“हे मो मेह्मन्हा नागकुमारा देवा ! अपत्थियपत्थयणा-जाव-
परिवज्जियया कियं तुमने व नागहं नरहं रायं चाउरंतवचर-
णत्तं नरेत्थियं-जाव-उत्थियं वा, पत्थियेत्तिए वा, तहा

तरवूज, तुम्बा, कालिग कलींदा (तरवूज की एक जाति), कैथ,
आम, इमली आदि सब शाक सब्जियों को पैदा करने में
विशेष कुशल और सर्व जन समूह में प्रसिद्ध गृहपति (भण्डारी)
रत्न है ।

गृहपतिरत्न कृत भरत सेना का सप्तदिन निर्वाह—

५४२. तत्पश्चात् भरत राजा का वह गृहपति रत्न जिस दिन
बोये उसी दिन पैदा हुए सभी प्रकार के धान्यों को अनेक
हजार कुम्भों—घड़ों में भरकर भरत राजा के सामने
रखता है ।

तदनन्तर चर्मरत्न पर आरुढ़ छत्ररत्न से बराबर आच्छादित
और मणिरत्न द्वारा किये गये प्रकाश के कारण मानो करंडिया
रूप बने उस स्थान में वह भरत राजा सुखपूर्वक सात रात तक
वास करता है ।

(गाथा—) भरतात्रिप उस भरत राजा को तथा उसके
स्कन्धावार को न भूख का, न अनिष्ट का, न भय का दुःख है
और न किसी दूसरे प्रकार का दुःख है ॥१॥

देव सहस्रों द्वारा नागकुमारों को भरतशरणगमनो-
पदेश—

५४३. तत्पश्चात् जब सात दिन पूर्ण हो गये तब उस भरत
राजा को इस प्रकार का विचार आया, ऐसा चिन्तन पैदा हुआ
और मन में संकल्प उत्पन्न हुआ—

‘कौन है वह अनिष्ट की अभिलाषा करने वाला, दुष्ट
लक्षण वाला—यावत्—ही श्री से परिवर्जित—विहीन है जो
इस प्रकार की विघ्नकारी प्रवृत्ति द्वारा मेरे विजय-स्कन्धावार
के ऊपर अर्गला जैसी, मूशल जैसी, मुष्टि जैसी धाराओं द्वारा
वर्षा करने के लिये मेरे सामने खड़ा हुआ है ।

तत्पश्चात् उस भरत राजा के इस प्रकार के समुत्पन्न विचार
चितन और मनोगत संकल्प को जानकर सोलह हजार देव
सहायता करने के लिये तैयार हो गये ।

इसके बाद वे देव जो अस्त्रशस्त्र से सज्जित होकर युद्ध के
लिए तैयार हैं, जिन्होंने शरीर पर वस्त्र पहन लिये हैं, कवच
धारण कर लिये हैं—यावत्—आयुध और प्रहरण—प्रहार
करने के साधन ले लिये हैं, जहाँ मेघमुख नागकुमार देव हैं,
वहाँ आये, आकर मेघमुख नागकुमार देवों से इस प्रकार कहा—

हे मो मेघमुख नागकुमार देवो ! अपने अनिष्ट के अभि-
लाषी—यावत्—ही, श्री विहीन क्या तुम नहीं जानते हो कि
तुम महान ऋद्धिवाली चतुरदिग्वापी पृथ्वी के स्वामी भरत
राजा के सामने—यावत्—उपद्रव करने के लिये तैयार हुए हो
अथवा उसे रोकने पीठे हटाने के लिए तत्पर हो रहे हो तथा

यि णं तुम्हे भरहस्र रणो विजयघधावारस्त उप्पि जुगनुत्तनु-
ट्टिप्पमापानित्ताहि धाराहि ओपमं सत्तरत्तं वात्तं वामह, त
एवमवि गए इत्तो लिप्पामेव अयक्कमह, अह्व णं अरज पासह
चिन्नं जीवत्तमं ।”

पागकुमारोवएसेण चित्तायेहि भरहस्ररणगमणं—

५८४. तए णं ते मेहमूहा पागकुमारा देवा तेहि देवेहि एवं वृत्ता समाणा
भोधा तत्था यत्थिया उच्चिग्गा संजायभया मेहाणोयं पडिसाहरति,
पडिसाहरित्ता जेणोय आयाडचित्ताया तेणेव उवागच्छंति, उवाग-
च्छित्ता आयाडचित्ताए एवं थयात्तो—

‘एस णं देवानुप्पिया ! मरहे राया न्हिइइए-जाव-णो सनु एम
सक्को केणइ देवेण वा-जाव-अग्गिप्पओगेण वा-जाव-उद्धचित्ताए वा
पडिगेहित्तिए वा । तहावि य णं अम्हेहि देवानुप्पिया ! तुम्हं
पियदुयाए भरहस्र रणो उवत्तागे कए, तं गच्छह णं तुम्हे
देवानुप्पिया ! ७हाया कयवत्तिकम्मा कयकोउप-
मंगलथायच्छित्ता उल्लपइसाइया ओच्चूलगणियच्छा अग्गाइं पराइं
रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायपडिया मरहं रायाणं सरणं उवेह ।
पणिकइय-यच्छला अमु उत्तमवुरित्ता, पणिय मे भरहस्र रणो
अंतिवाओ भयमिति बटट्टु” एवं बइत्ता आमेव विसि पाउभूया
तामेव विसि पडिमया ।

तुम भरत राजा के विजय स्त-धावार के उतर बनेना बेगी,
तुमल बेगी, मुष्टि बेगी मोठी-मोठी बन धाराओ की वती गज
राज तक बरसा रहे हो। तो तुमने जो कुछ बरसाया था ठीक,
इने रोक कर नीघ्न हो गेछे हट जाओ अ-वया पाइ हो
विचित्र जीव लोक को देखोने अपना मरार इतने लोक से
जाना पड़ेगा ।’

नागकुमारों के उद्देश ने किरातों का भरत-धारण समझ—

५८४. उत्तरभावात् उन देवों की प्रसंगी का तुमकर से मपवृष
नामक नागकुमार देव भयभीत, पणित, अचिंत और उद्देश्यरत
हो गये और भयभीत होकर मेष मेष की भाँति लौटते
अपना मेषवर्ग को बंद कर देते हैं, यहाँ पर करके जिन को
आवाह किरात रहते थे, वहाँ जाते हैं और वाकर साइड
किरातों ने इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्पियो ! यह भरत राजा महान वैभवंशवादी है—
यावत्—उसे कोई देव अपना शत्रु—यावत्—अपना पणित
के प्रयोग द्वारा —यावत्— उद्देश्य करने अपना रोकने से
नमर्थ नहीं है । तो भाँ है देवानुप्पियो ! तुमका प्रिय पणो, एतदर्थ
हमने भरत राजा पर उतर्ग किया, लेकिन हमने कोई लाभ
होने वाला नहीं है, इसलिए हे देवानुप्पियो ! तुम जाते जाते
लौट जाओ और स्नान करके पूजा जादि करके अपना कौतुक,
मंगल एवं भावविपल करके अपने हुए मीने कपडा का बसिप्रय
ने फटोटा लगाकर उतार लोओ का लेकर लपे जोड़, वेगो ज
गिरकर भरत राजा की धरम लेगी, उतम पुत्र मय हुए
धरणागतों के प्रति वास्तव्य भाव धारण कान जाते हुए है,
भरत राजा की ओर से भय होने की उदाहारा नउ वती इस
प्रकार जिन दिशा से ते प्रादुर्भूत हुए थे जहाँ जाते थे, उता
दिशा से लौट गए ।

पदम-णरीसर ईसर हियईसर महिलियासहस्साणं ।
देवसयसाहसीसर चोइसरपणीसर जसंसी ॥३॥
सागरगिरिमेरागं उत्तरवाईणमभिजियं तुमए ।
ता अह्हे देवानुप्पियस्स विसए परिवसाभो ॥४॥

अहो णं देवानुप्पियाण इड्ढी जुई जसे बले वोरिए पुरिसवकार-
परवकमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवानुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ।
तं दिट्ठा णं देवानुप्पियाणं इड्ढी एवं चेव-जाव-अभिसमण्णागए,
तं खामेसु णं देवानुप्पिया ! खमंतु णं देवानुप्पिया ! खंतुमरहंति
णं देवानुप्पिया ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए त्ति” कट्ठ
पंजलिउडा पायवडिया भरहं रायं सरणं उविति ।

५४६. तए णं से भरहे राया तेसि आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं
रयणाइं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी—

“गच्छह णं भो ! तुम्हे ममं बाहुच्छायापरिग्गहिया णिब्भया
णिह्विग्गया सुहंसुहेणं परिवसह, णस्थि मे कत्तो वि भयमत्थि
त्ति” कट्ठ सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता
पडिविसज्जेइ ।

५४७. तए णं से भरहे राया सुसेणं सेणावइं, सहावइ सहावित्ता
एवं वयासी—

“गच्छाहि णं भो देवानुप्पिया ! दोच्चंपि सिधूए महाणईए
पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिधुसागरगिरिमेरागं सम-विसम-णिक्खुडाणि
य ओअवेहि, ओअवित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि,
पडिच्छित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ।

जहा बाहिणिल्लस्स ओअवणं तहा सव्वं भाणियव्वं-जाव-
पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

चुल्लहिमवंतगिरिकुमारविजयो—

५४८. तए णं दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ आउहघरसालाओ
पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे-जाव-
उत्तरपुरच्छिमं दिंसि चुल्लहिमवंतपठवयाभिमुहे पयाए यावि
नेत्ता ।

‘हे प्रथम नरेश्वर, ईश्वर, हजारों स्त्रियों के हृदय के ईश्वर,
लाखों देवों के ईश्वर, चौदह रत्नों के ईश्वर, यशस्वी ।३।
समुद्र और पर्वतों की सीमा तक का उत्तर और पश्चिम का
क्षेत्र तुमने सब जीत लिया है । इसलिये हे देवानुप्रिय ! अब हम
आपके देश में निवास करते हैं ।४।

अहो आप देवानुप्रिय का वैभव-श्रद्धि आपकी श्रुति, आपका
यश, आपका बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम, आपकी देवों
जैसी दिव्यश्रुति, आपका देव जैसा दिव्य प्रभाव आदि सब आपकी
लब्ध है, प्राप्त है, और सब तरह से समन्वित है अर्थात् पूर्णरूप
से मिला हुआ है । आप देवानुप्रिय की वह सब श्रद्धि आदि पूर्वो-
क्त सब—यावत्—सब तरह से अधिगत क्रिया है, हमने अपनी
आँख से देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हम आपसे क्षमा याचना
करते हैं, आप देवानुप्रिय हमें क्षमा कीजिये । आप देवानुप्रिय !
क्षमा प्रदान करने में समर्थ हैं, अब हम पुनः ऐसा करने वाले
नहीं हैं, ऐसा कहकर हाथ जोड़कर पगों में पड़कर भरत राजा
की शरण में गये ।

५४६. इसके बाद वह भरत राजा उन आवाड़ किरातों द्वारा
लाये गये अग्र उत्तम रत्नों की भेंट स्वीकार करता है, भेंट
स्वीकार करके उन आवाड़ किरातों से इस प्रकार कहता है—

‘हे भाइयो ! अब तुमने हमारे बाहुओं की छाया स्वीकार
करली हो इसीलिए अब तुम सब प्रकार से निर्भय हो, उद्वेग
रहित हो, सुखपूर्वक आनंद से रहो, किसी प्रकार का भय रखने
की जरूरत नहीं है, इस प्रकार कहकर उनका सत्कार करता है,
सम्मान करता है, सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदा करता है ।

५४७. तत्पश्चात् भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया और
बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और पुनः दूसरी बार भी
पश्चिम तरफ के सिन्धु सागर और पर्वत की मर्यादा तक के भू-
भाग के सम विषम निष्कूटों को अपने अधिकार में कर लो और
अधिकार में लेकर वहाँ के शासन करने वालों से अग्र और उत्तम
रत्नों आदि को प्राप्त करो, प्राप्त करके शीघ्र ही आज्ञा पूर्ति
होने की मुझे सूचना दो ।

यहाँ पर जैसे दक्षिण भाग को अधीन किया, वह समस्त
वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिए—यावत्—कामभोगों का
अनुभव करता हुआ आनंद से रहता है ।

धुल्ल हिमवंत गिरिकुमार विजय—

५४८. इसके बाद अन्य किसी एक दिन वह दिव्य चक्ररत्न
आयुधघरशाला से बाहर निकलता है, निकलकर अश्रित्त में
अधर होकर—यावत्—उत्तर पूर्व दिशा—वायव्यकोण—में
स्थित धुल्ल हिमवन्त पर्वत की ओर गमन करने लगा ।

चक्रानुगामी भरत का वैताढ्य के उत्तर नितंब में गमन—

५५१. नामगं आउडित्ता रहं परावत्तेइ, परावत्तित्ता जेणेव विजयखंघावारणिवेसे जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव-चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउध्वरसालाओ पडिणिव्वल्लमइ पडिणिव्वल्लमित्ता-जाव-वाहिरिदिस्स वेयड्ढपव्वया-मिमुहे पयाए, पावि होत्या ।

५५२. तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्रकरणं-जाव-वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णियवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णियवे दुवालसजोयणायामं-जाव-पोसहसालं अणुपविसइ-जाव-णमि-विणमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए-जाव-णमि-विणमि-विज्जाहररायाणो मणसी-करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ ।

विज्जाहरराएहि णमि-विणमीहि भरहस्स रयणाइ-इत्थिरयण—समप्पणं—

५५३. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंस्सि परिणममाणंस्सि णमि-विणमिविज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइयमई अण्णम-णस्स अंतियं पाउव्वन्ति, पाउव्वन्ति एवं वयासी—

“उत्तरेण खलु भो देवानुप्पिया ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे भरहे राया चाउरंतचक्रवट्टी, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण-मणागयाणं विज्जाहरराईणं चक्रवट्टीणं उवत्थाणियं करेत्तए, त गच्छामो णं देवानुप्पिया ! अम्हेवि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमो स्सि” गट्ठं विणनी-णाऊणं चक्रवट्टि दिव्वाए मईए चोइयमई माणुन्मा-णस्समाणं जुत्तं तेयस्सि खलुखणजुत्तं ठियनुव्वणकेसवट्ठिणहं सव्वरोगणासि बलकरि इच्छियसीउण्हकासजुत्तं ।

गाथा—तिमु तन्वं तिमु तंयं निप्रनागइउण्यं तिगंभीरं ।
तिमु काज तिमु नेयं तिप्रापयं तिमु य वित्तिव्वं ॥१॥

चक्रानुगामी भरत का वैताढ्य के उत्तर नितंब में गमन— ५५१. नाम लिखने के बाद रथ को लौटाता है, लौटाकर जिस ओर विजय स्कन्धावार था, जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी, वहाँ आता है, वहाँ आकर—यावत्—चुल्लहिमवन्त गिरिकुमार देव का आष्टाह्निक महामहोत्सव सम्पन्न होने के बाद दिव्य चक्ररत्न आयुधघरशाला में से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर—यावत्—दक्षिण दिशा की तरफ वैताढ्य पर्वत के सामने की दिशा में चल दिया ।

५५२. उसके बाद वह भरत राजा उस दिव्य चक्ररत्न को यावत्—वैताढ्य पर्वत के उत्तर के भाग की तरफ आता है, वहाँ आकर वैताढ्य पर्वत के उत्तर के भाग में बारह योजन लंबा यावत्—पौषधशाला में प्रवेश करता है—यावत्—नमि और विनमि नामक विद्याधर राजाओं की आराधना के लिए अष्टम-भक्त तप ग्रहण करके पौषधशाला में—यावत्—नमि और विनामि विद्याधर राजाओं को मन में धारण करते हुए रहता है ।

विद्याधर राजा नमि-विनमि द्वारा भरत को रत्नादि-स्वारात्न-समर्पण—

५५३. तदनन्तर भरत राजा का जब अष्टमभक्त तप पूर्ण होता है तब नमि और विनमि नामक दो विद्याधर राजा अपनी दिव्य मति द्वारा प्रेरित होने से वे दोनों एक-दूसरे के पास प्रादुर्भूत होते हैं अर्थात् आपस में मिलते हैं, मिलकर इस प्रकार कहते हैं—

‘हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में चतुर्दिक् व्यापिनी पृथ्वी का अधिपति भरत नामक चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है, अतएव अतीत, वर्तमान और अनागत काल के विद्याधर राजाओं का यह परंपरागत आचार-व्यवहार है कि चक्रवर्ती का आदर सम्मान करना चाहिये, तो हे देवानुप्रिय ! चलो हम भी भरत राजा का आदर-सम्मान करें, ऐसा विचार कर दिव्यमति द्वारा जिसकी मति प्रेरित हुई है, ऐसा विनमि विद्याधर चक्रवर्ती की समृद्धि को जानकर मानोन्मान प्रमाण शरीर धारिणी अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर के अंग प्रत्यगों वाली, तेजस्वी रूप लक्षणों से संपन्न स्थिर यौवनवाली अर्थात् सदैव युवा रहने वाली, कभी वृद्ध नहीं होने वाली जिसके केश और नख सदैव एक जैसे रहने वाले हैं, जिसका सहवास समस्त रोगों का नाश करने वाला है एवं बल-पुष्टिदायक है, इच्छित शीत एवं उष्ण स्पशः धारण करने वाली है अर्थात् इष्ट स्पर्श वाली है ।

(गाथा) जिसके शरीर के तीन अवयव—कटिप्रदेश, उदर, हनु-काठी शरीर की वनावट पतली है अर्थात् जो तन्वंगी है, तीन अंग लाल रंग के हैं, मध्य भाग तीन रेखाओं युक्त है, तीन अंग उन्नत हैं, तीन अंग गंभीर हैं, तीन अंग प्रयाम वर्ण के हैं, तीन श्वेत हैं तीन लंबे हैं, तीन विस्तार वाले हैं ।१।

णवरं णट्टमालो देवे पीड्ढाणं से आलंकारियमंडं कडगाणि य, सेसं सव्वं तहेव-जाव-अट्ठाहिया महामहिं ।

तए णं से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्ठाहियाए म० णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ, सद्दावित्ता-जाव-सिधुगमो णेयव्वो-जाव-गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिव्वखुडं सगंगासागर-गिरिमेरागं समविसमणिव्वखुडाणि य ओअवेइ, ओअवित्ता अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छइ, पडिच्छित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोच्चं पि सव्वखंधावारवले गंगामहाणइं विमलजलत्तुं गवीं, णावाभूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आमिसेवकाओ हत्थिरयणाओ पच्चोइहइ, पच्चोइहित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलप-रिग्गहियं- जाव-अंजलि कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेइ ।

सुसेणसेणावइस्स भरहेण सक्कारो—

५५६. तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से सुसेणे सेणावई भरहस्स रण्णो सेसं पि तहेव-जाव-विहरइ ।

अओ परं आगमणकमेण पडिगमणं भरहस्स—

५५७. तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

गच्छ णं भो देवानुप्पिया ! खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि, विहाडित्ता जहा तिमिसगुहाए तहा भाणियव्वं-जाव-पियं भे भवउ । सेसं तहेव-जाव-भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिन्व मेहंधयारणिवहं तहेव पविसंती मंडलाइं आलिहइ ।

तीसे णं खंडगप्पवायगुहाए बहुमज्जदेसमाए-जाव-उम्मग-णिमगलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव । णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ

कि णट्टमालक देव है, प्रीतिदान, अलंकार को सब सामग्री कटक आदि शेष पूर्व के समान समझना—यावत्—महामहिमा वात्ता आठ दिन का उत्सव हुआ ।

तत्पश्चात् णट्टमालक देव का आठ दिन का महोत्सव होने के बाद वह भरत राजा सुसेन सेनापति को बुलाता है, बुलाकर—यावत्—यहाँ भी पहले सिन्धु नदी के मन्मथ में जो वर्णन किया है तदनुसार पूर्वोक्त पाठ समझ लेना चाहिए—यावत्—गंगा महानदी के पूर्व भाग के निष्कुट प्रदेश को गंगासागर और पर्वत की मर्यादा तक जो सम विषम निष्कुट क्षेत्र हैं, उन पर अधिकार करो, अधीन करके अग्र उत्तम रत्नों को स्वीकार करता है स्वीकार करके जहाँ गंगानदी है, वहाँ आता है, वहाँ आकर दूसरी बार अपने स्कन्धावार के बल—सेना के नाय नौका के समान बने हुए चर्मरत्न के द्वारा विमल जल की ऊँची-ऊँची तरंगों वाली गंगा महानदी को पार करता है, पार करके जिस ओर भरतराजा का विजय स्कन्धावार निवेश था, जहाँ बाहरी उपस्थानशाला—बैठने का स्थान है, वहाँ आता है, वहाँ आकर आभियेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरता है, उतरकर अग्र उत्तम रत्नों को लेकर जहाँ भरत राजा है, वहाँ आता है, आकर दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—अंजलि करके भरत राजा को जय विजय शब्दों से बधाता है, बधाकर अग्र उत्तम रत्नों को सामने रखता है ।

भरत द्वारा सुसेन सेनापति का सत्कार—

५५६. तदनन्तर वह भरत राजा सुसेन सेनापति के अग्र, उत्तम रत्नों को स्वीकार करता है, स्वीकार करके सुसेन सेनापति का सत्कार-सम्मान करता है, सत्कार-सम्मान करके विदा करता है ।

तब वह सुसेन सेनापति भरत राजा के पास से निकलता है, इत्यादि शेष वर्णन पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये—यावत्—आनन्दोपभोग करता है ।

अथानन्तर आगमन क्रम से भरत का प्रतिगमन—

५५७. तत्पश्चात् किसी एक समय भरत राजा ने सुसेन सेनापति को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और खंडप्रयात गुफा के उत्तर के द्वार के किवाड़ों को खोल डालो—अलग अलग कर दो, खोलकर जैसा तिमिस्र गुफा के वर्णन में कहा है, वैसा यहाँ भी समझ लेना चाहिये—यावत्—आपको प्रिय हो । शेष वर्णन पूर्वोक्त—यावत्—भरत उत्तर के द्वार से प्रवेश करता है जैसे चन्द्र मेघ घटाओं के अन्धकार को दूर कर देता है वैसे प्रवेश करके राजा भरत मंडलों का आलेखन करता है ।

उस खंडकप्रयात गुफा के ठीक बीच में—यावत्—उन्मन्नजला और निमन्नजला नामक दो नदियाँ बहती हैं, यहाँ भी पूर्व कथन-वत् वर्णन समझना चाहिए । लेकिन अन्तर इतना है कि ये दोनों

रयणाइं सववरयणे चउदसवि वराइं चक्कवट्टिस्स ।
उप्पजंते एगिंदियाइं पंचिंदियाइं च ॥४॥

वस्थाण य उप्पत्ती णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं ।
रंगाण य घोव्वाण य सव्वाएसा महापउमे ॥५॥

काले कालण्णाणं सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ।
सिप्पसयं कम्मणि य तिण्णि पयाए हियकराणि ॥६॥

लोहस्स य उप्पत्ती होइ महाकाले आगराणं च ।
रूपस्स सुवण्णस्स य मणि-मुत्त-सिलप्पवालाणं ॥७॥

जोहाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य जुद्धणीई, माणवगे दंडणीई य ॥८॥

णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स य चउविहस्स उप्पत्ती ।
संखे महाणिहिमी तुडियंगाणं च सव्वेसि ॥९॥

चक्कट्टपइट्ठाणा अट्टुस्सेहा य णव य विक्खंभा ।
वारसवीहा मंजूससंठिया जण्हवीइ मुहे ॥१०॥

वेहलिय-मणिकवाडा कणगमया विविह-रयण-पडिपुण्णा ।
ससि-सुर-चक्क-लक्खण अणुसमवयणोववत्ती या ॥११॥

पत्तिओवमट्टिईया णिहिसरिणामा य तत्थ खलु देवा ।
जेसि ते आवासा अक्किज्जा आहिक्कचा य ॥१२॥

एए णव णिहिरयणा पभूय-धण-रयण संचय-समिद्धा ।
जे वसमुवगच्छति भरहाहिक्कवट्टीणं ॥१३॥^२

समस्त रत्नों में सर्वोत्तम ऐसे चक्रवर्ती राजा के चौदह रत्न इस चौथी निधि में हैं। इन रत्नों में कितने ही एक इन्द्रिय वाले और कितने ही पंचेन्द्रिय हैं।

पांचवीं महापद्म निधि है जो सभी प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति करती है तथा सभी तरह के रंगों और धानों की पद्धति की रीति बतलाती है। ५।

काल नामक निधान में काल, ज्ञान की जनक है और समस्त ज्योतिष विद्या की ज्ञापक है, तीर्थकरों, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव वंशों के भूत, वर्तमान और भविष्य की सूचक और उनके शुभा-शुभ की ज्ञापक है तथा सो प्रकार के शिल्पों की परिचायक है। ६।

महाकाल नामक महानिधि लोहे की उत्पत्ति बतलाती है तथा आकरों-खानों की, चांदी की, सोने की मणियों की, मोतियों की स्फटिक मणियों की और प्रवालों-मूंगों की उत्पत्ति की बोधक है। ७।

माणवक नामक आठवीं महानिधि योद्धाओं की, शूरवीरों की उत्पत्ति की सूचक है तथा कवच, प्रहरण, प्रहार करने के साधन एवं सभी तरह की युद्ध नीति और दंडनीति की ज्ञापक है। ८।

नाट्यविधि, नाटकविधि चार प्रकार के काव्यों तथा सभी प्रकार के वाद्यों और उनके अंगों की उत्पत्ति की दर्शक शंख नामक नौवीं महानिधि है। ९।

यह प्रत्येक महानिधि आठ आठ पहियों—चक्रों पर स्थित है, प्रत्येक आठ आठ योजन ऊंची, नौ-नौ योजन चौड़ी और बारह बारह योजन लम्बी है, मंजूपा पेटो की जैसी उनकी आकृति-घाट है और गंगानदी के मुख के आगे रही हुई है अर्थात् जहाँ गंगा नदी समुद्र में मिलती है, वहाँ रही हुई है। १०।

इन निधियों के किवाड वैडूर्य मणि से बने हुए हैं, जो सुवर्ण-मय हैं तथा विविध प्रकार के रत्न उनमें जड़े हुए हैं और उन पर सूर्य, चन्द्र, चक्र आदि के चिन्ह बने हुए हैं एवं दरवाजे सर्वथा अविषम अर्थात् सम चौरस हैं। ११।

इन निधियों की स्थिति पत्योपम जितनी है, इन निधियों के रक्षक देवों के नाम भी निधि के नाम समान हैं और वह निधि उस अधिष्ठाता देव की आवास रूप है, ये निधियाँ महामूल्यवान् हैं जिनको कोई खरीद नहीं सकता है और उस देव के आधिपत्य में ही रहती हैं। १२।

ये नौ निधियाँ निधिरत्न हैं अर्थात् निधियों में रत्न के समान हैं तथा धन और रत्नों के संचय से समृद्ध हैं, जो भरताधिप-भरत क्षेत्र के स्वामी भरत चक्रवर्ती राजा के अधीन होती हैं। १३।

१ एगमेगे णं महाणिही अट्टक्कवालपतिट्ठाणे अट्टट्ठजोयणाइं उडडं उच्चत्तेणं पणत्ते ।

२ एगमेगे णं महाणिही णव-णवजोयणाइं विक्खंमेणं पणत्ते । एगमेगस्स । रण्णी चाउरंतक्कवट्टिस्स णव महाणिहियो पणत्ता, तं जहा—जेसप्पे पंडुयए जाव सव्वेसि चक्कवट्टीणं ॥

—ठाणं त० ८, सु० ६०३

—ठाणं अ० ९, सु० ६७३

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं बुद्धस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा—

सोत्थियसिरिवच्छ-जाव-दप्पणे ।

तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंंगार दिव्वा य छत्तपडागा-जाव-संपट्ठिया ।

तयणंतरं च णं वेरुलिय-मिसंत-विमलवंडं-जाव-अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं ।

तयणंतरं च णं सत्त एगिदियरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तं जहा— १ चवकरयणे २ छत्तरयणे ३ चम्मरयणे ४ वंडरयणे ५ असिरयणे ६ मणिरयणे ७ कागणिरयणे ।

५६१. तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तं जहा— णेसप्पे पंडुयए-जाव-संखे,

तयणंतरं च णं सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तयणंतरं च णं वत्तीसं रायवरसहस्सा । पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तयणंतरं च णं सेणावडरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए । एवं गाहावडरयणे वड्डडरयणे पुरोहियरयणे ।

तयणंतरं च णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए ।

तयणंतरं च णं वत्तीसं उडुकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं वत्तीसं जणवपकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं वत्तीसं वत्तीसइवद्धा णाडग-सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं तिण्णि सट्ठा सूयसया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयससहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं चउरासीइं हत्थि-सयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं चउरासीइं रह-सयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स-कोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तयणंतरं च णं वहवे राईसर-तलवर-जाव-सत्थवाहप्पमिइओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

जब भरत राजा आभिषेक्य हृत्स्तरत्न पर सवार हुआ कि उसके आगे ये आठ-आठ मंगल अनुक्रम से चलने लगे, यथा—

स्वस्तिक, श्रीवत्स—यावत् दपेण ।

तदनन्तर पूर्ण कलशा, आरी (भृंगार), दिव्य छत्र और पताका—यावत्—चलने लगे ।

तदनन्तर वैभूर्यरत्न का चमचमाता विमल दंड—यावत्—अनुक्रम से चलने लगा ।

तदनन्तर एक इन्द्रियवाज सात रत्न अनुक्रम से आगे चलने लगे ।

यथा—१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चामररत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणिरत्न, ७. काकणोरत्न ।

५६१. तदनन्तर अनुक्रम से नव महानिधिमां आगे चलने लगीं । यथा—नेसपं, पांडुक—यावत्—गंध ।

तदनन्तर अनुक्रम से सोनह हजार देव आगे चलने लगे ।

तदनन्तर वत्तीस हजार राजा अनुक्रम से आगे चलने लगे ।

तदनन्तर सेनापति रत्न अनुक्रम से आगे चलने लगे । इसी प्रकार गृहपति रत्न, वर्यकी रत्न, पुरोहित रत्न, आगे आगे चलने लगे ।

तदनन्तर स्त्री रत्न अनुक्रम से आगे आगे चलने लगा ।

तदनन्तर वत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकी—राजा के लिए प्रत्येक ऋतु कल्याणकारी हो, इस तरह का आशीर्वाद देने वाले अनुक्रम से आगे आगे चलने लगे । तदनन्तर अनुक्रम से वत्तीस हजार जनपद कल्याणिकी आगे आगे चलने लगे । तदनन्तर वत्तीस-वत्तीस का एक समूह जिनमें हैं ऐसी वत्तीस हजार नाटक मंडलियां अनुक्रम से आगे आगे चलने लगीं । तदनन्तर तीन सौ साठ सूत-स्वस्ति मंगल वाचक अनुक्रम से आगे-आगे चलने लगे । तदनन्तर अनुक्रम से अठारह श्रेणियां प्रश्नेणियां आगे-आगे चलने लगीं । तदनन्तर चौरासी लाख घोड़े पंक्तिक्रम से आगे चलने लगे । तदनन्तर चौरासी लाख हाथी अनुक्रम से आगे चलने लगे । तदनन्तर अनुक्रम से चौरासी लाख रथ आगे चलने लगे । तदनन्तर छियानवे करोड मनुष्य अनुक्रम से आगे चलने लगे । तदनन्तर अनेक राजा, ईश्वर, तलवर—कोतवाल—यावत्—सार्थवाह प्रभृति अनुक्रम से आगे चलने लगे ।

१ इमाओ अट्ठारस सेणि-पसेणीओ—

कुम्भार १ पट्टइल्ला २, सुवण्णकारा ३ य सुवकारा य । गंधवा ५ कासवगा ६, मालाकारा ७ य कच्छकरा ८ ॥१॥

तंबोलिया य एए, नवप्पयारा य नारुआ भणिया । अह णं णवप्पयारे, कारुअवण्णे पवक्खामि ॥२॥

चम्मयर जंतपीलग, गंछिप ३ छिा य कंसकारे य । सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्ठदस ॥३॥

—जम्बु ० व ० ३, सू ० ४३ टीका ।

५६५. तए णं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसह-
सात्ताओ पडिणिवक्खमइ, पडिणिवक्खमत्ता कोट्टुम्बियपुरिसे सदावेइ,
सदावित्ता तहेव-जाव-अंजणगिरि-कूड-सण्णिमं गयवइं णरवईं
दुरुद्धे । तं चेव सच्चं जहा हेट्ठा ।

णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति । सेसो
सो चेव गमो-जाव-णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं-
मज्जेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवर-वडिसगपडिदुवारे तेणेव
पहारेत्थ गमणाए ।

५६६. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणिं मज्झं-
मज्जेणं अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीयं रायहाणिं
सबभंतरवाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं करेति । अप्पेगइया
देवा मंचाइमंचकलियं करेति । एवं सेसेसु वि पएसु अप्पेगया
देवा णाणाविह-राग-वसणुस्सिय-घयपडागा-मंडियभूमियं करेति ।
अप्पेगइया देवा लाउल्लोइयमहियं करेति, अप्पेगइया वा-
गंधवट्टिभूमियं करेति, अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वारिसि, सुवण्ण-
रयण-वडर-आभरण-वासं वासेति ।

५६७. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्जेणं
अणुपविसमाणस्स सिघाडग-जाव-महापहपहेसु बहवे अत्यत्थिया
कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया इद्धिसिया कब्बिसिया कारोडिया
कारवाहिया संखिया चक्किया णंगलिया मुहमंगलिया पूसमाणया
वद्धमाणया लंख-मंखमाइया ताहि ओरालाहि इट्ठाहि कंताहि
पियाहि मणुण्णाहि मणामाहि सिवाहि धण्णाहि मंगलाहि
सस्सिरीयाहि हियय-गमणिज्जाहि हियय-पल्हायणिज्जाहि वभूहि
अणवरयं अभिणंभंता य अभियुणंता एव वयासी—

‘जय जय णंदा ! जय जय भद्र ! भद्रं ते अजियं जिणाहि,
जियं पालयाहि, जियमज्जे वसाहि इंदो विव देवाणं, चंदो विव

५६५. अष्टमभवत् तप की आराधना सम्पन्न होने के पश्चात् वह
भरत राजा पोषघशाला से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर
कोट्टुम्बिक पुष्यों को बुलाता है, बुलाकर यहाँ का शेष वर्णन
पहले के अनुसार समझ लेना चाहिए—यावत्—अंजनगिरि के
शिखर के समान गजपति पर नरपति आह्वय हुआ । यहाँ भी
पूर्व वर्णन के अनुसार शेष सब वर्णन समझ लेना चाहिए ।

अन्तर इतना है कि ती महानिधियाँ और चार सेनायें प्रवेश
नहीं करती हैं । वाकी का वर्णन पूर्व पाठ के अनुसार समझना—
यावत्—निर्घोषनाद द्वारा आकाश मण्डल को गुंजाते हुए
विनीता राजधानी के बीचों बीच से होता हुआ जिस ओर अपना
घर आवास है, जहाँ उत्तम विशाल ऊँचे भवन का प्रतिद्वार—
प्रवेशद्वार है उस ओर गमन किया ।

५६६. जब वह भरत राजा विनीता राजधानी के बीचोंबीच
प्रवेश कर रहा था तब कितने ही देव विनीता राजधानी के
अन्दर बाहर पानी को सींच रहे थे, साफ कर रहे थे उपलिप्त
कर रहे थे अर्थात् चुना कलई से पोत रहे थे, कितने ही मागों
को मंचों से युक्त कर रहे थे—दशकों को देखने के लिए मंच
वना रहे थे । इसी प्रकार का शेष वर्णन समझ लेना चाहिए कि
कितने ही देव अनेक प्रकार की रंगविरंगी कपड़ों की ध्वजा
पताकाओं को ऊपर आकाश में फहराकर नगरी की भूमि को
शोभित कर रहे थे । कितने ही देव चाँदनियाँ बाँधकर सजावट
कर रहे थे, कितने ही देव गन्धवतिका के समान सुगन्धमय कर
रहे थे, कितने ही देव चाँदी की वर्षा कर रहे थे, कितने ही
सुवर्ण, रत्न, वैडूर्य, मणि, हीरा, आभूषणों की वर्षा बरसा
रहे थे ।

५६७. जब वह भरत राजा विनीता राजधानी के मध्यातिमध्य
में प्रविष्ट हो रहा था तब श्रृगाटकों—यावत्—बड़े-बड़े राज-
मागों में बहुत से धनार्थी—धन की इच्छा रखने वाले, कामार्थी—
रूप, रस आदि इन्द्रिय विषयों के चञ्चुक, भोगार्थी, लाभार्थी,
श्रद्धि-वैभव के अभिलाषी, कित्त्विषिक—हँसी मरकरी करने
वाले, भांड आदि कोरोटिका—तबोली, कारवाहिक—राज्यकर
से पीड़ित शांखिको—शांखवादक, चाक्रिक—चक्रधारी, हलधारी,
मुखमंगलिक—मंगलवाचक, पूसमाणव, वद्धमाणव—वर्धमानक
रनवास में काम करने वाले पौरुषहीन पुरुष लख-मंख आदि लोग
अपनी अपनी उदार, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम शिव,
धन्य धन्यरूप, मंगलरूप शोभा सम्पन्न, हृदय-अनुकूल—हृदय
को आनन्द देने वाली वाणी द्वारा अनवरत—निरन्तर अभिनंदन
करते हुए स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

‘हे नंद ! तेरा जय हो, हे भद्र ! तेरा जय हो, हे भद्र जो
अभी तक नहीं जीता है, उसको जीत लो, जिसको जीत लिया है

पुनरवि लोयंतिएहि जियकप्पिएहि देवेहि ताहि इट्ठाहि-जाव-
एवं वयात्ती-

जय जय नंदा, जय जय भद्रा, भद्रं ते—जाव-जय जय सहं
पडंजंति ।

—कप्प० सु० १५२

२५८. पुविं वि णं पातस्स अरहो पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ
गिहत्थग्रम्माओ अणुत्तरे आहोहिणए तं चेव सव्वं-जाव-दायं दाइ-
याणं परिभाएत्ता जे ते हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे
पोसवहुले, तस्स णं पोसवहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकाल
समयंति विसालाए शिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव
सव्वं । नवरं वाणारंति नगरं मज्झंमज्जेणं निग्गच्छइ,
निग्गच्छत्ता, जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव अतोगवरपायवे
जेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छत्ता अतोगवरपायवस्स अहे सोयं
अवेइ, दावित्ता सोयाओ पच्चोहइ, सोयाओ पच्चोहइत्ता
सपमेव आनरणमत्तालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव
पंचमुट्ठियं लोयं करइ, पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं
भत्तेणं अवाणएणं^१ पिसाहाहि नखत्तेणं जोगमुवागएणं^२ एणं
देवसूतमापाय^३ निहि पुरससएहि सिद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ
अवाणारिय पवयइए^४ ।

—कप्प० सु० १५३

उपसर्गसहणं—

२५९. पाते ण अरहा पुरिसादाणाए तेसोइं राइदियाइं निच्चं
योत्तमाए चियत्तरेहे जे केइ उपसर्गा उपपज्जति, तं जहा-
रिजा वा, माणुस्सा वा, तिरिक्काजोणिया वा, अणुलोमा वा,
वाइतोता वा ते सव्वे उपसर्गे ननुएण्णे-जाव-सम्मं महइ
नितिरव्वइ धमइ अहिणामेइ ।

—कप्प० सु० १५४ ।

केवलज्ञानं—

२६०. तए ज मे पाते भगवं अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-
ज्याज्ज अवेभायस्स तेसोइं राइदियाइं विइरहंताइ चउरानोइमस्स
राइदियाइं पक्खे अट्ठमाजे जे मे पिण्डाणं पउमे मासे पउमे
पउइ चियत्तरेहे जेणेव णं विससंमत्तस्स चउरयोपसर्गेणं
उपसर्गाणं पउमे मासे पउमे अट्ठमाजे जेणेव णं विससंमत्तस्स
चउरयोपसर्गेणं अट्ठमाजे जेणेव णं विससंमत्तस्स चउरयोपसर्गेणं
उपसर्गाणं पउमे मासे पउमे अट्ठमाजे जेणेव णं विससंमत्तस्स
चउरयोपसर्गेणं अट्ठमाजे जेणेव णं विससंमत्तस्स चउरयोपसर्गेणं

वर्ष तक गृहवास में रहे। उसके पश्चात् अपनी परम्परा को
पालन करते हुए लोकांतिक देवों ने आकर के इष्टवाणी के द्वारा
इस प्रकार कहा—

हे नन्द ! (आनन्दकारी) तुम्हारी जय हो, विजय हो !
हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो ! —यावत्—इस
प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग करते हैं ।

२५८. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म
से पहले (गृहवास में) भी उत्तम आभोगिकज्ञान (अवधिज्ञान) था।
वह सारा वर्णन पूर्व वर्णन के समान यहाँ समझना चाहिये—
यावत्—वर्षी दान दे करके हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय
पक्ष, अर्थात् पोष मास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व
भाग के समय विशाला शिविका में बैठकर देव, मानव और
असुरों के विराट् समूह के साथ (पूर्वोक्त वर्णन के समान)
वाराणसी नगरी के मध्य में होकर निकलते हैं। निकलकर जिस
ओर आश्रमपद नामक उद्यान है, जहाँ पर अशोक का उत्तम
वृक्ष है, उसके निकट जाते हैं। निकट जाकर के शिविका को
खड़ी रखवाते हैं। शिविका खड़ी रखवाकर के शिविका के नीचे
उतरते हैं। नीचे उतरकर, अपने ही हाथों से आभूषण, मालायें,
और अलंकार उतारते हैं। अलंकार आदि उतारकर, स्वयं के
हाथ से पंच-मुष्टि लोच करते हैं। लोच करके निर्जल अष्टम
भक्त पूर्वक विशाखा नक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र
को लेकर दूसरे तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहवास से
निकलकर अनगर अवस्था को स्वीकार करते हैं।

उपसर्ग सहन—

२५९. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी दिन तक नित्य शरीर
को ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किए हुए थे। अर्थात् उन्होंने शरीर
को त्याग दिया हो इस प्रकार रहे, इस साधनाकाल में
जो कोई भी उपसर्ग हुए, जैसे देव अथवा मनुष्य अथवा तिर्यच
सम्बन्धी अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आते, उनको सम्यक्
प्रकार से सहन करते, तिरिक्का पूर्वक, (सहिष्णुता से अन्य
किसी की अपेक्षा के बिना) क्रोधरहित, मन को स्थिर कर सहन
करते।

केवलज्ञान—

२६०. इसके पश्चात् भगवान् पार्श्व अनगर हुए,—यावत्—
ईयांसमिति से युक्त हुए और इस प्रकार आत्मा को भावित करते-
करते तिरासी रात्रि-दिन व्यतीत हो गये। चौरासीवां दिन चल
रहा था। प्रथम ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र
मास का कृष्ण पक्ष आया, उस चैत्र की चतुर्थी को, पूर्वाह्न में
अंशुले (घान्ती) के वृक्ष के नीचे पष्ठ तप किये हुए, शुकनध्यान

१. मम० न० १५३, सू० १५३ ।

२. मम० न० १५३, सू० १५३ ।

३. मम० न० १५३, सू० १५३ ।

४. मम० न० १५३, सू० १५३ ।

अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे-जाव-केवल-वर-नाण-दंसणे
समुप्पन्ने-जाव-जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

—कप्प० सु० १५५ ।

गणहराइसंपया—

२६१. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ
गणहरा होत्या, तं जहा—गाहा—

सुम्भे य अज्जघोसे य, वसिट्ठे वंभयारि य ।

सोमे सिरिहरे चेत्त वीरभद्रे जसे वि य^१ ।—कप्प० सु० १५६

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्ण-पामोक्खाओ
सोलस्स समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्या^२ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूला-पामोक्खाओ
अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपदा
होत्या^३ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंद-पामोक्खाणं
समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठि च सहस्सा
उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्या^४ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदा-पामोक्खाणं
समणोवासिगाणं तित्ति सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा
उक्कोसिया समणोवासिगाणं संपया होत्या^५ ।

२६२. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठुट्ठसया चोद्दस-
पुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सब्बक्खर-जाव-चोद्दसपुव्वीणं
संपया होत्या^६ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दस सया
ओहिनाणीणं^७ ।

दस सया केवलनाणीणं^८ ।

२६३. एक्कारस सया वेउव्वियाणं^९, अट्ठुट्ठमसया त्रिउलमईणं^{१०} ;
छत्सया वाईणं^{११}, छ सया रिउमईणं^{१२},

६४४. वारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्या^{१३} ।

—कप्प० सु० १५७

में लीन थे । उस समय विशाखा नक्षत्र का योग प्राप्त होने
पर उन्हें उत्तमोत्तम केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ—
यावत्—वे सम्पूर्ण लोकालोक के भावों को देखते हुए विचरने
लगे ।

गणधरादि (शिष्य) संपदा—

२६१. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में आठ गणधर थे ।
वे इस प्रकार हैं—

गाथार्थं १—शुम्भ, २—अज्जघोप आर्यघोप, ३—वसिष्ठ

४—ब्रह्मचारी, ५—सोम, ६—श्रीधर, ७—वीरभद्र ८—यश ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में अज्जदिण्ण
(आर्यदत्त) आदि सोलह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट—श्रमण—
सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में पुष्पचूला आदि
अड़तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका—सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्दा आदि एक
लाख चौंसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक—
सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में सुनन्दा आदि तीन
लाख और सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट
श्रमणोपासिका—सम्पदा थी ।

२६२. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में साढ़े तीन सौ जिन
नहीं, किन्तु जिनके सदृश सर्वाक्षर संयोगों को जानने वाले—
यावत्—चौदह—पूर्वधारियों की सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में चौदह सौ
अवधिज्ञानियों की सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में एक हजार केवल-
ज्ञानियों की सम्पदा थी ।

२६३. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में ग्यारह सौ
वैक्रिय लब्धिवालों की तथा छह सौ ऋजुमति ज्ञान वालों की
सम्पदा थी । साढ़े सात सौ विपुलमतियों की (विपुलमति मनः
पर्यव ज्ञान वालों की) (संपदा थी)

२६४. छह सौ वादियों की और वारह सौ अनुत्तरोपपातिकों की
अर्थात् अनुत्तर विमान में जाने वालों की सम्पदा थी ।

१ ठाणं अ० ८, सु० ६१७ । सम० स० ८, सु० ८ ।

२ सम० सम० १६ सु० ४ ।

३ सम० सु० ३८, सु० १ ।

४ सप्त० स्या० ११४ गा० २४२ ।

५ सम० स० १२६ सु० १ ।

६ सम० १०५, सु० १ ।

७ सप्त० स्या० ११८ गा० २५७ ।

८ सम० स० ११३, सु० ८ ।

९ सम० स० ११४, सु० २ ।

१० सत्त० स्या० ११७, गा० २५४ ।

११ (क) ठाण० अ० ६ सु० ५२० ।

(ख) सम० स० १०६, सु० ४ ।

१२ सत्त० स्या० ११७, गा० २५४ ।

१३ सत्त० स्या० १२३, गाथा० २६६ ।

अंतकड भूमि—

२६५. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतकडभूमो होत्या, तं जहा—

जुयंतकडभूमो य, परियायंतकडभूमो य । -जात्र-चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकडभूमो

तिवासपरियाए अंतमकासी ।^१

—कप्प० सू० १५८ ।

अगारवासाइं निव्वाणं य—

२६६. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं-वासाइं अगारवासमज्जे वसित्ता^२, तेसीति राइंदिवाइं छउम त्यपरियायं पाउणित्ता^३, देसूणाइं सत्तरिं वासाइं केवलपरियायं पाउणित्ता^४, बहुपडिपुन्नाइं सत्तरिं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता^५, एककं वाससयं सव्वाउयं^६ पालित्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसपिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणमुद्धे, तस्स णं सावणमुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पि सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पत्तोत्तीसइमे^७ मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं^८ विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि^९ वग्घारियपाणी कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।^{१०}

—कप्प० सु० १५९

॥ इइ पास-जिण-चरियं ॥

अन्तकृत भूमि—

२६५. पुरुपादानीय अहंत पाश्वं के समय में अन्तकृतों की भूमि दो प्रकार की थी । यथा—

१—युगान्तकर भूमि (युग-अंतकृत भूमि) २—पर्यायान्तकर भूमि (पर्याय-अन्तकृत भूमि) । यावत् अहंत पाश्वं से चतुर्थ युग पुरुष तक युगान्तकर भूमि थी ।

अहंत पाश्वं का केवलीपर्याय तीन वर्षों का होने पर अर्थात्—उनको केवलज्ञान हुए तीन वर्षों व्यतीत होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की । वह उनके समय की पर्यायान्तकर भूमि हुई ।

आगारवासादि और निर्वाण—

२६६. उस काल उस समय में पुरुपादानीय अहंत पाश्वं तीस वर्षों तक गृहवास में रहकर तिरासी रात्रिदिन तक छद्मस्य पर्याय में रह करके, पूर्ण नहीं, किन्तु कुछ कम सत्तर (७०) वर्षों तक केवलीपर्याय में रहकर, इस प्रकार पूर्ण सत्तर वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके, कुल सौ वर्षों तक सम्पूर्ण आयु भोगकर वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर दुषम—सुषम नामक अवसर्पिणी काल के बहुत व्यतीत हो जाने पर, वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष अर्थात् जव श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, तब श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन सम्मेदशिखर पर्वत पर अपने सहित चौंतीस पुरुषों के साथ मासिक भक्त का अनशन कर पूर्वाह्न के समय, विशाखा नक्षत्र का योग आने पर दोनों हाथ लम्बे किये हुए इस प्रकार ध्यान मुद्रा में अवस्थित रहकर काल धर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

॥ पार्श्व चरित्र समाप्त ॥

१ सत्त० स्या० १५८-५९, गा० ३२३-२४ ।

२ सम० स० ३०, सु० ६ ।

३ आव० नि० धु० गा० २३६ ।

४ आव० नि० धु० गा० ३०२ ।

५ त्तम० स० ७०, सु० १ ।

६ प्रव० द्वा० ३२, गा० ३८७ ।

७ आव० नि० चु० गा० ३०८ ।

८ सत्त० स्या० १५३, गा० ३१७ ।

९ ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११ ।

१० सत्त० स्या० १३५, गा० ३२२ ।

६. महावीर-चरियं

पुव्वभवे पोट्टिलो—

२६७. समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडि सामण्णपरियागं पाउणिता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठे विमाने देवत्ताए उव्वण्णे^१ ।

—सम० स० १३४ ।

कल्लाणयाणि—

२६८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था-

१. हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गढं वक्कंते,

२. हत्थुत्तराहिं गढभाओ गढं साहरिए,

३. हत्थुत्तराहिं जाए,

४. हत्थुत्तराहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगरियं पव्वइए,

५. हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अवाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पण्णे ।

साइणा भगवं परिनिव्वए ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६८८

—कप्प० सु० १ ।

देवाणंदांगढभागमणं—

२६९. समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए—सुसमसुसमाए समाए वोडक्कंताए, सुसमाए समाए वीतिक्कंताए, सुसमदुसमाए समाए वीतिक्कंताए, दुसमसुसमाए समाए बहु वीतिक्कंताए—पणत्तरीए वासेहिं, मासेहिं य अट्ठणवमेहिं सेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे नासे, अट्ठमे पव्वे—आसाढसुद्धे, तस्स णं

१ वीरस्स पुव्वभवा :—

'ओसप्पिणी इमोए, पढमं चिय गामचित्तग-भवमि^१ ॥ नीसेस सोक्खमूलं, सम्मत्तमणुत्तमं पत्तो तत्तो पाविय देवत्तमुत्तमं^२ भरहचक्कवट्टिस्स ॥ मिरिइति सुओ^३ होउं, काउं जिणदेसियं दिक्खं दुस्सहपरिसहनिम्महियमागसो पयडिउं तिदंडिवयं ॥ मिच्छत्तविलुत्तमई, कविलस्स कुदेसणं काउं तद्देसिणं अयराणं^४, वड्डिउं कोडकोडि संसारं ॥ १८ छभ्रवण्णे पुणरवि, पारिवज्जं पवज्जिता दीहं संसारं हिड्डिऊण, रायणिहमि रायसुवो ॥ होऊण विस्सभूई^{१९}, घोरं संजममणुचरित्ता मरणे नियणवंधं, निव्वत्तिय सुरसुहं^{१०} च भोत्तूणं ॥ पोयणपुरे तिविट्ठ^{२१}, परिपालिय वानुदेवत्तं मूयाए पियमित्तो^{२२} चक्कित्तं^{२३} संजमं च अणुचरिअं ॥ छत्तग्गाए नंदण^{२४}, नरनाहतं^{२५} च पव्वज्जं परिपालिय वीसइकारणेहिं, तित्थाहिवत्तमज्जिणित्तं ॥ पाणयकप्पा चविउं^{२६}, कुण्डग्गाममि नयरमि सिद्धत्थरायपुत्तो^{२७}, होउं जंतूणमुद्धरणहेउं ॥ सव्वविरइं पवज्जिय, दुव्विसुहपरित्तेहे त्तिहं

॥१॥-१७॥

॥२॥-१८॥

॥३॥-१९॥

॥४॥-२०॥

॥५॥-२१॥

॥६॥-२२॥

॥७॥-२३॥

॥८॥-२४॥

॥९॥-२५॥

—सुपचंदरइयं महा० प० १ गा० १७-२४

६. महावीर-चरित्र

पूर्वभव में पोट्टिल—

२६७. श्रमण भगवान महावीर तीर्थकर भव से पूर्व छट्ठे पोट्टिल के भव में एक करोड़ वर्ष का श्रामण्य पर्याय पालकर सहस्रार कल्प में सर्वार्थ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए ।

कल्याणक—

२६८. उस काल उस समय भगवान महावीर के पांच (कल्याण) हस्तोत्तर (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र में हुए ।

१—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् च्युत हुए, च्यवन कर गर्भ में आये ।

२—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् एक गर्भ से दूसरे गर्भ में संहरण किये गये ।

३—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् जन्मे ।

४—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् गृहवास त्यागकर मुण्डित होकर अनगर वने ।

५—हस्तोत्तर नक्षत्र में भगवान् को धनन्त, अनुत्तर, अव्यावाध, निरावरण समग्र और परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ।

स्वाति नक्षत्र में भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

देवानन्दा के गर्भ में आगमन—

२६९. इस अवसर्पिणी काल में सुपमा-सुपम काल व्यतीत हो चुका था, सुपम समय व्यतीत हो चुका था, सुपम-दुपमा समय व्यतीत हो चुका था और दुपम-सुपम नामक आरा भी प्रायः समाप्त हो गया था । केवल पचहत्तर वर्ष साढ़े आठ मास शेष रह गये थे तब श्रमण भगवान् महावीर ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास, आठवें

आसाढसुद्धस्त छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, महाविजयसिद्धत्थ - पुप्फुत्तर - पवर-पुण्डरीय- दिशासोवस्थिय - वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंघुदीवे, दीवे भारहे वासे, दाहिणइडभरहे दाहिणमाहणकुण्ड- पुरसन्निवेशंति उसभदत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तास्स देवाणं- दाए माहणीए जालंधरायण-सगोत्ताए सीहोवभवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिसि गवभं वक्कंते ।^१ —आया० सु० २, अ० १५, सु० ६८६

पक्ष अर्थात् आपाढ़ शुक्ल छट्ट के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में महाविजयसिद्धार्थ, पुष्पोत्तर प्रवर, पुण्डरीक, दिशा सौवस्तिक वर्धमान महाविमान से वीस सागरोपम की आयुष्य भोगने के पश्चात् आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर च्यवकर इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध भरत के दक्षिण माहणकुण्ड संनिवेश (नगर) में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थानभूत कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुए ।

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्टमे पक्खे आसाढसुद्धे, तस्स णं आसाढ- सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुण्डरीयाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमद्वियाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्वीवे दीवे भारहे वासे दाहिणइडभरहे इमीसे ओसप्पिणीए— सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमदुस्समाए विइक्कंताए । दुस्समसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए सागरोवमकोडाकोडीए वायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए पंचहत्तरीए वासेहिं अद्धनव- मेहिं य मासेहिं सेसेहिं

इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं दोहिं य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोतमसगुत्तेहिं,

तेवीसाए तित्थयरेहिं वीइक्कंतेहिं-समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थकरे पुव्वतित्थकरनिदिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गवभत्ताए वक्कंते ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गवभत्ताए वक्कंते तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोइस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा । तंजहा—

१ गय, २ वसह, ३ सीह, ४ अभिसेय, ५ दाम, ६ ससि, ७ दिणयरं, ८ जयं, ९ कुम्भं ।

१० पउमसर, ११ सागर, १२ विमाण-भवन, १३ रयणुच्चय, १४ सिसिं च ॥

तए णं सा देवाणंदा माहणी इमेयारूवे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोइस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्टुट्टुचित्त-माणंदिया पीइमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबुयं पिव स मुस्ससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता आतुरियमचवलमसंभंताए रायहंससरिसीए गईए जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोइस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं जहा— गय-जाव-सिसिं च ।

एएसि णं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं-जाव-चोइसहं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ।

तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टुठ-जाव-हियए धाराहयकलंबुयं पिव स मुस्ससियरोमकूवे सुमिणोग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणुपविसइ ईहं अणुपविसित्ता अप्पाणे साभाविणं मइपुव्वएणं बुद्धि-विनाणेणं तेसि सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, करित्ता देवाणंदा-माहणिं एवं वयासी—

“ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा एवं सिवा घन्ना मंगल्ला !

सस्सिरीया आरोग-नुट्ठि-नीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा । तं जहा—

अत्यलाभो देवाणुप्पिए ! भोग लाभो देवाणुप्पिए !

पुत्त लाभो देवाणुप्पिए ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए !

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुल्लाणं अट्ठठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमाल-पाणि-पायं अहीण-पडि पुत्त-पंचिदिय-सरीरं लक्खण वंजणगुणोव्वेयं माणुम्माण-पमाण-पडिपुणं सुजाय-सव्वंग-सुन्दरंगं ससि-सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुख्वं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कवालभावे विज्जायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते १ रिउव्वेय, २ जउव्वेय, ३ सामवेय, ४ अयव्व-णवेय, इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं, संगोवगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठंततविसारए संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अण्णेसु य बहुसु वंभन्नएसु परिव्वायएसु नएसु परिनिट्ठिए यावि भविस्सइ ।

तं ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा-जाव-आरोग्ग-नुट्ठि-दीहाउय-मंगल-कल्लाणकारणा णं तुम देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ।”

तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया करयलपरिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी—

“एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहयं तुव्वे वयह” — त्तिकट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सट्ठिं ओरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥

तेण कालेणं तेणं समाएणं सक्के देविदे देवराया वज्जपाणी पुरन्दरे सतक्कतू सहस्सक्खे मधवं पाकसासणे दाहिणइड-लोगाहिवई वत्तीसविमाण-सय-सहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिदे अरयंवर-वत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेम-चारु-चित्तचंचल-कुण्डल-विलिहिज्जमाणगंडे भासुर-वोदी पलंव-वणमालधरे सोहम्मकप्पे सोहम्मवडिसए विमाणे सुहम्मए समाए सक्कंसि सीहासणंसि निसण्णे ॥

से ण तत्य वत्तीसाए विमाणावास-सयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिय-सहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अगमहिस्सीणं, सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीए आयरक्ख-देवसाहस्सीणं, अण्णेसि च बहूणं सोहम्मकप्प-वासीणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगतं आणाईसरसेणावच्चं कारेभाणे पालेमाणे महयाहय-नट्टीय-वाइय-तंती-तल-ताल-नुडिय-धड-मुइंग-पडुपडह-वाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरई ॥

इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्वीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ विहरइ ।

तत्य णं समणं भगवं महावीरं जम्बुद्वीवे दीवे भारहे वासे दाहिणइडभरहे माहणकुण्डगामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडा-लसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गवभत्ताए वक्कंतं पासइ ।

पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए परमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणसिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए धाराहय-नीव-सुरहि कुसुम-चंचुमालइय-ऊससियरोमकूवे वियसिय-वर-कमल-नयण-वयणे पयलिय-वर-कडग-नुडिय-केऊर-मउड-कुण्डल-हार-विरायंत-वच्छे पालंव-पलंवमाण-धोलंत-भूसणधरे ससंभमं तुरिय चवलं सुरिदे सोहासणाओ अबुट्ठइ ।

सीहासणाओ अबुट्ठित्ता पायपीडाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरहित्ता वेरुलिय-वरिट्ठ-रिट्ठ-अंजण-निउणोविय मिसिनिमित्त-मणि-रयण-मंडियाओ पाउयातो ओमुयइ ।

ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ ।

एगसाडियं उत्तरासंगं करित्ता अंजलिमउलिगहत्थे तित्ययराभिमुहे सत्तट्टु पयाइं अणुगच्छइ ।

अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणिपतलंसि साहट्टु तिकमुत्ता मुद्दाणं धरणिपतलंसि निवेसेद तिकमुत्ता मुद्दाणं धरणिपतलंसि निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ ।

पच्चुण्णमित्ता कडग-नुडिय-वंभिवाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयलपरिगहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“नमोत्पुथ अरहंताणं भगवंताणं ।

जाइगराणं तित्पगराणं सयंसंतपुद्दाणं

पुरित्तमाणं पुरिससीहाणं पुरित्तपरसुं डरियाणं पुरित्तवरगंधहत्थीणं

गर्भगयस्स तिण्णि णाणाइं—

२७०. समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था ।

चइस्सामि त्ति जाणइ, चुएमि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणेइ, सुहुमे णं से काले पण्णत्ते ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६८६ ।

गर्भ-साहरणं—

२७१. तओ णं समणे भगवं महावीरे अणुकंपएणं देवेणं “जीयमेयं,” त्ति कट्टु जे से वासाण तच्चे मासे, पंचमे पवखे-आसोयवहुले, तस्स णं आसोयवहुलस्स तेरसीपवखेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेहिं जोगमुवागएणं वासीतोहिं राइंदिएहिं वीइवकत्तेहिं^१ तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे^२ दाहिणमाहणकुण्डपुर-सन्निवेशो उत्तरखत्तियकुण्डपुर-सन्निवेशंति णायानं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिद्ध-सगोत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करेत्ता, सुभाणं पुग्गलाणं पक्खेवं करेत्ता कुच्चिंत्ति गर्भं साहरइ ।

गर्भस्थ तीनज्ञान—

२७०. श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे ।

वे यह जानते थे कि मैं च्यवन करूंगा, च्युत होकर गर्भ में आ गया हूँ यह जानते थे, किन्तु च्यवन समय को नहीं जानते थे । क्योंकि वह काल अत्यन्त सूक्ष्म कहा गया है ।

गर्भ—साहरण—

२७१. तदनन्तर श्रमण भगवान् का हित और अनुकंपा करने वाले देव ने ‘यह जीत आचार है’ ऐसा कहकर वर्षा काल के तीसरे मास पाँचवें पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्ण पक्ष और उस अश्विन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग प्राप्त होने पर वियासी रात-दिन के बीतने और तेरासीवें दिन की रात्रि के समय दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर संन्निवेश से उत्तरक्षत्रिय कुण्डपुर संन्निवेश में ज्ञातवंशीय काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वासिष्ठ गोत्री त्रिशला रानी के अशुभ पुद्गलों का अवहरण करके अर्थात् उनको दूर करके शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षि में गर्भ को प्रतिष्ठित किया तथा—

लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवारणं लोगपज्जोयगराणं
अभयदयाणं चक्कुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं वोहिदयाणं
धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्ममारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं
दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा, (णं) अप्पडिह्यवरनाणदंसघराणं वियट्टुउमाणं
जिणाणं जावमाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं वोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं
सव्वद्रूणं सव्वदरिस्तीणं सिवमयलमरुपमणंतमक्खयमव्वावाहमपुनरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं
जियभयाणं ।

नमोत्तु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरिमत्तिययरस्स पुव्वत्तिययरनिदिट्ठस्स-जाव-संपाविकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थयगयं इहगये, पासउ मे भगवं तत्थयगए इहगयं,”-त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता सोहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसत्ते ॥

तए णं तस्स सक्कस्स देविदस्स देवरत्तो अयमेवास्से अज्झत्तियए चित्तिए पत्तियए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं नं अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, तुळकुलेसु वा, दरिड्कुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, भिक्खायकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, प्रायाइंति वा, आयाइंस्संति वा ।

एवं धसु अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खाग-कुलेसु वा, वत्तियकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा, अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्ध-जाति-कुल-वंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइंस्संति वा ।

अभिय पुण एये वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसपिणीउस्सपिणीहिं वीइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खोचस्स अवेइयस्स अनिग्गिणस्स उदएणं जत्तं अरहंता वा, -जाव-माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा आया-इस्संति वा कुच्चिंत्ति गर्भताए वक्कंति वा, वक्कमत्ति वा, वक्कमिस्संति वा ।

सं पय न भोगोअम्ममनिअम्मणेणं निक्कमंति वा, निक्कमंति वा, निक्कमिस्संति वा ।

अद थ णं समणे भगवं महावीरे अणुइये दीवे भारइंवासे माहणकुण्डगामे नयरे उसमदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारिआइ देमाणए माहणोए प्राअंघरमगुत्ताए कुच्चिंत्ति गर्भताए वक्कंते ॥

—कप्प० सु० २।४-१६

जे वि य से तिसलाए खेतियाणीए कुच्छिसि गम्भे, तंपि य दाहिणमाहणकुण्डपुर-सन्निवेशेसि उसभदत्तस्स माहणस्सकोडाल-सगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायण-सगोत्ताए कुच्छिसि साहरइ ।

२७२. समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था । साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिएमि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ, समणाउसो !^१

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६८६।६६० ।

जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ था उसको दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर संनिवेश में ले जाकर कोडाल गोत्री ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीय देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित किया ।

२७२. हे आयुष्मन् श्रमणों ! श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान युक्त थे । मैं संहरण किया जाऊंगा यह जानते थे, मेरा संहरण हो रहा है, यह जानते थे और मैं संहृत किया जा चुका हूँ यह भी जानते थे ।

१ क—भग० स० ५, उ० ४, सु० ७६, ७७ ।

ख—तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पणमणागयाणं सक्काणं देविदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो वा-जाव-क्खिविणकुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा-जाव-अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु वा साहरावित्तए । तं सेयं खलु मम वि समणं भगवं महावीरं चरिमत्तिययरं पुव्वत्तिययरनिद्धिद्वं माहणकुण्डगामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डगामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्यस्स खत्तियस्स कासवगतस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गम्भत्ताए साहरावित्तए, जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गम्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए, जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गम्भत्ताए साहरावित्तए त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ, एवं संपेहिता हरिणेगमेसि पायत्ताणियाहिवई देवं सद्दावेइ, हरिणेगमेसि पायत्ताणिया-हिवई देवं सद्दावित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जन्नं अरहंता वा-जाव-भिक्षागकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ।

एवं खलु अरहंता वा-जाव-हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ।

अत्यि पुण एस भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहि ओत्तप्पिणि-उस्सप्पिणीहि विइक्कंताहि समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं जन्नं अरहंता वा- जाव-भिक्षागकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिकखमणेणं निक्खमिसु वा, निक्खमंति वा, निक्खमिस्संति वा ।

अयं च णं समणे भगवं महावीरे ज्वुदीवे दीवे भारहेवासे माहणकुण्डगामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गम्भत्ताए वक्कंते ।

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पणमणागयाणं सक्काणं देविदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो वा, अंतकुलेहिंतो वा-जाव-हरिवंसकुलेसु वा अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु साहरावित्तए ।

तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुण्डगामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डगामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्यस्स खत्तियस्स कासवगतस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गम्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता मम एयमापत्तियं पिप्पमेव पच्चप्पिणाहि ॥

तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे सक्केणं देविदेणं देवरत्ता एवं वुत्ते समाणे हट्ठे-जाव-हयहियए करयल-जाव-त्ति कट्ठु एवं जं देवो आणावेइ त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिस्तुणेइ ।

वयणं पडिमृणित्ता सक्कस्स देविदस्स देवरत्तो अंतियाओ पडिनिक्खमइ ।

पडिनिक्खमिन्ता उत्तरपुरच्छिमदिस्सीभागं अवक्कमइ ।

अयक्कमिन्ता वेउत्थियसत्तनुष्पाएणं समोहणइ ।

उत्थियसत्तनुष्पाएणं समोहणित्ता, संवेज्जाइ जोयणाइ दंडं नित्तिरइ, तं जहा—

रथपाणं यमराणं वेरलिमाणं लोहियक्काणं मत्तारगल्लाणं दत्तगन्धानं पुलयाणं सोगधियाणं जोदरत्ताणं अन्नगणं अन्नदुग्गणं रत्तयाणं जायस्सयाणं मुन्नाणं अन्ताणं फलिहाणं रिद्धाणं अह्मादरे पोग्गवे परिनाडेइ, परिनाडित्ता अह्मानुत्तमे पोग्गवे परिनादियत्ति ।

जन्म-कल्याणकालो—

२७३. तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसला खत्तियाणी अह अणया कयाइ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं, अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीतिकंताणं, जे से गिम्हाणं पढमे मासे, दोच्चे पक्खे-चेत्तमुद्धे, तस्स णं चेत्तमुद्धस्स तेरसीपक्खेणं, हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगोदएणं समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया ।^१

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६६१।

जन्म-कल्याणक काल—

२७३. उस काल उस समय में तिसला खत्तियाणी ने अन्य किसी समय नव मास साढ़े सात दिन रात व्यतीत होने पर यौग्य ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष-नैत्र शुक्ल, उस चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को हस्तोत्तर नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर स्वस्थ माता ने श्रमण भगवान् महावीर को सुद्यपूर्वक जन्म

दिया ।

परियादित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ ।

समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ ।

उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीयीवयमाणे वीतीवयमाणे तिरियमसंखेज्जाणं दीवासमुद्दाणं मज्झंमज्जेणं जेणेव जंबुदीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव माहणकुण्डगामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ,

तेणेव उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ,

करित्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवर्णि दलयइ,

ओसोवर्णि दलित्ता असुहे पोग्गले अवहरइ,

अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ,

सुहे पोग्गले पक्खिवइत्ता 'अणुजाणउ मे भगवं !' ति कट्ठु समणं भगवं महावीरं अवावाहं अवावाहेणं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव खत्तियकुण्डगामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवर्णि दलयइ,

ओसोवर्णि दलयित्ता असुहे पोग्गले अवहरइ,

असुहे पोग्गले अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ,

सुहे पोग्गले पक्खिवइत्ता समणं भगवं महावीरं अवावाहं अवावाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गवभत्ताए साहरइ । जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गवभे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गवभत्ताए साहरइ,

साहरित्ता जामेव दिंसि पाउव्वभूए तामेव दिंसि पडिगए ।

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जइणाए उद्धयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाण दीवासमुद्दाणं मज्झंमज्जेणं जोयणसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मं कप्पे सोहम्मवडिसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देवराया तेणामेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ।

तेण कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तित्थाणोवगए यावि होत्था । साहरिज्जस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिए मि त्ति जाणइ ।

तेण कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसीयवहुले, तस्स णं ओसायवहुलस्स तेरसीपक्खेणं वासीइराइदिहिं विइक्कत्तेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणं गमेसिणा सक्कवयणसंदिट्ठेणं माहणकुण्डगामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुण्डगामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्ताकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अवावाहं अवावाहेणं कुच्छिसि साहरिए ।

समणे भगवं महावीरे तित्थाणोवगए यावि होत्था, साहरिज्जस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिएमि, त्ति जाणइ ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गवभत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयाख्वे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोइस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए हडे त्ति पासित्ता णं पडिबुद्धा । तं

समणे भगवं महावीरे तित्थाणोवगए यावि होत्था, साहरिज्जस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिएमि, त्ति जाणइ ।

—कप्प० सु० २०—३१ ।

१. जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गवभत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयाख्वे ओराले-जाव-सस्सिरीए चोइस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए हडे त्ति पासित्ता णं पडिबुद्धा । तं

जहा—गाहा—गय-वसह-सीह-अभिसेय, दाम-ससि-दिणयरं झयं-कुम्भं ।

पउमसर-सागरं-विमाण-भवण-रयणुच्चय-सिंहि च ॥१॥

जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गढभत्ताए साहरिए तं रयणि च णं सा तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अट्ठितरओ सचित्तकम्मं वाहिरओ दूमियघट्टमट्ठे विचित्तउल्लोयतले मणि-रयण-पणासिवंधयारे बहुसम-सुविभत्त-भूमिभागे पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फ-पुंजोवयारकलिए कालागर-पवर-कुन्दुरुक्क-सुरुक्क-उज्जंत-धूव-मधमघेतं गंधुदुयाभिरामे सुगंधवरगंधगंधिए गंधवट्टिभुए तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगणवट्टिए उभओ विव्वोयणे उभओ उन्नये मज्जे णयगंभीरे गंगा-पुलिण-वालु-उट्टान-सानिसए-तायविय-खोमिय-द्रुगुल्ल-पट्ट-पडिच्छन्ने सुविरइय-रयत्ताणे रत्तंसुय-सुंवुए सुरम्मे आयीणग-ह्य-वूर-नवणीय-तूलफासे सुगंध-वर-कसुम-चुण्णसयणोवयारकलिए पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयाह्वे ओराले चोइत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिवुद्धा, तं जहा—गाहा—गय-वसह-जाव सिंहि च ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए-तओ य चउहं तमूसिय-गलिय-विपुल-जलहर-हार-निकर-खीरसागर ससंक-किरण-दगरय-रयय-महासेल-पंडरतरं समागय-महुयर-सुगंध-दाणवासियं कवोलमूलं, देवराय-कुंजरं वरप्पमाणं पेच्छइ, सजलवण-विपुल जलहर-गज्जिय-गंभीर-चार-घोसं इमं सुभं सव्वलक्खणकयं वियं वरोह ।१।

तओ पुणो धवल-कमलपत्त-पयराइरेगह्वप्पभं पहासमुदओवहारेहिं सव्वओ चैव दीवयंतं अइसिरिभर-पिल्लणा-विसप्पंत-कंत-सोहंत-चार-ककुहं तणुसुइ-सुकुमाल लोमनिद्धच्छवि थिर-सुवद्ध-मंगलोवचिय-सट्ठ-सविभत्त-सुन्दरं पेच्छइ, घण-वट्ट-लट्ठ-उडिक्कट्ठ-विसिट्ठं नुप्पग-तिक्खसिगं दंतं सिवं समासोभंतसद्धदंतं वसभं अभियगुण-मंगलमुहं ।२।

तओ पुणो हार-निकर-खीरसागर-ससंक-किरण-दगरय-रयय-महासेल-पंडरगोरं रमणिज्ज-पेच्छणिज्जं थिर-लट्ठ-पउट्ठं वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्ख-दाढा-विडं वियमुहं परिकम्मिय-जच्च-कमल-कोमल-माइय-सोभंत-लट्ठउट्ठं रत्तोप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल तालु-निल्लालियगजोहं मूसागय-पवर-कणग-ताविय-आवत्तायंत-वट्ट-विमल-तडिसरिसनयणं विसाल-पीवर-वरोहं पडिपुत्र-विमलखंधं मिउविसय-सुहुम-लक्खग-ससत्थ-विच्छिन्न-केसराडोवसोहियं ऊसिय-सुनिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-नंगूलं सोम्मं सोम्माकारं लीलायंतं नहयलाओ ओवयमाणं. नियगवणमइवयंतं पेच्छइ सा गाढ-तिक्खनहं सीहं वयणसिरी-मल्लव-पत्त-चार-जोहं ।३।

तओ पुणो पुण्णचंद-वयणा उच्चागय-ठाण-लट्ठसंठियं पसत्थह्वं सुपइट्ठिय-कणग-कम्म-सरिसोवमाणचलणं अच्चुन्नय-पीण-रइय-मंसल-उन्नय-तण-संव-निद्धनहं कमल-पलास-सुकुमाल-कर-चरण-कोमल-वरंगुलि कुराविदावत्त-वट्टाणुपुव्वजंधं निगूठ-जाणुं गयवर-कर-सरिस-पीवरोहं चामीकर-रइय-मेहला-जुत्त-कंत-विच्छिन्न-सोणि-चक्कं जच्चंजण-भमर-जलय-पकर-उज्जुय-नम-नहिय-तणुय-आदेज्ज-लडह-सुकुमाल-मउयरमणिज्ज-रोमराइं नाभी-मंडल-विसाल-सुन्दर-पसत्थ-जघणं करयलमाइय-पसत्थ-तिक्खोय-मउजं नाणा-मणि-रवण-कणग-विमल-महातवणिज्जाहरण-भूमग-विराइयंगमणिं हारविरायंत-कुन्दमाल-परिणद्ध-जलजलित-धणजुयल-विमल-कलसं आइय-पत्तिय-विभूसिएण य सुमग-जालुज्जलेण मुत्ता-कलावएणं उरत्थ-दीपारमालियविरट्टणं कंठमणिसुत्तए स य कुंडल-जुयलुल्लसंत-अंसोवमत्त-सोभंत-मप्पभेणं, सोभागुण-समुदएणं आणण-कुट्टुविएण कमलामल-विसाल-रमणिज्ज-लोयणं कमल-पज्जलंत-करगहिय-मुक्कतोयं लीलावाय-कय-पक्खएणं सुविसय-कमिण-धण-सण्ह-नवंत-केसहत्थं, पउमइह-कमल-वानिणि सिरि भगवइं पिच्छइ हिमवंत-सेलसिहरे दिमागइंदोर-पीवर-कराभिमिच्चमाणि ।४।

तओ पुणो सरस-कुमुम मंदार-दाम-रमणिज्जभूयं चंपगासोण-गुण्णाग-नाग-पियंगु-सिरीम-नांगरय-मल्लिया-जाइ-वूट्टियं-कोल्ल-फोउज-सोरिट-वत्त-दमणय-णवमालिय-वउल-तिलय-वानंतिय-मउनुप्पल-याडल-कुंदाइमुत्त-सहकार-सुरभिगंधिं जणुवम-मणोउणेण गंधेणं दस दिमाओ वि वासयंतं मव्वोउय-सुरभि-कुमुम-मल्ल-धवल-विलसंत-कंत-वट्टवत्त-भत्तिचिनं छप्प-मट्टारि-भमरगण-गुमुगुमायंत-मिलंत-गुंजंत-देसनागं दाम पेच्छइ नभंगण-त्ताओ ओवयंतं ।५।

संसि च गोखीर-केण-दगरय-रव्य-कलत्त-पंडरं-सुभं हियय-नयणकंतं पडिपुत्रं तिमिर-निकर-पणगाहिर-पित्तिमिरकरं पमाण-पइय उराय-जेहं सुमुद-वण-विधोहयं निसासोभणं सुपरिमट्ट-दप्प-उन्नोयनं हंसवट्टवत्तं जोइसमुहंमंठणं तमरिपुं मत्तगणयाइं मनुद-दगपूरगं दुम्पणं जघं दत्तियवज्जियं पायएहिं सोसयंतं पुणो नाम्मपाकरुं पेच्छइ सा गण-भंडन-विसाल-कोमल-अकम्मनाण-तिलग रोहिणि-मण-हियय-वत्तहं देवी पुत्तचंदं समुत्तसंतं ।६।

तओ पुणो तमपडलपरिप्फुडं चैव तेयसा पज्जलंतरूवं रत्तासोग-पगास-किसुय-सुग-मुह-गुंजद्ध-राग-सरिसं कमलवणालंकरणं थंकरणं जोइस्स अंवरतलपईवं हिम-पडल-गलभगहं गहगणोरुनाथगं रत्तिविणासं उदयत्थमणेसु मुहुत्तसुहदंसणं दुन्निरिक्खह्वं रत्तिमुद्दा-यंतदुप्पयार-पमद्दणं सीयवेगमहणं पेच्छइ मेहगिरि-सयय-परियट्टयं विसालं सूरं रस्सो-सहस्स-पयलिय-दित्त-सोहं ।७।

तओ पुणो जच्च-कणग-लट्ठि-पइट्ठियं समूह-नील-रत्त-पीय-सुविकल्ल-सुकुमालुल्लसिय-मोरपिच्छ-कयमुद्दयं धयं अहियसस्सिरीयं फालिय-संखं-कुंद-दगरय-रयय-कलसपंडरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणेण रायमाणं भेतुं गगणतलमंडलं चैव ववसिएण पेच्छइ सिव-मउय-मारुय-लया-हय-पकंपमाणं अतिप्पमाणं जणपिच्छणिज्जह्वं ।८।

तओ पुणो जच्च-कंचणुज्जलंतरूवं निम्मल-जल-पुन्नमुत्तमं दिप्पमाणसोहं कमल-कलावपरिरायमाणं पडिपुण्ण-सव्वमंगल-भेय-समागमं पवररयणपरायंतकमलट्ठियं नयण-भूसणकरं पभासमाणं सव्वओ चैव दीवयंतं सोमलच्छी-निभेलणं सव्वपावपरिवज्जियं सुभं भासुरं सिखिरं सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-आसत्त-मल्लदामं पेच्छइ सा रययपुन्नकलसं ।९।

तओ पुणो रविकिरण-तरुण-वोहिय-सहस्सवत्त-मुरहितर-पिंजरजलं जलचर-पहगर-परिहत्थय-मच्छ-परिभुज्जमाण-जलसंचयं महंतं जलंतमिव कमल-कवल्लय उप्पल-तामरस-पुण्डरीय-उरुसप्पमाण-सिरिसमुदएहि रमणिज्ज-रुवसोभं पमुइयंत-भमरण मत्तमहुकरिणोक्करोलिब्भमाण-कमलं कादंबग-वलाहग-चक्काक-कलहंस-सारस-गव्विय-सउणगण-मिहुण-सेविज्ज-माण-सलिलं पउमिणिपत्तोवलग-जलविदुमुत्तचित्तं च पेच्छइ सा हियय-णयणकंतं पउमसरं नाम सरं सररुहाभिरामं ।१०।

तओ पुणो चदकिरणरासि-सरिस-सिरिवच्छसोहं चउगमण-पवड्ढमाण-जलसंचयं चवल-चंचलुच्चायप्पमाण-कल्लोल-लोलंततोयं पडुपवणाहय चलिय-चवल-पागड-तरं-रंगंत-भंग-खोखुब्भमाण-सोभंत-निम्मल-उक्कड-उम्मीसह-संबंध-धावमाणोनियत्त-भासुर-तराभिरामं महामगर-मच्छ-तिमितिमिगिल-निरुद्ध-तिलितिलियाभिधायकप्पूर-फेण-पसर-महानई-तुरियवेग-समागयभम-गंगावत्त-गुप्पमाणुच्चलंत-पच्चोनियत्त-भमाण-लोलसलिलं पेच्छइ खीरोय-सागरं सरय-रयणिकर-सोम्मवयणा ।११।

तओ पुणो तरुणसूर मंडलसमप्पभं उत्तम-कंचण-महामणि-समूह-पवर-तेय-अट्टसहस्स-दिप्पंत-नभप्पईवं कणग-पय-पलंवमाण-मुत्तासममुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रु-सरभ-चमर-ससत्त-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं गंधवोपवज्जमाण-संपुण्णघोसं निच्चं सजलघण-विउल-जलहर-गज्जिय-सद्धानुणादिणा देवदुन्दुहि-महारवेणं सयलमवि जीवलोयं पपूरयंत कालागर-पवर-कुन्दुक्क-तुरुक्क-डज्जंत-धूव-मघमघंत गंधुद्दुयाभिरामं निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पिच्छइ सा सातोवभोग विमाणवर-पुण्डरीयं ।१२।

तओ पुणो पुलग-वेरिदनील-सासग-कक्केयण-लोहियक्ख-भरगय-मसारगल्ल-पवाल-फलह-सोगंधिय-हसगव्वभ-अंजण-चंदप्पभ-वरदयण-महियलपइट्ठिय गगनमंडलांत पभासयंत तुंगं मेहगिरि-सन्निगासं पिच्छइ सा रयणनियररासि ।१३।

सिंहि च सा विउलुज्जल-पिगल-महु-घय-परिसिच्चमाण-निद्धूम-धगधगाइय-जलंत-जालुज्जलाभिरामं तरतमजोगेहि जालपयरेहि अण्णमण्णमिव अणुपइण्णं पेच्छइ जालुज्जलणगं अंवरं व कत्थइपयंतं अइवेगचंचलं सिंहि ।१४।

एमेते एयारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुखे सुविणे दट्ठूण सयणमज्जे पडिबुद्धा अरविदलोयणा हरिसपुलइयंगी ।

गाहा—एए चोइस सुमिणे, सव्वा पासेइ तित्थयरमाया । जं रयणिं वक्कमई, कुंच्छिसि, महायसो अरहा ॥१॥

तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमेयारूवे ओराले चोइस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठ-जाव-हयहियया धाराहयकलंवपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा सुमिणोगहं करेइ,

सुमिणोगहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ,

सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढातो पच्चोरुहइ,

पच्चोरुहिता अतुरियं अचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मणुन्नाहि मणामाहि ओरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मंगल्लाहि सस्सरियाहि हिययगमणिज्जाहि हियय-पत्थायणिज्जाहि मिय-महुर-मंजुलाहि गिराहि संलवमाणी संलवमाणी पडिवोहेइ ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुणया समाणी नाणामणि रयण-भत्तिचित्तंसि भट्टासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहि इट्ठाहि - जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि [तारिसयांसि सयणिज्जंसि वन्नओ-जाव-पडिवुद्धा । तं जहा—गाहा—गयवसह-जाव-सिंहि च ।...तं एतेसि सामी ! ओरालाणं चोइसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीडमणे परमसोमणसिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए धाराहय-नीव-सुरहि-कुसुम-चुमालइय-रोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हति, ते सुमिणे ओगिण्हत्ता ईहं अणुपविसइ,

ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएण बुद्धिविन्नाणेणं तेसि सुमिणाणं अत्योग्हं करेइ,

अत्योग्हं करित्ता तिसलं खत्तियाणीं ताहि इट्ठाहि-जाव-मंगल्लाहि मियमहुरस्सिरीयाहि वग्गूहि संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—
“ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा घन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ! तं जहा—

अत्यलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तालाभो देवाणुप्पिए ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं य राइंदियाणं विइवकंताणं अम्हं कुलकेउं अम्हं कुल-दीवं कुलपव्वयं कुलवडिसयं कुलतिययं कुलकित्तिकरं कुलवित्ताकरं कुलदिणयरं कुलआहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलविवद्वणकरं सुकुमाल-पाणिपायं अहीण-संपुत्त-पंचेदियसरीरं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं माणुम्माण-पमाण पडिपुत्त-सुजाय-सव्वंग-मुन्दरंगं सत्तिसोमाकारं कंतं पियं सुदंसणं दारयं पयाहिसि” ॥

से वि य णं दारिए उम्मुक्कवालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्न-विउल-वलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, तं जहा—

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! समिणा दिट्ठा-जाव-दोच्चं पि तच्चं पि अणुवुहइ ।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हिया करयलपरिणहियं दत्तनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अविहमेयं सामी ! असद्धिमेयं सामी ! इच्छियमेयं सामी ! पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी !

सच्चे णं एसमट्टे स जहेयं तुव्भे वयह” त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ । ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रया अब्भणुत्ताया समाणी नाणामणि-रयण-भत्तिचित्ताओ भदासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंतंताए अविजवियाए रायहंस-सरिसीए गईए, जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता एवं वयासी—

“मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला महासुमिणा अन्नेहि पावसुमिणेहि पडिहम्मिस्संति” त्ति कट्टु देवय-गुरु-अणसंबद्धाहि पसत्थाहि मंगल्लाहि धम्मियाहि लट्ठाहि कर्हाहि समिणजागरियं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ।

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूत्त-कालसमयंसि कोडुम्बियपुरिसे सहावेइ कोडुं वियपुरिसे सहावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरिज्जं उवट्टाणसालं गंधोदयसित्त-सम्मज्जिओवलित्तं सुगंध-वर-पचपन्नं-पुप्फोववार-कलियं कालागर-पवर-कुन्दुक्क-नुक्क-डज्जंत धूव-मघमघेतं गंधुदुयानिरामं मृगंधवरगंधियं गंधवट्टिभुयं करेइ, कारवेह, करेता कारवेत्ता य सीहासणं रयावेह, सीहासणं रयावित्ता मनेयमापत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुं वियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टु-जाव-हियया करलव-जाव-रुट्टु ‘एवं सामि !’ त्ति आत्ताए विणएणं वयणं पडित्तुणंति,

एव सामि ! त्ति आत्ताए विणएणं वयणं पडित्तुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिवयमति,

पडिनिवयमत्तिया जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छंति,

तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्टाणसालं गंधोदयसित्त-जाव-सीहासणं रयावेत्ति,

सीहासणं रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति,

तेणेव उवागच्छित्ता करयलपरिणहियं दत्तनहं निरसावत्तं मत्थए अज्जि कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स इत्तमतिं पच्चप्पिणंति ।

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुपल-कमल-कोमलुम्मिल्लियम्मि अट्ठं पंडरे पद्दाए रत्तामोय-वगाम-
किसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-राग-सरिसे कमलायर-संडवोहए उट्टियम्मि मूरे सट्ठसरम्मिम्मि शिणवरे तेवसा जवने य मयगिज्जाओ
अवमुट्टेइ ।

सयणिज्जाओ अवभुट्टिता पायपीढाओ पच्चोरुहइ,

पायपीढाओ पच्चोरुहिरा जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छिता भट्टकसात्तं अणुपविसइ,

अट्टणसालं अणुपविसित्ता अणेग-वायाम-जोग-वरगण-धा-नट्टण-मल्लजु पुकरणोहिं नते परिस्सते मयपाग-सट्ठसापागेहिं मग्गधवरत्तेल्ल-
माइएहिं पीणणिज्जेहिं जिधणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दण्णणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विट्ठणिज्जेहिं सविट्ठिय-गाय-पल्लापणिज्जेहिं
अवभंगिए समाणे तेल्लचम्मसि णिउणोहिं पट्टिपुट्ट-पाणि-पाय-सुकुमाल-कोमल-तवेहिं पुरिसेहिं अट्ठमग-परिमइग्गव्वलग-
करण-गुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेधावीहिं गियपरिस्समेहिं १ अट्टिमहाए, २ मंससुहाए, ३ तयासुहाए
४ रोमसुहाए, चउव्विहाए सुहपरिकम्मणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्सने अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ ।

अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणवरं तेणेव उवागच्छइ,

तेणेव उवागच्छिता मज्जणघरं अणुपविसइ,

अणुपविसित्ता समुत्तजालकलावाभिरामे विचित्त-मणि-रयण-कोट्टिमतले रमणिज्जे प्हाणमउयंनि नागा-मणि-रयण-भत्तिचित्तिं
प्हाणपीढंसि सुहनिसन्ने पुप्फोदएहिं य गंधोदएहिं य उण्होदएहिं य सुहोदएहिं य मुट्टोदएहिं य कल्लान-करण-पवर-मज्जण
विहीए मज्जिए ।

तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंध-कासातिय-लूट्टियगे अहय-सुमहग्ग-दुसरयण-
सुसंबुए

सरस-सुरहि-गोसीस-चंदणाणुलित्त-गतो सुइमालावन्नगविलेवणे

अविद्धमणिसुवन्ने कप्पिय हाग्गद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्तय-कयसोहे पिणद्धगेविज्जे अगुलिज्जग-ललिय-कयाभरणे
वरकडग-तुडिय-थंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुण्डलउज्जोइयाणं मउडदित्तिसराए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे मुट्टियापिगलंगुलीए
पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे नाणापणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-निउणोविय-मित्तिमित्त-विरइय-सुत्तिलिट्ठ-वित्तिट्ठ-त्तड-
आविद्ध-वोरवलए ।

किं बहुणा ? कप्पस्खत्ते चेव अलंकियविभूसिए नरिदे सकोरिटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरत्तामराहि उदुव्व-
माणीहिं मंगलजयसट्ठकयालोए अणेग-गणनाग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडविय-कोडुम्बिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-
अमच्च-चेड-पीढमह-णगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्यवाह-दूर्य-संधिपालसद्धि संपरिवुडे धवलमहामेह-निग्गए इव गहगणदिप्पंत-
रिक्ख-तारागणाण मज्जे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ।

मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,

तेणेव उवागच्छिता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ,

निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठभद्दासणाइ सेयवत्थपच्चत्थुयाइ सिद्धत्थय-कय-मंगलोवयाराइ रयावेई,
रयावित्ता अप्पणो अट्टरसामते नाणामणि-रयण-मंडियं अहियपेच्छणिज्जे महग्गधवर-पट्टेणुग्गयां सप्पहपट्टभत्तिसचित्तमाणं
ईहामिय-उसह-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्तर-रुह-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं अविभतरियां जवणियं
अंछावेइ अंछावेत्ता नाणामणि-रयण भत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगोत्थयं सेयवत्थपच्चत्थुयं सुमउयं अंगसुह-फरिसंग वित्तिट्ठं
तिसलाए खत्तियाणीए भद्दांसणं रयावेइ ।

भद्दासणं रयावित्ता-कोडुं वियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयांसी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंग-महानिमित्तं सुत्तत्थिपारए-विविह-सत्थ कुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह ।

तएणं ते कोडुं वियपुरिसां सिद्धत्थेणं रंन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठा-जाव-हयहियया करेयल-जाव-पडिसुणेति पडिसुणितां सिद्ध-
त्थस्स खत्तियस्स अतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता कुंडगामं नगरं मज्जे मज्जेणं जेणेव सुमिण-लक्खण-पाढगाणं
गिहाइ तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छिता-सुविण-लक्खण-पाढए सद्दाविति ।

तए णं ते सुविण-लक्खण-पाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुं वियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठलुट्ठ-जाव-हियया-ग्गहाया कयवलि

कम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्याइं पवराइं परिहिया अप्प-महग्घाभरणात्तकिय-सरीरा सिद्धत्यक-हरियालिय-कय-मंगलमुद्धाणा सएहि सएहि गेहेहितो निग्गच्छति ।

निग्गच्छित्ता खत्तियकुण्डग्गामं नगरं मज्झमज्जेणं जेणेव सिद्धत्यस्स रत्तो भवण-वर-वडिसग-पडिदुवारे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भवण-वर-वडिसग-पडिदुवारे एगयथो मिलंति ।

एगयथो मिलित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सिद्धत्ये खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करतलपरिग्गहियं-जाव-कट्टु सिद्धत्यं खत्तियं जएण विजएणं वद्धाविति ।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्येणं रत्ता वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तयं पत्तयं पुब्बण्णत्येसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

तए णं सिद्धत्ये खत्तिए तिसलं खत्तियाणि जवणियंतरियं ठावेइ,

ठावित्ता, पुप्फ-फल-पडिपुत्र-हृत्ये परेणं विणएणं ते सुमिणलक्खणपाढए एवं वयासि—

“एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जतिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि-जाव-सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले-जाव-चोइस महासुमिणे पासित्ता णं पडिदुद्धा । तं जहा—गाहा—गय उसभ-जाव-सिहि च ।

तं एतेसि चोइसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं-जाव-के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए णं ते सुमिणलक्खणपाढगा सिद्धत्येसु खत्तियेसु वंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ट-जाव-हियया ते सुविणे ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अपुवविसंति,

ईहं अपुवविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धि संलाविति,

संलावित्ता तेसि सुविणाणं लद्धु गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहियट्ठा सिद्धत्येसु रत्तो पुरओ सुविणसत्याइ उच्चारमाणा उच्चारमाणा सिद्धत्यं खत्तियं एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुविणसत्ये वायालीसं सुविणया, तीसं महासुविणा, वावत्तिरि सव्वसुविणा दिट्ठा,

तत्ये णं देवाणुप्पिया ! अरहंतमातरो वा, चक्कवट्टिमायरो वा, अरहंतंसि वा, चक्कहरंसि वा, गव्वं वक्कममाणंसि एतेसि तीसाए महामुविणाणं इमे चोइस महासुविणे पासित्ता णं पडिदुद्धंति, तं जहा—गाहा—गयवसह -जाव-सिहि च । वासुदेवमायरो वा वासुदेवमि गव्वं वक्कममाणंसि एतेसि चोइसण्हं महामुविणाणं अण्णतरे सत्त महासुविणे पासित्ता णं पडिदुद्धंति ।

वलदेवमायरो वा, वलदेवंसि गव्वं वक्कममाणंसि एतेसि चोइसण्हं महामुविणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिदुद्धंति ।

मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गव्वं वक्कते समाणे एतेसि चोइसण्हं महामुविणाणं अन्नयरे एणं महासुविणे पासित्ता णं पडिदुद्धंति ।

[मग० स० १६, उ० ६, सु० ७६-८० ।]

इमे य णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा, -जाव-मंगलकारणा णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा, तं जहा—

अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! -जाव- सुखलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया !

एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मात्तलं वट्टाडिमुत्ताणं अट्टमाणं य राइंदिराणं विशक्कताणं सुण्हं सुण्हं-माव- धारयं पयाहिइ ।

ते सि य वा शरणं उम्मुक्कवात्तभावे विज्जायसदिग्गवेत्ते ओच्चनगमसुत्तं नूरे वीरे विक्कते सिट्ठियण-विट्ठुव-वत्तमात्तो वाउत्त-वत्तमात्तो रज्जवई साया भयिस्सइ, जिणे वा तिलोक्कत्ताएणं धम्मवरचक्कवट्टी,

तं ओराला भ देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा-जाव-वारोण-मुट्टि-शीहाउ-कल्लाण-मंगलकारणा भ देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुविणा दिट्ठा ।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मात्तलं वट्टाडिमुत्ताणं अट्टमाणं य राइंदिराणं विशक्कताणं सुण्हं सुण्हं-माव- धारयं पयाहिइ ।

“एवमेयं देवाणुप्पिया ! -जाव- इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया !

सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुम्हे वयहं ति” —कट्टु ते सुविणे सम्मं विणाणं पडिच्छइ,

ते सुविणे पडिच्छिता ते सुविणलक्खणपाट्टे णं विउलेणं पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारेणं भक्कारेणं सम्माधेणं, यत्तारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयति, विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयत्ता पडिदिगइए.

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, जीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला पत्तिवाणी जयणियंत्तिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलं खत्तियाणि एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुविणसत्थंसि वायालीसं सुविणा -जाव-एणं महासुविणं सुविणे पामित्ता ण पडिदुञ्जंति ।

इमे य णं तुम्हे देवाणुप्पिए ! चोइस महासुविणा दिट्ठा, तं जहा —गाहा—गयवसह-जाव-गिहं च । ओरान्ना णं तुम्हे-जाव-विण वा तेलोक्कनायए धम्मवरचक्कवट्ठी ।”

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रत्ता अंतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठनुट्ठा-जाव-द्वियया करयल-जाव- ते सुविणे सम्मं पडिच्छइ ।

सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रत्ता अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-रयण भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठिता अतुरियं अचवलं असंभंताए अविलंबियाए गयहंस-सरिसीए गइए जेणेव सत्ते भवणे उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा ।

जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तं नायकुलं साहरिए तप्पभिइं च णं वड्ढे वेसमणकुण्डधारियो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापौराणाइं महानिहाणाइं भवति, तं जहा—

पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगोत्तागाराइं उच्छन्नसामियाइं उच्छन्नसेउकाइं उच्छन्नगोत्तागाराइं गानाउगण-नगर-वेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-दृणासम-संवाह-सन्निवेसेसु सिघाडएसु वा, तिएसु वा, चउक्केसु वा, चच्चरेसु वा, चउन्नुहेसु वा, महापहेसु वा, गामट्ठाणेसु वा, नगरट्ठाणेसु वा, गामनिद्धमणेसु वा, नगरनिद्धमणेसु वा, आवणेसु वा, देवकुलेसु वा, सभासु वा, पवानु वा, आरामेसु वा, उज्जाणेसु वा, वणेसु वा. वणसंडेसु वा सुसाण-सुन्नागार-गिरिकंदर-संति-सेलावट्ठाण-भवण-गिहेसु वा सन्निकिखत्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ।

जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए तं रयणि च णं नायकुल हिरण्णेणं वड्ढित्था, सुवण्णेणं वड्ढित्था, एव धणेणं, धन्नेणं, रज्जेणं, रट्ठेणं, वलेणं, वाहणेणं, कोसेणं, कोट्ठागारेणं, पुरेणं, अंतेउरेणं, जणवएणं, जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं जईव जईव अभिवड्ढित्था ।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिरुणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था— जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गवभत्ताए वक्कते तप्पभिइं च ण अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवन्नेणं वड्ढामो, एवं धणेणं, धन्नेण, रज्जेणं, रट्ठेणं, वलेण, वाहणेणं, कोसेणं, कोट्ठागारेणं, पुरेणं, अंतेउरेणं, जणवएणं, जसवाएणं वड्ढामो विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्ता-रयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पिइसक्कारसमुदएणं अतीव अतीव अभिवड्ढामो ।

तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तथा णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुळवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करित्तामो ‘वद्धमाणो’ ति ।

तए णं समणे भगवं महावीरे माउ-अणुकंपणट्ठाए तिच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीण-पल्लीणगुत्ते यावि होत्था ।

तए णं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—“हडे मे से गव्भे, मडे मे से गव्भे, चुए मे से गव्भे, गलिए मे से गव्भे, एस मे गव्भे पुर्व्व एयति, इयारिणं नो एयति ति” कट्टु ओहवमणसंकप्पा चित्तासोगसायरं संपविट्ठा करयलपल्लहत्थमुही अट्टज्जाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया द्वियायइ । तं पि य सिद्धत्थरायभवणं उवरय-मुइंग-तंती-तल-ताल-नाडइज्ज-जणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ।

जन्म-काले देवकयोज्जोयाइं—

२७४. जणं राइं तिसला क्षत्रियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पत्तुया, तण्णं राइं भवणवड-वाणमंतर-जोइत्तिय-विमाणवाविदेहि य देवीहि य ओचयंतेहि य उपावतेहि य संपवतेहि य एणे नहं दिव्वे देवुपजोइ देव-मण्णिवाति देवकह्वरह्वं उच्चिजलनभूए याचि होत्था ।

—आया सु० २, अ० १५, सु० ६६२

—कप्प० सु० ६४

देवकय-अमयाइवासाइं—

२७५. जणं रयणि तिसला क्षत्रियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पत्तुया, तण्णं रयणि यइये देवा य देवीओ य-एणं महं अमयासात्तं च, मधयात्तं च, सुण्णयात्तं च, पुष्कयात्तं च, हिरण्णयात्तं च, रयणयात्तं च यासिनु ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६६३

—कप्प० सु० ६५

देवकयत्तिययरजन्माभिसेओ—

२७६. अण्णं रयणि तिसला क्षत्रियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पत्तुया, तण्णं रयणि भवणवड-वाणमंतर-जोइत्तिय-विमाणवादिजो देवा य देवीओ य उपावत्ते भगवओ महावीरस्स ओउगभूइदन्नाइं तित्थयरात्तित्थेयं च ररिनु ।

—आया० सु० २, अ० १५, सु० ६६३ ।

जन्मकाल में देवकृत उद्योत—

२७४. जिस रात्रि में निरोग त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्वप्न भ्रमन भगवान् महावीर को जन्म दिया, तब वह रात्रि भ्रमनति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियों के आगमन और गमन से एक महान दिव्य देवोद्योत एवं देवों के एकत्रित होने के कारण, देवों के कोलाहल के कारण, अट्टहास और उद्योत युक्त हो गई ।

देवकृत अमृतवर्षा—

२७५. जिस रात्रि को त्रिशला क्षत्रियाणी ने भ्रमण भगवान् महावीर को मुखपूर्वक जन्म दिया उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों ने अमृत की, सुगन्धित द्रव्यों की, सुगन्धित चूर्णों की, फूलों की और चांदी-नोने की और रत्नों की बहुत भारी वर्षा की ।

देवकृत तीर्थंकर जन्मानिषेक—

२७६. जिस रात्रि में निरोग (स्वय्य) त्रिशला क्षत्रियाणी ने भ्रमण भगवान् महावीर को मुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में भ्रमनति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव-देवियों ने अमृतकर्म-कर्म आदि और तीर्थंकराभिषेक किया ।

क्रमशः

तए णं समण भगव महावीरे माऊए अवमेयाह्वयं अउज्जत्तिययं पत्तिययं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं विजाणित्ता एणंदेवण एयइ । तए णं ता तिसला क्षत्रियाणी हट्ठनुट्ठ-जाव-हियया एवं वयासि —

“नो यलु मे गव्णे हट्ठे-जाव-नो गल्लिए, मे गव्णे पुव्वि नो एयइ इयाणि एयइ त्ति कट्ठु हट्ठनुट्ठ - जाव - एवं विहरइ ।”

तए णं समणे भगव महावीरे गव्भत्थे चैव इमेयाह्वयं अनिग्गहं अनिगिण्हइ—

“नो यलु मे कप्पइ जन्मापिएहि जीवन्तेहि मुण्णे भवित्ता अगारजानाओ अगगारियं पव्वइत्तए ।”

तए णं ता तिसला क्षत्रियाणी एहावा कववत्तियकम्मा कवतोउयमंगलदायच्छित्ता मव्वारणकारमुत्तिया त गमम नाइमीएहि माइउण्हि माइविसेहि माइकट्टुएहि माइकभाइएहि माइअंविणेहि माइमट्टरेहि मात्तित्तिहेहि मात्तियुक्कहि मात्तिउत्तंकोइ मात्तिमुत्तंकोइ उभयभाणमुत्तंकोइ भोयन-उच्छायन-गध-मत्तोहि यदगय-रोज-मोण-मोह-भव-परिताना व तस्स गव्भत्थे णिं मिथ परव गव्भत्थेणं व मेव कवव माउएमाइरिणाणी विपत्तमउएहि मव्वत्तवणेहि पट्टियाह्वुत्तए मणोगभूएणं तियारभूएणं तस-पसेएणं मणुअओओ मणमाणिएणोएणं अविमणायसे एता वृत्तिउत्तंकोइ विणीयरोहवा मण्णोअं जणवड भवोओ विण्णउ विणीयउ ।

सिद्धत्थकथजम्मुस्सवो—

२७७. तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइ-वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहि देवेहि तित्थयरजम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूस-कालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ नगरगुत्तिए सद्दावित्ता एवं वयाली—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कुण्डपुरे नगरे चारगसोहणं करेह, चारगसोहणं करित्ता, माणुम्माणवद्धणं करेह, माणुम्माणवद्धणं करित्ता कुण्डपुरं नगरं सविभतरवाहिरियं आसिय-सम्मज्जियोवलेवियं सिघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियज्जयपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसांस-सरस-रत्तचंदण-ददरदिण्णपंचंगुलितलं उवचियचंदसंगकलसं चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवारदेसभागं आसत्तोसत्त-विपुल-वट्ट-वग्घा-रिय-मल्लदाम-कलावं पंचवत्तं-सरस-सुरहि-मुक्क-पुप्फपुञ्जोवयार-कलियं कालागुरु पवर-कुन्दरुक्क-तुरुक्क - उज्जंत-धूव- मघमघि-तगंधुद्धुयानिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-पवग-कहग-पढक-लासक-आइंखग-लंख - मंख-तूण-इल्ल-तुम्बवीणिय-अणेगतालायराणुचरियं करेह कारवेह,

सिद्धार्थकृत जन्मोत्सव—

२७७. तदनन्तर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों द्वारा तीर्थंकर जन्माभिषेक महोत्सव सगन्त होने पर षट् सिद्धार्थ क्षत्रिय प्रातःकाल नगर रस्तों हो बुलाता है, बुलाकर उसने इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रिय ! जीव ही कुण्डपुर नगर के कारागृह को खाली कर दो अर्थात् सब बन्धियों को मुक्त कर दो । तोल माप को बढ़ाओ, (अर्थात् व्यापारियों ने कहे कि धृत अन्नादि पदार्थ सस्ते बेचो और नुकसान की पूर्ति राज्य कोष से की जायेगी) मानोन्मान की वृद्धि माप ताल में वृद्धि करके कुण्डपुर नगर के अन्दर बाहर सुगन्धित जल का छिड़काव कराओ, साफ कराओ, लेपन कराओ, शृंगाटकों, धिकों, चतुष्टकों, चौको, चतुर्भुजों, राजमार्गों, सामान्यमार्गों आदि सभी स्थानों पर पानी का छिड़काव कराओ, उन्हें स्वच्छ और पवित्र बनाओ, गलियों और बाजारों में स्वच्छ करके दर्शकों के बैठने के लिये मंच बनाओ, विविध रंगों से सुशोभित ध्वजा और पताकाएँ बँधाओ, सारे नगर को लिपा-पुताकर स्वच्छ बनाओ, नगर के भवनों की भीतों पर गोशीर्ष चंदन के, सरस रक्त चन्दन के, दर्दर (मलय) चंदन के पाँचों अंगुलियाँ उभरी हुई दृष्टिगोचर हों इस प्रकार थापे लगाओ । घरों के भीतर चौक में चन्दन-कलश रखाओ, द्वार-द्वारों पर चन्दन घटों के सुन्दर तोरण बँधाओ, जहाँ तहाँ सुन्दर प्रतीत होने वाली एवं पृथ्वी को स्पर्श करती लम्बी गोल मालायें लटकवाओ, पंचवर्णों के सुन्दर सुगन्धित सुमनों को विकीर्ण कराओ, उनके डेर लगवाओ, गुलदस्ते रखवाओ, उत्तम कृष्ण-अगर कुन्दर, तुरुष्क लोमान तथा धूप की सुगन्ध से सम्पूर्ण नगर को सुगन्धित करो । सुगन्ध से सारे नगर को सुगन्धित करो, सुगंध से सारा नगर महक उठे, ऐसा करो । सुगंध की अत्यधिकता के कारण सारा नगर गंध-गुटिका के समान प्रतीत हो ऐसा बनाओ । जन-रंजन के लिये स्थान-स्थान पर नट नाटक करें, नृत्य करने वाले नृत्य करें, रस्सी पर खेल बताने वाले खेल बतायें, मल्ल कुश्ती करें, मुष्टि से कुश्ती करने वाले मुष्टि से कुश्ती करें, विदूषक लोगों को हँसावे, कूदने वाले कूदकर अपने खेल बतायें, कथावाचक कथा कर जन-मन को प्रसन्न करें, सुभाषित बोलने वाले पाठक सुभाषित बोले । रास क्रीड़ा करने वाले रास क्रीड़ा करें, भविष्य कहने वाले भविष्य कहें, लम्बे बांस पर खेलने वाले बांस पर खेल करें, मंख-चित्र दिखाने वाले चित्र दिखाये, तान पूरा बजाने वाले तान पूरा बजायें, बीन बजाने वाले बीन बजायें, ताल देकर नाटक दिखाने वाले नाटक दिखायें इस प्रकार जन रंजन हेतु व्यवस्था करो और दूसरों से करवाओ ।

करेत्ता, कारवेत्ता य ज्ञयसहस्सं च, मुसलसहस्सं च उस्सवेह,
उस्सवित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह ।

तए णं ते णगरमुत्तिया सिद्धत्थेणं रत्ता एवं वुत्ता समाणा
हृद्दत्तुद्द-जाव-हियया करयल-जाव-पडिउणित्ता खिप्पामेव
फुण्डपुरे नगरे चारगसोहणं-जाव-उस्सवेत्ता जेणेव सिद्धत्थे राया
तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल-जाव- कट्टु सिद्धत्थस्स
रत्तो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

२७८. तए णं से सिद्धत्थे राया जेगेव अट्टणसाला तेणेव
उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता-जाव-सव्वोरोहेणं सव्वनुप्फगंध-
वत्थमल्लालंकार-दिभूसाए सव्वतुडियसद्धिनाएणं महया इड्ढीए
महया जुत्तीए मत्था पत्तेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं
महया परत्तु, उयजनगतसमगपवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-
शल्लरि-चरमुहि-हुड्ढक-भुरव-मुडंग-वुडुहि निग्घोत्तणादितरवेणं
उस्सुफं उपकरं उक्किट्ठं अदेज्जं अनेज्जं अनडप्पवेसं अडंडको-
डंडिमं अधरिमं गणवाचरनाइड्ढजकलियं अणेगतालावराणुचरियं
अणुदुयमुडंगं अमिलायमल्लदामं पमुडयपक्कोलियसपुरजणजाणवयं
दसदियत्तट्ठिपडियं करेइ ।

तए णं से सिद्धत्थे राया दनाहियाए ठिइउडियाते
अट्टमाणेए तइए य, साहस्सिए य, तयसाहस्सिए य, जाए य,
डाए य, भाए य, दत्तमाणे य, दयायेमाणे य, तइए य, साहस्सिए य,
सवसाहस्सिए य, तमे पडिच्छेमाणे य, पडिच्छायेमाणे य एवं
विहरइ ।

२७९. तए णं तमणस्स भगवतो महावीरस्स अग्गाविचरो—
पट्ठमे दिवसे ठिइउडियं करेति,
तइए दिवसे चंदमूरस्स इण्णियं करेति,
छट्ठे दिवसे जाणत्तियं करेति,
एस्सारत्तमे दिवसे विइक्कते निग्घत्तिए अनुत्तिअत्तधम्मकारणे

ऐसा करके और करवाके हजारों गाड़ी के जुए और हजारों
मूसल ऊँचे स्थान पर चड़े करवाओ, चड़े करवाके अर्थात् उत्तम
की पूरी व्यवस्था करके आत्मानुसार कार्य किए जाने की मुझे
सूचना दो ।

तदनन्तर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा को सुनकर नगरभक्तों
ने हृषित, संतुष्ट होकर—यावत्—हृषितमन होकर—यावत्—
अंजलि करके—यावत्—स्वीकार किया, स्वीकार करके कुण्डपुर
नगर के कारागृहों को खोलते हैं, बंदियों को मुक्त करते हैं—
यावत्—उत्सव की सभी व्यवस्था करने के पश्चात् जहाँ
सिद्धार्थ राजा हैं, वहाँ आते हैं, आकर दोनों हाथ जोड़कर
मस्तक पर अंजलि करके सिद्धार्थ राजा को उनका यह आदेश
पुनः अर्पित करते हैं अर्थात् आदेशानुसार कार्य किए जाने की
सूचना देते हैं ।

२७८. उनके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा जहाँ अट्टनशाळा—
व्यायामशाला, अखाड़ा है, वहाँ आता है, आकर ते—
यावत्—अपने अन्तःपुर के साथ सभी प्रकार के पुष्प, मन्थ, पर्य,
मालाएँ आदि अलंकारों से अलंकृत होकर, सभी प्रकार के वायों
को बजवा करके, बड़े वैभव के साथ, महती श्रुति के साथ, गहन
लश्कर के साथ, बहुत से वाहनों के साथ, वृहद् समुदाय के साथ
और एक साथ बजते हुए अनेक वायों की ध्वनि के साथ अर्थात्
शंख, पणव, भेरी, शल्लरी चरमुची हुड्ढक, डोल, मृदंग और
दुन्दुभी आदि वायों के निर्घोष से निर्गत मधुर गद्गद ध्वनि के
साथ, राज्य को गुल्कमुक्त, करमुक्त, अदेय—विना मूल्य दिए
वस्तु को लेता, अमेय—माप-तोल बंद करना, प्रभेद प्रवेश-
जप्ती करने के लिये राजपुरुषों का घर में प्रवेश निषेध, अदंड
कुदंड—जुर्माना आदि न करना, अधरिम—राज की ओर से श्रेष्ठ
चुकाना आदि की व्यवस्था करके एवं उत्तम गणिकार्यों और
नाट्यकारों के नृत्य व नाटकों के साथ निरन्तर मृदंग ध्वजाने की
ध्वनियों के साथ घरों और दूनरे-दूनरे स्थानों पर लटकती हुई
ताजी मालाओं सहित, प्रमुदित एवं खीड़ा गत नगर और जनपद
निवासियों के साथ दस दिन का उत्सव (स्थितिर्वाप्ति) करता है ।

दस दिन का उत्सव नग्न होने के समय में यह सिद्धार्थ
राजा सैकड़ों, हजारों और लाखों प्रकार के दानों (द्रव्य
सामग्रियों) को, दानों और भोगों की देना हुआ, दिवसाज द्रव्य
और सैकड़ों-हजारों और लाखों प्रकार की भेट स्वीकार करता
और करवाता हुआ रहता है ।

२७९. कल्पशब्दात् अमण भगवान् महावीर के आज्ञा-विशेष—
प्रथम दिन कुल परस्परगत अनुष्ठान करते हैं ।
द्वितीय दिन चंद्र और सूर्य स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ।
छट्टे दिन शक्ति धारण का उच्चारण करते हैं ।
आठवें दिन शक्ति होने के उपरान्त शक्ति के उच्चारण करते हैं ।

इत्थोरयणेणं वत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्सेहि वत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्सेहि वत्तीसाए वत्तीसइवद्धेहि णाडयसहस्सेहि सद्धि संपरिवुडे भवणवरवडिसगं अईइ जहा कुवेरो व्व देवराया केलास-सिहरि-सिगभूमं ति ।

तए णं से भरहे राया मित्त-णाइ-णियग-सयण-संवंधिपरियणं पच्चुवेवखड, पच्चुवेविकत्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता - जाव - मज्जणघराओ पडिणिकखमइ, पडिणिकख-मित्ता जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भोय-णमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ, पारित्ता उप्पि पासाय-वरगए फुट्टमाणेहि मुइंगमत्थएहि वत्तीसइवद्धेहि णाडएहि उवला-लिज्जमाणे उवालालिज्जमाणे उवणच्चिज्जमाणे उवणच्चिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे महया-जाव-मुंजमाणे विहरइ ॥

भरहस्स रायाभिसेयसंकल्पो—

५६६. तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ रज्जधुरं चित्ते-माणस्स इमेयारूवे-जाव-समुप्पज्जित्था—

“अभिजिए णं मए णियग-वलवीरिय-पुरिसवकारपरवकमेण चुल्लहिमवंत-गिरिसागरमेराए केवलकप्पे भरहे वासे, तं सेयं खलु मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएणं अभिसिचावित्तए” त्ति कट्टु एवं संपेहइ, संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए - जाव - जलंते जेणेव मज्जणघरे-जाव-पडिणिकखमइ, पडिणिकखमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता सोलस देवसहस्से, वत्तीसं रायवरसहस्से सेणावइरयणे-जाव-पुरो-हियरयणे तिण्णि सट्ठे सूयसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे य वहवे राईसरतलवर-जाव-सत्थवाहप्पभियओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

“अभिजिए णं देवानुप्पिया ! मए णियय-वलवीरिय -जाव-केवलकप्पे भरहे वासे तं तुम्हे णं देवानुप्पिया ! ममं महया-रायाभिसेयं वियरह ।”

इसके बाद स्त्री रत्न के साथ, वत्तीस हजार श्रुतु कल्याणिकों के साथ, वत्तीस हजार जनपद कल्याणिकों के साथ, वत्तीस वत्तीस की संख्या वाली ऐसी वत्तीस हजार नाटक मण्डलियों के साथ अपने उत्तम और सब भवनों में शिखर के समान और कलास पर्वत के शिखर के समान ऊंचे ऐसे भवन में जैसे देवराज कलास पर्वत के शिखर पर प्रवेश करता है, वैसे प्रवेश करता है ।

इसके बाद वह भरत राजा मित्रों का, ज्ञातिजनों का, अपने स्वजनों का, सम्बन्धियों का और पारिवारिकजनों अथवा सम्बन्धियों के परिवार का निरोक्षण करता है अर्थात् उनसे मिलता है, मिलकर जिस ओर स्नानगृह है, उस ओर जाता है, वहाँ जाकर—यावत् स्नानगृह से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ भोजनमण्डप है, वहाँ आता है, वहाँ आकर भोजनमण्डप में सुखासन पर बैठकर अष्टमभक्त का पारणा करता है, पारणा करके ऊपर आये हुए अपने उत्तम प्रासाद में बैठकर वजते हुए मृदंगों—डोलकों के साथ वत्तीस वत्तीस के समूह वाले वत्तीस प्रकार के नाटकों को देखते देखते, सुनते सुनते, आनन्द करते हुए, आनन्द करते हुए ऐसे महान भोगों को भोगते हुए आनन्द से रहता है ।

भरत का राज्याभिषेक संकल्प—

५६६. तत्पश्चात् अन्य किसी एक समय राज्य धुरा—राज्य शासन का चिन्तन करते हुए राजा भरत को इस प्रकार का—यावत्—(संकल्प) समुत्पन्न हुए—

“मैंने अपने बल, वीर्य, पुढ्यकार और पराक्रम द्वारा क्षुल्ल हिमवंत पर्वत से लेकर समुद्र पर्यन्त की सीमा में आगत सम्पूर्ण भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली है, अतएव अब मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि बड़े धूमधाम के साथ राज्याभिषेक द्वारा अभिसिचन करवाया जाये अर्थात् प्रजा मेरा राज्याभिषेक करे’ ऐसा राजा भरत विचार करता है और ऐसा विचार करके कल (आगामी दिन) के प्रातःकाल में ही—यावत्—चमचमाते सूर्य का उदय होते ही जिस ओर मज्जनघर है—यावत्—बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ बाहर के बैठने की शाला है, उसमें जहाँ सिंहासन है, उस ओर आता है, आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है, बैठकर सोलह हजार देवों को, वत्तीस हजार राजाओं को, सेनापति रत्न को—यावत्—पुरोहित रत्न को, तीन सौ साठ चारण भाटों को, अठारह श्रेणियों प्रश्रेणियों को और दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर, कोटवाल, —यावत्—सार्थवाह आदि को बुलाता है, उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहता है—

“हे देवानुप्रियो ! मैंने अपने बल, वीर्य द्वारा—यावत्—भरत क्षेत्र को जीत लिया है, अतः हे देवानुप्रियो ! तुम सब मिलकर धूमधाम के साथ मेरे राज्याभिषेक का प्रबन्ध करो ।”

५७०. तए णं ते सोलस देवसहससा-जाव-पमिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ ० करयल ० मत्थए अंजलि फट्ठ भरहस्त रण्णो एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणोति ।

तए णं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता-जाव-अट्ठममत्तिए पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ ।

देवेहि अभिसेयमण्डवकरणं—

५७१. तए णं से भरहे राया अट्ठममत्तिं परिणममाणंति आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विणीयाए रायहाणीए उत्तर-पुरत्थिमे विसीभाए एणं महं अभिसेयमण्डवं विउच्चवेह, विउच्चित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।’

तए णं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ - जाव - ‘एवं सामि’त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणोति, पडिसुणित्ता विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थियं विसी-भाणं अववकमंति, अववकमित्ता वेउच्चियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता, संविज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसिरंति, तं जहा—

रयणाणं-जाव-रिट्ठणं अहावापरे पुग्गले परिसाउत्तेति, परि-साडित्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदियंति, परिआदिइत्ता बुच्चं पि वेउच्चियसमुग्घाएणं - जाव - समोहणंति, समोहणित्ता बहुसमर-मणिज्जं भूमिभागं विउच्चंति ।

से जहाणामए—आतिगपुष्यरेइ वा० ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्त भूमिभागस्त बहुमज्जवेसनाए एत्थ णं महं एणं अभिसेयमण्डवं विउच्चंति, जणेग-उंभ-सय-सणि-विट्ठं - जाव - गंधपट्टिभूमं, पेच्छापरमंडव-उण्णो ति ।

५७२. तस्स णं अभिसेयमण्डवस्त बहुमज्जवेसनाए एत्थ णं महं एणं अभिसेयपेडं विउच्चंति अच्छं सग्गं ।

तस्स णं अभिसेयपेडस्त तिसिंति ततो तिसोयाणवडिइयए विउच्चंति ।

तेति णं तिसोयाणवडिइयणाणं अयमेवाहियेण्णायाते पण्णत्तं - जाव - तोरणा ।

५७०. तत्पश्चात् भरत राजा को इस आज्ञा को सुनकर वे सोलह हजार देव—यावत् सार्यवाह आदि सभी लोग हूष्ट तुष्ट हुए दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर अंजलि करके भरत राजा के इस आदेश को अच्छी तरह से विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं ।

उसके बाद वह भरत राजा जिस ओर पीपघसाला है, वहाँ जाता है, वहाँ जाकर—यावत्—अष्टममक्त तप की साधना-पूर्वक आराधना करता है ।

देवों द्वारा अभिषेक मण्डपकरण—

५७१. अष्टममक्त तप के पूर्ण होने के अनन्तर वह राजा भरत आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! विनीता राजधानी की उत्तर पूर्व दिशा—ईशान कोण—में शीघ्र ही एक विशाल अभिषेक मण्डप की विकुर्वणा करो अर्थात् अभिषेक मण्डप बनाओ, बनाकर अभिषेक मण्डप बनने की सूचना मुझे दो ।’

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव भरत राजा के इस आदेश को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए—यावत्—‘हे स्वामिन् इसी प्रकार होगा’ कहकर आदेश को विनयपूर्वक सुनते और स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके विनीता राजधानी के उत्तरपूर्व दिग्भाग—ईशानकोण—में चले गये, वहाँ जाकर वैक्रियसमुद्रघात की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके संस्थापन योजना लम्बा दण्ड बनाया जिसका वर्णन इस प्रकार है—

रत्नों का—यावत्—रिष्टरत्नों का, यवावादर—स्वून—पुद्गलों को दूर करते हैं, और यवासूदन—जैसे चाहिए जैसे सूदन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, सूदन पुद्गलों को ग्रहण करके सूधरी वार भी वैक्रियसमुद्रघात करते हैं, समुद्रघात करके बहुत ही समतल, रमणीय भूमिभाग की रचना करते हैं ।

जैसे कि डोलक के ऊपर का भाग अथवा लयाजब भरें हुए सरोवर के समान ।

उस समतल और रमणीय भूभाग के बीचोंबीच एक विशाल अभिषेक के लिए मण्डप की रचना करते हैं जिसमें अनेक स्तम्भ लगे हुए हैं—यावत्—सुगन्धमय कर दिया—सुगन्ध की अतिरिक्त अंबा बना दिया, वहाँ पैसागूह—नाटकाला का अर्थ मंच बनाना चाहिए ।

५७२. उस अभिषेक मण्डप के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा अभिषेक पाठ बनाया जो अत्यन्त स्वच्छ और चिकना बनाना था ।

उस अभिषेक पाठ की तीन दिशाओं में तीन शीशुओं की रचना की ।

उन तीन शीशुओं का अर्थ इस प्रकार समझना—५७१—उसके ऊपर तीरकों की रचना की ।

तस्स णं अभिसेयपेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते ।

सीहासणं—

५७३. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्जदेसभाए एत्थ णं महं एगं सीहासणं विउव्वंति ।

तस्स णं सीहासणस्स अयमेयाह्वे वण्णावासे पणत्ते - जाव - दामवण्णं समत्तं ति ।

तए णं ते देवा अभिसेयमंडवं विउव्वंति, विउव्वित्ता जेणेव भरहे राया - जाव - पच्चप्पिणंति ।

भरहेण अभिसेअ मंडवपवेसो—

५७४. तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-पोसहसालाओ पडिणिव्वमइ, पडिणिव्वमिता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडि- कप्पेह, पडिकप्पित्ता ह्यगय -जाव- सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्च- प्पिणह-जाव-पच्चप्पिणंति । तए णं से भरहे राया मज्जनघरं अणुपविसइ-जाव - अंजणगिरिकूडसणिभं गयवइं णरवईं बुरुहं ।

५७५. तए णं तस्स भरहस्स रण्णे आभिसेक्कं हत्थिरयणं बुरुहस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगला जो चेव गमो विणीयं पविसमाणस्स सो चेव णिव्वममाणस्स विजाव-पडिबुज्जमाणे पडिबुज्जमाणे विणीयं रायहाणि मज्जमज्जेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमेदिसीभाए अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयमंडवदुवारे आभिसेक्कं हत्थि- रयणं ठावेइ, ठावित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरहइ, पच्चोरहित्ता इत्थिरयणेणं वत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्सेहि, वत्तीसाए जणवयकल्लाणियाहस्सेहि, वत्तीसाए वत्तीसइवद्धेहि णाडगसहस्सेहि सद्धिं संपरिवुडे अभिसेयमंडवं अणुपविसइ, अणु- पविसित्ता जेणेव अभिसेयपेडे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयपेडं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थि- मिल्लेणं तिसोवाण-पडिबुवणं बुरुहइ, बुरुहित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव, उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

उस अभिपेक पीठ का भूभाग बहुत ही सम और रम- नीय है ।

सिहासन—

५७३. उस बहुत ही सम और रमणीय भूभाग के बीचोंबीच एक विशाल सिहासन को विकुर्वणा करते हैं ।

उस सिहासन का वर्णन इस प्रकार है—यावत्—मात्राओं का वर्णन समाप्त होता है ।

तत्पश्चात् वे देव अभिपेक मण्डप की रचना करते हैं, रचना करके जहाँ भरत राजा है—यावत्—आदिगानुसार कार्य संपन्न होने की सूचना देते हैं ।

भरत का अभिपेक मण्डप प्रवेश—

५७४. तत्पश्चात् आभियोगिक देवों की वात सुनकर और समझ- कर वह भरत राजा हृष्ट तुष्ट होता है—यावत्—पीपयसाला से बाहर निकलता है, निकलकर कोटुम्बिक पुर्यों को बुलाता है, बुलाकर उन्हें इस प्रकार आदेश देता है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो, हस्तिरत्न को तैयार करके धोड़ा, हाथी—यावत्— तैयार करने के बाद मुझे सूचना दो कि सब तैयार हो गया है—यावत्—वे देव वापस में आदेश पूर्ति होने की सूचना देते हैं तब वह भरत राजा मज्जनगृह में प्रवेश करता है—यावत्— अंजनगिरि के शिखर जैसे गजपति पर नरपति भरत राजा आरूढ़ हुआ ।

५७६. तत्पश्चात् जब वह भरत राजा आभिषेक्य—अभिषेक में उपयोग में आने वाले हस्तिरत्न पर आरूढ़ हो चुका तो उसके आगे-आगे ये आठ मंगल चलने लगे, यहाँ इस शोभा यात्रा का समस्त वर्णन पहले विनीता राजधानी में प्रवेश के प्रसंग में किया गया है, वही इस निष्क्रमण के सन्दर्भ में भी समझना चाहिए— यावत्—प्रतिबुध्यमान होता हुआ विनीता राजधानी के बीचों- बीच से निकलता है, निकलकर जिस ओर विनीता राजधानी का उत्तरपूर्व दिग्भाग में अभिषेक मण्डप है. वहाँ आता है, वहाँ आकर अभिषेक मण्डप के द्वार पर अभिषेक हस्तिरत्न को ठहराता है, ठहराकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरता है, उतरकर स्त्रीरत्न के साथ, वत्तीस हजार ऋतुकल्याणिकों के साथ, वत्तीस हजार जनपद कल्याणिकों के साथ, वत्तीस वत्तीस की समूह वाली वत्तीस हजार नाट्य मण्डलियों के साथ अभिषेक मण्डप में प्रवेश करता है, प्रवेश करके जिस तरफ अभिषेक पीठ है, उस ओर आता है, उस तरफ आकर अभिषेक पीठ की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ—आगे पीछे की प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्व तरफ के त्रि-सोपान जैसे सोपान पर चढ़ता है, इस सोपान पर चढ़कर जिस ओर सिहासन है, वहाँ आता है, वहाँ आकर

पुरत्याम्निमुहे सण्णिसण्णे त्ति ।

तए णं तस्स भरहृस्स रण्णो बत्तीसं रायसहृस्सा जेणेव अग्निसेय-मण्डवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अग्निसेयमंडव अणुपविसंति, अणुपविसित्ता अग्निसेयवेदं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा अणुप्पयाहिणीकरेमाणा उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिह्वएणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयस-जाव-अंजलि कट्टं भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धाव्वेति, वद्धावित्ता भरहृस्स रण्णो णच्चासण्णे णाद्धूरे सुस्ससमाणा -जाव- पज्जुवासंति ।

भरहृस्स महारायाभिसेओ—

५७६. तए णं तस्स भरहृस्स रण्णो सेणावहरयणे-जाव-सस्यवाह-प्पमिहओ ते वि तह चेव । णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाण-पडिह्वएणं - जाव - पज्जुवासंति ।

तए णं से भरहे राया आभिओगे वेवे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं ययासी—

“स्तिप्पामेव मो देवाणुप्पिया ! ममं महृत्थं महृग्घं महृरिहं महारायाभिसेयं उवट्ठवेह ।”

तए णं ते आभिओइया देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्त -जाव- उत्तरपुरत्थियमं विसीभागं अववकभंति, अववकमित्ता वेउब्बियसमुग्घाएणं समोहणंति ।

एवं जहा विजयस्स तहा इत्थं पि-जाव-पंडगवणे एगओ मित्तापंति, एगओ मिलाइत्ता जेणेव दाहिणइडभरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विणीयं रायहाणि अणुप्पयाहिणीकरेमाणा अणुप्पयाहिणीकरेमाणा जेणेव अग्निसेयमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महृत्थं महृग्घं महृरिहं महारायाभिसेयं उवट्ठयेति ।

तए णं तं भरहं रायाणं बत्तीसं रायसहृस्सा सोभणंसि तिहि-करय-दिपम-चरयस-मुहुत्तंसि उत्तरपोट्ठयथाविजवंसि तेहि साभा-दिह्वि य उत्तरपेट्ठियएहि य वरकमतवट्ठयाणेहि नुरभि-वर-धारि-विपुणोहि -जाव- महया महया रायाभिसेएव अभित्तिव्वेति, अभित्तिओ जहा विजयस्स,

पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठा ।

इसके बाद उस राजा भरत के बत्तीस हजार राजा जित्त ओर अभियेक मंडप हे उस ओर बाते हे, उस ओर आकर अभियेक मण्डप में प्रवेश करते हे, प्रवेश करके अभियेक पीठ की अनुप्रदक्षिणा करते हुए उत्तर की ओर के प्रिसोपान जैसे सोपान द्वारा जित्त तरफ राजा भरत हे, वहाँ आते हे, वहाँ आकर दोनों हाथ जांड़ —यावत्—मस्तक पर अंजलि करके भरत राजा को 'त्रय विजय हो' ऐसे बोलों द्वारा बघाते हे, बघाकर भरत राजा के न ओ अति दूर और न अति पास, इस तरह उसकी सेवा करते हुए— यावत्—पयुं पासना करते हे अर्थात् बैठते हे ।

भरत का महाराज्याभियेक—

५७६. तत्त्वच्चात् उस भरत राजा का सेनापति रत्न—यावत्— सार्धवाह आदि भी उसी प्रकार प्रवेश करते हे । लेकिन विशेषता यह हे कि सभी दक्षिण बाजू के तिसोपान जैसे सोपान द्वारा प्रवेश करते हे—यावत्—पयुं पासना करते हे ।

तदनन्तर वह भरत राजा आभियोगिक देवों को बुलाता हे और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता हे—

‘हे देवानुप्रियो ! अब शीघ्र ही मेरा महाअर्पण, महर्षं, महापुरुषों के आदर योग्य ऐसा महाराज पद सम्बन्धी अभियेक करो ।’

तब वे आभियोगिक देव भरत राजा को इस बात की मुसकर अत्यन्त हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए—यावत्—उत्तरपूर्व दिशा— ईशान कोण की तरफ गये, उस ओर आकर बैक्य समुपाठ करते हे ।

जैसा वर्णन विजय देव के प्रसंगों में किया गया हे, वह सब यहाँ भी समझना चाहिए—यावत्—वे पञ्चरूपन मे एक स्थान पर एकत्रित होते हे, एकत्रित होकर जिस ओर दक्षिणार्ध भारतवर्ष हे, जिस ओर विनीता राजधानी हे, वहाँ आते हे, वहाँ आकर विनीता राजधानी की प्रदक्षिणा करते करके वहाँ अभियेक मण्डप हे और वहाँ भी वहाँ भरत राजा हे, वहाँ आते हे, आकर महाअर्पण अर्थात् जिसमे बहुत अधिक धन धन्य किया जा रहा हे, महर्षं—महामूर्खमान—अनूठा, महापुरुषों के लायक महाराज्याभियेक की तैयारी करने हे ।

तत्त्वच्चात् शुभ निधि, करण, दिवस, नक्षत्र, सुहृत् नक्षत्र पर उत्तर प्रोच्छाद मे विषय सुहृत् मे अर्पण हुआ । उस उतम कमती पर रथे हुए एवं उतम सुमन्वित अथ से अरुह्य उन स्वामाधिक एवं विद्विषा द्वारा पन्नार हृत् राजा को द्वारा — यावत्—वही सुमन्वित मे राजा भरत का अभियेक करके हे, अभियेक मण्डप मे सभी अर्पण बैठा करने विजय के आभियेक के प्रसंग मे पहले किया गया हे, बैठा ही रहा ।

अभिसिञ्चिता पत्नेयं पत्नेयं -जाव-अंजलि कट्टु ताहि इट्टाहि जहा
पविसंतस्स भणिया-जाव-विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउजंति ।

नयरे दुवालससंवच्छरियपमोयघोसणं—

५७७. तए णं तं भरहं रायाणं सेणावइरयणे -जाव- पुरोहियरयणे
त्तिण्णि य सट्ठा सूयसया अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे य वह्वे
-जाव- सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिञ्चंति, तेहि वरकमल-
पइट्ठाणेहि तहेव -जाव- अभियुणंति य सोलस देवसहस्सा एवं
चेव । णवरं पम्हलसुकुमालाए -जाव- मउडं पिणद्धेति । तयणंतरं
च णं वहरमलयसुगंधिएहि गंधेहि गायाइं अब्भुक्खेति दिव्वं च
सुमणोदामं पिणद्धेति । किं बहुणा ?, गंठिम-वेडिम -जाव- विभू-
सिथं करेति ।

तए णं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएणं अभिसिञ्चिए
समाणे कोडुम्बियपुरिसे सट्ठावेइ, सट्ठावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! हत्थिखंधवरगया विणीयाए
रायहाणीए सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर -जाव- महापहपहेसु
महया महया सट्ठेणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा उस्सुककं उक्करं
उक्कट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अन्नप्पवेसं अदंडकोदंडिमं -जाव-
सपुरजण-जाणवयं दुवालस-संवच्छरियं पमोयं घोसेह, घोसित्ता
ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणह त्ति ।”

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा
हट्ठत्तुट्ठचित्तमाणंदिया पीडमणा० हरिसवसविसप्पमाणहियया
विणएणं वयणं पडिसुणित्ति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवर-
गया -जाव- घोसेति, घोसित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

अभिपेक करके प्रत्येक—यावत्—अंजलि करके इष्ट-त्रिय
वाणी द्वारा जैसा विनीता राजधानी में प्रवेश करते हुए राजा
भरत की शोभा यात्रा वर्णन पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ
भी समझना चाहिए—यावत्—आनन्द से रहो ऐसा कहकर
जय-जय शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

नगर में द्वादशवर्षीय प्रमोद घोषणा—

५७७. इसके बाद उस राजा भरत का सेनापति रत्न—यावत्—
पुरोहितरत्न तीन सौ साठ सूत—मागध, चारणमाट, अठारह
श्रेणियां प्रश्रेणियां तथा और भी बहुत से—यावत्—साधंवाह
आदि इसी प्रकार अभिपेक करते हैं, उन उत्तम कमलों पर रखे
हुए कलशों द्वारा अभिपेक करते हैं—यावत्—स्तुति करते हैं
और सोलह हजार देव भी इसी तरह अभिपेक करते हैं ।
किन्तु विशेषता यह है कि पद्म के समान सुकोमल कपड़े
द्वारा—यावत्—मुकुट पहनाते हैं । तदनन्तर ददर, चंदन आदि
सुगन्धित पदार्थों को गाँवों पर छिड़कते हैं और दिव्य ऐसे सुन्दर
पुष्पों की माला पहनाते हैं यहाँ और अधिक विशेष क्या कहें ?
गूँथकर वेष्टित की गई मालाओं द्वारा—यावत्—विभूषित
करते हैं ।

बड़े धूमधाम से किये गये राज्याभिषेक से अभिषिक्त हो
जाने के पश्चात् वह भरत राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता
है, बुलाकर उन्हें इस प्रकार का आदेश देता है—

हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हाथी के उत्तम रूग्ध पर
आरूढ़ होकर अर्थात् हाथी पर बैठकर शीघ्र ही विनीता राज-
धानी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्क, चच्चर—चौक—यावत्—
बड़े-बड़े मार्गों, गलियों आदि में जाकर बहुत ही ऊँची आवाज
में उद्घोषणा करते करते यह घोषित करो कि आज से बारह
वर्षीय प्रमोद उत्सव प्रारम्भ होता है, इससमय में विनीता
राजधानी एवं समस्त साम्राज्य उत्सुल्लस, उत्कर, उत्कृष्ट, अदेय,
अमित रहेगा एवं भट के प्रवेश और दण्ड कोदण्ड रहित रहेगा
—यावत्—पुरजनपद सहित इस बारह वर्षीय प्रमोद उत्सव
को मनाया जाये, यह घोषणा करके वापस आदेशानुसार कार्य
किये जाने की मुझे सूचना दो ।’

तब वे कौटुम्बिक पुरुष भरत राजा की इस बात को सुनकर
हर्षित, तुष्ट, एवं मन में आनन्दित एवं हर्षविभोर हुए और
हर्ष के कारण जिनके हृदय खिल उठे हैं ऐसे वे कौटुम्बिक पुरुष
विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके तत्काल
हाथी के रूग्ध पर बैठकर—यावत्—घोषणा करते हैं, घोषणा
करके आज्ञा वापस लौटाते हैं अर्थात् आज्ञानुसार कार्य पूर्ति की
सूचना देते हैं ।

पासायं पडिगमणं—

५७८. तए णं से भरहे राया महया महया रायामिसेएणं अनि-
सित्ते समाणे सोहासणाओ अट्ठुट्ठेइ, अट्ठमुट्टिता इत्थिरयणं
-जाव-णाडग-सहस्सेहि सद्धि संपरिवुडे अनिसेय-पेढाओ पुरत्थि-
मित्तेणं तिसोवाणपडिहवएणं पच्चोरुहइ पच्चोरुहिता अनिसेय-
मंडवाओ पडिणिसखमइ, पडिणिसखमित्ता जेणेव आनिसेयके हत्थि-
रयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अंजणगिरि-कूड-सण्णिमं
गयवइं-जाव-वुहइ ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अनिसेय-
पेढाओ उत्तरित्थेणं तिसोवाणपडिहवएणं पच्चोरुहंति ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे -जाव- सत्थवाह-
प्पच्चिइओ अभिसेयपेढाओ दाहिणित्थेणं तिसोवाणपडिहवएणं
पच्चोरुहंति ।

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेयकं हत्थिरयणं वुहइस्स
समाणस्स इमे अट्ठुट्ठमंगलगा पुरओ -जाव- संपट्टिया । जो वि
य अइगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चैव इहंपि कमो
सक्कारजडो णेयवो - जाव - कुबेरो च्च वेवराया केलासं सिहरि-
सिगभूयं ति ।

५७९. तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुप-
वित्तिता -जाव- भोयणमंडवाओ मुहासणवरगए अट्ठममत्तं पारेइ,
पारित्ता भोयणमंडवाओ पडिणिसखमइ, पडिणिसखमित्ता उप्पि
पासायवरगए कुट्टमाणेहि पुइंगमत्थएहि -जाव- बुज्जमाणे विहरइ ।

तए णं से भरहे राया दुवालम-संबच्छरियंति पमोयंति
णिक्खंति समाणंति जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छिता -जाव- मज्जणघराओ पडिणिसखमइ, पडिणिसखमित्ता
जेणेव दाहिरिया उवट्ठाणताला-जाव-सोहासणवरगए पुरस्वा-
निमुहे णिगीयइ, णिसोयित्ता सोधत वेवसहस्से सक्कारेइ सम्मा-
णेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिणिसखमइ पडिणिसखमित्ता बत्तीसं
रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्मानित्ता सेणा-
वइरयणे सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्मानित्ता-जाव-
पुरोहित्थेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्मानित्ता एव
तिणिय सट्ठे सुयारणए

प्रासाद प्रतिगमनं—

५७८. ससमारोह राज्याभिषेक सम्पन्न होने के पश्चात् वह भरत
राजा सिंहासन ने उठता है, उठकर श्री रत्न के साथ—यावत्
—हजारों नाटकों से परिवृत अभिषेक पीठ से पूर्व दिशावर्ती
त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा नीचे उतरता है, उतरकर अभिषेक
मण्डप से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ आभिषेक्य हस्ति-
रत्न है, वहाँ जाता है, वहाँ आकर अंजनगिरि के निघर समान
गजपति पर—यावत्—आरूढ़ हुआ ।

तत्पश्चात् उस भरत राजा के बत्तीस हजार राजा अभिषेक
पीठ के उत्तर दिशावर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा नीचे
उतरते हैं ।

तदनन्तर उस भरत राजा का सेनापति रत्न—यावत्—
सायंवाह प्रभृति अभिषेक पीठ के दक्षिण बाजु के त्रिसोपान
प्रतिरूपक द्वारा नीचे उतरते हैं ।

तत्पश्चात् जब वह भरत राजा आभिषेक्य हस्तिरत्न पर
आसीन हो गया तब ये आठ-आठ मंगल आगे—यावत्—प्रस्थान
करने लगे । सत्कार के पाठ के अविरक्त प्रवेग के समय या जो
वर्णन पहले किया गया है, वही पाठ और उसका अर्थ यहाँ भी
समझना चाहिए तथा कुबेर के वर्णन के अन्तिम अंत तक का
सभी सूत्र पाठ भी यहाँ जानना चाहिए—यावत्—सैनाज
पर्वत के निघर के ऊपर कुबेर के समान वह भरत राजा अपने
प्रासाद सुख का अनुभव करता है ।

५७९. तत्पश्चात् वह भरत राजा स्नानगृह में प्रवेग करता है,
स्नानगृह में प्रवेग करके—यावत्—भोजन मण्डप में सुधाभजन
पर बैठकर अष्टमभवत का पारणा करता है, पारणा करके
भोजन मण्डप से बाहर आता है, बाहर आकर उत्तम प्रासाद के
ऊपरी भाग में झोलक आदि वाद्य बज रहे हैं—यावत्—सर्व
भोगता हुआ रहता है ।

इसके बाद जब बारह वर्ष का प्रमोद प्रवेग पूर्ण हो चुका
तब वह भरत राजा जिन और मज्जणगृह है, वहाँ जाता है,
वहाँ आकर—यावत्—स्नानगृह से बाहर निकलता है, निकल-
कर जिन तरफ बाहरी उरस्वामन्त्राण है—यावत्—निदान
पर पूर्व से और मुख कर बैठता है, निदान पर बैठकर जोरह
हजार देवों का नस्कार करता है, सम्मान करता है । नस्कार
सम्मान करके ऊँचे विशई देता है, ऊँचे विशई देना ही
बत्तीस हजार राजाओं का नस्कार सम्मान करता है, राजाओं
का नस्कार सम्मान । उनके नस्कारित्थे रत्न का नस्कार करता है
सम्मान करता है, सेनापति रत्न का नस्कार सम्मान करता है—
यावत्—पुरोहित रत्न का नस्कार करता है, सम्मान करता है,
सत्कार सम्मान करके इति प्रासाद उवा जो प्रासाद इति—

अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सवकारेइ सम्माणेइ, सपकारित्ता सम्मा-
णित्ता अण्णे य बह्वे राईसरतलवर-जाव-सत्यवाहप्पमिइओ सवका-
रेइ सम्माणेइ, सवकारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ पडिविस-
जित्ता उप्पि पासायवरगए-जाव-विहरइ ।

रयणमहाणिहीणं उप्पत्तिठाणं—

५८०. भरहस्स रण्णो चक्करयणे १ वंडरयणे २ असिरयणे
३ छत्तरयणे ४ एए णं चत्तारि एण्णिवियरयणा आजह्वरसालाए
समुप्पण्णा,

१ चम्मरयणे २ मणिरयणे ३ कागणिरयणे णव य महा-
णिहओ एए णं सिरिघरंसि समुप्पण्णा,

१ सेणावइरयणे, २ गाहावइरयणे, ३ वड्ढइरयणे, ४ पुरो-
हियरयणे एए णं चत्तारि मणुवरयणा विणीयाए रायहाणीए
समुप्पण्णा ।

१ आसरयणे २ हत्थिरयणे एए णं दुवे पण्णिवियरयणा वेपड्ढ-
गिरिपायमूले सम्मुप्पण्णा ।

सुभद्राइत्थीरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पण्णे ।

भरहस्स सासनं—

५८१. तए णं से भरहे राया चउडण्हं रयणाणं, णवण्हं महा-
णिहीणं, सोलसण्हं देवसाहस्सीणं, वत्तीसाए रायसहस्साणं, वत्तीसाए
उडुक्कलाणिपासहस्साणं, वत्तीसाए जणवयक्कलाणिपासहस्साणं,
वत्तीसाए वत्तीसइवड्ढाणं णाडगसहस्साणं, तिण्हं सट्ठीणं सूयार-
सयाणं, अट्ठारसण्हं सेणिप्पसेणीणं, चउरासीईए आससयसहस्साणं,
चउरासीईए दंतिसयसहस्साणं, चउरासीईए रहसयसहस्साणं,
छण्णउईए मणुस्सकोडीण, बावत्तरोए पुरवरसहस्साणं,^१ वत्तीसाए
जणवयसहस्साणं, छण्णउईए गामकोडीणं^२ णवणउईए दोणमुह-
सहस्साणं, अडयालीसाए पट्टणसहस्साणं,^३ चउव्वीसाए कव्वड-
सहस्साणं, चउव्वीसाए मडंबसहस्साणं, वीसाए आगरसहस्साणं,
सोत्तसण्हं खेडसहस्साणं, चउदसण्हं संवाहसहस्साणं, छप्पणाए
अंतरोशणाणं, एणुगण्णाए कुरज्जाणं, त्रिणीयाए रायहाणीए चुल्ल-
हिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलरूपस्स भरहस्स वासस्स
अण्णेसि च बह्वे राईसर-तलवर-जाव-सत्यवाहप्पमिइणं आहेवव्वं

चारण माटों, अठारह श्रेणियों-प्रश्रोणियों का सरकार करता है,
सम्मान करता है, उनका सरकार सम्मान करने के अन्तर और
भी दूसरे बहुत से राजाओं, ईश्वरों, तलवरों—छाउवाजों—
यावत्—सार्थवाहों आदि का सरकार करता है, सम्मान करता
है और सरकार सम्मान करके सबको विदाई देता है, विदाई
देकर उत्तम प्रासाद के ऊपरी भाग में पट्टुवक्कर—यावत्—
आनन्द में विचरण करता है ।

रत्नों और महानिधियों का उत्पत्ति स्थान—

५८०. भरत राजा के १—चक्ररत्न, २—दग्धरत्न, ३—अति-
रत्न, ४—छत्ररत्न ये चार एकेन्द्रियरत्न जायुप्रताप्ता में सुदुर्लभ
हुए,

१—चर्मरत्न, २—माणिरत्न, ३—साहगोरत्न, और नौ
महानिधियां श्रीगृह में उत्पन्न हुईं ।

१—सेनापतिरत्न, २—गृहपतिरत्न, ३—धर्मकिरत्न, ४—
पुरोहितरत्न ये चार मनुष्य-रत्न विनीता राजधानी में पैदा हुए ।

१—अश्वरत्न, २—हस्तिरत्न, ये दो पंचेन्द्रियरत्न वैताइय
पर्वत के पादमूल अर्थात् वैताइय पर्वत की तलहटी में उदरत
हुए ।

सुभद्रा नामक स्त्री रत्न उतर दितावर्ती विद्यावर श्रेणा में
उत्पन्न हुआ ।

भरत का शासन—

५८१. तत्पश्चात् चौदह रत्नों, नौ महानिधियों, सोलह हजार
देवताओं, वत्तीस हजार राजाओं, वत्तीस हजार ऋतुओं में
कल्याण वाञ्छा के इच्छुक ऋतु कल्याणिकों, वत्तीस हजार जन-
पद कल्याणिकों, वत्तीस वत्तीस के समूह वाले वत्तीस हजार
नाटकों, तीन सौ साठ सूतकारों, अठारह श्रेणियों, प्रश्रणियों
अर्थात् अठारह वर्णों, चौरासी लाख घोड़ों, चौरासी लाख हाथियों,
चौरासी लाख रथों छियानवे करोड़ मनुष्यों, बहत्तर हजार
उत्तम पुरों, वत्तीस हजार जनपदों, छियानवे करोड़ गांवों,
नवासी हजार द्रोणमुखों, अड़तालीस हजार पट्टनों, चौबीस
हजार कर्वटों, चौबीस हजार मण्डवों, बीस हजार आकरों,
सोलह हजार खेड़ों, चौदह हजार सम्बाधों, छप्पन हजार
जानान्वर्ती स्थानों, उनाचास कुराज्यों—मील अथवा जंगली
प्रजा के राज्यों, विनीता राजधानी तथा चुल्ल-हिमवंत पर्वत से
लेकर समुद्र की मयादा तक के भरत क्षेत्र एवं और भी दूसरे
बहुत से राजाओं, ईश्वरों, तलवरों—यावत्—सार्थवाह आदि

१ सम० ७२, सु० ६ ।

३ सम० ४८, सु० १ ।

२ सम० ६६, सु० १ ।

पोरेवच्चं मट्ठित्तं सामित्तं महत्तरगतं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओह्यणिहएमु कंटएमु उट्ठियमलिएमु सच्चसत्तुमु णिज्जि-एमु भरहाहिवे णरिदे वरचंदणचच्चियंगे वरहार-रइय-वच्छे, वर-मउड-विसिठ्ठए, वर-वत्य-भूसण-घरे, सच्चोउय-सुरहि-कुमुमवर-मरुल-सोभिय-सिरे, वर-णाउग-णाउइज्ज-वरइत्थियगुम्मसद्धि संपरि-बुढे सट्ठोसहि-सच्चवरयण-सच्चसमिइसमगे संपुण्णमणोरहे हयामित्त-माणमहणे पुट्ठकय-सवप्पसाव-णिविठ्ठसंचियफले पुज्जइ माणुस्सए गृहे भरहे णामघेज्जे त्ति ।

का अधिपत्य, पुरपतिपता, भउत्पता, स्वाभियता, महत्तरता, मुखियापता और इन सब पर आज्ञा करने की सत्तापता, सेना-पतिपता करता करता, इन सबका पालन रक्षण करता हुआ तथा अपने मनस्त शत्रु-रूप कंटकों का उखाड़ केने के बाद अर्थात् शत्रुओं का नाश करने के बाद, जड़ मूल से उखेरे कर देने के बाद, मनस्त शत्रुओं को जीव देने के बाद भरत धर्म का अधिपांत राजा, जिसका मनस्त शरीर उत्तम धर्मन के लिए से चर्चित है, उत्तम हार आदि आभूषणों से जिसका यशस्वत शोभित हो रहा है, मस्त्रक पर उत्तम मुकुट धारण कर रहा है, शरीर पर उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण किए हुए है, जिसके तिर पर सभी श्रुतुओं के उत्तम पुण्यों की मालाएँ जामित हो रही हैं, उत्तम नाटकों और नाटिकाओं तथा उत्तम स्त्रियों के समूह से घिरा हुआ है, सभी ओपधियों, सभी प्रकार के रत्नों तथा अपनी समस्त सभाओं से सम्पन्न, जिसके सभी मनोरप पूर्ण हो चुके हैं, अपने विरोधियों के मान का नर्दन करन पाता है तथा अपने अभिमान का नाश कर दिया है, पूर्ण यत्न में किए हुए तप के प्रभाव के विशिष्ट प्रकार के सुधरूप फल का अभिन संचय किया है, ऐसा वह भरत नाम का राजा मानव सुधी का भोगोपभोग करते हुए विचरता है ।

भरहस आयंसघरंसि केवलनाणं—

५८२ तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ जेणेव मज्जणघरे तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव- सति वय विपबंसणे णरयई मज्जणघराओ पडिणिबलमई, पडिणिबलमित्ता जेणेव आयंसघरे जेणेव सोहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सोहासणवरगए पुरस्थाभिमुहे णिसोवइ, णिसोइत्ता आयंसघरंसि अत्ताणं देहमाणे देहमाणे चिट्ठइ ।

भरत को आदर्श गृह में केवलज्ञान—

५८२. तदनन्तर वह भरत राजा दूसरे कोई एक दिन त्रिप और मज्जनपर है, उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर—वायप्—वन्द्या के समान त्रिप दर्शन वाला ऐसा बहुतरात्रि मज्जनपर से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर वहाँ आदर्शगृह रचना जारीराना द्वारा निर्मित—आरिवा भवन है, उसमें वहाँ निहासन है, वहाँ जाता है, उस तरफ जाकर पूर्ण दिवा की और मुख करके जयम निहासन पर बैठता है, बैठकर आरिवा भवन में जयम आरिवा निरखता हुआ रहता है अर्थात् अपने शरीर की काय, बीजा, तापण्य आदि की निहारता है ।

तए णं तस्स भरहसस रप्पो मुनेणं परिणामेणं पत्तयेहि अउहायसामेहि वेमाहि विमुग्गमाणीहि विमुग्गमाणीहि ईहाणेह-मग्गण-गपेसण करेमाणसस तयावरणिज्जाणं कम्ममाणं खएण अम्मन-रयविकिरणकर अमुध्वकरणं पयिट्ठरस अण्णे अण्णरे निध्याघार निरावरणे कसिणं पडिबुण्णे केयलवर-नाण-इंनगे समुत्तण्णे ।

तत्परवान् अपने आसको देखते देखते मूम मायावक गीर-चामो, प्रसन्न व्यववतायो के कारण दिव्य फल न मुट्ठ होना आ रही वेवजाओं के तत्परकर देहा—अपार—मायता—उत्तमवर्द्धके गवेयना—ज्ञान विरोधण करके हुए ज्ञानरुमी के आउठ कर कर्मी का नाश होने में कर्मवरी रव—नेन की दूर देखे जात वरुवकरत नामक भूमिका में प्रविष्ट उन भरत राजा का अन्तः, अण्ण, मरीट्ठुट, निरावाय, निरावरण, जयम, सोत्तुण्ण जयम केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्तम हुआ ।

भरहस अट्ठावयगमण तत्य णिव्वाण थ—

५८३. तए णं से भरहे केवली तपवेवाअरणाखंहार ओमुवइ,

भरत का अट्ठावद गमन और वही विरोध—

५८३. देखते देखते अर्द्धत इत्यत्र होत वरुवकरत वह भरत अपने शरीर पर अट्ठावद विरोध हुआ अर्थात् अट्ठावद वरुवकरत का नाश

ओमुइत्ता सयमेव पंचमुद्दिठ्यं लोयं करेइ, करेत्ता आयंसघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अंतेउरमज्झंमज्झेणं णिगगच्छइ, णिगगच्छित्ता दसाहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे विणीयं राय-हाणिं मज्झंमज्झेणं णिगगच्छइ, णिगगच्छित्ता मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरइ, विहरित्ता जेणेव अट्ठावए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्ठावयं पव्वयं सणियं सणियं डुरुहइ, डुरुहित्ता मेघघणसणिगासं देवसणिवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडि-लेहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्त-पाण-पडियाइक्खिए पाओवगए फालं अणवकंखमाणे अणवकंखमाणे विहरइ ।

डालता है, उन्हें उतार कर स्वयमेव पंचमुष्टि केशलोच करता है, लोच करके आदर्शगृह से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर अन्तःपुर के बीचोंबीच से होकर निकलता है और निकलकर दस हजार राजाओं के साथ विनीता राजधानी के ठीक बीचोंबीच में होता हुआ निकलता है और निकलकर मध्य देश में—कोशल देश में सुखपूर्वक विहार करता है, विचरण करने के बाद जिस तरफ अष्टापद पर्वत है उस तरफ जाता है, वहाँ जाकर शनैः-शनैः अर्थात् यतनापूर्वक अष्टापद पर्वत पर चढ़ता है, अष्टापद पर्वत पर चढ़कर उस पर्वत के ऊपर मेघ जैसे श्याम वर्ण के देवों के वास स्थान जैसे एक शिलापट्ट की प्रतिलेखना करता है अर्थात् उसका भली प्रकार से देखता है कि इसमें कोई सूक्ष्म जीव-जन्तु तो नहीं है इस प्रकार से निरीक्षण-परीक्षण करने के बाद संल्लेखना में तत्पर होकर, आहार-पानी का सर्वथा त्याग कर पादोपगमन आसन में स्थिर होकर, सभी प्रकार की शंका आकांक्षाओं का निःशेष रूप से त्याग कर विचरण करता है ।

५८४. तए णं से भरहे केवली सत्तत्तरि पुव्वसयसहस्साइं कुमार-वासमज्जे वसित्ता^१, एगं वाससहस्सं मंडलियरायमज्जे वसित्ता, छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्जे वसित्ता^२, तेसीइ-पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्जे वसित्ता^३, एगं पुव्वसयसहस्सं देसूणगं केवलियपरियायं पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुणं सामणपरियायं पाउणित्ता चउरासीइपुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पाउणित्ता^४ मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णवखत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेयणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्ण-जाइ-जयामरण-उंघणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्युडे अंतगडे सव्व-युक्कप्पहीणे ।

५८४. तत्पश्चात् सतहत्तर लाख पूर्व वर्ष तक कुमारावस्था में रहकर, उसके बाद एक हजार वर्ष तक मांडलिक राज्य पद का भोगकर, एक हजार वर्ष न्यून छह लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद—चक्रवर्ती पद का भोगकर इस प्रकार कुल मिलाकर तेरासी लाख पूर्व वर्ष तक गृहस्थावास में रहकर और कुछ कम एक लाख पूर्व वर्ष तक केवली पर्याय का भोग कर और उतनी ही श्रामण्य पर्याय का भोगकर और इस प्रकार चौरासी लाख पूर्व वर्ष का अपना पूर्ण आयुष्य भोगकर और एक मास का निर्जल अनशन व्रत पालकर श्रवण नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होते ही वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के क्षीण—क्षय होते ही भरत केवली कालधर्म को प्राप्त हुए, इस संसार से व्यतिक्रमण कर चुके, सम्यक् प्रकार से ऊर्ध्वगमन हुआ, जन्म—जरा—मरण के बन्धन से छिन्न-भिन्न हो गये, टूट गये, छेदन हो चुका, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, समस्त सांसारिक दुःखों का अन्त करने वाले हुए और इस प्रकार वे सच तरह के दुःखों का नाश करने वाले हुए अथवा उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये ।

१ सम० ७७, सु० १ ।

२ भरहे णं राया चाउरंतचक्रवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं महाराया वुत्था ।

—ठाण० अ० ६, सु० ५१६ ।

भरहे णं राया चाउरंतचक्रवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं रायमज्जे वसित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—सम० सु० १२६ ।

३ सम० ८३ सु० ४ ।

४ (क) सम० ८४, सु० २ । (ख) चक्कीणं सव्वाउ—

गाहाओ—उउरासीती वावत्तरी य, पुव्वाण सयसहस्साइं । पंच य तिन्य एगं च, सयसहस्सा उ वासाणं ॥१॥

पचागउविसहस्सा चउरासीती य अट्ठमे सट्ठी । तीसा य दस य तिन्य य, अपच्छिमे सत्त वाससया ॥२॥

—आव० नि० गा० ३६५, ३६६ ।

इह भरहचक्रवट्टिचरियं समत्तं ।

—जंबु० व० ३, सु० ४१-७०

भरहस्त णं रण्णो चाउरंतचक्रवट्टिस्त अट्टपुरिसजुगाइं अणु-
बद्धं सिद्धाइं-जाय-सव्ववुवखप्पहीणाइं तं जहा—

१ आइच्चजसे, २ महाजसे, ३ अइवले, ४ महावले, ५ तेय-
थोरिए, ६ फित्तियरिए, ७ वंडवीरिए, ८ जलवीरिए ।

—ठाणं ज० ८, सु० ६१६

॥ अथ भरहचक्रवट्टिचरियं सम्मतं ॥

इत्तं तरह भरत चक्रवर्ती का चरित्र समाप्त हुआ ।

सावंभोम चक्रवर्ती भरत राजा के पन्चात् जाठ पुत्र प्रधान
पुरुष अनुक्रम से व्यवधानरहित सिद्ध हुए—यावत्—अथं गुण
रहित हुए—यथा—

१—आदिसयय, २—महायय, ३—अतिपय, ४—
महावल, ५—तेजोवीर्यं, ६—कातंपीर्यं, ७—रुद्धवीर्यं, ८—
जलवीर्यं ।

॥ भरत चक्रवर्ती चरित्र समाप्त ॥



१०. चक्रवट्टिसामणं

अड्डाडुज्जेसु दीवेषु चक्रवट्टिविजया—

५८५. जंबुद्वीपे णं दीवेषु चउत्तीसं चक्रवट्टिविजया पण्णत्ता, तं
जहा—

यत्तीसं महाविदेहे, वो भरहेरयए ।

—सम० स० ३४, सु० २

५८६. जंबुद्वीपे दीवेषु मंडरस्त पद्ययस्त पुरत्विये णं सीताए महा-
णदीए उत्तरे णं अट्ठं चक्रवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

षण्णे, सुकण्णे, महाकण्णे, पच्छिमायतो, आंयत्ते, मंगलायत्ते,
पुष्पायते, पुष्पायत्तो ।

जंबुद्वीपे दीवेषु मंडरस्त पद्ययस्त पुरत्विये णं सीताए महा-
णदीए उत्तरे णं अट्ठं चक्रवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

षण्णे, सुकण्णे, महाकण्णे, पच्छिमायतो, रग्गे, रग्गये, रग्ग-
विजये, मंगलायतो ।

जंबुद्वीपे दीवेषु मंडरस्त पद्ययस्त पुरत्विये णं सीताए महा-
णदीए उत्तरे णं अट्ठं चक्रवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

षण्णे, सुकण्णे, महाकण्णे, पच्छिमायतो, मउ, अतिवे, कुमुद,
सीतायत्तो ।

जंबुद्वीपे दीवेषु मंडरस्त पद्ययस्त पुरत्विये णं सीताए महा-
णदीए उत्तरे णं अट्ठं चक्रवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—

षण्णे, सुकण्णे, महाकण्णे, पच्छिमायतो, मउ, सुकण्णे, मंगलायतो,
सीतायत्तो ।

१०. चक्रवर्ती सामान्य

ढाई द्वीप में चक्रवर्ती विजय—

५८५. जंबुद्वीप में चौतीस चक्रवर्ती विजय है, यथा—

महाविदेह में यत्तीस, भरत में एक, एरयत्त में एक ।
इस प्रकार कुल मिलाकर चौतीस हुए ।

५८६. जंबुद्वीपवर्ती मंडरस्त के पूर्व में सीता महाणदी के उत्तरी
किनारे पर जाठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—कण्ठ, २—सुकण्ठ, ३—महाकण्ठ, ४—पच्छिमायतो,
५—आयत्ते, ६—मंगलायत्ते, ७—पुष्पायते, ८—पुष्पायत्तो ।

जंबुद्वीपवर्ती मंडरस्त के पूर्व में सीता महाणदी के उत्तरी
में जाठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—यत्तीस, २—सुकण्ठ, ३—महाकण्ठ, ४—पच्छिमायतो,
५—रग्ग, ६—रग्गये, ७—रग्गविजये, ८—मंगलायत्तो ।

जंबुद्वीपवर्ती मंडरस्त के पूर्व में सीता महाणदी के उत्तरी
किनारे पर जाठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—रग्ग, २—सुकण्ठ, ३—महाकण्ठ, ४—पच्छिमायतो,
५—मउ, ६—अतिवे, ७—कुमुद, ८—सीतायत्तो ।

जंबुद्वीपवर्ती मंडरस्त के पूर्व में सीता महाणदी के उत्तरी
किनारे पर जाठ चक्रवर्ती विजय है, यथा—

१—रग्ग, २—सुकण्ठ, ३—महाकण्ठ, ४—पच्छिमायतो, ५—
मउ, ६—अतिवे, ७—कुमुद, ८—सीतायत्तो ।

५७८. जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महा-
णदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पणत्ताओ, तं जहा—

खेमा, खेमपुरी, रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मंजुसा, ओसधी,
पुण्डरीकिणी ।

जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए
दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पणत्ताओ, तं जहा—

सुसीसा, कुण्डला, अपराजिया, पभंकरा, अंकावई, पम्हावई,
सुभा, रयणसंचया ।

जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए
महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पणत्ताओ, तं जहा—

आसपुरा, सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अरया,
असोया, वीतसोगा ।

जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए
महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पणत्ताओ, तं जहा—

विजया, वैजयंति, जयंती, अपराजिया, चक्रपुरा, खग्गपुरा,
अवज्झा, अउज्झा ।

—ठाणं अ० ८, सु० ६३७

—जंबु० व० ४, सु० ६३, ६४, ६५, ६६

—जंबु० व० ४, सु० १०२

५८८. एवं धायइपंडदीवे वि ।

५८९. एवं पुक्खरवरदीवड्ढे वि ।

—ठाणं अ० ८, सु० ६४१

५९०. धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठि चक्रवट्ठिविजया, अडसट्ठि
रायहाणीओ पणत्ताओ ।

—सम० स० ६८, सु० १

पुक्खरवरदीवड्ढे अडसट्ठि चक्रवट्ठिविजया, अडसट्ठि रायहा-
णीओ पणत्ताओ ।

—सम० स० ६८, सु० ४

जंबुद्वीवे भरहवासे वारसण्हं चक्रवट्ठिणं तप्पिउ-माउ
इत्थिरयणाणं च नामादि—

५९१. जंबुद्वीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए वारस
चक्रवट्ठिपियरो होत्था तं जहा—

उसमे सुमित्तविजए समुद्धविजए य अस्ससेणे य ।

विस्ससेणे य सूरे, सुदंसणे कत्तवीरिए य ॥१॥

पउमुत्तरे महाहरी, विजए राया तहेव य ।

वम्हे वारसमे वुत्ते, पिउनामा चक्रवट्ठिणं ॥२॥

जंबुद्वीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए वारस
चक्रवट्ठिमायरो होत्था, तं जहा—

१ सुमंगला २ जसवती, ३ भद्रा ४ सहदेवी ५ अइर ६ सिरि ७ देवी ।

८ तारा ९ जाला १० मेरा, ११ वप्पा १२ चुलणी अपच्छिमा ॥१॥

५८७. जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के उत्तर
में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—क्षेमा, २—क्षेमपुरी, ३—रिट्ठा, ४—रिट्ठपुरी, ५—
खड्गी, ६—मंजूया, ७—ओपधि, ८—पुण्डरीकिणी ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दक्षिण
में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—सुसीसा, २—कुण्डला, ३—अपराजिता, ४—प्रभंकरा,
५—अंकावती, ६—पद्मावती, ७—सुभा, ८—रत्नसंचया ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के
दक्षिण में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—अश्वपुरा, २—सिहपुरा, ३—महापुरा, ४—विजय-
पुरा, ५—अपराजिता, ६—अरजा, ७—अशोका, ८—वीत-
शोका ।

जम्बूद्वीपवर्ती मेरुपर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के
उत्तर में आठ राजधानियाँ हैं, यथा—

१—विजया, २—वैजयन्ती, २—जयंती, २—अपराजिता,
५—चक्रपुरा, ६—खड्गपुरा, ७—अवध्या, ८—अयोध्या ।

५८८. इसी प्रकार घातकीखण्ड द्वीप में भी ।

५८९. इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध में भी ।

५९०. घातकीखण्ड नामक द्वीप में अडसठ चक्रवर्ती विजय और
अडसठ राजधानियाँ हैं ।

पुष्करवर द्वीपार्ध में अडसठ चक्रवर्ती विजय, अडसठ राज-
धानियाँ हैं ।

जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के बारह चक्रवर्तियों और उनके
माता-पिता-स्त्रीजनों के नामादि—

५९१. जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में बारह चक्र-
वर्ती-पिता थे, यथा—

१—ऋषभ, २—सुमित्रविजय, ३—समुद्रविजय, ४—
अश्वसेन, ५—विश्वसेन, ६—सूर, ७—सुदर्शन, ८—कृतवीर्य,
९—पद्मोत्तर, १०—महाहरि, ११—विजय, १२—ब्रह्म ।

जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्ती-
मातायें हुईं, यथा—

१—सुमंगला, २—यशोवती, ३—भद्रा, ४—सहदेवी,
५—अचिरा, ६—श्री, ७—देवी, ८—तारा, ९—ज्वाला,
१०—मेरा, ११—वप्रा, १२—चुलनी ।

५६२. जंबुद्वीपे णं दीपे भरहेवासे इमापे अंतपिणीए चारस चक्रवट्टी हांथा तं, जहा—

भरहो सगरो मघवं, सणकुमारो य रायमवूहलो ।
संवी कुन्धु य अरो, ह्यट सुभूमो य कोरवो ॥१॥
नवमो य महापउमो, हरिसेणो चैव रायसवूहलो ।
जयनामो य नरवई, चारसमो वंभदत्तो य ॥२॥

५६३. एएत्ति णं चारसहं चक्रवट्टीणं चारस इत्थिरयणा हांथा तं जहा—

पद्मा होट सुनदा, मद्द सुणंदा जया य विजया य ।
कहसिरी, मूरभिरी पउमसिरी वसुधरा देवी ॥१॥
लच्छिमई कुषमई, इत्थिरयणाण नामाहं ।

—सम० सु० १५८

जंबुद्वीपे भरहे वासे आगमेस्तुस्तपिणीए चक्रवट्टि-
नामाहं—

५६४. जंबुद्वीपे णं दीपे भरहेवासे आगमेस्ताए उस्तपिणीए चारस चक्रवट्टी भविस्संति, तं जहा—

संगहणीगाहा—
भरहे य बोहवते, पूटयंते य सुद्धवंते य ।
तिरिउत्ते तिरिभूई, तिरिसोमे य तत्तमे ॥१॥
पउमे य महापउमे, विमलवाहणे विपुलवाहणे चैव ।
चरिठ्ठे चारसमे पुत्ते, आगमेस्ता भरहाहिवा ॥२॥

५६५. एएत्ति णं चारसहं चक्रवट्टीणं चारस पिपरो भविस्संति, चारस मापरो भविस्संति, चारस इत्थोरयणा भविस्संति ।

—सम० सु० १५८

जंबुद्वीपे आगमेस्तुस्तपिणीए एरवए वासे चक्रवट्टिआईणं संगहा—

५६६. जंबुद्वीपे एरवरे वासे आगमेस्ताए उस्तपिणीए—
आगमे चक्रवट्टी भविस्संति, चारस चक्रवट्टियिपरो भविस्संति, चारस मापरो भविस्संति, चारस इत्थोरयणा भविस्संति ।

—सम० सु० १५८

जंबुद्वीपे चक्रवट्टी आई—

५६७. जंबुद्वीपे च आसे ! वेवहवा अउपणए वा उरकोसए वा चक्रवट्टी सामण्येण पण्णत्ता ।

दीपमा ! अउपणए उरकोसए उरकोसए वा चक्रवट्टी सामण्येण पण्णत्ता इति । अउपणए वा उरकोसए वा चक्रवट्टी सामण्येण पण्णत्ता इति ।

—सुद्ध० प० ३, सु० १३१

५६२. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवनचितो म चारह चक्रवर्ती हुए, यथा—

१—भरत, २—सगर, ३—नपका, ४—ननरकुमार, ५—सान्ति, ६—कुन्धु, ७—अर. ८—सुभूम, ९—महापउम, १०—हरिसेण, ११—अय, १२—वसुधरा ।

५६३. इन चारह चक्रवर्तियों के चारह स्त्रीरत्न थे, यथा—

१—सुमदा, २—मदा, ३—सुनदा, ४—अदा, ५—विजया, ६—कृष्णधी, ७—सूरधी, ८—पद्मधी, ९—वसुधरा । १०—देवी, ११—लक्ष्मीनगी, १२—कुषमता ।

जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगमा उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती नामादि—

५६४. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगमा उत्सर्पिणी में चारह चक्रवर्ती होंगे, यथा—

१—भरत, २—दीपदन्ठ, ३—सुद्धवन्त, ४—सुद्धवन्त, ५—श्रीपुत्र, ६—श्रीभूति, ७—श्रीमोम, ८—पद्म, ९—महापद्म, १०—विमलवाहन, ११—विपुलवाहन, १२—गिष्ठ ।
ये आगमा भरताधिप दे ।

५६५. इन चारह चक्रवर्तियों के चारह विद्या शीमे, चारह भाऊ, चारह स्त्रीगी, चारह स्त्रीरत्न होंगे ।

जम्बूद्वीप के एरवत वर्ष में आगमा उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती आदि की संख्या—

५६६. जम्बूद्वीप के एरवत वर्ष में आगमा उत्सर्पिणी में चारह चक्रवर्ती होंगे, चार चक्रवर्ती विद्या होंगे, चार चक्रवर्ती भाऊ होंगे, चार स्त्रीगी होंगे ।

एरवत वर्ष में आगमा उत्सर्पिणी—

५६७. जम्बूद्वीप के एरवत वर्ष में आगमा उत्सर्पिणी में चारह चक्रवर्ती होंगे, चार चक्रवर्ती विद्या होंगे, चार चक्रवर्ती भाऊ होंगे, चार स्त्रीगी होंगे ।

दीपमा ! अउपणए उरकोसए उरकोसए वा चक्रवट्टी सामण्येण पण्णत्ता इति । अउपणए वा उरकोसए वा चक्रवट्टी सामण्येण पण्णत्ता इति ।

तिण्हं तित्थयराणं चक्कवट्टित्तं—

५६८. तथो तित्थयरा चक्कवट्टी होत्या तं जहा—संती, कुन्यू, अरो ।
—ठाणं अ० ३, उ० ४, सु० २३१

सुभूम-वंभदत्ताणं नरयगमणं—

५६९. दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा—

सुभूमे चेव, वंभदत्ते चेव ।^१

—ठाणं, अ० २, उ० ४, सु० ११२

६००. जंबुद्वीवे दीवे भरहेवासे दसरायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

गाहा—चंपा महुरा वाराणसी य, सावत्थि तह य साएयं ।
हत्थिणउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंवि रायगिहं ।

६०१. एयासु णं दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुण्डा भवेत्ता-जाव-पव्वइया, तं जहा—

१ भरहो, २ सागरो, ३ मघधं, ४ सणंकुमारो, ५ संती, ६ कुन्यू, ७ अरे, ८ महापउमे, ९ हरिसेणे, १० जयणामे ।^२

—ठाणं अ० १०, सु० ७१८

सागरो चक्कवट्टी—

६०२. एवं सागरो वि राया चाउरंतचक्कवट्टी एकसत्तरि पुव्व-जाव-पव्वइए त्ति ॥
—सम० सु० ७१

हरिसेणे चक्कवट्टी—

६०३. हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एगुणउइं वाससयाइं महाराया होत्या ।
—सम० सु० ८९

हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वास-सयाइं अगारमज्जे वसित्ता मुण्डे भवित्ता णं-जाव-पव्वइए ॥१७५॥

—सम० सु० ९७

भरहाईणं सरीरुत्सेहो—

६०४. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंचधणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्या,^३ बाहुवली णं अणगारे एवं चेव । वंभी णं अज्जा एवं चेव, एवं सुन्दरी वि ।

—ठाणं अ० ५, उ० २, सु ४३५

तीन तीर्थंकरों का चक्रवर्तीत्व—

५६८. तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती थे, यथा—
शान्तिनाथ, कुन्धुनाथ और अरनाथ ।

सुभूम, ब्रह्मादत्त का नरक गमन—

५६९. काम-भोगों का त्याग नहीं करने वाले दो चक्रवर्ती मरणकाल में मरकर नीचे जातें नरक—पृथी के अत्रिष्ठान नामक नरकावास में नरक रूप से उद्यन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं, यथा—सुभूम और ब्रह्मादत्त ।

६००. जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दस राजधानियाँ कही हैं, यथा—

१—चम्पा, २—मयुर, ३—वाराणसी, ४—प्रावर्ती,
५—साकेत, ६—हस्तिनापुर, ७—कांतिपुर, ८—मिथिला,
९—कोशाम्बि, १०—राजगृह ।

६०१. इन दस राजधानियों में दस राजा मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित हुए, यथा—

१—भरत, २—सगर, ३—मघध, ४—सनत्कुमार, ५—शान्तिनाथ, ६—कुन्धुनाथ, ७—अरनाथ, ८—महापद्म, ९—हरिषेण, १०—जयनाथ ।

सागर चक्रवर्ती—

६०२. इसी प्रकार चातुरंत चक्रवर्ती राजा सागर भी इच्छतर लाख पूर्व वर्ष—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

हरिषेण चक्रवर्ती—

६०३. हरिषेण चक्रवर्ती नवासी सौ वर्ष महाराजा रहे ।

हरिषेण चक्रवर्ती कुछ कम सत्तानवे सौ वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित हुए—यावत्—प्रव्रजित हुए ।

भरतादि का शरीरोत्सेध—

६०४. चातुरंत चक्रवर्ती राजा भरत पांच सौ धनुष ऊँचे थे, बाहुवली अनगार भी इतने ही ऊँचे थे, इसी प्रकार ब्राह्मी और सुन्दरी भी इतनी ही ऊँची थीं ।

१ वंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं सत्त य वाससयाइं परमाउं पालत्ता कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पटिठ्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववण्णे ।
—ठाणं, अ० ७, सु० ५६२

२ उत्त० अ० १८, गा० ३८-४१ ।

३ क. चक्कीणं उत्सेहो :

गाहाओ—पंच सत्त अद्धपंचम, वायाला चेव अद्धधणुयं च । चत्ता दिवड्डधणुयं च, चउत्थे पंचमे चत्ता ॥१॥

पण्तीसा तीसा पुण, अट्ठावीसा य वीस धणुउगाणि । पन्नरस बारसेव य, अपच्छिमा सत्त य धणुणि ॥२॥

ख. सम० सु० ५००, सु० ४ ।

सगरे णं राया चाउरंतचक्रवर्टिं अट्टवंचमाइं धणुमयाइं उट्टं उच्चत्तणं होत्था ।
—सम० ४१०, सु० २

चक्रवर्तिस्स हारे—

६०५. सव्यस्स वि य णं रण्णो चाउरंतचक्रवर्टिस्स चउमट्ठि-
त्तट्ठीए महग्घे सुत्तामणिमए हारे पणत्तो ।

—सम० स० ६४, सु० ६

चक्रवर्टिस्स ग्राम-पुर-पट्टणसंखा—

६०६. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्रवर्टिस्स छण्णउइं छण्णउइं
ग्रामयोओओ होत्था ।

—सम० स० ६६, सु० १

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्रवर्टिस्स वावत्तिरं पुरवर-
साहसोओो पणत्ताओो ॥

—सम० स० ७२, सु० ६

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्रवर्टिस्स अउयात्तोसं पट्टण-
सहरसा पणत्ता ।

—सम० स० ४८, सु० १

निहिरयणा—

६०७. अंबुद्धीये दीये केवइया निहिरयणा सव्यगोणं पणत्ता ?

गोयमा ! तिण्णि छुत्तरा निहिरयणत्तया सव्यगोणं पणत्ता ।

अंबुद्धीये दीये केवइया निहिरयणत्तया परिभोगत्ताए हव्यमा-
गच्छति ?

गोयमा ! जहणपए छत्तोसं, उवकोसपए वोण्णि सत्तरा
निहिरयणत्तया परिभोगत्ताए हव्यमागच्छति ।

—जम्मू० थ० ७, सु० १७३

६०८. एगमेगे णं महाणिहो अट्टवक्कपालात्तिट्ठाने अट्टट्ठ-
ओयणाइं उट्टं उच्चत्तणं पणत्ते ।

—ठाणं अ० ८, सु० ६०२

एगमेगे णं महाणिहो णउ-णअ ओयणाइं पिक्खमेणं पणत्ते ।

एगमेगरत्त णं रण्णो चाउरंतचक्रवर्टिस्स एव महाणिहो
पणत्ता ।

—ठाणं अ० ६, सु० १७३

अचक्रवर्टिस्स अउत्त-रयणाइं—

६०९. एगमेगरत्त णं रण्णो चाउरंतअचक्रवर्टिस्स सत्त एविदिम-
यत्तया पणत्ता, त अहा—

- १ अचक्रवर्त्तये, २ अउत्तरयणे, ३ अग्रपरयणे, ४ अउत्तरयणे,
- ५ अतिरयणे, ६ अणित्थये, ७ अउत्तरयणे ।

६१०. एवमेवत्त णं रण्णो चाउरंतअचक्रवर्टिस्स सत्त एविदिम-
यत्तया पणत्ता, त अहा—

- १ अचक्रवर्त्तये, २ अउत्तरयणे, ३ अउत्तरयणे,
- ४ अग्रपरयणे, ५ अतिरयणे, ६ अग्रपरयणे, ७ अतिरयणे ।

—सम० स० १३, सु० ७

सागर चक्रवर्ती नाइं चार वो धनुज ऊंवे णे ।

चक्रवर्ती का द्वार—

६०५. नमी चक्रवर्तियो का मुक्ता-मनिमय द्वार महा मुक्ता-
एवं चौसठ लकियो वाचा होमा है ।

चक्रवर्ती के ग्राम-पुर-पट्टण संख्या—

६०६. प्रत्येक चक्रवर्ती के छानवे छानवे करीब ग्राम है ।

प्रत्येक चक्रवर्ती के बहतर हजार श्रेष्ठ पुर है ।

प्रत्येक चक्रवर्ती के अड़धानीस हजार पट्टण है ।

निधिरत्त—

६०७. जम्बूद्वीप में सब कितने निधिरत्त है ?

गौतम ! सब तीन नौ छह निधिरत्त है ।

जम्बूद्वीप में कितने नौ निधिरत्त परिभोग न जां है ?

गौतम ! अपन्य न छत्तीस और उट्टट्ट न दो नौ सत्तर
निधिरत्त परिभोग में जां है ।

६०८. प्रत्येक महाविधि जाठ चक्र पर प्रतिष्ठा है, जाठ पर्यन्त
ऊंवा है ।

प्रत्येक महाविधि नौ-नौ जाठ प्रतिष्ठा जाती है, जब न
नौ जाठ जोड़ी है ।

प्रत्येक चापुरत चक्रवर्ती सत्तर कमी महाविधियां हांती है ।

चक्रवर्ती के नौदह रत्त—

६०९. प्रत्येक चापुरत चक्रवर्ती राया के जाठ एक-दस जाठ हांती
है, यथा—

- १—अचक्रवर्त्तये, २—अउत्तरयणे, ३—अग्रपरयणे, ४—अउत्तरयणे,
- ५—अतिरयणे, ६—अणित्थये, ७—अउत्तरयणे ।

६१०. एवमेवत्त चापुरत चक्रवर्ती राया के जाठ एक-दस जाठ हांती
है, यथा—

- १—अचक्रवर्त्तये, २—अउत्तरयणे, ३—अउत्तरयणे,
- ४—अग्रपरयणे, ५—अतिरयणे, ६—अग्रपरयणे, ७—अतिरयणे ।

—सम० स० १३, सु० ७

१—सम० स० ७, सु० ६६० ।

काकिणिरयणागिर्—

६११. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिणए काकिणिरयणे छत्तले बुवालसंसिए अट्ठकण्णिणए अधिकरणिसंठिते पण्णत्ते ।
—ठाणं अ० ८, सु० ६३३

जंबुद्वीवे एगिदियरयणाणं संख्या-परिभोगनिरूपणं—

६१२. जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे केवइआ एगिदियरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दसुत्तरा एगिदियरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे केवइया एगिदियरयणसया, परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपए अट्ठावीसं, उक्कोसेणं दोण्णिण दसुत्तरा एगिदियरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

जंबुद्वीवे पंचिदियरयणाणं संख्या-परिभोगनिरूपणं—

६१३. जंबुद्वीवे दीवे केवइया पंचिदियरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! दो दसुत्तरा पंचिदियरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

जंबुद्वीवे दीवे जहण्णपदे वा उक्कोसपदे वा केवइया पंचिदियरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जहण्णपदे अट्ठावीसं, उक्कोसपए दोण्णिण दसुत्तरा पंचिदियरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

—जंबु० व० ७, सु० १७३

॥ अथ चक्कवट्टि सामण्णं सम्मत्तं ॥

काकिणी रत्नाकृति—

६११. प्रत्येक चातुरंत चक्रवर्ती राजा के काकिणी रत्न आठ सुवर्ण प्रमाण, छह तले, बारह अस्त्रि (कोना) और आठ कर्णिकाओं वाले होते हैं । काकिणी रत्न का संस्थान एरण के समान होता है ।

जम्बूद्वीप में एकेन्द्रिय रत्नों की संख्या-परिभोग निरूपण—

६१२. हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में सब कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न हैं ?

गौतम ! सब मिलाकर दो सौ दस एकेन्द्रिय रत्न हैं ।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न परिभोग में आते हैं ?

गौतम ! जघन्यतः अट्ठाईस और उत्कृष्टतः दो सौ दस एकेन्द्रिय रत्न उपभोग में आते हैं ।

जम्बूद्वीप में पंचेन्द्रिय रत्नों की संख्या-परिभोग निरूपण—

६१३. जम्बूद्वीप में कितने सौ पंचेन्द्रिय रत्न हैं ?

गौतम ! सब दो सौ दस पंचेन्द्रिय रत्न हैं ।

जम्बूद्वीप में जघन्य से और उत्कृष्ट से कितने सौ पंचेन्द्रिय रत्न परिभोग में आते हैं ?

गौतम ! जघन्य से अट्ठाईस और उत्कृष्ट से दो सौ दस पंचेन्द्रिय रत्न मनुष्यों के परिभोग में आते हैं ।

॥ चक्रवर्ती सामान्य समाप्त ॥

□

□

११. बलदेव-वासुदेवसामण्णं**बलदेव-वासुदेवाणं पिउ-माउयःइ—**

६१४. जंबुद्वीवे णं सीमे भरहे वामे इमीसे ओसप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेवपितरो होव्वा, तं जहा—

माहा—प्रजापति य धंभो सोमो इदो सिवो महसियो य ।

अग्निशिहो य इतरहो नयमो मणिशो य वसुदेवो ॥१॥

६१५. जंबुद्वीवे णं सीमे भरहे वामे इमीसे ओसप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेवपितरो होव्वा, तं जहा—

११. बलदेव-वासुदेव सामान्य**बलदेव-वासुदेव के पिता-माता—**

६१४. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में नी बलदेव वासुदेव-पिता हुए, यथा—

१—प्रजापति, १—ब्रह्म, ३—रुद्र, ४—सोम, ५—शिव,

६—महाशिव, ७—अग्निशिख, ८—दशरथ, ९—वसुदेव ।

६१५. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में नी वासुदेव-मातायें हुई, यथा—

मत्स्यगवर्ध-ललिय-विवकम-विलसियगई सारय-नवथणियमधुर-
गंभीर-कौचनिघोस-दुन्दुभिसरा कडिसुत्तगनील-पीय-कोसेज्ज-
वाससा पवरदित्त-तेया नरसीहा नरवई नरिदा नरवसभा मरुय-
वसभकप्पा अब्भहिय राय-तेय-लच्छीए दिप्पमाणा नीलग-पीतग-
वसणा दुवे-दुवे रामकेसवा भायरो होत्था, तं जहा—
संगहणी-गाहाओ—

त्तिविट्ठ य दुविट्ठ य, सयंभू पुरिसुत्तमे ।
पुरिससीहे तह पुरिसपुण्डरीए, दत्ते नारायणे, कण्हे ॥१॥
अयले, विजए भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंदे णंदणे, पउमे रामे यावि अपच्छिमे ॥२॥

६१८. एतेसि णं णवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वमविद्या नव-नव
नामधेज्जा होत्था, तं जहा—

विस्सभूर्इ पव्वयए, धणदत्त समुद्दत्त इसिवाले ।
पियमित्त ललियमित्ते, पुणव्वसू गंगदत्ते य ॥१॥
एयाइं नामाइं, पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं ।
एत्तो बलदेवाणं, जह्वकमं कित्तइस्सामि ॥२॥
विसनंदी सुवंधु य, सागरदत्ते असोगललिए य ।
वाराह धम्मसेणे, अपराइय रायललिए य ॥३॥

६१९. एतेसि णं नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वमविणा नव
धम्मायरिया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—संभूत सुभद्दे सुवंसणे, य सेयंसे कण्ह गंगदत्ते य ।
सागरसमुद्दनामे, दुमसेणे य णवमेए ॥१॥
एते धम्मायरिया, कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे आसिण्हं, जत्थ निदाणाइं कासी य ॥२॥

६२०. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव नियानभूमिओ
होत्था, तं जहा—

मधुरा य कणगवत्थू, सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कायंदी कोसंबी, मिहिलपुरी हत्थियणपुरं च ॥१॥

एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव नियानकारणा होत्था,
तं जहा—

गावी जुवे य संगामे इत्थी पराइयो रणे ।
भज्जाणुराग गोढी, पराइड्ढी माउयाइ य ॥१॥

६२१. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव पडिसत्तू होत्था,
तं जहा—

अत्सग्गीवे तारए, मेरए महुकेढवे निसुम्भे य ।
वलि पहराए तह रावणे य नवमे जरासंधे ॥१॥
एए खलु पडिसत्तू, कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे वि चवकजोही सव्वे वि हया^१ सचक्केहि ॥२॥

समान जिनकी गति होती है, कौंच पक्षी के मधुर एवं गंमार
शरद स्वर जैसा जिनका निगाद है, जो नील एवं पीत कौंच
वस्त्र पहनते हैं अर्थात् बलदेव नील और वासुदेव पीत वर्ण के
वस्त्र पहनते हैं, वे मयं के समान नजस्वी, नरसिंह, नरपति,
नरेन्द्र, नरवृषभ और देवराज इन्द्र जैसे हैं, अप्रतिहत राज्य तेज
लक्ष्मी से दीप्तिमान ये राम और केशव दोनों मार्क-भार्द होते हैं ।

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुत्रपोत्तम, पुत्र्यासि, दत्त, नारायण,
कृष्ण तथा अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन
पद्म, और राम ये दशार मण्डल मे क्रमशः नौ वासुदेव और नौ
वलदेव हुए थे ।

६१८. इन नौ वासुदेव और नौ बलदेव के पूर्वभव के नौ नाम ये,
जो इस प्रकार हैं—

विश्वभूति, पर्वतक, धनदत्त, समुद्रदत्त, ऋषिपाल, प्रियमिव,
ललितमित्र, पुनर्वसु, गंगदत्त—

वासुदेवों के पूर्वभव में ये नाम ये और बलदेवों के नाम इस
प्रकार हैं—

विश्वनन्दी, सुवंधु, सागरदत्त, अशोकललित, वराह,
धर्मसेन, अपराजित, राजललित ।

६१९. इन नौ वासुदेवों के पूर्वभव के नौ धर्माचार्यं ये, यथा—
गाथा—

संभूत, सुभद्र, सुदर्शन, श्रेयांस, कृष्ण, गंगदत्त, सागर,
समुद्र, द्रुमसेन । कीर्तिपुरुष वासुदेवों के पूर्वभव में ये धर्माचार्यं
हुए थे, अब जहाँ निदान किया था, उन निदान-भूमियों को
बतलाते हैं ।

६२०. इन नौ वासुदेवों की पूर्वभव मे नौ निदान भूमियां थीं,
यथा—

मधुरा, कनकवस्तु, श्रावस्ती, पोतनपुर, राजगृह, काकंदी,
कीशांबी, मिथिलापुरी, हस्तिनापुर ।

इन नौ वासुदेवों के नौ निदान कारण थे, यथा—

गाय, झूत, संग्राम, स्त्री, रंग में पराजय, भार्यानुराग,
गोष्ठी, पर-ऋद्धि, माता ।

६२१. इन नौ वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु थे, यथा—

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रह्लाद,
रावण, जरासंध, कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये सभी प्रतिशत्रु उनके
साथ चक्रयुद्ध करते हैं और अन्त में स्वचक्र से मारे जाते हैं ।

आवाए एरवए आगनिस्ताए भाणियच्चा । एवं दोसु वि
आगनिस्ताए भाणियच्चा ॥

—सम० सु० १५९

बलदेवाणमुच्चत्तं सव्वाउयं च—

६२५. अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ८०, सु० ३

६२६. विजए णं बलदेवे तेवत्तरि वाससयसहस्ताइं सव्वाउयं पाल-
इत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—सम० स० ७३, सु० २

६२७. सुप्रभे णं बलदेवे एकावणं वाससयसहस्ताइं परमाउं पाल-
इत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—सम० स० ५१, सु० ४

६२८. नन्दणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ३५, सु० ४

६२९. रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० १०, सु० ६

६३०. रामे णं बलदेवे दुवालसवाससयाइं सव्वाउयं पालिता
देवत्तं गए ।

—सम० स० १२, सु० ५

६३१. त्रिविद्धे णं वासुदेवे असीइं वाससयसहस्ताइं महाराया
होत्था ।

—सम० स० ८०, सु० ४

वासुदेव-पइण्णगं—

६३२. त्रिविद्धे णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं होत्था ।

—सम० स० ८०, सु० २

६३३. त्रिविद्धे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्ताइं सव्वाउयं
पाइत्ता अणट्ठाने नरए नेरइयत्ताए उयवणे ।

—सम० स० ८४, सु० ४

६३४. नानमुत्सं णं वा पुदेरसनं उड्डवासाइं विजए होत्था ।

—सम० स० ९०, सु० ४

६३५. पुरुषोत्तमं णं वासुदेवे पचामं धणूइं उड्डं उच्चत्तेणं
होत्था ।

—सम० स० ५०, सु० ३

यह सब ऐरावत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल में कथन
करना चाहिए । इस प्रकार दोनों द्वीपों के आगामी उत्सर्पिणी
काल के लिये भी कहना चाहिए ।

बलदेवों का उच्चत्व और सर्वायु—

६२५. अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊंचा था ।

६२६. विजय बलदेव तिहत्तर लाख वर्ष की सर्वायु भोगकर सिद्ध,
बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, सब दुखों का क्षय कर परिनिर्वाण को
प्राप्त हुआ ।

६२७. सुप्रभ बलदेव इक्यावन लाख वर्ष की आयु भोगकर
सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और सब दुखों का नाश कर निर्वाण
को प्राप्त हुआ ।

६२८. नन्दन बलदेव पैंतीस धनुष ऊंचा था ।

६२९. राम बलदेव दस धनुष ऊंचा था ।

६३०. राम बलदेव ने वारह सौ वर्ष की सर्वायुका भोगकर देवत्व
प्राप्त किया ।

६३१. त्रिपृष्ठ वासुदेव ने अस्सी लाख वर्ष राज्य किया ।

वासुदेव-प्रकीर्णक—

६३२. त्रिपृष्ठ वासुदेव की ऊंचाई अस्सी धनुष की थी ।

६३३. त्रिपृष्ठ वासुदेव चौरासी लाख वर्ष की सर्वायुका भोगकर
अप्रतिष्ठान नामक नरक में नारक रूपमें उत्पन्न हुआ ।

६३४. स्वयंभू वासुदेव का विजय काल नब्बे वर्ष का था ।

६३५. पुरुषोत्तम वासुदेव पचाम धनुष ऊंचा था ।

१. एतदेवानं सम्भाउः

वासासी—१ धामासी २ अश्वतरासी ३ अन्नट्टिः ४ पंचवण्णाड य ।

५ अत्तरस ६ सयसहस्ता, ७ पंचमह आउय होइ ॥१॥

८ पचामास महत्ता, ९ अणट्टास नड य देव पणरस ।

१० अण अणरस आउं, ११ अणरस जहामये ॥२॥

६३६. पुरिमतीहे षं बामुदेवे दम बाममयमरुतनाई मध्याउय
पासइत्ता पधनाए पुटवीए नेरइएनु नेरइयत्ताए उवयणी ।
—नम० सू० १३३

६३६. पुरिमति बामुदेव दम माय दम की मतीः मायकर
पावती नरक पुष्यो मे नारक दूरा ।

६३७. पुरिमतीहे षं बामुदेवे दम बाममयमरुतनाई मध्याउयं पास-
इत्ता छट्टीए तमाए पुटवीए नेरइयत्ताए उवयणी ।
—ठार्ण० प्र० १०, सू० ७३५

६३७. पुरिमति बामुदेव दम माय दम की मतीः मायकर
छट्टी तमा पुष्यो मे नारक उवय दूरा ।

६३८. यत्ते षं बामुदेवे वणतीमं धणुई उइई उचचत्तेण हीत्था ।
—नम० न० ३५, सू० ३

६३८. दत्त बामुदेव पीपीय प्रदुव देवा वा ।

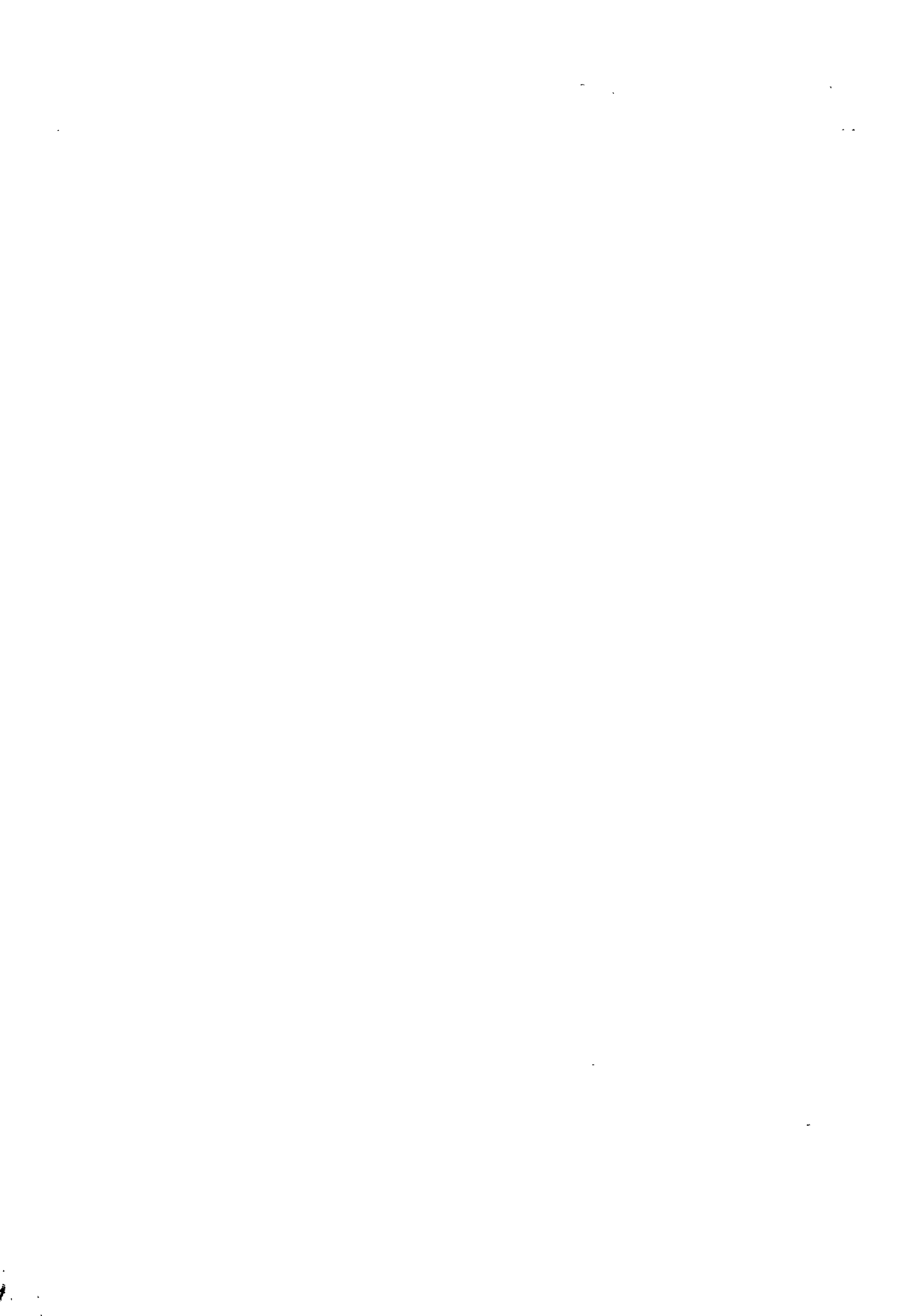
६३९. कण्हे षं बामुदेवे दम धणुई उइई उचचत्तेणो, दम य
बाममयाई मध्याउयं पासइत्ता तधनाए बामुदपरनाए पुटवीए
नेरइयत्ताए उवयणी ।
—ठार्ण० व० १०, सू० ७३५

६३९. कृष्ण बामुदेव दम धणु उवय वा, पीर दम पी पीर दम
उवापु का भोगकर पीमती बामुदा दमा पुष्यो मे नारक दूरा ।

॥ पइमो रणो समत्तो ॥

॥ प्रथम सन्धि समाप्त ॥





धम्मकहाणुओगे

वितियो खंधो

धर्मठधानुयोग

वितियो खंधो

प्राथमिक

- जैन आगमों में वर्णित चरित्र कथाओं का समग्र संकलन धर्मकथानुयोग में किया गया है।
- इसके प्रथम स्कन्ध में शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया तथा अब द्वितीय स्कन्ध में 'श्रमण' (मुनि) चरित्रों का संकलन है।
- भगवान ऋषभदेव के युग के श्रमणों का वर्णन विस्तृत रूप में वर्तमान में किसी आगम में उपलब्ध नहीं है। जो सबसे प्राचीन श्रमण चरित्र उपलब्ध है, वह है विमलनाथ (१३वें) तीर्थंकर के समय में महावल राजकुमार—श्रमण का। अतः हमने कालक्रम से यहाँ श्रमणों का चरित्र कथानक संकलित किया है।
- इस द्वितीय स्कन्ध में विमलनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ एवं महावीर-तीर्थ—यों पाँच तीर्थंकरों के युग में हुए श्रमणों का चरित्र लिया है।
- इस द्वितीय स्कन्ध में विमल-तीर्थ के १, मुनिसुव्रत-तीर्थ के २, अरिष्टनेमि-तीर्थ के २ पार्श्व-तीर्थ के २ तथा महावीर-तीर्थ के ३४—यों सर्व ४८ मुख्य चरित्र (अध्ययन) तथा उनसे सम्बन्धित सम-सामयिक अन्य चरित्र संकलित हैं; जिनका कि वर्णन आगम में सम्बद्ध है।
- स्थविरावली में कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्रगत वर्णन है, जो चरित्र नहीं, किन्तु नाम सूची मात्र ही प्राप्त होता है।
- यह वर्णन अनेक आगमों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है, यहाँ पर सभी आगमों से मूल रूप में संकलन किया गया है। चरित्र में प्रायः समग्रता लाने के लिए अनेक स्थलों के सन्दर्भ लिये हैं। कथा चरित्रों के वर्णन में विविधता होते हुए भी कथानक का रस भंग नहीं हुआ है। कथा सूत्र को प्रायः सम्बद्ध रखने का ही प्रयत्न किया है।



प्राथमिक

- जैन आगमों में वर्णित चरित्र कथाओं का समग्र संकलन धर्मकथानुयोग में किया गया है।
- इसके प्रथम स्कन्ध में शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया तथा अब द्वितीय स्कन्ध में 'श्रमण' (मुनि) चरित्रों का संकलन है।
- भगवान् ऋषभदेव के युग के श्रमणों का वर्णन विस्तृत रूप में वर्तमान में किसी आगम में उपलब्ध नहीं है। जो सबसे प्राचीन श्रमण चरित्र उपलब्ध है, वह है विमलनाथ (१३वें) तीर्थंकर के समय में महाबल राजकुमार—श्रमण का। अतः हमने कालक्रम से यहाँ श्रमणों का चरित्र कथानक संकलित किया है।
- इस द्वितीय स्कन्ध में विमलनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ एवं महावीर-तीर्थ—यों पाँच तीर्थंकरों के युग में हुए श्रमणों का चरित्र लिया है।
- इस द्वितीय स्कन्ध में विमल-तीर्थ के १, मुनिसुव्रत-तीर्थ के २, अरिष्टनेमि-तीर्थ के ६ पार्श्व-तीर्थ के २ तथा महावीर-तीर्थ के ३४—यों सर्व ४८ मुख्य चरित्र (अध्ययन) तथा उनसे सम्बन्धित सम-सामयिक अन्य चरित्र संकलित हैं; जिनका कि वर्णन आगम में सम्बद्ध है।
- स्थविरावली में कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्रगत वर्णन है, जो चरित्र नहीं, किन्तु नाम सूची मात्र ही प्राप्त होता है।
- यह वर्णन अनेक आगमों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है, यहाँ पर सभी आगमों से मूल रूप में संकलन किया गया है। चरित्र में प्रायः समग्रता लाने के लिए अनेक स्थलों के सन्दर्भ लिये हैं। कथा चरित्रों के वर्णन में विविधता होते हुए भी कथानक का रस भंग नहीं हुआ है। कथा सूत्र को प्रायः सम्बद्ध रखने का ही प्रयत्न किया है।



बितीयो खंधो

द्वितीय स्कन्ध

समणकहाणगाणि

श्रमण कथानक

अज्झयणा

अध्ययन

१. विमलतित्थे	महव्वलो	१. विमलतीर्थ में	महावल
२. मुणिसुव्वयतित्थे	कत्तियसेट्ठि-आईणं कहाणयं	२. मुनिसुव्वततीर्थ में	कार्तिक श्रेष्ठि आदि का कथानक
३. मुणिसुव्वयतित्थे	गंगदत्तो	३. मुनिसुव्वततीर्थ में	गंगदत्त
४. अरिट्ठनेमित्थे	चित्तसंभूइज्जकहाणयं	४. अरिष्टनेमित्थे में	चित्रसंभूतीय कथानक
५. अरिट्ठनेमित्थे	निसढो	५. अरिष्टनेमित्थे में	निषघ
६. अरिट्ठनेमित्थे	गोयमो अण्णे य	६. अरिष्टनेमित्थे में	गौतम और अन्य (चरित्र)
७. अरिट्ठनेमित्थे	अणीयसो कुमारो अण्णे य	७. अरिष्टनेमित्थे में	अणीयसकुमार और अन्य श्रमण
८. अरिट्ठनेमित्थे	गजसुकमालाई	८. अरिष्टनेमित्थे में	गजसुकुमालादि
९. अरिट्ठनेमित्थे	सुमुहाइकुमारा	९. अरिष्टनेमित्थे में	सुमुखादि कुमार
१०. अरिट्ठनेमित्थे	जालिआई समणा	१०. अरिष्टनेमित्थे में	जालि आदि श्रमण
११. अरिट्ठनेमित्थे	थावच्चापुत्ते अण्णे य	११. अरिष्टनेमित्थे में	थावच्चापुत्र और अन्य श्रमण
१२. अरिट्ठनेमित्थे	राजीमइकओ रहनेमिसमणस्स समुद्धारो	१२. अरिष्टनेमित्थे में	रथनेमि श्रमण का राजीमती द्वारा समुद्धार
१३. पासतित्थे	अंगई, सुपइट्ठो, पुण्णभद्दाई य	१३. पार्श्वतीर्थ में	अंगति, सुप्रतिष्ठित और पूर्ण-भद्रादि श्रमण
१४. पासतित्थे	जियसत्तु-सुवुद्धिकहाणयं	१४. पार्श्वतीर्थ में	जितशत्रु-सुवुद्धि कथानक
१५. महावीरतित्थे	नमिरायरिसी	१५. महावीरतीर्थ में	नमि राजर्षि
१६. महावीरतित्थे	उसहदत्त-देवाणंदाणं चरियं	१६. महावीरतीर्थ में	ऋषभदत्त-देवानन्दा का चरित्र
१७. महावीरतित्थे	बालतवस्सी मोरियपुत्ते तामली अणगारे	१७. महावीरतीर्थ में	बाल तपस्वी मौर्यपुत्र तामली अनगार
१८. महावीरतित्थे	अद्दगस्स अण्णातित्थिएण सह वादो	१८. महावीरतीर्थ में	आर्द्रक का अन्यतीर्थिकों के साथ वाद

१६. महावीरतित्थे	अइमुत्तए कुमारसमणे	१६. महावीरतीर्थं में	अतिमुक्तक कुमार श्रमण
२०. महावीरतित्थे	अलक्कराया	२०. महावीरतीर्थं में	अलक्ष्य राजा
२१. महावीरतित्थे	मेहकुमारेसमणे	२१. महावीरतीर्थं में	मेघकुमार श्रमण
२२. महावीरतित्थे	मकाईआईसमणा	२२. महावीरतीर्थं में	मकाई आदि श्रमण
२३. महावीरतित्थे	अज्जुणमालागारे	२३. महावीरतीर्थं में	अजुंन मालाकार
२४. महावीरतित्थे	कासवाई समणा	२४. महावीरतीर्थं में	काश्यपादि श्रमण
२५. महावीरतित्थे	सेणियपुत्ता जालिआई समणा	२५. महावीरतीर्थं में	श्रेणिकपुत्र जालि आदि श्रमण
२६. महावीरतित्थे	धण्णे सत्थवाहपुत्ते अणगारे	२६. महावीरतीर्थं में	सार्थवाहपुत्र धन्य अनगार
२७. महावीरतित्थे	सुणवखत्ताइसमणा	२७. महावीरतीर्थं में	सुनक्षत्रादि श्रमण
२८. महावीरतित्थे	सुबाहुकुमारसमणे	२८. महावीरतीर्थं में	सुबाहुकुमार श्रमण
२९. महावीरतित्थे	भद्दंनदीआइ समणकहाणगाणि	२९. महावीरतीर्थं में	भद्रनंदि आदि श्रमण कथानक
३०. महावीरतित्थे	सेणियनत्तू पउमसमणो ।	३०. महावीरतीर्थं में	श्रेणिकनप्तृ (पौत्र) पद्म श्रमण और अन्य चरित्र
३१. महावीरतित्थे	हरिएसबलो	३१. महावीरतीर्थं में	हरिकेशवल
३२. महावीरतित्थे	अणाही महानियंठो	३२. महावीरतीर्थं में	अनाथी महानिर्ग्रन्थ
३३. महावीरतित्थे	सुमुद्दपालीयस्स कहाणय	३३. महावीरतीर्थं में	समुद्रपालीय का कथानक
३४. महावीरतित्थे	मियापुत्ते बलसिरीसमणे	३४. महावीरतीर्थं में	मृगापुत्र बलश्री श्रमण
३५. महावीरतित्थे	संजयराया	३५. महावीरतीर्थं में	गर्दभालि और संजय राजा
३६. महावीरतित्थे	उसुयाररायाई छ समणा	३६. महावीरतीर्थं में	इषुकार राजादि छह श्रमण
३७. महावीरतित्थे	खंदए परिव्वायगे	३७. महावीरतीर्थं में	स्कन्दक परिव्राजक
३८. महावीरतित्थे	मोग्गलपरिव्वायगे	३८. महावीरतीर्थं में	मुद्गल परिव्राजक
३९. महावीरतित्थे	सिवरायरिसी	३९. महावीरतीर्थं में	शिवराजर्षि
४०. महावीरतित्थे	उद्दायणरायकहाणयं	४०. महावीरतीर्थं में	उदायनराज कथानक
४१. महावीरतित्थे	जिणपालिय-जिणरक्खिय-णायं	४१. महावीरतीर्थं में	जिनपालित जिनरक्षित ज्ञात
४२. महावीरतित्थे	कालासवेसियपुत्ते	४२. महावीरतीर्थं में	कालास्यवेषिपुत्र
४३. महावीरतित्थे	उदए पेढालपुत्ते	४३. महावीरतीर्थं में	उदक पेढालपुत्र
४४. महावीरतित्थे	नंदीफलणायं	४४. महावीरतीर्थं में	नन्दीफल ज्ञात
४५. महावीरतित्थे	धणसत्थवाहकहाणयं	४५. महावीरतीर्थं में	धन्य सार्थवाह कथानक
४६. महावीरतित्थे	कालोदाई कहाणयं	४६. महावीरतीर्थं में	कालोदायी कथानक
४७. महावीरतित्थे	पुण्डरीय-कण्डरीय-कहाणयं	४७. महावीरतीर्थं में	पुण्डरीक-कण्डरीक कथानक
४८. महावीरतित्थे	थविरावली	४८. महावीरतीर्थं में	स्थविरावली

१. विमलातिथे महबबलो

वाणियग्रामे भगवओ महावीरस्सागमणं—

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियग्रामे नामं नगरे होत्था—
वण्णओ ।

दूतिपलासे चेइए—वण्णओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ ।

तत्थ णं वाणियग्रामे नगरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ—
अइडे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे-
जाव-अहापरिग्गहिएहि तवोकम्मोहि अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

२. सामी समोसडे-जाव-परिसा पज्जुवासइ ।

सुदंसणसेट्ठिणा धम्मसवणं—

३. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्टुट्टे
ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोजय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार-विभू-
सिए साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरेंटमत्तदा-
मेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं पायविहारचारेणं महयापुरिसवग्गुराप-
रिक्खित्ते वाणियग्रामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता
जेणेव दूतिपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ,
तं जहा—सच्चित्ताणं दव्वाणं जहा उसभवत्तो-जाव-तिविहाए पज्जु-
वासणाए पज्जुवासइ ।

४. तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स सेट्ठिस्स तीसे य
महत्तिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ—जाव आणाए—आराहए
भवइ ।

१. विमल तीर्थ में महाबल

वाणिज्यग्राम में भगवान महावीर का आगमन—

१. उस काल में, उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—
वर्णन (उववाई सूत्र से जानना चाहिये) ।

दूतिपलाशचैत्य था—वर्णन—यावत्—पृथ्वीशिलापट्ट था ।

उस वाणिज्यग्राम नगर में सुदर्शन नाम का सेठ रहता
था—वह आद्य-धनिक-यावत्-अपरिभूत-बहुत से मनुष्यों से
पराभव को प्राप्त न करने वाला, जीवाजीव तत्व का जानकार
श्रमणोपासक था—यावत्—यथापरिगृहीत-विधिपूर्वक ग्रहण
किए हुए तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरण
करता था ।

२. वहाँ महावीर स्वामी समवसृत हुए—अर्थात् भगवान
महावीर का पदार्पण हुआ—यावत् पर्षदा—जनसमुदाय पयु-
पासना करता है ।

सुदर्शन सेठ द्वारा धर्मश्रवण—

३. तत्पश्चात् भगवान महावीर स्वामी के पदार्पण होने की
वात को सुनकर वह सुदर्शन सेठ हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, स्नान
करके वलिकर्म किया, कौतुक-मंगल रूप प्रायश्चित्त कर सर्व
अलंकारों से विभूषित होकर अपने घर से बाहर निकला, निकल-
कर कोरंट पुष्प की माला वाला छत्र मस्तक पर धारण किये
हुए पैदल चलकर बहुत से मनुष्यों के समुदाय से घिरा हुआ
वाणिज्यग्राम नगर के बीचोबीच होकर निकलता है, निकलकर
जिस ओर दूतिपलाश चैत्य है, जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं
वहाँ आता है, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर के पास
पाँच प्रकार के अभिगमों द्वारा जाता है, यथा—सचित्त द्रव्यों को
छोड़ता है आदि विशेष—जैसा ऋषभदत्त के प्रकरण में कहा
है—यावत्—तीन प्रकार की पयुपासना द्वारा पयुपासना-
सेवा करता है ।

४. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस सुदर्शन सेठ और
उस महा विशाल परिपदा को धर्मकथा कही—यावत्—आज्ञा
का आराधक होता है ।

सुदंसणसेट्ठणा कालविसए पुच्छा—

५. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिणं-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

६. 'कतिविहे णं भंते ! काले पण्णत्ते ?

सुदंसणा ! चउव्विहे काले पण्णत्ते, तं जहा—

१ प्रमाणकाले, २ अहाउनिव्वत्तिकाले, ३ मरणकाले,

४ अद्धाकाले ।^१

७. से कि तं प्रमाणकाले ?

प्रमाणकाले दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ दिवसप्रमाणकाले य

२ राइप्पमाणकाले य । चउपोरिसिए दिवसे, चउपोरिसिया राई भवइ ।^२

उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी

भवइ,

जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

८. जदा णं भंते ! उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिहाय-माणी-परिहायमाणी जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

जदा णं जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं कतिभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

सुदंसणा ! जदा णं उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीससयभागमुहुत्तभागेणं परिहायमाणी-परिहायमाणी जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

जदा वा जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ, तदा णं बावीससयभागमुहुत्तभागेणं परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

९. कदा णं भंते ! उवकोसिया अद्धपंचममुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ? कदा वा जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ?

सुदर्शन सेठ द्वारा कालविपयक पृच्छा—

५. उसके बाद वह सुदर्शन सेठ श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर हृषित और संतुष्ट होकर स्थान से खड़ा होता है, खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहता (पूछता) है—

६. हे भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा है ?

हे सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार—

१ प्रमाणकाल, २ यथायुनिवृत्तिकाल, ३ मरणकाल, अद्धाकाल ।

७. हे भगवन् ! वह प्रमाणकाल कितने प्रकार का कहा है ?

प्रमाणकाल दो प्रकार का कहा है, यथा—१ दिवस प्रमाण काल और २ रात्रि प्रमाण काल । चार पौरुषी का—प्रहर का दिवस होता है, चार पौरुषी की—प्रहर की रात्रि होती है ।

उत्कृष्टतः साढ़े चार मुहूर्त की पौरुषी दिन की और रात्रि की होती है और—

जघन्यतः तीन मुहूर्त की दिवस की और तीन मुहूर्त की रात्रि की पौरुषी होती है ।

८. हे भगवन् ! जब दिवस की अथवा रात्रि की साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है, तब उस मुहूर्त के कितने भाग घटते-घटते दिवस और रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ?

और जब दिवस या रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है तब उस मुहूर्त के कितने भाग बढ़ते-बढ़ते दिवस और रात्रि की साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है ?

हे सुदर्शन ! जब दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है, तब उस मुहूर्त का एक सौ बाईसवाँ भाग घटते-घटते दिवस और रात्रि में जघन्य तीन मुहूर्त की पौरुषी होती है ।

और जब दिवस अथवा रात्रि की तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है तब मुहूर्त का एक सौ बाईसवाँ भाग बढ़ते-बढ़ते दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है ।

९. हे भगवन् ! दिवस और रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी कब होती है ? और दिवस और रात्रि में कब तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ?

१ ठाणं अ० ४, उ० १, सु० २६४ ।

२ उत्त० अ० २६, गा० ११ और गा० १७ ।

सुदंसणा ! जदा णं उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहणिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, तदा णं उक्कोसिया अट्ठपंचममुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ, जहणिया तिमुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ ।^१

जदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्तिया राई भवई, जहणिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तदा णं उक्कोसिया अट्ठपंचममुहुत्ता राईए पोरिसी भवइ, जहणिया तिमुहुत्ता दिवसस्स पोरिसी भवइ ।^२

१० कदा णं भंते ! उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहणिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? कदा वा उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहणिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ?

सुदंसणा ! आसाढपुण्णिमाए उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहणिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ।

पोसपुण्णिमाए णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहणिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ।^३

११ अत्थि णं भंते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

हंता अत्थि ।

कदा णं भंते ! दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति ?

सुदंसणा ! चेत्तासोयपुण्णिमासु, एत्थं णं दिवसा य राईओ य समा चेव भवंति—पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ । चउभागमुहुत्ताभागूणा चउमुहुत्ता दिवसस्स वा राईए वा पोरिसी भवइ ।

से तं पमाणकाले ।^४

१२ से किं तं अहाउनिव्वत्तिकाले ?

अहाउनिव्वत्तिकाले—जणं जेणं नेरइएण वा तिरिक्खजो-णिणएण वा मणुस्सेण वा देवेण वा अहाउयं निव्वत्तियं से तं अहाउ-निव्वत्तिकाले ।

१३ से किं तं मरणकाले ?

मरणकाले—जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ । से तं मरणकाले ।

हे सुदर्शन ! जब अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिवस होता है और बारह मुहूर्त की छोटी रात्रि होती है, तब साढ़े चार मुहूर्त की दिन की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और रात्रि में तीन मुहूर्त की जघन्य पौरुषी होती है ।

और जब अठारह मुहूर्त की बड़ी रात्रि होती है एवं बारह मुहूर्त का छोटा दिन होता है, तब रात्रि में साढ़े चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरुषी होती है और तीन मुहूर्त की दिवस की जघन्य पौरुषी होती है ।

१० हे भगवन् ! अठारह मुहूर्त का बड़ा दिन कब होता है और बारह मुहूर्त की छोटी रात्रि कब होती है ? तथा अठारह मुहूर्त की बड़ी रात्रि कब होती है और बारह मुहूर्त का छोटा दिन कब होता है ?

हे सुदर्शन ! आषाढ पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त का बड़ा दिन होता है और बारह मुहूर्त की छोटी रात्रि होती है ।

पौष मास की पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त की बड़ी रात्रि होती है और बारह मुहूर्त का छोटा दिवस होता है ।

११ हे भगवन् ! दिवस और रात्रि ये दोनों समान समय वाले भी होते हैं ?

हाँ होते हैं ।

हे भगवन् ! दिवस और रात्रि दोनों कब समान समय वाले होते हैं ?

हे सुदर्शन ! चैत्र और आसोज मास की पूर्णिमायें होती हैं तब दिवस और रात्रि ये दोनों समान काल वाले होते हैं तब पन्द्रह मुहूर्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है । उस दिवस अथवा रात्रि में मुहूर्त का चौथा भाग न्यून चार मुहूर्त की पौरुषी होती है ।

इस प्रकार प्रमाण काल है ।

१२ हे भगवन् ! वह यथायुर्निवृत्ति काल क्या है अर्थात् यथा-युर्निवृत्ति काल किस प्रकार से वतलाया है ?

जिस किसी नारक ने अथवा तिर्यच्योनिक ने अथवा मनुष्य ने अथवा देव ने अपना जैसा आयुष्य बाँधा है, उस प्रकार उसका पालन करे वह यथायुर्निवृत्ति काल कहलाता है ।

१३ हे भगवन् ! मरण काल क्या है ?

शरीर से जीव का अथवा जीव से शरीर का वियोग होना, मरणकाल कहलाता है ।

१ सम० १८, सु० ८ ।

२ सम० १२, सु० ८ ।

३ सम० २४, सु० ४ । २७, सु० ६ । ३७, सु० ५ । ३६, सु० ४ । ४०, सु० ६, ७ ।

४ सम० १५, सु० ५ ।

१४ से किं तं अद्धाकाले ?

अद्धाकाले अणेगविहे पणत्ते—से णं समयट्ठयाए आवलि-
यट्ठयाए-जाव-उस्सप्पिणिअट्ठयाए ।

एस णं सुदंसणा ! अद्धा दोहारच्छेदेणं छिज्जमाणी जाहे
विभागं नो हव्वमागच्छइ, से तं समए समयट्ठयाए ।

असंखेज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा आव-
लियत्ति पवुच्चइ ।

संखेज्जाओ आवलियाओ ।

जहा सालिउद्वेसए-जाव-तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे
परीमाणं ।^१

१५. एएहि णं भंते ! पलिओवम-सागरोवमेहि किं पयोयणं ?

सुदंसणा ! एएहि पलिओवम-सागरोवमेहि नेरइय-तिरिक्ख-
ओणिय-मणुस्स-देवाणं आउयाइं मविज्जंति ।

१६. नेरइया णं भते ! केवइयं कालं ठिई पणत्ता ?^२

एवं ठिइपदं निरवसेसं भाणियव्वं-जाव अजहणमणुक्कोसेणं
तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पणत्ता ।^१

सुदंसणसेट्ठिणा पलिओवमादि खयावचर्यावसए पुच्छा—

१७. अत्थि णं भंते ! एएसि पलिओवम-सागरोवमाणं खए ति
वा अवचए ति वा ?

हंता अत्थि ।

१८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अत्थि णं एएसि पलिओवम-
सागरोवमाणं 'खएति वा' अवचएति वा ?

भगवया महावीरेण सुदंसणसेट्ठिणो पुव्वभववण्णणे
महव्वल-कहा-कहणं—

१९. एवं खलु सुदंसणा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे
नामं नगरे होत्था-वण्णओ ।

१४ हे भगवन् ! यह 'अद्धाकाल' क्या है ?

अद्धाकाल—यह समयरूप, आवलिकारूप-यावत्—
उत्सर्पिणी रूप में अनेक प्रकार का कहा है ।

हे सुदर्शन ! काल के दो भाग करने पर भी जब उसके दो
भाग न हो सकें वह (अविभाज्य) काल समय रूप में समय
कहलाता है ।

असंख्यात समयों का समुदाय मिलने से एक आवलिका
होती है ।

संख्यात आवलिका का (एक उच्छ्वास) होता है—
इत्यादि जैसा शालि उद्देशक (शतक ६, उ० ७, सूत्र ४-७ महावीर
वि० संस्करण) में कहा है—यावत्—सागरोपम का, एक भव
का प्रमाण तक परिमाण जानना ।

१५ हे भगवन् ! इस पत्योपम और सागरोपम रूप का क्या
प्रयोजन है ?

हे सुदर्शन ! इस पत्योपम और सागरोपम द्वारा नैरयिक,
तिर्यच्योनिक, मनुष्य और देवों की आयुष्यों का प्रमाण किया
जाता है ।

१६ हे भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल तक की
कही है ?

यहाँ सम्पूर्ण स्थिति पद (प्रज्ञापना सूत्र का) कहना चाहिये—
यावत्—सर्वार्थ सिद्ध के देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्टतः
(मध्यम) ऐसी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है ।

सुदर्शन सेठ द्वारा पत्योपमादि की क्षयापचय विषयक
पृच्छा—

१७. हे भगवन् ! इन पत्योपम और सागरोपम का क्षय अथवा
अपचय होता है ?

हाँ होता है ।

१८. हे भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि इन
पत्योपम और सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है ?

भगवान महावीर द्वारा सुदर्शन सेठ के पूर्वभव के वर्णन
में महाबल कथा-कथन—

१९. हे सुदर्शन ! वह इस प्रकार, उस काल उस समय में हस्तिना-
पुर नाम का नगर था—(नगर) वर्णन ।

१ (क) अणु० सु० ३६३-३६८ ।

(ख) भग० स० ६, उ० ७, सु० ४-७ ।

(ग) ठाण० अ० २, उ० १, सु० ६७, ७४ । अ० २, उ० ४, सु० ६६ । अ० ८, सु० ६१७ ।

(घ) भग० स० २५, उ० ५, सु० २-१६

२ अणु० सु० ३८२ ।

३ (क) अणु० सु० ३८३-३९१

(ख) पण्ण० प० ४, सु० ३३५-३४२ ।

सहस्रसंबवणे उज्जाणे-वण्णओ । तत्त णं हत्थिणापुरे त्तगरे बले नामं राया होत्था—वण्णओ ।

तत्स णं बलत्स रण्णो पभावई नामं देवी होत्थासुकुमाल-पाणिपाया-वण्णओ-जाव-पंचविहे माणुत्सए कामभोगे पच्चणुभव-माणी विहरइ ।

प्रभावई-देवीए सुमीणे सीह-दंसणं—

२०. तए णं सा पभावई देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिस-गंसि वासघरंसि अत्तितरओ सत्तित्तकस्से बाहिरतो द्विमियघट्टमट्टे त्रिचित्तउल्लोगचिल्लियतले मणिरतणपणासियंधकारे बहुसमसुवि भत्तदेसभाए पंचवण्णसरसरभिसुक्क-पुप्फपुं जोवयारकलिए कालागरुपवर कुं डुरुक्क धूमघमघेतगंधु—दधुताभिरामे सुगंधवर-गंधिए गंधवट्टिभूते तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगणवट्टीए उन्नओ बिब्बोयणे दुहओ उन्नए मज्जे णय-गंभीरे गंगापुलिणवालय उददाल सालिसए ओयविय खोमिय दुगुल्लपट्टपलिच्छायणे सुविर-इयरयत्ताणे रत्तंसुयसवुए सुरम्भे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगंधवरकुमुमचुण्णसयणोवयारकलिए अद्वरत्तकालसमयंसि सुत्त-जगगा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारुवं ओरालं-कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं-सत्तिरियं महासुविणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा ।

हार-रयय-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहासेल-पंडुर-तरोर-रमणिज्ज-पेज्ज-पेच्छणिज्जं थिरलट्ठपउट्टुवट्टुपीवरसुसिलिट्ट-विसिट्टित्तिक्ख दाढाविडंबितमुहं परिकम्मियजच्चं कमलकोमलमाइय सोभंतलट्टुउट्टु रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहं मूसागयपवरकण-गतावित आवट्टायंतवट्टुतडि विमलसरिसनयणं विसालपीवरोरु-पडिपुण्णविमलखंधं मिउविसदसुहुमलक्खणपसत्थवित्थियण केसर-सडोवसोभिप्रं असियसुनिमित्तसुजातअप्फोडितणंगूलं सोमं सोमाकारं

त्रहां सहस्राभवन नामक उद्यात था, (उद्यान का) वर्णन । उस हस्तिनापुर नगर में बल नामक राजा था, (राजा का) वर्णन ।

उस बल राजा की प्रभावती नाम की रानी थी—उसके हाथ पग सुकुमाल थे—वर्णन—यावत्-पांच प्रकार के मानवीय काम-भोगों का प्रत्यनुभव करते हुए विचरती थी ।

प्रभावती देवी का स्वप्न में सिंह-दर्शन—

२०. उसके बाद अन्य किसी एक दिन उस प्रकार के वासगृह में जो भीतर से चित्र युक्त था, बाहर से सफेदी किया हुआ और घिसकर कोमल बनाया हुआ था । जिसका उपरिभाग विविध चित्रों से सज्जित था और नीचे का भाग भी सुशोभित था । वह मणि-रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित, बहु समान सुविभक्त भाग वाला पांच वर्ण के सरस और सुरभित पुष्प पुञ्जों के ढेर सहित, उत्तम काला-गुरु-कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) के धूप से चारों ओर से सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एवं सुगन्धी द्रव्य की गुटिका के समान था । ऐसे वास भवन में जो शय्या थी, उसके सिरहाने और पगोतिये—दोनों ओर तकिये लगे थे अतः दोनों ओर से उन्नत मध्य में कुछ नमी (झुकी) हुई, विशाल, गंगा के किनारे की रेती के अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने) के समान कोमल, क्षौमिक-रेशमी दुकूल पट से आच्छादित, रजस्त्राण—(धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आर्जनिक, रुई, वूर, नवनीत और अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्शवाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प चूर्ण और अन्य शयनोपचार (शयन सामग्री से) युक्त शय्या में सोती हुई प्रभावती रानी ने अर्धरात्रि के समय में कुछ सोती और कुछ जागती सी निद्रा लेती; वह प्रभावती रानी इस प्रकार (निम्न प्रकार) का उदार-यावत्-शोभा युक्त महास्वप्न (सिंह) को देखकर जागी ।

(वह सिंह) हार, रजत, क्षीर सागर, चन्द्र की किरण, जल-विन्दु और रजत (चांदी) के विशाल पर्वत जैसा धवल, विशाल, रमणीय, प्रिय तथा दर्शनीय था । उसके प्रकोष्ठ स्थिर एवं सुन्दर थे । वह गोल, सुपुष्ट, सुश्लिष्ट विशिष्ट तथा तीक्ष्ण दाढाओं से युक्त मुख को फाड़े हुए था । उसके ओष्ठ संस्कारित श्रेष्ठ कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत और सुशोभित थे । उसका तालु और जीभ रक्त कमल के समान लाल व कोमल थी । उसकी आँखें ऐसी रक्त वर्ण थी, जैसे—मूस में रहे हुए एवं अग्नि से तपाये हुए तथा गोल घूमते हुए शुद्ध स्वर्ण का कड़ा होता है । वे गोल और विजली के समान निर्मल तेजोदीप्त थी । उसकी जंघाएँ विशाल और पुष्ट थी । उसके स्कन्ध विशाल और प्ररिपूर्ण थे । उसकी केसर कोमल, विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षणवाली थी । वह अपनी उन्नत तथा सुन्दर पूँछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ सौम्य, सौम्य आकार वाला लीना करता हुआ, जंभाई लेता हुआ बाकाश

लीलयंतं जंभायंतं नहयलाओ ओवयमाणं निययवयणकमत्तासर-
मतिवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा ।

२१. तए णं सा पभावती देवी अयमेयाख्वं ओरालं-जाव-सस्सिरियं
महासुविणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्टुट्ट-
चित्तमाणंदिया-जाव—हिदया धाराहयकलवंगं पिव समूसियरोमकूषा
तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हत्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टेत्ता
अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंविद्याए रायहं ससरिसीए गईए जेणेव
वलस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वलं रायं
ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणाभाहिं ओरालाहिं
कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं मियमहुर-
मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिवोहेइ, पडिवोहेत्ता
वलेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्तंति
भद्दासणंसि निसीयइ, निसीयित्ता आसत्था योसत्था सुहासणवर-
गया वलं रायं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं
वयासी—

“एवं खलु अहं देवानुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसंगंसि
सयणिज्जंसि सांलिगणवट्टिए तं चैव-जाव-नियगवयणमइवयंतं सीहं
सुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवानुप्पिया ! एयस्स ओरा-
लस्स-जाव-महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे
भविस्सइ ?

वलेण रण्णा सुविणफलकहणं—

२२. तए णं से वले राया पभावईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा
निसम्मं हट्टुट्टचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-
वसविसप्पमाणहयहियए धाराहयनोवसुरभिकुसुम-चंचुमालइयतमं-
वणूए ऊसवियरोमकूषे तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हत्ता ईहं पविसइ,
पविसित्ता अप्पणो साभाविणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तस्स
सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ, करेत्ता पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं
कंताहिं-जाव-मंगल्लाहिं मिय-महुर-सस्सिरियाहिं वग्गूहिं संलवमाणे-
संलवमाणे एवं वयासी—

“कुलकेउं सुखं देवकुमारसप्पभं दारणं पयाहिसि ।
ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे विट्ठे ! पुत्तलाभो देवानुप्पिए !
रज्जलाभो देवानुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवानुप्पिए ! नवहं
सासाणं बहुपडिपुण्णाणं, अट्टट्टमाणं, यं राइदियाणं, वीइकंताणं
अहं कुलकेउं सुखं देवकुमारसप्पभं दारणं पयाहिसि ।

मे नीने उदारहय सुख का समान पसीवइ मे प्रिय । कल्ला इत्ता इत्ता
दिमाइ दिमा । एत्ता पित्तलान्ण देवइइ रायो प्रभारो प्रभ-
रुइ—सुखुत्ता सुखुत्ता ।

२१. प्रभावती देवी के साथ संलाप के प्रारंभ-कारण-
शोभायुक्त महासुविण की स्वप्न-वाणी और हृदय-मुट्ट-आनन्दित
हृदयवाली बुद्धि-व्याप्त-मंगल-युक्त विचार-युक्त हृदय-मुट्ट की
तरह रोमांचित हुई वह (प्रभावती देवी) उस स्वप्न का स्वरूप
कहती है, स्वरूप-तरह-वाणी-देखा-के-उपरी है, उदार-
व्यारहित, धारणा-युक्त, मध्य-विद्या, विद्वन्मय,
राजसंग की प्रति-के-समान प्रति-के-समान हुई जहाँ-पर
राजा का स्वप्न-मुट्ट था, वहाँ-जाती-है, वहाँ-जाकर-इष्ट-
काम-विद्य, मन-की-प्रच्छेद-काम-वाणी-मन-की-मुट्ट-हमें
पायी-उदार, कल्याण, विद्या, प्रत्य, मध्यम-युक्त, सुन्दर-शोभायुक्त,
मिठा, मधुर-और-मंजु-वाणी-वासी-प्रायः-हुई-का-राजा-को
जगाती-है, जगाने-के-बाद, उस-प्रकार-की-जन्म-की-विशेष-मति-
रत्नों-की-रक्षा-से-विशेष-भद्र-पर-पंथी-है, मृगान्त-
में-बैठी-हुई-स्वप्न-और-जाग-हुई-जगने-इष्ट-भाव-मधुर-
वाणी-से-शोचने-शोचने-उभ-प्रकार-कहा—

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैं आज उस तरह की और संविद्या-
वाली शंया में (इत्यादि पूर्वी-प्रकार-के-जानना) काम-अपने
मुख-में-प्रवेश-करते-हुए-मिठा-की-स्वप्न-में-देखकर-जागी, तो-है
देवानुप्रिय ! उस-उदार-भाव-महास्वप्न-का-दुसरा-की-नन्ता-
कल्याण-प्रद-फल-अथवा-वृत्ति-विशेष-होगा ?

वल राजा द्वारा स्वप्न-फल-तथन—

२२. उसके बाद वह बल-राजा प्रभावती देवी के मुख-से-इस-वात-
को-सुनकर-और-अवधारित-कर-हर्षित, तुष्ट, आह्लाद-युक्त
हृदय-वाला, आनन्दित, प्रीतिमन-परम-सीमन-मन-वाला-हर्षा-
तिरेक-के-विकासमान-हृदय-वाला-मेषधारा-से-विकसित-हुए
सुगंधित-कंदव-पुष्प-की-तरह-जितका-शरीर-रोमांचित-है-और
जिसका-रोमराजि-घड़ी-हुई-है-ऐसा-वह-बल-राजा-उस-स्वप्न-
के-बारे-में-अवग्रह-सामान्य-विचार-करता-है, अवग्रह-करके-उसके-
सम्बन्ध-में-ईहा-विशेष-विचार-करता-है, वैसा-करके-अपने-स्वाभा-
विक-मति-पूर्वक-बुद्धि-विज्ञान-से-उस-स्वप्न-के-फल-का-निश्चय-
करता-है, निश्चय-करके-इष्ट, कान्त-यावत-मंगल-सुख, मिठा,
मधुर, शोभायुक्त-वाणी-से-प्रभावती-देवी-के-साथ-संलाप-करते-
करते-इस-प्रकार-कहा—

हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न-देखा है,
हे देवानुप्रिये ! पुत्र-लाभ-होगा, हे देवानुप्रिये ! राज्य-का-
लाभ-होगा । हे देवानुप्रिये ! तुम-अवश्य-ही-नी-मास-और-साढ़े-
सात-दिन-बीतने-के-बाद-अपने-कुल-में-ध्वजा-के-समान-.....सुरूप-
देवकुमार-जैसा-प्रभा-वाले-पुत्र-को-जन्म-दोगी ।

२३. से विय णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरु वीरे विक्कते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया-मविस्सइ । तं ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे विट्ठ-जाव—आरोग्ग-तुट्ठि दोहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी ! सुविणे विट्ठे त्ति कट्टु पभावात्ति देवि ताहि इट्ठाहि-जाव-वग्गुहि दोच्च पि तच्च पि अणुवहति ।

२४. तए णं सा पभावती देवी बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्मं हट्टुट्ठा करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्यए अजलि कट्टु एवं वयासी—

एवमेयं देवाणुप्पिया ! ...से जहेयं तुम्भे वदहं त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेण रण्णा-अब्भणुण्णाया सभाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्वासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठत्ता अतुरियमत्तवलमसंभंताए अविलंबियाए रायह ससरि-सीए गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सयणिज्जसि निसीयति, निसीयित्ता एवं वयासी—

‘मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहि पावसुमिणेहि पडिहम्मिस्सइ त्ति कट्टु देवगुरुजणसंबद्धाहि पसत्याहि मंगल्लाहि धम्मियाहि कहाहि सुविणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ ।

सुविणलक्खणं-पाठगेहि सुविणफलकहण—
२५. तए णं से बले राया कोडु वियपुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—

‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं वाहिरियं उवट्ठाणसालं-जाव-गंधवट्ठिभूयं करेत्ता य कारवेत्ता य कारवेत्ता य सोहासणं रएत्ता ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडु वियपुरिसा-जाव-पडिसुण्णत्ता खिप्पामेव सवि-सेसं वाहिरियं उवट्ठाणसालं-जाव-गंधवट्ठिभूयं करेत्ता य कारवेत्ता य सोहासणं रएत्ता त्तामाणत्तियं पच्चप्पिणत्ति ।

२६. तए णं से बले राया पच्चसकालसमयंसि सयणिज्जाओ समुट्ठेइ, समुट्ठेत्ता पायपीडाओ पच्चोहइ, पच्चोहत्ता जेणेव अट्ठणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्ठणसालं अणुपविसइ, जहा ओववाइए तहेव अट्ठणसालं तहेव मज्जणघरे-जाव-ससिब्व पियदंसणे तरवई मज्जणघराओ पडिनिकखमत्ति, पडिनिकखमत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता अप्पणो सोहासणवरंसि पुरत्याभिनुहे निसीयइ, निसीयित्ता

२३. और वह बालक बाल्यकाल को व्यतीत करके विज्ञ और परिणत होकर युवावस्था को प्राप्तकर शूर, वीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल-वाहन वाला, राज्य का अधिपति राजा होगा । हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा-यावत्—हे देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु कल्याणप्रद, मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर इष्ट-यावत्-वाणी से उस प्रभावती देवी की दूसरी बार, तीसरी बार भी इसी प्रकार प्रशंसा करता है ।

२४. तदनन्तर वह प्रभावती देवी बल राजा के पास से इस बात को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट हुई और दोनों हथेलियों को जोड़ मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोली—

हे देवानुप्रिय ! तुमने जो कुछ कहा, वह ऐसा ही है, ...ऐसा कहकर स्वप्न को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है, स्वीकार करके बल राजा की अनुमति लेकर अनेक प्रकार के मणि-रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है, उठकर त्वरारहित, चपलता रहित, संभ्रम रहित, विलम्ब रहित राजहंस-जैसी गति (चाल) से जहाँ अपनी शैया है वहाँ आई, वहाँ आकर शैया पर बैठती है, बैठकर उसने इस प्रकार कहा (सोचा)—

‘यह मेरा उत्तम, प्रधान मंगल रूप स्वप्न और दूसरे पाप स्वप्नों से खंडित नहीं होवे इस प्रकार कहकर वह देव गुरु सम्बन्धी, प्रशस्त मंगल रूप धार्मिक कथाओं से स्वप्न जागरण करती हुई विहार (समय यापन) करती है ।

स्वप्न-लक्षण पाठकों द्वारा स्वप्न—फल कथन—
२५. तदनन्तर उस बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! आज तुम शीघ्र ही बाहर की उपस्थान शाला को—यावत्-गंध वर्तिभूत—सुगंध की गुटिका के समान-करो और कराओ, वैसा करके और कराके वहाँ सिंहासन रखो, सिंहासन रखकर मेरी यह आज्ञा वापस मुझे लौटाओ ।

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष-यावत्-आज्ञा स्वीकार करके शीघ्र ही विशेष रूप से बाह्य उपस्थान शाला को यावत्-गंधवर्ति-भूत करके और कराके और सिंहासन रखकर आज्ञा वापस लौटाते हैं (कार्य समाप्ति की सूचना देते हैं) ।

२६. उसके बाद वह बल राजा प्रातःकाल के समय शैया से उठता है, उठकर पादपीठ से नीचे उतरता है, उतरकर जहाँ व्यायाम शाला है वहाँ जाता है आकर व्यायामशाला में प्रवेश करना है जैसा औपपातिक सूत्र में वर्णन है, वैसा ही यहाँ भी व्यायाम शाला एवं स्नानघर आदि का वर्णन जानना चाहिये,—यावत्-चन्द्रमा के समान प्रिय दर्शन ऐसा वह नराधिप स्नानघर से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला है, वहाँ

उत्तरपुरत्थिमे विसीभाए अट्ट भद्रासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्ध-
त्थगकयमंगलोवघाराइं रयावेइ, रयावेत्ता अप्पणो अत्तरसामंते
नाणा-मणि-रयण-मंडियं-जाव—जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणा-
मणिरयणभत्तिचित्तं...सुमउयं पभावतीए देवीए भद्रासणं रयावेइ,
रयावेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अट्ट गमहानिमित्तमुत्तत्थधारए
विविहंसंत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सदावेह । तए णं ते
कोडु वियपुरिसा-जाव-पडिसुणेत्ता बलस्सं रण्णो अंतियाओ
पडिनिकखंमंति, पडिनिकखंमिन्ता...हत्थियणपुरं नगरं
मज्झं-मज्झेणं जेणेव तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव
उवागच्छति, उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सदावेति ।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो कोडु वियपुरिसेहि
सदावियां-समाणा-जाव-सएहि सएहि गेहेहितो निग्गच्छति, निग्ग-
च्छित्ता हत्थियणपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव बलस्स रण्णो भवण-
वरवडंसए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भवणवरवडंसगपडिदु-
वारंसि एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला
जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयलपरि-
ग्गहियं दसंनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बलं रायं जएणं
विजएणं बद्धावेति ।

२७. तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलेणं रण्णा वंदिय-पूइय-
संकारियं-सम्माणिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्रास-
णेसु निसीयंति ।

तए णं से बले राया पभावतिं देविं जवणियंतरियं ठावेइ,
ठावेत्ता पुप्फ-फल-पडिपुण्हत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खण-
पाढए एवं वयासी—

एवं खलु देवानुप्पिया ! पभावती देवी अज्ज तंसि तारिस-
गंसि-जाव-सोहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवानुप्पिया !
एयस्स ओरालस्स-जाव-महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्ति-
विसेसे भविस्सइ ?

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रण्णो अंतियं एयमट्टुं
सोच्चा निसम्म...बलस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारे-
माणा, उच्चारेमाणा एवं वयासी—

आता है, वहाँ आकर पूर्व दिशा की ओर जिनका मुँह है, ऐसे
उत्तम सिंहासन पर बैठता है, बैठकर अपनी उत्तर पूर्व दिशा में—
ईशान कोण में—स्वत धवल वस्त्रों से आच्छादित और सरसों
द्वारा जिनका मंगलोपचार किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रख-
वाता है, रखवाकर अपने से न अग्नि दूर और न अग्नि निकट
अनेक मणि-रत्नों से मंडित—यावत्-यवनिका (पर्दा) लटकवाता
है, लटकवाकर अनेक प्रकार की मणि-रत्नों की रचना से चित्र
विचित्र.....सुकुमल ऐसा एक भद्रासन प्रभावती देवी के
लिये रखवाता है, रखवाकर कौटुम्बिक पुत्रों को बुलवाता है,
बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टांग महानिमित्त के सूत्र
और अर्थ के धारण करने वाले और विविध शास्त्रों के मर्मज्ञ
स्वप्न लक्षणों के पाठकों को बुलवाओ । उसके बाद वे कौटुम्बिक
पुरुष-यावत्-आज्ञा को स्वीकार करके बल राजा के पास से
निकलते हैं, निकलकर...हस्तिनापुर नगर के बीचों-बीच
होते हुए जहाँ स्वप्न लक्षण-पाठकों के घर थे वहाँ आते हैं वहाँ
आकर उन स्वप्न लक्षण पाठकों को बुलाते हैं ।

तत्पश्चात् वे स्वप्न लक्षण पाठक बल राजा के कौटुम्बिक
पुरुषों के बुलाये जाने पर यावत्-अपने-अपने घरों से निकलते हैं,
निकलकर हस्तिनापुर नगर के बीच में से होते हुए जिस तरफ
बल राजा का उत्तम महालय है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर श्रेष्ठ
महालय के द्वार के पास एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर जहाँ
बाहरी उपस्थानशाला हैं, जहाँ बल राजा है, वहाँ आते हैं, वहाँ
आकर हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्तक कर और अंजलि करके
जय-विजय शब्दों द्वारा बल राजा को वधाते हैं ।

२७. उसके बाद बल राजा के द्वारा वंदित, पूजित, सत्कारित,
सम्मानित हुए वे स्वप्न लक्षण पाठक पहले से रखे हुए भद्रासनों
पर बैठते हैं ।

तत्पश्चात् वह बल राजा यवनिका के अन्दर प्रभावतीदेवी
को बैठाता है बैठकर फल और पुष्प से परिपूर्ण हाथ वाला यह
बल राजा अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्न लक्षण पाठकों से इस
प्रकार बोला—

हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार आज प्रभावतीदेवी उस प्रकार के
वास गृह में यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जागी है तो हे
देवानुप्रियो ! ऐसे इस उदार-यावत्-महास्वप्न का दूसरा क्या
कल्याण रूप फल और वृत्ति विशेष होगा ?

तत्पश्चात् उन स्वप्न लक्षण पाठकों ने बल राजा की इस
वात को सुनकर (और अवधारित करके) बल राजा के समक्ष
स्वप्न शास्त्र का उच्चारण करते हुए इस प्रकार कहा—

एवमेयं देवानुप्पिया !—जावन्तं सुविणं सम्भं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रण्णा अन्नमणुण्णाया समाणी नाणा-मणि-रयण-भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अन्नमुट्ठेइ, अन्नमुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभं-ताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणमणुपविट्ठा ।

३०. तए णं सा पभावती देवी प्हाया कयवलिकम्मा-जाव-सव्वा-लंकारविभूसिया तं गम्भं...सुहं सुहेणं-परिवहति ।

तए णं सा पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं य राइंविद्याणं बीडक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरं लक्खण-वंजणगुणोववेयं माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंवरंग ससिसोमाकारं कंतं पिय-दसणं सुख्वं दारयं पयाया ।

३१. तए णं तीसे पभावतीए देवीए अंगपडियारियाओ पभावति देवि पसूयं जाणेत्ता जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छंति, उवाग-च्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु वलं रायं जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी— एवं खलु देवानुप्पिया ! पभावती देवी नवण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं-जाव-सुख्वं दारयं पयाया । तं एयणं देवानुप्पियाणं पियं निवेदेमो । पियं ते भवतु ।

३२. तए णं से बले राया अंगपडियारियाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्टुट्ठ-चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमलोमण-स्सिए हरिसवसविरुप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-वंचु-मालइयतणूए ऊसवियरोम-कूवे तारिंत अंगपडियारियाणं मउडवज्जं जहामालियं ओमोयं दलयइ, दलयित्ता सेतं रययामयं विमलस-लिलपुण्णं भिगारं पगिहइ, पगिहित्ता मत्थए धोवइ, धोवित्ता विजलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

जम्मसहुत्सवो—

३३. तए णं से बले राया कोडुं वियपुरित्ते सदागेई, सदावेत्ता एवं वयासी—

हे देवानुप्रिय ! यह इसी प्रकार ही है—यावत्-उस स्वयं को सम्यक् प्रकार से प्रार्थन करती है, प्रार्थन करके बल राजा की अनुमति पूर्वक अनेक प्रकार के मणि और रत्नों की रचना द्वारा चित्र विचित्र बने हुए भद्रासन से उठी, उठकर त्वरा रहित, वच-लता रहित, विलम्ब रहित रायहंस जैसी वाज से चलती हुई जहाँ अपना भवन है, वहाँ आई, वहाँ आकर अपने भवन में प्रवेश किया ।

३०. उसके बाद वह प्रभावतीदेवी स्नानकर, बलिकर्म-देव पुजा-कर-यावत्-सर्व अलंकारों से विभूषित हो.....उस गर्भ को सुख पूर्वक धारण करती है ।

तत्पश्चात् उस प्रभावतीदेवी ने नौ मास पूर्ण होने के पश्चात् और साढ़े सात रात्रि दिन बीतने के बाद मुकुनाज हाथ-भर और दोप-रहित प्रतिपूर्ण पंच इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले तथा लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त मानोन्मान प्रमाण से प्रतिपूर्ण, नुजात, सर्वांग सुन्दर चन्द्र के समान सौम्य कांत प्रियदर्शन, सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया ।

३१. उसके बाद प्रभावतीदेवी की अंगपरिचर्या करने वाली परिचारिकायें दासियां प्रभावतीदेवी के प्रसव हुआ जानकर, जहाँ बल राजा है वहाँ आईं, वहाँ आकर हाथ-जोड़ नतमस्तक पूर्वक अंजलि करके बल राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! प्रभावतीदेवी ने नौ मास सम्पूर्ण होने के बाद-यावत्—सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया है । तो देवानुप्रिय के लिये प्रिय रूप इस बात का हम निवेदन करते हैं और वह आपको प्रिय हो ।

३२. तत्पश्चात् वह बल राजा शरीर की सुश्रूपा करने वाली दासियों के पास से इस बात को सुनकर और अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट, हर्षोल्लास चित्त वाला आनन्दित, प्रीतिमन, परम सौमनस वाला, हर्षातिरेक से विकासमान हृदय वाला, मेघ धारा से सिंचित कदंब पुष्प की तरह रोमांचित शरीर वाला और ऊर्ध्वमुखी रोमराजि वाला होकर उन अंगरक्षिका दासियों को मुकुट के सिवाय पहने हुए सम्पूर्ण अलंकारों को देता है, देकर श्वेत रजतमय और निर्मल जल से भरे हुए कलश को लेता है, कलश को लेकर उन दासियों के मस्तक धोता है, धोकर जीविका के योग्य उचित विपुल प्रीतिदान देता है, प्रीतिदान देकर सत्कार सम्मान देता है, सत्कार सम्मान करके विसर्जित करता है ।

जन्म महोत्सव—

३३. तत्पश्चात्, वह, बल राजा को दुम्बिक पुरुषों को बुलाता है— बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

खिप्पामेव भो-देवानुप्पिया ! हत्थिणापुरे नयरे चारगसोहण करेह, करेत्ता भाणुम्माणवड्ढणं करेह, करेत्ता हत्थिणापुरं नगरं सन्भितरबाहिरियं आसिय-संमज्जिओवलितं-जाव-नंधवट्टिम्यं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य जूवसहस्सं वा चक्क-सहस्सं वा पूयामहामहिमसंजुत्तं उस्सवेह, उस्सवेत्ता ममेतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोट्टु वियपुरिसा बलेणं रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्टुत्ता-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणति ।

तए णं से बले रायां जणेव अट्टणसात्ता तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तं चेव-जाव-मज्जणधराओ पडिनिक्खमइ, पडि-निक्खमिता उस्सुक्कं उक्कं उक्कं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालाचं-राणुचरियं अणुदु यमुड्गं अमिलायमल्लदामं पमुड्दियपक्कीलियं सपुर-जणजाणवयं दसदिवसें ठिड्वडियं करेति ।

३४. तए णं से बले रायां दसाहियाए ठिड्वडियाए वट्टमाणीए सयए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे यं, सयए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य लाभे पडिच्छेमाणे य पडिच्छाधेमाणे य एवं विहरइ ।

महब्वलं त्ति नामकरणं अण्णे य सवकारा—
३५. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो-जाव-अयमेयाळ्वं गोणं गुणनिप्फसं नामधेज्जं करेति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए वलस्स रण्णे पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं 'महब्वले महब्वले' । तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेति महब्वले त्ति ।

३६. तए णं से महब्वले दारए पंचधाईपरिग्गहिए, तं जहा-खीर-घातीए एवं जहा वड्ढपइणस्स-जाव-निव्वाय-निव्वाघायत्तिं सुहं-सुहेणं परिवड्ढति ।

१. हट्टप्रतिज्ञ का वर्णन उववाई सूत्र में है । यह पूर्व जन्म में अम्बइ परिव्राजक था ।

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही हस्तिनापुर नगर में कैदियों को मुक्त करो, मुक्त करके मानोन्मान (माप-तोल) में वृद्धि करो; वृद्धि करके हस्तिनापुर नगर के अंदर-बाहर भाग में छिड़काव करो; साफ-सुथरा करो, सम्मार्जित करो, लेपन करो-यावत्-गंधवर्ति भूत करो और करवाओ, वैसा करके और कराके सहस्रयुषों की, सहस्र चक्रों की पूजा, महामहिमा सहित मत्कार करो, इस प्रकार करके मेरी यह आज्ञा वापस मुझे लौटाओ अर्थात् आज्ञा-नुसार-कार्य होने की मुझे सूचना दो ।

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष बल राजा की इस बात को सुनकर हाँपत सतुष्ट होकर-यावत्-उसकी आज्ञा को वापस लौटाते हैं । (सूचित करते हैं)

उसके बाद वह बल राजा जहाँ व्यायामशाला है, वहाँ आता है, वहाँ आकर—इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये—यावत्-स्तानगृह से निकलता है निकल कर नगर और जनपदवासियों सहित दस दिन तक उत्शुल्क—जकात रहित, कर रहित, प्रधान-उत्कृष्ट (विक्री का निषेध किया होने से) अदेय, अमेय, सुभट के प्रवेश रहित, दण्ड और कुदण्ड रहित, अधरिमयुक्त, उत्तम गणिकाओं और नाटककारों युक्त, अनेक तालानुचरों से युक्त, निरन्तर वजते हुए मृदंगों सहित ताजे पुष्पों की माला युक्त प्रमोद और क्रीड़ायुक्त ऐसी स्थिति-पतित—(कुल क्रमानुगत पुत्र जन्म-महोत्सव की परम्परा के अनुसार) पुत्र जन्म महोत्सव मनाता है ।

३४. उसके बाद जब वह दस दिवस का स्थिति-पतित पुत्रजन्मोत्सव चालू था तब वह बल राजा सौ रुपये, हजार रुपये और लाख रुपये के खर्च वाले दोनों और भागों को देते और दिलाते और सौ रुपये के, हजार रुपये के और लाख रुपये के लाभ को लेते हुए लिवाते हुए विचरता है ।

महाबल यह नामकरण और अन्य संस्कार—
३५. तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता-यावत्-इस प्रकार का गुण-युक्त और गुणनिष्पन्न नामकरण करते हैं—जिससे हमारा यह बालक बल राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिये हमारे इस पुत्र का नाम 'महाबल महाबल' हो उसके बाद उस बालक के माता-पिता उसका 'महाबल' ऐसा नामकरण करते हैं ।

३६. उसके बाद उस महाबल नामक पुत्र का पाँच धार्यों द्वारा पालन कराया । जैसे खीर धार्य आदि—इस प्रकार यह सब वर्णन हट्टप्रतिज्ञा की तरह, जानना-यावत्-वापु रहित, व्याघ्रात् रहित स्थान में मुख-पूर्वक वृद्धिगत होता है ।

तए णं तस्स महावलस्स द्वारगस्स अम्मापियरो अणुपुब्बेणं
ठिहवड्डियं वा चंदसूरदंसावणियं वा जागरियं वा नामकरणं वा
परंसाभणं वा पयचंक्रमावणं वा जेमामणं वा पिंडवद्धणं वा पंज्जावणं
वा कण्णवेहणं वा संबच्छरपडिलेहणं वा चोलोयणं वा उव्वणयणं वा,
अण्णायणं वा ब्रह्मणि गन्भाधान-जम्मणमादिद्याइं कोउयाइं करेति ।

सिखाराहणं पाणिग्रहणं य—

३७. तए णं तं महावलं कुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्टवासगं
जाणित्ता सोभंणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि कलायरियस्स
उव्वेत्ति, एणं जहा दढप्पइण्णे-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए यावि
होत्था ।

३८. तए णं तं महावलं कुमारं उम्मुक्कवालभानं-जाव-अलंभोग-
समत्थं विजाणित्ता अम्मापियरो अट्ट पासायवड्डेसए कारेति—
अव्भुग्गयमूसिए-पहसिए इव वण्णओ जहा—रायपसेगइज्जे-जाव-
पडिख्वे । तेसि णं पासायवड्डेसगाणं बहुमज्झदेसभागे, एत्थ णं
सहेगं भवणं कारेति-अगेगखंभत्तयसंनिविट्ठं वण्णओ जहा रायपसेग-
इज्जे पेच्छाघरमडवांसि-जाव-पडिख्वे ।

तए णं तं महावलं कुमारं अम्मापियरो अण्णया कयाइ सोभ-
णंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि ण्हायं कयवलिकम्मं कय-
कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं पमक्खणग-ण्हाण-
गीय-वाइय-पसाहण-अट्टंगतिलग-कंकण-अविहव्वहुउवणीयं मंगल-
सुजंपिएहि य वरकोउयमंगलोवयार-कयसंतिकम्मं सरिसियाणं
सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण-रूव-जोव्वणगुणोव्वेयाणं
विणीयाणं कयको उय-मंगलपायच्छित्तणं सरिसएहं रायकुल्लोहत्तो
आणितेल्लियाणं अट्टहं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिं
गिण्हविंसु ।

३९. तए णं तस्स महावलस्स कुमारस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं
पोइदाणं दलयंति, तं जहा—

अट्ट हिरण्णकोडीओ, अट्ट सुवण्णकोडीओ—

अट्ट मज्जे मज्जम्पवरे, अट्ट कुंडलजोए कुंडलजोयम्पवरे,
अट्ट हारे हारम्पवरे, अट्ट अद्धहारे अद्धहारम्पवरे, अट्ट एगावलीओ
एगावलिम्पवराओ, एणं मुत्तावलीओ, एणं कण्णवलीओ, एणं
रयणावलीओ—

तत्परचात् उत महावल कुमार के माता-पिता अनुक्रम से
स्थिति प्रतिष्ठा-अभोग-व, सुपे-वत्त के वरंन धर्मजापरन, नाम-
करण, मुहूर्तों बनाना, पैरों से चलावा, अन्नदानना, कपकपन,
बोलना, कर्णच्छेद, बर्ष गाठ पूजा-गिवा-कर्म, उपनयन और
इन्के सिवाय दूसरे बहुत से गन्भाधान, जन्म आदि कौतुक
करते हैं ।

शिक्षाग्रहण और पाणिग्रहण—

३७. उसके बाद उस महावल कुमार को माता-पिता कुछ अधिक
आठ वर्ष की उम्र का जानकार गुभ, विधि, करण, नक्षत्र और
मुहूर्त में कलाधार्य के पास भेजते हैं इत्यादि बहुत सब वर्णन इस
प्रतिज्ञ की तरह कहना चाहिये—यावत्—विषयोपभोग करने में
समर्थ हुआ ।

३८. तत्परचात् उत महावल कुमार को दादादावरया वीरने-
यावत्-विषयोपभोग करने के योग्य जानकर उसके माता-पिता
आठ प्रासादावतंसकों का निर्माण कराते हैं—ये प्रासाद अत्यन्त
ऊँचे हैं, मानों हंसते ही हों इत्यादि वर्णन-राजप्रसीयसूत्र में
कहे गये अनुसार जानना-यावत्-ये प्रासाद अत्यन्त सुन्दर हैं ।
उन प्रासादों के ठीक मध्यभाग में एक विशाल भवन तैयार
करवाते हैं—जो संकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट है इत्यादि वर्णन
करना चाहिये जैसा राजप्रसीय सूत्र में किया है, प्रशागह और
मण्डप के वर्णन की तरह-यावत्-सुन्दर था ।

तत्परचात् माता-पिता ने अन्यदा किसी एकदिवस गुभ
तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र, मुहूर्त में जिसने स्नान, बलिकर्म-
पूजा-कर्म, कौतुक और मंगल रूप प्रायश्चित्त किया है ऐसे उस
महावल कुमार को सर्व अलंकारों से विभूषित कर, प्रमाज्जन
स्नान, गीत वादित्र, प्रसाधन, आठ अंगों में तिलक और कंकण
पहनाकर मंगल और आशीर्वाद पूर्वक उत्तम रक्षा आदि
कौतुक रूप और मंगल रूप उपचारों के द्वारा शांति कर्म करके
योग्य, समान रंग रूप वाली समान वय वाली, समान लावण्य,
रूप, यौवन और गुणों से युक्त, विनीत और जिन्होंने कौतुक
और मंगल रूप प्रायश्चित्त किया हुआ है ऐसी समान राजकुल
से लाई गई आठ उत्तम राजकन्याओं के साथ उसका एक
दिवस में पाणिग्रहण कराया ।

३९. उसके बाद उस महावल कुमार के माता-पिता इस प्रकार
का यह प्रीतिदान देते हैं, वह इस प्रकार है—

आठ कोटि हिरण्य, आठ कोटि सुवर्ण—

मुकुटों में उत्तम आठ मुकुट, कुण्डल युगल में उत्तम आठ
कुण्डलों की जोड़ी, हारों में उत्तम ऐसे आठ हार, अर्धहारों में
उत्तम ऐसे आठ अर्ध हार, एकावलिकाओं में उत्तम ऐसी आठ
एकावलियाँ, इसी प्रकार मुक्तावलियाँ कनकावलियाँ, रत्ना-
वलिआँ, जानना चाहिये ।

अद्दु कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए ।

अद्दु खोमजुयलाइं खोमजुयलप्पवराइं ।

एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं ।

अद्दु सिरीओ, अद्दु, हिरीओ ।

एवं धिईओ, कितीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ ।

अद्दु नंदाइं, अद्दु भदाइं, अद्दु तले तलप्पवरे सव्वरयणामए, नियगवरभवणकेऊ अद्दु झए झयप्पवरे, अद्दु वए वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएणं वएणं ।

अद्दु नाडगाइं नाडगप्पवराइं, वत्तीसइवद्धेणं नाडएणं ।

अद्दु आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए ।

अद्दु हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए,

अद्दु जाणाइं जाणप्पवराइं, अद्दु जुंगाइं जुंगप्पवराइं, एवं सिवियाओ, एवं संदमाणिशाओ, एवं गिल्लीओ, थिल्लीओ ।

अद्दु त्रियडजागाइं वियडजागप्पवराइं, अद्दु रहे पारिजाणिए, अद्दु रहे संगामिए, अद्दु आसे आसप्पवरे, अद्दु हत्थी हत्थिप्पवरे ।

अद्दु गामे गामप्पवरे दत्तकुजताहस्सिएणं गामेणं ।

अद्दु दासे दासप्पवरे, एवं दासीओ, एवं किंकरे, एवं कंचु-इच्चे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए ।

अद्दु सोवणिए ओलंबगदीवे, अद्दु रूपामए ओलंबगदीवे, अद्दु सुवग्गएणामए ओलंबगदीवे । अद्दु सोवणिए उक्कंणगदीवे, एवं चेव तिण्णि वि,

अद्दु सोवणिए पंजरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि ।

अद्दु सोवणिए थाले, अद्दु रूपामए थाले, अद्दु सुवग्गण-रूपामए थाले ।

अद्दु सोवणियाओ पत्तीओ ३, अद्दु सोवणियाइं थासगाइं ३, अद्दु सोवणियाइं मल्लगाइं ३, अद्दु सोवणियाओ तलियाओ ३ ।

कड़ा युगल में उत्तम ऐसी आठ कड़ों की जोड़ी इसी प्रकार चूटित जोड़ी-त्राजूवदों की जोड़ी ।

रेशमी वस्त्र युगल में उत्तम ऐसी आठ रेशमी वस्त्रों की जोड़ी ।

इसी प्रकार सूती वस्त्रों की जोड़ियों में, इसी प्रकार पट्ट-युगलों की जोड़ियों में, इसी प्रकार दुकूलयुगलों की जोड़ियों में समझना चाहिये ।

आठ श्री, आठ ह्री, इसीप्रकार धी, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मीदेवी की प्रतिमायें जानना ।

आठ नन्द, आठ भद्र, ताड़ में उत्तम ऐसे आठ-ताड़ वृक्ष इन सबको रत्नमय जानना, अपने भवन के केतु रूप-चिन्ह रूप-ध्वज में उत्तम ऐसे आठ ध्वज, दस हजार गायों का एक व्रज-गोकुल होता है ऐसे व्रज में उत्तम आठ व्रज ।

नाटकों में उत्तम और वर्त्तीस पात्रों द्वारा जो किये जा सकते हैं ऐसे आठ नाटक ।

घोड़ों में उत्तम ऐसे आठ घोड़े, ये सब रत्नमय और भांडा-गार के समान जानना ।

हाथियों में उत्तम ऐसे आठ रत्नमय हाथी—जो सर्व रत्नों से अलंकृत हैं और कोपागार के सदृश हैं ।

यानों में उत्तम ऐसे आठ यान, युग्मों में उत्तम ऐसे आठ युग्म (विशेष प्रकार का यज्ञ) इसी प्रकार शिविकायें, इसी प्रकार स्पन्दमानिकायें, इसी प्रकार गिल्लियां (हाथी पर रखे जाने वाले हौदा, अंवाड़ी) इसी प्रकार थिल्लियां (घोड़ों के पलाण) ।

विकटयानों में प्रधान ऐसे आठ विकटयान (तुले वाहन) आठ परियानिक (क्रीड़ायान) रथ, संग्राम के योग्य आठ रथ, अश्वों में प्रधान ऐसे आठ अश्व, हाथियों में उत्तम ऐसे आठ हाठी ।

जिसमें दस हजार कुल रहते हैं, वह एक गाँव कहलाता है, अतः ग्रामों में उत्तम ऐसे आठ ग्राम ।

दासों में उत्तम ऐसे आठ दास, इसी प्रकार दासियां, किंकर, कंचुकी, वर्षधर और इसी प्रकार महत्तर ।

आठ सुवर्ण के, आठ रजत के आठ सुवर्ण रजत के अवलंबनदीप । आठ सुवर्ण के उत्कंचन दीप, इसी प्रकार तीनों ही, जाति के प्रकार के ।

आठ सुवर्ण के पंजर दीप, इसी तरह तीनों ही जाति के ।

आठ सुवर्ण के धाल, आठ रजत के धाल, आठ सुवर्ण-रजत के धाल ।

आठ सुवर्ण की पत्रियां ३, आठ सुवर्ण की तासक ३, आठ सुवर्ण के मल्लक ३, आठ सुवर्ण की तलिका-त्ररत्रियां ३ ।

अट्ठ सोवणियाओ कविचियाओ ३, अट्ठ सोवणिए अचण्डए ३, अट्ठ सोवणियाओ अचण्डकाओ, ३, अट्ठ सोवणिए पायपीडए ३ ।

अट्ठ सोवणियाओ भित्तिधाओ ३, अट्ठ सोवणियाओ फरोडियाओ ३, अट्ठ सोवणिए पल्लंके ३, अट्ठ सोवणियाओ पडिसेज्जाओ ३ ।

अट्ठ हंसासणाइं, अट्ठ कोंचासणाइं, एयं गयलासणाइं, उन्नवासणाइं, एणवासणाइं, वीहासणाइं, भव्वासणाइं, पववासणाइं, मगरासणाइं, अट्ठ पउमासणाइं, अट्ठ उतसासणाइं अट्ठ दिसासोवत्थियासणाइं ।

अट्ठ तेल्ल-समुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे ।

अट्ठ कोट्ठ-समुग्गे, एवं पत्त-चोधग-तगर-एल-हरियाल-हिंगुलय-मणोसिल-अंजण-समुग्गे, अट्ठ तरियाव-समुग्गे ।

अट्ठ खुज्जाओ जहा ओववाइए-जाव-अट्ठ पारसीओ ।

अट्ठ छत्ते, अट्ठ छलधारीओ चेडीओ, अट्ठ चामराओ, अट्ठ चामरधारीओ चेडीओ ।

अट्ठ तालियट्टे, अट्ठ तालियट्टधारीओ चेडीओ, अट्ठ करोडियाधारीओ चेडीओ,

अट्ठ खीरवाईओ, अट्ठ मज्जणवाईओ, अट्ठ मंडणवाईओ अट्ठ खेल्लाट्टणवाईओ, अट्ठ अंकवाईओ, अट्ठ अंगमद्वियाओ, अट्ठ उम्मद्वियाओ अट्ठ ष्हाद्वियाओ, अट्ठ पत्ता-हियाओ,

अट्ठ वण्णगपेत्तीओ, अट्ठ चुण्णगपेत्तीओ, अट्ठ कीडागारीओ, अट्ठ दवकारीओ,

अट्ठ उवत्थाणियाओ, अट्ठ नाडइज्जाओ, अट्ठ कोडुंविणीओ, अट्ठ महाणत्तिणीओ,

अट्ठ भंडागारिणीओ, अट्ठ अब्भाधारिणीओ, अट्ठ पुप्फ-धरणीओ, अट्ठ पाणिधरणीओ, अट्ठ वलिकारियाओ, अट्ठ सेज्जाकारीओ, अट्ठ अंबिभतरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ बाहिरियाओ पडिहारीओ,

अट्ठ मालाकारीओ, अट्ठ पेलणकारीओ, अण्णं वा सुवहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा इंसं वा विउलधण-कणग-रयण-मणि-भोत्तियसंख-सिल-प्पवाल - रत्तरयण - संतसारसाव-

आठ सुवर्ण की कमानहाकन (स्त्री), अथवा २ आठ सुवर्ण के नौवा-यात्रा विद्या ३ आठ सुवर्ण की कौटुंबिक ३, आठ सुवर्ण के पायपीड ३ ।

आठ सुवर्ण की भित्ति (कमान) ३, आठ सुवर्ण की फरोडिया, ३ आठ सुवर्ण के पल्ल ३, आठ सुवर्ण के पडि सेज्जा-ओ की ३ ।

आठ हंसावन, आठ कोंचावन, एयं गयलावन, उन्नवासवन, एणवासवन, वीहावन, भव्वासवन, पववासवन, मगरावन, आठ पउमावन, आठ उतसावन अट्ठ दिसासोवत्थियावन ।

आठ तेल्ल-समुग्गे - जहा रायप्पसेणइज्जे - कर्म-सम्पन्न-समुग्गे के कमाना-यात्रा विद्या सम्पन्न-समुग्गे ।

आठ कोट्ट-समुग्गे - एवं पत्त-चोधग-तगर-एल-हरियाल-हिंगुलय-मणोसिल, अंबिण, मंगल, अट्ठ तरियाव-समुग्गे ।

आठ खुज्जा-आठ जहा ओववाइए-जाव-अट्ठ पारसी-सुवर्ण-आठ नौवा-यात्रा विद्या सम्पन्न-समुग्गे के कमाना-यात्रा विद्या सम्पन्न-समुग्गे ।

आठ छत्ते, आठ छलधारी-आठ चेडी, आठ चामर, आठ चामर-धारी-आठ चेडी ।

आठ तालियट्टे, आठ तालियट्टधारी-आठ चेडी, आठ करोडिया-आठ चेडी - पाय-पीड, आठ पाय-पीड-आठ चेडी ।

आठ खीर-दासियाँ, आठ मज्जण-दासियाँ, आठ मंडण-दासियाँ, आठ खेल्लाट्टण-दासियाँ । आठ अंक-दासियाँ, आठ अंगमद्वि-दासियाँ, आठ उम्मद्वि-दासियाँ - पण-चंपी करने वाली दासियाँ, आठ ष्हाद्वि-दासियाँ (अधिक मर्त्य करने वाली-मालिश करने वाली दासियाँ) आठ पत्ता-करने वाली दासियाँ, आठ प्रसाधन करने वाली दासियाँ ।

आठ चंदन घिसने वाली, आठ चुर्ण पीसने वाली, आठ क्रीड़ा कराने वाली, आठ परिहास कराने वाली ।

आठ सभा में उपस्थित रहने वाली - सदा पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक - साथ में जाने वाली, आठ रसोई करने वाली ।

आठ भंडागार का रक्षण करने वाली, आठ आदर-सत्कार (आतिथ्य) करने वाली, आठ पुष्प धारण करने वाली - लाने वाली आठ पानी पिलाने वाली, आठ वाहर की, आठ शैया विछाने वाली, आठ अन्दर की प्रतिहारो, आठ वाहर की प्रतिहारी ।

आठ माला बनाने वाली, आठ प्रेषण करने वाली (दूत कर्म करने वाली) दासियाँ और इनके सिवाय और बहुत हिरण्य-सुवर्ण, कांस्य वस्त्र तथा विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती,

एज्जं, अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं, पकामं परिभोत्तुं, पकामं परियाभाएउं ।

४०. तए णं से महव्वले कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्ण-कोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउड-प्पवरं दलयइ, एव तं चेव सच्चं-जाव-एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुवहुं हिरण्णं वा सुवण्णं वा कंसं वा दूंसं वा विउल्लधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-संतसारसाव-एज्जं, अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं परिभोत्तुं, पकामं परियाभाएउं ।

तए णं से महव्वले कुमारे उप्पि पासायवरगए जहा जमाली-जाव-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरइ ।

धम्मघोसाणगारागमणं—

४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे जाइसंपन्ने वण्णओ जहा केसिसामिस्स-जाव-पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुविं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे, जेणेव सहसंववणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरुवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

शंख, मूंगा, रक्त रत्न-माणिक आदि सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छा पूर्वक देने, इच्छा पूर्वक भोगने और इच्छानुसार परिभोग करने के लिये परिपूर्ण था—पर्याप्त था ।

४०. उसके बाद वह महावल कुमार प्रत्येक भार्या को एक एक हिरण्य कोटि देता है, एक एक सुवर्ण कोटि देता है, मुकुटों में उत्तम ऐसा एक एक मुकुट देता है, इसी प्रकार वह सभी यावत-एक एक प्रेषण करने वाली दासी देता है तथा इसके अलावा और दूसरा भी बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा माणिक आदि सार-भूत धन वैभव दिया जो सात पीढ़ी तक इच्छानुसार देने, भोगने और इच्छानुकूल परिभोग करने पर भी कम नहीं होने वाला था अर्थात् सात पीढ़ी तक के लिये पर्याप्त—काफी था ।

तत्पश्चात् वह महावल कुमार उत्तम प्रसाद में ऊपर बैठकर जमाली की तरह पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगता हुआ विचरण करता है ।

धर्मघोष-अनगार आगमन—

४१. उस काल, उस समय में विमलनाथ अर्हन्त तीर्थकर का प्रपौत्र प्रशिष्य धर्मघोष नामक अनगार था, वह जातिसम्पन्न था इत्यादि वर्णन केशीस्वामी की- तरह जानना-यावत-पांच सौ अनगारों के साथ अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जहाँ हस्तिनापुर नगर है, जहाँ सहस्राश्रवन उद्यान है वहाँ आता है, वहाँ आकर यथायोग्य अवग्रह धारण कर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता है ।

१ पीडदाणं :—गाहाओ :—

अट्ठहिरण-सुवन्नयकोडीओ मउडकुण्डलाहारा ।
 कणगावलि-रयणावलि-कडगजुगा तुडियजोयखोमजुगा ।
 सिरि-हिरि-घिइ-कित्तीओ बुद्धी लच्छी य होंति अट्ठट्ठ ।
 हत्थी जाणा जुग्गाओ, सीया तह संदमाणी गिल्लीओ ।
 फिकर-कंचुइ-मयहर, वरिसघरे तिविह दीव थाले य ।
 पावीठ भिसिय करोडियाओ पल्लंके य पडिसिज्जा ।
 हंसे कुञ्चे गहडे ओणय पणए य दीहभद्दे य ।
 तेल्ले कोट्ठसमुग्गा पत्ते चोए य तगर एला य ।
 खुज्जा चिलाइ वामणि वडभीओ वव्वरीओ वसियाओ ।
 लासिय लउसिय दमिणी, सिंहली तह आरवि पुलिदी य ।
 छत्तधरी चेडीओ, चामरघर-त्तालिवंठधरीओ ।
 अट्ठंगमदियाओ उम्महिं-विगमंडियाओ य ।
 उच्छाविंया उ तह, नाडइल्ल कोडुम्बिणीं महाणसिणी ।
 यलकारि य सेज्जाकारियाओ, अब्भंतरी उ वाहिरिया ।

अट्ठट्ठहार एकावली उ, मुत्तावली अट्ठ ॥ १॥
 वडजुग-पट्टजुगाइ, दुक्कलजुगलाइ अट्ठट्ठ ॥ २॥
 नंदा भद्दा य तला, झय-वय-नांडाइ आसेव ॥ ३॥
 थिल्ली इ वियड जाणा, रह गामा दास-दासीओ ॥ ४॥
 पाई थासग पल्लग, कतिविय अबएड अवपक्का ॥ ५॥
 हंसाइहिं विसिट्ठा, आसणभेया उ अट्ठट्ठ ॥ ६॥
 पक्खे मयरे पउमे, होइ दिमा सोत्थिए क्कारे ॥ ७॥
 हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासवसमुग्गे ॥ ८॥
 जोणिय पल्लवियाओ, इसिणिया घोसणिया य ॥ ९॥
 पक्कणि वहणि मुरंठी, सन्नरीओ पारसीओ य ॥ १०॥
 सकरोडियाधरीओ, चीराति पंचधावीओ ॥ ११॥
 वण्णय-चुण्णय-पीसीय कीलाकारी य दवगारी य ॥ १२॥
 भडारि अज्जघारि, पुक्कधरी पाणीयधरी य ॥ १३॥
 पडिहारी नालाटी, पत्तपकारी उ अट्ठट्ठ ॥ १४॥

—पाया० नु० १, अ० १, सु० २१ टीका ।

तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडग-त्तिय-चउवक-चच्चर-
चउमुह-महापह-पहेसु महया जणसद्देइ वा-जाव परिसा पज्जु-
वासइ ।

महव्वलकुमारेण धम्मसत्तणं—

४२. तए णं तस्स महव्वलस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं वा
जगवूहं वा जाव-जणसत्तिवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा
एवं जहा जमाली तहेव चिंता, तहेव कंचुइज्ज-पुरिसं सद्दावेत्ति,
सद्दावेत्ता एवं वयासी—

किण्णं देवाणुप्पिया ! अज्ज हत्थिणापुरे नगरे इंदमहे इ वा-
जाव-निग्गच्छति ।

तए णं से कंचुइ-पुरिसे महव्वलेणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे
हट्ठुट्ठे धम्मघोसस्स अणगारस्स आगमणगहियविणिच्छिए
करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु गहव्वलं
कुमारं जएणं विजएणं वट्ठावेइ, वट्ठावेत्ता एवं वयासी—

नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज हत्थिणापुरे नगरे इंदमहे इ
वा—जाव निग्गच्छति । एवं खलु देवाणुप्पिया ! विमलस्स अरहओ
पओपए धम्मघोसे नामं अणगारे हत्थिणापुरस्स नगरस्स वहिया
रासंघणे उज्जाणे अहापडिख्वं ओमगहं ओगिण्हत्ता संजमेणं
तथत्ता अण्णाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते वहवे उग्गा, भोगा-
जाव-निग्गच्छति ।

महव्वलेण पव्वज्जाभिलासकहणं—

४३. तए णं से महव्वले कुमारे तहेव रहवरेणं निग्गच्छति ।
धम्मत्था जहा केत्तिसामिस्स ।

तो वि तहेव अम्मापियरं आपुच्छइ, पवरं—धम्मघोसस्स
अणगारस्स अंतियं मुडे अयिता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।
तहेव वुत्तपडिमुत्तिया, मयरं—इनाओ य ते जाया ! विउलराय-
कुत्तियाओ कत्ताकुत्तव्वत्तलालाजिय-मुत्तोवियाओ सेसं तं
वेव-जाव-सहे अस्समाइं वेव महव्वलकुमारं एवं वयासी—

मं इव्वत्तो से जाया ! एतदिस्समधि रज्जभिरि पात्तिए ।

तए णं से महव्वले कुमारे अम्मापिड-पयणमणुवत्तमाणे
वुत्तियाओ परिइइइ ।

तव हस्तिनापुर नगर के श्रृंगटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर,
चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि में बहुत से लोग आपस में बात-
चीत करते हैं—यावत्-परिषद् उपासना करती है ।

महाबलकुमार द्वारा धर्म-श्रवण—

४२. तत्पश्चात् वह महाबल कुमार बहुत से मनुष्यों के शब्दों को
और जन कोलाहल को सुनकर-यावत्-जनसमूह को देखकर
इत्यादि जमाली की तरह समझना चाहिये, उसी प्रकार वह महा-
बल कुमार कंचुकी-पुरुष को बुलाता है उसे बुलाकर इस प्रकार
कहता है—

हे देवानुप्रिय ! आज क्या हस्तिनापुर नगर में इन्द्र महो-
त्सव है अथवा अन्य कोई उत्सव-यावत्-निकलता है ?

तत्पश्चात् वह कंचुकी पुरुष महाबलकुमार की इस बात
को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट होकर धर्मघोष अनगर के आग-
मन को निश्चित रूप से जानकर दोनों हाथ जोड़ अंजलि करके
महाबल कुमार को जय-विजय शब्दों से वधाता है, वधाकर इस
प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रिय ! आज हस्तिनापुर नगर में इन्द्र मह अथवा
अन्य दूसरा उत्सव नहीं है—यावत्—निकलते हैं । हे देवानुप्रिय !
विमलनाथ तीर्थंकर के प्रशिष्य धर्मघोष नामक अनगर हस्तिना-
पुर नगर के बाहर सहस्राश्रवण नामक उद्यान में यथायोग्य
अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए
विचरण करते हैं, इसीलिये ये बहुत से उग्रकुल के भोगकुल के
आदि—यावत्—निकलते हैं ।

महाबल द्वारा प्रव्रज्याभिलाष कथन—

४३. तत्पश्चात् वह महाबल कुमार केशीस्वामी की तरह राय
प्रसेणी सूत्र में केशी स्वामी के आगमन के वर्णन की तरह जानना ।
उत्तम रथ में बैठकर निकलता है, धर्मकथा सुनता है ।

वह भी उसी प्रकार माता-पिता से पूछता है, आज्ञा माँगता
है, किन्तु इतना अन्तर है कि धर्मघोष अनगर के पास मुण्डित
होकर ग्रहवास त्याग आनगारिक प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ । उसी
प्रकार की उक्ति-प्रत्युक्ति, लेकिन अन्तर यह है कि तुम्हारी ये
पत्नियाँ विपुल ऐसे राजकुलों में उत्पन्न हुईं बालायें हैं, कलाओं
में कुशल हैं, सदैव यथोचित सुख-साधनों द्वारा जिनका लालन-
पालन किया गया है अथवा जो सदा ही सुख साधनों का भोगो-
पभोग करती रही हैं इत्यादि सब पूर्व वर्णन के अनुसार जानना—
यावत्—अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार से इस प्रकार कहा—

हे पुत्र ! एक दिन के लिए भी हम तुम्हारी राज्य श्री—
राज्यलक्ष्मी देखने के लिए उत्सुक आतुर-इच्छुक हूँ ।”

तव वह महाबल कुमार माता-पिता के वचन का अनुसरण
करके चुप रहा ।

४४. तए णं से वले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, एवं जहा सिवभद्दस्स तहेव रायाभित्तो भाणियव्वो-जाव अभित्तंचिंति, अंभित्तित्ति करयलपरिगहियं दसन्हं सिरत्तावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु महव्वलं कुमारं जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

भण जाया ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? सेसं जहा जमालिस्स तहेव जाव—

महव्वलपव्वज्जा देवभद्रो सुदंसणरूवेणं जम्म य—

४५. तए णं से महव्वले अणगारे धम्मघोसस्स अणगारस्स अंतियं सामाइयमाइयाइं चोद्वस पुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठम-दसम-दुवाल्लोहिं मासइ-मासखमणोहिं विचित्तोहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवाल्लस-वासाइं सामण्यपरियागं पाउणइ; पाउणित्ता मांसियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणत्ताए छेदेइ छेदेत्ता आलोइय-पडिवकंते सभाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-ताराव्वणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूओ जोयण-कोडीओ, बहूओ जोयण कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उणइत्ता सोह-म्मोसाण सणकुमार-माहिंदे कप्पे वीईवइत्ता वंभलोए कप्पे देवत्ताए उववत्ते ।

तत्थ णं अत्येगतियाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठित्ती पणत्ता ।

तत्थ णं महव्वलस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठित्ती पणत्ता ।

४६. से णं तुमं सुदंसणा ! वंभलोणे कप्पे दस सागरोवमाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे दिहरित्ता तओ चेव देवलोगाओ आउपखएणं भववखएणं ठिइवखाएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव वाणियग्गामे नगरे सेट्ठिकुल्लि पुत्तत्ताए पच्चाआए ।

तए णं तुमे सुदंसणा ! उम्मुक्कवाल्लभावेणं विण्यय-परिणय-मेत्तेणं जोव्वणंगमणुपत्तेणं तहाव्वणं थेराणं अंतियं केवलि-पणत्ते धम्मे नित्तंते, सेवि य धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए ।

त सुदट्ठु णं तुमं सुदंसणा ! इदाणि पि करेत्ति ।

४७. से तेणट्ठेणं सुदंसणा ! एवं वुच्चइ— अतिय णं एतेत्ति पत्तिओयम-सागरोवमाणं उएत्ति वा अवचएत्ति वा ।

सुदंसणस्स जातोत्तरण णाणं पव्वज्जाइं य—

४८. तए ण तस्स सुदंसणस्स सेट्ठिस्स संमणस्स भगवओ महा-योरस्स अंतिय एयमट्ठं तोच्चा निसम्मं सुणेणं अज्जवत्ताणेणं

४४. तत्पश्चात् वह बल राजा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है इत्यादि सब शिवभद्र की तरह राज्याभिषेक जानना—यावत्— राज्याभिषेक किया । राज्याभिषेक करके और दोनों हाथ-जोड़ नतमस्तक पूर्वक अंजलि करके महावल कुमार को जय विजय शब्दों से वधाया, वधाकर इस प्रकार कहा—

हे पुत्र ! कहो कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हें क्या अर्पित करें ? इत्यादि शेष जमालि की तरह जानना— यावत्—

महावल प्रव्रज्या, देवभव और सुदर्शन के रूप में जन्म—

४५. उसके बाद वह महावल अनगर धर्मघोष अनगर के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ भक्त, पण्ड, अण्ड, दशम, द्वादशभक्त, मास अर्ध-मास खमण आदि विचित्र तप कर्म द्वारा आत्मा को भावित करके सम्पूर्ण बारह वर्ष श्रमण पर्याय का पालन करता है, पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को अत्यन्त निर्मल बनाता हुआ निराहार साठ भक्तों को पूर्ण करता है, पूर्ण कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो मरण समय में कालकर ऊर्ध्वलोक में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, ताराओं ने भी ऊपर बहुत से योजनों, सैकड़ों योजन, हजारों योजन, लाखों योजन, करोड़ों योजन, कोटिकोटि योजना से ऊपर दूर जाकर नौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्पों को उलांघ कर ब्रह्मलोक कल्प में देव रूप उत्पन्न हुआ ।

वहाँ कितने ही देवताओं की स्थिति दस सागरोपम की कही है ।

वहाँ महावल देव को भी दस सागरोपम की स्थिति कही है ।

४६. हे सुदर्शन ! तू उस ब्रह्मलोक कल्प में दस सागरोपम पर्यन्त दिव्य भोग्य भोगों को भोगकर उस देवलोक से आयु क्षय होने पर, भवक्षय होने पर और स्थिति क्षय होने पर नत्काल च्यवित होकर यहीं वाणिज्य ग्राम नगर में श्रेष्ठ कुल पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ है ।

तत्पश्चात् हे सुदर्शन ! तुमने वचन को धिताने के बाद विज्ञ और परिणत युवावस्था प्राप्त होने पर तयारूप स्थितियों के पास से केवलि प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण किया और वह धर्म भी तुम्हें इच्छित स्वीकृत और कचिकर हुआ ।

हे सुदर्शन ! इस समय में भी जो तुम कर रहे हो यह अच्छा है ।

४७. इसलिए हे सुदर्शन ! ऐसा कहा जाता है कि इन भयोपम और सागरोपम का क्षय और अवचय होता है ।

सुदर्शन की जानि स्मरण ज्ञान और प्रव्रज्यादि—

४८. उनके बाद श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुनकर और समझकर उन सुदर्शन नेत्र को सुभ अध्ययनार्थी, सुभ परिणामी

सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं
कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णी-
पुव्वेजःतीसरणे समुप्पन्नो, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेति ।

४६. तए णं से सुदंसणे सेट्ठी समणेणं भगवया महावीरेणं संभा-
रियपुव्वभवे दुग्गुणाणीयसड्ढसंवेगे आणंदसुपुण्णनयणे समणं भगवं
महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ
नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भते !—से जहेयं तुम्हे वदह त्ति कट्ठु उत्तर
पुरत्थिमं विसीभागं अवक्कमइ, सेसं जहा उसभदत्तस्स जाव-सव्व-
दुक्खप्पहीणे, नवरं—चौदस पुव्वाइं अहिज्जइ, बहुपडिपुण्णाइं
दुवात्तस वासाइं सामणपरियागं पाउणइ, से संतं चेव ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति ।

—भग० स० ११, उ० ११ ।

और विशुद्ध लेश्याओं द्वारा तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने
से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए संज्ञी रूप शोभन
जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे भगवान् कथित बात को
अच्छी तरह जानता है ।

४६. तत्पश्चात् सुदर्शन सेठ को श्रमण भगवान् महावीर द्वारा
पूर्वभव का स्मरण कराये जाने से दुग्गुनी श्रद्धा और संवेग उत्पन्न
हुआ, नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूरित हो गये और तब उसने
श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की,
प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके
इस प्रकार कहा—हे भगवन् ! तुमने जो कहा है, वह इसी प्रकार
है, हे भगवन् ! उसी प्रकार है, हे भगवन् ! अविद्यथ सत्य है, हे
भगवन् ! यह असंदिग्ध है, हे भगवन् ! यह इच्छनीय है, हे
भगवन् ! यह स्वीकार करने योग्य है । हे भगवन् ! यह इच्छनीय और
स्वीकार करने योग्य है—इस प्रकार कहकर उत्तर पूर्व दिग्भाग—
ईशानकोण में गया, शेष सभी वर्णन ऋषभदत्त की तरह जानना
—यावत्—वह सुदर्शन सर्व दुःखों से रहित हुआ, परन्तु विशेष
यह है कि वह चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है और सम्पूर्ण
वारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करता है, शेष सभी पूर्व
प्रमाणानुसार समझना ।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी तरह
है । इति ।

२. मुणिसुव्वयत्तित्थे कत्तियसेट्ठिआइणं कहाणयं

सव्वकत्तस महावीरसमोसरणे नट्टविही—

५०. तेणं कालेणं तेणं समएणं विसाहा नामं नगरो होत्था—
यण्णओ । बहुपुत्तिए चेइए—वण्णओ । सामी समोसडे-जाव-पज्जु-
पणइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविदे देवराया वज्जपाणी
पुरंदरे एणं जहा मात्तसमत्तए विइए उइसेए तहेव दिव्वेणं जाणवि-
माणेणं आगओ । नवरं—एदध अनियोगा वि अत्थिय-जाव वत्तीस-
नियिअं नट्टविहिं उइसेति उवदसेत्ता-जाव-पडिगए ।

२. मुनिसुव्वत तीर्थं में कार्तिक श्राष्टि आदि का कथानक

शक्र द्वारा महावीर समवसरण में नाट्य विधि—

५०. उस काल, उस समय में, विष्णाखा नामक नगरी थी—
वर्णन । बहुपुत्रिक नाम का चैत्य था—वर्णन । महावीर
स्वामी का पदार्पण हुआ—यावत्—परिपद् पयुं पासना करती है ।

उस काल, उस समय में, शक्र, देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि,
पुरन्दर इत्यादि सोलहवें शतक के दूसरे उद्देशक में श्री शक्र
की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार दिव्य यान विमान में बैठकर
आया; विशेष यह है कि इस प्रसंग में आभियोगिक देव भी होते
हैं—यावत्—वत्तीस प्रकार की नाट्य विधि दिखाता है दिखाकर
—यावत्—वापस चला गया ।

सक्कस्स पुव्वभव-पुच्छा—

५१ भंते त्ति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“जहा तइयसए ईसाणस्स तहेव कूडागार-विट्ठंतो, तहेव पुव्वभवपुच्छा-जाव अभिसमन्नागया ?”

सक्कस्स पुव्वभवो कत्तिय सेट्ठी—

५२ गोयमादि ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

एवं खलु गोयमा ! तेषं कालेणं तेषं समएणं जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ । सहसंववणे उज्जाणे—वण्णओ ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे कत्तिए नामं सेट्ठी परिचतति अड्ढे-जाव-वहूजणस्स अपरिभूए नेगमपढमासणिए, नेगमट्ठसहस्सस्स वहुसु कज्जेसु य कारणेसु य कोडुम्बेसु य-एवं जह रायप्पसेणइज्जे चित्ते-जाव-चक्खुभूए, नेगमट्ठसहस्सस्स सयस्स य कुडुम्बस्स आहेवच्चं-जाव-करेमाणे पालेमाणे, समणोवासए, अहिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहं तवोकम्भेहं अष्णाणं भावेमाणे विहरइ ।

हत्थिणापुरे मुणिसुव्वयागमणं—

५३ तेषं कालेणं तेषं समएणं मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे जहा सोलसमसए तहेव-जाव-समोसडे-जाव-परिसा पज्जुवासइ ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी इमीसे कहाए तददट्ठे हट्ठतुट्ठे एवं जहा एयकारसमसए सुदंसणे तहेव निग्गओ-जाव-पज्जुवासति ।

तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियस्स सेट्ठिस्स तीसे य महत्ति-महालियाए परिताए धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया ।

कत्तियस्स पुव्वज्जा-संक्कप्पो—

५४ तए णं से कत्तिए सेट्ठी मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मं तोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्टाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

शक्र के पूर्वभव की पृच्छा—

५१. हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गीतम श्रमण भगवान् महावीर को वंदना, नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘जैसे तीसरे शतक में ईशानेन्द्र के सम्बन्ध में कूटागारशाला का दृष्टान्त और पूर्वभव की पृच्छा है, उसी प्रकार यहाँ भी—यावत्—उसे ऋद्धि अभिसमन्वित हुई वहाँ तक सभी समझना चाहिए ।

शक्र का पूर्वभव कार्तिक श्रेष्ठी—

५२. हे गीतम ! इस प्रकार कहकर श्रमण भगवान् महावीर ने गीतम से इस प्रकार कहा—

हे गीतम ! उस काल, उस समय में, जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में हस्तिनापुर नामक नगर था—वर्णन ! सहस्राश्रवन नामक उद्यान था—वर्णन ।

उस हस्तिनापुर नगर में आद्य-धनिक—यावत्—किसी से पराभव को प्राप्त न करे ऐसा, व्यापारियों में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाला, एक हजार आठ व्यापारियों के ब्रह्म ने कार्यों और कारणों में और कुटुम्बों में—यावत्—चक्षुरूप ऐसा कार्तिक नामक श्रेष्ठी रहता था, जैसा राजप्रथनीयमूत्र में चित्त का वर्णन किया है, वैसा यहाँ सभी वर्णन करना चाहिए तथा एक हजार आठ व्यापारियों और अपने कुटुम्ब का आधिपत्य—यावत्—पालन करता हुआ रहता था, वह श्रमणोपासक और जीवा-जीव तत्व का जानकार था—यावत्—विधिपूर्वक तप कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करता था ।

हस्तिनापुर में मुनिसुव्वत-आगमन—

५३. उस काल, उस समय में धर्म के आदिकर इत्यादि वर्णन जैसा सोलहवें शतक में किया गया है वैसा सभी वर्णन यहाँ करना चाहिए, मुनि सुव्रत अर्हन्त का पदार्पण हुआ—यावत्—पर्यदा पर्युपासना करती हैं ।

उसके बाद वह कार्तिक श्रेष्ठी इस बात (भगवान् के पदार्पण की बात) को सुनकर हर्षित और मंतुष्ट हुआ इत्यादि जैसा ग्यारहवें शतक में मुदर्शन सेठ के प्रसंग में कहा है, वैसा नव यहाँ समझना चाहिए, वैसे ही निकला-यावत्-पर्युपासना करना है ।

तत्पश्चात् मुनिसुव्वत अर्हन्त ने कार्तिकश्रेष्ठी और उम विशाल पर्यद को धर्मोपदेश दिया-यावत्-परिपद वापिस गये ।

कार्तिक का प्रव्रज्या मन्तव्य—

५४. तत्पश्चात् वह कार्तिक श्रेष्ठी मुनिसुव्वत अर्हन्त से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर प्रमन्न एवं मन्तुष्ट होकर स्थान से उठता है उठकर मुनि सुव्रत अर्हन्त से वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इन प्रकार बोला—

एवमेयं भन्ते !-जाव-से जहेयं तुव्भे वदह जं, नवरं-देवानु-
प्पिया ! नेगमट्ठसहस्सं आपुच्छामि, जेट्ठपुत्तं च कुडुम्बे ठावेमि, तए
णं अहं देवानुप्पियाणं अंतियं पव्वयामि ।

अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी-जाव-पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिता
जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गेहे, तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता नेगमट्ठसहस्सं सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु देवानुप्पिया ! सए मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं
धम्मं निसंते, से वि य मे धम्मं इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए ।
तएणं अहं देवानुप्पिया-संसारभयुक्किग्गा जाव-पव्वयामि, तं
तुव्भे णं देवानुप्पिया ! किं करेह, किं ववसह, के भे हियइच्छिए,
के भे सामत्थे ?’

५५ तए णं तं नेगमट्ठसहस्सं तं कत्तियं सेट्ठि एव वयासी—

जइ णं देवानुप्पिया ! संसारभयुक्किग्गा-जाव-पव्वइस्संति ।
अहं देवानुप्पिया ! के अण्णे आलंघणे वा, आहारे वा,
पडिवंधे वा ?

अहं वि णं देवानुप्पिया ! संसारभयुक्किग्गा भीया जन्मज
मरणं देवानुप्पिएहं सट्ठि मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं मुण्डा
भक्त्तिता अगाराओ अणगारियं पव्वयामो ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी तं नेगमट्ठसहस्सं एव वयासी—

जदि णं देवानुप्पिया ! संसारभयुक्किग्गा सए सट्ठि मुणि-
सुव्वयस्स अरहओ अंतियं मुण्डा भक्त्तिता अगाराओ अणगारियं
पव्वयाह, तं गच्छहं णं तुव्भे देवानुप्पिया ! सएसु गिहेसु, विपुलं
असणं पाण खाइमं साइमं उव्वखडावह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-
संबंधि-परियण विउलेण अत्तण-पाण-खाइम-साइनेगं वत्थ-गंध-
मल्लालंकारेण य सक्कारेह सम्माणेह, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग
सयण-संबंधि-परिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्ते कुडुम्बे ठावह, ठावेत्ता
तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण जेट्ठपुत्ते आपुच्छह. आपु-
च्छिता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ डुइह, डुइहत्ता मित्त-
नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणे ण य समणुगम्ममाणमगा सव्वि-

हे भगवान् ! यह इमी प्रकार है—यावत्—जाव जैसा कहो
हैं, परन्तु हे देवानुप्रिय ! एक हजार आठ वणियों से कुछर
और ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब वास्तव में स्थापित करने या
देवानुप्रिय के पास स्वीकार होना चाहता हूँ ।

हे देवानुप्रिय ! जैसा मुझे जैसा करो, प्रतिकंध—वितन्त्र
मन करो ।

उसके बाद वह कालिकश्रेष्ठी—यावत्—वितन्त्रता है,
निकलकर जहाँ इस्तिनापुर नगर है, वहाँ अपना घर है, वहाँ
आता है आकर एक हजार आठ वणियों को बुलाता है, बुलाकर
उससे इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रियो ! मैंने मुनिव्रत अर्हन्त से धर्म श्रवण किया
है और वह धर्म मुझे इष्ट, शिष्टा इष्ट और हितकर है तथा
हे देवानुप्रियो ! उस धर्म को सुनकर मैं संसार-भय से उद्विग्न
हुआ हूँ—यावत्—प्रयत्न होने की इच्छा है, इसलिए हे देवानु-
प्रियो ! तुम क्या करना चाहते हो, क्या प्रवृत्ति करना चाहते हो,
तुम्हारे हृदय को क्या इष्ट है और तुम्हारा सामर्थ्य क्या है ?’

५५. उसके बाद उन एक हजार आठ वणियों ने उस कालिक
श्रेष्ठी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! यदि तुम संसार भय से उद्विग्न होकर—
यावत्—प्रव्रज्या ग्रहण करोगे तो हे देवानुप्रिय ! हमारा दूसरा
कौनसा आलंघन है, कौन आहार है और दूसरा कौन प्रति-
बन्ध है ?

हे देवानुप्रिय ! हम लोग भी संसार भय से उद्विग्न हुए हैं,
जन्म-मरण से भयभीत हैं, अतएव आप देवानुप्रिय के साथ मुनि
सुव्रत अर्हन्त के पास मुण्डित होकर गृहत्याग का त्यागकर अन-
गारत्व अंगीकार करेंगे ।

तत्पश्चात्, कालिक श्रेष्ठी ने उन एक हजार आठ
वणियों से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! यदि आप लोग संसार भय से उद्विग्न
और जन्म-मरण से भयभीत हैं और मेरे साथ ही मुनिसुव्रत
अर्हन्त के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या
ग्रहण करने के इच्छुक हैं तो हे देवानुप्रियो ! तुम अपने-अपने
घर जाओ और विपुल, अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार
करवाओ, तैयार करवाकर मित्रों जाति जनों, पारिवारिक जनों,
सम्बन्धियों और परिजनों को आमन्त्रित करो, आमन्त्रित करके
उन मित्रों जाति जनों कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का
विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, गंध, माला अलंकारों
द्वारा सत्कार सम्मान करो और उन्हीं मित्रों, जातिजनों,
कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को
मुखिया रूप में स्थापित करो, स्थापित कर उन मित्रों, जाति

इडीए-जाव-डुडुहि, निग्घोसनादियरवेणं अकालपरिहीणं चैव मम अंतियं पाउब्भवह ।

५६. तए णं तं नेगमट्ठसहस्सें पि कत्तियस्स सेट्ठिस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेति पडिसुणेत्ता जेगेव साइं-साइं गिहाइं तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उव्वख-डावेति, उव्वखडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं त्रिउ लेणं असणपाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्मागेइ, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्ते कुडुम्बे ठावेति, ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्ते य आपुच्छइ, आपुच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिगीओ सीयाओ वुह्ति, वुह्तिता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं जेट्ठपुत्ते हि य समणुग्गममाणमग्गा सविड्डीए-जाव-डुडुहि-निग्घो-सनादियरवेणं अकालपरिहीणं चैव कत्तियस्स सेट्ठिस्स अंतियं पाउब्भवति ।

५७. तए णं से कत्तिए-सेट्ठी विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उव्वखडावेति जहा गंगदत्तो-जाव-सीयं वुह्ति, वुह्तिता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं जेट्ठपुत्ते गं नेगमट्ठसहस्सेण य समणुग्गममाणमग्गे सविड्डीए-जाव-डुडुहे-निग्घोसनादियरवेणं हरियगापुरं नगरं मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, जहा गंगदत्तो-जाव-आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोइ, आलित्त-परित्ते णं भंते ! लोए-जाव-आगुगामियत्ताए, भविस्सति, तं इच्छामि णं भंते ! नेगमट्ठसहस्सेण सट्ठि सयमेव पव्वावियं-जाव-धम्ममाइ-विखयं ।

नेगमट्ठसहस्सेणं सट्ठि कत्तियस्स पव्वज्जा—

५८. तए णं मुणिसुव्वए अरहा कत्तियं सेट्ठि नेगमट्ठसहस्सेणं सट्ठि सयमेव पव्वावेति-जाव-धम्ममाइव्वइ—एवं देवानुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं-जाव-संजमियव्वं ।

जनों कुटुम्बी जनों, सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से पूछो, पूछकर सहस्र पुरुषों द्वारा जिसका वहन किया जा सके ऐसी शिविका में बैठो, बैठकर मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बी जनों, सम्बन्धियों परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए सर्व-ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के घोषपूर्वक अविलम्ब मेरे पास आओ ।

५६. उसके बाद वे एक हजार आठ वणिक् कार्तिक श्रेष्ठी के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके जहाँ अपने-अपने घर हैं, वहाँ आते हैं, आकर विपुल परिमाण में अशन, पान-खादिम, स्वादिम भोजन वनवाते हैं, वनवाकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन द्वारा और वस्त्र, गंध, माला अलंकारों से सत्कार सम्मान करते हैं और उन्हीं मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब के प्रमुख पद पर स्थापित करते हैं, स्थापित करके उन मित्रों, जातिजनों, स्वजनों सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से आज्ञा लेते हैं, आज्ञा लेकर पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं पर आरूढ़ होते हैं, आरूढ़ होकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के घोषपूर्वक विना विलम्ब किये वे कार्तिक श्रेष्ठी के पास उपस्थित होते हैं ।

५७. तत्पश्चात् वह कार्तिक श्रेष्ठी गंगदत्त की तरह पुष्कल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम, तैयार करवाता है—यावत्—शिविका में बैठता है, बैठकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों, ज्येष्ठ पुत्र और एक हजार आठ वणिकों द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्यों के घोषपूर्वक हस्तिनापुर नगर के मध्य में से गंगदत्त की तरह निकलता है—यावत्—हे भगवन् ! यह सप्ताह चौ तरफ से सुलग और प्रज्वलित हो रहा है—यावत्—आपका अनुगमन करना श्रेय रूप होगा, इसलिये हे भगवन् ! इन एक हजार आठ वणिकों के साथ मैं आपके पास स्वयमेव प्रव्रजित होने—यावत्—धर्म श्रवण करने के लिए इच्छुक हूँ ।

अष्टाधिक सहस्रवणिकों सहित कार्तिक की प्रव्रज्या—

५८. तत्पश्चात् मुनिसुव्वत अर्हन्त ने इन कार्तिक श्रेष्ठी को एक हजार आठ वणिकों के साथ स्वयमेव प्रव्रजित किया—यावत्—धर्मोपदेश दिया—हे देवानुप्पियो ! इन प्रकार चलना, इस प्रकार बैठना—यावत्—इस प्रकार नमन का वाचन करना ।

१. गंगदत्त का वर्णन भगवती सूत्र अक्षर १६ उ० ५ में अगले प्रसंग ३ में देखें ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी नेगमट्टसहस्सेण सद्धिं मुणिसुव्वयस्स अरहओ इमं एयारूवं धम्मियं उववेसं संपडिवज्जइ, तमाणाए तहा गच्छति-जाव-संजमति ।

तए णं से कत्तिए सेट्ठी नेगमट्टसहस्सेण सद्धिं अणगारे जाए—
ईरियासमिए-जाव-गुत्तवंभयारी ।

कत्तियस्स सक्कत्तं भावीकाले सिद्धी य—

५६. तए णं कत्तिए अणगारे मुणिसुव्वयस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं भंतियं सामाइयमाइयाइं चोइस पुव्वाइं अहिज्जइ, अहि-ज्जिता व्हूहिं चउत्थ-छट्ठइम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासणमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मोहिं अप्पाणं भावेमाणे वहुपडिपुण्णाइं दुवालस-वासाइं सामणपरियाणं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेइ, झोसेत्ता सद्धिं मत्ताइं अणसणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मो कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देव-दूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए सक्के देविदत्ताए उववत्ते ।

६०. तए णं से सक्के देविदे देवराया अहुणोववण्णमेत्तए सेसं जहा गंगदत्तस्स-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहित्ति, नवरं-ठित्ती दो सागरोवमाइं, सेसं तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भग० स० १८, उ० २ ।

तदनन्तर वह कार्त्तिक श्रेष्ठी एक हजार आठ बगिचों के साथ मुनिमुत्रत प्रज्ञेन द्वारा निर्वाण इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार में स्वीकार करता है और उनकी आज्ञा प्रमाण उसी रीति में उसका मान-रख करता है—यावत्—मरण का पालन करता है ।

तत्पश्चात् वह कार्त्तिक श्रेष्ठी एक हजार आठ बगिचों के साथ अणगार हुआ—इपांयनिमुत्त—यावत्—सुख प्रप्तारो ।

कार्त्तिक का प्रकटन और भावांशाल में सिद्धि—

५६. उसके बाद वह कार्त्तिक अणगार मुनिमुत्रत प्रज्ञेन के तयारूप स्वयिरी के पास सामायिक आदि शीर्ष पुरीं का अध्ययन करता है, अध्ययन करके बहुत से शत्रु, शत्रु, दशम, द्वादश, मास अर्धमास आदि विविध ना कर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ परिपूर्ण बाद में ही आनन्द पर्याय का पालन करता है, पालन करते मन्वेधना द्वारा अपना की प्रीतिपूर्वक सेवा करता है, सेवा करके साठ भक्त का अनयन द्वारा छेदन करता है, छेदन करके आज्ञागता, प्रतिक्रमण लर समाधिपूर्वक मरण समय में मरण करते सोधर्मकला के सोधर्मा-वर्तमक विमान में आगन उपपात सभा में देवदृष्ट से आच्छादित देव शैया में अंगुल के असंख्यातवां भाग प्रमाण अवगाहना से शक्र देवेन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ ।

६०. उसके बाद तत्काल उत्पन्न हुआ वह देवेन्द्र देवराज गरु इत्यादि समस्त कथन गंगदत्त की तरह कथन करना चाहिये— यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा, परन्तु विरोध यह है कि स्थिति दो सागरोपम प्रमाण है, शेष सभी कथन पूर्व प्रमाणवत् जानना ।

हे भगवान् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवान् ! वह इसी प्रकार है ।

३. मुणिसुव्वयतित्थे गंगदत्तो

गंगदत्तस्स पुव्वभव-पुच्छा

६१. अहो णं भंते ! गंगदत्ते देवे महिड्ढिए महज्जुइए महव्वले महायसे महेसक्खे—

गंगदत्तेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती किणा लद्धा-जाव-जं णं गंगदत्तेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी जाव-अभिसमण्णागया ?

३. मुनिमुत्रत तीर्थ में गंगदत्त

गंगदत्त की पूर्वभव-पृच्छा—

६१. हे भगवान् ! यह गंगदत्त देव महान ऋद्धि, महाद्युति, महान बल, महान यश और महान सुख वाला है ।

हे भगवान् ! गंगदत्त देव ने वह दिव्य देवऋद्धि और दिव्य देवद्युति कैसे लब्ध-प्राप्त की—यावत् गंगदत्त देव को वह दिव्य देव-ऋद्धि—यावत् अभिसमन्वित हुई ?

६२. गोयमा ! दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ । सहसंबवणे उज्जाणे—वण्णओ ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे गंगदत्ते नाम गाहावती परिवसति—अड्ढे-जाव-व्हज्जणस्स अपरिभूए ।

हत्थिणापुरे मुणिसुव्वयागमणं, गंगदत्तेणं य धम्मसवणं—

६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे-जाव सव्वण्ण सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव पकड्ढिज्जमाणेणं पकड्ढिज्जमाणेणं सीसगणसंपरिवुडे पुव्वानुपुंवि चरमाणे गामा-णुगामं व्हज्जमाणे सुहंमुहेण विहरमाणे जेगेव हत्थिणापुरे नगरे जणेव सहसंब-वणे उज्जाणे-जाव-विहरति । परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासति ।

६४. तए णं से गंगदत्ते गाहावती इमीसे कहाए लद्धुठे समाणे हट्टुत्तुठे पहाए कयवलिकम्भे-जाव-अप्पमहाधामरगालंकिव सरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमिता पायविहारचारेणं हत्थिणापुर नगरं मज्जंमज्जेणं निग्गच्छति, निग्गच्छिता जेगेव सहसंबवणे उज्जाणे, जेगेव मुणिसुव्वए अरहा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता मुणिसुव्वयं अरहं तिक्खुत्तो आयाहिगयाहिणं करेइ-जाव-तिविहाए पज्जुवासगाए पज्जुवासति ।

तए णं मुणिसुव्वए अरहा गंगदत्तस्स गाहावतिस्स तीसे य महत्तिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया ।

तए णं से गंगदत्ते गाहावती मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुठे उट्टाए, उट्ठेति, उट्ठेता मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंविता नमंसित्ता एवं वयासी—

सद्धामि णं भंते ! निग्गयं पावपणं-जाव-त्ते जहेयं तुव्वे पदह, जं नवरं देवानुप्पिया ! जेट्टुपुत्तं कुड्ढे ठावेनि, तए णं अहं देवानुप्पियाणं अंतियं मुंढे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

६२. हे गौतम ! ऐसा कहकर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

हे गौतम ! उस काल, उस समय इसी जम्बूद्वीप में भारत-वर्ष में हस्तिनापुर नाम का नगर था—वर्णन । सहस्राश्रवन नामक उद्यान था—वर्णन ।

उस हस्तिनापुर नगर में आड्य—यावत्—बहुत से मनुष्यों ने अपरिभूत ऐसा गंगदत्त नाम का गृहपति रहता था ।

हस्तिनापुर में मुनि सुव्रत का आगमन और गंगदत्त द्वारा धर्म श्रवण—

६३. उस काल, उस समय आदिकर—यावत्—सर्वज्ञ सर्वदर्शी मुनिसुव्रत नामक अर्हन्त—यावत्—जिनके आगे आकाश में धर्म चक्र चलता है और देव धर्मध्वज लिये चलते रहते हैं ऐसे, शिष्य-गण से संपरिवृत होकर पूर्वानुपूर्वी विचरण करते हुए ग्रामानु-ग्राम में गमन करते हुए और मुञ्जूवक विहार करते हुए जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जिस ओर सहस्राश्रवन नाम का उद्यान था—यावत्—विहार करते हैं । पर्पदा निकली—यावत्—पयु-पासना करती है ।

६४. तत्पश्चात् वह गंगदत्त नामक गृहपति इस बात को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, स्नान किया, बलिकर्म किया—यावत्—मात्रा में अल्प किन्तु महा मूल्यवान् आभूषणों से शरीर को अलं कृत करके अपने घर से निकला, निकलकर पैदल चलकर हस्तिनापुर नगर के मध्य में से होता हुआ जिस तरफ सहस्राश्रवन उद्यान है और उसमें जहाँ मुनिसुव्रत अर्हन्त हैं, वहाँ आना है, वहाँ आकर मुनिसुव्रत अर्हन्त की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है—यावत्—तीन प्रकार की पयुपासना द्वारा पयुपासना करता है ।

तदनन्तर मुनिसुव्रत अर्हन्त ने उस गंगदत्त गृहपति और उस विशाल पर्पदा को धर्मोपदेश दिया—यावत्—पर्पदा वापन लौटी ।

उसके बाद वह गंगदत्त गृहपति मुनिसुव्रत अर्हन्त से धर्म श्रवण कर और अवधारण करके हर्षित एवं मनोमनुक्त होकर खड़ा हुआ, खड़े होकर मुनिसुव्रत अर्हन्त को वंदन नमन करता है, वंदन नमन करके इस प्रकार बोला—

हे भगवन् ! मैं निर्बन्ध प्रवचन में श्रद्धा करता हूँ—यावत्—आप जिस प्रकार, जैसा वदते हैं, उन्ने वैसा ही मानता हूँ, विशेष यह है कि हे देवानुप्पिय ! उच्छ्रेष्ठ पुत्र की वृद्धि के रूप में स्थापित करके आप देवानुप्पिय के धर्म गृहस्थान का त्यागकर आनन्दार्तिक शोभा अर्जित

अहामुहं देवाणुष्मिमा ! मा पडिच्यं करेह ।

गंगदत्तस्स पव्वज्जा, देवत्तं य--

६५. तए णं से गंगदत्ते गाहावई मुणिसुव्वयस्स अरहणो अंतिमाओ सत्तसंबवणाओ उज्जायणाओ पडिनिवघममि, पडिनिवघमिमा जेणेव हट्ठियणापुरे नगरे जेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता धिउलं प्रसाण-पाण-याइम-साइमं उवमण्डावेति, उवमण्डावेत्ता मित्त-नाइ-निघण-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा प्हाए जहा पूरणे जाव-जेठुपुत्तं कुट्टुंवे ठावेति ठावेत्ता तंमिसा-नाइ-निघण-सयण-संबंधि-परियणं जेठुपुत्तं च आमुच्छइ, आपुच्छिता पुरिससत्तहा-वसहिणं सीयं वुरुहति, वुरुहिता मित्त-नाइ-निघण-सयण-सयधि-परिजणेणं जेठुपुत्तेण य तनणुगम्ममाणमणे सत्थिउडीए-जाव-दुत्तुहि-निग्घोसनावितरवेणं हट्ठियणापुरं नगरं मज्झमज्जेणं निग-च्छइ; निगच्छिता जेणेव तहसंबवणे उज्जाणे तंणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता छत्तावित्ते-तित्तवगरात्तिसए पात्तति । एवं जहा उदापणे जाव-सयनेव आभरणं ओ पुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमूट्टेयं लोयं करेति, करेत्ता जेणेव मुणिसुव्वए अरहा एव जहेव उदापणे तहेव पव्वइए, तहेव एवकारस अंगाइं अहिउज्जइ-जाव-मात्तियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि-भत्ताइं अणत्तणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिचकंते समाहिपत्ते कालमात्ते कालं किच्चया महासुक्के कप्पे महात्तामाणे विमाणे उववायत्तभाए देवत्तयणिउज्जंति-जाव-गंगदत्तदेवत्ताए उववन्ने ।

तए णं से गंगदत्ते- देवे अहुणोववन्नमेत्तए समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छति, तं जहा--

आहारपज्जत्तीए-जाव-भासा-मणपज्जत्तीए । .

६६. एवं खलु गोयमा ! गंगदत्तेणं सा दिव्वा देविड्डी सा दिव्वा देवज्जुती से दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागया ।

गंगदत्तस्स-णं भते ! देवस्स केवत्तियं-कालं ठिंती पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्तरस सागरोवमांइं ठिंती पण्णत्ता ।

इ इह-वृत्तयः नैव भूय दुः, पंचविहा, विमण्ड का कटीः

गंगदत्त से गंगदत्त देवोऽस्य--

६५. तए णं से गंगदत्ते गाहावई मुणिसुव्वयस्स अरहणो अंतिमाओ सत्तसंबवणाओ उज्जायणाओ पडिनिवघममि, पडिनिवघमिमा जेणेव हट्ठियणापुरे नगरे जेणेव उवागच्छति, उवागच्छिता धिउलं प्रसाण-पाण-याइम-साइमं उवमण्डावेति, उवमण्डावेत्ता मित्त-नाइ-निघण-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा प्हाए जहा पूरणे जाव-जेठुपुत्तं कुट्टुंवे ठावेति ठावेत्ता तंमिसा-नाइ-निघण-सयण-संबंधि-परियणं जेठुपुत्तं च आमुच्छइ, आपुच्छिता पुरिससत्तहा-वसहिणं सीयं वुरुहति, वुरुहिता मित्त-नाइ-निघण-सयण-सयधि-परिजणेणं जेठुपुत्तेण य तनणुगम्ममाणमणे सत्थिउडीए-जाव-दुत्तुहि-निग्घोसनावितरवेणं हट्ठियणापुरं नगरं मज्झमज्जेणं निग-च्छइ; निगच्छिता जेणेव तहसंबवणे उज्जाणे तंणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता छत्तावित्ते-तित्तवगरात्तिसए पात्तति । एवं जहा उदापणे जाव-सयनेव आभरणं ओ पुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमूट्टेयं लोयं करेति, करेत्ता जेणेव मुणिसुव्वए अरहा एव जहेव उदापणे तहेव पव्वइए, तहेव एवकारस अंगाइं अहिउज्जइ-जाव-मात्तियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि-भत्ताइं अणत्तणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिचकंते समाहिपत्ते कालमात्ते कालं किच्चया महासुक्के कप्पे महात्तामाणे विमाणे उववायत्तभाए देवत्तयणिउज्जंति-जाव-गंगदत्तदेवत्ताए उववन्ने ।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह गंगदत्त देव पांच प्रकार की पर्याप्तियों द्वारा पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ, यथा—आहार पर्याप्ति—यावत्—भाषा; मनःपर्याप्ति ।

६६. इस प्रकार हे गौतम ! उस गंगदत्त ने वह दिव्य देव ऋद्धि दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वित किया है ।

हे भगवन् ! उस गंगदत्त देव की स्थिति कितने काल की कही है ?

हे गौतम ! उसकी स्थिति सत्रह सागरोपम की कही है ।

गंगदत्तस्स सिद्धी—

६७. गंगदत्ते ण भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउबखएणं भव-
खएणं ठिइवखएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गच्छिहिति ? कहि
उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिग्गिहिति-जाव-सव्वदुवखाणं अंतं-
काहिति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—मग० स० १५, उ० ५

गंगदत्त की सिद्धि—

६७. हे भगवन् ! वह गंगदत्त देव आयु क्षय, भव क्षय और स्थिति
क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ
जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा—यावत्—
दुःखों का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है हे भगवन् ! वह इसी
प्रकार है ।

४. अरिष्टनेमित्तये चित्तसंभूज्जकथाणयं ४. अरिष्टनेमित्तये चित्रसंभूतीय कथानक

वंभदत्त-चित्त संभूआणं जम्मकहणं—

६८. जाईपराजिओ खलु, कासि नियाणं तु हट्ठिणपुरमि ।
चुलणीए वंभदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ।१।

कंपिल्ले संभूओ, चित्तो पुणं जाओ पुरिमतालमि ।
सेट्टिकुलमि विसाले, एम्मं सेउणं पव्वइओ ।२।

कांपिलमि चित्तसंभूयाणमागामणं पुंवंभवेकहणं यं—

६९. कांपिलमि य नयरे, समागया वो वि चित्तसंभूया ।
सुह-दुख-फलविवागं, कहेति ते एवकमेवकस्स ।३।

चवकवट्टी महिड्डीओ, वंभदत्तो महायसो ।
भापरं वहुमाणेणं, इमं वयणमव्ववी ।४।
आसीमु भापरा दोवि, अत्तमत्तवसाणुगा ।
अत्तमत्तमपुरत्ता, अन्नमन्न-हिएलिणो ।५।

दात्ता दसणे आसी, मिया कालिजरे नगे ।
हंसा मयगतोराए, सोयागा कासिभूमिए ।६।

येया य देयतोगम्मि, आसि अन्हे महिड्डीया ।
इमा णो छट्ठिया आदी, अत्तमत्तएणं जा विणा ।७।

ब्रह्मदत्त-चित्र-संभूत का जन्म कथन—

६८. जाति से पराजित हुये संभूत मुनि ने हस्तिनापुर में चक्रवर्ती
होने का निदान किया था । वहाँ से मरकर वह पद्मगुल्म विमान
में देव हुआ और फिर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में चुलनी की कुक्षि
से जन्म लिया ।१।

संभूत कांपित्य नगर में और चित्र पुरिमताल नगर में
विशाल श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ और वह धर्म श्रवण कर
प्रव्रजित हो गया ।२।

कांपित्यनगर में चित्र-संभूत का आगमन और पूर्वभय कथन—

६९. कांपित्य नगर में चित्र और संभूत दोनों आये और मिले ।
उन्होंने परस्पर एक-दूसरे से सुख और दुःख रूप कर्म फल के
विपाक सम्बन्ध में वार्तालाप किया ।३।

महान् श्रद्धि सम्पन्न और महान् योगस्वी ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती
ने बहुत ही आदर के साथ अपने भाई को इन प्रश्न पूछे—
इनके पूर्व हम दोनों परस्पर एक-दूसरे के प्रति अनुभूत-
वशवर्ती और परस्पर द्विधी भाई-भाई थे ।४-५।

हम दोनों इनार्थ देव में दान, कविजर पर्वत पर मृग-सूत-
गंगा के किनारे हंस और कानी देव में आशान रूप से ।६।

हम दोनों देवलोक में महान् श्रद्धि से सम्पन्न देव में । यह
हमारा छठवां भव है जिनमें हम एक-दूसरे को छोड़कर दूसरे-
दूसरे उत्पन्न हुए हैं ।७।

कम्मफलचिन्ता—

७०. कम्मा नियाणपयडा, तुमे राय ! विंचित्तिया ।
तेसि फलविवागेण, विप्पओगमुवागया । ८।
सच्च-सोय-प्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ? । ९।

सर्वं सुचिणं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्तिय ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि, आया ममं पुण्णफलोववेए । १०।

जाणाहि संभूय ! महाणुभागं, महिड्डियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं ! इड्ढी जुई तस्स वि य
प्पभूया । ११।

महत्थरूवावयणप्पभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्जे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणो ववेया, इहज्जज्जे समणो मि जाओ
। १२।

बंभदत्तेण चित्तं पडिभोगा सेवणामत्तणं
७१. उच्चोयए महु कक्के य बंत्ते, पवेइया आसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्तधणवभूयं, पत्ताहि पंवात्तगुणो ववेयं । १३।

नट्ठेहि गीएहि य वाइएहि, नारीजगाहि परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू ! मम रोयई पव्वज्जा हु
दुक्खं । १४।

चित्तमुणिणा कामभोगस्स निन्दणं—
७२. तं पुव्वनेहेण कयाणुराणं, नराहिवं कामगुणेषु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाह-
रित्था । १५।

सर्वं विलवियं गीयं, सर्वं नट्ठं विडंबियं ।
सव्वे आभरण भारा, सव्वे कामा दुहाव्वहा । १६।
वालाभिरामेषु दुहाव्वहेसु, न तं सुहं कामगुणेषु रायं ।
विरत्तकामाण तपोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं । १७।

नरिद ! जाई अहमा नराणं, सोत्रागजाई दुहओ गयाणं ।
जाहि वयं सव्वजणस्स वेसा, वसीय सोत्रागनिवसेणेषु । १८।

तीसे अ जाईइ उ पावियाए, वुत्थामु सोत्रागनिवसेणेषु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइ-पुरे कडाइ
। १९।

कर्मफल चिन्ता—

७०. हे राजन् ! तुने निदान कृत कर्मों का विशेष रूप से चिन्तन किया, उसी कर्मफल के विपाक में हम अलग-अलग पैदा हुए हैं ॥८॥
हे चित्त ! पूर्व जन्म में मेरे द्वारा किये गये सत्य और शुद्ध कर्मों के फल को जैसे आज मैं भोग रहा हूँ, क्या तुम भी वैसे ही भोग रहे हो ? । ९।

मनुष्यों द्वारा समाचरित सब सत्कर्म सफल होते हैं, किये हुए कर्मों के फल को भोगे बिना मुक्ति नहीं होती है । मेरी आत्मा भी उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्य फल से युक्त रही है । १०।

हे संभूत ! जैसे तुम अपने आपको भाग्यशाली, महान ऋद्धि से सम्पन्न और पुण्यफल से युक्त समझते हो, वैसे ही चित्त को भी समझो । राजन् ! उसके पास भी प्रचुर ऋद्धि और शक्ति रही हुई है । ११।

स्थविरों ने जन्म समूह में अनाश्रय किन्तु महार्थ-सारगमित गाथा कही थी जिसे शीघ्र और गुणों से युक्त भिक्षु यत्न से प्राप्त करते हैं । उसे सुनकर मैं श्रमण हो गया हूँ । १२।

ब्रह्मदत्त का चित्र को प्रतिभोग सेवन-आमंत्रण—
७१. उच्चदेय, मनु, कर्क और ब्रह्म ये प्रधान प्रासाद तथा और दूसरे भी अनेक रमणीय प्रासाद हैं । पांचाल देश के अनेक गुणों से युक्त एवं प्रचुर तथा विविध धनधान्य से परिपूर्ण इन वृक्षों को स्वीकार करो । १३।

हे भिक्षु ! तुम नाट्य, गीत और वाद्यों के साथ स्त्रियों के द्वारा विरकर इन भोगों का भोग करो । मुझे यही प्रिय है, प्रव्रज्या-निश्चय से दुःखप्रद है । १४।

चित्र मुनि द्वारा काम-भोगों की निन्दा—
उस राजा के हितैषी, धर्म में स्थित चित्र मुनि ने पूर्वभव के स्नेह से अनुरक्त होने से काम-भोगों में आसक्त उस राजा को इस प्रकार कहा— । १५।

सब गीत-गान विलाप हैं, समस्त नाट्य विडम्बना हैं, सब आभरण भार है और समग्र काम-भोग दुःखप्रद हैं । १६।

वाल जीवों को सुन्दर दिखने वाले किन्तु यथार्थतः दुःखप्रद कामभोगों में वह सुख नहीं है जो सुख शील गुणों में रत, कामनाओं से विरक्त तपोधन भिक्षुओं को है । १७।

हे नरेन्द्र ! मनुष्यों में जो चांडाल जाति अधम मानी जाती है, उसमें हम दोनों उत्पन्न हो चुके हैं, चांडालों की बस्ती में हम दोनों रहते थे, जहाँ सभी लोग हमसे द्रोष करते थे । १८।

निन्दनीय चांडाल जाति में हमने जन्म लिया था और उन्हीं की बस्ती में हम रहते थे तब सभी लोग हमसे घृणा-करते थे । अतः यहाँ जो श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल है । १९।

सो दाणिसिं राय ! महानुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाई असासयाई, आदाणहेउं अभिणिक्खमाहि ।२०।

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुच्चमाणो ।
से सोयइ मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसि लीए ।२१।

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ ह अन्तकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा
भवन्ति ।२२।

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न
बंधवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ।२३।

चिच्चा दुपयं च चउप्ययं च, खेत्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं ।
सकम्मवीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावगं वा ।२४
तं एक्कगं तुच्छसरीगं से, चिईगयं दहिय उ पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमन्ति
।२५।

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइ महालयाइं
।२६।

वंभदत्तेण अप्पणो नियाणकरणवण्णणं—

७३. अहं पि जाणामि जहेइ साहजं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवन्ति जे दुज्जया अज्ज ! अम्हारितेहि
।२७।

हत्थिणपुरम्मि चित्ता ! दट्ठणं नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं नियाणमसुहं कडं ।२८।

तस्स मे अप्पडिफंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु नुच्छिओ ।२९।

“नागो जहा” परुजलायत्तणो, दट्ठुं फलं नाभित्तमेइ तीरं ।
एवं धयं कामगणेषु गिद्धा, न भिक्खणो मग्गमणुव्वयानो ।३०।

हे राजन् ! पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप इस समय
तू महानुभाग, महान ऋद्धि वाला राजा बना है । अतः तू धार्मिक
भोगों को छोड़कर आदान—चारित्र्यधर्म की आराधना के हेतु
अभिनिष्क्रमण कर ।२०।

हे राजन् ! इस अशायत मानव जीवन में जो विपुल पुण्य
कर्म नहीं करता है वह मृत्यु के आने पर पश्चात्ताप करता है और
धर्म न करने के कारण परलोक में भी पश्चात्ताप करता है ।२१।

जैसे यहाँ सिंह मृग को पकड़कर ले जाता है, वैसे ही अत-
काल में मृत्यु मनुष्य को ले जाती है । मृत्यु काल में माता-पिता
और भाई बन्धु कोई भी मृत्यु दुःख में अंगधर—ह्रस्तेदार नहीं
होते हैं ।२२।

उसके दुःख को न जाति के लोग और न मित्र, पुत्र तथा
बंधु जन ही वांट सकते हैं । वह स्वयं अकेला ही प्राप्त दुःखों को
भोगता है, क्योंकि कर्म कर्ता के ही पीछे-पीछे चलता है ।२३।

द्विपद-सेवक, चतुष्पद-पशु, खेत, घर, धन-धान्य आदि नय
कुछ छोड़कर यह पराधीन जीव अपने कृत कर्मों को साथ लिये
हुए शुभ—पुण्य रूप अथवा अशुभ—पाप रूप परभव में जाना
है ।२४।

जीव रहित उस एकाकी तुच्छ शरीर को चित्ता में अग्नि ने
जलाकर भायाँ, पुत्र और जाति-जन किसी दूसरे आश्रयदाता का
अनुसरण करते हैं ।२५।

हे राजन् ! कर्म किसी प्रकार का प्रमाद किये बिना जीवन
को प्रतिक्षण मृत्यु के निकट ले जा रहा है और यह जरा यद्वाभया
मनुष्य की कांति का हरण कर रही है । हे पाचानराज !
मेरी इस बात को सुनो, प्रचुर पापकर्म मत करो ।२६।

ब्रह्मदत्त द्वारा अपना निदान करण वर्णन—

७३. हे साथी ! जैसा तुम बता रहे हो वैसे मैं भी जानता
समझता हूँ कि ये काम-भोग बंधन रूप हैं, किन्तु हमारे जैसे लोगों
के लिए तो ये दुर्जय हैं ।२७।

हे चित्र ! हस्तिनापुर में मदान ऋद्धि सम्पन्न पदवी
नरपति राजा को देखकर काम-भोगों में आमक होकर मैंने प्रभु
निदान किया था ।२८।

उन निदान का मैंने प्रतिक्रमण नहीं किया था, जिससे वह
फल है कि धर्म को जानने हुए भी मैं काम-भोगों में मूर्च्छित
हूँ, उनको त्यागने में असमर्थ हूँ ।२९।

अंत—बन्ध-रूप—इन्द्रजित ने अपना दुःख हाथों में धर कर
भी बिनारे पर नहीं पड़ूँ पाया है, जैसे ही हम काम-भोगों में
आमक जन जाते हैं भी बिधु नरों की अनुकरण नहीं कर
पाते हैं ।३०।

चित्रामुणिणा अज्जकम्मकरणोपपत्तो

७४. अज्जेद कातो वुरंति राइभो,

त या वि भोगा पुटिसाम विण्णा ।

उविच्च भोगा पुरिसं अपत्ति, पुमं अत्ता प्योम कर्त्तं व पयसो

॥३१॥

जइ ता सि भोगे चइउं असत्तो, अत्ताइ कम्मइ करेदि माय ।
धम्मे ठिओ सव्व-पपाण्कपो, सो होट्ठिसि तेसो इओ विण्णो

॥३२॥

न तुम्ह भोगे चइऊण वुरो, विण्णोपि आरंभ-परिणहेणु ।

मोहं कओ एत्तिउ विण्णत्तावो, पण्णपि दापे । अत्ताओत्ति

॥३३॥

वभदत्तस्त निरयवातो—

७५. पंचालराया वि य वंनइत्तो, साहुस्म तस्स वपणं अरुत्ते ।

अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो मरं पविट्ठो ॥३४॥

चित्तस्स सिद्धी—

७६. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उरग्गवारित्तसो महेवो ।

अणुत्तरं संजनं पाजइत्ता, अणुत्तरं तिट्ठिणं पओ ॥३५॥

त्ति येमि ।

—उत्त० अ० १३

चित्रामुनि द्वारा अज्जकम्मकरणोपपत्तौ

७४. अज्जेद कातो वुरंति राइभो, त या वि भोगा पुटिसाम विण्णा ।
उविच्च भोगा पुरिसं अपत्ति, पुमं अत्ता प्योम कर्त्तं व पयसो

७५. पंचालराया वि य वंनइत्तो, साहुस्म तस्स वपणं अरुत्ते ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो मरं पविट्ठो ॥३४॥

७६. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उरग्गवारित्तसो महेवो ।
अणुत्तरं संजनं पाजइत्ता, अणुत्तरं तिट्ठिणं पओ ॥३५॥

चित्तस्स सिद्धी—

७७. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उरग्गवारित्तसो महेवो ।
अणुत्तरं संजनं पाजइत्ता, अणुत्तरं तिट्ठिणं पओ ॥३५॥

७८. चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उरग्गवारित्तसो महेवो ।
अणुत्तरं संजनं पाजइत्ता, अणुत्तरं तिट्ठिणं पओ ॥३५॥

चित्तस्स सिद्धी—

५. अरिष्टनेमित्त्ये निसढो

निसढाइया दुवालस समणा—

७७. निसढे, माअणि, वह, वहे, पगया, जुत्तो, वसरहे, वडरहे य ।
महाधणू, सत्तधणू, वसधणू नामे, सयधणू य ।

वारवईए कण्हो वासुदेवो—

७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवई नामं नयरी होत्था दुवा-
सल जोयणायामा-जाव-पच्चवखं देवलोयमूया पासादीया-जाव-
पडिक्खा ।

तीसे णं वारवईए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्तिभे तिसीसाए
एत्थ णं रेवए नामं पव्वए होत्था तुंणे सयणहुलमगुलिहन्तसिहरे
नाणाविह-रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लया-वल्ली-परिगयाभिरामे हंत-सिय-

५. अरिष्टनेमि तीर्थ में निषध

निषधादि द्वादश श्रमण—

७७. १ निषध, २ नयनी, ३ वहु, ४ वेह, ५ पगया, ६ जुत्तो,
७ वसरय, ८ वडरय, ९ महाधनु, १० सत्तधनु, ११ वसधनु,
१२ शतधनु, यह वारव नाम जाले अण्णमय हे ।

द्वारावती में कुष्ण वासुदेव—

७८. उस काल और उस समय में द्वारावती नामक नगरी थी,
जो वारव योजन लम्बी—यावत्—प्रयत्न-साक्षात् देवतोह सट्टय
मन को प्रसन्न करने वाली—यावत्—प्रतिरूप थी ।

उत्त द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्ण दिशा—ईशानलोक
में ऊँचा आकाश को स्पर्श करने वाले शिखरों से युक्त, अनेक
प्रकार के वृक्ष गुच्छ, गुलम, लता, वल्लियों से अभिराम-मनोहर-

मयूर-कोञ्च-सारस-काण-प्रयगसाता-कोइज-कुशोभवे तड-कडग-
वियर-उज्जर-पवाय-सिहर-पउरे अचर-गण-देवसंघ-विज्जाहर-
मिमुण-संनिचिण्णे निच्चवच्छणए दसार-वर-वीर-पुरिस-तेल्लोक-
वलवमाणं सोने मुमए पियदंसणे सुखवे पासावीए-जाव-पडिख्वे ।

तस्स णं रेदयगस्स पव्यसस्स अदूर सामन्ते एत्थ णं नन्दणवणे
नामं उज्जाणे होत्था सव्वोउयपुष्फ-जाव-वरिसणिज्जे । तत्थ णं
नन्दणवणे उज्जाणे मुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था
चिराईए-आद-वहुजणो आगम्म अच्छेइ मुरप्पियं जक्खाययणं ।

से णं मुरप्पिये जक्खाययणे एगेणं महया वणसग्डेणं सव्वओ
त्तमन्ता संपरिखिखत्ते जहा पुष्पमहे-जाव-सिलावट्टए ।

तत्थ णं वारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था-
जाव-पसासमाणं विहरइ ।

से णं तत्थ सधुद्विजयपामोक्खाणं दसहं दसाराणं
वलदेवपामोक्खाणं पंच-हं महावीराणं,
उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसहं राइसाहस्तीणं,
पज्जुणपामोक्खाणं अद्धुट्टाणं कुमारकोडीणं,
सम्बपामोक्खाणं सट्टीए दुदन्तसाहस्तीणं,
वीरसेणपामोक्खाणं एकवीसाए वीरसाहस्तीणं,
महासेणपामोक्खाणं छप्पन्नाए वलवसाहस्तीणं
रुप्पिणपामोक्खाणं सोलसहं देवीसाहस्तीणं,
अणङ्गसेणपामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्तीणं

अत्तोसि च वट्ठुणं राईत्तर-जाव-तत्थवाहप्पभिईणं वेयड्ढगिरि-
सागरमेरागस्स दाहिणइड्ढरहस्स आह्वेवच्चं-जाव-विहरइ ।

वारवईए वलदेवेराया—

७६. तत्थ णं वारवईए नयरीए वलदेवे नामं राया होत्था, महया-
जाव-रउजं पसासमाणे विहरइ ।

वलदेवस्स रेवईदेवीए पुतो निसडकुमारो—

८०. तस्स णं वलदेवस्स एतो रेवई नामं देवी होत्था सोमना-
आय-विहरइ । तए णं सा रेवई देवी अउवा कयाइ तंति तारिस-
गंति तयणिउज्जसि-आद-सोहं मुमिये पासित्ताणं पडिमुत्ता एउं
मुमियेइतेणपरिक्खणं, कवाओ जहा महाउत्तमं, पन्नावओ राओ,

हंन, मूग, मयूर, कोञ्च, सारस, कांआ, मैना, कोइज अरि
पक्षिवृन्द ने मुशोभित, तट, कटक, विवर-मुफा, उरते, प्रपात,
शिखर आदि की प्रचुरता— अधिकता ने जोभावमान, अन्तर्गत
देव समूह, और विद्याधर युगलों द्वारा अधिष्ठित, रैवत नामक
पर्वत था, जिस पर प्रतिक्षण उत्पन्न नमारोह होने लगे थे तथा
तीनों लोकों में श्रेष्ठ बलवान वीर दमारों को वट पर्वत मोम-
आल्लाद उत्पन्न करने वाला मुम, प्रिय दान, मुख्य-मुशयता
प्रानादीय-मनोहर-यावन्-प्रतिरूप था ।

उन रैवतक पर्वत के समीप नन्दन वन नामक उद्यान था,
जो सभी ऋतुओं के पुष्पों से युक्त—यावन्—दर्शनीय था । उस
नन्दन वन उद्यान में मुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जो अनि
प्राचीन था—यावन्—वृहत से लोग आकर उन मुरप्रिय यक्षा-
यतन की अर्चना करते थे ।

वह मुरप्रिय यक्षायतन सभी दिशाओं—चारों तरफ ने एक
बड़े वन खण्ड ने घिरा हुआ था, जैसे पूर्णभद्र यक्षायतन घिरा
हुआ था—यावन्—एक गिलापट्टक था ।

उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वामुदेव नामक राजा थे—
यावन्—प्रशासन—करते हुए विचरते थे ।

वे वहाँ समुद्रविजय प्रमुख दस दमारों का,
वलदेव प्रमुख पांच महावीरों का,
उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं का,
प्रद्युम्न प्रमुख नाइके तीन करोड़ कुमारों का,
गाम्भ्र प्रमुख नाठ हजार दुर्दान्त यूरो का,
वीरसेन प्रमुख एकवीस हजार वीरों का,
महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवानों का,
रुक्मिणी प्रमुख सोलह हजार देवियों—रामियों का,
अनगनेता प्रमुख अनेक हजार गणिकाओं का ।

तथा और भी बहुत से राजा, शिवर—वाराण,—सावेराण
प्रभृति का तथा ईनाइव गिरि और मावर ने सर्वाधिक शक्तिपूर्ण
भरत का आधिपत्य करते हुए—यावन्—विचरते थे ।

द्वारावती में वलदेव राजा—

७६. उन द्वारावती नगरी में वलदेव नामक राजा थे, जो मायव—
यावन् राज्य का शासन करते हुए विचरते थे ।

वलदेव की रेवतीदेवी का पुत्र निसधकुमार—

८०. उन वलदेव राजा की देवी नामक देवी—पत्नी थी, जो
मुशोमव—यावन्—विचरती थी । वलदेवका पुत्र निसध कुशोमव
अन्वदा जिनो मनव अनेक योग्य भोजा कर—यावन्—स्वयं ने
मिह की देव्यर प्रतिपुत्र हुई—अनी और अनेक स्वयं देवी के
पुस्ताव को वलदेव राजा का मुस्ताव नगदव की इतर वर

पन्नासरायकन्नगाणं एगदिवसेणं पाणिग्गहणं.....नवरं निसढे नामं-
जाव-उत्पिपासायगओ विहरइ ।

अरिठ्ठनेमित्थयरागमणं-कण्हस्स पज्जुवासणं च—

८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिठ्ठणेमी आइगरे दस
धणूइं.....वण्णओ-जाव-समोसरिए । परिसा निग्गया ।

८२. तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लंढुडे समाणे हठ्ठुडे
कोडुम्बियपुरिसं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुत्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाणियं
भेरी तालेहि” ।

तए णं से कोडुम्बियपुरिसे-जाव-पडिसुणित्ता जेणेव सभाए
सुहम्माए सामुदाणिया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
सामुदाणियं भेरी महया-महया सद्देणं तालेइ ।

तए णं तीसे सामुदाणियाए भेरीए महया-महया सद्देणं तालि-
याए समाणीए समुद्विजयपामोक्खा दसारा, देवीओ भाणियव्वाओ
जाव-अणङ्गसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा अन्ने य बह्वे
राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईओ ण्हाया-जाव-पायच्छित्ता सव्वा-
लंकारविभूसिया जहाविभव-इड्डी-सक्कारसमुदएणं अप्पेगइया
ह्यगया-जावपुरिसवग्गुरा-परिखित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे, तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल कण्हं वासुदेवं जएण विजएणं
वद्धावेन्ति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी-“खिप्पा
मेव, भो देवानुत्पिया, आभिसेक्कहत्थि कप्पेह ह्यगयरहपवर”—
जाव-पच्चप्पिणन्ति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे मज्जणघरे जाव डुरुडे, अट्ठु मज्ज-
लगा, जहा कुणिए, सेयवरचामरेहि उद्धुव्वमाणेहि समुद्विजय-
पामोक्खेहि दसहि दसारेहि-जाव-सत्थवाहप्पभिईहि सद्धि संपरिवुडे
सव्विड्डीए-जाव-रवेणं वारवइ नयारि मज्झमज्जेणं.....सेसं जहा

कलाओं में प्रवीण हो गया । पचास दात—श्रीतिदान प्राप्त हुए,
पचास राज कन्याओं के साथ एक दिन में पाणिग्रहण हुआ.....
विशेष यह है कि उसका नाम नियम जानना चाहिए—यावत्—
ऊपर प्रासाद में विचरता है ।

अरिष्टनेमि तीर्थंकर का आगमन और कृष्ण द्वारा पर्यु-
पासना—

८१. उस काल, उस समय में अर्हन्त अरिष्टनेमि जो धर्म को
आदि करने वाले, दस धनुष ऊँचे.....वर्णन करना—यावत्—
पधारे । परिपद उनके दर्शनार्थ निकली ।

८२. तत्पश्चात् कृष्ण-वासुदेव ने इस दृष्ट समाचार को
प्राप्त कर हर्षित और संतुष्ट होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को
बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही जाकर सुधर्मा सभा को सामुदा-
निक भेरी को वजाओ ।’

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष-यावत्-सुनकर जहाँ सुधर्मा
सभा और सामुदानिक भेरी थी, वहाँ आये, आकर सामुदानिक
भेरी को जोर-जोर से वजाते हैं ।

इसके अनन्तर उस सामुदानिक भेरी को अत्यधिक जोर-
जोर से वजाये जाने पर समुद्रविजय प्रमुख दशार देवियों आदि
कहना चाहिए—यावत्—अनंगसेना प्रमुख अनेक सहस्र गणि-
काओं और दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह आदि
ने स्नान किया—यावत्—कौतुक प्रायश्चित्त करके सभी अलंकारों से
विभूषित होकर यथा विभव—अपने-अपने वैभव के अनुरूप ऋद्धि
सत्कार, सामग्रियों के साथ, कितने ही हाथ में हल लिये हुए—
यावत्—अनुचरों के समूह के साथ जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ
आये, आकर हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव को जय-विजय शब्दों
से वधाया ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार
कहा—‘हे देवानुप्रियो !’ शीघ्र ही आभिषेक्य हस्ती को एवं अन्य
हाथी, घोड़े और रथों को सजाओ,—यावत्—वापस आज्ञा पूर्ति
की सूचना देते हैं ।

तदनन्तर वे कृष्ण वासुदेव स्नानगृह में स्नान करने गये—
यावत्—आभिषेक्य हाथी पर आरूढ़ हुए, आठ-आठ मांगलिक
द्रव्य दिखाई गई और आगे रखी गई और इसके बाद कोणिक के
सदृश डुलाये जाते हुए श्रेष्ठ श्वेत चामरों से सुशोभित और समुद्र
विजय प्रमुख दसों दशार्ह—यावत्—सार्थवाह प्रभृति के समुदाय
के साथ सभी प्रकार के ऋद्धि वैभवपूर्वक—यावत्—शब्द
ध्वनियों से मुखरित करते हुए द्वारावती नगरी के बीचों बीच

कृणिओ-जाव-पञ्जुवातइ ।

निसद्वेण सावयधम्मगहणं—

८३. तए णं तस्स निसदस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगयस्स तं मह्या जणसद्वं च—“जहा जमाली, -जाव-धम्मं सोच्चा निसम्म वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-“सद्दहामि णं, भन्ते ! निगगन्यं पावयणं,” जहा चित्तो-जाव-सावयधम्मं पडि-वज्जइ पडिवज्जित्ता पडिगए ।

वरदत्तेण निसदस्स पुव्वभवपुच्छ्या-अरिष्टनेमिणा पुव्व-भवकहणं च—

८४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिष्टनेमिस्स अन्तेवासी वरदत्ते नामं अणगारे उराले-जाव-विहरइ ।

तए णं से वरदत्ते अणगारे निसदं पासइ, जायसइडे-जाव-पञ्जुवासमाणे एव वयासी—“अहो णं, भन्ते, निसदे कुमारे इट्ठे इट्ठरुवे कन्ते कन्तरुवे, एवं पिए मणुस्सए, मगाने मगामरुवे सोमे सोमरुवे पियदंसणे सुरुवे ।

निसद्वेण, भन्ते ! कुमारेण अयमेयारुवा मणुवइद्वी किणा लद्धा, किणा पत्ता ?” पुच्छा जहा सुरियाभस्स ।

निसदस्स पुव्वभवो-वीरंगअ कुमारो—

८५. “एवं एतु वरदत्ता” !

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्वीवे दीवे भारहे वासे रोहोडए नामं नयरे होत्था, रिद्धं—“मेहयण्णे उज्जजाणे । माणि-दत्तस्स जइपस्स जइवाययणे । तत्प णं रोहोडए नयरे मह्व्वले नामं राया, पउमावई नामं देवी अन्नया कपाइ तंसि तारिमगंसि तपणिज्जंसि सोहं सुमिणे—”, एवं जम्मणं भाणियच्चं जहा महाबलस्स, नयरं पीरङ्गओ नामं, वत्तोत्तओ दाओ, वत्तोत्ताए रायवरकन्नगाणं पाणि-जाव-ओगिज्जमाणे ओगिज्जमाणे पाउन्नय-रितारत्तसारइहेमन्तगिह्वयमन्ते छ प्पि उज्ज जहाविभवे समाने इट्ठे सदे-जाव-विहरइ ।

होते हुए—“येव कवन कोषिक के नमान जानना चाहिए— यावत्—पयुंपासना करने हे ।

निपध द्वारा श्रावक धर्म ग्रहण—

८३. तत्परचात् श्रेष्ठ प्रानाद के ऊपर मुद्यानुभव करने वाले उस निपधकुमार ने उन जन कोलाहल को सुना और—“जनाओ के सदृश—यावत्—धर्म मुनकर और हृदय से अवधारित कर वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा— ‘हे भदन्त ! मैं निग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ’ भिन प्रधान के समान—यावत्—श्रावक धर्म को स्वीकार करना हे, स्वीकार करके वापस लौट आया ।

वरदत्त द्वारा निपध की पूर्वभव पृच्छा और अरिष्टनेमि द्वारा पूर्वभव वचन—

८४ उम काल और उन समय में अहंत् अरिष्टनेमि के अन्ते-वानी वरदत्त नामक श्रेष्ठ अनगार—यावत्—बिचरने हे ।

तत्परचात् उन वरदत्त अनगार ने निपध को देखा, देखकर जिज्ञासा उत्पन्न हुई—यावत्, पयुंपासना करने हुए इस प्रकार पूछा—‘हे भगवन् ! यह निपध कुमार श्रेष्ठ, श्रेष्ठरूप, काम्य, कान्त रूप हे । उमी प्रकार प्रिय, मनोज्ञ, मगाम मगामरूप, सोम, सोमरूप, प्रियदर्शन और मुरूप हे ।

हे भदन्त ! इस निपधकुमार को यह और इस प्रकार की मनुष्योचित ऋद्धि कैसे मिली हे, कैसे प्राप्त हुई हे ?” जैसे गोमभ ने सूर्याभदेव की ऋद्धि के बारे में भ्रमण भगवान महावीर ने पूछा था, (उमी प्रकार वरदत्त अनगार ने अहंत् अरिष्टनेमि ने पूछा ।)

निपध का पूर्वभव—वीरंगद कुमार—

८५. ‘हे वरदत्त ! यह इन प्रकार—(हे)

उन काल और उन समय में उमी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में रोहीतक नामक नगर था, जो धर-धरमदि ऋद्धि ने सम्पन्न था—“यहाँ निपधर्ण नामक उद्यान था और उसमें निपदत्त पक्ष का वधावनन था । उन रोहीतक नगर में मयावत नामक राजा था और उसकी रानी का नाम पद्मपती था, अनपदा किमी समय उन मुद्यु गीया पर सींति हुई उसी समय में निपध को देखा—“उमके गर्भ के पक्ष वादह का प्रथम दुर्वा । अगम आदि का वर्णन महाबल के नामक वरुणा वयावत्, दिव्य पक्ष कि उमका नाम पीरंगद था, रानीके दुर्वा अर्थात्, रानीके उत्तम राजकुमारों के साथ पाणिपत्ता हुआ—यावत्—यावत्, यथा, मन्त देवताके अंग, अंगाने एव एव—यह दुर्वा मन्त ही श्रेष्ठ मन्तदि विषयी को अंगक ईश्वर के अंगुष्ठ के अंगका हुआ विषयक कहता था ।

सिद्धत्थायरिओवएसेण वीरंगअस्सं पव्वज्जा
बंभलोए उप्पत्तां य—

८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-
संपन्ना जहा केसी, नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीउए
नयरे, जेणेव मेहवण्णे उज्जाणे, जेणेव माणिदत्तस्स जक्खाययणे,
तेणेव उवागए अहू.पडिखुवं-जाव-विहरइ । परिसा निग्गया ।

तए णं तस्स वीरङ्गयस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगयस्स
तं महया जणसहं....जहा जमाली, निग्गओ । धम्मं सोच्चा....जे,
नवरं, देवानुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि जहा जमाली,
तहेव निक्खन्तो-जाव-अणगारे जाए-जाव-गुत्तवम्भयारी ।”

८७. तए णं से वीरंगए सिद्धत्थाणं आयरियाणं अन्तिए सामाइय-
माइयाइं-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । अहिज्जिता बहूइं-
जाव-चउत्थ-जाव-अप्पाणं भावेमाणे बहूपडिपुण्णाइं पणयाली-
सवासाइं सामणपरियागं पाउणित्ता दो मासियाए संलेहणाए
अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडि-
क्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा वम्भलोए कप्पे मणोरमे
विमाणे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं देवाणं दससागरोवमाइं ठिई
पन्नत्ता । तत्थ णं वीरंगयस्स वि देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई
पन्नत्ता ।

बंभलोगाओ चइता निसढकुमारो जाओ—

८८ से णं वीरङ्गए देवे ताओ देवलोगाओ आउवखएणं-जाव-
अणन्तरं चयं चइत्ता इहेव बारवइए नयरीए बलदेवस्स रन्तो
रेवईए देवीए- कुच्चिसि पुत्तत्ताये उववन्ने । तए णं सा रेवई
देवो तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं, -जाव-उप्पिं पासा-
यवरगये विहरइ ।

८९. तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवा
उराला मणुयइड्डी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

९०. भभू णं, भन्ते ! निसढे कुमारे देवानुप्पियाणं अन्तिए-जाव-
पव्वइत्तए ?”

हन्ता, भभू ।

सें एवं, भन्ते ! इहं वरदत्ते अणगारे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ।

सिद्धार्थ आचार्य के उपदेश से वीरंगद की प्रव्रज्या
और ब्रह्मलोक में उत्पत्ति—

८६. उस काल उम समय में कैसा श्रमण के समान जानिमत...
बहुश्रुत और बड़े गिण्य परिवार से युक्त सिद्धार्थ नामक आचार्य
जहाँ रोहीतक नगर था, जहाँ मेघवर्ण उद्यान था, उसमें बहो
मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था वहाँ पधारं और यथाप्रतिह्व—
यावत् विचरते हे । परिगदा (धर्म मुनने) निकली ।

तत्पश्चात् उत्तम प्रामाद के ऊपर रहने वाले उस वीरंगद
कुमार ने मनुष्यों के महान कोलाहल को मुना.....जमाली के
समान वह धर्म श्रवण करने के लिये निकला, धर्म को मुनकर...
जो विगपता हे, वह इस प्रकार हे कि—हे देवानुप्रिय ! माता-
पिता से पूछकर जमाली के समान अभिनिष्क्रमण करके—यावत्
—वह अनगार हो गया—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

८७. तत्पश्चात् उस वीरंगद अनगार ने उन सिद्धार्थ आचार्य के
पास सामायिक आदि से लेकर—यावत्—ग्यारह अंगों का अध्ययन
किया । अध्ययन करने के अनन्तर बहुत से—यावत्—चतुर्यं—
यावत्—आत्मा को भावित करते हुए पुरे पंतालीस वर्ष पर्यन्त
श्रामण्य पर्याय का पालन कर दो मास की संलेखना से आत्मा
की आराधना कर एक सौ बीस भक्तों को अनशन से त्यागकर
आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो काल मास में
काल करके वह ब्रह्मलोक कल्प के मनोरम विमान में देवल्प से
उत्पन्न हुआ । वहाँ कई एक देवों की स्थिति दस सागरोपम की
बताई है । वहाँ इस वीरंगद देव की भी दस सागरोपम की
स्थिति थी ।

ब्रह्मलोक से च्युत होकर निपधकुमार हुआ—

८८. वह वीरंगददेव उस देवलोक से आयुक्षय के—यावत्—
अनन्तर शरीर से च्युत होकर इसी द्वारावती नगरी में बलदेव
राजा की रेवती रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।
तत्पश्चात् वह रेवती रानी उस शयनीय शैया पर सोती हुई
स्वप्न देखती है—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर सुखपूर्वक रहते
हुए विचरता है ।

८९. हे वरदत्त ! इस प्रकार से निपधकुमार ने इस प्रकार की
उदार मनुष्य ऋद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है ।

९०. हे भदन्त ! क्या यह निपधकुमार आप देवानुप्रिय के
पास—यावत्—प्रव्रजित होने में समर्थ है ? वरदत्त अनगार ने
पूछा ।

हाँ, समर्थ है, (अर्थात् वह अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा
—अर्हत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया ।)

हे भदन्त ! आप जो कहते हैं, वह इसी प्रकार है अर्थात्
वह सत्य है, और ऐसा कहकर वरदत्त अनगार—यावत्—
आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

६१. तए णं अरहा अरिष्टणेमी अन्तया कयाइ वारवईओ नयरीओ जाव-अहिवा जगवयविहारं विहरइ । निसडे कुमारे समगोवासरु जाए अभिगयजीवाजीवे-जाव-विहरइ ।

निसडस्स अरिष्टनेमिदंसणेच्छा—

६२. तए णं से निमडे कुमारे अन्तया कयाइ जेगेव पोसहसाता तेगेव उवागच्छइ उवागच्छिता-जाव-दम्मसंधारीवगए विहरइ ।

तए णं तस्म निसडस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमागस्स इनेयाहवे अज्जत्थियए-जाव-समुप्प-ज्जित्था—“धन्ना णं ते गामागर-जाव-संनिवेशा जत्थ णं अरहा अरिष्टणेमी विहरइ । धन्ना णं ते राईसर-जाव-सत्थवाहूप्पमिईओ जे णं अहं अरिष्टणेमि वन्दन्ति, नमंसन्ति-जाव-पज्जुवासन्ति । जइ णं अरहा अरिष्टणेमी पुव्वणुपुच्चि... नन्दणवणे विहरेज्जा, तए णं अहं अरहं अरिष्टणेमि वन्दिज्जा-जाव-पज्जुवासिज्जा ।

निसडेच्छं णाऊणं अरिष्टनेमिस्सागमणं—

६३. तए णं अरहा अरिष्टणेमी निसडस्स कुमारस्स अयनेयाहव-मज्जत्थिय-जाव-विघाणित्ता अट्टारत्तिहि समगसहस्सेहि—जाव-नन्दणवणे समोसडे । परिभा निगया ।

निसडस्स पवज्जा समाहिमरणं च—

६४. तए णं निमडे कुमारे इमीसे कयाए लउट्टे समाणे हट्टं पाउण्णवणे अरहरणे निगए जहा जमाली-जाव-अम्मापियरो जापुच्छिता पव्वइए, अगगारे जाए इरियामिए-जाव-पुत्तवम्भयारी ।

६५. तए णं से निसडे अणगारे अरहओ अरिष्टणेमिस्स तहाहव णं पेरणं अन्तिए मामाट्टयमाइयाइं एवकारम अज्जाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता, अहइ चउत्त-उट्ट-जाव-विधित्तिहि तिकोक्कमेहि अणगण भावेमाणे अहूपिपुष्पाइं नययासाइं समणपरियय पाउण्ण, पाउण्णित्ता पाउण्णित्ता भत्ताइं अणमयाए ऐएइ, आणोइय पटिपक्कन्ते त्थापित्ते आणुपुण्णोए कालगए ।

अरहवपुत्तिएएण अरिष्टनेमिणा निमडस्समवट्टन्तिउ विमणवमपक्कणं—

६६. तए णं से अरहसे अणगारे निसडे अणगारे इवावय अणमया

६१. नत्वरत्तात् अहं अरिष्टनेमि अन्तया तिमो नमए आगवरी नगरी से—यावत्—वाहर जनपदीं मे विहार कर्णे वणे । निमड-कुमार अमणोपामक हो गया और जीवाजीव आदि का जाव से गया—यावत्—विचरता है ।

नियध की अरिष्टनेमि दर्जनेच्छा—

६२. नत्वरत्तात् वह निमडकुमार अन्तया कयावित्ता अण पोस-गाला थी, वहा आया, आकर—यावत्—वर्षों के जावन पर बैठकर धर्म ध्यान करने हुए विचरने लगा ।

उसके बाद मध्य रात्रि के समय में धर्म जागरणा में लगे रहने हुए उस निमडकुमार के मन में यह मन प्रकार का विचार— यावत्—उत्पन्न हुआ—

‘ये ब्राह्म, आकर—यावत्—संनिवेश धन्य है, जहां जो अरिष्टनेमि विचरण करते हैं । ये राजा, अरिष्टनेमि—यावत्—सं-वाह आदि धन्य है जो अहं अरिष्टनेमि को पढ़ते—समजान करने हैं—यावत्—पशुपामना—मेया करते हैं । यदि मैं अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरने हुए अरिष्टनेमि से विचार करूं तो मैं भी अहं अरिष्टनेमि को पढ़ने लूँ—यावत्—सेवा करूँ ।

सिद्धत्थायरिओवएसेण वीरंगअस्स पव्वज्जा

बंभलोए उप्पत्ता य—

८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइ-संपन्ना जहा केसी; नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडए नयरे, जेणेव मेहवण्णे उज्जाणे, जेणेव माणिवत्तस्स जक्खाययणे, तेणेव उवागए अह.पडिख्वं-जाव-विहरइ । परिसा निग्गया ।

तए णं तस्स वीरङ्गयस्स कुमारस्स उप्पि पासायवरगयस्स तं महया जणसइं....जहा जमाली, निग्गओ । धम्मं सोच्चा....जे, नवरं, देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि जहा जमाली, तहेव निक्खन्तो-जाव-अणगारे जाए-जाव-गुत्तवम्भयारी ।”

८७. तए णं से वीरंगए सिद्धत्थाणं आयरियाणं अन्तिए सामाइय-माइयाइं-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । अहिज्जित्ता वहुइं-जाव-चउत्थ-जाव-अप्पाणं भावेमाणे वहुपडिपुण्णाइं पणयाली-सवासाइं सामणपरियाणं पाउणित्ता दो मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडि-क्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा वम्भलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं देवाणं दससागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता । तत्थ णं वीरंगयस्स वि देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पन्नत्ता ।

बंभलोगाओ चइत्ता निसढकुमारो जाओ—

८८. से णं वीरङ्गए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं-जाव-अणन्तरं चयं चइत्ता इहेव वारवइए नयरीए वलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए-कुच्चिसि पुत्तत्ताये उववन्ने । तए णं सा रेवई देवो तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं,-जाव-उप्पि पासा-यवरगये विहरइ ।

८९. तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवा उराला मणुयइड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

९०. पभू णं, भन्ते ! निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अन्तिए-जाव-पव्वइत्तए ?”

हन्ता, पभू ।

से एवं, भन्ते ! इहं वरदत्ते अणगारे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

सिद्धार्थ आचार्य के उपदेश से वीरंगद की प्रव्रज्या और ब्रह्मलोक में उत्पत्ति—

८६. उस काल उस समय में केसी श्रमण के समान जाविनत्त... बहुश्रुत और बड़े शिष्य परिवार में युक्त सिद्धार्थ नामक आचार्य जहा रोहीतक नगर था, बड़ा मेधवणं उपाय था, उसमें बड़ा मणिवत्त यक्ष का वशायनन था बड़ा पधरि और वथाप्रतिष्ठा—यावत् विचरते हे । परिपदा (धर्म सुनने) निकली ।

तत्पश्चात् उत्तम प्राणाद के ऊपर रहने वाले उस वीरंगद कुमार ने मनुष्यों के महान कोलाहल को सुना.....जमाती के समान वह धर्म श्रवण करने के लिये निकला, धर्म को सुनकर... जो विशेषता हे, वह उस प्रकार हे कि—दे देवानुप्रिय ! माता-पिता में पूछकर जमाली के समान अभिनिष्क्रमण करके—यावत्—वह अनगार हो गया—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

८७. तत्पश्चात् उस वीरंगद अनगार ने उन सिद्धार्थ आचार्य के पास सामायिक आदि में लेकर—यावत्—ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अध्ययन करने के अनन्तर बहुत से—यावत्—त्रुयुं—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए पूरे पैतालोस वर्ष पर्यन्त श्रामण्य पर्याय का पालन कर दो मास की संलेचना से आत्मा की आराधना कर एक सौ बीस भक्तों को अनशन से त्यागकर आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो काल मास में काल करके वह ब्रह्मलोक कल्प के मनोरम विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ । वहाँ कई एक देवों की स्थिति दस सागरोपम की बताई है । वहाँ इस वीरंगद देव की भी दस सागरोपम की स्थिति थी ।

ब्रह्मलोक से च्युत होकर निपधकुमार हुआ—

८८. वह वीरंगददेव उस देवलोक से आयुक्षय के—यावत्—अनन्तर शरीर से च्युत होकर इसी द्वारावती नगरी में बलदेव राजा की रेवती रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् वह रेवती रानी उस शयनीय शैया पर सोती हुई स्वप्न देखती है—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर सुखपूर्वक रहते हुए विचरता है ।

८९. हे वरदत्त ! इस प्रकार से निपधकुमार ने इस प्रकार की उदार मनुष्य ऋद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है ।

९०. हे भदन्त ! क्या यह निपधकुमार आप देवानुप्रिय के पास—यावत्—प्रव्रजित होने में समर्थ है ? वरदत्त अनगार ने पूछा ।

हाँ, समर्थ है, (अर्थात् वह अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा—अर्हत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया ।)

हे भदन्त ! आप जो कहते हैं, वह इसी प्रकार है अर्थात् वह सत्य है, और ऐसा कहकर वरदत्त अनगार—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

६१. तए णं अरहा अरिष्टणेमी अन्नया कयाइ वारवईओ नयरीओ जाव-ब्रहिया जगवयविहारं विहरइ । निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे-जाव-विहरइ ।

निसढस्स अरिष्टणेमिदंसणेच्छा—

६२. तए णं से निसढे कुमारे अन्नया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता-जाव-दम्मसंथारोवगए विहरइ ।

तए णं तस्स निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमागस्स इनेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्प-ज्जित्था—“धन्ना णं ते गामागार-जाव-संनिवेसा जत्थ णं अरहा अरिष्टणेमी विहरइ । धन्ना णं ते राईसर-जाव-सत्थवाहूप्पभिईओ जे णं अरहं अरिष्टणेमि वन्दन्ति, नमंसन्ति-जाव-पज्जुवासन्ति । जइ णं अरहा अरिष्टणेमी पुव्वानुपुव्व....नन्दनवणे विहरेज्जा, तए णं अहं अरहं अरिष्टणेमि वन्दिज्जा-जाव-पज्जुवासिज्जा ।

निसढेच्छं पाऊणं अरिष्टणेमिस्सागमणं—

६३. तए णं अरहा अरिष्टणेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूव-मज्झत्थिय-जाव-विद्याणित्ता अट्टारसहिं समणसहस्सेहिं—जाव-नन्दनवणे समोसडे । परिसा निग्गया ।

निसढस्स पवज्जा समाहिमरणं च—

६४. तए णं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धे समाणे हट्ठं चाउग्घटेणं आसरहेणं निग्गए जहा जमाली-जाव-अम्मापियरी आपुच्छिता पवइए, अगगारे जाए इरियासमिए-जाव-गुत्तवम्भयारी ।

६५. तए णं से निसढे अणगारे अरहओ अरिष्टणेमिस्स तहारूवः णं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अज्जाइं अहिज्जइं, अहिज्जित्ता, बहूइं चउत्थ-छट्ट-जाव-विचित्ते हिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे व्हपडिपुण्णाइं नववासाइं सामणपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता वायालीसं भत्ताइं अणसगाए छेइ, आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए ।

वरदत्तपुच्छिएण अरिष्टणेमिणा निसढस्सत्तवट्ठसिद्ध विमाणगमणकहणं—

६६. तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढे अणगारं कालगयं जाणित्ता

६१. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि अन्यदा किसी समय द्वारावती-नगरी से—यावत्—बाहर जनपदों में विहार करने लगे । निपध-कुमार श्रमणोपासक हो गया और जीवाजीव आदि का ज्ञाता हो गया—यावत्—विचरता है ।

निपध की अरिष्टनेमि दर्शनेच्छा—

६२. तत्पश्चात् वह निपधकुमार अन्यदा कदाचित् जहाँ पौपध-शाला थी, वहाँ आया, आकर—यावत्—धर्म के आसन पर बैठकर धर्म ध्यान करते हुए विचरने लगा ।

इसके बाद मध्य रात्रि के समय में धर्म जागरणा में तत्पर रहते हुए उस निपधकुमार के मन में यह इस प्रकार का विचार—यावत्—उत्पन्न हुआ—

‘वे ग्राम, आकर—यावत्—संनिवेश धन्य हैं, जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि विचरण करते हैं । वे राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थ-वाह आदि धन्य हैं जो अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन—नमस्कार करते हैं—यावत्—पर्युपासना—सेवा करते हैं । यदि अर्हत अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए.....नन्दनवन में विचरण करें तो मैं भी अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन करूँ—यावत्—सेवा करूँ ।

निपध-इच्छा ज्ञात कर अरिष्टनेमि का आगमन—

६३. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि निपधकुमार के यह, इस प्रकार के मानसिक विचार को—यावत्—जानकर अठारह हजार श्रमणों के साथ—यावत्—नन्दनवन में पधारे । परिपदा निकली ।

निपध की प्रव्रज्या और समाधिमरण—

६४. तत्पश्चात् निपधकुमार इस सुखद वृत्तान्त को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हृदय वाला होकर चार घंटे वाले अश्व रथ पर आरूढ़ होकर निकला और जमाली के समान—यावत्—माता-पिता से पूछकर प्रव्रजित हो गया, अनगार हो गया इयांसमिति वाला—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

६५. तत्पश्चात् वह निपधकुमार अर्हत अरिष्टनेमि के तथारूप स्थविरो के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, पण्ड—यावत्—विविध प्रकार के तप कर्म से आत्मा की भावना करते हुए परिपूर्ण नौ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करता है, पालन करके वयालीस भक्तों को अनशन से छेदन करके आलोचना प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त हो आनुपूर्वी से काल प्राप्त हुआ ।

वरदत्त के पूछने पर अरिष्टनेमि द्वारा निपध का सर्वार्थ—सिद्ध विमानं कथन—

६६. तत्पश्चात् वरदत्त अनगार निपधकुमार को कालगत जान-

जेणेव अरहा अरिदुणेमी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुष्पियाणं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभइए-जाव-विणीए । से णं, भन्ते ! निसढे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कर्हिं गए, कर्हिं उववन्ने ?

“वरदत्ता” ई अरहा अरिदुणेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी—“एवं खलु, वरदत्ता ! ममं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभइए-जाव-विणीए ममं तहावरूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जिता बहुपडिपुष्णाइं नव वासाइं सामणपरियाणं पाउणित्ता वायालीसं भत्ताइं अण-सणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चन्दिम-सूरिय-गह-गण-नखत्ततारावरूवाणं तिण्णि य अट्टारसुत्तरे गेविज्जविमाणवाससए वीइवइत्ता सव्वट्ठसिद्धविमाणे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्त्ता ।”

तत्थणं णिसढस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमा ठिई पणत्ता ।

निसढस्स महाविदेहे सिद्धी भावि ति अरिदुणेमिकहण—
६७. “से णं, भन्ते ! निसढे देवे ताओ देवलोगाओ आउखएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणनन्तरं चयं चइत्ता कर्हिं गच्छिहिइ, कर्हिं उववज्जिहिइ ?”

“वरदत्ता ! इहेव जम्बुद्वीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नगरे विसुद्धपिड्वसे रायकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिए । तए णं से उम्मुक्कवालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहावरूवाणं थेराणं अन्तिए केवलंबोहिं बुज्जित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ ।

से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ इरियासमिए-जाव-गुत्तवम्भ-यारी । से णं तत्थ व्हइं चउत्थ-छट्ठ-उट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मास-द्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्भेहिं अप्पाणं भावेमाणे व्हइं वासाइं सामणपरियाणं पाउणिसइ । पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेहिइ, झूसिता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइहिइ, जस्सट्टाए कीरइ नग्गभावे मुण्डाभावे अण्णाणए अदन्तवणए अछत्तए अणोवाहणए फलहसेज्जा कट्टसेज्जा केसलोए वम्भचेर-वासे-

कर जहो जहंत अरिदुणेमि विण्णये वे, वही जादे, आकर उन्तोमि उम प्रान्त हया—

‘हे भवन्त !’ आप देवानुष्पिय का अन्तेवासी निपध अणगार प्रकृति भद्रत—यावन्—विनीत वा । सो हे भवन्त ! वद निपध अणगार काल करने के अणगार पर काल करत हया गया और कहां उत्पन्न हुआ है ?

‘हे वरदत्त !’ उम प्रकृत ने वरदत्त अणगार को नन्वोधि करके अहेत अरिदुणेमि में कहा—‘हे वरदत्त ! मेरा अन्तेवासी निपध नामक अणगार जो प्रकृति में भद्र—यावन्—विनीत वा मेरे तथात्प स्थविरों के समीप सामाधिक आदि ग्यारह वर्षों का अध्ययन कर परिपूर्ण हो गया वह आमण पर्याय का पालन कर, वयालीस भक्तों को अणगार से पूर्ण कर, आराधना और प्रति-क्रमण कर समाधि प्राप्त हो—समाधिस्य हो काल मान में—मरण काल आने पर काल करके ऊर्ध्व दिशा में चन्द्र, सूर्य, ब्रह्म-गण नक्षत्र और नारायण से भी ऊपर शीघ्र, ईशान आदि कल्पों और तीन सो अठारह त्रैलोक्य विमानवासियों का भी उल्लंघन कर नवार्थ मिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है । वहां देवों की तैनीम सागरोपम ही स्थिति है ।

वहां निपधदेव की भी तैनीम सागरोपम ही स्थिति है ।

निपध की महाविदेह में सिद्धि होगी : अष्टिनेमि कथन—
६७. ‘हे भवन्त ! वह निपधदेव आयु क्षय, भवक्षय और स्वित्त-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से राक्षित होकर कहां जायेगा-कहां उत्पन्न होगा ?’

‘हे वरदत्त ! इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उन्नात नगर में विशुद्ध पितृ वंश वाले राजकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा उसके बाद बाल्यकाल के वीतने पर, सज्ञान अवस्था को प्राप्त होने—होश सँभालने पर और युवावस्था को प्राप्त करने—जवान हो जाने पर तथात्प स्थविरों के समीप केवल बोधि—शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त कर गृह त्यागकर अण-गारत्व में प्रव्रजित होगा ।’

वह इयासमिति आदि से युक्त—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी अणगार होगा । तब वह बहुत से चतुर्थ, पष्ठ, अष्ठ, दशम, द्वादश मास, अर्धमासखमण, रूप विचित्र तपकर्म से आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों की श्रामण्य पर्याय का पालन करेगा । पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना करेगा, आराधना करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन करेगा, जिस अर्थ—मोक्ष प्राप्ति के लिए नग्नभाव, मुंडभाव,

परधरवेसे पिण्डवाउलद्धावलद्धे उच्चवावया य गामकण्टगा अहिया-
सिज्जति, तमट्टं आराहेइ । आराहिता चरिमेहं उस्सासनिस्ता-
सेहं सिज्जहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणं अन्तं काहिइ ।

—वण्ह० अ० १

स्नान त्याग, दंतधावन-त्याग, छत्रत्याग, उपानह—जूता मोजा
आदि का त्याग, फलक शैया पाट पर सोना, काष्ठशैया, केश
लोच, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षार्थ, पर गृह-प्रवेश, भिक्षा ग्रहण, लाभ
और अलाभ में समभाव तथा इन्द्रियों के अनुकूल और प्रतिकूल
शब्दादि को वीतराग भाव से सहन आदि किया जाता है, उस
मोक्ष रूप की आराधना करेगा । आराधना करके चरम उश्वास—
निःश्वास में सिद्ध होगा—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त होगा ।

६. अरिष्टनेमित्तये गोयमाइया अणगारा

६. अरिष्टनेमि तीर्थ में गौतमादि अनगार

संगहीणा-गाहा—

६८. गोयम, समुद्र, सागर, गंभीरे चैव होइ, यिमिए य ।
अयले, कंपिल्ले खलु, अक्खोभ, पसेणई, विण्ह । १ ।

वारवईए कण्हो वासुदेवो—

६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवई नामं नयरी होत्था-दुवालस-
जोयणाघामा नवजोयणवित्थिण्णा धणवति-मंड-णिम्माया चामोकरं
पागारा नाणामणि-पंचवण्ण-कविसीसगमंडिया सुरम्मा अलकःपुरि-
संकासा पमुदिय-पक्कौलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया
जाव-पडिह्वा ।

तीसे णं वारवईए णयरीए वहिया उत्तपुरत्थिमे दिसीभाए,
एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था-वण्णओ ।

तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था-
वण्णओ ।

तस्स णं उज्जाणस्स बहूमज्जदेसभाए सुरप्पिए नामं जक्खा-
यतणे होत्था चिराइए पुव्वपुरिस-पण्णत्ते पोराने से णं एगेणं
वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्जदेसभाए, एत्थ णं महं एगे असो-
गवरपायवे ।

१००. तत्थ णं वारवईए णयरीए कंहे नामं वासुदेवे राया
परिवसइ महया, राय-वण्णओ ।

संग्रहणी गाथा—

६८. १ गौतम, २ समुद्र, ३ सागर ४ गंभीर ५ स्तिमित ६ अचल
७ काम्पिल्य ८ अक्षोभ ९ प्रसेनजित और १० विष्णुकुमार ।

द्वारावती में कृष्ण वासुदेव—

६९. उस काल, उस समय में द्वारावती नामक नगरी थी—जो
वारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी, जिसका निर्माण
स्वयं कुवेर ने अपनी बुद्धि कौशल द्वारा किया था तथा सुवर्ण के
परकोटे और अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों से जटित कंगूरों
से सुसज्जित, शोभनीय थी, जिसकी उपमा अलकापुरी से की
जाती थी, क्रीड़ा प्रमोद आदि की समस्त सामग्रियों से परिपूर्ण
होने से साक्षात् देवलोक स्वरूपा थी और देखने वालों का मन
सहज ही आनंदित एवं आकर्षित हो जाता था यावत्—ऐसी वह
सर्वांग सुन्दर सर्वोत्तम थी ।

उसी द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग में रैवतक
नामक पर्वत था—वर्णन । उस रैवतक पर्वत पर नंदनवन नामक
उद्यान था—वर्णन ।

उस उद्यान के ठीक मध्य भाग में सुरप्रिय नामक यक्षायतन
था, जिसे पूर्व पुरुषों ने बहुत समय का प्राचीन कहा था । वह
एक वनखण्ड से घिरा हुआ था ।

उस वनखण्ड के बीचोबीच एक श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था ।

१०० उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव नामक महान राजा
राज्य करते थे, जिनके राज्य का वर्णन करना ।

से णं तत्थ समुद्धविजयपांमोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव-
पांमोक्खाणं पंचसहं महावीराणं, पञ्जुणपांमोक्खाणं अद्धुत्ताणं
कुमारकोडीणं, संबपांमोक्खाणं सट्ठीए दुद्धंतसाहस्तीणं, महासेण-
पांमोक्खाणं छप्पणाए बलवगसाहस्तीणं, वीरसेणपांमोक्खाणं एग-
वीसाए वीरसाहस्तीणं, उग्गसेणपांमोक्खाणं सोलसाहं रायसाह-
स्तीणं, रुप्पिणीपांमोक्खाणं 'सोलसण्हं देवीसाहस्तीणं अणंगसेणा-
पांमोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्तीणं, अण्णोसि च वहुणं,
राईसर-तलवर-मांडबिय-कोडुम्बिय-इव्वम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाणं
वारवईए नयरीए अद्धभरहस्त य समंतस्स आहेवच्चं पोरेवच्चं
सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे
पालेमाणे विहरइ ।

१०१. तत्थ णं वारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ
—सहयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ ।

अंधगवण्हिरण्णो गोयमो कुमारो—

तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—
वण्णओ ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंति तारिसगंति
सयणिज्जंसि-जाव-नियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं
पडिवुद्धा एवं जहा महव्वले ।

सुमिणइंसण कहणा जम्मं बालत्तणं कलाओ य ।

जुव्वण पाणिग्गहणं कंता पासाय भोगा ।१।

नवरं—गोयमो नामेणं । अद्धुहं रायकण्णाणं एगद्विवसेणं पाणिं
गेण्हावेति । अद्धुओ दाओ ।

अरिट्ठनेमिस्स धम्मोवएसो, गोयमपटवज्जा य—

१०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आदिकरे-जाव-
संजमेणं तवसा अण्णाणं भावेमाणे विहरइ । चउव्विहा देवा
आगया । कण्हे वि निग्गए ।

तए णं तस्स गोयमस्स कुमारस्स तं महाजणसइ च जण-
कलकलं च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए
परियए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था । जहा मेहे तहा णिग्गए ।
धम्मं सोच्चा निरुम्म हट्ठुट्ठे^० जं नवरं—देवाणुप्पिया ! अम्मा-
पियरो आपुच्छामि । तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे
भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

तए णं गोयमे कुमारे एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए —

ये उमं द्वारावती नगरी मे समुद्धविजय आदि दस हजार,
बलदेव आदि पांच महावीर प्रयुग्म आदि नादे तीन करोड़
कुमार, शत्रुओं मे कभी पराजित नही कानि शत्रु आदि साठ
हजार गुर, महासेन आदि छप्पन हजार मैनिक वर्ग, वीरसेन
आदि शकतीम हजार वीर, उग्गसेन आदि सोलह हजार राजा,
रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियां अंगमेना आदि हजारों
गणिकावें तथा उनके अनिरिक्त बशुन मे राजा, उग्यर, तलवर
(नगर रक्षक) मांडविक, कोटुम्बिक, इव्वश्रेष्टी, मेनापनि,
सार्थवाह आदि निवान करते थे । ऐसी द्वारावती नगरी और
आधे भग्न क्षेत्र का आधिपत्य, प्रभुत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व
महत्तरत्व, आज्ञाश्रयत्व और मेनापतित्व करने हुए पालन—गानन
करते हुए विचरते थे ।

१०१. उनी द्वारावती नगरी मे महाहिमवान, महान मंदर पर्वत
एवं महेन्द्र के समान राजाओं मे श्रेष्ठ अंधक वृष्णि नामक राजा
निवास करते थे—वर्णन ।

अन्धक वृष्णि राजा का गौतम कुमार—

उन अंधक वृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी—
वर्णन । तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी किसी एक समय पुण्यत्रां के
शयन योग्य शैया पुर सो रही थी—यावत्—अपने सुख में तिह
को प्रवेश करने वाले स्वप्न को देखकर जाग्रत हुई । जैसा महाबल
का वर्णन है वैसा ही स्वप्न दर्शन, फल-कथन, जन्म, बाल्यकाल,
कला शिक्षण तथा याँवन एवं पाणिग्रहण करके कान्त, प्रिय
भोग भोगने तक का सर्व वर्णन यहाँ करना चाहिए, किन्तु इतना
विशेष है—नाम गौतम है । एक ही दिन में आठ राजकन्याओं से
पाणिग्रहण करवाया । आठ-आठ वस्तुओं के दहेज प्राप्त हुए ।

अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश और गौतम प्रव्रज्या—

१०२. उस काल उस समय धर्म के आदिकर अर्हत अरिष्ट
नेमि-यावत-संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए
विचरते थे । चारों निकाय के देवगण आये । कृष्ण भी निकले ।

तत्पश्चात् उस गौतम कुमार के मन में जन समूह के शब्दों
और जन कोलाहल को सुनकर और देखकर इस प्रकार का
अध्यवसाय, चिंतित, प्राथित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ । मेघ-
कुमार की तरह यह गौतम भी निकला । धर्म श्रवण कर और
मन में समझकर हृष्ट तुष्ट हुआ विशेष केवल इतना है कि हे
देवानुप्रिय ! माता पिता से आज्ञा लूँगा, तत्पश्चात् आप देवानु-
प्रिय के पास मुंडित होकर श्रद्धास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या
स्वीकार करूँगा ।

तत्पश्चात् वह गौतम कुमार भी मेघकुमार की तरह अनगार

इरियासमिए जाव इणमेव निगंयं पावयणं पुरओ काउं विहरइ ।

तए णं से गोयमे कुमारे अणया कयाइ अरहओ अरिष्ट-
नेमिस्त तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयामाइयाइं एक्कारत्त
अंगाइ अहज्जइ, अहिज्जिता बह्निं चउत्थ-छट्टुम-दसम-दुवाल-
सेहिं मासद्धम-सखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मोहिं अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ।

गोयमस्स सेत्तु जे सिद्धी—

१०३. तए णं अरहा अरिष्टनेमी अणया कयाइ वारवईओ
नयरीओ नंदणवणाओ पडिण्खमइ, बहिया जणवयविहारं
विहरइ ।

तए णं से गोयमे अणगारे अणया कयाइ जेणेव अरहा
अरिष्टनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अरहं अरिष्टनेमि
तिखुतो अयाहिण-नयाहिणं करेइ, करेता वंदइ नमंइ, वंदिता
नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुवोहिं अब्भणुणाए
समणे मसिय भिक्खुपडिम उवसंपज्जिता णं विहरित्ते । एवं
जहा खंदओ तहा वरत्त भिक्खुपडिमाओ फासेइ फासित्ता गुणर-
यणं पि तवोकम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं । जहा खंदओ तहा
अपुच्छइ, तहा थेरेहिं सिद्धिं सेत्तुंजं दुक्खइ ।

तए णं से गोयमे अणगारे वारत्त वाताइं सामग्गपरियाणं
पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्तणं झूसित्ता सिद्धिं भत्ताइं
अणसणाए छेदित्ता जाव केवलवरणाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ
पच्छा सिद्धे ।

समुद्दादि—

१०४. एवं जहा गोयमो तहा सेसा ।

अंधगवण्ही पिया, धारिणी माया । समुद्धे सागरे, गंभीरे,
थिमिए, अयले, कपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई, विण्ह, एए-एगगमा ।

—अंत० व० १-अ० १-१०

अक्खोभाइ कुमारा अणगारा—

संगहणी-गाहा—

१०५. अक्खोभ सागरे खलु समुद्ध हिमवन्त अचलनामे य ।

धरणे य पूरणे या, अभिचंदे च्चैव अट्ठमए । १ ।

हूआ-ईया समिति-यावत्त-इसी निश्रंस्वः प्रवृत्त को आगे रखकर
अर्थात् जिन आज्ञा के अनुसार साधना करते हुए विहार करने
लगा ।

तत्पश्चात् उस गौतम अनगार ने किसी एक समय अर्हत्
अरिष्टनेमि के तथारूप (गीतार्थ) स्थविरों के पास सामायिक
से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया; अध्ययन करके वह
अनेक चतुर्थ, पष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, अर्धमास और मासक्षण
आदि विविध प्रकार के तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए
विचरने लगा ।

गौतम की शत्रुंजय पर्वत पर सिद्धि—

१०३. तत्पश्चात् किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि ने द्वारावती
नगरी के नंदनवन से विहार किया और बाह्य जनपदों में
विचरने लगे ।

उसके बाद वह गौतम अनगार किसी एक समय जहाँ अर्हत्
अरिष्टनेमि विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर अर्हत्
अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा को, प्रदक्षिणा
करके वंदन, नमस्कार किया, वदना नमस्कार करके इस प्रकार
बोले—हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मासिक भिक्षु
प्रतिमा स्वीकार करना चाहता हूँ । स्कन्दक की तरह बारह
प्रतिमाओं की आराधना की, आराधना करके गुणरत्न तपोकर्म
की साधना भी की । जिस तरह स्कन्दक ने विचार किया था
और पूछा था उसी तरह गौतम ने भी विचार किया और आज्ञा
ली तथा उसी प्रकार स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर आरो-
हण किया ।

तत्पश्चात् वह गौतम अनगार बारह वर्ष की श्रमण पर्याय
का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल बना-
कर साठ भक्तपान का अनशन द्वारा त्याग कर यावत् सर्वोत्तम
केवलज्ञान दर्शन प्रगट कर सिद्ध पद को प्राप्त हुए ।

समुद्रादि—

१०४. जैसा गौतम अनगार का वर्णन किया गया है, उसी
तरह शेष समुद्र-आदि का भी वर्णन जानना चाहिये ।

इन सबके पिता का नाम अंधकवृष्णि और माता का नाम
धारिणी है तथा इनके नाम समुद्र, सागर, गंभीर स्तिमित अचल,
कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णुकुमार है । इन सबका
वर्णन एक समान है ।

अक्षोभादि कुमार अनगार—

[संग्रहणी गाथा]

१०५. १ अक्षोभ २ सागर ३ समुद्र ४ हिमवन्त ५ अचल
६ धरण ७ पूरण और ८ अभिचंद्र ये आठ राजकुमार थे ।

१०६. तेणं काले तेणं समएणं बारवई नामं नयरी । अंधगवही
पिया । धारिणी माया । गुणरयणं तवो-कम्मं । सोलस वासाइं
परियाओ । सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए सिद्धा ।

—अंत० व० २. अ० १-८

१०६. उस काल उस समय द्वारावती नगरी थी । पिता का नाम
अन्धकवृष्णि और माता का नाम धारिणी या । गुणरत्न तपोकर्म
की साधना की । सोलह वर्ष अमण पर्याय प्राप्त की । ब्रह्म
पर्वत पर मासिक मंत्र्यना करके सिद्ध पद को प्राप्त किया ।

७. अरिष्टनेमितित्थे अणीयसो कुमारो अणो य

१०७. १ अणीयसे, २. अणंतसेणे, ३. अजियसेणे, ४. अणिहयरिऊ
५. देवसेणे ६. सत्तुसेणे ७. सारणे ८. गए, ९. समुद्धे, १०.
दुम्मुहे, ११. कूवए १२. वारुए, १३. अणाहिद्धी ।

भद्रिलपुरे नागगाहावई तस्स य पुत्तो अणीयसो—

१०८. तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्रिलपुरे नामं नगरे होत्या—
वण्णओ ।

तस्स णं भद्रिलपुरस्स उत्तरपुरत्थिमे विसीभाए सिरिवणे नामं
उज्जाणे होत्या—वण्णओ, जियसत्तू राया ।

तत्थ णं भद्रिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई होत्या—अड्डे-
जाव-अपरिभूए । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं
भारिया होत्या—सूमाला-जाव-सुरूवा ।

१०९. तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए
अत्तए अणीयसे नामं कुमारे होत्या—सूमाले-जाव-सुरूवे पंच-
धाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे-जाव-गिरिकंदरमल्लीणे विव चंपग-
वरपायवे णिन्वाघायंसि सुहेसुहेणं परिवड्ढइ ।

तए णं तं अणीयसं कुमारं सातिरेगअट्ठवासजायं जाणित्ता
अम्मापियरो कलायरियस्स उवणंति-जाव-भोगसमत्थे-जाए यावि
होत्या । तए णं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्कवालभावं जाणित्ता
अम्मापियरो सरिसियाणं सरिन्वयाणं सरित्तियाणं सरिसलावण्ण
रूव-जोव्वण-गुणोव्वेयाणं सरिसएहंतो इम्मकुलेहितो आपिण-
ल्लियाणं वत्तीसाए इम्मवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेति ।

तए णं से नागे गाहावई अणीयसस्स कुमारस्स इमं एयारूवं
पीइवाणं दलयइ, तं जहा—

वत्तीस हिरण्णकोडीओ जहा महावलस्स-जाव-उप्पिपासाय-

७. अरिष्टनेमि तीयं में अणीयस कुमार और अन्य—

१०७. १ अणीयस २ अनन्तसेन ३ अजितसेन ४ अनिहतरिपु ५ देव-
सेन ६ शत्रुसेन ७ सारण ८ गज ९ समुद्र १० दुम्ब ११ कूपक
१२ दासक और १३ अनादृष्टि ।

भद्रिलपुर में नाग गृहपति और उसका पुत्र अणीयस—

१०८. उस काल उस समय में भद्रिलपुर नामक नगर वा—
वर्णन ।

उस भद्रिलपुर के उत्तर पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में श्रीवन
नामक उद्यान था—वर्णन, जितशत्रु नामक राजा था ।

उस भद्रिलपुर नगर में नाग नामक गृहपति निवास करता
था—घनाद्य-यावत्-किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं करने
वाला था । उस गृहपति की सुकुमाल-यावत सुन्दर सुलसा नाम
की भार्या थी ।

१०९. उस नाग गृहपति का पुत्र सुलसा भार्या का आत्मज
अणीयस नामक कुमार था—जो सुकुमाल-यावत-सुरूप पांच धाय
माताओं से परिवेष्टित दृढ़प्रतिज्ञ के समान-यावत-गिरिगुफा में
स्थित उत्तम चंपक पादप के समान विना किसी विघ्न-बाधा के
सुखपूर्वक वृद्धिगत-परिवर्धित होने लगा ।

तत्पश्चात् उस अणीयसकुमार को कुछ अधिक आठ वर्ष
का हुआ जानकर माता-पिता ने कलाचार्य के पास भेजा-यावत-
भोग भोगने में समर्थ हो गया । तब उस अणीयसकुमार को
बाल्यकाल का अतिक्रमण किया हुआ जानकर माता पिता ने
एक ही दिन उसका सदृश रंग समान वय, समान त्वचा, समान
लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त सदृश इभ्य श्रेष्ठी कुलों से
लाई गई वत्तीस श्रेष्ठ इभ्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया ।

तत्पश्चात् उस नाग गाथापति ने अणीयसकुमार को यह
इस प्रकार का प्रीतिदान दिया, वह इस प्रकार है । यथा—

वत्तीस हिरण्य कोटियां जंसा महावल के लिये उसके माता-

वरगए फुट्टमाणोहं मुङ्गमत्थएहि भोगभोगाई भुंजमाणे विहरइ ।

अरिष्टनेमिसकासे अणियसपव्वज्जा सत्तु जे सिद्धी य—

११०. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिष्टनेमी जेणेव भद्विलपुरे नयरे जेणेव सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अहापडिख्वं ओग्गहं ओगिहिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-माणे विहरइ । परिसा निग्गया ।

तए णं तस्स अणियसस्स कुमारस्स तं महाजणसदं च जण-कलकलं च सुगेत्ता य पसेत्ता य इमेयारूवे अज्जत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था । जहा गोयमे तहा अणगारे ज ए, नवरं—सामाइयमाइयाई चौदस-पुव्वाइ अहिज्जइ । वीसं वासाइं परियाओ । सेसं तहेव-जाव-सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झुसित्ता सट्ठि भत्ताइं अगसणाए छेदिता जात्र केवलवरणाणदंसणं समुपाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे ।

—अंत० व० ३-अ० १

अणंतसेणकुमाराई अणगारा—

१११. एवं जहा अणियसे । एवं सेता वि अणंतसेण-जात्र-सत्तुसेणे छ अज्जयणा एक्कगमा । वत्तीसओ दाओ । वीसं वासा परियाओ । चौदस पुव्वा । सेत्तुंजे सिद्धा ।

—अंत० व० ३, अ० २-६

सारणकुमारसमणो—

११२. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा अणियसे नवरं-वसुदेवे ॥ राया । धारिणी देवी । सीहो सुमिगे । सारणे कुमारो । पण्णासओ दाओ । चौदस पुव्वा । वीसं वासा परि-याओ । सेसं जहा गोयमस्स-जाव-सेत्तुंजे सिद्धे ।

—अंत० व० ३, अ० ७

८. अरिष्टनेमित्थे गजसुकुमालाइसमणा

पिता ने दिया था यावत्-श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपरी भाग में निरंतर बने हुए मृदंगों की ध्वनियों पूर्वक भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचरता था ।

अरिष्टनेमि के समक्ष अणियस की प्रव्रज्या और शत्रुञ्जय पर सिद्धि—

११०. उस काल, उस समय अर्हत अरिष्टनेमि जहाँ भद्विलपुर नगर था, जहाँ श्रीवन उद्यान था, वहाँ पधारे, पधार कर यथा विधि अवग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं । परिपदा निकली ।

तत्पश्चात् विशाल जन-समूह के शब्दों और कोलाहल को सुनकर और जन समूह को देखकर उस अणियसकुमार को यह इस प्रकार का अध्यास, चिंतित प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ । गौतम के समान अनगार हो गये, विशेष केवल इतना है कि सामायिक से प्रारम्भ कर चौदहपूर्वों का अध्ययन किया । बीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया । शेष वर्णन पूर्व की तरह-यावत्-शत्रुञ्जय पर्वत पर मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध—पवित्र करके अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्यागकर-यावत्-श्रेष्ठ केवल ज्ञान-दर्शन को प्रगट किया, उसके बाद सिद्ध हुए ।

अनन्तसेन कुमारादि अनगार—

१११. इसी प्रकार जैसा अणियस का वर्णन है, उसी प्रकार शेष का भी वर्णन जानना चाहिये । अनन्तसेन यावत् शत्रुसेन तक के ६ अध्ययन एक समान समझना । वत्तीस प्रीतिदान प्राप्त हुए । बीस वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया । चौदह पूर्वों का अध्ययन किया । शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

सारण कुमार श्रमण—

११२. उस काल उस समय वारावती नगरी में, अणियस के वर्णन के समान, किन्तु विशेष यह है कि वसुदेव राजा थे । धारिणी देवी थी । स्वप्न में सिंह को देखा । नाम सारण कुमार रखा गया । पचास दहेज प्राप्त हुए । चौदह पूर्वों का अध्ययन किया । बीस वर्ष दीक्षा पर्याय पालन की । शेष वर्णन गौतम के समान-यावत्-शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

९. अरिष्टनेमि तीर्थ में गजसुकुमालादि श्रमण

११३. तेणं कालेणं तं समएणं बारवईए नयरीए, अरहा अरि-ष्टनेमी समोसडे ।

११३. उस काल, उस समय में वारावती नगरी थी, अर्हत अरिष्ट-नेमि का पदार्पण हुआ ।

छण्हं अणगाराणं तव-संरूपस्स अरिट्ठनेमिणा
अब्भणुण्णा—

११४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स
अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था—सरित्तया सरि-
त्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय अयसिकुसुमप्पगासा सिरि-
वचंकिअ-वचछा कुसुम-कुण्डलभद्दलया नलकूवरसमाणा ।

तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ
अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमि वंदति
णमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामो णं भंते ! तुभेहि अब्भणुण्णाया समाणा जाव-
ज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिविखत्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा
अप्पाणं भावेमाणा विहरित्ताए ।”

अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया
समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिविखत्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

छण्हं पि देवईए गिहे कमसो पवेसो—

११५. तए णं ते छ अणगारा अणया कयाई छट्ठवखमणपा-
रणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्जायं करंति, वीयाए पोरिसीए
झाणं झियायंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंता मुह-
पोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहिता भायणवत्थाइं पडिलेहंति, पडिले-
हिता भायणाइं पमज्जंति पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहंति,
उग्गाहेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवाग-
च्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमि वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं
वयासी—

“इच्छामो णं भंते ! छट्ठवखमणस्स पारणाए तुभेहि
अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं वारवईए नयरीए उच्च-
नीय-मज्जिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ताए ।”

अहामुहं देवानुप्पिया !

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया
समाणा अरहं अरिट्ठनेमि वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता

छह अनगारों के तप-संरूप ही अरिष्टनेमि द्वारा अनुमति—

११४. उन काल, उन समय में प्रहृत अरिष्टनेमि के छह नगरीय
भाई अनगार जिये थे—ये सभी समान आर्त्ति वाले समान
रूप और समान वय वाले थे, उनकी नगरीय पति नीलकण्ठ,
भैसे के योग के आनरित भाग एव अयसी के दूज के समान
नीलकण्ठ की थी और उनका वधस्वयं श्रेयस्व नामक विन्दु
विशेष से अंकित था, मिर पर दूजों के समान कोमल और
कुण्डल के समान घुमे हुए घुंघराणे वाले गोभावमान होते थे,
सौन्दर्य और मुर्तियों में नल-कूवर के समान थे ।

तत्पश्चात् वे छहों अनगार जिन दिन मुण्डित होकर गृह त्याग
कर अनगारत्व में प्रव्रजित हुए उसी दिन उन्होंने अर्हत अरिष्ट-
नेमि को वंदना, नमस्कार किया और वंदना नमस्कार करके इस
प्रकार कहा—

हे भगवन् ! हम आपसे आज्ञा प्राप्त कर जीवन पर्यंत
निरन्तर पष्ठ-पष्ठ भक्त तपकर्म द्वारा संयम और तप से आत्मा
को भावित करते हुए विचरने की इच्छा करते हैं ।

हे देवानुप्रियो ! जैसे मुद्य उपजे वंसा करो, विलंब—प्रमाद
न करो ।

तत्पश्चात् वे छहों अनगार अर्हत अरिष्टनेमि से आज्ञा
प्राप्त कर यावज्जीवन के लिये निरन्तर पष्ठ-पष्ठ तपकर्म
द्वारा संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।
छहों का क्रमशः देवकी के गृह में प्रवेश—

११५. तत्पश्चात् वे छहों अनगार किसी एक दिन पष्ठ भक्त के
पारणे के समय प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर में
ध्यान ध्याते हैं, तीसरे प्रहर में शीघ्रता न कर, धीरे-धीरे बिना
उतावली के मुखवस्त्रिका की पडिलेहना करते हैं, पडिलेहना करके
उपकरणों और वस्त्रों की प्रतिलेखना करते हैं, उनकी प्रतिलेखना
करके पात्रों को पोंछते हैं, पोंछकर पात्रों को उठाते हैं, उठाकर
जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि विराजमान हैं, वहाँ आते हैं, आकर
अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार
करके इस प्रकार बोले—

हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर पष्ठ भक्त पारणा के
लिये तीन संघाटकों में द्वारावती नगरी के उच्च, नीच, मध्यम
कुलों में गृह सामुदायिक भिक्षाचर्या के निमित्त परिभ्रमण करना
चाहते हैं ।

जैसा सुख हो, वैसा करो—भगवान ने उत्तर दिया—

तत्पश्चात् वे छहों अनगार अर्हत अरिष्टनेमि की आज्ञा
प्राप्त कर अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना, नमस्कार करते हैं

अरहओ अरिदठनेमिस्स अतिप्राओ सहसंववणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमिन्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियमचवल्मसभंत्ता जुगंतर-पलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव, वारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छंत्ता वारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडंति ।

११६. तथ णं एगे संघाडए वारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसु-देवस्स रण्णे देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे ।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्टुत्तुत्त-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसंप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइं, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागयां, सीहकेशराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविस्सज्जेइ ।

११७. तयणंतरं च णं दोच्चे संघाडए वारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णे देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे ।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्टुत्तुत्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइं, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेशराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता पडिविस्सज्जेइ ।

११८. तयणंतरं च णं तच्चे संघाडए वारवईए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णे देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे ।

देवईए एगस्सेव पुणरागमणसंत्ता—

११९. तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्टुत्तुत्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पदाइं अणुगच्छइं, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेशराणं मोयगाणं थालं भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयात्ती—

वंदना-नमस्कार करके अर्हत अरिदठनेमि के पास से, सहस्रात्रवन से निकलते हैं, निकलकर तीन संघाटकों में अत्वरित गति, चपलता रहित और लाभालाभ के उद्वेग रहित होकर युग प्रमाण भूमि को दृष्टि से देखते हुए अर्थात् ईयसिमिति पूर्वक गमन करते हुए जहाँ द्वारावती नगरी है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षार्थ पर्यटन करते हैं ।

११६. उनमें से एक संघाटक (सिघाड़ा) द्वारावती नगरी के उच्च—नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा के लिये धूमता हुआ वसुदेव राजा और रानी देवकी के घर में प्रविष्ट हुआ ।

तत्पश्चात् उस देवकी देवी ने उन अनगरों को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त वाली, प्रीतिमना, परम उल्लास पूर्वक, हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाली होकर आसन से उठी उठकर सात-आठ पग सामने गई; तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की; प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ भोजनशाला थी, वहाँ आई, सिंहकेशर मोदकों का थाल भरा और उन अनगरों को प्रतिलाभित किया, फिर वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके विनयपूर्वक प्रति विसर्जित किया अर्थात् विदा किया ।

११७. तदनन्तर दूसरा सिघाड़ा भी द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुल गृह में गृह सामुदानिक भिक्षा के निमित्त धूमता हुआ वसुदेव राजा की देवकी रानी के घर में आया ।

तब उस देवकी रानी ने उन अनगरों को आते देखा, हृष्ट तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर सात-आठ पद सामने गई, तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ भोजनशाला थी, वहाँ आई, सिंहकेशर मोदकों का थाल भरा और उन अनगरों को प्रतिलाभित किया, फिर वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके प्रतिविसर्जित किया ।

११८. तदनन्तर तीसरा सिघाड़ा भी द्वारावती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा चर्चा से धूमता हुआ वसुदेव राजा की रानी देवकी के घर में प्रविष्ट हुआ ।

देवकी की एक ही घर में ही पुनरागमन शंका—

११९. तत्पश्चात् उस देवकी रानी ने उन अनगरों को आते देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर सात आठ पद सामने गई, तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार कर जहाँ भोजनशाला थी, वहाँ आकर सिंहकेशर मोदकों को थाल में रखा, उन अनगरों को प्रतिलाभित किया और प्रतिलाभित करके दम प्रकार कहा—

नीय-मज्झिमाइ कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा ।

तं णो खलु देवानुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे । अम्हे णं अण्णे-देवइं देवि एवं वदंति, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।”

देवईमणम्मि अइत्तुकुमारवयणे संका—

१२१ तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए.....संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अतिमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ—“तुमण्णं देवानुप्पिए ! अट्ट पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नलकूवर-समाणे नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्सति ।” तं णं मिच्छा । इमं णं पच्चक्खमेव दिसइ-भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए पुत्ते पयायाओ । तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमि वंदामि, वदित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामीति कट्ठु एवं सपेहेइ, सपेहेत्ता कोडुं बियपुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह ।” ते वि तहेव उवट्ठवेंति । जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ ।

अरिष्टनेमिण सुलसाचरियकहणेण संका-समाधानं—

१२२. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवइं देवि एवं वयासी—

“से नूणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए.....संकप्पे समुप्पण्णे—“एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिआ तं चेव जाव निग्गच्छित्ता मम अतियं हव्वमागया ।” से नूणं देवई ! अट्टे समट्टे ?

हंता अत्थि ।

एवं खलु देवानुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भदित्तपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ—अट्टे जाव अपरिभूए ।

तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था ।

१२३. तए णं सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव नेमित्तिएणं वागरियः—“एस णं दारिया णिदुं भदिसइ ।”

वती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदायिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हुए तुम्हारे घर में प्रवेश किया है ।

इसलिये हे देवानुप्रिये ! जो पहले आये थे वे हम नहीं हैं । हम अन्य ही हैं—दूसरे ही हैं—‘देवकी देवी को इस प्रकार कहा, कहकर जिस दिशा से आये थे उसी ओर लौट गये ।’

देवकी के मन में अतिमुक्त कुमार के वचन में शंका—

१२१ तत्पश्चात् उस देवकी को यह इस प्रकार का अध्व-साय.....संकल्प उत्पन्न हुआ कि “जब मैं छोटी थी, उस समय पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार श्रमण ने मुझसे कहा था—‘हे देवानुप्रिये ! तुम समान आकृति रूप रंग—यावत् नलकूवर के समान आठ पुत्रों को जन्म दोगी, इस भारतवर्ष में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी । उक्त कथन मिथ्या सिद्ध हुआ । क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष ही दिख रहा है—भारतवर्ष में अन्य दूसरी माता ने भी इस प्रकार के पुत्रों को जन्म दिया है । इसलिये मैं अर्हत अरिष्टनेमि के पास जाऊँ और वंदना करूँ, वंदना करके यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछूँ—इस प्रकार का विचार करती है, विचार करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिये ! उत्तम धार्मिक रथ को जोतकर शीघ्र ही लाओ ।’ वे भी उसी प्रकार लाते हैं । देवनन्दा की तरह-यावत्-पर्यु-पासना करती है ।

अरिष्टनेमि द्वारा सुलसाचरित्र कथन करके शंका-समाधान—

१२२. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवकी ! आज तुम्हें इन छह अनगरों को देखकर यह इस प्रकार का मानसिक विकल्प पैदा हुआ है कि पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार श्रमण ने मुझसे वचन में कहा था..... इत्यादि, तदनुसार-यावत्-निकलकर शीघ्र ही मेरे निकट आई हो ।’ हे देवकी ! मेरा यह कथन सत्य है ?

हाँ है—देवकी ने कहा—

हे देवानुप्रिये ! इसका समाधान यह है कि उस काल उन समय में भदित्तपुर नगर में नाग नामक गाथापति रहता था— जो घन धान्य से पूर्ण एवं दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था । उस नाग गाथापति की सुलसा नामक भार्या थी ।

१२३. वह सुलसा गाथा पत्नी जब बालिका थी तभी नेमित्तियों में इस प्रकार कहा था कि ‘यह बालिका णिदुं (नृत वच्चों से जन्म देने वाली) होगी ।

तए णं सा सुलसा वालप्पभिइं चैव हरिणेगमेसिभत्तया यावि होत्था । हरिणेगमेसिस्स पेडिमं करेइ, करेत्ता कल्लाकल्लिण्णहाया कयवलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता उल्लपड-साय्या महरिहं पुष्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा चरइ वा ।

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिवहुमाणसुस्सुसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था ।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंप-णट्टयाए सुलसं गाहावइणिं, तुमं च 'दो वि समउउयाओ' करेइ ।

तए णं तुम्हे दो वि समामेव गढ्भे गिण्हह, समामेव गढ्भे परिवहह, समामेव दारए पयायह ।

तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ ।

१२४. तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्टयाए विणिहाय-मावण्णे दारए करयलसंपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ । तं समयं च णं तुमं पि नवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि । जे वि य णं देवाणुप्पिए । तव पुत्ता ते वि य तव अंतिआओ करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ ।

तं तव चैव णं देवई ! एए पुत्ता । णो चैव सुलसाए गाहावइणीए ।

छ सहोदरा अणगारा देवईए एव पुत्त त्ति णच्चा देवईए हरिसो—

१२५. तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमहुं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुच्चित्तमाणंदिया । पीडमशा परम-सोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया अरहं । अरिट्ठणेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता आगयपण्हया पफ्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तया दरियवल्लय-वाहा धाराहय-कलंबपुष्फं विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमि तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ,

तए णं सा सुलसा वालप्पभिइं चैव हरिणेगमेसी देव की भक्त बन गई । उक्तं हरिणेगमेसी देव की प्रतिभा कान्ठ बनाकर प्राप्त । तब में ही स्वानन्द अतिरुमं कर हीनक, मगड और प्रायश्चित्त करके मोक्षी सा हो गईने हुए देता है योग्य पुष्पांजन करनी, पुष्पांजन करके पुष्टं नृत्वाकर प्रणाम करनी और प्रणाम करने के बाद आहार—निद्रा, विहार आदि क्विर्त्त करनी थी ।

तए णं सा सुलसा गाथापत्नी ही भक्ति, बहुमान और शुश्रूषा ने हरिणेगमेसी देव आराधित-प्रमद-निवृत्त हो गया ।

तए णं सा सुलसा गाथापत्नी ही अनुकम्पा के लिये सुलसा गाथापत्नी और तुमही ममकाज में ही कृतुमनी करता । तबमें तुम दोनों ममान काल में गर्भधारण करती, साथ ही गर्भ का पालन करती और साथ ही तुम दोनों एक समय में बालक हो जन्म देती ।

तव वह सुलसा गाथापत्नी मून बालकों को जन्म देती ।

१२४. तए णं से हरिणेगमेसी देव सुलसा गाथापत्नी की अनुकम्पा के लिये मून बालक हो हथेनियों में लेता, लेकर तुम्हारे पास ले आता । उसी समय तुम भी नो नाम वीतने पर सुकुमाल बालक को जन्म देती, हे देवानुप्पिण ! जो भी तुम्हारे पुत्र होता उसको तुम्हारे पान से करतल संपुट में ग्रहण करता, ग्रहण करके सुलसा गाथापत्नी के नमीप रख देता ।

इसलिये हे देवकी ! ये सभी तुम्हारे पुत्र हैं । किन्तु सुलसा गाथापत्नी के नहीं हैं ।

छ सहोदर अनगार देवकी के ही पुत्र हैं—यह जानकर देवकी को हर्ष—

१२५. तए णं सा देवकी देवी अहंत् अरिट्ठनेमि से इस बात को सुन और मन में धारण कर हृष्ट तुष्ट, आनंदित प्रीतिमना, परम सौमनस, और हर्षवश विकसित हृदयवाली होकर अहंत अरिट्ठनेमि को वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके जहाँ वे छहों अनगार थे, वहाँ आई, आकर उन छहों अनगारों को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके स्तनों से दूध प्रस्रवण करने वाली हर्षाश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रवाली हो गई, पुत्र प्रेम के अतिरेक से उसकी कंचुकी के बंधन ढीले हो गये और भुजाओं के आभूषण तंग हो गये एवं मेघधारा के बरसने से विकसित कदम्ब पुष्प की तरह रोमांचित होती हुई वह उन छहों अनगारों को अपलक दृष्टि से देखती-देखती बहुत समय निरखती रही, निरखने के बाद वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ अहंत अरिट्ठनेमि विराज रहे थे, वहाँ आई, आकर

वन्दिता नमसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुवहइ, दुवहित्ता जेणेव वारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वारवई नयरी अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्ठणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चो-रुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ ।

देवईमणम्मि पुत्तास्स लालनपालनाभिलासो चिंता य—

१२६. तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्जत्थियेः संकप्पे समुप्पणे—

“एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकूवर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुब्भूए । एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतिय पायवंदए हव्वमागच्छइ । तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जांसि मण्णे गियग-कुच्छि-संभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं मधुर-समुल्लावयाइं मम्मण-पजंपियाइं थण-मूला-क्खवेसमागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवनेहिं हत्येहिं गिण्हउण उच्छंणे गिवेसियाइं देति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पमणिए । अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एकतरमवि ण पत्ता-ओहयमणसंकप्पा करयलपत्तहय-मुही अट्टज्जाणोवगया क्षियायइ ।”

कणहस्स चिंताकारणपुच्छा—

१२७. इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउय-संगल-पायच्छित्ते सब्वालंकारविमूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवईं देवि पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायगण्हणं करेइ, करेत्ता देवईं देवि एवं वयात्ती—

“अण्णया णं अम्मो ! तुवने ममं पासित्ता हट्टुट्टा जाव नवह, कियणं अम्मो ! अज्ज तुवने ओहयमणसंकप्पा जाव क्षियायह ?”

अहंत अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके, उसी धार्मिक यान प्रवर पर बैठी, बैठकर जहाँ द्वारावती नगरी थी, वहाँ आई, आकर द्वारावती नगरी में अनुप्रविष्ट हुई, अनुप्रविष्ट होकर जहाँ अपना भवन था, जहाँ वाह्य सभा-स्थान था, वहाँ आकर उत्तम धार्मिक यान से नीचे उतरी, उतरकर जहाँ अपना स्नानगृह था, जहाँ अपनी शैया थी, वहाँ आई, वहाँ आकर अपनी शैया पर बैठ गई ।

देवकी के मन में पुत्र का लालन-पालनाभिलाप और चिन्ता—

१२६. तत्पश्चात् उस देवकीदेवी को यह मानसिक.....संकल्प उत्पन्न हुआ—

मैंने समान आकृति, रूप-रंग-यावत्-नलकूवर के समान सातपुत्रों को जन्म दिया, किन्तु एक के भी बाल्यत्व का मैंने अनुभव नहीं किया है—आनन्द नहीं लिया है । यह कृष्ण वासुदेव भी छह छह महीने के बाद मेरे पास पाद वंदना के लिये आता है । इसलिये मैं मानती हूँ कि वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी हैं, वे मातायें कृतपुण्या हैं, वे मातायें कृतलक्षणा हैं जिन्हें अपनी कुक्षि से पैदा हुए बालक स्तन-पान के लिए इच्छुक होकर अपनी मधुर तोतली बोली से आकर्षित करते और मम्मण रूप अव्यक्त शब्द ध्वनी से गुनगुनाते हुए स्तन मूल से लेकर कांछ तक के भाग में अभिसरण करते रहते हैं और फिर वे मुग्ध बालक अपनी माँ के द्वारा कमल सदृश कोमल हाथों से उठाये जाकर गोदी में बँटाये जाने पर दूध पीते हुए अपनी माँ से तोतले शब्दों में बातें करते हैं और मीठी-मीठी बोली बोलते हैं । लेकिन मैं अधन्या हूँ, अपुण्या हूँ, मैंने सुकृत नहीं किया जिससे मैं एक बार भी ऐसा अवसर प्राप्त नहीं कर सकी—अर्थात् एक बार भी अपनी संतान की बाल-क्रीड़ा के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकी । इस प्रकार वह देवकी भग्नमनोरथ वाली होकर हथेली पर मुँह को टिकाकर आत्तं ध्यान में डूब गई ।

कृष्ण द्वारा चिन्ता-कारण पृच्छा—

१२७. इसी समय कृष्ण वासुदेव स्नान कर, वनिकर्म, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त करके वस्त्राभूषणों से विभूषित हो, देवकी देवी के पाद-वंदन करने के लिये आवे—शीघ्र ही उपस्थित हुए ।

तब उन कृष्ण वासुदेव ने चिन्तित देवकी देवी को देखा, देखकर देवकी देवी के चरणों में वंदन किया और वंदन करके वे देवकी देवी से इस प्रकार बोले—

‘हे माता ! जब कभी मैं आता तो तुम मुझे देखकर हृष्ट-मुष्ट आनन्दित हो उठती थी, लेकिन आज क्या कारण है कि संकल्प विकल्पों में डूबी हुई चिन्तमयस्त दिखलाई देती हो ।’

देवईए चिन्ताकारण-निवेदनं—

१२८. तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव नलकूवर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चैव णं मए एगस्स वि वालत्तणे अणुवभूए । तुमं पि य णं पुत्ता ! छहं-छहं माताणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमा-गच्छसि । तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव जियामि ।

कण्हस्स देवाराहण देवेण य कणीयसभायरभवणकहणं—

१२९. तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देवि एवं वयासी—

मा णं तुम्हे अम्मो ! ओहयमणसंकप्पा जाव जियायह । अहण्णं तथा घत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइं देविं ताहि इट्ठाहि-जाव-यग्गूहि समा-सासेइ समासासेत्ता ताओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता पोसहसालं पमज्जइ, उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, दब्बसंधारणं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्टमभत्तं पणिण्हइ पणिण्हत्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी हरिणगेमेसि देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ ।

१३०. तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्टमभत्ते परिणममाणे हरिणगेमेसिस्स देवस्स आसणं चलइ जाव अहं “इहं हव्वमांगए संदिसाहि णं देवानुप्पिया ! किं करेमि ? किं दलयामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हियइच्छियं ?”

तए णं से कण्हे वासुदेवे तं हरिणगेमेसि देवं अंतलिक्खपडि-वण्णं पासित्ता हट्टुत्तुं पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसात्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

“इच्छामि णं देवानुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं ।”

१३१. तए णं से हरिणगेमेसी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

“होहिइ णं देवानुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए । से णं उम्मक्कवालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणग-मणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं सुण्ढे भवित्ता अगाराओ

देवकी का चिन्ता-कारण निवेदन—

१२८. तत्पश्चात् देवी देवि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

“हे पुत्र ! कारण यह है कि मैंने जाति, तब और कर्म में सदृश-यावत् मत कूबर के समान साधुओं को जन्म दिया, किन्तु एक की भी धारणा के कारण तब मेरे अनुभव नहीं किया है । हे पुत्र ! तुम भी मेरे पास नरक में न करने के लिए छूट-छूट महीनों में आते हो । इसलिये मैं मानती हूँ कि वे मातायें धन्य हैं”-यावत्-उपशोभ हो आर्त्तव्याप्त कर रही हैं ।

कृष्ण का देवाराधन और देवद्वारा लघु भ्राता होने का कथन—

१२९. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—

हे माता ! तुम अपने मनोरथ के पूर्ण न होने के कारण इस प्रकार आर्त्तव्याप्त मत करो । मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरा सहोदर एक छोटा भाई हो—इस प्रकार कहकर उन्होंने देवकी देवी को अष्ट-यावत्-वचनों द्वारा धीरज बंधाया । उसके बाद वे वहाँ से निकले, निकल कर जहाँ पीपधशाला थी, वहाँ आये, वहाँ आकर पीपधशाला को ताक किया, उच्चार-प्रतवण भूमि की पडिलेहना की, दर्भासन बिछाया, बिछाकर उस पर बैठे, बैठकर अष्टम भक्त को स्वीकार किया, स्वीकार करके पीपधशाला में पीपधव्रती की तरह ब्रह्मचर्यपूर्वक हरिणगेमेपी देव की आराधना करने लगे ।

१३०. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव का अष्टम भक्त तप संपन्न होने पर हरिणगेमेपी देव का आसन चलायमान हुआ-यावत्-(वह बोला)—“मैं यहाँ शीघ्र उपस्थित हुआ हूँ । अतएव हे देवानुप्रिय ! आदेश दीजिये कि मैं क्या करूँ ? क्या दूँ ? क्या अपित करूँ ? आपका अभिलापित क्या है ?”

तत्पश्चात् वे कृष्ण वासुदेव उस हरिणगेमेपी देव को आकाश में खड़ा हुआ देखकर हृष्ट-तुष्ट हुए और पीपध को पूर्ण किया, पूर्ण करके दोनों हाथ-जोड़ और मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

‘हे देवानुप्रिय ! मेरे एक सहोदर लघु भ्राता का जन्म हो यह मेरी इच्छा है ।’

१३१. तब उस हरिणगेमेपी देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! देवलोक से एक देव आयुष्य पूर्ण होने पर च्यवित होकर तुम्हारे सहोदर कनीयस भ्राता के रूप में जन्म लेगा और वह बाल्यावस्था के बीतने पर विनय आदि गुणों से

अणगारियं पव्वइस्सइ” —

कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

कण्हेण देवईए आसासनं—

१३२. तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिवत्तइ, पडिणिवत्तित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

“होहिइ णं अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्ठु देवई देवि ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं आसासेइ, आसासेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।”

गजसुकुमालस्स जम्मो—

१३३. तए णं सा देवई देवी अणण्या कयाइ तंसि तारिसंगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुमिणे पातित्ता पडिवुद्धा जाव गढं परिवहइ ।

तए णं सा देवई देवी नवहं मासाणं जासुमणा रत्तवंधुजीवय-लखारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवायर-समप्पभं सव्वणयणकंतं सुकुमालपाणिपायं जाव सुखं गयतालुसमाणं दारयं पयाया । जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव जम्हा णं अम्मं इमे दारए गयतालु-समाणे, तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरे नामं करेत्ति—गयसुकु-मालो त्ति ।

सेसं जहा मेहे जाव अत्तंभोगसमत्ये जाए यावि होत्था ।

गजसुकुमालभारिया भविस्सइ त्ति सोमिलनाहणधुयाए कण्णतेउर-पक्खेवो—

१३४. तत्प णं बारवईए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ-अइडे-जाव-अपरिमूए रिउज्वेय-जाव-बंनणएसु प तत्येसु सुपरि-णिट्ठिए यावि होत्था ।

सम्पन्न होकर युवावस्था के प्राप्त होते हो अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित हो, गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करेंगे ।

उस हरिर्णगमेपी देव ने कृष्ण वासुदेव से दुवारा-तिवारा भी पूर्वोक्त प्रकार से कहा और कहकर जिस दिशा में प्रगट हुआ था, उसी दिशा में वापस लौट गया ।

कृष्ण द्वारा देवकी को आशवासन—

१३२. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव पीपधशाला से बाहर निकले, निकलकर, जहाँ देवकी देवी थीं, वहाँ आये, आकर उन्होंने देवकी देवी को चरण-वंदन किया, चरणों में नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

“हे माता ! मेरे एक सहोदर कनीयस भ्राता (छोटा भाई) होगा, आप चिन्ता न करें,” ऐसा कहकर इष्ट-यावत्-वचनों से देवकी देवी को आशवासन दिया, आशवासन देकर जिस ओर से आये थे, उसी दिशा में लौट गये ।

गजसुकुमाल का जन्म—

१३३. तत्पश्चात् किसी एक दिन देवकी देवी ने अपने शयन कक्ष में पुण्यशालियों के योग्य शंया पर सोते हुए-यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जागी-यावत्-गर्भ को धारण किया ।

तत्पश्चात् नौ मास पूर्ण होने पर—बीतने पर देवकी देवी ने जया पुष्प बंधूक-पुष्प, लाक्षारस, सरस पारिजात और उदय होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले और सब जनों के नयनों को सुख देने वाले, सुकुमाल हाथ पर वाले—यावत्-सुन्दर गज के तालु के समान सुकोमल बालक को जन्म दिया । जिस प्रकार मेघकुमार के जन्म के समय उसके माता-पिता ने महोत्सव किया था, उसी प्रकार देवकी और वासुदेव ने जन्म महोत्सव किया था और उन्होंने विचार किया कि यह बालक हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकोमल है इसलिए इसका नाम गजसुकुमाल हो । ऐसा विचारकर माता पिता ने उस बालक का नाम गजसुकुमाल रखा ।

गजसुकुमाल का बाल्यकाल से लेकर यौवन तक का वृत्तान्त मेघकुमार के समान जानना चाहिये-यावत्-वह भोग भोगने में समर्थ हो गया ।

गजसुकुमाल की भार्या होगी, अतः सोमिल ब्राह्मण-युक्ती का कन्यान्तःपुर में प्रक्षेप—

१३४. उसी द्वारावती नगरी में ममृद्धिनाली-यावत्-अपराध तथा ऋण्येद-यावत्-ब्राह्मण नास्त्यों में धारण्य सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था ।

तस्स सोमिलं-माहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्या—
सूमालपाणिपाया-जाव-सुख्वा ।

तस्स णं सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा
नामं दारिया होत्या—सूमालपाणिपाया जाव सुख्वा, ख्वेणं
जोव्वणेणं लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यवि होत्या ।

तए णं सा सोमा दारिया अणया कयाइ ण्हाया जाव
विभूसिया, बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरविंद-परिक्खित्ता सयाओ
गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणगतिदूसएणं कीलमाणी
चिट्ठइ ।

१३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसडे ।
परिसा निग्गया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव
विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धि हत्थिखंधवरगए संकोरेंट-
मल्लदामिणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं
बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए
निग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए
ख्वेण य जोव्वणेणं य लावण्णेणं य-जाव-विम्हिहए कोडुम्बियपुरिसे
सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं क्यासी—

“गच्छह णं तुभ्भे देवानुप्पिया ! सोमिलं माहणं जायित्ता
सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णतेउरंसि पक्खिवह । तए णं
एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ ।”

तए णं कोडुम्बियपुरिसा तहेव पक्खिवन्ति ।

१३६. तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं
निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव अरहा
अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमि
तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता
नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नच्चासन्ने नाइदूरे सुस्ससमाणे
पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ ।

अरिट्ठनेमिणा धम्मदेसणा—

१३७. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमा-
लस्स कुमारस्स तीसे य महत्तिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउ-
ज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा—

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहातो वेरमणं ।

उम सोमिल राजपुत्र की उत्पत्ति मुद्रमात्र प्रती पायी-राज-
मुद्रम सोमश्री नाम की पत्नी थी । उस सोमिल को पुत्री और
सोमश्री राजपुत्री की उत्पत्ति सोमा नाम की कन्या थी—
जो मुद्रमात्र-नाम-उत्पत्ति को गया बाद, सोमिल, सोमिल के
उत्कण्ठ और उत्कण्ठ यही सोमा संभव थी ।

तत्पश्चात् तिसी एक समय यह सोमा बालिका स्नान कर-
यावत्-स्नानभूषणों के विभूषित हो उभित कन्याशक्ति-
यावत्-महत्तर नगर में गयी हुई तबने पर के निकली, निकल
कर राजमार्ग पर आई, तबने राजमार्ग पर सोने ही नंद के
घोलने लगी ।

१३५. उम लान, उम समय में अहंत अरिट्ठनेमि का द्वारावती
नगरी में पदापंथ प्रथा । परिषद (संनिय) निकली ।

तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव ने भक्तान् के पधारने के वृत्तान्त को
सुनकर स्नान किया-यावत्-आभूषणों के विभूषित हो गजसुकुमाल
कुमार के माथ श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर तीरंठ पुष्प मालाओं युक्त
छत्र और विजाते हुए श्रेष्ठ स्वैत चामरों से सुशोभित होकर अहंत
अरिट्ठनेमि की वंदना के निमित्त द्वारावती नगरी के मध्य के
निकलते हुए सोमा बालिका को देखा, देखाकर सोमा बालिका के
रूप, यौवन, और लावण्य से विस्मयान्वित हुए, यावत् उन्होंने
कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार
कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग सोमिल ब्राह्मण के पात्र जाओ
और इस सोमाबालिका की याचना करो, तत्पश्चात् उस कन्या को
अन्तःपुर में पहुँचा दो । यह कन्या गजसुकुमाल कुमार की भार्या
होगी ।’

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुष आज्ञानुसार कन्या की याचना
करके उसे (कन्याओं के) अन्तःपुर में पहुँचा देते हैं ।

१३६. तत्पश्चात् वे कृष्ण वासुदेव द्वारावती नगरी के मध्य में से
निकले, निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, जहाँ अहंत
अरिट्ठनेमि विराजमान थे, वहाँ आये, आकर अहंत अरिट्ठनेमि
की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना
नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके अहंत अरिट्ठनेमि से न
अति दूर और न अति निकट पहुँचकर शुश्रूषा एवं नमस्कार
करते हुए सविनय नत मस्तक हो पयुपासना करने लगे ।

अरिट्ठनेमि द्वारा धर्म-देशना—

१३७. तत्पश्चात् अहंत अरिट्ठनेमि ने कृष्ण वासुदेव, गजसुकु-
माल और उस विशाल परिषदा के लिये चातुर्याम धर्म का उपदेश
दिया । यथा—

सर्वे प्राणातिपात विरमणं, सर्वमृषावाद विरमणं,
सर्वे अदत्तादान विरमणं, सर्वे परिग्रह विरमणं ।

कण्हे पडिगए ।

गयसुकुमालस्स पव्वज्जासंकप्पो—

१३८. तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे अरहं अरिष्टनेमिं तिवखुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

‘सहहामि णं भंते ! निग्गंयं पावयणं,……से जहेयं तुवमे वयह ।

नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । तओ पच्छा मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।’

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।

गयसुकुमालस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

१३९. तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिष्टनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता जेणामेव हत्थियरणं तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थियखंधवरगए महया भड-चडगर-महकरेणं वारवईए नयरोए मज्झमज्जेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थियखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव सए अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छए, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।’

१४०. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

‘धत्तोसि तुमं जाया ! संपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्वोसि तुमं जाया ! कयलखणोसि तुमं जाया । जणं तुमे अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।’

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी—

‘एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुवमेहि अन्नपुण्णाए तमाणे अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।’

देवइए सोगाकुलदसा—

१४१. तए णं ता देवई देवी तं जेणट्ठं अकंतं अप्पियं अनपुण्णं अमणामं असुयपुच्चं फरत्तं गिरं सोच्चा निसम्म इनेणं एयास्वेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुखेणं अभिभूया तमाणां……तव्वंगेहि

उपदेश श्रवण कर कृष्ण वापस लौटे ।

गजसुकुमाल का प्रव्रज्या संकल्प—

१३८. तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण कर और अवधारण कर अर्हत् अरिष्टनेमि की तीन धार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना और नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! मैं निग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ……वह वैसा ही है जैसा आप निरूपण करते हैं ।

यहाँ पर विशेष यह है कि—हे देवानुप्रिय ! माता-पिता से आज्ञा लूंगा । तत्पश्चात् मुण्डित हो गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करूंगा ।’

हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो किन्तु प्रमाद मत करो—भगवान् ने कहा ।

गजसुकुमाल का माता-पिता से निवेदन—

१३९. तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जहाँ हस्तिरत्न था, वहाँ आये, आकर श्रेष्ठ हस्तिस्कन्ध पर बैठ सुभटों के समूह के साथ द्वारावती नगरी के मध्य में से होते हुए जहाँ अपना भवन था, वहाँ आये, आकर हाथी से नीचे उतरे, उतरकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आये, आकर माता-पिता के चरणों में वंदना की, वंदना करके इस प्रकार कहा—

‘हे माता पिता ! मैंने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण किया है और मैं उस धर्म का इच्छुक हूँ, विनेप इच्छुक हूँ; मुझे वह रुचिकर है ।’

१४०. तव गजसुकुमाल के माता-पिता ने उससे कहा—

‘हे लाल ; तुम धन्य हो ! पुण्यशाली हो, कृतार्थ हो—कृत लक्षण हो, कि तुमने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म का श्रवण किया और वह धर्म तुम्हें, इष्ट, विनेप इष्ट एवं रुचिकर प्रतीत हुआ है ।’ तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने पुनः दूसरी बार माता-पिता से इस प्रकार कहा—

‘हे माता पिता ! मैंने अर्हत् अरिष्टनेमि से धर्म श्रवण किया है और वह धर्म मुझे इष्ट, विनेप इष्ट एवं रुचिकर प्रतीत हुआ है । अतएव हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर मैं अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर आनगारिक दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

देवकी की शोकाकुल दशा—

१४१. तत्पश्चात् वह देवकी देवी उन अतिष्ट, अमान, अप्रिय अननोन, अननान, अशुद्धपूर्ण बटोर बचनों को सुनकर एवं गोचर समझकर इस एवं इन प्रकार के पुत्र-विहीन मन-महत मान-

धत्तं ति पडिया ।

देवईए गयसुकुमालस्स य परिसंवादो—

१४२. तए णं सा देवई देवी...विलवमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

“तुमं सि णं जाया ! अहं एगे ‘पुत्ते’ इट्ठे . . . नो खलु जाया ! अहं, इच्छामो खणमदि विप्पओगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो । तओ पच्छा अहं कालगएहि परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसंतंतु-कज्जम्मि निरावयवखे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

१४३. तए णं से गयसुकुमाले अम्मापिअहि एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरो एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मो ! जहेव णं तुव्भे गमं एव वयह—“तुमं सि णं जाया ! अहं ‘एगे पुत्ते’ इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णंदिजणणे उंवरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किंमं पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अहं, इच्छामो खणमदि विप्पओगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो । तओ पच्छा अहं कालगएहि परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसंतंतु-कज्जम्मि निरावयवखे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

एवं खलु अम्मयाओ ! ‘माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असा-सए वसणसओवद्वाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणित्ते जलबुब्बुय समाणे कुसग्गजलविदुसन्निभे संअभरागसरिसे सुविणदंसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजह-णिज्जे ।’

से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुत्तिं गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्भेहि अवमणुण्णाए

सिक दुश्य से दुयो होकर पछाइ पाकर धम्म से धरती पर गिर पड़ी ।

देवकी और गजसुकुमाल का परिसंवाद—

१४२. तत्पश्चात् यह देवती देवी...विलयती हुई गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार बोली—

‘हे लाल ! तुम हमारे इतनीते बेटे हो, इष्ट हो, हे पुत्र ! एक क्षण के लिये भी हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं । इसलिये हे पुत्र ! तब तक तुम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगो जब तक हम जीवित हैं । उसके बाद जब हम काल को प्राप्त हो जायें और तुम भी प्रौढ़ हो जाओ, वस वेल की भती-भरति वृद्धि हो जाये, लौकिक कार्यों की अपेक्षा न रहे अर्थात् अपने गार्हस्थ्यिक दायित्वों से निवृत्त हो जाओ तब अर्हत् अरिष्ट-नेमि के पास मुण्डित हो, गृह त्याग कर अनगर प्रव्रज्या अंगीकार करना ।’

१४३. तब माता पिता की इस बात को सुनकर गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता ! आपने मुझसे जो कुछ कहा सो ठीक है कि—‘हे पुत्र ! तुम हमारे इकलौते बेटे हो, हमारे लिये इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थैर्य और आशा विश्वास के केंद्र बिन्दु हो, प्रत्येक कार्य के लिये माने हुए, विशेष रूप में माने हुए और अनुमत हो, आभूषणों की पेट्टी के समान हो, रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न समान हो, जीवन की श्वासा हो, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाले हो, गुलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फि देखने की तो बात ही क्या है ? अर्थात् देखना तो और भी दुर्लभ है ? इसलिये हे पुत्र ! क्षण मात्र का भी वियोग हमारे लिये असह्य है । अतः हे पुत्र ! तब तक मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगो जब तक हम जीवित हैं । उसके बाद हमारे कालगत हो जाने पर और स्वयं भी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर लो, कुल परंपरा की वेल वृद्धिगत हो जाये, अपने गार्हस्थ्यिक दायित्वों से निवृत्त हो चुको तब अर्हत् अरिष्टनेमि भगवन्त के पास मुण्डित हो गृहवास त्याग आनगरिक प्रव्रज्या अंगीकार करना ।’

लेकिन हे माता पिता ! यह मनुष्यभव अधुव, अनित्य, अशाश्वत, विनश्वर आपदाओं से व्याप्त है, विद्युत् की चमक के समान चंचल है, जल के बुदबुदे के समान अनित्य है, कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान, संध्या की लालिमा और स्वप्नदर्शन के सदृश क्षणस्थायी हैं, सड़न, गलन और विध्वंसनशील है, पहले या बाद में अवश्य ही त्यागने योग्य है ।’

हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि पहले कौन और बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा

समाने अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

१४४. तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

“इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुवहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संखसिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुल-वंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं । तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुव्णे ममं एवं वयह—“इमे ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुवहु हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसक्कारसमुदयं । तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

एवं छलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गि-साहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गि-सामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सउण-पडण-विद्ध सणधम्मो पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे । ते के णं जागइ अम्मयाओ ! के पुत्वि गमणाए के पच्छा गम-णाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्वेहिं अब्भणुष्णाए समाने अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

१४५. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो जाहे नो सचा-एन्ति गयसुकुमालं कुमारं बहूहि विसयाणुत्तोभाहि आपयणाहि य

लेकर अरिष्टनेमि अर्हत के पास मुण्डित होकर और गृह त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ ।

१४४. गजसुकुमाल के उक्त कथन को सुनने के बाद माता-पिता ने गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे लाल ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह को पीढ़ियों से चली आ रही यह बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र, मणि, मोती, शंख शिला प्रवाल, माणिक आदि रूप सारभूत धन सम्पत्ति इतनी अधिक विद्यमान है कि जिसे सात पीढ़ियों तक इच्छानुसार दिया जाये, भोगा जाये और वांटा जाये तो भी पूरी होने वाली नहीं है। इसलिये हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धि सत्कार समुन्नति का अनुभोग करो और उसके बाद सर्व सुखानुभोगी होकर अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुंडित हो कर गृहत्यावस्था का त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना ।’

माता-पिता की बात को सुनने के पश्चात् इस गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता पिता ! आपने मुझसे जो यह कहा कि—‘हे पुत्र ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह की परम्परा से चली आ रही यह बहुत सी हिरण्य, सुवर्ण कांस्य, वस्त्र, मणि, मोती, शंख, मूंगा, माणिक आदि रूप सारभूत धन सम्पत्ति इच्छानुसार देने, भोगने और वांटने पर भी मात पीढ़ी तक समाप्त होने वाली नहीं है। इसलिये हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल समृद्धि सत्कार सम्मान का अनुभोग करो। उसके बाद जब सब प्रकार के भोगों का भोग कर चुको अर्थात् कोई भी आकांक्षा अभिलाषा वांछा जेप न रहे तब अर्हत अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुण्डित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या धारण करना—‘सो ठीक है।’

लेकिन हे माता-पिता ! यह हिरण्य आदि नारभूत धन सम्पत्ति अग्नि साध्य, चौर साध्य, राजस्राध्य, दाव साध्य, मृत्यु साध्य अर्थात् इस धन सम्पत्ति को अग्नि भस्म कर सकता है, चौर चुरा सकते हैं, राजा अपहरण कर सकता है, दखन सम्बन्धी वांट सकते हैं, और मृत्यु आने पर यही रह जाने वाली है तथा सड़न पतन एवं विध्वंसन स्वभाव वाली है, पहले या बाद में अवश्य ही नष्ट होने वाली है तथा यह कौन जानता है कि पहले कौन जायेगा और बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर गृहत्यागकर अनगार प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ ।

१४५. तत्पश्चान् माता-पिता, इव प्राप्यापता (सामान्य समी) प्रज्ञापना (विशेष माणी) नज्ञापना (संश्लेष करने वाली समी)

पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य आघवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहि संजम-
भउव्वेयकारियाहि पणवणाहि पणवेमाणा एवं वयासी—

“एस णं जाया ! निगंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगतत्तणे सिद्धिमग्गे सुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सब्बदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतविट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्धो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं कमियव्वं, गसअं लंदेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं ।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निगंथःणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुक्खिक्खमत्ते वा कंतारभत्ते वा वड्ढलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा वीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुच्चिए नो चेव णं दुहसमुच्चिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-
भिय-सन्निवाइए विविहे रोगायके, उच्चावए गामकंटए, वावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए । भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्व-
इस्ससि ।”

१४६. तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मापिर्जाहिं एमं वुत्ते सुमाणे अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मायाओ ! जं णं तुव्वे मम इमं वयह—
“एस णं जाया ! निगंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगतत्तणे सिद्धिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सब्बदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतविट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्धो इव भुयाहिं दुत्तरे,

और विज्ञापना (अनुत्तर विनय मरी वाणी) द्वारा समझे बुझाने संशोधन करने और अनुत्तर विनय करने पर भी मनुकु-
माल कुमार को विषयाभिमुखी करने में सफल नहीं हुए तो विषयों के प्रतिभूत और संयम के प्रति भय एवं उद्देश्य उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना वाणी से इस प्रकार बोले—

हे लाल ! निगन्थ प्रवचन सत्य, सर्वोत्कृष्ट, अद्वितीय, परिपूर्ण, निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त कराने वाला, अत्यन्त शुद्ध, शल्यनाशक, सिद्धिमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जामार्ग, निर्वाण मार्ग और सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है, सर्प के समान लक्ष्य के प्रति निश्चल एकान्त दृष्टि वाला है, छुरे के समान एक धार वाला है, लोहे के जो चवाने जैसा है, बालु के घास जैसा निस्तार है, गंगा महानदी के प्रतिबलित धार में तैरने जैसा है, भुजाओं द्वारा महासमुद्र को पार करने जैसा है, तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा है, गले में वजन को लटकाने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है ।

हे पुत्र ! श्रमण निगन्थों को आधाकर्मी, आर्द्धैशिक, कौत-
कृत, स्थापित (साधु के निमित्त रचा हुआ) रचित (साधु के निमित्त पहले रखे हुए मोदक आदि को पुनः तैयार करके खा हुआ) दुर्भिक्ष भक्त, कान्तार भक्त, वर्दलिका भक्त, न्यान भक्त (रोगी के निरोग होने की कामना से साधु को दिया जाने वाला भोजन) मूल, कंद, फल, बीज, और हरी वनस्पति का भोजन लेना और खाना नहीं कल्पता हैं ।

हे पुत्र ! तुम सुख में पलने के कारण सुख भोगने योग्य हो, दुख सहने योग्य नहीं हो, सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास सहन करने लायक नहीं हो और न वात, पित्त, श्लेष्म (कफ) के उद्रेक जनित रोगों और सन्निपात आदि विविध रोगातंकों को जँचे-नीचे इन्द्रिय प्रतिकूल वचनों व कार्यों को, वाईस परीपहों और उपसर्गों को अदीन होकर भली प्रकार से सहने के लायक हो । अतः हे पुत्र ! मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का भोगोपोभोग करो और भुक्त भोगी होने के पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार-दीक्षा स्वीकार करना ।

१४६. तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार ने माता-पिता की उक्त वात को सुनकर माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता-पिता ! आपने मुझसे जो कुछ कहा सो ठीक है कि हे पुत्र ! निगन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, परिपूर्ण निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त कराने वाला सम्यक प्रकार से शुद्ध शल्यनाशक सिद्धिमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जामार्ग, निर्वाण मार्ग, और सर्व दुःखों के नाश का मार्ग है तथा सर्प के सदृश लक्ष्य के प्रति एकाग्र दृष्टि वाला, छुरे के समान एक धार वाला, लोहे

तिक्खं कमियव्वं, गरुअं लवेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं ।
नो खलु कम्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिण्णं वा
उट्ठेसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्बिक्खभत्ते वा
कंतारभत्ते वा वहलियामत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूजभोयणे वा
कंदभोयणे वा फलभोयणे वा वीयभोयणे वा हरियभोयणे वा
भोत्तए वा पायए वा ।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं
सोयं नालं उहं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय-
सिमिय-सन्निवाइए विविहे रोगायंके, उच्चावए गामकंठए वावीसं
परीसहोवसग्गे उविण्णे सम्मं अहियासित्तए । भुंजाहि ताव जाया !
माणुस्तए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिष्टनेमिस्त
अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्तति ।”

एवं खलु अम्मयाओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायरारणं
कापुरिसाणं इहलोगाडिवद्धाणं परलोगनिष्पिवासाणं दुरणुचरे पाय-
यजणस्त, नो चेव णं धीरस्त । निच्छियववसियस्त एत्य किं दुक्कर
करणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुवनेहि अन्नणुण्णाए
समाणे अरहओ अरिष्टनेमिस्त अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ
अणगारियं पव्वइत्तए ।

कण्हस्त गयसुकुमालं पइ रज्जगहणपत्थावो—
१४७. तए णं से कण्हे वामुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे जेगेव
गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता गयसुकुमालं आलिगइ
आलिगित्ता उच्छंगे निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—

‘तुमं णं ममं’ सहोदरे कणीयसे भाया । तं मा णं तुमं देवा-
णुप्पिया ! इआणि अरहओ अरिष्टनेमिस्त अंतिए मुण्डे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वाहि । अहणं तुमे वारवइए नवरीए
महया-महया रायाभित्तेएणं अभिसिचिस्तमि ।

तए णं से गयसुकुमाले कण्हेणं वामुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे
तुसिणोए संचिद्धइ । तए णं से गयसुकुमाले कण्हे वामुदेवेणं
अन्मापियरो य दोव्वं पि तव्वं एवं वयासी—

एवं खलु देवःणुप्पिया ! माणुस्तया फामभोगा अनुई वंता-
मया भित्तावया गुंत्तानया मुक्कामया सोणियातया दुख-उत्तमान-

के जो चवाने जैसा, बालू के कवल जैसा नीरस, गंगा महानदी
के प्रतिस्त्रोत में तैरने जैसा, मुजाओं से महासमुद्र पार करने
जैसा, तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा, गले में भार को
लटकाने जैसा और तलवार की धार पर चलने जैसा है । इसके
साथ ही यह भी कहा है कि ! हे पुत्र ! श्रमण नियंत्रणों को
आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीत-कृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्षभक्त,
कांतारभक्त, वर्दलिकाभक्त, ग्लानभक्त, मूल, कन्द, फल, वीज
हरी वनस्पति का खाना और लेना नहीं कल्पता है ।

हे पुत्र ! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुख भोगने लायक नहीं
हो, और न सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, वात, पित्त, कफजन्य
रोगों और सन्निपात आदि जैसे विकट रोगांतकों, ऊँचे, नीचे
इन्द्रिय-विषयों व वचनों, वाईसपरीपहों, उपसर्गों को अदीन
मना होकर सम्यक् प्रकार से सहन करने में समर्थ हो । अतएव
हे पुत्र ! पहले मनुष्य सम्बन्धी भोगों का भोग करो और भोगों
का भोगने के बाद अर्हंत अरिष्टनेमि भगवान के पास मुंडित हो
दृहस्थावस्था का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना ।

लेकिन हे माता-पिता ! यह नियंत्रण प्रवचन तपुंसकों,
कायरो कापुरुषों, इस लोक सम्बन्धी विषय-सुखों की अभिलाषा
करने वालों, परलोक में सुख की आकांक्षा रखने वालों, सामान्य
जनों के लिये दुष्कर है लेकिन धीर वीर पुरुषों के लिये नहीं है,
दृढ़ संकल्पी और अध्यवसाय करने वालों-भूदुर्पायियों को एकका
पालन करने में कठिनाई क्या है ? इसलिये हे माता पिता !
आपकी आज्ञा प्राप्त करके अर्हंत अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुंडित
होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।

कृष्ण का गजसुकुमाल से राज्य ग्रहण प्रस्ताव—

१४७. तत्पश्चात् इस समाचार को पाकर (गजसुकुमाल में
दीक्षित होने के समाचार को जानकर) कृष्णवामुदेव वहाँ
गजसुकुमाल थे, वहाँ आये, आकर गजसुकुमाल का अलिगन
किया (हृदय से लगाया) अलिगन करके गोद में बैठाया और
गोद में बैठाकर इस प्रकार कहा—

हे देवामुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर कनिष्ठ भ्राता हो अतः
अभी अर्हंत अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर संन्यास कर दीक्षा
नहीं लो । मैं तुम्हारा द्वारावती नगरी में नरत्न महोदर के
नाथ राज्याभिषेक करूँगा ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कृष्ण वामुदेव को इन बातों
सुनकर मौन रह गये । तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने कृष्ण वामुदेव
और माता-पिता से दूररी तीसरी पार इस प्रकार कहा—

हे देवामुप्रिय ! मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का आशय
कम कर करीब तपुधि का स्थान है, विना का स्थान है, अर्थ का
स्थान है, मूल का स्थान है, मोक्ष का स्थान है, तथा दुर्भिक्ष

नीलासा दुह्य-मुत्तपुरीस-पूय-वहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल
सिघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया
सडण-पडण-विद्धंसणधम्ममा पच्छा पुरं च णं अवस्स विप्पजह-
णिज्जा ।

से के णं जाणइ देवाणुप्पिया ! के पुंवि गमणाए के पच्छा
गमणाए ? तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुव्वेहि अब्भणुण्णाए
समाणे अरहओ अरिट्ठेनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ
अणागारियं पव्वइत्तए ।

गयसुकुमालस्स एगदिवसरज्जं—

१४८. तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे
नो संचाएइ बहुयाहि विसयाणुलोमाहि य विसयपडिकूलाहि य
आघवणाहि य पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य
आघवित्तए वा पणवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए
वा ताहे अकामाइं चैव गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिंरि
पासित्तए !

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरं च
अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं
वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! गयसुकुमालस्स महत्थं महग्घं
महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह ।”

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं
महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे गयसुकुमालं कुमारं महया-महया
रायाभिसेएणं अभिसिचइ, अभिसिचित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं
सिरस वत्तं मत्थए अजलि कट्ठु एवं वयासी—

“जय-जय नंदा ! जय-जय भद्रा ! जय-जय नंदा भद्रं ते,
अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्जे वसाहि इंदो इव
देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं
भरहो इव मणुयाणं वारवईए नयरीए अण्णेसि च वहुणं गामागर-
नगर-खेड-कव्वड-दोणमुह-मंडव-पट्टण- आसम-निगम-संवाह-सण्णि-
वेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्ठित्तं महत्तरगतं आणा-

युक्त श्यामोच्छ्वात, मल, मूत्र, पीप आदि से परिकृतं हे,
मल, मूत्र, कफ, नास मूल, यमन, पित्त, युक्त, योगित का भंडार
हे, और अध्रुव अनित्य, अशाश्वत हे, म भि, पद्मे और नष्ट होने
रूप धर्मों से युक्त होने के कारण आगे पीछे अवश्य ही नष्ट
होने वाला हे ।

हे देवानुप्रिय ! कौन जानता हे कि पहले कौन जायेगा और
पीछे बाद में कौन जायेगा ? इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपको
आजा लेकर अर्हत प्रसिद्धिनेमि भगवान के पास मुद्रित होकर
ग्रह त्यागकर अनगर प्रयत्न्य अंगीकार करना चाहता हूं ।

गजसुकुमाल का एकदिवस राज्य—

१४८. तत्पश्चात् जय कृष्ण वासुदेव और माता-पिता गजसुकुमाल
को विपयों के अनुकूल और धिययों के प्रतिकूल ब्रह्म ती
आख्यापना, प्रज्ञापना, संज्ञापना और विज्ञापना वाणी द्वारा
समझाने बुझाने, सम्बोधन करने, विज्ञप्ति करने में सफल नहीं हुए
तब मन मारकर लाचार होकर गजसुकुमाल से इस प्रकार बोले—

हे पुत्र ! हम एक दिन के लिये भी तुम्हारी राज्य श्री देवना
चाहते हैं अर्थात् तुम एक दिन के लिये भी इस राज्य लक्ष्मी को
स्वीकार करो ।

तब गजसुकुमालकुमार कृष्ण वासुदेव और माता-पिता के
इस अनुरोध का मान करते हुए मान रह गये ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया
और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही गजसुकुमाल के राज्याभिषेक
के लिये महान अर्थ वाली, महामूल्यवान एवं महान पुरुषों के योग्य
सामग्री लेकर आओ ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष गजसुकुमाल कुमार के राज्याभिषेक
के लिये महान अर्थ वाली, बहुमूल्य और महान पुरुषों के योग्य
सामग्री लाकर उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव महान राज्याभिषेक द्वारा गज-
सुकुमाल कुमार का अभिषेक करते हैं, अभिषेक करके दोनों हाथों
को जोड़ मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

‘हे आनन्दकर ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी
जय-जयकार हो, हे नंद ! एवं कल्याण कर ! तुम्हारी जय-जय हो,
न जीते हुए को जीतो-विजय प्राप्त करो, जीते हुआं का पालन
करो, अथवा कुलाचार का पालन करो, विजय के बीच तुम्हारा
आवास-निवास हो, देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के
समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, तारामंडल में चन्द्र के समान,
मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान द्वारावती नगरी और अनेक
दूसरे ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्वर, द्रोणमुख, मंडव, पत्तन,
आश्रम, निगम, संवाह, सन्निवेशों, आदि का आधिपत्य-प्रमुखत्व,

ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महायाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-
ताल-तुडिय-घण-मुडंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउजाइं नोगनोगाईं
भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय-जय-सदं पउंजति ।

तए णं से गयसुकुमाले राया जाए जाव-रज्जं पसासेमाणे
विहरइ ।

तए णं तं गयसुकुमालं रायं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य
एवं वयासी—

भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते
हिए-इच्छिय सामत्थे ?”

गयसुकुमालस्स पव्वज्जा—

१४६. तए णं से गयसुकुमाले राया कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो
य एवं वयासी—

इच्छामि णं देवानुप्पिया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं
च आगियं कासियं च सदावियं । निक्खमणं जहा महव्वलस्स ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिष्टनेमित्त अंतिए
इमं एयारुवं धम्मिय उयएसं सम्मं पडिक्कज्जइ—तमाणेए तह
गच्छई तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्ठइ, तह भुंजइ, तह भासइ,
तह उट्ठए उट्ठाप पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहि संजमेणं संजमइ ।

तए णं से गयसुकुमाले अगगारे जाए—इरियात्तिए जाव
गुत्तयंभयारी ।

तए णं से गयसुकुमाले जं चेय दिवस पव्वइए तस्सेय दिवसस्स
पुव्वायरुह-कालत्तमयंति जेणेय अरहा अरिष्टनेमी तेणेय उया-
गच्छइ, उयागच्छत्ता अरहं अरिष्टनेमिं तिक्युत्तो आयाहिण-
पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं
वयासी—

“इच्छामि णं भते ! तुभेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महा-
कात्तंति सुमाणत्ति एगराइयं महापट्ठिन उपसंक्कित्ताणं
विहरित्तए ।”

अहाएहं रेयानुप्पिया ! मा पट्ठियं करेहि ।

स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व आज्ञा, श्रेयस्त्व और मेनापनित्व
करते हुए, पालन करते हुए जोर-जोर से बजाये जा रहे नृत्य,
गीत, वाद्य, तंत्री, तल, ताल, नृत्त, घन मृदंग, षोण, गंगाई
आदि के कोलाहल-घोषों पूर्वक विपुल भोगोपभोगों का भोग
करते हुए विचरण करो, ऐसा कह कर जय-जयकार किया ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल राजा हो गये-यावत्त-राज्य वासन
करते हुए विचरते हैं ।

उसके बाद कृष्ण वासुदेव और माता-पिता ने उन गजसुकु-
माल राजा से इस प्रकार कहा—

हे लाल ! बतओ कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे इष्ट धिय
जनो को क्या भेंट दें ? और तुम्हारी हार्दिक आलांक्षा-इच्छा
क्या है ?

गजसुकुमाल की प्रत्रज्या—

१४६. तत्पश्चात् गजसुकुमाल राजा ने कृष्ण वासुदेव और माता-
पिता से यह कहा—

हे देवानुप्रिय ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र
मंगाना और काश्यप (नाई) को बुलवाना चाहता हूँ । महाबल के
समान दीक्षा के लिये अभिनिष्क्रमण किया ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार ने अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु ने
यह इस प्रकार का धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से श्रावण किया
‘भगवान की आज्ञानुरूप गमन करते, पड़े होने, धरने, उठने,
आहार करने बोलते और अप्रमत्त होकर नावधानी पूर्वक प्राणों,
भूतों, जीवों और सत्त्वों को यतना करने के लिये योग्य नाशना
करने लगे ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार जननात् हो गये—इर्वाभर्तिया
आदि से युक्त-यावत्त-गुप्त श्रावणारी हो गये ।

तत्पश्चात् ये गजसुकुमाल दिन दिन प्रश्रिता एव उती दिव
के चौथे प्रहर में जाता अर्हत् अरिष्टनेमि विरायमाण से, दाहि
आये आकर अर्हत् अरिष्टनेमि की शीत चार जारो-जारा-प्रश्रिताया
की, प्रश्रिताया करके बंदना नमस्कार किया, बंदना नमस्कार
करके इस प्रकार बोले -

हे भद्र ! आपकी आज्ञा के लिये महाबल समस्तान में पूज-
रात्रि की भद्रप्रतिमा धारण कर शिष्यत्वा कर रहा हूँ ।

हे देवानुप्रिय ! मैंने कृष्ण हो केना उयारुह-काल-पव्व-
नययत्त ने कहा ।

गजसुकुमालस्स महापडिमोवसंपज्जण—

१५०. तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहसंववणाओ उज्जाणाओ पडिणिकखमइ पडिणिकखमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता ईति पबभारगएणं काएणं वग्घारियपाणी अणिसानयणें सुक्कपोगल-निरुद्धविट्ठी दो वि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

सोमिल-कय-उवसगो—

१५१. इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए वारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गाए । समिहाओ य दब्भे य कुत्से य पत्ता-मोडं च गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे सञ्जाकालसमयंति पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पात्तित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिकिए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारो अपत्थियपत्थिए, दुरंत-पंत-लकखणे, हीणपुण्णचाउइसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्तिपरिवज्जिए जेणं मम धूर्यं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अविट्ठ-दोसपत्तियं कालवत्तिणं त्रिप्पजहेत्ता मुण्डे जाव पव्वइ । तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए—

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्ठियं गेण्हइ, गेहित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्ठियाए पात्तित्ता वंधइ, वंधित्ता जलंतीओ चियाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खड्दिरंगाले कहल्लेणं गेण्हइ, गेहित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भोए तत्थे तसिए उविग्गे सञ्जायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउव्वभूए तामेव दिसं पडिगए ।

गयसुकुमालस्स सिद्धी—

१५२. तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सररीयसि वेयणा पाउव्वभूया—उज्जला-जाव-दुरहियासा ।

गजसुकुमाल द्वारा महाप्रतिमा-उपसंवादन-धारण—

१५०. तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार ने अहं अरिट्ठणेमि से आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर अहं अरिट्ठणेमि को वंदना-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके अहं अरिट्ठणेमि के पास से और गदगाप्रथम से मिलने, मिलकर जहाँ महा काल समान था, वहाँ आय, आकर प्रासुकुमाल की प्रति लेखना की, प्रतिलेखना करने के बाद उच्चार-प्रदायण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके काया को कुछ नमस्कार, भुजाओं को लम्बा लटका कर और दोनों पैरों को कुछ सहोदरकर अपलक नेत्रों से युक्त पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित करके एकरात्रि की महाप्रतिमा को स्वीकार करके ध्यान मग्न हो गये ।

सोमिल-कृत उपसर्ग—

१५१. इसी समय वह सोमिल ब्राह्मण समिधा आदि सामग्री लाने के लिये द्वारावती नगरी से बाहर गया हुआ था । उसने समिधा, दर्भ, कुश और पत्तों को लिया, लेकर वहाँ से वापस लौटा, तब निर्जन-मनुष्यों आवागमन से रहित संध्या काल के समय महाकाल शमशान के समीप से गुजरते हुए उसने गजसुकुमाल अनगार को देखा, देखकर उसके हृदय में वैर-भाव जागृत हुआ और वैरभाव के कारण क्रोधित, रूष्ट कुपित और चंड रूप होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए इस प्रकार बोला—

अरे ! यह तो वही अप्राथित-प्राथित-अकालमरण का इच्छुक, दुरंत पंत लक्षण, अभागा, चातुर्दशिक, श्री ही, धृति, कीर्तिविहीन गजसुकुमाल कुमार है । जो मेरी पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा निर्दोष और नववीवना सोमालिका को छोड़कर मुंडित-यावत-प्रव्रजित हो गया है । इसलिये मुझे उचित है कि इस गजसुकुमाल कुमार से वैर का बदला लूँ ।

ऐसा विचार किया, विचार करके चारों दिशाओं की प्रतिलेखना की अर्थात् चारों ओर देखा कि कोई आ तो नहीं रहा है, देखकर गीली मिट्टी ली, लेकर जहाँ गजसुकुमाल अनगार थे, वहाँ आया, आकर गजसुकुमाल कुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बांधी, बाँधकर जलती हुई चिता से फूले हुए पलाश पुष्प जैसे लाल-लाल खैर की लकड़ी के अंगारों को किसी फूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों में लिया, लेकर उन्हें गजसुकुमाल कुमार अनगार के मस्तक पर रखा, रखने के बाद, मुझे कोई देख न ले इस डर से भयभीत; त्रसित और उद्विग्न होता हुआ-शीघ्र ही वहाँ से चल दिया और जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया ।

गजसुकुमाल की सिद्धि—

१५२. तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार के शरीर में अत्यन्त दारुण दुःखदायक-यावत-असह्य महावेदना उत्पन्न हुई ।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेइ ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्यज्ज-वसाणेणं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे-जाव-समुप्पणे । तओ पच्छा सिद्धे सव्व-दुक्खप्पहीणे ।

तत्थ णं 'अहासिंहिएहि देवेहि सम्मं आराहिए' त्ति कट्टु दिव्वे सुरनिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए; चेलुक्खेवे कए; दिव्वे य गीयगंधव्वगिणाए कए यावि होत्था ।

कण्हेण वुड्डस्स साहिज्जकरणं—

१५३. तए णं कण्हे वामुदेवे कल्लं पाउप्पनायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सरे सहस्सरस्सिम्मि विणयरे तेयसा जलंते ण्हाए जाव विनूत्तिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज-माणं तेयवरचामराहि उव्वुव्वमाणीहि महयाभड-चडगर-पहकर-वंद-परिक्खित्ते वारवइं नयरी मज्झंमज्जेणं जेणेव अरहा अरिष्टनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं से कण्हे वामुदेवे वारवईए नयरीए मज्झंमज्जेणं निगच्छमाणे एयकं पुरित्तं—नुणं जरा जज्जरिय-वेहं आउरं एूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्ठगरात्तीओ एगदेगं इट्ठगं गहाय वहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पत्तिमानं पासइ ।

तए णं से कण्हे वामुदेवे तस्स पुरित्तस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थि-खंधवरगए चैव एणं इट्ठगं गेहइ, गेण्हत्ता वहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पत्तेसइ ।

तए णं कण्हेणं वामुदेवेणं एगाए इट्ठगाए गहियाए तमाणीए अणेगेहि पुरित्तएहि से महात्तए इट्ठगत्त रात्ती वहिया रत्थापह-याओ अंतोपरंत्ति अणुप्पत्तेसइ ।

कण्हेस्स गयसुकुमाल-दंसणाभित्तात्ता—

१५४. तए णं कण्हे वामुदेवे वारवईए नयरीए मज्झंमज्जेणं निगच्छइ, निगच्छत्ता जेणेव अरहा अरिष्टनेमी तेणेव उवागए,

तव वे गजसुकुमालकुमार अनगार सोमिल ब्राह्मण के प्रति मन में लेशमात्र भी द्वेष भाव न रखते हुए उन जाज्वल्यमान-यावत-असह्य महावेदना को सहन करने लगे ।

तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार ने उन दुःख रूप जाज्वल्यमान यावत-असह्य महावेदना को वीनरान भाव से सहन करते हुए शुभपरिणामों और प्रशस्त अध्ववनाय एव तशशवरणीय कर्मों के क्षय होने से कर्मरज के विनाशक निवारक अपूर्वतरण में प्रवेश किया, जिससे उन्हें अनन्त, अनुत्तर सावन-सर्वोत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए । उसके बाद भिद पद को प्राप्त हुए-यावत सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

उस समय वहाँ समीप में रहने वाले देवों ने 'इन्होंने सम्मत् प्रकार से आराधना की है' ऐसा विचार कर दिव्य सुगंधित जल की वर्षा की, पंचरंगे फूलों को उछाल-उछाल कर गर्भ कियेर दिया, दिव्यवस्त्रों की वर्षा की और दिव्य गीतों और वाद्यों के निनाद से आकाश को गुंजा दिया ।

कृष्णद्वारा वृद्ध का साहाय्यकरण—

१५३. तत्पश्चात् रात्रि के बीतने के बाद सूर्योदय-यावत-नाह्य-रश्मि दिनकर सूर्य के जाज्वल्यमान तेज के साथ उदित होने पर स्नान करके-यावत-आभूषणों से अलंकृत हो, श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर कोरेंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को गिर पर धारण करते हुए तथा विजाते हुए स्वतः उत्तम चामरी से मुक्त होकर कृष्ण वामुदेव महान् मूर्तियों के समूह के साथ द्वारावती नगरी के मध्य में से होते हुए जहाँ अर्हत अरिष्टनेमि धिराजमान थे, वहाँ जाने के लिये उद्यत हुए ।

तव द्वारावती नगरी के बीचों बीच से जाते हुए उन कृष्ण वामुदेव ने बाहर सड़क पर इंटों की पिनात रात्रि में से एक एक इंट उठाकर अपने घर के अंदर रखते हुए एक जीवंत वृद्धावस्था के कारण जर्जर मरीर वाले दुर्धी, सूखे प्यासे, दुर्बल, पके और रोगी पुरुष को देखा—

तत्परचान उन वृद्ध पुरुष पर अनुकम्पा करके कृष्ण वामुदेव ने हाथी के ऊपर बैठे-बैठे ही एक इंट की ओर लेकर बाहर सड़क से उठाकर घर के अंदर रख दिया ।

तव कृष्ण वामुदेव द्वारा एक इंट को लेकर घर के अंदर हुए देखकर नाथ में आये हुए जेकेक पुरपी ने भी एक एक इंट उठाकर उन पिनात इंटों की रात्रि को बाहर सड़क से घर के अंदर पहुँचा दिया ।

कृष्ण की गजसुकुमाल-दर्शनार्थिनवापः

१५४. तत्परचान कृष्ण वामुदेव द्वारावती नगरी के अंदर जाने निकरने, निरकरइ, जलं जलं परिक्खत्ताए उणु परावणं

थे वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँचकर अर्ध अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करने के बाद गजसुकुमाल अनगार हो न देकर पुनः अर्हत अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया और वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले —

‘हे भदन्त ! मेरे सहोदर कनिष्ठ भ्राता गजसुकुमाल अनगार कहाँ है ? मैं उनकी वंदना नमस्कार करना चाहता हूँ ।

अरिष्टनेमि द्वारा गजसुकुमाल का सिद्धि कथन—

१५५. तत्पश्चात् अर्हत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! गजसुकुमाल अनगार ने अपना अर्थ साध लिया है ।

तव कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि ने इस प्रकार पूछ-हे भदन्त ! गजसुकुमाल अनगार ने अपना अर्थ किस प्रकार से सिद्ध कर लिया है ?

तव अर्हत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! कल दीक्षा लेने के बाद गजसुकुमाल अनगार ने दिन के चौथे प्रहर में मुझे वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—हे भगवन ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके महाकाल श्मशान में एक रात्रिक महाप्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ—यावत् एकरात्रिक महाप्रतिमा धारण करके विचरने लगे अर्थात् महाप्रतिमा धारण कर ध्यान मग्न हो गये ।

तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार को एक पुरुष ने ध्यानस्थ देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो गजसुकुमाल अनगार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधी, पाल बाँधकर जलती हुई चिता में से फूटे हुए मिट्टी के वर्तन में फूले हुए पलाश पुष्पों के समान लाल खँर की लकड़ी के अंगारे लिये, लेकर गजसुकुमाल अनगार के मस्तक पर डाले, डालकर भयभीत हो, उद्विग्नता के कारण भयाक्रांत हो वहाँ से शीघ्र ही चल दिया, चलकर जिस दिशा से आया था उसी ओर लौट गया ।

मस्तक पर अंगारों को डालने से गजसुकुमाल अनगार के शरीर में बहुत ही तीव्र, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चंड, असह्य, दुःख रूप वेदना हुई ।

तब भी गजसुकुमालकुमार के (अनगार के) मन में उस पुरुष के प्रति थोड़ा सा भी द्वेष भाव पैदा नहीं हुआ और जाज्वल्यमान बहुत ही तीव्र-यावत्-असह्य वेदना को सहन किया ।

तत्पश्चात् उन गजसुकुमाल अनगार को उस जाज्वल्यमान-यावत् असह्य वेदना को सहन करते हुए भी शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवासयों और तदावरणीय कर्मों के क्षय और कर्म रज को

अपुष्पकरणं अणुष्पविद्वस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाधाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे ससुष्पण्णे । तओ पच्छा सिद्धे । तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अष्पणो अट्ठे ।

उवसगसवणेण कण्हस्स कोहो—

१५६. तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिष्टुणेमि एवं वयासी—

“कैस णं भंते ! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए, दुरंत-पंत-लकखणे, हीणपुण्णाचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिचज्जिए, जेणं ममं सहोवरं कणीयसं चायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चैव जीवि-याओ ववरोवेद ?

उवसगकरणेण साहिज्जमेव दिण्णं ति कोहसमण—

१५७. तए णं अरहा अरिष्टुणेमो कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिस्सम पदोसमावज्जाहि । एवं चलु कण्हा ! तेणं पुरिस्सेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ।

कण्णं भंते ? तेणं पुरिस्सेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिष्टुणेमो कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

से तुणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे वार-वईए नयरीए एणं पुरितं जूणं जर्राज्जरिय-वेहं आउरं झूसियं पिवाशियं पुब्बलं किल्लंतं महमहालयाओ इट्टगरासोओ एगमेणं इट्ठमं गहाय वहिया रत्थापहाओ अंतोमिहं अणुष्पविसमाणं पात्तति ।

तए णं तुमं तस्स पुरिस्सम अणुक्खणट्ठाए हत्थिउंधवरणए धेय एणं इट्ठमं मेह्मि, मेहिस्सा वहिया रत्थापहाओ अंतोमिहं अणुष्पवेसणि । तए णं तुमे एगाए इट्ठाए गहियाए समाणीए अणोमिहि पुरिस्सएहि से महात्थाए इट्ठस्स रानी वहिया रत्था-पहाओ अतोपरसि अणुष्पवेसिए ।

आ णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिस्सम साहिज्जे दिण्णे, एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिस्सेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सवम-ससनाविचय कम्मं उदीरेत्तणेणं चट्ठसम्मणिज्जवरत्वं साहिज्जे दिण्णे ।

उवसगकरणेण पारिष्णाण कण्हम—

तए णं तए वसुदेवे अरहं अरिष्टुणेमि एवं वयासी—

विनष्ट करने वाले अपूर्वकरण रूप परिणामों के कारण अनन्त अनुत्तर, निरावाध, निरावरण, क्लृप्त-संपूर्ण-सकल परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गईं। उनके बाद मित्रि हो प्राप्त किया। इनलिये हे कृष्ण ! गजसुकुमान अनगार में अपना अभिलषित-इच्छित आत्मार्थ मित्र कर लिया है - ऐसा भेने कहा है।

उपसर्ग सुनकर कृष्ण को क्रोध—

१५६. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अहंत अरिष्टनेमि ने इस प्रकार पूछा—

हे भगवन् ! वह कौन अप्रापित प्रार्थित-मृत्यु को चालने वाला, दुर्दन्त-पंत लक्षण वाला हीन पुण्य चानुर्दसिक श्री श्री, प्रति, कीर्ति से विहीन पुरुष व्यक्ति है, जिम्मे भरे महोदर लघु भ्रमा गजसुकुमाल अनगार को अकाल में ही मौत के धाड़ उभार दिया अथवा अकाल में ही प्राण हरण कर लिये ?

उपसर्ग करके सहायता ही दी है, इस प्रकार क्रोधजगमन—
१५७. तत्पश्चात् अहंत अरिष्टनेमि ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! तुम उन पुरुष पर क्रोध मत करो। क्योंकि उस पुरुष ने गजसुकुमाल अनगार को सहायता दी है।

हे भगवन् ! उस पुरुष ने गजसुकुमान को सहायता दी है ?
ऐसा आप कैसे कहते है ?

तव अहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! वह इस प्रकार कि जैसे तुमने भरे पाद-बंध के लिये आते हुए द्वारावती नगरी में एक बूढ़ परा में अर्धरिक्त शरीर वाले, रोगी, भूयो-प्लान्त, दुर्बल, वृद्ध पुरुष को विगत इंटों के डेर में से एक-एक इंट उठाकर बाहर सड़क में धर के अन्दर डालने हुए देखा था।

तव तुमने उस पुरुष को अनुत्था के डेर लगे पर से हुए ही एक इंट उठाई थी और उठाकर बाहर सड़क में धर के अन्दर रख दी थी जिम्मे तुम्हें एक इंट मिले पर में रखने हुए देखकर माप में रहे जनेको पुण्यो ने उस विगत देखा ही माप को बाहर सड़क में धर के अन्दर रख दिया था।

इमलिये हे कृष्ण ! जैसे तुमने उस पुरुष को सहायता दी इसी प्रकार हे कृष्ण ! उस पुरुष के द्वारा गजसुकुमान अनगार को भी उसकी लगी नरी नगरी में एक पुण्यो कर्मात्त उदीरेत्त करके सुसन्न पत्तों की अर्धरिक्त कम्म में सहायता दी है। कृष्ण के द्वारा उपसर्गकर्मात्त की परिणाम—

उपसर्ग उपसर्गदेव ने अहंत अरिष्टनेमि ने इस प्रकार कहा—

“से णं भंते ! पुरिसे मए क्हं जाणियव्वे ?”

१५८. तए णं अरहां अरिदुणेमी क्हं वासुदेवं एवं वयासी --

“जे णं क्हंहा ! तुमं वारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चैव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्णं तुमं जाणिज्जासि ‘एस णं से पुरिसे’ ।”

तए णं से क्हंहे वासुदेवे अरहं अरिदुणेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थियरणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव वारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सोमिलस्स अकालमच्चू—

१५९. तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अयमेया-रुवे अज्झत्थिए-जाव-सं कप्पे समुप्पण्णे—“एवं खलु क्हंहे वासुदेवे अरहं अरिदुणेमि पायवंदए तिग्गए । तं नायमेयं अरहया, विण्णा-यमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ क्हंस्स वासुदेवस्स । तं न नज्जइ णं क्हंहे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ” त्ति कट्ठु भीए तत्थे तसिंए उन्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिणिव्वमइ । क्हंस्स वासुदेवस्स वारवईं नयरी अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिंति हव्वमागए ।

तए णं से सोमिले माहणे क्हं वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए-जाव-संजायभए ठियए चैव ठिइभेए कालं करेइ, धरणितलंसि सव्वंगोहिं ‘धस’ त्ति सण्णिवडिंए ।

तए णं से क्हंहे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

“एस णं भो ! देवानुप्पिया ! से सोमिले माहणं अपत्थिय-पत्थिए-जाव-सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जेणं ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चैव जीवियाओ ववरोविए” त्ति कट्ठु सोमिलं माहणं पाणोहिं कड्ढावेइ, कड्ढा-वेत्ता तं भूमि पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए । सयं गिहं अणुप्पविट्ठे ।

—अंत० व० ३, अ० ८ ।

“हे भदन्त ! उस पुरुष को मैं किस प्रकार जान सकूँगा ?”

१५८. तव अहंत् अरिष्टनेमि ने कृष्णवासुदेव न इस प्रकार कहा—

हे कृष्ण ! द्वारावती नगरी में प्रवेश करते हुए तुम्हें देखकर खड़े-खड़े ही आयु तथा स्थिति क्षय से ही जो वही मरण को प्राप्त हो जायेगा तभी तुम जान सकोगे कि ‘यही वह पुरुष है जिसने गजसुकुमाल अनगार के प्राण हरण किये हैं।’

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अहंत् अरिष्टनेमि को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके जहाँ अभियंक्ष्य हन्तिरत्न था, वहाँ आये, आकर हाथी पर बैठे, बैठकर जहाँ द्वारावती नगरी है जहाँ अपना भवन है, उसी ओर चलने के लिये तत्पर हुए ।

सोमिल की अकाल मृत्यु—

१५९. तत्पश्चात् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के अपने जाज्वल्यमान तेज के साथ उदय होने से रात्रि के प्रभातरूप होने पर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में यह इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-विचार उत्पन्न हुआ कि—‘कृष्ण वासुदेव अहंत् अरिष्टनेमि के पादवंदन के लिये गये हैं। मेरा कार्य अहंत् के द्वारा जाना हुआ है, विशेष रूप से जाना हुआ है, किसी से सुना है और उनके द्वारा कृष्ण वासुदेव को कहा जायेगा। कृष्ण वासुदेव इस वृत्तान्त को सुनकर न जाने मुझे किस कुमौत से मारेंगे—

ऐसा विचार कर भयभीत, त्रसित और भय के कारण उद्विग्न होकर अपने घर से निकल पड़ा ।

इधर कृष्ण वासुदेव ने भ्रातृशोक के कारण राजमार्ग को छोड़कर द्वारावती नगरी में गली से प्रवेश किया, जिससे अकस्मात् उसका सामना हो गया ।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण सहसा ही कृष्ण वासुदेव को देखकर भयभीत-यावत-भयाक्रान्त हो खड़े-खड़े ही स्थिति क्षय होने से मरण को प्राप्त हो गया और जमीन पर धड़ाम से चारों खाने गिर पड़ा ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को देखा देखकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! अहो यही अप्रार्थित प्रार्थित-यावत-श्री, ही, धी, कीर्ति से रहित सोमिल ब्राह्मण है जिसने मेरे सहोदर कनीयस लघुभ्राता गजसुकुमाल अनगार को अकाल में ही मृत्यु की शरण में पहुँचा दिया’—ऐसा कहकर सोमिल ब्राह्मण के शव को चांडालों से घसिटवाया, घसिटवाकर उस भूमि को पानी से धुलवाया, धुलवाकर जहाँ अपना भवन था वहाँ पहुँचे और उसमें प्रवेश किया ।

६. अरिष्टनेमितित्थे सुमुहाङ्कुमारा

९. अरिष्टनेमि तीर्थ में सुमुखाङ्कुमार

१६०. तेषं कालेषं तेषं समएणं वारवईए नयरीए कण्हे नामं वामुदेवे राया-जाव-विहरइ ।

तत्थ णं वारवईए वलदेवे नामं राया होत्या—वण्णओ ।

तस्स णं वलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्या वण्णओ ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंसि तारिससंसि समयणिज्जंसि -जाव-नियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ताणं पड्डिवुद्धा । जहा गोयमे, नवरं—सुमुहेकुमारे । पण्णासं कण्णाओ । पण्णासओ वाओ । चोदस पुब्बाइं अहिज्जइ । वीसं वात्ताइं परिआओ । सेसं तं चेव-जाव-सेत्तुंजे सिद्धे ।

१६१. एयं—दुम्मुहे वि । कूवदारए वि । तिण्णि वि वलदेव-धारिणी-सुया ।

वारए वि एयं चेव, नवरं—वसुदेव-धारिणी-सुए ।

एयं—अणाहिद्धो वि वसुदेव-धारिणी-सुए ।

—अंत० व० ३, अ० ६-१३ ।

१६०. उन काल और उन समय में द्वारिका नाम की नगरी थी, कृष्ण नामक वसुदेव राजा थे-जावत-विहरन करने थे ।

उसी द्वारिका नगरी में वलदेव नामक राजा थे - वर्णन ।

उन वलदेव राजा के धारिणी नाम की रानी थी—वर्णन ।

तत्पश्चात् वह धारिणी रानी एक बार तिसी दिन उन प्रकार की उन नैया में सो रही थी कि अपने मुँह में अरिष्ट नीति हुए गिह को स्वप्न में देखकर जानी, वेप वर्णन गोमय कुमार के समान जानना चाहिये, किन्तु इतना विचार कि उनका नाम सुमुखकुमार रखा । उस कुमार का पचान राजकुमारों से विवाह हुआ । पचान दहेज मिले । (श्रीआ केकर) और पूर्वों का अध्ययन किया । दोन वर्ष तक श्रमण परोव का पाठान किया । वेप सभी वर्णन भी पूर्ववत्-जावत-वसुदेव वर्णन पर गिर हुए ।

१६१. इसी प्रकार दुमुख और कूवदारक इन दोनों का भी वर्णन जानना चाहिये । तीनों ही वलदेव और धारिणी के पुत्र थे ।

दारक का भी वर्णन सुमुखकुमार के समान जानना चाहिये, लेकिन इतना अन्तर है कि ये वसुदेव और धारिणी के पुत्र थे । अर्थात् पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था ।

इसी प्रकार अनाधुष्टि कुमार का भी वर्णन जानना चाहिये, इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था ।

१०. जालिआई समणा

माहा—जालि, मयाजि, उवयाजि, पुरिससेणं य, वारिसेणं य ।
पज्जन्त, संय, अनिष्टुं, सज्जनेमो य, ददनेमो ।१

१६२. तेषं कालेषं तेषं समएणं वारवई नयरी । तीमे ए वारवई नयरीए-जाव-कण्हे वामुदेवे जाहेवएव-जाव-कारेमां पानेमांसे सिद्धइ ।

तत्थ णं वारवईए, नयरीए वसुदेवे राजा । धारिणी देवी—वण्णओ जहा गोयमो, नवरं—अरिष्टकुमारे । पण्णासओ वाओ

वारसंगी । सोलस बासा परियाओ । सेसं जहा गोयमस्स-जाव-
सेत्तुंजे सिद्धे ।

एवं—मयाली, उवयाली पुरिससेणे य वारिससेणे य ।

एवं—पज्जुण्णे वि, नवरं—कण्हे पिया, रुप्पिणी माया ।

एवं—संबे वि, नवरं—जंबवइ माया ।

एवं—अणिरुद्धे वि, नवरं—पज्जुण्णे पिया, वेदभी माया ।

एवं—सच्चणेमी, नवरं—समुद्दविजए पिया, सिवा माया ।

एवं—दढणेमी वि सव्वे एगगमा ।

—अंत० व० ४, अ० १-१० ।



अन्तर इतना है कि उसका नाम जालिकुमार रखा गया ।
पचास दहेज मिले । वारह अंगों का अध्ययन किया । सोलह वर्ष
पर्यन्त दीक्षा पर्याय का पालन किया । शेष सभी वर्णन गौतम-
कुमार के समान जानना चाहिये — यावत्-शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध
हुए ।

इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुहपसेन और वारिपेण का
भी चरित्र जानना चाहिये ।

इसी प्रकार प्रद्युम्न का भी चरित्र जानना; लेकिन उनके
पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम रुक्मिणी था ।

इसी प्रकार शंभुकुमार का भी वर्णन जानना चाहिये, किन्तु
माता का नाम जाम्बवंती था ।

इसी प्रकार अनिरुद्ध का भी वर्णन है, परन्तु पिता का नाम
प्रद्युम्न और माता का नाम वैदर्भी है ।

इसी प्रकार सत्यनेमि का भी चरित्र है, लेकिन पिता समुद्र-
विजय और माता शिवादेवी थी ।

इसी प्रकार दृढनेमि का वर्णन है, सभी गमों का वर्णन एक
समान है ।

११. अरिदृढनेमित्थे थावच्चापुत्ते अण्णे य ११. अरिदृढनेमि तीर्थ में थावच्चापुत्र और अन्य

वारवईए कण्हो वासुदेवो—

१६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवती नामं नयरी होत्था—
पाईणपडोणायया उदोणदाहिणवित्थिण्णा नवजोयणवित्थिण्णा
डुवालसजोयणायामा धणवइ-मइ-निम्मिया चामीयरं पवर-पागारा
नाणामणि-पंचवण्णकविसीसग-सोहिया अलकापुरि-संकासा पमुइय-
पवकीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया ।

तीसे णं वारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए
रेवतगे नामं पव्वए होत्था—तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे नाणा-
विहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लिपरिगए हंस-मिग-मयूर-कोंच-सारस-
चक्रवाय-मयणसाल-कोइलकुलोववेए अणेगतड-कडग-वियर-
उज्जर-पवाय-पवमारसिहरपउरे अछरगण-देवसंघ-चारण-विज्जा-

१६३. उस काल और उस समय में वारावती (द्वारिका) नाम की
नगरी थी—जो पूर्व पश्चिम में वारह योजन लंबी और उत्तर-
दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी, वह कुवेर की मति से निर्मित
हुई थी, सुवर्ण के श्रेष्ठ प्रकार से और पंचरंगी अनेक प्रकार के
मणियों से बने कंगूरे से शोभित थी, अलकापुरी के समान जान
पड़ती थी, उसके निवासी प्रमोदयुक्त एवं क्रीड़ा करने में निमग्न
रहते थे, वह साक्षात् देवलोक सदृश थी ।

उस द्वारावती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में
रैवतक (गिरनार) नामक पर्वत था—वह बहुत ऊँचा था, उसके
शिखर गगनतल को स्पर्श करते थे, वह नाना प्रकार के गुच्छों,
गुल्मों, लताओं, और वल्लियों से परिव्याप्त था। हंस, मृग, मयूर,
कोंच, सारस, चक्रवाक, मदन सारिका, और कोयल आदि पक्षियों
के झुण्डों से व्याप्त था। उसमें अनेकतर कटक, विवर, झरने,
प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नमे हुए गिरि शिखर) और शिखर
थे, वह पर्वत अप्सराओं के समूह, देवों के संघ, चारण भुनियों

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भु-
त्ता महत्थं महग्घं महुरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेभिहत्ता
पत्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडा जेणेव
ण्हस्स वासुदेवस्स भवणवरपडिदुवार-देसमाए तेणेव उवागच्छइ,
वागच्छत्ता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
वागच्छइ, उवागच्छत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए
जंजलि कट्ठु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं
हुरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं
दारए-इट्ठु कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए
अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिय-
यनंदिजणए उम्बरपुष्कं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण
दरिसणयाए ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके
जाए जले संबडिइए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं,
एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संबडिइए नोवलिप्पइ
कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं ।

से णं देवाणुप्पिया ! संसार- भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-
मरणणं इच्छइ अरहओ अरिहत्तेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहण्णं निक्खमणसक्कारं
करेमि । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! थावच्चा-पुत्तस्स निक्ख-
ममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिन्नाओ ।

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चं गाहावइणि एवं वयासी—

“अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं
सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि ।”
कण्हस्स थावच्चापुत्तस्स य परिसंवादो—

१६८. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए त्रिजयं हत्थि-
रयणं दुख्खे समणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छत्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

तत्पश्चान् वह थावच्चा गाहावइणी आसण मे उठी, उठकर
उसने महान् अर्थवाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य,
और राजा के योग्य भेंट भक्षण हो, भेंट भक्षण करते निरों,
शालिग्रनों, कुटुम्बीजनों, स्वयंजनों, सम्बन्धियों और परिवारों आदि
से परिवृत्त होकर जहाँ कृष्ण-वासुदेव के अष्ट भवन के मुख्य प्रवेश
द्वार का देशभाग था, वहाँ आई, आकर प्रविष्टार द्वारा दिग्गतापे
मार्ग में जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई, आकर दोनों हाथ
जोड़, सिर पर आसनकर, मस्तक पर अंजलि करते त्रयविजय
शब्दों से वधाया, वधाकर उस महाअर्थवाली, महामूल्यवान्,
महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट हो सामने रखा,
सामने रखकर इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रिय ! थावच्चा पुत्र नामक मेरा एक ही पुत्र है—जो
मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मयाम, श्रेय और विश्वास का
स्थान, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ,
और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पेटों के
समान है, रत्न है, रत्नरूप है, जीवन के उच्छ्वास के समान है,
हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गुलर के फूल के समान
जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन करने की
तो बात ही क्या है ?

जैसे उत्पन्न, पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता
है, और जल में बढ़ता है, फिर भी पक की रज से अथवा जल
कणों से लिप्त नहीं होता है, इसीप्रकार यह थावच्चापुत्र कामों
में उत्पन्न हुआ है, और भोगों में पल-पुसकर वृद्धिगत हुआ है
फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ भोग-रज से लिप्त नहीं
हुआ—कामभोगों से विरक्त रहा ।

हे देवानुप्रिय ! वह अब संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म
जरा मरण से भयभीत हो अर्हत अरिहत्तेमि के पास मुण्डित
होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता
है । मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ । अतएव
हे देवानुप्रिय ! मेरी अभिलाषा है कि प्रव्रज्या अंगीकार करने
वाले थावच्चापुत्र के लिए छत्र, मुकुट और चामर प्रदान करें ।
तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चागाथापत्नी से इस
प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो ! मैं
स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण सत्कार करूँगा ।

कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद—

१६८. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय
हस्ती रत्न पर आरूढ़ होकर जहाँ थावच्चागाथा पत्नी का भवन
था, वहाँ आये, आकर थावच्चा पुत्र से इस प्रकार बोले—

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भु-
ट्टेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेहिहत्ता
मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धि संपरिवुडा जेणेव
कण्हस्स वासुदेवस्स भवणवरपडिडुवार-देसभाए तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छत्ता पडिहारदेसिएणं मग्गेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थाए
अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं
महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम एगे पुत्ते थावच्चापुत्ते नामं
दारए-इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए
अणुमए भंडकरं डगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिय-
यनंदिजणए उम्बरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए किमंग पुण
दरिसणयाए ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके
जाए जले संवडिइए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जलरएणं,
एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवडिइए नोवलिप्पइ
कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं ।

से णं देवाणुप्पिया ! संसार- भउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-
मरणणं इच्छइ अरहओ अरिट्टेनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहण्णं निक्खमणसक्कारं
करेमि । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! थावच्चा-पुत्तस्स निक्ख-
ममाणस्स छत्त-मउड-चामराओ य विदिन्नाओ ।

तए णं कण्हे वासुदेवे थावच्चं गाहावइणी एवं वयासी—

“अच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुनिव्वुत-वीसत्था, अहण्णं
सयमेव थावच्चापुत्तस्स दारगस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि ।”
कण्हस्स थावच्चापुत्तस्स य परिसंवादो—

१६८. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीए सेणाए त्रिजयं हत्थि-
रयणं डुरूडे समाणे जेणेव थावच्चाए गाहावइणीए भवणे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छत्ता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह थावच्चा थावंचाली आसन से उठी, उठकर
उसने महान् अथवाली, महामूल्य वाली, महान् पुरुषों के योग्य,
और राजा के योग्य भेंट प्रार्थना की, भेंट प्रार्थना करके मित्रों,
ज्ञातिजनों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों आदि
से परिवृत्त होकर जहाँ कृष्णवासुदेव के श्रेष्ठ भवन के मुख्य प्रवेश
द्वार का देशभाग था, वहाँ आई, आकर प्रविहार द्वारा दिग्वापि
मार्ग से जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई, आकर दोनों हाथ
जोड़, सिर पर आवतंकर, मस्तक पर अंजलि करके जयविजय
शब्दों से वधाया, वधाकर उस महाअथवाली, महामूल्यवान,
महान् पुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट को सामने रखा,
सामने रखकर इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रिय ! थावच्चा पुत्र नामक मेरा एक ही पुत्र है—जो
मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का
स्थान, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्यों में बहुत माना हुआ,
और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों की पीटी के
समान है, रत्न है, रत्नरूप है, जीवन के उच्छ्वास के समान है,
हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गुलर के फूल के समान
जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन करने की
तो बात ही क्या है ?

जैसे उत्पन्न, पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता
है, और जल में बढ़ता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल
कणों से लिप्त नहीं होता है, इसीप्रकार यह थावच्चापुत्र कामों
में उत्पन्न हुआ है, और भोगों में पल-पुसकर वृद्धिगत हुआ है
फिर भी काम-रज से लिप्त नहीं हुआ भोग-रज से लिप्त नहीं
हुआ—कामभोगों से विरक्त रहा ।

हे देवानुप्रिय ! वह अब संसार भय से उद्विग्न एवं जन्म
जरा मरण से भयभीत हो अर्हत अरिष्टनेमि के पास मुण्डित
होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता
है । मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ । अतएव
हे देवानुप्रिय ! मेरी अभिलाषा है कि प्रत्नज्या अंगीकार करने
वाले थावच्चापुत्र के लिए छत्र, मुकुट और चामर प्रदान करें ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने थावच्चागाथापत्नी से इस
प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! तुम निश्चिन्त और विश्वस्त रहो ! मैं
स्वयं ही थावच्चापुत्र बालक का निष्क्रमण सत्कार करूँगा ।

कृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद—

१६८. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव चतुरंगिणी सेना के साथ विजय
हस्ती रत्न पर आरूढ़ होकर जहाँ थावच्चागाथा पत्नी का भवन
था, वहाँ आये, आकर थावच्चा पुत्र से इस प्रकार बोले—

मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! मुण्डे भवित्ता पव्वयाहि, भुंजाहि णं देवाणुप्पिया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे मम वाहुच्छाय-परिग्गहिए । केवलं देवाणुप्पियस्स अहं नो संचाएमि वाउकायं उवरिमेणं गच्छामाणं निवारित्तए । अण्णे णं देवाणुप्पियस्स जं किञ्चि आवाहं वा वावाहं वा उप्पाएइ, तं सव्वं निवारेमि ।

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

“जइ णं देवाणुप्पिया ! मम जीवियंतकरं मच्चुं एज्जमाणं निवारित्ति, जरं वा सरीररुव्व-विणासार्णिं सरीरं अइव्वयमारिणं निवारित्ति, तए णं अहं तव वाहुच्छाय-परिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि ।”

तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे थावच्चापुत्तं एवं वयासी—“एए णं देवाणुप्पिया दुरइक्कमणिज्जा नो खलु सक्का सुवलिण्णावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं ।”

तए णं से थावच्चापुत्ते कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—“जइ णं एए दुरइक्कमणिज्जा, नो खलु सक्का सुवलिण्णावि देवेण वा दाणवेण वा निवारित्तए, नण्णत्थ अप्पणो कम्मक्खएणं । तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अण्णाण-मिच्छत्त-अविरइ-कसाय-संचियस्स अत्तणो कम्मक्खयं करित्तए ।

कण्हस्स जोगक्खेम-घोसणा—

१६६. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“गच्छह णं देवाणुप्पिया ! वारवईए नयरीए सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु हत्थिखंधवरगया मह्या-मह्या सद्देणं उग्घोसेमाण-उग्घोसेमाण उग्घोसणं करेह— एवं खलु देवाणुप्पिया ! थावच्चापुत्ते संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणणं, इच्छइ अरहओ अरिष्टनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइत्तए, तं जो खलु देवाणुप्पिया ! राया वा जुवराया वा देवी वा कुमारे वा ईसरे वा तलवरे वा कोडुंविद्य-माडंविद्य-इब्भ-सेट्टि-सेणावइ-सत्थवाहे वा थावच्चापुत्तं पुव्वयंतमणु-पव्वयइ,

‘हे देवानुप्रिय ! तुम मुण्डित होकर प्रव्रज्या ग्रहण मत करो, किन्तु मेरी भुजाओं की छाया में रहकर हे देवानुप्रिय ! मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम-भोगों को भोगो । मैं केवल देवानुप्रिय के अर्थात् तुम्हारे ऊपर होकर आने वाली वायुकाय को रोकने में समर्थ नहीं हूँ लेकिन इसके अतिरिक्त देवानुप्रिय को जो कोई भी आधि, व्याधि-सामान्य और विशेष पीड़ा-उत्पन्न करेगी, उस सबका निवारण करूँगा ।’

तव कृष्ण वासुदेव के इस कथन को सुनकर थावच्चा पुत्र ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाले आते हुए मरण को रोक सको और शरीर पर आक्रमण करने वाली एवं शरीर के रूप का विनाश करने वाली जरा—वृद्धावस्था को रोक दो तो मैं आपकी भुजाओं की छाया को ग्रहण करके—आपकी छत्रछाया में रहकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगता हुआ विचरण करूँ ।’

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के इस कथन को सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने थावच्चापुत्र से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! ये मरण और जरा दुरतिक्रम्य हैं अर्थात् मरण और जरा का उल्लंघन करना सम्भव नहीं है, अतीव बलशाली देव अथवा दानव के द्वारा भी इनका निवारण नहीं किया जा सकता है, हाँ अपने कर्मों का क्षय ही इन्हें रोक सकता है ।’

तव थावच्चापुत्र ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—‘यदि ये दुरतिक्रम्य हैं और कोई भी बलशाली देव अथवा दानव इनका निवारण नहीं कर सकता है किन्तु अपने कर्मों का क्षय ही रोक सकता है । इसीलिये तो हे देवानुप्रिय ! मैं अपने मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, द्वारा संचित आत्मा के कर्मों का क्षय करना चाहता हूँ ।

कृष्ण की योग-क्षेम घोषणा—

१६९. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के इस कथन को सुनकर कृष्ण-वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और द्वारिका नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और पथ आदि स्थानों में श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठकर ऊँची-ऊँची आवाज से उद्घोषणा करते हुए ऐसी घोषणा करो कि—हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-जरा और मरण से भयभीत थावच्चा-पुत्र अर्हत अरिष्टनेमि के निकट मुंडित होकर प्रव्रजित होना चाहता है, अतएव हे देवानुप्रियो ! जो राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, माडंविक, इम्य, सेठ,

तस्स णं कण्हे वासुदेवे अणुजाणइ पच्छाउरस्स वि य से मित्त-
नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स जोगक्खेम-वट्टमाणीं पडिबहइ
त्ति कट्टु घोसणं घोसेह-जाव-घोसंति ।

थावच्चापुत्तस अभिनिक्खमणं—

१७०. तए णं थावच्चापुत्तस अणुराएणं पुरिससहस्सं निक्खमणा-
भिमुहं ण्हापं सव्वालंकारविभूसियं पत्तेयं-पत्तेयं पुरिससहस्स-
वाहिणीसु त्तिवियासु दुळ्ळं समाणं मित्त-नाइ-परिवुडं थावच्चा-
पुत्तस अंतियं पाउव्भूयं ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पुरिससहस्सं अंतियं पाउव्भवमाणं
पासइ, पासित्ता कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—
“जहा मेहस्स निक्खमणाभिसेओ तहेव सेयापीढएहिं ण्हावेत्ति
ण्हावेत्ता-जाव अरहतो अरिट्टनेमिस्स छत्ताइछत्तं । खिप्पामेव भो
देवाणुप्पिया ! अणेगखंभ-सयसन्निविट्टुं-जाव-सायं उवट्टवेह ।

तए णं से थावच्चापुत्ते वारवतीए नयरोए मज्झंमज्झेणं
निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव रेवतगपव्वए जेणेव नंदणवणे
उज्जागे जेणेव सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे जेणेव असोगवर-
पायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्टनेमिस्स
छत्ताइछत्तं पडागाइपडाग विज्जाहर-चारणे जंभए य देवे
ओवयमाणे पासइ, पासित्ता तीयाओ पच्चोव्हइ ।

सिस्सभिक्खादाणं—

१७१. तए णं से कण्हे वासुदेवे थावच्चापुत्तं पुरओ काउं जेणेव
अरहा अरिट्टनेमो तेणेव उवागच्छत्ति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ट-
नेमि त्तिपुत्तो आयाहिण-वयाहिणं करेत्ति,, करेत्ता वंदति नमंसति
वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“एस णं देवाणुप्पिया ! थावच्चा-
पुत्ते” थावच्चाए गाहाएइणीए एगे पुत्ते इट्टे कंते पिए मणुष्णे
मयादे वेज्जे वेसात्तिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंउगसमाणे
रयणे रयणमए गोविज्जसासाणं हिधयनंदित्रणए उंवरपुक्कं पिय
इएहे मयायाणं, तिमंम पुग इरित्तयायाणं ?

सेनापति अथवा सार्थवाह दीक्षा लेने के लिये तत्पर थावच्चा पुत्र
के साथ दीक्षा ग्रहण करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव अनुज्ञा देते हैं,
और पीछे रहे हुए उसके मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी
या परिजन आदि होंगे तो उनके वर्तमान काल सम्बन्धी योग
और क्षेमका निर्वाह करेंगे, इस प्रकार की घोषणा करो—यावत्-
वे कौटुम्बिक पुरुष वैसे घोषणा करते हैं ।

थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण—

१७०. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र के अनुराग से निष्क्रमण के लिये
तत्पर स्नान करके और समस्त अलकारों से विभूषित होकर एक
हजार व्यक्ति अलग-अलग पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका में आरूढ़
होकर मित्रों और जाति जनों से परिवृत्त होकर थावच्चापुत्र के
निकट प्रगट हुए—आये ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने एक हजार पुरुषों को प्रगट
हुआ—आया हुआ देखकर, कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, और
बुलाकर इस प्रकार कहा—(जैसा मेघकुमार के दीक्षाभिषेक का
वर्णन किया गया है, उसी प्रकार श्वेतपीठिका पर बैठना स्नान
करना यावत् अरिष्टनेमि यावत् के समवसरण में जाने तक का
वर्णन यहाँ करना चाहिये) हे देवानुप्रियो ! सैकड़ों स्तम्भों से
बनी हुई—यावत्-शिविका लाओ ।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र द्वारिका नगरी के बीचों बीच से
निकला, निकलकर जहाँ रैवतक पर्वत था, जहाँ नंदनवन उद्यान
था, जहाँ सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, जहाँ श्रेष्ठ अशोक वृक्ष
था, वहाँ आया, वहाँ आकर अर्हत अरिष्टनेमि के छत्र पर छत्र,
पताका पर पताका, विद्याधर और चारण मुनियों, जृम्भकदेवों को
आकाश से जमीन पर आते और जमीन से आकाश की ओर
ऊपर जाते देखा, देखकर शिविका से नीचे उतरा ।

शिष्य भिक्षादान—

१७१. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव थावच्चापुत्र को आगे करके जहाँ
अर्हत अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये, वहाँ आकर, अरिष्टनेमि की
तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन
नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—
“हे देवानुप्रिय ! यह थावच्चापुत्र थावच्चागाथापत्नी का
इकलौता पुत्र है, यह उसे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य
और विश्वास की भूमि के ममान है, सम्मत, बहुमत, अनुमत,
आभूषणों की पेटी के समान है, मनुष्यों में रत्न के समान, रत्न
ल्प, हृदय को आनंदित करने वाला और गुलर के पुष्प के
समान इनका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात
ही क्या है ?

से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवडिड्ढए नोवलिप्पइ पंकरएणं नोवलिप्पइ जनरएणं, एवामेव थावच्चापुत्ते कामेसु जाए भोगेसु संवडिड्ढए नोवलिप्पइ कामरएणं नोवलिप्पइ भोगरएणं । एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विगे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अगगरियं पव्वइत्तए । अम्हे णं देवाणुप्पियाणं सिस्सभिव्वं दलयामो । पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सभिव्वं” ।

तए णं अरहा अरिष्टुनेमी कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ ।

तए णं से थावच्चापुत्ते अरहओ अरिष्टुनेमिस्स अंतियाओ उत्तरपुरत्थियंमं दिसीभायं अवक्कमइ, सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ ।

तए णं सा थावच्चा गाहावइणी हंसलवखणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्ननुत्ता-वलि-प्पगासाइं अंसूणि विणिम्मयुमाणी-विणिम्मयुमाणी रोयमाणी-रोयमाणी कंदमाणी-कंदमाणी विलवमाणी-विलवमाणी एवं वयासी-

“जइयव्वं जाया ! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं । अम्हं पि णं एसेव मग्गे भवउत्ति कट्ठु थावच्चा गाहावइणी अरहं अरिष्टुनेमि वंदति नमंसति, वदित्ता नमंसित्ता जामेव दिंति पाउव्वभूया तामेव दिंति पडिगया ।”

थावच्चापुत्तस्स पव्वज्जागहणं—

१७२. तए णं से थावच्चापुत्ते पुरिससहस्सेणं सद्धिं सयमेव पंच-मुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव अरहा अरिष्टुनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिष्टुनेमि तिदखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ-जाव-पव्वइए ।

थावच्चापुत्तस्स अणगारचरिया—

१७३. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे जाए—इरियासमिए-जाव-गुत्तवंभयारी अकोहे-जाव-निस्सलेवे, कंसपाईव मुक्कतोए-जाव-कम्मनिग्घायणट्ठए एवं च णं विहरइ ।

जैसे-उत्पन्न, पद्म अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में बढ़ता है किन्तु कीचड़ से उपलिप्त नहीं होता, जल रज से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार यह थावच्चापुत्र भी काम में उत्पन्न हुआ है, भोगों में वृद्धि को प्राप्त हुआ है, फिर भी यह काम-रज से लिप्त नहीं हुआ है, भोग-रज से लिप्त नहीं हुआ है । हे देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्विग्न हुआ, जन्म, जरा, मरण से भयभीत हुआ आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर अगार त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है । हम देवानुप्रिय को शिष्य भिक्षा देते हैं । हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्य भिक्षा को स्वीकार कीजिये ।

तत्पश्चात् अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव की इस बात को सुनकर इस अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करते हैं ।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र अर्हत् अरिष्टनेमि के पास उत्तर-पूर्व-ईशान दिशा में गया, स्वयं ही आभरण, माला, अलंकारों को उतारा ।

उसके बाद थावच्चा गाथावाही में हंस लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदु वस्त्र में आभरण, माला, अलंकारों को ग्रहण किया, ग्रहण करके, मोतियों के हार, जल की धारा, निर्गुण्डी के फूलों तथा छिन्न हुई मोतियों की माला के समान आंसुओं को त्यागती हुई रदन करती हुई, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

हे लाल ! प्राप्त चारित्र्य योग में यतना करना, अप्राप्त चारित्र्य योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न तत्पर रहना, हे पुत्र ! पराक्रम करना, इस अर्थ—संयम-साधना में प्रमाद मत करना । हमारे लिये भी यही मार्ग हो, इस प्रकार कहकर थावच्चा-गाथावाही ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जिस ओर से आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

थावच्चापुत्र का प्रव्रज्याग्रहण—

१७२. तत्पश्चात् एक हजार पुरुषों के साथ थावच्चापुत्र ने अपने आप पंचमुष्टि लोच किया, लोच करके, जहाँ अर्हत् अरिष्टनेमि थे, वहाँ आया, आकर अर्हत् अरिष्टनेमि की तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया, यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार की ।

थावच्चापुत्र की अनगार चर्या—

१७३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार हो गया—इर्यासमिति युक्त-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी, क्रोधरहित, यावत्-निरूपलिप्त, जल से अलिप्त कांसे के पात्र की तरह-यावत्-कर्मा का उच्छेद करने के लिये तत्पर होकर विचरने लगा ।

तए णं से थावच्चापुत्त अरहओ अरिद्धनेमिस्स तहाकवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं चोदसपुच्चाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहि चउत्थ-छट्टुम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमात्त-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे हिहरइ ।

थावच्चापुत्तस्स जणवयविहारो सेलगपुरे सनोसरणं च—
१७४. तए णं अरहा अरिद्धनेमी थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स तं इब्भाइयं अणगार-सहस्सं सीसत्ताए दलयइ ।

तए णं से थावच्चापुत्ते अण्णया कयाइं अरहं अरिद्धनेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—“इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अणगारसहस्सेणं सद्धिं वहिया जणवयविहारं विहरित्तए ।

अहामुहं देवाणुप्पिया !

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं तेणं उरालेणं उग्गेणं पयत्तेणं पग्गहिणं तवोकम्भेणं वहिया जणवयविहारं विहरइ ।

सेलगरायागमणं—

१७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सेलगपुरे नामं नगरे होत्था । सुभूमिभागे उज्जाणे । सेलए राया । पउमावई देवी । मंडुए कुमारे जुवराया ।

तस्स णं सेलगस्स पंथगपानोक्खा पंच मंतिसया होत्था—
उप्पत्तियाए-जाव-पारिणामियाए उववेया रज्जधुरं चितयंति ।

थावच्चापुत्ते सेलगपुरे सनोसडे । राया निग्गए ।

सेलगस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

१७६. तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए धम्मं सोच्चा एवं वयासी—

“जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए वहने उग्गा उग्गपुत्ता मंडा भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तहा णं अहं नो संचा-एमि-जाव-पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि ।”

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।

तए णं से सेलए राया थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए णुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं उवसंपज्जइ ।

उसके बाद थावच्चापुत्र ने अरिद्धनेमि अरिष्टनेमि के तथा ह्य स्वविरों के पाग सामागत में प्रारम्भ करते बोद्ध पूर्वी का अध्ययन किया, अध्ययन करते वक़्त से वसुधै भाता पृथ-भक्त, अप्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशमभक्त, मास प्रथमास ही तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करने हुए विनये लगा ।”

थावच्चापुत्र का जनपद विहार और शैलकपुर में समवसरण १७४. तत्पश्चात् अरिद्धनेमि अरिष्टनेमि ने थावच्चापुत्र अनगार को इन इव्व आदि एक हजार अनगारों को शिष्य के रूप में प्रदान किया ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने अन्य किसी एक समय अहंत् अरिष्ट-नेमि को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके कहा—“हे भदन्त ! आप ही आज्ञा अनुमति ही तो एक हजार अनगारों के साथ बाहरी जनपद में विहार करना चाहता हूँ ।”

‘देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसे करो ।’ भगवान ने उत्तर दिया ।

उसके बाद थावच्चापुत्र एक हजार अनगारों के साथ उस उत्तम उग्र प्रयत्न पूर्वक ग्रहण किये गये तपोकर्म की आराधना करते हुए बाहर जनपद में विचरण करने लगा ।

शैलकराज-आगमन—

१७५. उस काल और उस समय में शैलकपुर नाम का नगर था सुभूमि नामक उद्यान था । शैलक नाम का वहाँ राजा था । उसकी पद्मावती नाम की रानी थी, मंडुक नामक कुमार युवराज था ।

उस शैलक राजा के पंथक आदि पाँच सौ मंत्री थे-वे औत्पत्ति की-यावत्-पारिणामिकी इस प्रकार चार तरह की बुद्धियों से संपन्न थे एवं राज्यधुरा का—प्रशासन का चिन्तन करते रहते थे ।

थावच्चापुत्र शैलकपुर में पधारे, राजा वंदनार्थ निकला ।

शैलक की गृहीधर्म-प्रतिपत्ति—

१७६. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार से धर्मोपदेश श्रवण कर शैलक राजा ने इस प्रकार कहा—

देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से उग्रकुल के राजकुमार मुंडित होकर गृहत्याग कर दीक्षित हुए हैं, उस प्रकार यद्यपि मैं दीक्षित होने में समर्थ नहीं हूँ—इसलिये मैं देवानुप्रिय के पास से पाँच अणुव्रतों को-यावत्-श्रावक धर्म धारण करना चाहता हूँ ।

देवानुप्रिय ! ‘जैसे सुख उपजे वैसे करो, किन्तु विलंब मत करो ।’ थावच्चापुत्र अनगार ने कहा ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने थावच्चापुत्र अनगार से पाँच अणु-व्रतों को यावत्-श्रावक धर्म को अंगीकार किया ।

सेलगस्स समणोवासणं-चरिया—

१७७. तए णं सेलए राया समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

पंथगपामोक्खा पंच मंति-सया समणोवासया जाया ।

थावच्चापुत्ते वहिया जणवयविहारं विहरइ ।

सोगंधियाए सुदंसणे सेट्ठी—

१७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सोगंधिया नामं नयरी होत्था—वण्णओ । नीलासोए उज्जाणे—वण्णओ ।

तत्थ णं सोगंधियाए नयरीए सुदंसणे नामं नयरसेट्ठी परिवसइ, अड्ढे-जाव-अपरिभूए ।

सोगंधियाए सुयपरिव्वायगागमणं—

१७९. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुए नामं परिव्वायए होत्था—रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-सट्ठितंतकुसले संखसमए लद्धट्ठे पंचजम-पंचनियमजुत्तं सोयमूलयं दसप्पयारं परिव्वायगधम्मं दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणे पण्णवेमाणे धारउत्त-वत्थ-पवर-परिहिए तिट्ठं-कुडिय-छत्त-छत्तालय-अंकुस-पवित्तय-केसरि-हत्थगए परिव्वायगसहस्सेणं सट्ठि संपरिवुडे जेणेव सोगंधिया नयरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उदागच्छइ, उवागच्छिता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं सोगंधियाए नगरीए सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ—एवं खलु सुए परिव्वायए इहमागए इह संपत्ते इह समोसडे इह चेव सोगंधियाए नयरीए परिव्वायगावसहंसि संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

परिसा निग्गया ! सुदंसणे वि णिग्गए ।

सुयपरिव्वायगेणं सोयमूलय-धम्मोवएसो—

१८०. तए णं से सुए परिव्वायए तीसे परिसाए सुदंसणस्स य

शैलक की श्रमणोपासक चर्या—

१७७. उसके बाद शैलक राजा श्रमणोपासक हो गया—जीव अजीव का ज्ञाता होकर आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा । पंथक आदि पांच सौ मंत्री भी श्रमणोपासक हो गये ।

थावच्चापुत्र अनगार वहाँ से विहार करके जनपद में विचरण करने लगे ।

सौगंधिका का सुदर्शन श्रेष्ठी—

१७८. उस काल और उस समय में सौगंधिका नाम की नगरी थी—वर्णन । नीलाशोक नामक उद्यान था वर्णन कर लेना चाहिये ।

उस सौगंधिका नाम की नगरी में सुदर्शन नामक नगर श्रेष्ठी निवास करता था—जो समृद्धिशाली था—यावत्-किसी से पराभूत नहीं होता था ।

सौगंधिका में शुक परिव्राजक-आगमन—

१७९. उस काल और उस समय में शुक नामक परिव्राजक था—जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं षष्ठितंत्र (सांख्यमत) में कुशल था, सांख्य दर्शन में निपुण था, पाँच यमों और पाँच नियमों से युक्त दस प्रकार के शौच मूलक परिव्राजक धर्म का, दान धर्म का, शौच धर्म का और तीर्थ स्नान का उपदेश और प्ररूपण करते हुए, गेरू से रंगे हुए श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करके त्रिदंड, कुंडिका-कमंडलु छत्र, छत्तालिक [काष्ठ का एक उपकरण] अंकुश [वृक्ष के पत्ते तोड़ने का उपकरण] पवित्री [ताँवे की वनी अंगूठी] और केसरी [प्रमांजन करने का वस्त्र खड्ड] इन सात उपकरणों को हाथ में लेकर एक हजार परिव्राजकों से परिव्रुत होकर जहाँ सौगंधिका नगरी थी और उसमें जहाँ परिव्राजकों को आवसथ [मठ] था, वहाँ आया, आकर, परिव्राजक-आवसथ (मठ) में उसने अपने उपकरण रखे, उपकरण रखकर सांख्यमत के अनुसार अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा ।

तत्पश्चात् उस सौगंधिका नगरी के श्रुंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग, सामान्य मार्ग आदि स्थानों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहते थे—इस प्रकार निश्चय ही शुक परिव्राजक यहाँ आये हैं, यहाँ पधारे हैं, यहाँ समागत हैं और यहीं सौगंधिका नगरी के परिव्राजक आवसथ में सांख्यमत के अनुसार आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

पर्षदा निकलीं । सुदर्शन भी निकला ।

शुक परिव्राजक द्वारा शौच मूलक धर्मोपदेश—

१८०. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक ने उस परिपद को, सुदर्शन को

अणोसि च बहूणं संखाणं परिकहेइ—एवं खलु सुदंसणा ! अहं सोयमूलए धम्मे पण्णत्ते । से वि य सोए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वसोए य, भावसोए य ।

दव्वसोए उदएणं मट्टियाए य । भावसोए दव्वभेहि य मंतेहि य ।

जं णं अहं देवाणुप्पिया ! किंचि असुई भवइ तं सव्वं सज्जो पुढवीए आलिप्पइ, तओ पच्छा सुद्धेण वारिणा पवखालिज्जइ, तओ तं असुई सुई भवइ । एवं खलु जीवा जलाभित्तेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सगं गच्छंति ।

सुदंसणस्स सोयमूलय-धम्मपडिवत्ती—

१८१. तए णं से सुदंसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्टुट्टे सुयस्स अंतियं सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ, गेण्हता परिव्वायए विज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइनेणं पडिलाभमाणे संखसमएणं अप्पाणं भावे-माणे विहरइ ।

तए णं से सुए परिव्वायए सोगंधियाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

सोयमूलधम्मविसए थावच्चापुत्तस्स सुदंसणेण संवादो चाउज्जामियधम्मोवएसो य—

१८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं थावच्चापुत्तस्स समोसरणं । परिसा निग्गयां । सुदंसणो वि णीइ । थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तुम्हाणं किमूलए धम्मे पण्णत्ते ?

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणेणं एवं वुत्ते समाणे सुदंसणं एवं वयासी—

सुदंसणा ! विणयमूलए धम्मे पण्णत्ते । से वि य विणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अगार-विणए अणगारविणए य ।

तत्थ णं जे से अगारविणए, से णं पंच अणुव्वयाइं, सत्त सिक्खावयाइं एक्कारस उवासगपडिमाओ । तत्थ णं जे से अणगार-विणए, से णं चाउज्जामे, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवापाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिग्गादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं ।

इच्चेएणं दुविहेणं विणयमूलएणं धम्मेणं अणुपुव्वेणं अट्टकम्म-णडीओ खवेत्ता लोयगपइट्टाणा भवंति ।

और अन्य दूसरे श्रोताओं को सांख्यमत का उद्देश्य शिया—इस प्रकार हे सुदर्शन ! इस शौचमूलक धर्म की प्रकृति करने हैं। वह शौच भी दो प्रकार का है, यथा—द्रव्यशौच और भावशौच।

द्रव्यशौच जल और मिट्टी से होता है। भावशौच धर्म और मंत्रों से होता है।

हे देवानुप्रिय ! हमारे यहाँ जो छोटे भी धनु अगुचि होती है, वह सब मन्थः (तत्काल) मिट्टी से आश्रित कर दी जाती है, माँज दी जाती है, उनके पश्चात् शुद्ध जल से धो ली जाती है, तब वह अगुचि शुचि हो जाती है। इस प्रकार निश्चय ही जीव जल स्नान से अपनी आत्मा को पवित्र करके विना विघ्न के स्वर्ग को जाते हैं—स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

सुदर्शन की शौचमूलक-धर्म प्रतिपत्ति —

१८१. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के पास धर्म को सुनकर सुदर्शन ने हृष्ट-तुष्ट होकर शुक से शौच मूलक धर्म को ग्रहण किया, ग्रहण करके परिव्राजकों को विपुल अशन, पान, चादिम और स्वादिम से प्रतिलाभित करता हुआ सांख्यमतानुसार आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

उसके बाद वह शुक परिव्राजक शौगंधिका नगरी से बाहर निकला और निकलकर बाहर जनपदों में विचरण करने लगा।

शौचमूलक धर्म के विषय में थावच्चापुत्र का सुदर्शन से संवाद और चातुर्यामिक धर्मोपदेश—

१८२. उस काल और उस समय में थावच्चापुत्र का आगमन हुआ। पर्वदा वंदनार्थ निकली, सुदर्शन भी निकला। थावच्चापुत्र को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

आपके धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

तब (सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर) थावच्चापुत्र अणगार ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—

सुदर्शन ! धर्म विनयमूलक कहा गया है। वह विनय (चारित्र्य) भी दो प्रकार का कहा है; यथा—अगार विनय अर्थात् श्रावक धर्म (चारित्र्य) और अनगार विनय अर्थात् श्रमण धर्म (श्रमण चारित्र्य, श्रमणाचार)।

इनमें जो अगारविनय है, पाँच अणुव्वत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमारूप है। जो अनगार विनय है, वह चार याम रूप है, यथा—समस्तप्राणातिपात से विरमण, समस्त मृषावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त वहिद्धादान (परिग्रह और मँथुन) से विरमण।

इस प्रकार के द्विविध विनयमूलक धर्म से अनुक्रमशः आठ कर्मों की प्रकृतियों को क्षय करके जीव लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित होते हैं।

१८३. तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—

तुब्भणं सुदंसणा ! किमूलए धम्मं पणत्ते ?

अम्हाणं देवानुप्पिया ! सोयमूलए धम्मं पणत्ते-जाव-खलु जीवा जलाभिसेय-पूयप्पाणो अविग्घेणं सगं गच्छंति ।

तए णं थावच्चापुत्ते सुदंसणं एवं वयासी—

‘सुदंसणा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रहिरकयं वत्थं रहिरेण चैव धोवेज्जा, तए णं सुदंसणा ! तस्स रहिरकयस्स वत्थस्स रहिरेण चैव पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि काइ सोही ?

नो इणद्धे समद्धे ।

एवामेव सुदंसणा ! दुब्भं पि पाणाइवाएणं-जाव-वहिद्धादाणेणं नत्थि सोही, जहा तस्स रहिरकयस्स वत्थस्स रहिरेणं चैव पक्खालिज्जमाणस्स नत्थि सोही ।

सुदंसणा ! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं रहिरकयं वत्थं सज्जिया-खारेणं अणुलिपइ, अणुलिपित्ता पयणं आरुहेइ आरुहेत्ता उण्हं गाहेइ, गाहेत्ता तओ पच्छा सुद्धेणं वारिणा धोवेज्जा । से नूणं सुदंसणा ! तस्स रहिरकयस्स वत्थस्स सज्जिया-खारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स सोही भवइ ?

हंता भवइ ।

एवामेव सुदंसणा ! अम्हं पि पाणाइवायवेरमणेणं जाव-वहिद्धादाणवेरमणेणं अत्थि सोही, जहा वा वीयस्स रहिरकयस्स वत्थस्स सज्जियाखारेणं अणुलित्तस्स पयणं आरुहियस्स उण्हं गाहियस्स सुद्धेणं वारिणा पक्खालिज्जमाणस्स अत्थि सोही ।

सुदंसणस्स विणयमूलय-धम्मपडिवत्ती—

१८४. तत्थ णं से सुदंसणे संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंत्ते ! तुब्भं अत्थि धम्मं सोच्चा जाणित्तए ।

तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुदंसणस्स तीसे य महइमहा-लियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा—

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं-जाव-तए णं से सुदंसणे समणोवासए जाए-अभिगयजीवा-जीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइ-

१८३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा—

हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

देवानुप्रिय ! हमारा धर्म शीघ्रमूलक कहा गया है—यावत्-निश्चय ही जीव जलाभिषेक से पवित्र होकर बिना विघ्न के स्वर्ग जाते हैं ।

तव थावच्चापुत्र ने सुदर्शन से कहा—

हे सुदर्शन ! जैसे किसी भी नाम वाला कोई पुरुष रुधिर से लिप्त किसी वस्त्र को रुधिर से ही धोये तो हे सुदर्शन ! क्या रुधिर से धोये जाने पर भी उस रुधिर से लिप्त वस्त्र की शुद्धि होगी ?

यह अर्थ समर्थ नहीं हैं अर्थात् ऐसा शक्य नहीं है—सुदर्शन ने उत्तर दिया ।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! तुम्हारे मतानुसार भी प्राणातिपात-यावत्-वहिद्धादान से शुद्धि नहीं हो सकती है, जैसे उस रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोने पर शुद्धि नहीं होती है ।

हे सुदर्शन ! जैसे किसी भी नाम वाला कोई पुरुष एक बड़े रुधिर लिप्त वस्त्र को सज्जी के खार के पानी में भिगोये, भिगोकर पाक स्थान (चूल्हे) पर चढ़ाये, चढ़ाकर उष्णता ग्रहण कराये (उबाले), उसके बाद शुद्ध जल से धोये तो निश्चय ही सुदर्शन ! वह रुधिर लिप्त वस्त्र सज्जी के खार के पानी में भीगकर, चूल्हे पर चढ़कर-उबालकर और शुद्ध जल से प्रक्षालित होकर—धुलकर शुद्ध हो जाता है ?

हाँ हो जाता है (सुदर्शन ने कहा) ।

इसी प्रकार हे सुदर्शन ! हमारे धर्म के अनुसार भी प्राणातिपात विरमण-यावत्-वहिद्धादान-विरमण से शुद्धि होती है जैसे उस दूसरे रुधिर लिप्त वस्त्र की सज्जी खार के पानी में भीगकर, चूल्हे पर चढ़ाकर-उबालकर और शुद्ध जल से धोये जाने पर शुद्धि हो जाती है ।

सुदर्शन की विनयमूलक-धर्म प्रतिपत्ति—

१८४. तत्पश्चात् सुदर्शन प्रतिबोध को प्राप्त हुआ और उसने थावच्चापुत्र को वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! आपसे मैं धर्म सुनकर जानना चाहता हूँ ।

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन को और उस विशाल पर्पदा को धर्मोपदेश दिया-यथा—

समस्त प्राणातिपात से विरमण, समस्त मृपावाद से विरमण, समस्त अदत्तादान से विरमण, समस्त वहिद्धादान से विरमण-यावत्-तव वह सुदर्शन श्रमणोपासक हो गया, जीवाजीव का ज्ञाता हो गया-यावत्-निर्ग्रन्थ श्रमणों को प्रासुक एषणीय अशन,

मेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण
य पीढ-फलग-सेज्जा-संयारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ ।

सुयेण सुदंसणस्स पडिसंबोधो—

१८५. तए णं तस्स सुयस्स परिव्वायगस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स
समाणस्स अयमेयारूवे अज्झतिथिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं
खलु सुदंसणेणं सोयधम्मं विप्पजहाय विणयमूले धम्मे पडिवण्णे, तं
सेयं खलु मम सुदंसणस्स दिंहुं वामेत्तए पुणरवि सोयमूलए धम्म
आघवित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता परिव्वायगसहस्सेणं सद्धि
जेणेव सोगंधिया नगरी जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता परिव्वायगावसहंसि भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता
धाउरत्त-वत्थ-पवर परिहिए पविरल-परिव्वायगेणं सद्धि संपरिवुडे
परिव्वायगावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सोगंधियाए
नयरीए मज्झंमज्जेणं जेणेव सुदंसणस्सगिहे जेणेव सुदंसणे तेणेव
उवागच्छइ ।

तए णं से सुदंसणे तं सुयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो
अब्भुट्ठेइ न पच्चुग्गच्छइ नो आढाइ नो परियाणाइ नो वंदइ
तुसिणीए संचिद्धइ ।

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं अणब्भुट्ठियं अप्पच्चुग्गच्छंतं
अणाढाइज्जंतं अपरियाणंतं अवंदंतं तुसिणीयं, पासित्ता एवं वयासी—

तुमं णं सुदंसणा ! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता अब्भुट्ठेसि
पच्चुग्गच्छसि आढासि परियाणासि वंदसि, इयाणि सुदंसणा ! तुम
ममं एज्जमाणं पासित्ता नो अब्भुट्ठेसि नो पच्चुग्गच्छसि नो आढासि
नो परियाणासि नो वंदसि । तं कस्स णं तुमे सुदंसणा ! इमेयारूवे
विणयमूले धम्मे पडिवण्णे ?

१८६. तए णं से सुदंसणे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते संमाणे
आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरंसावत्तं
मत्थए अज्जलि कट्टु सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—

एवं खलु देवानुप्पिया ! अरहओ अरिठ्ठेनेमिस्स अंतेवासी
थावच्चापुत्ते नामं अणगारे पुव्वाणुपुंविं चरमाणे गामाणुगामं
द्वइज्जमाणे इहमागए इह चेव नीलासोए उज्जाणे विहरइ । तस्स
णं अंतिए विणयमूले धम्मे पडिवण्णे ।

तए णं से सुए परिव्वायए सुदंसणं एवं वयासी—

पान, धारिम, स्वादिम, पक्क, उपहरण, कंबल, पाद पृच्छन,
(रजोहरण), ओपधि, अंगण आदि इन योग्य वस्तुओं की और
प्रातिहारिक [वापस देने योग्य] गेठ, कंबल, अंगण, नंस्तारक
आदि को दान में देना हुआ निरर्थक गया ।

शुक द्वारा सुदर्शन की प्रति संवीध —

१८५. तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक को इस कथा का अर्थ-
समाचार जानकर इस प्रकार का प्रश्न (धर्म-गाथा-विचार उत्पन्न
हुआ—इस प्रकार सुदर्शन ने सोना धर्म का परित्याग करके
विनय मूलक धर्म अंगीकार किया है, अतएव मेरे लिये वह
श्रेयस्कर होगा कि सुदर्शन की इच्छा—श्रद्धा का बमन कराके-स्वाम
कराके पुनः शीघ्र-मूलक धर्म का उपदेश दूँ, ऐसा उसने विचार
किया, विचार करके एक हजार परिव्राजकों के साथ जहाँ
सोगंधिका नगरी थी, जहाँ परिव्राजक आवसथ (मठ) था, वहाँ
आया, आकर परिव्राजक आवसथ में उपहरण रये, रखकर गेठ
से रंगे वस्त्र धारण किये हुए थोड़े से परिव्राजकों के साथ विरा
हुआ, परिव्राजक-मठ से निकला, निकलकर सोगंधिका नगरी के
मध्य में से होकर जहाँ सुदर्शन का घर था और जहाँ सुदर्शन था,
वहाँ आया ।

तब सुदर्शन ने शुक को आते हुए देखा, देखकर वह न तो
आदर करने के लिये उठा, न सामने गया, उसका आदर नहीं
किया, पहचान भी नहीं बताई, वंदना नहीं की और मान धारण
किये रहा ।

तब शुक परिव्राजक ने सुदर्शन को अनभ्युत—सामने नहीं
आते हुए आदर नहीं करते हुए, पहचान भी नहीं बताते हुए,
वंदना नहीं करके मौन रहा देखकर इस प्रकार कहा—

हे सुदर्शन ! पहले मुझे कभी आता हुआ देखते थे तो खड़े
होते थे, सत्कार करते थे, सामने आते थे और वंदना करते थे,
लेकिन अब कि बार तुम मुझे आते देखकर भी न खड़े हुए, न
सामने आये, न आदर किया और न वंदना की । हे सुदर्शन !
किसके समीप तुमने विनयमूलक धर्म अंगीकार किया है ?

१८६. तत्पश्चात् शुक परिव्राजक के इस कथन को सुनकर
सुदर्शन आसन से उठा, उठकर दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर
घुमाकर और मस्तक पर अंजलि करके शुक परिव्राजक से इस
प्रकार कहा—

देवानुप्रिय ! अर्हंत अरिठ्ठेनेमि के अंतेवासी थावच्चापुत्र
नामक अनगर अनुक्रम से चलते-चलते, ग्रामानुग्राम में विचरण
करते हुए यहाँ आये और यहीं नीलाशोक उद्यान में विचर रहे
हैं । उनके पास मैंने विनय मूलक धर्म अंगीकार किया है ।

तत्पश्चात् उस शुक परिव्राजक ने सुदर्शन से इस प्रकार
कहा—

“तं गच्छामो णं सुदंसणा ! तत्र धम्मायरियस्स थावच्चा-
पुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामो, इमाइं च णं एयाख्खाइं अट्ठाइं हेऊइं
पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छामो । तं जइं मे से इमाइं
अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं वागरेइ, तओ णं चंदांमि
नमंसामि । अहं मे से इमाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं
वागरणाइं नो वागरेइ, तओ णं अहं एएँहं चैव अट्ठेहिं हेऊँहं
निप्पट्टपसिणवागरणं करिस्सामि ।

सुयस्स थावच्चापुत्तेण सह संवादो—

१८७. तए णं से सुए परिव्वायगसहस्सेणं सुदंसणेण य सेट्ठिणा सद्धि
जेणेव नीलासोए उज्जाणे जेणेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छिता थावच्चापुत्तं एवं वयासी—

“जत्ता ते भंते ? जवणिज्जं ते (भंते) ? अवावाहं (ते
भंते) ? फासुयं विहारं (ते भंते ?)”

तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारे सुएणं परिव्वायगेणं एवं वुत्ते
समाणे सुयं परिव्वायगं एवं वयासी—“सुया ! जत्तांमि मे, जवणिज्जं
पि मे, अवावाहं पि मे, फासुयं विहारं पि मे” ।

तए णं से सुए थावच्चापुत्ते एवं वयासी—किं ते भंते !
जत्ता ?

सुया ! जण्णं मम नाण-दंसण-चरित्त-तव-संजममाइएँहिं
जोएहिं जोयणा, से तं जत्ता ।

से किं ते भंते ! जवणिज्जं ?

सुया ! जवणिज्जे डुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

इंदियजवणिज्जे य नोइंदियजवणिज्जे य ।

से किं तं इंदियजवणिज्जे ?

सुया ! जण्णं ममं सोतंदिय-चख्खदिय-घाणंदिय-जिण्णिभदिय-
फासिंदियाइं निख्खहयाइं वसे वट्टंति, से तं इंदियजवणिज्जे ।

से किं तं नोइंदियजवणिज्जे ?

सुया ! जण्णं मम कोह-माण-माया-लोभा खीणा उवसंता नो
उदर्यंति, से तं नोइंदियाजवणिज्जे ।

से किं ते भंते ! अवावाहं ?

सुया ! जण्णं मम वाइय-पित्तिय-सिभिय-सन्निवाइया विविहा
रोगायंका नो उदीरंति, से तं अवावाहं ।

से किं ते भंते ! फासुयं विहारं ?

‘हे सुदर्शन ! चलें और तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चापुत्र के
समीप प्रगट हों—पहुँचें और इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं
को, प्रश्नों को, कारणों को, व्याकरणों को पूछें । यदि वे मेरे इन
अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों का विवेचन कर
देंगे तो मैं उन्हें वंदना करूँगा, नमस्कार करूँगा । यदि वे मेरे
इन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों को नहीं कहेंगे—
उत्तर नहीं देंगे तो मैं उन्हें इन्हीं अर्थों हेतुओं आदि से निरुत्तर
करा दूँगा ।

शुक का थावच्चापुत्र के साथ संवाद—

१८७ तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक एक हजार परिव्राजकों
और सुदर्शन श्रेष्ठी के साथ जहाँ नीलाशोक उद्यान था, जहाँ
थावच्चापुत्र अनगार थे वहाँ आया, आकर थावच्चापुत्र अनगार
से इस प्रकार बोला—

भगवन् ! क्या तुम्हारे धर्म में यात्रा है ? यापनीय है ?
(भगवन् !), अव्यावाध है ? और (हे भगवन् !) प्रासुक
विहार है ?

तव शुक परिव्राजक के ऐसा कहने पर थावच्चापुत्र अनगार
ने उसको ऐसा कहा—शुक ! हमारे धर्म में यात्रा भी है । यापनीय
भी है, अव्यावाध भी हैं और प्रासुक विहार भी है ।

तत्पश्चात् शुक ने थावच्चापुत्र अनगार से इस प्रकार कहा—
भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?

(थावच्चापुत्र) हे शुक ! ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप, संयम
आदि योगों से जीवों की यतना करना हमारी यात्रा है ।

शुक—हे भगवन् ! यापनीय क्या है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! यापनीय दो प्रकार का कहा गया है,
यथा—इन्द्रिययापनीय, नोइन्द्रिययापनीय ।

शुक—इन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?

थावच्चापुत्र—शुक ! हमारी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणे-
न्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय विना किसी उपद्रव के वशी-
भूत रहती हैं, यही हमारा इन्द्रिययापनीय है ?

शुक—नो इन्द्रिययापनीय क्या है ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कपाय
क्षीण, उपशांत हो गये हैं, उदय में नहीं आ रहे हैं, यही हमारा
नो इन्द्रिययापनीय है ।

शुक—भगवन् ! अव्यावाध क्या है ?

हे शुक ! जो वात-पित्त-कफ और सन्निपात आदि विविध
रोग—(उपचार साध्य व्याधि) और आतंक—(प्राणघातक व्याधि)
उदय में नहीं आये, यही हमारा अव्यावाध है ।

शुक—भगवन् ! आपका प्रासुक विहार क्या है ?

सुया ! जण्णं आरामेसु उज्जाणेषु देउलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडग-विवज्जियासु वसहीसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरामि, से तं फासुयं विहारं ।

सरिसवयाणं भक्खाभक्खत्तविचारणा—

१८८. सरिसवया ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सरिसवया भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! सरिसवया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—मित्तसरिसवया य धण्णसरिसवया य । तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवया ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहजायया, सहवडिडयया, सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते धण्णसरिसवया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य । तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—फासुया य अफासुया य ।

अफासुया णं सुया ! समणाणं निग्गथाणं नो भक्खेया । तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य अणे-सणिज्जा य । तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाइया य अजाइया य । तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धा य । तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गथाणं अभक्खेया ।

एएणं अट्ठेणं सुया । एवं वुच्चइ—सरिसवया भक्खेया वि या वि ।

थावच्चापुत्र—हे शुक ! हम जो आराम में, उद्यान में, देवकुल में, गभा में, व्याऊ में, तथा स्त्री, पशु, सर्पुंमरु से रहित उपाश्रय में पडिहारी (वापस सोटाने योग्य) पीढ, फलघ, शैया, संस्तारक आदि ग्रहण करके विचारते हैं यही हमारा प्रासुक विहार है ।

सरिसवयां की भक्ष्याभक्ष्यत्त विचारणा—

(सरिसवया मित्र, सरिस-समान, धन्य-पत्नी, श्रमपत्नी, पशु विशेष, गोकुल, सरिसव-सरसों) ।

१८८. शुक—भगवन् ! आपके लिये सरिसवया भक्ष्य हैं या अभक्ष्य है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! सरिसवया हमारे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

शुक—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं कि सरिसवया भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ?

थावच्चापुत्र—शुक ! सरिसवया दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—मित्रसरिसवया और धान्य सरिसवया (सरसों) इनमें जो मित्र सरिसवया हैं, वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—साथ में जन्मे हुए, साथ में बड़े हुए और साथ में धूल में खेले हुए, यह तीनों प्रकार के मित्र सरिसवया श्रमण निग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

और उनमें जो धन्य सरिसवया (सरसों) हैं, वे दो प्रकार के हैं, वे इस प्रकार—शस्त्र परिणत और अशस्त्र परिणत । उनमें जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के हैं यथा—प्रासुक और अप्रासुक ।

हे शुक ! अप्रासुक श्रमण निग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं । उनमें जो प्रासुक हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—एषणीय और अनेषणीय, उनमें जो अनेषणीय हैं वे श्रमण निग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के हैं, यथा—याचित और अयाचित । उनमें जो अयाचित हैं, वे श्रमण निग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं ।

उनमें जो याचित (याचना किये हुए) हैं वे दो प्रकार के हैं, यथा—लब्ध (प्राप्त) और अलब्ध । जो अलब्ध हैं, वे श्रमण निग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं और जो लब्ध हैं, वे श्रमण निग्रन्थों के लिये भक्ष्य हैं ।

हे शुक ! इसी अभिप्राय से कहा है कि सरिसवया भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ।

कुलत्थाणं भवखाभक्खत्तवियारणा—

१८६. कुलत्था ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! कुलत्था दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिकुलत्था य धण्णकुलत्था य ।

तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-कुलवहुधा इय कुलमाउया इ य कुलधूया इ य । ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते धण्णकुलत्था ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य । तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-फामुया य अफामुया य । अफामुया णं सुया ! समणाणं निग्गंथाणं नो भक्खेया ।

तत्थ णं जे ते फामुया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य ।

तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा जाइया य अजाइया य । तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धाय । तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया ।

एएणं अट्ठेणं सुया ! एवं वुच्चइ—कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

मासाणं भवखाभक्खत्तवियारणा—

१८७. मासा ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सुया ! मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

सुया ! मासा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-कालमासा य, अत्थमासा य धण्णमासा य ।

कुलत्था की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा—

(कुलत्था, धान्य विशेष, कुलत्था-कुल में स्थित स्त्री) ।

१८९. शुक्—भगवन् ! कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

थावच्चापुत्र—हे शुक् ! कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

शुक्—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं कि कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

थावच्चापुत्र—शुक् ! कुलत्था के दो भेद हैं—स्त्री कुलत्था और धान्य कुलत्था ।

इनमें जो स्त्री कुलत्था है, वह तीन प्रकार की है, यथा—कुलवधू, कुलमाता, और कुलपुत्री । ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं ।

उनमें जो धान्य कुलत्था है, वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत । जो शस्त्र-परिणत है, वह श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

जो शस्त्र परिणत है, वह दो प्रकार का है, यथा—प्रासुक और अप्रासुक । इनमें से शुक् ! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

जो प्रासुक है, वह दो प्रकार का है, यथा—एषणीय और अनेषणीय ।

इनमें से जो अनेषणीय है, वह श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

और जो एषणीय है, वह दो प्रकार का है, यथा—याचित और अयाचित । उनमें से जो अयाचित है वह श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

उनमें जो याचित है, वह दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—लव्ध और अलव्ध । उनमें से जो अलव्ध है, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है और जो लव्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये भक्ष्य हैं ।

हे शुक् ! इसी अभिप्राय से यह कहा है—कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

मास की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा—

१९०. शुक्—भगवन् ! क्या मास भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?

थावच्चापुत्र-शुक् ! मास भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी ।

शुक्—भगवन् ! किस अभिप्राय से ऐसा कहते हैं—मास भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी ?

थावच्चापुत्र—शुक् ! मास तीन प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार—कालमास, अयंमास और धान्यमास ।

तत्थ णं जे ते कालमासा ते दुवालसविहा पणत्ता, तं जहा-
सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चेत्ते
वइसाहे जेदुमूले आसाढे । से णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा पणत्ता, तं जहा—हिरण्ण-
मासा य सुवण्णमासा य । ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते धण्णमासा ते दुविहा पणत्ता, तं जहा—
सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य । तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया
ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पणत्ता, तं जहा—
फासुया य अफासुया य । अफासुया णं सुया ! समणाणं निग्गंथाणं
नो भक्खेया ।

तत्थ णं जे ते फासुया ते दुविहा पणत्ता, तं जहा—एस-
णिज्जा य अणेसणिज्जा य तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते णं
समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया ।

तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पणत्ता, तं जहा—
जाइया य अजाइया य । तत्थ णं जे ते अजाइया ते
णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते जाइया ते
दुविहा पणत्ता, तं जहा—लद्धा य अलद्धा य । तत्थ णं जे ते
अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया । तत्थ णं जे ते
लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया ।

एणं अट्ठेणं सुया ! एवं वुच्चइ—मासा भक्खेया वि
अभक्खेया वि ।

एग-अक्खयाइपदवियारणा—

१६१. एगे भवं ? दुवे भवं ? अक्खए भवं ? अक्खए भवं ?
अवट्ठिए भवं ? अणेगभूय-भाव-भविए भवं ?

सुया ! एगे वि अहं, दुवे वि अहं, अक्खए वि अहं, अक्खए
वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं ।

से केणट्ठेणं भंते ! एगे वि अहं ? दुवे वि अहं ? अक्खए वि
अहं ? अक्खए वि अहं ? अवट्ठिए वि अहं ? अणेगभूय-भाव-भविए
वि अहं ?

सुया ! अक्खए एगे वि अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुवे वि अहं,
पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्यए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं,
उवओगट्ठयाए अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं ।

उनमें से कालमास चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा-श्रावण,
भाद्रपद, आशोज, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र,
वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ । वे श्रमणों के लिये अभक्ष्य हैं ।

जो अर्थमास (अर्थात् अर्थ रूप मासा) है, वे दो प्रकार के
कहे गये हैं, यथा-हिरण्य मासा और सुवर्णमासा । वे भी
श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं ।

धान्यमास (उत्तुद) दो प्रकार के है, यथा-शस्त्र परिणत और
अशस्त्र-परिणत । उनमें से अशस्त्र परिणत श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए
अभक्ष्य है ।

शस्त्रपरिणत दो प्रकार के कहे गये हैं यथा-प्रासुक और
अप्रासुक । शुक ! अप्रासुक श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये भक्ष्य नहीं है ।

उनमें से जो प्रासुक है, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस
प्रकार—एपणीय और अनेपणीय । उनमें से जो अनेपणीय है, वह
श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य है ।

जो एपणीय है वे दो प्रकार के हैं, यथा—याचित और अया-
चित । उनमें से जो अयाचित है, वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये
अभक्ष्य हैं । उनमें भी जो याचित है, वे दो प्रकार के कहे गये
हैं, वे इस प्रकार—लव्घ और अलव्घ । उनमें अलव्घ श्रमण
निर्ग्रन्थों के लिये अभक्ष्य हैं और जो लव्घ है वे श्रमण निर्ग्रन्थों
के लिये अभक्ष्य हैं ।

हे शुक ! इसी अभिप्राय से यह कहा जाता है कि मास
भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी हैं ।

एक अक्षयादि पद विचारणा—

१६१. शुक—क्या आप एक है ? आप दो हैं ? आप अक्षय है ?
आप अव्यय है ? आप अवस्थित है ? आप अनेकभूत,
भाव और भावी वाले हैं ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! मैं एक भी हूँ, दो भी हूँ, अक्षय भी
हूँ, अव्यय भी हूँ, मैं अवस्थित भी हूँ और मैं अनेक भूत-भाव
और भावी भी हूँ ।

शुक—भगवन् ! किस अभिप्राय से आप ऐसा कहते हैं कि मैं
एक भी हूँ ? मैं दो भी हूँ ? मैं अक्षय भी हूँ ? मैं अव्यय भी हूँ ? मैं
अवस्थित भी हूँ ? मैं अनेक भूत, भाव और भावी भी हूँ ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक भी हूँ,
ज्ञान और दर्शन को अपेक्षा से दो भी हूँ, प्रदेशों की अपेक्षा से मैं
अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ और उपयोग की
अपेक्षा से अनेकभूत (अतीतकालीन) भाव (वर्तमानकालीन)
और भावी (भविष्यकालीन) भी हूँ अर्थात् उपयोग के बदलते
रहने से अनित्य भी हूँ ।

सुयस्स परिव्वायगसहस्सेण सह पवज्जा—

१६२. एत्थ णं से सुए संबुद्धे थावच्चापुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! तुभं अंतिए केवलपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए ।”

तए णं थावच्चापुत्ते अणगारे सुयस्स चाउज्जामं धम्मं कहेइ । तए णं से सुए परिव्वायए थावच्चापुत्तस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! परिव्वायगसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे देवानुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइत्तए ।

अहासुहं देवानुप्पिया ! !

तए णं सुए परिव्वायए उत्तरपुरत्थिमे विसीभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडयं च कुंडियाओ य छत्तए य छत्तालए य अंकुसए य पवित्तए य केसरियाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता सयमेव सिंह उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता जेगेव थावच्चापुत्ते अणगारे तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थावच्चापुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थावच्चापुत्तस्स अणगारस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइए । सामाइयमाइयाइं चोइसपुव्वाइं अहिज्जइ ।

सुयस्स जणवयविहारो—

१६३. तए णं थावच्चापुत्ते सुयस्स अणगारसहस्सं सीसत्ताए वियरइ ।

तए णं थावच्चापुत्ते सोगंधियाओ नयरीओ नीलासोयाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

थावच्चापुत्तस्स परिनिव्वाणं—

१६४. तए णं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपरिवुडे जेगेव पुण्डरीए पव्वए तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुण्डरीयं पव्वयं सणियं-सणियं दुसहइ, दुसहित्ता मेघघणसन्निगासं देवसन्निवायं पुडविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता-जाव-संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए पाओवगमणं गुवत्ते ।

तए णं से थावच्चापुत्ते बहूणि वासाणि सामणपरियाणं पाजणित्ता, मासियाए संलेहणाए भत्तपाणं झूसित्ता, सद्धिं भत्ताइं

शुक परिव्राजक की सहस्र सहित प्रव्रज्या—

१६२. इस प्रकार थावच्चापुत्र के उत्तरों से प्रतिबोध को पाया हुआ शुक थावच्चापुत्र को वंदना-नमस्कार करता है और वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

‘भगवन् ! आप से केवली प्ररूपित धर्म श्रवण करने की इच्छा—अभिलाषा करता हूँ ।’

तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को चातुर्याम रूप धर्म कहा । उसके बाद थावच्चापुत्र से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर शुक परिव्राजक ने इस प्रकार कहा—भगवन् (मैं एक हजार परिव्राजकों के साथ आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।

‘देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो’—थावच्चापुत्र ने उत्तर दिया ।

तत्पश्चात् वह शुक परिव्राजक उत्तर पूर्व—ईशान, दिग्भाग में गया, वहाँ जाकर कुंडिका, छत्र, छन्नालय, अंकुश, पवित्री, केसरी और गेरूआ रंग से रंगे वस्त्र एकान्त में रखे, रखकर अपने हाथ से शिखा उखाड़ी, शिखा उखाड़कर जहाँ थावच्चापुत्र अनगार थे वहाँ आया, आकर थावच्चापुत्र अनगार को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके थावच्चापुत्र अनगार के पास मुंडित होकर दीक्षित हो गया । पश्चात् सामायिक से प्रारम्भ करके चौदह पूर्वों का अध्ययन किया ।

शुक का जनपद विहार—

(थावच्चापुत्र का भी जनपद विहार) ।

१६३. तत्पश्चात् थावच्चापुत्र ने शुक को एक हजार अनगार शिष्य के रूप में प्रदान किये ।

उसके बाद थावच्चापुत्र अनगार सोगंधिकानगरी और नीला-शोक उद्यान से निकले, निकलकर बाह्य जनपद में विचरण करने लगे ।

थावच्चापुत्र का परिनिर्वाण—

१६४. उसके बाद वह थावच्चापुत्र एक हजार साधुओं के साथ जहाँ पुंडरीक (शत्रु जय) पर्वत था, वहाँ आये, आकर धीरे-धीरे पुंडरीक पर्वत पर आरोहण किया, आरोहण करके मेघघटा के समान श्याम और जहाँ देवों का आगमन होता रहता है, ऐसे पृथ्वीशिला पट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके यावत्-संलेखना द्वारा कर्मक्षय करके आत्मा में रमण करते हुए अनशन द्वारा भक्तपातों का त्यागकर पादोपगमन संयारा ग्रहण किया ।

तत्पश्चात् वह थावच्चापुत्र बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय को पालकर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मरमण करते हुए

अणसणाए छेदित्ता-जाव-केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सच्चुक्खप्पहीणे ।

सुयस्स सेलगपुरागमणं सेलगस्स य अभिनिवखमणा-भिलासो—

१६५. तए णं से सुए अणया कयाइ जेणेव सेलगपुरे नगरे जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । परिसा निग्गया । सेलओ निग्गच्छइ ।

तए णं से सेलए सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे सुयं तिव्वुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-नवरं देवाणुप्पिया ! पंथगपामोक्खाइं पंच मंति-सयाइं आपुच्छामि, मंडुयं च कुमारं रज्जे ठावेमि । तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

अहामुहं देवाणुप्पिया !

तए णं से सेलए राया सेलगपुरं नगरं अणुप्पविसइ, अणुप्प-वित्तित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे सण्णिसण्णे ।

१६६. तए णं से सेलए राया पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए सद्दावेइ सद्दावेत्ता एय वयासी—“एवं पलु देवाणुप्पिया ! मए सुयस्स अंतिए धम्मो निसंते, से त्रिय मे धम्मो इच्छिए पडिच्छिए अभि-दइए । तए णं अहं देवाणुप्पिया ! संसार-भउव्विग्गे भौए जम्मण-जर— मरणार्णं मुदस्स अणगारस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि । तुम्हे णं देवाणुप्पिया ! किं करेह ? किं वरसह ? किं मे हियइच्छिए सामत्ते ?

तए णं से पंथगपामोक्खे पंच मंतिसया सेलगं रायं एवं वयासी—“अइ णं तुम्ह देवानुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयइ, अणुप्पं णं देवानुप्पिया ! के अणे आत्तरे वा आलंघे वा ? अणुप्पं किं मे देवानुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयामो ।

साठ भक्तों को अनशन द्वारा छोड़ करके—यावत्-सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान दर्शन को उत्पन्न करके तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिवृत्त, सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

शुक का शैलकपुर-आगमन और शैलक का अभिनिष्क्रमणाभिलाष—

१६५. तत्पश्चात् वह शुक अनगार किसी समय जहाँ शैलकपुर नगर था, जहाँ सुभूमि भाग उद्यान था, वहाँ आये, आकर यथा प्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे । उन्हें वंदना करने के लिये परिपद निकली; शैलक राजा भी निकला ।

उसके बाद वह शैलक राजा शुक अनगार से धर्म श्रवण कर और अवधारण करके हर्षित एवं संतुष्ट हो शुक की तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—भगवन् ! मैं निग्रंथ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ—यावत्-विशेष यह है कि हे देवानुप्रिय ! मैं पंथक आदि पाँचों मंत्रियों से पूछ लूँ—अनुमति ले लूँ, मंडुककुमार को राज्य पर स्थापित कर दूँ अर्थात् उसे राज्यशासन सौंप दूँ उसके बाद आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर, गृहवास त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा ।

जैसे सुख उपजे, वैसा करो—शुक अनगार ने कहा ।

तत्पश्चात् उस शैलक राजा ने शैलकपुर नगर में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ अपना भवन-घर था, जहाँ बाह्य उपस्थान शाला (राजसभा) थी, वहाँ आया और आकर सिंहासन पर बैठा ।

१६६. तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रियो ! मैंने शुक अनगार से धर्म श्रवण किया है, उस धर्म की मैंने इच्छा की है, विशेष इच्छा की है, वह धर्म मुझे रुचा है, इसलिये हे देवानुप्रियो ! मैं संसार के भय से उद्विग्न होकर जन्म-जरा मरण से भयभीत होकर शुक अनगार के पास मुण्डित होकर, गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा । अतः हे देवानुप्रियो ! अब तुम क्या करोगे ? कहाँ रहोगे, क्या उद्यम करोगे ? तुम्हारी हार्दिक इच्छा और विचार क्या है ?

तत्र उन पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों ने शैलक राजा से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! यदि आप संसार के भय से उद्विग्न होकर—यावत्-प्रव्रजित होना चाहते हैं तो हे देवानुप्रिय ! हमारा दूसरा कौन आधार है ? हमारा अवलंबन कौन है ? अतएव हे देवानुप्रिय ! हम भी संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे ।

जहा णं देवानुप्पिया ! अम्हं बहसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुवेसु य मंतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खु, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए, तथा णं पव्वइयाण वि समणाणं बहसु कज्जेसु य-जाव-चक्खुभूए ।”

तए णं से सेलगे पंथगपामोक्खे पंच मंतिसए एवं वयासी—
“जइ णं देवानुप्पिया ! तुढ्भे संसारभउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, तं गच्छह णं देवानुप्पिया ! सएसु-सएसु कुडुवेसु जेडुपुत्ते कुडुवमज्जे ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ डुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह ।” ते वि तहेव पाउब्भवति ।

सेलगपुत्तमंडुयस्स रायाभिसेयो—

१६७. तए णं से सेलए राया पंच मंतिसयाइं पाउब्भवमाणाइं पासइ, पासित्ता हट्टुट्टे कोडुंविपपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्टवेह ।

तए णं ते कोडुंविपपुरिसा मंडुयस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्टवेति ।

तए णं से सेलए राया बहहि गणनायगेहि य-जाव-संधिवालेहि य सद्धि संपरिवुडे मंडुयं कुमारं-जाव-रायाभिसेएणं अभिसिचइ ।

तए णं से मंडुए राया जाए—महयाहिमवन्त-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

सेलयस्स पव्वज्जा—

१६८. तए णं से सेलए मंडुयं रायं आपुच्छइ ।

तए णं मंडुए राया कोडुंविपपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! सेलगपुरं नयरं आसिय-सित्त-सुइय-सम्मज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्च-प्पिणह ।”

तए णं से मंडुए दोच्चं पि कोडुंविपपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

हे देवानुप्रिय ! जैसे हमें यहाँ-गृहस्थावस्था में—बहुत से कार्यों में, कारणों में, कौटुम्बिक क्रिया कलापों में, मंत्रणाओं सलाह मशविरा में, गुप्त बातों में रहस्यों में, और निश्चयों में सम्मति लेने और देने में मेढी के समान-स्तम्भवत् आधार, अवलंबन में नेत्र के समान, अधारभूत, प्रमाणभूत आधार सदृश, अवलंबन सदृश, चक्षुभूत-मार्ग दर्शक हैं, उसी प्रकार प्रव्रजित होकर भी आपने हमारे बहुत से कार्यों में-यावत्-मार्ग दर्शक होंगे ।

तत्पश्चात् शैलक राजा ने पंथक आदि पाँच सौ मंत्रियों से इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर-यावत्-दीक्षा ग्रहण करना चाहते हो तो हे देवानुप्रियो ! जाओ और अपने-अपने कुटुम्बों का भार ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे समीप प्रगट होओ अर्थात् आओ । वे भी तदनुसार कार्य करके शैलक राजा के पास आते हैं ।

शैलक पुत्र मंडुक का राज्याभिषेक—

१६७. तत्पश्चात् शैलक राजा पाँच सौ मंत्रियों को अपने पास आया हुआ देखता है, देखकर हृष्ट—तुष्ट हो कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मंडुक कुमार के महान अर्थ वाले, महामूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करो ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष मंडुक कुमार के राज्याभिषेक के लिये महान अर्थ वाले, मूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल सामग्री तैयार कराके उपरिथत करते हैं । उसके बाद वह शैलक राजा बहुत से गणनायकों-यावत्-संधिवालकों से परिवृत होकर मंडुककुमार को राज्याभिषेक से अभिसिंचित करता है ।

तत्पश्चात् वह मंडुक महान हिमवन्त पर्वत के समान, पृथ्वी के इन्द्र महान मलयाचल मन्दर पर्वत के समान राजा हो गया-यावत्-राज्य पर शासन करते हुए विचरने लगा ।

शैलक की प्रव्रज्या—

१६८. तत्पश्चात् शैलक ने मंडुक राजा से दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी ।

तब मंडुक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शैलकपुर नगर को सींचकर, स्वच्छ कर लोप पोत कर-यावत्-उत्तम सुगंधित द्रव्यों की सुगंध से गंध की बट्टी के समान करो और करवाओ और ऐसा करके, कराके मेरी यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो ।

तत्पश्चात् मंडुकराजा ने पुनः दुवारा कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिवा ! सेलगस्स रण्णो महत्थं महग्घं
महरिहं विउलं निक्खमणाभिसेयं करेह । जहेव मेहस्स तहेव
नवरं—पउमावती देवी अगकेसे पडिच्छइ, सव्वे वि पडिगहं
गहाय सीयं दुहंति ।

अवसेसं तहेव-जाव—

तए णं से सेलगे पंचहिं मंत्तिसएहिं सद्धिं सयमेव पंचमुट्ठियं
लोकं करेइ, करेत्ता जेणामेव सुए तेणामेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता सुयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता
वंदइ नमंसइ-जाव-पव्वइए ।

तए णं से सेलए अणगारे जाए-जाव-कम्मनिग्घायणट्ठाए एवं
च णं विहरइ ।

तए णं से सेलए सुयस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-
माइयाइ एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ, अहिज्जित्ता वहीहिं चउत्थ-
छट्ठुम-दसम-डुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ।

सुयस्स पुण्डरीयपव्वए परिनिव्वानं—

१६६. तए णं से सुए सेलगस्स अणगारस्स ताइं पंथगपामो-
क्खाइं पंच अणगारसयाइं सीसत्ताए वियरइ ।

तए णं से सुए अणया कयाइ सेलगपुराओ नगराओ सुभू-
मिभागाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया
जणवयविहारं विहरइ ।

तए णं से सुए अणगारे अणया कयाइ तेणं अणगारसहस्सेणं
सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं द्दइज्जमाणे
सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव पुण्डरीयपव्वए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

सेलगस्स रोगातंका—

२००. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहिं य पंतेहिं
य तुच्छेहिं य लूहेहिं य अरसेहिं य विरसेहिं य सीएहिं य उण्हेहिं
य कालाइक्कंतेहिं य पमाणाइक्कंतेहिं य निच्चं पाणभोयणेहिं य
पयइ-सुकुमालस्स सुहोच्चियस्स सरोरगंसि वेयणा पाउव्वभूया
उज्जला-जाव-डुरहियासा । कडु-दाह-पित्तज्जर-परिगयसरीरे
यावि विहरइ ।

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शैलक राजा के महान् अर्थ वाले,
महामुल्यवान् और महान् पुरुषों के योग्य विद्वान् अभिनिर्द्दमण
अभिषेक की सामग्री तैयार कर उपस्थित करो । त्रिन प्रकार
भेदकुमार के अध्ययन में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना
चाहिये, किन्तु विशेषता यह है कि पद्मावती देवी शैलक राजा
के अग्रकेश ग्रहण करती है, स्वयंभू की प्रतिवद्-गान आदि लेकर
शिविका पर आरूढ़ हुए ।

शेष वर्णन पूर्ववत् समानता चामिं यावत्—

तत्पश्चात् शैलक पाच सौ मंदिरों के साथ अपने आप पंच-
मुष्टि लोच करते हैं, लाच करके जहाँ शुक अनगार हैं, वहीं
आते हैं, आकर शुक अनगार की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा
करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करते हैं—यावत्-प्रव्रजित
हुए ।

तत्पश्चात् वह शैलक अनगार हो गये—यावत्-कर्मों को
विनाश करने के लिये तत्पर हो विचरण करते हैं ।

उसके बाद वह शैलक शुक के तथाकथन स्वविरों के पास
सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन करते हैं,
अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, पष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास,
अर्धमास की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने
लगे ।

शुक का पुण्डरीक पर्वत पर परिनिव्वानं—

१६६. तत्पश्चात् शुक अनगार ने शैलक अनगार को पंथक प्रभृति
पाँच सौ अनगार शिष्य रूप में प्रदान किये ।

उसके बाद वह शुक अनगार किसी एक दिन शैलकपुर
नगर से, सुभूमिभाग उद्यान से निकले, निकलकर बाहर जनपद
विहार से विचरने लगे ।

तत्पश्चात् वह शुक अनगार किसी समय उन एक हजार
अनगारों के साथ अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन
करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ पुण्डरीक पर्वत
था, वहाँ आये—यावत्-सर्व दुःखों का क्षय कर मुक्त हुए ।

शैलक को रोग-आतंका—

२००. तत्पश्चात् नित्य (प्रतिदिन) अन्त (चना आदि) प्रान्त
(बचा-खुचा तुच्छ (अल्प) रूक्ष, अरस विरस, शीत, उष्ण, कालाति-
क्रांत (भूख का समय बीत जाने पर प्राप्त) प्रमाणातिक्रांत (कम
ज्यादा) प्रमाण में भोजन-पान मिलने से प्रकृति से सुकुमाल और
सुख भोग के योग्य शैलक राजर्षि के शरीर में वेदना उत्पन्न हो
गई जो उत्कट-यावत्-असह्य थी । उनका शरीर खुजली और
दाह उत्पन्न करने वाले पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया ।

तए णं से सेलए तेणं रोगायंकेणं सुक्के भुक्खे जाए यावि होत्था ।

तए णं से सेलए अण्णया कयाइ पुब्बाणुपुंवि चरमाणे-जाव-जेणेव सुभूमिभागे-जाव-विहरइ । परिसा निग्गया । मंडुओ वि निग्गओ सेलगं अण्णारं वंदइ नमंसइ पज्जुवासइ ।

सेलग स्स मंडुयकया तिग्गिच्छा—

२०१. तए णं से मंडुए राया सेलगस्स अण्णारस्स सरोरगं सुक्कं भुक्खं सव्वावाहं सरोरगं पासइ, पासित्ता एव वयासी—

“अहण्णं भंते ! तुब्भं अहापवत्तेहि तेग्गिच्छिएहि अहापवत्तेणं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेग्गिच्छं आउट्टवेमि । तुब्भे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह, फासु-एसणिज्जेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओग्गिहत्ताणं विहरह ।”

तए णं से सेलए अण्णारे मंडुयस्स रण्णे एयमट्ठं तह त्ति पडिमुणइ ।

तए णं से मंडुए सेलगं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव विसि पाउब्भए तामेव विसि पडिगए ।

तए णं से सेलए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते स-मंड-मत्तोवगरण-मायाए पंथगपामोक्खेहि पंचहि अण्णारसएहि सट्ठि सेलगपुरमणु-प्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मंडुयस्स रण्णे जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फासु-एसणिज्जेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं ओग्गिहत्ताणं विहरइ ।

तए णं से मंडुए तेग्गिच्छिए सदावेइ, सदावेत्ता एव वयासी—

“तुब्भे णं देवाणुप्पियं ! सेलगस्स फासु-एसणिज्जेण ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं तेग्गिच्छं आउट्टेह ।”

तए णं ते तेग्गिच्छिया मंडुएणं रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठा सेलगस्स अहापवत्तेहि ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहि तेग्गिच्छं आउट्टेति, मज्जपाणयं च ते उवदिसंति ।

तए णं तस्स सेलगस्स अहापवत्तेहि ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहि मज्जपाणएण य से रोगायंके उवसंते यावि होत्था—हट्ठे मल्ल-सरोरे जाए ववगयरोगायंके ।

तव वह शैलक उस रोग आतंक से शुष्क वुभुक्षित हो गये अर्थात् उनका शरीर सूख गया और भूख से पीड़ित रहने लगे ।

तत्पश्चात् शैलक राजपि किसी समय अनुक्रम से विचरते हुए-यावत्-जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था-यावत्-विचरण करने लगे । उनकी वंदना के लिये पर्पदा निकली । मंडुक भी निकला और शैलक अनगार को वंदना-नमस्कार और उपासना करता है ।

शैलक की मंडुक—कृत चिकित्सा—

२०१. तव मंडुक राजा ने शैलक अनगार का शरीर शुष्क, निस्तेज, सब प्रकार की व्याधि, पीड़ा वाला और रोगयुक्त देखा, देखकर उसने इस प्रकार कहा—

‘भगवन् ! मैं आपकी साधु के योग्य चिकित्सकों से, साधु के योग्य औषध, भेषज और भोजन पान (पथ्य) द्वारा चिकित्सा कराऊँगा, अतएव हे भगवन् ! आप मेरी यानशाला में पदार्पण करें और प्रासुक एवं एषणीय पीठ, फलक, शैया, संस्तारक ग्रहण करके विचरण कीजिये ।’

तत्पश्चात् शैलक अनगार ने मंडुक राजा के इस आशय को ठीक है ऐसा, कहकर स्वीकार किया ।

उसके बाद मंडुक ने शैलक को वंदना, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, उसी ओर लौट गया ।

तत्पश्चात् वह शैलक राजपि कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रकाशमान प्रभात रूप होने पर-यावत्-सहस्ररथिम दिवाकर के जाज्वल्यमान तेज के साथ उदित होने पर भंडमात्र (पात्र) उपकरण लेकर पंथक आदि पाँच सौ अनगारों के साथ शैलकपुर में प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट हो करके जहाँ मंडुक राजा की यानशाला थी, वहाँ आये, आकर प्रासुक एषणीय, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक का ग्रहण करके विचरने लगा ।

तत्पश्चात् मंडुक राजा ने चिकित्सकों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! आप शैलक राजपि की प्रासुक, एषणीय, औषध भेषज, आहार-पानी से चिकित्सा करो ।’

तत्पश्चात् वे चिकित्सक मंडुक राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होकर यथा-प्रवृत्त (साधु के योग्य) औषध, भेषज, भोजन पान से चिकित्सा करते हैं और मद्यपान करने के लिये कहते हैं ।

तत्पश्चात् यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, भक्तपान और मद्यपान से शैलक राजपि का रोगातंक शांत हो गया, हृष्ट-तुष्ट-चापत्-वलवान शरीर वाले हो गये, रोगातंक पूरी तरह दूर हो गये ।

सेलगस्स पमत्तविहारे—

२०२. तए णं से सेलए तंसि रोगायं कंसि उवसंतंसि समाणंसि तंसि विपुले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए गडिए गिद्धे अज्झोववन्ने ओसन्ने ओसन्नविहारी, पासत्थे पासत्थ-विहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्त-विहारी उउबद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ते यावि विहरइ, नो संचाएइ फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा संथारयं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरित्तए ।

पंथगं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ता सेलगसिस्साणं विहारी—

२०३. तए णं तेसि पंथगवज्जाणं पंचंहुं अणगारसयाणं अणया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणाणं अयभेया-रूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु सेलए रायरिसी चइत्ता रज्जं-जाव-पव्वइए विउले असण-पाण-खाइम-साइमे मज्जपाणए य मुच्छिए नो संचाएइ फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता मंडुयं च रायं आपुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरित्तए । नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! समणाणं निग्गयाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउ-बद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए पमत्ताणं विहरित्तए । तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अहं कल्ल सेलगं रायरिसि आपु-च्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता सेलगस्स अणगारस्स पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ता वहिया अब्भुज्जेणं जणवयविहारेणं विहरित्तए—एवं संपेहेत्ति, संपेहेत्ता कल्लं जेणेव सेलए रायरिसी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सेलयं रायरिसि आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ति, पच्चप्पिणित्ता पंथयं अणगारं वेयावच्चकरं ठावेत्ति, ठावेत्ता वहिया जणवयविहारं विहरति ।

मज्जपमत्तस्स सेलगस्स पंथगेणं चाउम्मासिय-खामणा—

२०४. तए णं से पंथए सेलगस्स सेज्जा-संथारय-उच्चार-पासवण-खेल्ल-सिघाणमत्त-ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणएणं अगिलाए विणएणं करेइ ।

शैलक का प्रमत्त विहार—

२०२. तत्पश्चात् शैलक उक्त रोगांतर के उपशांत हो जाने पर और उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम और मद्यपान से मुच्छित, मत्त, गृद्ध, अत्यन्त आसक्त, अवगन्न-आलसी, अवसन्न विहारी, पार्श्वस्थ (संयम साधना को एक किनारे रख देने वाले) पार्श्वस्थ विहारी कुशील (चारि-आचार के विराधक) कुशील विहारी, प्रमत्त, प्रमत्त विहारी, संसक्त, मत्त विहारी हो गये, शेषकाल (चातुर्मास के सिवाय) में शैया-संस्तारक के लिये पीठ, फलक रखने वाले प्रमादी हो गये, प्राणुक और एपणीय पीठ, फलक आदि को वापस देकर और मंडुक राजा से आज्ञा-अनुमति लेकर बाहर जनपद विहार करने में असमर्थ हो गये ।

पंथक अनगार को वैयावृत्यकारी स्थापित करके शैलक शिष्यों का विहार—

२०३ तत्पश्चात् पंथक को छोड़कर उन पांच सौ अनगारों को किसी समय एकत्रित होकर मध्यरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्त-उत्पन्न हुआ कि शैलकराजपि राज्य का त्याग कर-यावत्त-प्रव्रजित हुए थे किन्तु विपुल अशन, पान, स्वादिम, खादिम और मद्यपान में मुच्छित हो जाने से प्रासुक, एपणीय, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक को वापस लौटाकर और मंडुक राजा की अनुमति लेकर बाहर जनपद विहार से विचरण करने में समर्थ नहीं है । अतएव हे देवानु-प्रियो ! श्रमण निग्रंथों को अवसन्न पार्श्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संसक्त, और शेषकाल में भी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक रखने वाले प्रमादी के पास रहना नहीं कल्पता है । इसलिये देवानु-प्रियो ! हमारे लिये यही श्रेयस्कर हैं कि हम शैलक राजपि से आज्ञा लेकर और पडिहारी पीठ, फलक, शैया संस्तारक वापस सौंपकर और पंथक अनगार को शैलक अनगार का वैयावृत्यकारी स्थापित कर अर्थात् सेवा में नियुक्त करके बाहर जनपद में अभ्युदय-उद्यम पूर्वक विचरण करें-इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल (दूसरे दिन प्रातः) जहाँ शैलक राजपि थे, वहाँ आये, आकर शैलक राजपि की आज्ञा लेकर प्रतिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक वापस लौटाकर पंथक अनगार को वैया-वृत्यकारी नियुक्त किया, नियुक्त करके बाहरी जनपद विहार से विचरण करने लगे ।

महाप्रमत्त शैलक की पंथक द्वारा चातुर्मासिक क्षमापना—

२०४. तत्पश्चात् वह पंथक अनगार शैलक की शैया, संस्तारक, उच्चार, प्रस्रवण, खेल (श्लेषम) संघाण (नासिका मल) के पात्र, औषध, भेषज, आहार पानी आदि से बिना ग्लानि के विनयपूर्वक वैयावृत्य करते हैं ।

तए णं से सेलए अण्णया कयाइ कत्तिय-चाउम्मासियंसि विउलं असणं-पाण-खाइम-साइमं आहारमाहारिए सुवहुं च मज्ज-पाणयं पीए पच्चावरह्णकालसमयंसि सुहप्पमुत्ते ।

तए णं से पंथए कत्तिय-चाउम्मासियंसि कयकाउस्सग्गे देव-सियं पडिक्कमणं पडिक्कंते, चाउम्मासियं पडिक्कमिउकामे सेलगं रायंसि खामणट्टयाए सीसेणं पाएसु संघट्टेइ ।

सेलगस्स कोवो पंथएणं खामणा य—

२०५. तए णं से सेलए पंथएणं सीसेणं पाएसु संघट्टिए समाणे आसुस्सुत्ते रुट्टे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमागे उट्टेइ, उट्टेत्ता एवं वयासी—“से केस णं भो ! एस अपत्थियपत्थिए, दुरन्त-पंत-लक्खणे हीणपुण्णचाउट्टिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं ममं सुहप्पमुत्तं पाएसु संघट्टेइ ?”

तए णं से पंथए सेलएणं एवं वुत्ते समाणे भीए तत्थे तसिए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

“अहं णं भंते ! पंथए कयकाउस्सग्गे देवसियं पडिक्कमणं पडिक्कंते चाउम्मासियं पडिक्कंते चाउम्मासियं खामेमाणे देवाणु-प्पियं वंदमाणे सीसेणं पाएसु संघट्टेमि । तं खामेमि णं तुव्वे देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरहंति णं देवाणु-प्पिया ! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए” ति कट्टु सेलयं अणगारं एयमट्टं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ ।

सेलगस्स पुणो अब्भुज्जयविहारो—

२०६. तए णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स पंथएणं एवं वुत्तस्स अयमेयाख्वे अज्जत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-ज्जित्था—

एवं खलु अहं चइत्ता रज्जं-जाव-पव्वइए ओसन्ने ओसन्न-विहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुसीलविहारी पमत्ते पमत्तविहारी संसत्ते संसत्तविहारी उउवट्ट-पीड-फलग-सेज्जा-संधारए पमत्ते यावि दिहरामि । तं नो खलु कप्पइ समगाणं निग्गयाणं ओसन्नाणं पासत्थाणं कुसीलाणं पमत्ताणं संसत्ताणं उउवट्ट-पीड-फलग-सेज्जा-संधारए पमत्ताणं विहरित्तए ।

तत्पश्चात् वह शैलक किसी समय कार्तिक चौमासी के दिन विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन का आहार करके और अत्यधिक मद्यपान करके सांयकाल के समय सुखपूर्वक-आराम से सो रहे थे ।

उस समय पंथक मुनि ने कार्तिक की चौमासी के दिन कायोत्सर्ग करके, दैवसिक प्रतिक्रमण करके चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने की इच्छा से शैलक राजपि को खमाने के लिये अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श किया ।

शैलक का कोप और पंथक की क्षमापना—

२०५. तत्पश्चात् पंथक शिष्य के द्वारा मस्तक से चरणों का स्पर्श करने पर शैलक राजपि क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित, चंड और दाँतों को मिसमिसाते हुए उठे और उठकर इस प्रकार बोले—“अरे यह कौन है अप्रार्थित (मृत्यु) की इच्छा रखने वाला, दुरन्त, पंत लक्षण वाला, निर्भागी, चातुर्दशिक, श्री, ही, धृति, कीर्ति से रहित, जिसने सुखपूर्वक सोते समय मेरे पैरों का स्पर्श किया है ?”

तब पंथक अनगार शैलक के इस कथन को सुनकर भयभीत, त्रस्त और खेदखिन्न हो दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर घुमाकर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले—

“भगवन् ! मैं पंथक हूँ, कायोत्सर्ग पूर्वक दैवसिक प्रतिक्रमण करने के बाद चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करके चातुर्मासिक क्षमापना के लिये आप देवानुप्रिय को वंदना करते समय मैंने अपने मस्तक से आपके चरणों का स्पर्श किया है । सो देवानुप्रिय ! आप क्षमा कीजिये, देवानुप्रिय ! मेरा अपराध क्षमा करें, देवानुप्रिय ! आप क्षमा करने-देने के योग्य हैं, पुनः ऐसा नहीं कहूँगा’ इस प्रकार कहकर शैलक अनगार को सम्यक् रूप से दिनपूर्वक इस अर्थ (अपराध) के लिये पुनः पुनः खमाने लगे ।

शैलक का पुनः अभ्युद्युत विहार—

२०६. तत्पश्चात् पंथक के द्वारा इस प्रकार कहने पर शैलक राजपि को इस प्रकार का यह अध्यवसाय, चिन्तन, अभिलाष, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

मैं राज्य आदि का त्याग कर-यावत्-प्रव्रजित हुआ था किन्तु अवसन्न (आलसी) अवसन्नविहारी, पार्वस्थ, पार्वस्थविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, प्रमत्त, प्रमत्तविहारी, संगत्त और संसत्तविहारी होकर रोप काल में भी पीठ, फलक, रोपा, सस्तारक में प्रमादी बनकर विचर रहा हूँ-रहा रहा हूँ । किन्तु श्रमण निग्रंथों को अवसन्न-पार्वस्थ, कुशील, प्रमत्त, संगत्त और शेषकाल में पीठ, फलक, रोपा, सस्तारक में प्रमादी बनकर विचरना नहीं कल्पता है ।

तं सेयं खलु मे कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-
फलग-सेज्जा-संधारणं पच्चप्पिणित्ता पंधाएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया
अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरत्तिए—एवं संपेहेइ, स पेहेत्ता
कल्लं मंडुयं रायं आपुच्छित्ता पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-
संधारणं पच्चप्पिणित्ता पंधाएणं अणगारेणं सद्धिं बहिया अब्भु-
ज्जएणं जणवय-विहारेणं विहरइ ।

सेलगकहोवसंहारेणोवएसो—

२०७. एवामेव समणाउत्तो ! जे निग्गंथे वा निग्गथी वा ओसन्ने
ओत्तन्नविहारी, पासत्थे पासत्थविहारी कुसीले कुशीलविहारी पमत्ते
पमत्त-विहारी संसत्ते संसत्तविहारी उवउद्ध-पीढ-फलग-सेज्जा-संधारए
पमत्ते विहरइ, ते णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं
साज्जाणं बहूणं सावियाणं य हीलणिज्जे निदणिज्जे खिसणिज्जे
गरहणिज्जे परिगवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि
दंडणाणि य अणादियं च णं अणवयगं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-
कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ ।

सेलगसमोवे सेलगसिस्साणं पुणो आगमणं—

२०८. तए णं ते पंधकवज्जा पंध अणगारसया इमीसे कहाए लद्धड्डा
समाणा अणमण्यं सहावेत्ति, सहावेत्ता एवं वयासी—

‘एवं एलु देवानुप्पिया ! सेलए रायरिसी पंधएणं अणगारेणं
सद्धिं बहिया अब्भुज्जएणं जणवयविहारेणं विहरइ । तं सेयं खलु
देवानुप्पिया ! अन्हं सेलगं रायरिसि उवसंपज्जित्ताणं विहरत्तिए’,
—एवं संपेहेत्ति, संपेहेत्ता सेलगं रायरिसि उवसंपज्जित्ताणं विहरंति ।

पुण्डरीकपर्वतं नव्वेण सेलगार्द्धणं निव्वणं—

२०९. तए णं सेलए रायरिसी पंधमपामोसया य पंध अणगारसया
यपि तत्तपि सामगपरिमाणं पाउगित्ता । जेपेव पुण्डरीए पव्वए
सेलए उवसंपज्जित्ता, उवसंपज्जिता पुण्डरीकपव्वयं सणियं-सणियं
इहएणं इहएणं मेघमणसणित्तासं देवसाम्भवायं पुउवित्तितापट्टयं
पुउवित्ति । अट्टिपिट्ठा-वाय-संविहारा-भूतणा-भूसिया भत्तपाण-
पुउवित्ति । अट्टिपिट्ठा-वाय-संविहारा-भूतणा-भूसिया भत्तपाण-

इसलिये कल मंडुक राजा की अनुमति लेकर प्रतिहारी पीठ,
फलक, शैया, संस्तारक वापस सौंपकर पंधक अनगार के साथ
वाहर अभ्युदय पूर्वक (उग्रता के साथ) जनपद विहार से विचरता
ही मेरे लिये श्रेयस्कर हैं— इस प्रकार का विचार किया, विचार
करके मंडुक राजा से अनुमति लेकर पडिहारी पीठ, फलक, शैया,
संस्तारक वापस देकर पंधक अनगार के साथ वाहर अभ्युद्युत
(उग्र) जनपद विहार से विचरते हैं ।

शैलक कथोपसंहार के द्वारा उपदेश—

२०७. हे आयुष्मन् श्रमणो ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी
अवसन्न, अवसन्नविहारी, पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थविहारी, कुशील,
कुशीलविहारी, प्रमत्त, प्रमत्तविहारी, संसक्त, संसक्तविहारी
होकर तथा शेष काल में भी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक में
प्रमादी होकर विचरण करता है, वह इसीलोक में बहुत से
श्रमणों, बहुत सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी
श्राविकाओं की हीलना, निन्दा, खिसा, गर्हा, परिभव का पात्र
होता है और परलोक में भी बहुत से दुःखों को प्राप्त करता है
तथा अनादि अनन्त, विस्तृत चातुर्गति रूप संसार वन में
वारंवार परिभ्रमण करता रहता है—भटकता रहता है—

शैलक के समीप शैलक-शिष्यों का पुनः आगमन—

२०८. तत्पश्चात् पंधक को छोड़कर पांच सौ अनगारों ने इस
कथा (समाचार) को जानकर एक दूसरे को बुलाया और बुला-
कर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शैलकराजपि पंधक अनगार के साथ
वाहर अभ्युद्युत जनपद विहार से विचर रहे हैं । अतएव हे
देवानुप्रियो ! शैलक राजपि के समीप जाकर उनके साथ विचरण
करना हमारे लिये श्रेयस्कर है’—इस प्रकार का इन्होंने विचार
किया, विचार करके शैलक राजपि के निकट जाकर उनके साथ
विचरण करने लगे ।

पुण्डरीक पर्वत पर शैलक आदि सभी का निवर्ण—

२०९. तत्पश्चात् शैलक राजपि और पंधक आदि पांच सौ अन-
गार बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, एकदा जहाँ
पुण्डरीक पर्वत था, वहाँ आये आकर धीरे-धीरे पुण्डरीक पर्वत
पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर सघन मेघ के समान काले और
जो देवों का वास स्थान है अथवा जहाँ देवों का आगमन होता
है ऐसे पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके-
यावत्-संनिधना द्वारा आत्मा को निष्कर्मा करके एवं आत्मरमण
करते हुए आहार-मानो का त्याग करके पादोपगमन अन्यान
धारण कर लिया ।

तए णं से सेलए रायरिसी पंथगपामोक्खा य पंच अणगारसया व्हणि वासाणि सामणपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झसिता, सद्धि भत्ताइं अणसणाए छेदिता-जाव-केवलवर-नाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा बुद्धा मुत्ता अंतगडा परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा ।

एवामेव समणाउतो ! जो निग्गंथो वा निग्गंथी अब्भुज्जएणं जणवय-विहारेणं विहरइ, से णं इहलोए चेत्तं व्हणं समणाणं व्हणं समणीणं व्हणं सावगाणं व्हणं सात्रियाणं य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ ।

परलोए वि य णं नो व्हणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेय-णाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पाय-णाणि य उल्लवणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ ।

वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

२१०. सिद्धिलिय-संजम-कज्जा वि होइउं उज्जमंति जइ-पच्छा ।

संचेगाओ ते सेलाओ व्व आराहया हीति ।१।

—गाया० सु० १ अ० ५

तत्पश्चात् वह शैलक राजपि और पंथक आदि पांच सौ अनगर बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय पालकर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मरमण करते हुए और आत्मा को शुद्ध करते हुए साठ भक्तों का अनशन द्वारा त्याग करके अर्थात् एक मास का अनशन तप करके-यावत्-सर्वश्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन को उत्पन्न करके, तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकर, परिनिवृत और सर्वदुःखों का निःशेष रूप से क्षय करने वाले हुए अर्थात् सिद्धावस्था प्राप्त की ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभ्युद्यत होकर (उद्यम सहित, यतना पूर्वक) जनपद विहार से विचरते हैं, वे इसी लोक में बहुत से श्रमणों, बहुत सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं द्वारा अर्चा, वंदना, नमस्कार, पूजा, सत्कार सम्मान के योग्य होते हैं—पात्र होते हैं तथा कल्याण रूप मंगलरूप, देवरूप, चंत्यरूप एवं विनयपूर्वक पर्युपासना—सेवा के पात्र होते हैं ।

परलोक में भी उन्हें हस्तछेदन, कर्णछेदन, नासिकाछेदन, हृदय को आघात पहुँचाने वाले-मर्मघातक, राजा आदि के द्वारा किये जाने वाले उपद्रव और फांसी लगाकर लटकना आदि दुःख नहीं भोगना पड़ते हैं तथा अनादि, अनन्त विशाल चातुर्गति रूप भवाटवी को पार कर जाते हैं, उलांघ जाते हैं ।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा—

२१०. संयम—साधना में शिथिल होने पर भी यदि वाद में संवेग होने से संयम में उद्यम—पुरुषार्थ करे तो शैलक ऋषि के समान वह आराधक होता है ।

—गाया. श्रु. १ अ. ५

११. रहनोमिसमणस्स राजीमइए समुद्धारो

२११. सोरियपुरस्मि नयरे, आसि राया महिडिइए ।
'वसुदेव' त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ।१।
तस्स भज्जा दुवे आसी, 'रोहिणी-देवई' तहा ।
तासिं वोप्हं दुवे पुत्ता, इट्ठा 'राम-केसवा' ।२।
सोरियपुरस्मि नयरे, आसि राया महिडिइए ।
'समुद्धविजए' नामं, रायलक्खणसंजुए ।३।

१२. रथनेमि श्रमण का राजीमती द्वारा समुद्धार

२११. सोरियपुर नगर में राजलक्षणों से युक्त, महान ऋद्धि से संपन्न, 'वसुदेव' नाम का राजा था ।१।
उसकी रोहिणी और देवकी नाम की दो भार्याएँ थीं । उनके राम (बलदेव) और केजव (कृष्ण)-दो प्रियपुत्र थे ।२।
सोरियपुर नगर में राजलक्षणों से युक्त महान ऋद्धि से संपन्न 'समुद्र विजय' नाम का राजा था ।३।

तस्स भज्जा 'सिवा' नाम, तीसे पुत्ते महायसे ।
भगवं 'अरिष्टनेमि' त्ति लोगनाहे दमीसरे ।४।
सोऽरिष्टनेमिनामो उ, लक्खण-स्सर-संजुओ ।
अट्टसहस्स-लक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवो ।५।

वज्जरिसह-सघयणो, समचउरंसो झसोदरो ।
तस्स 'रायमईकन्नं' भज्जं जायइ केसवो ।६।

अहं सा रायवरकन्ना, सुसीला चारुपेहणी ।
सव्व-लक्खण-संपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा ।७।
अहाहं जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहागच्छउ कुमारो, जा से कन्नं ददामिहं ।८।
सव्वोसहीहं ष्हविओ, कय-कोउय-मंगलो ।
दिव्वज्जुयल-परिहिओ, आभरणोहं विभूसिओ ।९।

मत्तं च गंधर्हत्थि च, वासुदेवस्स जेड्ढुगं ।
आरूढो सोहए अहिंयं, सिरे चूडामणी जहा ।१०।

अहं ऊसिएण छत्तेण, चामराहिं य सोहिओ ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ ।११।
चउरंगिणीए सेणाए, रइयाए जहवकमं ।
तुडियाण सन्निनाएणं, दिव्वेणं गगणं फुसे ।१२।

२१२. एयारिसीए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य ।
नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वणिह्पुंगवो ।१३।
अहं सो तत्थ निज्जंतो, दिस्स पाणे भयदुए ।
वाडोहिं पंजरेहिं च, संनिरुद्धे सुदुक्खिए ।१४।
जीवियंतं तु संपत्ते, मंसट्टा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापन्ने, सारहिं इणमव्ववी ।१५।

अरिष्टनेमि—

कस्स अट्टा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडोहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छोहं ? ।१६।
सारहो—

अहं सारही तओ भणइ, एए भट्टा उ पाणिणो ।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं वहुं जणं ।१७।

अरिष्टनेमि—

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाण-विणासणं ।
चित्तेइ से महापन्ने, साणुवकोसे जिए हिओ ।१८।

उसके शिवा नाम की पत्नी थी, जिसका पुत्र महान यशस्वी,
जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ लोकनाथ भगवान अरिष्टनेमि था ।४।
वह अरिष्टनेमि सुस्वरत्व, गंभीरता आदि लक्षणों से युक्त
था । एक हजार आठ शुभ लक्षणों का धारक था । उसका गौरव
गौतम और श्याम वर्ण का था ।५।

वह वज्ररूपभनाराच संहनन और समचतुरन्न संस्थान
वाला था । उसका उदर मछली के उदर जैसा कोमल था । राज-
मती कन्या उसकी भार्या बने, यह याचना केशव ने की ।६।

महान राजा की वह कन्या सुशील, सुन्दर सर्वलक्षण संपन्न
थी, उसकी शारीरिक कान्ति विद्युत् की प्रभा के समान थी ।७।
उसके पिता ने महान ऋद्धिशाली वासुदेव से कहा—कुमार
यहाँ आये, मैं अपनी कन्या उसके लिए दे सकता हूँ ।८।

सर्व औपधियों के जल से (अरिष्टनेमि को) स्नान कराया
गया । यथाविधि कौतुक एवं मंगल किये गये । दिव्य वस्त्र युगल
पहनाया और उसे आभरणों से विभूषित किया गया ।९।

वासुदेव के सबसे बड़े मत्त गन्धहस्ती पर अरिष्टनेमि
आरूढ़ हुए तो वे सिर पर चूडामणि की भाँति बहुत अधिक
सुशोभित हुए ।१०।

अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र और चामरों से सुशोभित थे, दशार
चक्र यदुवंशीक्षत्रियों के समूह-से वे सर्वतः परिवृत्त थे ।११।

चतुरंगिणी सेना यथाक्रम से सजाई हुई थी और वाद्यों का
गगन स्पर्शी दिव्यनाद हो रहा था । ।१२।

२१२. ऐसी उत्तम ऋद्धि और छुति के साथ, वह वृष्णि-पुंगव
अपने भवन से निकले ।१३।

तदनन्तर उन्होंने वाडों और पिंजरों में बंद किये हुए भय-
व्रत एवं अति दुःखित प्राणियों को देखा । वे जीवन की अंतिम
स्थिति (मृत्यु) के सम्मुख थे । मांसाहारियों द्वारा खाये जाने
वाले थे । उन्हें देखकर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथी को
(पीलवान को) इस प्रकार कहा— ।१४।

अरिष्टनेमि—

ये सब सुखार्थी प्राणी किसलिये इन वाडों और पिंजरों में
रोके गये हैं ।१६।

सारथी—

सारथी ने कहा—ये सब भद्र प्राणी आपके विवाह कार्य में
बहुत से लोगों को खिलाने के लिये हैं ।१७।

अरिष्टनेमि—

बहुत से प्राणियों के विनाश होने सम्बन्धी उसके वचन को
सुनकर जीवों के प्रति करुणाशील महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि इस
प्रकार चिन्तन करते हैं— ।१८।

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मंति सुवहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ।१६।
सो कुण्डलाण जुवलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामइ ।२०।
मणपरिणामो य कओ, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्विड्ढीइ सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे ।२१।

देव-मणुस्सपरिवुडो, सिविया-रयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय वारगाओ, रेवययम्मि ठिओ भंगवं ।२२।

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ।
साहस्सीय परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहि ।२३।
अह से सुगंधगंधोए, तुरियं मउअकुच्चिए ।
सयमेव लुंचई केसे, पंचडुआहि समाहिओ ।२४।

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइदियं ।
इच्छियमणोरहं तुरियं, पावसु तं दमीसरा ! ।२५।
नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तहेव य ।
खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ।२६।
एवं ते राम-केसवा, दसारा य वहू जणा ।
अरिट्ठणोमि वंदित्ता, अइगया वारगापुरि ।२७।

२१३. सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ ।
नीहासा य निराणंदा, सोगेण उ समुच्छया ।२८।

राईमई विंचितेइ, धिरत्यु मम जीवियं ।
जाइहं तेणं परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ।२९।

अह सा भमरसन्निभे, कुच्च-फणग-पसाहिए ।
सयमेव लुंचइ केसे, धिइमंता ववस्सिया ।३०।

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसि जिइदियं ।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने ! लहुं लहुं ।३१।

सा पव्वइया सती, पव्वावेसी तहिं वहुं ।
तयणं परियणं चैव, तीलवता बहुस्सुया ।३२।

२१४. गिरि रेवययं जंती, वासेणुल्ला उ अंतरा ।
यासंते अंधयारंमि, अंतो तयणस्स सा ठिया ।३३।

यदि मेरे निमित्त इन बहुत से प्राणियों का हनन होता है तो परलोक में मेरे लिये यह श्रेयस्कर नहीं होगा ।१६।

उन महायशस्वी ने कुण्डल युगल, सूत्रक कर-धनी और सब आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये ।२०।

मन में इन परिणामों-भावों के आते ही, उनके यथोचित अभिनिष्क्रमण के लिये देव अपनी ऋद्धि और परिपक्व के साथ उपस्थित हो गये ।२१।

देव और मनुष्यों से परिवृत्त वे अरिष्टनेमि शिविका रत्न, श्रेष्ठ पालखी में—आरूढ़ हुए वारावती (द्वारिका) से चलकर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर स्थित हुए ।२२।

उद्यान में पहुँचकर उत्तम शिविका से उतर कर एक हजार व्यक्तियों के साथ चित्रा नक्षत्र में निष्क्रमण किया ।२३।

तदनन्तर समाहित-समाधि संपन्न अरिष्टनेमि ने तत्काल सुगंध से सुवासित कोमल और घुंघराले अपने वालों का स्वयं अपने हाथों से पंचमुष्टिक लोच किया ।२४।

वासुदेव-कृष्ण ने लुप्तकेश और जितेन्द्रिय भगवान से कहा— हे दमीश्वर ! अपने अभीष्ट मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करें ।२५।

आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, शांति-क्षमा और मुक्ति— निलोभता के द्वारा आगे बढ़ें ।२६।

इस प्रकार राम (वलभद्र), केशव—कृष्ण और दशार-यादव तथा अन्य बहुत से लोग अरिष्टनेमि को वंदना करके द्वारकापुरी लौट आये ।२७।

२१३. भगवान अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या को सुनकर उस राज-कन्या राजीमती के हास्य (हँसी, प्रसन्नता) और आनन्द आदि लुप्त हो गये और वह शोक से मूर्च्छित हो गई ।२८।

राजीमती ने सोचा—धिक्कार है मेरे जीवन को ! चूँकि मैं उनके द्वारा परित्यक्ता हूँ, अतः मेरा प्रव्रजित होना श्रेयस्कर है ।२९।

घोर तथा कृत संकल्प उस राजीमती ने कूर्च और कंधी से संवारे हुए भौरों जैसे काले केशों का अपने हाथों से लुंचन कर लिया ।३०।

वासुदेव ने लुप्तकेशा और जितेन्द्रिय राजीमती से कहा— कन्ये ! तू इस घोर संसार-सागर को अति शीघ्र पार कर ।३१।

शीलवती और बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित होकर अपने साथ बहुत से स्वजनों और परिजनों को भी प्रव्रजित कराया ।३२।

२१४. वह रैवतक पर्वत पर जा रही थी कि बीच में वर्षा से भोग गई । जोर की वर्षा हो रही थी, अधकार छाया हुआ था । इस स्थिति में वह एक गुफा के अन्दर पहुँची ।३३।

चीवराइं विसारंती, जहा जायत्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा विट्ठो य तीइ वि । ३४।

भोयां य सा तहि दट्ठं, एगंते संजयं तयं ।
वाहाहि काउ संगोप्फं, वेवमाणी निसीयई । ३५।

रहनेमी—

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्धविजयंगओ ।
भोयं पवेथियं दट्ठं, इमं वक्कमुदाहरे । ३६।
'रहनेमी' अह भद्दे !, सुखे ! चारुपेहिणी ! ।
ममं भयाहि सुयणु, न ते पीला भविस्सइ । ३७।

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं छु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगा पुणो पच्छा, जिणमगं चरिस्सिमो । ३८।

राइमई—

दट्ठण रहनेमिं तं, मग्गुज्जोय-पराजियं ।
राइमई असंभंता, अप्पाणं संवरे तहि । ३९।

अह सा राययरकन्ता, सुट्ठिया नियमव्वए ।
जाई कुलं च सीलं च रक्खमाणो तयं वए । ४०।

जद नि क्खेण येसमणो, लल्लिएग नल-कूवरो ।
तहा वि ते न इच्छामि, जद ति सम्पं पुरंदरो । ४१।

पक्खं नभियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छति पत्तयं भोसं, कुत्ते जाया अगंधणे ।

विरुपु नेज्जमोहानो, जो तं जोयिकारणा ।
वं इच्छति मारुत्तं, सेयं ते मरणं भवे । ४२।

अहं य जादरासम, तं च नि अंधमभिट्ठो ।
मा कुं पत्तया होमो, संजयं निट्ठो चर । ४३।

जद य मारुत्तं मारुत्तं, जा जा विच्छलित्तं करिजो ।
मं इच्छति मं इच्छति, मं इच्छति मं इच्छति । ४४।

सुखाने के लिये अपने चीवरों-वस्त्रों को फैलाती हुई राजी-
मती को यथाज्ञात (तग्न) रूप में रथनेमि ने देखा । जिससे
उसका मन विचलित हुआ । राजीमती ने भी वाद में उसको
देखा । ३४।

वहाँ एकान्त में उस संयत को देखकर वह डर गई । भय से
कांपती हुई वह अपनी भुजाओं से शरीर को आवृत करके बैठ
गई । ३५।

रथनेमि—

तव समुद्रविजय के अंगजात उस 'राजपुत्र' ने उसे भयभीत
और कांपती हुई देखकर इस प्रकार का वचन कहा— । ३६।

'हे भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ, हे सुन्दरी ! हे चारुभाषिणी !
मुझे स्वीकार कर ! हे सुतनु ! तुझे कोई पीड़ा-दुख नहीं
होगा । ३७।

मनुष्य जन्म निश्चित रूप से अत्यन्त दुर्लभ है । आओ हम
भोगों को भोगें । भोगों का भोगकर के बाद में हम जिन मार्ग
में दीक्षित होंगे । ३८।

राजीमती—

संयम के प्रतिभग्नोद्योग-उत्साहहीन और भोगवासना से
पराजित रथनेमि को देखकर वह राजीमती सम्भ्रान्त नहीं हुई
घवराई नहीं । उसने पुनः वस्त्रों से अपने शरीर को ढक लिया । ३९।

नियमों और व्रतों में सुस्थित-अविचल उस श्रेष्ठ राजकन्या
ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से
कहा— । ४०।

यदि तू रूप से बंमश्रमण के समान है, ललित कलाओं से नल
कूवर जैसा है और तो क्या, तू साक्षात् इन्द्र भी है, तो भी मैं
तुझे नहीं चाहती हूँ । ४१।

अगंधन कुल में उत्पन्न हुये सर्प जैसे धूमकेतु, प्रज्वलित, भयंकर
दुष्प्रवेश अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए
अपने विष को पुनः पीने की इच्छा नहीं करते हैं । ४२।

हे अयशःकामिन् ! धिक्कार है तुझे कि तू योगी जीवन के
लिये बान्त-त्यक्त भोगों को पुनः भोगने की इच्छा करता है ।
इसमें तो तेरा मरना श्रेयस्कर है । ४३।

मैं भोजराजा की पुत्री हूँ और तू अन्धकवृष्णि का पीत्र है ।
हम कुल में गंधन सर्प की तरह न बनें । तू निभूत (स्थिर)
होकर संयम में विचरण कर । ४४।

यदि तू जिग किसी स्त्री को देखकर ऐसा ही राग भाव
करेगा तो वायु से कणित दूध (वमनपति विशेष) की तरह अस्थिर
श्रावमा होगा । ४५।

गोवालो भंडवालो वा, जहा तद्द्वणिससरो ।
एवं अणिससरो तं पि, सामणस्स भविससति ।४५।

कोहं माणं निगिण्हिता, मायं लोभं च सव्वसो ।
इदिपाइं वसे काउं, अध्माणं उव्वसंहरे ।

रहनेमी—

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अकुसेण जहा नागो, धम्मं सपडिवाइओ ।४६।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइदिओ ।
सामणं निच्चलं फासे, जावज्जीव ददव्वओ ।४७।

उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दुण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धि पत्ता अणुत्तरं ।४८।

एवं करेति संवुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्ठंति भोगेसु, जहा सो पुरिसोत्तमो ।४९।
सि वेमि ।

—उत्त० अ० २२ ।

जैसे गोपाल और भाण्डपाल उस द्रव्य—गायों और किराने आदि के स्वामी नहीं होते हैं, इसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं होगा ।४५।

तू क्रोध, मान, माया और लोभ का पूर्णतया निग्रह करके, इन्द्रियों को वश में करके अपने आपकी उपमंहार-अनाचार से निवृत्त कर ।

रथनेमि—

उस संयम शीला के सुभाषित वचनों को चुनकर रथनेमि धर्म में वैसे ही सम्यक् प्रकार से स्थिर हो गया जैसे अंकुश से हाथी स्थिर हो जाता है ।४६।

वह मन, वचन और काय से गुप्त, जितेन्द्रिय और व्रतों में दृढ़ होकर जीवन पर्यन्त निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन करता रहा ।४७।

उग्र तप का आचरण करके दोनों ही केवली हुए और सब कर्मों का क्षय करके उन्होंने अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त किया अर्थात् सिद्ध, मुक्त हुए ।४८।

संवद्ध, पंडित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं । वे पुरुषोत्तम रथनेमि की तरह भोगों से निवृत्त हो जाते हैं ।४९।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१३. पासतित्ये अंगई सुपइट्ठो पुण्णभददाई य

गाथा—

ज्जे, सूरं, सुक्के, बहुपुत्तिय, पुन्न, माणिमहे य ।
वत्ते, सिधे, वले या, अणाडिए चैव वोद्धव्वे ।१।

२१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसितए चेइए ।
तेगिए राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसडे, परित्ता
निग्गया ।

१. दस० अ० २ ना० १०

२. दस० अ० २ ना० ११

१३. पार्श्व तीर्थ में अंगति, सुप्रातिष्ठ और पूर्ण भद्रादि

गाथा—

.....१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ शुक्र, ४ बहुपुत्रिक ५ पूर्ण ६
मणिभद्र, ७ दत्त, ८ शिव ९ चलेपक और १० अनाहत— ये दस
अध्ययन जानना चाहिये ।

२१५. उस काल और उस समय में राजशुद्ध नामक नगर था ।
उसमें गुणशिलक चंद्र्य था । राजा का नाम श्रेणिक था । उन
काल उस समय में, स्वामी-श्रमण भगवान महावीर या परमेश्वर
हुआ, धर्म क्या चुनने के लिये परिषदा निकली ।

चन्द्रेण जोइसिन्देण वड्ढमाणसमवसरणे नट्टविही—

२१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चन्दे जोइसिन्दे जोइसराया चन्द-
वडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए चन्दंति सीहासणंसि चउहि
सामाणियसाहसीहिं-जाव-विहरइ। इमं च णं केवलकणं जम्बुद्वीवं
दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासइ, पासित्ता
समणं भगवं महावीरं, जहा सूरियाभे, आभिओगिए देवे सद्दावेइ,
सद्दावेत्ता-जाव-सुरिन्दाभिगमणजोगं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पि-
णन्ति । सूसरा घण्टा-जाव-विउव्वणा । नवरं जाणत्तिमाणं
जोयणसहस्सवित्थिण्णं अद्धतेवट्ठिजोयणसमूसियं, महिन्दज्जओ
पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियामस्स, -जाव- आगओ ।
नट्टविही, तहेव पडिगओ ।

“भन्ते” त्ति भगवं गोयसे समणं भगवं० पुच्छा । कूडागार-
साला सरीरं अणुपट्टिहा० पुव्वभओ-एवं खलु गोयमा !—

चंदस्स जोइसिंदस्स पुव्वभववणणे अंगइकहा—

२१७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नयरी होत्था ।
कोट्टए चेइए । तत्थ णं सावत्थीए नयरीए अङ्गई नामं गाहावई
होत्था अड्ढे-जाव-अपरिभूए । तए णं से अङ्गई गाहावई सावत्थीए
नयरीए बहणं नगरनिगम जहा आणन्दो ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे णं अरहा पुरिसादाणीए आइ-
गरे, जहा महावीरो, नवुस्सेहे सोलसेहं समण-साहस्सीहिं अट्टती-
साए अज्जिया-सहस्सीहिं- जाव-कोट्टए समोसडे । परिसा निगगया ।

तए णं से अङ्गई गाहावई इमीसे कहाए लड्ढे समणे हडे
जहा कत्तिओ सेट्टी तथा निगगच्छइ-जाव-पज्जुवासइ । धम्मं सोच्चा
निसम्म, जं नवरं, ‘देवाणुप्पिमा ! जेट्टुत्तं कुडुम्बे ठावेमि । तए
णं अहं देवाणुप्पियाणं-जाव-पव्वयामि’ । जहा गङ्गदत्ते तथा
पव्वइए-जाव-मुत्तवम्भयारी ।

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र द्वारा वर्धमान-गमवसरण में नाट्यविधि
२१६. उस काल और उस समय में ज्योतिष्क देवी का स्वर
और ज्योतिष्क देवी का राजा चन्द्र चन्द्रावतंसह विमान में,
गुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर बैठे राजा चार हजार नाम-
निक देवी के साथ-यावत् विचारता था । वह श्रेष्ठ-निर्मल अवधि-
ज्ञान से इस परिपूर्ण जम्बु द्वीप नामक द्वीप को अवलोकन करते
हुए देखता है, श्रमण भगवान महावीर को देखकर सूर्याभदेव के
सदृश आभियोगिक देवी की मुलाता है, मुलाकर-यावत्-मुन्द्र के
जाने योग्य बनाकर उस आजा की पुति कर वापस मुचना देते हैं ।
सुस्वर घंटा-यावत्-विकुर्वणा करता है । विशेष इतना है कि
इसका यान विमान एक हजार योजना विस्तीर्ण, साडे तिरसठ
योजन ऊंचा और महेंद्र ध्वज पञ्चीस योजन ऊंचा है, तेष
वर्णन सूर्याभदेव के समान जानना चाहिये-यावत्-आया । नाट्य
विधि की और उसी प्रकार वापस लोट गया ।

‘हे भगवन् ! इस तरह श्रमण भगवान् महावीर को सम्बो-
धित कर भगवान गौतम ने पूछा । हे गौतम ! कूटाकार शाला
में प्रवेश करने की तरह वह शरीर में प्रविष्ट हो गया अर्थात्
इस समस्त नाट्य विधि को दिखाने की रचना कर और नाटक
दिखाकर उसे अपने देवशरीर में प्रविष्ट कर लिया । फिर
भगवान गौतम ने पूछा—पूर्वजन्म में कौन था ? उत्तर में श्रमण
भगवान् महावीर ने कहा—हे गौतम—

ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के पूर्वभव-वर्णन में अंगति कथा—

२१७. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी ।
वहाँ कोष्टक नामक चैत्य था । उस श्रावस्ती नगरी में अंगति
नाम का गाथापति था—जो धन वैभव आदि से संपन्न-यावत्-
किसी से पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था । वह अंगति
गाथापति वाणिज्य ग्राम के आनन्द गाथापति की तरह बहुत से
नगर वासियों, व्यापारियों आदि के लिये आधारभूत होकर
श्रावस्ती नगरी में निवास करता था !

उस काल, उस समय में महावीर की तरह धर्म की आदि
करने वाले, नौ हाथ ऊँचे पुरुषादानी पार्श्व अर्हत सोलह हजार
श्रमणों और अडतीस हजार आर्थिकाओं के समूह के साथ-यावत्-
कोष्टक चैत्य में पधारे । परिषदा निकली ।

तत्पश्चात् वह अंगति गाथापति इस इष्ट वृत्तान्त को सुन-
कर हृष्ट तुष्ट-होता हुआ कार्तिक सेठ की तरह निकलता है—
यावत्-पर्युपासना करता है । धर्म श्रवण कर और अवधारण कर,
किन्तु विशेष यह है—‘हे देवानुप्रिय ! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में
स्थापित करूँगा । तत्पश्चात् मैं आप देवानुप्रिय के पास-यावत्-
प्रव्रजित होऊँगा ।’ जैसे गंगदत्त प्रव्रजित हुआ था उसी प्रकार
प्रव्रजित हुआ—यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

तए णं से अङ्गई अणगारे पासस्स अरहओ तहाख्वाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता व्हहिं चउत्थ-जाव-भावेमाणे व्हइं वासाइं सामण्ण-परियाणं पाउणइ । पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अण-सणाए छेइत्ता विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा चन्द्वडि-सए विमाणे उववाइयाए सभाए देवसयगिज्जंसि देवदूसन्तरिए चन्दे जोइसिन्दत्ताए उववन्ने ।

तए णं से चन्दे जोइसिन्दे जोइसरयाया अहुणोववन्ने समाणे पञ्चसिहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा—१. आहार-पज्जत्तीए, २. सरीरपज्जत्तीए, ३. इन्द्रियपज्जत्तीए ४. सातोसास-पज्जत्तीए, ५. भासामणपज्जत्तीए ।

चंदस्स ठिई, महाविदेहे सिद्धी य—

२१८. “चन्दस्स णं भन्ते ! जोइसिन्दस्स जोइसरन्तो केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?”

“गोयमा ! पलिओवमं वाससयसहस्समम्भहियं ।

एवं खलु गोयमा ! चन्दस्स-जाव-जोइसरन्तो सा दिव्वा देविद्धी० ।”

“चन्दे णं भन्ते ! जोइसिन्दे जोइसरयाया ताओ देवलोगाओ आउखएणं भवखएणं ठिइखएणं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिति ?”

“गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ-जाव-सच्चुवखाणमंतं काहिइ ।”

पासतित्ये सुपडट्टो अणगारो

वड्ढमाणसमोसरणे सूरेण नट्टविही—

२१९. तेणं कालेणं तेणं समएणं रावगिहे नामं नयरे । गुणसिलए चेइए । सेगिए राया । समोसरणं । जहा चन्दो तहा सूरो वि आगओ-जाव-नट्टविहि उदंसित्ता पडिगओ ।

सूरस्स पुव्वभवो —

२२०. पुव्वभवपुच्छा । तावत्थो नयरो । सुपडट्टे नामं गाहावड होत्था अड्डे-जाव-अपरिसुए जहेव अंगई-जाव-विहरइ । पासो समोसडो, जहा अंगई तहेव पव्वइए, तहेव विराहियसामण्णे-जाव-महाविदेहे वासे निज्जिहिइ-जाव-अन्तं करेहिइ ।

—पुष्पि० गव० ३, अ० २

तत्पश्चात् उस अंगति अनगार ने पार्श्व अर्हत् के तयारूप स्यविरो के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ भक्त-यावत्-भावना करते हुए वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया । पालन करके अर्धमासिक संलेखना और अनशन द्वारा तीस भक्तों—भोजनों का त्याग कर किन्तु श्रामण्य की विराधना करने वाला होने से काल मास में काल करके चन्द्रावतंसक विमान में उपपात सभा में देवदूष्य वस्त्र से आच्छादित देव शैया में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् वह ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्प राजा चन्द्र अधुनोत्पन्न होकर—अथवा अभी उत्पन्न हुआ वह ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्प राजा चन्द्र पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुआ, यथा—१ आहारपर्याप्ति २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति ४ श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, ५ भाषा - मनः पर्याप्ति ।

चन्द्र की स्थिति और महाविदेह में सिद्धि—

२१८. ‘हे भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्प राजा चन्द्र की कितने काल की स्थिति निरूपित की है ? वतलाई है ?’

‘हे गौतम ! एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम प्रमाण उसकी स्थिति है ।

उस प्रकार हे गौतम ! ज्योतिष्पियों के राजा चन्द्र को वह दिव्य ऋद्धि प्राप्त हुई है ।’

‘हे भदन्त ! ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्प राजा चन्द्र आयु के क्षय, भव के क्षय और स्थिति के क्षय होने पर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?’

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा—यावत्-सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।’

पार्श्वतीर्थ में सुप्रतिष्ठित अनगार

वर्धमान समवसरण में सूर्य द्वारा नाट्य विधि—

२१९. उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था । गुण-शिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । भगवान् का पदार्पण हुआ । जैसे चन्द्र आया उसी प्रकार सूर्य भी आया—यावत् नाट्य विधि दिखाकर वापस लौट गया ।

सूर्य का पूर्वभव—

२२०. पूर्वभव के लिये पूछा ! थायन्ती नगरी थी । सुप्रतिष्ठ नामक गायापति था, जो अंगति के महान धनाध्यक्ष-नाट्य-अपरि-भूत या-यावत्-विचरता है । पार्श्वप्रभु का आरम्भ हुआ, जैसे अंगति, उसी प्रकार प्रवृत्त हुआ, उसी प्रकार थायन्ती की विराधना करने वाला—यावत्—महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा—यावत्-अन्त करेगा ।

पुण्णभद्दे अणगारे

पुण्णभद्देवेण चड्डमाण-परिसाए नट्टविही—

२२१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे गामं नयरे । गुणतिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसरिए । परिसा निग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं पुण्णभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि चउहि सामणियसाहस्सीहि, जहा सूरियाभो-जाव-वत्तीसइविहं नट्टविहि उवदंसित्ता जामेव दिंसि पाउवभूए तामेव दिंसि पडिगए । कूडागारसाला ।

पुण्णभद्देवस्स पुव्वभवो—

२२२. पुव्वभवपुच्छा । “एवं खलु गोयमा !—

तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्वीवे दीवे भारहे वासे मणिवइया नामं नयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा-जाव-वण्णओ ।

चन्दो राया । ताराइणे चेइए । तत्थ णं मणिवइयाए नयरीए पुण्णभद्दे नामं गाहावई परिवसइ अड्डे-जाव-अपरिभूए । तेणं कालेणं तेणं समयेणं थेरा भगवन्तो जाइसंपन्ना-जाव-जीवियासमरणभयविप्पमुक्का बहुस्सुया बहुपरिवारा पुव्वाणुपुव्वि-जाव-समोसदा । परिसा निग्गया । तए णं से पुण्णभद्दे गाहावई इमीसे कहाए लद्धुं समाणे हट्टु-जाव-जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते, तहेव निग्गच्छइ-जाव-निक्खन्तो-जाव-गुत्तवम्भयारी ।

तए णं से पुण्णभद्दे अणगारे थेराणं भगवन्ताणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । अहिज्जित्ता बह्हि चउत्थेच्छुद्धम-जाव-भावित्ता बह्हइं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणइ । पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइय पडिकन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मेकप्पे पुण्णभद्दे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि-जाव-भासा-मण-पज्जत्तीए ।

पूर्णभद्र अनगार

पूर्णभद्र देव द्वारा वर्धमान-गरिगदा में नाट्यविधि—

२२१. उस काल, उस समय में राजा नामक नगर था । गुण-तिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी श्रमण भगवान् महावीर पधारे । धर्मश्रवण करने के लिये पारवदा निकली ।

उस काल और उस समय सौधर्मकल्प के पूर्ण भद्र विमान में सुधर्मा सभा में चार हजार सामानिक देवों के साथ पूर्ण भद्र सिंहासन पर बैठा हुआ पूर्ण भद्र देव सूर्याभदेव के मह्य वाक्-वत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखाकर जिस दिशा में प्रादुर्भूत हुआ था—जिस दिशा से आया था उमी दिशा में वापस चला गया । कूटागार शाला अर्थात् गौतम भगवान् द्वारा इस देव की ऋद्धि आदि के विषय में पूछने पर श्रमण भगवान् महावीर ने कूटागार शाला के हृष्टान्त से उन्हें प्रतियोधित किया ।

पूर्णभद्र देव का पूर्वभव—

२२२. गौतम ने पूर्णभद्र देव के पूर्वभव के विषय में पूछा—
‘हे गौतम ! वह इस प्रकार है—

उस काल और उस समय में इसी जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में मणिपदिका नाम की नगरी थी—जो ऋद्धि वैभव से युक्त, भय-व्याधि से विहीन और धन्य-धान्य समृद्धि से संपन्न थी—यावत्-वर्णन करो ।

वहाँ के राजा का नाम चन्द्र था । ताराकीर्ण नामक चैत्य था । उस मणिपदिका नगरी में पूर्णभद्र नामक गायापति निवास करता था, जो धनाढ्य-यावत्-पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था । उस काल, उस समय जाति संपन्न-यावत्-जीवनाकांक्षा और मरण भय से रहित, बहुश्रुत, बहुत शिष्य समुदाय वाले स्थविर भगवन्त पूर्वाणुपूर्वी परंपरा से विचरते हुए-यावत्-पधारे । धर्म सुनने परिपदा निकली । तत्पश्चात् वह पूर्ण भद्र गाथापति इस वृत्तान्त को सुनकर हर्षित-संतुष्ट होता हुआ-यावत्-व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में आगत गंगदत्त के समान निकलता है—यावत्-दीक्षित हुआ-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

तत्पश्चात् वह पूर्णभद्र अनगार स्थविर भगवन्तों के पास सामा-यिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है । अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ षष्ठ अष्ठ भक्त-यावत्-भावित करके बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करता है । पालन कर मासिक संलेखना और अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्यागकर आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त होकर काल मास में काल करके सौधर्म कल्प में, पूर्णभद्र विमान में उपपात सभा में देव शयनीय शैया में यावत्-भाषा-मनः पर्याप्त से पर्याप्त भाव को प्राप्त किया ।

२२३. एवं खलु गोयमा ! पुण्णभद्देणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी-जाव-अभिसमन्नागया ।

पुण्णभद्दस्स णं भन्ते ! देवस्स केवड्ढयं कालं ठिई पन्नत्ता ?

गोयमा ! दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

पुण्णभद्दे णं भन्ते । देवे ताओ देवलोयाओ-जाव-कहिं गच्छि-हिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुवखाणं अन्तं काहिइ ।
—पुष्फि० उव० ३, अ० ५

माणिभद्दे समणे

माणिभद्ददेवेण वड्ढमाण-समोसरणे नट्टविही—

२२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसरिए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं माणिभद्दे देवे समाए सुहम्माए माणिभद्दसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा पुण्ण-भद्दो तहेव आगमणं, नट्टविही ।

माणिभद्ददेवस्स पुव्वभव्वो—

२२५. पुव्वभद्वपुच्छा । मणिवड्ढया नयरी, माणिभद्दे गाहावई, थेराणं अन्तिए पव्वज्जा, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, वहूइं चासाइं परियाओ, मासिया सलेहणा, सट्ठि भत्ताइं—। माणिभद्दे विमाणे उववाओ, दो सागरोवमाइं ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुवखाणं अन्तं काहिइ ।
—पुष्फि० उव० ३, अ० ६

दत्ताई अण्णे अणगारा

२२६. ७ एवं दत्ते, ८ सिवे, ९ बले, १० अणाडिए, सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे । सव्वेसि दो सागरोवमाइं ठिई । विमाणा देवसरि-सनामा । पुव्वभव्वे दत्ते चन्वणानामाए, सिवे महिलाए, बले हत्थि-णपुरे नयरे, अणाडिए काकन्दीए । चेइयाइं जहा संगहणीए ।

—पुष्फि० उव० ३, अ० ७-१०

२२३. इस प्रकार हे गौतम ! पूर्णभद्र देव ने वह दिव्य देव ऋद्धि-यावत्—अधिगत की है ।

हे भगवन् ! पूर्णभद्र देव की स्थिति कितने काल की वतलाई है ?

हे गौतम ! दो सागरोपम की स्थिति कही है ।

हे भदन्त ! वह पूर्ण भद्र देव उस देवलोक से-यावत्-कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

मणिभद्र श्रमण

मणिभद्र देव द्वारा वर्धमान समवसरण में नाट्यविधि—

२२४. उस काज और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशि-लक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी का पदार्पण हुआ उस काज और उस समय में मणिभद्र देव सुधर्मा सभा में मणि-भद्र सिंहासन पर चार हजार सामनिक देवों के साथ बैठा था, पूर्णभद्र के समान इस मणिभद्र देव का आगमन हुआ और नाट्यविधि दिखाकर वापस चला गया ।

मणिभद्र देव का पूर्वभव—

२२५. भगवान गौतम ने इस मणिभद्र देव के पूर्वभव के विषय में श्रमण भगवान् महावीर से पूछा । (उत्तर में बताया)—मणिपदिका-नगरी, मणिभद्र गाथापति, स्वविरो के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, प्यारह अंगों का अध्ययन किया, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, मासिक सलेचना, साठ भक्तों का त्याग—मणिभद्र विमान में उत्पन्न हुआ, दो सागरोपम की स्थिति, महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

दत्त आदि अन्य अनगार

२२६. इसी प्रकार ७ दत्त, ८ शिव, ९ बल १० अनाभूत, इन सब देवों का वर्णन श्री पूर्णभद्र देव के समान जानना चाहिये । गर्भा की दो-दो सागरोपम की स्थिति है । इन देवों के नाम महान ही इनके विमानों का नाम है । अपने पूर्वभव में दत्त ही अनाभूत नामकी नगरी थी, निच निधिला में, बल हस्तिनापुर में और अनाभूत काकंदी नगरी में जन्मे थे । चैत्यो के नाम मंत्राली गाथा के अनुनार जानना चाहिये ।



१७. जियसत्तु-सुबुद्धिकहाणयं

चंपानगरीए जित्तसत्तुराया सुबुद्धिअमच्चे य—

२२७. तेणं कालेणं तेण समएणं चंपा नामं नयरी । पुण्णभट्टे चेइए । जियसत्तु राया । धारिणी देवी । अदीणसत्तु कुमारे जुवराया वि होत्था । सुबुद्धी अमच्चे-जाव-रज्जधुराचितए, समणो वासए ।

फरिहोदगवण्णओ—

२२८. तीसे णं चंपाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमेण एणे फरिहो दए यावि होत्था—मेय-वसा-रुहिर-मंस-पूय-पडल-पोच्चडे मयग-कलेवर-संछण्णे अमणुण्णे वण्णेणं अमणुण्णे गंधेणं अमुणुण्णे रसेणं अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा गोमडे इ वा जाव-मय-कुहिय - विणट्ट - किमिण - वावण्ण - दुरभिगंधे किमि-जालाउले संसत्ते अमुइ-विगय-वीभच्छ-दरिसणिज्जे । भवेयारूवे सिया ?

नो इणट्टे समट्टे । एत्तो अणिट्टतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अनणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव गंधेणं पण्णत्ते ।

जियसत्तुणा पाणभोयाणपसंसा—

२२९. तए णं से जियसत्तु राया अण्णया कयाइ ष्हाए कयवलि-रुन्ने-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे वहाँहि राईसर-जाव-सत्त्ववा-पनिईहि सत्ति भोयणवेलाए सुहासण-वण्णए विपुलं असणं पाणं चाइमं साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे अदिमाएमाणे परिनुं जेमाणे एवं च णं विहरइ । जिमियभुत्तुतराणए पि य णं तनाये आदन्ते चोअये परमसुइभूए तंसि विपुलंसि असण-पाण-चाइम-साइमं जायविमहए ते व्हवे राईसर-जाव-सत्त्ववा-पनिईया, एवं ययासी —

अतो देवानुप्रियो ! इमे मनोअे असण-पाण-चाइम-साइमे णं व वरुडे ए तेणं चाइमं रणेनं उरवेणं फासेण उववेणं

१८. जितशत्रु-सुबुद्धि कथानक

चंपानगरी में जितशत्रु राजा और सुबुद्धि अमात्य—

२२७. उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी । पूर्णभद्र नामक चैत्य था । उस चंपानगरी में जितशत्रु नामक राजा था । उसकी धारिणी नाम की रानी थी और अदीनशत्रु नामक कुमार युवराज था सुबुद्धि नामक अमात्य था, वह-यावत्-राज्य की धुरा का चिन्तक श्रमणोपासक था ।

परिखोदक वर्णन—

२२८. उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में एक परिखा (खाई) का पानी था, जो चर्वी, नसों, रुधिर, मांस और पीव के समूह से युक्त था, मृतक शरीरों से व्याप्त था । वर्ण से अमनोज्ञ, गंध से अमनोज्ञ, रूप से अमनोज्ञ, स्पर्श से अमनोज्ञ, था-वह इस प्रकार था जैसे—कोई सर्प का मृत कलेवर हो अथवा गाय का कलेवर हो—यावत्-मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ों से व्याप्त और जानवरों के द्वारा खाये हुए किसी मृत कलेवर के समान दुर्गन्ध वाला था, कृमियों के समूह से परिपूर्ण था, जीवों से भरा हुआ था, अशुचि विकृत और वीभत्स दिखलाई देता था । क्या वह ऐसे स्वरूप वाला था ?

नहीं यह अर्थ समर्थ नहीं है । वह जल इससे भी अधिक अनिष्ट, अकंततर असुन्दर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर, अमणामतर, गंध वाला था अर्थात् खाई का पानी इससे भी अधिक अनिष्ट आदि रूप, रस गंध वर्ण वाला था ।

जितशत्रु द्वारा पान-भोजन प्रशंसा—

२२९. तत्पश्चात् वह जित शत्रु राजा किसी एक समय स्नान करके, बलिकर्म करके यावत्-अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत करके अनेक राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह प्रभृति के साथ भोजन मंडप में भोजन के समय सुखद आसन पर बैठकर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का आस्वादन लेते हुए, विशेष आस्वादन लेते हुए, परस्पर में देते हुए, खाते हुए विचर रहा था, अर्थात् खा रहा था । भोजन जीमने के अनन्तर हाथ मुँह धोकर कुल्ला करके शुचि होकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य, भोजन के विषय में वह विस्मित हुआ और उन बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह प्रभृति से इस प्रकार बोला—

‘अतो देवानुप्रियो ! यह मनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम, भोजन वर्ण से, गंध से, रस से और स्पर्श से युक्त है अर्थात्

तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइख-
माणस्स पण्णवेमाणस्स पळ्ळेमाणस्स एयमट्ठं नो आढाइ नो
परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ ।

जियसत्तुणा फरिहोदगस्स गरहा—

२३१. तए णं से जियसत्तू राया अण्णया कयाइ ण्हाए आसखंध-
वरगए महयाभड-चडगर-आसवाहिणिआए निज्जायमाणे तस्स
फरिहोदयस्स अट्टरसामंतेणं वीईवयइ ।

तए णं जियसत्तू राया तस्स फरिहोदगस्स असुभेणं गंधेणं
अभिभए समाणे सएणं उत्तरिज्जगेणं आसगं पिहेइ, पिहेत्ता
एगंतं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बह्वे ईसर-जाव-सत्थवाहपभियओ
एवं वयासी—

अहो णं देवानुप्पिया ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-
जाव-अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-
अमणामतराए चैव गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं ते बह्वे ईसर-जाव-सत्थवाहपभियओ एवं वयासी—

तहेव णं तं सामी ! जं णं तुभे वयह—अहो णं इमे फरि-
होदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे फासेणं, से जहानामए—
अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चैव गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धि अमच्चं एवं वयासी—अहो
णं सुबुद्धी ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-अमणुण्णे
फासेणं, से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चैव
गंधेणं पण्णत्ते ।

सुबुद्धिणा पुणो वि पुग्गलसहाववण्णणं—

२३२. तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं नो
आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से जियसत्तू राया सुबुद्धि अमच्चं दोच्चं पि तच्चं पि
एवं वयासी—

अहो णं सुबुद्धी ! इमे फरिहोदए अमणुण्णे वण्णेणं-जाव-
अमणुण्णे फासेणं,

से जहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अमणामतराए चैव
गंधेणं पण्णत्ते ।

तए णं से सुबुद्धी अमच्चे जियसत्तुणा रण्णा दोच्चं पि तच्चं
पि एवं वत्ते समाणे एवं वयासी—“नो खलु सामी ! अहं
एयंसि फरिहोदगंसि केइ विम्हए । एवं खलु सामी :—

तव राजा जितशत्रु ने ऐसा कहने वाले, बोलने वाले, कथन
करने वाले, प्ररूपणा करने वाले सुबुद्धि अमात्य के कथन का
आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया, स्वीकार नहीं
किया और चुपचाप रहा ।

जितशत्रु द्वारा परिखोदक की गई—

२३१. तत्पश्चात् एक बार किसी समय वह जितशत्रु राजा
स्नान करके उत्तम अश्व पर सवार होकर बहुत से भट्टों, मुभट्टों
के साथ घुड़सवारी के लिये निकला और उस खाई के पानी के
समीप पहुँचा ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने उस खाई के पानी की अगुभ
गंध से घबराकर अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढक लिया, ढककर
एकांत में चला गया, जाकर साथ में आये राजा, ईश्वर-यावत्-
सार्थवाह आदि से इस प्रकार कहा—

अहो देवानुप्रियो ! यह खाई का पानी अमनोज्ञ वर्ण वाला,
यावत्-अमनोज्ञ स्पर्श वाला है, वह इस प्रकार का है जैसे किसी-
सर्प का मृत कलेवर हो—यावत् उससे भी अधिक अमनोज्ञ है ।

तत्पश्चात् वे बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि
इस प्रकार बोले—

हे स्वामिन् ! आप जो यह ऐसा करते हैं, वह वैसा ही है—
सत्य है कि—अहो ! यह खाई का पानी वर्ण से अमनोज्ञ-यावत्-
स्पर्श से अमनोज्ञ है, ठीक उसी प्रकार जैसे साँप का मृत कलेवर
हो,—यावत्-उससे भी अधिक अतीव अमनोज्ञ गंध वाला है ।

तत्पश्चात् उस जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य से इस
प्रकार कहा—अहो सुबुद्धि ! यह खाई का पानी वर्ण से अमनोज्ञ
है ।—यावत्-स्पर्श से अमनोज्ञ है, जैसे कि सर्प का मृत कलेवर
हो यावत्-उससे भी अधिक अत्यन्त अमनोज्ञ गंध वाला है ।

सुबुद्धि द्वारा पुनः पुद्गल स्वभाव वर्णन—

२३२. तव उस सुबुद्धि अमात्य ने जितशत्रु राजा के इस कथन
का न तो आदर किया और न अनुमोदन किया, किन्तु मौन रहा ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने दूसरी बार और तीसरी बार
भी सुबुद्धि अमात्य से इसी प्रकार कहा—

अहो सुबुद्धि ! यह परिखा का पानी अमनोज्ञ वर्ण वाला-
यावत्-अमनोज्ञ स्पर्श वाला है,

जैसे कि सर्प का मृत शरीर हो-यावत्-उससे भी अधिक
अत्यन्त अमनोज्ञ गंधवाला है ।

तत्पश्चात् वह सुबुद्धि अमात्य दुवारा और तिवारा भी जित-
शत्रु राजा के उक्त कथन को सुनकर इस प्रकार बोला—“हे
स्वामिन् ! मुझे तो इस खाई के पानी के विषय में कुछ भी
विस्मय नहीं है । क्योंकि स्वामिन् !—

सुब्बिमसद्दा वि पोग्गला दुब्बिमसद्दाए परिणमंति-जाव-
दुह्फासा वि पोग्गला सुह्फासत्ताए परिणमंति । पजोग-वीससा-
परिणया वि य णं सामी ! पोग्गला पण्णत्ता ।”

जियसत्तुणा विरोधो—

२३३. ताए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—

“मा णं तुमं देवानुप्पिया ! अप्पाणं च परं च तदुमयं च
वह्हि य असव्मायुव्मावणाहिं मिच्छतामिनिवेत्तेण य वुग्गाहेमाणे
वुप्पाएमाणे विहराहि ।”

सुबुद्धिणा जलसोधनं—

२३४. ताए णं सुबुद्धिस्स इमेयाख्खे अज्झतियए-जाव-संकप्पे
समुप्पज्जित्था—अहो ण जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अवितहे
सम्मूए जिणपण्णत्ते भावे नो उवलमइ । तं सेयं खलु मम
जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अवितहाणं सम्मूयाणं
जिणपण्णत्ताणं भावाणं अभिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्ताए—
एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पच्चइएहि पुरित्तेहिं सद्धिं अंतरावणाओ नवए
घडए य पडए य गेण्हइ, गेण्हित्ता संज्ञाकालसमयंसि पविरत्तम-
णूससि निसंत-पडिनिसंतंसि जेणेव फरिहोदए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता तं फरिहोदगं गेण्हावेइ, गेण्हावित्ता नवएसु
पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खिवावेइ, पक्खि-
वावेत्ता सज्जयारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछियमुद्दिए
कारावेइ, कारावेत्ता तत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता दोच्चं
पि नवएसु पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु पक्खि-
वावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जयारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता लंछिय-
मुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता तत्तरत्तं परिवसावेइ, परिवसावेत्ता
तच्चं पि नवएसु पडएसु गालावेइ, गालावेत्ता नवएसु घडएसु
पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता सज्जयारं पक्खिवावेइ, पक्खिवावेत्ता
लंछिय-मुद्दिए कारावेइ, कारावेत्ता तत्तरत्तं संवसावेइ ।

एवं खलु एएणं उवाएणं अंतरा गालावेमाणे अंतरा पक्खि-
वावेमाणे अंतरा य तत्तरत्त-परिहोदियेणं परि-
वसावेइ ।

शुभ शब्द वाले पुद्गल भी अशुभ शब्द वाले पुद्गल के
रूप में परिणत हो जाते हैं—यावत्-उराव स्पर्श वाले भी पुद्गल
शुभ स्पर्श वाले पुद्गल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं ।
स्वामिन् ! प्रयोग और विज्ञान परिणाम वाले पुद्गल होते हैं
अर्थात् पुद्गलों में प्रयत्न से और न्वाभाविक रूप से परिणाम
होता रहता है ।

जितशत्रु द्वारा विरोध—

२३३. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अभाव से इन प्रकार
कहा—

‘देवानुप्रिय ! तुम स्वयं को, हमारे को और स्व-पर दोनों
को असत् वस्तु धर्म की उद्भावना करके मिथ्या अभिविषय
(दुराग्रह) द्वारा भ्रम में मत डालो, अपने को चतुर मत समझो ।
सुबुद्धि द्वारा जल शोधन—

२३४. तत्पश्चात् सुबुद्धि को इस प्रकार का अधव्यसाय-यावत्
संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—अहो जितशत्रु राजा मत् [विद्यमान]
तत्वरूप, तथ्य, अवितथ और सद्भूत जिन भगवान द्वारा प्रकृत
भावों को नहीं जानता है अतएव मेरे लिये यही श्रेयस्कर ढोंगा कि
मैं जितशत्रु राजा को मत् तत्वरूप, तथ्य, अवितथ (तथ्य) नदृश्य
जिन प्रकृत भावों को भली प्रकार से समझाऊँ और इन बात को
अंगीकार कराऊँ-ऐसा विचार किया, विचार करते विद्यमानभाव
पुरुषों से अन्तरापण कुम्हार को दूकान से बहुत से नये पड़े मंग-
वाये, मंगवा कर जब कोई बिरले मनुष्य आ जा रहे थे और
प्रायः सभी अपने-अपने घरों में विश्राम लेने लगे थे, ऐसे मध्या-
काल के समय जहाँ चाई का पानी था, वहाँ आया ।

वहाँ आकर चाई का वह पानी पट्टा करवाया, पट्टा
करवा के नये पड़ों में छनवाया, छनवाकर पड़ों में डलवाया,
डलवाकर उनमें माजीयार डलवाया, माजीयार डलवाकर
उन पड़ों को मुद्रालांछित करवाया, अर्थात् पड़ों के मुँह बन्द
करके उन पर सील मुद्दर लगवाए, मुद्रिया करके मात रात
दिन उन्हें बँधे ही रहने दिया । सात राति दिन देगा ही बँधे
देने के बाद दूसरी बार पुनः नये पड़ों में पकटवाया, पकटवाकर
माजीयार डलवाया, माजीयार डलवाकर मुद्रालांछित करवाया,
करवा कर मात दिन रात उन्हें बँधे ही रहने दिया, मात दिन
रात बँधे रहने के बाद तिसरी बार भी नये पड़ों में पकटवाया,
छनवाकर नये पड़ों में पकटवाया, पकटवाकर माजीयार
डलवाया, माजीयार डलवाकर मुद्रालांछित करवाया, करवा
कर मात दिन रात उन्हे बँधे दिया ।

इस तरह इन उपाय के बीच-बीच में नये पड़ों, पकटवा
के नये पड़ों में डलवाया और बीच-बीच में पकटवा करवाया
वह पानी आठ-नाइ दिन रात नये पड़ों में बँधे रहा ।

तए णं से फरिहोदए सत्तमंसि सत्तयंसि परिणममाणंसि उदगरयणे जाए यात्रि होत्था—अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फालिय-वण्णाभे वण्णेणं उववेए गंधेणं उववेए रसेणं उववेए फासेणं उववेए आसायणिज्जे विसायणिज्जे पीणणिज्जे दीवणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिहणिज्जे सत्विदियगाय-पल्हायणिज्जे ।

सुबुद्धिणा जलपेसणं—

२३५. तए णं सुबुद्धी जेणेव से उदगरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता करयलंसि आसादेइ, आसादेत्ता तं उदगरयणं वण्णेणं उववेयं गंधेणं उववेयं रसेणं उववेयं फासेणं उववेयं आसायणिज्जं विसायणिज्जं पीणणिज्जं दीवणिज्जं दप्पणिज्जं मयणिज्जं बिहणिज्जं सत्विदियगाय-पल्हायणिज्जं जाणित्ता हट्टुट्टे वहाँहि उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वेहिं संभारेइ, संभारेत्ता जियसत्तुस्स रण्णो पाणियघरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“तुमं णं देवाणुप्पिया ! इमं उदगरयणं गेण्हहि, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवणेज्जासि ।”

जियसत्तुणा उदगरयणपसंसा—

२३६. तए णं से पाडिय-घरिए सुबुद्धिस्स एयमट्टं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं उदगरयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उवट्टवेइ ।

तए णं से जियसत्तू राया तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे एवं च णं विहरइ । जिमियभुत्तुरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए तंसि उदगरयणंसि जायविम्हए ते वह्वे राईसर-जाव-सत्थवाहपभिईओ एवं वयासी—“अहो णं देवाणुप्पिया ! इमे उदगरयणे अच्छे-जाव-सत्विदियगाय-पल्हायणिज्जे ।”

तए णं ते वह्वे राईसर-जाव-सत्थवाहपभिईओ एवं वयासी—
तहेव णं सामी ! जणं तुव्भे वयह—इमे उदगरयणे अच्छे-जाव-
सत्विदियगायपल्हायणिज्जे ।

तत्पश्चात् वह् खाई का पानी सात सप्ताह में परिणत होता हुआ उदकरत्त [उत्तम जल] बन गया— जो स्वच्छ, पथ्य, ज्ञात्य [उत्तम जाति का] तनु [हृत्का] हो गया, स्फटिक के समान मनोज वर्ण से युक्त, गंध से युक्त, रस से युक्त, स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, पुष्टिकारक, दीप्तिकारक, दर्पकारक, मदजनक, बलवर्धक तथा सर्व इन्द्रियों और शरीर को विशिष्ट आल्हाद उत्पन्न करने वाला हो गया ।

सुबुद्धि द्वारा जल प्रेषण—

२३५. तत्पश्चात् सुबुद्धि जहाँ उदक रत्त था, वहाँ आया, आकर हथेली में लेकर उसको चढ़ा, चढ़कर उस उत्तम जल को मनोज वर्ण से युक्त, मनोज गंध से युक्त, रस से युक्त, स्पर्श से युक्त, आस्वादन करने योग्य, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, पुष्टिकारक, दीप्तजनक, दर्पकारक, मदजनक और बलवर्धक और सब इन्द्रियों एवं शरीर को विशिष्ट आल्हाद उत्पन्न करने वाला जानकर हर्षित, संतुष्ट हुआ, फिर जल को स्वादिष्ट बनाने वाले वहुत से द्रव्यों से उसे संवारा-गुस्वादु और सुगंधित बनाया, संवार कर जितशत्रु राजा के जल गृह के कर्मचारी को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रिय ! इस उदकरत्त को लो, इसे लेकर भोजन के समय जितशत्रु राजा को देना ।’

जितशत्रु द्वारा उदकरत्त प्रशंसा—

२३६. तत्पश्चात् जलगृह के उस कर्मचारी ने सुबुद्धि के इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस उदक रत्त को ग्रहण किया, ग्रहण करके भोजन के समय उसे जितशत्रु राजा के सामने उपस्थित किया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम का आस्वादन करता हुआ, विशेष रूप से आस्वादन करता हुआ बाँटता हुआ-परोसता हुआ, खाता हुआ विचर रहा था । भोजन करने के अनन्तर भली प्रकार से शुचि-स्वच्छ होकर जल रत्त का पान करने से उसे विस्मय हुआ और बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि से इस प्रकार बोला—‘अहो देवानुप्रियो ! यह उदकरत्त स्वच्छ-यावत्-सर्वइन्द्रियों और गात्र को आल्हाद उत्पन्न करने वाला है ।’

तब वे बहुत से राजा, ईश्वर-यावत्-सार्थवाह आदि ने इस प्रकार कहा— ‘स्वामिन् ! जैसा आप कहते हैं, बात ऐसी ही है- यह उदक रत्त स्वच्छ-यावत्-समस्त इन्द्रियों और शरीर को आल्हाद उत्पन्न करने वाला है ।’

जियसत्तुणा उदगाणयणपुच्छा—

२३७. तए णं जियसत्तू राया पाणिय-घरियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“एस णं तुमे देवानुप्पिया ! उदगरयणे कओ आसादिते ?”

तए णं से पाणिय-घरिए जियसत्तुं एवं वयासी—“एस णं सामी ! मए उदगरयणे सुबुद्धिस्स अतियाओ आसादिते ।”

तए णं जियसत्तू सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“अहो णं सुबुद्धी ! केणं कारणेणं अहं तव अणिट्ठे-जाव अमणामे जेणं तुमं मम कल्लाकर्ल्लि भोयणवेलाए इमं उदगरयणं न उबुट्ठेसि ? तं एस णं तुमे देवानुप्पिया ! उदगरयणे कओ उवलद्धे ?”

सुबुद्धिणा उत्तरं—

२३८. तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—एस णं सामी ! से फरिहोदए ।

तए णं से जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी—केणं कारणेणं सुबुद्धी ! एस से फरिहोदए ?

तए णं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—

एवं छलु सामी ! तुम्हे तया मन एवमाइवअमणस्स-जाव-परुवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहह । तए णं मम इमेयाह्वे अज्झत्थिए-जाव-संरुप्पे समुपज्जित्वा—अहो णं जियसत्तू राया संते तच्चे तहिए अहित्थे सम्भूए जिणपण्णत्ते भावे नो सद्दहह नो पत्तियइ नो रोएइ । तं सेयं छलु मन जियसत्तुस्स रण्णो संताणं तच्चाणं तहियाणं अहितहाणं सम्भूयाणं जिगपण्णत्ताणं भावाणं अनिगमणट्ठयाए एयमट्ठं उवाइणावेत्तए—एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता तं चेव जाव-पाणिय-घरियं सद्दावेमि, सद्दावेत्ता एवं यदामि—तुमं णं देवानुप्पिया ! उदगरयणं जियसत्तुस्स रण्णो भोयणवेलाए उपजेहि । तं एएणं कारणेणं नामी । एस से फरिहोदए ।”

जियसत्तुणा जलसोधण—

२३९. तए णं जियसत्तू राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स एवमाइवअ-गाणयण-जाव-परुवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहह नो पत्तियइ नो रोएइ, उवट्ठमाने उवत्थिमाने धरोग्गमाने जग्गिणवट्ठायिण्णवे पुत्ति सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

जितशत्रु द्वारा उदगानयन पृच्छा—

२३७. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने जलशुह के कर्मचारी को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार पूछा—

‘देवानुप्रिय ! तुमने यह जल-रत्न कहाँ से प्राप्त किया है ?

तव वह जलशुह का कर्मचारी जितशत्रु से इस प्रकार बोला—‘स्वामिन् ! यह उदक रत्न मैंने सुबुद्धि अमात्य के पास से प्राप्त किया है ।’

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

अहो सुबुद्धि ! किस कारण मैं तुम्हें अनिष्ट-यावत्-अमणाम हूँ, जिससे तुम मेरे लिये प्रतिदिन भोजन के समय यह उदक रत्न नहीं भेजते ? देवानुप्रिय ! तुमने यह उदक रत्न कहाँ से प्राप्त किया है ?

सुबुद्धि का उत्तर—

२३८. तत्र सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा—‘स्वामिन् ! यह तो वही चार्ई का पानी है ।’

तत्र जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा—‘हे सुबुद्धि ! यह वही चार्ई का पानी कैसे है ? किस कारण से इसे चार्ई का पानी कहते हो ?

तव सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा—

‘हे स्वामिन् ! उस समय मेरे द्वारा इन प्रकार कहे गये-यावत्-प्ररूपित किये गये वर्णन पर आपने श्रद्धा नहीं की थी-विश्वास नहीं किया था । तब मेरे मन में इस प्रकार का अल्प-साय-यावत्-संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ-अहो जितशत्रु राजा मनु, तत्वरूप, तस्य, अहितय, सद्भुत जिन भगवान द्वारा भाषित भावों पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, यदि नहीं करता है । अतएव मेरे लिये श्रेयस्कर है कि मैं जितशत्रु राजा को सत्, तत्वरूप, तस्य, अहितय, सद्भुत, जिन भाषित भावों को मनसाकर पुद्गलों के परिणमन रूप अर्थ को जनीधार कराऊँ अर्थात् मनवाऊँ ।’ मैंने ऐसा विचार किया, विचार करके पहले कहे अनुसार-यावत्-जलशुह के कर्मचारी को बुलाया, बुलाकर इन प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रिय ! भोजन के समय तुम यह उदकरत्न जितशत्रु राजा के समय उपस्थित करोगे । इस कारण हे स्वामिन् ! यह वही चार्ई का पानी है ।’

जितशत्रु द्वारा जन-सोधन—

२३९. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि द्वारा कहे गये यावत्-प्ररूपित वर्णन पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की और श्रद्धा नहीं की-श्रद्धा न करके श्रद्ध, प्रतीति न करके श्रद्ध और श्रद्ध न करके श्रद्ध उनके अपने-आपके-उर परिणमन के पुद्गलों को बुलाया और बुलाकर उसके इस प्रकार कहा—

“गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! अंतरावणाओ नवए घडए पडए य गेण्हइ - जाव-उदगसंभारणिज्जेहिं दव्वाहिं संभारेह ।”
तेवि तहेव सभारेंति, संभारेत्ता जियसत्तुस्स उवणेंति ।

जियसत्तुस्स पुच्छ्या—

२४०. तए णं से जियसत्तू राया तं उदगरयणं करयलसि आसा-
एइ, आसाएत्ता आसायणिज्ज-जाव-सव्विदियगाय-पल्हायणिज्ज
जाणित्ता सुवुद्धिं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावत्ता एवं वयासी—

“सुवुद्धी ! एए णं तुमे संता तच्चा तहिया अदितहा सब्भूया
भावा कओ उवलद्धा ?”

सुवुद्धिस्स उत्तरं—

२४१. तए णं सुवुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—एए णं सामी ! मए
संता तच्चा तहिया अदितहा सब्भूया भावा जिणवयणाओ
उवलद्धा ।

तए णं जियसत्तू सुवुद्धिं एवं वयासी—तं इच्छामि णं देवा-
णुप्पिया ! तव अंतिए जिणवयणं निसामित्तए ।

जियसत्तुस्स समणोवासयत्तं—

२४२. तए णं सुवुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवल्लिपणत्तं चाउ-
ज्जामं धम्मं परिकहेइ तमाइक्खति जहा जीवा वज्जंति—जाव-
पंच अणुव्वयाइं ।

तए णं जियसत्तू सुवुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म
हट्टुइ सुवुद्धिं अमच्चं एव वयासी—

“सद्दहामि णं देवाणुप्पिया ! निगंथं पावयणं-जाव-से जहेयं
तुव्भे वयह । तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-
वइयं-जाव-उदसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।”

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

तए णं से जियसत्तू सुवुद्धिस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-
दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ ।

तए णं जियसत्तू समणोवासए जाए—अहिगयजीवाजीवे-जाव-
पडिलाभेमाणे विहरइ ।

जियसत्तू-सुवुद्धीण पव्वज्जा—

२४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं । जियसत्तू राया

‘देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और कुम्हार की दुकान
से नये घड़े लाओ-यावत्-जल संधारणे-मुन्दर-गुद्ध बनाने वाले
द्रव्यों से उसे संधारो ।’ उन्होंने राजा के कथनानुसार पूर्वोक्त
विधि से जल को संधारा, संधार कर जितशत्रु के पास लाये ।
जितशत्रु को पृच्छ्या—

२४०. तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने उस उदकरत्न को हथेली में
लिया हथेली में लेकर आन्वादन करने योग्य-यावत्-सर्व इन्द्रियों
और शरीर को आल्हादोत्पादक जानकर सुवुद्धि अमात्य को
बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

सुवुद्धि ! तुमने यह सत्, तत्त्वरूप, तथ्य, अदितय, सद्भूत
भावों (पदार्थों) को कहाँ से किससे जाना ?

सुवुद्धि का उत्तर—

२४१. तव सुवुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा— स्वामिन् ! मैंने
सत्, तत्त्वरूप, तथ्य, अदितय सद्भूतभाव जिन भगवान के
वचनों से जाने हैं ।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुवुद्धि से इस प्रकार कहा—देवानु-
प्रिय ! मैं तुमसे जिनवचन सुनना चाहता हूँ ।

जितशत्रु का श्रमणोपासकत्व—

२४२. तव सुवुद्धि ने जितशत्रु को केवलो-भाषित चातुर्यामि रूप
अद्भूत धर्म कहा—जिस कारण जीव कर्मबन्धन में बंधते हैं और
मुक्त होते हैं, वह सब तत्त्व समझाया । पाँच अणुव्रत का स्वरूप
बताया ।

तत्पश्चात् सुवुद्धि से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण
कर हर्षित और संतुष्ट होकर जितशत्रु ने सुवुद्धि अमात्य से
इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! मैं निग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ-
यावत्-जैसा कहने हो वैसा ही है । अतएव मैं तुमसे पाँच अणु-
व्रतों और सात शिक्षाव्रतों को ग्रहण करके विचरण करना
चाहता हूँ ।’

‘देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलम्ब मत
करो—सुवुद्धि अमात्य ने कहा ।

तत्पश्चात् जितशत्रु ने सुवुद्धि से पाँच अणुव्रत-यावत् वारह
प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु श्रमणोपासक-श्रावक हो गया-जीव-
अजीव का ज्ञाता हो गया-यावत्-निग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों को
आहार आदि का प्रतिलाभ देता हुआ रहने लगा ।

जितशत्रु-सुवुद्धि की प्रव्रज्या—

२४३. उस काल और उस समय में स्थविरो का पदार्पण हुआ ।

सुवुद्धी य निग्गच्छइ । सुवुद्धी धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी — जं नवरं—जियसत्तुं आपुच्छामि तओ पच्छा मुण्डे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

अहामुहं देवाणुप्पिया !

तए णं सुवुद्धी जेगेव जियसत्तु तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—एवं खलु सामी ! मए थेराणं अंतिए धम्मं निसंते । ते वि य धम्मं इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तए णं अहं सामी ! संसारभउव्विगो भोए जम्मण-जर-मरणणं इच्छामि णं तुव्वेहिं अन्नणुण्णाए समाणे थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं जियसत्तु राया सुवुद्धि एवं वयासी—अच्छमु ताव देवाणुप्पिया ! फइययाइं वासाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा तओ पच्छा एगयओ थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामी ।

तए णं सुवुद्धी जियसत्तुस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

तए णं तस्स जियसत्तुस्स रण्णो सुवुद्धिणा सद्धिं विपुलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुनवमाणस्स दुवालस वासाइं पीइक्कंताइं ।

२४४. तेणं कालेणं तेणं तमएणं थेरागमणं । जियसत्तु राया धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी—जं नवरं—देवाणुप्पिया ! सुवुद्धिं अमच्चं आमतेमि, जेट्टपुत्तं रज्जे ठावेमि, तए णं तुव्वेणं अंतिए मुंडे भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

अहामुहं देवाणुप्पिया !

तए णं जियसत्तु राया जेगेव तए गिहं तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवुद्धिं सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु मए थेराणं अंतिए धम्मं निसंते-जाय-पव्वयामि । तुमं णं किं करेति ?

तए णं सुवुद्धी जियसत्तु रायं एवं वयासी—अइ णं तुव्वे देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विगो-आय-पव्वयामि, अहं णं देवाणुप्पिया ! के अण्णे आहारे या आसंसे वा ? अहं वि य ण देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विगो-आय-पव्वयामि ।

जितशत्रु राजा और सुवुद्धि बन्ना करने निकले । सुवुद्धि ने धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर इस प्रकार कहा—राजा विशेष है कि जितशत्रु से पूछ लूँ-आधा ने तुं उसके बाद मुडित होकर गृह त्यागकर आनवारिक प्रप्रथा अंगीकार करेगा ।

देवानुप्रिय ! जैना सुख उपमे, पैसा करे । मुनि ने कहा ।

तत्पश्चात्सुवुद्धि अम दर जितशत्रु के पास आया । आकर उसने इन प्रकार कहा-भवामिन् ! मैंने स्वयंसे मुनि ने धर्म श्रवण किया है । उस धर्म की मैं इच्छा करता हूँ पुनः पुनः इच्छा करता हूँ, अभिरुचि करता हूँ । इस कारणसे स्वामीन् ! मैं संसार के भय से उद्विग्न जन्म, जरा, मरण में भयभीत हुआ हूँ, इसलिये आपकी आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके स्वयंसे मुनिराज के पास मुडित होकर गृहत्याग का त्यागकर अनवार शिखा अंगीकार करना चाहता हूँ ।

तब जितशत्रु राजा ने सुवुद्धि ने इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! अभी कुछ वर्षों तक उदार मनुष्य सम्बन्धी भोगोभोगों को भोगते हुए दृष्ट्यो, उनके बाद इन दोनों साध-साध स्वयंसे मुनि के पास मुडित होकर, गृह त्याग कर अनवार प्रप्रथा अंगीकार करेगे !

तत्पश्चात् सुवुद्धि ने जितशत्रु राजा को इन बातों को स्वीकार कर लिया ।

उसके बाद जितशत्रु राजा को सुवुद्धि प्रभावर के साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए मरण का व्यतीत हो गये ।

२४४. उस काल और उस समय में स्वयंसे मुनि का आनन्द हुआ जितशत्रु राजा धर्मोदय श्रवण कर और आनन्द करने इस प्रकार बोला—उसमें शिष्य पद है कि—देवानुप्रिय ! सुवुद्धि अमात्य को आमंत्रित करने और प्रसन्न हो कर मेरे पास आ करेगा, तत्पश्चात् आपके निकट मुडित होकर, गृह त्याग कर आनवारिक शिखा अंगीकार करेगा । तब स्वयंसे मुनि ने कहा—

देवानुप्रिय ! जैने सुख उपमे, पैसा करेगे ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा अपने दरबार में आया, वहाँ राजा आकर सुवुद्धि प्रभावर को आवाहन, बुलाकर उदात्त रूप प्रकार कहा—मैंने स्वयंसे मुनि ने धर्म श्रवण किया है । मैं इच्छा करता हूँ, अभिरुचि करता हूँ, मुनिकार करेगा । तुम क्या करोगे ? मुनिकार करेगा या नहीं ?

तब सुवुद्धि ने जितशत्रु राजा को इस प्रकार प्रश्न किया—अब यदि संसारभय से उद्विग्न हुआ हूँ, तो मुनि के पास मुडित होकर शिखा अंगीकार करेगा या नहीं ? तब देवानुप्रिय ! मैंने स्वयंसे मुनि के पास मुडित होकर, गृह त्याग कर आनवारिक शिखा अंगीकार करना चाहता हूँ । तब देवानुप्रिय ! जैने सुख उपमे, पैसा करेगे ।

तं-जइणं देवानुप्पिया ! -जाव-पव्वाहि । गच्छह णं देवानु-
प्पिया ! जेदुपुत्तं कुडुवे ठावेहि, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणि सीयं
दुहहत्ता णं ममं अंतिए पाउब्भवाहि । सो वि तहेव पाउब्भवइ ।

तए णं जियसत्तू राया कोडुंविपुसिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं
वयासी—

“गच्छह णं तुभ्भे देवानुप्पिया ! अदीणसत्तुस्स कुमारस्स
रायाभिसेयं उवटुवेह ।” ते वि तहेव उवटुवेत्ति-जाव-अभिंसिचंति
-जाव-पव्वइए ।

२४५. तए णं जियसत्तू रायरिसी एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ,
अहिज्जत्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ पाउणित्ता,
मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता-जाव-सिद्धे ।

तए णं सुबुद्धी एक्कारस अंगाइं अहिज्जत्ता, बहूणि वासाणि
सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता
-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

वृत्तिकृत्ता समुद्धृता निगमनगाथा—

२४६. मिच्छत्त-मोहियमणा, पावपसत्ता वि पाणिणो विगुणा ।

फरिहोदगं व गुणिणो, हवंति वरगुरुपसायाओ ।१।

—णायाधम्मकहाओ सु. १ अ. १२



१५. नमिरायरिसी

मिहिलाए राया नमी तस्स य अभिनिक्खमणं—

२४७. चइऊण देवलोगाओ, उववन्नो माणुसंमि लोगंमि ।

उवसंत-मोहणिज्जो, सरई पोरानियं जाइं ।१।

जाइं सरित्तु मयवं, सह-संबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।

पुत्तं ठवित्तु रज्जे, अभिणिक्खमई नमी राया ।२।

तव जितशत्रु राजा ने कहा—देवानुप्रिय ! यदि ऐसा है—
यावत्-प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहते हो तो देवानुप्रिय !
तुम जाओ और ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करो,
स्थापित करके एक हजार पुत्रों द्वारा बहन की जाने वाली
शिविका पर आरूढ़ होकर मेरे पास प्रगट होओ अर्थात् आओ ।
तब सुबुद्धि महामात्य बैगा करके और शिविका पर आरूढ़
होकर आ गया ।

तत्पश्चात् जितशत्रु राजा ने कोटुम्बिक पुत्रों को बुलाया
और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और अदीनशत्रु कुमार
के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित करो-तैयार करो ।
कोटुम्बिक पुरुष भी राजा की आज्ञानुसार राज्याभिषेक की
सामग्री उपस्थित करते हैं यावत्-अभिषेक करते हैं—यावत्-जित-
शत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य के साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली ।
२४५. दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् जितशत्रु राजर्षि ने
ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का
पालन कर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा का शोधन
करके-यावत्-समस्त दुःखों का क्षय कर दिया ।

तब सुबुद्धि (मंत्री) ने (दीक्षा ग्रहण की) एकादश अंगों का
अध्ययन किया, अध्ययन कर बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का
पालन कर, मासिक संलेखना के साथ आत्मा का शोधन कर सब
दुःखों का अन्त किया ।

वृत्तिकार द्वारा समुद्धृत निगमन गाथा—

२४६. जिनका मन मिथ्यात्व से मोहित है अर्थात् जो मिथ्या-
दृष्टि हैं, जो पाप में आसक्त हैं और गुणहीन हैं वे भी उत्तम-
गुरु के प्रसाद से, उनके सत्संग से खाई के जल के समान गुणवान
बन जाते हैं ।१।



१७. नमि राजर्षि

मिथिला के राजा नमि और उनका अभिनिष्क्रमण—

२४७. देवलोक से च्यवित होकर नमि के जीव ने मनुष्यलोक में
जन्म लिया । उसका मोह उपशान्त हुआ तो उसे पूर्व जन्म का
स्मरण हुआ ।१।

भगवान नमि पूर्व जन्म को स्मरण करके अनुत्तर धर्म में
स्वयं संबुद्ध बने । राज्य का भार पुत्र को सौंपकर उन्होंने अभि-
निष्क्रमण किया ।२।

सो देवलोगसरित्ते अंतैउर-वरगओ वरे भोए ।
नुजित्त्तु नमी राया, वुट्ठो भोणे परिच्चयइ ।३।

मिहिला सपुर-जणवयं, वलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिवखंतो, एगंतमहिट्ठिओ भयवं ।४।

कोलाहलगढभयं, आसी मिहिलाए पव्वयंतमि ।
तइया रायगिसिनि, नमिनि अभिनिवखमंतमि ।५।
सवकेण सह नमिरायरिसिणो संवादो—

२४८. अब्भुट्ठियं रायरिसि, पव्वज्जाठाणनुत्तमं ।
सवको माहणह्वेण, इमं वयणमव्ववो ।६।

(१) कि नु भो अज्ज मिहिलाए, कोलाहलगसंकुला ।
सुव्वंति दावणा तद्दा, पासाएसु मिहेसु य ।७।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविदं इणमव्ववो ।८।
मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्त-पुफ-फलोथेए, व्हणं वहुगुणे सया ।९।

घाएण हीरमाणम्मि, चेइयम्मि मणोरमे ।
बुहिया अत्तरणा अत्ता, एए कंदंति भो ! यया ।१०।
एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमि रायरिसि, देविदो इणमव्ववो ।११।

(२) एत्त अग्गो य वाऊ थ, एयं उज्जइ मंदिरं ।
भवयं अंतैउरंतेणं, कौत्त णं तापपेक्खह ।१२।

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ-कारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविदं इणमव्ववो ।१३।
मुहं पत्तामो जीयामो, जौत्ति सो नत्थि सिचणं ।
मिहिलाए उज्जमाणीए, न मे उज्जइ कि चमं ।१४।

दनि राजा श्रेष्ठ अन्तःपुर में रहकर देवेन्द्र के भोगों के समान नन्दर भोगों को भोगकर एक दिन प्रदुष्ट हुए और उन्होंने भोगों का परित्याग कर दिया ।३।

भगवान नमि ने पुर और जनपद मलिन अपनी राक्षसों मिथिला, सेना, अन्तःपुर और नमय परिजनों का परित्याग कर अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बन गये ।४।

जिस नमय राजपि नमि अभिनिष्क्रमण कर प्रस्थित हो रहे थे, उस समय मिथिला में बहुत कोपाटन हुआ था ।५।

शक्र के साथ नमि राजपि का संवाद —

२४८. अनुत्थित हुए (मुनिपद की भूमिका-दीक्षा के लिए प्रदुष्ट हुए) नमि राजपि से ब्राह्मण के रूप में जाने हुए देवेन्द्र ने यह वचन कहा ।६।

(१) हे राजपि ! आज मिथिला नगरी में, प्रासादों में, धरती में कोलाहलपूर्णं दारुण [हृदय विदारक] नन्द नहीं सुनाई दे रहे हैं ? ।७।

देवेन्द्र के इस अर्थ [वात या प्रश्न] को सुनकर देवु और कारण से प्रेरित नमि राजपि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ।८।

मिथिला में एक चैत्य बूना था । जो भीतर छाया तथा मनोरम पत्र-पुष्प एवं फलों से युक्त बहुतों [युवा पतिव्रतों के] लिये सदैव बहुत उपकारक था ।९।

प्रचंड जांधी से उस मनोरम वृक्ष के निर जाते थे वृष्टि, अवारण और आतं से पक्षी कलक कर रहे थे ।१०।

राजपि के इस अर्थ पूर्ण यवनों को सुनकर देवु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजपि से इस प्रकार कहा ।११।

(२) यह जग्गि है, यह तावु है और इनके यह जगता राज भवन जल रहा है । भगवन् ! आज जग्गि उज्जपुर की ओर क्यों नहीं देखते हैं ? ।१२।

देवेन्द्र के इस कथन को सुनकर देवु और कारण से प्रेरित नमि राजपि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा ।१३।

जिनके दात जगता जग्गि कुछ नहीं है, ऐसे ही जग्गि कुछ से नहीं है, मुझ ने भी है । मिथिला के अन्तःपुर नमय कुछ था नहीं बन रहा है ।१४।

सुवप्ण - रूपस्त उ पञ्चमा भवे,
सिया हु केलास - तमा असांयया ।
नरस्त लुद्धस्त न तेहि किनि,
इच्छा हु आगास - तमा असांयया ।१२३।

पुढवी साली जया चेय, हिरण्यं पमुनिस्वह ।
पडिपुण्णं नालमेगस्त, इड विजया तयं थरे ।१२३।

एयमद्वं निसामिन्ना, हेऊ-कारण-चोदओ ।
तओ नमि रायरिसि, देविदो इणमव्वथो ।१२०।
(१०) अच्छेरयमव्वमुदए, भोए चयसि पलियया ।
असंते कामे पत्थेसि, संरुप्पेण विह्वसि ।१२१।

एयमद्वं निसामिन्ना, हेऊ-कारण-चोदओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविदं इणमव्ववी ।१२२।
सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गदं ।१२३।

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया पडपडिघाओ, लोहाओ दुहओ भयं ।१२४।

२४६. अवउज्जिऊण माहणरुवं, विउव्विऊण इंदत्तं ।
वंदइ अभित्थुणंतो, इमाहिं महुराहिं वग्गुहिं ।१२५।

अहो ते निज्जिओ कोहो, अहो माणो पराजिओ ।
अहो ते निरक्किया माया, अहो लोहो वसीकओ ।१२६।

अहो ते अज्जवं साहु ! अहो ते साहु ! मद्दवं ।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा ।१२७।

इहं सि उत्तमो भंते ! पेच्चा होहिसि उत्तमो ।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ ।१२८।

एवं अभित्थुणंतो, रायरिसि उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं करंतो, पुणो पुणो वंदए सक्को ।१२६।
तो वंदिऊण पाए, चक्कं-कुस-लक्खणे मुणिवरस्त ।
आगासेणुप्पइओ, ललिय-चवल-कुण्डल-तिरीडो ।१६०।

मान जोह जोह के जेआम पांर केनं अज्जव पांर हुं, विर
भो नओ मद्दव को इणव हुं मी पुंर ववी हांरि हे । एहिं
इच्छा पांरइ ह मक्कइ अज्जइ हे । इणव

पत्थे, नालइ, जो, मीना जोह पत्थे मक्क इहो ही इच्छ
पुंरि के पांर भो पत्थे इ ववी हे, पत्थे नालइ मक्कइ इहो क
आज्जव इहो ।१२३।

इय मयं नो सुवप्णो हुं जोह कारण मे तंतेइ नमि रायरी
ने देविदो ही उय पत्थे इहो ।१२०।

(१०) असांयया माया ही हे एक पुंर पत्थे माया भोयो
ही नो आण इहो नो जोह पत्थे माया को इच्छ इहो हे ।
माया हीण हे विर पुंर ववी के मक्कइ इहो उय पा
रहे ही ।१२३।

इय मयं नो सुवप्णो हुं जोह कारण मे तंतेइ नमि रायरी
ने देविदो ही उय पत्थे इहो ।१२१।

मायायिक काम भोय कजा हे, विर हे जोह आसांयया कं
के सुवप्ण हे जो काम भोयो को पांरि हो हे, इहो पत्थे इहो
विशेष से उयाव केन मक्कइ कर पांर हे, ए भो पुंरि मे
जाने हे ।१२३।

क्रोध मे अधीयति न जाना होता हे । मान से अधमयति
होती हे । माया से मुगति मे पाया जाती हे । लोभ से दोनों
तरह का-ऐहिक और पारलौकिक-अप-होता हे ।१२४।

२४६. देवेन्द्र ब्राह्मण का रूप छोड़कर अपने वास्तविक इन्द्र
स्वरूप को प्रगट करके इस प्रकार मधुर वाणी से स्तुति करता
हुआ वंदना करता है ।१२५।

अहो ! आश्चर्य है—तुमने क्रोध को जीता है । अहो !
तुमने मान को पराजित किया है । अहो ! तुमने माया को
निराकृत किया है । अहो ! तुमने लोभ को बश मे किया है ।१२६।
अहो ! तुम्हारी सरलता उत्तम है । अहो ! तुम्हारी मृदुता
उत्तम है ! अहो ! तुम्हारी क्षमा उत्तम है । अहो ! तुम्हारी
निर्लोभता उत्तम है ।१२७।

हे भगवन् ! आप इस लोक में भो उत्तम है और परलोक
में भी उत्तम होंगे । कर्ममल से रहित होकर आप लोक में सर्वो-
त्तम स्थान सिद्धि को प्राप्त करेंगे ।१२८।

इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से राजर्षि
को प्रवक्षिणा करते हुए अनेक वार वंदना की ।१२६।

इसके पश्चात् नमि मुनिवर के चक्र और अंकुश लक्षणों से
युक्त चरणों की वंदना करके ललित एवं चपल कुण्डल और
मुकुट को धारण करने वाला इन्द्र ऊपर आकाशमार्ग से चला
गया ।६०।

“एवं खलु देवानुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे आविगरे—
जाव-सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं-जाव-सुहंघुहेणं
विहरमाणे-जाव-बहुसालए चेइए अहापडिक्खं ओग्गहं ओगिण्हिता
संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तं महप्फलं खलु देवानुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं
भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अतिगमण-
वंदण-तमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स
धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स
गहणयाए ?

तं गच्छामो णं देवानुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदामो-
जाव-पज्जुवासामो । एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए
खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविससइ ।”

२५१. तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तेणं माहणेणं एवं
वुत्ता समाणी हट्टुट्टु-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवमविसप्पमाणहियया
करयलपरिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु
उसभदत्तस्स माहणस्स एयमट्टं विणएणं पडिसुणेइ ।

तए णं से उसभदत्ते माहणे कोडुंविणपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता
एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइय-
समखुरवालिहाण-समलि हेयंसिगेहं, जंबूणयामयकलावजुत्त-पति-
विसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुय-पवरकंचणनत्थपग्गहोग-
हियएहिं, नीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणि-
रयण-घंटियाजाल-परिगयं, सुजायजुग-जोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविर-
चियनिम्मियं पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव
उवट्टवेहे, उवट्टवेत्ता मम एतमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुंविणपुरिसा उसभदत्तेणं माहणेणं एवं वुत्ता समाणा
हट्टुट्टुचित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवसविसप्पमाणहियया करयल-
परिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासि—
सामो ! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेति, पडिसुणेत्ता

हे देवानुप्पियो ! इस प्रकार नीचे की जादि करने वाले-
यावत्-सर्वत्र सर्वत्रगी अमण भगवान् महावीर आहावणन कर
द्वारा-यावत्-सुहंघुहेणं विहार करने हुए बहुसालक नामक वंश
में योग्य अवसर को धारण करते समय जोर शोर से आत्मा को
भावित करने हुए विहार करने हे अर्थात् प्रचारे हे ।

हे देवानुप्पियो ! उस प्रकार के अर्थात् भगवान् का नाम और
गोत्र का भी श्रद्धा मगान फलदायक हे जो फिर अभिगमन
(सामने जाना) वंदन, नमन, पूजन-पति-पञ्चय और पशुपासना
करने से फल हो, इसमें क्या कहना ? एक ही श्राव्य और श्राविक
सुवचन के श्रवण से मगान फल मिलना हे तो फिर विपुत्र अर्थ
को ग्रहण करने के द्वारा मगानल मिले, इसमें क्या कहना ?

इमलिये हे देवानुप्पियो ! हम चर्चों और अमण भगवान् महावीर
को वंदन करें-यावत्-उनकी पशुपासना करें । ये अपने को इस
भव में और पर-भव में हित, सुख, अना, (शान्ति) निश्चयन
और शुभ अनुबन्ध के लिये होना ।

२५१. तत्परचात् वह देवानन्द्या ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण की
इस बात को सुनकर हर्षित, मंतुष्ट, प्रसन्न मन वाली हुई-यावत्-
उल्लसित हृदय वाली होकर अपने करतलों को जोड़कर मस्तक
पर अंजलि रूप में करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस कथन को
विनयपूर्वक स्वीकार करती हे ।

उसके बाद वह ऋषभदत्त ब्राह्मण कौटुम्बिक पुरुषों को
बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्पियो ! शीघ्र गति करने वाले, प्रशस्त और सदृश
रूप वाले, समान खुरों और पूछ वाले, समान उगे सींग वाले,
सुवर्ण के आभूषणों से शृंगारित, प्रशस्त गति वाले, चाँदी की
घंटियों से युक्त, सुवर्णमय सूत की नाथ द्वारा बंधे हुए, नील
कमल के शिर पेच वाले अर्थात् जिनके मस्तक पर नील कमल
बंधे हुए हो ऐसे उत्तम युवा वंशों से युक्त, अनेक प्रकार की
मणिमय घंटियों की माला से व्याप्त, उत्तम काष्ठ का बना
जिसमें युगाजुआरी लगा हो और जोत की डोरियाँ जिसमें अच्छी
तरह से लगी हुई हों, और बहुत ही चतुराई से जिसे बनाया गया
हो, ऐसे प्रवर लक्षण युक्त, धार्मिक श्रेष्ठयान-रथ को तैयार करके
शीघ्र ही लाओ और लाकर मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष ऋषभदत्त ब्राह्मण के कथन को
सुनकर हृष्ट तुष्ट एवं आनंदित मन वाले हो गये और करतल
को जोड़ अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोले—हे स्वामिन् ! तथारूप
आपकी आज्ञा मान्य है, ऐसा कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को

जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उसभदत्तं माहणं पुरओ कट्ठु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सुसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ ।

तए णं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलयबाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए विट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ।

देवाणंदाए एवंरुवदंसणेणं गोयमपण्हो

भ० महावीरकयं समाहाणं च—

२५४. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—किं णं भंते ! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलयबाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए विट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ?

गोयमा ! दि समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

“एवं खलु गोयमा ! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए । तेणं एसा देवाणंदा माहणी तेणं पुव्वपुत्तिसिहाणुरागेणं आगयपण्हया - जाव - समूसवियरोमकूवा ममं अणिमिसाए विट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ।”

भ० महावीरेण धम्मकहणं—

२५५. तए णं समणे भगवं महावीरे उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए य माहणीए तीसे य महत्तिमहालियाए इसिपरिसाए-जाव-जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ—धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया ।

उसहदत्तस्स पव्वज्जाभिलासो—

२५६. तए णं से उसभदत्ते माहणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठुइ उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

(फिर) जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं, वहाँ आती हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है । प्रदक्षिणा करते वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे करके खड़ी-खड़ी अपने परिवार के साथ गुथ्रुपा करती हुई, नमती हुई, अभिमुख रहकर, विनयपूर्वक हाथ जोड़ उपासना करती है ।

उसके बाद उस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में से दूध की धारा छूट पड़ी, लोचन आनन्दाश्रु से भर आये, हर्षातिरेक से फूलती हुई भुजाओं को उसके कड़ाओं ने रोका, हृषं के कारण शरीर इतना प्रफुल्लित हो गया कि उसका कंचुक विस्तीर्ण हो गया, मेघधारा से विकसित हुए कदम्ब पुष्प की तरह रोम-रोम खड़ा हो गया और श्रमण भगवान् महावीर को अपलक दृष्टि से निहारती हुई खड़ी रही ।

देवानन्दा के इस रूप को देखकर गौतम का प्रश्न और भगवान महावीर कृत समाधान—

२५४. हे भदन्त ! ऐसा कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करते हैं, नमन करते हैं, वंदन और नमन करके इस प्रकार कहा—हे भगवन् ! इस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में से दूध की धारा क्यों छूटी, लोचन आनन्दाश्रुओं से क्यों भर आये, हर्षातिरेक से फूलती भुजाएँ कड़ाओं द्वारा क्यों रकीं, कंचुक विस्तीर्ण क्यों हो गया और मेघ धारा से विकसित हुए कदम्ब पुष्प की तरह ऊर्ध्वमुखी रोमावली युक्त होकर देवानुप्रिय को अनमिष दृष्टि से देखती हुई क्यों खड़ी है ?

श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से कहा—

“हे गौतम ! यह देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है, मैं देवानन्दा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ । जिससे इस देवानन्दा ब्राह्मणी के उस पूर्वपुत्र-स्नेह-राग से स्तनों से दूध की धारा छूट पड़ी—यावत्-रोमांचित होकर मुझे अनिमिष दृष्टि से देखती-देखती खड़ी है ।” भगवान् महावीर द्वारा धर्म कथन—

२५५. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानन्दा ब्राह्मणी और उस विशालतम ऋषिपर्वद को यावत्-योजन पर्यन्त में व्याप्त होने वाले स्वर से अर्धमागधी भाषा में प्रवचन किया-धर्म कहा-यावत्-परिषद वापस गई ।

ऋषभदत्त की प्रव्रज्याभिलाषा—

२५६. उसके बाद वह ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित हुआ, लुप्त होकर अपने स्थान से खड़ा हुआ, खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमन किया, वंदन नमन करके इस प्रकार बोला—

देवाणंदाए वि पव्वज्जा सिद्धी य—

२५६. तए णं सा देवाणंदा माहणी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठुदा समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! एवं जहा उसभवत्तो तहेव-जाव-धम्ममाइविखयं ।

तए णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव भुंडावेइ, पव्वावेत्ता सयमेव अज्जचंदणाए अज्जाए सीसिणित्ताए दलयइ ।

तए णं सा अज्जचंदणा अज्जा देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेत्ति, सयमेव गुंडावेत्ति, सयमेव सेहावेत्ति ।

एवं जहेव उसभवत्तो तहेव अज्जचंदणाए अज्जाए इमं एयारूवं धम्मियं उवदेसं सम्मं संपडिवज्जइ, तमाणाए तहा गच्छइ-जाव-संजमेणं संजमति ।

तए णं सा देवाणंदा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतियं सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठम-दसम-दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्महिं अप्पाणं भावेभाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेवेइ, छेवेत्ता चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सब्बदुक्खप्पहीणा ।

—भग० स० ६, उ० ३३

देवानन्दा की भी प्रशंसा और सिद्धि—

२५६. उसके बाद वह देवानन्दा ब्राह्मणी श्रमण भगवान् महावीर के मुख से धर्म श्रवण कर और समझकर श्रमण संन्युष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन आरक्षिणा प्रक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा करके नंदना, नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! यह उसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह उसी तरह है, इसी तरह भगवदत्त के मह्य-गाम्-धर्म कथन किया ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने स्वयं देवानन्दा को दीक्षा दी, स्वयं मुंश्चि किया, दीक्षा देकर स्वयं आर्या चन्दना नामक आर्या को शिष्या रूप में सीपते है ।

तब वह आर्या चंदना आर्या देवानन्दा ब्राह्मणी को स्वयमेव दीक्षा देती है, स्वयमेव मुंश्चि करती है, स्वयमेव जिज्ञा देती है ।

इस प्रकार भगवदत्त ब्राह्मण की तरह देवानन्दा भी आर्या चन्दना के यह और इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक्तया स्वीकारती है और उसकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करती है-यावत्-संयम द्वारा (यतनापूर्वक) संयमाराधना करती है ।

उसके बाद वह देवानन्दा आर्या चन्दना आर्या से सानायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करती है, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थभक्त, पष्ठ, अष्ट, दशम, द्वादश भक्तों, मासिक, अर्धमासिक तप-श्रचर्या आदि विचित्र तपकर्म से आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करती है, पालन करके मासिकी संल्लेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करती है, शुद्ध करके साठ भक्तों का अनशन द्वारा त्याग करती है और कर्म छेदन करके अंतिम उच्छ्वास निःश्वास में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त परिनिवृत्त और सर्वदुःखों से मुक्त होती है ।

१७. बालतवस्सी मोरियपुत्ते तामली अणगारे

भ. महावीरसमोसरणे ईसाणदेविदेण नट्टविही—

२६०. तए णं समणे भगवं महावीरे अणया कयाइ मोयाओ नयरीओ नंदणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ।

१७. बालतपस्वी मौर्यपुत्र तामली अणगार

भगवान् महावीर के समवसरण में ईशान देवेन्द्र द्वारा नाट्यविधि—

२६०. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान् महावीर मोका नगरी के नन्दन नामक चैत्य से बाहर निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपद में विहार करते हैं ।

निसम्म ? जं णं ईसाणेणं देविदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवज्जुती दिव्वा देवानुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ?”

मोरियपुत्ते तामली गाहावई तस्स य पाणामा पव्वज्जा-गहणाभिलासो—

२६३. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे तामलित्ती नामं नयरी होत्था—वण्णओ । तत्थ णं तामलित्तीए नयरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था ।

तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलिस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तकालसमयंसि कुटुम्बजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—“अत्थि ता मे पुरा पोरानाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, सुवण्णेणं वड्ढामि, धणेणं वड्ढामि, धण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहि वड्ढामि, पसूहि वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोरानाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उवेहेमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि-जाव-अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, जावं च णं मे मित्त-नाति-नियग-सयण-संबंधि-परियणे आढाति परियाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएण पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दारुमयं पडिग्गहं करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणं आमंतेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउ-लेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्का-रेत्ता, सम्माणेत्ता, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुटुंवे ठावेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता, सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए ।

गुवचन गुना और अवधारण किया या ? जिसके निमित्त से देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देव कृद्धि, दिव्य देवश्रुति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध किया, प्राप्त किया और पूर्णरूप से अधिगत किया ? मोर्यपुत्र तामली गृहपति और उसकी प्राणामा पत्रया ग्रहण-अभिलाषा—

२६३. हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नाम की नगरी थी-वर्षान्त । उस ताम्रलिप्ती नगरी में मोर्यपुत्र तामली नामक गृहपति रहता था जो-आद्य-धनिक धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत-दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला भी नहीं था ।

तत्पश्चात् किसी एक दिवस उस मोर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पूर्व भाग के पिछले भाग में अर्थात् मध्य रात्रि में कुटुम्ब की चिन्ता में जागते हुए इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-‘पूर्व में किये हुए, प्राचीन सुआचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याण रूप किये हुए कर्मों का कल्याण फल रूप प्रभाव अभी उदीयमान है जिससे मेरे घर में हिरण्य की वृद्धि हो रही है, सुवर्ण की वृद्धि हो रही है, धन की वृद्धि हो रही है, पुत्रों की वृद्धि हो रही है, पशुओं की वृद्धि हो रही है, विपुल धन-कनक-रत्न-मणि-मोती-शंख-चन्द्रकान्त मणि, प्रवाल, माणिक आदि सार-भूत धन की दिनोंदिन वृद्धि हो रही है तो क्या एकान्त रूप में पूर्वकृत, पुरातन सुचारु रूप से आचरण किये गये, सुपराक्रमयुक्त शुभ और कल्याणरूप कृत कर्मों के नाश की उपेक्षा करता रहूँ कि इतना सुख काफी है और ऐसा मानकर भविष्य के लिये उदासीन हो जाऊँ ?

परन्तु जब तक मैं हिरण्य से बढ़ रहा हूँ-यावत्-अधिकाधिक बढ़ रहा हूँ तथा जब तक मेरे मित्र, मेरे जाति-कुटुम्बी, स्वजन, सम्बन्धी और कर्मचारी जन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी मानते हैं, मेरा सत्कार-सम्मान करते हैं, मुझे कल्याणरूप, मंगल-रूप, देवरूप मानकर चैत्य की तरह विनयपूर्वक सेवा करते हैं तब तक मुझे स्वयं अपना कल्याण कर लेने की जरूरत है इसलिये आगामी दिन इस काली रात्रि बीतने के बाद प्रातः होने पर-यावत्-सूर्योदय होने पर, ज्वलंत तेज के साथ सहस्सरश्मि दिनकर के उदित होने पर स्वयंमेव लकड़ी के पात्र वनवाकर अथवा ग्रहण करके पुष्कल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवा-कर मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन और वस्त्र, गंध, माला अलंकार आदि से सत्कार कर सम्मान कर उन्हीं मित्रों, जातिजनों, निजीस्वजनों, सम्बन्धियों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर-आज्ञा लेकर स्वयंमेव काष्ठपात्र को लेकर मुंडित होकर प्राणामा नामक दीक्षा से दीक्षित होऊँ ।

निसम्म ? जं णं ईसाणेणं देविदेणं देवरण्णा सा दिव्वा देविद्धी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ?”

मोरियपुत्ते तामली गाहावई तस्स य पाणामा पव्वज्जा-गहणाभिलासो—

२६३. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे तामलित्ती नामं नयरी होत्था—वण्णओ । तत्थ णं तामलित्तीए नयरीए तामली नामं मोरियपुत्ते गाहावई होत्था—अद्धे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था ।

तए णं तस्स मोरियपुत्तस्स तामलिस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तकालसमयंसि कुटुम्बजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—“अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्डामि, सुवण्णेणं वड्डामि, धणेणं वड्डामि, धण्णेणं वड्डामि, पुत्तेहिं वड्डामि, पसूहिं वड्डामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभिवड्डामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खयं उव्वेहेमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्डामि-जाव-अतीव-अतीव अभिवड्डामि, जायं च णं मे मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणे आउत्ति परिआणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं धिणएण पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव दावमयं पडिग्गहं करतेता विउलं असण-पाण-याइम-साइमं उव्वएउत्तेता मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणं आगंतेता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउ-तेणं अमण-पाण-याइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्का-रेता, मन्नाजेता, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ वेइपुत्त कुट्टे उयेता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं वेइपुत्त च आपुत्तिता, सयमेव दावमयं पडिग्गहं गहाय मुंहे भविता वानामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए ।

सुवचन सुना और अवधारण किया था ? जिसके निमित्त से देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव लब्ध किया, प्राप्त किया और पूर्णरूप से अधिगत किया ? मौर्यपुत्र तामली गृहपति और उसकी प्राणामा प्रव्रज्या ग्रहण-अभिलाषा—

२६३. हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ती नाम की नगरी थी-वर्णन । उस ताम्रलिप्ती नगरी में मौर्यपुत्र तामली नामक गृहपति रहता था जो-आद्य-धनिक धनाढ्य-यावत्-अपरिभूत-दूसरों से पराभव को प्राप्त करने वाला भी नहीं था ।

तत्पश्चात् किसी एक दिवस उस मौर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पूर्व भाग के पिछले भाग में अर्थात् मध्य रात्रि में कुटुम्ब की चिन्ता में जागते हुए इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ-‘पूर्व में किये हुए, प्राचीन सुआचरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याण रूप किये हुए कर्मों का कल्याण फल रूप प्रभाव अभी उदीयमान है जिससे मेरे घर में हिरण्य की वृद्धि हो रही है, सुवर्ण की वृद्धि हो रही है, धन की वृद्धि हो रही है, पुत्रों की वृद्धि हो रही है, पशुओं की वृद्धि हो रही है, विपुल धन-कनकरत्न-मणि-मोती-शंख-चन्द्रकान्त मणि, प्रवाल, माणिक आदि सार-भूत धन की दिनोंदिन वृद्धि हो रही है तो क्या एकान्त रूप में पूर्वकृत, पुरातन सुचारु रूप से आचरण किये गये, सुपराक्रमयुक्त शुभ और कल्याणरूप कृत कर्मों के नाश की उपेक्षा करता रहूँ कि इतना सुख काफी है और ऐसा मानकर भविष्य के लिये उदासीन हो जाऊँ ?

परन्तु जब तक मैं हिरण्य से बढ़ रहा हूँ-यावत्-अधिकाधिक बढ़ रहा हूँ तथा जब तक मेरे मित्र, मेरे जाति-कुटुम्बी, स्वजन, सम्बन्धी और कर्मचारी जन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी मानते हैं, मेरा सत्कार-सम्मान करते हैं, मुझे कल्याणरूप, मंगल-रूप, देवरूप मानकर चैत्य की तरह विनयपूर्वक सेवा करते हैं तब तक मुझे स्वयं अपना कल्याण कर लेने की जरूरत है इसलिये आगामी दिन इस काली रात्रि वीतने के बाद प्रातः होने पर-यावत्-सूर्योदय होने पर, ज्वलंत तेज के साथ सहस्तरश्मि दिनकर के उदित होने पर स्वयमेव लकड़ी के पात्र बनवाकर अथवा ग्रहण करके पुष्कल अन्न, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाकर मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अन्न, पान, खादिम, स्वादिम भोजन और वस्त्र, गंध, माला अलंकार आदि से सत्कार कर सम्मान कर उन्हीं मित्रों, जातिजनों, निधीस्वजनों, सम्बन्धियों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर-आशा लेकर स्वयमेव काष्ठपात्र को लेकर मुंडित होकर प्राणामा नामक दीआ से दीशित होऊँ ।

पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिगहं अभिगिण्हि-
स्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिकिखत्तेणं तवो-
कम्मणेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स
आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तेए, छट्ठस्स वि
ये णं पारणयसि आयावणभूमीओ पच्चोहमिता सयमेव दाहमयं
पडिग्गहं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं
घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्त सुद्धोदणं पडिग्गाहेत्ता तं
तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारित्तेए
त्ति” कट्ठु एवं सपेहेइ, सपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-
जाव-उट्ठियम्मि सरे सहस्सरस्तिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेय
दाहमयं पडिग्गहं करेइ, करेत्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं
उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता ततो पच्छा ण्हाए कयवलिकम्मे
कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धपावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर
परिहिए अप्पमहग्घाभरणालं कियसरीरे भोयणवेत्ताए भोयणमंडवंसि
सुहासण-वरंगए तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धि
तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसादेमाणे वीसादेमाणे परि-
भाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ ।

तामलिणा पाणामापव्वज्जागहणं—

२६४. जिमियभुत्तुत्तराणए वि य णं समाणे आयंते चोवखे परमसुइ-
भूए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-
खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ,
तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठुत्तं
कुट्ठुवे ठावेइ, ठावेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं
जेट्ठुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मुंढे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए
पव्वइए । पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिगहं अभि-
गिण्हइ—“कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं-जाव-आहारित्तेए
त्ति कट्ठु इमं एयारूवं अभिगहं, अभिगिण्हित्ता जावज्जीवाए
छट्ठंछट्ठेणं अणिकिखत्तेणं तवोक्कम्मणेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय-
पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ ।
छट्ठस्स वि य णं पारणयसि आयावणभूमीओ पच्चोहभइ, पच्चोह-
मित्ता सयमेव दाहमयं पडिग्गहं गहाय तामलित्तीए नयरीए उच्च-
नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ,
अडित्ता सुद्धोयणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत्ता तिसत्तक्खुत्तो उदएणं

दीक्षित होने पर तत्काल ही यह अभिग्रह धारण करूंगा-
जहाँ तक जीवित रहूँ वहाँ तक अर्थात् यावज्जीवन निरंतर
षष्ठ-षष्ठ भक्त दो-दो उपवास-करूँगा । सूर्य के समक्ष ऊपर की
ओर हाथ करके आतापना सहन करता रहूँगा और षष्ठ भक्त
के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरकर स्वयं ही काष्ठ
पात्र को लेकर ताम्रलिप्ती नगरी में उच्च, नीच और मध्यम
स्थिति वाले कुलों में से भिक्षा लेने की विधिपूर्वक केवल शुद्ध
भोदन अर्थात् चावल ही लेकर उसे इक्कीस बार पानी से धोने
के बाद उसे खाऊँगा, इस प्रकार का अभिग्रह करने का उसने
संकल्प किया, ऐसा संकल्प करके प्रातःकाल होने पर-यावत्-
ज्वलंत तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के उदित होने पर वह
स्वयंमेव काष्ठपात्र बनवाता है, पात्र बनवाकर विपुल अशन,
पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाता है, तैयार करवाने
के बाद स्नान किया, बलिकर्म-पूजा कर्म किया, कौतुक मंगल
और प्रायश्चित्त किया और उसके बाद शुद्ध और पहनने योग्य
मांगलिक उत्तम वस्त्रों को पहन कर अल्प किन्तु महाभूल्यवान
आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजन के समय भोजन
मंडप में सुखासन पर बैठकर मित्रों, जातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों
और परिजनों के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम
भोजन को चखते हुए, स्वाद लेते हुए, दूसरों को परोसते हुए
और खाते हुए विहार करता है ।

तामली के द्वारा प्राणामाप्रव्रज्या ग्रहण—

२६४. वह तामली गृहपति जीमा (भोजन किया) और भोजन
करने के बाद उसने कुल्ला किया, मुँह धोया और परम शुद्ध
बना, इसके बाद उसने अपने उन मित्रों, जाति-बंधुओं, पारि-
वारिक जनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों का विपुल अशन,
पान, खादिम, स्वादिम आहार और वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों
से सत्कार सम्मान किया और उन्हीं मित्रों, जातिजनों, कुटुम्बियों,
सम्बन्धियों और परिजनों के सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में
स्थापित किया, स्थापित करके मित्रों, जातिजनों, स्वजनों,
सम्बन्धियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र से पूछा, पूछकर मुंडित ही
प्राणामा दीक्षा द्वारा दीक्षित हुआ । दीक्षा होने के साथ ही उसने
इस प्रकार का अभिग्रह किया—‘जब तक मैं जीवित हूँ तब तक
षष्ठ-षष्ठ भक्त तप करूँगा-यावत्-इस प्रकार अभिग्रह करके
यावज्जीवन षष्ठ-षष्ठ भक्त तप कर्म पूर्वक ऊँचे हाथ कर सूर्य के
समक्ष खड़े होकर आतापना भूमि में आतापना लेता हुआ विचरण
करता है । षष्ठम भक्त के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे
उतरता है, उतर कर स्वयंमेव काष्ठ पात्रों को लेकर ताम्रलिप्ती
नगरी में उच्चनीच मध्यम स्थिति वाले घरों से गृह सामुदायिक
भिक्षा लेने की विधिपूर्वक भिक्षा के लिये भ्रमण करता है,

पक्खालेइ, पक्खालेत्ता तओ पच्छा आहारं आहारैइ ।

पाणामापव्वज्जाविवरणं—

२६५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चंइ—पाणामा पव्वज्जा ?

इ गोयमा ! पाणामाए णं पव्वज्जाए पव्वइए समाणे जं जत्थ पासइ—इदं वा खदं वा रुदं वा सिवं वा वेसमणं वा अज्जं वा कोट्टकिरियं वा रायं वा ईसरं वा तलवरं वा मांडवियं वा कोडुं-वियं वा इभं वा सेट्ठि सेणावइं वा सत्थवाहं वा काकं वा साणं वा पाणं वा—उच्चं पासइ उच्चं पणामं करेइ, नीयं पासइ नीयं पणामं करेइ, जं जहा पासइ तस्स तहा पणामं करेइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चंइ पाणामा पव्वज्जा ।

तामलिणा पाओवगमणसंलेहणागहणं—

२६६. तए णं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के-जाव-धमणिसंतए जाए यावि होत्था ।

तए णं तस्स तामलिसस बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्ताकालसमयंसि अण्णिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेया-रूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

“एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे-जाव-धमणिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे कम्मे वले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे तावता से सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते तामलिस्तीए नगरीए दिट्ठाभट्टे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परिवायसंगतिए य आपुच्छित्ता तामलिस्तीए नगरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छित्ता पाडुग-कुंडिय-मादीयं उवागरणं दारुमयं च पडिग्ग-हणं एणंते एडित्ता तामलिस्तीए नगरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णियत्तणिय-मंडलं आलिहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकांखमाणस्स विहरित्तए”

भ्रमण करके मात्र चावल लेता है, चावल लेकर इक्कीस बार धोता है, धोने के पश्चात् उनका आहार करता है ।

प्राणामा प्रव्रज्या विवरणं—

२६५. हे भगवन् ! वह प्रव्रज्या 'प्राणामा' कहलाती है, उसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! जिसने प्राणामा प्रव्रज्या ली हो वह जिसको जहाँ देखता है, उसको अर्थात् इन्द्र को, स्कन्द को, रुद्र को, शिव को, वैश्रमण को—कुवेर को, आर्या को, पावती को, कोट्ट को-महिषा-सुर को, कुटती, चंडिका को, राजा को, ईश्वर को, तलवर को, कोटपाल को, मांडविक को, कौटुम्बिक को, इभ को, सेठ को, सेनापति को, सार्यवाह को, कोए को, कुत्ते को और चांडाल को प्रणाम करता है—ऊँचे को देखकर उच्च रीति से प्रणाम करता है, नीचे को देखकर नीची रीति से प्रणाम करता है, जिसको जिस रीति से देखता है उसको उस रीति से प्रणाम करता है । इसी कारण उस प्रव्रज्या को प्राणामाप्रव्रज्या कहते हैं ।

तामली द्वारा पादोपगमन संलेखना ग्रहणं—

२६६. तत्पश्चात् वह मौर्यपुत्र तामली उस उदार. विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप कर्म द्वारा सूख गया-यावत्-उसकी सभी धमनियाँ बाहर दिखाई देने लगीं, ऐसा दुबला हो गया ।

उसके बाद किसी एक दिवस मध्य रात्रि में अनित्यता के चिन्तन में लीन होकर जागते हुए उस बाल तपस्वी तामली को इस प्रकार का संकल्प-यावत्-विकल्प उत्पन्न हुआ ।

“मैं इस उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, शोभायुक्त, उदग्र, उदात्त, उत्तम, महाप्रभावशाली तपकर्म से सूख गया हूँ, रूक्ष हो गया हूँ-यावत्-मेरी सभी नसें शरीर के ऊपर दिखालाई देने लगीं हैं, इसलिये जहाँ तक मुझ में उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है और पुरुषाकार पराक्रम है, तब तक मेरा श्रेय इसमें है कि रात्रि के बीतने के बाद प्रातःकाल होने पर-यावत्-ज्वलन्त सहस्सरधिम दिनकर सूर्य का उदय होने पर ताम्रलिप्ती नगरी में जाकर देखे हुए को, जिनसे वातचीत हुई हो, ऐसे पुरुषों को, पाषण्डस्थों को, गृहस्थों को, पूर्वपरिचितों को, दीक्षित होने के बाद परिचय में आये हुए को अथवा मेरी जैसी दीक्षा पर्याय वालों को पूछकर ताम्रलिप्ती नगरी के बीच में से निकलकर पादुका, कुण्डी आदि उपकरणों को और काष्ठ पात्रों को एकान्त स्थान में रखकर ताम्रलिप्ती नगरी के उत्तर पूर्व दिग्भाग में ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखकर संलेखना तप द्वारा आत्मा को निर्मल बनाकर, आहार, पानी का त्यागकर, वृक्ष की तरह स्थिर रहकर काल की अवकांक्षा न करते हुए विचरण करूँ,” ऐसा विचार करता है, विचार करके

त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीय-जाव-उट्ठियन्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणपरे तेयसा जलंते तामलिच्चीए नगरीए विट्ठाभट्टे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छइ, आपुच्छिता तामलिच्चीए नयरीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छिता पादुग-कुंडिय-मादीयं उवगरणं दारुमयं च पडिगहगं एगंते एडेइ, एडेत्ता तामलिच्चीए नगरीए उत्तरपुरत्थिये दिसिभाए णियत्तणिय-मंडलं आलिहइ, आलिहत्ता संलेहणाञ्जूसणाञ्जूसिए भत्तपाणपडियाइविखए पाओवगमणं निवण्णे ।

बलिचंचारायहाणिवत्थव्वअसुरकुमारदेवेहि इन्दत्थं पत्थणा तामलिणा अनियाणकरणं च—

२६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिचंचा रायहाणी अण्णदा अपुरोहिया यावि होत्था ।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया वहवे असुरकुमारा देवा य देवोओ य तामलि बालतवस्सिं ओहिणा आभोएत्ति, आभोएत्ता अण्णमण्णं सदावेत्ति, सदावेत्ता एवं वयासि—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अण्णदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवानुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्ठिया इंदाहीणकज्जा, अयं च णं देवानुप्पिया ! तामली बालतवस्सी तामलिच्चीए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिये दिसिभागे नियत्तणिय-मंडलं आलिहत्ता संलेहणाञ्जूसणाञ्जूसिए भत्तपाणपडियाइविखए पाओवगमणं निवण्णे, तं सेयं खलु देवानुप्पिया ! अम्हं तामलि बालतवस्सिं बलिचंचाए रायहाणीए ठित्तिपकप्पं पकरावेत्तए” त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणंति, पडिसुणंत्ता बलिचंचाए रायहाणीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छत्ति, निग्गच्छिता जेणेव रुय्यागिदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छत्ति, उवागच्छिता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहण्णित्ता-जाव-उत्तर-वेउव्वियाइं रुवाइं विकुव्वंति विकुव्वित्ता ताए उव्विकट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए छेयाए सीहाए सिग्घाए उट्ठयाए दिव्वाए देवगईए तिरियं असंखेज्जाणं दीवसमुग्घाणं मज्झमज्जेणं वीईवय-माणा वीईवयमाणा-जेणेव जंबूद्वीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलिच्ची नगरी जेणेव तामली मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छत्ति, उवागच्छिता तामलिस्स बालतवस्सिस्स उप्पि सपविख सपडिदिस्सि

रात्रि व्यतीत होने पर कल प्रातःकाल-यावत्-ज्वलंत सहस्सरस्मि दिनकर सूर्य के उदय होने पर ताम्रलिप्ती नगरी में जाकर देखे हुआ को, वार्तालाप हुआ ऐसे पुरुषों को, पाखंडस्थों को, गृहस्थों को, जान पहचान वालों और दीक्षित होने के बाद परिचय में आये हुआ को पूछता है, पूछकर ताम्रलिप्ती नगरी के बीच में से निकलता है, निकलकर पादुका, कुण्डी आदि उपकरणों और काष्ठ पात्रों को एकान्त में रखता है, रखकर ताम्रलिप्ती नगरी के उत्तर पूर्व दिशाभाग—ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखता है, देखकर संलेखना तप द्वारा आत्मा को परिभाजित करके आहार-पानी का त्याग करके उसने पादोपगमन नामक अनशन अंगीकार कर लिया ।

बलिचंचा राजधानी वासी असुरकुमार देवों के द्वारा इन्द्रार्थ-प्रार्थना और तामली द्वारा अनिदानकरण—

२६७. उस काल और उस समय बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित थी ।

तब उस बलिचंचा राजधानी में निवास करने वाले बहुत से देवों और देवियों ने बाल तपस्वी तामली को अवधिज्ञान से देखा, देखकर वे एक दूसरे को बुलाते हैं, बुलाकर एक दूसरे से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! अभी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित है और हे देवानुप्रियो ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले और इन्द्राधिष्ठित हैं, अपने सब कार्य इन्द्राधीन हैं और हे देवानुप्रियो ! यह तामली बालतपस्वी ताम्रलिप्ती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिशा-ईशान कोण में—निर्वर्तनिक मंडल को देखकर संलेखना द्वारा आत्मा में रमण करते हुए भक्तपान का त्याग करके पादोपगमन अनशन को धारण करके स्थित है, तो हे देवानुप्रियो ! यह अपने लिये श्रेयरूप है कि हम लोग तामली बालतपस्वी को बलिचंचा राजधानी में क्षिति प्रकल्प—इन्द्र रूप में आने का संकल्प करायें—इस प्रकार का विचार कर परस्पर एक दूसरे की बात को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके बलिचंचा राजधानी के मध्य में से निकलते हैं, निकलकर जिस ओर रुच-केन्द्र उत्पात-पर्वत है, वहाँ आते हैं, आकर वैक्रिय समुद्रघात की विकुर्वणा करते हैं, विकुर्वणा करके-यावत्-उत्तर-वैक्रिय रूपों को बनाते हैं, बनाकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, जयवती, निपुण सिंह जैसी शीघ्र उद्भूत दिव्य देवगति द्वारा तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य में से गुजरते हुए जिस तरफ जंबूद्वीप नामक द्वीप है, भारतवर्ष है, जहाँ ताम्रलिप्ती नगरी है, जहाँ तामली मौर्यपुत्र है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर तामली बालतपस्वी के ऊपर, समक्ष और सप्रतिपक्ष दिशा में अर्थात् उसके सामने खड़े

ठिच्चा दिव्वं देविंइडि दिव्वं देवज्जुतिं दिव्वं देवाणुमागं दिव्वं बत्तोसतिविहं नट्टुविहि उवदंसेति, उवदंसेत्ता तामलिं बालतवस्सि तिव्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे बलिचंचारायहाणीवत्यव्वया बह्वे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो । अम्हणं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्टिया इंदाहीणकज्जा, तं तुव्वे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचं रायहाणि आडाह परियाणह सुमरह, अट्ठं वंधह, निदाणं पकरेह, ठित्तिपकप्पं पकरेह, तए णं तुव्वे कालमासे कालं किच्चा बलिचंचाए रायहाणीए उववज्जिस्सह, तए णं तुव्वे अम्हं इंदा भविस्सह, तए णं तुव्वे अम्हेहिं सट्ठि दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह ।

तए णं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचंचारायहाणिवत्यव्वएहिं बह्वेहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आडाइ, नो परियाणेइ, तुत्तिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्यव्वया बह्वे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं मोरियपुत्तं बोच्चं पि तच्चं पि तिव्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति-जाव-अम्हं च णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचा रायहाणी अणिदा अपुरोहिया, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! इंदाहीणा इंदाहिट्टिया इंदाहीण-कज्जा, तं तुव्वे णं देवाणुप्पिया ! बलिचंचं रायहाणि आडाह परियाणह सुमरह, अट्ठं वंधह, निदाणं पकरेह, ठित्तिपकप्पं पकरेह-जाव-दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आडाइ, नो परियाणेइ, तुत्तिणीए संचिट्ठइ ।

२६८. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्यव्वया बह्वे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलिं बालतवस्सिणा अणाडाइज्जमाणा अपरियाणित्थमाणा जामेयं वित्तिं पाउब्भया तामेयं वित्तिं पटिगया ।

होकर दिव्य देवज्जुति, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव और दिव्य बत्तोस प्रकार की नाट्यविधियों को बताते हैं, दिखाते हैं, दिखाकर तामली बालतपस्वी को तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वंदना और नमस्कार करते हैं, वंदना और नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले हम बहुत से असुरकुमार देव और बहुत सी देवियाँ आप देवानुप्रिय को वंदना करते हैं, नमन करते हैं, सत्कार और सम्मान करते हैं तथा आपको कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप मानकर आपकी पयुं पासना करते हैं, हे देवानुप्रिय ! अभी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित विहीन है और हे देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले इन्द्राधिष्ठित हैं तथा हमारे सब कार्य इन्द्राधिष्ठित हैं तथा हमारे सब कार्य इन्द्र के अधीन हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! आप बलिचंचा राजधानी का आदर करो, उसका स्वामित्व ग्रहण करो और स्मरण करो, इसके लिये विचार करो, निदान करो, इन्द्र रूप में स्वामी होने का संकल्प करो जिससे तुम काल मास में काल करके बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न होंगे, तब तुम हमारे इन्द्र होओगे और तब तुम हमारे साथ दिव्य भोग्य भोगों को भोगते हुए आनन्दानुभव करोगे ।

तब उस तामली बालतपस्वी ने उन बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों की बात को सुनकर उसका आदर नहीं किया, उसको स्वीकार नहीं किया किन्तु मौन धारण कर लिया ।

तत्पश्चात् वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियाँ उस तामली मौर्यपुत्र की दुवारा तिवारा तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं—यावत्—हे देवानुप्रिय ! हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित विहीन है, हे देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्र के अधीन रहने वाले हैं, इन्द्राधिष्ठित हैं और हमारे सब कार्य इन्द्राधीन हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम बलिचंचा राजधानी का आदर करो, उसका इन्द्रत्व स्वामिपना ग्रहण करो, स्मरण करो, इसके लिये विचार करो, निदान करो, स्वामीरूप होने का संकल्प करो—यावत्—दुवारा भी, तिवारा भी इसको सुनकर उस बात का आदर नहीं किया, उसको स्वीकार नहीं किया किन्तु मौन धारण कर लिया ।

२६८. तत्पश्चात् जव तामली बालतपस्वी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब वे बलिचंचा राजधानी के निवासी बहुत से देव और देवियाँ उस तामली बालतपस्वी के द्वारा अनादृत से होकर, बात को स्वीकार न किये जाने के कारण जिस दिशा में से प्रगट हुए थे, वापस उसी दिशा में चले गए ।

तामलिस्स ईसाणिन्दत्तण उववाओ—

२६६. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे कप्पे अण्णिदे अपुरोहिण्णं यावि होत्था ।

तए णं से तामली बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं सट्ठि वासस-हस्साइं परियायं पाडणित्ता, दोमसियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा ईसाणकप्पे ईसाणवड्डेसए विमाणे उववायसभाए देवस-यणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए ईसाण-देविदविरहियकालसमयंसि ईसाणदेविदत्ताए उववण्णे ।

२७०. तए णं से ईसाणे देविदे देवराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए-जाव-भासा-मण-पज्जत्तीए ।

ईसाणिन्दत्तं णच्चा असुरकुमारदेवाणं रोसो तामलि-सरोरहीलणं च—

२७१. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य तामलि बालतवस्सि कालगतं जाणित्ता, ईसाणे य कप्पे देविदत्ताए उववण्णं पासित्ता आसुरुत्ता रुट्टा कुविया चंडिकिया मिसिमिसेमाणा बलिचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्जेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता ताए उक्किट्टाए-जाव-जेणेव भारहे वासे जेणेव तामलित्ती नयरी जेणेव तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरोरए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वामे पाए सुंबेण बंधंति, तिक्खुत्तो मुहे निदुहंति, तामलित्तीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महा-पह-पहेसु आकड्ड-विकड्डि करेमाणा, महया-महया सट्ठेणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयासि—

केस णं भो ! से तामली बालतवस्सी सयंगहियलिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? केस णं से ईसाणे कप्पे ईसाणे देविदे देव-राया ? ति कट्टु तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरोरयं हीलंति निदंति खिसंति गरहंति अवमण्णंति तज्जंति तालेति परिवहंति पव्वहंति, आकड्डविकड्डि करंति, हीलेत्ता निदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अव-मण्णत्ता तज्जेत्ता तालेत्ता परिवहेत्ता पव्वहेत्ता आकड्ड-विकड्डि करेत्ता एगंते एडित्ति एडित्ता जामेव दिंसि पाउबभूयां तामेव दिंसि पडिगया ।

तामली का ईशानेन्द्र के रूप में उपपात—

२६६. उस काल, उस समय ईशान कल्प इन्द्र और पुरोहित विहीन था ।

उस समय वह तामली बालतपस्वी परिपूर्ण साठ हजार वर्ष तक साधु पर्याय का भोग कर-पालन कर दो मास की संलेखना द्वारा आत्मा को भावित कर, एक सौ बीस भक्त का अनशन कर मरण काल में काल करके ईशान कल्प में ईशानवतंसक विमान की उपपात सभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशैया पर अंगुल की असंख्यात भाग जितनी अवगाहना से ईशान देवेन्द्र के विरह काल समय में ईशान देवेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ ।

२७०. तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान पाँच प्रकार की पर्याप्तियों द्वारा पर्याप्तपने को प्राप्त करता है, तथा-आहार पर्याप्ति द्वारा-यावत्-भाषा-मनः पर्याप्ति द्वारा ।

ईशानेन्द्रत्व को जानकर असुरकुमार देवों का रोष और तामली के शरीर की हीलना—

२७१. उसके बाद बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से देव और देवी तामली बालतपस्वी के कालगत होने को जानकर और ईशान कल्प में देवेन्द्रपने से उत्पन्न होना देखकर क्रोधित हो गये, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए बलिचंचा राजधानी के मध्य में से निकलते हैं, निकलकर वे उत्कृष्ट गति से यावत्-जिस तरफ भारतवर्ष है, उसमें जहाँ ताम्रलिप्ती नगरी है, जहाँ बालतपस्वी तामली का शरीर पड़ा है वहाँ आते हैं और उस शव के बायें पैर को रस्सी से बाँधते हैं बाद में तीन बार उसके मुख पर थूकते हैं और फिर ताम्रलिप्ती नगरी में श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य मार्गों में घसीटते-घसीटते और जोर-जोर आवाज में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले—

अरे हे ! स्वयं अपने आप वेप पहनने वाला और प्राणामा नामक दीक्षा से दीक्षित होने वाला तामली बालतपस्वी कौन है ? ईशान-कल्प में ईशान देवेन्द्र देवराज कौन है ? ऐसा करके तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना करते हैं, निन्दा करते हैं, खिसा करते हैं, गर्हा करते हैं, अवमानना करते हैं, तर्जना करते हैं, पीटते हैं, कदर्थना करते हैं, प्रव्यथित करते हैं और जैसा मन में आता है वैसा उल्टा-सीधा घसीटते हैं और इस प्रकार से हीलना करके, निन्दा करके, खिसा करके, गर्हा करके, अपमान करके, तर्जना करके, पीट करके, कदर्थना करके, प्रव्यथित करके, उल्टा-सीधा घसीट करके एकान्त स्थान पर फँक देते हैं, फँक कर जिस दिशा में प्रगट हुए थे वापस उसी दिशा में चले गये ।

तामलिसरीरस्स हीलणं णच्चा ईसाणिन्देण बलिचंचा-
रायहाणिस्स दहणं—

२७२. तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ
य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बह्विं असुरकुमारोहिं देवोहिं देवीहिं
य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निदिज्जमाणं
खिसिज्जमाणं गरहिज्जमाणं अवमण्णिज्जमाणं तज्जिज्जमाणं
तालेज्जमाणं परिवहिज्जमाणं पव्वहिज्जमाणं आकड्डविकाड्ड
कीरमाणं पासंति, पासित्ता आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव
ईसाणे देविदे देवराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-
परिग्गहिंयं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु जएणं विजएणं
वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे
असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिए कालगए जाणित्ता
ईसाणे य कप्पे इंदत्ताए उववण्णे पासित्ता आसुरुत्ता-जाव-एगंते
एडेंति, एडत्ता जामेव दिंसि पाउब्भूया तामेव दिंसि पडिगया ।

तए णं ईसाणे देविदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं
वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म
आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं
भिउडिं निडाले साहट्ठु बलिचंचारायहाणिं अहे सपक्खं सपडिदिसिं
समभिलोएइ ।

तए णं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविदेणं देवरण्णा
अहे सपक्खं सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेणं दिव्वप्पभावेणं
इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियब्भूया तत्तकवेल्लकब्भूया तत्ता
समजोइब्भूया जाया यावि होत्था ।

असुरकुमारदेवोहिं ईसाणिन्दपत्थणं खमावणं य—

२७३. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा
देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणिं इंगालब्भूय-जाव-समजोइ-
ब्भूयं पासंति, पासित्ता भीआ तत्था तसिआ उव्विग्गा संजायभया
सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति, आधावेत्ता परिधावेत्ता
अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा चिट्ठ ति ।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा
य देवीओ य ईसाणं देविदं देवरायं परिकुवियं जाणित्ता ईसाणस्स
देविदस्स देवरण्णे तं दिव्वं देविडिडं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाण-
भागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सर्पाक्खं सपडिदिसिं डिच्चं

तामली के शरीर की हीलना को जानकर ईशानेन्द्र द्वारा
बलिचंचा राजधानी का दहन—

२७२. तत्पश्चात् वे ईशानकल्पवासी बहुत से देव और देवी बलि-
चंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देवों और
देवियों को तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना, निन्दा,
खिसा, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्यना, प्रव्यथना,
इधर-उधर घसीटना आदि करते हुए देखते हैं, देखकर क्रोधाभि-
भूत हो यावत्-दांतों को मिसमिसाते हुए जहाँ ईशान देवेन्द्र देव-
राज हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर करतलों को जोड़ दसों नखों
को मिलाकर मस्तक पर आवर्तकर अंजलिपूर्वक जय विजय
शब्दों से वधाते हैं, वधाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से
देव और देवियाँ देवानुप्रिय को कालगत जानकर और ईशानकल्प
में इन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ देखकर क्रोधाभिभूत हो—यावत्-एकान्त
स्थान में फँकते हैं, फँककर जिस दिशा में प्रगट हुए थे, वापस
उसी दिशा में चले गये ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज ईशान उन ईशान कल्पवासी बहुत
से देवों देवियों की इस बात को सुनकर और अवधारण करके
क्रोधाभिभूत हो—यावत्-मिसमिसाते हुए वहीं देवशैया पर बैठ
हुआ वह ईशानेन्द्र कपाल में तीन रेखायें ही जायें इस प्रकार
से भृकुटी चढ़ाकर नीचे बलिचंचा राजधानी की ओर सपक्ष और
सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने देखता है ।

तब वह बलिचंचा राजधानी देवेन्द्र देवराज ईशान के द्वारा
नीचे सपक्ष और सप्रतिदिशा में यानी बराबर सामने देखे जाने पर
उसके दिव्य प्रभाव से अंगार जैसी हो गई, आग के कर्णों जैसी
हो गई, राख जैसी हो गई, तपी हुई रेत के कर्णों जैसी हो गई
और प्रज्वलित लपटों जैसी हो गई ।

असुरकुमार देवों द्वारा ईशानेन्द्र से प्रार्थना और क्षमापन—

२७३. तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से
असुरकुमार देव और देवी बलिचंचा राजधानी को अंगार जैसी
हुई—यावत्-लपटों जैसी हुई देखते हैं, देखकर भयभीत, त्रस्त,
सत्रस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर इधर-उधर भागते हैं,
दौड़ते हैं, भागदौड़ कर एक दूसरे के शरीर से सटकर चिपक कर
खड़े हो जाते हैं ।

तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे असुरकुमार
देव और देवी देवेन्द्र देवराज ईशान को कुपित हुआ जानकर
देवेन्द्र देवराज ईशान की उस दिव्य, देवक्रुद्धि, दिव्यदेवद्युति,
दिव्यदेव प्रभाव और दिव्य तेजोलेण्या को सहन नहीं करते हुए

करयलपरिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं
विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—अहो ! णं देवाणुप्पि-
एहिं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते
अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्डी दिव्वा
देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं खामिमा
णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहति णं देवाणु-
प्पिया ! णाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु एयमट्ठं सम्मं
विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेत्ति ।

तदणतरं असुरकुमारा ईसाणिन्दस्स आणाए ठिया जाया—

२७४. तए णं से ईसाणं देविदे देवराया तेहि बलिचचारायहाणि-
वत्थव्वएहिं बहहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य एयमट्ठं सम्मं
विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामिते समाणे तं दिव्वं देविड्ढं जाव-
तेयलेस्सं पडिसाहरइ । तप्पभित्तिं च णं गोयमा ! ते बलिचंचा-
रायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं
देविदं देवरायं आढंति परियाणांति सक्कारंति सम्माणंति कल्लाणं
मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवांसंति, ईसाणस्सं देविदंस्सं
देवरणो आणा-उववायवयण-निहेसे चिट्ठंति ।

एवं खलु गोयमा ! ईसाणं देविदे देवरणो सा दिव्वा
देविड्डी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते
अभिसमण्णागए ।

ईसाणिन्दस्स ठिई महाविदेहे सिद्धी य—

२७५. ईसाणस्सं णं भंते ! देविदस्सं देवरणो केवतियं कालं
ठिई पणत्ता ?

गोयमा ! सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ ठिई पणत्ता ।

ईसाणे णं भंते ! देविदे देवराया ताओ देवलोगाओ ओउक्खं-
एणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहति ?
कहिं उववज्जिहति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहति
वुज्जिहति मुच्चिहति सव्वडुक्खाणं अंतं काहिति ।

भग० स० ३, उ० १ ।

संपक्ष, संप्रतिदिशां में अर्थात् सामने खड़े होकर हाथों को जोड़
दशों नखों को मिलाकर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके
जय विजय शब्दों से वधाते हैं बधाकर इस प्रकार बोले-अहो !
आप देवानुप्रिय के दिव्यदेव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव
प्रभाव को हमने देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हम आप से क्षमा
मांगते हैं, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करें, हे देवानुप्रिय !
आप हमें क्षमा करने योग्य हैं, पुनः हम ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा
करके विनयपूर्वक इस अपराध के लिये बारम्बार क्षमा मांगते हैं ।
तदनन्तरं असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा में स्थित होते
हैं—

२७४. उसके बाद जब उन बलिचंचा राजधानी में रहने वाले
असुरकुमार देवों और देवियों ने अपने अपराध के लिये देवेन्द्र
देवराज ईशान से विनयपूर्वक अच्छी तरह बारम्बार क्षमा मांगी
तब उस देवेन्द्र देवराज ईशान ने अपनी उस दिव्य देव ऋद्धि-
यावत्-तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण कर लिया अर्थात् वापस खींच
लिया । हे गौतम ! उसी समय से वे बलिचंचा राजधानी में
रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवेन्द्र देवराज ईशान का
आदर करते हैं, आदेश को मानते हैं, सत्कार सम्मान करते हैं,
कल्याण, मंगलदेव और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उसकी
सेवा करते हैं और तभी से देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा में,
सेवा में, आदेश में, निर्देश में रहते हैं ।

हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह देवऋद्धि, दिव्य
देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को इस प्रकार से लब्ध, प्राप्त, पूर्ण
रूप से अधिगत किया है ।

ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि—

२७५. हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल
तक की कही है ?

हे गौतम ! उसकी स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की
कही है ।

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान आयुक्षय होने, भवक्षय
होने, स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर
कहाँ जायेगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! वह महाविदेह
में जन्म लेकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्व दुःखों
का अन्त करेगा ।

तामलिसरीरस्स हीलणं णच्चा ईसाणिन्देण बलिचंचा-
रायहाणिस्स दहणं—

२७२. तए णं ते ईसाणकप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ
य बलिचंचारायहाणिवत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारोहिं वेवोहिं देवीहिं
य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरयं हीलिज्जमाणं निदिज्जमाणं
खिसिज्जमाणं गरहिज्जमाणं अवमणिज्जमाणं तज्जिज्जमाणं
तालेज्जमाणं परिवहिज्जमाणं पव्वहिज्जमाणं आकड्डविकड्डि
कीरमाणं पासंति, पासित्ता आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव
ईसाणे देविदे देवराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-
परिग्गहिंयं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं
वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु देवानुप्पिया ! बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे
असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवानुप्पिए कालगए जाणित्ता
ईसाणे य कप्पे इदंत्ताए उववण्णे पासेत्ता आसुरुत्ता-जाव-एगंते
एडेंति, एडेत्ता जामेव दिंसि पाउब्भूया तामेव दिंसि पडिगया ।

तए णं ईसाणे देविदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं
वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म
आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तत्थेव सयणिज्जवरगए तिवलियं
भिज्जिं निडाले साहट्टु बलिचंचारायहाणि अहे सपक्खिं सपडिदिसिं
समभिलोएइ ।

तए णं सा बलिचंचा रायहाणी ईसाणेणं देविदेणं देवरण्णा
अहे सपक्खिं सपडिदिसिं समभिलोइया समाणी तेण दिव्वप्पभावेणं
इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियब्भूया तत्तकव्वेल्लकब्भूया तत्ता
समजोइब्भूया जाया यावि होत्था ।

असुरकुमारदेवोहिं ईसाणिन्दपत्थणं खमावणं य—

२७३. तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा
देवा य देवीओ य तं बलिचंचं रायहाणि इंगालब्भूयं-जाव-समजोइ-
ब्भूयं पासंति, पासित्ता भीआ तत्था तसिआ उव्विग्गा संजायभया
सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति, आधावेत्ता परिधावेत्ता
अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा चिट्ठु ति ।

तए णं ते बलिचंचारायहाणिवत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा
य देवीओ य ईसाणं देविदं देवरायं परिकुवियं जाणित्ता ईसाणस्स
देविदस्स देवरण्णे तं दिव्वं देविडिडं दिव्वं देवज्जुइ दिव्वं देवाण-
भागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा

तामली के शरीर की हीलना को जानकर ईशानेन्द्र द्वारा
बलिचंचा राजधानी का दहन—

२७२. तत्पश्चात् वे ईशानकल्पवासी बहुत से देव और देवी बलि-
चंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देवों और
देवियों को तामली बालतपस्वी के शरीर की हीलना, निन्दा,
खिसा, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना, प्रव्यथना,
इधर-उधर घसीटना आदि करते हुए देखते हैं, देखकर क्रोधाभि-
भूत हो यावत्-दांतों को मिसमिसाते हुए जहां ईशान देवेन्द्र देव-
राज हैं, वहां आते हैं, वहां आकर करतलों को जोड़ दसों नखों
को मिलाकर मस्तक पर आवर्तकर अंजलिपूर्वक जय विजय
शब्दों से वधाते हैं, वधाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से
देव और देवियां देवानुप्रिय को कालगत जानकर और ईशानकल्प
में इन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ देखकर क्रोधाभिभूत हो—यावत्-एकान्त
स्थान में फँकते हैं, फँककर जिस दिशा में प्रगट हुए थे, वापस
उसी दिशा में चले गये ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज ईशान उन ईशान कल्पवासी बहुत
से देवों देवियों की इस बात को सुनकर और अवधारण करके
क्रोधाभिभूत हो—यावत्-मिसमिसाते हुए वहीं देवशंया पर बैठा
हुआ वह ईशानेन्द्र कपाल में तीन रेखायें हो जायें इस प्रकार
से भृकुटी चढ़ाकर नीचे बलिचंचा राजधानी की ओर सपक्ष और
सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने देखता है ।

तब वह बलिचंचा राजधानी देवेन्द्र देवराज ईशान के द्वारा
नीचे सपक्ष और सप्रतिदिशा में यानी बराबर सामने देखे जाने पर
उसके दिव्य प्रभाव से अंगार जैसी हो गई, आग के कणों जैसी
हो गई, राख जैसी हो गई, तपी हुई रेत के कणों जैसी हो गई
और प्रज्वलित लपटों जैसी हो गई ।

असुरकुमार देवों द्वारा ईशानेन्द्र से प्रार्थना और क्षमापन—

२७३. तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे बहुत से
असुरकुमार देव और देवी बलिचंचा राजधानी को अंगार जैसी
हुई—यावत्-लपटों जैसी हुई देखते हैं, देखकर भयभीत, त्रस्त,
सन्नस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर इधर-उधर भागते हैं,
दौड़ते हैं, भागदौड़ कर एक दूसरे के शरीर से सटकर चिपक कर
खड़े हो जाते हैं ।

तत्पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले वे असुरकुमार
देव और देवी देवेन्द्र देवराज ईशान को कुपित हुआ जानकर
देवेन्द्र देवराज ईशान की उस दिव्य, देवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति,
दिव्यदेव प्रभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन नहीं करते हुए

करयलपरिग्गहियं दसनह सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—अहो ! णं देवाणुप्पि-एहिं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धं पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धं पत्ते अभिसमण्णागए, तं खाममो णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खतुमरिहति णं देवाणु-प्पिया ! णाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु एयमट्ठं सम्म विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेत्ति ।

तदणंतरं असुरकुमारा ईसाणिन्दस्स आणाए ठिया जाया —

२७४. तए णं से ईसाणे देविदे देवराया तेहिं बलिचंचारायहाणि-वत्थेव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य एयमट्ठं सम्म विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामिते समाणे तं दिव्वं देविड्ढि-जाव-तेयलेस्सं पडिसाहरइ । तप्पभित्तिं च णं गोयमा ! ते बलिचंचा-रायहाणिवत्थेव्वया वहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणं देविदं देवरायं आढंति परियाणंति सक्कारेत्ति सम्माणेत्ति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासंति; ईसाणस्सं देविदस्सं देवेरण्णो आणा-उववायवयण-निहेसे चिट्ठंति ।

एवं खलु गोयमा ! ईसाणं देविदे देवरण्णां सा दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धं पत्ते अभिसमण्णागए ।

ईसाणिन्दस्स ठिई महाविदेहे सिद्धी य—

२७५. ईसाणस्सं णं भंते ! देविदस्सं देवरण्णो केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

ईसाणे णं भंते ! देविदे देवराया ताओ देवलोगाओ आउक्खं-एणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कंहि गच्छिहिति ? कंहि उववज्जिहिति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

भग० स० ३, उ० १ ।

सपक्ष, सप्रतिदिशा में अर्थात् सामने खड़े होकर हाथों को जोड़ दशों नखों को मिलाकर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाते हैं वधाकर इस प्रकार बोले-अहो ! आप देवानुप्रिय के दिव्यदेव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को हमने देख लिया है, हे देवानुप्रिय ! हमें आप से क्षमा मांगते हैं, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करें, हे देवानुप्रिय ! आप हमें क्षमा करने योग्य हैं, पुनः हम ऐसा नहीं करेंगे, ऐसा करके विनयपूर्वक इस अपराध के लिये बारम्बार क्षमा मांगते हैं । तदनन्तरं असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा में स्थित होते हैं—

२७४. उसके बाद जब उन बलिचंचा राजधानी में रहने वाले असुरकुमार देवों और देवियों ने अपने अपराध के लिये देवेन्द्र देवराज ईशान से विनयपूर्वक अच्छी तरह बारम्बार क्षमा मांगी तब उस देवेन्द्र देवराज ईशान ने अपनी उस दिव्य देव ऋद्धि-यावत्-तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण कर लिया अर्थात् वापस खींच लिया । हे गौतम ! उसी समय से वे बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं, आदेश को मानते हैं, सत्कार सम्मान करते हैं, कल्याण, मंगलदेव और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उसकी सेवा करते हैं और तभी से देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा में, सेवा में, आदेश में, निर्देश में रहते हैं ।

हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव प्रभाव को इस प्रकार से लब्ध, प्राप्त, पूर्ण रूप से अधिगत किया है ।

ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि—

२७५. हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल तक की कहीं है ?

हे गौतम ! उसकी स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की कही है ।

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान आयुक्षय होने, भवक्षय होने, स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! वह महाविदेह में जन्म लेकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

१८. अद्दगस्स अण्णातिथिएण सह वादो

महावीरचरियं अहिकिच्च गोसालगस्स अवखेवो—

२७६. पुराकडं अद्द ! इमं सुणेह, एगतचारी समणे पुरासी ।
से भिवखवो उवणेत्ता अणेगे आइवखतिण्ह पुढो वित्थरेणं । १।

साऽऽजीविया पट्टुवियाऽथिरेणं सभागओ गणओ भिवखुमज्जे ।
आइवखमाणो बहुजणमत्थं ण संघयाई अवरेण पुत्वं । २।

एगंतमेवं अद्दुवा वि इण्ह दोऽवणमण्णं णं समेति जम्हा ।

पुट्ठि च इण्ह च अणागयं च एगंतमेवं पडिसंघयाइ । ३।

अद्दगस्स उत्तरं—

रामेच्च लोगं तसथावराणं खेमंकरे समणे माहणे वा ।
आइपणमाणो वि सहस्समज्जे एगंतयं सारयई तहच्चे । ४।

धम्मं कहुंतस्स उ णत्थि दोसो खंतस्स दंतस्स जिइवियस्स ।
भात्ताय दोसे य विवज्जगस्स गुणे य भात्ताय णिसेवगस्स । ५।

मह्व्यए पंच अणुवण्णं य तहेव पंचासव संवरे य ।
विस्स इहस्सामणियम्मि पण्णे लवावसवकी समणे त्ति वेमि । ६।

शीओइमादिनेव्विणो ण पावमिति गोसालो—

२७७. शीओइग सेऽउ घोपकायं आहायकम्मं तह इत्थिमाओ ।
एवाणमिस्सिह अन्द् धम्मं, तज्जिणो णामिस्समेइ पावं । ७।

१८. आर्द्रक का अन्य तार्थिकों के साथ वाद

महावीर चर्या को लक्ष्य करके गोशालक का आक्षेप—

२७६. हे आर्द्रक ! श्रमण महावीर का यह पूर्व वृत्तान्त सुनो कि वे पहले अकेले-एकाकी विचरने वाले तपस्वी थे, लेकिन इस समय में वे अनेक भिक्षुओं को अपने साथ रखकर विस्तार के साथ धर्म का उपदेश करते हैं । १।

उन चंचल चित्त वाले महावीर ने अभी यह जीविका स्थापित की है कि सभा में जाकर अनेक भिक्षुओं के मध्य में बहुत से लोगों के हित के लिये धर्म का उपदेश करते हैं । इस समय का उनका यह व्यवहार पहले के व्यवहार से बिल्कुल नहीं मिलता है । २।

इस प्रकार या तो उनका पहला व्यवहार एकान्तवास ही अच्छा हो सकता है अथवा इस समय का अनेक लोगों के साथ रहना अच्छा हो सकता है । परन्तु दोनों अच्छे नहीं हो सकते हैं । क्योंकि दोनों का परस्पर मेल नहीं है । (प्रत्युत्तर में आर्द्रक कहते हैं)—पहले, अब और भविष्य में श्रमण भगवान् महावीर तो सदा सर्वदा एकान्त का ही अनुभव करते हैं । ३। कैसे ?—

आर्द्रक का उत्तर—

श्रमण भगवान् महावीर तो त्रस और स्थावर जीवों के कल्याण के लिये हजारों जीवों के मध्य में धर्म का कथन करते हुए भी एकान्त का अनुभव करते हैं । क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति तदनु रूप ही बनी रहती है । ४।

धर्म का उपदेश करते हुए भी उनको दोष नहीं होता है । क्योंकि वे समस्त परीपहों को सहन करने वाले, मन को वश में किए हुए और जितेन्द्रिय हैं । अतः भाषा के दोषों को वर्जित करने वाले उनके द्वारा भाषा का सेवन किया जाना गुण ही है, दोष नहीं है । ५।

कर्म से अलिप्त वे पंच महाव्रतों और पंच अणुव्रतों तथा पांच आस्रव एवं पांच संवर का उपदेश करते हैं और पूर्ण साधुपने में वे विरति की शिक्षा देते हैं यह मैं कहता हूँ । ६।

शीतोदकादि सेवी को पाप नहीं है—गोशालक का मत—

२७७. कच्चा जल, बीज काय (सचित्त कच्ची वनस्पति) आधा कर्म तथा स्त्रियों का सेवन भले ही कोई करता हो, परन्तु जो अकेला विचरने वाला है, उसको हमारे धर्म में पाप नहीं लगता है । ७।

अद्दगस्स उत्तरं—

सीओदगं वा तह वीयकायं आहायकम्मं तह इत्थियाओ ।
एयाइं जाणे पडिसेवमाणा अगारिणो अस्समणा भवन्ति ।८।

सिया य वीयोदगइत्थियाओ पडिसेवमाणा समणा भवन्तु ।
अगारिणो वि समणा भवन्तु सेवन्ति उ ते वि तहप्पगारं ।९।

जे यावि वीओदगभोइ भिक्खू भिक्खं विहं जायइ जीवियट्ठी ।
ते पाइसंजोगमविप्पहाय काओवगा णंतकरा भवन्ति ।१०।

पावादुयाणं परोप्परं निन्देति गोसालगस्स अक्खेवो—
२७८. इमं वयं तु तुम पाउकुच्चं पावाइणो गरहसि सव्व एव ।
पावाइणो उ पुढो किट्ठयंता सयं सयं दिट्ठि करेति पाउं ।११।

अद्दगस्स उत्तरं—

ते अण्णमण्णस्स उ गरहमाणा अक्खंति ऊ समणा माहणा य ।
सतो य अत्थी असतो य णत्थी गरहामो विट्ठि ण गरहामो किचि
।१२।

ण किचि रूवेणअभिधारयामो सदिट्ठिमगं तु करेमो पाउं ।
मग्गे इमे किट्ठिए आरिएहि अणुत्तरे सप्पुरिसेहि अंजू ।१३।

उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु तसा य जे थावर जे य पाणा ।
भूयाभिसंकाए दुगुंछमाणे णो गरहइ वुसिमं किचि लोए ।१४।

मेहाविपुरिसपण्हभयेण महावीरो आरामगिहे न तिठ्ठतीति
—गोसलो—

२७९. आगंतगारे आरामगारे समणे उ भीते ण उवेइ वासं ।
बुक्खा हु संतो वहवे मणुस्सा ऊणातिरित्ता य लवालवा य ।१५।

मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता सुत्तहि अत्थेहि य णिच्छयण्ण ।
पुच्छिसु मा णे अणगार अण्णे इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ ।१६।

आद्रक का उत्तर—

कच्चे जल, बीजकाय, आधाकर्म और स्त्रियों को सेवन करने वाले गृहस्थ हैं, श्रमण नहीं है ।८।

यदि बीजकाय, शीतजल, (कच्चा पानी) आधाकर्म और स्त्रियों को सेवन करने पर भी यदि पुरुष श्रमण माने जायें तो गृहस्थ भी श्रमण क्यों न माने जायेंगे ? क्योंकि वे भी पूर्वोक्त विषयों का सेवन करते हैं ।९।

जो भिक्षु होकर भी सचित बीजकाय, शीतजल और आधाकर्म आदि का सेवन करते हैं और जीवन-रक्षा के लिये भिक्षावृत्ति करते हैं, वे अपने ज्ञाति संसर्ग को छेदकर भी अपने शरीर के पोषक हैं किन्तु कर्मों का क्षय करने वाले नहीं हैं ।१०। प्रावादुकों की परस्पर निन्दा—यह गोशालक का आक्षेप— २७८. हे आद्रक ! तुम इस प्रकार के वचन को कहकर संपूर्ण प्रावादुकों की निन्दा करते हो । प्रावादुक गण अलग-अलग अपने सिद्धान्तों को बताते हुए अपने दर्शन को श्रेष्ठ कहते हैं ।११। आद्रक का उत्तर—

वे श्रमण और ब्राह्मण परस्पर एक दूसरे की निन्दा करते हुए अपने-अपने दर्शन की प्रशंसा करते हैं, वे अपने दर्शन में कही हुई क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य और परदर्शनोक्त क्रिया के अनुष्ठान से पुण्य न होना बताते हैं । अतः मैं उनकी इस एकान्त दृष्टि की निन्दा करता हूँ और कुछ नहीं ।१२।

हम किसी के रूप और वेष की निन्दा नहीं करते हैं, किन्तु स्वदर्शन के मार्ग का प्रकाश करते हैं । यह मार्ग सरल व सर्वोत्तम है और आर्य सत्पुरुषों के द्वारा अनुत्तर कहा गया है ।१३।

ऊर्ध्व, अधो और तिरछी दिशाओं में रहने वाले जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उन प्राणियों की हिंसा से घृणा करने वाले संयमी पुरुष इस लोक में किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं ।१४।

मेघावी पुरुषों के प्रश्न भय से महावीर आरामगृह में नहीं ठहरते—यह गोशालक का आक्षेप—

२७९. तुम्हारे श्रमण भगवान् महावीर बड़े डरपोक हैं, इसीलिये वे जहाँ बहुत से आगन्तुक लोग उतरते हैं ऐसे आगन्तु गृहों और आरामगृहों में निवास नहीं करते हैं । क्योंकि वे सोचते हैं कि उक्त स्थानों में बहुत से कोई न्यून, कोई अधिक, कोई वक्ता और कोई मीनी ऐसे मनुष्य निवास करते हैं ।१५।

इसके सिवाय कोई मेघावी, कोई शिक्षा पाये हुए, कोई बुद्धिमान तथा कोई सूत्र और अर्थों में पूर्ण निष्णात वहाँ निवास करते हैं । अतः ऐसे वे लोग मुझसे कुछ प्रश्न न पूछ बैठें, ऐसी आशंका से वे श्रमण महावीर वहाँ नहीं जाते हैं ।१६।

अद्दगस्स उत्तरं—

णो कामकिच्चा ण य बालकिच्चा रायाभियोगेण कुओ भएणं ?
वियागरेज्जा पसिणं ण वा वि सकामकिच्चेणिह आरियाणं ।१७।

गंता व तत्था अद्दुवा अगंता वियागरेज्जा समियासुपण्णे ।
अणारिया दंसणओ परित्ता इति संकमाणो ण उवेइ तत्थ ।१८।

वणियसरिसो महावीरे त्ति गोसालगस्स अक्खेवो—
पण्णं जहा वणिए उदयट्ठी आयस्स हेउं पगरेइ संगं ।
तओवमे समणे णायपुत्ते इच्चेव मे होइ मई वियक्का ।१९।

अद्दगस्स उत्तरं—

णवं ण कुज्जा विहुणे पुराणं चिच्चाऽमइं ताइ य साह एवं ।
एतावता वंभवति त्ति चुत्ते तस्सोदयट्ठी समणे त्ति वेमि ॥२०॥

समारभंते वणिया भूयगामं परिग्गहं चेव ममायमाणा ।
ते णाइसंजोगमविप्पहाय आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१॥

वित्तेसिणो मेहुणसंपगाढा ते भोयणट्ठा वणिया वयंति ।
वयं तु कामोहं अज्झोववण्णा अणारिया पेमरसेसु गिद्धा ॥२२॥

आरंभगं चेव परिग्गहं च अविउत्तिसया णिस्सिय आयदंडा ।
तेत्ति च से उदए जं वयासी चउरंतणंताय बुहाय गेह ॥२३॥

पेगंति णच्चंति वओदए ते वयंति ते वो वि गुणोदयम्मि ।
से उदए साइमणंतपत्ते तमुदयं साहयइ ताइ णाई ॥२४॥

आद्रक का उत्तर—

वे श्रमण महावीर विना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करते हैं और न बालक की तरह ही विना विचारे कोई कार्य करते हैं । जब वे राजभय से भी धर्मोपदेश नहीं करते तो फिर दूसरे भयों की तो बात ही क्या ? भगवान् प्रश्न का उत्तर देते हैं और नहीं भी देते हैं । वे तो तीर्थंकर नाम कर्म के कारण आर्यपुरुषों को धर्मोपदेश देते हैं ।१७।

वे सर्वज्ञ भगवान् सुनने वालों के पास जाकर अथवा न जाकर समान भाव से धर्म का उपदेश करते हैं, परन्तु अनार्य लोग दर्शन से भ्रष्ट होते हैं, इस आशंका से भगवान् उनके पास नहीं आते हैं । अथवा अनार्य लोग देखकर भयभीत न हो जायें, इस विचार से भगवान् उनके पास नहीं जाते हैं ।१८।

वणिक् सदृश महावीर हैं—यह गोशालक का आक्षेप—
जैसे लाभार्थी वणिक् लाभ के लिये महाजनों से संग करता है, यही उपमा श्रमण ज्ञातपुत्र की है, यह मेरी बुद्धि का विचार है ।१९।

आद्रक का उत्तर—

श्रमण भगवान् महावीर नवीन कर्मों को नहीं करते हैं किन्तु पुराने कर्मों को क्षय करते हैं । क्योंकि वे स्वयं कहते हैं कि प्राणी कुमति को छोड़कर ही मोक्ष को प्राप्त करता है । इस प्रकार मोक्ष का व्रत कहा गया है उसी मोक्ष के उदय की इच्छा वाले भगवान् हैं, यह मैं कहता हूँ ।२०।

वणिक् तो प्राणियों का आरम्भ करते हैं और वे परिग्रह पर भी ममता रखते हैं एवं ज्ञातिजनों के सम्बन्ध को न छोड़कर लाभ के निमित्त दूसरों का संग करते हैं ।२१।

वणिक् तो धन के अन्वेषी और मैथुन में अत्यन्त आसक्त होते हैं, वे भोजन की प्राप्ति के लिये इधर-उधर जाते हैं । अतः हम लोग तो वणिकों को कामासक्त, प्रेमरस में गृद्ध और अनार्य कहते हैं ।२२।

वणिक् आरम्भ और परिग्रह को नहीं छोड़ते हैं किन्तु उनमें अत्यन्त लिप्त रहते हैं और आत्मा को दण्ड देने वाले हैं । उनका वह उदय, जिसे तुम उदय कहते हो, वह वस्तुतः उदय नहीं, किन्तु चतुर्गति रूप संसार को प्राप्त करने वाला और दुःख का कारण है और उसका कभी अन्त नहीं होता है ।२३।

वणिक् को जो उदय होता है, वह एकान्त एवं आत्यन्तिक नहीं हैं—ऐसा विद्वज्जन कहते हैं और उनके उदय में कोई गुण नहीं है । किन्तु भगवान् जिस उदय को प्राप्त हैं, वह सादि और अनन्त है । वे दूसरों को भी इसी उदय की प्राप्ति के लिए उपदेश करते हैं । भगवान् त्राण करने वाले और सर्वज्ञ हैं ।२४।

अहिंसयं सव्वपयाणुकंपी धम्मं ठियं कम्मविवेगहेउं ।
तमायदंडेहिं समायरंता अबोहिए ते पडिस्सुमेयं ॥२५॥

बुद्धभिव्वखूणं हिंसा-अहिंसाविसये मत्तनिवेयणं—

२८०. पिण्णागपिडीमवि विद्ध सूलै केई पएज्जा पुरिसे इमे त्ति ।
अलाउयं वा वि कुमारग त्ति स लिप्पई पाणिवहेण अम्हं ॥२६॥

अहवा वि विद्धूण मिलवखू सूलै पिण्णागबुद्धीए णरं पएज्जा ।
कुमारगं वा वि अलाउए त्ति ण लिप्पई पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥

पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा सूलंमि केई पए जायतेए ।
पिण्णागपिडिं सइमारुहेत्ता बुद्धाण तं कप्पइ पारणाए ॥२८॥

सिणायगाणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णितिए भिव्वखुयाणं ।
ते पुण्णखंधं सुमहज्जणित्ता भवंति आरोप्प महंतसत्ता ॥२९॥

अद्दगस्स उत्तरं—

अजोगखूवं इह संजयाणं पावं तु पाणाण पसज्ज काउं ।
अबोहिए दोण्ह वि तं असाहु वयंति जे यावि पडिस्सुणंति ॥३०॥

उड्डं अहे य तिरियं दिसासु विण्णाय लिगं तसथावराणं ।
भूयाभिसंकाए दुगुंछमाणे वदे करेज्जा वा कुओ विहउत्थि ॥३१॥

पुरिसे त्ति विण्णत्ति ण एवमत्थि अणारिए से पुरिसे तहा हु ।
को संभवो विण्णगपिडियाए वाया वि एसा बुइया असच्चा ॥३२॥

वायामिओगेण जमावहेज्जा णो तारिसं वायमुदाहरेज्जा ।
अट्टाणमेयं वयणं गुणाणं णो दिविखए वूय सुरालमेयं ॥३३॥

भगवान हिंसा से रहित हैं और समस्त प्राणियों पर अनु-
कम्पा करने वाले हैं । वे सदैव धर्म में स्थित और कर्म के विवेक
के कारण हैं । ऐसे उन भगवान को तुम जैसे आत्मा को दण्ड
देने वाले पुरुष ही वणिक् सदृश कहते हैं । यह कहना तुम्हारे
अज्ञान के अनुरूप ही है ।२५।

बुद्ध भिक्षुओं का हिंसा-अहिंसा विषयक मत निवेदन—

२८०. कोई पुरुष खली के पिंड को भी यदि 'यह पुरुष है' यह
मानकर शूल में वेधकर पकावे अथवा तुम्हें को बालक मानकर
पकावे तो हमारे मत में वह प्राणिवध करने के पाप का भागी
होता है ।२६।

अथवा वह म्लेच्छ पुरुष यदि मनुष्य को खली समझकर उसे
शूल में वेधकर पकावे अथवा तुम्हें समझकर बालक को पकावे
तो वह प्राणी के घात के पाप का भागी नहीं होता है, वह हमारा
मत है ।२७।

कोई पुरुष मनुष्य को अथवा बालक को खली का पिंड
मानकर उसे शूल में वेधकर आग में पकावे तो वह पवित्र है,
तथा बुद्ध के पारणा योग्य है ।२८।

जो पुरुष दो हजार स्नातक भिक्षुओं को प्रतिदिन भोजन
कराता है, वह महान पुण्य अर्जन करके महा पराक्रमी आरोप्य
नामक देवता होता है ।२९।

आर्द्रक का उत्तर—

यह शाक्यमत संयमी पुरुषों के योग्य नहीं है । क्योंकि
प्राणियों का घात करके पाप का अभाव कहना जो ऐसा कहते
हैं और जो सुनते हैं उन दोनों के लिये अज्ञानवर्धक और बुरा
है ।३०।

ऊपर, नीचे और तिरछी दिशाओं में त्रस और स्थावर
प्राणियों के सद्भाव के चिन्हों को जानकर जीव हिंसा की
आशंका से विवेकी पुरुष हिंसा से घृणा रखता हुआ विचारकर
भाषण करे और कार्य भी विचार कर ही करे तो उसे दोष
किस प्रकार हो सकता है ।३१।

खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि मूर्ख को भी नहीं होती है, अतः
जो पुरुष खली के पिण्ड में पुरुष बुद्धि अथवा पुरुष में खली के
पिण्ड की बुद्धि करता है वह अनार्य है । खली के पिण्ड में पुरुष
बुद्धि होना सम्भव नहीं है, अतः ऐसा वाक्य कहना भी मिथ्या
है ।३२।

जिस वचन को बोलने से जीव को पाप लगता है, वह वचन
विवेकी पुरुष को कभी भी नहीं बोलना चाहिए । तुम्हारा
पूर्वोक्त वचन गुणों का स्थान नहीं है । अतः दीक्षा धारण किया
हुआ पुरुष ऐसा निःसार वचन नहीं कहता है ।३३।



लद्धे अट्टे अणे एव तुम्हे जीवाणुमागे सुविचचिते य ।
पुच्चं समुद्धं भवरं च पुट्टे ओत्तोइए पाणितलट्टिए वा ॥३४॥

जीवाणुभागं सुविचचितप्रता आहारिया अप्पविहीए सोहि ।
य विवागरे छन्पओपजीवी एत्तोअधम्मो इह संजयाणं ॥३५॥

मिणाअणानं तु दुये सत्तसे जे भोपए पितिए भिरयुयाणं ।
असंजए वोहिअणमि से ऊ नियच्छई गरहनिहेव लोए ॥३६॥

भूतं उरगं इह मारियाणं उट्टिमत्तं च पणप्पएत्ता ।
सं भोगोत्तीणं उरसउत्तेता सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥३७॥

सं भोगमात्ता पितियं पमूयं णो उवतिप्पामो ययं रएणं ।
इत्तेममात्तु अनजप्रमना अणारिया जाल रसेनु गिद्धा ॥३८॥

ये पतिरि भुंतिंति सत्तपगारं सेवंति ते पायमजाणमाणा ।
मय न एयं कुणा करंति थाया रि एत्ता बुद्धया उ मिच्छा ॥३९॥

एवमेव भोसव उरुव्याणं मानवदोसं परिवज्जयंता ।
सन्नाअणो इमित्ते अणवपुत्ता उट्टिअत्तं परिवज्जयंति ॥४०॥

पुण्यमहाणं पुण्डरिका मभवेति पाणाम गिद्धा इदं ।
अणव बुद्धा उरुव्याणं एत्तोअधम्मो इह मज्जाण ॥४१॥

अणव उरुव्याणं एत्ता अणवो अणव सुद्धया ममिहे वरेयता ।
बुद्धे पुण्ये उरुव्याणं उरुव्याणं उरुव्याणं विजोय ॥४२॥

अहो बौद्धो ! मालूम होता है कि जैसे तुमने ही पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तुमने ही जीवों के कर्मफल का विचार किया है एवं तुम्हारा ही यश पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक फैला है तथा तुमने ही हाथ में रखी हुई वस्तु के समान इस जगत को देख लिया है । ३४।

निर्ग्रन्थ मतानुयायी तो जीवों की पीड़ा को अच्छी तरह सोचकर शुद्ध अन्न को स्वीकार करते हैं तथा कपट से जीविका करने वाले न बनकर मायायुक्त वचन नहीं बोलते हैं । इस जैन शासन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है । ३५।

जो पुरुष दो हजार स्नातक भिक्षुओं को प्रतिदिन भोजन कराता है, वह असंयमी और हथियार से लाल हाथ वाला पुरुष इसी लोक में निन्दा को प्राप्त करता है । ३६।

इस बौद्ध मत को मानने वाले पुरुष मोटे भेड़े को मारकर उसको बौद्ध भिक्षुओं के भोजन के लिये बनाकर और उसे लवण तेल आदि से पकाकर पिण्णली आदि से उस मांस को बघारते हैं—तैयार सुस्वादु करते हैं । ३७।

अनायों का कार्य करने वाले, अनाय अज्ञानी रस-लंपट वे बौद्ध भिक्षु यह कहते हैं कि बहुत मांस खाते हुए भी हम लोग पाप से लिप्त नहीं होते हैं । ३८।

किन्तु जो लोग पूर्वोक्त प्रकार से निष्पन्न मांस का भक्षण करते हैं वे अज्ञानी जन पाप का सेवन करते हैं । अतः जो पुरुष कुशल हैं वे उक्त प्रकार के मांस के खाने की (मन) इच्छा भी नहीं करते हैं तथा मांस भक्षण में दोष न होने का कथन भी मिय्या है । ३९।

अमूर्खों प्राणियों पर दया करने के लिये और सावध दोष को पतित करने वाले तथा सावध की आशंका करने वाले भगवान महावीर के निष्पन्न ऋषिमण उट्टिअत्त का त्याग करते हैं । ४०।

प्राणियों के उपमर्दन की आशंका से सावध अनुष्ठान से विरक्त रहने वाले साधु पुरुष सब प्राणियों को दण्ड देना त्यागकर महाप्राणियों की नहीं भोगते हैं । जिन-जागन में संयमी पुरुषों का यही धर्म है । ४१।

जैन नियंत्रण धर्म में निष्पन्न पुरुष पूर्वोक्त ममादि को प्राप्त करके महा धर्म भी मणि स्थिर रहकर माया रहित होकर भजन का अनुष्ठान करें । इस धर्म के सावध के प्रभाव में पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त करके ही तथा शक्ति और गुणों बुद्ध पुण्य अन्तर्गत धर्मों का प्राप्त होने है । ४२।

सिंघाणगभोयणेण पुण्णज्जणमिति वेय-वाईणं मतं—

२८१. सिंघाणगणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णिदिए माहणाणं ।
ते पुण्णखण्णे सुमहस्सज्जगित्ता भवन्ति देवा इइ वेयवाओ ॥४३॥

अद्दगस्स उत्तरं—

सिंघाणगणं तु दुवे सहस्से जे भोयए णित्तिए कुलालयाणं ।
से गच्छई लोलुवसंपगाढे तिक्वाभितावी णरगाभिसेवी ॥४४॥

दयावरं धम्म दुग्गुमाणे वहावहं धम्म पसंसमाणे ।
एणं पि जे भोययई असीलं णिहो णिसं गच्छइ अंतकाले^१ ॥४५॥

संख-परिव्वायगाणं अव्वत्तरू-वपुरिसविसये मतं—

२८२. दुहओ वि धम्मम्मि समुट्ठियामो अस्सि सुठिच्चा तह एसकालं ।
आयारसीले बुइएह णाणे ण संपरायम्मि विसेसमत्थि ॥४६॥

अव्वत्तरूवं पुरिसं महंतं सणातणं अक्खयमव्वयं च ।
सव्वेसु भूएसु वि सव्वओ से चंदो व ताराहिं समत्तरूवे ॥४७॥

अद्दगस्स उत्तरं—

एवं ण मिज्जन्ति ण संसरन्ति ण माहणा खत्तिय-वेस-पेसा ।
कीडा य पक्खी सरीसिवा य णरा य सव्वे तह देवलोगा ॥४८॥

लोगं अयाणित्तिह केवलेणं कंहित्ति जे धम्ममजाणमाणा ।
णासंति अप्पाण परं च णट्ठा संसार घोरम्मि अणोरपारे ॥४९॥

लोगं विजाणन्तिह केवलेणं पुण्णेण णाणेण समाहिजुत्ता ।
धम्मं समत्तं च कंहित्ति जे उ तारंति अप्पाण परं च तिण्णा ॥५०॥

स्नान भोजन द्वारा पुण्यार्जन—यह वेदवादियों का मत—
२८१. जो पुरुष दो हजार स्नातक ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराता है, वह महान पुण्यपुञ्ज को उपाजित करके देवता होता है—यह वेद का कथन है ॥४३॥

आर्द्रक का उत्तर—

क्षत्रिय आदि कुलों में भोजन के लिये घूमने वाले दो हजार स्नातक ब्राह्मणों को जो प्रतिदिन भोजन कराता है, वह पुरुष मांस लोभी पक्षियों से परिपूर्ण नरक में जाता है और वह वहाँ भयंकर ताप को भोगता हुआ निवास करता है ॥४४॥

दया प्रधान धर्म की निन्दा और हिंसा प्रधान धर्म की प्रशंसा करने वाला जो राजा एक भी शीलरहित ब्राह्मण को भोजन कराता है, वह अन्तकाल में अंधकार युक्त नरक में जाता है । [फिर देवता होने की तो बात ही क्या है ?] ॥४५॥

सांख्य-परिव्राजकों का अव्यक्त रूप पुरुष विषयक मत—

२८२. हम और तुम दोनों ही धर्म में प्रवृत्त हैं, हम दोनों तीनों काल में धर्म स्थित हैं । हमारे दोनों के मत में आचारशील पुरुष ज्ञानी कहा गया है तथा हम दोनों के मत में संसार के स्वरूप में भी कोई भेद नहीं है ॥४६॥

यह पुरुष [जीवात्मा] अव्यक्त, व्यापक, सनातन, अक्षय, अव्यय है और सब भूतों में संपूर्ण रूप से रहता है जैसे चन्द्रमा सम्पूर्ण ताराओं के साथ सम्पूर्ण रूप से सम्बन्ध करता है ॥४७॥

आर्द्रक का उत्तर—

हे सांख्यो ! इस प्रकार आपके मत से हमारे मत की एकता नहीं हो सकती है । क्योंकि तुम्हारे मतानुसार सुभग दुर्भग आदि भेद नहीं हो सकते हैं तथा जीव का अपने कर्म से प्रेरित होकर नाना गतियों में जाना भी सिद्ध नहीं होता है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूप भेद भी सिद्ध होता है एवं कीट, पक्षी और सरीसृप आदि गतियां भी सिद्ध नहीं होंगी और मनुष्य तथा देवता आदि गतियों के भेद भी सिद्ध नहीं होंगे ॥४८॥

इस लोक को केवलज्ञान के द्वारा न जानकर जो अज्ञानी धर्म का उपदेश करते हैं वे जीव स्वयं नष्ट हो, अपना तथा दूसरों का भी अपार तथा भयंकर संसार में नाश करते हैं ॥४९॥

परन्तु समाधियुक्त जो पुरुष पूर्ण केवलज्ञान के द्वारा इस लोक को ठीक-ठीक जानते हैं और सच्चे धर्म का उपदेश करते हैं, वे पाप से पार हुए पुरुष अपने को और दूसरे को भी संसार सागर से पार करते हैं ॥५०॥

१. णिचो णिसं जाति कुओ सुरेहि । इइ पाठंतरं ।

जे गरहियं ठाणमिहावसंति जे यावि लोए चरणोववेया ।
उदाहडं तं तु समं मईए अहाउसो विप्परियासमेव ॥५१॥

हृत्थितावसाणं साभिप्पाय-निरूधणं—

२८३. संवच्छरेणावि य एगमेगं वाणेण मारेउ महागयं तु ।
सेसाण जीवाण दयद्वयाए वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥५२॥

अदुदगस्स उत्तर-पदं—

संवच्छरेणावि य एगमेगं पाणं हणंता अणियत्तदोसा ।
सेसाण जीवाण वहेण लग्गा सिया य थोवं गिहिणो वि तम्हा ॥५३॥

संवच्छरेणावि य एगमेगं पाणं हणंते समणव्वते ऊ ।
आयाहिए से पुरिसे अणज्जे ण तारिसं केवलिणो भणंति ॥५४॥

बुद्धस्स आणाए इमं समाहिं अस्सि सुठिच्चा तिविहेण ताई ।
तरिउं समुद्धं व महाभवोधं आयाणवं धम्ममुदाहरेज्जासि ॥५५॥
—त्ति वेमि ॥
—सूय. सु. २ अ० ६ ।

□

१६. महावीरतित्थे अइमुत्ताए कुमारसमणे

पोलासपुररणो अइमुत्तकुमारो—

२८४. तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नगरे । सिरिवणे उज्जाणे ।
तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजये नामं राया होत्था । तस्स णं
विजयस्स रण्णो सिरि नामं देवी होत्था—वण्णओ । तस्स णं
विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरि ए देवीए अत्तए अतिमुत्ते नामं कुमारे
होत्था—सूमालपाणिपाए ।

इस लोक में जो पुरुष निन्दनीय आचरण करते हैं और जो पुरुष उत्तम आचरण का पालन करते हैं, उन दोनों के अनुष्ठानों को अज्ञ जीव अपनी दृष्टि से मनाने बताने हैं । अथवा जुम अनुष्ठान करने वालों को अजुम आचरण करने वाले और अजुम अनुष्ठान करने वालों को जुम आचरण करने वाले, इन प्रकार विपरीत प्ररूपणा करते हैं ॥५१॥

हृत्थितापसों का स्वाभिप्राय निरूपण—

२८३. हृत्थितापस कहते हैं—हम लोग शेष जीवों की दया के लिये वर्ष भर में वाण के द्वारा एक बड़े द्राक्षी को मारकर वर्ष भर उसके मांस से निर्वाह करते हैं ॥५२॥

आद्रक का उत्तर पद—

वर्ष भर में एक-एक प्राणी को मारने वाले पुरुष भी दोष रहित नहीं है । क्योंकि तब शेष जीवों के घात में प्रवृत्ति न करने वाले गृहस्थ भी दोष वर्जित क्यों न माने जायें ? ॥५३॥

जो पुरुष श्रमणों के व्रत में स्थित होकर वर्ष भर में भी एक-एक प्राणी को मारता है, वह अनार्थ कहा गया है, ऐसे पुरुष को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है ॥५४॥

तत्त्वदर्शी भगवान की आज्ञा से इस शांतिमय धर्म को अंगीकार करके और इस धर्म में अच्छी तरह स्थित होकर दोनों करणों से मिथ्यात्व की निंदा करता हुआ पुरुष स्वपर की रक्षा करता है । महादुस्तर समुद्र की तरह संसार सागर को पार करने के लिये विवेकी पुरुषों को धर्म का वर्णन और ग्रहण करना चाहिये ॥५५॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

□

१९. महावीर तीर्थ में अतिमुक्तक कुमार श्रमण

पोलासपुर के राजा का कुमार अतिमुक्तक—

२८४. उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था । उसमें श्रीवन नामक उद्यान था । उस पोलासपुर नगर में विजय नामक राजा था । उस विजय राजा की श्रीदेवी नाम की रानी थी—वर्णन ! उस विजय राजा का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्तक नामक कुमार था—जिसके हाथ पैर आदि अंगोपांग सुकुमाल थे ।

गोयमस्स भिक्खायरिया—

२८५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिख्वं ओगहं ओगिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाणं भवेमाणे विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेहुं अंतेवासी इंदभूती अणगारे जाव-पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाई कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ ।

गोयम-अइमुत्त कुमार-संवादो—

२८६. इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ष्हाए-जाव-सव्वालंकारविभूसिए वहाँहि दारएहि य दारयाहि य डिंभिएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सदिं संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमित्ता जेणेव इंदवुणे तेणेव उवागए । तेँहि वहाँहि दारएहि य संपरिवुडे अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ ।

तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाई कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे इंदवुणस्स अदूर-सामंतेणं वीईवयइ ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवय-माणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयने तेणेव उवागए भगवं गोयमं एवं वयासी—“के णं भंते ! तुब्भे ? किं वा अडह ?”

तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

“अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणा निग्गंथा इरियासमिया-जाव-गुत्तवंभयारी उच्च-नीय-मज्झिमाई कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडामो ।”

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—“एह णं भंते ! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिवळं दवावेमि” त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए ।

तए णं सा सिरिवेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्टुतुट्टा आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया । भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता लिउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—“कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?”

गौतम की भिक्षाचर्या—

२८५. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर का यावत श्रीवन उद्यान में पदार्पण हुआ, और यथाप्रतिरूप अवग्रहों को धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार-यावत-पोलासपुर नगर के उच्च-नीच मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण करते हैं।

गौतम-अतिमुत्तक कुमार-संवाद—

२८६. इस समय कुमार अति मुत्तक स्नान कर-यावत-सर्व अलंकारों से विभूषित हो बहुत से लड़के-लड़कियों और बालक-बालिकाओं एवं कुमार-कुमारिकाओं के साथ अपने घर से निकले, निकलकर जहाँ इन्द्रस्थान बालकों के खेलने का स्थान था वहाँ आये और उन बहुत से बालकों से परिवृत होकर खेलने लगे। उसी समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर के उच्च-नीच-मध्यमकुलों में गृह सामुदायिक भिक्षा चर्या के लिए पर्यटन करते हुए इन्द्रस्थान के समीप से निकले।

तब उन अतिमुत्तक कुमार ने भगवान गौतम को समीप में पर्यटन करते हुए देखा, देखकर जहाँ भगवान गौतम थे, वहाँ उनके समीप आये और भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—‘हे भदन्त ! आप कौन हैं और किस कार्य हेतु घूम रहे हैं ?’

तत्पश्चात् भगवान् गौतम ने अतिमुत्तक कुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं जो ईर्ष्यासमिति आदि समितियों से युक्त यावत-गुप्त ब्रह्मचारी हैं और उच्च-नीच मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हैं।’

तब अतिमुत्तक कुमार ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—‘हे भदन्त ! आप मेरे साथ चलें, मैं आपको भिक्षा दिलाऊंगा’ ऐसा कहकर भगवान गौतम की अंगुली पकड़ ली, पकड़कर जहाँ अपना घर था, वहाँ लेकर आये।

तत्पश्चात् श्रीदेवी ने भगवान गौतम को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट तुष्ट हो आसन से उठी, उठकर जहाँ भगवान गौतम थे वहाँ आई। भगवान गौतम की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके विपुल अशन, पान, खाद्य-स्वाद्य मदार्यों को दिया—वहराया, वहराकर विदा किया।

तत्पश्चात् वह अतिमुत्तक कुमार भगवान गौतम से इस प्रकार बोले—‘हे भदन्त ! आप कहाँ रहते हैं ?’

तए णं से भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे आइगरे-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिख्वं ओगहं ओगिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तत्थ णं अम्हे परिवसामो ।”

अईमुत्तकुमारस्स पव्वज्जा—

२८७. तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

“गच्छामि णं भंते ! अहं तुव्भोहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ।”

“अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ-जाव-पज्जुवासइ ।

तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तोसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हइतुट्ठे एवं वयासी—

“सद्धामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जं नवरं— देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए-जाव-पव्वयामि ।”

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव-इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्भोहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ पव्वइत्तए ।

तव उन भगवान गौतम ने अतिमुक्तक कुमार को इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! मेरे धर्मानार्थ, धर्मोपदेशक, धर्म की आदि करने वाले -यावत्-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के अभिलाषी श्रमण भगवान महावीर यहीं पोलासपुर नगर के बाहर श्रीयवन उद्यान में यथाकल्प अवग्रहों को धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं । वहीं पर हम रहते हैं ।’

अतिमुक्तक कुमार की प्रव्रज्या—

२८७. तत्पश्चात् अतिमुक्तक कुमार ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! मैं भी आपके साथ श्रमण भगवान महावीर की पाद वंदना के लिये चलना चाहता हूँ ।’

‘हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध— प्रमाद मत करो ।’

तत्पश्चात् वह अति मुक्तककुमार भगवान गौतम के साथ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे हैं, वहाँ गये, वहाँ जाकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना की यावत्-पर्युपासना करते हैं ।

तत्पश्चात् भगवान गौतम जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान हैं, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर के समीप गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणा-अनेषणा की आलोचना की, आलोचना करके आहार पानों को दिखाया, दिखाकर संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस विशाल परिषद के बीच अतिमुक्तक कुमार के योग्य विचित्र धर्म का कथन किया ।

तब वह अतिमुक्तक कुमार श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर समझ कर हर्षित एवं सन्तुष्ट होकर इस प्रकार बोले—

हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ—यावत् इतना विशेष है कि मैं आप देवानुप्रिय के पास -यावत्-प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।’

हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुखकर हो, वैसा करो परन्तु प्रमाद मत करो ।

तत्पश्चात् वह अतिमुक्तक कुमार जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आये -यावत्-हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूँ ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—
“वाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे, किं णं तुमं जाणसि धम्मं ?”

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—
एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि ।”

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—
“कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि तं चेव न जाणसि ? जं चेव न जाणसि तं चेव जाणसि ?”

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

“जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्स मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहि वा कहं वा कियच्चिचरेण वा ? न जाणामि णं अम्मयाओ ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेषु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवेषु उववज्जंति । एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भोहिं अब्भणुण्णाए-जाव-पव्वइत्तए ।”

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति व्वहं आघवणाहि य पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य आघवित्तए वा पणवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए वा ताहे अकामकाइं चेव अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

“तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रायसिंरि पासेत्तए ।”

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुयत्तमाणे तुत्तिणीए संचिट्ठइ । अभित्तेओ जहा महव्वलस्स निक्खमणं-जाव-सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ ।

—अंत० व० ६ अ० १५

समणअइमुत्तगकुमारस्स कीलणं—

२८८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमारं समणे पगइभइए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोने मिउमह्वसंपन्ने अल्लोणे विणीए ।

तव अतिमुत्तक कुमार के माता पिता ने इस प्रकार कहा—
‘हे पुत्र ! अभी तुम बालक हो, तत्व के ज्ञाता नहीं हो, क्या तुम धर्म को जानते हो ?’

तत्पश्चात् अतिमुत्तककुमार ने माता-पिता से कहा—
‘हे माता-पिता ! जो मैं जानता हूँ, उसको नहीं जानता हूँ और जिसको नहीं जानता हूँ, उसको जानता हूँ ।’

तब माता-पिता ने अतिमुत्तक कुमार से इस प्रकार कहा—
‘हे पुत्र ! यह तुम क्या कह रहे हो ? कि जो जानता हूँ, उसको नहीं जानता और जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ ?’

तत्पश्चात् वह अतिमुत्तक कुमार माता-पिता से इस प्रकार बोले—

हे मात तात ! इतना मैं जानता हूँ कि जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य मरेगा किन्तु हे माता पिता ! यह नहीं जानता हूँ कि वह कब कहाँ, किस तरह और कितने समय के बाद मरेगा ? हे माता पिता ! यह नहीं जानता कि किन कर्मों के द्वारा जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवयोनियों में उत्पन्न होते हैं । किन्तु हे माता-पिता ! मैं यह जानता हूँ कि जीव स्वयं के कर्मानुसार ही नरक, तिर्यंच-मनुष्य और देवयोनियों में उत्पन्न होता है । इसलिये हे माता-पिता ! मैंने कहा कि जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ और जिसको जानता हूँ उसको नहीं जानता हूँ । इसी कारण हे माता पिता ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर—लेकर-यावत-प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।’

उसके बाद जब माता-पिता अतिमुत्तक कुमार को सामान्य युक्तियों से, विशेष युक्तियों से और संज्ञापना, विज्ञापना—वाणी द्वारा समझाने, बुझाने, संशोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ नहीं हुए तब अनिच्छापूर्वक उदासीन मन से अतिमुत्तक कुमार से इस प्रकार बोले—

‘हे लाल ! हम तुम्हारी एक दिन के लिये भी राज्य श्री देखना चाहते हैं ।’

तब वह अतिमुत्तक कुमार माता पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए मौन रह गये । तब माता-पिता ने उनका राज्याभिषेक महाबल के समान किया, अभिनिष्क्रमण-यावत-सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया ।

श्रमण अतिमुत्तक कुमार का क्रीडन—

२८८. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के शिष्य अतिमुत्तक नामक कुमार श्रमण, जो स्वभाव से भद्र, स्वभाव से शांत, स्वभावतः अत्यल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, मृदु मार्दव मम्पन्न, आज्ञानुरूप प्रवृत्ति करने वाले, विनयशील थे ।

तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे अणया कयाइ महावुट्ठि-
कार्यंसि निवयमाणंसि कयखपडिगह रयहरणमायाए वहिपा
सपट्टिए विहाराए ।

तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे वाहयं वहमाणं पासइ,
पासित्ता महियाए पालि बंधइ, बंधित्ता णाविया मे णाविया मे
नाविओ विव णावमयं पडिगहणं उदगंसि कट्टु पच्चाहमाणे-पच्चाह-
माणे अभिरमइ । तं च थेरा अट्ठखु । जेगेव समणे भगवं महावीरे
तेगेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-
समणे, से णं भंते ! अइमुत्ते कुमार-समणे कतिहि भवगणेहि
सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वडुक्खाणं
अंतं करेहिति ?”

२८६. ‘अज्जो ति !’ समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं
वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-
समणे पगइभट्टए-जाव-विणीए, से यं अइमुत्ते कुमार-समणे इमेणं
चेव भवगहणेणं सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति । तं मा णं
अज्जो ! तुब्भे अइमुत्तं कुमार-समणं होलेह निदह खिसह गरहह
अवमण्णह । तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अइमुत्तं कुमार-समणं अगि-
लाए संगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं
विणएणं वेयावडियं करेह । अइमुत्ते णं कुमार-समणे अंतकरे,
चेव अंतिमसरीरिए चेव ।

तए णं ते थेरा भगवंतो समणेणं भगवया महावीरेणं एवं
वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, अइमुत्तं
कुमारसमणं अगिलाए संगिण्हंति, अगिलाए उवगिण्हंति, अगिलाए
भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करंति ।

—भग० स० ५ उ० ४

वहूइं वासाइं सामणपरियाणं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं
जाव विपुत्ते सिद्धे ।

—अंत० व० ६ अ० १५

वे अतिमुक्तक कुमार श्रमण अन्य किसी एक दिन घूब वपा
हो रही थी तब अपनी कांथ में रजोहरण दवाकर और पात्र
लेकर बाहर शौच के निमित्त निकले थे ।

तत्पश्चात् उन अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने बहते हुए पानी
का एक गड्ढा देखा, देखकर उस गड्ढे के चारों ओर मिट्टी से
पाल बांधी, बांधकर ‘यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है,’ इस
प्रकार नाविक की तरह अपने पात्र की नाव रूप करके पानी पर
रखा और उसको तैराया, इस प्रकार क्रीड़ा करते हैं । इस प्रवृत्ति
को स्थविरों ने देखा, देखकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर
विराजमान रहे हैं वहाँ आये, आकर इस प्रकार बोले—

‘हे देवानुप्रिय भगवन् ! आपके जो अतिमुक्तक नाम के
कुमार श्रमण हैं शिष्य हैं तो हे भगवन् ! वे अतिमुक्तक कुमार
श्रमण कितने भव करने के पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण
को प्राप्त होंगे, सर्वदुःखों का अन्त करेंगे ।’

२८६ हे आर्यो ! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान
महावीर ने उन स्थविरों से कहा—

‘हे आर्यो ! स्वभाव से भद्र-यावत्-विनीत ऐसा मेरा शिष्य
अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण यह भव पूरा करके ही सिद्ध
होगा—यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा ? अतएव हे आर्यो !
तुम उस अतिमुक्तक कुमार श्रमण की अवहेलना मत करो, निन्दा
मत करो, रोष मत करो, गर्हा-उपेक्षा मत करो और अपमान
मत करो । किन्तु हे देवानुप्रियो ! तुम निर्ग्लान भाव से उस
अतिमुक्तक कुमार श्रमण की देख-रेख करो, उसको सहायता दो,
आहार, पानी आदि से वैयावृत्य करो क्योंकि वह अतिमुक्तक
कुमार श्रमण सर्व दुःखों का अन्त करने वाला और चरम शरीर
धारण करने वाला है ।’

तत्पश्चात् वे स्थविर श्रमण भगवान महावीर के इस कथन
को सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना, नमस्कार करते
हैं और अतिमुक्तक कुमार श्रमण की ग्लानि रहित होकर देख
रेख करते हैं, उसको सहयोग देते हैं और आहार पानी आदि से
उसकी वैयावृत्य-सेवा करते हैं ।

बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया, गुणरत्न
तप कर्म-यावत्-विपुलाचल पर सिद्ध हुए ।

२०. महावीरतित्थे अलक्कराया

अलक्करायस्स पव्वज्जा—

२६०. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए ।

तत्थ णं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ ।
परिसा निग्गया ।

तए णं अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठुट्ठे जहा
कोणिए-जाव-पज्जुवासइ । धम्मकहा ।

तए णं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स
अंतिए जहा उदायणे तहा निक्खंते, नवरं—जेट्टुपुत्तं रज्जे अभि-
सिच्चइ । एककारस अंगाइं । बहू वासा परियाओ-जाव-विपुले
सिद्धे ।

—अंत० व० ६ अ० १६ ।



२१. महावीरतित्थे मेहकुमारसमणे

रायगिहे सेणियो राया—

२६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे
दाहिणइद्धभरहे रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ । गुणसिलए
चेतिए—वण्णओ ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था—महता-
हिमवत-महंत-भंदर-महिदसारे वण्णओ ।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था—सूमालपा-
णिपाया वण्णओ ।

तस्स णं सेणियस्स पुत्ते नंदाए देवीए अत्तए अमए नामं
कुमारं होत्था । अहीण-मडिपुण्ण-पंचदियसरीरे-जाव-सेणियस्स
रण्णो रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्टागारं च बलं च वाहणं च
पुरं च अंतंउरं च सयमेव समुपेक्खमाणे समुपेक्खमाणे विहरइ ।

२०. महावीर तीर्थ में अलक्ष्य राजा

अलक्ष्य राज की प्रत्रय्या—

२६०. उस काल, उस समय वाराणसी नगरी थी, उस नगरी में
काम महावन नामक चैत्य था ।

उस वाराणसी नगरी में अलक्ष्य नामक राजा था ।

उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर-यावत-विचरते
हैं । परिषदा दर्शनार्थ निकली ।

तत्पश्चात् अलक्ष्य राजा इस वृत्तान्त को जानकर हर्षित एवं
तुष्ट हुआ और कूणिक के समान-यावत-पर्युपासना करता है ।
भगवान ने धर्म कथा कही ।

तत्पश्चात् वह अलक्ष्य राजा उदायन राजा के समान श्रमण
भगवान महावीर के पास से निकला और प्रत्रजित हुआ, किन्तु
इतनी विशेषता है कि ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किया ।
ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक श्रमण पार्थिव
का पालन कर-यावत-विपुल पर्वत पर सिद्ध हुआ ।

२१. महावीर तीर्थ में मेघकुमार श्रमण

राजगृह में श्रेणिक राजा—

२६१. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप
के भारतवर्ष में दक्षिणार्ध भरत में राजगृह नामक नगर था—
वर्णन । गुणशीलक चैत्य था—वर्णन ।

उस राजगृह में महाहिमवन्त, महान मलय पर्वत, पृथ्वी के
इन्द्र के समान मन्दर [सुमेरु] सदृश श्रेणिक नाम का राजा था
वर्णन ।

उस श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की देवी-भार्या—रानी थी
जो सुकुमार हाथ पैरों वाली थी—वर्णन ।

उस श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दादेवी का आत्मज अमय
नामक कुमार था—वह हीनतारहित, परिपूर्ण इन्द्रियों एवं शरीर
वाला था-यावत्-श्रेणिक राजा के राज्य, राष्ट्र, कोय, कोष्ठा-
गार [अन्न भण्डार], बल, सेना, वाहन, पुर-नगर, और अन्तःपुर
का संरक्षण-देखभाल करते हुए विचरता था ।

सेणियस्स धारिणी भारिया—

२६२. तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—जाव-सुकुमाल-पाणिपाया विहरइ ।

धारिणीए सुमिणदंसणं—

२६३. तए णं सा धारिणी देवी अण्णदा कदाइ तंसि तारिसंगसि—
छक्कट्टग-लट्टमट्टसंठिय-खंभुगय-पवरवर-सालभंजिय-उज्जल - मणि-
कणग-रयण-यूमिय- विडंकजालद्वचंद - निज्जहंतरकणयालिचंदसा-
लियाविभत्तिकलिए सरसच्छधाऊवल-वण्णरइए वाहिरओ दूमिय-
घट्ट-मट्ठे अब्भितरओ पसत्थ-सुविलिहिय-चित्तकम्मे नाणाविह-
पंचवण्ण-मणिरयण-कोट्टिमत्तले पउमलया-फुल्लवल्लि-वरपुप्फजाइ-
उल्लोयचित्थिय-तले वंदण-वरकणगकलससुणिम्मिय-पडिपूजिय-
सरसपउमसोहंतदारभाए पयरग-लंवंत-मणिमुत्तदाम-सुविरइयदार-
सोहे सुगंध-वर कुसुमउय-पम्हलसयणोवयारे मणहिययनिव्वु-
इयर कप्पूर-लवंग-मलय-चंदण-कालागरु-पवरकुन्दुखक - तुखक-
धूव-डज्जंत-सुरभि-मघमघेत-गंधुद्धयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंध-
वट्ठिभूए मणिकिरण-पणासियंधयारे, किवहुणा ? जुइगुणेहि
सुरवरविमाण-विडंविणवरघरए, तंसि तारिसंगसि सयणिज्जंसि-
जाव-पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी-
ओहीरमाणी—

श्रेणिक की धारिणी भार्या

२६२. उस श्रेणिक राजा की धारिणी नाम की देवी [रानी] थी-यावत्-सुकुमाल हाथ पैरों वाली सुशोभभोग करती हुई रहती थी ।

धारिणी का स्वप्न दर्शन—

२६३. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी ने किसी एक दिन जिसके बाह्य आलंदक या द्वार पर तथा मनोज्ञ, निकने, सुन्दर आकार वाले ऊँचे खंभों पर अतीव सुन्दर-उत्तम पुतलियां बनी हुई थीं, उज्ज्वल मणियों, कनक और कर्कोतन आदि रत्नों से जिसके शिखर बने हुए थे, जो छतरी, गवादा, अर्ध चन्द्राकार सोपान, निपूँहक (दरवाजे के दोनों ओर निकने काष्ठ) और उनके बीच का भाग, कनकाली चन्द्रमालिका आदि वर के विभागों की सुन्दर रचना से युक्त था, जिसमें स्वच्छ गेरु से उत्तम रंग किया गया था, जिसका बाह्य भाग कलई से पोता गया था तथा कोमल पापाण से घिसाई किये जाने से अत्यन्त चिकना था, भीतरी भाग में प्रशस्त एवं सुविलसित चित्र बने हुए थे, उसका भूमिभाग [फर्श] विविध प्रकार की पचरगी मणियों और रत्नों से जड़ा हुआ था तथा ऊपरी भाग [छत] पद्मलताओं, पुष्पवेलों और उत्तम पुष्प जाति-मालती आदि से चित्रित था, जिसके दरवाजे चंदन चर्चित मांगलिक घटों की स्थापना से शोभायमान थे, सरस कमलों से सुशोभित थे, जिसके द्वार प्रवरक, सुवर्णमय आभूषणों, मणियों और मोतियों की लंबी लटकती हुई मालाओं से शोभित हो रहे थे, जिसमें सुगन्धित और श्रेष्ठ पुष्पों से कोमल और सायेंदार शैया का उपचार किया गया था अर्थात् जिसमें सुगन्धित पुष्पों से युक्त शैया बिछी हुई है, मन और हृदय को आनंदित करने वाला था, कपूर, लौंग, मलयज, चन्दन, कृष्ण अगरु, उत्तम कुन्दुखक, तुसक [लोवान] और अनेक सुगन्धित द्रव्यों के संयोग से बने हुए धूप के जलने से उत्पन्न मधमघाती गंध से रमणीय था, जिसमें उत्तम चूर्णों की गंध विद्यमान थी, सुगंध की अधिकता से जो गंधवर्तिका जैसा प्रतीत होता था, मणियों की किरणों के प्रकाश से जिसमें अन्धकार नष्ट हो चुका था, विशेष और क्या कहा जाये ? वह अपनी द्युति-कांति से तथा गुणों से उत्तम देव विमान को पराजित करता था, ऐसे उस उत्तम भवन में एक शैया थी -यावत्-मध्यरात्रि के समय में जब न गहरी नींद में थी और न जाग रही थी, अर्थात् अर्ध जाग्रत जैसी थी, तब—

एगं महं सत्तुस्सेहं रययकूड-सन्निहं न्हयलंसि सोमं सोमागार
लीलायंतं जंभायमाणं मुहमतिगयं गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा ।

एक महान, सात हाथ ऊँचे रजतकूट—चाँदी के शिखर सदृश श्वेत, सौम्य, सौम्याकृति वाले लीला करते हुए हाथी को आकाश तल से अपने मुख में आते हुए देखकर वह जाग गई ।

सेणियस्स सुमिनिदवेणं—

२६४. तए णं सा धारिणी देवी अयमेयारूवं उरालं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं सस्सिरीयं महासुमिणं प्रासित्ताणं पडिवुद्धा समाणी हट्टुत्तु-चित्तमाणं दिया—जाव-अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणामेव से सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छिता सेणियं रायं ताहि इट्ठाहि-जाव-गिराहि संलवमाणी-संलवमाणी पडिवोहेइ, पडिवोहेत्ता सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणा-मणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था बीसत्था सुहासणवरगया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी—

“एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिगणवट्टिए-जाव-नियगव णमइवयंतं गयं सुमिणे प्रासित्ता णं पडिवुद्धा—तं एयस्स णं देवाणुप्पिया ! उरालस्स-जाव-सुमिणस्स के मग्गे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?”

सेणिएणं सुमिणमहिम-निदसणं—

२६५. तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्टुं सोच्चा निसम्म हट्टु-त्तुट्टुचित्तमाणं दिए पीइमग्गे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम-चु चुमाल-इयतणु असवियरोमकूवं तं सुमिणं ओनिहइ, ओगिण्हत्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणे साभाविणं मइपुब्बएणं बुद्धिविण्णा-णेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोगहं करेइ, करेत्ता धारिणी देवि ताहि इट्ठाहि-जाव-वग्गूहि अणुवूहमाणे-अणुवूहमाणे एवं वयासी—

“उराले णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे विट्ठे-जाव-अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो ते देवाणु-प्पिए ! भोग-सोखलाभो ते देवाणुप्पिए !

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं वहुपडिपुण्णाणं अट्टुमाणं राइदियाणं बीइक्कंताणं अन्हं कुलकेजं-जाव-सुरूवं दारयं पयाहिस्सि । ते वि य णं दारए उम्मक्कवात्तंभावे विण्णय-

श्रेणिक से स्वप्न निवेदन—

२६४. तत्पश्चात् इस प्रकार के इस उदार-प्रधान महास्वप्न को देखकर जागृत हुई वह धारिणी देवी हर्षित, संतुष्ट और आनंदित होती हुई यावत्-विलंब रहित, राजहंस जैसी गति से चलकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आई, वहाँ आकर श्रेणिक को इष्ट यावत्-वाणी बोल-बोल कर जगाती है, जगाकर श्रेणिक राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन पर बैठती है, उत्तम सुखासन पर बैठकर आश्वस्त—चलने के श्रम से रहित होकर, विश्वस्त क्षोभ रहित होकर और दोनों करतलों को जोड़कर मस्तक के आवर्त-पूर्वक अंजलि करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोली—

‘हे देवानुप्रिय ! आज मैं उस पूर्व वर्णित शरीर प्रमाण तकिया वाली शैया पर सो रही थी तब यावत्-अपने मुख में प्रवेश करते हुए हाथी को स्वप्न में देखकर जागी हूँ—तो हे देवानुप्रिय ! इस उदार-यावत्-स्वप्न का कौनसा कल्याणकारक फल विशेष होगा ?

श्रेणिक के द्वारा स्वप्न महिमा निदर्शन—

२६५. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा धारिणी देवी से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में अवधारण करके हर्षित हुआ, सन्तुष्ट हुआ, चित्त में आनंदित हुआ, मन में प्रीति उत्पन्न हुई, परम प्रसन्नता हुई, हर्षातिरेक से उसका हृदय विकसित हो गया, मेघ की धाराओं से आहत कदंब वृक्ष के सुगन्धित पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा, उसका रोम-रोम खड़ा हो गया, उसने स्वप्न का अवग्रहण किया—सामान्य रूप से विचार किया, अवग्रहण करने के अनन्तर विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया, ईहा में प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि विज्ञान द्वारा उस स्वप्न के फल का निश्चय किया, निश्चय करके इष्ट यावत्-वाणी से बार-बार प्रशंसा करते हुए धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है—यावत्-हे देवानुप्रिये ! इस स्वप्न को देखने से तुम्हें अर्थ लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! राज्य लाभ होगा, हे देवानुप्रिये ! तुम्हें भोग और सौख्य लाभ होगा ।

निश्चय ही हे देवानुप्रिये ! तुम पूरे नौ मास और साढ़े सात रात्रि दिन-व्यतीत होने पर हमारे कूल की ध्वजा के समान यावत्-रूपवान बालक-पुत्र को जन्म दोगे । वह बालक वात्सा-वत्था को पार करके, ज्ञान, विज्ञान और विनय में परिपक्व

परिणयमेत्ते सूरु वीरु चिक्कंते चित्थिण्ण-विपुल-चलवाहणे रज्जवई
राया भविस्सइ ।

तं उराले णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे विट्ठे-जाव-आरोग-
तुट्ठि-वीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवि ! सुमिणे विट्ठे”
त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवहेइ ।

धारिणीए सुमिणजागरिया—

२६६. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी
हट्ठुत्तु-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयल-
परिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“एवमेयं देवाणुप्पिया !जाव-सच्चे णं एसम्भं जं तुबने
वयह” त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सेणिएणं
रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिकणगरयण-भत्तिचित्ताओ
भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता
एवं वयासी—

“मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुमिणे अण्णेहि पावसुमिणेहि
पडिहम्मिहि” त्ति कट्टु देवय-गुरुजणसंबद्धाहि पसत्याहि धम्मि-
याहि कहाहि सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी
विहरइ ।

सुमिणपाठग-निमंतणं—

२६७. तए णं से सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे
सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज
सविसेसं परमरम्मं....गंधवट्ठिभूयं करेह, कारवेह य करेत्ता
कारवेत्ता य । एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं से कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा
हट्ठुत्तु-चित्तमाणंदिया-जाव-त्तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं से सेणिए राया-जाव-जेणेव अट्टणसाला, तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ ।

होकर, युवावस्था को प्राप्त कर गुरवीर और पराक्रमी होगा,
वह विस्तीर्ण और विपुल सेना और वाहनों वाला होगा, राज्य
का अधिपति राजा होगा ।

हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार-स्वप्न देखा है— वापस—हे
देवी, तुमने आरोग्यकारी, बुद्धिकारी, शीघ्रगुणकारी, कल्याण-
कारी स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर धारिणी उन्नी प्रवर्तना
करने लगा ।

धारिणी की स्वप्न जागरणा—

२६६. उसके बाद हर्षाश्रेणिक से मिलता हुआ स्वप्नित हो उठा
है, ऐसी वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर
हर्षित, सन्तुष्ट एवं चित्त में आनंदित हुई और दोनों हाथ जोड़कर
मस्तक पर आवर्त करके अंजलितुर्बत उस प्रकार बोली—हे
देवानुप्रिय ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है.....आपने
मुझसे जो कहा है, सो वह अर्थ सत्य है । इस प्रकार कहकर
स्वप्न को भली भांति स्वीकार करती है, स्वीकार करते श्रेणिक
राजा की अनुमति प्राप्त कर विविध प्रकार के मणि, मुवर्ण और
रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन से उठती है, उठकर जहाँ
अपनी शैया है, वहाँ आती है, वहाँ आकर शैया पर बैठती है,
बैठकर इस प्रकार सोचती है—

‘मेरा यह उत्तम, प्रधान और मंगल रूप स्वप्न अन्य अगुम
स्वप्नों द्वारा प्रतिघात प्राप्त न हो अथवा नष्ट न हो जाये,’ ऐसा
विचार कर देव और गुरुजनों सम्बन्धी प्रस्ताव धार्मिक कथाओं
द्वारा अपने स्वप्न की रक्षा करने के लिये जागरण करती हुई
विचरती है ।

स्वप्न पाठक निमंत्रण—

२६७. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा प्रभात काल के समय
कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता
है—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही बाहर की उपस्थानशाला को
विशेष रूप से परमरमणीय.....सुगंध की गुटिका के समान
करो, और करवाओ और ऐसा करके वापस आज्ञानुसार कार्य
हो जाने की मुझे सूचना दो ।’

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन
को सुनकर हर्षित, सन्तुष्ट एवं मन में आनंदित हुए—वावत—
उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् आज्ञानुसार कार्य होने
की सूचना देते हैं ।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा—वावत—जहाँ व्यायाम शाला
थी, वहाँ आता है, वहाँ आकर व्यायाम शाला में प्रवेश करता है ।

अणेगवायाम-जोग्ग-वग्गण- वामद्वण - मल्लजुद्धकरणोहि संते परिस्संते सयपागसहस्सपागोहि सुगंधवरत्तेल्लमादिर्ह-जाव-अब्भंगोहि अब्भंगिए समाणे....-अवगय-परिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिक्खा जेगेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसई, अणुपविसित्ता समत्तजाला-भिरामे विचित्त-मणि-रयण-कोट्टिमत्ते रमणिज्जे प्हाणमंडवंसि नाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि प्हाणपीदंसि सुहनिसण्णे सुहोदएहि गंधोदएहि पुप्फोदएहि सुद्धोदएहि य पुणो पुणो कल्लाणगपवर-मज्जणविहीए मज्जिए तत्थ-कोउयसएहि बहुविहेहि कल्लाणग-पवर-मज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइ-लूहियंगे अहय-सुमहग्घ-दूसरयण-सुसंबुए -ससि व्व पियदंसणे नरवइ मज्जण-घराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमिक्खा जेगेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थामिमुहे सणिसण्णे ।

तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरित्थमे दिसीभाए अट्ट भद्दासणाइं सेयवत्थ-पच्चुत्थुयाइं सिद्धत्थय-मंगलो-वयार-कयसंतिकम्माइं रयावेइ, रयावेत्ता नाणाभणिरतणमंडियं.... सुमउयं धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावेत्ता कोडुंविय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अट्टं गमहानिमित्तसुत्तत्थपाडए विविहसत्थकुसले सुमिणपाडए सद्दावेह, सद्दावेत्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुंवियपुरिता सेणिएणं रण्णा एवं बुत्ता समाणा हट्टुट्टु-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस- विसप्पमाणहियया करयल-परिग्गहियं दत्तणह सिरसावत्तं मत्थए अंजित्तं कट्टु एवं देवो ! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेत्ति, पडिसुणेत्ता सेणियत्स रण्णे अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमेत्ता रायगिहस्स

अनेक प्रकार के व्यायाम, योग्य [भारी पदार्थों को उठाना] वल्लग [कूदना] व्यामर्दन [भुजा आदि अंगों को परस्पर मोड़ना] मल्लयुद्ध तथा करण [बाहुओं को विशेष प्रकार से मोड़ना] आदि के द्वारा श्रम, विशेष श्रम करने के वाद शतपाक, सहस्रपाक आदि श्रेष्ठ सुगंधित तेल आदि के द्वारा यावत्-अभ्यंगनों से अभ्यंगन कराया, पश्चात्.....परिश्रम के दूर होने पर राजा व्यायाम शाला से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ मज्जनगृह [स्नानघर] था, वहाँ आता है, आकर मज्जनगृह में प्रवेश करता है, प्रवेश करके जालियों से मनोहर, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों से जिसका भूमिभाग रमणीय है ऐसे स्नान मंडप के भीतर विविध प्रकार की मणियों और रत्नों की रचना से चित्र विचित्र स्नान करने की पीठ-चौकी पर सुखपूर्वक बैठकर शुभ जल से, सुगन्धित जल से, पुष्पमिश्रित जल से और शुद्ध जल से वारंवार कल्याणकारी और उत्तम स्नान विधि से स्नान किया, कल्याणकारी और उत्तम स्नान करने के अनन्तर अनेक प्रकार के सैकड़ों कौतुक किये गये, तत्पश्चात् पक्षी के पंख के समान सुकुमाल, सुगन्धित और कपाय रंग में रंगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा, कोरे, बहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये..... चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन वाला राजा श्रेणिक मज्जन गृह से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ वाह्य उपस्थान शाला थी, वहाँ आता है, वहाँ आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ ।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा अपने से न अति दूर और न अति निकट उत्तर पूर्व दिशा में ईशानकोण में श्वेतवस्त्र से आच्छादित और सरसों के मांगलिक उपचार से जिनमें शांतिकर्म किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है, रखवाकर विविध मणि रत्नों से मंडित.... भोतरी भाग में धारिणी देवी के लिये अतिशय मृदु भद्रासन रखवाया, रखवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! अष्टांग महानिमित्त-ज्योतिष शास्त्र के नूय और अर्थ के पाठक, तथा विविध शास्त्रों में कुशल त्वप्न पाठकों को शीघ्र ही बुलाओ और बुलाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापस लौटाओ ।’

उसके वाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हर्षित, संतुष्ट, आनंदित हृदय वाले-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाले और दोनों करतलों को जोड़ दसों नयों को एकत्रित कर मस्तक पर घुमाकर अंजलि करके हे देव ! ऐसा ही होगा, इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार करते हैं, स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास जे

नगरस्स मज्झमज्जेणं जेणेव सुमिणपाढगगिहाणि तेणेव उवाग-
च्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सहावेंति ।

सेणिएण सुमिणफल-पुच्छा—

तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडुवियपुरिसेहं
सहाविया समाणा हट्टुट्टु-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्प-
माणहियया ष्हाया कयवलिकम्मा सएहि-सएहं गेहेहंतो पडि-
निक्खमंति, पडिनिक्खमिन्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्जेणं
जेणेव सेणियस्स भवणवडेंसगडुवारे, तेणेव उवागच्छंति, उवाग-
च्छित्ता एगयओ मिलंति, मिलित्ता सेणियस्स रण्णो भवणवडेंसग-
डुवारेणं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टा-
णसाला, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता
सेणियं रायं जएणं विजएणं वट्टावेंति, सेणिएणं रण्णा अच्चिय-
वंदिय-पूडिय-माणिय-सक्कारिय-सम्माणिया समाणा पत्तेयं-पत्तेयं
पुव्वत्तथेसु भदासणेसु निसीयंति ।

तए णं सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणि देवो ठवेइ,
ठवेत्ता पुप्फफल-पडिपुण्हत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणपाढए एवं
वयासी—“एवं खलु देवाणुप्पिया ! धारिणी देवी अज्ज तंति
तारिसगंसि सयणिज्जंसि-जाव-महासुमिणं पासित्ताणं पडिवुट्टा ।
तं एयस्स णं देवाणुप्पिया ! उरालस्स-जाव-सस्सिरीयस्स महा-
सुमिणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ।”

सुमिणफल-कहणं—

२६६. तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमहुं
सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमा-
णहियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्प-
विसति, अणुप्पविसित्ता अण्णमण्णेण सद्धि संचालेति, संचालेत्ता तस्स
सुमिणस्स लद्धट्टा पुच्छियट्टा गहियट्टा विणिच्छियट्टा अभिगयट्टा
सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइ उच्चारेमाणा-उच्चारेमाणा
एवं वयासी—

“.....इमे य सामी ! धारिणीए देवीए एगे महासुमिणे दिट्ठे,
तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे-जाव-
आरोग-तुट्टि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारेणं सामी ! धारिणीए
देवीए सुमिणे दिट्ठे । अत्यलाभो सामी ! पुत्तलाभो सामी !

निकलते हैं, निकलकर राजपुत्र नगर के मध्य में से होकर जहाँ
स्वप्नपाठकों के घर हैं, वहाँ पहुँचते हैं, वहाँ पहुँचकर स्वप्न-
पाठकों को बुलाते हैं ।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न फल पृच्छा —

२६८. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कोटुम्बिकपुत्रों द्वारा बुलाया
जाने पर वे स्वप्न पाठक हृष्ट-तुष्ट, आनंदित हृदय-यावत्-रणां-
तिरेक से विकसित हृदय वाले हुए, उन्होंने स्नान किया, बलि-
कर्म-पूजन किया.....अपने-अपने घरों में निकलते हैं, निकलकर
राजपुत्र नगर के बीचों बीच से होकर जहाँ श्रेणिक राजा के
मुख्य भवन का द्वार है, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर सब एक साथ
मिलते हैं, मिलकर श्रेणिक राजा के भवनाचरंसाक के द्वार से
अन्दर प्रवेश करते हैं, प्रवेश करते जहाँ वास्तु उपस्थान वाला
है जहाँ श्रेणिक राजा है, वहाँ आते हैं, आकर त्रय विजय शब्दों
से श्रेणिक राजा को वधाया, श्रेणिक राजा के द्वारा अर्चना,
वंदना, पूजा, मान, सत्कार, सम्मान किये जाने के बाद वे स्वप्न
पाठक पहले से रखे हुए पृथक-पृथक भद्रागनों पर बैठते हैं ।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा स्वनिहा के अन्दर धारिणी
देवी को बँठाता है, बँठाकर हाथों में पुष्प और फलों को लेकर
अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्न पाठकों से इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रियों ! आज उस प्रकार की उस जैया पर सोई
हुई धारिणी देवी-यावत्-महास्वप्न को देखकर जागी है । तो
देवानुप्रियों ! इस उदार-यावत्-सश्रीक महास्वप्न का क्या कल्याण
कारी फल विशेष होगा ?

स्वप्न-फल कथन—

२६९. उसके बाद वे स्वप्न पाठक श्रेणिक राजा से इस अर्थ को
सुनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त-
यावत्-हर्ष वश विकासमान हृदय वाले हुए और उस स्वप्न का
सम्यक् प्रकार से अवग्रहण करते हैं, अवग्रहण करके ईहा
[विचारणा] में प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके परस्पर एक-दूसरे से
विचार विमर्श करते हैं, विचार विमर्श करके उस स्वप्न का
अपने आप से अर्थ समझा, आपस में उस अर्थ को पूछा, दूसरे के
अभिप्राय को ग्रहण किया, दूसरे के अभिप्राय पर विशेष विचार
किया, और तथ्य अर्थ का निश्चय किया और उसके बाद
श्रेणिक राजा के समक्ष स्वप्न शास्त्रों का बार-बार उच्चारण
करते हुए इस प्रकार बोले—

‘स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नों में से एक महा-
स्वप्न देखा है, स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है
यावत्-स्वामिन् ! धारिणी देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु,
कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है । स्वामिन् ! इससे
आपको अर्थ लाभ होगा, स्वामिन् ! पुत्र का लाभ होगा, स्वामिन्

रज्ज-लामो सामी ! भोगलामो सामी ! सोखलामो सामी ! एवं खलु सामी ! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-दारगं पयाहिइ । से वि य णं दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णय परिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरु वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विपुल-वलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अगणारे वा भावियप्पा ।

तं उराले णं सामी ! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे-जाव-आरोग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारए णं सामी ! धारणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे” त्ति कट्ठु भुज्जो-भुज्जो अणुवहेत्ति ।

सुमिणपाढग-विसज्जणं—

३००. तए णं से सेणिए राया तेत्ति सुमिणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठु-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाभहियए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु एवं वयासी—

“एवमेयं देवानुप्पिया !-जाव-जं णं तुव्भे वयह त्ति कट्ठु तं सुमिणं सम्मं पडिच्छइ”, पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पोतिदाणं दलयति, दलइत्ता पडिविसज्जेइ ।

सेणिएण सुमिणपसंसा—

३०१. तए णं से सेणिए राया सीहातणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव धारिणी देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि एवं वयासी—“एवं खलु देवानुप्पिए !....आरोग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्ल-कारए णं तुमे देवि ! सुमिणे दिट्ठे” त्ति कट्ठु भुज्जो-भुज्जो अणुवहेइ ।

धारिणीए दोहलो—

३०२. तए णं ता धारिणी देवी सेणियत्त रग्गो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिआ-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया तं सुमिणं सम्मं पडिच्छति, पडिच्छित्ता जेणेव तए यासधरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता प्हाया कययत्ति-फम्मा कय-कोउय-मंगल-पावच्छित्ता विपुलाइं भोगनोगाइं भुज्जनापी विहरइ ।

राज्य का लाभ होगा, स्वामिन् ! भोग का लाभ होगा, स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा, स्वामिन् ! इस प्रकार धारिणी देवी नी मास व्यतीत होने पर -यावत्-पुत्र को जन्म देगी । वह पुत्र भी बालवय को प्राप्त करके, विज्ञान और विनययुक्त होकर युवावस्था को पार करके शूर, वीर, पराक्रमी होगा, विस्तीण और विपुल बल-वाहन वाला होगा, राज्याधिपति राजा होगा अथवा अपनी आत्मा को भावित करने वाला अनगर होगा ।

अतएव हे स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है— यावत्-हे स्वामिन् धारिणी देवी ने आरोग्यकारक, तुष्टिकारक दीर्घायुष्य कारक कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर वे स्वप्न-पाठक बारवार उस स्वप्न की सराहना-प्रशंसा करने लगे ।

स्वप्न-पाठक विसर्जन—

३००. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा उन स्वप्न-पाठकों के इस अर्थ को सुन और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकासमान हृदयवाला हो गया और दोनों करतलों को जोड़ मस्तक पर घुमाकर अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रियो ! जो तुम कहते हो वह वैसा ही है ।’ इस प्रकार कहकर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है । स्वीकार करके उन स्वप्नपाठकों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य और वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार, सम्मान करके जोविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देता है और प्रीतिदान देकर विदा करता है ।

श्रेणिक द्वारा स्वप्न-प्रशंसा—

३०१. उसके बाद वह श्रेणिक राजा सिंहासन से उठा, उठकर जहाँ धारिणी देवी थी, वहाँ आया, आकर धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो !..... तुमने आरोग्य तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर बार-बार उसकी अनुमोदना करता है ।

धारिणी का दोहद—

३०२. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के इन अर्थ को सुनकर और अवधारण करके धारिणी देवी हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदयवाली हुई और उन स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार करती है, अंगीकार करके वहाँ अपना पास रह है, वहाँ आती है, आकर स्नान किया, यंत्रिकर्म, पूजन किया, कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त करके विपुल भोगों को भोगती हुई विचरण करती है ।

तए णं तीसे धारिणीए देवीए दोगु मासेसु वोइकंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गवमस्स वोहलकालसमयंति अयमेयाएवे अकालमेहेसु दोहले पाउवमविथा—

“घण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, सपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलवखणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तांति माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भुण्णएसु अम्मभुट्टिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोय-रूपपट्ट-अंक-संख-चंद-कुन्द-सालिपिट्टरासिसमप्पभेसु चिकुर-हरियाल-भेय-चंपग-सण-कोरेंट-सरिसव-पउमरयसमप्पभेसु लवखारस-सरस-रत्तकिंसुय-जासुमण-रत्तवंधुजीवग-जातिहिगुलय-सरस-कुंकुम-उरवमससरहिर-इंदगोवग-समप्पभेसु वरहिण-नील-गुलिय-सुग-वासपिच्छ-मिगपत्त-सासग-नीलुप्पलनियर-नवसिरीसकुसुम-नवसहलसमप्पभेसु जचंचंजण-मिगभेय-रिट्टग-भमरावलि-गवल-गुलिय-कज्जलसमप्पभेसु फुरंत-विज्जुय-सगज्जिएसु वायवस-विपुलगगण-चवलपरिसपिकरेसु, निम्मल - वरवारिधारा - पयलिय - पयंडमारुयसमाहय-समोत्थरंत उवक्वरितुरियवासं पवासिएसु, धारा-पहकर-निवाय-निव्वाविय-मेइणितले हरियगगणकंचुए पल्लवियपायवगणेसु वल्लिवियाणेसु पसरिएसु उन्नएसु सोमगमुवागएसु नगेसु नदेसु वा वेभारगिरिप्प-वाय-तड-कडगविमुक्केसु उज्जरेसु, तुरियपहाविय-पट्टलोट्टफेणाउलं सकलुसं जलं वहंतीसु गिरिनदीसु सज्जज्जुणनीव-कुडय-कंदल-सिलिध-कलिएसु उववणेसु, मेहरसिय-हट्टुट्ट-चिट्टिय-हरिसवसपमु-क्ककंठकेकारवं मुयंतेसु वरहिणेसु उववस-मयजणिय-तरुणसहयरि-पणच्चिएसु नवसुरभि-सिलिध-कुडय-कंदल-कलंव-गंधुद्धणिं मुयंतेसु

उसके बाद ही मान व्यतीत हो जाने पर जीव जब तीवरा मास चल रहा था तब धारिणी देवी के उग्र गर्भ के दोहनकार के अवसर पर इस प्रकार का प्रकाशनेन ही दोहर उपपन्न हुआ—

ये माताएँ धन्य हैं, ये माताएँ पुण्यावती हैं, ये माताएँ कृतार्थ हैं, उन माताओं ने पुण्यार्जन किया है, ये माताएँ ह्य लक्षण हैं, जिनका वैभव सफल है, उन्होंने अनुभूत सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्राप्त किया है जब, जन्म में तपाहट मुद्र की दुई चांरी के पत्रे के समान, अंतरस समान, पंच, चन्द्र, कुन्द, पुष्प, चावल के प्राटे के समान, ओम वर्ण वाले, चिकुर, हरताल के टुकड़े, चंपा के फूल, मन के फूल, कोरेंट पुष्प, सरसों के फूल, पद्मपराग के समान-पीत वर्ण वाले, साथ ही रस, सरस रक्त, विजुक के पुष्प, जायू के पुष्प, लाल रंग के बंधु जीवक के पुष्प, उत्तम जाति के दिगलू, सरस कंक, चकरा और घरगोश के रक्त, इन्द्रगोप के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नीलमणि, गुलिका, तोते के पंख, चाक पक्षी के पंख, भ्रमर के समान पंख, सासक नामक वृक्ष, नीलकमल के समूह, रिट्ट रत्न, भ्रमर समूह, भैंसे के सींग की गोली [अंतरंग भाग] और काजल के समान कृष्ण वर्ण वाले मेघ चारों ओर आकाश में फैल रहे हैं, उठ रहे हैं बढ़ रहे हैं, वरसने को उद्यत हैं, गरज रहे हैं, बिजली के झपकारे हो रहे हैं, फुहार पड़ रही हो तथा गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमक रही हो, वायु के कारण चपल बादल इधर-उधर आकाश में परिभ्रमण कर रहे हैं, प्रचंड वायुवेग से आहत और स्थलित होकर निर्मल श्रेष्ठ जल धाराओं से भूमि को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर वरस रही हो, जलधारा से भूतल शीतल हो गया हो, पृथ्वी ने हरित घास का कंचुक धारण कर लिया हो, वृक्षावलि नवीन पल्लवों से सुशोभित हो गई हो, वेलों का समूह विस्तीर्ण हो चुका हो, उन्नत भूप्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हैं अर्थात् पानी से धुलकर साफ स्वच्छ हो गये हैं, वेभारगिरि तट और काटकों से प्रपात और निर्झर निकल कर वह रहे हैं, पर्वतीय नदियों में तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनों से युक्त मटमैला जल बह रहा हो, उद्यान सर्ज, अजुंन, नीम और कुटज नामक वृक्षों के अंकुरों और छत्राकार [कुकरमुत्ता] से मुक्त हो गये हैं, मेघ की गर्जना से हृष्ट, तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्ष के कारण मुक्तकंठ से केकारव कर रहे हैं और वर्षा ऋतु के कारण उत्पन्न मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हैं, उपवन शिलिघ्न, कुटज, कंदल और कंदब वृक्ष के पुष्पों की नवीन और सौरभ युक्त गंध की तृप्ति धारण कर रहे हैं—सुगन्ध-संपन्न हो रहे हैं,

उववणेसु, परह्य-रुय-रिमिय-सकुलेसु उदाइंत-रत्तइंदगोवय-
धोवय-कारुणविलविएसु ओणयतणमंडिएसु ददुदुरपयपिएसु ।

संपिडिय-वरिय-भमर - महुरियरिपहकर - परिलितमत्त-छप्पय-
कुसुमासवलोल-महर-गुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामिय-चंद-
सूर-गहगण-पणट्टनक्खत्ततारगपहे इंदाउह-वद्ध-चिधपट्टम्मि अंवर-
तले उड्डीणवलागपंति-सोमंतमेहवंदे कारंडग-चक्कवाय-कलहंस-
उस्सुयकरे संपत्ते पाउसम्मि काले ण्हायाओ कयवलिकम्माओ
कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ताओ 'कि ते ?' वरपायपत्तनेउर-मणि-
मेहल -हार-रइय-उचि-कडग- खुड्डय-विचित्तवरवलययंभियभुयाओ
कुण्डलउज्जोवियाणणाओ रयणभूसियंगीओ, नासा-नीसासवाय-
वोज्जं चक्खुहरं वण्णफरिससंजुत्तं ह्यलालापेलवाइरेयं धवलकणय-
खचियंतकम्मं आगासफलिह-सरिसप्पभं अंशुयं पवरपरिहियाओ,
दुगूलसुकुमालउत्तरिज्जाओ सव्वोउय - सुरभिकुसुम-पवरमल्लसो-
मियसिराओ कालागरुधूवधूवियाओ सिरि-समाणवेसाओ, सेयणय-
गंधहत्थिरयणं दुह्ढाओ समाणीओ, सकोरेंदमल्लदामेणं छत्तेणं
धरिज्जमाणेणं चंदप्पभ-वइरवेहलिय-विमलदंड-संख-कुन्द-दगरय-
अमय-महिय-फेणपुञ्जसन्नियास-चउचामरवालवीजियंगीओ सेणि-
एणं रण्णा सद्धि हत्थियंघवरगएणं पिट्टुओ-पिट्टुओ समणुगच्छ-
माणीओ चाउरंगिणीए सेणाए-महया हयाणीएणं गयाणीएणं
रहाणीएणं पायत्ताणीएणं-सव्विड्डीए सव्वज्जुईए सव्ववलेणं
सव्वसमुदएणं सव्ववादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं
सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सह - सण्णिणाएणं महया
इड्डीए महया जुईए महया वलेणं महया समुदएणं महया वरतु-
डिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-मेरि-अल्लरि-खरमुहि-
हुड्डक-मुरय-मुइंग-दुन्दुहि,

नगर के बाहर के उद्यान कोयलों के स्वरो से व्याप्त हों
और रक्त इन्द्र गोप नामक कीड़ों से सुशोभित हो रहे हों, उनमें
चातक करुण स्वर से बोल रहे हों, वे नमे हुए तृणों से सुशोभित
हों, उनमें मेंढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हों ।

मदोन्मत भ्रमर और भ्रमरियों के समूह एकत्रित हो रहे
हों, तथा जिसके प्रदेश पुष्प रस के लोलुप और मधुर गुंजार
करने वाले मदोन्मत भ्रमरों के गुंजारव से व्याप्त हों, चन्द्र,
सूर्य और ग्रहों के समूह मेघों से आच्छादित होने के कारण
आकाश श्याम वर्ण का दृष्टिगोचर हो रहा हो, इन्द्रधनुष रूपी
ध्वज पट फहरा रहा हो और उसमें रहा हुआ मेघ समूह बगुलों
की पंक्तियों से सुशोभित हो रहा हो, तथा कारंडक, चक्रवाक और
राजहंस पक्षियों को मान सरोवर की ओर जाने के लिये उत्सुक
वनाने वाला हो, ऐसे वर्षा ऋतु के समय में जो मातायें स्नान
करके, बलि कर्म करके, कोतुक, मंगल और प्रायश्चित्त करके, पैरों
में उत्तम तूपुर धारण करती हैं, कमर में करधनी धारण करती
हैं, वक्षस्थल पर हार, हाथों में कड़े, अंगुलियों में अंगूठियां पहनती हैं,
अपने बाहुओं को विचित्र और श्रेष्ठ वाजूवन्दों से स्तम्भित करती
हैं, जिनका मुख कुंडलों से चमक रहा हो, शरीर रत्नों से भूषित
हो रहा हो तथा नासिका की निश्वास वायु से उड़ जायें नेत्रा-
कर्पक, उत्तम वर्ण और स्पर्श वाले से, घोड़े के मुख से निकलने
वाले फेन से भी कोमल और हल्के, उज्ज्वल, जिनकी किनारियां
सुवर्ण के तारों से बनी हुई हों, आकाश व स्फटिक के समान
कांतिवाले हों और श्रेष्ठ जिनका ऊपरी भाग समस्त ऋतुओं के
सुगंधित पुष्पों और श्रेष्ठ पुष्पमालाओं से सुशोभित, कालागुरु
आदि की उत्तम धूप से भूषित और लक्ष्मी के वेप के समान ऐसे
जिन्होंने वस्त्र धारण किये हों तथा इस प्रकार वस्त्राभूषणों से
सज-धजकर जो सेचनक नामक गंधहस्ती पर आरुढ़ होकर
कोरंट-पुष्पों की माला से सुशोभित छत्र को धारण करती है,
चन्द्रमा की प्रभा वाले वज्र और वैडूर्य रत्न के निर्मल दण्ड वाले
एवं शंख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत मंथन करने से उत्पन्न हुए
फेन के समूह के समान उज्ज्वल चार चामर [जिन पर दोरे जा
रहे हैं और हस्तिरत्न के स्तंभ पर श्रेणिक राजा के साथ बंटी
हों, जिनके पीछे-पीछे चतुरंगिणी सेना, विशाल अश्व सेना, गज
सेना, रथसेना और पदाति सेना, चल रही हो, सर्व श्रेष्ठ के
साथ, समस्त द्युति कांति के साथ, समस्त सेना के साथ, समस्त
समुदाय के साथ, समस्त आदर पूर्वक, सर्व वैभवपूर्ण, सर्ववि-
भूषापूर्वक, सत्सम्मान, सभी प्रकार के पुष्प, गंध, माला, अलंकारों
सहित, नगाड़े आदि सभी प्रकार के बादों के जव्व निनाद के
साथ, महान श्रेष्ठि, द्युति, दज, समूह, उत्तम नगाड़े, गंध, दण्ड
पट्ट भेरी, अल्लरी, घरमुधी, हुड्डक, मुरज, मुदंग, दुन्दुभि

निगघोसनाइधरवेणं रायगिहं नयरं सिघाडग-तिग-
चउक्क - चच्चर - चउम्मह - महापहपहेसु आसित्तसित्त-सुइय
सम्मज्जिओवलित्तं पंचधण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फपुञ्जोद-
यार कलियं फालागर-पवरकुन्दुरुक्क - तुरुक्क-धूव-उज्जति-सुरभि-
मघमघेत्तं गंधुद्धयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूय अवलोएमा-
णीओ नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणीओ गुच्छ-लया-दवघ-गुम्म,
वल्लि-गुच्छोच्छाइयं सुरम्मं वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ
समंता आहिडमाणीओ-आहिडमाणीओ दोहलं विणिंति ।

तं जइ णं अहमवि मेहेसु अढमुगएसु-जाव-दोहलं
विणिज्जामि ।”

धारिणीए चिंता—

३०३. तए णं सा धारिणी देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणांसि
असंपत्तदोहला असंपुण्णदोहला असम्माणियदोहला सुक्का सुक्खा
निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा पमइलदुब्बला किलंता ओमंथि-
यवयण-नयणकमला पंडुइयमुही करयलमलिय व्व चंपगमाला
नित्तेया दीणविवण्णवयणा जहोचिय-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-हारं
अणभिलसमाणी किड्डारमणकिरियं परिहावेमाणी दीणा डुम्मणा
निराणंदा भूमिगयद्विहीया ओहयमणसंकप्पा करतलपल्लह्थमुही
अट्टुज्जाणोत्रगया झियाइ ।

पडिचारियाहिं चिंताकारणपुच्छा—

३०४. तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडिचारियाओ अन्भि-
तरियाओ दासचेडियाओ य धारिणि देवि ओलुग्गं झियायमाणि
पासति, पासित्ता एवं वयासी—

“किण्णं तुमे देवानुप्पिए ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव
झियायसि ?”

तए णं सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडिचारियाहिं अन्भि-
तरियाओ दासचेडियाहिं य एवं वुत्ता समाणी ताओ दासचेडियाओ

आदि वार्थों के एक साथ बजने से जमिन विशेष तरह के गान,
जितके श्रुताद्यों, गीतों, मधुपकों, मत्तारों, मधुर्तुयों, राजमर्गों
और नामान्य मार्गों में एक बार जल छिटाता है, अनेक बार
छिटाता है उन्हें श्रुति किया है, गाता है, सोता है, मत्तारों,
नरग, मुग्धियत मुग्ध पाप पुत्रों के द्वारा जितका उपचार किया
गया है तथा कानामुग्, उत्तम कुन्दुमनक, मुक्क, पूर के जमाने
से उत्पन्न मुग्ध में मत्तार रहे है, नारों और मध कौन्से से
मत्तार प्रतीत हो रहे है, उत्तम गंध के पुत्रों में मुग्धियत हो
और गंध प्रथों की बुद्धिका हो है, ऐमे राजपह नगर हो देखती
हुई, नागरिकों के द्वारा अभिनन्दन की जाती हुई कुच्छो, चताओं
वृधों, गुल्मों [शाश्रुयों] और वेलों के मसू से व्याप्त मत्तार
वेभारगिरि के पादमूल में नारों और नरों का भजन करती हुई
जो अपने दोहद को पूर्ण करती हैं—ये मातायें उन्नत है ।

तो मैं भी इसी प्रकार मेरों का उदय आदि होने पर-दावत-
अपने दोहद को पूर्ण करती ।’

धारिणी को चिन्ता

३०३. तत्परचात् वह धारिणी देवी उन दोहद की उभेना होने
के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, दोहद के सम्पूर्ण न
होने के कारण, दोहद के सम्मानित न होने के कारण मूय गई,
भूख से व्याप्त हो गई, अर्थात् उसे भोजन की इच्छा ही नहीं
रही, मांस रहित हो गई, शरीर की हड्डी दिखने लगी, जीर्ण
और जीर्ण शरीर वाली हो गई, स्नान का त्याग करने के कारण
मलिन शरीर वाली, भोजन त्याग देने से दुबली और बकी सी
हो गई, उसके मुख और नयन रूपी कमल नीचे झुक गये, उसका
मुख पीला पड़ गया, हथेलियों से मसली हुई चंपक पुष्पों की
माला के समान निस्तेज हो गई, मुख दीन और विवर्ण हो गया,
यथोचित पुष्प, गन्ध, माला, अलंकार, हार आदि आभूषणों के
विषय में अभिलाषा नहीं रही, क्रीड़ा खेलने आदि की क्रियाओं
का परित्याग करके दीन, दुखित, आनन्दहीन होकर भूमि की
तरफ मुख झुकाये मानसिक संकल्प और उत्साह रहित होकर
हथेली पर मुख को टिकाये हुए आर्तध्यान में डूबी रहने लगी ।

परिचारिकाओं द्वारा चिन्ताकारण पृच्छा—

३०४. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी की अंगपरिचारिकायें और
अभ्यन्तर दास चेटिकायें धारिणी देवी को जीर्ण एवं आर्तध्यान
में डूबी हुई देखती हैं, देखकर इस प्रकार बोलीं—

‘हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण सी और जीर्ण शरीर वाली क्यों
हो -यावत्-आर्तध्यान क्यों कर रही हो ?’

उसके बाद धारिणी देवी उन अंगपरिचारिकाओं और
अभ्यन्तर दास चेटिकाओं के इस कथन को सुनकर भी उन दास

नो आढाइ नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ ।

तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अंबितरियाओ दासचेडि-याओ य धारिणि देवि दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—“किणं तुम देवानुप्पिण ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-झियायसि ?”

तए णं सा धारिणी देवी ताहि अंगपडिचारियाहि अंबितरियाहि दासचेडियाहि य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी तुसिणीया संचिट्ठइ ।

पडिचारियाहि सेणियस्स निवेदणं—

३०५. तए णं ताओ अंगपडिचारियाओ अंबितरियाओ दासचेडियाओ य धारिणीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरियाणिज्जमाणीओ तहेव संभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिनिवखमंति, पडिनिवखमिन्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

“एवं खलु सामी ! किपि अज्ज धारिणी देवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्जाणोवगया झियायइ ।”

सेणिएणं विताकारणपुच्छा—

३०६. तए णं से सेणिए राया तासि अंगपडिचारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे सिग्घं तुरियं चवलं येइयं जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि ओलुग्गं ओलुग्गसरीरं-जाव-अट्टज्जाणोवगयं झियायमाणि पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

“किणं तुमं देवानुप्पिण ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्जाणोवगया झियायसि ?”

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रणा एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ-जाव-तुसिणीया संचिट्ठइ ।

तए णं से सेणिए राया धारिणि देवि दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

“किणं तुम देवानुप्पिण ! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा-जाव-अट्टज्जाणोवगया झियायसि ?”

चेटिकाओं का आदर नहीं करती है, उनकी ओर ध्यान नहीं देती है, किन्तु आदर और ध्यान नहीं देती हुई मौन रहती है ।

उसके बाद वे अंगपरिचारिकायें और अभ्यन्तर दास चेटिकायें दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहती हैं— ‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीर्ण सी और जीर्ण शरीर वाली हो रही हो-यावत्-आर्तध्यान कर रही हो ?’

उन अंग परिचारिकाओं और अभ्यन्तर दास चेटिकाओं द्वारा दुबारा और तिवारा भी इसी प्रकार पूछे जाने पर भी वह धारिणी देवी उनके कथन का आदर नहीं करती है और न गौर करती है अर्थात् वात पर ध्यान नहीं देती है किन्तु आहार न करती हुई और उपेक्षा करती हुई मौन रहती है ।

परिचारिकाओं द्वारा श्रेणिक से निवेदन—

३०५. तत्पश्चात् धारिणी देवी द्वारा अनादृत तथा उपेक्षित वे अंग परिचारिकायें और अभ्यन्तर दासियाँ सम्भ्रान्त (व्याकुल) होकर धारिणी देवी के पास से निकलती हैं, निकलकर जहाँ श्रेणिक राजा है, वहाँ आती है, वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़ दसों नखों को मस्तक पर घुमाकर, मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाती हैं, वधाकर इस प्रकार कहती है—

‘हे स्वामिन् ! आज धारिणी देवी जीर्ण सी-जीर्ण शरीर वाली होकर-यावत्-आर्तध्यान में निमग्न होकर चिन्तित हो रही है ।’

श्रेणिक द्वारा चिन्ताकारण पूच्छा—

३०६. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा उन अंग परिचारिकाओं से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर और इसी प्रकार व्याकुल होकर, शीघ्र, त्वरापूर्वक, चपलतायुक्त वेग से अर्थात् अत्यन्त शीघ्र गति से जहाँ धारिणी देवी थी वहाँ आता है, आकर धारिणी देवी को जीर्ण, जीर्ण शरीर -यावत्-आर्तध्यान मस्त, चिन्तित देघता है, देघकर इस प्रकार बोला—

हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्णसी, जीर्ण शरीर वाली -यावत्-आर्तध्यान में मग्न होकर क्यों चिन्ता कर रही हो ?

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर भी आदर नहीं करती है, उच्चर नहीं देती है -यावत्-मौन रहती है ।

तब श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी से दुबारा भी, तिवारा भी इसी प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम जीर्ण सी, जीर्ण शरीर होकर-यावत्-आर्तध्यान में निमग्न होकर चिन्तित हो रही हो ?’

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा दोच्चं पि तच्चं
पि एवं वुत्ता समाणी नो आढाइ नो परियाणइ-जाव-तुसिणीया
संचिद्धइ ।

तए णं से सेणिए राया धारिणिं देविं सवह-सावियं करेइ,
करेत्ता एवं वयासी—

“किण्णं देवाणुप्पिए ! अहमेयस्स अट्टस्स अणरिहे सवणयाए ?
तो णं तुमं ममं अयमेयाख्वं मणोमाणसियं दुक्खं रहस्सोकरेसि ।”

धारिणीए चिन्ताकारणनिवेदनं—

३०७. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा सवह-साविया
समाणी सेणियं रायं एवं वयासी—

“एवं खलु सामी ! मम तस्स उरालस्स-जाव-महासुमिणस्स
तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयाख्वे अकालमेहेसु वोहले
पाउभूए—

“धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ कयत्याओ णं ताओ अम्मयाओ-
जाव-वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिडमाणीओ-
आहिडमाणीओ दोहलं विणिति । तं जइ णं अहमवि मेहेसु
अब्भुगएसु-जाव-दोहलं विणेज्जामि ।

तए णं अहं सामी ! अयमेयाख्वंसि अकालदोहलंसि अवि-
णिज्जमाणंसि ओलुग्गा-जाव-अट्टज्जाणोवगया झियामि ।” एएणं
अहं कारणेणं सामी ! ओलुग्गा-जाव-अट्टज्जाणोवगया-जाव-
झियामि ।

सेणिएणं आसासणं—

३०८. तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्टं
सोच्चा निसम्म धारिणिं देविं एवं वयासी—

“मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओलुग्गा-जाव-अट्टज्जाणोवगया
झियाहि । अहं णं तहं करिस्सामि जहा णं तुभं अयमेयाख्वस्स
अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविससइ” ति कट्टु धारिणिं देवी
इट्ठाहि वग्गूहि समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठा-
णसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता सीहासणवरगए पुरत्था-
मिमुहे सणिणसण्णे धारिणीए देवीए एयं अकालदोहलं वहूहि आएहि
य उवाएहि य, उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि य कम्मियाहि य पारि-
णामियाहि य—चउन्विहार्हि बुद्धीहि अणुचितेमाणे-अणुचितेमाणे
तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा उप्पत्ति वा अविदमाणे
ओहयमण-संकप्पे-जाव-झियायइ ।

तत्परचात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा राया, दूमरी
बार भी, तीसरी बार भी उस प्रकार काले पर आकर नहीं करती,
ध्यान नहीं देती हुई मोन रहती है ।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा धारिणी देवी को गणप
खिलाता है, शपथ खिलाकर इस प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रिये ! तू में तुम्हारे मन की मान मुझे के लिये
अयोग्य (नालायक) हूँ ? जिसमें तुम अपने मनोवत् इस मानविक
दुःख को छिपा रही हो ।

धारिणी का चिन्ताकारण निवेदन—

३०७. तत्परचात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा की गणप को
सुनकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोली—

‘हे स्वामिन् ! मेरे उस उदार -यावत्-नदाम्बुष्ण के तीन
मास पूर्ण होने पर इस प्रकार का अकालमेघ सम्बन्धी दोहद
उत्पन्न हुआ है’—

वे मातायें धन्य हैं, मातायें कृतार्थ हैं-यावत्-वैभारगिरि
के पादमूल-तलहटी में चारों ओर घनघन करती हुई; घनघन
करती हुई दोहद को पूर्ण करती हैं । मैं भी उसी प्रकार
मेघों के उदय होने पर -यावत्-दोहद को पूर्ण करूँ ।

इस कारण हे स्वामिन् ! मैं इस तरह के इस अकाल दोहद
के पूर्ण न होने से जीर्ण सी-यावत्-आर्तध्यान ग्रस्त होकर, चिन्ता
में डूबी हुई हूँ । हे स्वामी ! इसी कारण मैं जीर्ण-सी यावत्,
आर्तध्यान वश होकर चिन्तित हूँ ।

श्रेणिक का आश्वासन—

३०८. तत्परचात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी की इस बात
को सुनकर और समझकर, धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण सी-यावत्-आर्तध्यान ग्रस्त होकर
चिन्तित मत होओ । मैं वैसा करूँगा जिससे तुम्हारे इस प्रकार
के इस अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति हो जाये ।’ इस प्रकार
कहकर धारिणी देवी को इष्ट.....वाणी से आश्वासन देता
है, आश्वासन देकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला है, वहाँ आता
है, आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके
बैठा और धारिणी देवी के इस अकाल दोहद की पूर्ति के लिये
बहुत से आयों [हृष्टिकोणों] से, उपायों से और औत्पत्तिकी,
वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार चारों तरह की
बुद्धियों से बार-बार चिन्तन करते हुए भी उस दोहद के आय
हेतु को, उपाय को, स्थिति को, उत्पत्ति को, नहीं समझ सकने
से, मानसिक संकल्प और उत्साह विहीन होकर चिन्ता ग्रस्त हो
गया ।

अभयकुमारेण सेणियं पइ चिंताकारणपुच्छा—

३०६. तयाणंतरं च णं अभए कुमारे ण्हाए कयवलिकम्मे कयको-
उय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए पायवंदए पहारेत्य
गमणाए ।

तए णं अभए कुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छिता सेणियं रायं ओहयमणसंकप्पं-जाव-झियायमाणं
पासइ, पासित्ता से अयमेयारुवे अज्जत्तिए चितिए मणोगए संकप्पे
समुप्पज्जित्या—“अण्णया ममं सेणिए राया एज्जमाणं पासइ,
पासित्ता आढाइ परियाणइ सक्कारेइ सम्माणेइ इट्ठाहिं वग्गूहिं
आलवइ संलवइ अट्ठासणेणं उवनिमंतेइ मत्थयंसि अग्घाइ । इयाणि
ममं सेणिए राया नो अढाइ नो परियाणइ नो सक्कारेइ नो
सम्माणेइ नो इट्ठाहिं वग्गूहिं आलवइ संलवइ नो अट्ठासणेणं
उवनिमंतेइ नो मत्थयंसि अग्घाइ, किं पि ओहयमणसंकप्पे-जाव-
झियायइ । तं भवियद्वं णं एत्य कारणेणं । तं सेयं खलु ममं
सेणियं रायं एयमट्ठं पुच्छित्तए” — एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणामेव
सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छिता करयलपरिग्गहियं
सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु जएणं विजएणं वट्ठावेइ, वट्ठावेत्ता
एवं वयासी—

“तुब्भे णं ताओ ! अण्णया ममं एज्जमाणं पासित्ता आढाइ
परियाणह सक्कारेह सम्माणेह आलवह संलवह अट्ठासणेणं उवणि-
मंतेह मत्थयंसि अग्घायह आसणेणं उवणिमंतेह । इयाणि ताओ !
तुब्भे ममं नो आढाइ-जाव-नो आसणेणं उवणिमंतेह किं पि ओह-
यमणसंकप्पा-जाव-झियायह । तं भवियद्वं णं ताओ ! एत्य
कारणेणं । ताओ तुब्भे मम ताओ ! एयं कारणं अगूहमाणा
असंकमाणा अनिण्हवमाणा अपच्छाएमाणा जहाभूतमवित्तमसंदिद्धं
एयमट्ठं आइवपह । तए णं हं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमि-
स्तामि ।”

सेणिएणं चिंताकारणनिवेदणं—

३१०. तए णं ते सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते तमापे
अभय कुमारं एवं वयासी—

अभयकुमार द्वारा श्रेणिक से चिन्ताकारण पृच्छा—

३०६. तदनन्तरं अभयकुमार ने स्नान किया, वलिकमं करके,
कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त करके, सर्व अलंकारों से विभूषित
होकर पादवंदना करने के लिये प्रस्थान किया ।

तत्पश्चात् अभयकुमार जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया
आकर श्रेणिक राजा को संकल्प में डूबे हुए-यावत्-ध्यानमग्न
देखता है, देखकर उसके मन में इस प्रकार का यह अन्तरंग
चिन्तन संकल्प उत्पन्न हुआ—‘किसी दूसरे समय श्रेणिक राजा
मुझे आता हुआ देखते थे तब देखकर आदर करते थे,
बोलते थे—आया हुआ जानते थे, सत्कार करते थे, सम्मान
करते थे, इष्ट वचनों से आलाप-संलाप करते थे, आधे आसन
पर बैठने के लिये आमंत्रित करते थे, मेरे मस्तक को सूँघते थे ।
लेकिन आज तो श्रेणिक राजा न मुझे आदर दे रहे हैं, न बोल
रहे हैं, न सत्कार-सम्मान कर रहे हैं, न इष्ट वचनों से
आलाप संलाप कर रहे हैं, न अर्ध आसन पर बैठने के लिये
आमंत्रित कर रहे हैं और न मेरे मस्तक को सूँघ रहे हैं, किन्तु
संकल्प-विकल्पों में डूबे हुए-यावत्-चिन्ताग्रस्त हैं । इसका कोई
कारण होना चाहिये । तो मुझे यह श्रेयस्कर होगा कि मैं श्रेणिक
राजा से इसका कारण पूँछूँ—इस प्रकार का निश्चय करता
है, निश्चय करके जहाँ श्रेणिक राजा थे, वहाँ आता है, आकर
दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर घुमाकर और अंजलि करके जय
विजय शब्दों से वधाता है, वधाकर इस प्रकार बोला—

‘हे तात ! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते,
मेरा आना जानते, सत्कार करते, सम्मान करते आलाप-संलाप करते,
अर्ध-आसन पर बैठने के लिये आमन्त्रित करते, मस्तक को सूँघते ।
आसन से निमंत्रित करते किन्तु तात ! आज आप न मुझे आदर
दे रहे हैं-यावत्-न मस्तक को सूँघ रहे हैं और न आसन का निमं-
त्रण दे रहे हैं, तथा किसी मानसिक संकल्प में डूबे हुए—यावत्-
चिन्ता कर रहे हैं । तो हे तात ! इन विषय का कोई कारण
होना चाहिये । अतः हे तात ! आप इस कारण को छिनाये बिना,
शंका रखे बिना, अपलाप किये बिना, दवाये बिना जैसा का
तैसा, सत्य, असंदिग्ध रूप से इस अर्थ को बतलाइये । तदाशयान्
मैं उस कारण के निराकरण का प्रयत्न करूँगा अथवा कार्यभार
के उपायों पर विचार करूँगा ।

श्रेणिक राजा का चिन्ताकारण निवेदन—

३१०. तदाशयान् अभयकुमार के इस प्रकार बोलने पर श्रेणिक
राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा—

‘एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए धारिणी देवीए तस्स गम्भस्स दोसु मासेसु अइयकंतेसु तइयमासे वट्टमाणे दोहलकाल-समयंति अयमेयारूवे दोहले पाउव्ववित्था—घण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ तहेव्वुनिरवसेसं भाणियव्वं-जाव-वेभारगिरिकउग-पायमूलं सव्वओ समंता आहिडमाणीओ-आहिडमाणीओ दोहलं विणिति । तं जइ णं अहमवि मेहेसु अवभुगाएसु-जाव-दोहलं विणिज्जामि ।

तए णं अहं पुत्ता धारिणीए देवीए तस्स अकालदोहलस्स बह्वहि आएहि य उवाएहि य-जाव-उत्पत्ति अविदमाणे ओहयमण-संकप्पे-जाव-झियामि, तुमं आगयं पि न याणामि । तं एतेणं कारणेणं अहं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पे-जाव-झियामि ।”

अभएणं आसासनं—

३११. तए णं से अभए कुमारे सेणियस्स रण्णो अतिए एयमट्टं तोव्वा निसम्म हट्टुट्टुचित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाण-हियए सेणियं रायं एवं वयासी—

“मा णं तुभ्भे ताओ ! ओहयमणसंकप्पा-जाव-झियायह । अहं णं तथा करिस्सामि जहा णं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवस्स अकालदोहस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ” त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहि इट्टाहि....कंताहि-जाव-वग्गूहि समासासेइ ।

तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु-चित्तमाणंदिए-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियए अभयं कुमारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

अभएणं देवाराहाणं—

३१२. तए णं से अभयकुमारे सक्कारिए सम्माणिए पडिवि-सज्जिए समाणे सेणियस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडि-निक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे, तेणामेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता सीहासणे निसण्णे ।

तए णं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—“नो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालदोहलमणोरहसंपत्तिं करि-त्तए, नत्तत्थ दिव्वेणं उवाएणं । अत्थि णं मज्झ सीहम्मकप्पवांसी पुव्वसंगइए देवे महिड्ढीए-जाव-महासोक्खे । तं सेयं खलु ममं पोसहसालाए [पोसहियस्स वंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगय-मालावण्णगविलेणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स] अट्टमंभत्तं पगिण्हित्ता पुव्वसंगइयं

‘धात यह है कि पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी के गर्भ के दो मास धोतने के बाद तीसरा मास बन रहा है, उसमें दोहदकाल के समय में उसे इस प्रकार का रोहद उत्पन्न हुआ है—ये मातायें धन्य हैं, इत्यादि मंत्र पढ़ने की मांगि कर्त्ता चाहिये—यावत्-वेभारगिरि की उत्पत्ति में मारी और सर्वत्र भ्रमण करती हुई आने दोहद को पूर्ण करती हैं । मैं भी उसी प्रकार मेघों के उदय होने पर -यावत्-भगने रोहद को पूर्ण करती ।

तव हे पुत्र ! मैं धारिणी देवी के उम प्रकाल रोहद के आयों, उपायों-यावत्-उत्पत्ति अर्थात् पुत्रि के उपायों को नहीं जानने के कारण संकल्प-विकल्प में रूपा हूँ—यावत्-चिन्तायुक्त हूँ, इसी से तुम आये हो, वह नहीं जाना । अतएव पुत्र ! मैं उसी कारण भग्न मनःसंकल्प वाला होकर-यावत्-चिन्तित हूँ ।’

अभय द्वारा आश्वासन—

३११. तत्पश्चात् वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के इन अर्थों को सुनकर और समझकर हर्षित, संतुष्ट, चित्त में आनंदित-यावत्-हर्षवशात् विकसित हृदयवाला होकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोला—

‘हे तात ! आप भग्न मनोरथ-यावत्-चिन्तित न हों । मैं वैसा उपाय करूंगा जिससे मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार इस अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति हो जाये ।’ इस प्रकार इष्ट.....वचनों से श्रेणिक राजा को संतुष्टता देता है ।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा अभयकुमार के इस कथन को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, चित्त में आनंदित-यावत्-हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला होकर अभयकुमार का सत्कार करता है, सम्मान करता है, सत्कार सम्मान करके विदाई देता है ।

अभय द्वारा देवाराधन—

३१२. उसके वाद सत्कारित एवं सम्मानित होकर विदा किया गया वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है, निकलकर जहाँ अपना भवन है, वहाँ आता है, आकर सिंहासन पर बैठता है ।

तत्पश्चात् वह अभयकुमार को इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—‘दिव्य अर्थात् दैविक उपाय के बिना मानवीय उपायों से मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के अकाल दोहद के मनोरथ की पूर्ति होना शक्य नहीं है । सौधर्म-कल्प में रहने वाला एक देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान ऋद्धि धारक-यावत्-महान सुख को भोगने वाला है । अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं पौषध शाला में (पौषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि सुवर्ण आदि के अलंकारों का त्याग

देवं मणसीकरेमाणस्स विहरित्ते । तए णं पुव्वसंगइए देवे मम
चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयाह्वं अकालमेहेसु दोहलं
धिणेहित्ति” — एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव पोसहसाला तेणानेव
उवागच्छइ, उवागच्छता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जिता
उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दम्मसंथारणं पडिलेहेइ,
पडिलेहिता, दम्मसंथारणं वुरुहइ, वुरुहिता अट्टममत्तं पगिण्हइ,
पगिण्हिता पोसहसालाए पोसहिए वंमचारो-जाव-पुव्वसंगइयं देवं
मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ ।

देवागमणं—

३१३. तए णं तस्स अभयकुमारस्स अट्टममत्ते परिणममाणे पुव्व-
संगइयस्स देवस्स आसणं चलइ ।

तए णं से पुव्वसंगइए सोहम्मकण्णवासी देवे आसणं चलियं
पासइ, पासित्ता ओहि पउंजइ ।

तए णं तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स अयमेयारुवे अज्जित्थिए-
जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—“एवं खलु मम पुव्वसंगइए जंयुहीवे
दीवे भारहे यासे दाहिणइड्ढनरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए
पोसहिए अनए नामं कुमारे अट्टममत्तं पगिण्हित्ता णं नम मणसी-
करेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ । तं सेयं खलु मम अनयस्स
कुमारस्स अंतिए पाउब्बनित्तए” — एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता उत्तर-
पुरत्थिमं विसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेजच्चियत्तमुग्घाएणं
समोहणित्ता संपेज्जाइं जोयणाइं दडं नित्तिरइ, तं जहा—

‘रयणाणं यइराणं वेस्सियाणं लोहियस्वाणं मसारगल्लाणं
हंसगम्भाणं पुलणाणं सोगंधियाणं जोईरत्ताणं अंकाणं अज्जाणं
रयणाणं जायस्सणाणं अज्जाणपुलणाणं फलिहाणं रिट्ठणं अहावापरे
पोग्गले परित्ताडेइ, परित्ताडेत्ता अहावुहुमे पोग्गले परिगिरहइ,
परिगिरहत्ता अभयकुमारमणुकुपनाणे देवे पुव्वमवज्जिय-मेह-

करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र, भूतल
आदि अर्थात् समस्त आरम्भ समारंभ को छोड़कर, एकाकी,
अद्वितीय होकर दर्भ के संस्तारक—आसन पर स्थित होकर, अष्टम
भक्त की तपस्या ग्रहण करके पूर्ण के मित्र देव का मन में चिन्तन
करते हुए रहें । जिससे वह पूर्ण का मित्र देव मेरी छोटी माता
धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकालमेष सम्यन्धी दोहद को
पूर्ण कर देगा—इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके
जहाँ पीपधशाला है, वहाँ आता है, आकर पीपधशाला का
प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन करके उच्चार-प्रस्रवण की भूमि का
प्रतिलेखन करता है, प्रतिलेखन करके दर्भ संथारे की प्रतिलेखना
करता है, प्रतिलेखना करके दर्भ संथारे पर आसीन होता है,
आसीन होकर अष्टमभक्त तप ग्रहण करता है, ग्रहण करके पीपध-
शाला में पीपधव्रती होकर, ब्रह्मचर्य अंगीकार करके-यावत्-पूर्व
के मित्र देव का मन में पुनः पुनः चिन्तन करता है ।

देवागमन—

३१३. उसके बाद उस अभयकुमार का अष्टम भक्त परिणमित
होने पर पूर्वभव के उस मित्रदेव का आसन चलायमान हुआ ।

तब वह सोधर्मकल्पवासी पूर्वभव का मित्रदेव आसन को
चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान का उपयोग
लगाता है ।

तब उस पूर्वभव के मित्र देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक
विचार-यावत्-संकल्प नमुत्पन्न हुआ—“इस प्रकार मेरा पूर्व का
मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, दक्षिणार्ध
भरत में, राजगृह नगर में, पीपधशाला में पीपधव्रती होकर
अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मन में पुनः पुनः मेरा स्मरण कर
रहा है । अतः मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं अभयकुमार के
समीप प्रकट होऊँ—इस प्रकार का विचार करता है, विचार
करके उत्तर पूर्व दिशा—ईशान कोण में जाता है, जाकर वैश्विय
समुद्रपात नामक समुद्रपात करता है, समुद्रपात करके संसारात्
योजन का दंड निकालता है, जो इस प्रकार का है—

१. कर्कतनरत्न, २. बय्यरत्न, ३. वईरुंरत्न, ४. लोहि-
ताक्षरत्न, ५. मसारगल्लरत्न, ६. हंसगर्जरत्न, ७. पुलकरत्न,
८. नौगंधिकरत्न, ९. ज्योतिगर्जरत्न, १०. प्रहरत्न, ११. अंजन-
रत्न, १२. रजतरत्न, १३. जातस्वरत्न, १४. अंजन-पुलकरत्न,
१५. स्फटिकरत्न, १६. रिष्टरत्न—इन सब रत्नों के यथा आदर-
असार-सुदृशनों या परिव्यापन करता है, योग्याय करके यथा-
सुगम-आरभूत-सुदृशनों को प्रकट करता है, प्रकट करके (उत्तर
वैश्विय कोण में) समुद्र-यन्त्र-पद-समुद्रपात करता
हुआ, पूर्वभव-वैश्विय-मेह-प्राणि एवं उसके प्रति-सुदृशनों के आरभ

पीडितमानुषजायसोगे, ततो विमानवरपुण्डरीयाओ रयणुत्तमाओ धरणिपल-गमण-तुरिय-संजणिय-गमणपपारो ।

वाघुष्णिय-विमल-कणग - पयरग- वडितगमउदुवरुडाडोववंस-
णिज्जो अणेगमणि • कणगरयण - पहकर-परिमंडिय - भत्तिचित्त-
विणित्तग-मणुगुणजणियहरिसो पिणोलमाणवरललियकुंडलुग्जलिय-
वयणगुणजणियसोम्मरुवो उदिओ विव कोमुदी-निसाए सणिच्छ-
रंगारकुज्जलियमज्जाभागत्वो नयणाणंओ सरयचंओ, विव्योत्तहि-
पज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उदुलच्छिसमत्त-जायसोहो पददुगंधुद्ध-
यामिरामो मेरु विव नगवरो विगुविययविचित्तवेसो वीवसमुद्धानं
असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेणं वीडवयमाणो उज्जोयंतो
पभाए विमलाए जीवलोयं रायगिहं पुरवरं च अभयस्त पासं
ओववइ दिव्वरुधारी ।

तए णं से देवे अंतलिखपडिवण्णे वसद्धवण्णाइं सखिखिणि-
याइं पवरवत्याइं परिहिए अभयं कूमारं एवं वयासी—

“अहं णं देवानुप्पिया ! पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे
महिद्धोए जं णं तुमं पोसहसालाए अट्टममत्तं पणिहिहत्ता णं ममं
मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवानुप्पिया !
अहं इहं हव्वमागए । संविसाहि णं देवानुप्पिया ! किं करेमि ?
किं वल्लयामि ? किं पयच्छामि ? किं वा ते हियइच्छियं ?”

तए णं से अमए कुमारे तं पुव्वसंगइयं देवं अंतलिखपडिवण्णं
पासइ, पासित्ता हट्टुट्ठे पोसहं पारेइ, पारेत्ता करयलपरिगहियं
वसनहं सिरसावत्तं मत्थए अज्जलि कट्टु एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! मम चुल्लमाज्जयाए धारिणीए
देवीए अयमेयारुवे अकालदोहले पाउब्भूए—धन्नाओ णं ताओ
अम्मयाओ तहेव पुव्वगमेणं-जाव-वेभारगिरिकडग-पायमूलं सव्वओ
समंता आहिडमाणीओ-आहिडमाणीओ दोहलं विणिति । तं जइ

जोड़ करने लगा । ईहद उम २४ न बानी रुचका जयस रका
से उत्तम विमान से निकल कर पूर्णचंद्र पर जाकर जोड़-
गति का प्रकार किया, अर्थात् जोड़-गति का प्रकाश ।

उम समय नगरपाला में पुर विमान का चंद्र प्रकाश में
जलंपूर और मुकुट के प्रकाश का प्रकाश से सब रसोईर नग रग
या । अनेक मणिओ, मुरके कीट रसोई के मसूर के प्रकाश कोर
तिनि रसना नाओ पसे पूर लंछन मे उम का प्रकाश से
रहा था । ऐसोने पूर रसोई कीट रसनाए दुइनी के प्रकाश
मुख की शीपि मे उमका रूप प्रकाश कीकर से प्रकाश
कातिक पूर्णिमा की राति मे राति कोर मसूर के मुख मे
स्थित और उदित शारदीय नदमा के समान ए उ रसोई के
नयनों को आनन्द दे रहा था । दिव्य जीवांशों की प्रभा के
समान मुकुट आदि के नेत्र के रसोईप्रकाश रूप मे मनोहर, समस्त
श्रुतियों की लक्ष्मी के दिव्य प्रकाश राति का प्रकाश मुख के
प्रसार से मनोहर, मेक पांश के समान ए उ अतिराम बनित हो
रहा था । उस देव ने तिनिव पुर की शक्ति को । वह अत्यंत
संख्यक और अमल्य नामों वाले शीपों और मसूरों के मुख में
होकर जाने लगा । अपनी विमल प्रभा से जीव जोड़ की तथा
नगरवर राजगृह को प्रभावित करता हुआ ए दिव्य रूप धारो-
देव अभयकुमार के निकट अवतरित हुआ-वापस्-जाया ।

तत्पश्चात् पंचरंगे और बुधेरु वाले उत्तम वस्त्र धारण
किया हुआ वह देव आकाश में स्थित होकर अभयकुमार ने इस
प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारा पूर्वभव का मित्र सोधनं कल्प-
वासी महान शक्ति का धारक देव हूँ, जिसे तुम पीपधयाला में
अष्टम भक्त तप ग्रहण किये हुए बार-बार मन में रखकर स्थित
हो, इसी कारण हे देवानुप्रिय ! मैं शीघ्र यहाँ आया हूँ । हे
देवानुप्रिय ! बताओ कि मैं तुम्हारा कौनसा इष्ट कार्य करूँ ?
तुम्हें क्या दूँ ? तुम्हारे सम्बन्धी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनो-
वांछित क्या है ?

तत्पश्चात् वह अभयकुमार आकाश में स्थित अपने पूर्वभव
के मित्रदेव को देखता है, देखकर हर्षित और संतुष्ट होता हुआ,
पीपध को पूर्ण करता है, पूर्ण करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक
पर घुमाकर अंजलि करके इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि मेरी छोटी माता धारिणी-
देवी, को इस प्रकार का यह अकाल दोहद उत्पन्न हुआ है—‘वे
मातायें धन्य हैं, इत्यादि पूर्व वर्णन के समान सब कथन यहाँ
समझ लेना चाहिये-यावत्-वैभारगिरि के पादमूल—तलहटी में
चारों ओर सर्वत्र पुनः पुनः परिभ्रमण करती हुई अपने दोहद को

पं अहमवि मेहेसु अन्मग्गएसु-जाव-वोहलं विणेज्जामि—तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेया-रुवं अकालवोहलं विणेहि ।”

देवेण अकालमेहविउव्वणं—

३१४. तए णं से देवे अमएणं कुमारेणं एवं वुत्ते समणे हट्टुत्तुट्ठे अमयं कुमारं एवं वयासी—

“तुमं णं देवाणुप्पिया ! सुनिव्वुय-वीसत्ये अच्छाहि । अहं णं तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारुवं अकालवोहलं विणेमि त्ति कट्टु अमयस्स कुमारस्स अंतियाओ, पडिनिबलमइ, पडिनिबलमिता उत्तरपुरत्तियमे णं वेभारपव्वए वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं नित्तिरइ-जाव-वोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं, सविज्जुयं सफुसियं पंचवण्णमेहनिणाओवसोहियं दिव्वं पाउसत्तिरो विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणामेव अमए कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमयं कुमारं एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए तव पियट्टयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउसत्तिरो विउव्विया, तं विणेऊ णं देवाणुप्पिया ! तव चुल्लामाउया धारिणी देवी अयमेयारुवं अकालवोहलं ।

धारिणीए दोहद-पूरणं—

३१५. तए णं से अमए कुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स सोहम्मकप्प-यासित्त देवस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिनिबलमइ, पडिनिबलमिता जेणामेव तेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयत्तपरिग्गहियं सिरत्तायत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“एवं खलु ताओ ! मम पुव्वसंगइएणं सोहम्मकप्पयासित्ता देवेणं पिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया पंचवण्णमेहनिणाओवसोभिया दिव्वा पाउसत्तिरो विउव्विया । तं विणेऊ णं मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालवोहलं ।”

तए णं से तेणिए राया अमयस्स कुमारस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुट्ठे कोइबियपुरित्ते तद्दावेद, तद्दावेत्ता एउं वयासी—

पूर्ण करती हैं । तो मैं भी इसी प्रकार के मेघों के उदय होने पर -यावत्-अपने दोहद को पूर्ण करूँ—तो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहद को पूर्ण कर दो ।’

देव द्वारा अकाल मेघ विकुर्वण—

३१४. उसके वाद उस देव ने अभयकुमार के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर अभयकुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम निषिचन्त रहो और विश्वास रखो । मैं तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के इस अकाल दोहद की पूर्ति किये देता हूँ—ऐसा कहकर वह देव अभयकुमार के पास से निकलता है, निकलकर उत्तर पूर्व दिग्भाग में वेभार पर्वत पर जाकर उत्तर वैक्रिय समुद्रघात करता है समुद्रघात करके संख्यात योजन दंड निकलता है-यावत्-दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्रघात करता है, समुद्रघात करके शीघ्र ही गर्जना युक्त, विद्युत् युक्त, फुहारों से युक्त, पाँच वर्ण वाले मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की लक्ष्मी की विक्रिया करता है, विक्रिया करके जहाँ अभयकुमार था वहाँ आया, आकर अभय-कुमार से इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी प्रीति के लिये गर्जनायुक्त, जलविन्दुओं से युक्त, विद्युत् युक्त दिव्य वर्षालक्ष्मी की विकुर्वणा की है, अतः हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी कनिष्ठा माता धारिणीदेवी इस प्रकार से इस अकाल दोहद की पूर्ति कर लें ।’

धारिणी का दोहद पूर्ण—

३१५. तदनन्तर वह अभयकुमार उस पूर्वभव के मित्र गोधर्म कल्पवासी देव की बात को सुनकर और मननकर हृष्ट तुष्ट होता हुआ अपने भवन से निकलता है, निकलकर जहाँ श्रेणिक राजा है, वहाँ आता है, आकर दोनों हाथ जोड़कर देव को आवर्तपूर्वक अंजलि करके इस प्रकार कहता है—

‘हे तात ! इस प्रकार मेरे पूर्वभव के मित्र गोधर्म कल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, विद्युत् युक्त, पंचवर्णों के मेघों की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा लक्ष्मी की विक्रिया की है । अतः मेरी छोटी माता धारिणी देवी अपने अकाल दोहद को सम्पन्न कर लें—पूर्ण करें ।’

तत्परवात् वह श्रेणिक राजा अभयकुमार ने इस बात को सुनकर और मन ने अन्वयार्थित कर हृष्ट एवं तुष्ट हो कोइबियक पुरणों को सुनाया है, सुनाकर अपने इस प्रकार कहा—

“खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! रायगिहं नगरं सिघाडग-
तिग-चउयक-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसितसित्त-सुइय-
संमज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह
य, करेत्ता करवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुंविद्यपुरिस्सा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा
हट्टुट्टु-चित्त-माणंविद्या पीडमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-
विसप्पमाणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति । तए णं से सेणिए
राया बोच्चं पि कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं
चाउरंमिणिं सेणं सन्नाहेह, सेयणयं च गंधहत्थियं परिकप्पेह ।”
ते वि तहेव करेत्ति-जाव-पच्चप्पिणंति ।

तए णं से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छिता धारिणिं देवि एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिए ! सगज्जिया सविज्जया सफुसिया
दिग्वा पाउससिरी पाउब्भूया । तं णं तुमं देवाणुप्पिए ! एयं
अकालदोहलं विणेहि ।”

३१६. तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणी
हट्टुट्टु जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता
मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतो अंतेउरंसिं णहाया
कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता, किं ते वरपायपत्ता-
नेउर-मणिमेहलहार-रइय-ओविय-कडग-खुड्डय - विचित्त-वरवल-
यथंभियभुया जाव-आगास-फालिय-समप्पभं अंसुयं नियत्था,
सेयणयं गंधहत्थियं दुरूढा समाणी अमय-महिय-फेणपुंज-सन्निगासाहिं
सेयचामरवाल-वीयणीहिं वीइज्जमाणी-वीइज्जमाणी संपत्थिया ।

तए णं से सेणिए राया णहाए कयबलिकम्मे-जाव-सस्सिए
हत्थियंखंधवरगए सकोरंटेमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउ-
चामराहिं वीइज्जमाणे धारिणिं देवि पिट्ठो अणुगच्छइ ।

हे देवानुप्रिये ! गांधारी राजा के दरबार में,
धियों, कनकों, चदरों, ननुपुंया, मज्जणों और वायाना पणों
आदि को जब से भीतर पुन भीतर दुर्निभूत कर, माफ
स्वच्छ कर, लीपहर-या-उपान मुता-या-इयों में मुता-यन
कर गंधवति-का के समान कर से, दुपसे में इरवाओ और ऐना
करके य करके मेरी आज्ञा वाय वीयओ कलेत् वाय पुनि
की मुझे सूचना दो ।

उसके बाद वे कोट्टुम्बिक युवा विजित राजा ही इस बात
को सुनकर हूट-तुट, जानन्दिना, प्रीतिमाना, परम मोहनन,
हर्षवश विरहित हृदय वाले हीकर उस राजा ही वायन कीले
हैं अर्थात् आज्ञापूर्ति की सूचना देते हैं। तत्पश्चात् उन श्रेणिक
राजा ने दुवारा कोट्टुम्बिक युवकों को पुनाया और उनसे इस
प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! शीघ्र ही उत्तम जय, गज, रथ और
योद्धाओं सहित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो और सेचनक
गंधहस्ती को तजाओ ।’ वे भी उन्ही प्रकार करते हैं-यावत्-आज्ञा
वापस सीपते हैं ।

तदनन्तर वह श्रेणिक राजा जहां धारिणीदेवी थी, वहां
आया, आकर धारिणीदेवी से इस प्रकार बोला—

हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार गर्जनायुक्त, विद्युत्तयुक्त, जलकणों-
विन्दुओं युक्त दिव्य पावसश्री-वर्षालक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई है । अतएव
हे देवानुप्रिये ! तुम अपने अकाल दोहद को पूर्ति करो ।’

३१६. तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के इस कथन
को सुनकर हूट तुट्ट हुई और जहां स्नानगृह था, वहां आई,
आकर स्नानगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके अन्तःपुर के अन्दर
स्नान किया, बलिकर्म-पूजन किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त
किया और उसके बाद क्या किया ? सो कहते हैं—पैरों में उत्तम
तूपुर, कटि में करधनी, गले में हार, हाथों में कड़े, अंगुलियों
में अंगूठियाँ पहनीं, विचित्र और श्रेष्ठ वाजूबंदों से हाथ स्तम्भित
किये-यावत्-आकाश स्फटिक मणि के समान प्रभा वाले वस्त्र
धारण किये, वस्त्र धारण कर सेचनक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर
अमृत मंथन से उत्पन्न फेनपुंज के समान श्वेत चामरों के वालों
रूपी वीजन से विजाती हुई रवाना हुई ।

उसके बाद श्रेणिक राजा ने स्नान किया, बलिकर्म किया—
यावत्-सुसज्जित होकर श्रेष्ठ हस्ती के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर
कोरंटे पुष्पों की माला वाले छत्र को मस्तक पर धारण करके
चार चामरों से विजाते हुए धारिणीदेवी का अनुगमन किया ।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा ह्य-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडा महया भड-चडगर-वंदपरिविपत्ता सध्विड्डीए सव्वज्जूईए-जाव-दुंठुभिनिघोत्तनाड-परवेणं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु नागरजणेणं अभिनंदिज्जमाणो-अभिनंदिज्जमाणो जेणामेव वैभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वैभारगिरि-कडग-तउपायमूले आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य खखेसु य गुच्छेसु य गुम्मेसु य लयासु य वल्लीसु य फंदरासु य दरीसु य चंडीसु य दहेसु य कच्छेसु य नवीसु य संगमेसु य विवरएसु य अच्छमाणी य पेच्छमाणी य मज्जमाणी य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य पल्लवाणि य गिण्हमाणी य माणेमाणी य अघायमाणी य परिभुंजेमाणी य परिभाएमाणी य वैभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिडइ ।

तए णं सा धारिणी देवी सम्माणियदोहला विणीयदोहला संपुण्णदोहला संपत्तदोहला जाया याचि होत्था ।

तए णं सा धारिणी देवी सेयणयगंधहत्थि वुह्वा समाणी सेणिएणं हत्थिखंधवरगएणं पिट्ठओ-पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा ह्य-गय-रह-पवरजोहकलियाए-जाव-जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं मज्जमज्जेणं जेणामेव सए भयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विउलाइं माणुस्त-गाइं भोगभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरइ ।

अभएण देवस्स पडिविसज्जणं—

३१७. तए णं से अभए कुमारे जेणामेव पोसहत्ताला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्पसंगदयं देयं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से देवे सगज्जियं सविज्जुयं पंचयणमेहोवतोहियं विषयं पाउतगिरि पडित्ताहरइ, पडित्ताहरित्ता जामेव वित्ति पाउम्भूए तामेव वित्ति पडिण्ण ।

धारिणीए गम्भचरिया—

३१८. तए णं सा धारिणी देवी तमि अकालदोहलनि विणीयसि सम्माणियदोहला तस्स गम्भसग अणुसंयणुणाए-आवसं सव्वं गुहं-गुहं परिहरइ ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ हाथी के स्तब्ध पर बैठे हुए श्रेष्ठिक राजा के द्वारा पीठे-पीठे अनुगमन की जाती हुई वह धारिणी देवी अरब, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओं से कनित चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत होकर, चारों ओर महान सुनटों के समूह से परिवेष्टित समग्र समृद्धि, समस्त सुति-यावत्-मुत्तुभिनाद के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृंगारकों, निकों, चतुष्टों, चत्वरों, चतुर्मुखों महापथों और पथों में नागरिकों द्वारा पुनः पुनः अभिनंदित की जाती हुई जहाँ वैभारगिरि पर्वत था, वहाँ आती है, आकर वैभारगिरि के कटक तट और तलहटी, आरामों, उद्यानों, काननों, वनों, वनखण्डों, वृक्षों, गुच्छाओं, गुल्मों, लताओं, पत्तों, कन्दराओं, गुफाओं, चुड़ियों (पोगरों) हृदय-नालायों कच्छों नदियों के संगमों और विवरों-जलानयों पर हृष्टि डालती हुई, उन्हें देखती हुई और स्नान करती हुई, पथों, पुष्पों और फलों और पल्लवों को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका दुःखार करती हुई, नूँघती हुई, घाती हुई, दूसरों को बाँटती हुई वैभारगिरि के पादमूल में अपने दोहद को पूर्ण करती हुई चारों ओर परिभ्रमण करती है ।

उसके बाद वह धारिणी देवी सम्मानित दोहद, मंथुयं दोहद सम्पन्न दोहद वाली हो गई ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठ हाथी के स्तब्ध पर बैठे हुए श्रेष्ठिक राजा के द्वारा मार्ग में पीठे-पीठे अनुगमन की जाती थी और मेघनह गंधहस्ती पर आरुढ़ वह धारिणी देवी अरब, गज, रथ और उत्तम योद्धाओं से युक्त-यावत्-जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आती है, वहाँ आकर राजगृह नगर के मध्य में से होगी हुई, वहाँ अपना भवन है वहाँ आती है, आकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगों को भोगती हुई विचरती है ।

अभय द्वारा देव का प्रणिविसर्जन—

३१७. तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पीपद्यमाना है, वहाँ आता है, आकर पूर्वभव के मित्र देव का स्तकार करता है, सम्मान करता है, स्तकार सम्मान करके विश्र करता है ।

उसके बाद वह देव गर्भनाभुक्त, रिद्धिनाभुक्त, मंथुयं वाली मेघों से मुगोभित रिद्धि पावननी यहाँ यहाँ का प्रसिद्धि करती है अर्थात् उसे समेटना है, अभिनंदित करके प्रदत्त दिव्या से प्रगट हुआ था, उनी दिशा में जाता गया ।

धारिणी की गर्भ चर्चा—

३१८. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी ने उस गम्भसग दोहद के गुहं गुहं पर दोहद को सम्मानित किया और उस गर्भ को उदुक्कण के निदेश-यावत्-उस गर्भ को सुदुर्लभ बना करती है ।



मेहस्स जम्मवद्धावणं—

३१६. तए णं सा धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं य राड्ढंविद्याणं वोइक्कंताणं अद्धरत्तकालसमयंसि सुकु-
मालपाणिपायं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया ।

३२०. तए णं ताओ अंगपडियारियाओ धारिणिं देवि नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयायं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं जेणेव सेणिए राया तेणेव उवा-
गच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सव्वंगसुंदरं दारगं पयाया । तं णं अम्हे देवानुप्पियाणं पियं निवेएमो, पियं भे भवउ ।”

तए णं से सेणिए राया तासि अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्टुट्ठे ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं त्रिउलेण य पुष्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सवकारेइ सम्माणेइ, मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेइ, कप्पेत्ता पडिविसज्जेइ ।

मेहस्स जम्मस्सवो—

३२१. तए णं से सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! रायगिहं नगरं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्ठिभूयं नड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहकहग - पवग-लासग-आइवखग लंख-संख-तूण इल्ल-तुंबवीणिय-अणेगतालायरपरिगीयं करेह, कारवेह य, चारगपरिसोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तए णं ते कोडुंविद्यपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टुट्ठु-चित्त-माणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्प-माणहियया तमाणत्तियं पच्चप्पिण्णंति ।

मेघ का जन्म वधावा—

३१६. तत्पश्चात् उय धारिणी देवी ने परिपूर्ण भी नाम और साईं सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर अंगसांघ के समय सुकुमात हाथ-पीर वाले-गान्तु-गर्वांग सुन्दर गिजु का प्रभाव दिया ।

३२०. उसके वे अंगपरिचारिकायें धारिणीदेवी को भी नाम पूर्ण हुए-यावत्-सर्वांग सुन्दर गिजु को उत्पन्न हुआ देवकी है, शीघ्र शीघ्र, त्वरित, चपल वेग से जड़ी श्रेणिक राजा या यड़ी आधी है, आकर श्रेणिक राजा को तब विजय गर्वों में बधानी है, बधाकर हस्तयुगल को जोड़ मस्तक पर पुनाकर और भवनि करके इस प्रकार कटती है—

‘हे देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने भी नाम पूर्ण होने पर— यावत्-सर्वांग सुन्दर पुत्र का प्रभाव दिया है । सो हम देवानुप्रिय को प्रिय निवेदन करते हैं, आप ही यह समानाद प्रिय सुन्दर ही ।’

तदनन्तर उन अंग परिचारिकाओं से इस बात को सुनकर और समझकर वह श्रेणिक राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ, उन अंग परिचारिकाओं का मधुर वचनों से और विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार सम्मान करता है, मस्तक प्रभाव-लन करता है अर्थात् उनको दासीपने से मुक्त करता है-पुत्र-वीर आदि तक चलती रहे ऐसी आजीविका के साधन देता है, देकर विदा करता है ।

मेघ का जन्मोत्सव—

३२१. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा प्रभातकाल के समय में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजशुह नगर को जल से आन्तक करो अर्थात् उसमें सुगंधित जल को छिड़कों, साफ स्वच्छ करो, लीपो, सुगंधित द्रव्य की गंध से सुगंध की गुटिका जैसा कर दो, नट, नर्तक, जल्ल (रस्सी पर खेल दिवाने वाले), मल्ल, मुष्टिक (पंजा लड़ाने वाले), विदूषक (कहकहे लगाने वाले), लवक (कुद-फांद करने वाले), जासक (हँसी भङ्करी करने वाले) आख्यायक (किस्से कहानी कहने वाले) लंख, शंख, तूणा नामक वाद्य विशेष एवं तंबूरा बजाने वाले और ताल देकर गाने वाले आदि को अपना-अपना कला कौशल दिखाने के लिये नियुक्त कर दो और करवाओ, कारागार के द्वार खोल दो अर्थात् कैदियों को मुक्त करो, मुक्त करके तोल-माप में वृद्धि करो, यह सब करके मेरी आज्ञा मुझे वापस लौटाओ ।’

उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा की बात को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, प्रीतिमना, परम सीमनस और हर्षवश विकसित हृदय वाले होकर उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् आदेशपूर्ति की सूचना देते हैं ।

तए णं से सेणिए राया अट्टारससेणि-प्पसेणोओ सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—“गच्छह णं तुवने देवानुप्पिया ! रायगिहे नगरे अग्नितरवाहिरिए उस्सुंकरं उक्करं अन्नटप्पवेसं अवंडिम-फुदडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्वयमुडुंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं पमुइय-पक्की-तियाभिरामं जहारिहं ठिइवडियं दसदेवसियं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

तेवि तहेव करेति, तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से सेणिए राया वाहिरियाए उवट्टाणसालाए सीहास-णवरगए पुरत्यानिमुहे सप्पित्तणे सतिएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि वाएहि भागेहि दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे एवं च णं विहरइ ।

मेहस्स नामादिसवकारकरणं—

३२२. तए णं तस्स अम्मापियरो पडमे विवसे जातकम्मं करेति, वित्तिए दिवसे जागरियं करेति, तत्तिए दिवसे चंदसूरवंसणिय फरेति एयामेय निवत्ते अनुइजायकम्मकरणे संपत्ते चारसाहविवसे विपुलं अत्तण-पाणंछाइम-साइमं उवत्तडावेति, उवत्तडावेत्ता मित्त-नाइ-नियम-सयण-संबंधि-परियणं वलं च चह्वे गणनायग-वंडनायग - राईत्तर - तत्तपर - माडविय-कोडुंविय - मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-वेड-पोडमह- नगर - निगम-सेट्टि-सेणावइ-सत्तपवाह-दुय-संधिवाले आमंतंति । तओ पच्छा प्हाया पयवत्तिरम्मा पयकोउय-मंगल-पावच्छित्ता सत्थालंकारविभूतिया महइमहाअयंमि भोयणमंडयनि त विपुलं अत्तणं पाणं छाइमं साइमं मित्त-नाइ-नियम-सयण-संबंधि-परियणेहि यत्तेण च बहूहि गणनायग वंडनायग-राईत्तर-तत्तपर-माडविय-कोडुंविय-मंति-महामंति- गणग-दोवारिय अमच्च-वेड-पोडमह-नगर-निगम सेट्टि सेणावइ सत्तपवाह-दुय-संधिवालेहि नांउ आताण्माणा पिसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुआणा एवं च णं विहरंति ।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा बठारह श्रेणियों ओर प्रश्रेणियों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है— ‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और राजह नगर के अन्दर और बाहर उत्तुलक, उक्कट, अमर प्रवेश, रंड कुरड रक्षित अधरिम (ऋणमुक्त) अधारणीय (ऋणों को न पकड़ना) करने की घोषणा कर दो तथा सर्वत्र मूदंग आदि बाजे बजवाओ, चारों ओर विकसित ताजे फूलों की मालायें लटकवाओ, गणिसायें प्रमुख हों ऐसे पात्रों के नाटक करवाओ, अनेक तातावरों के द्वारा नाटक आदि करवाओ, लोग हर्षित होकर जीड़ाओं में खत रहें, इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका (जन्म महोत्सव) करो और करवाओ और मेरी आज्ञा पापन मुझे लौटाओ ।’

वे भी इसी प्रकार करते हैं और उसी प्रकार राजाज्ञा पापन मांपते हैं । अर्थात् राजाज्ञानुसार घोषणा आदि करते आदेशपूर्ति की सूचना राजा को देते हैं ।

उसके बाद वह श्रेणिक राजा बाहरी उपस्थानमाला में पूर्ण दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ मिहान्न पर आसीन हो बैठे, हजारों और लाखों के द्रव्य को पाचकों आदि की देला हुआ और भेंट स्वरूप ग्रहण करता हुआ विचरने लगा ।

मेघ का नामादि सत्कार ग्रहण—

३२२. तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता पहले दिन जातकर्म, (नाल काटना आदि) करते हैं, दूसरे दिन जागरिका (रात्रि जागरण—रात्रि में गीत गायन) करते हैं, तीसरे दिन चंद्र भूयं के दर्शन करते हैं, इस प्रकार अनुनि जानकर्म ही किया सम्पन्न हो जाने के बाद चारहवें दिन विपुल अन्न, पान, धादिम और स्वादिम भोज्य पदार्थ तैयार करवाते हैं, तैयार करवाने मित्त, जाति, निजक (पुत्र आदि) स्वजन (काका आदि) मम-धी परिव-जन (दास आदि), मेना और बहुत से गणनायक, डडनायक, राजा, ईश्वर, तत्तपर, माडविक कोट्टुमिक, मी, महामनी, गणक, दोवारिक, अमात्य, चेट, पीठमंदक, नगर, निगम थेट्ठी, मेलापति, नाथंसाह, दूत, संधिवाले आदि को आमंत्रित करते हैं । इसके पश्चात् मनाम किया, शरिभम किया, कोडुव, मंगल और प्रायश्चित्त करने सर्व जनकारों में विभूषित हो बहुत विपुल भोजन मद्य में उस विपुल अन्न, पान, धादिम, मम-धी, भोजन का मित्त, जाति, निजक, स्वजन, मम-धी, परिव-जन, मेना, और बहुत से गणनायक, डडनायक, राजा, ईश्वर, तत्तपर, राजा, माडविक, कोट्टुमिक, मी, महामनी, तत्तपर, दोवारिक, अमात्य, चेट, पीठमंदक, नगर, निगम, धादिम, मेलापति, नाथंसाह, दूत, संधिवाले आदि के साथ आमंत्रित किया करने, पान, धादिम, शरिभम करते हुए शिवरत्न करते हैं ।

जिमियभुत्तरागयावि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-
सुडभूया तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं वलं च वहवे
गणनायग-जाव-संधिवाले विपुलेणं पुःफ-गंध-मल्लालंकारेणं
सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी—

“जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स गव्भत्यस्स चेव समाणस्स
अकालमेहेसु दोहले पाउबभूए, तं होउ णं अम्हं दारए मेहे नामेणं ।
तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिष्फण्णं
नामधेज्जं करेति मेहे इ ।”

मेहस्स लालणपालण—

३२३. तए णं से मेहे कुमारे पंचधाईपरिगहिए तं जहा—खीर-
धातीए मंडणधातीए मज्जणधातीए कीलावणधातीए अंक-धातीए
अण्णाहि य व्हर्ही—खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं
ववरीहिं बउसीहिं जोणियाहिं पल्लवियाहिं ईसिणियाहिं थारुणिणि-
याहिं लासियाहिं लउसियाहिं दामिलीहिं सिहलीहिं आरवीहिं
पुलिदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुण्डीहिं सवरीहिं पारसीहिं—
नानादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगिय-चितिय-पत्थिय-वियाणियाहिं
सदेस-नेवत्थ-गहिय-वेसाहिं निउण-कुसलाहिं विणीयाहिं, चेडिया-
चक्कवाल-वरिसधर-कंचुइज्ज-महयरग-वंद-परिखित्ते हत्याओ
हत्थं साहरिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिगिज्जमाणे
चालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परंगि-
ज्जमाणे परंगिज्जमाणे निव्वाय-निव्वाघायंसि गिरिकंदरमल्लोणे व
चंपगपायवे सुहंसुहेणं वड्ढइ ।

३२४. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं
नामकरणं च पजेमणं च पचंमणं च चूलोवणं च महया-
महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं करेसु ।

मेहस्स कलागहणं—

३२५. तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो साइरेगदुवासजायगं
चेव गव्मट्टमे वासे सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स
उवणंति ।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् ब्रैटने के स्थान पर आये,
हाथ मुँह धोकर स्वच्छ हुए, परम गुनि हुए और फिर उन
मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी, परिजन, सेना और ब्रत
से गणनायक-यावत्-संधिपाल आदि का विपुल पुण्य, मय, माला,
अलंकारों से मत्कार सम्मान करते हैं, मत्कार सम्मान करके इस
प्रकार कहा—

‘जब हमारा यह पुत्र गर्भ में आया था तब इसे (इसकी
माता को) अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद प्रगट हुआ था, इसलिए
इस पुत्र का नाम मेघ होना चाहिए । इस प्रकार उस बालक के
माता-पिता यथारूप यह गोण-गुण निष्पन्न नामकरण करते हैं ।

मेघ का लालन-पालन

३२३. तत्पश्चात् उस मेघकुमार को पाँचों धार्यों ने ग्रहण किया
अर्थात् पाँच धार्यों जैसे क्षीर धार्यी, मंडन धार्यी, मज्जन धार्यी
क्रीडगवन धार्यी, अंक धार्यी ये सभी मेघकुमार का पालन-पोषण
करने लगीं, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी-कुब्जा (कुवड़ी)
चिलातिका, वामन, वडभी, ववरी, वकुश देश की, योनिक देश
की, पल्लविक देश की, ईसविक, थारुकिन, ल्हासक देश की, लकुग
देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिद
देश की, पक्कण देश की, वहल देश की, मुरुण्ड देश की, शवर देश
की, पारस देश की आदि अनेक देशों और विदेशों की इंगित (मुख
आदि की चेष्टा) चिन्तित (मानसिक विचार) पार्थित (अभि-
लषित) को जानने वाली अपने-अपने देश के वेप को धारण करने
वाली, निपुण, कुशल (चतुर) विनयी दासियों, स्वदेशी दासियों,
वर्षधरों, कंचुकियों महत्तरकों के समुदाय से घिरा रहता और हाथों
ही हाथों में ग्रहण किया जाता, एक गोद से दूसरी गोद में लिया
जाता, लोरियाँ गा-गाकर वहलाया जाता, अंगुली पकड़कर
चलाया जाता, क्रीड़ा आदि से लालन-पालन किया जाता एवं
रमणीय मणि जटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और
व्याघातरहित गिरि कंदरा में स्थित चंपक वृक्ष के समान सुख-
पूर्वक बढ़ने लगा ।

३२४. उसके बाद उस मेघकुमार के माता-पिता अनुक्रम से
नामकरण, पालने में सुलाना, पैरों से चलाना, चूलोपनयन आदि
आदि संस्कार महान ऋद्धि, सत्कार और उल्लासपूर्वक करते हैं ।

मेघ का कला ग्रहण—

३२५. तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर माता-पिता
मेघकुमार को शुभतिथि, करण, मुहूर्त में कलाचार्य के पास भेजते
हैं ।

तए णं से कलावरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणिवपहाणाओ सउणरय-पग्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ तिखावेइ, तं जहा—

१. लेहं २. गणियं ३. इयं ४. नट्टं ५. गीयं ६. वाइय ७. तरगयं ८. पोक्खरगयं ९. समतात्तं १०. जूय ११. जगवायं १२. पात्तयं १३. अट्टावयं १४. पोरेवच्चं १५. इगमट्टियं १६. अण्णविहिं १७. पाणविहिं १८. वत्थविहिं १९. विलेवणविहिं २०. सयणविहिं २१. अज्जं २२. पहेत्तियं २३. मागहिय २४. गाहं २५. गीइयं २६. सिलीयं २७. हिरण्णजुत्ति २८. सुवण्णजुत्ति २९. चुण्णजुत्ति ३०. आमरणविहिं ३१. तरणीपटिकम्मं ३२. इत्थि-सवणं ३३. पुरिसलवणं ३४. हयलवणं ३५. गयलवणं ३६. गोणलवणं ३७. कुक्कुडलवणं ३८. छत्तलवणं ३९. वंडलवणं ४०. असिलवणं ४१. मणिलवणं [४२. कामणि-लवणं ४३. वत्थविज्जं ४४. यंधायारमाणं ४५. नगरमाणं ४६. वूहं ४७. पडिबूहं ४८. चारं ४९. पडिचारं ५०. चक्कवूहं ५१. गरुल-बूहं ५२. सगइयहं ५३. जुद्धं ५४. निजुद्धं ५५. जुद्धाइमुद्धं ५६. अट्टिजुद्धं ५७. मुट्टिजुद्धं ५८. वाट्टुजुद्धं ५९. लवाजुद्धं ६०. ईसायं ६१. छरुपवायं ६२. धणुपेयं ६३. हिरण्णपायं ६४. सुवण्णपायं ६५. वट्टुपेइं ६६. सुत्तपेइं ६७. नालियापेइं ६८. पत्तरपेइं ६९. पट्टपेइं ७०. सज्जीवं ७१. निज्जीवं ७२. सउणरत्तं ति । १

तव वे कलाचार्य मेहकुमार को गणित विज्ञान प्रधान है ऐसी लक्षा अदि गजुनिरुत्त (पक्षियों की ध्वनि) पर्यन्त वर्धर कलाओं को नूत्र से, अर्थ से धीर करण से (प्रयोग पूर्वक) निरुत्त करवाते हैं, सिखाते हैं। उन कलाओं के नाम इस प्रकार है—

१. लेखन २. गणित ३. रूप बदलना ४. नाटक ५. नाचन ६. वाद्य बजाना ७. स्वर ज्ञान ८. वाद्य सुधारना ९. मनःमन ज्ञान जानना १०. द्यूत ११. वाद-विवाद करना १२. पानों का पेंज १३. चाँपड़ खेलना १४. नगर की रक्षा करना १५. जल और मिट्टी के संयोग से वस्तु निर्माण करना १६. धाम्य निजानना १७. जल शोधन की विधि १८. वस्त्र निर्माण कला १९. धिने पत्र निर्माण २०. शैया बनाना २१. आर्वाछन्द बनाना २२. पहेलियाँ बनाना २३. मगध भाषा का ज्ञान २४. प्राकृत भाषा में छन्द रचना २५. गीत छन्द आदि बनाना २६. श्लोक बनाना २७. चाँदी और उसके आभूषण बनाना अथवा (चाँदी शोधना) २८. सुवर्ण और उनके आभूषण बनाना (अथवा सुवर्ण शोधना) २९. मुग्धित चूर्ण आदि बनाना ३०. आभूषण बनाना ३१. नगरी का प्रनाथन करना ३२. स्त्री के लक्षण जानना ३३. पुत्र के लक्षण जानना ३४. अर्य के लक्षण जानना ३५. शायी के लक्षण जानना ३६. गो लक्षण जानना ३७. कुक्कुट (मुर्गी) लक्षण जानना, ३८. छत्र लक्षण जानना ३९. दंत के लक्षण जानना ४०. चन्द्र के लक्षण जानना ४१. मणि परीक्षा ४२. काकपी रत्न परीक्षा ४३. वस्तु विद्या ४४. स्फुट्यावर निर्माण विद्या ४५. नगर निर्माण विद्या ४६. ब्यूह रचना ४७. प्रतिब्यूह रचना ४८. मीन संचालन ४९. प्रतिचार-जपुमेना के मगध प्रथमी लेना और बनाना ५०. चक्रब्यूह रचना ५१. गरुड़ भ्रूटरचना ५२. मकड भ्रूट रचना ५३. मुट्ट विद्या ५४. विनिष्ट मुट्ट विद्या ५५. जपि विनिष्ट मुट्ट विद्या ५६. पट्टिमुट्ट—बकरी पालने की विद्या ५७. मुष्टिमुट्ट ५८. वाट्टुमुट्ट ५९. लवामुट्ट ६०. वात विद्या ६१. ध्वज की मूठ आदि बनाना ६२. प्रभुविद्या ६३. पापों का नाश बनाना ६४. सुवर्ण नाश बनाना ६५. शीत शीतना ६६. सुवर्ण धुट करना ६७. कमल भाग का विद्या जानना ६८. विष रक्षा करना ६९. कण सुन्दर आदि का रक्षा करना ७०. सुविद्या की जीविन करना ७१. जीविन की सुविद्या करना ७२. अणु-विद्या (काक मूठ आदि की जीविन करना)

तवकारु यत्त कलाचार्य मेह कुमार को गणित-विज्ञानों का आदि ध्वनिरुत्त विज्ञान वर्धर बनाना का नूत्र से, अर्थ से धीर प्रयोग से निरुत्त करवाते हैं, सिखाते हैं, निरुत्त करवाते हैं सिखाते हैं माता-पिता के पास जाते हैं।

तए णं से कलावरिए मेहकुमार लेहाइयाओ गणिवपहाणाओ सउणरय-पग्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ तिखावेइ, तं जहा—

३२६. तए णं मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं महुरेहि वयणेहि विउलेण य वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइवाणं दलयंति, दलइत्ता पडिविसज्जेति ।

तए णं से मेहे कुमारे वावत्तरि-कलापंडिए तवंगमुतरडिओहिए अट्टारस-विहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्वनट्टकुसले ह्यजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही वाहुप्पमदी अलंभोगतमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था ।

मेहस्स पाणिग्रहणं—

३२७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं वावत्तरि-कलापंडियं-जाव-वियालचारी जायं पासंति, पासित्ता अट्ट पासायवाडिसए कारेति—अव्भुगयमूसियपहसिए विव मणि-कणग-रयण-भत्तिचित्ते वाउट्टुय-विजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंधमाणसिहरे जालंतर-रयण-पंजरुम्मलिए द्व मणिकणगयूमियाए वियसिय-सयवत्त-पुण्डरीए तिलयरयणद्धचंदच्चिए नाणामणिमयदामालंकिए अंतो वाहं च सण्हे तवणिज्ज-रुइल-वालुया-पत्यरे-सुह्फासे सस्तिरीयरूवे पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

एगं च णं महं भवणं कारेति—अणेगखंभसयसन्निविट्टं लीलट्ठियसालभंजियागं अव्भुगयसुकयवइरवेइयातोरण-वररइय-सालभंजिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ - वरुलियखंभ-

३२६. तव मेघकुमार के माता-पिता कलाचार्य का मधुर वचनों से और विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार-सम्मान करते हैं, सत्कार-सम्मान करते जीवित्त के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर विदा करते हैं ।

तव वह मेघकुमार बहतर कलाओं में पंडित-विपुल हो गया, उसके नी अंग-दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन—जो वात्पावस्था के कारण अव्यक्त चेतना वाले थे, प्रनिवृद्ध-जाग्रत से हो गये, वह अठारह प्रकार की देवी भाव्याओं में विशारद-पंडित हो गया, गीत रसिक, गीत और नृत्य में कुशल हो गया, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला हो गया, अपनी भुजाओं से प्रतिपक्षी का मर्दन करने में समर्थ हो गया, भोग भोगने में सक्षम हो गया और विकाल में भी गनन कर सके ऐसा साहसी बन गया ।

मेघ का पाणिग्रहण—

३२७. तत्पश्चात् उस मेघकुमार के माता-पिता जब उसे बहतर कलाओं में पंडित-यावत्-विनालचारी हुआ देखा देखकर आठ प्रासादावंतसकों का निर्माण कराया-जो बहुत ऊँचे उठे हुए थे, अपनी उज्ज्वल छटा से प्रतीत होते थे, मणि-सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र थे, वायु से फहराती हुई और विजय की सूचना देने वाली वैजयन्ती पताकाओं से एवं छत्रातिष्ठानों से युक्त थे, अपने शिखरों से आकाश तल का भी उल्लंघन कर दें, इतने ऊँचे थे, उनकी जालियों के मध्य में रत्नों के पंजर ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों वे उनके नेत्र हों, उनमें मणियों और सुवर्ण की धूमिकायें (स्तूपिकायें-छतरियां, गुम्बजें) थीं, उनमें चित्रित किये हुए शतपत्र और पुण्डरीक साक्षात् कमल जैसे विकसित हो रहे थे, वे तिलक रत्नों से रचित, अर्धचन्द्रमाकार वाले सोपानों से युक्त थे अथवा उनकी दीवारें चन्दन आदि के हाथों से चर्चित थीं, अनेक प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत थे, भीतर और बाहर से चिकने थे, उनके प्रांगणों में तपे हुए सुवर्ण जैसी रक्त बालुका बिछी हुई थी, उनका स्पर्श सुखद था, रूप बड़ा ही शोभन था, प्रासाद गुण युक्त थे, अर्थात् उन्हें देखते ही मन प्रसन्नता से भर जाता था-यावत्-प्रतिरूप थे— अत्यन्त मनोहर थे ।

इनके अतिरिक्त एक और विशाल भवन का निर्माण कराया । वह भवन सैंकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट था, अर्थात् वह भवन इतना विशाल था कि जिसमें सैंकड़ों खम्भे थे, जिन पर लीलायुक्त अनेक पुतलियां बनी हुई थी, ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिकायें

नाणःमणिकणगरयग-खचियउज्जलं वयुत्तम-सुविभत्त-निचिप्ररमणि-
ज्जभूमिभागं ईहामियउत्तम-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-
इह-सरन-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-मत्तिचित्तं खंभुगववयर-
वेइयापरिगयाभिरामं विउजाहर-जनल-जुयल-जंतजुत्तं पिव
अच्छीतहृत्समात्तणीयं रुयगतहृत्सकत्तिय नित्तमाणं मिग्गित्तमाणं
अयपुत्तोपणत्तेत्तं मुहफत्तं सत्तिरोयरुयं कंचणनणिरयणयूमियागं
नाणाधिह-यंचवण-घटापडाग-परिमंडियग्गसिहरं धवत्तमिदि-
धिक्रययं विणम्मयुत्तं ताउल्लोइयमहिंयं-जाद-गधवट्टिभूयं पासाईयं-
जाय-पडिइयं ।

और तोरन थे, मनोहर निमित्त वृत्तलिया नहि उतम, मोटे और
प्रवस्त वैदूर्य रत्न के स्तम्भ थे, ये विविध प्रकार की नणियों,
सुवर्ण तथा रत्नों से चंचित होने से उज्ज्वल दिग्दर्शनी थे,
उनका भूमिभाग विहकुल सम, विनाल, पत्तम और रमणीय
था, उक्त भवन में ईहा मृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, नकर, पत्नी
बलाका, किन्नर, जन, नरभ, चमर, कुंजर, जननया, पद्मनया,
आदि के चित्र, चित्रित हुए थे, स्तम्भों पर बनी चरित्र की
वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिग्दर्शनी पड़ना था, मन्-
श्रेणी में स्वित, विद्याधरों के गुणज यंत्र द्वारा कल्पे हुए के शीघ्र
पड़ते थे, हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों नितों से युक्त
होने के कारण यह भवन शीघ्रमान और अतीव ईदीप्यमान
था, दगकों के लिये नयनाकर्षक था, उनका स्वर्ण सुधमर था
और रूप शोभासम्पन्न था, जिनमें सुवर्ण नणि और रत्नों की
स्तूपिकायें बनी हुई थी जिनका तिर्यक विविध प्रकार की, पाच
वर्णों की घंटाओं युक्त पत्ताकाओं से सुनोभित था, यह चारों
ओर घवल ईदीप्यमान किरणों के समूह की कैला रत्न था,
लिपा-पुता और चंशेवे से युक्त धा-धाव-मानधर्मात्ता प्रेता जान
पड़ता था, चित्त को प्रमत्त करते वाला-वाक-प्रतिष्ठा जति
मनोहर था ।

तए ष तस्य मेहस्त कुमारस्त अम्मापियरो मेहं कुमारं
मोहणंमि तिहि-करण-नखयत्त-मुट्टत्तसि सरित्तिदाणं सरिच्चयाणं
सरित्तयाणं सरित्तलायण-रुय-ओवण-गुणोववेयाणं सरित्तएहितो
रायकुलेहितो आपित्तियाणं पत्ताहणट्टंग-अपिहपट्ट-ओवयण-
मगलमुजपिह् इट्टहि रायवरकम्माहि तद्धि एणदिवसेणं पाजि
गिष्ठापिसु ।

तत्प्रचात् मेघकुमार के माता-पिता ने शुभ विधि, करण,
नक्षत्र, मुहूर्त में शरीर परिधान से महान-ममान उद-समार,
ममान स्वया (ममान शरीर वर्ण कानि) ममान सावध-रूप, शीघ्र
और गुप्त वाली तथा अपने समान रायगुत्तों से चर्च हुई आठ
श्रेष्ठ राजकुमारों के साथ मेघकुमार का एक ही दिन, आठ
अंगों में अलंकार धारण करते वाली मोनापरती निसी द्वारा
किये जा रहे मंगल दावों पूरक हुए मनादि उ-पदावी के प्रवत्त
द्वारा पाणिग्रहण करवाया ।

प.इ.दा.गं—

प्रीतिदान—

३२८. तए ष तस्य मेहस्त अम्मापियरो इमं एयाख्यं पीददानं
उययत्ति-अट्ट हरिण-कोडीओ अट्ट मुट्टणकोडीओ गहाणुत्तारेण
भाणियथं-आउ-पणकारिमाओ, यणं च विपुलं धण-रुधण-उयय
मण-पीतय-संघ - तिल-उययल - रत्तयण-संत-मार - ताएएयं
अव-दि-आव-अगतमामो कुवयमाओ वरुण शउं पकामं भोत्तुं
पकामं वरिअ.एउं ।

तए ष त मेहं कुमारं एगमेणए अरियणं एगमेयं हिहण-
कोड उययट्ट-आव-एयमेयं वेतए.दि उययट्ट, यणं च विपुलं
धण उययट्ट-आव-पीतय-संघ-तिल-उययल-रत्तयण-संत-मार - रत्त-

सार-सावएज्जं अत्ताहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं दलयइ ।

तए णं से मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणोहि मुडंग-मत्थएहि-जाव-माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

महावीरसमवसरणं—

३२६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वापुव्वि चरमाणे गामाणुगामं द्दइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिळ्वं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-माणे विहरइ ।

मेहस्स पुच्छा—

३३०. तए णं रायगिहे नयरे सिघाडग-तिग-चउवक-चच्चर-चउम्मुह-महपहापहेसु-महया जणसद्दे इ वा-जाव-वहवे उग्गा भोगा जाव-रायगिहस्स नगरस्स मज्झं-मज्जेणं एगदिंसि एगाभिमुहा निग्गच्छंति । इमं च णं मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्ट-माणोहि मुडंग-मत्थएहि-जाव-माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे राय-मग्गं च ओलोएमाणे-ओलोएमाणे एवं च णं विहरइ ।

तए णं से मेहे कुमारे ते वहवे उग्गे भोगे-जाव-एगदिसाभिमुहे निग्गच्छमाणे पासइ, पासित्ता कंचुइज्जपुरिसं सद्देवइ, सद्देवत्ता एवं वयासी—“किण्णं भो देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नगरे इंदमहे इ वा-जाव-एगदिंसि एगाभिमुहा निग्गच्छंति ।”

कंचुइज्जपुरिसेण निवेदणं—

३३१. तए णं से कंचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेहं कुमारं एवं वयासी—“नो खलु देवाणु-प्पिया ! अज्ज रायगिहे नयरे इंदमहे इ वा-जाव-गिरिजत्ता इ वा जं णं एए उग्गा भोगा-जाव-एगदिंसि एगाभिमुहा निग्गच्छंति । एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसडे इह चेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए अहापडिळ्वं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

(माणिक आदि सारभूत द्रव्य देना है जो सात पीढ़ियों तक इच्छानुसार देने, भोगने, वांटने के लिये पर्याप्त था ।

उसके बाद वह मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपरी भाग में रहकर मृदंगों की गुंजायमान ध्वनिपूर्वक -यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगता हुआ विचरता है ।

महावीर समवसरणं—

३२६. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए, सुखपूर्वक विचरण करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, गुणशिलक चैत्य था, वहाँ आये, वहाँ आकर यथाप्रतिरूप अभिग्रह धारण कर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विराजते हैं ।

मेघ की पृच्छा—

३३०. उसके बाद राजगृह नगर के शृगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य मार्गों आदि में बहुत से लोगों का शब्द होने लगा-यावत्-बहुत से जन—उग्र कूल के, भोग कुल के यावत्-राजगृह नगर के बीचोंबीच से होकर एक ही दिशा में, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे । उस समय वह मेघकुमार श्रेष्ठप्रासाद के ऊपरी भाग में बैठा हुआ मृदंगों की वाप से गुंजायमान वातावरण में यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगते हुए और राजमार्गों का अवलोकन करते हुए विचर रहा था ।

तब वह मेघकुमार उन अनेक उग्रवंशियों, भोगवंशियों को -यावत्-एक ही दिशा की ओर जाते हुए देखता है, देखकर कंचुकी पुरुष को बुलाया है, बुलाकर इस प्रकार बोला—“हे देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर में इन्द्रमहोत्सव है अथवा अन्य कोई महोत्सव है-यावत्-एक ही दिशा में एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं, जा रहे हैं ।

कंचुकी पुरुष द्वारा निवेदन—

३३१. तत्पश्चात् उस कंचुकी पुरुष ने श्रमण भगवान महावीर के आगमन वृत्तान्त को जानकर मेघकुमार से इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर में इन्द्रमह अथवा -यावत्-गिरियात्रा आदि नहीं है, जिसके कारण ये उग्रवंशीय, भोगवंशीय यावत्-एक ही दिशा में एक ओर मुख करके नहीं जा रहे हैं, किन्तु हे देवानुप्रिय ! धर्म तीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले श्रमण भगवान महावीर यहाँ आये हैं, यहाँ पधारे हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर के गुण शिलक चैत्य में यथायोग्य अभिग्रह धारण करके तप और संयम द्वारा आत्मा को भाते हुए विचरण कर रहे हैं ।”

मेहस्त भगवधो समीचे गमण—

३३२. तए णं से मेहे कुमारे कंचुइज्जपुरित्तस्स अंतिए एयमट्टं
तोच्चा नित्तम्म णट्टुट्टे कोट्टुविपपुरित्तं सहावेद, सहावेत्ता एवं
ययागी—

गिणामेव भो देवानुप्रिया ! चाउघट आत्तरह जुत्तामेव
उट्टुवेह ।

तहत्ति उपणेति ।

तए णं से मेहे एहाए जाव सव्वालंकारविभूतिए चाउघटं
आगएह दुष्टदे समणे त्फोरंटमल्लवामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेण
गह्वा भट्ट-चडगर-वद परिवाल-संपरिवुडे रायगिहस्त नवरस्त मज्जं-
मज्जेणं निगच्छइ निगच्छित्ता जेणामेव गुणत्तिणए चेइए तेणामेव
उप.गच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवधो महावीरस्स छत्ता-
इत्तं पडामाएपडामं विज्जाहर-चारणे जंमए य देवे औवयमाणे
उपयमाणे पासइ, पासित्ता चाउघटाओ आत्तरहाओ पच्चोएहइ,
पच्चोएहित्ता नमणं भगवं महावीरं पंचविहूणं अभिगणेणं अभि-
गच्छइ । जेणामेव नमणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता नमणं भगवं महावीरं तिसगुत्तो आवाण्णि-पयाहिणं
करेइ, करेत्ता पंरइ नमंनइ, पंदित्ता नमदित्ता समणस्स भगवधो
महावीरसं भव्वावसो माट्टूरे सुस्सुणमाणे नमंनमाणे पंजत्तिउडे
अभिमुहे विणएण पग्गुवाणइ ।

मेत्र का भगवान के समीच गमन—

३३२. महारवान् वद् मेहकुमार कंचुगी पुत्र की दम सब की
मुनकर और अध्याहित कर कोट्टुमरु कुशरी की मुत्ताए
पुत्ताकर उनमे दम प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! मीत्र की चार पट्टी प्राई अरररर की
मीनकर उपरिमत करो ।

ये 'घट्ट अच्छा' कट्टकर रूप की मने है ।

उक्त वाद मेहकुमार ने स्वाम शिवा व्यापत् मने जलपानी
के विमुक्ति होकर चार पट्टे प्राई अरररर पर अररर मीर
कोरंट पुत्र की माताओं से मुक्त छत्र की मन्तर पर अररर र
यज्ञ से मुभट्टी और दग्गीजनों के साथ राजा-नगर के मन्द
ने ने निकलना है, निकलकर जहाँ गुणमित्तवर्षित के प्राई जाया,
आकर अमण भगवान महावीर के उवागिच्छा होकर पपरागे
पर पताका आरि अररररों की एए विदाएगे, अररर अररररी
मुनिवीं और जग्भक देवीं की नीचे जाये और अररर अररर
देवकर चार पट्टी प्राई अरररर से नीचे आरर, आररर पर पाई
प्रकार के अररररों एए अमण भगवान महावीर के अरररर-
तामने वना । जहा अमण भगवान महावीर के, एए अररर,
आकर अमण भगवान महावीर की नीचे आर अररररर अर-
रररर की, प्रदक्षिणा करके अररर नमस्कार किया, अररर नम-
स्कार करके अमण भगवान महावीर के नीचे आर अररर और
न अधिक दूर निकट मुश्रित एएए से अरररर करइ एए, अरर-
स्कार करने एए अरररर करके एए अरररर रररर अररररर-

तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।”

“अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

मेहस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

३३५. तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता महया भड-चडगर-पहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्जेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घटाओ आसर-हाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

“एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।”

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

“धम्मो सि तुमं जाया ! संपुण्णो सि तुमं जाया ! कयत्थो सि तुमं जाया । कयलवखणो सि तुमं जाया ! जन्नं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि एव वयासी—

“एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुवमेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।”

धारिणीए सोगाकुलदशा—

३३६. तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अणणुणं अमणामं असुवपुव्वं फरुसं, गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारुवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागयरोम-कूववगलंत-विलीगगाया सोयभरपवेवियंगी नित्तेया दीण-विमण-वरणा कय्यलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुगादुव्वलपरीर

उसके वार मुंडित होकर और मुंडित होकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करेगा ।

“देवानुप्रिय जिसने तुम्हें मुझ उपासे, सेवा करो, परन्तु उपासे विलम्ब मत करो ।”

मेघ का माता-पिता से निवेदन—

३३५. तत्पश्चात् बहू मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके जहाँ वार उठे वाला अश्वरथ था, वहाँ जाता है, आकर वार उठे जाने अश्वरथ पर वहाँ जाता है, आकर हीकर मन्थन मुभटों और पिताल जन समूह वाले परिवार के साथ रुचकरुणकर के मध्य में से होकर अपना भवन है, वहाँ जाता है, आकर चानुण्डिक अश्वरथ से नीचे उतरता है, उतरकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ जाता है, आकर माता-पिता को प्रणाम करता है प्रणाम करके इन प्रकार कहा—

“हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रमण किया है और उस धर्म का मैं आकांक्षी हूँ, विशेष रूप से आकांक्षी हूँ, मुझे रुचिकर है अर्थात् मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रत्ना है ।”

तब उस मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—

“पुत्र ! तुम धन्य हो ! तुम पुण्यशाली हो, पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, पुत्र ! तुम कृत लक्षण हो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रमण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट पुनः-पुनः इष्ट और रुचिकर है ।”

तब उस मेघकुमार ने दूसरी बार भी माता-पिता से इस प्रकार कहा—

“हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्मश्रवण किया है, वह धर्म मुझे इष्ट है, विशेष इष्ट है, रुचिकर है । अतएव हे माता-पिता ! तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।”

धारिणा की शोकाकुल दशा—

३३६. उसके बाद इस अनिष्ट, अप्रिय, अप्रशस्त, अमनोज्ञ, अमणाम (मन को न रुचने वाली) अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण कर, मन ही मन इस प्रकार के इस महान पुत्र-वियोग के दुःख से पीड़ित उस धारिणी देवी के रोम-रोम में पसीना आने से भीग गया, सारा शरीर, शोकातिरेक से अंग अंग कांप उठे, वह निस्तेज हो गई, दीन और विमनस्क हो गई, हथेली से मसली हुई कमल की माला के समान

साधुगुण-निष्ठाप-गतिरीषा पतिदिलभूतन-वदंतयुग्मिय-
 मंचुभिणवधयन-रत्न-वमदुत्तरिज्जा सुमाल-विकिणन-केवहत्या
 मुष्ठापस-नटुयेध-गददे परमुनियत व्व चंपगलया निव्वत्तमहे
 ४२ इदत्तु विमुक्त-संधिबधना कोट्टिमत्तत्तिसि तध्वंरिह धनसि
 पडिया ।

धारिणीए मेहस्त य परिवंवादी—

३३७. तए पं सा धारिणीदेवी सतंनमोवतिवाए सुरियं कंचगमिगा-
 रमुद्विभिगमय-मं.यनजलधिमलधाराए परित्तिचमाण-निध्वाधियगा-
 यन्त्री उवधेय-तात्तियट-वोपणग-जणिययाएणं सफुत्तिएणं अंतिय-
 परिअणेणं आतासिया मनाणी मुत्तामत्ति-सत्तिगान-पवधंत
 अंगुधाराहि विधमाणी पओदरे, कलप-विमण-दीणा रोयमाणी
 कंदमाणी तिप्पमाणी गोयमाणी विक्कमाणी मेहं कुमारं एयं
 ययापी—

"तुम मि पं जाया ! अहं एगे पुत्ते-कंते इहे रिए मनुणे
 मलामे धेअजे वेसातिए सधमए चउमए अणुमए भंडकरंड-
 गतमाने रयणे रयणभूए ओधिय-उत्तासिए हिपय-चंडियणगे
 उंअरुपुं थ हुत्तमहे सणयाए, किमंण पुण पात्तयाए ? को धनु
 आया ! अहं इच्छामो धणमवि विपजोग गहिसर । तं भुंअ.हि
 ताव आया ! विपुजे भाणुरत्तए कामजोगे जाय ताअ वयं जोआमी ।
 तजो पज्जा अहंहि कालमएहि परिमउपए चडिइए-कुमवंतंडु-
 वरजमिभ निरावउरधे समदास भगवओ महावीरस जंनिए सुवडे
 पविता जगाराओ अणयासिउं पधइत्तमि ।"

श्री गुरु, उमी धया जीर्ण और दुर्बल शरीर का भी तो गुरु, कायस्थ
 पूर्व कानिहीन, श्रीविहीन श्री गुरु, गुरुने तुम वरुने जायत गीरे
 हो गये, हाथों में पदों तुम उलस कर धिमदकन धमि पन निद
 कर धूर-धूर हो गये, उत्तरीय पर धिमक गया, मुहुमात में प-
 पाग विनार गया, सूखों के कारण, किन्ना गद ही गुरु, शरीर
 भारी हो गया, कृपाही मे काठी गुरु परलया के समान हो
 गुरु, मद्रोत्तव के मयाप्त हो पाये पर ऊपर उठ के मयाप्त श्री-
 हीन ही गुरु, शरीर के जोड़-जोड़ जीरे हो गये, गैर पछाड
 आकर सर्व जंघो से गृध्री पर गिर पती ।

धारिणी और मेघ का परिवंवाद—

३३७. कदरयात् एव धारिणी देवी श्री गुरुम पूर्वम जीव श्री
 मुदपं शारी के मुय मे निरुओ गुरु श्री मय अथ श्री निर्मल धारा
 से निधिन विवा अर्पात् नीतल मय के प्रीते धमि विधमि मयाका
 शरीर नीतल श्री गुरु और तं.पुन के परिजना द्वारा कलियं,
 तालयुग और वीजलक द्वारा उगत गुरु यज्जा जो विमल मद्रु
 मे मधेत किये जाने पर मोनियो श्री गुरु के मयाप्त मयाप्त
 तरतर परलापी गुरु अयुआरा मे पद उतल वय उतल श्री
 मोचने भिगेने लगी, गद इपलीय, विमलम श्री जीव श्री गुरु
 और रोनी गुरु, कदम करती गुरु, पनीयत-पनीय श्री गुरु,
 नार इपती गुरु, जोक करती गुरु, परलय करती गुरु नीरुगद
 के एत प्रवाद श्री गुरु—

"हे पुत्र ! तुम्हारा इतनी स देखा है, तुम मयाप्त, उद
 विर, मनीय, मयाप्त है, तुम्हारे विर और और मयाप्त का
 जायत है, तयं मरने मे मयाप्त हुआ है, वरु मयाप्त गुरु श्री गुरु
 कार्य करने के लययत् भी अहुमक है, आनुरणी उ मयाप्त उद
 मयाप्त है, लगी मे पदयत मयाप्त है, श्री गुरु उ मयाप्त मयाप्त
 मयाप्त है, तुम मे जायत मयाप्त करने का है, तुम मे तुम
 मयाप्त विरक, मयाप्त मयाप्त करला भी तुम मे श्री गुरु देवी
 श्री गुरु ही रवा है, हे गुरु ! तुम मयाप्त मयाप्त श्री गुरु मयाप्त

तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।”

“अहासुहं वेवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

मेहस्स अम्मापिऊणं निवेदणं—

३३५. तए णं से मेहे कुमारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव चाउघटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउघटं आसरहं वुरूहइ, वुरूहित्ता महया भड-चउगर-पहकरेणं रायगिहस्स नगरस्स मज्जमज्जेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउघटाओ आसर-हाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

“एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिइए ।”

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एवं वयासी—

“धम्मो सि तुमं जाया ! संपुण्णां सि तुमं जाया ! कयदथो सि तुमं जाया । कयलवखणो सि तुमं जाया ! जन्नं तुमं समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिइए ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चं वि एव वयासी—

“एवं खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभि-इए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुवमेहि अवभणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।”

धारिणीए सोकाकुलदसा—

३३६. तए णं सा धारिणी देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुत्तं, गिरं सोच्चा नित्तम्म इमेणं एयारुवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागयरोम-कूवपगलंत-चिलीगगाया सोयभरपवेविद्यंगी नित्तेया दीण-विमण-वरणा करयलमलिय व्व कमलमाला तक्खणओलुगादुव्वलपरीर

उसते वाद मुंडित होकर और पूरु अणुण्णं आनापरिक प्रव्रज्या अंगीकार करेगा ।

‘श्रियानुमिग विगते तुमं पुण उवाजे, वेसा करो, परस्सु उममं धित्तम्व मत करो ।’

मेघ का माता-पिता ने निवेदन—

३३५. तत्परयात् यः मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करते वही पार धटे वाला अवरथ था, वहा आता है, आकर पार धटे वाले अवर-थ पर वहां आता है, आकर हीकर महान मुन्डों और विमान जन समूह वाले परिवार के साथ राज-पुनगर के मध्य में से होकर अपना भवन है, वहां आता है, आकर वास्तुदिक अवरथ से नीचे उतरता है, उतरकर जहां माता-पिता थे, वही आता है, आकर माता-पिता को प्रणाम करता है प्रणाम करते इन प्रकार कहा—

‘हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रमण किया है और उस धर्म का मैं आकांक्षी हूँ, विशेष रूप से आकांक्षी हूँ, मुझे रुचिकर है अर्थात् मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे क्या है ।’

तव उस मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—

‘पुत्र ! तुम धन्य हो ! तुम पुण्यजाली हो, पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, पुत्र ! तुम कृत लक्षण हो कि तुमने श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रमण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट पुनः-पुनः इष्ट और रुचिकर है ।’

तव उस मेघकुमार ने दूसरी बार भी माता-पिता से इन प्रकार कहा—

‘हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्मश्रमण किया है, वह धर्म मुझे इष्ट है, विशेष इष्ट है, रुचिकर है । अत-एव हे माता-पिता ! तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

धारिणा की शोकाकुल दशा—

३३६. उसके बाद इस अनिष्ट, अप्रिय, अप्रशस्त, अमनोज्ञ, अमणाम (मन को न रुचने वाली) अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय में धारण कर, मन ही मन इस प्रकार के इस महान पुत्र-विद्योग के दुःख से पीड़ित उस धारिणी देवी के रोम-रोम में पसीना आने से भीग गया, सारा शरीर, शोकातिरेक से अंग अंग कांप उठे, वह निस्तेज हो गई, दीन और विमनस्क हो गई, हथेली से मसली हुई कमल की माला के समान

लावणसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिडिलभूसण-पडंतखुम्मिय-
संचुग्णियधवलवलय-पवभट्टउत्तरिज्जा सूमाल-विकिण्ण-केसहत्था
मुच्छावस-नट्टुचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे
व्व इंदलट्टी विमुक्क-संधिवधणा कोट्टिमत्तलंसि सव्वंगेहि धसत्ति
पडिया ।

धारिणीए मेहस्स य परिसंवादो—

३३७. तए णं सा धारिणीदेवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणाभिगा-
रमुहविणिग्गय-सीयलजलविमलधाराए परिसिचमाण-निव्वावियगा-
यलट्टी उक्खेवय-तालविट-वोयणंग-जणियत्राएणं सफुसिएणं अंतेउर-
परिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत
अंसुधाराहिं सिचमाणी पओहरे, कलुण-विसण-दीणा रोयमाणी
कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेहं कुमारं एवं
वयासी—

“तुमं सि णं जाया ! अहं एगे पुत्ते-कंते इट्ठे विए मणुष्णे
मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए वडुमए अणुमए भंडकरंड-
गसमागे रयणे रयणभूए जीविय-उत्सासिए हियय-णंदिजणणे
उंबरपुफं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु
जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओग सहित्तए । तं भुंजाहिं
ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो ।
तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वडिडए-कुलवंसतंतु-
कज्जम्मि निरावयवखे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे
भविता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्नापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मा-
पियरो एवं वयासी—

हो गई, उसी क्षण जीर्ण और दुर्बल शरीर वाली हो गई, लावण्य
शून्य कांतिहीन, श्रीविहीन हो गई, पहने हुए गहने अत्यन्त ढीले
हो गये, हाथों में पहने हुए उत्तम वलय खिसककर भूमि पर गिर
कर चूर-चूर हो गये, उत्तरीय वस्त्र खिसक गया, सुकुमाल केश-
पाश विखर गया, मूर्च्छा के कारण, चेतना नष्ट हो गई, शरीर
भारी हो गया, कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता के समान हो
गई, महोत्सव के समाप्त हो जाने पर इन्द्र दण्ड के समान श्री-
हीन हो गई, शरीर के जोड़-जोड़ ढीले हो गये, और पछाड़
खाकर सर्व अंगों से पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

धारिणी और मेघ का परिसंवाद—

३३७. तत्पश्चात् उस धारिणी देवी को संभ्रम पूर्वक शीघ्र ही
सुवर्ण शारी के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा
से सिंचित किया अर्थात् शीतल जल के छोटे डाले जिससे उसका
शरीर शीतल हो गया और अंतःपुर के परिजनों द्वारा उत्क्षेपक,
तालवृन्त और वीजनक द्वारा उत्पन्न एवं जलकणों मिश्रित वायु
से सचेत किये जाने पर मोतियों की लड़ी के समान नेत्रों से
झरझर बरसाती हुई अश्रुधारा से वह अपने वक्ष स्थल को
सींचने भिगोने लगी, वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई
और रोती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना-पसीना होती हुई,
लार टपकती हुई, शोक करती हुई, विलाप करती हुई मेघकुमार
से इस प्रकार बोली—

‘हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है, तू हमें कान्त, इष्ट,
प्रिय, मनोज्ञ, मणाम है, हमारे लिये धैर्य और विश्वास का
आधार है, कार्य करने में माना हुआ है, बहुत माना हुआ है और
कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है, आभूषणों के भंडकरंड के
समान है, रत्नों से बड़कर रत्नरूप है, जीवन के श्वासोश्वास के
सदृश है, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है, गुलर के फूल के
समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन
की बात ही क्या है ? हे पुत्र ! हम क्षण मात्र के लिये भी वियोग
सहन नहीं कर सकते हैं, इसलिये हे पुत्र ! जब तक हम जीवित
हैं तब तक मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगों और
हमारे कालगत हो जाने के बाद जब परिपक्व अवस्था के हो
जाओ अर्थात् युवावस्था बीतने के बाद प्रौढ़ अवस्था हो जाये,
कुलवंश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप तन्तु कार्य की वृद्धि हो जाये,
लौकिक कार्यों की अपेक्षा न रहे अर्थात् गृहस्थावस्था का दायित्व
न रहे उस समय तुम श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित
हो, दृहत्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना ।’

तब माता-पिता के इस कथन को सुनकर मेघकुमार ने माता-
पिता से इस प्रकार कहा—

“तहेव णं तं अम्मयाओ ! जहेव णं तुब्भे ममं एवं वयह—
‘तुमं सि णं जाया ! अम्मं एगे पुत्ते-जाव-पव्वइस्ससि ।’ “एवं
खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए
वसणसओवद्दवाविभूते विज्जुलयाच्चले अणिच्चे जलबुब्बुपसमाणे
कुसग्गजलविदुसन्निभे संजवभरागसरिसे सुविणवंसणोवमे सडण-
पडण-विद्धं सण-धम्मं पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे । से
के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुत्तिं गमणाए, के पच्छा गमणाए ?
तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भोहं अब्भणुण्णाय समाणे समणस्स
भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं
पव्वइत्तए ।”

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

“इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरित्तयाओ सरिव्वयाओ
सरिसलावण-रूव-जोव्वण-गुणोव्वेयाओ सरिसेह्मितो रायकुलेह्मितो
आणित्तियाओ भारियाओ । तं भुंजाहि णं जाया ! एयाहिं सद्धिं
विउले माणुस्सए कामभोगे । पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ
महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइ-
स्ससि ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—

“तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—
‘इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ-जाव-भारियाओ । तं भुंजाहि णं
जाया ! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे । पच्छा भुत्त-
भोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगा-
राओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।’

“एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया
वंतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुहस्तास-
नीतासा दुश्य-नुत्त-पुरीस-पूय-वहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-
सिघाणन-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवा अधुवा अणितिया असासया
सडण-पडण-विद्धं सणधम्मं पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पज-
हणिज्जा ।

“से के ण जाणइ अम्मयाओ ! के पुत्तिं गमणाए, के पच्छा
गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भोहं अब्भणुण्णाय
समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं
अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।”

‘हे माता-पिता ! आपने मुझसे जो यह कहा कि हे पुत्र !
तुम हमारे इकलिते बेटे हो, -वाक्य-प्रव्रज्या अंगीकार करना,
वह वैसा ही है, अर्थात् ठीक है । परन्तु हे माता-पिता ! यह
मनुष्य भव-जीवन अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, वितरवर और
आपदाओं से व्याप्त है, विजली की तरह चवन, जल के बुदबुदे
और दूब के नोक पर स्थित जल कण के समान अनित्य सप्र्या
अभ्रराग-लालिमा के समान, स्वप्न दर्शन के समान है सडन,
पतन और विध्वंसन धर्मा है, परचान् या पूर्व में अवश्य त्यागने
योग्य है, हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि पहले कौन
जायेगा और पीछे कौन जायेगा ? अतः हे माता-पिता ! आपकी
आज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर
गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

तत्पश्चात् माता-पिता ने नेवकुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे पुत्र ! यह तुम्हारी भावों से समान शरीर वाली, समान
रंग वाली, समान वय वाली, समान जलावण्य, द्रव्य, दीवन, एवं
गुणों से युक्त है तथा समान राजकुलों से लाई हुई हैं । अतएव
हे पुत्र ! इनके साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम भोगों को भोगो
भुक्त भोगी होने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर के पास
मुण्डित होकर गृहस्थावस्था का त्यागकर आनगारिक दीक्षा
अंगीकार कर लेना ।’

तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला—

हे माता-पिता ! आप मुझसे जो यह कहते हैं—‘हे पुत्र !
तेरी यह भावों से समान शरीर वाली है इत्यादि । अतएव हे
पुत्र ! इनके साथ विपुल मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगो ।
भोग-भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित
होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना, तो
ठीक है ।

लेकिन हे माता-पिता ! निश्चय ही मनुष्य के काम-भोग
अशुचि-अपवित्र है, अशाश्वत है, वमन को झराने वाले हैं, पित्त को
झराने वाले हैं, कफ को झराने वाले हैं, शुक को झराने वाले हैं,
शोणित को झराने वाले हैं, गदे उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं,
खराब मूत्र, मल, पीव से परिपूर्ण हैं, मल, मूत्र, कफ, नासिका
मल, वमन, पित्त, शुक और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं,
अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सडन, पतन, विध्वंसन धर्मा हैं और
पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य हैं ।

हे माता-पिता ! पहले कौन जायेगा [मरण को प्राप्त होगा]
और बाद में कौन जायेगा—मरेगा, यह कौन जानता है ?
इसीलिये हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर श्रमण
भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार
दीक्षा लेना चाहता हूँ ।’

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

“इमे ये ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुवह हिरण्णे य सुवण्णे य कंसे य दूसे य मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सगं इड्ढिसवकारसमुदयं । तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—“तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुव्भे ममं एवं वयह—‘इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए-जाव-तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।”

“एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामण्णे-जाव-मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धं-सणधम्मं पच्छा पुरं च णं अवस्सविपज्जहणज्जे । से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुट्ठिं गमणाए, के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्भेहिं अवमणुण्णाए समणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।”

३३८. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो संचाएति मेहं कुमारं वरूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहिं य पणवणाहिं य सणवणाहिं य विणवणाहिं य आघवित्तए वा पणवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए वा ताहे विसयपडि-कूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पणवणाहिं पणवेमाणा एवं वयासी—

“एस णं जाया ! निगंये पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवल्लिए पडिपुण्णे नेयाउए-जाव-संसुद्धे सल्लगत्तणे त्तिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सच्चदुक्खप्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा,

उसके वाद माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे पुत्र ! पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह अर्थात् सात पीढ़ियों से आया हुआ यह बहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कांसा, वस्त्र, मणि, मोती, शंख, मूंगा, माणिक आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है जो सात पीढ़ियों तक यथेच्छ देने, भोगने और वांटने पर भी समाप्त होने वाला नहीं है । अतएव हे पुत्र ! इस मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि सत्कार की समुन्नति का अनुभोग करके बाद में अनुभूत कल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के निकट मुण्डित हो, गृह त्यागकर अनगर धर्म अंगीकार कर लेना ।’

तव वह मेघकुमार माता-पिता से इस प्रकार बोला— ‘हे माता-पिता ! आप जो कुछ कहते हैं सो ठीक है कि हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यावत्-पश्चात् अनुभूतकल्याण वाले होकर श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर अनगर दीक्षा स्वीकार कर लेना ।’

लेकिन हे ! माता-पिता ! यह हिरण्य आदि धन द्रव्य अग्नि-साध्य, चोर-साध्य, राज्यसाध्य, दायसाध्य, मृत्युसाध्य है अर्थात् इस धन को अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, कुटुम्बीजन वांट सकते हैं और मृत्यु आने पर अपना नहीं रहता है तथा अग्नि सामान्य है—यावत्-मृत्यु सामान्य है, सड़न, पतन और विध्वंसन स्वभाव वाला है, पीछे या पहले अवश्य ही त्यागने योग्य है । अतः हे माता-पिता ! कौन यह जानता है कि पहले कौन जायेगा और वाद में कौन जायेगा ? इसलिए हे माता-पिता ! आपकी अनुमतिपूर्वक श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर और गृहवास का त्याग करके अनगर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।’

३३८. तत्पश्चात् जब मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आख्यापना (सामान्य वाणी), प्रज्ञापना (विशेष वाणी), संज्ञापना (संबोधन करने वाली वाणी) विज्ञापना (अनुनय-विनय की वाणी) समझाने, बुझाने, संबोधन करने और अनुनय करने पर भी विपयाभिमुखी करने में समर्थ नहीं हुए तब विपयों के प्रति-कूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार बोले—

‘हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, परिपूर्ण, निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है-यावत्-संगुद, शल्यनाशक, मोक्षमार्ग, मुक्ति मार्ग, निर्जंरामार्ग, निर्वाण मार्ग, सर्व दुखों के नाश का मार्ग है, सर्प के समान लक्ष्य के प्रति निश्चल दृष्टि वाला है, छुरे के समान एक धार वाला है, लोह

वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुदो इव भुयाहि वुत्तरे, तियखं चंक्रमियव्वं, गरुअं लंबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं । नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निगंयाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्बिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा वट्टलियाभत्ते वा गिलाण-भत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा वीथभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

“तुमं च णं जाया ! सुहसमुच्चिए नो चैव णं वुहसमुच्चिए, नालं सीयं नालं उण्हं नालं खुहं नालं पिवासं नालं वाइय-पित्तिय सिभिय-सन्नियाइए विवहे रोगायंके, उच्चावए गामकंटए, दावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए । भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगो समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्व-इस्सासि ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिज्जहि एवं वुत्ते समाणे अम्मा-पियरं एवं वयासी—“तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—‘एस णं जाया ! निगंथे पावयणे सच्चे पुणरवि तं चैव जाव पव्वइस्ससि ।’ एवं खलु अम्मयाओ ! निगंथे पावयणे कीवाणं कायरारणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोग-निष्पिवासाणं वुरणुचरे पाययजणस्स, नो चैव णं धीरस्स निच्छिय-ववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ?

“तं इच्छामि णं अम्मयाओ तुब्भेहि अब्भणुणाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।”

मेहस्स एगदिवसरज्जं—

३३३ नगु णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति वहाँहि तोमाहि य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पणवणाहि

के जो चवाने जैसा है, वानू के कोर जैसा नीरस है, गंगामहानदी के प्रतिश्रोत—पूर में तीरने जैसा है, भुजाओं से महानमुद को पार करने जैसा है, तलवार की तीक्ष्ण धार पर आक्रमण करने जैसा है, वजन को गले में लटकाने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है । इसके अलावा हे पुत्र ! निग्न्य श्रमणों को आधाकमी अथवा औद्देशिक अथवा क्रोधजन अथवा स्वातित [साधु के लिए रखा हुआ] अथवा रमित [मोदक आदि के चुनने को पुनः साधु के लिए मोदक रूप में तैयार किया हुआ] अथवा दुर्भिक्ष-भक्त, कान्तारभक्त, बदलिया भक्त [वर्षों के समय उपाश्रय में आकर बनाया गया भोजन] अथवा स्नान भक्त [रोगी गृहस्थ के नीरोग होने की कामना से साधु को दिया जाने वाला भोजन] आदि दूषित आहार ग्रहण करना नहीं कल्पता है । इसी प्रकार मूल, कद, फल, बीज और हरित वनस्पति का भोजन भी नहीं कल्पता है ।

इसके अलावा दूसरी बात यह है कि हे पुत्र ! तू दुःख भोगने लायक है, दुःख सहने योग्य नहीं है, तू जोत, उष्ण, भूय, प्यास भी सहन करने में समर्थ नहीं है और वान, पित्त, कफ और सन्निपात से उत्पन्न होने वाले विविध विकारों, रोगों और आतंतों को, ऊँचे, नीचे इन्द्रिय प्रतिकूल वचनों को, वाईत परीपहों और उपसर्गों को अदीन होकर सम्यक् प्रकार से सहन करने के लायक भी नहीं है । अतएव हे लाल ! तू मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोग ! भोग भोगने के पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के समीप मुण्डित होकर गृहस्थाश्रम को त्यागकर कल्याणकर अनगार वीक्षा ग्रहण करना ।

उसके बाद मेघकुमार माता-पिता की इस बात को सुनकर माता-पिता से इस प्रकार बोला—‘हे माता-पिता ! आपने जो कुछ कहा सो ठीक वैसा ही है कि ‘हे पुत्र ! यह निग्न्य प्रवचन सत्य है इत्यादि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिये-यावत्-प्रव्रज्या स्वीकार कर लेना ।’ लेकिन हे माता-पिता ! यह निग्न्य प्रवचन क्लीबों-नपुंसकों को, कायरों को, कुत्सित पुरुषों को, इहलोक सम्बन्धी विषय-सुख की अभिलाषा करने वालों को, परलोक में सुख की इच्छा करने वाले सामान्यजनों के लिए ही दुष्कर है लेकिन धीर और दृढ़ संकल्पी पुरुषों को पालन करने में कठिनाई क्या है ?

अतएव हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा अनुमति लेकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकर करना चाहता हूँ ।

मेघ का एक दिवस राज्य—

३३६. तत्पश्चात् जब माता-माता मेघकुमार को विषयों के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल बहुत सी आख्यापना, प्रज्ञापना,

य सणवणाहि य विणवणाहि य आघवित्तए वा पणवित्तए वा सणवित्तए वा विणवित्तए वा ताहे अकामकाइं चव मेहं कुमारं एवं वयासी—

“इच्छामो ताव जाया ! एगदिवसमवि ते रायसिंरिं पासित्तए ।”

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से सेणिए राया कोडुंविपुसिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवटुवेह ।”

तए णं ते कोडुंविपुसिसा मेहस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवटुवेत्ति ।

तए णं से सेणिए राया वृहं गणनायगेहि य - जाव-संधि-वालेहि य - जाव-संपरिवुडे मेहं कुमारं अट्टसएणं सोवग्गियाणं कलसाणं एवं रूपमयाणं कलसाणं सुवणरूपमयाणं कलसाणं, मणिमयाणं कलसाणं, सुवणमणिमयाणं कलसाणं रूपमणिमयाणं कलसाणं सुवणरूपमणिमयाणं कलसाणं, भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहि सव्वमट्टियाहि सव्वपुप्फोहि सव्वगंधोहि सव्वमल्लेहि सव्वोसहीहि सिद्धत्यएहि य सविड्डीए सव्वजुईए सव्ववलेणं-जाव दुंदुभि-निग्घोसणाइयरवेणं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिचइ, अभिसिचित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“जय-जय नंदा ! जय-जय भद्रा ! जय-जय नंदा ! भद्दंते, अजियं जिणाहि, जियं पालयाहि, जियमज्जे वसाहि, अजियं जिणाहि सत्तुपवखं, जियं च पालेहि मित्तपवखं, इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं भरहो इव मणुयाणं रायगिहस्स नगरस्स अन्नोसि च वृहणं गामागर-नगर-खेड-कव्वड-दोणमुह-मडं-पट्टण-आत्तम-निगम-संवाह-सग्गि-वेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं

संज्ञापना और विज्ञापना वाणी द्वारा समझाने, बुझाने, संवीधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ नहीं हुए तब इच्छा के बिना अनिच्छापूर्वक उदासीन होकर मेघकुमार से इस प्रकार बोले—

‘हे लाल ! हम तुम्हारी एक दिन की राज्यश्री देखना चाहते हैं अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए राज्य शासन करो ।’

तब वह मेघकुमार माता-पिता की इच्छा का मान करते हुए मौन रह गया ।

उसके बाद श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मेघकुमार के राज्याभिषेक के लिए महान अर्थ वाली, बहुमूल्य एवं महामूल्यवान सामग्री तैयार करो ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष मेघकुमार के राज्याभिषेक के लिए महार्थक, महर्घ और महामूल्यवान सामग्री तैयार करते हैं ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत से गणनायकों और—यावत्-सन्धिपालों और-यावत्-परिवृत होकर मेघकुमार को एक सौ आठ सुवर्ण कलशों, इसी प्रकार चांदी के कलशों, सुवर्णरजत कलशों, मणिमय कलशों, सुवर्ण मणिमय कलशों, रजत मणिमय कलशों, सुवर्ण रजत-मणिमय कलशों मृत्तिका कलशों में भरे हुए सर्व प्रकार के जल से, सब प्रकार की मृत्तिका से, सर्व प्रकार के पुष्पों से, सब तरह के गंधों से, सब प्रकार की मालाओं से, सर्व प्रकार की औषधियों से, सरसों से, समस्त समृद्धि, धृति और सर्वसैन्य के साथ-यावत्-दुन्दुभि निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों सहित महामहिमा वाले राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया, अभिषेक करके दोनों हाथों को जोड़ दस नखों को सिर पर घुमाकर मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

‘हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे आनन्दकर ! तुम्हारी जय हो, जय हो, तुम्हारा भद्र [कल्याण] हो, तुम न जीते हुए को जीतो, जीते हुए का पालन करो, अथवा जीत परम्परागत आचार का पालन करो, जित—आचारवान् के मध्य में निवास करो अर्थात् शिष्ट पुरुषों की संगति प्राप्त करो, नहीं जीते हुए शत्रु पक्ष पर विजय प्राप्त करो और जित मित्र पक्ष का पालन करो, देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, तारों ज्योतिष्क मंडल में चन्द्रमा के समान, मनुष्यों में भरत के समान राजगृह नगर का तथा और दूसरे भी बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेड, कव्वट, द्रोणमुख, मडं, पतन, आश्रम निगम, संवाह, सन्निवेश आदि का आधिपत्य करते हुए, प्रधानता करते

सामित्तं भद्रित्तं महत्तरगतं आणा-ईसर-सेणावच्चं फारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंतो-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति” कट्टु जय-जय सद्धं पउजति ।

तए णं से मेहे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एवं वयासी—
“भण जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे ?”

मेहस्स निक्खमणवाओग-उवगरणं—

३४०. तए णं से मेहे राया अम्मापियरो एवं वयासी—“इच्छामि णं अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, कासवयं च सद्दावेह ।

तए णं से सेणिए राया कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

“गच्छह णं तुभ्भे देवानुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सय-सहस्साइं गहाय दोहि सय-सहस्सेहि कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह ।”

तए णं ते कोडुंवियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय कुत्तियावणाओ दोहि सयसहस्सेहि रयहरणं पडिग्गहं च उवणेति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेति ।

कासवेण मेहस्स अग्गकेसकप्पणं—

३४१. तए णं से कासवए तेहि कोडुंवियपुरिसेहि सद्दाविए समाणे हट्टतुट्ट-चित्तमाणंदिए-जावं-हरिसवसविसप्पमाणहियए प्हाए कय-वलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं मंगलाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणात्तं कियसरिरे जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलपरि-ग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“संदिसह णं देवानुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ।”

हुए स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्त्व, आजा, ईश्वरत्व और मेधा पतित्व करते हुए, पालन करते हुए, जोर-जोर से प्रशंसा या री नृत्य, गीत, वाद्य, तंभी, तबल ताल, यष्टित, धन, मृदंग, पट आदि के घोषों पूर्वक विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विनयन करो—इस प्रकार कहकर जय-जयकार किया ।

तत्पश्चात् वह मेघ राजा हो गया और पर्वतों में महा हिमवन्त की तरह, पृथ्वी के इन्द्र के समान मन्दरावात [मुने पर्वत] की तरह शोभित होता हुआ विनयने लगा ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—
‘हे लाल ! बताओ कि तुम्हें क्या दें ? तुम्हारे इष्टजनों को क्या दें ? तुम्हारे मन में क्या चाह—इच्छा विचार है ?

मेघ के निष्क्रमण प्रायोग्य उपकरण—

३४०. तत्पश्चात् मेघराजा ने माता-पिता को इस प्रकार कहा—
‘हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण [जहाँ सभी तरह की वस्तुएँ मिलती हैं, ऐसी दुकान] से रजोहरण और पात्र मंगवा दो और काश्यप-नापित-नाई को बुलवा दो ।’

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और श्रीगृह [कोप, घजाना] से तीन लाख स्वर्णमुद्रायें लेकर दो लाख से तो कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ और एक लाख देकर नाई को बुलवाओ ।’

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरें लेकर दो लाख से कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाते हैं और एक लाख मोहरों से उन्होंने नाई को बुलाया ।

काश्यप द्वारा मेघ के अग्रकेश कल्पन (कर्तन)—

३४१. तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये गये उस काश्यप [नाई] ने हृष्ट तुष्ट आनन्दित चित्त-यावत्-हर्षवश विकसित हृदय वाला होकर स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया और साफ स्वच्छ राजसभा में प्रवेश करने योग्य श्रेष्ठ मांगलिक वस्त्र धारण किये, थोड़े और बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और उसके बाद जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया, आकर श्रेणिक राजा को कर युगल जोड़ मस्तक पर आवर्तित कर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! जो मुझे करने योग्य है, उसकी आज्ञा दीजिये ।’

तए णं से सेणिए राया कासवयं एवं वयासी—“गच्छाहि णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सुरभिणा-गंधोदएणं निक्के हत्थपाए पक्खालेहि, सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुहं वंधिता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अगकेसे कप्पेहि ।”

तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु-चित्त-माणंदिए जाव हरिसवस-विसप्पमाणहियए करयलपरिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं सामि ! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सुद्धवत्थेणं मुहं वंधइ, वंधिता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अगकेसे कप्पेति ।

३४२. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महूरिहेणं हंसलवख-णेणं पडसाइएणं अगकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधो-दएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयइ, दलइत्ता सेयाए पोत्तीए वंधइ, वंधिता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता मंजूसाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिदुवार-छिन्नमुत्तावलि-प्पगासाइं अंसूइं विणिम्मयमाणी-विणिम्मयमाणी, रोयमाणी-रोयमाणी, कंदमाणी-कंदमाणी, विलव-माणी-विलवमाणी एवं वयासी—

“एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पव्वेसु य तिहीसु य छणेसु य जत्तेसु य पव्वणीसु य—अपच्छिमे वरिसणे भविस्सइ” त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ ।

मेहस्स अलंकरणं—

३४३. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरावक्कमणं लीहासणं रयावेंति, मेहं कुमारं दोच्चं पि तच्चं पि सेयापीएहि कलसेहि एहावेंति, एहावेत्ता पम्हलसूमात्ताए गंधकासाइयाए गयाइं लूहेंति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गयाइं अणुत्तिपति, अणुत्तिपित्ता नाता-नीसात्तवाय-वोवञ्जं वरणगरपट्टणग्गयं कुत्तलपरपत्तित्तिं

तव श्रेणिक राजा ने कश्यप से इस प्रकार कहा—देवा-नुप्रिय ! तुम जाओ और सुगन्धित गंधोदक से अच्छी तरह हाथ-पैर धो लो, फिर चार पट वाले श्वेत वस्त्र से मुँह बाँधकर दीक्षा के योग्य चार अंगुल छोड़कर मेघकुमार के अग्रकेशों का कर्तन कर दो ।’

तत्पश्चात् वह काश्यप श्रेणिक राजा के इस आदेश को सुनकर हूँट, तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-हर्षातिरेक से विकास-मान हृदय वाला होकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर घुमाकर मस्तक पर अंजलि करके हे स्वामिन् ! इसी प्रकार ही, विनयपूर्वक आदेश वचन को स्वीकार करता है, स्वीकार करके सुगन्धित गंधोदक से हाथ-पैरों का प्रक्षालन करता है, प्रक्षालन करके शुद्ध वस्त्र से मुख को बाँधता है, बाँधकर पूर्ण यतनापूर्वक दीक्षा के योग्य चार अंगुल छोड़कर मेघकुमार के शेष अग्रकेशों का कर्तन करता है ।

३४२. तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने बहुमूल्य और हंस के समान श्वेत उज्ज्वल वस्त्र में उन केशों को ग्रहण किया, ग्रहण करके सुरभित गंधोदक से धोया, धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन से उन्हें चर्चित किया, अर्थात् उन पर चंदन के छीटे दिये, छीटे देकर श्वेत वस्त्र में बाँधा, बाँधकर रत्न समुदाक (डिविया) में रखा, रखकर फिर मंजूपा (पेटी) में रखा, रखकर फिर जल की धार, निर्गन्दी के पुष्प एवं दूटे हुए मोतियों के हार के समान आँवों से आँसू बहाती हुई, रोती हुई, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

मेघकुमार के इन केशों का दर्शन राज्य प्राप्ति आदि अभ्युदयों के अवसर पर, उत्सवों पर, प्रसवों के अवसर पर, तिथियों के अवसर पर, इन्द्रमह आदि के अवसर पर, नागपूजा आदि के अवसर पर, और पर्व तिथियों के अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा अर्थात् इन केशों का दर्शन उन उन प्रसंगों पर हमें मेघ-कुमार का स्मरण कराता रहेगा—इस प्रकार कहकर उस पेटी को अपने सिरहाने रख लिया ।

मेघ का अलंकरण—

३४३. तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया, फिर मेघकुमार को द्वारा, तिवारा ज्वत-पीत (चाँदी और सुवर्ण) कलशों से स्नान करवाया, स्नान करवा कर एदार अत्यन्त मुकोमल कपाय गंध वाले अथवा सुगन्धित कपाय रंग में रंगे हुए वस्त्र से उनके अंग पाँचकर त्रन गोशीर्ष चंदन से शरीर का विलेपन किया, विलेपन करके नासिका के निःश्वास से भी उड़ने योग्य ऐसा अत्यन्त बारीक श्रेष्ठ नगों

अस्सलालापेलवं छेयापरियकणगखचियंतकम्मं हंसलवखणं पडसाडगं
नियंसेत्ति, गियंसेत्ता हारं पिणद्धेत्ति, पिणद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेत्ति
पिणद्धेत्ता—

एवं-एगार्वलि मुत्तार्वलि कणगार्वलि रयणार्वलि पालवं पाय-
पलवं कडगाइं तुडिगाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्धियाणंतयं कडि-
सुत्तयं कुण्डलाइं चूडामणि रयणवकडं मउडं पिणद्धेत्ति, पिणद्धेत्ता
दिव्वं सुमणदामं पिणद्धेत्ति, पिणद्धेत्ता दहरमलयसुगंधिए गंधे
पिणद्धेत्ति । तए णं तं मेहं कुमारं गंधिम-वेडिम-पूरिम-संधाइनेणं
चउच्चिहणेणं मल्लेणं कप्पवखणं पिव अलंकिय-विभूसियं करेत्ति ।

सेहस्स अभिनिदखमणमहस्सवं—

३४४. तए णं सेणिए राया कोडुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता
एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं
लीलद्विय-साल-भंजियागं इहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-
बालग-किन्नर-रुह-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय - भत्तिचित्तं
घंटा-वलि-महुर-मणहरसरं शुभ-कांत-दरिसण्णज्जं निउणोदिय-
निसिमिसेत्त-मणिरयण-घंटियाजालपरिक्खित्तं अड्ढुग्गय-वइरवेइया-
परिगयाभिरामं विज्जाहरजमल-जंतजुत्तं पिव अच्चोसहस्समाल-
णोयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेस्सं
सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं पुरिससहस्स-
वाहिणीयं सीयं उवट्टवेह ।”

आदि में प्राप्त होने वाला, तनुर मनुष्यों द्वारा प्रयोजित, चाड़े के
मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल, जिसके तिनारों पर
सुवर्ण के तारों से धेल-बूटे बनाये गये हैं और हंस के जैसा खंभ
वस्त्र पहनाया, पहनाकर फिर द्वार पहनाया, फिर अंधं द्वार
पहनाया ।

और फिर एकावली, मुक्तावली, इनकावली, रत्नावली,
प्रालंब (कठी) पाद प्रलंब—(पैरों तक लटकने वाला आभूषण) कड़े,
तुटिक, केयूर, अंगद, दसों अंगुलियों में मुद्रिका, कटिभूष, कुण्डल,
चूडामणि, रत्नजटित मुकुट पहनाये, पहनाकर द्विचर चूतों की
माला पहनाई, पहनाकर, ददर (चड़े में पहनाया हुआ) में पहनाये
हुए चन्द्रन के सुगंधिततेज की गंध गरीर पर लगवाई । पत्रात्
सूत से गुँथी हुई पुष्प आदि से वेष्टित लपेटो हुई, बाँस की
सलाई आदि से पूरी हुई और गोरी हुई इस तरह चार प्रकार
की मालाओं द्वारा कल्पवृक्ष की तरह अलङ्कृत, विभूषित किया ।

मेघ का अभिनिष्क्रमण महोत्सव—

३४४. तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुत्रों को बुलाता
है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही अनेक सैकड़ों स्तम्भों
से बनी हुई जिनमें क्रीड़ा करती हुई पुतलियां बनी हों,
जो ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर,
रूह (कृष्ण मग) सरभ (अष्टापद) चमरो गाय, कुञ्जर,
वनलता, पद्मलता, आदि के चित्रों से युक्त हों, जिसकी घंटावलि
से मधुर, मनहर स्वर निकल रहे हों, जो शुभ, कांत-आकर्षक
और दर्शनीय हो, कुशल कारीगरों के द्वारा निमित्त, दीदीप्यमान
मणियों और रत्नों की घंटियों-घुँघरुओं के समूह से व्याप्त
हो, वज्ररत्नों से बनी हुई वेदिका से युक्त होने से जो
मनोहर दिखलाई देती हो, जिसमें बने हुए विद्याधर युगलों के
चित्र यन्त्रचालित जैसे प्रतीत होते हों, सहस्रमाली सूर्य की
किरणों की तरह शोभायमान हो, हजारों रूपवाली हो, दीप्यमान,
अतिशय दीप्यमान हो, देखने में नेत्रों को आकृष्ट करने वाली हो,
सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो अर्थात् इतनी
शोभायमान हो कि स्वयं लक्ष्मी ही अपने सम्पूर्ण वैभव समृद्धि के
साथ उपस्थित हो गई है तथा शीघ्र, त्वरित, चपल और अतिशय
चपल हो अर्थात् जिसको शीघ्रतापूर्वक ले जाया जा सके और
जो एक हजार पुरुषों द्वारा बहन की जाती हो ऐसी एक शिविका
तैयार करो ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट तुष्ट होकर अनेक सैकड़ों
स्तम्भों से बनी हुई-यावत्-शिविका (पालकी) तैयार कर उप-
स्थित करते हैं ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा हट्टुट्टा अणेगखंभसय-सण्णिविट्ठं-
जाव-सीयं उवट्टवेत्ति ।

तए णं से मेहे कुमारे सीयं डुरूहइ डुरूहिता सीहासणवरगए पुरत्याभिमुहे सणिसण्णे ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयवलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालं कियसरीरा सीयं डुरूहइ, डुरूहिता मेहस्स कुमारस्स दाहिणपासे भद्दासणसि निसीयइ ।

३४५. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबघाई रयहरणं च पडिग्गहं च गहाय सीयं डुरूहइ, डुरूहिता मेहस्स कुमारस्स वामपासे भद्दासणसि निसीयइ ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठो एगा वरतरुणी सिगारागारचारवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्टिय-विलास-संलाव-ल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला आमेलगजमलजुयल-वट्टिय-अट्ठण्णय-पीण-रइय-संठिय-पओहरा हिम-रयय-कुंदेडुपगासं सकोरेंटमल्लदाभं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारेमाणी ओहारेमाणी चिट्ठइ ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिगारागार-चारवेसाओ संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्टिय-विलास - संलावल्लाव-निउणजुत्तोवयार-कुसलाओ सीयं डुरूहंसि, डुरूहिता मेहस्स कुमारस्स उभओ पासं नाणामणि-कणग-रयण-महरिहतवणिउजु-ज्जल-विचित्तदंडाओ चिल्लियाओ सुहमवरदीहवालाओ संख-कुंद-दगरय-अमयमहिपफेणपुंज-सण्णिगासाओ चामराओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठन्ति ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिगारागारचार-वेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्टिय-विलास-संलावल्लाव-निउणजु-त्तोवयारकुसला सीयं डुरूहइ, डुरूहिता मेहस्स कुमारस्स पुरओ पुरत्थिमेणं चंदप्पवइर-वेरुत्थिय-विमल्लदंडं तालियंठं गहाय चिट्ठइ ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी सिगारागार-चारवेसा संगय-गय-हसिय - भणिय-चेट्टिय-विलास - संलावल्लाव-निउणजुत्तोवयार-कुसला सीयं डुरूहइ, डुरूहिता मेहस्स कुमारस्स

तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ़ हुआ और आरूढ़ होकर श्रेष्ठ सिंहासन के निकट आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया ।

उसके बाद जो स्नान कर चुकी है, वलिकर्म कर चुकी है-यावत्-अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषण से जिसका शरीर अलंकृत है ऐसी उस मेघकुमार की माता शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार की दाहिनी ओर भद्रासन पर बैठी ।

३४५. तत्पश्चात् उस मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर मेघकुमार के बायें पार्श्व में भद्रासन पर बैठ गई ।

उसके बाद उस मेघकुमार के पृष्ठ भाग में शृंगार के आगार रूप मनोहर वेष वाली, सुन्दर गति, हास्य, बोली, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप (वर्णन) करने में निपुण, योग्य उपचार करने में कुशल, परस्पर मिले हुए सम श्रेणी में स्थित गोल, ऊँचे, पुष्ट, प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तनवाली अर्थात् पूर्ण नवयौवना ऐसी एक उत्तम तरुणी हिम, चांदी, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान एवं कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त धवल आतपत्र (छत्र) को हाथ में लेकर लीला करती हुई खड़ी हुई ।

उसके बाद अपने सुन्दर वेष से शृंगार के आगार के समान, सुन्दरगति, हास्य, वाणी, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप करने में कुशल, योग्य उपचार करने में कुशल दो श्रेष्ठ तरुणियाँ शिविका पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर मेघकुमार की दोनों वाजुओं में विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण, रत्न और महान पुरुषों के योग्य, तपनीय (लाल सुवर्ण) के समान उज्ज्वल, विचित्र दंडी वाले, चमचमाते हुए, पतले, उत्तम और लंबे वालों वाले, शंख, कुन्दपुष्प, जलकण, मंथन किये गये अमृत के फेन के पुंज सरीखे धवल चामरों को ग्रहण कर लीलापूर्वक वीजती-वीजती हुई खड़ी हुई ।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप चारवेप धारिणी, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप में निपुण और उचित उपचार करने में कुशल एक उत्तम तरुणी शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार के निकट पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकांत मणि, वज्ररत्न और वैदूर्य मणि की निर्मल डंडी वाले पंखे को ग्रहण करके खड़ी हुई ।

उसके बाद मेघकुमार के समीप शृंगार के आगार रूप चारवेप धारिणी, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, संलाप, उल्लाप में निपुण, उचित उपचार करने में कुशल एक श्रेष्ठ तरुणी आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर मेघकुमार के पूर्व दक्षिण

पुव्वदक्खिणेणं सेयं रययामयं विमलंसलिलपुण्णं मत्तगयं-महामुहा-
कित्तिसमाणं भिगारं गहाय चिट्ठइ ।

३४६. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंवियपुरिसे सदावेइ,
सदावेत्ता एवं वयासी—“खिप्पाभेव भो देवानुप्पिया ! सरिसयाणं
सरित्तयाणं सरिच्चयाणं एगाभरण-गहिय-निज्जोयाणं कोडुंविय-
वरतरणाणं सहस्सं सदावेह ।”

तए णं ते कोडुंवियपुरिसा सरित्तयाणं सरित्तयाणं सरिच्चयाणं
एगाभरण - गहिय - निज्जोयाणं कोडुंवियवरतरणाणं सहस्सं
सदावेत्ति ।

तए णं ते कोडुंवियवरतरणपुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडुं-
वियपुरिसेहि सदाविया समाणा हट्ठा प्हाया-जाव-एगाभरण-गहिय-
णिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति, उवाग-
च्छित्ता सेणियं रायं एवं वयासी—

“संदिसह णं देवानुप्पिया ! जं णं अम्हेहिं करणिज्जं ।”

तए णं से सेणिए राया त कोडुंवियवरतरणसहस्सं एवं
वयासी—

“गच्छह णं तुदधे देवानुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स पुरिस-
सहस्सवाहिणीयं सीयं परिवहेह ।”

तए णं तं कोडुंवियवरतरणसहस्सं सेणिएण रण्णा एवं वुत्तं
संतं हट्ठं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं
परिवहइ । तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं
दुव्वडस्स समाणस्स इमे अट्ठुगंगलया तप्पडमयाए पुरओ अहाणु-
पुव्वोए संपत्थिया, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-
यद्धमाणग-भट्टासन-कलस-मच्छ-दप्पणया-जाव-वहवे अत्यत्थिया-
जाव-कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया कित्थिसिया कारोडिया
कारवाहिया संप्रिया चविकया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा
पुत्तमाणया पंठियगणा ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मणुणाहि
मणाहि नणाविदानाहि हिययगमणिज्जाहि वग्गूहि जयविजय-
मंगलसएहि अणवरयं अभिनंदंता य अभियुणंता य एवं वयासी—

‘जय-जय नंदा ! जय-जय भद्रा ! जय-जय नंदा ! भद्रं ते
अन्निय प्रियाहि इत्थियाउं, जियं च पालेहि समण-धम्मं,
विदधियो धियं वसाहि तं देव ! निद्विमज्जे, निहणाहि रागदोस-

दिग्भाग—आनेयकोण—में प्रवेत रजतमय विमल जल से भरे हुए
मत्त गजेन्द्र की मुखाकृति वाले भृंगार को हाथ में ग्रहण करके
खड़ी हुई ।

३४६. उसके बाद मेघकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को
बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र
ही एक सरीखे, एक रंग रूप के, एक उन्न के, एक जैसी वेपभूषा-
से सुसज्जित एक हजार उत्तम, तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ ।’

तव कौटुम्बिक पुरुषों ने एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा
(कांति) वाले, एक सरीखी उन्न वाले और एक सरीखे आभूषणों
से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम कौटुम्बिक
पुरुषों को बुलाया ।

उसके बाद श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये
गये वे उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट तुष्ट हुए, उन्होंने स्नान
किया-यावत्-एक से आभूषण एवं पोशाक पहनकर जहाँ श्रेणिक
राजा था, वहाँ आये, आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—

‘हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए जो करने योग्य हो उसके लिए
आदेश दीजिये ।’

तव श्रेणिक राजा ने उन कौटुम्बिक, उत्तम तरुण सहस्रों
से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! जाओ और तुम मेघकुमार की पुरुष
सहस्रवाहिनी शिविका को वहन करो ।’

तव वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के
कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो हजार पुरुषों द्वारा वहन करने
योग्य मेघकुमार की शिविका का वहन करते हैं । तत्पश्चात् पुरुष
सहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ़ होने पर यह
आठ मंगलद्रव्य अनुक्रम से उसके सामने चलने लगे, वे इस प्रकार
हैं—स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावत्, वर्धमान, भद्रासन, कलश,
मत्स्ययुगल, दर्पण-यावत्-बहुत से धनार्थी याचकजन-यावत्-
कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, कित्थिपिक, कारोटिक, कारवाहिक,
शंख वजाने वाले, चक्र हाथ में लेने वाले, हल धारण करने
वाले, मुख मांगलिक, वर्धमानक (वधाई देने वाले), चारण, भार
आदि, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, तयनाभिराम हृदयंगम
वाणी से जयविजय रूप मंगल शब्दों से अनवरत अभिनंदन और
स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

‘हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भद्र ! तुम्हारी
जय हो, विजय हो, हे जगत् को आनन्द देने वाले ! तुम्हारी जय
हो, जय हो, तुम्हारा कल्याण हो, नहीं जीती हुई इन्द्रियों को
तुम जीतो, जीते हुए धारण किये हुए, प्राप्त श्रमण धर्म का
पालन करो, हे देव ! विघ्नों पर विजय प्राप्त कर सिद्धि में

मल्ले तवेण धिइ-धणिय-वद्धकच्छो, महाहिं य अट्टकम्मसत्तु ज्ञाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो, पाव य वित्तिमिरमणुत्तर केवलं नाणं, गच्छ य मोवखं परमं पय सासयं च अयलं, हंता परीसह-चमं णं, अमोओ परीसहोवसगाणं, धम्मं ते अविघं भवउ” त्ति कट्टु पुणो-पुणो मंगल-जयसहं पउजंति ।

तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिस्सहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चो-रुहइ ।

सिस्सभिव्खादाणं—

३४७. तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदंति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी— “एस णं देवानुप्पिया ! मेहे कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुणे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए वहुमए अणुमए भंडकरं-डगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियऊसासए हिययणंदिजणए उंवरपुष्पं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण दरिसणयाए ?

“से जहानामए उप्पले ति वा पउमे ति वा कुमुदे ति वा पंके जाए जले संवड्ढिए नोवल्लिप्पइ पंकरएणं नोवल्लिप्पइ जलरएणं, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु संवड्ढिए नोवल्लिप्पइ कामरएणं नोवल्लिप्पइ भोगरएणं । एस णं देवानुप्पिया ! संसारनउद्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाणं, इच्छइ देवानुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारयं पवइत्तए । अम्हे णं देवानुप्पियाणं सिस्सभिव्खं दलयामो । पडिच्छंतु णं देवानुप्पिया । सिस्सभिव्खं ।”

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहि एवं वुत्ते समणे एयमट्ठं सम्मं पडिसुणेइ ।

निवास करो, तप के द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों का हनन करो, धैर्य धारण कर, उनका निकंदन करने के लिए कटिवद्ध होओ, प्रमाद रहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्मरूपी शत्रुओं का मर्दन करो, अज्ञानान्धकार से रहित अनुत्तर-सर्वोत्तम अद्वितीय—केवलज्ञान को प्राप्त करो, परीपह रूपी सेना का हनन करके परीपह और उपसर्गों से निर्भय होकर शाश्वत और अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो, तुम्हारी धर्म साधना निर्विघ्न सम्पन्न हो,— इस प्रकार कहकर वे पुनः पुनः मंगलमय जय जय शब्दों का उच्चारण करने लगे ।

उसके बाद मेघकुमार राजगृह नगर के मध्य में से होकर निकला, निकलकर जहाँ गुण शिलक चैत्य था, वहाँ आया, आकर सहस्र पुरुष वाहिनी शिविका से नीचे उतरा ।

शिष्य भिक्षा दान—

३४७. उसके बाद मेघकुमार के माता पिता मेघकुमार को आगे करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—“हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है, यह हमें इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, धैर्य और विश्वास का आधार रूप है, बहुमूल्य, अनमोल भंडकरंड के समान है, रत्नों में रत्न रूप है, जीवन के लिए उश्वास रूप है, हृदय को आनन्द देने वाला है, गूलर के पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण करना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है ?

जैसे उत्पल (नीलकमल) पद्मकमल अथवा कुमुद कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में वृद्धि पाता है, फिर भी पंकरज से उपलिप्त नहीं होता है, जलरज (रेखा) से लिप्त नहीं होता है, इसी प्रकार यह मेघकुमार कामों में उत्पन्न हुआ है, भोगों में संवर्धित हुआ है, फिर भी कामरज से लिप्त नहीं हुआ है, भोग रज से लिप्त नहीं हुआ है । हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार संसार के भय से उद्विग्न हुआ है, जन्म जरा मरण से भयभीत हुआ है और आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण करने का इच्छुक है अतः हम आप देवानुप्रिय को इसे शिष्य भिक्षा रूप में अर्पित करते हैं । हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्य भिक्षा को स्वीकार कीजिये ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता के इस कथन को सुनकर श्रमण भगवान महावीर ने इस अर्थ (वात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया ।

३४८. तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स संतियाओ उत्तरपुरत्थिमं विसीमाणं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ । तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरण-मल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छत्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्प-मासाइं अंसूणि विणिम्भुयमाणी विणिम्भुयमाणी रोयमाणी रोय-माणी कंदमाणी कंदमाणी विलवमाणी विलवमाणी एवं वयासी—

“जइयव्वं जाया ! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सि च णं अट्ठे नो पमाएयव्वं ।” “अहं पि णं एसेव मग्गे भवउ” त्ति कट्ठु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमसित्ता जामेव विसं पाउव्वमूया तामेव विसं पडिगया ।

मेहस्स पव्वज्जागहणं—

३४९. तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

“आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य ।

‘क्षे जहानामए-केइ गाहावई अगारंसि ज्ञियायमाणंसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ-एस मे तित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य लोए हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे आयाभंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे । एस मे नित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ । तं इच्छामि णं देवानुप्पिएहि सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आया-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-जायामायावत्तियं धम्ममाइविखयं ।

३४८. तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास से उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में गया—जाकर स्वयं ही आभरण, माला, अलंकार उतारे । तब मेघकुमार की माता ने हंस जैसे श्वेत और कोमल वस्त्र खंड में उन आभरण, माला और अलंकारों को ग्रहण किया, ग्रहण करके जल की धारा, निर्गुब्डी के पुष्प और दूटी हुई मुक्तावली के समान आंगू टप जाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती हुई, विलाप करती हुई इस प्रकार कहा—

‘हे ताल ! प्राप्त चारित्र्ययोग में यतना करना, हे जाया ! अप्राप्त चारित्र्ययोग के लिये घटना करना अर्थात् प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील होना, हे पुत्र ! पराक्रम करना, संयम साधना में प्रमाद न करना । हमारे लिये भी यही मार्ग ही अर्थात् हम भी भविष्य में संयम धारण करने का सुयोग प्राप्त करें’—इस प्रकार कहकर मेघकुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये ।

मेघ का प्रव्रज्या ग्रहण—

३४९. उसके बाद मेघकुमार ने स्वयं पंचमुष्टिक लोच किया, लोच करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आया, आकर तीन बार-आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! यह संसार आलिप्त है, हे भगवन् ! यह संसार प्रदीप्त है, हे भगवन् ! यह संसार जरा—मरण से आदीप्त-प्रदीप्त है ।

जैसे कोई गृहपति घर में आग लग जाने पर उस घर में से अल्प भारवाली किन्तु जो बहुमूल्य वस्तु होती है, उसे लेकर स्वयं एकान्त में चला जाता है और सोचता है कि अग्नि में जलने से बचाया हुआ यह द्रव्य मेरे लिये पीछे और अभी हित के लिये, सुख के लिये, क्षमा (शांति, सामर्थ्य) के लिये, कल्याण के लिये और भविष्य में काम आने के लिये होगा । इसी प्रकार मेरा भी आत्मा रूपी भांड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ मणाम है । इसी को सुरक्षित निकालने पर यह मेरे संसार का उच्छेद करने वाला होगा । अतएव मैं चाहता हूँ कि आप देवानुप्रिय मुझे स्वयं ही प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुंडित करें, स्वयं ही प्रतिलेखन आदि सिखावें, स्वयं ही सूत्र और अर्थ की शिक्षा दें, स्वयं ही आचार-गोचर, वैनयिक-चरण-करण-संयम यात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें ।’

३५०. तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पठ्वावेइ-
जाव-धम्ममाइक्खइ—

“एवं देवानुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं,
एवं तुयट्ठियव्वं, एवं भुज्जियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय
पाणोहिं-जाव-सत्तोहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे नो
पमाएयव्वं ।”

तए णं से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए
इमं एयाख्वं धम्मियं उवएसं सम्मं पडिवज्जइ-तमाणाए तह
गच्छइ, तह चिट्ठइ, जाव-उट्ठाय पाणोहिं-जाव-सत्तोहिं संजमेणं
संजमइ ।

मेहस्स मणो-संकिलेसे—

३५१. जट्ठिवसं च णं मेहे कुमारे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगा-
रियं पव्वइए, तस्स णं विवसस्स पच्चावरण्हकालसमयंसि समणाणं
निग्गथाणं अहाराइणियाए सेज्जा-संथारएसु विभज्जमाणेसु मेह-
कुमारस्स वारमूले सेज्जा-संथारए जाए यावि होत्या ।

तए णं समणा निग्गंथा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए-
जाव-धम्ममाणुजोगचित्ताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइग्गच्छ-
माणा य निग्गच्छमाणा य अप्पेगइया मेहं कुमारं हत्थोहिं संघट्ठेति-
जाव-अप्पेगइया ओलंडेति अप्पेगइया पोल्डेति अप्पेगइया पाय-
रय-रेणु-गुंडियं करेति । एमहालियं च रयणि मेहे कुमारे नो
संचाएइ खणमवि अच्चि निमीलित्ताए ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयाख्वे अज्झत्थिए-जाव-
संकप्पे समुप्पज्जित्था—एधं खलु अहं सेणियस्स रण्णो पुत्ते
धारिणीए देवीए अत्तए मेहे इट्ठे कंते-जाव-उम्बर-पुष्पं व दुल्लहे
सवणयाए । तं जमा णं अहं अगारमज्जे आवसामि तथा णं मम
समणा निग्गंथा आढायंति परियाणंति सक्कारेति सम्माणेति,
अट्ठाइ हेज्जइ पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खंति, इट्ठाहिं
कंताहिं-जाव-वग्गूहिं आलवेति संलवेति । अप्पभिइं च णं अहं
मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तप्पभिइं च णं मम
समणा निग्गंथा नो आढायंति-जाव-नो कंताहिं वग्गूहिं आलवेति

३५०. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने स्वयं ही मेघकुमार
को प्रव्रजित किया-यावत्-धर्म की शिक्षा दी—

‘हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार चलना चाहिये, इस प्रकार
भोजन करना चाहिये, इस प्रकार बोलना चाहिये, इस प्रकार
अप्रमत्त एवं सावधान होकर प्राणों-यावत्-सत्वों की रक्षा करके
संयम का पालन करना चाहिये, इस विषय में तनिक भी प्रमाद
नहीं करना चाहिये ।

तव मेघकुमार ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार का
यह धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया और भगवान
की आज्ञानुरूप गमन करता, उसी प्रकार बैठता-यावत्-सावधानी
पूर्वक प्राणों की-यावत्-सत्वों की यत्न करता हुआ वह संयम
की आराधना करने लगा ।

मेघ का मनःसंक्लेश—

३५१. जिस दिन मेघकुमार मुण्डित होकर गृहत्याग कर
आनगारिक हुआ उसी दिन संव्याकाल में यथारात्निक अर्थात्
दीक्षा पर्याय के अनुक्रम से श्रमण-निर्ग्रन्थों के शैया-संस्तारक का
विभाजन करते समय मेघकुमार का शैया-संस्तारक दरवाजे के
समीप हुआ ।

तव श्रमण निर्ग्रन्थ रात्रि के पहले प्रहर में और अंतिम समय
में वाचना के लिये-यावत्-धर्म के व्याख्यान का चिंतन करने के
लिये और उच्चार (बड़ी नीति) अथवा प्रसवण (लघुनीति-पेशाव)
के लिये प्रवेश करते और बाहर निकलते थे तो उनमें से किसी
साधु के हाथ का मेघकुमार से संघट्टन हुआ-यावत्-कोई-कोई
लांघ कर निकले, कोई-कोई दो-तीन बार लांघकर निकले, किसी
किसी ने अपने पैरों की धूलि से उसे भर दिया । इस प्रकार उस
लम्बी रात्रि में मेघकुमार एक क्षण के लिये भी आँखें बन्द नहीं
कर सका अर्थात् तनिक भी नींद नहीं ले सका ।

तव उस मेघकुमार के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय-
यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—में श्रेणिक राजा का पुत्र और
धारिणी देवी का आत्मज मेघ हूँ जो उनके लिये इष्ट, कांठ-
यावत्-गूलर के पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण भी दुर्लभ है ।
जब मैं घर में रहता था तब ये श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते
थे, जानते थे, सत्कार सम्मान करते थे, जीवादि पदार्थों को,
उन्हें सिद्ध करने वाले हेतुओं को, प्रश्नों को, कारणों को और
व्याकरणों (प्रश्नों के उत्तरों) को कहते थे, इष्ट, मनोहर-यावत्-
बाणी से आलाप संलाप करते थे । लेकिन जब से मैंने मुण्डित
होकर गृह त्याग कर अनगारत्त्व स्वीकार कर लिया है तब से ये
श्रमण निर्ग्रन्थ न तो मेरा आदर करते हैं-यावत्-न मनोहर वचनों

संलवेंति । अदुत्तरं च णं ममं समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्ता-
वरत्ताकालसमयंसि वायणाए-जाव-एमहालियं च णं रत्ति अहं नो
संचाएमि अञ्छि निमीलावेत्ताए, तं सेयं खलु मज्झ कल्लं पाउप्प-
भायाए रयणीए जाव उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे,
तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुञ्छित्ता पुणरवि अगारमज्जे
आवसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-माण-
सगए निरयपडिह्वियं च णं तं रयणि खवेइ, खवेत्ता कल्लं पाउ-
प्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि
दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आयाहिण-
पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नर्नसइ जाव-पञ्जुवासइ ।

मेहस्स संबोधो—

३५२. तए णं मेहा ! इ समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं एवं
वयासी—

“से नूनं तुमं मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि
समणेहिं निग्गंथेहिं वायणाए-जाव-एमहालियं च णं राइं तुमं नो
संचाएसि मुहुत्तमवि अञ्छि निमीलावेत्ताए ।

“तए णं तुज्झ मेहा ! इमेयाख्वे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे
समुप्पज्जित्था—जया णं अहं अगारमज्जे आवसामि तथा णं ममं
समणा निग्गंथा आढायंति इट्ठाहिं....वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति ।
जप्पभिइं च णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि
तप्पभिइं च णं ममं समणा निग्गंथा नो आढायंति जाव नो
इट्ठाहिं कंताहिं वग्गूहिं आलवेंति संलवेंति । अदुत्तरं च णं ममं
समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अप्पेगइया
जाव पाय-रय-रेणु-गुडियं करंति । तं सेयं खलु मम कल्लं पाउ-
प्पभायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे
तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं आपुञ्छित्ता पुणरवि अगार-
मज्जे आवसित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, संपेहेत्ता अट्ट-दुहट्ट-वसट्ट-
माणसगए निरयपडिह्वियं च णं तं रयणि खवेसि, खवेत्ता जेणामेव
अहं तेणामेव हव्वमागए । से नूनं मेहा ! एस अत्थे समत्थे ।”

से आलाप संलाप ही करते हैं । इसके शिवाय श्रमण निर्ग्रंथ पूर्व
और पिछली रात्रि के समय वाचना-यावत-इस प्रकार लम्बी
रात्रि में एक क्षण के लिये भी मैं आँख नहीं भींच सका, अतएव
मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर-
यावत्-तेज से जाज्वल्यमान सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित
होने पर श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा लेकर पुनः गृहवास
में बस जाना चाहिये—इस प्रकार का मेघकुमार ने विचार
किया और विचार करके आतंष्टान के कारण दुःखी और
संकल्प विकल्प युक्त मानस को प्राप्त होकर वह रात्रि नरक की
भांति व्यतीत की, व्यतीत करके कल रात्रि को सुविमल प्रभात
रूप होने पर-यावत-तेज से जाज्वल्यमान सहस्ररश्मि दिनकर
सूर्य के उदय होने पर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ
आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन चार आदक्षिणा-
प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया-यावत-
पर्युपासना करने लगा ।

मेघ की संबोध—

३५२. तत्पश्चात् हे मेघ ! इस प्रकार संबोधन करके श्रमण
भगवान महावीर ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

“हे मेघ ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर
पर श्रमण निर्ग्रंथों के वाचना-यावत्-लम्बी रात्रि पर्यन्त थोड़ी देर
के लिये भी आँखें नहीं भींच सके हो ।

तब हे मेघ ! तुम्हारे मन में इस प्रकार का अध्यवसाय-
यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—जब मैं गृहवास में निवास करता था
तब ये श्रमण निर्ग्रंथ मेरा आदर करते थे इष्ट.....वचनों से
आलाप-संलाप करते थे । लेकिन जब से मुण्डित होकर गृहत्याग
कर अनगारत्व में प्रव्रजित हुआ हूँ तब से ये श्रमण निर्ग्रंथ न
तो मेरा आदर करते हैं-यावत-न इष्ट, रमणीय वाणी से आलाप-
संलाप ही करते हैं । इसके अतिरिक्त श्रमण निर्ग्रंथ रात्रि के
पहले और पिछले काल के समय में कोई-यावत-पैरों की धूलि
से भरते हैं । अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के
प्रभात रूप होने पर-यावत-जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि
दिनकर सूर्य के उदय होने पर श्रमण भगवान महावीर से
पूछकर, आज्ञा लेकर गृहवास में बस जाऊँ—इस प्रकार का
तुमने विचार किया और विचार करके दुःख आतंष्टान के
कारण दुःख से पीड़ित एवं संकल्प विकल्पों से युक्त मानस वाले
होकर नरक वेदना की तरह उस रात्रि को व्यतीत किया,
व्यतीत करके जहाँ मैं हूँ वहाँ शीघ्रतापूर्वक आये हो । हे मेघ !
यह अर्थ समर्थ है अर्थात् मेरा कथन सत्य है ?

“हंता, अत्ये समत्ये ।”

भगवया पुत्रभवसुमरूपभ-भवनिरूपणं—

३५३. एवं खलु मेहा ! तुम इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढ-गिरिपायमूले वणयरेह निव्वत्तियनामधेज्जे सेए संख-दल-उज्जल-विमल-निम्मल-दहिघण-गोखीर-फेण-रयणियरप्पयासे सत्तुस्सेहे नवायए दसपरिणहे सत्तंगपइट्टिए सोमे सम्मिए सुखे पुरओ उदग्गे समत्तिपसिरे सुहासणे पिट्टओ वराहे अइयाकुच्छी अच्चिद्ध-कुच्छी अलंक्कुच्छी पलंवलंबोदराहरकरे धणुपट्टागिति-विसिट्टपुट्टे अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिय-पीवर-गत्तावरे अल्लीण-पमाणजुत्तपुच्छे पडिपुण्ण सुचारु-कुम्मचलणे पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निरुवहय-विसत्तिनहे छदन्ते सुमेरूपभे नाम हत्थिराया होत्या ।

“तत्य णं तुमं मेहा ! वहाँह हत्थीहि य हत्थिगियाहि य लोट्टिएहि य लोट्टियाहि कलमएहि य कलमयाहि य सट्ठि संपरिवुडे हत्थि-सहरुसनायए वेसए पागट्टी पट्टवए जूहवइ वंदपरिवड्ढए, अण्णेत्ति च वहरणं एकल्लाणं हत्थिकलभाणं आहेवच्चं-जाव-विहरसि ।

३५४. तए णं तुमं मेहा ! निच्चप्पमत्ते सइं पलल्लिए कंदप्परई मोहणसीले अविताण्हे कामभोगात्तिसेए बहूहि हत्थीहि य-जाव-संपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य वरीसु य कुहरेसु य कंवरानु य उज्जारेसु य निज्जारेसु य वियरएसु य गड्डामु य पल्ललेसु य चिल्ललेसु य कडगेसु य कडयपल्ललेसु य तडीसु य विमडीसु य टंकेसु य कूडेसु य सिहरेसु य पन्नारेसु य नंचेसु य मालेसु य काणणेसु य वणेसु य वणत्तडेसु य वणराईसु य नदीसु य नवीकच्छेसु य जूहेसु य संगमेसु य वावीसु य पोक्खरण्णसु य दीहियासु य गुंजालियासु य सरेसु य सरपत्तियासु य सरसर-

‘जी हां ! यह अर्थ समर्थ है—आपका कवन सत्य है’—
मेघकुमार ने उत्तर दिया ।

भगवान द्वारा पूर्वभव के सुमेरुप्रभ-भव निरूपण

३५३. ‘हे मेघ ! इससे पहले अतीत तीसरे भव में तुम वैताद्य गिरि के पादमूल (तलहटी) में शंख के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के, गाय के दूध के फेन और चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले, सात हाथ ऊँचे और नौ हाथ लम्बे, दस हाथ के परिमाण वाले, सातों अंगों (चार पैर, सूँड, पूँछ और लिंग) से प्रतिष्ठित, सौम्य, प्रमाणोपेत अंग वाले, सुन्दर रूपवाले, आगे से ऊँचे तथा ऊँचे उठे हुए मस्तक वाले, शुभ-सुखद आसन-स्कन्ध वाले, वराह (शूकर) के समान पृष्ठ भाग में झुके हुए, गड्डा रहित और न लंबी ऐसी बकरी की कूँख जैसी कूँख वाले, लंबे उदर, लंबे होंठ और लंबी पूँछ वाले, खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी पीठ की आकृति वाले, भली भांति मिले हुए प्रमाण युक्त, गोल एवं पूर्ण अवयवों वाले, प्रमाणोपेत और चिपकी हुई पूँछ वाले, कट्टुए के पैरों जैसे परिपूर्ण और मनोहर पैरों वाले, श्वेत, निर्मल, चिकने और निरूपहत वीसों नखों एवं छह दन्त युक्त सुमेरुप्रभ नाम के गजराज थे ।

‘हे मेघ ! वहाँ तुम बहुत से हाथियों, हथिनियों, लोट्टियों (कुमार हाथियों) लोट्टिकाओं, कलमों (हाथी के वच्चों) और कलभियों से परिवृत होकर एक हजार हाथियों के नायक, मार्ग-दर्शक, अग्रणी, प्रस्थापक, यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले तथा इनके अलावा बहुत से दूसरे अकेले हाथी के वच्चों का आधिपत्य करते हुए-यावत्-विचरण करते थे ।

३५४. हे मेघ ! उस समय तुम निरन्तर अप्रमादी, सदा क्रीड़ा परायण, कंदर्प रति-क्रीड़ा करने में प्रीति वाले, मधुनन्धिव, काम भोगों में अतृप्त और कामभोगों में तृष्णा वाले थे और बहुत से हाथियों और—यावत्—से परिवृत होकर वैताद्य गिरि के पादमूल में, पर्वतों में दरियों में (विशेष प्रकार की गुफाओं में) कुहरों में, कंदरुओं में, उज्जारों (प्रपातों) में, झरनों में, विदरों (नहरों) में, गड्डों में, पल्लवों (तलीयों) में, चिल्ललों में (कीचड़ वाली तलीयों में), कटकों (पर्वत के तटों) में, कट पल्लवों (पर्वत की समोपवर्ती तलीयों) में, तटों में, अटवी में, डकों (विशेष प्रकार के पर्वतों) पर, टटों पर, जियरों पर, प्राग्-भाटों पर, नंचों पर, वगीचों में, पाननों में, वनों में, वन्यस्थलों में, वनराजियों में, नदियों में, नदी कक्षों में (नदी के समोपवर्ती वनों में) युवों में, संगमों पर, वावट्टियों में, पुक्खरणियों में, शीपिकाओं (लम्बी बावट्टियों) में, गुंजालिकाओं (बहु बावट्टियों) में, सरोवरों में, सरोवर की पंचियों में, सरसर-पंचियों

पतियासु य वणयरोहिं विन्नवियारे बहूहि हृत्योहि य जाव कल-
नियाहि य सद्धि संपरिवुडे बहूविहतुरुपल्लव-पउपरपाणियतणे
निम्मए निरुव्विगो सुहुंसुहेणं विहरसि ।

३५५. "तए णं तुमं मेहा—अणया कयाइ पाउस-वरिसारत्त-
सरद-हेमंत-वसंतसु कमेण पंचसु उऊसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसम-
यंसि जेट्टामूले मासे पायवधंससमुट्टिएणं सुक्कतण-पत्त-कयवर-
माख्य-संजोगवीविएणं महाभयंकरेणं हुयवहेणं वणदव-जाल-संप-
लित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु महावाय-वेगेणं संघट्टिएसु
छिण्णजालेसु आवयमाणेसु पोल्लखखेसु अंतो-अंतो झियायमाणेसु
मय-कुहिय-विणट्ट-किय-कइम-नईवियरगज्झोणपाणोयतेसु वणंतेसु
निगारकवीणकंदिय-रवेसु खरफरस अणिट्ट-रिट्ट-वाहित्त-विद्धुमगोसु
दुमेसु तण्हावस-मुक्कपख - पायडियजिम्मतालुय - असंपुडियतुंड-
पयिपसवेसु ससतेसु गिम्हउहवाय-खरफरसचंडमाख्य-सुक्क-
तणपत्तकयवरयाउलि- ममंतवित्तसंमंत - सावयाउल -मिगतण्हावद्ध-
चियपट्टेसु गिरिवरेसु संवट्टिएसु तत्य-मिय-पसव-सरीसिवेसु
अश्रदालियवयणविवर-निल्लालियगजीहे महंततुंवइय-पुण्णकण्णे
संकुचिय-धोर-पीयर-करे ऊसिय-नंगूले पीणाइय-विरसरडिय-सट्टेणं
कोउपंतव अंवरतलं, पायददरएणं कंपयंतव मेइणितलं, विणुम्मु-
यमाणेय सोयारं, सव्वभो समंता वल्लिवियाणाइं छिवमाणे, खख-
सहस्ताइं तत्य सुवहूणि नोल्लयते, विणट्टरट्टेव्व नरवरिदे,
पायाइडेव्व पोए, मंडलवाएव्व परिम्ममंते, अमिखणं-अमिखणं
तिउनिपरं पमुंचमाने-पमुंचमाणे बहूहि हृत्योहि य जाव-कलमियाहि
य सद्धि दिसोदिंसि विप्पताइत्था ।

(एक तालाब से दूसरे तालाब में पानी जाने के लिये मार्ग बना हो, ऐसे सरोवरों की पंक्तियों) में, वनचरों द्वारा विचरण करने की छूट जिसे दी गई हो ऐसे तुम बहुत से हाथियों और-यावत-कलभियों से परिवृत्त होकर विविध प्रकार के तरुपल्लवों, पानी और घास का उपभोग करते हुए निर्मम और उद्वेग रहित होकर सुखपूर्वक विचरण करते थे ।

३५५. तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी एक समय प्रावृट्, वर्षा, शरद, हेमंत, वसंत क्रमशः इन पांच ऋतुओं के व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया, तब ज्येष्ठ मास में वृक्षों की आपस में रगड़ से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तों और कचरों से, एवं वायु के वेग से दीप्त हुई महाभयंकर अग्नि से उत्पन्न दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा जिससे दिशायेँ धुयेँ से व्याप्त हो गईं और प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालायेँ फूट फूट कर चारों ओर फैलने लगीं । खोखले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे, वन प्रदेशों के नदी नालों का जल मृत कलेवरों से सड़ने लगा, खराब हो गया, उनका कीचड़ कीड़ों वाला हो गया, उनके किनारों का पानी सूख गया, भुंगारक पक्षी, दीनता-पूर्वक आक्रन्दन करने लगे, उत्तम वृक्षों पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शब्द करने लगे, उन वृक्षों के अग्र भाग अग्नि कणों के कारण मूँगे के समान लाल दिखाई देने लगे, प्यास से पीड़ित होकर पक्षियों के समूह पंख ढीले करके जिह्वा और तालु को प्रगट करके और मुँह फाड़कर साँसें लेने लगे, ग्रीष्मकाल की उष्णता, सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एवं प्रचण्ड वायु एवं सूखे घास, पत्तों और कचरे से युक्त बवंडर के कारण भाग-दौड़ करने वाले, भयभीत सिंह आदि श्वापदों के कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल व्याकुल हो उठा, ऐसा प्रतीत होता था मानों उन पर्वतों पर मृग तृष्णा रूप पटुबंध—पताका—बँधा हो, त्रसित हुए मृग. पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़फने लगे, इस भयानक अवसर पर उस सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख विवर फट गया, जिह्वा का अग्र भाग बाहर निकल आया, बड़े-बड़े दोनों कान भय से स्तब्ध और व्याकुलता के कारण शब्द ग्रहण करने में तत्पर हुए, बड़ी और मोटी नुँड़ सुकड़ गई, उसने पूँछ ऊँची करली और गर्व से विरस अराटि भरी चित्कार से आकाश तल को व्याप्त करता हुआ सा, पैरों के अघात से पृथ्वी तल को कंपित करता हुआ सा, सीटकार करता हुआ चारों ओर सर्वत्र बेलों के समूह को रौंदता हुआ, हजारों वृक्षों को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से भटकने हुए जहाज के समान, और बवंडर के समान, इधर-उधर भ्रमण करता हुआ बार-बार लीद करता हुआ मनुष्य से हाथियों, हाथिनियों-यावत-कलभिकाओं के साथ दिशाओं और विदिशाओं में इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगा ।

‘तत्त्य णं तुमं मेहा ! जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे आउरे अंसिए पिवासिए वुव्वले किलंते नट्टुमुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापरद्धे उण्हेण य तण्हाए य छुहाए य पर-वन्नाहए समाणे मीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायमए सव्वओ समंता आघावमाणे परिघावमाणे एगं च णं महं सरं अप्पोदगं पंकवहुलं अतित्थेणं पाणियपाए ओइण्णे ।

‘तत्त्य णं तुमं मेहा ! तोरमइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयंसि विसण्णे ।

‘तत्त्यं णं तुमं मेहा ! पाणियं पाइस्सामि त्ति कट्ठु हत्थं पसारसि । से वि य ते हत्थे उदगं न पावइ । तए णं तुमं मेहा ! पुणरवि कायं पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्ठु बलियतरायं पंकंसि खुत्ते ।

‘तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ एगे चिरनिज्जइए गयवरजुवाणए सगाओ जूहाओ कर-चरण-दंत-मुसलप्पहारैहि विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयपाए समोयरइ । तए णं से कलमए तुमं पासइ, पासित्ता तं पुव्ववेरं सुमरइ, सुमरित्ता आसु-रत्ते-जाव-मित्तिसेमाणे जेणेव तुमं तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता तुमं तियखेहि दंतमुसलेहि तियखुत्तो पिट्ठुओ उच्छुमइ, उच्छुमित्ता पुव्वं वेरं निज्जाएइ, निज्जाएत्ता हट्ठुट्ठु पाणीयं पियइ, पियित्ता जामेव दिसि पाउव्भूए तामेव दिसि पडिगए ।

‘तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउव्ववित्था-उज्जला-जाव-वुरहिपासा । पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरित्था ।

भगवया मेरुप्पभ-भवनिरूवणं—

३५६. ‘तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं-जाव-वुरहिपासं सत्तरा-इंदियवेपणं घेवेसि, सवीसं वात्तसयं परनाउयं पालइत्ता अट्ठु-पुहट्ठु-वसट्ठु कालमासे कालं किच्चा इहेव जंव्वीवे भारहे वासे दाहिणइउभरहे गंगाए महानईए दाहिणे कूले विधगिरिपायमूले एगेणं मत्तवरगंधहत्थिणा एगाए गयवर-करेणूए कुच्चिसि गय-कलमए जणिए ।

‘हे मेघ ! तुम वहाँ जीर्ण, जरा से जर्जरित देहवाले, व्या-कुल भूखे, प्यासे, दुर्बल, क्लान्त, बहरे और दिङ्मूड़ होकर अपने यूथ से विछुड़ गये, वन के दावानल की ज्वालाओं से पराभूत हुए, गर्मी, प्यास और भूख से पीड़ित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए, तुम्हें पूरी तरह भय उत्पन्न हो गया, जिससे तुम इधर-उधर दौड़ने लगे, खूब दौड़ने लगे तब अल्पजल और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा सरोवर दिखा जिसमें पानी पीने के लिये बिना घाट के तुम उतर गये ।

‘हे मेघ ! वहाँ तुम किनारे से तो दूर चले गये परन्तु पानी तक न पहुँच सके और बीच में ही कीचड़ में फंस गये ।

हे मेघ ! वहाँ तुमने ‘मैं पानी पिऊँ’ ऐसा सोचकर अपनी सूँड फँलाई, परन्तु तुम्हारी सूँड भी पानी न पा सकी । तब हे मेघ ! तुमने पुनः ‘शरीर बाहर निकालूँ’ ऐसा विचार कर जोर लगाया तो कीचड़ में और गहरे फंस गये ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी दूसरे समय तुमने एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को अपनी सूँड, पैर और दांत रूपी मूसलों से प्रहार करके मारा था और अपने यूथ से बहुत समय पूर्व बाहर निकाल दिया था । वह हाथी भी पानी पीने के लिये उसी महाद्रह में उतरा तब उस नौजवान हाथी ने तुम्हें देखा, देखकर उसे पूर्व बैर का स्मरण हो आया, स्मरण करके क्रोधाभिभूत हो-यावन-दांत मिसमिसाते हुए जहाँ तुम थे, वहाँ आया, आकर तीक्ष्ण दांत रूपी मूसलों से तीन बार तुम्हारी पीठ धींधरी और वींधकर पूर्व बैर का बदला लिया, बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर पानी पीया, पानी पीकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस लौट गया ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई, जिससे तुम्हें तनिक भी चैन नहीं था-यावत्-दुःसह थी । उध-वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह भी उत्पन्न हो गया ।

भगवान द्वारा मेरुप्पभ-भव निरूपण

३५६. ‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम उम बेचैन कर देने वाली-यावत्-दुःसह वेदना को सात दिन-रात तक भोगकर एक भी बीम चर्य की आयु भोगकर दुर्दय आर्नध्यान के वशीभूत एवं दृष्ट ने पीड़ित हुए, मृत्यु के समय काल मरण करते अभी अर्द्ध दीप के भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भारत में गंगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विधगिरि की तलहटी में एक नरसिंह श्रेष्ठ गध हस्ती से एक श्रेष्ठ हस्तिनी की कुक्षि में हाथी के बच्चे के रूप में उत्पन्न हुए ।

“तए णं सा गयकलभिया नवण्हं भासाणं वसंतमाससि तुमं पयाया ।

“तए णं तुमं मेहा ! गढ्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकल-भए यावि होत्था—रत्तुप्पल-रत्तसूमालए जासुमणाऽऽरत्तपालिय-त्तय-लक्खारस-सरसकुंमसंझवभरागवण्णे, इट्ठे नियगस्स जूहवइणो गणियाघार-करेणु-कोत्थ-हत्थी अणेगहत्थिसयसंपरिवुडे रम्मोसु गिरिकाणणेसु सुहंसुहेणं विहरसि ।

“तए णं तुमं मेहा ! उम्मुक्कवालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मणा संजुत्तेणं तं जूहं सयमेव पडिवज्जसि ।

“तए णं तुमं मेहा ! वणयरेहि निव्वत्तियनामधेज्जे सत्तुस्तेहे-जाव-पंडुर-सुविसुद्ध-निद्ध-निस्वहय-विसत्तिनहे चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था । तत्थ णं तुमं मेहा ! सत्तंगपइट्ठिए तहेव-जाव-पडिरुवे ।

तत्थ णं तुमं मेहा ! सत्तसइयस्स जूहस्स आह्वेवच्चं-जाव-कारेमाणे पालेमाणे अभिरमेत्था ।

३५७. “तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवघंससमुट्ठिएणं सुक्कतण-पत्त-क्कयवर-मारुय-संजोगदीविएणं महाभयंकारेणं हुयवहेणं वणदव-जाला-पलित्तेसु वणंतेसु धूमाउलासु दिसासु-जाव-मंडलवाएव्व परिव्वभमंते भीए-जाव-संजायभए वरुहं हि हत्थीहि य-जाव-संपरिवुडे सव्वओ सभंता दिसोदिसि विप्पलाइत्था ।

“तए णं तव मेहा ! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारुवे अज्ज-त्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—‘कहि णं मन्ने मए अयमेया-रुवे अगिसंभमे अणुभयपुव्वे ?’

“तए णं तव मेहा ! लेस्साहि विसुज्जमाणीहि अज्जवसाणेणं सोहणेणं सुभेणं परिणामेणं तयावरणिज्जाणं कम्ममाणं खओवसमणं ईहापूह-मगण-गवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाईसरणे समुप्प-ज्जित्था ।

तत्पश्चात् उस हथिनी ने नी मास पूर्ण होने पर वसंत मास में तुम्हें जन्म दिया ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम गर्भावान से मुक्त होकर गजकलभ (छोटे हाथी) भी हो गये—लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए, जपा कुमुम, रक्त वर्ण के परिजात नामक वृक्ष के समान, लाय के रस, सरस कुंकुम और सांध्यकालीन वाद्यों के रंग के समान रक्तवर्ण हुए, अपने मूथपति को प्रिय हुए, गणिकाओं के समान युवती हथिनियों के उदर प्रदेश में अपनी सूंड डालते हुए काम-क्रीड़ा में तत्पर रहने लगे और इस प्रकार सैंकड़ों हाथियों से परिवृत्त होकर पर्वत के रमणीय काननों में सुखपूर्वक विचरण करने लगे ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम व्याध्यावस्था को पार करके युवावस्था को प्राप्त हुए और मूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर तुम स्वयं ही उस मूथ का वहन करने लगे—अर्थात्, मूथपति हो गये ।

‘उसके बाद हे मेघ ! तुम सात हाथ ऊँचे-यावत-श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत वीस नखों और चार दंत वाले मेरुप्रभ नामक हस्तिरत्न हुए । ‘हे मेघ तुम सातों अंगों से भूमि का स्पर्श करने वाले-यावत-सुन्दर रूप वाले हुए ।

हे मेघ ! वहाँ तुम सात सौ हाथियों के मूथ का अधिपतित्व-यावत-करते हुए, पालन करते हुए अभिरमण करने लगे ।

३५७. ‘तत्पश्चात् अन्यदा किसी समय ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास में वृक्षों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न और शुष्क घास, पत्र और कूड़े कचरे एवं वायु के संयोग से दीप्त महाभयंकर अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओं से वन का मध्य भाग सुलग उठा, दिशायें धुयें से व्याप्त हो गईं-यावत-ववंडर के समान इधर-उधर भ्रमण करते हुए, भयभीत-यावत् भय पैदा हो जाने के कारण बहुत से हाथियों और-यावत-परिवृत्त होकर दिशाओं और विदिशाओं में सर्वत्र इधर उधर दौड़ भाग करने लगे ।

‘हे मेघ ! तव उस वन के दावानल को देखकर तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-संकल्प उत्पन्न हुआ—‘मालुम होता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति पहले भी मैंने कभी अनुभव की है ?’

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! विशुद्ध लेश्याओं, शुभ अध्यवसायों, शुभ परिणामों और तदावरण कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपण करते हुए तुम्हें संज्ञी जीवों का प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

“तए णं तुमं मेहा ! एयमट्ठं सम्म अभिससमेति—एवं खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जंबुदीवे दीवे भारहेवासे वेयड्ढ-गिरिपायमूले जाव सुमेरूप्पमे नाम हत्थिराया होत्या । त्त्य णं मया अयमेयाख्वे अग्गिसंभमे समणुभूए ।

“तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकाल-समयंसि नियएणं जूहेणं सद्धिं समण्णागए यावि होत्या ।

तए णं तुमं मेहा ! सत्तुस्सेहे-जाव-सन्निजाइसरणे चउदंते मेरूप्पमे नामं हत्थी होत्या ।

मेरूप्पभेण मंडलनिम्माणं—

३५८. “तए णं तुज्झं मेहा ! अयमेयाख्वे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्या—सेयं खलु मम इयाणि गंगाए महानईए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विक्षगिरिपायमूले दवग्गिसंताणकारणट्ठा सएणं जूहेणं महइमहालयं मंडलं घाइत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेत्ति, संपेहेत्ता सुहंसुहेणं विहरसि ।

“तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ पडमपाउसंसि महा-वुट्ठिकायंसि सन्निवयंसि गंगाए महानईए अदूरसामंते बहूहि हत्थीहि य-जाव-कलभियाहि य सत्तहि य हत्थिसएहि संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएत्ति— ज तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्टुं वा कंटेए वा लया वा दल्लो वा छाणुं वा खखे वा खुवे वा, तं सव्वं तिवखुत्तो आहुणिय-आहुणिय पाएणं उट्ठवेत्ति, हत्थेणं गिण्हसि, एगंते एडेत्ति ।

“तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामंते गंगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विक्षगिरिपायमूले गिरीसु य-जाव-सुहंसुहेणं विहरसि ।

“तए णं तुमं मेहा ! अण्णया कयाइ मज्झिमए वरिसार-त्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवा-गच्छसि, उवागच्छत्ता दोच्चे पं मंडलघायं करेसि । “एवं— चरिमवरिसारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवयमाणंसि जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छत्ता तच्चं पं मंडलघायं करेसि-जाव-सुहंसुहेणं विहरसि ।

दवग्गिभीतसावयाणं मेरूप्पभस्स य मंडलपवेत्तो—

३५९. “अह मेहा । तुमं गइंइमावदिम वट्टमाणो कमेणं नत्तिगिव-पविहवणगरे हेमंते सुंदतोडउडत्तुत्ताएउरन्नि अतिरुत्ते जहिणवे

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि—निश्चय ही मैं अतीत दूसरे भव में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में वंताद्वयगिरि की तलहटी में—यावत-सुमेरुप्रभ नामक हस्तिराजा या । वहाँ मैंने इस प्रकार के अग्नि संभ्रम—भय का अनुभव किया है ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम उस दिन के अंतिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ रहते हुए विचरण करते थे ।

‘हे मेघ ! उसके बाद सात हाथ ऊँचे-यावत-जातिस्मरण ज्ञान से युक्त चार दांत वाले मेरुप्रभ नामक हाथी हुए ।

मेरुप्रभ द्वारा मंडल निर्माण—

३५८. ‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हें इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत-संकल्प उत्पन्न हुआ—मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर विध्य पर्वत की तलहटी में दावाग्नि से रक्षा करने के लिये अपने यूथ के साथ एक बड़ा मंडल बनाऊँ—इस प्रकार विचार करके तुम मुद्यपूर्वक विचरने लगे ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने किसी एक वार प्रथम वर्षाकाल में खूब वर्षा होने पर गंगा महानदी के समीप बहुत से हाथियों-यावत-कलभिकाओं आदि सात सौ हाथियों से परिवृत्त होकर एक योजन परिमित बड़े घेरे वाला अत्यन्त विज्ञाल मंडल बनाया-उस मंडल में जो कुछ भी घास, पत्ते, काण्ड, काटे, लता, वेला, ठूँठ, वृक्ष, या पौधे आदि थे उन सब को तीन वार हिला हिलाकर पैरों से उच्चाड़ा, मूंड से पकड़ा और एक ओर ले जाकर फेंक दिया ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम मंडल के सन्निकट गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे विध्याचल के पाद मूल में, पर्वत-यावत-पूर्वोक्त स्थानों में मुद्यपूर्वक विचरण करने लगे ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होने पर जहाँ मण्डल या तुम उन स्थान पर आये, आकर दूसरी वार उस मण्डल को ठीक तरह से नाफ किया । इसी प्रकार अन्तिम वर्षा ऋतु में घोर वृष्टि होने पर वहाँ मण्डल था, वहाँ आये, वहाँ आकर तीसरी वार भी उस मण्डल को नाफ किया-यावत-मुद्यपूर्वक विचरण करने लगे ।

दवाग्नि भीत शवापदां और मेरुप्रभ का मंडल-प्रथेण—

३५९. इसके बाद हे मेघ ! जब तुम उन गयेद वर्षा में थे कि अनुत्तम से कमजिनियों के इन का विनाश करने परना, तुम्हें और लोभ के दुष्णों की वृद्धि से संभव प्रथा उत्पन्न होने परना

गिम्हसमयंसि पत्ते वियट्टमाणेसु वणेसु वणकरेणुविविहविष्णकय-
पंसुघाओ तुमं उउयकुसुमकयचामरकन्नपूरपरिसंडियाभिरामो
मयवसविगसंतकडतडकिलिन्नगंधमदवारिणा सुरभिजणियगंधो
करेणुपरिवारिओ उउसमत्तजणियसोभो काले दिणयरकरपयंडे
परिसोसियतरवरसिहरभीमतरदंसणिज्जे भिगाररवंतभेरवरवे
णाणाविहपत्तकट्टतणकयवरुद्धतपइमारुयाइद्धनहयलदुमगणे वाउलि-
यादारुणतरे तण्हावसदोसदूसियममंतविविहसावयसमाउले भीम-
दरिसणिज्जे वट्टते दारुणम्मि गिम्हे मारुतवसपसरपसरियवियंभिएणं
अवभहियभीमभेरवरवप्पगारेणं महुधारापडियसित्तउद्धायमाणधग-
धगंतसदुवधुएणं दित्ततरसफूलिगेणं धूममालाउलेणं सावयसयंतकर-
णेणं अवभहियवणदवेणं जालालोवियनिरुद्धधूमंधकार भीयो आया-
व लोयमहंततुंबइयपुन्नकन्नो आकुंचियथोरपीवरकरो भयवसभयंत-
दित्तनयणो वेगेण महामेहो व्व पवणोल्लियमहल्लरुवो जेणेव कओ
ते पुरा दवग्गिभयभीयहियएणं अवगयतणप्पएसरुखो रुखोद्देसो
दवग्गिसंताणकारणद्वाए जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्य गमणाए,
एक्को ताव एस गमो ।

हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गई और अभिनव ग्रीष्म काल प्राप्त हुआ तब वन में क्रीड़ा करते समय वन की हृदिनियों तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार के कमलों और पुष्पों का प्रहार करती थीं, तुम उस ऋतु में उत्पन्न पुष्पों से निर्मित चामर जैसे कणों के आभूषणों से मंडित और मनोहर दिव्यत थे, मद के कारण विकसित गंडस्थलों को आद्र करने वाले झरते हुए सुगन्धित मद जल से तुम सुगंधमय बन गये थे, हृदिनियों से घिरे रहते थे, इस प्रकार सब तरह से ऋतु सम्बन्धी शोभा उत्पन्न हुई थी, उस ग्रीष्म काल में सूर्य की प्रखर किरणें गिर रही थी, ग्रीष्म ऋतु के कारण श्रेष्ठ वृक्षों के शिखर अत्यन्त शुष्क हो गये थे, जिसमें वे बड़े भयंकर प्रतीत होते थे, भृंगार पक्षी भयानक शब्द करते थे, पत्र, काष्ठ, तृण और कचरे को उड़ाने वाले प्रतिकूल पवन से सारा भूमण्डल व्याप्त हो गया था और बवंडरों के कारण भयावह दीख पड़ता था, प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोषों से दूषित और इधर उधर भटकते हुए श्वापदों (हिंसक पशुओं) से व्याप्त था, देखने में भयानक ऐसा वह ग्रीष्मकाल उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया । वह दावानल वायु के कारण विस्तार से फैला हुआ और विकसित हुआ था, उसके शब्दों की ध्वनि अत्यधिक भयंकर थी, वृक्षों से गिरने वाले मधु की धाराओं से सिंचित होने के कारण वह अत्यन्त वृद्धिगत हुआ था, घघक रहा था और उद्धत था, वह अत्यन्त देदीप्यमान, चिनगारियों के युक्त और धूम पंक्ति से व्याप्त था, सँकड़ों श्वापदों के प्राणों का अन्त करने वाला था इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त भयंकर दिखाई देती है । तब हे मेघ ! तुम उस दावानल की ज्वालाओं से आच्छादित हो गये, रुक गये अर्थात् इच्छानुसार जाने में असमर्थ हो गये, धुयों के कारण उत्पन्न हुए अंधकार से भयभीत हो गये, अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनों कान अरघट के तुम्ब के समान स्तब्ध रह गये, तुम्हारी मोटी और बड़ी सूंड सुकड़ गई, तुम्हारे चमकते हुए नेत्र भय के कारण इधर-उधर फिरने देखने लगे, जैसे वायु के वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा, पूर्वजन्म के दावानल के भय से भीत हृदय वाले होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिये जिस दिशा में तृण, वृक्ष आदि हटाकर साफ प्रदेश बनाया था और जिधर वह मंडल बनाया था, उधर ही तुमने जाने का निश्चय किया ! यह एक गम हैं—आचार्यान्तर के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है ।

“तए णं तुमं मेहा ! अणया कयाइ कमेण पंचसु उऊसु
समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेडामूले मासे पायव-घंससमुट्टिएणं

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! अन्य किसी समय क्रमशः पाँच ऋतुओं के व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म काल के अवसर पर ज्येष्ठमास

जाव संवट्टिइएसु मियपसुपंखित्तरोत्तिवेसु विसोविस्ति विप्पलाय-
माणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहिं य-जाव-कलमियाहिं य सद्धिं जेणेव से
मंडले तेणेव प्हारेत्थ गमणाए ।

“तत्थ णं अण्णे बहूवे सीहा य वग्घा य विगा य दीविया य
अच्छा य तरच्छा य परासरा य सरमा य सियाला य विराला य
सुणहा य कोला य ससा य कोकतिया य चित्ता य चिल्लला य
पुत्त्वपविट्ठा अग्निभयविट्ठया एगयओ विलधम्मणेणं चिट्ठन्ति ।

“तए णं तुमं मेहा ! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि,
उवागच्छता तेहिं बहूहिं सीहेहिं य-जाव-चिल्ललेहिं य एगयओ
विलधम्मणेणं चिट्ठसि ।

मेरूपभस्स पादुक्खेवे—

३६०. “तए णं तुमं मेहा ! पाएणं गत्तं कंडूइस्सामो त्ति कट्ठु
पाए उप्पिच्छे । तस्सि च णं अंतरंसि अण्णेहिं वलवतेहिं सत्तेहिं
पणोत्तिज्जमाणे-पणोत्तिज्जमाणे ससए अणुप्पविट्ठे ।

“तए णं तुमं मेहा ! गायं कंडूइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खे-
विस्सामि त्ति कट्ठु तं ससयं अणुप्पविट्ठं पाससि, पासित्ता पाणा-
णुकंपाए-जाव-सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चैव संधारिए, नो
चैव णं निक्खित्ते ।

३६१. “तए णं तुमं मेहा ! ताए पाणाणुकंपयाए-जाव-सत्ताणु-
कंपयाए संसारे परित्तोए, माणुस्साउए निक्खे ।

तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंविद्याइं तं वणं जामेइ,
क्षामेत्ता निट्ठिए उवरए उवसंतं विज्जाए यावि होत्था ।

तए णं ते बहूवे सीहा य-जाव-चिल्लला य तं वणदवं निट्ठियं
उवरयं उवसंतं विज्जायं पाससि, पासित्ता अग्निभयविप्पसुक्का
तप्हाए य छ्हाए य परम्भाहया समणा तओ मंडलाओ पडि-
निक्खमन्ति, पडिनिक्खमिन्ता सव्वओ समंता विप्पत्तरित्था ।

तए णं ते बहूवे हत्थी य-जाव-कलमिया य तं वणदवं निट्ठियं
उवरयं उवसंतं विज्जायं पाससि, पासित्ता अग्निभयविप्पसुक्का
तप्हाए य छ्हाए य परम्भाहया समणा तओ मंडलाओ पडि-
निक्खमन्ति, पडिनिक्खमिन्ता विसोविस्ति विप्पत्तरित्था ।

में वृक्षों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण
यावत्-अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि
दिशा विदिशा में भाग दौड़ करने लगे तब तुम बहुत से हाथियों-
यावत्-कलभिकाओं के साथ जहाँ वह मंडल था, वहाँ जाने के
लिये दौड़ पड़े ।

‘उस मंडल में और भी बहुत से सिंह, बाघ, भेंड़िया,
द्वीपिक (चीता), रीछ, तरच्छ, पारासर, शृगाल, विडाल, खान,
शूकर, खरगोश, लोमड़ी, चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि
के भय से पराभूत होकर पहले ही आ चुके थे और एक साथ
विलधर्म से रहे हुए थे—अर्थात् जैसे एक बिल में सैकड़ों कीड़े-
मकोड़े ठसाठस भरे रहते हैं उसी प्रकार उस मंडल में भी
पूर्वोक्त श्वापद ठसाठस भरे हुए थे ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! जहाँ मंडल था, वहाँ तुम आये और
आकर उन बहुत से सिंह-यावत्-चिल्लल आदि के साथ एक
स्थान पर विलधर्म से टहर गये ।

मेरुप्रभ का पादोत्क्षेप—

३६०. तत्पश्चात् हे मेघ ! ‘पैर से शरीर को गुजा लू’ ऐसा
सोच कर तुमने एक पैर ऊपर उठाया, उसी समय उस चाली
हुई जगह में अन्य बलवान प्रणियों द्वारा भगाया-धकियाया हुआ
एक शशक प्रविष्ट हो गया अर्थात् उस चाली स्थान पर एक
खरगोश आकर बैठ गया ।

‘उसके बाद हे मेघ ! शरीर को गुजलाकर तुमने सोचा कि
मैं पैर नीचे रखूँ, परन्तु पैर की जगह में उन शशक को गुजा
हुआ देखा, देखकर प्राणानुकंपा-ने-यावत्-सत्वानुकंपा से वह पैर
अधर ही रखा, नीचे नहीं रखा ।

३६१. ‘हे मेघ ! तब उस प्राणानुकंपा-यावत्-सत्वानुकंपा से
तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का वंश किया ।

तत्पश्चात् वह दावानल छह दिन रात पर्यन्त उन धन की
जलाता रहा, जलाकर पूर्ण हो गया, उपरन हो गया, गान हो
गया, और बुझ गया ।

तब उन बहुत से सिंह-यावत्-चिल्लल आदि प्राणियों ने
उन दावानल को पूर्ण हुआ-नमाश्र्व हुआ, उपरन, उपरान और
बुझा हुआ देखा, देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए और स्थान
एवं भूय से पीड़ित होते हुए उस मंडल से बाहर निकले,
निराश्र्व कर चारों ओर फैल गये ।

तब वे वृक्ष ने हाथी-यावत्-कलभिका आदि ने उस वनवास
को समाप्त, उपरन, उपरान और बुझा हुआ देखा, देखकर
अग्नि भय से मुक्त हुए और भूय-स्थान से पीड़ित होते हुए उस
मंडल से बाहर निकले और निराश्र्व कर दिशा विदिशा में फैल गये ।

“तए णं तुमं मेहा ! जुग्णे जरा-जज्जरिय-वेहे सिद्धिलवति-
त-पिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्यामे अवले
अपरक्कमे अचंक्रमणे वा ठाणुखंडे वेगेण विप्परिस्सामि त्ति
कट्टु पाए पसारमाणे विज्जुहए विव रययगिरि-नव्वभारे धरणि
तलंसि सव्वंगोहि सण्णिवइए ।

“तए णं तव मेहा ! सरीरंगंसि वेयणा पाउब्भूया—उज्जला-
जाव-दुरहियासा । पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतोए यावि
विहरसि ।

मेहभवो तत्थ य तित्तिवखोवदेसो—

३६२. “तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं-जाव-दुरहियासं तिणि
राइदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं ‘परमाउ’ पाल-
इत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे रायगिहे नयरे सेणियस्स
रण्णो धारिणीए देवीए कुच्चिसि कुमारत्ताए पच्चायाए ।

तए णं तुमं मेहा ! आणुपुव्वेणं गव्वभासाओ निवखंते समाणे
उम्मुक्कवालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

“तं जइ ताव तुमं मेहा ! तिरिक्खजोणियभावमुवगएणं
अपडिलद्ध-सम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपयाए-जाव-सत्ताणु-
कंपयाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं निव्वित्ते । किमंग पुण
तुमं मेहा ! इयाणं विपुलकुलसमुब्भवे णं निव्वहयसरीर-दंतलद्ध-
पंचिदिए णं एवं उट्टाण-वल-वीरिय-पुरिसगार-परक्कमसंजुत्ते णं
मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे
समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए-
जाव-धम्ममाणुओगचित्ताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइ-
गच्छमाणायण य निग्गच्छमाणायण य हत्थसंधट्टणाणि य-जाव-रय-
रेणु-मुंडणाणि य नो सम्मं सहसि खमसि तित्तिवखसि अहियासेसि ?”

हे मेघ ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से अर्जस्त शरीर वाले
शिथिल ओर सलों वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल
थके हुए, भ्रूखं-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, निबल सामर्थ्य
रहित, चलने फिरने की शक्ति से रहित ओर ठूंड की तरह
अकड़े से हो गये, ‘मैं वेग से चलूँ’ ऐसा विचार कर ज्यों ही चलने
के लिये पैर पसारा कि विद्युत् से आघात पाये हुए रजत गिरि
के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर
गिर पड़े ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई जो
उज्जला—वेचनी पैदा करने वाली उत्कृष्ट-यावत्-दुस्सह थी ।
शरीर में पित्त ज्वर के व्याप्त हो जाने से दाहज्वर भी उत्पन्न
हो गया ।

मेघभव और उसमें तित्तिक्षोपदेश—

३६२. ‘हे मेघ ! तत्पश्चात् तुम उस उत्कट-यावत्-दुस्सह वेदना
को तीन रात-दिन तक भोगते रहे अंत में एक सौ वर्ष की पूर्ण
आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में राजगृह नगर में
श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कुक्षि में कुमार रूप में उत्पन्न
हुए ।

‘तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भावास से निकलकर
वालयावस्था का अतिक्रमण कर युवावस्था को प्राप्त होने पर
मेरे पास मुण्डित हो, गृहवास त्याग आनगारिकत्व में प्रव्रजित-
दीक्षित हुए हो ।

‘तो हे मेघ ! जब तुम तिर्यच योनिरूप पर्याय को प्राप्त
थे और जब तुम्हें सम्यक्त्व रत्न का लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ
था उस समय भी प्राणानुकंपा-यावत्-सत्वानुकंपा से प्रेरित
होकर पैर को अधर ही रखा, नीचे नहीं टिकाया था तो फिर
हे मेघ ! इस जन्म में तो तुम विशाल कुल में जन्में हो, तुम्हें
उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है, प्राप्त हुई पाँचों इन्द्रियों
का तुमने दमन किया है और उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषकार
और पराक्रम से युक्त हो और मेरे पास मुण्डित हो, गेही से अगेही
बने हो तब श्रमण निर्ग्रंथों के पहली और पिछली रात्रि के समय
वाचना-यावत्-धर्मानुयोग के चिन्तन के लिये, उच्चार प्रसवण के
लिये आते-जाते समय तुम्हें जो उनके हाथ का स्पर्श हुआ-यावत्-
धूलिकणों के तुम्हारा शरीर भर गया उसे तुम सम्यक् प्रकार
से सहन नहीं कर सके, विना क्षोभ के सहन नहीं कर सके,
तित्तिक्षा भाव नहीं रख सके, और शरीर को निश्चल रखकर
सहन नहीं कर सके ?

मेहस्स जाईसरणं—

३६३. तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स समणस्से भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेहि परिणामेहि-जावपसत्थेहि अउअवसाणेहि लेसाहि विसुअमाणीहि तथावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मगण-गवेसणं करेमाणस्स सणिण-पुव्वे जाईसरणे समुप्पणे, एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ ।

मेहस्स पुणो पव्वज्जा—

३६४. तए णं से मेहे कुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं संभारिय पुव्वजातिसंभरणे दुगुणाणीयसंवेगे आणंदअंसुपुण्णमुहे हरित्तवसविसप्पमाणहियए धाराहयकलंबकं पिव समूसत्तियरोमफूवे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

“अज्जप्पमिती णं भंते ! मम दो अच्छीणि मोत्तूणं अवसेसे काए समणाणं निग्गंथाणं निसट्ठे त्ति कट्ठु पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! इयाणि दोच्चं पि सयमेव पव्वावियं-जाव-सयमेव आया-गोयं जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खियं ।”

तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ-जाव-जाया मायावत्तियं धम्ममाइक्खइ “एयं देवानुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीवव्वं, एवं तुयट्ठियव्वं, एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं एवं उट्ठाए उट्ठाए पाणाणं-जाव-सत्ताणं संजमेणं संजमियव्वं ।”

तए णं से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अवनैयाहव धम्मिये उअएत्तं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह गच्छइ-जाव-संजमेणं संजमइ ।

मेहस्स नियंठसरिया—

३६५. तए णं से मेहे अणगारे जाए-इरियात्तमिए-जाव-दुणमेइ नियंठं पावयणं पुरओ क्खउं विहरति ।

मेघ को जातिस्मरण—

३६३: तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर से यह वृत्तान्त मुन समझ-कर शुभ परिणामों-यावत्-प्रशान्त धृष्टवृत्तियों, विगुद्ध होती हुई लेश्याओं और तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के कारण ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करते हुए मेघकुमार श्रमण को संजी जीवों को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे उसने अपना वृत्तान्त सम्यक् प्रकार से जान लिया ।

मेघ की पुनः प्रव्रज्या—

३६४. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्ववृत्तान्त स्मरण करा दिये जाने के कारण मेघकुमार का नवेग दुगुना हो गया, उसका मुख आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गया, हृष के कारण विकसित हृदय वाला हो गया, मेघधारा से आहत तदम्ब पुष्प की भांति उसका रोम-रोम खिल गया, उसने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इन प्रकार कहा—

हे भदन्त ! दोनों नेत्रों को छोड़कर आज से मेरा शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये समर्पित है—उन प्रकार कहकर मेघकुमार पुनः श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

भगवन् ! मेरी इच्छा—भावना है कि अब आप स्वयं ही दूसरी बार मुझे प्रव्रजित करें—यावत् स्वयं ही आचार, गोपन, संयम यात्रा और मात्रा-प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना आदि रूप श्रमण धर्म का उपदेश प्रदान करें ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव प्रव्रजित—दीक्षित किया-यावत्-यात्रा-मात्रा-संयम धर्म का उपदेश दिया कि—हे देवानुप्रिय ! इन प्रकार गमन करना चाहिये, इस प्रकार निर्दोष आहार की गवेपणा करना और धारणा चाहिये, इन प्रकार बोलना चाहिये, सावधान रहकर प्राणों-वायु-मर्मादी रक्षा रूप संयम में प्रवृत्त होना चाहिये ।

तत्पश्चात् यह मेघ अणगार श्रमण भगवान महावीर के इन प्रकार के इन धार्मिक उपदेश को सर्वत्र प्रसार से आचार्य करता है, अंगीकार करके तथासर्व प्रवृत्ति-यावत्-संयम में प्रवृत्त करता है ।

मेघ की निर्ग्रन्थ चर्चा

३६५. तत्पश्चात् मेघ निर्ग्रन्थि जाति से पुनः अणगार रूप-यावत्-इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन की भांति तत्पश्चात् विहरते हे-निर्ग्रन्थिमेघकुमार विहरते है ।

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहाक्ख-
वाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ,
अहिज्जिता वूहं चउत्थ छट्ठमवसमवुवालसेहिं मासद्वमास-
खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥

महावीरस्स रायगिहाओ वहिया जणवयविहारो—

३६६. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नपराओ
गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमित्ता वहिया
जणवयविहारं विहरइ ।

मेहस्स भिक्खुपडिमा—

३६७. तए णं से मेहे अणगारे अणया कयाइ समणं भगवं महावीरं
वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! अब्भणुणाए समाणे मासियं भिक्खु-
पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए ।”

“अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

तए णं से मेहे अणगारे समणेणं अब्भणुणाए भगवया महावीरेणं
समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामगं सम्मं
काएणं फासेइ-जाव-किट्टेइ, सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता
पुणरवि समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता
एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! तुव्भेहिं अब्भणुणाए समाणे दोमासियं
भिक्खुपडिमं उवसंसज्जित्ता णं विहरित्तए ।”

“अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

जहा पढमाए अभिलावो तथा दोच्चाए तच्चाए चउत्थाए
पंचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइदियाए दोच्च-
सत्तराइदियाए तच्चसत्तराइदियाए आहोराइयाए वि एण-
राइयाए वि ।

तत्पश्चात् उन मेघ मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के
तयारूप स्वविर मुनियों से सामायिक से प्रारम्भ करते ग्यारह
अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन करते बहुत से पशु, पक्ष,
दशम, द्वादश भक्त आदि तथा मास अर्धमास श्रमण आदि ही
तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचारण करने लगे ।

महावीर का राजगृह से ब्राह्मजनपद विहार—

३६६. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर से गुण
शिलक चैत्य से निकले, निकलकर ब्राह्म जनपदों में विचरने
लगे ।

मेघ की भिक्षु प्रतिमा—

३६७. तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी अन्य समय श्रमण
भगवान महावीर की वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार
करके इस प्रकार कहा—

‘भगवन् ! आपकी अनुमति लेकर मैं एक मास की मयादा
वाली भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

‘देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसे सुख उपजे वैसे करो, किन्तु विलम्ब
मत करो’—भगवान ने कहा ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा अनुमति प्राप्त किये
हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके
विचरने लगे ।

यथासूत्र, यथाकल्प और यथामार्ग मासिक प्रतिमा को
सम्यक् प्रकार काय से ग्रहण किया-यावत्-आराधना की, इस
प्रकार सम्यक् प्रकार से काया से ग्रहण करके-यावत्-आराधना
करके पुनः श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया
और वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं दूसरी
द्विमासिक भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ ।’

भगवान ने कहा—‘हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसे
करो, प्रतिबंध मत करो ।’

जिस प्रकार पहली प्रतिमा में आलापक कहा है, उसी प्रकार
दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की,
पाँचवी पाँच मास की, छठी छह मास की, सातवी सात मास
की फिर पहली अर्थात् आठवी सात अहोरात्रि की, दूसरी अर्थात्
नौवी सात अहोरात्रि की, तीसरी अर्थात् दसवी सात अहोरात्रि
की और ग्यारहवीं एवं बारहवीं एक एक अहोरात्रि की कहना
चाहिये ।

मेहस्स गुणरयणसंवच्छरतवो—

३६८. तए णं से मेहे अणगारे वारत्त भिवखुपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता पुणरवि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“इच्छामि णं भंते ! तुव्भोहं अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं” उवसंपज्जित्ता णं विहारत्तए ।”

“अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।”.....

तए णं से मेहे अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहामुत्तं अहाकप्पं अहामगं सम्मं काएणं फासेइ-जाव-किट्टेइ अहामुत्तं अहाकप्पं अहामगं सम्मं काएणं फासेत्ता-जाव-किट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता वहुहि छट्ठमदत्त-मदुवालसेहि भासद्धमासपमणेहि विचित्तेहि तवोकम्मोहि अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

मेहस्स सरीरदसा—

३६९. तए णं से मेहे अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं तस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं उदग्गेणं उदारेणं उत्तमेणं महाणुभावेणं तवोकम्मेणं सुवके भुपखे लुपखे निम्भंसे निस्सोणिए किडिकिडियानए अट्टिचम्मावणद्धे किसे धम-णिंसंतए जाए यावि होत्था—जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ । से जहानामए इंगालसगडिया इ वा कट्ठसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा तिलसगडिया इ वा एरंड-कट्ठसगडिया इ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी ससहं गच्छइ, ससहं चिट्ठइ, एयामेव मेहे अणगारे ससहं गच्छइ, ससहं चिट्ठइ, उपचिए तवेण, अवचिए संससोणिएणं, हुयासणे इव भासराणि-परिच्छन्ने तवेणं तेएणं तपतेयसिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

मेघ का गुणरत्न संवत्सर तप—

३६८. तत्पश्चात् मेघ अनगर ने वारहों भिक्षु प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से काय से अंगीकार करके-यावत्-आराधना करके पुनः वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्न संवत्सर तपःकर्म अंगीकार करके विचरण करना चाहता हूँ ।’

‘हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, किन्तु विलंब मत करो ।’—भगवान ने कहा ।

तत्पश्चात् मेघ अनगर ने गुणरत्नसंवत्सर नामक तपः कर्म का यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग नम्यक् प्रकार से काय द्वारा ग्रहण किया-यावत्-कीर्तित किया और सूत्र, कल्प और मार्ग के अनुसार सम्यक् प्रकार से काय द्वारा ग्रहण करके-यावत्-कीर्तन करके श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके बहुत से पष्ठ भक्त, अष्टम भक्त, दशम भक्त, द्वादश भक्त आदि तथा अर्धमास एवं मास धमण आदि विचित्र तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । मेघ की शरीर दशा—

३६९. तत्पश्चात् वे मेघ अनगर उस उराल-प्रधान, विपुल, सशोक, शोभा संपन्न, प्रदत्त, प्रवर्धित—बहुमानपूर्वक ग्रहण किया गया, कल्याणकारी, शिव, धन्य, मंगल, उदय, तीव्र, उदार, उत्तम, महान प्रभाव वाले तपःकर्म से मुक्त, रुधा, मान रजित और हाड़ किडकिट्टाने वाले जैसे हो गये, अग्नि पंजर चमड़ी से ढका रह गया, शरीर कुल और नसों से व्याप्त हो गया अर्थात् एक एक नस दिखलाई देने लगी । इसके अतिरिक्त दुग्धे कमजोर हो गये कि अपने जीव के बल में (आत्मशक्ति से) ही चलने और जीव के बल से ही घड़े हो पाते थे, भाषा बोलकर धक जाते थे, बात करते-करते धक जाते थे, यही तक कि ‘मै बोलूंगा’ ऐसा विचार करने ही धक जाते थे । जैसे हुए से उलकर सुखाई गई कोई कोपलों से भरी गाड़ी हो, लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, तिन के टुकड़ों से भरी गाड़ी हो, अथवा एरंड के काष्ठों से भरी गाड़ी हो ही नहीं गाड़ी चढ़ायाहट करती हुई चलती है, यागल करती हुई टूटती है, उसी प्रकार मेघ अनगर भी गाड़ी हो चढ़ायाहट के साथ चलने से, चढ़ायाहट के साथ चढ़े होने से, तप से ही उपविष्ट थे, अर्थात् तप में तो घड़े-घटे—मुंडि शाल थे, अर्थात् मान और शक्ति से अवशिष्ट-शून्य हो जाते थे, तप से शरीर के डेर से आच्छादित अग्नि की तरह उराल-प्रधान से बल से दही-पचनात थे, तपसे-अर्थात् से अजीब अजीब शोभायमान हो रहे थे ।

मेहस्स विपुलपव्वए अणसणं—

३७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे-जाव-पुडवाणुपुत्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नयरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिक्खं ओगहं ओगिहित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयाख्वे अज्जत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं-जाव-तवो-कम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मसे किडकिडियाभूए अट्टिचम्मा-वणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था—जीवंजीवेणं गच्छामि-जाव-भासं भासिस्सामि त्ति गिनामि । तं अत्थि ता मे उट्टाणे कम्मे वले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्टाणे कम्मे वले वीरिए पुरिसकार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे,-जाव-य मे धम्मयारिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरु सहुस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुणायस्स समाणस्स सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ थ खामेत्ता तहाख्वेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसणिगासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण पडियाइक्खियस्स साओवगयस्स कालं अणव-कंखमाणस्स विहरित्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरु सहुस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिव्वुत्तो आयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासणो नाइदूरे सुस्सुसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जूवासइ ।

मेघ का विपुल पर्वत पर अनशन—

३७०. उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले श्रमण भगवान महावीर-यावत्-अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम गमन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ गुणशिलक चैत्य था वहाँ आये, आकर यथोचित अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

तत्पश्चात् उन मेघ अनगर को पूर्व और उत्तर रात्रि की संघि-वेला में अर्थात् मध्य रात्रि में धर्मजागरणा में जागरणा करते हुए इस प्रकार का यह अध्यवसाय-यावत्-उत्पन्न हुआ—इस प्रकार मैं इस उदार-यावत्-तपःकर्म से शुष्क, हृक्ष, निर्मांस, किडकिड़ाहट युक्त हाड़ों वाला, चर्माच्छादित अस्थि पंजर वाला, कृश और नसा जाल मात्र रह गया हूँ—अपनी आत्मशक्ति से चलता हूँ-यावत्-‘मैं वोलूंगा’ यह विचार करने मात्र से भी थक जाता हूँ । इसलिये अभी तो मुझ में उठने की शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग है-यावत्-मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेष्टा श्रमण भगवान महावीर जिनेश्वर गंध-हस्ती के समान विचरण कर रहे हैं तब तक कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रगट होने पर-यावत्-जाज्वल्यमान तेज के साथ दिनकर सहस्ररश्मि सूर्य के उदित होने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा लेकर स्वयं ही पाँच महाव्रतों को पुनः अंगीकार करके गौतम आदि श्रमण निर्गन्थों तथा निर्गन्थियों से क्षमा याचना कर तथा-रूपधारी एवं योगवहन आदि क्रियायें जिन्होंने की हैं, ऐसे स्वविरों के साथ शनैः शनैः विपुलाचल पर्वत पर आरोहण करके स्वयं ही सघन मेघ के सदृश पृथ्वी शिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, संलेखना को प्रीतिपूर्वक स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, पादोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की आकांक्षा न करता हुआ विचरण करूँ, यह मेरे लिये श्रेयस्कर होगा, इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिणमित होने पर-यावत्-जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि सूर्य के उदित होने पर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर यथायोग्य स्थान पर रहकर शुश्रूषा-सेवा करते हुए नमस्कार करते हुए, नतमस्तक हो विनयपूर्वक अंजलि करके उपासना करने लगे—बैठ गये ।

३७१. 'मेहा' इ समणे भगवं महावीरे अणगारं एवं वयात्तो—

“से नूनं तव मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंति धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयाख्वे अज्झत्थियए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्या—एवं खलु अहं इमेण ओरालेणं तत्रोकम्मंगं सुक्के-जाव-संकप्पे अहं तेणव हव्वमागए ।

“से नूनं मेहा ! अट्ठे समट्ठे ?”

“हंता, अत्थि ।”

“अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।”

३७२. तए णं से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमणुणाए समाणे हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणदिए-जाव-हरित्तवस-विसप्प-माणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तियपुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता गौयमादीए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य चामेइ, चानेत्ता तहाख्वेहि कडावीहि धेरेहि सद्धि विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता सयमेव मेहघणसणिगःसं पुठविसित्तापट्टवयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चार-पात्तवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दम्मसंधारणं संथरइ, सथरित्ता दम्मसंधारणं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थानिमुहे संपलियंकिनसण्णे करयत्तपरिग्गहिय तिरत्तावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयात्तो—

“नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं । नमोत्थु णं समणस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपादिड-कामस्स मम धम्मपरिचरत्त । वंशानि णं भगवत्तं इहगए- पानउ णं भगवं तत्थगए इहगयं” ति अट्ठु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयात्तो—“पुत्थि पिय णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अत्थिए सत्थे पाणाइवाए पच्चरयाए-जाव-मिच्छारंसत्तमत्थे - पच्चरयाए । “इयाणि पि णं अहं तस्सेय अत्थिए सत्थे पाणाइवाय पच्चरयाणि - जाव-मिच्छारंसत्तमत्थे पच्चरयाणि, सत्थे अनव - पान - धाइम-ताइयं अट्ठिइहि पि आहारं पच्चरयाणि आयज्जवीयाए ।

३७१. 'हे मेघ ! इस प्रकार संबोधित करते श्रमण भगवान महावीर ने मेघ अनगार से इस प्रकार कहा—

‘निश्चय ही हे मेघ ! पूर्व-उत्तर रात्रिकाल में-मध्य रात्रि में, घर्म जागरिका में, जागरण करते हुए तुम्हें इस प्रकार का यह अधवत्ताय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ जहाँ मैं हूँ, यहाँ तुम तुरन्त आवे हो ?’

‘हे मेघ ! क्या यह अर्थ समय है ? अर्थात् यह बात सत्य है ?’

‘हाँ यह अर्थ समय है ।’ मेघ ने कहा ।

‘हे देवानुप्रिय ! जैसे सुग्य उपजे, वैसे करो, विलंब मत करो ।’ भगवान ने कहा ।

३७२. तत्परचात् थे मेघ अनगार श्रमण भगवान महावीर को आज्ञा प्राप्त करके दृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त-यावत्-संप्रिय विकसित हृदय वाले हुए और स्थान से उठे, उठकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करते न्वयं ही पंचमहाप्रतीं का उच्चारण किया, उच्चारण करते गौमम आदि श्रमण निग्रंथों एवं निग्रंथनियों से क्षमा याचना की, क्षमा-याचना करके तवारूप (चारित्र्य संपन्न) एवं योग यजन प्रादि किया हुए स्वधिर तंतों के नाथ धीरे-धीरे विपुल नामक पर्वत पर चढ़े, चढ़कर स्वयं ही नयन मेघ नटन पृथ्वी पिता पट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करते उच्चार-प्रत्यय-माग-सूत्र स्वयं को भूमिका का प्रतिलेखन किया, प्रतिलेखन करते दर्मसंधारक विद्याया, विद्याकर दर्म के संस्कारक पर आरुह हुए, आरुह होकर पूर्व दिशा के समुद्य पर्वतवासन-पद्मानन से पैदल गौरी रूप जोड़ और मिर पर आवर्त कर प्रथवा मिर से स्वयंकर प्रथी पूर्वक इन प्रकार बोले—

‘जरिहून भगवणों को-यावत्-निदग्गि की प्राप्त सिद्धी को नमस्कार हो । श्रमण-यावत्-सिद्धिगि की प्राप्त करने के इच्छुक मेरे धर्मोपाय को नमस्कार हो । क्या निवड भगवान को क्या स्थित में वंदना करता हूँ, क्या निवड भगवान को अट्ठु मुत्तओ देवे’—इस प्रकार आकर वंदना की, वंदनकर किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—‘इहो मे मेघ भगवान महावीर के निकट समया प्राणागतता का प्रयत्न किया है-कट्टु-निष्पादनीय मत्थे वा प्राणागत किया है । इस समय में ही उन्ही के निकट गई प्राणागतता का प्रयत्न कर रहा हूँ-यावत्-निष्पादनीय मत्थे वा प्राणागत कर रहा हूँ-कट्टु मत्थे-कट्टु के अगत, पान, धाइ और अट्ठु का-यावत्-प्रकार के अट्ठु-वा

“जं पि य इमं सरीरं इट्ठं-जाव-विविहा रोगायंका परीस-
होवसग्गा फुसंतीति कट्टु एयं पि य णं चरमेहि ऊसास-नीसासेहि
वोसिरामि” त्ति कट्टु सलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडिया-
इक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरइ ।

तए णं ते थेरा भगवंतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वैया-
वडियं करंति ।

मेहस्स समाधिमरणं—

३७३. तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स
तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं
अहिज्जिता, बहुपडिपुणाइं दुवालसवरिसाइं सामणपरियागं
पाउजिता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं
अणसणाए छेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते
अणुपुव्वेणं कालगए ।

थेरेहि मेहस्स आचारभंडसमप्पणं—

३७४. तए णं ते थेरा भगवंतो मेहं अणगारं अणुपुव्वेणं कालगयं
पासंति, पासित्ता परिनेव्वाणवत्तियं काउस्सगं करंति, करेत्ता
मेहस्स आचार भंडगं गेहंति, गेण्हित्ता विउलाओ पव्वयाओ सणियं
सणियं पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए, जेणा-
मेव समणे भगवं महावीरे, तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता
समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं
वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पियाणं अंतेवासी मेहे नामं अणगारे पगइ-
भट्टए-जाव-विणीए, से णं देवानुप्पिएहि अब्भणुणाए समाणे
गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता अम्हेहि सट्ठिं
विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहइ, दुरुहित्ता सयमेवमेघघणसण्णि-
गासं दुडदिसिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भत्तपाणपडियाइक्खिए
अणुपुव्वेणं कालगए ।

“एस णं देवानुप्पिया ! मेहस्स अणगारस्स आचारभंडए ।”

गोयमपुच्छाए भगवओ उत्तरं—

३७५. भंति ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमं-
सइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ और यह शरीर जो
इष्ट-यावत्-विविध रोगों एवं आतंकों, परीपहों, उपसर्गों से
स्पर्शित रहता है, उसका भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त
परित्याग करता हूँ—इस प्रकार कहकर संलेखना को सत्रे
अंगीकार करके, भक्तपान का त्याग करके पादोपगमन समाधि-
मरण ग्रहण कर मृत्यु की कामना न करते हुए विचरण
करते हैं ।

तब वे स्थविर भगवन्त ग्लानि रहित होकर अग्लान भावपूर्वक
मेघ अनगर की वैयावृत्य करते हैं ।

मेघ का समाधिमरण—

३७३. तत्पश्चात् वे मेघ अनगर श्रमण भगवान महावीर के
तथारूप स्थविरों के सन्निकट सामायिक आदि ग्यारह अंगों का
अध्ययन करके लगभग बाहर वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन
करके एक मास की संलेखना के द्वारा आत्मा में रमण करते हुए
साठ भक्तों का छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके,
आलोचना प्रतिक्रमण करके, शक्त्यों का उच्छेद करके समाधिपूर्वक
अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए ।

स्थविरों द्वारा मेघ के आचार भांडों का समर्पण—

३७४. तत्पश्चात् साथ गये स्थविर भगवन्तों ने मेघ अनगर को
क्रमशः कालगत देखा, देखकर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग
किया, कायोत्सर्ग करके मेघ अनगर के आचार भांडों-उपकरणों
को ग्रहण किया, विपुल पर्वत से धीरे-धीरे नीचे उतरे, उतरकर
जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे,
वहीं आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार
किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

“आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगर जो प्रकृति से
भद्र-यावत्-विनीत थे वे आप देवानुप्रिय की आज्ञा प्राप्त करके-
अनुमति लेकर गौतम आदि निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थनियों से क्षमा
याचना कर, हमारे साथ धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढ़े स्वयं
ही सधन मेघ सदृश कृष्ण वर्ण वाली पृथ्वी शिला की प्रतिलेखना
की, भक्तपान का प्रत्याख्यान किया, और-अनुक्रम से काल धर्म
को प्राप्त हुए हैं ।

“हे देवानुप्रिय ! यह मेघ अनगर के आचार-भांड-उपकरण
हैं ।”

गौतम की पृच्छा-भगवान का उत्तर—

३७५. ‘भगवन् !’ इस प्रकार कहकर भगवान गौतम श्रमण
भगवान महावीर की वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार
करके इस प्रकार बोले—

२२. महावीरतित्थे मकाइआई समणा

२२ महावीर तीर्थ में मकाई आदि श्रमण

संगहणी-गाहा—

३७७. १. मकाइ २. किकिमे चैव, ३. मोत्तरपाणी य ४. कासवे ।
 ५. खेमए ६. घिइहरे चैव, ७. केलासे ८. हरिचंदणे ॥१॥
 ९. वारत्त १०. सुदंसणं ११. पुण्णभद्द तह १२. सुमणभद्द
 १३. सुपइट्ठे । १४. मेहे १५. ऽत्तिमुत्त १६. अलक्के,
 अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

मकाई समणे किकिमे य—

३७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिह नयरे । गुणसिलए
 चेइए । सेणिए राया ।

तत्थ णं मकाइ नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे-जाव
 अपरिभूए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिकरे
 गुणसिलए-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । परिसा
 निग्गया ।

तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धइ जहा
 पण्णत्तोए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंवे ठवेत्ता पुरिस-
 सहस्स-वाहिणीए सीयाए निक्खंते-जाव-अणगारे जाएइरिया-
 समिए ।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स
 तहाक्खवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं
 अहिज्जइ । सेसं जहा खंदगस्स गुणरयणं तवोकम्मं । सोलसवा-
 साइं परियाओ । तहेव विउले सिद्धे ।

३७९. किकिमे वि एवं चैव-जाव-विउले सिद्धे ।

अंत—व० ६, अ० १, २ ।

संग्रहणी गाथा—

३७७. १ मकाई, २ किकिम, ३ मुद्गराणि ४ कायवप ५
 क्षेपक ६ धृतिघर ७ कैलाश ८ हरिचंदन ९ वारत्त १० मुद्गंन
 ११ पूर्णभद्र १२ सुमनोभद्र १३ सुप्रतिष्ठ १४ मेघ १५ अतिमुक्त
 १६ अलक्ष ये सोलह अध्ययन हैं ।

मकाई श्रमण और किकिम—

३७८. उस काल, उस समय में राजगृह नगर था, गुणशिलक
 चैत्य था, श्रेणिक राजा था ।

उस नगर में मकाई नामक एक गृहपति रहता था—
 जो अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत था, अर्थात् उसका
 कोई पराभव नहीं कर सकता था ।

उस काल और उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण
 भगवान महावीर का गुणशिलक चैत्य में पदार्पण हुआ-यावत्-
 संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने
 लगे, परिपद् दर्शनार्थ निकली ।

तत्पश्चात् मकाई गाथापति इस बात को सुनकर गंगदत्त के
 वर्णन के समान (व्याख्या प्रज्ञप्ति के अनुसार) यह भी ज्येष्ठ पुत्र
 को कुटुम्ब का भार सौंपकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका में बैठकर
 निकला-यावत्-अनभार हो गया—ईर्ष्यासमिति आदि से युक्त ।

तत्पश्चात् मकाई अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के
 तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों
 का अध्ययन किया । शेष स्कन्दक के समान, गुणरत्न तपःकर्म
 का आराधन किया । सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन
 किया और अन्त में स्कन्दक के समान विपुलाचल पर सिद्ध
 हुए ।

३७९. किकिम भी इसी प्रकार प्रव्रजित हुए-यावत्-विपुल पर्वत
 पर सिद्ध हुए ।



तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहि पुप्फोहं कज्जं इति कट्टु पच्चसकालसमयसि बंधुमईए भारियाए सद्धि पच्छियपिडयाइं गेण्हइ, गेण्हत्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ ।

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ, पत्थियं भरेइ, भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ ।

तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाणं पासति, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—
“एस णं देवाणुप्पिया, अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि इहं हव्वमागच्छइ । तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अहं अज्जुणयं मालागारं अवओडय-बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए” ति कट्टु एयमट्ठुं अण्णमण्णस्स पडिसुणेति, पडिसुणेत्ता क्वाडंतरेसु निलुक्कंति, निच्चला निपफंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, आलोए पणामं करेइ, मह्रिहं पुप्फुच्चयं करेइ, जण्णुपायपडिए पणामं करेइ ।

तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स क्वाडंतरेहितो निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति, गेण्हत्ता अवओडय-बंधणं करेति । बंधुमईए मालागारीए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

अज्जुणस्स चित्ता तस्स सरीरे मोग्गरपाणिपवेसो य—

३८३. तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—“एवं खलु अहं वालप्पभिइं चैव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकर्ल्लि-जाव-पुप्फुच्चयं करेमि, जण्णुपायपडिए पणामं करेमि, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्ति कप्पे-माणे विहरामि । तं जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होंते,

तत्पश्चात् उस अर्जुन मालाकार ने सोचा कि कल बहुत अधिक फूलों की मांग—बिक्री होगी, ऐसा सोचकर प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व बंधुमती भार्या को साथ लेकर बास की टोकरी ली, लेकर अपने घर से निकला, निकलकर राजशुह नगर के बीचोंबीच से चलता हुआ निकला, निकलकर जहां पुष्पाराम था, वहां आया, आकर बन्धुमती भार्या के साथ पुष्प चयन करता है ।

तत्पश्चात् उस ललिता गोष्ठी के छह गोष्ठीक पुरुष जहां मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहां आये और हास-परिहास, क्रीड़ा आदि करने लगे ।

तत्पश्चात् बन्धुमती भार्या के साथ उस अर्जुन मालाकार ने पुष्प चयन किया, पिटारी भरी, भरकर अग्रणी श्रेष्ठ पुष्प लेकर जहां मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था, वहां आया ।

तत्पश्चात् उन छह गोष्ठीक पुरुषों ने बन्धुमती भार्या के साथ अर्जुनमालाकार को आते हुए देखा, देखकर आपस में इस प्रकार बोले—“हे देवानुप्रियो ! यह अर्जुन मालाकार बन्धुमती भार्या के साथ यहां शीघ्र आ रहा है । अतः हे देवानुप्रियो ! हमारे लिये यह आनन्दप्रद होगा कि अर्जुन मालाकार को उल्टी मुश्कों से बांधकर बन्धुमती भार्या के साथ त्रिपुल भोगों को भोगते हुए विचरण करें । इस प्रकार विचार कर परस्पर एक दूसरे की बात सुनी, सुनकर किवाड़ों के पीछे छिप गये, विलकुल चुपचाप, अचल, स्पन्दन, रहित होकर छिपकर बैठ गये ।

तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार बंधुमती भार्या के साथ यक्ष प्रतिमा को देख प्रणाम करता है, श्रंठ उत्तम पुष्पों से अर्चना की और घुटनों व पैरों को नमित कर प्रणाम किया ।

तब वे छह गोष्ठीक पुरुष जल्दी-जल्दी किवाड़ों के पीछे से निकले, निकलकर अर्जुन मालाकार को पकड़ लिया, पकड़कर उल्टी मुश्कों से बांधा, बंधुमती मालाकारी (मालिनी) के साथ अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हुए विचरने लगे ।

अर्जुन को चिन्ता और उसके शरीर में मुद्गरपाणि का प्रवेश—

३८३. उस समय उस अर्जुनमालाकार के मन में यह विचार-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—बचपन से ही मैं मुद्गरपाणि भगवान की प्रतिदिन-यावत्-पुष्पार्चन करता हूँ, घुटनों और पैरों को नमित कर प्रणाम करता हूँ, उसके बाद राजमार्ग पर आजी-विका करता आ रहा हूँ । अतः यदि मुद्गरपाणि यक्ष यहां

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह
महापहपहेसु बहुजणो अणमणस्स एवमाइक्खइ-जाव-किमंग पुण
विपुलस्स अट्टस्स गहणयाए ?

सुदंसणस्स वंदणट्ठं गसणं—

३८६. तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं सोच्चा
निसम्म अयं अज्जत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-
ज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ । तं
गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता
जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-
परिगग्हियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु एवं
वयासी—“एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे-जाव-
विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि
सक्कारेनि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि ।”

तए णं सुदंसणं सेट्ठि अम्मापियरो एवं वयासी—“एवं खलु
पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे
समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लि वड्हिया
इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुमं
पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव
सरीरयस्स वावत्ती भविसइ । तुमणं इहगए चेव समणं भगवं
महावीरं वंदहि ।”

तए णं से सुदंसणे सेट्ठि अम्मापियरं एवं वयासी—“किण्णं अहं
अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं-जाव-इहगए चेव
वंदिससामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुवमेहि अब्भ-
णुग्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदए ।”

तए णं सुदंसणं सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति वड्हि
आघवणाहि पणवणाहि सणवणाहि विणवणाहि पळ्वणाहि
आघवेत्तए पणवेत्तए सणवेत्तए विणवेत्तए पळ्वेत्तए ताहे एवं
वयासी—“अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।”

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहि अब्भणुग्णाए समाणे ण्हाए
सुप्पावेत्ताइ मंगलत्ताइ वत्थाइ पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणा-
त्तंरुपसरारे सयाओ गिहाओ पडिगिन्वमड, पडिगिक्खमित्ता

तव राजगृह नगर के शृंगटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों,
चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बहुत से मनुष्य परस्पर एक
दूसरे से इस प्रकार कहने लगे-यावत्-उनके दर्शन और प्ररूपित
धर्म के विपुल अर्थ ग्रहण के लाभ का तो कहना ही क्या है ?

सुदर्शन का वंदनार्थ गमन—

३८६. तव बहुत से व्यक्तियों से इस वृत्तान्त को सुनकर और
समझकर सुदर्शन के मन में यह अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित,
संकल्प उत्पन्न हुआ—इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर-यावत्-
विचरण कर रहे हैं । अतः मैं श्रमण भगवान महावीर की वंदना
करने के लिये जाऊँ—इस प्रकार का विचार किया, विचार
करके जहाँ माता पिता थे, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़
सिर पर आवर्त कर और अंजलि करके इस प्रकार बोला—
'हे माता पिता ! श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण
करते हैं । इसलिये मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वंदना
करूँ, नमस्कार करूँ, सत्कार सम्मान करूँ और कल्याण रूप,
मंगलकारक देव एवं चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूँ, ऐसी
मेरी इच्छा है ।'

तत्पश्चात् माता पिता ने सुदर्शन सेठ से इस प्रकार कहा—
'हे पुत्र ! मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर अर्जुन मालाकार
राजगृह नगर के बाहर चारों तरफ प्रतिदिन सातवीं स्त्री सहित
छह पुरुषों को मारता हुआ घूम रहा है । इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण
भगवान को वंदन करने बाहर मत जाओ अन्यथा तुम्हारे शरीर
की हानि हो जायेगी अतः तुम यहाँ रहकर ही श्रमण भगवान
महावीर को वंदना कर लो ।'

तव सुदर्शन सेठ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-
पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहां पधारे हैं-यावत्-यहां
से ही कैसे वंदना करूँ ? इसलिये हे माता पिता ! आपकी
आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके जाना
चाहता हूँ ।'

तदनन्तर माता पिता जब-उस सुदर्शन सेठ को अनेक प्रकार
की युक्तियों, प्ररूपणाओं, संज्ञाप्तियों, निवेदन और प्रतिपादन
द्वारा कथन करने में, प्ररूपित करने में, ज्ञान कराने में, निवेदन
करने में और प्रतिपादित करने में समर्थ नहीं हो सके तब इस
प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, परन्तु
विलम्ब मत करो ।'

तत्पश्चात् माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने
स्नान किया, धर्म स्थान में जाने योग्य शुद्ध, मंगल रूप, उत्तम
वस्त्र धारण किये और अल्प किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर

पायविहारचारेणं रायगिहं नगरं मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरत्तामतेणं जेणेव गुणस्सिए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सुदसणस्स अज्जुणकय-उवमगो—

३८७. तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुवंसणं समणोवासयं अदूरत्तामतेणं धीईवयमाणं-धोईययमाणं पासट, पासित्ता आसुरत्ते-जाव-मित्तिमित्तोमाणे तं पल्लसहस्सणिष्फणं अबोधयं मोग्गरं उल्लासे-माणे-उल्लासेमाणे जेणेव सुवंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए ण से सुवंसणे समणोवासए मोग्गरपाणि जक्खं एज्जमाण पासट, पासित्ता अधोए अत्तथे अणुत्थिग्गे अब्बुत्थिए अच्चलिए असंभंते वत्थंतेणं भूमि पमज्जइ, पमज्जित्ता करयत्तपरिग्गहिय वत्तणहं सिरत्तायत्तं मत्थए अंजलि कट्टं एवं वयातां—

‘नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगदनामपेज्जं ठाणं संपत्ताण ।’

‘नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगद-नामपेज्जं ठाणं संराविकामस्स ।’

‘पुत्थि वि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पूत्तए पाणाइयाए पच्चवयाए जावज्जीयाए, पूत्तए मुत्तायाए पच्चवयाए जावज्जीयाए, पूत्तए अविष्णायाणे पच्चवयाए जाव-ज्जीयाए, सत्तारसंतोसे कए जावज्जीयाए, इच्छापदिमाणे कए जावज्जीयाए । तं इदाणि वि णं मत्तेव अंतिय मत्थं पाणाइयायं पच्चवयामि जावज्जीयाए, मुत्तायायं जइत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं पच्चवयामि जावज्जीयाए, मत्थं कोहं-जाव-सिद्धिगदंमत्तवत्त पच्चवयामि जावज्जीयाए, मत्थं जत्तणं पाव प्पइत्तं सइमं चउत्तिह वि जाहारे पच्चवयामि जावज्जीयाए । अइ णं एत्तो उवत्तावाओ मुत्थिस्सामि तो मे वप्पइ पारेत्तए । ज्जणं एत्तो उवत्तावाओ न मुत्थिस्सामि तो मे महा पच्चवयाए खेरं नि खइत्तं तागारे पोट्ठं परिग्गइइ ।’

को अर्चन करके अरने पर ने निवत्ता, सिद्धिगद नामपेज्जं होइए राजगृह नगर के मध्य में सोना हुआ निवत्ता, निवत्तकर मुद्गरपाणि यक्ष के यथाकाल के पास में सोना हुआ यक्ष गुणनिवत्त चैत्य था, जहा अमण भगवान महावीर विराज रहे थे, उन ओर जाने के लिए उचित हुआ ।

मुद्गर्जन हो अर्चु नकुन उवत्तणं -

३८७. तत्पञ्चान् उम मुद्गरपाणि यक्ष ने मुद्गर्जन अमर्षोपासक को नभीप से ही जाते हुए देखा, देखकर भीष्मानुभूति का वर-मिनिमिवाते हुए उम हजार पल भार वाले भीष्मम मुद्गर की पुमाते-पुमाते हुए जहा मुद्गर्जन अमर्षोपासक था, उन्ही ओर जाने के लिये उचित हुआ ।

तव मुद्गर्जन अमर्षोपासक ने मुद्गरपाणि यक्ष की ओर हुए देखा, देखकर निर्भय, प्राम, उद्योग पूरा भीष्म रहित ही, बिना किसी चंचलता और हड़बड़ी के भूमि का प्रमांजन किया, प्रमांजन करके सोनी राय जोइ नामपेज्जं था, मत्तक पर अर्चन करके उन प्रकार का—

‘नमस्कार हो अमण भगवान महावीर को-व महावीरसिद्धिगद नामक स्थान की प्राप्ति सिद्ध भगवन्तो की नमस्कार हो ।’

‘नमस्कार हो ।’ अमण भगवान महावीर जा-वाव-सिद्धिगदनामक स्थान की प्राप्ति करने वाली की

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-त्तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह
महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-किमंग पुण
विपुलस्स अट्टस्स गहणयाए ?

सुदंसणस्स वंदणट्ठं गमणं—

३८६. तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयं सोच्चा
निसम्म अयं अज्झत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्प-
ज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे-जाव-विहरइ । तं
गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता
जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-
परिगमहिंयं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं
वयासी—“एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे-जाव-
विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि
सत्कारेनि सम्माणेनि कल्लाणं मंगलं देवयं च्छेइयं पज्जुवासांमि ।”

तए णं सुदंसणं सेट्ठि अम्मापियरो एवं वयासी—“एवं खलु
पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे मोग्गपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे
समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरत्तेणं कल्लकल्लि बहिया
इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुमं
पुत्ता ! समणं भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव
सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । तुमणं इहगए चेव समणं भगवं
महावीरं वंदाहि ।”

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी—“किण्णं अहं
अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं-जाव-इहगए चेव
वंदिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुव्भोहि अब्भ-
णुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदए ।”

तए णं सुदंसणं सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो संचाएत्ति व्हहिं
आघवणाहि पण्णवणाहि सण्णवणाहि विण्णवणाहि पळ्वणाहि
आघवेत्तए पण्णवेत्तए सण्णवेत्तए विण्णवेत्तए पळ्वेत्तए ताहे एवं
वयासी—“अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।”

तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहि अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए
सुट्ठपावेत्ताइं गंगल्लाइ वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणा-
लंक्रियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिगिक्खमित्ता

तव राजगृह नगर के शृंगटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों,
चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बहुत से मनुष्य परस्पर एक
दूसरे से इस प्रकार कहने लगे-यावत्-उनके दर्शन और प्ररूपित
धर्म के विपुल अर्थ ग्रहण के लाभ का तो कहना ही क्या है ?

सुदर्शन का वंदनार्थ गमन—

३८६. तव बहुत से व्यक्तियों से इस वृत्तान्त को सुनकर और
समझकर सुदर्शन के मन में यह अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित,
संकल्प उत्पन्न हुआ—इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर-यावत्-
विचरण कर रहे हैं । अतः मैं श्रमण भगवान महावीर की वंदना
करने के लिये जाऊँ—इस प्रकार का विचार किया, विचार
करके जहाँ माता पिता थे, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़
सिर पर आवर्त कर और अंजलि करके इस प्रकार बोला—
'हे माता पिता ! श्रमण भगवान महावीर-यावत्-विचरण
करते हैं । इसलिये मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वंदना
करूँ, नमस्कार करूँ, सत्कार सम्मान करूँ और कल्याण रूप,
मंगलकारक देव एवं चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूँ, ऐसी
मेरी इच्छा है ।'

तत्पश्चात् माता पिता ने सुदर्शन सेठ से इस प्रकार कहा—
'हे पुत्र ! मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर अर्जुन मालाकार
राजगृह नगर के बाहर चारों तरफ प्रतिदिन सातवीं स्त्री सहित
छह पुरुषों को मारता हुआ घूम रहा है । इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण
भगवान को वंदन करने बाहर मत जाओ अन्यथा तुम्हारे शरीर
की हानि हो जायेगी अतः तुम यहाँ रहकर ही श्रमण भगवान
महावीर को वंदना कर लो ।'

तव सुदर्शन सेठ ने माता पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-
पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ पधारे हैं-यावत्-यहाँ
से ही कैसे वंदना करूँ ? इसलिये हे माता पिता ! आपकी
आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके जाना
चाहता हूँ ।'

तदनन्तर माता पिता जब-उस सुदर्शन सेठ को अनेक प्रकार
की युक्तियों, प्ररूपणाओं, संज्ञप्तियों, निवेदन और प्रतिपादन
द्वारा कथन करने में, प्ररूपित करने में, ज्ञान कराने में, निवेदन
करने में और प्रतिपादित करने में समर्थ नहीं हो सके तब इस
प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, परन्तु
विलम्ब मत करो ।'

तत्पश्चात् माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर सुदर्शन सेठ ने
स्नान किया, धर्म स्थान में जाने योग्य शुद्ध, मंगल रूप, उत्तम
वस्त्र धारण किये और अल्प किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर

पायविहारचारेणं रायगिहं नगरं मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता भोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सुदंसणस्स अज्जुणकय-उवसग्गो—

३८७. तए णं से भोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूर-त्तामतेणं वीईवयमाणं-वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फणं अओमयं भोग्गरं उल्लाले-माणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए भोग्गरपाणि जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुम्भिए अचल्लिए असंभंते वत्थंतेणं भूमि पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहिंयं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

‘नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं ।’

‘नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगइ-नामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स ।’

‘पुंवि पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए अदिग्गणादाणे पच्चक्खाए जाव-ज्जीवाए, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापारिमाणे कए जावज्जीवाए । तं इदाणि पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावायं अदत्तादाणं मेहणं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं-जाव-मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खइमं ताइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए । जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए । अहणं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तो मे तथा पच्चक्खाए चेव’ ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ ।

तए णं से भोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्सणिप्फणं अओमयं भोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए । नो चेव णं संचःएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयत्ता सममिपडित्तए ।

को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर पैदल चलते हुए राजगृह नगर के मध्य में होता हुआ निकला, निकलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के पास से होता हुआ जहां गुणशिलक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, उस ओर जाने के लिये उद्यत हुआ ।

सुदर्शन को अर्जुनकृत उपसर्ग -

३८७. तत्पश्चात् उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो यावत्-मिसमिसाते हुए उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को घुमाते-घुमाते हुए जहां सुदर्शन श्रमणोपासक था, उसी ओर आने के लिये उद्यत हुआ ।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने मुद्गरपाणि यक्ष को आते हुए देखा, देखकर निर्भय, त्रास, उद्वेग एवं क्षोभ रहित हो, बिना किसी चंचलता और हड़बड़ी के भूमि का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो, मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा—

‘नमस्कार हो श्रमण भगवान महावीर को-यावत्-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो ।’

‘नमस्कार हो ।’ श्रमण भगवान महावीर को-यावत्-सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को

‘पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान कर लिया है, स्थूल मृषावाद का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान कर लिया है, यावज्जीवन के लिये स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया है, यावज्जीवन के लिये स्वदार संतोष व्रत ग्रहण किया है, इच्छा परिमाण व्रत यावज्जीवन के लिए स्वीकार कर लिया है तो भी अब यहां यावज्जीवन के लिये सर्वथा प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, मृषावाद, अदत्तादान, मंथुन, परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ, सर्वथा क्रोध-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ, मैं जीवन पर्यन्त के लिये सर्वप्रकार के अशन, पान, चाय और स्वाद्य चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ । यदि इस उपसर्ग से मुक्त होऊँ तो मुझे पारणा करना कल्पता है । यदि इन उपसर्ग से मुक्त नहीं होऊँ तो मुझे इस प्रकार का प्रत्याख्यान है’ ऐसा विचार कर सागारी पडिमा (अनशन व्रत) धारण कर ली ।

तदनन्तर वह मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल भार वाले लोहे के मुद्गर को घुमाता-घुमाता जहां पर सुदर्शन श्रमणोपासक था, वही आया । तो भी वह सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से किसी भी प्रकार विचलित करने में सफल नहीं हुआ ।

उवसग्गनिवारण—

३८८. तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सच्चओ समंता परिघोलेमाणे-परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाइए सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणो वासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिंसि ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुच्चिरं निरिक्खइ निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फणं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहि निवडिगए ।

तए णं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्ठु पडिंमं पारेइ ।

सुदंसणस्स अज्जुणस्स य भगवओ पज्जुवासणा—

३८९. तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—

'तुवमे णं देवानुप्पिया ! के कर्हि वा संपत्थिया ?'

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

'एवं खलु देवानुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए— अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए ।'

तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासय एवं वयासी—

'तं इच्छामि णं देवानुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए-जाव-पज्जुवासित्तए ।'

'अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।'

तए णं सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेय गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिवयुतो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ-जाव-पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहात्थियाए परिसाए मग्गमए विचित्तं धम्ममादइएइ । सुदंसणे पडिगए ।

उपसर्ग निवारण—

३८८. तत्पश्चात् वह मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक के चारों ओर घूमते हुए भी जब सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से पराजित नहीं कर सका तब सुदर्शन श्रमणोपासक के आगे सप्रतिपक्ष दिशा में (सामने) खड़े होकर सुदर्शन श्रमणोपासक को अनिमेष दृष्टि से चिरकाल तक देखता रहा, देखकर अर्जुनमालाकार के शरीर को छोड़ दिया, छोड़कर उस सहस्रपल निष्पन्न लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया ।

तदनन्तर वह अर्जुन मालाकार मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होने पर 'धम्' ऐसी आवाज के साथ भूमि पर सर्वांग से गिर पड़ा ।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को निरूपसर्ग जानकर अपनी पडिमा का पारणा किया-पडिमा पूर्ण की ।

सुदर्शन और अर्जुन द्वारा भगवान की पर्युपासना—

३८९. तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार मुहुत्तं भर के पश्चात्-कुछ क्षणों के बाद आश्वस्थ-स्वस्थ होकर उठा, उठकर सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रिय ! आप कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं ?'

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुनमालाकार से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मैं जीवाजीवादि का जानने वाला सुदर्शन नामक श्रमणोपासक गुणशिलक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करने जा रहा हूँ ।'

तब अर्जुनमालाकार ने सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान् महावीर को वंदन करने-यावत्-सेवा करने के लिये चलना चाहता हूँ ।'

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।'

इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमालाकार के साथ जहाँ गुणशिलक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजो थे, वहाँ आया, आकर अर्जुन मालाकार के साथ श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है, वंदना-नमस्कार करता है; -यावत्-पर्युपासना करता है ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमालाकार और उस विशाल परिपदा के सम्मुख विचित्र धर्म का उपदेश दिया । सुदर्शन वापस लौट गया ।

अज्जुणस्स पव्वज्जा—

३६०. तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

“सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्टेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं !”

“अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि ।”

तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्टिय लोयं करेइ, करेत्ता-जाव-अणगारे जाए, से णं वासीचंदणकप्पे समतिणमणि-लेट्ठकंचणे समसुहदुक्खे इहलोग-परलोग-अप्पडिवद्धे जीविय-मरण-निरवकंचे संसारपारगामी कम्मनिग्घायणट्टाए एवं च णं विहरइ ।

अज्जुणअणगारस्स तित्तिक्खा—

३६१. तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चैव दिवसं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तं चैव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता इमं एयाख्वं अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ से जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिविखत्तेणं तवोकम्मणेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयाख्वं अभिग्गहं ओगेण्हइ, ओगेण्हत्ता जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिविखत्तेणं तवोकम्मणेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठुक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए तज्झायं करेइ, वीयाए पोरिसीए ज्ञाणं ज्ञियाइ, तइयाए पोरिसीए जहा गोयमत्तामी-जाव-रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणत्त भिक्खायरियं अडइ ।

तए णं तं अज्जुणयं रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणत्त भिक्खायरियाए अडनाणं बह्वे इत्थीओ य पुरत्ता य उहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—“इमेण मे पिता मारिए । इमेण मे माता मारिया । इमेण मे भाया

अर्जुन की प्रव्रज्या—

३६०. उसके वाद वह अर्जुन मालाकार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवणकर एवं समझकर हर्षित और संतुष्ट होता हुआ श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा —

हे भगवन् ! मैं निग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, हे भगवन् ! निग्रन्थ प्रवचन पर विश्वास करता हूँ, हे भदन्त ! निग्रन्थ प्रवचन पर रुचि रखता हूँ और हे भदन्त ! निग्रन्थ प्रवचन का सत्कार-सम्मान करता हूँ—सत्कार करने के लिये उद्यत हूँ ।’ (व्रत लेना चाहता हूँ)

‘हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध-विलम्ब मत करो ।’

तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में गया, जाकर स्वयं ही पंचमुष्टिक केश लोच करता है, लोच करके यावत् अनगार हो गया और वसूले से छीले जाने पर भी सुगंध देने वाले चंदन के समान, तृण-मणि-लोष्ठ-कचन में सम, सुख-दुःख में तटस्थ, इहलोक-परलोक में आसक्ति रहित, जीवन-मरण के प्रति निस्पृह संसार पारगामी और कर्म विनाश के लिये उद्यत होकर विचरता है ।

अर्जुन अनगार की तित्तिका—

३६१. तत्पश्चात् उस अर्जुन अनगार ने जिस दिन मुण्डित होकर गृहत्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार का यह अभिग्रह-स्वीकार किया—आज से मुझे यावज्जीवन के लिये निरंतर पट्ट भक्त-पट्ट भक्त की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करना कल्पता है, यह मन में विचार कर इस प्रकार का अभिग्रह लेता है, अभिग्रह लेकर जीवन पर्वन्त के लिये निरन्तर पट्ट-पट्ट भक्त तपोकर्म द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता है ।

तत्पश्चात् वह अर्जुन अनगार पट्ट भक्त तप के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करता है, दूसरे प्रहर में ध्यान करता है, तीसरे प्रहर में गौतम स्वामी के समान-यावत्-राजगृह नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में छह समुदान भिक्षा के लिये अटन-ध्रमण करता है ।

तत्पश्चात् अर्जुन अनगार को राजगृह नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में छह समुदान भिक्षाचर्या के लिये ध्रमण करते हुए देख बहुत सी स्त्रियां, पुरुष, बच्चे, बूढ़े-बड़े और पुद्गल इन प्रकार कहते हैं—‘इनने मेरे पिता को मारा है । इनने मेरी माया को

भगिणी भज्जा पुत्त धूया सुण्हा मारिया । इमेण मे अण्णयरे सयण-
सवधि परियणे मारिए' ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइआ
हीलंति निदंति खिसंति गरिहंति तज्जति तालेति ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहि बहूहि इत्थोहि य पुरिसेहि
य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे-जाव-
तालेज्जमाणे तेसि मणसा वि अपउस्समाणे सम्मं सहइ सम्मं खमइ
सम्मं तित्तिक्खइ सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे सम्मं खममाणे
सम्मं तित्तिक्खमाणे सम्मं अहियासेमाणे रायगिहे नधरे उच्च-
णीय-मज्झिम-कुलाइं अडमाणे जड भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ,
अह पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ ।

तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे
अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ
नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए
जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए
पडिक्कनेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेत्तणं आलोएइ, आलोएत्ता
भत्तपागं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं
अव्वमणुणाए तमाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगट्ठिए अणज्झोववण्णे
विलमिव पण्णग-भूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।

३६२. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ
पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

अज्जुणअणगारस्स सिद्धी—

३६३. तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं
पग्गिणं महाणुभागेणं तवोक्कमेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे
छन्मत्ते सामणपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अट्ठमातियाए
संतेहणाए अप्पाणं झूत्तेइ, झूत्तेत्ता तीसं भत्ताई अणत्तणाए छेदेइ,
छेदेत्ता जस्सट्ठाए कोरड नग्गभावे-जाव-सिद्धे ।

मारा है । इसने मेरी भार्या, बहिन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू को मारा
है । इसने मेरे दूमरे दूर व निकट के स्वजन, सम्बन्धी परिचित
को मारा है ।' ऐसा कहकर कोई क्रोधित होते हैं—गाली देते
हैं, कोई हीलना करते हैं, निन्दा करते हैं, खीजते हैं, गर्हा करते हैं,
तर्जना करते हैं और ताड़ना देते हैं ।

तब वह अर्जुन अनगार उन बहुत सी स्त्रियों, पुरुषों,
वालकों बड़े-बूढ़ों और युवकों द्वारा तिरस्कृत-यावत् ताड़ित होने
पर भी उन पर मन से द्वेष नहीं करता हुआ सम्यक् प्रकार से
सहन करता है, क्षमा करता है, सहिष्णुता रखता है और झेलता
है—अनुभव करता है, और सम्यक् प्रकार से सहते, क्षमा करते,
तित्तिका रखते और झेलते हुए राजगृह नगर के उच्च, नीच
मध्यम कुलों में भ्रमण करते हुए उसे यदि कहीं भोजन मिलता
तो पानी नहीं मिलता, पानी मिलता तो भोजन नहीं
मिलता ।

तब वह अर्जुन अनगार अदीन, खिन्न न होकर, मलिनमन न
होकर अनाविल-अकलुषित, विपादरहित होकर, खेद रहित
होकर योगी की तरह भ्रमण करते हैं, भ्रमण करके राजगृह नगर
से निकलते हैं, निकलकर जहां गुणशिलक चैत्य है, जहां श्रमण
भगवान महावीर विराजते हैं, वहाँ आते हैं, आकर श्रमण
भगवान महावीर से कुछ दूर पर गमनागमन का प्रतिक्रमण करते
हैं, प्रतिक्रमण करके एषण-अनेपण-गवेषणा अगवेषणा सम्बन्धी
आलोचना करते हैं, आलोचना करके आहार-पानी दिखाते हैं,
दिखाकर श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा प्राप्त कर मूच्छारहित,
गृद्धिरहित, आसक्तिरहित और उदासीन होकर विल में जैसे सर्प
सीधा प्रवेश करता है, उसी तरह की भावनापूर्वक उस आहार
को खा लेते हैं ।

३६२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर अन्यदा-अन्य किसी
दिन राजगृह से निकलते हैं और निकलकर बाहर जनपदों में
विहार करते हैं ।

अर्जुन अनगार की सिद्धि—

३६३. तत्पश्चात् अर्जुन अनगार ने उस उदार, श्रेष्ठ, प्रयत्न
पूर्वक ग्रहण किये हुए श्रेष्ठ सामर्थ्य संपन्न तपःकर्म से आत्मा को
भावित करते हुए, शुद्ध करते हुए कुछ अधिक छह मास श्रमण
पर्याय पालन किया, पालन करके आधे मास की संलेखना से
आत्मा की आराधना की, आराधना करके तीस भक्तों को अनशन
द्वारा छेदा, छेदकर जिस प्रयोजन के लिये नग्न भाव ग्रहण किया
था-यावत्-सिद्ध हो गये ।

३४. महावीरतित्थे कासवाई समणा

२४ महावीर तीर्थ में काश्यपादि श्रमण

३६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए ।
सेणिए राया । कासवे नामं गाहावई परिवसइ । जहा मकाई ।
सोलस वासा परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं खेमए वि गाहावई, नवरं—कायंदो नयरी । सोलस
वासा परियाओ । विपुले पव्वए सिद्धे ।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए । सोलस वासा
परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—केलासे वि गाहावई, नवरं—साएए नयरे । वारस
वासाइं परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—हरिचंदणे वि गाहावई साएए नयरे । वारस वासा
परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—वारत्तए वि गाहावई, नवरं—रायगिहे नगरे । वारस
वासा परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—सुदंसणे वि गाहावई, नवरं—वाणिज्यगामे नयरे ।
इइपलासए चेइए । पंच वासा परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—पुणभद्दे वि गाहावई वाणिज्यगामे नयरे । पंचवासा
परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए नयरीए । बहुवासाइं
परियाओ । विपुले सिद्धे ।

एवं—सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए नयरीए । सत्तावीसं
वासा परियाओ । विपुले सिद्धे ॥

एवं—मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे । बहूइं वासाइ
परियाओ । विपुले सिद्धे ।^१

—अंतगड व० ६, ज० ४-१४ ।

३६४. उस काल उस समय में राजगृहनगर, गुणशिलक चैत्य
था । श्रेणिक राजा था । काश्यप नाम का गाथापति वसता था ।
यथा मकाई । सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय । विपुल पर्वत पर
सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—क्षेमक गाथापति भी, विशेष—कांकदी नगरी ।
सोलह वर्ष की दीक्षापर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार धृतिधर गाथापति भी, कांकदी नगरी के
निवासी । सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय । विपुलाचल पर्वत पर
सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—कैलाश गाथापति भी, विशेष—साकेत नगर-
वासी । बारह वर्ष की श्रमण पर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध
हुए ।

इसी प्रकार—हरिचंदन गाथापति भी, साकेतनगर वासी ।
बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—वारत्तगाथापति भी, विशेष—राजगृह नगर-
वासी । बारह वर्ष की श्रमणपर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध
हुए ।

इसी प्रकार—सुदंशन गाथापति, विशेष—वाणिज्य ग्राम-
वासी । द्युतिपलाश चैत्य । पांच वर्ष की श्रमण पर्याय । विपुल
पर्वत पर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—पूर्णभद्र गाथापति भी, वाणिज्यग्राम
नगरवासी । पांच वर्ष की दीक्षा पर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध
हुए ।

इसी प्रकार—सुमनभद्र गाथापति भी, श्रावस्ती नगरी ।
बहुत वर्षों की दीक्षा पर्याय । विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—सुप्रतिष्ठ गाथापति भी, श्रावस्ती नगरी के
निवासी । सत्ताईस वर्ष की दीक्षा पर्याय । विपुल पर्वत पर
सिद्ध हुए ।

इसी प्रकार—मेघ गाथापति भी, राजगृहनगर निवासी ।
बहुत वर्षों की श्रमण पर्याय । विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए ।



१. अश्वत्थकहाणयं १३४-१३५ पुट्टे दुट्ठे । अश्वत्थकहाणयं य १३६ पुट्टे दुट्ठे ।

२५. महावीरतिथे सोणियपुत्ता जाली आइ- समणा

संग्रहणी-गाथा—

३१५. जालि मयालि उवयाली, पुरिससेणे य वारिसेणे य ।
दीहदंते य लट्टदंते य, वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे ॥१॥

जालि-अणगारे—

३१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे-रिद्धित्थिमिय-
समिद्धे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । धारिणी देवी । सीहो
सुमिणे । जाली कुमारो । जहा मेहो । अट्टुओ दाओ ।

तए णं से जालीकुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहि
मुइंगमत्थएहि-जाव-माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

सामी समोसडे । सेणिओ निग्गओ । जहा मेहो तहा जाली
वि निग्गओ । तहेव निक्खंतो जहा मेहो । एक्कारस अंगाई
अहिज्जइ । गुणरयणं तवोकम्मं जहा खंदयस्स । एवं जा चेव
खंदगस्स वत्तच्चया, सा चेव चित्तणा, आपुच्छणा । थेरोंहं सद्धि
विउलं पव्वयं तहेव दुरूहइ, नवरं—सोलस वासाईं सामण्णपरियागं
पाउणइ, पाउणित्ता, कालमासे कालं किच्चा उड्डं चंदिम-सूर-
ग्रहण-नक्खत्त-तारा-रूवाण - सोहमीसाण-माहिंद-वंभ-लंतग
महासुक्क-सहस्साराणय-पाणय-आरणच्चुए कप्पे नव य गेवेज्ज-
विमाणपत्थडे उड्डं दूरं वीईवइत्ता विजयविमाणे देवत्ताए उववण्णे ।

तए णं थेरा भगवंतो जालि अणगारं कालगयं जाणित्ता
परिणिब्बाणवत्तिं काउस्सगं करंति, करेत्ता पत्त-चीवराइं
नेण्हंति । तहेव उत्तरंति-जाव-इमे से आयारभंडए ॥

३१७. भंते ! ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

२५ महावीर तीर्थ में श्रेणिकपुत्र जालि आदि श्रमण

संग्रहणी गाथा—

३१५. १ जालि २ मयालि ३ उपजालि ४ पुरुपसेन ५ वारिसेन ६-
दीर्घदन्त ७ लण्ठदन्त ८ वेहल्ल ९ वेहायस और १० अभय इस
प्रकार कुमारों के नाम हैं ।

जालि अनगार—

३१६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था—जो
ऋद्धि संपन्न, भय रहित और धन धान्य से युक्त था । गुणशिलक-
चैत्य था । श्रेणिक राजा था । धारिणी रानी थी । स्वप्न में
सिंह को देखा । जालिकुमार का जन्म हुआ । जिस प्रकार
मेघ कुमार का वर्णन है । आठ आठ दात आये ।

तत्पश्चात् वह जालिकुमार उत्तम प्रासाद के ऊपर रहकर
मृदंगों आदि की शंकारों पूर्वक-यावत्-मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों
को भोगते हुए—अनुभव करते हुए विचरता है ।

स्वामी (श्रमण भगवान महावीर) पधारे । श्रेणिक वंदना
के लिये निकला । जैसे मेघकुमार वंदनार्थ गया था । उसी प्रकार
जालि भी गया । उसी प्रकार निकला—अर्थात् दीक्षित हुआ—जैसे
मेघकुमार दीक्षित हुआ था । ग्यारह अंगों का अध्ययन किया ।
गुणरत्न तपःकर्म की साधना की, जैसे स्कन्दक मुनि ने की थी ।
इस प्रकार जो कुछ भी स्कन्दक मुनि की वक्तव्यता है, वही यहाँ
जानना चाहिये, उसी तरह की चिन्तना-धर्म-चिन्तना और
भगवान से अनशन व्रत धारण करने की आज्ञा लेना भी समझ
लेना चाहिये । उसी प्रकार स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर
चढ़ता है, विशेष यह है कि सोलह वर्ष तक श्रमण पर्याय का
पालन करता है, पालन कर कालमास में—मृत्यु के समय काल
करके ऊंचे चन्द्र, सूर्य, ग्रहण, नक्षत्र, तारा रूप ज्योतिष्क देवों
तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र,
सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युतकल्प और नव-
श्रैवेयक विमान प्रतरों से ऊपर दूर गमन करके विजय विमान में
देवरूप से उत्पन्न हुआ ।

इसके अनन्तर वे स्थविर भगवन्त जालि अनगार को
कालगत हुआ जानकर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं,
करके पात्र और वस्त्र ग्रहण करते हैं । उसी प्रकार उतरते
हैं—यावत्-ये उसके आचार भांडोपकरण हैं ।

३१७. हे भदन्त ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम श्रमण
भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार
करके इस प्रकार बोले—

“एवं खलु देवानुप्पियाणं अन्तेवासी जाली नामं अणगारे पगइभट्टए-जाव-विणीए । सेणः जाली अणगारे कालगए कहि गए ? कहि उववण्णे ?”

“एवं खलु गोयमा ! ममं अन्तेवासी तहेव जहा खंदयस्स-जाव-कालगए उड्ढं चंदिम-सूर-गहगण-नवखत्त-तारारूवाणं-जाव-विजए विभाणे देवत्ताए उववण्णे ॥”

“जालिस्स णं भन्ते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?”

“गोयमा ! वत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।”

“से णं भन्ते ! ताओ देवलोयाओ आउखएणं भवखएणं ठिइखएणं कहि गच्छिहिइ ! कहि उववज्जिहिइ ?”

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

मयालिपभिइ-समणा—

३६८. एवं सेसाण वि नवहं भाणियव्वं, नवरं-सत्त धारिणिमुआ, वेहल्लवेहायसा चेल्लणाए, अमए नंदाए । सव्वेसि सेणिओ पिआ । अइल्लाणं पंचणं सोलस वासाइं सामण्णपरियाओ । तिहं बारस वासाइं । दोणं पंच वासाइं । आइल्लाणं पंचणं आणुपुव्वीए उववाओ विजए वेजयंते जयंते अपराजिए सव्वट्टसिद्धे । दीहदंते सव्वट्टसिद्धे उवकमेणं सेसा । अमओ विजए । सेसं जहा पदमे ।

—अणुत्त० व० १, अ० १-१० ।

दीहसेणाइ समणा—(संग्रहणी-गाथा)—

३६९. दीहसेणे, महासेणे, लडुदंते य गूढदंते य सुद्धदंते य । हल्ले, दुमे, दुमसेणे, महादुमसेणे य आहिए ॥१॥
सोहे य, सोहसेणे य, महासोहसेणे य आहिए ।
पुण्णसेणे य बोधव्वे, तेरत्तये होइ अज्जवणं ॥२॥

४००. तेणं फालेणं तेणं समएणं रावणिहे नयरे । मुणत्तिए चेइए । तेणिए राया । धारिणी देवी । सोहो मुनिने । जहा जाओ तहा जन्मं यालत्तणं कलाओ, नवरं-दीहसेणे कुमारां, सव्वेय पत्तयया जहा जालिस्स-जाव-अंतं काहिइ ।

‘आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी जालि नामक अनगर प्रकृति से भद्र-यावत्-विनीत था । वह जालि अनगर काल को प्राप्त कर कहां गया है ? कहां उत्पन्न हुआ है ?’

‘हे गौतम ! इस प्रकार निश्चय से मेरा अन्तेवासी उसी प्रकार जैसे स्कन्दक की वक्तव्यता है-यावत्-काल करके ऊंचे चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण नक्षत्र, तारारूप ज्योतिष्क देवों-यावत्-विजय विमान में देवपने उत्पन्न हुआ है ।’

‘हे भदन्त ! जालिदेव की कितने काल की स्थिति प्रतिपादित की है ?’

‘हे गौतम ! वत्तीस सागरोपम की स्थिति प्रतिपादन की है ।’

‘हे भगवन् ! वह जालिदेव आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति क्षय होने पर उस देवलोक से कहां जायेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?’

‘हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्व-दुःखों का अन्त करेगा ।’

मयालिप्रभृति श्रमण—

३६८. इसी प्रकार जेप नौ कुमारों का भी वर्णन जानना चाहिये, विशेष इतना है—सात धारिणी रानी के पुत्र थे और वेहल्ल वेहायस, चेलना के तथा अभय नन्दा के पुत्र थे । सभी के पिता श्रेणिक थे । आदि के पांच ने सोलह वर्ष श्रामण्य पर्याय का पालन किया । तीन ने बारह वर्ष और दो ने पांच वर्ष तक । आदि के पांच की अनुक्रम से विजय, वंजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पत्ति हुई । दीर्घदन्त की सर्वार्थसिद्ध में, जेप कुमारों की उत्क्रम से उत्पत्ति हुई । अभय विजय विमान में उत्पन्न हुए । जेप वर्णन जैसा पूर्व में जालि श्रमण का किया है, उसी प्रकार जानना चाहिये ।

दीर्घसेनादे श्रमण—(संग्रहणी गाथा)—

३६९. १ दीर्घसेन, २ महामेन २ लच्छदन्त ४ गुडदन्त ५ गुडदंते ६ हल्ल ७ द्रुम ८ द्रुमसेन ९ महाद्रुमसेन (जो कपन किया गया है) । १ ।

१० सिद्ध ११ सिद्धसेन और १२ महामिद्धसेन और १३ पुण्यसेन जानना चाहिये, इन तरह तरह अधवचन होते हैं । २ ।

४००. उन काल और उस समय में राजा लु नवर था । दृग्-गितक क्षेत्र था । श्रेणिक राजा था । धारिणी रानी थी । नरत्त में सिद्ध देवा । जैसा जालिकुमार के वर्णन में बताया गया है, उसी प्रकार जयन्त, वंजयन्त, जयन्तों का वर्णन, विशेषतः रानी के किर्षिणी जालिकुमार की वक्तव्यता है, देवी की श्रेणिक कुमार की वक्तव्यता काहि-यावत्-वर्णन करेगा ।

एवं तेरस वि रायगिहे नयरे । सेणिओ पिया । धारिणी माया । तेरसह वि सोलस वासा परियाओ । आणुपुव्वीए विजए दोण्णि, वेजयंते दोण्णि, जयंते दोण्णि, अपराजिए दोण्णि, सेसा महादुमसेणमादी पंच सव्वट्ठसिद्धे ।

—अणुत्त० व, २ अ० १-१३ ।

इसी प्रकार तेरह कुमारों के विषय में जानना चाहिये कि वे राजगृह नगर में उत्पन्न हुए । श्रेणिक पिता थे । माता का नाम धारिणी था । तेरहों की सोलह वर्ष की श्रामण्य पर्याय थी । अनुक्रम से दो विजय में, दो वैजयन्त में, दो जयन्त में, दो अपराजित में और शेष महाद्रुमसेन आदि पांच सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए ।

卐

卐

२६. महावीरतिथे सत्यवाहपुत्ते धण्णे अणगारे

२६ महावीर तीर्थ में सार्थवह पुत्र धन्य अनगार

(संग्रहणी गाहाओ)—

४०१. धण्णे य सुणक्खत्ते य, इसिदासे य आहिए ।
पेल्लए, रामपुत्ते य, चंदिमा पिट्ठिमा इ य ॥१॥
पेढालपुत्ते अणगारे, नवमे पोट्टिले वि य ।
वेहल्ले दसमे वुत्ते, इमे य दस आहिया ॥२॥

धण्णस्स गिह्वासे—

४०२. तेणं कालेणं तेणं ससएणं काकंदी नामं नयरी होत्था—
रिद्धत्थिमियसमिद्धा । सहसंबवणे उज्जाणे सव्वोउय-पुप्फ-फल-
समिद्धे । जियसत्तू राया ।

तथ णं काकंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्यवाही परिवसइ—
अड्ढा-जाव-अपरिभूया । तीसे णं भद्दाए सत्यवाहीए पुत्ते धण्णे
नामं दारए होत्था— अहीणपडिपुण्ण-पंचेदियसरीरे-जाव-सुरूवे ।
पंचधाईपरिग्गहिए जहा महब्बलो-जाव-वावत्तरि कलाओ अहीए-
जाव-अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तए णं सा भद्दा सत्यवाही धण्णं दारयं उम्मुक्कवालभाव-
जाव-अलंभोगसमत्थं वा वि जाणित्ता वत्तीसं पासायवड्डेसए
कारेइ—अवभुग्गयमूत्तिए-जाव-पडिरूवे । तेसि मज्जे एणं च णं
भवणं कारेइ—अणेगखंससयसण्णिविट्ठं-जाव-पडिरूवं ।

(संग्रहणी गाथायें)—

४०१.....१ धन्य, २ सुनक्षत्र ३ ऋषिदास ४ पेल्लक ५ रामपुत्र,
६ चन्दिम ७ पृष्टिम और ८ पेढालपुत्र अनगार ९ पोट्टिल
और १० वेहल्ल नामक ये दस अध्ययन हैं ।

धन्य का गृहवास—

४०२. उस काल और उस समय में काकंदी नामक नगरी
थी—जो ऋद्धियुक्त निर्भय और धन-धान्य समृद्धि से संपन्न थी ।
सब ऋतुओं के पुष्पों और फलों से युक्त सहस्राग्रवन नामक
उद्यान था । राजा का नाम जितशत्रु था ।

उस काकंदी नगरी में भद्दा नाम की सार्थवाहिनी निवास
करती जो ऋद्धि समृद्धि से आद्य-संपन्न-यावत्-अपरिभूत—किसी
से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाली थी । उस भद्दा सार्थवाहिनी
का पुत्र धन्य नामक बालक था—जो अहीन—किसी इन्द्रिय से
भी हीन नहीं, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय एवं शरीरवाला-यावत्-सुरूप
था । पांच धार्यों से परिशुहीत था जैसे महाबल कुमार-यावत्-
वहत्तर कलाओं का अध्ययन किया-यावत्-सब तरह से भोगों का
भोग करने में भी समर्थ हो गया था ।

तत्पश्चात् भद्दा सार्थवाहिनी धन्य बालक को बालकपन से
मुक्त-यावत्-भोगों के उपभोग करने में भी समर्थ जान कर बहुत
विशाल और ऊँचे-यावत्-प्रतिरूप वत्तीस श्रेष्ठ प्रासाद बनवाती
है । उनके मध्य में अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त-यावत्-प्रतिरूप
एक विशाल-बड़ा भवन बनवाया ।

तए णं सा भद्दा सत्यवाही तं घण्णं दारयं वत्तीसाए डम्मवर-
कण्णगणं एगदिवसेणं पाणि गोह्वावेइ । वत्तीसओ दाओ ।

तए णं से घण्णे दारए उरुप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्य-
एहिं-जाव-विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

घण्णस्स पव्वज्जा—

४०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसडे ।
परिसा निग्गया । राया जहा कोणिओ तथा जियसत्तू निग्गओ ।

तए णं तस्स घण्णस्स दारगस्स तं महया जणसहं वा-जाव-
जणसन्निवायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयारूवे
अज्जत्थिए-जाव-संकप्पे समुत्पज्जित्या—किण्णं अज्ज काकंदीए
नयरीए इंदमहे इ वा-जाव-यूममहे इ वा जणं एते वहवे उग्गा
भोगा-जाव-निग्गच्छंति— एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कंचुइपुरिसं सदावेइ,
सदावेत्ता एवं वयासी—“किण्णं देवानुप्पिया ! अज्ज काकंदीए
नयरीए इंदमहे इ वा-जाव-निग्गच्छंति ?”

तए णं से कंचुइपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स आग-
मणगहियविणिच्छए घण्णं दारयं एवं वयासी—“एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! अज्ज समणे भगवं महावीरे काकंदीए नयरीए वहिया
सहसंबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओगहं ओगिण्हत्ता संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तए णं एते वहवे उग्गा भोगा-
जाव-निग्गच्छंति ।”

तए णं से घण्णे दारए कंचुइपुरिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा
निसम्म हट्टुट्ठे-जाव-पायचारेणं जेणेय समणे भगवं महावीरे
तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिसखुत्तो
आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता
तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे घण्णस्स दारयस्स तीसे य
महइन्नहात्थियाए इत्तिपरित्ताए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

४०४. तए णं से घण्णे दारए समणस्स भगवओ महावीरस्स
अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्ठे समणं भगवं महावीर
तिसखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ, वंदित्ता
नमसित्ता एवं वयासी—

उसके बाद उस भद्रा सार्थवाही ने उस धन्यकुमार का इन्ध
सेठों की वत्तीस उत्तम कन्याओं के साथ एक ही दिन में
पाणिग्रहण करवाया ।

वत्तीस दात—दहेज आये । तदनन्तर वह धन्यकुमार
जोर-जोर से वजते हुए मृदंग आदि वाद्यों के नाद से
युक्त उन श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपर-यावत्-विपुल मनुष्य सन्बन्धी
काम-भोगों का अनुभव करते हुए विचरता है ।

धन्य की प्रन्नय्या—

४०३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर का
पदारपण हुआ । परिपदा निकली । राजा जितशयू भी जैसे
कोणिक राजा गया था उसी प्रकार वंदना के लिये गया ।

तदनन्तर उस धन्यकुमार के मन में महान जन-होनाहल-
यावत्-जनसमुदाय को सुनकर और देखकर इस प्रकार का
अधवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—क्या आज काकन्दी नगरी
में इन्द्रमह है अथवा-यावत्-स्तूपमह है अथवा यज्ञ है, जिसमें
ये बहुत से उग्र—भोग कुल के लोग-यावत्-जा रहे हैं—इस प्रकार
का विचार करता है, विचार करके कंचुकी पुरुष को बुलाता है,
बुलाकर उसने इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रिय ! क्या आज
काकन्दी नगरी में इन्द्रमह अथवा-यावत्-जा रहे हैं ?”

तत्पश्चात् उस कंचुकी पुरुष ने जिसको श्रमण भगवान
महावीर के आगमन की निश्चित जानकारी थी, धन्यकुमार
से इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रिय ! आज श्रमण भगवान
महावीर काकन्दी नगरी के बाहर सहस्राग्रवन उद्यान में यथा-
प्रतिरूप अभिग्रह स्वीकार करके नयम तप से आत्मा को भावित
करते हुए विचरते हैं, इसलिये ये बहुत से उग्र भोग कुल के
लोक-यावत्-जा रहे हैं ।”

तदनन्तर वह धन्यकुमार कंचुकी पुरुष से इन अर्थों को
सुनकर और हृदय में धारण कर हापित एवं संतुष्ट हुआ-यावत्-
पंदल चलकर जिस ओर श्रमण भगवान विराजते थे वहाँ ओर
गया, जाकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदर्शना-
प्रदर्शना करता है, प्रदर्शना करके वंदना नमस्कार करता है,
वंदना-नमस्कार करके धिक्क पशुपानना ने पशुपानना
करता है ।

तत्पश्चान् श्रमण भगवान महावीर ने धन्यकुमार और
उस विशाल श्रुति परिपदा को-यावत्-धर्मं कथन किया ।

४०४. इसके बाद वह धन्यकुमार श्रमण भगवान महावीर के
पान धर्म श्रवण कर और नमस्कार हूट हूट ही श्रमण भगवान
महावीर को तीन बार आदर्शना प्रदर्शना करता है, प्रदर्शना
करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इन्द्र
इस प्रकार कहा—

“सद्दहामि णं जंतो ! निग्गंयं पावयणं-जाव-अम्मयं भद्दं सत्यवाहिं आपुच्छामि, तए णं अहं देवानुप्पियाणं अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।”

“अहामुहं देवानुप्पिया ।” जहा जमाली तहा आपुच्छइ ।

तए णं सा भद्दा सत्यवाही तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अम-
णुण्णं अमणासं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म धस त्ति
सव्वंगोहं संनिवडिया । वुत्तपडिवुत्तया जहा महव्वले ।

तए णं धण्णं दारयं भद्दा सत्यवाही जाहे नो संचाएइ-जाव-
जियसत्तुं आपुच्छइ—“इच्छामि णं देवानुप्पिया ! धण्णस्स
दारयस्स निक्खममाणस्स छत्तमउड-चामराओ य विदिन्नाओ ।”

तए णं जियसत्तू राया भद्दं सत्यवाहिं एवं वयासी—

“अच्छाहि णं तुमं देवानुप्पिए ! सुनिव्वृत-वीसत्या, अहण्णं
सयमेव धण्णस्स दारयस्स निक्खमणसक्कारं करिस्सामि ।”

सयमेव जियसत्तू निक्खमणं करेइ, जहा थावच्चापुत्तस्सकण्हो ।

तए णं से धण्णे दारए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ-जाव-
पव्वइए ।

तए णं से धण्णे दारए अणगारे जाए-इरियासमिए भासा-
समिए एसणासमिए आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिए
उच्चारपासवण-खेज-सिघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मणसमिए
वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वइगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्ति-
दिए गुत्तवंमयारी ।

धण्णस्स तवचरिया—

४०५. तए णं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं
वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामि णं जंतो ! तुदंनेहिं अद्वभणुण्णाए समाणे जावज्जी-
वाए छट्ठं छट्ठेणं अणिविखत्तेणं आयंवि्लपरिग्गहिणं तन्नोकम्भेणं
अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए । छट्ठस्स वि य णं पारणयंति कप्पइ
में आयंवि्लं पडिगाहेत्तए, नो चेव णं अणायंवि्लं । तं पि य

‘हे भगवन् ! मैं निग्रंथ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ-यावत्-
माता भद्रा सार्यवाहिनी से आज्ञा ले लूँ, तदनन्तर मैं आप
देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगर प्रव्रज्या
अंगीकार करूँगा ।’

‘हे देवानुप्रिय ! जैसे मुख हो, बसा करो ।’ जैसे जमानों
ने पूछा था, उसी प्रकार पूछना है ।

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्यवाहिनी उन अनिष्ट, अकान्त,
अप्रिय, अमनोज्ञ, अमणाम, अश्रुतपूर्व और कर्कश वचन को
सुनकर और विचार कर धम् करती हुई सर्वांग से जमीन पर
गिर पड़ी । मूर्च्छा टूटने पर माता-पुत्र की इस विषय में बातचीत
हुई, जैसी महाबल कुमार की हुई थी ।

इसके बाद भद्रा सार्यवाहिनी जब धन्यकुमार को समझाने
में समर्थ नहीं हो सकी-यावत्-जितशत्रु से पूछा—‘हे देवानुप्रिय !
निष्क्रमण करने वाले धन्यकुमार के लिये छत्र, मुकुट और चामर
की याचना करती हूँ ।’

तव जितशत्रु राजा ने भद्रा सार्यवाहिनी से इस प्रकार
कहा—

‘हे देवानुप्रिये ! तुम शीघ्र ही शोक मुक्त और आश्वस्त
होओ, आज मैं न्वयं ही धन्यकुमार का निष्क्रमण सत्कार
करूँगा ।’

जितशत्रु स्वयं ही धन्यकुमार का निष्क्रमण समारोह
करता है, जैसे कृष्ण ने थावर्चापुत्र का किया था ।

तत्पश्चात् वह धन्यकुमार स्वयं अपने हाथ से पंचमुष्टिक
केश लोच करता है-यावत्-प्रव्रजित हुआ ।

तव वह धन्यकुमार ईयांसमिति, भाषांसमिति, एषणा
समिति, आदान भंडमत्तनिक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रसवण
खेल सिघाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचन
समिति, कायसमिति से युक्त, मनोगुप्त, वचनगुप्त, कायगुप्त,
गुप्त (अथवा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति से गुप्त) गुप्तेन्द्रिय
और गुप्त ब्रह्मचारी अनगर हो गया ।

धन्य की तपश्चर्या—

४०५. तत्पश्चात् वह धन्य अनगर जिस दिन मुण्डित होकर
गृह त्याग कर अनगर दीक्षा से प्रव्रजित हुआ, उसी दिन श्रमण
भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार
करके उसने इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर आजीवन
के लिये निरन्तर पष्ठ पष्ठतप से आचाम्ल (आयंवि्ल) ग्रहणरूप तप
कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहता हूँ और
पष्ठ तप के पारणे में भी आचाम्ल शुद्ध भोजन ग्रहण करना

४०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंववणाओ उज्जाणाओ पडिणिवखमइ, पडिणिवख-मिक्का वहिया जणववविहारं विहरइ ।

४०८. तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स त्हाह्वानं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से धण्णे अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्टिचम्मवावणद्धे किडिकिडिशाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था । जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भावित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सा-मीति गिलाइ ।

से जहानामए कट्टसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-मंडग-सगडिया इ वा एरंडकट्टसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा उप्पे दिग्गा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव धण्णे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसो-भेमाणे चिट्ठइ ।

धण्णस्स तवजणिय-सरीरलावण्णं—

४०९. धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तव-रूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्कछल्ली इ वा कट्टपाउया इ वा जरग्ग-ओवाहणा इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पाया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे-तवरूव लावण्णे होत्था—

से जहानामए कलसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा तरुणिया छिग्गा उप्पे दिग्गा सुक्का समाणी मिलायमाणी-मिलायमाणी चिट्ठति । एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ लुक्काओ निम्मंसाओ अट्टि-चम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

४०७. उसके बाद अन्यदा कदाचित् श्रमण भगवान महावीर काकंदी नगरी से सहस्राश्रवन से निकलते हैं, निकलकर वाहर जनपद-विहार के लिये विचरण करते हैं ।

४०८. तत्पश्चात् वह धन्य अनगर श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करते संयम और तप द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरता है ।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगर उस श्रेष्ठ विपुल, महान, प्रयत्न-पूर्वक प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलकारक, सश्रीक-शोभायुक्त, उदग्र, उत्तम, उदार, महाफल वाले तपः कर्म से गुष्क, रूक्ष, निर्मास, चर्माच्छादित अस्थिवाला, क्रिटिकिटिकाभूत, क्रय, धमनी जैसा हो गया था । वह आत्मशक्ति के सहारे से चलता था, आत्मशक्ति से ठहरता था, बोलने के बाद वह थक जाता था, बोलते हुए थक जाता था, में बोलूंगा यह सोचकर धिन्न हो जाता था ।

जैसे कोई लकड़ी से भरी गाड़ी, पत्तों से भरी गाड़ी अथवा पत्र, तिल, भांड से भरी गाड़ी अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी अथवा कोयले से भरी गाड़ी सूर्य की उष्णता से सूखकर ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार धन्य अनगर भी ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए ठहरता है, वह तप से उपचित-पुष्ट और मांस शोणित से अवचित-हीन, राख से ढकी हुई हवन की अग्नि के समान तप और तेज से जाज्वल्यमान, तप-तेज श्री से अतीव शोभित होता है ।

धन्य का तप जनित शरीर लावण्य—

४०९. धन्य अनगर के पैरों का इस प्रकार का तपजनित लावण्य हुआ था—

जैसे कि सूखी वृक्ष की छाल हो, लकड़ी की खड़ाऊं हो अथवा जीर्ण जूता हो, इसी प्रकार धन्य अनगर के पैर शुष्क, रूक्ष, निर्मास, अस्थि चर्म और शिराओं के कारण पहिचाने जाते हैं न कि मांस और रधिर से ।

धन्य अनगर के पैरों की अंगुलियों की यहाँ, इस प्रकार की तप जनित सुन्दरता हो गई थी—

जैसे कि कोई कलाय-मटर की फलियां, मूँग की फलियां, उड़द की फलियां कोमल ही तोड़कर धूप में सुखाने से मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगर के पैरों की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, निर्मास और अस्थि, चर्म और शिराओं से पहचानी जाती थीं न कि मांस और शोणित से ।

धण्णस्स णं अणगारस्स जंघाणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-
लावण्णे होत्या—

से जहानामए काकजंघा इ वा कंकजंघा इ वा डेणिया-
लियाजंघा इ वा—एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जंघाओ
सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति,
नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स जाणूणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे
होत्या—

से जहानामए कालिपोरे इ वा मऊरपोरे इ वा, डेणि-
यालियापोरे इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जाणू सुक्का
लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं
मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स ऊरूणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे
होत्या—

से जहानामए सामकरिल्ले इ वा वीरीकरिल्ले इ वा
सत्तइकरिल्ले इ वा सामलिकरिल्ले इ वा तरुणए छिण्णे उण्हे
दिण्णे सुक्के समाने मिलायमाणे मिलायमाणे चिट्ठइ, एवामेव
धण्णस्स अणगारस्स ऊरू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-
छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स कडिपत्तस्स अयमेयाह्वे तव-ह्व-
लावण्णे होत्या—

से जहानामए उट्टपादे इ वा जरगपाए इ वा महिसपाए इ
वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स कडिपत्ते सुक्के लुक्खे निम्मंसे
अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

४१०. धण्णस्स णं अणगारस्स उदर-भायणस्स अयमेयाह्वे तव-
ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए सुक्क-दिए इ वा भउजणवक-भत्ते इ वा कट्ट-
कोलंबए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उदरं सुक्कं लुक्खं
निम्मंसं चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स समुत्तिव कडयाणं अयमेयाह्वे तव-
ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए सामयायो इ वा सामयायो इ वा समुत्तिव
इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स समुत्तिव-कडया सुक्का लुक्खं
निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-
सोणियत्ताए ।

धन्य अनगार की जघाओं का यह इस प्रकार का तप जनित
रूप लावण्य हो गया था—

जैसे काक-जंघा हों, कंक पक्षी की जंघायें हों अथवा
डेणिक पक्षी की जंघायें हों—इसी प्रकार धन्य अनगार
की जंघायें भी शुष्क, रुध, निर्मांस, अन्वि, चर्म और
शिराओं से पहिचानी जाती थी, मांस और रुधिर से नहीं
पहिचानी जाती थी ।

धन्य अनगार के जानुओं—घुटनों का यह इस प्रकार का
तपजनित रूप लावण्य हुआ था—

जैसे कि वे कालि—वनस्पति विशेष के पर्व-गाठ, संधि स्थान
हों, मयूर पर्व हों अथवा डेणिक पक्षी के पर्व हो, इसी प्रकार
धन्य अनगार के जानु शुष्क, रुध, निर्मांस अस्थि चर्म और
शिराओं से पहिचाने जाते थे किन्तु मांस और शोणित से नहीं
जाने जाते थे ।

धन्य अनगार की ऊरूओं का यह इस प्रकार का तपजन्य
रूप लावण्य हुआ था—

जैसे—कोमल प्रियंगुवृक्ष की कोपलें, बेर की कोपलें, शल्यकी
वृक्ष की कोपलें अथवा शाल्मली वृक्ष की कोपलें तोड़कर सूर्य
की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य अन-
गार की उरू (जंघायें) शुष्क, रुध, मांस रहित, अस्थि चर्म
और शिराओं से पहिचानी जाती थी; मांस रुधिर से नहीं
पहचानी जाती थीं ।

धन्य अनगार के कटिपट्ट (कमर) का तपजन्य जनित रूप
लावण्य इस प्रकार का हुआ था—

जैसे ऊंट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो, बूढ़े मछिर
का पैर हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के कटि पट्ट शुष्क, मांस,
मांसहीन, अस्थिचर्म शिराओं से पहचाना जाता था मांस और
रुधिर की सत्ता से नहीं पहचाना जाता था ।

४१०. धन्य अनगार के उदर भाजन का यह इस प्रकार का
तप जनित लावण्य हुआ—

जैसे यह सूधी हुई दोरक (मजक) हो अथवा लो आद
भूजने का भाजन हो अथवा काष्ठ या कोरक (पायलिंग) हो,
इसी प्रकार धन्य अनगार का उदर शुष्क, रुध, मांस रहित
चर्म शिराओं से पहचाना जाता था, किन्तु मांस और शोणित से
नहीं पहचाना जाता था ।

धन्य अनगार की उदर ईदकी अस्थि—अस्थिचर्म से पहचान
का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ—

जैसे वे ईदकी की अस्थि, या अथवा अस्थिचर्म से पहचाने जाते हैं
अथवा अस्थिचर्म से पहचाने जाते हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार
की उदर अस्थि शुष्क, रुध, निर्मांस अस्थि चर्म शिराओं से पहचाने
जाती थी । किन्तु मांस और शोणित से नहीं पहचाने जाती थी ।

४०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अणया कयाइ कायंदीओ नयरीओ सहसंवरणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-मिन्ता वहिया जणवविहारं विहरइ ।

४०८. तए णं से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से धण्णे अणगारे तेणं ओरालेणं विउत्तेणं पयत्तेणं पगहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धत्तेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्टिचम्मवावणट्ठे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्या । जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भावित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्ता-मोति गिलाइ ।

से जहानामए कट्टसगडिया इ वा पत्तसगडिया इ वा पत्त-तिल-मंडग-सगडिया इ वा एरडकट्टसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा उप्पे दिप्पा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव धण्णे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवच्चिए तवेणं, अवच्चिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव भासिरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं तव-तेयसिरीए अतीव-अतीव उवसोभमाणे-उवसो-भेमाणे चिट्ठइ ।

धणस्स तवजणिय-सररीरलावण्णं—

४०९. धणस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयाह्वे तव-रूव लावण्णे होत्या—

से जहानामए सुक्कल्ली इ वा कट्टपाउया इ वा जरग्ग-ओवाहणा इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स पाया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टिचम्म-ठिरत्ताए पण्णावति, नो चैव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धणस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाण अयमेयाह्वे-त्तव-रूव लावण्णे होत्या—

से जहानामए कल्लसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा मासमगलिया इ वा तवणिया टिग्गा उप्पे दिग्गा सुक्का समाणी नि-सयमानं-नि-सयमानो चिट्ठति । एवामेव धणस्स अणगारस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ लुक्काओ निम्मंसाओ अट्टिचम्म-ठिरत्ताए पण्णावति, नो चैव णं मंस-सोणियत्ताए ।

४०७. उसके बाद अन्यांदा कदाचित् श्रमण भगवान महावीर काकंदी नगरी से सहस्राश्रवन से निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपद-विहार के लिये विचरण करते हैं ।

४०८. तत्पश्चात् वह धन्य अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके संयम और तप द्वारा आत्मा की भावना करते हुए विचरता है ।

तत्पश्चात् वह धन्य अनगार उस श्रेष्ठ विपुल, महान, प्रयत्न-पूर्वक प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिव, धन्य, मंगलकारक, सश्रीक-शोभायुक्त, उदग्र, उत्तम, उदार, महाफल वाले तपः कर्म से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, चर्मच्छादित अस्थिवाला, किटिकिटिकाभूत, कृश, धमनी जैसा हो गया था । वह आत्मशक्ति के सहारे से चलता था, आत्मशक्ति से ठहरता था, बोलने के बाद वह थक जाता था, बोलते हुए थक जाता था, मैं बोलूंगा यह सोचकर खिन्न हो जाता था ।

जैसे कोई लकड़ी से भरी गाड़ी, पत्तों से भरी गाड़ी अथवा पत्र, तिल, भांड से भरी गाड़ी अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी अथवा कोयले से भरी गाड़ी सूर्य की उष्णता से सूखकर ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार धन्य अनगार भी ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए ठहरता है, वह तप से उपचित-पुष्ट और मांस शोणित से अवचित-हीन, राख से ढकी हुई हवन की अग्नि के समान तप और तेज से जाज्वल्यमान, तप-तेज श्री से अतीव शोभित होता है ।

धन्य का तप जनित शरीर लावण्य—

४०९. धन्य अनगार के पैरों का इस प्रकार का तपजनित लावण्य हुआ था—

जैसे कि सूखी वृक्ष की छाल हो, लकड़ी की खड़ाऊं हो अथवा जोणं जूता हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैर शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि चर्म और शिराओं के कारण पहिचाने जाते हैं न कि मांस और रक्षिर से ।

धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियों की यहाँ, इस प्रकार की तप जनित मुन्दरता हो गई थी—

जैसे कि कोई कलाय-मटर की फलियां, मूँग की फलियां, उड़द की फलियां कोमल ही तोड़कर धूप में सुखाने से मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, निर्मांस और अस्थि, चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थीं न कि मांस और शोणित से ।

धष्णस्त णं अणगारस्त जंघाणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए काकजंघा इ वा कंकजघा इ वा डेणिया-लियाजंघा इ वा—एवामेव धष्णस्त अणगारस्त जंघाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धष्णस्त णं अणगारस्त जाणूणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए कालिपोरे इ वा मऊरपोरे इ वा, डेणियालियापोरे इ वा, एवामेव धष्णस्त अणगारस्त जाणू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धष्णस्त णं अणगारस्त ऊरूणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए सामकरिल्ले इ वा वोरीरुरिल्ले इ वा सल्लइकरिल्ले इ वा सामलिकरिल्ले इ वा तरुणए छिण्णे उण्णे दिण्णे सुक्के समाणे मिलायमाणे मिलायमाणे चिट्ठइ, एवामेव धष्णस्त अणगारस्त ऊरू सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धष्णस्त णं अणगारस्त कडिपत्तस्त अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए उट्टपादे इ वा जरगपाए इ वा महिसपाए इ वा, एवामेव धष्णस्त अणगारस्त कडिपत्ते सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्टिचम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

४१०. धष्णस्त णं अणगारस्त उवर-भायणस्त अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए सुक्क-दिए इ वा भज्जणयक-भल्ले इ वा कट्ट-कोलंयए इ वा, एवामेव धष्णस्त अणगारस्त उवरं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धष्णस्त णं अणगारस्त पंमुत्ति-कडयणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे होत्या—

से जहानामए पातयावली इ वा पाणायनी इ वा मुंठयणी इ वा, एवामेव धष्णस्त अणगारस्त पंमुत्ति-कडयणं सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धन्य अनगार की जघाओं का यह इस प्रकार का तप जनित रूप लावण्य हो गया था—

जैसे काक-जंघा हों, कंक पक्षी की जंघायें हों अथवा डेणिक पक्षी की जंघायें हों—इसी प्रकार धन्य अनगार की जंघायें भी शुक्क, रुद्ध, निर्मांस, अस्थि, चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थी, मांस और रुधिर से नहीं पहिचानी जाती थी ।

धन्य अनगार के जानुओं—घुटनों का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ था—

जैसे कि वे कालि—वनस्पति विज्ञेय के पर्व-नाठ, संघि स्थान हों, मयूर पर्व हों अथवा डेणिक पक्षी के पर्व हों, इसी प्रकार धन्य अनगार के जानु शुक्क, रुद्ध, निर्मांस अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचाने जाते थे किन्तु मांस और श्लिषित से नहीं जाने जाते थे ।

धन्य अनगार की ऊरूओं का यह इस प्रकार का तपजन्य रूप लावण्य हुआ था—

जैसे—कीमल प्रियंगुवृक्ष की कोपलें, बेर की कोपलें, शल्यकी वृक्ष की कोपलें अथवा शात्मली वृक्ष की कोपलें तोड़कर सूखे की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य अनगार की उरू (जंघायें) शुक्क, रुद्ध, निर्मांस रहित, अस्थि चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थी; मांस रुधिर से नहीं पहिचानी जाती थीं ।

धन्य अनगार के कटिपट्ट (कमर) का तपजन्य रूप लावण्य इस प्रकार का हुआ था—

जैसे ऊट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो, बूढ़े मछिप का पैर हो, इसी प्रकार धन्य अनगार के कटि पट्ट शुक्क, रुद्ध, निर्मांसहीन, अस्थिचर्म शिराओं से पहिचाना जाता था, मांस और रुधिर की सत्ता से नहीं पहिचाना जाता था ।

४१०. धन्य अनगार के उदर भाजन का यह इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ—

जैसे वह सूधी हुई बीडक (मगक) हो अथवा बड़े बाद भूजने का भाजन हो अथवा काष्ठ का लोखर (वा. विज्ञेय) हो, इसी प्रकार धन्य अनगार का उदर शुक्क, रुद्ध, निर्मांस, चर्म शिराओं से पहिचाना जाता था, किन्तु मांस और रुधिर से नहीं पहिचाना जाता था ।

धन्य अनगार की पादरंजनी प्रणयिणी—पादरंजनी का यह इस प्रकार का तपजनित रूप लावण्य हुआ था—

जैसे वे दर्शन की पत्तिका हो अथवा शरणागत की पत्तिका अथवा स्थापनी (मु. उ.) की पत्तिका हो, इसी प्रकार धन्य अनगार की पादरंजनी शुक्क, रुद्ध, निर्मांस अस्थि, चर्म और शिराओं से पहिचानी जाती थी । किन्तु मांस और रुधिर से पहिचानी नहीं जाती थी ।

धणस्स णं अणगारस्स पिट्ठि-करंडयाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए कण्णावली इ वा गोलावली इ वा वट्टयावली इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स पिट्ठि-करंडया सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धणस्स णं अणगारस्स उर-कडयस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए चित्तकट्टरे इ वा वीयणपत्ते इ वा तालियंटपत्ते इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स उर-कडए सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धणस्स णं अणगारस्स वाहाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए समिसंगलिया इ वा वाहायासंगलिया इ वा अगत्थियसंगलिया इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स वाहाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धणस्स णं अणगारस्स हत्थाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए सुक्कछगणिया इ वा वडपत्ते इ वा पलासपत्ते इ वा, एवामेव धणस्स अणगारस्स हत्था सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धणस्स णं अणगारस्स हत्थंगुलियाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

से जहानामए कलायसंगलिया इ वा मुग्गसंगलिया इ वा माससंगलिया इ वा तरणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी मिलायमाणी चिट्ठुत्ति, एवामेव धणस्स अणगारस्स हत्थंगुलियाओ सुक्काओ लुक्खाओ निम्मंसाओ अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

४११. धणस्स णं अणगारस्स गोवाए अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे होत्था—

धन्य अनगार के पीठ की हड्डी के उन्नत प्रदेशों की यह इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हो गई—

जैसे वे कान के आभूषण की वृत्ति हों, गोत्रक विषयों की पंक्ति हों अथवा वतंक—लाघ आदि से बनी गोलियों की पंक्ति हों, इसी प्रकार धन्य अनगार की गृष्ठ-करंडक गुष्क, रूक्ष, मांस-रहित, अस्थि-चर्म-शिराओं से पहचानी जाती थी, न कि मांस व शोणित से ।

धन्य अनगार का उर-कटक—वक्षस्थल की यह इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हो गई थी—

जैसे कुण्डे का अधोभाग होता है अथवा त्रांस आदि के पत्तों का पंखा होता है, अथवा ताड़ के पत्तों का पंखा होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार का वक्षस्थल गुष्क, रूक्ष, मांस रहित अस्थि चर्म और शिराओं से जाना जाता है, मांस और रधिर से नहीं पहचाना जाता है ।

धन्य अनगार की भुजाओं का यह इस प्रकार का तपजनित सौन्दर्य हुआ—

जैसे शमी वृक्ष की फली, वाहाया—वृक्षविशेष की फली अथवा अगस्तिक वृक्ष की फली सूखकर हो जाती हैं; इसी प्रकार धन्य अनगार की भुजायें गुष्क, रूक्ष, निर्मांस अस्थि-चर्म शिराओं से पहचानने में आती हैं, मांस और रधिर से नहीं ।

धन्य अनगार के हाथों की यह, इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हुई—

जैसे कि सूखा गोबर होता है, वट वृक्ष के सूखे पत्ते होते हैं अथवा पलाश वृक्ष के सूखे पत्ते होते हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म, और शिराओं से पहचाने जाते हैं, किन्तु मांस और शोणित की लालिमा से युक्त हुए नहीं ।

धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियों का यह और इस प्रकार का तपजनित सौन्दर्य हुआ—

जैसे कल (मटर) की फलियां, मूंग की फलियां अथवा उड़द की फलियां कोमल तोड़कर सूर्य की गरमी में सुखाने पर मुरझा जाती हैं, इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ की अंगुलियां शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थि चर्म और शिराओं से पहचानने में आती हैं, मांस शोणित से भरी हुई नहीं ।

४११. धन्य अनगार की ग्रीवा—गर्दन की यह इस प्रकार की तपजनित सुन्दरता हुई—

से जहानामए करगगीवा इ वा कुंडियागीवा इ वा उच्च-
त्यवणए इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स गीवा सुक्का लुक्खा
निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चैव णं मंस-
सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स हणुयाए अयमेयाह्वे तव-ह्व-
लावण्णे होत्या —

से जहानामए लाउफले इ वा हकुवफले इ वा अंवगट्टिया
इ वा आयवे दिण्णा सुक्का समानी मिलायमाणी मिलायमाणी
चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स हणुया सुक्का लुक्खा
निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चैव णं मंस-
सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स उट्टाणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे
होत्या—

से जहानामए सुक्कजलोया इ वा सिलेस गुलिया इ वा अलत्त
गुलिया इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स उट्टा सुक्का लुक्खा
निम्मंसा चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चैव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स जिबमाए अयमेयाह्वे तव-ह्व-
लावण्णे होत्या—

से जहानामए वडपत्ते इ वा पलासपत्ते इ वा सागपत्ते इ वा
एवामेव धण्णस्स अणगारस्स जिबमा सुक्का लुक्खा निम्मंसा
चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चैव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स नाताए अयमेयाह्वे तव-ह्व-लावण्णे
होत्या—

से जहानामए अंवगपेतिया इ वा अंवडगपेतिया इ वा
माउलंगपेतिया इ वा तरणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का
समाणी मिलायमाणी-मिलायमाणी चिट्ठइ, एवामेव धण्णस्स
अणगारस्स नाता सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए
पण्णायति, नो चैव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धण्णस्स णं अणगारस्स अट्टीणं अयमेयाह्वे तव-ह्व-
लावण्णे होत्या—

से जहानामए पीगाट्टिइ इ वा वट्टीत्तगट्टिइ इ वा पलास-
अरिया इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स अट्टीणं सुक्का लुक्खा
निम्मंसा अट्टि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायति, नो चैव णं
मंस-सोणियत्ताए ।

जैसे कि करवे—मिट्टी के छोटे पड़े की ग्रीवा, कुण्डिका की
ग्रीवा होती है अथवा उच्च स्थापनक-ऊँचे मुह वाला बर्तन
होता है, इसी प्रकार धन्य अनगर की ग्रीवा सुष्क, रुक्ष,
निर्माण अस्थि-चर्म शिराओं से पहचानी जाती है, मांस रक्षिर
सहितता से नहीं ।

धन्य अनगर की हनु-ठोड़ी की इस प्रकार की तपज्जित
सुन्दरता हो गई थी—

जैसे तुम्बे का फल, हकुव का फल अथवा आम की गुठली
सूर्य के आतप से सूख कर मुरझा जाती है, इसी प्रकार धन्य
कुमार की ठोड़ी शुष्क, रुक्ष, निर्माण, अस्थि चर्म और शिराओं
से पहचानने में आती है. मांस रक्षिर की मुक्तता से नहीं ।

धन्य अनगर के होठों की यह, इस प्रकार की तपज्जित
सुन्दरता हुई—

जैसे कि सूखी हुई जाँक होती है, अथवा स्लेष्म की गुट्टिया
होती है अथवा मेंहदी की गुट्टिका होती है, इसी प्रकार धन्य
अनगर के होठ शुष्क, रुक्ष, मांस रहित. अस्थि, चर्म और
शिराओं से पहचानने में आते थे, मांस और रक्षिर मुक्तता
से नहीं ।

धन्य कुमार की जीभ का यह, इस प्रकार का तपज्जित
रूप लावण्य हुआ—

जैसे बट वृक्ष का अथवा पलाश वृक्ष अथवा नाक का पलाश
होता है, इसी प्रकार धन्य अनगर की मुँह, रुक्ष, मांस रहित
चर्म और शिराओं से जानी जाती है, किन्तु मांस और शिराओं
मुक्तता से नहीं जानी जाती है ।

धन्य अनगर की नाभिका—नाक की यह इस प्रकार की तप-
ज्जित सुन्दरता हुई—

जैसे कि आम की फाक अथवा जामुन की फाक अथवा
मातुनुंग —विओरा की फाक अथवा ही काटकर मुँह के अंदर से
मुँहाने पर टुन्हा-मुरझा जाती है. इसी प्रकार धन्य अनगर
की नाक, शुष्क, रुक्ष, मांस रहित अस्थि-चर्म-शिराओं से पह-
चानने में आती है. मांस और शिराओं से मुक्तता से नहीं
जानी है ।

धण्णस्स णं अणगारस्स कण्णणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे
होत्था—

से जहानामए मूलाछल्लिया इ वा वालुं कछल्लिया इ वा
कारेल्लयछल्लिया इ वा, एवामेव धण्णस अणगारस्स कण्णा
सुक्का लुक्खा निम्मंसा चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव णं
मंस-सोणियत्ताए ।

धन्य अनगार के कानों का यह इस प्रकार का तपजनित
रूप लावण्य हुआ—

जैसे कि मूली का छिलका होता है अथवा चर्मरी-खरबूजा
का छिलका होता है अथवा करेले का छिलका होता है, इसी
प्रकार धन्य अनगार के कान शुष्क, रुक्ष, मांस रहित, चर्म और
शिराओं से पहचानने में आते हैं, मांस और रक्त की सहितता
से नहीं ।

धण्णस्स णं अणगारस्स सीसस्स अयमेयारूवे तव-रूव-लावण्णे
होत्था—

से जहानामए तरुणगलाउए इ वा तरुणगएलालुए इ वा
सिण्हालए इ वा तरुणए छिण्णे आयवे दिण्णे सुक्के समाणे
मिलायमाणे-मिलायमाणे चिट्ठुइ, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स
सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंस अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ, नो
चेव णं मंस-सोणियत्ताए ।

धन्य अनगार के शिर की यह इस प्रकार की तपजनित
शोभा हुई थी—

जैसे कोमल तुम्बा अथवा कोमल आलू अथवा कोमल सिस्ता-
लक-फल विशेष तोड़कर सूर्य के ताप में सुकाने पर म्लान-मुर-
झाया हुआ होता है, इसी प्रकार धन्य अनगार का शिर शुष्क,
रुक्ष, मांस रहित, अस्थि, चर्म और शिराओं से जाना जाता है,
किन्तु मांस और रक्त सम्पन्नता से नहीं ।

४१२. धण्णे णं अणगारे सुक्केणं भुक्खेणं पायजंघोरुणा, विगय-
तडि-करालेणं कडिकडाहेणं, पिट्ठिमवस्सिएणं उदरभायणेणं,
जोइज्जमाणेहिं, पंसुलि-कडएहिं, अक्खसुत्तमाला ति व गणेज्ज-
माणेहिं पिट्ठिकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडगदेसमाएणं,
सुक्कसप्पसमाणेहिं बाहाहिं, सिद्धिलकडाली विव लंबतेहिं य
अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइओ विव वेवमाणीए सीसघडीए पव्वाय-
वयणकमले उब्भडघडामुहे उब्बुणयणकोसे जीवजीवेणं गच्छइ,
जीवजीवेणं चिट्ठुइ, भासं भासित्ता गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ,
भासं भासिस्सामि ति गिलाइ ।

४१२. मांस आदि के नहीं रहने से सूखे, भूख के कारण, रूखे
पंर, जंघा और उरु से, मांस के क्षीण होने से पार्श्व भागों की
अस्थियाँ, नदी के तट के समान भयंकर रूप से जिसमें उन्नत
हो रही है ऐसे कटिरूप कटाह—कछुये की पीठ या भाजन विशेष
से, यकृतप्लीहा आदि के क्षीण होने से पीठ के साथ मिले हुए
उदर-भाजन से शरीर में मांस के सूख जाने से दिखाई देती हुई
पसलियों से, रुद्राक्ष के दानों की माला अथवा गिनती की
माला के दाने जिस प्रकार पृथक्-पृथक् गिने जा सकते हैं,
इसी प्रकार मांस के अभाव में पृथक्-पृथक् गिने जाने वाले पृष्ठ
करण्डक (रीढ़ की हड्डी) की संधियों से, गंगा नदी की तरंगों
के समान वक्षस्थल रूपी कटक से सूखे हुए सर्प के समान भुजाओं
से, शिथिल लगाम के जैसे काँपते हुए अग्रहस्तों—हाथों से, कंपन
वायु के रोग वाले पुरुष के समान कम्पायमान सिर रूपी घटी
[छोटा घड़ा] से युक्त तथा मुरझाये हुए मुखकमल वाला भयंकर
घट के मुख के समान मुखवाला और जिसके नयनकोश भीतर
घुस गये हैं, ऐसा वह धन्य अनगार आत्मशक्ति से चलता है,
आत्म-शक्ति से खड़ा होता है, वचन बोलकर ग्लान हो जाता
है, भाषा बोलने पर खिन्न हो जाता है, भाषा कहूँगा इस विचार
मात्र से ग्लान हो जाता है—

से जहानामए इंगालसगडिया इ वा कट्टसगडिया इ वा
पत्तसगडिया इ वा तिलंडासगडिया इ वा एरंडसगडिया इ वा
उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससदं गच्छइ, ससदं चिट्ठुइ,

जैसे—कोयले से भरी गाड़ी अथवा लकड़ी से भरी गाड़ी
अथवा पत्तों से भरी गाड़ी अथवा तिल के डंठलों से भरी
गाड़ी अथवा एरंड की लकड़ी से भरी गाड़ी धूप में सूखकर
ध्वनि करती हुई चलती है, ध्वनि करती हुई खड़ी होती

एवामेव घण्णे अणगारे सत्तद्दं गच्छइ, सत्तद्दं चिट्ठइ, उवच्चिए तवेणं, अवच्चिए मंससोणिएणं, हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोनेमाणे-उवसोनेमाणे चिट्ठइ ।

सेणियेण महादुक्करकारय-पुच्छ्या भगवओ समाहाणं च—

४१३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिए चेइए । सेणिए राया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे त्तमोसडे । परिता निग्गया । सेणिए निग्गए । धम्मकहा । परिता पडिगया ।

तए णं सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा नित्तम्म समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासो—

“इमासि णं भते ! इंदमूइपामोवखाणं चोइसहं समण-साहस्तीणं कतरे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ?”

“एवं एत्तु सेणिया ! इमासि णं इंदमूइपामोवखाणं चोइसहं समणसाहस्तीणं घण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ।”

“से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ, इमासि णं इंदमूइपामोवखाणं चोइसहं समणसाहस्तीणं घण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ?”

भगवओ उत्तरं—

४१४. “एवएत्तु सेणिया ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायग्दी नामं नयरी होत्था । घण्णे वारए उण्वि पातायउत्तए विहरइ ।”

तए ण अहं अणया कयाई पुट्थापुट्ठीए चरमाणे गामा-पुगामं इइज्जमाणे अण्वेव कायग्दी नयरी जेण्वेव तहंसवणणे उज्जाधे तेण्वेव उवागए । अहापडिस्सं ओग्गहं ओगिहित्ता संज्जेणं तवता अण्णानं भावेमाणे विहरामि । परिता निग्गया । त्थेव-आव-वधइए-आव-दित्तमित्थं एण्णमूएणं अण्णमोणं आहारं आहारइ । घण्णस्स णं अणगारस्स सरीरएण्णओ त्थेव-आव-तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोनेमाणे उवसोनेमाणे चिट्ठइ ।

हे—इहरती है, इसी प्रकार घण्व अनगार ध्वनि करते हुए चलता है, ध्वनि करते हुए खड़ा होता है, तप में उपचित—बुष्ट और मांस-शोणित में अपचित—हीन राय की गति से उठी हुई अग्नि के समान तप और तेज में और तप एवं तेज की गोभा से अतीव-अतीव अत्यधिक शोभायमान होता हुआ विराजता है ।

श्रेणिक द्वारा महादुक्करकारक-पृच्छ्या और भगवान का समाधान—

४१३. उस काल और उस समय में राज्द नाम का नगर था । गुणशिलक चैत्व था । श्रेणिक राजा था ।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर का पदापेण हुआ । परिपदा निकली । श्रेणिक निकला । धर्म कथा कही । परिपदा वापस आई ।

तत्परचात् श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और अवधारण कर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इन प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! इन इन्द्रभूति प्रभुय चौदह हजार श्रमणों में कौनसा अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और कमों की महान निजंरा करने वाला है ?’

‘हे श्रेणिक ! इन इन्द्रभूति प्रभुय चौदह हजार श्रमणों में निश्चय ही घण्व अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और महा निजंरा करने वाला है ।’

‘हे भगवन् ! किन कारण से आप इन प्रकार कहा है कि इन इन्द्रभूति प्रभुय चौदह हजार श्रमणों में घण्व अनगार अति दुष्कर क्रिया करने वाला और कमों की महानिजंरा करने वाला है ?’

भगवान का उत्तर—

४१४. ‘हे श्रेणिक ! उस काल और उस समय में राज्दी नाम की नगरी थी वहाँ घण्वशुमार श्रेष्ठ श्रमणों के आर विचरण करता था ।’

“से तेणद्धेणं सेणिया ! एवं वुच्चइ ‘इमासि णं इंदमूइ-
पामोवखाणं चोइसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महावुक्कर-
कारए चैव महाणिज्जरतराए चैव ।”

सेणिएण धणस्स थवणा—

४१५. तए णं से, सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए
एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो
आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता
जेणेव धण्णे अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं
अणगारं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ
नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुपुण्णे सि णं तुमं
देवाणुप्पिया ! सुकयत्थे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयलक्खणे
सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव
माणस्सए जम्मजावियफले” त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता
नमंसित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं
करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं
पाउवभूए, तामेव दिसं पडिगए ।

धणस्स सव्वट्ठसिद्ध-गमणं-महाविदेहे सिद्धी य—

४१६. तए णं तस्स धणस्स अणगारस्स अणया कयाइ पुव्वर-
त्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयाख्वे अज्जत्थिए-
जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं
तवोकम्मणेणं धमणिसंतए जाए । जहा खंदओ तहेव चित्ता । आपु-
च्छणं । थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं डुरुहइ । मासिया संलेहणा ।
नवमासा परियाओ-जाव-कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिमसूर-
गहगण-नवखत्त-तारारूवाणं-जाव-नव य गेवेज्जविमाणपत्थडे
उड्ढं दूरं वीईवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे । थेरा
तहेव ओयरंति-जाव-इमे से आयारभंडए ।

भंते त्ति ! भगवं गोयमे तहेव आपुच्छति, जहा खंदयस्स
भगवं वागरेइ-जाव-सव्वट्ठसिद्धे विमाणे उववण्णे ।

इसी कारण हे श्रेणिक ! मैं इस प्रकार कहता हूँ कि इन्द्र-
भूति प्रमुख चीदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार 'अत्यन्त कठिन
तप करने वाला एवं कर्मों की महानिजंरा करने वाला है ।'
श्रेणिक द्वारा धन्य की स्तवना—

४१५. तत्पयवात श्रेणिक राजा श्रमण भगवान की इस बात को
सुनकर और उसका मननकर हृष्ट और तुष्ट होकर श्रमण
भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है,
प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके
जहाँ धन्य अनगार था, वहाँ आता है, आकर धन्य अनगार की
तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदन
नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहने
लगा—

हे देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे अच्छे
पुण्य हैं—तुम पुण्यशाली हो, हे देवानुप्रिय ! तुम कृतायं हुए, हे
देवानुप्रिय ! तुम शुभ लक्षणों से युक्त हो, हे देवानुप्रिय ! मानव
जन्म के जीवन का फल तुमने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है,
इस प्रकार स्तुति कर वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार
करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ आया, आकर श्रमण
भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है,
प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार
करके जिस दिशा से प्रगट हुआ था—आया या उसी दिशा में
वापस चला गया ।

धन्य का सर्वार्थसिद्धगमन और महाविदेह में सिद्धि—

४१६. तदनन्तर उस धन्य अनगार को अन्यदा किसी समय मध्य
रात्रि के समय धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्या-
त्मिक विचार-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं इस प्रकार इस
उदार तप कर्म के द्वारा धमनी जैसा हो गया हूँ । जैसी स्कन्दक ने
की, उसी प्रकार चिन्ता अर्थात् जैसा स्कन्दक ने अनशन करने
का विचार किया था उसी प्रकार धन्य अनगार ने विचार किया ।
भगवान से पूछा । स्थविरों के साथ विपुल पर्वत पर चढ़ा ।
मासिकी संलेखना की । नौ मास तक श्रमण पर्याय का पालन
किया -यावत्-काल मास में मृत्यु के समय काल करके उर्ध्व लोक
में चन्द्र, सूर्य, ग्रह गण, नक्षत्र, ताराओं से -यावत्-पुनः ग्रैवेयक
विमानों के प्रस्तरों को उलांघ करके ऊपर सर्वार्थसिद्ध विमान
में देवरूप से उत्पन्न हुआ । स्थविर उसी प्रकार उत्तर आये
-यावत्-यह उसके आचार भण्डोपकरण हैं ।

हे भगवन् ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम उसी प्रकार
पूछते हैं जैसा स्कन्दक के बारे में पूछते हैं । उत्तर में भगवान
प्रतिपादन करते हैं -यावत्-सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न
हुआ ।

“धण्णस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?”

‘हे भद्रन्त ! धन्य देव की कितने काल की विधि प्रतिपादित की गई है ?’

“गोयमा ! तेत्तोसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।”

‘हे गौतम ! तेनीन नागरोपम की विधि प्रतिपादित की गई है ।’

“से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उययज्जिहिइ ?”

‘हे भगवन् ! यह धन्य देव उन देवलोक में क्युत गोर कहां पर जायेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?’

गोयमा ! महाविदेहे वासे तिज्जिहिइ वुज्जिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में निज्ज होगा, बोधि प्राप्त होगा, मुक्त होगा, परिनिर्वाण को प्राप्त होगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

—अणुत्त० व० ३, अ० १ ।



२७. महावीरतिथे सुणक्खत्ताइसमणा

२७ महावीर तीर्थ में मुनञ्जवादि श्रमण

४१७. तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नयरी । जियतत्तू राया ।

४१७. उन काल और समय में काकंदी नयरी था । जियतत्तू राजा था ।

तत्थ णं काकंदीए नयरीए भट्टा नामं सत्थवाही परिवसइ—अइडः-जाव-अपरिभूया ।

उस काकंदी नयरी में भट्टा नाम की नार्भवाहिनी श्रमण करती थी—जो श्रुद्धि सम्पन्न-नायक-अपरिभूत-किमी से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाली थी ।

तोसे णं भट्टाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचेवियसरीरे-जाव-सुहये पंचधाइपरि-सिपत्ते जहा धण्णे तहेव । वत्तोत्तओ दाओ-जाव-उप्पि वासाव-यधेए पिहरइ ।

उस भट्टा नार्भवाहिनी का मुनञ्ज नामक अत्यंत पुत्र था— जो पाँचों इन्द्रियों में अहीन और परिपूर्ण था—नायक-मुक्त था, जैसा धन्य कुमार का उनी प्रकार था व धर्मो दायी-अनंत लालन-पालन हुआ । वत्तीम दहेव जाय-वापन-उपर-पेण-प्राणाद में विचरता था ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं तामो समोसडे-जाव-नमोत्तरणं । जहा धण्णे तहा सुणक्खत्ते वि निगए । जहा भावच्चापुत्तस्त तहा निशयमणं-जाव-अपगारे जाए—इरियातमिए-जाव-गुत्तयंभवारी ।

उन काल, उन समय इसी—प्रसन्न भवमान महावीर पधार-वापन-समस्तरण हुआ । धर्म परिपक्व भिन्न से पाँचव प्रकार धन्यकुमार निरुत्ता था उनी प्रकार मुनञ्ज की निरुत्ता । अिन प्रकार पाकवीरुत्त का हुआ था । उनी प्रकार मुनञ्ज का निष्कमण-नशानद हुआ—वापन-अपगार की गवा-देवी-समिति वाला—वापन-मुक्त-मुक्तकारी हो गया ।

तए णं से सुणक्खत्ते अपगारे अं खेव दिवस समणस्स भगवओ महावीरस भतिए मुडे भवित्ता अपगारओ अपगारिय वसइए तं खेव दिवस भतिगहं तहेव-जाव-अवित्तमिय वसणभूएणं अपगारोणं न-हाए-आहारेइ, अ-हारेला सज्जेण तवता अप्पाण भ-वेनाले विहरइ ।

४१८. सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ । एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से सुणखत्ते अणगारे तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं जहा खंदओ अईव-अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसडे । परिसा निग्गया । राया निग्गओ । धम्मकहा । राया पडिगओ । परिसा पडिगया ।

४१९. तए णं तस्स सुणखत्तस्स अणगारस्स अणया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयाह्वे अज्जत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खंदयस्स । वहू वासा परियाओ । गोयम पुच्छा । तहेव कहेइ-जाव-सव्वट्टुसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे । तेत्तोसं सागरोवमाइं ठिई । महाविदेहे वासे सिज्जहिइ-जाव-सव्व-दुक्खाणमंतं काहिइ ।

—अणुत्त० व० ३, अ० २

इसिदासादि-कहाणयनिद्देसो—

४२०. एवं सुणखत्तगमेणं सेसा वि अट्ठ अज्जयणा भाणियव्वा, नवरं—आणुपुव्वीए दोण्णि रायगिहे, दोण्णि साकेते, दोण्णि वणियग्गामे, नवमो हत्थिणपुरे, दसमो रायगिहे । नवण्हं भद्राओ जणणीओ । नवण्हं वि वत्तीसओ दाओ । नवण्हं निक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं । वेहल्लस्स पिया करेइ । छम्मासा वेहल्लए । नव घण्णे । सेसाणं वहू वासा । मासं संलेहणा । सव्वट्टुसिद्धे । सव्वे महाविदेहे सिज्जिस्संति-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

—अणुत्त० व० ३, अ० ३-१० ।

४१८. स्वामी—श्रमण भगवान महावीर बाहरी जनपद विहार में विचरण करते हैं । ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है और संयम तथा तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता है ।

तत्पश्चात् वह सुनक्षत्र अनगर उस उदार तपकर्म से जैसे स्कन्दक उसी प्रकार अतीव-अतीव गोभायमान होता हुआ विराजता है ।

उस काल और उम समय में राजगृह नगर था । गुणगिलक चैत्य था । श्रेणिक राजा था । स्वामी का पदार्पण हुआ । धर्म श्रवण के लिये परिपदा निकली । राजा भी निकला । धर्मकथा हुई । राजा लोटा । परिपदा वापस लौटी ।

४१९. इसके अनन्तर उस सुनक्षत्र अनगर को अन्यदा किसी समय मध्यरात्रि के समय में धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-संकल्प उत्पन्न हुआ, जैसा स्कन्दक के विषय में बताया है । बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया । गौतम स्वामी ने पूछा । उसी प्रकार कथन किया—सर्वायं-सिद्ध देव विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ । तेतीस सागरोपम की स्थिति हुई । महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

श्रुषिदासादि कथानक निर्देश—

४२०. इसी प्रकार सुनक्षत्र के गम—आख्यान समान शेष आठ अध्ययन भी कहना चाहिये, विशेषता इतनी है कि अनुक्रम से दो राजगृह में, दो साकेतपुर में, दो वाणिज्यग्राम में, नौवां हस्तिनापुर में, और दसवां राजगृह नगर में उत्पन्न हुआ । नौ ही माताओं का नाम भद्रा था, नौ ही के वत्तीस दहेज आये । नौ ही का निष्क्रमण थावर्चापुत्र के सदृश हुआ । वेहल्ल का निष्क्रमण महोत्सव पिता ने किया । वेहल्ल अनगर ने छह माह श्रमण पर्याय का पालन किया । धन्य अनगर ने नौ मास श्रमण पर्याय का पालन किया । शेष आठों की श्रमण पर्याय बहुत वर्षों की थी । सबने एक मास की संलेखना की । सर्वार्थसिद्ध विमान में सब उत्पन्न हुए । सभी महाविदेह क्षेत्र में सिद्धगति प्राप्त करेंगे-यावत्-सर्व दुखों का अन्त करेंगे ।

४२. महावीरतित्थे सुवाहुकुमार समणे

४२ महावीर तीर्थ में सुवाहुकुमार श्रमण

४२१. सुवाहु भद्रन्दी य, सुजाए य सुवासवे ।
तहेव जिणदासे य, धणवई य महव्वले ।
भद्रन्दी महच्चदे, वरवत्ते तहेव य ॥१॥

४२१. सुवाहु, भद्रन्दी, सुजात, सुवासर, जिनदान, धनरति, महावल, भद्रन्दी, महच्चन्द्र और वरवत्त—ये इन व्यक्तियों हैं ।

सुवाहुकुमार जन्म-परिणयाइ—

सुवाहुकुमार का जन्म-परिणयादि—

४२२. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्या—
रिद्धत्थिमियसमिद्धे । वण्णओ ।

४२२. उस काल, उन समय में हस्तिनीपं नामक नगर था—जो ऋद्धि-सम्पन्न, ईति-भीति आदि से रहित और समृद्धिपूर्ण था । वर्णन करें ।

तस्स णं हत्थिसीसस्त नगरस्स वहिया उत्तरपुरत्थियमे विसी-
भाण, एत्थ णं पुष्फकरंडए नामं उज्जाणे होत्या—सव्वोउय-पुष्फ-
फल समिद्धे । वण्णओ ।

उन हस्तिनीपं नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भागात्-संभावनीय
में पुष्पकरंडक नामक उद्यान था—जहाँ वनों, जलस्रोतों के सुष्पों
और फलों से समृद्ध था । वर्णन करें ।

तत्थ णं कयवणमालपियस्स जषखस्स जवपाययणे होत्या—
दिठ्ये ।

तहाँ कृतवनमालप्रिय वक्ष का यथावतन था—यों दिव्य,
दर्शनीय आदि था ।

तत्थ ण हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नामं राया होत्या—
महया हिमयंत-महंत-मलय-मंवर-महिदसारे, वण्णओ ।

उन हस्तिनीपं नगर में महान हिमयन्त मलयगिरि, मलय-
चल और महेंद्र आदि के समान श्रेष्ठ जडीमनु नामक राजा
था, वर्णन ।

तस्स णं अदीणसत्तुरस रण्णो धारिणीपामोक्खं देवीसहत्तं
ओरोहे यावि होत्या ।

उन जडीमनु राजा का धारिणी प्रसूत हुए जन्म
रानियों का जन्तःपुर-रनिवास था ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तंति तारिसंति
वासनवर्णंसि सीहं सुमिणे पासइ, जहा मेहस्स अम्मणं तहा
भाणियरवं ।

तत्परवान् यह धारिणी रात्री जन्मदा किसी समय अन्नकला
में सोते हुए स्वप्न में सिंह की देखती है, जैसे स्वप्न-रत्नाकर
का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी वहाँ जन्म पाती है ।

तए णं ते सुवाहुकुमारे यावत्तरिकलापंडिए-जाव-अत्तंभोग-
समत्थे जाए यावि होत्या ।

तत्परवान् यह सुवाहुकुमार बहुत ही सुन्दर-सुन्दर-सुन्दर-
सुन्दर रूप में भोगों का भोग करने में भी समर्थ हो गया ।

४२३. तए णं तं सुवाहुकुमारं अम्मापियरो जावत्तरिकलापंडियं-
जाव-अत्तंभोगसमत्थं था जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पथ
पासायउत्तपत्तयाइं कारेति—अभुग्गयमूत्तियपहत्तियाइं । एमं थ
णं महं भयं कारेति एवं जहा महव्वलरस राणो, नयरे—पुष्फ-
भूपासामोक्खणां पंचप्हं राववरकत्तयासयागं एमदिदत्तेणं पावि
दिप्पुह्वेति । तहेव पंचमइओ राजो-जाव-उत्थि पासायउत्तपत्त
पुंसावेदिं मुदंगमत्तएहि - जाव - माणुत्तए ज्ञानयोगे पच्चपु-
नवमाथे विहरइ ।

४२३. तत्परवान् सामान्यतः सुवाहुकुमार को जन्मदा तथा वह
पंडित-साधु-सुन्दर प्रकार से जन्म भोगों में समर्थ बनता है, जन्म
कर माता-पिता तथा सर्वोत्कृष्ट प्राणियों का विचार करता है ।
यों जन्मों के बारे में बड़े-बड़े पंडितों की जन्म-दत्त-समर्थ-योग-
विचार-महत्-व्यक्तियों, इन प्रकार की सुष्पों का, जन्म-
विचार-पटु है कि सुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-
पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-
पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-पुष्प-
उस श्रेष्ठ प्राणियों का जन्म-दत्त-समर्थ-योग-विचार-महत्-व्यक्तियों
का योग्यता है ।

सुवाहुकुमारस्स गिहिधम्मपडिवज्जणं—

४२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसडे । परिसा निग्गया । अदीणसत्तु जहा कूणिए तथा निग्गए । सुवाहू वि जहा जमाली तथा रहेणं निग्गए-जाव-धम्मो कहिओ । राय-परिसा गया ।

तए णं से सुवाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे उट्टाए उट्टेइ-जाव-एवं वयासी—

‘सद्दहामि णं भंते ! निग्गयं पावयणं । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए वह्वे राईसर-तलवर-मांडविय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्टि-सेणावइ सत्यवाहूप्पभियओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयंति नो खलु अहं तथा संचाएमि पव्वइत्तए, अहं णं देवाणु-प्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—डुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जामि ।’

‘अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंघं करेह ।’

तए णं से सुवाहू समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—डुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव चाउग्घं आसरहं डुरूहइ, डुरूहित्ता जामेव दिसं पाउवभूए तामेव दिसं पडिगए ।

सुवाहुपुव्वभवपुच्छा—

४२५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्टे अंतेवासी इंदमूई-जाव-एवं वयासी—

‘अहो णं भंते ! सुवाहुकुमारे इट्टे इट्टरूवे कंते-कंतरूवे पिए पियरूवे मणुण्णे मणुण्णरूवे मणामे मणामरूवे सोमे सोमरूवे सुमगे सुमगरूवे पियदंसणे सुरूवे ।

वहुजणस्स वि य णं भंते ! सुवाहुकुमारे इट्टे इट्टरूवे-जाव-सुरूवे ।

साहुजणस्स वि य णं भंते ! सुवाहुकुमारे इट्टे इट्टरूवे-जाव-सुरूवे ।

सुवाहुणा भंते ! कुमारेणं इमा एयाहवा उराला माणुसिड्ढी किणा लद्धा ?-जाव-अभिसमन्णागया ? के वा आसि पुव्वभव ?’

सुवाहुस्स सुमुहभव-कहाणयं—

४२६. ‘गोयमा !’ इ तमणे नगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—

सुवाहुकुमार का गृहिधर्म-श्रावक धर्म अंगीकरण—

४२४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर पधारे । परिषदा निकली । अदीनशत्रु जैसे कोणिक निकला था, उसी प्रकार निकला । सुवाहु भी जैसे जमाली उसी प्रकार रथ पर आरूढ़ होकर निकला-यावत्-धर्मोपदेश दिया । राजा और परिषदा वापस लौटी ।

इसके अनन्तर वह सुवाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर और समझकर हृष्ट-नुष्ट होता हुआ अपने स्थान से उठता है -यावत्- इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! मैं निर्यन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ । आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजेश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारत्व अंगीकार करते हैं, उस प्रकार से तो मैं प्रव्रजित होने में समर्थ नहीं हूँ, किन्तु आप देवानुप्रिय के पास मैं पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप वारह प्रकार का गृहिधर्म—श्रावकाचार धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ ।’

‘हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हों, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध—विलंब मत करो ।’

तत्पश्चात् सुवाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप, वारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार करता है, स्वीकार करके उसी चार घण्टे वाले अश्व रथ पर आरूढ़ होता है, आरूढ़ होकर जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था—आया था, उसी दिशा को वापस लौट गया ।

सुवाहु की पूर्वभव पृच्छा—

४२५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति-यावत्-इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! अहो सुवाहुकुमार इष्ट, इष्टरूप, कांत, कांतरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मणाम, मणामरूप, सोम सोम्य, सोमरूप, सुभग, सुभगरूप, प्रियदर्शन और सुरूप है ।

हे भगवन् ! सुवाहुकुमार बहुत मनुष्यों-जनों को भी इष्ट, इष्टरूप-यावत्-सुरूप है ।

हे भगवन् ! सुवाहुकुमार साधुजनों-सज्जनों को भी इष्ट, इष्टरूप -यावत्-सुरूप है ।

हे भगवन् ! सुवाहुकुमार को यहां, इस प्रकार की उदार, मनुष्य ऋद्धि—कैसे प्राप्त हुई है—यावत्-अभिसमन्वागत हुई है ? तो यह पूर्वभव में कौन था……?

सुवाहु का सुमुखभव कथानक—

४२६. ‘हे गौतम !’ इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—

अंतरा वि य णं आगासंसि 'अहो वाणे अहो वाणे' घुट्टे य । हत्थि-
णाउरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु
बहुजणो अणमणस्स एवं आइक्खइ एवं भासेइ एवं पणवेइ एवं
परूवेइ—

तं धण्णे णं देवाणुप्पिया ! सुमुहे गाहावई पुण्णे णं देवाणु-
प्पिया ! सुमुहे गाहावई एवं-कयत्थे णं कयलक्खणे णं सुलद्धे णं
सुमुहस्स गाहावइस्स जम्मजीवियफले, जस्स णं इमा एयाहूवा
उराला माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

सुमुहस्स सुबाहुभवो—

४२८. तए णं से सुमुहे गाहावई व्हइं वाससयाइं आययं पालेइं,
पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव हत्थिसीसे नयरं अदीण-
सत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुंठिसि पुत्तत्ताए उववण्णे ।

तए णं सा धारिणी देवी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीर-
माणी-ओहीरमाणी तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चव-जाव-उप्पि
पासाए विहरइ ।

तं एवं खलु गोयमा ! सुबाहुणा इमा एयाहूवा उराला
माणुस्सिड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।”

“पभू णं भंते ! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे
भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?”

“हंता, पभू ।

तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अणया कयाइ हत्थिसीसाओ
नयराओ पुप्फकरंडयउज्जाणाओ कयवणमालपियजवखाययणाओ
पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया जयवणविहारं विहरइ ।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए—अभिगयजीवा-
जीवे-जाव-पडिलाभेमाणे विहरइ ।

गय प्रगट हुए—यथा सुवर्णं की वृष्टि हुई, पंचरत्ने पुष्पों की
वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप किया गया, देव दुन्दुभिया बजाई गई
और आकाश में 'अहोदानं अहोदानं' इस प्रकार की घोषणा
गुंजी । तत्र हस्तिनापुर नगर के ग्रंथाटकों, थिकों, चतुष्कों
चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य पथों-गलियों में बहुत
से लोग परस्पर एक दूसरे को इस प्रकार कहते हैं, बोलते हैं,
प्रतिपादन करते हैं, प्रक्षुब्धता करते हैं—

हे देवानुप्रिय ! सुमुख गाथापति धन्य है, देवानुप्रिय !
सुमुख गाथापति पुण्यशाली है एवं कृतार्थ है, कृतलक्षण है और
सुमुख गाथापति ने अपने मनुष्य जन्म और जीवन का फल भली-
भांति प्राप्त कर लिया है, जिसने यह इस प्रकार की उदार
मानवीय ऋद्धि उपाजित की है, प्राप्त की है, अधिगत की है ।

सुमुख का सुबाहुभव—

४२८. तदनन्तर वह सुमुख गाथापति बहुत सैंकड़ों वर्षों की
आयु का उपभोग करता है, उपभोग करके कालमास में काल
करके इसी हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी
रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् वह धारिणी रानी शैया पर कुछ सोती हुई—
कुछ जागती हुई सी ईपत् निद्रा लेती हुई उसी तरह सिंह को
देखती है, शेष सब वर्षण उसी भांति-पूर्ववत् जानना-यावत्-
ऊपर प्रासादों में विचरता है ।

इस तरह हे गौतम ! सुबाहुकुमार ने यह इस प्रकार की
उदार मानवी समृद्धि उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत की है ।

‘हे भगवन् ! सुबाहुकुमार आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित
होकर गृह त्यागकर अनगार घर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है ?’

‘हां, समर्थ है ।’

तत्पश्चात् भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को
वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके संयम और तप
द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर अत्यदा किसी समय
हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरंडक उद्यान में स्थित कृतवनमाल-
प्रिय यक्षायतन से निकलते हैं, निकलकर बाहर जनपदों में
विहरण करने लगे ।

तदनन्तर वह सुबाहुकुमार श्रमणोपासक हो गया-जीवा-
जीवादि तद्वों का मर्मज्ञ होकर -यावत्-प्रतिलाभ को प्राप्त
करता हुआ विचरता है ।

तए णं तस्स सुवाहुस्स कुमारस्स तं महया जणसाइं वा-जाव-जणसण्णियायं वा सुणमाणस्स वा पासमाणस्स वा अयमेयाकथे अज्जत्थिए चित्थिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं जहा जमालो तहा निग्गओ । धम्मो कह्थिओ । परिसा, राया पडिगया ।

तए णं से सुवाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं तोच्चा त्तिस्म्म हट्ठुत्तुहे जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ । निपखमणात्तिसेओ तहेव-जाव-अणगारे जाए इरिया-समिए-जाव-गुत्तवंभयारी ।

सुवाहुकुमारस्स आगामिभवा महाविदेहे सिद्धी य—

४३१. तए णं से सुवाहु अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइ एककारस्स अंगां अहिज्जइ, अहिज्जित्ता व्हहि चउत्थ-छट्ठमत्तवोवहाणेहि अप्पाणं भावेत्ता, व्हइं वासाइं सामणपरियागं पाउणित्ता, मात्थियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छएत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मै कप्पे देवत्ताए उववण्णे ।

से णं तओ देवलोगाओ आउखएणं भवखएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ, केवलं वोहिं बुज्झिहिइ, तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ ।

से णं तत्थ व्हइं वासाइं सामणं पाउणिहिइ । आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए सर्णकुमारे कप्पे देवत्ताए उवव-ज्जिहिइ । से णं ताओ माणुस्सं, पव्वज्जा, वंभलोए । माणुस्सं, महासुक्के । माणुस्सं, आणए । माणुस्सं, आरणे । माणुस्सं सव्वहु-सिद्धे ।

४३२. से णं तओ अणंतरं उव्वट्ठित्ता महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवन्ति अड्ढाइं जहा दढपइण्णे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिच्चाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

—विवागसुयं सु० २ अ० १ ।

卐

तदनन्तर उस महान जन कोनासल और-पावत्-जन मनुष्य को सुनने और देखने से उस सुवाहुकुमार को यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, चित्तिक, कर्तव्य, प्राणिक मनीषण संकल्प उत्पन्न हुआ—उस तरह जैसे जमाली, उसी प्रकार मनुष्यता । भगवान ने धर्म का प्रतिपादन किया । परिषदा और राजा कायम चोट ।

तत्पश्चात् वह सुवाहुकुमार अथवा भगवान महावीर के पास धर्म को गृहण और अध्यायण कर मुण्डित और जैसे भव कुमार उसी प्रकार नाना-पिता के पुत्रता हे । उसी प्रकार निष्क्रमणभिण्ड किया गया-यावत्-जनगार हो गया, इसी मनीषण का पालक-यावत्-मुण्ड-कल्पकारी बन गया ।

सुवाहुकुमार के आगामी भव और महाविदेह में सिद्धि— ४३१. तत्पश्चात् वह सुवाहु अणगार अथवा भगवान महावीर के तथारूप स्वयिरी के पास सामान्यतः जादि से प्रारम्भ कर म्यारह अंगों का अध्ययन करता हे । अध्ययन करके वृद्धन्ते अनेक चतुर्थ, पष्ठ, अष्ठ भक्त आदि नानावधि तर्पों के आचरण से आत्मा को भावित करके वृद्ध-अनेक वर्षों तक अथवा पचास का पालन करके, एक मास की संलेचना द्वारा आत्मा की आराधना करके, साठ भक्तों—भोजनों को अनशन द्वारा छेदन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर काल मास में काल करके तीर्थमं कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् वह आयुशय, भवभय और स्थितिक्षय होने पर उस देवलोक से देव शरीर को छोड़कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा और वहाँ केवल—निर्मलबोधि—सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा एवं तथारूप स्वयिरी के पास मुण्डित होकर, यह त्यागकर अणगार धर्म में प्रव्रजित होगा ।

वह वहाँ बहुत वर्षों तक श्रामण्य का पालन करेगा । आलो-चना और प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होता हुआ काल करके सनत्कुमार कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा । वहाँ से च्युत होकर वह मनुष्यभव धारण करेगा, दीक्षा लेगा और काल-गत होकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न होगा फिर मनुष्य भव धारण करेगा, महाशुक्र कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा । मनुष्यभव लेकर पुनः आगत देवलोक में देव होगा । मनुष्यभव, पुनः आरण कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा । मनुष्य होकर पुनः सर्वार्थसिद्ध में देव रूप से उत्पन्न होगा ।

४३२. उसके अनन्तर वहाँ से च्यवन कर वह महाविदेह क्षेत्र में जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न और धनाढ्य होगा, वह हठप्रतिष्ठ के समान सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, परिनिवृत्त होगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

卐

जिणदासो—

४३६. सोगंधिया नयरी । नीलासोगं उज्जाणं । सुकालो जक्खो । अप्पडिहओ राया । सुकण्णा देवी । महचंदे कुमारे । तस्स अरह-
दत्ता भारिया । जिणदासो पुत्तो । तित्थयरागमणं । जिणदास-
पुव्वभवो । मज्झमिया नयरी । मेहरहे राया । सुधम्मे अणगारे
पडिलाभिए जाव सिद्धे ।

धणवई—

४३७. कणगपुरं नयरं । सेयासोयं उज्जाणं । वीरभहो जक्खो ।
पियचंदो राया । सुमहा देवी । वेसमणे कुमारे जुवराया । सिरि-
देवीपामोक्खा पंचसया कन्ना पाणिग्रहणं । तित्थयरागमणं ।
धणवई जुवरायपुत्ते-जाव-पुव्वभवो । मणिवइया नयरी । मित्तो
राया । संभूतिविजए अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे ।

महव्वलो—

४३८. महापुरं नयरं । रत्तासोगं उज्जाणं । रत्तपाओ जक्खो ।
वले राया । सुमहा देवी । महव्वले कुमारे । रत्तवईपामोक्खाओ
पंचसया कन्ना पाणिग्रहणं । तित्थयरागमणं-जाव-पुव्वभवो ।
मणिपुरं नयरं । नागदत्ते गाहावई । इंदपुत्ते अणगारे पडिलाभिए-
जाव-सिद्धे ।

भद्दनंदी—

४३९. सुघोसं नयरं । देवरमणं उज्जाणं । वीरसेणो जक्खो ।
अज्जुणो राया । तत्तवई देवी । भद्दनंदी कुमारे । सिरिदेवी-
पामोक्खा पंचसया-जाव-पुव्वभवे । महाघोसे नयरं । धम्मघोसे
गाहावई । धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे ।

महचंद्र—

४४०. चंपा नयरी । पुण्णभद्दे उज्जाणे । पुण्णभद्दे जक्खे । दत्ते
राया । रत्तवती देवी । महचंदे कुमारे जुवराया । सिरिकंता-
पामोक्खा पं पंचसया कन्ना-जाव-पुव्वभवो । तिगिणी नयरी ।
जियसत्तू राया । धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए-जाव-सिद्धे ।

जिनदास—

४३६. नोगन्धिका नगरी । नीलाशोक नामक उद्यान या । मुकाल
यक्ष या । अप्रतिहत राजा या । सुकण्णा देवी थी । महाचंद नामक
कुमार या । उसकी भार्या का नाम अरहदत्ता या । जिनदास नामक
पुत्र था । तीर्थंकर का आगमन हुआ । जिनदास का पूर्वभव
पृष्ठना । माध्यमिका नगरी थी । मेघरय राजा या । मुधमं अनगार
प्रतिलाभित किये-यावत्-सिद्ध हुआ ।

धनपति—

४३७. कनकपुर नगर था । श्वेताशोक उद्यान था । वीरभद्र
नामक यक्ष का यक्षायतन था । प्रियचन्द्र नामक राजा था ।
सुभद्रा देवी थी । वैश्रमणकुमार नामक युवराज था । श्रीदेवी
प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ । तीर्थंकर
भगवान का आगमन हुआ । धनपति युवराजपुत्र-यावत्-पूर्वभव
की पृच्छा की । मणिवयिका नगरी थी । वहाँ मित्र नामक राजा
था । संभूतिविजय अनगार प्रतिलाभित किये-यावत्-सिद्ध
हुआ ।

महावल—

४३८. महापुर नामक नगर था । वहाँ रक्ताशोक नामक उद्यान
था । उसमें रक्तपाद नामक यक्ष का यक्षायतन था । राजा का
नाम वल था । सुभद्रा देवी थी । महावल कुमार था । रक्तवती
प्रमुख पांच सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ । तीर्थंकर
भगवान का पदार्पण हुआ यावत्-पूर्वभव की पृच्छा की गई ।
मणिपुर नगर था । नागदत्त गाथापति था । इन्द्रपुत्र अनगार को
प्रतिलाभित किया-यावत्-सिद्ध हुआ ।

भद्रनन्दी—

४३९. सुघोष नगर था । उसमें देवरमण नामक उद्यान था ।
वीरसेन यक्ष का यक्षायतन था । राजा का नाम अर्जुन था ।
तत्त्ववतीदेवी थी । भद्रनन्दी कुमार था । श्रीदेवी प्रमुख पांच
सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ-यावत्-पूर्वभव के लिए
पृच्छा । महाघोष नगर था । वहाँ धर्मघोष गाथापति था ।
धर्मसिंह अनगार को प्रतिलाभित किया था-यावत्-सिद्ध हुआ ।

महचंद्र—

४४०. चंपा नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था । जिसमें पूर्णभद्र
यक्ष का यक्षायतन था । दत्त नामक राजा था । रानी का नाम
रक्तवती था । महचन्द्र कुमार युवराज था । श्रीकान्ता प्रमुख पांच
सौ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ-यावत्-पूर्वभव के लिये पृच्छा ।
तिगिणी नगरी थी । वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य
करता था । धर्मवीर्य अनगार को प्रतिलाभित किया-यावत्-सिद्ध
हुआ ।

वरदत्ते—

४४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं साएयं नामं नयरं होत्था । उत्तरकुहउज्जाणे । पासमिथो जवखो । मित्तनंदी राया । सिरि-
कंता देवी । वरदत्ते कुमारे । वरसेगापामोषखा पंच देवीसया ।
तित्थयरामणं । सावगधम्मं । पुव्वभवपुच्छा । सपडुवारे नयरे ।
विमलवाहणे राया । धम्मरुई अणगारे पडिलाभिए । मणुस्ताउए
निवद्धे । इहं उव्वण्णे । सेसं जहा सुवाहुस्त कुमारस्त । चिता-जाव-
पव्वज्जा । कप्पंतरिते-जाव-सव्वट्टुसिद्धे । तओ महाविदेहे जहा
वडपइण्णे-जाव-सिज्जिह्हि-जाव-सव्वदुख्खाणमंतं काहिइ ।

—विवागमुयं सु० २, अ० २-१०

वरदत्त—

४४१. उस काल, उस समय में, साकेत नाम का नगर था । वही
उत्तरकुह नाम का उद्यान था । उसमें पारवंमृग यक्ष का यक्ष-
यतन था । राजा का नाम मित्रनन्दी था । श्रीकान्ता देवी थी । परदत्त
कुमार था । वरसेना प्रभुच पांच नौ स्त्रियां थीं । तीर्थंकर
भगवान का आगमन हुआ । श्रावक धर्म ग्रहण किया । पूर्वभव
की पृच्छा । शतद्वार नगर था । वहाँ विमलवाहन राजा था ।
धर्मरुचि अनगर को आहारदान से प्रतिष्ठाभित किया ।
मनुष्यायु का बंध किया । यहाँ उत्पन्न हुआ । शेष वर्णन सुवाहु-
कुमार की तरह जानना । विचार किया-यावत्-प्रभ्रज्या अंगीकार
की । कल्पान्तरों में उत्पन्न होने के बाद-यावत्-सर्वापसिद्ध भं
उत्पन्न होगा । वहाँ से च्यवकर महाविदेह में उत्पन्न होगा, इह
प्रतिज्ञ की तरह-यावत्-सिद्ध होगा-यावत्-सर्व दुःखों का अंत
करेगा ।

卐

卐

३०. महावीरतित्थे सेणियनत्तू पउमसमणो अण्णे य ३० महावीरतीर्थ में श्रेणिकनप्त् (पीत्र) पदम आदि
श्रमण और अन्य

४४२. गाहा—पउमे, महापउमे, भदे, सुनहे, पउमनहे ।
पउमसेणे, पउमगुम्मे, नल्लिणगुम्मे, आणंवे, नंदणे ।

४४२. (गाथा) पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र,
पद्मसेन पद्मगुल्म, नल्लिनीगुल्म, आनंद और नंदन (३
दस अध्यायन है ।)

पउमजम्मणं—

पद्म-जन्म—

४४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था ।
पुण्णनहे खेइए । कूणिए राया । पउमावई देवी । तत्थ पं
धम्मए नयरीए सेणियस्त रत्तो भज्जा कूणियस्त रत्तो चुल्लनाउया
काली नामं देवी होत्था सुउमात्तराणियाया-जाय-सुहमा । तीत्ते
पं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था सुउमात्त-जाव-
सुहमे । तस्त पं कालस्त कुमारस्त पउमावई नामं देवी होत्था,
सोमात्त-जाव-सुहमा-आय-विहरइ ।

तए णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भन्तरओ सच्चित्तकम्मे-जाव-सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा । एवं जम्मणं, जहा महावलस्स, -जाव-नामधेज्जं— “जम्हा णं अम्हं इमे दारए कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं पउमे पउमे” । सेसं जहा महावलस्स । अट्टओ दाओ । -जाव-उत्पि पासाय-वरगए विहरइ ।

पउमपव्वज्जा—

सामी समोसरिए । परिसा निग्गया । कूणिए निग्गए । पउमे वि जहा महावले, निग्गए । तहेव अम्मापिइअपुच्छणा, -जाव-पव्वइए अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-गुत्तवम्भयारी ।

तए णं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जिता बहूहि चउत्थछट्टुम-जाव-विहरइ ।

तए णं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं, जहा मेहो, तहेव धम्मजागरिया, चिन्ता । एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपु-च्छित्ता विउले-जाव-पाओवगए समाणे तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं, बहुपडिपुण्णाइं, पंच वासाइं सामणपरियाए । मासियाए संलेहणाए सट्ठि भत्ताइं । आणु-पुव्वीए कालगए । थेरा ओत्तिणा । भगवं गोयमे पुच्छइ, सामी कहेइ, -जाव-सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलीइय-पडिक्कन्ते उड्डं चन्दिम० सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने । दो सागराइं ।

“से णं, भन्ते, पउमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं” । पुच्छा । “गोयमा, महाविदेहे वासे, जहा दडपइन्नो, -जाव-अन्तं काहिइ” ।

—कप्पव० अ० १

महावीरत्तित्थे सेणियनत्तूणो महापउमाइसमणा—

४४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था । पुण्ण-सहे चेइए । कूणिए राया । पउमावई देवी । तत्य णं चम्पाए

तदनन्तर वह पद्मावती रानी अन्यदा किसी समय जिसकी दीवारों पर चित्राम बने हुए थे ऐसे उस उत्तम शयनगृह में सोई हुई थी -यावत्-स्वप्न में सिंह को देखकर जानी-जाम गई । जन्म से लेकर नामकरण तक का सभी वर्णन महावल के समान जानना चाहिये—‘क्योंकि हमारा यह बालक कालकुमार का पुत्र और पद्मावती का आत्मज है, इसलिये हमारे इस दारक का नाम पद्म-पद्म हो ।’ इसके बाद का शेष वृत्तान्त महावल के सहश जानना । आठ दात-प्रीतिदान-दहेज मिले -यावत्-श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहते हुए विचरता है ।

पद्म की प्रव्रज्या—

स्वामी—श्रमण भगवान महावीर पधारें । परिपदा निकली । कोणिक भी निकला । पद्म भी महावल के समान धर्मोपदेश सुनने के लिये निकला । उसी प्रकार माता-पिता से पूछना-यावत्-प्रव्रजित हुआ । अनगार हो गया, ईर्या समिति का पालक-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी हो गया ।

तत्पश्चात् वह पद्म अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन कर बहुत से चतुर्यं, पठ, अष्टम भक्त तप से आत्मा को भावित करता हुआ -यावत्-विचरता है ।

तत्पश्चात् वह पद्म अनगार उस उदार तप कर्म से मेघ के सहश, उसी प्रकार धर्म जागरणा, चिन्तन और जैसे मेघ अन-गार ने पूछा आदि उसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर को पूछ-कर विपुल-यावत्-पादपोपगत हांकर—(पादपोपगमन संथारा लेकर) तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, परिपूर्ण पांच वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन किया । एक मास की संलेखना से आत्मा को बाराधना करते हुए और अनशन से साठ भक्तों का छेदन कर अनुक्रम से काल को प्राप्त हुआ । स्थविर उतरे । भगवान गौतम ने पूछा, स्वामी ने कहा-यावत्-अनशन द्वारा साठ भक्तों का छेदन कर आलोचना प्रतिक्रमण करके चन्द्र आदि से ऊपर सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ । वहां उसकी दो सागर की आयु स्थिति हुई ।

‘हे भगवन ! वह पद्म देव आयुक्षय होने पर उस देवलोक से च्युत होकर’ गौतम ने पूछा । ‘हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में, दृढप्रतिज्ञ के सहश-यावत्-अन्त करेगा ।’

महावीर तीर्थ में श्रेणिक-पौत्र महापद्म आदि श्रमण—

४४४. उस काल और उस समय चंपा नाम की नगरी थी । पूर्ण-भद्र चैत्य था । कोणिक राजा था । पद्मावती रानी थी । उस

नयरीए सेणियस्त रत्तो नञ्जा कूणियस्त रत्तो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्या । तीसे णं सुकालीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे । तस्स ण सुकालस्त कुमारस्त महापउमा नामं देवी होत्या सुउमाल० ।

तए णं सा महापउमा देवी अन्नया कयाइ तंति तारिसंगंति, एवं तहेव, महापउमे नामं दारए-जाव-सिज्जिहिइ-जाव-सव्व-दुखणमत्तं काहिइ । नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ उक्को-सट्ठिओ ।

४४५. एवं सेसा वि अट्टु नेयव्वा । मायाओ सरित्तनामाओ । कालाईगं दत्तण्हं पुत्ता आणुपुव्वीए—

दोण्हं च पञ्च चत्तारि तिण्हं तिण्हं च होन्ति तिण्णेव ।
दोण्हं च दोन्नि वासा सेणियनत्तूण परियाओ ।१।

उववाओ आणुपुव्वीए-पढमो सोहम्मो, विइओ ईसाणे, तइओ सणंकुमारे, चउत्थो माहिन्दे, पञ्चमो वम्मलोए, छट्ठो लत्तए, सत्तमो महासुव्वके, अट्टमो सहस्सारे, नवमो पाणए, दसमो अच्चुए । सव्वत्थ उक्कोसट्ठिई नाणियव्वा । महाविदेहे सिद्धे ।

—कप्पव० अ० ३-१०

卐

३१. महावीरतित्थे हरिएसवलो समणो

जन्मवाडे भित्तवट्ठं गमणं—

४४६. सोयानकुलत्तंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसवलो नाम, आत्तो निषयू जिइदिओ ।१।
हरि-एसण-भासाए, उच्चारत्तमिइमु य ।
अओ आयाण-निषये, सजओ मुत्तमाहिओ ।२।
गणगुत्तो ययगुत्तो, कायगुत्तो जिइदिओ ।
निषयुत्ता वंनइज्जम्मि, जन्मयाइमुवट्ठिओ ।३।
त्वं पात्तिउपनेज्जत्तं, तथेण परिसोमिणं ।
परीयहि-उयगरणं, उयहसति ज्जाहिवा ।४।

चंपानगरी में श्रेणिक राजा की भायां कुणिक राजा की मोत्तिसी मां सुकाली नामकी रानी थी । उस सुकाली का सुकालकुमार नाम का पुत्र था । उस सुकालकुमार को महापद्मा नामक स्त्री थी जो मुकुमाल गरीर वाली और सुन्दरी थी ।

तत्पञ्चात् यह महापद्मा रानी अन्वया किनी नमस तस्मिन् उस (जय्या) में और सब वर्णन पूर्ववत् जानना, वास्तव का नाम-करण महापद्म किया—यावत्-मर्वदुःखों का अन्त करेगा । विशेषता यह है कि ईशानकल्प में उत्कृष्ट स्थिति नष्ट उत्पन्न हुआ ।

४४५. इसी प्रकार जेप आठ के लिये भी जानना चाहिये । माताओं के नाम सट्ठ हैं—मातायें सहस्रनामवाली हैं ।

कालादि के दसों पुरो की अनुक्रम से श्रमण पर्याय इन प्रकार है—श्रेणिक के पीछों में ने दो ने पांचवर्ष, तीन ने चार वर्ष, तीन ने तीन वर्ष, और दो ने दो वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया ।

अनुक्रम से इस प्रकार उत्पन्न हुए—पहला सौधमं कल्प में, दूसरा ईशानकल्प में, तीसरा मन्तुकुमारकल्प में, चौथा माहेन्द्र कल्प में, पांचवा ब्रह्मलोक कल्प में, छठा लान्धक कल्प में, सातवां महानुक कल्प में, आठवा मन्थारकल्प में, नौवा प्राणत मे, दसवां अच्चुत मे । सबही उत्कृष्ट स्थिति रहना चाहिये । महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होंगे ।

卐

३१ महावीर तीर्थ में हरिकेशवल श्रमण

जाईमय-पडिबद्धा, हिंसगा अजिइंविया ।
अवंमचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी ।१।

हरिएसं दट्ठूणं माहणरोसो—

४४७. कयरे आगच्छइ दित्तरुवे ? काले विकराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरवूसं परिहरिय कंठे ।६।

कयरे तुमं इय अवंसणिज्जे ? काए व आसा इहमागओसि ?
ओम-चेलया पंसु-पिसायभूया, गच्छ वखलाहि किमिहं ठिओ सि ।७।

जक्खया हरिएसपसंसा—

४४८. जक्खे तर्हि तिडुयक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिसस ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्या ।८।

समणो अहं संजओ वंभयारी, विरओ धण-पयण-परिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ।९।

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणेह मे जायण-जीविणो त्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सी ।१०।

जक्खस्स माहणेहि संवादो—

माहणा—

४४९. उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं, दाहामु तुज्जं किमिहं ठिओ सि ? ।११।

जक्खो—

थलेसु बीयाइ ववंति कासगा, तहेव निग्नेसु य आससीए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खित्तं ।१२।

माहणा—

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा ।
जे माहणा जाइ-विज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ।१३।

जातिमद से प्रतिवद्ध—दृप्त, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अत्रह्यचारी
और अज्ञानी लोगों ने इस प्रकार कहा ।१।

हरिकेश को देखकर ब्राह्मणों का रोप—

४४७. वीभत्स रूप वाला, काला, विकराल, थंडोल नाक वाला,
अल्प एवं मलिन वस्त्र धारी, पांगुपिशाच—धूलि धूसरित होने के
कारण भूत की तरह दिवाई देने वाला—गले में संकरदूष्य
(कूड़े के ढेर से उठाकर लाया गया वस्त्र) धारण करने वाला
यह कौन आ रहा है ? ।६।

अरे अदर्शनीय ! तू कौन है ? यहां किस आशा से आया
हे तू ? गंदे और धूलि धूसरित वस्त्र से तू अघनंगा पिशाच की
तरह दीख रहा है । जा, भाग यहां से, यहां क्यों खड़ा है ? ।७।

यक्ष द्वारा हरिकेश को प्रशंसा—

४४८. उस महामुनि के प्रति अनुकंपा भाव रखने वाले तिन्दुक
वृक्षवासी यक्ष ने अपने शरीर का गोपन कर इस प्रकार
कहा— ।८।

“मैं श्रमण हूँ, मैं संयत हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं धन, पचन—
भोजन पकाना और परिग्रह का त्यागी हूँ । भिक्षा के समय
दूसरों के लिये निष्पन्न आहार के लिये यहां आया हूँ ।९।

यहां प्रचुर अन्न दिया जा रहा है, खाया जा रहा है, उपभोग
में लाया जा रहा है । आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भिक्षा-
जीवी हूँ । अतः वचे हुए अन्न में से कुछ इस तपस्वी को भी
मिल जाये ।१०।

यक्ष का ब्राह्मणों से संवाद—

ब्राह्मण—

यह भोजन केवल ब्राह्मणों के लिये तैयार किया गया है ।
यह एक पक्षीय है, अतः दूसरों के लिये अदेय है । हम तुझे यह
यज्ञार्थ निष्पन्न अन्नजल नहीं देंगे । फिर तू यहां क्यों खड़ा
है ? ।११।

यक्ष—

अच्छी फसल की आशा से कृषक जैसे ऊंची जमीन में बीज
बोते हैं, वैसे ही नीची जमीन में भी बोते हैं । इस श्रद्धा से ही
मुझे दान दो, मैं भी पुण्य क्षेत्र हूँ अतः मेरी भी आराधना
करो ।१२।

ब्राह्मण—

संसार में ऐसे क्षेत्र हमें मालूम हैं, जहाँ बोये गये बीज पूर्ण
रूप से उग आते हैं । जो जाति और विद्या से संपन्न ब्राह्मण हैं,
वे ही पुण्य क्षेत्र हैं ।१३।

जयघो—

कोहो य माणो य वहो य जौसि, मोसं अदत्तं च परिगहं च ।
ते माहणा जाइ विज्जा-विहोणा, ताइं तु खेत्ताइं मुपावयाइं ।१४।
तुभ्मेत्य मो भारधरा गिराणं, अट्टं न जाणाह अहिज्ज वेए ।
उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसत्ताइं ।१५।

माहणा—

अज्जावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किं नु सगासि अम्हं ?
अवि एयं विणस्तउ अन्नवाणं, न य णं दाहामु तुहं निघंठा ! ।१६।

जयघो—

समिद्धिं मज्जं सुसमाहियस्स, गुत्तोही गुत्तस्स जिद्धियस्स ।
जइ मे न दाहित्थ अहेसगिज्जं, किमज्ज जन्नाण लहित्थ लाहं ।१७।

माहणा—

के इत्थ पत्ता उवजोइया वा, अज्जावया वा सह खंडिहं ।
एयं एउ वंउेण फलेण हुंता, कंठमि घेत्तूण खलेज्ज जो ण ।१८।

कुमारोहि हरिएसताउणं—

४५०. अज्जावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ वहु कुमारा ।
वंडेहि वित्तेहि कसेहि चेष, समागया तं इमि तालयंति ।१९।

भद्राए निवारणं पसंसा य—

४५१. रन्तो तहि कोत्तलियस्स घूया, 'महत्ति' नामेण अग्गियंणी ।
तं पासिया संजय हम्ममाण, कुट्टे कुमारे परिनिव्वयेइ ।२०।
देवाभिओणेण निओइएणं, दिन्ना मु रन्ना मणना न ज्ञाया ।
वरिद-वेधिरभिघंदिएणं, जेणहि वंता इत्तिणा स एणो ।२१।

एणो हु तो उग्गतवो महप्पा, जिद्धिओ संजओ वंनयारी ।
ओ भं तया वेच्छट्ट दिग्गमाणि, पिउपा तयं कोत्तलियेण रन्ना ।२२।

महाजतो एत मयाणुप्रयो, पोरधवो पोरवरवक्को व ।
मा एय हीवेइ अहीसणिज्जं, मा तव्ये तेएण भे तिह्वेज्जा ।२३।

यक्ष—

जिनमे क्रोध, मान, रिता, झूठ, चोरी और परिचर देवे जाति और विद्या से विहीन ब्राह्मण पारकोप है ।१४।

हे ब्राह्मणों ! इस संसार में तुम लोग केषव बाणी का भार ही वहन कर रहे हो, वेदों को पढ़कर भी, उनके अर्थ को नहीं जानते हो । जो मुनि भिक्षा के लिये समसारपूर्णक डेव-भोग घरों में जाते हैं, वे ही पुण्य क्षेत्र है ।१५।

ब्राह्मण—

अध्यापकों के प्रति प्रतिकूल बोलने वाला अरे निर्दय ! हमारे सामने यह क्या बकवास कर रहा है ? भले नू अन्नदान सड़कर नष्ट हो जाये, परन्तु हम तुझे नहीं देंगे ।१६।

यक्ष—

मैं नमिनियों ने गुणमाहित है, मुणियों में गुण है और जितेन्द्रिय है, अतएव यदि यह एषणीय ब्राह्मण मुझे नहीं देता तो इन यज्ञों का आज तुम क्या लाभ लोगे ? ।१७।

ब्राह्मण—

यहा है कोई क्षत्रिय, उरग्योनिय—रसोदर, अध्यापक और छात्र, जो इनको उंठे मे, फलक मे, पीटकर और बट पहाड़कर यहाँ में निकाल दे ।१८।

कुमारों द्वारा हरिकेश-नाशन—

४५०. अध्यापकों के वचन सुनकर बहुत से कुमारों की आँखें बहतीं थीं और उठते थे, बेंनी में, पाटुरी में उन मुणियों को पीटने लगे ।१९।

भद्रा द्वारा निवारण आर प्रसंसा—

४५१. राजा कौमलिक की अति-य सुन्दरी भद्रा नाम की कन्या ने संवत—मुनि को निन्दने देखकर कुछ कुमारों को रोका । राजा देवता की उलझनी करणा ने राजा ने मुझे इस मुनि को दिया था, किन्तु मुनि ने मुझे मन से भी न पाया । मेरा चारुवाण करने वाले ने मुनि—शक्ति तरेदो और देवदो राजा को पूजित है ।२१।

जक्खेहि निवारणं असुरेहि कुमारताडणं य—

४५२. एयाइं तीसे वयणाइं सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं ।
इसिस्स वेयावडियट्टयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयंति । २४।
ते घोररूवा ठिय अंतलिकखे, असुरा तहि तं जणं तालयंति ।
ते भिन्नवेहे रहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा, इणमाहु भुज्जो । २५।

भद्दाए पुणो पसंसा—

४५३. गिरि नहेहि खणह, अयं वंतेहि खायह ।
जायतेयं पाएहि हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह । २६।
आसीविसो उगतवो महेसी, घोरच्चओ घोरपरक्कमो य ।
अगणिं व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह । २७।

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे ।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं पि एसो कुविओ उहेज्जा । २८।

माहणेण खमाजायणं—

४५४. अवहेडिय-पिट्ठि-सउत्तमंगे, पसारिया बाहु अकम्मचेट्ठे ।
निब्भेरियच्छे रहिरं वमंते, उद्धंमुहे तिग्गय-जीह-नेत्ते । २९।

ते पासिया खंडियकट्ठभूए, विमणो विसणो अह माहणो सो ।
इसि पसाएइ सभारियाओ, हीलं च निदं च खमाह भंते ! । ३०।

वालैहि मूढेहि अयाणएहि, जं हीलिया तस्स खमाह भंते ! ।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न ह्मुणी कोवपरा हवंति । ३१।

मुणी—

पुंवि च इण्हि च अणागयं च, मणप्पओसो न मे अत्थि कोइ ।
जक्खा हु वेयावडियं करंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा । ३२।

माहणा—

अत्थं च धम्मं च विद्याणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूडपन्ना ।
तुब्भंतु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे । ३३।

असुर यक्ष द्वारा निवारण और कुमार-ताड़न—

४५२. पुरोहित की पत्नी भद्रा के इन सुभाषित वचनों को सुन-
कर ऋषि की सेवा के लिये यक्ष कुमारों को रोकने लगे ।

आकाश में स्थित भयंकर रूप वाले असुर भावापन्न क्रुद्ध
यक्ष उनको प्रताड़ित करने लगे । कुमारों को अत-विभ्रत और
खून की उल्टी करते देखकर भद्रा ने पुनः कहा । २५।

भद्रा द्वारा पुनः प्रशंसा—

४५३. जो भिक्षु का अपमान करते हैं, वे नद्यों से पर्वत उदरते
हैं, दांतों से लोहा चबाते हैं और पंरों से अग्नि को कुचलते हैं ।

महर्षि आशीर्विष है, घोर तपस्वी है, घोरव्रती है, घोर
पराक्रमी हैं । जो भिक्षु को भिक्षा काल में व्यथित करते हैं वे
लोग पतंगों की भांति अग्नि में गिरते हैं । २७।

यदि तुम लोग अपना जीवन और धन चाहते हो तो सब
मिलकर, नतमस्तक होकर इनकी शरण लो । तुम्हें मानुम होना
चाहिये—यह ऋषि कुपित होने पर समस्त विश्व को भस्म कर
सकते हैं । २८।

ब्राह्मणों द्वारा क्षमा याचन—

४५४. मुनि को पीटने वाले कुमारों—छात्रों के तिर पीठ की ओर
झुक गये थे । उनकी भुजायें फँस गई थीं । वे निश्चेष्ट हो गये
थे । उनकी आँखें खुली की खुली रह गई थीं । उनके मुँह से
रक्त बहने लगा था । उनके मुँह ऊपर को हो गये थे । उनकी
जीभें और आँखें बाहर निकल आई थीं । २९।

इस प्रकार उन छात्रों को काण्ठ की तरह निश्चेष्ट देखकर
वह उदास और भयभीत ब्राह्मण ऋषि को प्रसन्न करने लगा—
भन्ते ! हमने जो आपको अवहेलना और निन्दा की है, उसे
क्षमा करें । ३०।

भन्ते ! मूढ़ अज्ञानी बालकों ने आपकी जो अवहेलना की
है, उन्हें आप क्षमा करें । ऋषिजन महान प्रसन्नचित्त होते हैं,
मुनि किसी पर क्रोध नहीं करते हैं, मुनि क्रोध करने वाले नहीं
होते हैं । ३१।

मुनि—

मेरे मन में न पहले कोई द्वेष था, न अब है और
न भविष्य में भी होगा । यक्ष सेवा करते हैं, उन्होंने ही कुमारों
को प्रताड़ित किया है । ३२।

ब्राह्मण—

धर्म और अर्थ को यथार्थ रूप से जानने वाले भूतिप्रज्ञ आप
क्रोध नहीं करें । हम सब मिलकर आपके चरणों में आये हैं,
शरण ले रहे हैं । ३३।

अच्चमु ते महानाग !, न ते किञ्चि न अच्चिमो ।
भुंजाहि सात्थिमं कूरं, नाणा-वंजण-संजुयं ।३४।

इमं च मे अत्थि पन्नयमन्नं, तं भुंजसु अम्म अणुगहट्ठा ।
याडं ति पडिच्छइ भत्तपाण, मासस्स ऊ पारणाए महप्पा ।३५।

तहियं गंधोदय-पुष्फवासं, दिव्वा तहि वसुहारा य वुट्ठा ।
पह्याओ वुंदुहीओ सुरेहि, आगासे अहो दाणं च पुट्ठं ।३६।

सवयं ए वीसइ तवोवित्सेसो, न दीसइ जाइवित्सेस कोई ।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुनागा ।३७।

मुणिणा जणसहवपरूवणं—

मुणी—

४५५. कि माहणा ! जोइत्तमारभंता, उदएण सोहि वहिया
विमग्गहा ? ।
जं मग्गहा याहिरियं वित्थोहि, न त सुविट्ठं कुसला-वयंति ।३८।

कुसं च जूयं तणकट्टमग्गि, सायं च पायं उदगं फुसंता ।
पाणाइ भूपाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा ! पगरेह पायं ।३९।

माहणा—

इहं परे भियपू ? ययं जयामो, पायाइ कम्माइ पणुत्तयामो ।
अवघाहि जे संजय ! जयवपूइया, कएं मुज्जट्ठं कुसला वयंति ।४०।

मुणी—

उज्जोयक्काए अत्तमारभंता, मोत्तं अवत्तं च अत्तेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिजो भाण भायं, एयं परिग्गवाय अरंति संता ।४१।

पुणइया पयहि संघरेहि, इह जीवियं अजसंघमाणा ।
पेतुक्काया सुइयत्तरेहा, महाजय जयई अन्नविट्ठं ।४२।

हे महाभाग ! हम आपको अर्चना करते हैं, आपका ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे हम अर्चना न करें। अब आप शिष्ट आदि नाना वंजनों ने मिश्रित तापि—चावलों के मिश्रित भोजन खाइये ।३४।

यह हमारा प्रचुर अन्न है, हमारे अनुग्रहाय हमें स्वीकार कीजिये। इस आग्रह पर ऋषि ने स्वीकृति दे दी और एक भाग की तपस्या का पारणा करने के लिए आहार-गानी ग्रहण किया ।३५।

देवों ने वहाँ गंधोदक, पुष्प और दिग्धघन की वर्षा की और दुन्दुभियां बजाईं, और आकाश में 'अहीशानम्' का घोष किया ।३६।

प्रत्यक्ष मे तप की विशेषणा—महिमा दिग्ग रही है किन्तु जाति की कोई विभेदता नहीं दीखती है। यह एकिकेन मुनि स्वपाकपुत्र—चावल-पुत्र हैं जिसकी ऐसी महान भक्तिकारी ऋद्धि है ।३७।

मुनि द्वारा यज्ञ-स्वहव प्रकषण—

मुनि—

४५५. हे ब्राह्मणो ! अग्नि का समारम्भ (यज्ञ) करते हुए क्या तुम बाहर से जल ले मुद्धि करना चाहते हो ? जो बाहर ले मुद्धि की योजना करते हैं, उन्हें तुल्य पुत्र मुद्धि—मन्त्र-ग्रथा नहीं कहते हैं ।३८।

कुस, धूप, तुल्य, काष्ठ और अग्नि का प्रयोग तथा आहुत और मंत्रों का चर्म—इन प्रकार तुम मन्त्रमुद्धि लोग प्राणियों और भूत (यक्षादि) जीवों का विनाश करने हुए पापवर्म कर रहे हो ।३९।

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! हम कैसे प्रार्थना करें ? जैसे जल लेंगे ? जैसे पाप कर्मों को दूर करें ? ये वक्ष्यंति संघे । हम इससे न कत्तव्य प्रथम श्रेष्ठ मन कीजना चाहते हैं ।४०।

मुनि—

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया कि च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू ? कयरेण होमेण हुणासि जोई ?
। ४३ ।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं । ४४ ।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतित्थे ? कहिसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया, इच्छामो नाउ भवओ सगासे । ४५ ।

मुणी—

धम्मे हरए बंभे संतित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिसि ण्हाओ विमलो विमुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं । ४६ ।

एयं सिणाणं कुसलेहि विट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिसि ण्हाया विमला विमुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता । ४७ ।

—त्ति वेमि

—उत्त० अ० १२

ब्राह्मण—

हे भिक्खु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सो है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षोपक कड़छो क्या है ? करो-पांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ? ४३।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छो है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ । ४४।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा हृद-सरोवर कौन सा है ? शांतिनीथं कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं । ४५।

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुप लेखावाला धर्म मेरा हृद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विगुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ । ४६।

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्महृद में स्नान करके महर्षि विमल और विगुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं । ४७।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐

卐

३१. महावीरतित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

वाणारसी-उज्जाणे जयघोसमुणी आगमणं—
४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्मि जयघोसे त्ति नामओ । १ ।

इन्द्रियगामनिग्गाही मग्गामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते पत्तो वाणारसि पुदि । २ ।

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाराणसी के उद्यान में जयघोष मुनि का आगमन—
४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याज्ञिक था । १।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था । एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया । २।

वाणारसीए वहिया उज्जापमि मणोरमे ।
फानुए सेज्जसंधारे तत्य वासमुवागए ।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्य माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्तं जयइ चेषयी ।४।

अह से तत्य अणगारे नासयणनपारणे ।
विजयघोसस्त जन्तमि भिवखस्तइटा उउट्टिए ।५।

भिवग्वादाण-निसेहो—

४५७. समुवट्ठियं तहिं सत्तं जायगो पडित्तेहए ।
न हु दाहामि ते भिवग्ं भिवग्ं । जायाहि अन्नओ ।६।

जे य चेषविज्ज विष्पा जन्तइटा य जे दिवा ।
जोइसंगविज्ज जे य; जे य धम्माण पारगा ।७।

जे समत्था समुउत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
तेत्ति अन्नमिणं देयं; भो भिवग्ं । सधकामियं ।८।

सो एवं तत्य पडिनिउो जायणेण महामुणो ।
न वि ह्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ--गवेसओ ।९।

नज्जट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा ।
तेत्ति विमोवणणट्ठाए इमं वयणमव्ववी ।१०।

वेद-जन्ताणदिमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

जयघोम मुष्णी—

४५८. न वि जाणामि वेपमुहं न वि जन्ताण जं मुहं ।
सव्वत्ताण मुहं जं च जं य धम्माण या मुहं ।११।

जे समत्था समुउत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
न ने तुमं विजाणामि अह जाणामि सो भव ।१२।
सत्तव्वत्तव्वमोवणं च जयघोमो तहिं दिजो ।
सवरित्ते पज्जती होउं पुउउई न म्हासुमि ।१३।

विजयघोस—

वेज्जाणं य मुहं मुहं मुहं जयघोमं य मुहं ।
सव्वत्ताणं मुहं मुहं मुहं जयघोमं या मुहं ।१४।

वाराणसी के बाहर मगौरम पत्तान में समुक्त मरदा बसति और संनारक—पीठ, कपड आदि आसन भी वाचना कर उतर गया ।३।

उसी समय उभ पुरी में यहाँ का भावा, विजयघोस नाम का ब्राह्मण राज कर रहा था ।४।

वह जयघोस मुनि एक मान्य श्री भगवतों के कारण से समय भिक्षा के लिए विजयघोस के राजमंडप में उपस्थित हुए ।५।

भिक्षादान का निषेध—

४५७. यत्कर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि का उत्तर करता है—भिक्षु ! मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा जयघोस वाचना करे ।६।

जो धर्मों के जगत् विक्र-ब्राह्मण है, यज्ञ करने का अधिकार और ज्योतिष के जगत् के ज्ञाता है, एवं धर्मज्ञान से ही वाचना करे (मथा)—।७।

जो अपना जोर दूसरों का उदार करने में लगे है, हे भिक्षु ! यज्ञ नयेकामिक—सर्वेकमुक्त एव गव नो जयोइत इव उन्ती को देना है ।।८।

वही, इस प्रकार वाचक विजयघोस के द्वारा मना किए जगत् पर उत्तम अर्थ की घोष करने वाला राजमणुमि न ११—१२। हुआ और न प्रसन्न हुआ ।६।

न तो अन्न के लिए, न अन्न के लिए, न ही अन्न-मि-सो के लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) व कल्याण हेतु मुनि न इस प्रकार कहें— ।१०।

वेद एवं यज्ञमुद्य आदि विषय में जयघोस मुनि की वक्तव्यता—

जयघोस मुनि—

४५८. न वि जाणामि वेपमुहं न वि जन्ताण जं मुहं ।
सव्वत्ताण मुहं जं च जं य धम्माण या मुहं ।११।

जे समत्था समुउत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
न ने तुमं विजाणामि अह जाणामि सो भव ।१२।
सत्तव्वत्तव्वमोवणं च जयघोमो तहिं दिजो ।
सवरित्ते पज्जती होउं पुउउई न म्हासुमि ।१३।

विजयघोस—

वेज्जाणं य मुहं मुहं मुहं जयघोमं य मुहं ।
सव्वत्ताणं मुहं मुहं मुहं जयघोमं या मुहं ।१४।

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया कि च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खु ? कयरेण होमेण हुणासि जोई ?
। ४३ ।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरोरं कारिसंगं ।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं । ४४ ।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतित्थे ? क्हिसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया, इच्छामो नाउं भवओ सभासे । ४५ ।

मुणी—

धम्मे हरए वंमे संतित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
ज्हिसि ण्हाओ विमलो विमुद्धो, सुत्तीइभूओ पजहामि दोसं । ४६ ।

एयं सिणाणं कुसलेहि विद्धं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
ज्हिसि ण्हाया विमला विमुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता । ४७ ।

—त्ति वेमि

—उत्त० अ० १२

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सी है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षेपक कड़छी क्या है ? करी-पांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ? ४३ ।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छी है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ । ४४ ।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा हृद-सरोवर कौन सा है ? शांतितीर्थ कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं । ४५ ।

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुष लेश्यावाला धर्म मेरा हृद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ । ४६ ।

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्महृद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं । ४७ ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐

卐

३१. महावीरत्तित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

वाराणसी-उत्ताने जयघोसमुणी आगमणं—
४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जाकाई जमजन्तंमि जयघोसे त्ति नामओ । १ ।

इन्द्रियगाननिग्गाहो नग्गयामी मद्दामुणी ।
मानानुगानं रोदन्ते पत्तो वाराणसि पुरि । २ ।

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाराणसी के उत्तान में जयघोष मुनि का आगमन—
४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याज्ञिक था । १ ।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था । एक दिन व्रामानुग्राम चिहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया । २ ।

वाणारसीए वहिया उज्जाणमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंधारे तत्थ वासमुघागए ।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्तं जयइ चयेवी ।४।

अह से तत्थ अणगारे नासखमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्तमि भियखस्सट्ठा उवट्ठिए ।५।

भिवखादाण-निसेहो—

४५७. समुवट्ठियं तहिं सन्तं जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिवखं भिवखू ! जायाहिं अन्नओ ।६।

जे य वेयविऊ विष्पा जन्तट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य; जे य धम्माण पारगा ।७।

जे समत्या समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं; नो भिवखू ! सब्बकामियं ।८।

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ--गवेसओ ।९।

नज्जट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसिं विमोखणट्ठाए इमं वयणमब्बवी ।१०।

वेद-जन्नाणदिमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

जयघोस मुणी—

४५८. न वि जाणासि वेयमुहं न वि जन्नाण जं मुहं ।
नखत्ताण मुहं जं च जं च धम्माण वा मुहं ।११।

जे समत्या समुद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि अह जाणासि तो भण ।१२।
तस्सखेवपमोक्खं च अचयन्तो तहिं दिओ ।
सपरिसो पंजली होउं पुच्छई तं महामुणि ।१३।

विजयघोस—

वेयाणं च मुहं वूहि वूहि जन्नाण जं मुहं ।
नखत्ताण मुहं वूहि वूहि धम्माण वा मुहं ।१४।

वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या
वसति और संस्तारक—पीठ, फलक आदि आसन की याचना
कर ठहर गया ।३।

उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का
ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ।४।

वह जयघोष मुनि एक मास की तपश्चर्या 'के पारणा के
समय भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ मंडप में उपस्थित हुआ ।५।

भिक्षादान का निषेध—

४५७. यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को
इन्कार करता है—भिक्षु ! “मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा अन्यत्र
याचना करो ।६।

जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं
और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी
हैं (तथा)—।७।

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं,
हे भिक्षु ! यह सर्वकामिक—सर्वरसयुक्त एवं सब को अभीष्ट अन्न
उन्हीं को देना है ।” ।८।

वहाँ, इस प्रकार याजक विजयघोष के द्वारा मना किए जाने
पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला वह महामुनि न रुष्ट—ऋद्ध
हुआ और न प्रसन्न हुआ ।९।

न तो अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवन-निर्वाह के
लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) व कल्याण हेतु मुनि ने इस
प्रकार कहा— ।१०।

वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की
वक्तव्यता—

जयघोष मुनि—

४५८. (विप्र !) “तू वेद के मुख को नहीं जानता है और न जो
यज्ञों का मुख है, नक्षत्रों का जो मुख है और धर्मों का जो मुख है,
उसे ही जानता है ।” ।११।

—“जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं,
उन्हें भी तू नहीं जानता है । यदि जानता है, तो बता ।” ।१२।

उसके (मुनि के) आक्षेपों का—प्रश्नों का प्रमोक्ष अर्थात् उत्तर
देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिषदा (उपस्थित ज्ञाति
व मित्रों) के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से यों पूछा—।१३।

विजयघोष ब्राह्मण —

“मुने ! तुम कहो—वेदों का मुख क्या है ? यज्ञों का जो मुख
है, वह भी बतलाओ । नक्षत्रों का मुख बतलाओ और धर्मों का
जो मुख है, उसे भी कहो—।१४।

माहणा—

के ते जोई के व ते जोइठाणा ? का ते सुया किं च ते कारिसंगं ?
एहा य ते कयरा संति भिक्खू ? कयरेण होमेण हुणासि जोईं ?
। ४३ ।

मुणी—

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरोरं कारिसंगं ।
कम्मं एहा संजमजोग संती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं । ४४ ।

माहणा—

के ते हरए के य ते संतित्थे ? कहिसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपुइया, इच्छामो नाउं भवओ सगासे । ४५ ।

मुणी—

धम्मे हरए बंभे संतित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विमुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं । ४६ ।

एयं सिणाणं कुसलेहि विट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिंसि ण्हाया विमला विमुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाण पत्ता । ४७ ।

—त्ति वेमि

—उत्त० अ० १२

ब्राह्मण—

हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन सी है ? ज्योति का स्थान कौन सा है ? घृतादि प्रक्षेपक कड़छी क्या है ? करो-पांग (उपले) कौन से हैं ? ईंधन और शांति पाठ कौनसा है ? और किस होम-हवन प्रक्रिया से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ? ४३ ।

मुनि—

तप ज्योति है, जीव-आत्मा ज्योति स्थान है, मन-वचन-काया का योग कड़छी है, शरीर कंडे हैं, कर्म ईंधन है, संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ । ४४ ।

ब्राह्मण—

हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइये कि तुम्हारा हृद-सरोवर कौन सा है ? शांतितीर्थ कौन से हैं ? तुम कहां स्नान कर रज-मलिनता दूर करते हो ? हम आपसे यह जानना चाहते हैं । ४५ ।

मुनि—

आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुप लेश्यावाला धर्म मेरा हृद है, जहां स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध एवं शांत होकर कर्म रज को दूर करता हूँ । ४६ ।

कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिये यह महान स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्महृद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं । ४७ ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

卐

卐

३१. महावीरतित्थे जयघोस विजयघोस मुणी

वाराणसी-उज्ज्याण जयघोसमुणी आगमणं—

४५६. माहणकुलसंभूओ आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्तंमि जयघोसे त्ति नामओ । १ ।

इन्द्रियगामनिग्गाही मग्गगामी महामुणी ।

गामानुगामं रीयन्ते पत्तो वाराणसीं पुंरि । २ ।

३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष मुनि

वाराणसी के उद्यान में जयघोष मुनि का आगमन—

४५६. ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष नाम का एक ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप (घोर) यज्ञ में अनुरक्त याज्ञिक था । १ ।

(प्रतिबोध पाकर) वह इन्द्रिय-समूह (पांचों इन्द्रिय) का निग्रह करने वाला सुमार्गगामी महामुनि हो गया था । एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी नगरी में पहुँच गया । २ ।

वाणारसीए वहिया उज्जाणंमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंथारे तत्थ वासमुवागए ।३।

अह तेणेव कालेणं पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण जन्तं जयइ वेयवी ।४।

अह ते तत्थ अणगारे मासवणमणपारणे ।
विजयघोसस्त जन्तंमि भिक्खस्तसुट्ठा उवट्टिए ।५।

भिक्खादाण-नित्सेहो—

४५७. समुवट्ठियं तहि सन्तं जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्खं भिक्खू ! जायाहि अन्नओ ।६।

जे य वेयविऊ विप्पा जन्नट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य; जे य धम्माण पारगा ।७।

जे समत्या समुद्धत्तं परं अप्पाणमेव य ।
तेसि अन्नमिणं देयं; नो भिक्खू ! सव्वकामियं ।८।

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो उत्तमट्ठ—गवेसओ ।९।

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसि विमोक्खणट्ठाए इमं वयणमव्ववो ।१०।

वेद-जन्नाणदिमुह विसये जयघोस वत्तव्वया—

जयघोस मुणी—

४५८. न वि जाणासि वेयमुहं न वि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च जं च धम्माण वा मुहं ।११।

जे समत्या समुद्धत्तं परं अप्पाणमेव य ।
न ते तुमं वियाणासि अह जाणासि तो भण ।१२।
तत्सज्जखेवपमोक्खं च अचयन्तो तहि दिओ ।
सपरिसो पंजलो होउं पुच्छई तं महामुणि ।१३।

विजयघोस—

वेयाणं च मुहं बूहि बूहि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं बूहि बूहि धम्माण वा मुहं ।१४।

वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या
वसति और संस्तारक—पीठ, फलक आदि आसन की याचना
कर ठहर गया ।३।

उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का
ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ।४।

वह जयघोष मुनि एक मास की तपश्चर्या के पारणा के
समय भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ मंडप में उपस्थित हुआ ।५।

भिक्षादान का निषेध—

४५७. यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को
इन्कार करता है—भिक्षु ! “मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा अन्यत्र
याचना करो ।६।

जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं
और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी
हैं (तथा)—।७।

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं,
हे भिक्षु ! यह सर्वकामिक—सर्वरसयुक्त एवं सब को अभीष्ट अन्न
उन्हीं को देना है ।” ।८।

वहाँ, इस प्रकार याजक विजयघोष के द्वारा मना किए जाने
पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला वह महामुनि न रुष्ट—क्रुद्ध
हुआ और न प्रसन्न हुआ ।९।

न तो अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवन-निर्वाह के
लिए, किन्तु उनके विमोक्षण (मुक्ति) व कल्याण हेतु मुनि ने इस
प्रकार कहा— ।१०।

वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की
वक्तव्यता—

जयघोष मुनि—

४५८. (विप्र !) “तू वेद के मुख को नहीं जानता है और न जो
यज्ञों का मुख है, नक्षत्रों का जो मुख है और धर्मों का जो मुख है,
उसे ही जानता है ।” ।११।

—“जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं,
उन्हें भी तू नहीं जानता है । यदि जानता है, तो बतला ।” ।१२।

उसके (मुनि के) आक्षेपों का—प्रश्नों का प्रमोक्ष अर्थात् उत्तर
देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिपदा (उपस्थित ज्ञाति
व मित्रों) के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से यों पूछा—।१३।

विजयघोष ब्राह्मण—

“मुने ! तुम कहो—वेदों का मुख क्या है ? यज्ञों का जो मुख
है, वह भी बतलाओ । नक्षत्रों का मुख बतलाओ और धर्मों का
जो मुख है, उसे भी कहो—।१४।

जे समत्था समद्धत्तुं परं अग्पाणमेऽयं ।
एयं मे संसयं सव्वं साहू ! कहसु पुच्छिओ ११५।

जयघोस—

अग्गिहोत्तमुहा वेया जन्नट्ठी वेयसां मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं चंदो धम्माणं कासवो मुहं ११६।

जहा चंदं गहाईया चिट्ठन्ती पंजलीज्जा ।
वन्दमाणा नमंसन्ता उत्तमं मणहारिणो ११७।

अजाणगा जन्नवाई विज्जा माहणसंपया ।
गूढा सज्जायतवसा भासच्छन्ता इवग्गिणो ११८।

समण-माहण-तावस सुरूव विसये वत्तव्वया—

४५६. जे लोए बम्भणो वुत्तो अग्गी वा महिओ जहा ।
सया कुसलसंदिट्ठं तं वयं बूम माहणं ११९।

जो न सज्जइ आगन्तुं पव्वयन्तो न सोयई ।
रमए अज्जवयणंमि तं वयं बूम माहणं १२०।

जायरूवं जहामट्ठं निद्धन्तमलपावणं ।
राग-द्वेष-भयाईयं तं वयं बूम माहणं १२१।

तवस्सियं किसं दन्तं अवच्चियमंस-सोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वारणं तं वयं बूम माहणं १२२।

तसपाणे वियाणेत्ता संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं तं वयं बूम माहणं १२३।

कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ तं वयं बूम माहणं १२४।

चित्तमन्तमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहं ।
न गेणहइ अदत्तं जे तं वयं बूम माहणं १२५।

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं तं वयं बूम माहणं १२६।

तथा अपना एवं दूसरों का उद्धार करने में कौन समर्थ
हैं, वे भी वतलाओ । मुझे यह सब संशय है । हे साधु ! मैं पूछता
हूँ, आप बताइए ।” ११५।

जयघोष मुनि—

“वेदों का मुख अग्नि-होत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है,
नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव)
है ।” ११६।

“जैसे उत्तम एवं मनोहारी ग्रह-नक्षत्र आदि हाथ जोड़
कर चन्द्र की वन्दना तथा नमस्कार करते हुए स्थित हैं, (वैसे
ही भगवान् ऋषभदेव के समक्ष सभी नत हैं) ११७।

“विद्या ब्राह्मण की सम्पदा है; यज्ञवादी इससे अनभिज्ञ
हैं, वे बाहर में स्वाध्याय और तप से वैसे ही आच्छादित हैं,
जैसे कि अग्नि राख से ढँकी हुई होती है ।” ११८।

श्रमण ब्राह्मण तपस्वी के स्वरूप विषयक चर्चा—

“जिसे लोक में कुशल (विज्ञ) पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है,
जो अग्नि के समान सदा तेजस्वी है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”
११९।

४५१. “जो प्रिय स्वजनादि के आने पर उनमें अनुरक्त नहीं
होता और जाने पर शोक नहीं करता है । जो आर्य-वचन में—
अर्हद्वाणी में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” १२०।

“कसौटी पर कसे हुए और अग्नि के द्वारा मल रहित
हुए—शुद्ध किए गए जातरूप—सोने की तरह जो विशुद्ध है,
जो राग, द्वेष और भय से मुक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते
हैं ।” १२१।

“जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, (इन्द्रियों का दमन करने
वाला) है, तप के द्वारा जिसका मांस और रक्त अपचित (कम)
हो गया है । जो सुव्रत है, राग रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते
हैं ।” १२२।

“जो तस और स्थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जान
कर मन, वचन और काया से उनकी हिंसा नहीं करता है, उसे
हम ब्राह्मण कहते हैं ।” १२३।

“जो क्रोध से, हास्य, लोभ अथवा भय से झूठ नहीं
बोलता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” १२४।

“जो सचित्त या अचित्त, थोड़ा या अधिक अदत्त नहीं
लेता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” १२५।

“जो देव, मनुष्य और तिर्यच-सम्बन्धी मयुधुन का मन, वचन
और शरीर (त्रिकरण-त्रियोग) से सेवन नहीं करता है, उसे हम
ब्राह्मण कहते हैं ।” १२६।

जहा पोमं जले जायं नोवल्लिप्पइ वारिणा ।
एवं अल्लित्तो कामेहिं तं वयं वूम माहणं ।२७।

अल्लोलुयं मुहाजीवी अणगारं अकिचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु तं वयं वूम माहणं ।२८।

जहिस्ता पुव्वसंजोगं नाइसंगे य वन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहिं तं वयं वूम माहणं ।२९।

पसुवन्धा सव्ववेया जट्ठं च पावकम्मणा ।
न तं तायगित्तं दुस्सीलं कम्मणि वल्लवन्ति ह ।३०।

न वि मुण्डिएण समणो न ओंकारेण वम्मणो ।
न मुणो रण्णवासेणं कुसचीरेण न तावसो ।३१।

समयाए समणो होइ वम्मचेरेण वम्मणो ।
नाणेण य मुणो होइ तवेण होइ तावसो ।३२।
कम्म-पहाणया निरूवणं—

४६०. कम्मणा वम्मणो होइ कम्मणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मणा होइ सुद्धो हवइ कम्मणा ।३३।

एए पाउकरे बुद्धे जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिम्मवकं तं वयं वूम माहणं ।३४।

एवं गुणसमाउत्ता जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था उ उद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।३५।
एवं तु संसए छिन्ने विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तयं तं तु जयघोसं महामुणिं ।३६।

विजयघोस—

तुट्ठे य विजयघोसे इणमुदाह कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु मे उवदंसियं ।३७।

जयघोसस्स थवणा—

४६१. तुम्हे जइया जन्नाणं तुम्हे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुम्हे तुम्हे धम्माण पारगा ।३८।

“जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल (कीचड़) से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” ।२७।

“जो रसादि में लोलुप नहीं है, जो—मुधाजीवी—निर्दोष भिक्षा से जीवन-निर्वाह करता है, जो गृह-त्यागी है, जो अकिचन (निष्परिग्रह) है, जो गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” ।२८।

“जो पूर्व संयोगों को, ज्ञातिजनों की आसक्ति और बान्धवों को छोड़कर फिर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” ।२९।

“उस दुःशील (पुरुष) को पशुबन्ध (यज्ञ में बध के लिए पशुओं को बाँधना) के हेतुभूत ये सर्व वेद और पाप कर्म—हिंसापूर्वक किए गए यज्ञ वचा नहीं सकते, क्योंकि इस संसार में कर्म बलवान हैं ।” ।३०।

“केवल सिर मुड़ाने से कोई श्रमण नहीं होता है, ओम् का उच्चारण करने से ब्राह्मण नहीं होता है, अरण्यवास करने से मुनि नहीं होता है, कुश का बना चीवर पहनने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता है ।” ।३१।

“समभाव से श्रमण होता है । ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है । ज्ञान से मुनि होता है । तप से तपस्वी होता है ।” ।३२।

कर्म-प्रधानता का निरूपण—

४६०. “कर्म (ययोचित प्रवृत्ति अथवा पूर्व कृत पुण्य-पाप) से ब्राह्मण होता है । कर्म से क्षत्रिय होता है । कर्म से वैश्य होता है कर्म से हो शूद्र होता है ।” ।३३।

“बुद्ध—सर्वज्ञ ने इन तत्त्वों का निरूपण किया है । इनके द्वारा जो साधक स्नातक—परिपूर्ण होता है, सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।” ।३४।

“इस प्रकार जो (उक्त) गुण से सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं ।” ।३५।

“इस प्रकार (तत्त्व निरूपण सुनकर) संशय मिट जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष की वाणी को सम्यक् रूप से स्वीकार किया ।” ।३६।

विजयघोष ब्राह्मण—

मन में तुष्ट हुए विजयघोष ने हाथ जोड़कर मुनि से इस प्रकार कहा—“आपने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा उपदेश दिया है ।” ।३७।

जयघोष मुनि की स्तवना—

४६१. “वास्तव में—तुम यज्ञों के यष्टा—यज्ञ-कर्त्ता हो, तुम वेदों को जानने वाले विद्वान् हो, तुम ज्योतिष के ज्ञाता हो, तुम्हीं धर्मों के पारगामी हो ।” ।३८।

तुम्हे समत्था उद्धत्तुं परं अप्पाणमेव य ।
तमणुग्गहं करेहस्सहं भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ।३६।

जयघोस—

न कज्जं मज्झ भिक्खेण खिप्पं निक्खमसू दिया ।
मा भमिहित्ति भयावट्ठे घोरे संसारसागरे ।४०।

भोग निव्वट्ठि-उवएसो-

४६२. उवलेवो होइ रोगेसु अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे अभोगी विप्पमुच्चई ।४१।

उल्लो सुक्को य दो छूढा गोलया मट्ठियामया ।
दो वि आवड्डिया कुड्डे जो उल्लो सो तत्थ लग्गई ।४२।

एवं लग्गन्ति दुम्मेहा जो नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गन्ति जहा सुक्को उ गोलओ ।४३।

उवसंहारो—

४६३. एवं से विजयघोसे जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निव्वखन्तो धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ।४४।
खवित्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य ।
जयघोस-विजयघोसा सिद्धि पत्ता अणुत्तरं ।४५।

—त्ति वेमि

उत्तरा० अ० २५

“तुम अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो ।
अतः भिक्षु श्रेष्ठ ! यह भिक्षा स्वीकार कर हम पर अनुग्रह
करो ।” ।३६।

जयघोष मुनि—

“मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है । हे द्विज ! शीघ्र ही
अभिनिक्रमण कर अर्थात् संसार त्यागकर श्रमणत्व स्वीकार
कर । ताकि भय के आवर्तों—चक्रवालों वाले संसार नागर में तुझे
भ्रमण न करना पड़े ।” ।४०।

भोग-निवृत्ति का उपदेश—

४६२. “भोगों में कर्म का उपलेप (संचय) होता है । अभोगी कर्मों
से लिप्त नहीं होता है । भोगी संसार में भ्रमण करता है ।
अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ।” ।४१।

(जिस प्रकार) “एक गोला और एक सूखा, ऐसे दो मिट्टी
के गोले फेंके गये । वे दोनों दीवार पर गिरे । जो गोला था, वह
वहीं चिपक गया ।” ।४२।

“इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त
हैं, वे विषयों के साथ चिपक जाते हैं । विरक्त साधक सूखे गोले
की भाँति उनमें नहीं लगते हैं ।” ।४३।

उपसंहार—

४६३. इस प्रकार विजयघोष विप्र जयघोष अनगर के समीप,
अनुत्तर श्रेष्ठ धर्म को सुनकर दीक्षित हो गया ।४४।

जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्व-
संचित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की ।४५।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

३३. महावीरतित्थे अणाही महानियंठो

३३ महावीर तीर्थ में अनाथी महानिग्रन्थ

सेणिएण सुणिदंसणं—

४६४. सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थ-धम्म-गई तच्चं अणुसिद्धिं सुणेह मे ।१।

श्रेणिक द्वारा मुनि दर्शन—

४६४. सिद्धों और संयतों को भावपूर्वक नमस्कार करके मैं अर्थ,
मोक्ष और धर्म के स्वरूप का बोध कराने वाली तथ्यपूर्ण अनु-
शिष्टि-शिक्षा का कथन करता हूँ, उसे सुनो ।१।

पभूरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ, मंडिकुच्छिसि चेइए ।२।
नाणा-दुम-लयाइणं, नाणा-पविख-निसेवियं ।
नाणाकुसुम-संछन्नं, उज्जाणं नंदणोवमं ।३।

तत्थ सो पासई साहुं संजयं सुसमाहियं ।
नित्तन्नं खखमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ।४।

तत्स ह्वं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंतपरमो आसी, अउलो ह्वविम्हओ ।५।

अहो वण्णो अहो ह्वं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंती अहो मुत्ती, अहो भोगे असगया ।६।

तत्स पाए उ वंदित्ता, काऊण य पयाहियं ।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ।७।

सेणियस्स मुणिणा सह सवादी—

सेणिओ—

तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया ! ।
उवट्ठिओ हि सामग्णे एयमहुं सुणेमि ता ।८।

मुणी—

अणाहो मि महाराय !, नाहो मज्झ न विज्जइ ।
अणुकम्पयं सुहि वा वि, कंचि नाभिसमेमहं ।९।

सेणिओ—

तओ सो पहसिओ. राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इडिदमंतस्स, कहं नाहो न विज्जइ ।१०।

होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया !
मित्त-नाइ-परिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।११।

मुणी—

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया ! मगहाहिया ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं नाहो भविस्ससि ! ।१२।

प्रचुर रत्नों से समृद्ध मगधाधिपति राजा श्रेणिक-मंडिकुक्षि-
चैत्य-उद्यान में विहार-यात्रा के लिये नगर से निकला ।२।

वह उद्यान विविध प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण
था, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित था और विविध प्रकार
के पुष्पों से भली भांति आच्छादित था । विशेष क्या; उद्यान
नन्दन वन के समान था ।३।

राजा ने उस उद्यान में वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक संयत,
समाधि-सम्पन्न, सुकुमाल एवं सुखोचित—सुखोपभोग के योग्य
साधु को देखा ।४।

साधु के अनुपम रूप को देखकर राजा को उस संयत के
प्रति अत्यधिक अतुलनीय आश्चर्य हुआ ।५।

अहो ! क्या वर्ण (रंग) है, क्या रूप है ! अहो ! आर्य की
कैसी सौम्यता है ! अहो क्या क्षान्ति है, क्या मुक्ति-निर्लोभता है !
अहो, भोगों के प्रति कैसी असंगता है ! ।६।

उस मुनि के चरणों में वंदना और नमस्कार तथा प्रदक्षिणा
करने के पश्चात् राजा न अति दूर और न अति पास—योग्य
स्थान में खड़ा रहा और हाथ जोड़कर पूछने लगा ।७।

श्रेणिक का मुनि के साथ संवाद—

श्रेणिक—

हे आर्य ! तुम अभी युवा हो । फिर भी हे संयत ! तुम
भोग काल में दीक्षित हुए हो, श्रामण्य में उपस्थित हुए हो ।
इसका क्या कारण है, मैं सुनना चाहता हूँ ।८।

मुनि—

हे महाराज ! मैं अनाथ हूँ । मेरा कोई नाथ—रक्षक नहीं
है । मुझ पर अनुकंपा रखने वाला कोई सुहृद-मित्र भी मैं नहीं पा
रहा हूँ ।९।

श्रेणिक—

यह सुनकर मगधाधिप राजा श्रेणिक जोर से हँसा और
बोला—इस प्रकार तुम देखने में ऋद्धिसंपन्न लगते हो, फिर भी
तुम्हारा कोई नाथ कैसे नहीं है ? ।१०।

हे भदन्त ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ । हे संयत ! मित्र और
जातिजनों के साथ मिलकर भोगों को भोगो । मनुष्य जीवन
बड़ा दुर्लभ है ।११।

मुनि—

हे श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ हो । मगधाधिप ! जब तुम
स्वयं अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकते हो । कैसे हो
सकोगे ? ।१२।

सेणियो—

एवं वुत्तो नरिवो सो, सुसंभंतो सुविम्हो ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ।१३।

अस्सा हत्थो मणुस्सा मे, पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोए, आणा इस्सरियं च मे ।१४।

एरिसे संपयगम्मि, सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भंते ! मुसं वए ।१५।

मुणिया अप्पणो अणाहत्तपरुवणं—

४६५. न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं व पत्थिवा !
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा ! ।१६।

सुणेह मे महाराय ! अव्वविखत्तेणं चेषसा ।
जहा अणाहो भवई, जहा मे य पवत्तियं ।१७।

'कोसंबी' नाम नयरी, पुराणपुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय-धण-संचओ ।१८।

पढमे वए महाराय !, अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा ! ।१९।

सत्थं जहा परमतिवखं, सरीरविवरंतरे ।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ।२०।

तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडइ ।
इंदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ।२१।

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जा-मंत-तिगिच्छिया ।
अवीया सत्थकुसला, मंतमूलविसारया ।२२।

ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ।२३।

श्रेणिक—

राजा पहले से ही विस्मित हो रहा था, अब तो मुनि के
अभूतपूर्व वचन सुनकर और भी अधिक सम्भ्रान्त-संशयाकुल एवं
विस्मित हुआ ।१३।

मेरे पास शय्य हैं, हाथी हैं, नगर और अन्तःपुर है । मैं
मनुष्य जीवन के सभी सुखों का भोग कर रहा हूँ और मेरे पास
आज्ञा-शासन-ऐश्वर्य-प्रभुत्व भी है ।१४।

इस प्रकार श्रेष्ठ संपदा, जिसके द्वारा सभी काम-भोग मुझे
समर्पित हैं, प्राप्त है, तब भी भला मैं अनाथ कैसे ? भदन्त !
आप झूठ न बोलिये ।१५।

मुनि द्वारा 'अपना' अनाथत्व प्ररूपण—

४६५. हे पृथ्वीपति नरेश ! तुम 'अनाथ' के अर्थ और परमार्थ
को नहीं जानते हो कि मनुष्य अनाथ और सनाथ कैसे हो
सकता है ? ।१६।

महाराज ! अव्याक्षिप्त (अनाकुल) चित्त से मुझे सुनिये कि
यथार्थ में अनाथ कैसे होता है और किस आशय से मैंने उसका
प्रयोग किया है ? ।१७।

प्राचीन नगरों में असाधारण सुन्दर कौशाम्बी नाम की
नगरी है । वहाँ मेरे पिता थे और उनके पास प्रचुर धन का
संग्रह था ।१८।

महाराज ! प्रथम वय में—युवावस्था में मेरी आँखों में
अतुल-असाधारण पीड़ा उत्पन्न हुई । पाथिव ! उससे मेरे समस्त
शरीर में अत्यन्त जलन होती थी ।१९।

क्रुद्ध शत्रु जैसे शरीर के मर्मस्थानों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र
घोंपदे और उससे जैसी वेदना हो, वैसी ही मेरी आँखों में भयं-
कर वेदना हो रही थी ।२०।

जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से भयंकर वेदना होती है, वैसे ही
मेरे त्रिक-कटिभाग में, अन्तरेच्छ-हृदय में और उत्तमांग-मस्तक
में अतिदारुण वेदना हो रही थी ।२१।

विद्या और मंत्र से चिकित्सा करनेवाले, मंत्र तथा औषधियों
के विशारद अद्वितीय शास्त्रकुशल मेरी चिकित्सा के लिये उप-
स्थित थे ।२२।

उन्होंने मेरे हितार्थ चतुष्पाद (वैद्य, रोगी, औषध और
परिचारक रूप) चिकित्सा की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं
कर सके । यही मेरी अनाथता है ।२३।

पिया मे सब्वसारं पि, विज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ।२४।

माया वि मे महाराय ! पुत्तसोगदुहट्टिया ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ।२५।

भायरा मे महाराय ! सगा जेट्टु-कणिट्टगा ।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ।२६।

भइणीओ मे महाराय ! सगा जेट्टु-कणिट्टगा ।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ।२७।

भारिया मे महाराय ! अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुणोहि नयणेहि, उरं मे परिस्सिचइ ।२८।

अन्नं पाणं च प्हाणं च, गंध-मल्लविलेवणं ।
मए नायमणायं वा, सा वाला नोवमुंजइ ।२९।

खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि न फिट्टइ ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ।३०।

अणाहयं णच्चा पव्वज्जासंकप्पो, तओ वेयणाखओ य—

४६६. तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुमविउ जे, संसारम्मि अणंतए ।३१।

सइं च जइ मुच्चिज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खंतो वंतो निरारम्भो, पव्वए अणगारियं ।३२।

एवं च चित्तइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा ! ।
परियत्तंतीए राईए, वेयणा मे खयं गया ।३३।

पव्वज्जागहणेण सनाहत्तं—

४६७. तओ कल्ले पभायंमि, आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो वंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं ।३४।

तो हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेस्सिं चैय भूयाणं, तसाण थावराण य ।३५।

अप्पा नईं वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ।३६।

मेरे पिता ने मेरे लिये चिकित्सकों को. उपहार स्वरूप सर्व-
सार अर्थात् सर्वोत्तम वस्तुएँ दीं किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं
कर सके । यही मेरी अनाथता है ।२४।

महाराज ! मेरी माता पुत्रशोक के दुःख से पीड़ित रहती
थी किन्तु वह भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी, यही मेरी
अनाथता है ।२५।

महाराज ! मेरे बड़े और छोटे सभी सगे भाई मुझे दुःख से
मुक्त नहीं कर सके । यही मेरी अनाथता है ।२६।

महाराज ! मेरी बड़ी और छोटी सगी बहनें भी मुझे दुःख
से मुक्त नहीं कर सकीं, यही मेरी अनाथता है ।२७।

महाराज ! मुझ में अनुरक्त और अनुव्रत मेरी पत्नी अश्रु-
पूर्ण नयनों से मेरे उरःस्थल (छाती) को भिगीती रहती
थी ।२८।

वह वाला मेरे प्रत्यक्ष में या परोक्ष में कभी भी अन्न, पान,
स्नान, गंध, माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती
थी ।२९।

वह एक क्षण के लिये भी मुझ से दूर नहीं होती थी । फिर
भी वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी । महाराज ! यही मेरी
अनाथता है ।३०।

अनाथ जानकर प्रव्रज्या संकल्प और उससे वेदना क्षय—
४६६. तव मैंने इस प्रकार कहा—विचार किया कि प्राणी को
इस अनन्त संसार में बार-बार असह्यवेदना का अनुभव करना
होता है ।३१।

इस विपुल वेदना से यदि एक बार भी मुक्त हो जाऊँ तो
मैं क्षान्त, दान्त और निरारंभ अनगारवृत्ति में प्रव्रजित हो
जाऊँगा ।३२।

नराधिप ! इस प्रकार विचार करके मैं सो गया । परि-
वर्तमान (वीतली हुई) रात्रि के साथ-साथ मेरी वेदना भी क्षीण
हो गई ।३३।

प्रव्रज्या ग्रहण से सनाथत्व—

४६७. तदनन्तर प्रातःकाल में कल्य—निरोग होते ही मैं बन्धुजनों
से पूछकर क्षान्त, दान्त और निरारंभ होकर अनगार वृत्ति में
प्रव्रजित हो गया ।३४।

तब मैं अपना और दूसरों का त्रस और स्थावर सभी जीवों
का नाथ हो गया ।३५।

मेरी अपनी आत्मा ही वीतरणी नदी है, कूट-शात्मली वृक्ष
है, कामदुधाधेनु है और नन्दनवन है ।३६।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥३७॥

कुसीलायरणनिरूवणपुव्वं संजमपालणोवएसो—

४६८. इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !

तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि ।

नियंठधम्मं लहियाण वी जहा, सीयंति एगे बहुकायरा नरा ॥३८॥
जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, रम्मं च नो फासयई पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्नइ वंधण से ॥३९॥

आउत्तया जस्स न अत्थि काई, इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाण-निक्खेव-दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहि भठ्ठं ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥४१॥

पोत्ते व मुट्ठी जह से असारं, अंयंतिए कूड-कहावणे वा ।
राढामणी वेहलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

कुसीलत्तिगं इह धारइत्ता, इसिज्जयं जीविय विहइत्ता ।
असंजए संजय लप्पमाणे, विणिघायमागच्छइ से चिरं पि ॥४३॥

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसो वि धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥४४॥

जे लक्खणं सुविणं पउजमाणे, निमित्त-कोऊहलसंपगाडे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥४५॥

तमं तमेणेव उ जे असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ ।
संधावई नरगतिरिक्खजोणि, भोणं विराहित्तु असाहरुव्वे ॥४६॥

आत्मा ही अपने सुख-दुःख की कर्ता है और विकर्ता—भोक्ता है । सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है ॥३७॥

कुशीलाचरण निरूपणपूर्वकं समयं पालनोपदेश—

४६८. राजन् ! यह एक और भी अनायता है । जिसे ज्ञान और एकाग्रचित्त होकर सुनो ! बहुत से ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं जो निर्गन्ध धर्म को पाकर भी धिन्न हो जाते हैं, दुग्धित होते हैं ॥३८॥

जो महाव्रतों को स्वीकार कर प्रमाद के कारण उनका सम्यक् पालन नहीं करते, आत्मा का निग्रह नहीं करते, रसों में आसक्त हैं, वे राग-द्वेष रूप बंधनों का मूल से उच्छेद नहीं कर सकते हैं ॥३९॥

जिसकी ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार-प्रसवण के परिष्ठापन में अयुक्तता है—सजगता नहीं है, वह उस मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता है, जो वीरयात है अर्थात् उस मार्ग पर वीर पुरुष चलते हैं ॥४०॥

जो अहिंसादि व्रतों में अस्थिर है, तप और नियमों से भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुण्ड रुचि (सिर मुंडा लेने वाला भिक्षु) रहकर और आत्मा को कष्ट देकर भी संसार से पार नहीं हो सकता है ॥४१॥

जो खाली मुट्ठी के समान निस्सार है, छोटे सिक्के की तरह अग्रंथित—अप्रमाणित है, वैदूर्य की तरह चमकने वाली तुच्छ राढामणि—कांचमणि है, वह जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में मूलहीन है ॥४२॥

जो कुशील वेप और ऋषिध्वज [रजोहरण आदि मुनि चिन्ह] धारण कर जीविका चलाता है, असंयत होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है ॥४३॥

पिया हुआ कालकूट विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र, अनियंत्रित वृताल-भूत, प्रेत-जैसे विनाशकारी होता है वैसे ही विषय विकारों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है ॥४४॥

जो लक्षण और स्वप्न विद्या का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कुहेट-विद्याओं-जादूगरी के खेलों-से जीविका चलाता है, वह कर्मफल भोग के समय किसी की शरण नहीं पा सकता है ॥४५॥

वह शील रहित साधु अपने तमस्तमस-तीव्र अज्ञान के कारण विपरीत दृष्टि को प्राप्त होता है, जिससे असाधु प्रकृति वाला वह साधु मौन—मुनिधर्म की विराधना कर सतत दुःख भोगता हुआ नरक और तिर्यंचगति में आवागमन करता रहता है ॥४६॥

उद्देसियं कौयगडं नियामं, न मुंचई किचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभव्वी भवित्ता, इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पावं १४७।

न तं अरो कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहणे १४८।

निरट्टिया नगरुई उ तस्स, जे उत्तमट्टे विवज्जासमेइ ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से जिज्जइ तत्थ लोए १४९।

एमेवऽहाछंदकुसीलरूवे, मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।
कूररी विवा भोगरसाणुग्गिद्धा, निरट्टसोया परितावमेइ १५०।

सोच्चाण मेहावि ! सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं १५१।

चरित्तमायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजमपालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं १५२।

एवुग्गदंते वि महातवोधणे, महामुणो महापडन्ने महायसे ।
महानियंठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं १५३।

सेणियस्स तुट्ठी खमाजायणं च—
४६६. तुट्ठो य सेणियो राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं १५४।

तुज्जं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे नहेसी ।
तुब्भे सणाहा य सव्वंधवा य, जं भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाणं १५५।

तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया ! ।
खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउ १५६।

पुच्छिऊण मए तुब्भं, ज्ञाणविग्घो उ जो कओ ।
निमंतिया य भोगेहि, तं सव्वं मरिसेहि मे १५७।

जो औद्देशिक, क्रीत-कृत, नियाम-नित्यपिंड आदि रूप किचिन्मात्र भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता है, वह अग्नि-की भांति सर्वभक्षी भिक्षु पापकर्म करके यहाँ से मरने के बाद दुर्गति में जाता है १४७।

स्वयं ही अपनी दुष्प्रवृत्तिशील दुरात्मा जो अनर्थ करती है, वह गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर सकता है । उक्त तथ्य को निर्दय—संयमहीन-पुरुष मृत्यु के क्षणों में पश्चात्ताप करते हुए जान पायेगा १४८।

जो उत्तमार्थ-संयम में विपरीत दृष्टि रखता है, उसको श्रामण्य में अभिरुचि व्यर्थ है । उसके लिये न यह लोक है, न परलोक है । दोनों लोकों के प्रयोजन से शून्य होने के कारण वह उभयभ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में घुलता जाता है १४९।

इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु भी जिनोत्तम के मार्ग की विराधना कर वैसे ही परिताप को प्राप्त होता है, जैसे कि भोग-रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुकुरी [गीध] पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है १५०।

मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन-शिक्षा को सुनकर कुशील व्यक्तियों के सब मार्गों को छोड़कर महान निर्ग्रन्थों के पथ पर चलते हैं १५१।

चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निराश्रव होता है । अनुत्तर शुद्ध संयम का पालनकर वह निराश्रव साधक कर्मों का क्षय कर विपुल, उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करता है १५२।

इस प्रकार उस उग्र-दान्त, महान तपोधन, महाप्रतिज्ञ, महान यशस्वी, महामुनि ने इस महा निर्ग्रन्थीय महाश्रुत को महान विस्तार से कहा १५३।

श्रेणिक की तुष्टि और क्षमायाचना—
४६६. राजा श्रेणिक इस कथन को सुनकर संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—भगवन् ! आपने अनाथ का यथार्थ स्वरूप मुझे ठीक तरह से समझाया है १५४।

हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य जीवन सफल है, तुम्हारी उपलब्धियां सफल हैं, तुम सच्चे सनाथ और सबान्धव हो, क्योंकि तुम जिनेश्वर के मार्ग में स्थित हो १५५।

हे संयत ! तुम अनाथों के नाथ हो, तुम सब जीवों के नाथ हो । हे महाभाग ! मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ । मैं तुमसे अनुशासित होने की इच्छा रखता हूँ १५६।

मैंने आपसे प्रश्नकर जो ध्यान में विघ्न किया और भोगों के लिये निमंत्रण दिया, उस सबके लिये मुझे क्षमा करें १५७।

एवं थुणित्ताणं स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबंधवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेषसा ।५८।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिकण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ।५९।
इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिवंडविरओ य ।
विहग इव विष्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ।६०।

त्ति वेमि ।

—उत्तरा० अ० २० ।

इस प्रकार वह राजसिंह—श्रेणिक राजा अनगार सिंह मुनि की परमभक्ति से स्तुति कर अन्तःपुर तथा परिजनों के साथ निर्मल चित्तपूर्वक धर्म में अनुरक्त हो गया ।५८।

राजा के रोमकूप आनन्द से उल्लसित हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा, और नतमस्तक हो वंदना करके लौट गया । ५९।

वह (अनाथी मुनि) गुणों से समृद्ध, तीन गुणियों से गुप्त, तीन दंडों से विरत, मोहमुक्त मुनि पक्षी की भांति विप्रमुक्त-अप्रतिवद्ध होकर भूतल पर विहार करने लगे ।६०।

ऐसा मैं कहता हूँ ।



३७. महावीरतिथे समुद्रपालीयस्स कहाणयं

३४ महावीर तीर्थ में समुद्रपालीय कथानक

४७०. चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसो सो उ महप्पणो ।१।
निगंथे पावयणे, सावए से वि कोविए ।
पोएण ववहरंते, पिहुण्डं नगरमागए ।२।

पिहुण्डे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ।३।

समुद्धे जम्मणं परिणयणाइ य—

४७१. अहं पालियस्स घरिणी, समुद्धम्मि पसवइ ।
अह दारए तहं जाए, समुद्धपालि त्ति नामए ।४।

खेमेण आगए चंपं, सावए वाणिए घरं ।
संबड्ढई तस्स घरे, दारए से सुहोइए ।५।

४७०. चंपा नगरी में 'पालित' नामक एक वणिक् श्रावक था ।
वह महात्मा भगवान महावीर का शिष्य था ।१।

वह श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन का कोविद—विशिष्ट ज्ञाता-
विद्वान था । एक बार पोत से व्यापार करता हुआ वह पिहुण्ड
नगर में आया ।२।

पिहुण्डनगर में व्यापार करते समय उसे एक वणिक् ने विवाह
के रूप में अपनी पुत्री दी । कुछ समय के बाद गर्भवती पत्नी को
लेकर अपने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया ।३।

समुद्र में जन्म और परिणय आदि—

४७१. पालित की पत्नी ने समुद्र में ही पुत्र को जन्म दिया ।
समुद्र में पैदा होने के कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा
गया ।४।

वह वणिक् श्रावक सकुशल चम्पानगरी में अपने घर आया ।
वह सुखोचित-सुकुमार बालक अपने घर में आनन्द के साथ बड़ने
लगा ।५।

बावत्तरो, कलाओ य, सिक्खई नीइकोविए ।
जुव्वणेण य संपन्ने, सुख्वे पियदंसणे ।६।

उसने बहत्तर कलायें सीखीं और वह नीति निपुण हो गया वह युवावस्था से संपन्न हो गया तो सभी को सुन्दर और प्रिय लगने लगा ।६।

तस्स ख्ववइं भज्जं, पिया आणेइ ख्विणिं ।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुंदुओ जहा ।७।

पिता ने उसके लिये 'रूपणी' नाम की सुन्दर रूपवती भार्या ला दी । वह दोगुन्दक देव की भांति अपनी पत्नी के साथ सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा करने लगा ।७।

वज्झदंसणेण वेरगं पव्वज्जा य—

वध्य दर्शन से वैराग्य और प्रव्रज्या—

४७२. अह अन्नया कयाई, पासायालीयणे ठिओ ।
वज्झमंडणसोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ।८।

४७२. एक समय वह प्रासाद के आलोकन—झरोखे में बैठा था । वध्यजनोचित मंडनों—चिन्हों से युक्त वध्य को वध्यस्थान की ओर ले जाते हुए उसने देखा ।८।

तं पात्तिऊण संविगो, समुद्रपालो इणमव्ववो ।
अहोऽसुहाणकम्माणं, निज्जाणं पावंगं इमं ।९।

उसे देखकर संवेग प्राप्त समुद्रपाल ने मन में इस प्रकार कहा—अहो ! यह अशुभ कर्मों का पापक निर्याण—दुःखद परिणाम है ।९।

संबुद्धो सो तहिं भयवं, परमसंवेगमागओ ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ।१०।

इस प्रकार चिन्तन करते हुए वह भगवान—महान आत्मा संवेग को प्राप्त हुआ और संबुद्ध हो गया । माता-पिता से पूछकर उसने अनगार दीक्षा ली ।१०।

जहित्तु संगं य महाकिलेसं, महंतमोहं कसिणं भयावहं ।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य ।११।

दीक्षित होने पर मुनि महाक्लेशकारी, महामोह और पूर्ण भयकारी संग (आसक्ति) का परित्याग करके पर्याय धर्म—साध्वाचार में, व्रत में, शील में और परीषहों के सहने में अभिरुचि रखे ।११।

अहिंस सच्चं च अत्तेणगं च, तत्तो य वंभं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंचमहव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ ।१२।

मुनि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-इन पांच महाव्रतों को स्वीकार करके जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण करे ।१२।

सव्वेहिं भूएहि वयाणुकंपी, खंतिक्खमे संजयवंभयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइं विए ।१३।

इन्द्रियों का सम्यक् संवरण करने वाला भिक्षु सब जीवों के प्रति कष्टाशील रहे, क्षमा से दुर्वचनादि को सहन करे, संयत हो, ब्रह्मचारी हो । वह सदैव सावध योग-पापाचार का परित्याग करता हुआ विचरण करे ।१३।

कालेण कालं विहरेज्ज रट्टे, वलावलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सहेण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्च न असम्भमाहु ।१४।

साधु समयानुसार अपने वलावल को, अपनी शक्ति को जानकर राष्ट्रों में विचरण करे । सिंह की भांति भयोत्पादक शब्द सुनकर भी संत्रस्त न हो, असभ्य वचन सुनकर भी बदले में असभ्य वचन न कहे ।१४।

परीसहसहणं सिद्धी य—

परीषह सहन और सिद्धि—

४७३. उवेहमाणो उ परिवव्वइज्जा,
पियमपिपयं सव्व तित्तिक्ख इज्जा ।

४७३. संयमी प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ विचरण करे, प्रिय-अप्रिय, इष्ट-अनिष्ट, अनुकूल-प्रतिकूल परीषहों को सहन करे, सर्वत्र सबकी अभिलाषा न करे, पूजा और गर्हा भी न चाहे ।१५।

न सव्व सव्वत्यऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए ।१५।

अणेगछंदा इह माणवेहिं, जे भावओ से पगरेइ भिक्खू ।
भयभेरवा तत्थ उइंति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ।१६।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयंति जत्था बहुकायरा नरा ।
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया ।१७।

सीओसिणा वंस-मसा य फासा, आयंका विविहा फुसंति देहं ।
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुराकयाइं ।१८।

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो ।
मेरु व्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ।१९।

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए ।
से उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ।२०।

अरइ-रइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं ।
परमदुपएहि चिट्ठई, छिन्नसोए अमने अकिचणे ।२१।

विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई, निरोबलेवाइ असंयडाइं ।
इसीहि चिण्णाइं महापसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइं ।२२।

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी, ओमासईं सूरिए वंस्तलिव्खे ।२३।

दुविहं पवेऊण य पुण्णपावं, निरंगणे सव्वओ विष्पमुक्के ।
तरित्ता समुदं व महामवोहं, समुदपाले अपुणाग्गं गइं गए ।२४।

यहाँ-संसार में मनुष्यों के अनेक प्रकार के छन्द-अभिप्राय होते हैं। भिक्षु उन्हें अपने में भी भाव से जानता है। अतः वह देवकृत, मनुष्यकृत तथा तिर्यंचकृत भयोत्पादक भीषण उपसर्गों को सहन करे ।१६।

अनेक असह्य, परीषह प्राप्त न होने पर बहुत से कायर लोग खेद का अनुभव करते हैं। किन्तु भिक्षु परीषहों को प्राप्त होने पर संग्राम में आगे रहने वाले नागराज—हाथी की तरह व्यथित न हो ।१७।

शीत, उष्ण, डोंस, मच्छर, तृण-स्पर्श तथा अनेक प्रकार के दूसरे आतंक जब भिक्षु को स्पर्श करें तब वह कुत्सित शब्द न करते हुए उन्हें समभाव से सहन करे। पूर्वकृत कर्मों को क्षीण करे ।१८।

विक्षण भिक्षु सतत राग-द्वेष और मोह को छोड़कर वायु से अकंपित मेरु के समान आत्म-गुप्त बनकर परीषहों को सहन करे ।१९।

पूजा-प्रतिष्ठा में उन्नत और गर्हा में अवनत न होने वाला महर्षि पूजा और गर्हा में लिप्त न हो। वह समभावी विरत संयमी सरलता को स्वीकार करके निर्वाण मार्ग को प्राप्त होता है ।२०।

जो रति और अरति को सहन करता है, संसारी जनों के परिचय से दूर रहता है, विरक्त है, आत्महित का साधक है, प्रधानवान है—संयमशील है, शोक और ममत्वरहित है, अकिंचन है, वह परमार्थ पदों में-सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष साधनों में स्थित होता है ।२१।

त्रायी—प्राणि रक्षा करने वाला मुनि महान यशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि कर्म से रहित, असंसृत-बीजादि से रहित विविक्त लयन-एकान्त स्थानों का सेवन करे और परीषहों को सहन करे ।२२।

अनुत्तर धर्म संचय का आचरण करके सद्ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करने वाला, अनुत्तर ज्ञानधारी यशस्वी महर्षि अन्तरिक्ष में सूर्य की भांति प्रकाशमान होता है ।२३।

समुद्रपाल मुनि पुण्य-पाप (शुभ-अशुभ) दोनों ही कर्मों का क्षय करके संयम में निरंगन—निश्चल और सब प्रकार से मुक्त होकर समुद्र की भांति विशाल संसार प्रवाह को तैरकर अपुन-रागमन—मोक्ष को प्राप्त हुए ।२४।

—त्ति वेमि ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

—उत्तरा० अ० २१

३५. महावीरतिथे मियापुत्ते बलसिरी समणे

४७४. सुग्गीवे नयरे रंमे, काणणुज्जाणसोहिए ।
राया बलभद्विंति मिया तस्सगमाहिंसी ।१।

तेसि पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते ति विस्सुए ।
अम्मापिऊग दइए, जुवराया दमीसरे ।२।

नंदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिंहि ।
देवो दोगुंडुगो चेर, निच्चं मुइय-माणसो ।३।
मणि-रयण-कोट्टिमत्तले, पासायालयणट्ठिओ ।
आलोएइ नगरस्स, चउक्क-तिय-चच्चरे ।४।

समणं दट्ठुण जाईसरणं—

४७५. अह तत्थ अइच्छंतं, पासई समण-संजयं ।
तव-नियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं ।५।

तं पेहई मियापुत्ते, चिट्ठीए अणिमिसाए उं ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं, दिट्ठुप्पवं मए पुरा ।६।

साहुत्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे ।
मोहं गयस्स संतस्स, जाईसरणं समुप्पन्नं ।७।

देवलोगच्चओ संतो, माणुसं भवमाणओ ।
सन्नि-नाणे-समुप्पन्ने, जाइं सरइ पुराणियं ।८।

जाईसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरई पोरानियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ।९।

मियापुत्तस्स पच्चज्जासंक्रप्पो अम्मापिउपुरओ
निवेयणं च—

४७६. विसएहि अरज्जंतो, रज्जंतो संजमंमि य ।
अम्मा-पियरमुवागम्म, इमं वयणमव्ववी ।१०।

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि,
नरएसु दुक्खं च तिरव्व-जोगिसु ।

निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ,

अणुजाणह पच्चइस्सामि अम्मो ! ।११।

३५ महावीरतीर्थ में मृगापुत्र बलश्री श्रमण

४७४. कानन और उद्यानों से सुशोभित 'सुग्रीव' नामक सुरम्य नगर में बलभद्र नाम का राजा था, मृगा उसकी अग्रमहिषी—पटरानी थी ।१।

उनके बलश्री नामक पुत्र था, जो मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध था । वह माता-पिता को प्रिय था, युवराज था और दमीश्वर था, अर्थात् शत्रुओं को दमन करने वालों में प्रमुख था ।२।

वह प्रसन्नचित्त हो सदा नन्दन प्रासाद में दोगुन्दग-देवों की तरह स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता था ।३।

एक दिन वह मणि और रत्नों से जटित कट्टिमत्तल (फर्श) वाले प्रासाद के गवाक्ष में खड़े होकर नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख रहा था ।४।

श्रमण को देखकर जाति-स्मरण—

४७५. उसने वहाँ राजपथ पर जाते हुए तप, नियम एवं संयम के धारक शील से समृद्ध तथा गुणों के आकर (खान) एक संयत श्रमण को देखा ।५।

मृगापुत्र उस मुनि को अपलक दृष्टि से देखता रहा और सोचता रहा कि मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने इसके पूर्व भी कहीं देखा है ।६।

साधु के दर्शन और तदनन्तर पवित्र अध्यवसाय होने से 'मैंने ऐसा कहीं देखा है' इस प्रकार ऊहापोह रूप मोह (एकतानता) को प्राप्त उसे जातिस्मरण उत्पन्न हुआ ।७।

संज्ञीज्ञान (समनस्क ज्ञान) होने पर वह पूर्व जाति (भव) को स्मरण करता है—'मैं देवलोक से च्युत होकर इस मनुष्यभव में आया हूँ' ।८।

जाति-स्मरण उत्पन्न होने पर महाऋद्धिशाली मृगापुत्र अपनी पूर्व जाति और पूर्वाचरित श्रामण्य को स्मरण करता है ।९।

मृगापुत्र का प्रवज्या-संकल्प और माता-पिता के समक्ष निवेदन—

४७६. विषयों से विरक्त और संयम में अनुरक्त मृगापुत्र ने माता-पिता के निकट आकर इस प्रकार कहा— ।१०।

मैंने पांच महाव्रतों को सुना है और यह भी सुना है कि नरक और तिर्यच योनि में दुःख है । मैं ससार रूप महासागर से निव्विण्ण—विरक्त हो गया हूँ, मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा । अतः मात ! मुझे अनुमति दीजिये ।११।

अम्मताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुवंधुहावहा । १२।

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्खकेसाणभायणं । १३।

असासए सरीरंमि, रइं नीवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणुवुब्बुयसन्निभे । १४।

माणुसत्ते असारंमि, वाही-रोगाण आलए ।
जरा-मरणघत्थमि, खणं पि न रमामहं । १५।

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कोसंति जंतुणो । १६।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च वंधवा ।
चइत्ताणं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे । १७।
जहा किपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताणं भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो । १८।

अट्ठाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो दुही होइ, छुहा-त्तहाए पीडिओ । १९।

एवं धम्मं अकारुणं जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ । २०।

अट्ठाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छंतो सो सुही होइ, छुहा-त्तहाविवज्जिओ । २१।

एवं धम्मं पि कारुणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवयेणे । २२।

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवइज्जइ । २३।

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ । २४।

हे तात-मात ! मैं भोगों को भोग चुका हूँ । वे विषफल के समान अंत में कटु विपाक वाले और निरन्तर दुःख देने वाले हैं । १२।

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है और अणुचि से पैदा हुआ है । यहाँ का आवास अशाश्वत है और दुःख एवं क्लेश का स्थान है । १३।

यह शरीर पानी के बुलबुले के समान अनित्य है और पहले या बाद में इसे कभी छोड़ना ही है । अतः इसमें मुझे आनन्द नहीं मिल रहा है । १४।

व्याधि और रोगों के घर तथा जरा और मरण से ग्रस्त इस असार मनुष्य शरीर में मुझे एक क्षण के लिये भी सुख नहीं मिल रहा है । १५।

जन्म दुःख है, जरा दुःख है, रोग दुःख है, मरण दुःख है । अहो ! यह समग्र संसार ही दुःखरूप है, जहाँ जीव क्लेश पाते हैं । १६।

क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, पुत्र, स्त्री, बन्धुजन और इस शरीर को छोड़कर एक दिन विवश होकर मुझे चले जाना है । १७।

जिस प्रकार विषयरूप किपाक-फलों का अंतिम परिणाम सुन्दर नहीं होता है, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता है । १८।

जो व्यक्ति पाथेय (पथ का संवल, नाशता) लिये बिना ही लंबे मार्ग पर चल देता है, वह चलते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होता है । १९।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म किये बिना परभव में जाता है, वह जाते हुए व्याधि और रोगों से पीड़ित होता है—दुःखी होता है । २०।

जो व्यक्ति पाथेय लेकर लम्बे मार्ग पर चलता है, वह चलते हुए भूख और प्यास के दुःख से रहित सुखी होता है । २१।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म करके परभव में जाता है, वह अल्पकर्मा होने से जाते हुए वेदना से रहित सुखी होता है । २२।

जिस प्रकार घर को आग लगने पर गृहस्वामी मूल्यवान सार वस्तुओं को निकालता है और मूल्यहीन असार वस्तुओं को छोड़ देता है । २३।

उसी प्रकार आपकी अनुमति प्राप्त कर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक में से सारभूत अपनी आत्मा को बाहर निकालूंगा । २४।

सामण्णं दुक्करं ति अम्मापियरहिं पव्वज्जावारणं—

४७७. तं बेंतऽमापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुक्करं ।

गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणा ।२५।

(१) समयी सव्वभूएसु, सत्तुमित्तिसु वा जगे ।

पाणाइवाय-विरई, जावज्जीवाए दुक्करं ।२६।

(२) निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।

भातियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ।२७।

(३) दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।

अणवज्जेसणिज्जस्स, गिध्दहणा अवि दुक्करं ।२८।

(४) विरई अवंभचेरस्स, काम-भोगरसन्नुणा ।

उगं महव्वयं वभं, धारेयव्वं सुदुक्करं ।२९।

(५) धण-धन्न-पेसवग्गेसु, परिग्गह-विवज्जणं ।

सव्वारंस-परिच्चाओ, निम्ममत्तां सुदुक्करं ।३०।

(६) चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा ।

सन्निही-संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं ।३१।

छुहा तण्हा य सीउहं, दंस-मसगवेयणा ।

अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ।३२।

तालणा तज्जणा चेव, वह-बंधपरीसहा ।

दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ।३३।

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दाहणो ।

दुक्खं वंभव्वयं घोरं, धारेउं अमहप्पणो ।३४।

सुहोइओ तुमं पुत्ता ! सुउमालो सुमज्जिओ ।

न हुसि पभू तुमं पुत्ता, सामण्णमणुपालिया ।३५।

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महव्वभरो ।

गुरुओ लोहमारु व्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ।३६।

आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो ।

बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदहो ।३७।

‘श्रामण्य दुष्कर है’—माता-पिता द्वारा प्रव्रज्यावारण—

४७७. माता-पिता ने उससे कहा—पुत्र ! श्रामण्य—मुनिचर्या अत्यन्त दुष्कर है । भिक्षु को हजारों गुण—नियमोपनियमधारण करने होते हैं ।२५।

(१) भिक्षु को जगत में शत्रु और मित्र के प्रति, यहाँ तक कि सभी जीवों के प्रति समभाव रखना होता है । जीवनपर्यन्त प्राणातिपात से विरत होना भी बड़ा दुष्कर है ।२६।

(२) सदा अप्रमत्त भाव से मषावाद का त्याग करना, हर क्षण सावधान रहते हुए हितकारी सत्य बोलना—बहुत कठिन होता है ।२७।

(३) दंतशोधन—दातुन आदि भी बिना दिये न लेना और प्रदत्त वस्तु भी अनवद्य (निर्दोष) और एषणीय ही लेना अत्यन्त दुष्कर है ।२८।

(४) काम भोगों के रस से परिचित व्यक्ति के लिये अब्रह्मचर्य से विरक्ति और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना बहुत दुष्कर है ।२९।

(५) धन, धान्य, प्रेष्यवर्ग—दासी-दास आदि परिग्रह का त्याग करना और सब प्रकार के आरम्भ एवं ममत्व का त्याग करना बहुत दुष्कर होता है ।३०।

(६) चतुर्विध आहार (अशन-पान-आदि) का रात्रि में त्याग करना और काल मर्यादा से बाहर घृतादि संनिधि का संचय न करना अत्यन्त दुष्कर है ।३१।

भूख-प्यास, सर्दी, गर्मी, डांस और मच्छरों का कष्ट, आक्रोश वचन, दुःख शैया—कष्टप्रद स्थान, तृण स्पर्श और मैल—।३२।

ताड़ना, तर्जना, वध और बंधन, भिक्षाचर्या, याचना और अलाभ—इन परीषहों का सहन करना अति कठिन है ।३३।

यह कापोती वृत्ति अर्थात् कवूतर के समान दोषों से सशंक एवं सतर्क रहने की वृत्ति, दारुण केशलोच और यह घोर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना अमहान—सामान्य आत्माओं के लिये दुष्कर है ।३४।

पुत्र ! तू सुख भोगने के योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित है—साफ स्वच्छ रहने वाला है, अतः श्रमणधर्म का पालन करने के लिये तू समर्थ नहीं है ।३५।

पुत्र ! साधुचर्या में जीवन पर्यन्त कहीं विश्राम नहीं है । लोहे के भार की तरह साधु के गुणों का महान गुस्तर भार है, जिसे जीवनपर्यन्त वहन करना अत्यन्त कठिन है ।३६।

जैसे आकाश गंगा का स्रोत; प्रतिकूल (प्रतिकूल प्रवाह) दुस्तर है, जिस प्रकार सागर को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, वैसे ही गुणोदधि—संयम सागर को तैरना दुष्कर है ।३७।

वालुया फवले चेंव, निरस्ताए उ संजमे ।
असिधारागमणं चेंव, दुक्करं चरिउं तयो १३८।
अहीवेगंतविट्टीए, चरित्ते पुत्त ! दुक्करे ।
जवा लोहमया चेंव चावेयव्वा सुदुक्करं १३९।

जहा अग्गिसिहा वित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा ।
तह दुक्कर करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं १४०।
जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो ।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं १४१।
जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करो मंवरौ गिरी ।
तहा निहृयतीसंके, दुक्करं समणत्तणं १४२।

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो १४३।

भुंज माणुस्सए भोए, पंचलक्खणए तुमं ।
भुत्तमोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्सत्ति १४४।

मियापुत्तेण नरयदुक्खवण्णणं
सामण्णदुक्करत्तनिराकरण च—

४७८. सो वेइ अम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्करं १४५।

सारीर-भाणसा चेंव, वेयणाओ अणंतसो ।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खमयाणि य १४६।

जरामरणकंतारे, चाउरंते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य १४७।

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणंतगुणो तहिं ।
नरएसु वेयणा उण्हा, असाया वेइया मए १४८।
जहा इहं इमं सीयं, एत्तोऽणंतगुणं तहिं ।
नरएसु वेयणा सीया, असाया वेइया मए १४९।
कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलंतम्मि, पदहपुव्वो अणंतसो १५०।

महादवग्गिसंकासे, मर्हंमि वड्ढरवालुए ।
कलंबवःलुयाए य दड्ढपुव्वो अणंतसो १५१।

सगम रेत से प्रास की तरह स्वादरहित है । तप का आचरण
तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है १३८।

साँप की तरह एकाग्र दृष्टि से चारित्र्य धर्म में चलना कठिन
है । लोहे के जो चवाना जैसे दुष्कर है, वैसे ही चारित्र्य का
पालन दुष्कर है १३९।

जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा—ज्वाला का पीना दुष्कर है, वैसे
ही युवावस्था में श्रमण धर्म का पालन करना दुष्कर है १४०।

जैसे वस्त्र के कोयले—थैले को हवा में भरना कठिन है, वैसे
ही कार्यों द्वारा श्रमण धर्म का पालन करना भी कठिन है १४१।

जैसे मेरु पर्वत को तराजू में तोलना दुष्कर है, वैसे ही
निश्चल और निःशंक भाव से श्रमण धर्म का पालन करना भी
दुष्कर है १४२।

जैसे भुजाओं से समुद्र को तैरना कठिन है, वैसे ही अनुप-
शान्त व्यक्ति के द्वारा संयम सागर को पार करना दुष्कर
है १४३।

पुत्र ! पहले तू मनुष्य सम्बन्धी शब्द-रूप आदि पांच प्रकार
के भोगों का भोग कर । पश्चात् भुक्तभोगी होकर धर्म का
आचरण करना १४४।

मृगापुत्र द्वारा नरक दुःख वर्णन और
श्रामण्य दुष्करत्व-निवारण—

४७८. उसने (मृगापुत्र ने) माता-पिता से कहा—आपने जो
कहा है, ठीक है । किन्तु इस संसार में जिसकी प्यास बस चुकी
है उसके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है १४५।

मैंने शारीरिक और मानसिक वेदनाओं को अनन्तवार सहन
किया है और अनेक बार भयंकर दुःख और भय का भी अनुभव
किया है १४६।

मैंने नरकादि चार गति रूप अन्तवाले जरा-मरण रूपी भय
के आकर—खान संसाररूपी वन में भयंकर जन्म-मरणों को
सहा है १४७।

जैसे यहां अग्नि उष्ण है, उससे अनन्तगुणी अधिक दुःख रूप
उष्ण वेदना मैंने नरक में अनुभव की है १४८।

जैसे यहां शीत है, उससे अनन्तगुणी अधिक दुःखरूप शीत-
वेदना मैंने नरक में अनुभव की है १४९।

मैं नरक की कंदु कुम्भियों—लोहपात्रों में ऊपर पैर और नीचा
सिर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार
पकाया गया हूँ १५०।

महाभयंकर दावाग्नि तुल्य मरु प्रदेश में तथा वज्रवालुका
में और कदम्ब (नदी का तट) वालुका में मैं अनन्त बार जलाया
गया हूँ—घसीटा गया हूँ १५१।

रसंतो कंडुकुंभीसु, उड्ढं वद्धो अबंधवो ।
करवत्त-करकयाईहि, छिन्नपुब्बो अणंतसो ।५२।

अडतिवखकंठगाइण्णे, तुंगे सिवलिपायवे ।
खेवियं पासवद्धेणं, कड्डोकड्डाहि दुक्करं ।५३।

महाजंतेसु उच्छू वा, आरसंतो सुभेरवं ।
पोलिओ मि सकम्मैहि, पावकम्मो अणंतसो ।५४।

कूवंतो कोलसुणएहि, सामेहि सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरंतो अणेगसो ।५५।

असीहि अयसिवण्णाहि, भल्लेहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, ओइण्णो पावकम्मणुणा ।५६।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलंते समिलाजुए ।
चोइओ तोत्तजुत्तेहि, रोज्जो वा जह पाडिओ ।५७।

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्डो पक्को य अवसो, पावकम्मैहि पाविओ ।५८।
बला संडासतुंडेहि, लोहतुंडेहि पविखहि ।
विलुत्तो विलवंतोसहं, ढंकगिद्धेहि णंतसो ।५९।

तहाकिलंतो धावंतो, पत्तो वेयरणि नइं ।
जलं पाहं ति चिंतंतो, खुरधारहि विवाइओ ।६०।

उण्हाभित्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहि पडंतेहि, छिन्नपुब्बो अणेगसो ।६१।

मुगरेहि मुसंडीहि, सूलेहि मुसलेहि य ।
गया-संभग्ग-गत्तेहि, पत्तं दुक्खं अणंतसो ।६२।

खुरेहि तिवखधाराहि, छुरियाहि कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो य अणेगसो ।६३।

पासेहि कूडजालेहि, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ वद्धरुद्धो य, बहुत्तो चेव विवाइयो ।६४।

बंधु-बांधवों से रहित असहाय रोता हुआ मैं कन्दुकुम्भी में ऊंचा बांधा गया और करवत एवं क्रकच—आरा आदि शस्त्रों से अनन्त बार छेदा गया हूँ ।५२।

अत्यन्त तीखे कांटों से व्याप्त ऊँचे शात्मलि वृक्ष पर पाण-जाल से बांधकर इधर-उधर खींचकर टुट्टो असह्य कष्ट दिया गया है ।५३।

अति भयानक आक्रन्दन करता हुआ मैं पाप कर्मा अपने कर्मों के कारण गन्ने की तरह बड़े-बड़े यन्त्रों में अनन्त बार पीला गया हूँ ।५४।

मैं इधर-उधर भागता हुआ और आक्रन्दन करता हुआ काले और चितकबरे सुअरों और कुत्तों से अनेक बार गिराया गया, फाड़ा गया और छेदा गया ।५५।

पापकर्मों के कारण मैं नरक में जन्म लेकर अलसी के फूलों के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोहे के दंडों से छेदा गया, भेदा गया और खंड-खंड कर दिया गया ।५६।

समिला (जुए के छेद में लगने वाली कीली) से युक्त जुए वाने जलते लोह के रथ में जोता गया, चावुक और रस्सी से हांका गया तथा रोज्ञ की भांति पीटकर भूमि पर गिराया गया ।५७।

पापकर्मों से घिरा हुआ पराधीन मैं अग्नि की चिताओं में भैसे की भांति जलाया गया पकाया गया हूँ ।५८।

लोहे के समान कठोर संडासी जैसी चोंच वाले ढंक और गीध पक्षियों द्वारा रोता-बिलखता हुआ भी हठात् अनन्त बार नोचा गया हूँ ।५९।

प्यास से व्याकुल होकर दौड़ता हुआ मैं वैतरणी नदी पर पहुँचा । 'जल पीऊँगा' यह सोच ही रहा था कि छुरे के धार जैसी तीक्ष्ण जलधारा से मैं चीरा गया ।६०।

गर्मी से संतप्त होकर मैं छाया के लिये असि-पत्र महावन में गया । किन्तु वहाँ ऊपर से गिरते हुए असि पत्रों से अनेक बार छेदा गया ।६१।

सब ओर से निराश हुए मेरे शरीर को मुद्गरों, मुसुण्डियों, शूलों और मूसलों से चूर-चूर किया गया । इस प्रकार मैंने अनन्त बार दुःख पाया है ।६२।

तेजधार वाले छुरों से, छुरियों से तथा कैचियों से मैं अनेक बार काटा गया हूँ, टुकड़े-टुकड़े किया गया हूँ, छेदा गया हूँ और मेरी चमड़ी उतारी गई है ।६३।

विषय बने मृग की भांति भी अनेक बार पाशों और कूट जालों से छलपूर्वक पकड़ा गया हूँ, बांधा गया हूँ, रोका गया हूँ और विनष्ट किया गया हूँ ।६४।

गलेहि मगरजालेहि, मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणंतसो ।६५।

वोदंसएहि जालेहि, लेप्पाहि सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य वद्धो य, मारिओ य अणंतसो ।६६।

कुहाड-फरसु-माईहि, वड्ढईहि दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणंतसो ।६७।

चवेड-मुट्टिमाईहि कुमारेहि अयं विव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणंतसो ।६८।

तत्ताइं तंबलोहाइं तउयाइं, सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ।६९।
तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि स-मंसाइं, अग्गिण्णाइं णेगसो ।७०।

तुहं पियो सुरा सीहू, मेरओ य महुणि य ।
पज्जिओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ।७१।

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ।७२।

तिव्वच्चंडप्पगाढाओ, घोराओ अड्डुस्सहा ।
मह्वभयाओ भीमाओ, नरएसु वेइया मए ।७३।
जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दोसंति वेयणा ।
एत्तो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ।७४।
सव्वभवेसु असाया, वेयणा वेइया मए ।
निमेसंतरमित्तं पि, जं साता नत्थि वेयणा ।७५।

अम्मापियरोहि सामण्णे निप्पडिकम्मणं ति कहणं—
४७६. तं वित्तस्मापियरो, छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया ।७६।

मियापुत्तस्स उत्तरं—

४८०. सो वेइ अम्मापियरो ! एवमेवं जहा फुडं ।
पडिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मियपक्खिणं ।७७।

गलों—मछली को फँसाने के कांटों-झ और मगर को पकड़ने के जालों से मत्स्य की तरह विवश में अनन्त बार खींचा गया, फाड़ा गया, पकड़ा गया और मारा गया हूँ ।६५।

वाज पक्षियों, जालों तथा वज्रलेपों के द्वारा पक्षी की भांति मैं अनन्त बार पकड़ा गया, चिपकाया गया, बांधा गया और मारा गया ।६६।

वड्ढई के द्वारा वृक्ष की तरह कुल्हाड़ी और फरसा आदि से मैं अनन्त बार कूटा गया हूँ, फाड़ा गया हूँ, छेदा गया हूँ और छीला गया हूँ ।६७।

लुहारों के द्वारा लोहे की भांति मैं परमाधर्मी असुरकुमारों के द्वारा चपत और मुक्का आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, खंड-खंड किया गया और चूर्ण बना दिया गया ।६८।

भयंकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे कलकलाता गर्म तांबा, लोहा, रांगा और सीसा पिलाया गया ।६९।

'तुझे टुकड़े-टुकड़े किया हुआ और शूल में पिरोकर पकाया हुआ मांस प्रिय था'—यह याद दिलाकर मुझे मेरे ही शरीर का मांस काटकर और उसे अग्नि जैसा लाल तपाकर अनेक बार खिलाया गया ।७०।

'तुझे सुरा, सीधू, मैरेय और मधु आदि मदिरा में प्रिय थीं'—यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्खी और खून पिलाया गया ।७१।

मैंने (इस प्रकार पूर्व जन्मों में) नित्य ही भयभीत, संव्रस्त, दुःखित और व्यथित होते हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना का अनुभव किया है ।७२।

तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ़ घोर, अत्यन्त दुःसह, महाभयंकर और भीष्म वेदनाओं का मैंने नरक में अनुभव किया है ।७३।

हे तात ! मनुष्यलोक में जैसी वेदनायें देखी जाती हैं—उनसे अनन्तगुणी अधिक दुःख वेदनायें नरक में हैं ।७४।

मैंने सभी जन्मों में दुःख रूप वेदना का अनुभव किया है । एक पलक मात्र जितनी भी सुख रूप वेदना (अनुभूति) वहां नहीं है ।७५।

माता-पिता द्वारा 'श्रामण्य में निष्प्रतिकर्मण' कथन—

४७६. माता-पिता ने उससे कहा—पुत्र ! अपनी इच्छानुसार तुम भले ही संयम स्वीकार करो । किन्तु विशेष बात यह है कि श्रमण जीवन में निष्प्रतिकर्मता—रोग होने पर चिकित्सा न कराना—यह कष्ट है ।७६।

मृगापुत्र का उत्तर—

४८०. वह बोला—माता-पिता ! आपने जो कहा, वह सत्य है । किन्तु जंगल में रहने वाले निरीह पशु-पक्षियों की चिकित्सा कौन करता है ?७७।

एगम्मओ अरण्णे वा, जहा उ चरइ मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवणे य ।७८।
जहा मिगस्स आयंको, महारण्णंमि जायइ ।
अच्छंतं रक्खमूलंमि, को णं ताहे विगिच्छई ।७९।

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छइ सुहं ?
को से भत्तं व पाणं वा, आहरित्तु पणामए ? ।८०।
जया य से सुही होइ, तथा गच्छइ गोयरं ।
भत्तपाणस्स अट्टाए, बल्लराणि सराणि य ।८१।

खाइत्ता पाणियं पाउं, बल्लरेहं सरेहि य ।
मिगचारियं चरित्तानं, गच्छई मिगचारियं ।८२।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्तानं, उड्ढं पक्कमई दिसं ।८३।

जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे,
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा ।८४।

मियापुत्तस्स पव्वज्जा—

४८१. मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं ।
अम्मापिअहिऽणुन्नाओ, जहाइ उवाहं तओ ।८५।

मियचारियं चरिस्सामि, सब्बडुक्खविमोक्खणिं ।
तुवभेहिं अं व ! ऽणुन्नाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ।८६।

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्तान बहुदिहं ।
ममत्तं छिदई ताहे, महानागो व्व कच्चुयं ।८७।

इड्ढी वित्तं च मित्ते य, पुत्तदारं च नायओ ।
रेणुयं व पडे लग्गं, निद्धणित्तान निग्गओ ।८८।

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचसन्निओ तिमूत्तिगुत्तो य ।
सब्बिन्तरवाहिरए, तवोक्कम्मंमि उज्जुओ ।८९।
निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सब्बभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।९०।

जैसे जंगल में मृग अकेला विचरता है, वैसे ही मैं भी संयम और तप के साथ एकाकी होकर धर्म का आचरण करूंगा ।७८।

जब महावन में मृग के शरीर में आतंक (प्राणघातक रोग) उत्पन्न हो जाता है तब वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस मृग की विक्रिस्ता कौन करता है ?७९।

कौन उसे औषधि देता है ? कौन उससे सुख (स्वास्थ्य) की बात पूछता है ? कौन उसे भोजन-पान लाकर देता है ?८०।

जब वह नीरोग हो जाता है, तब स्वयं गोचर भूमि में जाता है और खाने-पीने के लिये लता वेलों और जलाशयों को खोजता है ।७९।

वेलों और जलाशयों में खा-पीकर मृगचर्या (उछल कूद) करता हुआ वह मृग मृगचर्या (मृगों की निवास भूमि) को चला जाता है ।८२।

इसी प्रकार रूपादि में अप्रतिबद्ध, संयम के लिये उद्यत, भिक्षु स्वतंत्र विहार करता हुआ मृगचर्या की तरह आचरण कर ऊर्ध्वदिशा—मोक्ष को गमन करता है ।८३।

जैसे मृग अकेला अनेक स्थानों में विचरता है, अनेक स्थानों में रहता है, सदैव गोचर-चर्या से ही जीवन यापन करता है, वैसे ही गोचरी के लिये गया हुआ मुनि भी किसी की निन्दा और अवज्ञा नहीं करता है ।८४।

मृगापुत्र की प्रव्रज्या—

४८१. मैं मृगचर्या का आचरण करूंगा ।

पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसे करो—इस प्रकार माता-की अनुमति पाकर वह उपधि-परिग्रह को छोड़ता है ।८५।

हे माता ! मैं तुम्हारी अनुमति प्राप्त कर सभी दुःखों का क्षय करने वाली मृगचर्या का आचरण करूंगा ।

पुत्र ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसे करो ।८६।

इस प्रकार वह अनेक तरह से माता-पिता को अनुमति के लिये समझा कर ममत्व का त्याग करता है, जैसे महानाग (सर्प) कैंबुली को छोड़ता है ।८७।

कपड़े पर लगी हुई धूल की तरह ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कुलत्र और ज्ञाति जनों को झटक कर वह संयमयात्रा के लिये निकल पड़ा ।८८।

पंच महाव्रतों से युक्त, पांच समितियों से नमित्त, तीन गुप्तियों से गुप्त, आभ्यन्तर और बाह्य तप में उद्यत—।८९।

ममत्व रहित, अहंकार रहित, संगरहित, गौरव का त्यागी, त्रस और स्थावर सभी जीवों में समदृष्टि—।९०।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तथा ।
समो निंदा-पसंसासु, तथा माणावमाणओ ।६१।

गारवेसु कसाएसु, दंड-सल्ल-मएसु य ।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अवंधणो ।६२।
अणिससओ इहं लोए, परलोए अणिससओ ।
वासीचंदणकप्पो य असणे अणसणे तथा ।६३।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं सव्वओ पिहियासवे ।
अज्जाप्प-ज्जाणजोगेहिं, पसत्थ-वमसासणे ।६४।

एवं नाणेण चरणेण, दंसणेण तच्चेण य ।
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्मं भावित्तु अप्पयं ।६५।
बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया ।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ।६६।
एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणिअट्टंति भोगेसु, मियापुत्ते जहा रिसी ।६७।

सहप्पभावस्स महाजत्तस्स, मियाडुपुत्तस्स निसम्म भासियं ।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ।६८।

विमाणिया दुक्ख-विचड्डणं धणं, ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाण-गुणावहं महं ।६९।

त्ति बेमि ।

—उत्तर० अ० १९ ।

लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुःख में, जीवन में, मरण में,
निन्दा में, प्रशंसा में और मान-अपमान में समत्व का
साधक—।६१।

गौरव, कपाय, दंड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त,
निदान और बंधन से मुक्त—।६२।

इस लोक में अनासक्त और परलोक में अनामक्त, वसूले से
काटने अथवा चन्दन लगाये जाने पर भी तथा आहार मिलने
और न मिलने पर भी सम—।६३।

अप्रशस्त द्वारों—हेतुओं से आने वाले कर्म पुद्गलों का
सर्वतोभावेन निरोधक वह महर्षि (मृगापुत्र) अध्यात्म संबंधों
ध्यान योगों से प्रशस्त संयम शासन में लीन हुआ ।६४।

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, तप और शुद्ध भावनाओं
के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित कर—।६५।

बहुत वर्षों तक श्रामण्य धर्म का पालन कर अंत में एक मास
के अनशन से वह अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुआ ।६६।

संबुद्ध, पंडित और अतिविवेक्षण व्यक्ति ऐसा ही करते हैं ।
वे काम भोगों से वैसे ही निवृत्त होते हैं, जैसे कि महर्षि मृगा-
पुत्र निवृत्त हुए ।६७।

महान प्रभावशाली, महान यशस्वी, मृगापुत्र के तपःप्रधान,
त्रिलोक विश्रुत एवं मोक्षरूपगति से प्रधान—उत्तम चारित्र्य के
कथन को सुनकर—।६८।

धन को दुःखवर्धक तथा ममत्व बंधन को महा भयंकर
जानकर निर्वाण के गुणों को प्राप्त कराने वाली सुखावह—
अनन्त सुख प्राप्त कराने वाली धर्मधुरा को धारण करो ।६९।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

३६. महावीरतित्थे गद्दभाली संजयराया य ३६ महावीर तीर्थ में गद्दभालि और संजय राजा

संजयरणा मुणिसमीवे मिअवहो—

४८२. कपिल्ले नयरे राया, उदिण्णवलवाहणे ।

नामेणं संजए नाम, मिगव्वं उवणिग्गए ।१।

संजय राजा का मुनि के समीप मृगवध—

४८२. कपिल्यनगर में सेना और वाहन से सुसंपन्न संजय
नाम का राजा था । एक दिन यह मृगया—शिकार खेलने के
लिये निकला ।१।

ह्याणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए मह्या, सब्बओ परिवारिए ।२।
मिए छुह्तिता ह्यगओ, कपिल्लुज्जाणकेरुरे ।
भोए संते मिए तत्थ, वहेइ, रसमुच्छिए ।३।

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्जाणसंजुत्ते, धम्मज्जाणं श्रियायइ ।४।
अप्फोवमंडवमि, ज्ञायइ खवियासवे ।
तस्सागए मिए पासं, वहेइ से नराहिवे ।५।

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तह्हि ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासइ ।६।

संजएण खमाजायणं—

४८३. अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणाहओ ।
मए उ मंदपुण्णेणं, रसगिद्धेण घंतुणा ।७।

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वंदए पाए, भगवं ! एत्थ मे खमे ।८।

अह भोणेण सो भगवं, अणगारे ज्ञाणमस्सिए ।
रायाणं न पडिमंतेइ, तओ राया भयवुओ ।९।

संजओ अहमंसीति, भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ ।१०।

गद्दभालिमुणिणा उवएसो—

४८४. अभओ पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगमि, किं हिंसाए पसज्जसि ? ।११।
जया सब्बं परिच्चज्ज, गंतव्वमवस्स ते ।
अणिच्चं जीवलोगमि, किं रज्जमि पसज्जसि ? ।१२।

जीवियं चव ह्वं च, विज्जुसंपायचंचलं ।
जत्थ तं मुज्जसि रायं ! पेच्चत्थं नाववुज्जसे ।१३।

दारणि य भुया चव, मित्ता य तह बंधवा ।
जीवंतमणुजीवंति, मयं नाणुवयंति य ।१४।

वह राजा सब ओर से विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना
और पदाति सेना से परिवृत्त था ।२।

राजा अश्व पर आरूढ़ था । वह रमभूर्च्छित होकर कांपित्य
नगर के केशर उद्यान की ओर ढकेले गये भयभीत और थके
हुए हिरणों को मार रहा था ।३।

उस केशर उद्यान में एक तपोधन अनगार स्वाध्याय और
ध्यान में लीन थे, धर्मध्यान की एकाग्रता साध रहे थे ।४।

आस्रव का क्षय करने को उद्यत अनगार अप्फोवमंडप-
लतामंडप में ध्यान कर रहे थे । राजा ने उनके समीप आये
हिरणों का वध कर दिया ।५।

अश्वारूढ़ राजा शीघ्र ही वहाँ आया, जहाँ मुनि ध्यानस्थ
थे । मृत हरिणों को देखने के बाद उसने वहाँ एक अनगार को
देखा ।६।

संजय द्वारा क्षमा याचन—

४८३. मुनि को देखकर राजा सहसा भयभीत हो गया । उसने
सोचा—मैं कितना मंदपुत्र-भाग्यहीन, रसासक्त और हिंसकवृत्ति
का हूँ कि मैंने व्यर्थ ही मुनि को आहत किया है ।७।

घोड़े को छोड़कर उसने विनयपूर्वक अनगार के चरणों में
वंदन किया और कहा—भगवन् ! इस अपराध के लिये मुझे
क्षमा कीजिये ।८।

वे अनगार तो मौनपूर्वक ध्यान में लीन थे । उन्होंने राजा
को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया । अतः राजा और अधिक भया-
क्रांत हो गया ।९।

भगवन् ! मैं संजय हूँ । आप मुझसे कुछ तो बोलें । मैं
जानता हूँ—ऋद्ध अनगार अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को जला
डालते हैं ।१०।

गद्दभालि मुनि द्वारा उपदेश—

४८४. पार्थिव—राजन् ! तुझे अभय है, किन्तु तू भी अभयदाता
वन । इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों हिंसा में संलग्न है ? ।११।

जब सब कुछ छोड़कर तुझे यहाँ से अवश्य लाचार होकर
चले जाना है, तो इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों राज्य में
आसक्त हो रहा है ? ।१२।

राजन् ! तू जिसमें मोहमुग्ध है, वह जीवन और सौन्दर्य
विजली की चमक की तरह चंचल है । तू अपने परलोक के हित
को नहीं समझ रहा है ।१३।

स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र तथा बंधुजन जीवित व्यक्ति के साथ ही
जोते हैं । कोई भी मृत व्यक्ति के पीछे नहीं जाता है अर्थात् मरते
समय कोई साथ नहीं देता है ।१४।

नीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते, बंधू रायं ! तवं चरे ।१५।

तओ तेणऽज्जिए दब्बे, दारे य परिरिक्खिए ।
कीलंतऽन्ने नरा रायं ! हट्टुदुमलंकिया ।१६।

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मणा तेण संजुत्तो, शच्छई उ परं भवं ।१७।

मुणिसमीवे रण्णो पव्वज्जा—

४८५. सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अंतिए ।
महया संवेगनिव्वेयं, समावन्नो नराहिवो ।१८।
संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे ।
गद्दमात्तिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ।१९।

खत्तियमुणिएण्हो—

४८६. चिच्चा रट्टं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते वीसइ रुवं, पसन्नं ते जहा मणो ।२०।

किं नामे किं गोत्ते कस्सट्टाए व माहणे ।
कहं पडियरसि बुद्धे, कहं विणीए त्ति बुच्चसि ? ।२१।

संजयमुणिणा अत्तकहानिब्रयेयणं—

४८७. संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ।२२।
किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणो ।
एएहि चउहि ठाणेहि, मेयन्ने किं पमासइ ।२३।

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिणिव्वुए ।
विज्जा-चरण-संपन्ने, सच्चे सच्चपरवकमे ।२४।

पटंति नराए घोरे, जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छंति, चरित्ता धम्ममारियं ।२५।

मायाबुद्धयमेयं तु, मुत्ता भात्ता तिरत्थिया ।
संजममानो वि अहं, वसानि इरियानि य ।२६।

अत्यन्त दुःख के साथ पुत्र अपने मृत पिता को घर से बाहर निकाल देते हैं उसी प्रकार पुत्र को पिता और बन्धु को अन्य बंधु भी बाहर निकालते हैं । अतः राजन् ! तू तप का आचरण कर ।१५।

मृत्यु के बाद उस मृत व्यक्ति द्वारा उपार्जित धन का तथा परिरक्षित स्त्रियों का, अन्य लोग हृष्ट, तुष्ट अलंकृत होकर उपभोग करते हैं ।१६।

जो सुख अथवा दुःख के कर्म जिस व्यक्ति ने किये हैं, वह अपने उन कर्मों के साथ परभव में जाता है ।१७।

मुनि के समीप राजा की प्रव्रज्या—

४८५. अनगार के पास से महानधर्म को सुनकर राजा मोक्ष का अभिलाषी और संसार से विमुख हो गया ।१८।

राज्य को छोड़कर वह संजय राजा भगवान गर्दभाली अनगार के समीप जिन शासन में दीक्षित हो गया है ।१९।

क्षत्रिय मुनि के प्रश्न—

४८६. राष्ट्र को त्यागकर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक दिन संजयमुनि से कहा—तुम्हारा यह रूप—बाह्य आकार जैसे प्रसन्न-निर्विकार है, लगता है,—वैसे ही तुम्हारा अन्तर्मन भी प्रसन्न है ।२०।

तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गोत्र क्या है ? किस प्रयोजन से तुम महान मुनि बने हो ? किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ? किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?२१।

संजय मुनि द्वारा आत्मकथा निवेदन—

४८७. मेरा नाम संजय है । मेरा गोत्र गीतम है । विद्या और चरण के पारगामी गर्दभालि मेरे आचार्य हैं ।२२।

हे महामुने ! क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान-इन चार स्थानों के द्वारा कुछ एकान्तवादी मेयज्ञ—तत्त्ववेत्ता असत्य तत्व की प्ररूपणा करते हैं ।२३।

बुद्ध—सर्वज्ञ, परिनिवृत्त-संसार त्यागी, ज्ञान और चारित्र्य से संपन्न, सत्यवाक् और सत्य पराक्रमी जातवंशीय भगवान महावीर ने ऐसा प्रगट किया है ।२४।

जो मनुष्य पाप कर्म करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं और जो आर्य धर्म का आचरण करते हैं, वे दिव्य गति को प्राप्त करते हैं ।२५।

एकान्तवादियों का सब कथन मायापूर्वक है, अतः मिथ्या-वचन है । मैं इन माया पूर्ण वचनों से बचकर चलता हूँ ।२६।

सव्वेए विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया ।

विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पयं ।२७।

खत्तियमुणिणा अप्पणो पुव्वभवकहणं—

४८८. अहमासि महापाणे, जुइमं वरिससओवमे ।

जा सा पालि-महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ।२८।

से चुए, वंभलोगाओ, माणुस्सं भवमागए ।

अप्पणो य परेसं च, आउं जाणे जहा तथा ।२९।

नाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज संजए ।

अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ।३०।

पडिक्कमामि पत्तिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।

अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ।३१।

जं च मे पुच्छसी काले, समं सुद्धेण चेतसा ।

ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ।३२।

किरियं च रोयईं धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।

दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं ।३३।

खत्तियमुणिणा पुव्वपव्वइयभरहाईणं निरुवणं—

४८९. एयं पुणपयं सोच्चा, अत्थ—धम्मोवसोहियं ।

भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाईं पव्वए ।३४।

सगरो वि सागरेतं, भरहवासं नराहिवो ।

इस्सरियं केवलं हिच्चा, वयाए परिनिव्वुडे ।३५।

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्ठी महिड्ढिओ ।

पव्वज्जमव्वभुवगओ, मघवं नाम महाजसे ।३६।

सणकुमारो मणुस्सिदो, चक्कवट्ठी महिड्ढिओ ।

पुत्तं रज्जे ठव्वेऊणं, सो वि राया तवं चरे ।३७।

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्ठी महिड्ढिओ ।

संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ।३८।

इक्खागरायवसभो, कुंयू नाम नरोत्तरो ।

विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं ।३९।

जो मिथ्यादृष्टि और अनार्य हैं, वे सब मेरे जाने हुए हैं ।

मैं परलोक में रहे हुए अपने को अच्छी तरह से जानता हूँ ।२७।

क्षत्रिय मुनि द्वारा अपना पूर्व भव कथन—

४८८. मैं पहले महाप्राण नामक विमान में वर्ष शतोपम आयु-वाला द्युतिमान देव था । जैसे कि—यहाँ सी वर्ष की आयु पूर्ण मानी जाती है, वैसे ही वहाँ पाली-पल्योपम एवं महापाली-सागरोपम की दिव्य आयु पूर्ण है ।२८।

ब्रह्मलोक का आयुष्य पूर्ण करके मैं मनुष्य भव में आया हूँ ।

मैं जैसे अपनी आयु को जानता हूँ, वैसे ही दूसरों की आयु को भी जानता हूँ ।२९।

नाना प्रकार की रुचि और छन्दों—मन के विकल्पों का तथा सब प्रकार के अनर्थक व्यापारों का संयतात्मा मुनि को सर्वत्र त्याग करना चाहिए । इस तत्त्व ज्ञान रूप विद्या का लक्ष्य करके संयम पथ पर विचरण करें ।३०।

मैं शुभाशुभ सूचक प्रश्नों और गृहस्थों की मंत्रणाओं से दूर रहता हूँ । अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए उद्यत रहता हूँ । यह जानकर तुम भी तप का आचरण करो ।३१।

जो तुम मुझे सम्यक्, शुद्ध चित्त से काल के विषय में पूछ रहे हो, उसे बुद्ध सर्वज्ञ ने प्रगट किया है । अतः वह ज्ञान जिन शासन में विद्यमान हैं ।३२।

धीर पुरुष क्रिया—चारित्र्य, संयम में रुचि रखे और अक्रिया का त्याग करे । सम्यक् दृष्टि से संपन्न होकर तुम दुश्चर धर्म का आचरण करो ।३३।

क्षत्रिय मुनि द्वारा पूर्व प्रव्रजित भरतादि का निरूपण—

४८९. अर्थ और धर्म से उपशोभित इस पुण्य पद-पवित्र उपदेश को सुनकर भरत चक्रवर्ती भारतवर्ष के राज्य तथा काम भोगों का परित्यागकर प्रव्रजित हुए थे ।३४।

नराधिप सागर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़कर दया-संयम की साधना से परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ ।३५।

महान ऋद्धि संपन्न, महान यशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष की ऋद्धि को छोड़कर प्रव्रज्या स्वीकार की ।३६।

महान ऋद्धि-सम्पन्न, मनुष्येन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती ने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर तप का आचरण किया ।३७।

महान ऋद्धि सम्पन्न और लोक में शांति करने वाले शान्ति-नाय चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।३८।

इक्खाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ, नरेश्वर, विशाल कीर्ति, द्युतिमान कुण्डुनाय ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।३९।

सागरंतं चइत्ताणं, भरह्वासं, नरेसरो ।
 अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं १४०।
 चइत्ता भारहं वासं, चइत्ता बलवाहणं ।
 चइत्ता उत्तमे भोए महापउमे तवं चरे १४१।
 एगच्छत्तं पसाहिता, मंहि माण-निसूरणो ।
 हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं १४२।
 अन्नियो रायसहस्सेहि, सुपरिच्चाई दमं चरे ।
 जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं १४३।

दसणरज्जं मुदियं चइत्ताणं मुणी चरे ।
 दसणभट्ठो निक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ १४४।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
 चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठियो १४५।

करकंडू कलिगेषु, पांचालेषु य दुम्भुहो ।
 नमी राया विदेहेषु, गंधारेषु य नग्गई १४६।
 एए नरिदवसभा, निक्खंता जिणसासणे ।
 पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठियो १४७।
 सोवीररायवसभो, चइत्ताण मुणी चरे ।
 उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं १४८।

तहेव कासिराया वि, सेओ सच्चपरक्कमो ।
 कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं १४९।

तहेव विजओ राया, अणट्टा कित्ति पव्वए ।
 रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो १५०।
 तहेवुगं तवं किच्चा, अव्वविखत्तेण चेषसा ।
 महव्वलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरि १५१।

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व मंहि चरे ? ।
 एए विसेसमादाय, सूरा दडपरक्कमा १५२।

अच्चंतनियानखमा, सच्चा मे भासिया वई ।
 अतरिसु तरंतेगे, तरिस्संति अगागया १५३।

सागर पर्यन्त भारतवर्ष को छोड़कर कर्म रज को दूर करके
 नरेश्वरों में श्रेष्ठ, 'अर'...ने अनुत्तर गति प्राप्त की १४०।

भारतवर्ष को छोड़कर उत्तम भोगों का त्यागकर महापद्म
 चक्रवर्ती ने तप का आचरण किया १४१।

शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी
 पर एक छत्र शासन करके फिर अनुत्तर गति प्राप्त की १४२।

हजार राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य
 का परित्याग कर जिन भाषित दम (संयम) का आचरण किया
 और अनुत्तर गति प्राप्त की १४३।

साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होकर दशार्णभद्र राजा ने अपने सब
 प्रकार से सम्पन्न दशार्ण राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली और
 मुनि धर्म का आचरण किया १४४।

साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होने पर भी विदेह राज नमि
 श्रामण्य धर्म में भली भांति स्थिर हुए, अपने को अति विनम्र
 बनाया १४५।

कलिग में करकंडू, पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमिराज
 और गंधार में नग्गति १४६।

राजाओं में वृषभ के समान महान थे । इन्होंने अपने-अपने
 पुत्र को राज्य में स्थापित कर श्रामण्य धर्म स्वीकार किया १४७।

सौवीर राजाओं में वृषभ के समान महान उद्रायण राजा
 ने राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली, मुनि धर्म का आचरण किया
 और अनुत्तर गति प्राप्त की—१४८।

इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमशील काशीराज ने
 कामभोगों का परित्याग कर कर्मरूपी महावन का नाश
 किया १४९।

इसी प्रकार अमर कीर्ति, महान यशस्वी, विजय राजा ने
 गुण समृद्ध राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली १५०।

इसी प्रकार अनाकुल चित्त से उग्र तपस्या करके राजर्षि
 महावल ने शिर देकर शिर प्राप्त किया अर्थात् अहंकार का
 विसर्जन कर सिद्धि रूप उच्च पद प्राप्त किया १५१।

इन भरत आदि शूर और दृढ़ पराक्रमी राजाओं ने जिन-
 शासन में विशेषता देखकर ही उसे स्वीकार किया था । अतः
 अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई कैसे उन्मन की तरह पृथ्वी
 पर विचरण करे ? १५२।

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम-युक्तिसंगत सत्यवाणी कही
 है । इसे स्वीकार करके अनेक जीव अतीत में संसार समुद्र से
 पार हुए हैं, वर्तमान में पार ही रहे हैं और भविष्य में पार
 होंगे १५३।

कहिं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ।
सव्वसंग-विणिम्मवके, सिद्धे भवइ नीरए ।५४।

त्ति वेमि॥
उत्तरा० अ० १८

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवादों में अपने आपको कैसे
लगाये ? जो सभी संगों से मुक्त है, वही नीरज-कर्मरज से रहित
होकर सिद्ध होता है ।५४।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



३७. महावीरतित्थे उसुयार रायाइ छ समणा

उसुयारनघरे पुरोहियपुत्ताई—

४६०. देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारनाभे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ।१।

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसुद्धगोसु य ते पसूया ।
निवित्रण-संसारभया जहाय, जिणिदमगं सरणं पवन्ना ।२।

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायज्ज्य देवी कमलावई य ।३।

जाईसरणेण पुरोहियपुत्ताणं विरत्तो पव्वज्जासंकप्पो
णिवेयणं च—

४६१. जाई-जरा-मच्चु भयाभिभूया, वहिं विहाराभिनिविद्ध-चित्ता ।
संसार-चक्कस्स विमोवखणट्टा,
दट्ठण ते कामगुणे विरत्ता ।४।

पियपुत्तगा दुन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोरानिय तत्य जाइं, तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ।५।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
भोक्खाभिकंखी अभिजायसड्डा,
तायं उवागम्म इमं उदाहु ।६।

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअंतरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो,
आमंतयामो चरिस्सामु भोणं ।७।

३७ महावीर तीर्थ में इषुकारराजादि छह श्रमण

इषुकार नगर में पुरोहित पुत्रादि—

४६०. देवलोक के समान सुरम्य, प्राचीन, प्रसिद्ध और समृद्धि
शाली इषुकार नामक नगर था । उसमें पूर्वजन्म में एक ही
विमान के वासी कुछ जीव देवायु पूर्णकर अवतरित हुए ।१।

पूर्वभव में कृत अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण वे जीव
उच्च कुलों में उत्पन्न हुए और संसार भय से उद्विग्न होकर
कामभोगों का परित्याग कर जिनेन्द्र मार्ग की शरण ली ।२।

पुरुषत्व को प्राप्त दोनों पुरोहित कुमार, पुरोहित, उसकी
पत्नी यशा, विशाल कीर्तिवाला इषुकार राजा और उसकी रानी
कमलावती—ये छह व्यक्ति थे ।३।

जातिस्मरण से पुरोहित पुत्रों को विरक्ति और प्रव्रज्या
संकल्प निवेदन—

४६१. जन्म, जरा और मरण के भय से अभिभूत कुमारों का
चित्त मुनि दर्शन से बहिर्विहार अर्थात् मोक्ष की ओर आकृष्ट
हुआ, फलतः संसार चक्र से मुक्ति पाने के लिये वे काम गुणों से
विरक्त हुए ।४।

यज्ञ-यागादि स्वकार्य में संलग्न ब्राह्मण (पुरोहित) के वे
दोनों प्रियपुत्र अपने पूर्वजन्म और तत्कालीन मुचीर्ण (भली-
भांति आराधित) तप संयम को स्मरण कर विरक्त हुए ।५।

मनुष्य और देव सम्बन्धी काम-भोगों में अनासक्त, मोक्षा-
भिलाषी, श्रद्धासंपन्न उन दोनों पुत्रों ने पिता के पास आकर इन
प्रकार कहा—।६।

जीवन की क्षणिकता को हमने जाना है, वह विघ्न बाधाओं
से परिपूर्ण है, अत्यायु है, इसलिये घर में हमें कोई आनन्द नहीं
मिल रहा है । अतः आपकी अनुमति चाहते हैं कि हम मुनि धर्म
का आचरण करें ।७।

पुरोहितेण वारणं—

४६२. अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तदस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयंति, जहा न होई असुयाण लोगो ।८।

अहिज्ज वेए परिविस्स दिप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया ।
भोच्चा ण भोए सह इत्थियाहिं,

आरणगा होह मुणी पसत्था ।६।

पुरोहिअपुत्ता—

सोयग्गिणा आयग्गिणधणेण, मोहाणिला पज्जलणाहिणं ।
संतत्तमावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ।१०।

पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं, निमंतयंतं च सुए धणेणं ।
जह्वकमं कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पत्तमिब्व वक्कं ।११।

वेया अहीया न भवंति ताणं, भुत्ता दिया निति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ।१२।

खणमित्तसुवखा बहुकालदुवखा, पगामदुवखा अणिगामसुवखा ।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया,

खाणो अणत्थाण उ कामभोगा ।१३।

परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ।१४।

इमं च ने अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च ने किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति ति कहं पमाओ ।१५।

पुरोहिओ—

धयं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तथा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जत्त लोभो,

तं सब्ब साहीणमिहेव तुब्बं ।१६।

पुरोहित के द्वारा वारण—

४६२. यह सुनकर पिता ने कुमार-मुनियों की तपस्या में वाधा उत्पन्न करने वाली यह बात कही—पुत्रो ! वेदों के ज्ञाता इस प्रकार कहते हैं कि जिनको पुत्र नहीं होता है, उनकी गति नहीं होती है ।८।

इसलिये हे पुत्रो ! पहले वेदों का अध्ययन करो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ और विवाह कर स्त्रियों के साथ भोग करो । अनन्तर पुत्रों को घर का भार सौंप कर अरण्यवासी प्रशस्त—श्रेष्ठ मुनि बनना ।६।

पुरोहित पुत्र—

अपने रागादि गुण रूप ईधन से प्रदीप्त और मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोकाग्नि से जिसका अन्तःकरण संतप्त और परितप्त हो गया है एवं जो मोहग्रस्त होकर अनेक प्रकार के बहुत अधिक दीन वचन बोल रहा है ।१०।

जो क्रमशः वार-वार अनुनय कर रहा है, धन का और क्रम प्राप्त काम भोगों का निमंत्रण दे रहा है, उस अपने पिता पुरोहित को कुमारों ने अच्छी तरह विचार कर यह वचन कहा—।११।

पढ़े हुए वेद भी त्राण (रक्षक) नहीं होते हैं । यज्ञ-याज्ञादि के रूप में पशु हिंसा का उपदेश देने वाले ब्राह्मण भी भोजन कराने पर तमस्तम स्थिति में ले जाते हैं । पुत्र भी रक्षा करने वाले नहीं है । अतः आपके उक्त कथन का कौन अनुमोदन करेगा ?१२।

वे कामभोग क्षण भर के लिये सुखदायक है तो चिरकाल तक दुःख देते हैं, अधिक दुःख और थोड़ा सुख देते हैं । संसार से मुक्त होने में बाधक हैं, अनर्थों की खान हैं ।१३।

जो कामनाओं में मुक्त नहीं है, वह अतृप्ति की ताप में जलता हुआ पुरुष दिन-रात भटकता रहता है और दूसरों के लिये प्रमादाचरण करने वाला वह धन की खोज में लगा हुआ एक दिन जरा और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।१४।

यह मेरे पास है, यह मेरे पास नहीं है । यह मुझे करना है, यह नहीं करना है—इस प्रकार व्यर्थ की बकवास करने वाले व्यक्ति को अपहरण करने वाली मृत्यु उठा लेती है । उक्त स्थिति होने पर भी प्रमाद कैसा ?१५।

पुरोहित—

जिसकी प्राप्ति के लिये लोग तप करते हैं, वह विपुल धन, स्त्रियों स्वजन और इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय भोग तुम्हें यहां पर ही स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं । फिर परलोक के लिये इन नुव्यों के लिये क्यों भिक्षु बनते हों ?१६।

पुरोहिअपुत्ता—

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहि चैव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, व्हिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ।१७।

पुरोहिओ—

जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घयं तेल्लमहातिलेसु ।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता, समुच्छइ नासइ नावच्चिट्ठे ।१८।

पुरोहिअपुत्ता—

नो इंदियग्गेज्ज अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्जत्यहेउं निययस्स वंधो, संसारहेउं च वयंति वंधं ।१९।

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुभमाणा परिरक्खयंता, तं नेव भुज्जो वि समायराभो ।२०।

अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडंतीहि, गिहंसि न रइं लभे ।२१।

पुरोहिओ—

केण अब्भाहओ लोगो ? केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ? जाया चितावरो हुमि ।२२।

पुरोहिअपुत्ता—

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ? ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय विजाणह ।२३।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ।२४।
जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ।२५।

पुरोहिओ—

एगओ संबसित्ताणं, दुहओ सम्मत्तसंजुया ।
पच्छा जाया ! गमित्तामो, भिक्खमाणा कुले कुले ।२६।

पुरोहित पुत्र—

जिसे धर्म की धुरा को वहन करने का अधिकार प्राप्त है, उसे धन, स्वजन तथा ऐन्द्रियिक विषयों का क्या प्रयोजन ? हम तो गुणसमूह के धारक, अप्रतिवद्धविहारी, शुद्ध भिक्षा ग्रहण करने वाले श्रमण वनौंगे ।१७।

पुरोहित—

पुत्रो ! जैसे अरणि में अग्नि, दूध में घी, तिलों में तेल, असत्-अविद्यमान पैदा होता है, उसीप्रकार शरीर में जीव भी असत् ही पैदा होता है और नष्ट हो जाता है । शरीर का नाश होने पर जीव का कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता है ।१८।

पुरोहित पुत्र—

आत्मा अमूर्त है, अतः वह इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है । जो अमूर्तभाव होता है वह नित्य होता है । आत्मा के आन्तरिक रागादि हेतु निश्चित रूप से बंध के कारण है और बंध को संसार का हेतु कहा है ।१९।

जब तक हम धर्म से अनभिज्ञ थे, तब तक मोहवश पापकर्म करते रहे, आपके द्वारा हम रोके गये और हमारा संरक्षण होता रहा । किन्तु ! अब हम पुनः पापकर्म का आचरण नहीं करेंगे ।२०।

लोक आहत-पीड़ित है । चारों तरफ से घिरा हुआ है । अमोघा (अन्धकार) आ रही है । इस स्थिति में हम घर में सुख नहीं पा रहे हैं ।२१।

पुरोहित—

पुत्रो ! यह लोक किससे आहत है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहते हैं ? यह जानने के लिये मैं चिन्तित हूँ ।२२।

पुरोहित पुत्र—

पिता ! आप अच्छी तरह जान लें कि यह लोक मृत्यु से आहत है, जरा से घिरा हुआ है और रात्रि (समय चक्र की गति) को अमोघा कहते हैं ।२३।

जो जो रात्रि जा रही है, वह फिर लौट कर नहीं आती है । अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल जाती हैं ।२४।

जो जो रात्रि जा रही हैं, वह फिर लौटकर नहीं आती हैं । धर्म करने वाले की रात्रियाँ सफल होती हैं ।२५।

पुरोहित—

पुत्रो ! पहले हम सब कुछ समय एक साथ रहकर नम्यस्त्व और व्रतों से युक्त हों—पालन करें, परचान् डलती आयु में दीक्षित होकर घर से भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरेंगे ।२६।

पुरोहिअपुत्ता—

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स चसत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ।२७।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहि पवन्ना न पुण्णमवाभो ।
अणागयं नेव य अत्थि किच्चो, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ।२८।

भारियं जसं पइ पुरोहिओ—

४६३. पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो,
वासिट्ठि ! भिक्खायरिइ कालो ।
साहाहि सक्खो लहए समाहिं,

छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ।२६।
पंखाविहूणो व जहेव पक्खो, भिच्चव्विहूणो व्व रणे नरिदो ।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहंपि ।३०।

जसा—

सुसंभिया कामगुणे इमे ते, संविडिया अग्गरसप्पभूया ।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमगं ।३१।

पुरोहिओ—

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ, न जीवियट्ठा पजहामि भोए ।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ।३२।

जसा—

माह तुमं सोयरियाण संभरे, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइं मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरियाविहारो ।३३।

पुरोहिओ—

जहा य भोई तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए जाया पयहंति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेवको ? ।३४।

छिदित्तु जालं अवलं व रोहिया, मग्घा जहा कामगुणे पहाए ।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ।३५।

पुरोहित पुत्र—

जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, जो मृत्यु के आने पर दूर भाग सकता हो और जो यह जानता हो कि मैं कभी मरूँगा ही नहीं, वही आने वाले कल का भरोसा कर सकता है ।२७।

हम आज ही राग को दूर करके श्रद्धा से युक्त मुनि धर्म को स्वीकार करेंगे, जिसे पाकर पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेना होता है । हमारे लिये कोई भी भोग अनागत-अभुक्त नहीं है, क्योंकि वे अनन्त वार भोगे जा चुके हैं ।२८।

पुरोहित यशाचार्या के प्रति—

४६४. वाशिष्ठि ! पुत्रों के बिना मेरा इस घर में निवास नहीं हो सकता है । भिक्षाचर्या का काल आ गया है । वृक्ष शाखाओं से ही अच्छा लगता है । शाखाओं के कट जाने पर केवल ठूँठ ही कहलाता है ।२९।

पंखों से रहित पक्षी, युद्ध में सेना से रहित राजा, जलपोत पर धन रहित व्यापारी जैसे असहाय होता है, वैसे ही पुत्रों के बिना मैं भी असहाय हूँ ।३०।

यशा—

ससंस्कृत और सुसंगृहीत काम-भोग रूप प्रचुर विषय रस जो हमें प्राप्त हैं, उन्हें पहले इच्छानुरूप भोग लें । उसके बाद हम मुनि धर्म के प्रधान मार्ग पर चलेंगे ।३१।

पुरोहित—

भवति ! हम विषय रसों को भोग चुके हैं । युवावस्था हमें छोड़ रही है । मैं किसी स्वर्गीय जीवन के प्रलोभन में भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ । लाभ-अलाभ, सुख-दुःख को समदृष्टि से देखता हुआ मैं मुनि धर्म का पालन करूँगा ।३२।

यशा—

प्रतिस्रोत में तैरने वाले बूढ़े हंस की तरह कहीं तुम्हें फिर अपने बन्धुओं को याद न करना पड़े ? अतः मेरे साथ भोगों को भोगो । यह भिक्षाचर्या और यह ग्रामानुशाम विहार काफ़ी दुःख दायक है ।३३।

पुरोहित—

भवति ! जैसे साँप अपने शरीर की कँचुली छोड़कर मुक्त-मन से चलता है, वैसे ही दोनों पुत्र भोगों को छोड़कर जा रहे हैं । अतः मैं अकेला रहकर क्या करूँगा ? क्यों न उनका अनु-गमन करूँ ? ।३४।

रोहित मत्स्य जैसे कमजोर जाल को काटकर बाहर निकल जाते हैं, वैसे ही धारण किये हुए गुह्यतर संयम भार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी धीर साधक काम गुणों को छोड़कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं ।३५।

जसा—

जहे व कुंचा समइक्कमंता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलिति पुत्ता य पई य मज्झं, ते हं कहां नाणुगमिस्समेक्का ? १३६।

कमलावई रायाणं पइ—

४६४. पुरोहितं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिकम्म पहाय भोए ।
कुडुंबसारं विउल्लमं तं, रायं अभिक्खं समुवाय देवी १३७।

वंतासो पुरिसो रायं ! न सो होई पसंसिओ ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आयाउमिच्छसि १३८।

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वा वि धणं भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव १३९।

मरिहिसि रायं ! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि १४०।

नाहं रमे पविखणि पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं ।
अकिचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा १४१।

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्जमाणेसु जंतुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयंति, रागदोसवत्तं गया १४२।
एवमेव वयं मूढा, काम-भोगेसु मुच्छिया ।
डज्जमाणं न बुज्जामो, रागदोसग्गिणा जयं १४३।
भोगे भोच्चा वमिन्ता य, लहुभूयविहरिणो ।
आमोयमाणा गच्छति, दिया कामकमा इव १४४।

इमे य बद्धा फंदंति, मम हत्थेऽज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे १४५।

सामिसं कुल्लं विस्स, वज्जमाणं निरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्जत्ता, विहरिस्सामि निरामिसा १४६।

यशा—

जैसे क्रौंच पक्षी और हंस वहेलियों द्वारा फैलाये गये जालों को काटकर आकाश में स्वतंत्र रूप से उड़ जाते हैं, वैसे ही मेरे पुत्र और पति भी छोड़कर जा रहे हैं। पीछे मैं अकेली रहकर क्या करूंगी ? मैं भी क्यों न उनका अनुगमन करूँ ? ३६।

कमलावती का राजा के प्रति—

४६४. पुत्र और पत्नी के साथ पुरोहित ने भोगों को त्यागकर अभिनिष्क्रमण किया है—यह सुनकर उस कुटुम्ब की प्रचुर और श्रेष्ठ धन संपत्ति की चाह रखने वाले राजा को देवी कमलावती ने कहा १३७।

तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो। राजन् ! वमन को खाने वाला पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता है १३८।

सारा जगत और उसका समस्त धन भी यदि तुम्हारा हो जाये, तो भी वह तुम्हारे लिये अपर्याप्त ही होगा और वह धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा १३९।

राजन् ! एक दिन इन मनोज्ञ काम-गुणों को छोड़कर जब मरेंगे तब एक धर्म ही संरक्षक होगा। हे नरदेव ! यहाँ धर्म के अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है १४०।

पक्षी जैसे पिंजरे में सुख का अनुभव नहीं करता है, वैसे ही मुझे भी यहाँ आनन्द नहीं है। मैं स्नेह के बन्धनों को तोड़कर अकिचन, सरल, निरासक्त, परिग्रह और हिंसा से निवृत्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूँगी १४१।

जैसे कि वन में लगे दावानल में जन्तुओं को जलते देखकर रागद्वेष के कारण अन्य जीव प्रमुदित होते हैं १४२।

उसी प्रकार कामभोगों में मूच्छित हम मूढ़ लोग भी रागद्वेष की अग्नि से जलते हुए जगत को नहीं समझ रहे हैं १४३।

आत्मवान साधक भोगों को भोगकर भी उन्हें त्यागकर वायु की तरह अप्रतिबद्ध लघुभूत होकर विचरण करते हैं। अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले पक्षियों की तरह प्रसन्नता पूर्वक स्वतन्त्र विहार करते हैं १४४।

जिन्हें हमने नियंत्रित समझ रखा है, ऐसे हमारे हस्तगत हुए ये कामभोग वस्तुतः क्षणिक हैं। अभी हम कामनाओं में आसक्त हैं, किन्तु जैसे ये—पुरोहित परिवार बंधन मुक्त हुए हैं, वैसे ही हम भी होंगे १४५।

जित्त गीघ पक्षी के पास मांस होता है, उसी पर दूसरे मांस भक्षी पक्षी झपटते हैं और जिसके पास मांस नहीं होता है, उस पर कोई नहीं झपटते हैं। अतः मैं भी उन मांसोपम कामभोगों को छोड़कर निरामिष भाव से विचरण करूँगी १४६।

गिद्धोवमा उ नच्चानं, कामे संसारवद्धणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, सकमाणो तणुं चरे ।४७।

नागो व्व बंधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं, उस्सुमारिं त्ति मे सुयं ।४८।

रायाईणं पव्वज्जा—

४६५. चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निविंसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ।४६।

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झसहुक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ।५०।

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।
जम्म-मच्चु-भउव्विग्गहा, दुक्खस्संतगवेसिणो ।५१।

सासणे विगयमोहाणं, पुंविं भावणभाविया ।
अचिरेणेव कालेणं, दुक्खस्संतमुवागया ।५२।

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा जेव, सव्वे ते परिनिव्वुडा ।५३।

त्ति वेमि।।

उत्तरा० अ० १४ ।

संसार की वृद्धि करने वाले कामभोगों को गीध के समान जानकर उनसे वैसे ही शंकित होकर चलना चाहिए, जैसे कि गरुड़ के समीप सांप शंकित होकर चलता है ।४७।

बंधन को तोड़कर जैसे हाथी अपने निवास स्थान—वन को चला जाता है, वैसे ही हमें भी अपने वास्तविक स्थान-मोक्ष में चलना चाहिए । हे महाराज इपुकार ! यही एकमात्र श्रेयस्कर है, ऐसा मैंने ज्ञानी जनों से सुना है ।४८।

राजादि की प्रव्रज्या—

४६५. विशाल राज्य को छोड़कर, दुस्त्यज कामभोगों का परित्याग करके वे राजा रानी भी निर्विषय, निरामिय, निःस्नेह और निष्परिग्रह हो गये ।४६।

धर्म को सम्यक् रूप से जानकर, उपलब्ध श्रेष्ठ काम गुणों को छोड़कर दोनों ही यथोपदिष्ट घोर तप को स्वीकार कर संयम में घोर पराक्रमी बने ।५०।

इस प्रकार वे सब क्रमशः बुद्ध बने, धर्मपरायण बने, जन्म एवं मृत्यु के भय से उद्विग्न हुए, अतएव दुःख के अन्त की खोज में लग गये ।५१।

जिन्होंने पूर्व भव में अनित्य आदि भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित किया, वे वीतराग अर्हंत शासन में मोह को दूर करके थोड़े समय में ही दुःख का अन्त करके मुक्त हुए ।५२।

राजा के साथ रानी, ब्राह्मण पुरोहित, उसकी पत्नी और उनके दोनों पुत्र ये सब संसार भ्रमण से परिनिवृत्त हुए ।५३।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।



३८. महावीरतित्थे खंदएपरिव्वायगे

कयंगलाए महावीरसमोसरणं—

४६६. तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुण-
सिलाओ चेइआओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया जण-
वयविहारं विहरइ ।

३८ महावीर तीर्थ में स्कन्दक परिव्राजक

कृतगंला में महावीर समवसरण—

४६६. उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगरी के निकटवर्ती गुणशिलक चैत्य से निकले, निकलकर बाहर जनपद विहार से विचरण करते हैं ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कयंगला नामं नगरी होत्था—
वण्णओ ।

तीसे णं कयंगलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे विसीभाए
छत्तपलासए नामं चेइए होत्था—वण्णओ ।

तए. णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे - जाव -
समोसरणं । परिसा निग्गच्छइ ।

सावत्थीए खंदए परिव्वायगे—

४६७. तीसे णं कयंगलाए नयरीए अङ्कुरसामंते सावत्थी नामं
नयरी होत्था—वण्णओ ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दुभालस्स अंतेवासी खंदए नामं
कच्चायणसगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ—रिव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद-
अहव्वेद-इतिहास-पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं—चउण्हं वेदाणं
संगोवंगणं सरहस्साणं सारए धारए पारए सडंगवी सट्ठित्तं-
विसारए, संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोतिसामयणे,
अण्णेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए
यावि होत्था—

पिगलेण लोगाइविसए पण्हार्इ—

४६८. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिगलए नामं नियंठे वेसालिय-
सावए परिवसइ ।

तए णं से पिगलए नामं नियंठे वेसालियसावए अण्णया
कयाइ जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता खंदगं कच्चायणसगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे—

मागहा ! १. किं सअंते लोए ? अणंते लोए ? २. सअंते
जीवे ? अणंते जीवे ३. सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ? ४. सअंते
सिद्धे ? अणंते सिद्धे ? ५. केण वा मरणेणं मरणेणं जीवे
वड्ढति वा, हायति वा ?—एतावं ताव आइक्खाहि वुच्चमाणे
एवं ।

खंदअस्स उत्तरदाणे असामत्थं—

४६९. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिगलएणं नियंठेणं
वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए कंखिए विति-

उस काल उस समय में कृतंगला नाम की नगरी थी—
वर्णन ।

उस कृतंगला नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में-ईशानकोण
में छत्र पलाशक नाम का चैत्य था—वर्णन ।

उस समय उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले श्रमण
भगवान-यावत्-समवसरण हुआ । परिपद् निकली ।

श्रावस्ती में स्कन्दक परिव्राजक—

४६७. उस कृतंगला नगरी के निकट श्रावस्ती नाम की नगरी
थी—वर्णन ।

उस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्रीय गर्दभाल का शिष्य
स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद,
सामवेद और अथर्ववेद तथा पांचवाँ इतिहास और छठा निघंटु
का सांगोपांग और रहस्य सहित प्रवर्तक याद करने वाला, उनमें
होने वाली भूलों को सुधारने वाला, वेदादि शास्त्रों का धारक
और पारगाभी था, छह अंगों का ज्ञाता था, पण्डितंत्र में
विशारद था, गणितशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याक-
रण शास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा
और दूसरे अनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजक सम्बन्धी नीति और
दर्शन शास्त्रों में भी अत्यन्त निपुण था ।

पिगल द्वारा लोकादि के विषय में प्रश्न—

४६८. उसी श्रावस्ती नगरी में वैशालिक (महावीर) का श्रावक
पिगल नामका निर्ग्रन्थ रहता था ।

तत्पश्चात् वैशालिक का श्रावक वह पिगल नामक निर्ग्रन्थ
किसी एक समय जहाँ कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक रहता था,
वहाँ आया, आकर कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से आशेषपूर्वक
इस प्रकार पूछा—

“हे मागध ! (१) क्या लोक अन्तःसहित है या अन्त रहित
अनन्त है (२) जीवसंत है या अनन्त है ? (३) सिद्धि सान्त है
या अनन्त है ? (४) सिद्ध सान्त हैं या अनन्त हैं ? (५) किस
मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है अर्थात्
जीव किस तरह मरे जिससे उसका संसार बढ़ता है या घटता
है ? तुम इतने प्रश्नों के तो उत्तर दो ।

स्कन्दक की उत्तर देने में असामर्थ्य—

४६९. तत्पश्चात् जब वैशालिक श्रावक पिगल निर्ग्रन्थ ने उन
कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इन आशेषों—प्रश्नों को पूछा तब
वह इन प्रश्नों का क्या यह उत्तर होगा या दूसरा, इस प्रकार
की शंका वाला, ‘इन प्रश्नों का उत्तर किस तरह से दूँ’ इस
प्रकार की कांतावाला, मैं जो उत्तर दूँगा उससे पृच्छने वाले
को सन्तोष होगा या नहीं, इस प्रकार से आत्मविरवान से हूँ

गिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने णो सचाएइ पिगलयस्त
नियंठस्स वेसालियसावयस्त किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं,
तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से पिगलए नियंठे वेसालियसावए खंदयं कच्चायणस-
गोत्तं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छे—

मागहा ! १. कि सअंते लोए ? अणंते लोए ?-जाव-५.
केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?—
एतावं ताव आइक्खाहि बुच्चमाणे एवं ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिगलएणं नियंठेणं वेसा-
लियसावएणं दोच्चं पि तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए
कंखिए वित्तिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने णो संचाएइ
पिगलयस्त नियंठस्स वेसालियसावयस्त किंचि वि पमोक्ख-
मक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ ।

बहुजणस्स कयंगलं पइ गमणं—

५००. तए णं सावत्थीए नयरीए सिघाडग-जाव-महापहेसु महया
जणसंमहे इ वा जणवूहे-इ-वा । परिसा निग्गच्छति ।

खंदअस्स महावीरदंसणट्ठं कयंगलागमणं—

५०१. तए णं तस्स खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स बहुजणस्स
अंतिए एयमड्डं सोच्चा निसम्म इमेयाह्वे अज्जत्थिए चित्तिए
पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु समणे भगवं
महावीरे कयंगलाए नयरीए वहिया छत्तपलासए चेइए संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं
महावीरं वंदामि नमंसांमि । सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं
वंदित्ता, नमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता कल्लाणं मंगलं देवयं
चेइयं पज्जुवासित्ता इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेअइं पसिणाइं
कारणाइं वागरणाइं पुच्छित्तए' त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता
जेणेव परिव्वायगावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता त्तिदंडं
च कुंडियं च कंचणियं च करोडियं च भित्तियं केसरियं च
छण्णालयं च अंकुसयं च पवित्तयं च गणेत्तियं च छत्तयं च
उवाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता

—भेद समापन्न और क्लेशयुक्त हो गया किन्तु वैशालिक श्रावक
पिगल निग्रन्थ को कुछ भी उत्तर देने में सक्षम नहीं हुआ और
मौन धारण कर लिया ।

तत्र वैशालिक श्रावक पिगल निग्रन्थ ने कात्यायन गोत्रीय
स्कन्दक से पुनः दुबारा और तिवारा भी उन्हीं आशेषों को
पूछा—

मागध ! क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है ? यावत्
(५) जीव किस तरह मरे तो उसका ससार बड़े अथवा बटे ?
तू मेरे इन प्रश्नों का उत्तर तो दे ।

तत्पश्चात् जब उस वैशालिक श्रावक पिगल निग्रन्थ ने
कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से पुनः दुबारी वार और तीसरी वार
भी इन्हीं प्रश्नों को पूछा तो वह शक्तिमत्ता, कांक्षितमत्ता और
आत्मविश्वासहीन हो गया, बुद्धि भंग और क्लेश को प्राप्त हुआ
और वैशालिक श्रावक पिगल निग्रन्थ को कुछ भी उत्तर न देकर
मौन धारण किय बंदा रहा ।

जनसमूह का कृतगंला की ओर गमन—

५००. तत्पश्चात् श्रावस्ती नगरी के शृंगटक-यावत् —राजमाणं
से बहुत बड़ी भीड़ के रूप में अथवा जनसमूह के रूप में पर्वदा
निकली ।

स्कन्दक का महावीर के दर्शनार्थ कृतगंला गमन

५०१. तत्पश्चात् अनेक मनुष्यों के मुख से इस अर्थ (महावीर के
आगमन) को सुनकर और अवधारण करके उस कात्यायन
गोत्रीय स्कन्दक के मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक,
चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ कि—
'श्रमण भगवान् महावीर कृतगंला नगरी के बाहर छत्रपलाशक
नामक चैत्य में संयम और तप द्वारा आत्मा को भाते हुए
विचरण कर रहे हैं । अतः मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर
को वन्दना नमस्कार करूँ और श्रमण भगवान् महावीर को
वन्दना, नमस्कार करके, उनका सत्कार सम्मान करके और
कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप महावीर स्वामी
की पर्युपासना करके इस प्रकार के इन अर्थों को, हेतुओं को,
प्रश्नों को, कारणों को और वशाकरणों को पूँछूँ तो यह मेरे लिए
श्रेयस्कर होगा—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके
जहाँ परिव्राजक आवसथ (मठ) था वहाँ आया, आकर त्रिदण्ड,
कुण्डी, रुद्राक्ष की माला, करोटिक-मिट्टी का पात्र, वृषिक—एक
प्रकार का आसन, केसरिका, कपड़े का टुकड़ा, छत्रालय, अकुश
पवित्री, गणेत्रिका—हाथ का कड़ा, छत्र, उपानह—जूता,

परिव्वायावसहाओ पडिनिवखमइ, पडिनिवखमित्ता तिदंड-कुंडिय-कंचणिय-करोडिय-भिसिय - केसरिय - छणालय-अंकुसय-पवित्तय-गणेतियहत्थयए, छत्तोवाहणसंजुत्ते, धाउरत्तावत्थपरिहिए साव-त्थीए नयरीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कयंगला नगरी, जेणेव छत्तपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

महावीरेण गोयमं पइ खंदयआगमणनिद्वेसो—

५०२. गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—

“दच्छिसि णं गोयमा ! पुव्वसंगयं ।”

कं भंते ! ?

खंदयं नाम ।

से काहे वा ? किह वा ? केवच्चिरेण वा ?

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्थ्या—वण्णओ । तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गह्मालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्ते परिव्वायए परिवसइ । तं चेव-जाव-जेणेव ममं अंतिए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए । से अदूरागते बहुसंपत्ते अद्धानपडिवण्णे अंतरा पहे वट्टइ । अज्जेव णं दच्छिसि गोयमा !

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

पह णं भंते ! खंदए कच्चायणसगोत्ते देवानुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

हता पभू ।

जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्टं परिकहेइ, तावं च णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते तं देस हव्व-मागए ।

गोयमकयं खंदयसुसागयं आगमणकारणकहणं च—

५०३. तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं अदूरागतं जागित्ता विप्पामेव अवमुट्ठेति, अग्गमुट्ठेत्ता विप्पामेव पच्चुव-

पाटुका और गेरु से रंगे हुए वस्त्रों को लेता है, लेकर परिव्राजक मठ से निकला, निकलकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्ष की माला करोटिका, वृषिक, केसरिया, छत्रालय, अंकुश, पवित्रि, गणेत्रिका, को हाथ में लेकर छत्र को सिर पर लगाकर, जूता पहनकर, गेरु से रंगे हुए वस्त्रों को शरीर पर धारण कर श्रावस्ती नगरी के मध्य में से निकला, निकलकर जहाँ कृतंगला नगरी थी, जहाँ छत्रपलाशक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ-संकल्प किया ।

महावीर द्वारा गौतम से स्कन्दक-आगमन निर्देश—

५०२. 'हे गौतम !' इस प्रकार सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

'हे गौतम ! तुम आज अपने पूर्व के सम्बन्धी को देखोगे ।'

हे भगवन् ! किसको देखूँगा ?

स्कन्दक नामक परिव्राजक को—महावीर ने उत्तर दिया ।

गौतम ने पूछा—मैं उसे कब, कहाँ, किस तरह और कितने समय में देखूँगा ?

हे गौतम ! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी—वर्णन । उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल का शिष्य कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता है । एतद्-विषयक वर्णन पहले किये गये कथन के अनुसार समझ लेना चाहिये—यावत्—जहाँ मैं हूँ उस ओर—मेरे पास आने का संकल्प किया है । वह अपने समीप पहुँचने के करीब है, उसने बहुत-सा मार्ग तय कर लिया है, आधे रास्ते पर है और हे गौतम ! तुम उसे आज ही देखोगे । (भगवान महावीर ने उत्तर दिया ।)

'हे भगवन् !' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर, आगार त्यागकर, आनगारकत्व अंगीकार करने में सक्षम है ?

महावीर ने उत्तर दिया—हाँ, गौतम योग्य है ।

जब श्रमण भगवान महावीर भगवान गौतम ने यह बात कह रहे थे । इतने में ही वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक उन स्थान पर—भगवान महावीर के विराजने के स्थान पर गीत्र आया ।

गौतमकृत स्कन्दक का सुस्वागत और आगमन कारण कथन—

५०३. तत्परवात भगवान गौतम कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को निकट आया हुआ जानकर गीत्र ही अपने

गच्छइ, जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—

“हे खंदया ! सागयं खंदया ! सुसागयं खंदया ! अणुरागयं
खंदया ! सागयमणुरागयं खंदया ! से नूनं तुमं खंदया ! सावन्थीए
नयरीए पिगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए-
मागहा ! किं सअंते लोगे ? अणंते लोगे ? एवं तं चेव-जाव-जेणेव
इहं, तेणेव ह्वमागए । से नूनं खंदया ! अट्टे समट्टे ?”

हंता अत्थि ।

महावीरस्स नाणविसए खंदयस्स अच्छरियं—

५०४. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं
वयासी—

“से केस णं गोयमा ! तहाख्वे नाणी वा तवस्सी वा,
जेणं तव एस अट्टे मम ताव रहस्सकडे ह्वमक्खाए, जओ णं
तुमं जाणसि ?”

तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—
“एवं खलु खंदया ! ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे
भगवं महावीरे उत्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तीय-
पच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वणू सव्वदरिसी जेणं मम एस
अट्टे तव ताव रहस्सकडे ह्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि
खंदया !”

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—
“गच्छामो णं गोयमा ! तव धम्मायरियं धम्मोवदेसयं समणं
भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं
मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो ।”

अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणसगोत्तेणं सद्धि
जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

खंदयस्स महावीर पज्जुवासणा—

५०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वियट्ट-
ओई यावि होत्था ।

आसन से खड़े हो गये, खड़े होकर शीघ्र ही स्कन्दक के सामने
गये और जहाँ कात्यायन गोत्रीय परिव्राजक स्कन्दक था, वहाँ
आये, वहाँ आकर कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस प्रकार
बोले—

“हे स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, हे स्कन्दक ! तुम्हारा
सुस्वागत है, हे स्कन्दक ! तुम्हारा अन्वागत है, हे स्कन्दक !
तुम्हारा स्वागत अन्वागत है, हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में
तुम से वैशालिक श्रावक भिगलक निर्ग्रन्थ ने यह आक्षेपपूर्वक
पूछा था—हे मागध ! क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है ?
इसी प्रकार पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार करना चाहिए—
यावत—जिससे शक्ति होकर तुम शीघ्र ही यहाँ आये हो,
हे स्कन्दक ! क्या यह बात ठीक है ?”

स्कन्दक ने कहा—हाँ, यह बात सत्य है ।

महावीर के ज्ञान विषय में स्कन्दक का आश्चर्य—

५०४. तत्पश्चात् कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक ने भगवान् गौतम
से इस प्रकार कहा—

“हे गौतम ! ऐसे कौन तथारूप जानी और तपस्वी पुरुष
हैं कि जिन्होंने मेरी गुप्त बात तुमसे शीघ्र कह दी, जिससे तुम
इस रहस्य की बात को जानते हो ?”

तव भगवान् गौतम ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस
प्रकार कहा—“हे स्कन्दक ! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण
भगवान् महावीर उत्पन्न ज्ञान और दर्शन के धारक हैं, अर्हत हैं,
जिन हैं, केवली हैं, अतीत, वर्तमान और अनागत काल के ज्ञाता,
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, जिन्होंने मुझे तुम्हारी गुप्त बात शीघ्र कह
दी, जिससे हे स्कन्दक ! मैं उस बात को जानता हूँ ।”

तत्पश्चात् कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक ने गौतम
भगवान् से इस प्रकार कहा—“हे गौतम ! आओ चलो और
तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर को वंदन
करें, नमन करें, उनका सत्कार सम्मान करें और उन कल्याण
रूप, मंगलरूप और चैत्य रूप की पर्युपासना-सेवा करें ।”

हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें योग्य प्रतीत हो, वैसा करो,
किन्तु विलंब मत करो । गौतम ने उत्तर दिया ।

तत्पश्चात् भगवान् गौतम कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक के
साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उस और
गमन करने के लिये उद्यत हुए ।

स्कन्दक की महावीर पर्युपासना—

५०५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर
व्यावृतभोजी थे ।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्ठभोइस्स सरोरयं ओरालं सिगारं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगल्लं अणलं कियविभूसियं लक्खण-वंनण-गुणोववेयं सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणं चिट्ठइ ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्ठभोइस्स सरोरयं ओरालं-जाव-अतीव-अतीव उवसोभेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ-जाव-पज्जुवासइ ।

महावीरेण खंदयस्स मणोगयस्स कहणं—

५०६. खंदया ! ति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—

“से नूणं तुमं खंदया ? सावत्थीए जयरीए पिगलएणं नियंठेणं वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए—

मागहा ! १. कि सअंते लोए ? अणंते लोए ? एवं तं चेव-जाव-जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए ।

से नूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ?” हंता अत्थि ।

महावीरेण चउव्विहलोयपरूपणं—

५०७. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पे सपुप्पज्जित्या—कि सअंते लोए ? अणंते लोए ?—तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पणत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगे लोए सअंते ।

खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंणेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पणत्ते, अत्थि पुण से अंते ।

कालओ णं लोए न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवे नियए तासए अक्खए अक्खए अवट्ठिए निच्छे, नत्थि पुण से अंते ।

उन व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवन्त महावीर का उदार, शृंगार किया हुआ जैसा, कल्याण रूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप अलंकारों से विहीन भी शोभित, उत्तम लक्षणों व्यंजनों और गुणों से युक्त शरीर शोभा द्वारा अतीव अतीव शोभित हो रहा था ।

तत्पश्चात् वह कात्यायनगोत्रीय स्कन्दक व्यावृत्त-भोजी श्रमण भगवान महावीर का उदार शरीर -यावत्-शोभा द्वारा अत्यन्त शोभायमान शरीर को देखता है, देखकर हर्षित, संतुष्ट एवं आनंदित चित्तवाला हुआ और हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला होकर जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया; वहां आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन वार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की-यावत्-उनकी पर्युपासना करता है ।

महावीर द्वारा स्कन्दक के मनोगत का कथन—

५०६. स्कन्दक ! ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक से इस प्रकार कहा—

‘हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरी में ! रहने वाले वैशालिक श्रावक पिगलक निर्ग्रन्थ ने तुम से इस प्रकार आक्षेपपूर्वक पूछा था—

हे मागध ! क्या लोक अंत वाला है या अन्त विना का है ? यह सब पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिये—यावत्-जिससे तू मेरे पास शीघ्र आया है ।

हे स्कन्दक ! यह अर्थ समर्थ है, अर्थात् यह वात सत्य है ? स्कन्दक ने उत्तर दिया—हां, यह वात सत्य है ।

महावीर द्वारा चार प्रकार से लोक का प्ररूपण—

५०७ हे स्कन्दक ! तेरे मन में जो इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—क्या लोक अन्तसहित है या अन्त विना का है ?—उसका भी यह अर्थ है—हे स्कन्दक ! मैंने लोक चार प्रकार का बतलाया है, यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से ।

द्रव्य से जो लोक है, वह एक है और अन्त सहित है ।

क्षेत्र से जो लोक है, वह असंख्य कोटाकोटी योजन के आयाम विष्कम्भ वाला—लम्बाई-चौड़ाई वाला है और उसकी परिधि असंख्य कोटाकोटी योजन प्रमाण है तथा उसका अंत है ।

काल से जो लोक है, वह किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है, किसी समय नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है, किसी समय नहीं है, ऐसा भी नहीं है—किन्तु वह हमेशा था, हमेशा है और हमेशा रहेगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है तथा उसका अंत नहीं है ।

भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ।

सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते ।

चउव्विहजीवपरूणं—

५०८. जे वि य ते खंदगा ! अयमेयारूवे अज्जत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

किं सअंते जीवे ? अणंते जीवे ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदगा ! चउव्विहे जीवे पणत्ता, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगे जीवे सअंते ।

खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाडे, अत्थि पुण से अंते ।

कालओ णं जीवे न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य—धुवे नियए सासए अवखए अव्वए अवट्ठिए निच्चे, नत्थि पुण से अंते ।

भावओ णं जीवे अणंता नाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता चारित्तपज्जवा, अणंता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अंते ।

सेत्तं खंदगा ! दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे सअंते कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते ।

चउव्विहसिद्धिपरूवणं—

५०९. जे वि य ते खंदगा ! अयमेयारूवे अज्जत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

किं सअंता सिद्धी ? अणंता सिद्धी ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे । एवं खलु मए खंदगा ! चउव्विहा सिद्धी पणत्ता, तं जहा—

दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगा सिद्धी सअंता ।

खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी वायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोण्णि य अउणापन्नेजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पणत्ता, अत्थि पुण से अंते ।

भाव से जो लोक हे वह अनन्त वर्ण पर्याय रूप हे, अनन्त-गंध पर्यायरूप हे, अनन्त रस पर्यायरूप, अनन्त स्पर्श पर्याय रूप हे, अनन्त संस्थान (आकार) पर्यायरूप, अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप तथा अनन्त अगुरुलघुपर्याय रूप हे तथा उसका अंत नहीं हे ।

अतएव हे स्कन्दक ! द्रव्यतः लोक अन्तवाला हे, क्षेत्रतः लोक अन्तवाला हे, कालतः लोक अनन्त हे और भावतः लोक अनन्त हे ।

चतुर्विध जीव प्ररूपणा—

५०८. हे स्कन्दक ! तुझे जो यह, इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत, संकल्प समुत्पन्न हुआ था—

क्या जीव अन्तवाला हे या अन्त बिना का हे ?

उसका भी यह अर्थ हे—हे स्कन्दक ! मैंने जीव चार प्रकार का बतलाया हे, यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से ।

द्रव्य से जीव एक हे, और अन्तवाला हे ।

क्षेत्र से जीव असंख्यात प्रदेश वाला हे और असंख्य प्रदेशों में उसका अवगाह हे तथा उसका अन्त भी हे ।

काल से जीव किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं हे, किसी समय नहीं हे, ऐसा नहीं हे किसी समय नहीं होगा, ऐसा नहीं हे—अपितु वह था, हे और रहेगा—वह ध्रुवः नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य हे एवं उसका अन्त नहीं हे ।

भावतः जीव में अनन्त ज्ञान पर्यायों, अनन्त दर्शन पर्यायों अनन्त-चारित्र्य पर्यायों, अनन्त गुरुलघुपर्यायों और अनन्त अगुरुलघु-पर्यायों हे तथा उसका अन्त नहीं हे ।

इसीलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से जीव सान्त, क्षेत्र से जीव सान्त, काल से जीव अनन्त, और भाव से जीव अनन्त हे ।

चार प्रकार की सिद्धि को प्ररूपणा—

५०९. हे स्कन्दक ! तुझे जो इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—

क्या सिद्धि अन्तवाली हे या अन्त बिना की हे ?

उसका भी यह उत्तर हे कि हे स्कन्दक ! मैंने सिद्धि चार प्रकार की कही हे ।

वह इस प्रकार—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से ।

द्रव्य से सिद्धि एक और सांत हे ।

क्षेत्र से सिद्धि पैतालीस लाख योजन आयाम-विष्कंभ वाली हे और उसकी परिधि एक करोड़ वयालीस लाख, तीन हजार दो सौ उन्नचास योजन से कुछ विशेषाधिक हे और उसका अन्त छोर भी हे ।

कालओ णं सिद्धी न कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भविस्सु य, भवति य, भविस्सइ य—ध्रुवा नियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया निच्चा, नत्थि पुण से अंते ।

भावओ णं सिद्धीए अणंता वण्णपज्जवा, अणंता गंधपज्जवा, अणंता रसपज्जवा, अणंता फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणता गरुयलहुयपज्जवा, अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ।

सेत्तं खन्दया ! दव्वओ सिद्धी सअंता, खेत्तओ सिद्धी सअंता, कालओ सिद्धी अणंता, भावओ सिद्धी अणंता ।

चउव्विहसिद्ध-परूवणं—

जे वि य खन्दया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए चित्थिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—कि सअंते सिद्धे ? अणंते सिद्धे ? तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खन्दया ! चउव्विहे सिद्धे पण्णत्ते,

तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते । खेत्तओ णं सिद्धे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते ।

कालओ णं सिद्धे सादीए, अपज्जवसिए, नत्थि पुण से अंते ।

भावओ णं सिद्धे अणंता नाणपज्जवा, अणंता वंसणपज्जवा, जाव-अणंता अगरुयलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ।

सेत्तं खन्दया ! दव्वओ सिद्धे सअंते, खेत्तओ सिद्धे सअंते, कालओ सिद्धे अणंते, भावओ सिद्धे अणंते ।

मरणपरूवणं—

५१०. जे वि य ते खन्दया ! इमेयारूवे अज्झत्थिए चित्थिए—पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा ?

तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु खन्दया ! मए दुव्विहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—

बालमरणे य, पंडितमरणे य ।

से किं तं बालमरणे ?

काल से सिद्धि किसी दिन नहीं थी, ऐसा नहीं है, किसी दिन नहीं है, ऐसा नहीं है और किसी दिन नहीं रहेगी, ऐसा भी नहीं है; किन्तु वह थी, है और रहेगी—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है और उसका अन्त नहीं है ।

भाव से लोक अनन्त वर्णपर्याय, अनन्त गंधपर्याय, अनन्त रसपर्याय, अनन्त स्पर्शपर्याय, अनन्त संस्थानपर्याय, अनन्त गुरुलघुपर्याय, अनन्त अगुरुलघु-पर्याय रूप है तथा उसका अन्त नहीं है ।

इसलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से सिद्धि अन्तवाली है, क्षेत्र से सिद्धि अन्तवाली है, काल से सिद्धि अनन्त है, भाव से सिद्धि अनन्त है ।

चार प्रकार का सिद्ध प्ररूपण—

हे स्कन्दक ! तुझे जो यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि सिद्ध अन्तसहित है अथवा अन्त विना का है ? उसका भी यह स्पष्टीकरण है—हे स्कन्दक ! मैंने चार प्रकार से सिद्ध की प्ररूपणा की है, वह इस प्रकार है—द्रव्यापेक्षा, क्षेत्रापेक्षा, कालापेक्षा, भावापेक्षा ।

द्रव्यापेक्षा सिद्ध एक है और असंख्यप्रदेश वाला है और असंख्य प्रदेश में अवगाढ़ है और उसका अन्त भी है ।

कालापेक्षा सिद्ध आदि वाला है किन्तु अपर्यवसित है अर्थात् अन्तविना का है और उसका अन्त नहीं है ।

भावापेक्षा सिद्ध अनन्त ज्ञानपर्याय रूप है, अनन्तदर्शन पर्याय रूप है,—यावत्-अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है और उसका अन्त नहीं है ।

इसलिये हे स्कन्दक ! द्रव्य से सिद्ध अन्तसहित, क्षेत्र से सिद्ध अन्तसहित, काल से सिद्ध अन्तरहित और भाव से सिद्ध अन्तरहित है ।

मरण प्ररूपण—

५१०. हे स्कन्दक ! तुझे जो यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि—जीव के किस मरण से मरने पर उनका संसार बढ़ता है अथवा घटता है ?

उनका भी उत्तर इस प्रकार है—हे स्कन्दक ! मने मरण के दो प्रकार बतलाये हैं, यथा—

बालमरण और पंडितमरण ।

उनमें से बालमरण क्या है ?

वालमरणे दुवालसविहे पणत्ते, तं जहा—१. वलयमरणे
२. वसट्टमरणे ३. अंतोसल्लमरणे ४. तद्भवमरणे ५. गिरिपडणे
६. तरुपडणे ७. जलपपवेसे ८. जलणपपवेसे ९. विस-भक्खणे
१०. सत्थोवाडणे ११. वेहाणसे १२. गिद्धपट्टे ।

इच्छेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं वालमरणेणं मरमाणे
जीवे अणंतेहि नेरइयभवग्गहणेहि अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहि
तिरियभवग्गहणेहि अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहि मणुयभवग्गहणेहि
अप्पाणं संजोएइ, अणंतेहि देवभवग्गहणेहि अप्पाणं संजोएइ,
अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरतं संसारकंतारं अणु-
परियट्टइ ।

सेत्तं मरमाणे वड्डइ-वड्डइ । सेत्तं वालमरणे ।

से किं तं पंडियमरणे ?

पंडियमरणे दुविहे पणत्ते, तं जहा—पाओवगमणे य, भत्त-
पच्चक्खाणे य ।

से किं तं पाओवगमणे ?

पाओवगमणे दुविहे पणत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनी-
हारिमे य । नियमा अप्पडिकम्मे । सेत्तं पाओवगमणे ।

से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?

भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पणत्ते, तं जहा—नीहारिमे य,
अनीहारिमे य । नियमा सपडिकम्मे । सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे ।

इच्छेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे
अणंतेहि नेरइयभवग्गहणेहि अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहि तिरिय-
भवग्गहणेहि अप्पाणं विसंजोएइ, अणंतेहि मणुयभवग्गहणेहि अप्पाणं
विसंजोएइ, अणंतेहि देवभवग्गहणेहि अप्पाणं विसंजोएइ, अणाइयं
च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरतं संसारकंतारं वीईवयइ ।

सेत्तं मरमाणे हायइ-हायइ ।

सेत्तं पंडियमरणे ।

इच्छेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्डइ वा,
हायइ वा ।

वालमरण के वारह भेद कहे हैं, ये इस प्रकार हैं—
१. वलयमरण २ वशांतमरण ३ अंतःशलयमरण ४. तद्भव
मरण ५ गिरिपतन ६ तरुपतन ७ जलप्रवेश ८ अग्नि-प्रवेश
९ विपभक्षण १० शस्त्रघात, ११ फांसी लगाना १२ वृद्धपृष्ठ
(गृद्ध आदि हिंसक पक्षी पशुओं के आघात से मरना ।)

हे स्कन्दक ! इन वारह प्रकार के वालमरणों से मरने पर
जीव अनन्त वार नारकभवों को प्राप्त करता है, अनन्त तिर्यचभवों
के ग्रहण से अपनी आत्मा को मंयोजित करता है, अनन्त वार
मनुष्यभवों को प्राप्त करता है और अनन्त वार देवभवों को
धारण करता है और अनादि, अनन्त, विस्तृत, चतुर्गति रूप
संसार रूप वन में भटकता रहता है ।

इस प्रकार के वालमरण से मरने वाला जीव अपने संसार
को बढ़ाता है अथवा ऐसे वालमरण से मरने पर संसार की
वृद्धि होती है ?

वह पंडितमरण क्या है ?

पंडितमरण दो प्रकार का कहा है, यथा—पादोपगमन और
भक्तप्रत्याख्यान ।

पादोपगमन क्या है ?

पादोपगमन दो प्रकार का है, यथा—निर्हारिम और अनिर्हारिम
[जिस मृत शरीर का संस्कार किया जाता है उसे निर्हारिम मरण
और उससे विपरीत को अनिर्हारिम मरण कहते हैं] । ये दोनों
प्रकार के पादोपगमन मरण प्रतिकर्म विना के हैं । इस प्रकार
पादोपगमन मरण का स्वरूप है ।

भक्त प्रत्याख्यान क्या है ?

भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा है, यथा—निर्हारिम
और अनिर्हारिम ! ये दोनों मरण प्रतिकर्म सहित हैं । यह भक्त-
प्रत्याख्यान मरण का स्वरूप है ।

हे स्कन्दक ! इन दोनों प्रकार के पंडितमरणों से मरने
वाला जीव नारकों के अनन्तभवों को प्राप्त नहीं करता है, अनन्त
तिर्यचभवों को प्राप्त नहीं करता, अनन्त मनुष्यभवों को प्राप्त
नहीं करता है, अनन्त देवभवों को प्राप्त नहीं करता है किन्तु
अनादि, अनन्त, विशाल, चातुर्गतिक रूप संसार वन को पार
कर लेता है ।

इस प्रकार के मरण से मरने पर जीव का संसार घटता है ।
यह पंडित मरण का स्वरूप है ।

हे स्कन्दक ! पूर्वोक्त दो प्रकार के मरण द्वारा मरते हुए
जीव का संसार बढ़ता भी है और घटता भी है ।

खंदयस्स धम्मसवणं—

५११. एत्थ णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुव्वं अंतिए केवलपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स, तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ । धम्मकहा माणियव्वा ।

खंदयस्स पव्वज्जा—

५१२. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तु चित्तमाणंदिए णंदिए पीडमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमागहियए उट्टाए उट्टेइ, उट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

सट्टहामि णं भंते ! निगंथं पावयणं, जाव-से जहेयं तुव्वे वह ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं विसीभायं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंड च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य । से जहानामए केइ गाहावई अगारसि जियायमाणसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पसारे मोल्लगरए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ । एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खमाए नित्सेपत्ताए आणुणामियत्ताए भविस्सइ ।

एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि जाया एगे भंडे इट्टे कंते पिए मनुप्पे मणामे धेज्जे वेत्तात्तिए सन्नए चहुनए अनुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं तीयं, मा णं उहं मा णं पुहा मा णं विवासा, मा णं चोरा, मा णं बाला, मा णं ईसा, मा णं मनया, मा णं पाइय-पित्तिय-सेभिय-सन्निवाइय-विविहा रोगासंहा परोत्त-

स्कन्दक का धर्मश्रवण—

५०३. इस बात को सुनकर वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परि-ब्राजक संबुद्ध होकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन, नमस्कार करता है, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! आपसे केवल प्ररूपित धर्म श्रवण करने का इच्छुक हूँ ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक तथा उपस्थित विशाल जनसमूह-सभा को धर्म कहा—यहां धर्म कथा कहना चाहिये ।

स्कन्दक की प्रव्रज्या—

५१२. तत्पश्चान् वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के मुख से श्रवणकर और अवधारण कर हृष्ट, तुष्ट आनन्दित चित्त, नंदित, प्रीतिमना, परम नोमनन और हर्षवज विकसित हृदयवाला हुआ और आसन से उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना, नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ—यावत् वह वैया ही है जैसा आप कहते हैं, ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में जाता है वहां जाकर त्रिदण्ड, कुण्डी-यावन्-गेरु के रंगे वस्त्रों को एकान्त में रखता है, रखकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान है, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

हे भगवन् ! यह लोक जरा और मरण से आलिप्त है, हे भगवन् ! प्रलिप्त-प्रदीप्त है और हे भगवन् ! आलिप्त प्रदीप्त है । अतएव जैसे कोई पृथ्वी अग्नि से जलने हुए घर में से जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य नामान होता है, उसे लेकर एकान्त में चला जाता है कि वही अयगिष्ट चचा हुआ नामान मुझे श्रेय, पीठे हितरूप, सुखरूप, सुगन्धरूप और अनुकूलन में श्रेय में निश्चयन कल्याण रूप होगा ।

इसी प्रकार हे देवानुप्रिय ! मेरी आत्मा भी एक प्रकार की बहुमूल्य वस्तु है जो मुझे इष्ट, कान्त, त्रिर, मनोः, मनान, स्मरं और विरवास की आधार स्त, सन्मन, मनुमन, मनुमय एवं आश्रय की संभूता देती है, इसलिये इसे भी, समया, भूख, प्यास, चोर, बाण, डाल, मच्छर, शूल, विष, शस्त्र,

होवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामिपत्ताए भविस्सइ ।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणय, वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तिय धम्ममा-इक्खियं ।”

तए ण समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं सयमेव पव्वावेइ-जाव-धम्ममाइक्खइ—

एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीइयव्वं, एवं तुयट्ठियव्वं, एवं भुंजियव्वं, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहि भूएहि जीवेहि सत्तेहि संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइयव्वं ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ— तमाणए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्ठइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाय-उट्ठाय पाणेहि भूएहि जीवेहि सत्तेहि संजमेणं संजमेइ, अस्सि च णं अट्ठे णो पमायइ ।

तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते अणगारे जाते—इरिया-समिए-जाव-गुत्तवंमयारी चाई लज्जू धन्ने खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अनियाणे अप्पुस्सुए अवहिल्लेसे सुसामण्णरए दंते इणमेव निग्गयं पावयणं पुरओ काउं विहरइ ।

महावीरस्स जणवयविहारो—

५१३. तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ छत्त-पलासाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया जणवयविहारं विहरइ ।

खंदएण भिक्खुपडिमागहणं—

५१४. तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जत्ता हिज्जत्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव

सन्निपात आदि विविध प्रकार के रोगातंक, परीपह, उपसर्ग आदि स्पर्श न करें, हानि न पहुँचायें और उसको पूर्वोक्त विघ्नों से बचा लें, तो वह मेरी आत्मा परभव में हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, और परंपरा से कल्याण रूप होगी ।

अतः हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें, स्वयमेव सिखायें, आप स्वयं ही शिक्षा दें और स्वयं आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, विनय का फल, चरण, करण, यात्रा, साधारण धर्म कहें ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने स्वयं कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक परिव्राजक को प्रव्रजित किया -यावत्-धर्म कहा—

हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार चलना चाहिये, इस प्रकार ठहरना—खड़े होना चाहिए, इस प्रकार बैठना चाहिये, इस प्रकार सोना चाहिये, इस प्रकार खाना चाहिये, इस प्रकार बोलना चाहिये और इस प्रकार उठकर प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के विषय में संयम पूर्वक वर्तन करना चाहिये और इसके बारे में किंचिन्मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये ।

उसके बाद उस कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक मुनि ने श्रमण भगवान महावीर का यह इस प्रकार का धर्मोपदेश सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया और जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा है, तदनु रूप वह चलता है, रहता है, बैठता है, सोता है, खाता है, बोलता है और उठकर प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयमपूर्वक प्रवृत्ति करता है तथा इस विषय में जरा भी प्रमाद नहीं करता है—रखता है ।

तब वह कात्यायन गोत्रीय स्कन्दक अनगार हो गया—ईया-समिति-यावत्-गुप्त ब्रह्मचारी, त्यागी, सरल, धन्य, क्षमा से सहन करने वाला, जितेन्द्रिय, शोधक, आकांक्षारहित, संभ्रम रहित, उत्सुकतारहित संयम के सिवाय अन्यत्र मन को नहीं रखने वाला, सुश्रामण्य में लीन, दांत होकर इसी निग्रंथ प्रवचन को समक्ष रखकर आगे रखकर विचरण करता है ।

महावीर का जनपद विहार—

५१३. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर कृतंगला नगरी और छत्रपलाशक चैत्य से निकले, निकलकर बाहर जनपद विहार से विचरण करते हैं ।

स्कन्दक द्वारा भिक्षु प्रतिमा ग्रहण—

५१४. उसके बाद वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि से प्रारम्भ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन करके जहां श्रमण भगवान विराजमान हैं, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुव्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठे-जाव-नमंसित्ता मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से खन्दए अणगारे मासियं भिक्खुपडिमं अहामुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं अहासम्मं सम्मं काएण फासेइ पालेइ सोभेइ तीरेइ पूरेइ किट्ठेइ अणुपालेइ आणाए आराहेइ, सम्मं काएण फासेत्ता पालेत्ता सोभेत्ता तीरेत्ता पूरेत्ता किट्ठेत्ता अणुपालेत्ता आणाए आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! तुव्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे दोमासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।”

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं । तं चेव । एवं तेमासियं, चाउम्मासियं, पंचमासियं, छम्मासियं, सत्तमासियं, पडमसत्तरातिदियं, दोच्चसत्तरातिदियं, तच्चसत्तरातिदियं, रातिदियं, एगरातिथं ।

तए णं से खन्दए अणगारे एगरातिथं भिक्खुपडिमं अहामुत्तं जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

खंदएण गुणरयणत्तं वच्छरत्तवोवत्संपज्जणं—

५१५. इच्छामि णं भंते ! तुव्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे गुणरयणत्तं वच्छरत्तवोवत्संपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

अहामुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं मासिक भिक्षु प्रतिमा धारणकर विचरना चाहता हूँ ।

हे देवानुप्रिय ! जैसा उचित हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध (विलंब) मत करो । (भगवान ने कहा)

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त कर वह स्कन्दक अनगार हर्षित हुआ-यावत्-नमस्कार करके एक नाम की भिक्षु प्रतिमा को धारण करके विचरता है ।

उसके बाद वह स्कन्दक अनगार मासिक भिक्षु प्रतिमा को सूत्र के अनुसार, कल्प के अनुसार, मार्ग के अनुसार, सत्यता-पूर्वक और सम्यक् प्रकार से पूर्णतया काय के द्वारा स्पर्श करता है, पालन करता है, शोभाता है, समाप्त करता है, पूर्ण करता है, कीर्तन करता है, अनुपालन करता है और आज्ञा प्रमाण आराधना करता है तथा सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श करके, पालन करके, शोभित करके, समाप्त करके, पूर्ण करके, कीर्तन करके और अनुपालन करके, आज्ञापूर्वक आराधना करके जहा श्रमण भगवान् महावीर विराजते थे, वहा आया, वहा आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

‘हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं द्वि-मासिक भिक्षु प्रतिमा धारण करके विचरण करना चाहता हूँ ।’

भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो किन्तु विलंब मत करो । इस प्रकार विमानिक, चानुमानिक पंचमासिक, छह मासिक, सप्तमासिक, प्रथम सात रात्रि दिन की, द्वितीय सात रात्रि दिन की, तृतीय सातरात्रि दिन की, चौथी रात्रि, दिन की और पांचवी एक रात्रि की (प्रतिमा सम्पन्न की) ।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा की सूत्र के अनुसार-यावत्-आराधना करके जहा श्रमण भगवान् महावीर है, वहा आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदना-नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

स्कन्दक द्वारा गुणरयणत्तं वच्छरत्तवोवत्संपज्जणं—

५१५. हे भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं द्विमासिक प्रतिमा नामक वसोकर्म को धारण करके विचरण करना चाहता हूँ ।

(महावीर बोले)—हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो, विलंब मत करो ।

तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं
अभणुणाए समाणे हट्टुट्टु-जाव-नमंसित्ता गुणरयण-संवच्छरं
तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति ।

तए णं से खन्दए अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं
अहासुत्तं अहाकप्पं-जाव-आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरे वंदइ
नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता वहीहिं चउत्थ-छट्टुट्टुम-दसम-दुवालसेहिं,
मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मैहिं अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ।

तए णं से खन्दए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं
पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिव्णेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं
उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मैणं सुक्के लुक्खे
निम्मंसे अट्टि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए
यावि होत्या । जीवंजीवेणं गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं
भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सा-
मीत्ति गिलाइ । से जहानामए कट्टुसगडिया इ वा, पत्तसगडिया
इ वा, पत्त-तिल-भंडगसगडिया इ वा, एरंडकट्टुसगडिया इ वा,
इंगालसगडिया इ वा—उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्धं गच्छइ,
ससद्धं चिट्ठइ,

एवामेव खन्दए अणगारे ससद्धं गच्छइ, ससद्धं चिट्ठइ,
उवचिए तवेणं अवचिए मंस-सोणिएणं, हुयासणे विव
भात्तरासिपडिच्छण्णे तवेणं तेएणं तव-तेयसिरीए अतोव-अतोव
उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

रायगिहे महावीरसमोसरणं खंदयस्स समाहिमरणे
संकप्पो य—

५१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे-जाव-समोसरणं
जाव परिसा पडिगया ।

तए णं तस्स खंदयस्स अणगारस्स अणया कयाइ पुक्करत्ता-
वरत्तकावन्नमयत्ति धम्मजागरियं जागरणागस्स इमेयाह्वे अज्झ-
स्थिए-जाव-समुप्पज्जित्ता—

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण महावीर की अनुमति
प्राप्त होने से हृष्ट-नुष्ट हुआ । -यावत्-नमस्कार करके गुणरत्न
संवत्सर तप को धारण करके विचरता है ।

उसके बाद वह स्कन्दक अनगार गुणरत्न संवत्सर तप को
सूत्र के अनुसार, आचार के अनुसार -यावत्- आराधना करके
जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहां आया, आकर
श्रमण भगवान महावीर को वंदना की, नमस्कार किया, वंदना
नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त,
दशमभक्त, द्वादश भक्त, मास खमण, अर्धमास खमण आदि
विचित्र तप कर्म के द्वारा आत्मा को भाता हुआ विहार
करता है ।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार पूर्वोक्त प्रकार के उदार,
विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप,
शोभायुक्त, उदग्र, उदात्त-उज्ज्वल, उत्तम, उदार और महान
प्रभाव वाले तपःकर्म से शुष्क, रूक्ष, मांसरहित हो गया, मात्र
हड्डी और चमड़ी से आच्छादित जैसा रह गया, चलने पर
हाड़ों में से किटकिट आवाज होती थी, दुबला और संपूर्ण नसें
दिखें ऐसा हो गया । अब तो वह अपने आत्मवल से चलता था,
आत्मवल के सहारे ही बैठता था, ऐसा कमजोर हो गया कि
बोल चुकने पर ग्लानि अनुभव करता था, बोलते-बोलते और
बोलने का विचार करे तो भी ग्लानि होती थी—थकावट आ
जाती थी । जैसे कोई लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, अथवा पत्तों
से भरी गाड़ी हो अथवा पत्ते, तिल और दूसरे किसी सामान से
भरी गाड़ी हो अथवा एरंड काष्ठ से भरी गाड़ी हो तथा
कोयले से भरी गाड़ी हो तो जब उन सब गाड़ियों को धूप में
सुखाकर ढकेला जाये तो वे आवाज करती हुई चलती हैं और
आवाज करती-करती खड़ी होती हैं ।

इसी प्रकार स्कन्दक अनगार भी जब चलता तथा खड़ा
होता तो खड़-खड़ शब्द होता था वह तप से पुष्ट था किन्तु
मांस एवं रुधिर से क्षीण था और राख के ढेर से ढकी हुई अग्नि
के समान तप, तेज और तप-तेज की शोभा द्वारा बहुत बहुत
शोभायमान हो रहा था ।

राजगृह में महावीर-समवसरण और स्कन्दक का समाधि-
मरण संकल्प—

५१६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में यावत्-
समवसरण हुआ -यावत्-पर्यदा लौटी ।

तत्पश्चात् किसी एक दिन उस स्कन्दक अनगार को मध्य-
रात्रि के समय धर्म जागरणा में जागते-जागते इस प्रकार का
अध्यवसाय-यावत्-उत्पन्न हुआ—

“एवं खलु अहं इमेणं एयाख्वेणं ओरालेणं-जाव-कित्से धमणि-संतए जाए । जीवंचीवेणं गच्छामि-जाव-एवामेव अहं पि ससद्दं गच्छामि, ससद्दं चिट्टामि ।

तं अत्थि ता मे उट्टाणे कम्मे वले वीरिए पुरिसवकारपरकम्मे, तं जावता मे अत्थि उट्टाणे कम्मे वले वीरिए पुरिसवकार-परकमे जाव य मे धम्मापरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थो विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभावाए रयणीए, फुल्लुगलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहंपंडुरे पमाए, रत्तासोयप्प-कासे, किमुय-सुयमुह-गुंजद्वारागसरित्से, कमलागरसंडवोहए उट्टि-यम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते-समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूत्तमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुष्णाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरो-वेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता तहाख्वेहि धेरेहि कडाईहि तद्धि विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुह्हित्ता नेहघगसंनिगात्तं देवसन्निवात्तं पुढवीसिलापट्टवं पडिलेहेत्ता, दम्मसंथारंगं संथरित्ता दम्मसंथारोवगयस्स संलेहगाझूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडियाइ-विखयस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए” त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभावाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिकखुत्तो आवाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूत्तमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासइ ।

“मैं यह और इस प्रकार के उदार-वाचत्-दृक्ता हो गया हूँ, मेरी सभी नसें बाहर दिखने लगी हैं । आत्मशक्ति के सहारे चलता हूँ -वाचत्-इसी प्रकार मैं भी आवाज करना हुआ चलता हूँ और आवाज करता हुआ बैठता हूँ ।

इस स्थिति में भी मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुष्पाकार पराक्रम है, तो जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुष्पाकार पराक्रम है -वाचत्-मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक और शुभार्थी श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हैं, तब तक मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात वाली राधि होने पर, कोमल कमलों के विकसित होने पर, निर्मल प्रभात होने के अनन्तर, लाल अशोक वृक्ष जैसे प्रकाश वाले पल्लव पुष्प, तोते की चोंच और गुंजा (चनोटी) के आधे भाग जैसे लाल कमल के समूह वाले वन खंड को विकसित करने वाले, महत्त्व फिरफो वाले तथा तेज से जाज्वल्यमान दिनकर-सूर्य का उदय होने पर श्रमण भगवान महावीर को वंदना करके, नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर गुरुभूषा करते हुए, नामने विनयपूर्वक अंजलिपूर्वक पयुंपासना कर और श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा लेकर स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपकर, श्रमण एवं श्रमणियों को खमाकर, तथारूप योग्य स्वधियों के साथ विपुल पर्वत पर शनैः शनैः आरोहण कर, भेष पटल के जैसे श्यामवर्ण के और देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिला पट्टक का प्रति-लेखन करके, दर्भ का संथारा विछाकर और दर्भ संस्तारत पर बैठकर संलेखना द्वारा आत्म-रमण करते हुए, भक्तपान का त्दान करके, पादोपगमन से श्रित होकर काल (मरण) की आशा न करते हुए विचरण करूँ—ऐसा विचार किया, विचार करके कल राधि के प्रभात रूप होने पर -वाचत्- महत्त्व रश्मि भेष से जाज्वल्यमान दिनकर सूर्य के उदय होने पर जहां श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करने वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर गुरुभूषा करने हुए, नमस्कार करके हुए नामने विनयपूर्वक नमस्कार प्राप्त में बैठकर पयुंपासना करके ।

चंदया इ समणे भगवं महावीरे चंदयं अजगारं एवं वयानो—
“से नूनं तय चंदया ! पुद्भवत्तावरत्तकात्तमवति धम्मजागरियं
जागरमापसत इनेयाख्वे अउत्तियए-जाव-समुप्पज्जित्ता—एवं
खलु अहं इमेणं एवं ख्वेणं तवेणं ओरालेणं विउत्तेणं तं खेय-जाव-
कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेत्ति, संपेहेत्ता
कल्लं पाउप्पभावाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि

दिणयरे तेयसा जलंते' जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए ।

से नूणं खन्दया ! अट्टे समट्टे ?”

हंता अत्थि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

खड्यस्स संलेहणा—

५१७. तए णं से खन्दए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समणे हट्टुत्तुच्चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्टाए उट्टेइ, उट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता समणा य समणीओ य खामेइ, खामेत्ता तहारुवेहं थेरेहि कडाईहि सद्धि विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं वुरुहइ. वुरुहित्ता मेहघणसन्निगासं देवसन्निवातं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियं कनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी —

“नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं-जाव-सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपत्ताणं । नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव-सिद्धिगति-नामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स । वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं” ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“पुंवि पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चवखाए जावज्जीवाए-जाव-मिच्छादंसणसल्ले पच्चवखाए जावज्जीवाए ।

इयाणि पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चवखामि जावज्जीवाए-जाव-मिच्छादंसण-सल्लं पच्चवखामि जावज्जीवाए एवं सव्वं असण-पाण-खाइम-त्ताइमं-चउद्विहं पि आहारं पच्चवखामि जावज्जीवाए । जं पि य इमं सरीर इट्ठं कंतं पियं-जाव-मा णं वाइय-पित्तिय-सैन्निय-त्तन्निवाइयविविहा रोगायंका परोसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एयं पि णं चरमेहि उस्तास-नीसासेहि वोसिरामि” त्ति कट्टु

रात्रि के प्रभात रूप होने पर -यावत् सहस्र किरण वाले तेज से जाज्वल्यमान दिनकर-सूर्य का उदय होने पर जहां मैं हूँ, शीघ्र ही मेरी ओर आये ?

तो हे स्कन्दक ! यह बात सत्य है ?

स्कन्दक ने उत्तर दिया—हां यह बात सत्य है ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, विलंब मत करो । भगवान ने कहा ।

स्कन्दक की संलेखना—

५१७. तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान महावीर की अनुमति प्राप्त होने से हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त, नंदित, प्रीतिमना, परम सौमनस वाला, हर्षविकसित हृदय वाला होकर स्थान से उठा, उठकर तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके स्वयमेव पंच महाव्रतों का आरोपण किया, आरोपण करके सावु और साधिव्यों से खमाता है, क्षमापना करके तथारूप योग्य स्थविरों के साथ धीरे-धीरे विपुलाचल पर चढ़ता है, चढ़कर मेघ पटल के समान श्याम वर्णवाले एवं देवों के वास स्थान रूप पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ संस्तारक बिछाया, बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुखकर पर्यंकासन से बैठ दस नखों सहित दोनों हाथों को जोड़, मस्तक स्पर्शकर अंजलि पूर्वक इस प्रकार बोला—

‘अरिहंत भगवन्तो को -यावत्-सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त हुआ को नमस्कार हो । श्रमण भगवान महावीर-यावत्-सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को नमस्कार हो तत्र विराजित भगवान महावीर को यहाँ रहा हुआ मैं वंदना करता हूँ, वहाँ विराजित भगवान यहाँ रहे हुए मुझे देखें, ऐसा कहकर वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास में सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान यावज्जीवन के लिये कर लिया था-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान जीवन पर्यन्त के लिये कर लिया था । इस समय भी श्रमण भगवान महावीर के पास जीवन पर्यन्त के लिये सर्व प्राणातिपात-यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ, इसी तरह यावज्जीवन के लिये अशन, पान, वाय, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार का भी प्रत्याख्यान-त्याग करूँगा । जो मेरा यह इष्ट, कान्त, प्रिय शरीर है—यावत्-वात्त, पित्त, श्लेष्म, सन्निपात आदि विविध रोग और आतंक स्पर्शन करें, ऐसे इस शरीर को भी चरम उषवास-निश्वास पर्यन्त-मरण के अंतिम क्षण तक के लिये त्याग करता

संलेहणाञ्जसणाञ्जसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवभाए कालं अणयकंखमाणे विहरइ ।

तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगां अहिज्जिता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामणपरियाणं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेवेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए ।

खंदअस्स पत्त-चीवरसमाणयणं—

५१८. तए णं ते थेरा भगवंतो खंदयं अणगारं कालगयं जाणित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउसगं करंति, करेत्ता पत्त-चीवराणि गेण्हंति, गेण्हत्ता विपुलाओ पव्वयाओ सणियं-सणियं पच्चोरुहंति, पच्चोरुहत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—“एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभइए पगइविणीए पगइउवसंते पगइपयणु-कोहमाणमायालोभे मिउमह्वसंपणे अल्लीणे भइए विणीए । से णं देवाणुप्पिएहि अब्भणुण्णाए समणे सयमेव पंच मह्वयाणि आरहेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्मेहि सट्ठि विपुलं पव्वयं सणियं-सणियं दुवहत्ता-जाव-मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेवेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए । इमे य से आदारभंडए ।”

खंदअस्स अच्चुयकप्पे उववाओ महाविदेहे सिद्धी य—

५१९. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ. वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे कासमासे कालं किच्चा कहि गए ? कहि उववण्णे ?”

गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—“एवं खलु गोयमा ! मम अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभइए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमह्व-संपणे अल्लीणे विणीए, से णं मए अब्भणुण्णाए समणे सयमेव पंच मह्वयाइं आरहेत्ता-जाव-मासियाए संलेहणाए अत्ताणं

हूँ—ऐसा करके संलेखना को प्रीतिपूर्वक धारण कर; भक्त-पान का त्यागकर; वृक्ष की तरह स्थिर रह; मरण की आकांक्षा न करके विचरण करता है ।

तत्पश्चात् वह स्कन्दक अनगर श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर, बारह वर्ष तक पूर्णरूप से श्रमण पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल करके और साठ भक्त-पानों का त्याग करके (अनशन द्वारा) आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त करके कालधर्म को प्राप्त हुआ । स्कन्दक के पात्र-चीवर समानयन—

५१८. तत्पश्चात् स्कन्दक अनगर को कालगत जानकर वे स्थविर परिनिर्वाण निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं, करके पात्र और चीवरों को लेते हैं, लेकर विपुल पर्वत से धीरे-धीरे उतरते हैं, उतरकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान हैं वहाँ आते हैं, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करते हैं, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—‘आप देवानुप्रिय का अंतेवासी स्कन्दक नामक अनगर जो प्रकृति में भद्र, प्रकृति-स्वभाव से विनीत, प्रकृति-स्वभाव में उपजात, प्रकृति में ही अत्यन्त अल्पतम क्रोध, मान, माया, लोभ, वाता, मारद्व, आर्जव संपन्न, गुरु आज्ञा में लीन अर्थात् गुरु की आज्ञा का पूर्णतया पालन करनेवाला तथा भद्र और विनीत था, तथा जो आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके स्वयं ही पंच महाव्रतों का आरोपण कर श्रमणों और श्रमणियों में अनापना कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर धीरे-धीरे चढ़ा घा-पायथु-मानिक संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल कर, साठ भक्तपानों का अनशन द्वारा त्यागकर, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त कर, क्रम पूर्वक काल को प्राप्त हुआ । यह उनके उपकरण है ।

स्कन्दक का अच्युतकल्प में उपादा और महाविदेह में सिद्धि—

५१९. हे भगवन् ! ऐसा करके भगवान् गोयम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन, नमन किया और वंदन-नमन करके इस प्रकार कहा—

‘आप देवानुप्रिय का दिव्य स्कन्दक नामक अनगर कायमान में काल करके नहीं गया है ? कहा उपवन्न हुआ है ?’

हे गोयम ! इस प्रकार नमोर्पित कर श्रमण भगवान महावीर ने गोयम को इस प्रकार उत्तर दिया—‘हे गोयम ! भद्र दिव्य स्कन्दक नामक अनगर जो प्रकृति में भद्र, प्रकृति के स्वभाव में अत्यन्त लोभ, क्रोध, मान, माया और लोभ वाता, मारद्व, आर्जव संपन्न, आज्ञाकारी विनीत था, यह मेरी अनुमति प्राप्त कर अपने आप पांच महाव्रतों का आरोपण कर स्वयं ही

झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेवेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णे ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं वावीसं सागरोवमाइं ठिई पणत्ता । तत्थ णं खंदयस्स वि देवस्स वावीसं सागरोवमाइं ठिई पणत्ता ।”

से णं संते ! खंदए देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिति-जाव-सव्वकुक्खाणं अंतं करेहिति ।

—भग० स० २, उ० १ ।

卐

卐

३६. महावरित्थे मोग्गलपरिव्वायगे

आलभियाए मोग्गल-परिव्वायगे—

५२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था—वण्णओ । तत्थ णं संखवणे नामं चेइए होत्था—वण्णओ । तस्स णं संखवणस्स चेइयस्स अदूरसामंते मोग्गले नामं परिव्वायए परिवसइ । रिउव्वेद जजुव्वेद-जाव-वंभण्णएसु परिव्वायएसु य नएसु सुपरिनिट्टिए छट्ठं-छट्ठेणं अणिकखत्तेणं तवोकम्मणेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्जिय-पगिज्जिय सूराभिमुहे आयावणभूमिओ आयावेमाणे विहरइ ।

मोग्गलस्स विभंगत्ताण—

५२१ तए णं तस्स मोग्गलस्स परिव्वायगस्स छट्ठं-छट्ठेणं अणिकखत्तेणं तवोकम्मणेणं उड्ढं वाहाओ पगिज्जिय-पगिज्जिय सूराभिमुहे आयावणभूमिओ आयावेमाणस्स पगइभहयाए पगइउवसंतयाए पगइपयणुकोहमाणमायालोभाए मिउमह्वसंपन्नयाए अत्तलीणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं

मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करके साठ भक्त-पानों का अनशन द्वारा छेद करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर बाल मास में काल करके अच्युतकल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ है ।

उस कल्प में कितने ही देवों की वाईस सागरोपम की आयु होती है । वहाँ स्कन्दक देव की भी वाईस सागर की आयु स्थिति है ।

हे भगवन् ! वह स्कन्दकदेव आयुक्षय, भवक्षय, स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहां जावेगा ? कहां उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में सिद्ध होगा-यावत्-समग्र दुःखों का अन्त करेगा ।

३९ महावीर तीर्थ में मुद्गल परिव्राजक

आलभिका में मुद्गल परिव्राजक—

५२०. उस काल, उस समय आलभिका नाम की नगरी थी—वर्णन । वहाँ शंखवन् नामक चैत्य था, वर्णन । उस शंखवन् नामक चैत्य से थोड़ी दूर मुद्गल नामक परिव्राजक रहता था—जो ऋग्वेद, यजुर्वेद-यावत्-ब्राह्मण सम्बन्धी और परिव्राजक सम्बन्धी नयों में कुशल था और निरन्तर छट्ठं-छट्ठं तप करते हुए ऊँचे हाथ रख सूर्य के अभिमुख मुँह किये हुए आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरण करता था ।

मुद्गल को विभंगज्ञान—

५२१. तत्पश्चात् उस मुद्गल परिव्राजक को निरन्तर छट्ठं-छट्ठं तप करने से, ऊँचे हाथ रखकर सूर्य के सम्मुख मुँह करके आतापना भूमि में आतापना लेने से तथा प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शांत, प्रकृति से अत्यल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होने से, मृदुता और-मार्दव संपन्न होने से, आज्ञानुरूप वृत्तिवाला होने से, विनीत होने से किसी एक दिन तदावरण कर्मों का क्षयोपशम

ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विवमगे नामं नाणे समुप्पन्ने ।
से णं तेणं विवमगेणं नाणेणं समुप्पन्नेणं वंमलोए कप्पे देवाणं
ठित्ति जाणइ-पासइ ।

देवठिइविसेए मोगलस्स विभंगनाणं—

५२२. तए णं तस्स मोगलस्स परिव्वायगस्स अयमेयाह्वे
अच्छरियए-जाव-संरुप्पे समुप्पज्जित्था—अत्थि णं ममं अत्तिसेसे
नाणदंसणे समुप्पन्ने देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वास-
सहस्साइं ठित्ती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-
असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोत्तेणं दससागरोवमाइं ठित्ती पण्णत्ता ।
तेण परं धोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता
आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, पच्चोरहित्ता, तिवदंडं च कुंडियं च-
जाव-घाउरत्ताओ य गेहइ, गेहित्ता जेगेव आलभिया नगरी,
जेगेव परिव्वायगावसहे, तेगेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता मंड-
निखवेवं करेइ, करेत्ता आलभियाए नगरीए सिघाडग-तिग-
षउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु अण्णमण्णस्स एवमाइवइ-
जाव-परुवेइ—

अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाणदंसगे समुप्पन्ने,
देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठित्ती पण्णत्ता,
तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया, जाव-असंखेज्जसमयाहिया,
उक्कोत्तेणं दससागरोवमाइं ठित्ती पण्णत्ता । तेण परं धोच्छिण्णा
देवा य देवलोगा य ।

तए णं मोगलस्स परिव्वायगस्स अत्थियं एयमटुं नोच्चा
निग्गम आलभियाए नगरीए सिघाडग-तिग-षउक्क-चच्चर-
षउम्मुह-महापह-पहेसु चहुणो अण्णमण्णस्स एवमाइवइ-जाव-
परुवेइ—एवं पलु देवाणुप्पिया ! मोगले परिव्वायए-
एवमाइवइ जाव-परुवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे
नाणदंसगे समुप्पन्ने, एवं पलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दसवास-
सहस्साइं ठित्ती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-
असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोत्तेणं दससागरोवमाइं ठित्ती पण्णत्ता ।
तेण परं धोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य । से कहन्तेयं मन्ने एवं ?

महावीरसमोसरणं देवठिइविसेए जहत्थकह्वणं इ—

५२३. ताभी समोसडे, परिता निग्गया । पन्तो कह्जिओ, परिता

हो जाने एवं ईहा, अपोह, मार्गणा एवं गवेसणा करने के कारण
विभंग नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ । यह उन उत्पन्न विभंग ज्ञान
के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पवासी देवों तक की स्थिति की जानकारी
है और देखता है ।

देवस्थिति के विषय में मुद्गल का विभंगज्ञान—

५२२. तत्पश्चात् उन मुद्गल को इस प्रकार का यह अध्ययनाय-
-यावत्- संकल्प उत्पन्न हुआ—मुझे अतिगम्यवाला ज्ञान और
दर्शन उत्पन्न हुआ है, देवलोक में देवों की जघन्या-स्थिति इस
हजार वर्ष की है और उनके बाद एक समय अधिक, दो समय
अधिक-यावत्- असंख्य समय अधिक करते-करते उत्कृष्ट से
दस सागरोपम की स्थिति कही है । उनके बाद देव और देवलोक
व्युच्छिन्न हो जाते हैं—ऐसा विचार करता है, विचार करके
आतापना भूमि में उठा, उठकर त्रिदंड कुण्डिका यावत्- भगधे
वस्त्यों को लेता है, लेकर जहा आलभिका नगरी थी, जहां परि-
-त्राजक मठ था, वहा आता है, आकर उपकरणों को रखा, रखा-
कर आलभिका नगरी में शृगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, अनुभुंघ
महापथ और पथों में जाकर परस्पर बहुत से मनुष्यों से इस
प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपणा करता है कि—

हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिगम्यवाले ज्ञान, दर्शन उत्पन्न हुए
हैं, देवलोक में देवों का जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति है
और उनके ऊपर एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत्-
असंख्यात समय अधिक, उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति
कही है । उनके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो
जाता है ।

उनके बाद मुद्गल परित्राजक से इस बात को सुनकर और
अवधारण करके आलभिका नगरी में शृगाटक, त्रिक, चतुष्क,
चत्वर, अनुभुंघ, महापथ और पथों में बहुत से मनुष्य एक स्थान
से इस प्रकार कहने हे-यावत्-प्ररूपणा करने हे कि—हे देवानुप्रियो !
मुद्गल परित्राजक इस प्रकार कहता है—यावत्-प्ररूपणा करता
है कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिगम्यवाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए
हैं, देवलोक में देवों का दस हजार वर्ष की जघन्या-स्थिति कही
है और उनके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक, यावत्-
असंख्य समय अधिक, करते-करते उत्कृष्ट से दस सागरोपम की
स्थिति है । उनके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो
जाता है । मुद्गल माना जाय ।

महावीर समोसरणं नाम देवठिइविसेए जहत्थकह्वणं इ—
रूपण—

५२३. महावीरसमोसडे, परिता निग्गया । पन्तो कह्जिओ, परिता

पडिगया । भगवं गोयमे तहेव भिक्खायरियाए तहेव बहुजणसहं निसामेइ, निसामेत्ता तहेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, एवं भासामि-जाव-परुवेमि—देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पणत्ता, तेण परं समयाहिया-दुसमयाहिया-जाव-असखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पणत्ता । तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य ।

अत्थि णं भंते ! सोहम्मे कप्पे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अणमणवद्धाइं अणमणपुट्ठाइं अणमणवद्धपुट्ठाइं अणमणघडत्ताए चिट्ठन्ति ? हंता अत्थि । एवं ईसाणे वि, एवं जाव अच्चुए, एवं गेवेज्जविमाणेसु, अणुत्तरविमाणेसु वि, ईसिपव्वभाराए वि-जाव-? हंता अत्थि ।

तए णं सा महत्तिमहालिया परिसा-जाव-जामेव विंसि पाउ-वभूया तामेव विंसि पडिगया ।

तए णं आलमियाए नगरीए सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापेह-पहेसु बहुजणो अणमणस्स एवमाइक्खइ-जाव-परुवेइ "जणं देवानुप्पिया ! मोगले परिव्वायए एवमाइक्खइ-जाव-परुवेइ-अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वास-सहस्साइं ठिती पणत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं दससागरोवमाइं ठिती पणत्ता । तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य । तं नो इणट्ठे समट्ठे । समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ-जाव-देव-लोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पणत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया-जाव-असखेज्ज-समयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पणत्ता । तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य" ।

मोगलस्स विभंगनाणपडणं महावीरसमीवे गमणं च—

५२४. तए णं ते मोगले परिव्वायए बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंयिए वित्तिगिच्छिए भेदसमायन्ने कलुस-समायन्ने जाए यावि होत्वा । तए णं तस्स मोगलस्स परिव्वा-

धर्म कहा, परिषद् वापस लौटी । भगवान गौतम उसी तरह भिक्षाचर्या के लिये निकले और उन्होंने बहुत से मनुष्यों के वैसे शब्दों को सुना, सुनकर उसी प्रकार सब कहना चाहिये-यावत्-हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ, बोलता हूँ -यावत्-प्ररूपणा करता हूँ—देवलोक में देवों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक -यावत्-असंख्य समय अधिक, उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की स्थिति है । उसके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो जाता है ।

हे भगवन् ! क्या सौधर्म कल्प में वर्ण सहित और वर्ण रहित गंधसहित और गंधरहित, रससहित और रसरहित, स्पर्श सहित और स्पर्श रहित, एक दूसरे से बद्ध, एक-दूसरे से स्पृष्ट; एक-दूसरे से बद्धस्पृष्ट द्रव्य हैं और एक दूसरे से मिले हुए हैं ? हे गौतम ! हाँ, हैं—भगवान ने उत्तर दिया । इसी प्रकार ईशान देवलोक में भी जानना, इसी प्रकार -यावत्-अच्युत में इसी प्रकार प्रवैयक विमानों में, अनुत्तरविमानों में और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में भी—सिद्धशिला में भी वर्णसहित इत्यादि द्रव्य हैं ? हाँ गौतम ! हैं ।

तत्पश्चात् वह विशाल परिषद् -यावत्-जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापस लौट गई ।

उसके बाद आलभिका नगरी के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग और सामान्य मार्ग आदि में बहुत से मनुष्य ऐसा कहते-यावत्-प्ररूपणा करते—'हे देवानुप्रियो ! यदि मुद्गल परिव्राजक इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपणा करता है—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए हैं और देवलोकों में देवों की जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक -यावत्-असंख्य समय अधिक उत्कृष्ट से दस सागरोपम की स्थिति है । उसके बाद देवों और देवलोकों का विच्छेद हो जाता है । इसका यह कथन यथार्थ नहीं है । श्रमण भगवान महावीर तो ऐसा कहते हैं -यावत्-देवलोक में देवों की जघन्य से दस हजार वर्ष की स्थिति है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक -यावत्-असंख्य समय अधिक उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की स्थिति है । उसके अनन्तर देवों और देवलोक का अन्त आ जाता है ।'

मुद्गल का विभंगज्ञान पतन और महावीर के समीप गमन—

५२४. तत्पश्चात् वह मुद्गल परिव्राजक बहुत से मनुष्यों से इस बात को सुनकर और अवधारण कर शंकित, कांक्षित, संदेहापन्न, अनिश्चित और कलुषित भाव को प्राप्त हुआ । तत्र शंकित,

यगस्स संकियस्स कंखियस्स वित्तिगिच्छियस्स नेवसमावन्नस्स कलुससमावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव पडिवडिए ।

तए णं तस्स मोगलस परिव्यायणस्स अयनेयाह्वे अज्जत्थियए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—“एवं खलु समणे भगवं महावीरे अदिगरे तित्थगरे-जाव-सव्वण्णु सव्वदरिसी आगासणएणं चक्केणं-ज-व-सखवणे चेइए अहापडिरुवं ओगह् ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु तहाह्ववाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदन-नमंसण पांडपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदारि-जाव-पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए एमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए नविस्सट्ट” त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव परिव्वादागावसहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता परिव्वादागावसहं अणुप्पविस्सइ, अणुप्पविसित्ता तिवंडं च कुण्डियं च-जाव-धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता परि-व्यायगावह्हाओ पडिनियउमइ, पडिनियखमित्ता पडिवडिय-दिसंभंगे आलमियं नगरिं मज्झमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव संखवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चात्तन्ने नातिट्ठेरे सुस्सत्तमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिकडे पज्जुवासइ ।

मोगलस्स पट्टवज्जा—

५२५. तए णं समणे भगवं महावीरे मोगलस्स परिव्यायणस्स तीसे य महत्तिमहात्थियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-आणाए आराहए भयइ ।

तए णं से मोगले परिव्यायए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं तोच्चा नित्तम्म जहा एंडओ-जाव-उत्तरपुरत्थियं विसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिवंडं च कुण्डियं च-जाव-धाउरत्ताओ य एगंते एहेइ, एहेत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं त्थोयं करेइ, करेत्ता समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं जहेव उत्तमरत्तो त्थेव पट्टवओ, त्थेव एवकारस अंगारं पट्टिवडइ, त्थेव सव्वं-ज-स-सव्वदुबुत्तपहीणे ।

कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित और क्लुप्तभाव को प्राप्त हुए उस मुद्गल परिव्राजक का विभंगज्ञान तत्काल नष्ट हो गया ।

उक्तके बाद उन मुद्गल परिव्राजक को यह इन प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-विचार उत्पन्न हुआ—“इन प्रकार धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर-यावत्-सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महा-वीर आकाश में चलते हुए धर्मचक्र-यावत्-जगत्पतंचत्य मे क्या-योग्य अवग्रह धारण करके मंथन और तप में आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं, जब उस प्रकार के अरिहत भगवतो के नामगोत्र का श्रवण करना महाकल वाला है तो फिर अभिगमन वंदन, नमन प्रतिपृच्छना और पयुंपामना आदि के लिय क्या कहना ? जब एक आरं धार्मिक मुचनन का श्रवण करना महा-फल है, तब उसके विमुक्त अर्थ के ग्रहण करने के लिय क्या कहना ? अतएव मैं श्रमण भगवान महावीर के नमीप जाऊँ और वंदना कल-यावत्-पयुंपामना कल, यह मुझे इन भय में और परभव मे हितरूप, नुत्तरूप, नातिरूप और अनुत्त मे निःश्रेयन्-रूप होगा—इन प्रकार का विचार करता है, विचार करके जहां परिव्राजक मठ था वहां आया, आकर परिव्राजक मठ में प्रवेश किया, प्रवेश करके त्रिदण्ड, कुण्डिका-यावत् भगवत्पतो को लेता है, लेकर परिव्राजक मठ से निकला, निकल कर विभंग ज्ञान में रहित वह आलभिका नगरी के मध्य भाग में मे निकला, निकलकर जहा शंखवन चंत्य था, जहां श्रमण भगवान विराज रहे थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की नील धार प्रद-क्षिणा की, वंदना और नमस्कार किया, वंदना और नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर पयायोग्य स्थान में बैठ-कर शुभ्रूपा करते हुए, नमस्कार करते हुए और नाममे विनय-पूर्वक अंजलि करके पयुंपामना करता है ।

मुद्गल की प्रव्रथ्या—

५२५. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने मुद्गल परिव्राजक और उस विनाल पयंदा को धर्म क्या कल-यावत्-पयाण वा आराधक होता है ।

तत्पश्चात् यह मुद्गल परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के पास से धर्मश्रवण कर और प्रव्रथरण कर स्वयंसेवक प्रकरण में कहे गए अनुसार उनरतुं विनाल पयाण वा आराधक जाकर त्रिदण्ड और कुण्डिका यावत्-भगवो कपो को पयाण स्थान में रखता है, रखकर अति नो नमीप के पवत्तु तप करेता है, जोर करके श्रमण भगवान महावीर की नील धार प्रदक्षिणा प्रदक्षिणा करता है प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार करता है वंदना नमस्कार करके अणुत्तमरत्तो त्थेव पट्टवओ लेता है, त्थेव एवकारस अंगारं पट्टिवडइ, त्थेव सव्वं-ज-स-सव्वदुबुत्तपहीणे ।

गोयमस्स सिज्झमाणस्स संघयणाइपण्हा—

५२६. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि संघयणे सिज्झति ?

गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणे सिज्झति, एवं जहेव ओववाइए तहेव । संघयणं संठाणं, उच्चत्तं आउयं च परिवसणा । एवं सिद्धिगंडिया निरवसेसा भाणियव्वा-जाव—अव्वावाह सोख्खं, अणुहुंती सासयं सिद्धा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भग० स० ११, उ० १२



४०. महावीरतित्थे सिवरायारिंसी

हत्थिणापुरे सिवराया—

५२७. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था—वण्णओ । तस्स णं हत्थिणापुरस्स नगरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे विसीभागे, एत्थ णं सहसंववणे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे रम्मे णंदणवणसन्निगासे सुहसीतलच्छाए मणोरमे सादुप्फले अकंटए, पासादीए-जाव-पडिख्वे ।

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे सिवे नामं राया होत्था—महया-हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे—वण्णओ । तस्स णं सिवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था—सुकुमालपाणिपाया—वण्णओ । तस्स णं सिवस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए अतए सिवभद्रे नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए, जहा सूरियकंते-जाव-रज्जं च रट्टं च वलं च याहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अंतउरं च सयमेव पच्चुवेखमाणे-पच्चुवेखमाणे विहरइ ।

गौतम का सिद्ध यमान का संहनन आदि प्रश्न—

५२६. हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमन करते हैं, वंदन नमन करके इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! सिद्ध होने वाला जीव किस संहनन में सिद्ध होता है ?

हे गौतम ! वज्रऋषभनाराच संहनन में सिद्ध होता है, इत्यादि औपपातिक सूत्र में जैसा कहा गया है, उसी प्रकार । संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयुष्य, परिवसना । इस प्रकार संपूर्ण सिद्धिगंडिका कहना चाहिये -यावत्- अव्यावाध शाश्वत सुख को सिद्ध अनुभव करते हैं ।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है ।

४०. महावीरतीर्थ में शिव राजर्षि

हस्तिनापुर में शिवराजा—

५२७. उस काल, उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था—वर्णन । उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग में सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था, जो सर्वऋतु के पुष्प और फलों से समृद्ध, रम्य, नन्दन वन के समान शोभावाला सुखकारक और शीतल छाया से युक्त, मनोहर, स्वादिष्ट फलों से युक्त, कंटक रहित, प्रसन्नता देने वाला -यावत्-प्रतिरूप-सुन्दर था ।

उस हस्तिनापुर नगर में शिव नाम का राजा था—जो महाहिमवान पर्वत, महान मलय मन्दर पर्वत के समान सर्व राजाओं में श्रेष्ठ था-वर्णन । उस शिव राजा की धारिणी नाम की रानी थी—उसके हाथ, पैर सुकोमल थे—वर्णन । उस शिव राजा का पुत्र धारिणी देवी का आत्मज शिवभद्र नामक कुमार था—जो सुकोमल हाथ पैर वाला था इत्यादि सूर्यकान्त राज-कुमार की तरह वर्णन करना चाहिये-यावत्-वह कुमार राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर, अन्तःपुर को देखता देखता विचरण करता था ।

सिवस्स दिसापोविखय-तावसपव्वज्जासंकप्पो—

५२८. तए णं तस्स सिवस्स रणो अणया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-
कालसमपंसि रज्जधुरं चित्तेमाणस्स अयमेयाख्वे अज्झत्थिए-जाव-
संकप्पे सत्तुप्पज्जित्या—“अत्थि ता मे पुरा पोरानाणं सुच्चिप्पाणं
सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाण कडाणं कम्माणं कल्लाण-
फल वित्तिवित्सेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्डामि, सुवण्णेणं वड्डामि,
धण्णेणं वड्डामि, धण्णेणं वड्डामि, पुत्तेहि वड्डामि, पत्तुहि वड्डामि,
रज्जेणं वड्डामि, एवं रट्ठेणं वलेणं वाहणेणं कोत्तिणं कोट्टागारेणं
पुरेणं अंतेउरेणं वड्डामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संघ
सित्तप्पवाल-रत्तरयण-संतसारसादएज्जेणं अतीव-अतीव अभि-
वड्डामि, तं कि णं अहं पुरा पोरानाणं सुच्चिप्पाणं सुपरक्कंताणं
सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं एगंतसो खप उवेहमाणे
विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्डामि-जाव-अतीव-अतीव
अभिवड्डामि जावं च मे सामंतरायाणो वि वत्ते वट्टंति, तावता
मे सेयं कल्लं पाउप्पनायाए रयणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्स-
रत्तिसम्मि दिण्यरे तेदसा जलते सुयहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं
तदियं तावसभंडगं घडावेत्ता सिवमहं कुमारं रज्जे ठावेत्ता तं
मुवहु लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तदियं नावसभंडगं गहाय जे
इमे गंगाकुले वाणपत्त्या तावसा भवन्ति, तं जहा—होत्तिया
पोत्तिया कोत्तिया जहा ओववाइए-जाव-आयावणाहि पंचगि-
तावेहि इंगालसोत्तियं कंदुसोत्तियं कट्टसोत्तियं पिव अप्पाणं
करेमाणा विहरंति, तत्थ णं जे ते दिसापोविचयतावत्ता तेत्ति
अतियं मुंडे भवित्ता दिसापोविचयतावत्ताए पव्वइत्तए, पव्वइते
वि ष णं तमाणे अयमेयाख्वं अभिगहं अभिगिण्हस्सामि—
इएइ मे जावउजीवाए छट्टंछट्टेणं अगिषत्तेणं दिसावक्क-
पात्तेणं तबोक्कमेणं उड्डं वाहाओ पगिज्जिय-पगिज्जिय सूराभिमु-
हस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्त विहरित्तए ।

सि वट्टु एयं तपेहेइ, तपेहेत्ता कल्लं पाउप्पनायाए
रणणीए-जाव-उट्टियम्मि सूरे सहस्सरत्तिसम्मि दिण्यरे तेदसा
जलते सुयहुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तदियं तावसभंडगं घडा-
वेत्ता कोट्टियवपुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एव वजाती—

शिव का दिशा प्रोक्षिक-नापस प्रव्रज्या नंकल—

५२८. तत्पश्चात् किमी एकदिन शिवराजा को पूर्व रात्रि के
अन्तिम प्रहर में राज्य कार्यो का विचार करने-करते वह इन
प्रकार का अध्यवसाय -वावत्-नंकल उचरन्त हुआ. मेरे पूर्व
मुआचरित, सुपराक्रमित, मुभ, इत्यानरूप, कृतकर्मो के कल्याण
रूप फलवृत्ति विनेष मे में हिरण्य मे, मुवणे मे, धन मे, धान्य मे,
पुत्रो मे, पशुओं से, राज्य से एवं राष्ट्र, वन, वाहन, वीर,
कोष्ठागार, पुर, अंतःपुर मे वृद्धिगत हो रहा है तथा विपुल धन,
कनक, रत्न, मणि, मोता, पांच, मिनाप्रवाह, रत्नरत्न आदि
सारभूत द्रव्यों की अत्यन्त वृद्धि को प्राप्ति कर रहा हुआ तथा
अब मैं अपने पूर्व मुआचरित, सुपराक्रमित, मुभ, इत्यानरूप का
कर्मो के फलरूप एकान्त मुख को भोगता हुआ ही शिवरथ छोड़ूँ ?

अतएव जहाँ तक मैं हिरण्य से वृद्धि प्राप्ति करना इत्यान-
अतीव-अतीव वृद्धि को प्राप्त करता हूँ-वावत्-नामन्त रासा नरी
आज्ञा में है, तब तक कल रात्रि के प्रभाव रूप होने पर-वावत्-
तेज से आज्ञवत्यमान महेश्वरसिन् दिवकर मूर्त्त के उभित होने पर
बहुत सी लोडियां, लोहे की कटाडियां, कुण्डा वीर धारो के
तापसो के उपकरण बनवाकर, गंगा के तिनारे प्रोक्षणप्रभव
तापन रहते है यथा—अग्नितोषी, पौतिक वस्त्र धारण करने लगे,
कौतिक इत्यादि औपपातिक नूत्र में आये उल्लेखानुसार-सार्ध-
आतापना द्वारा, पंचाग्नि तप द्वारा अगारों मे शरीर की तपाने हुए
कंडों की अग्नि से शरीर की तपाने हुए, साष्टरी अग्नि से शरीर
की तपाने हुए विचरते है, उनमे मे नापन दिशा प्रोक्षक (पानी द्वारा
दिना को प्रवृत्त फल पुष्प आदि प्रदत्त करने वाले) है, उपरोक्त
मुष्णित हो कर दिना प्रोक्षक नापनसे ही प्रव्रज्या जीवित करना
मुने श्रेयस्कर है, प्रव्रज्या धारण कर वह इन प्रकार से अंतःपुर
धारण करनेवा त्त जीवन पर्वत निरन्तर पव्व पव्व करके तप
करने हुए दिग्ब्रह्मवाच तपोकर्म द्वारा उवा-जाव करके मुने
की तरफ मुख करके जो तापना भूमि मे जावतपना तप पूरे
विचरण करने, वह मुने ब्रह्म रा है—

दिवावेइ लो ! डेवाण्विवा ! हृदियेयं पूर्व मगरं मग्निवर-
रात्रियं आसिदनामग्निअपोवित्त-जाव-मुपेउवावदियं संघ-

वट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।”

ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

सिवभद्रकुमारस्स रज्जाभिसेओ—

५२६. तए णं से सिवे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! सिवभद्रस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेयं उवट्टवेह । तए णं ते कोडुंबिय-पुरिसा तहेव उवट्टवेत्ति ।

तए णं से सिवे राया अणेगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-मांडविय - कोडुंबिय-इब्भ-सेट्टि - सेणावइ-सत्थवाह - दूय-संधिपाल-सद्धि संपरिवुडे सिवभद्रं कुमारं सीहासणवरंसि पुरत्था-भिमुहं, निसीयावेइ, निसीयावेत्ता अट्टसएणं सोचणियाणं कलसाणं जाव-अट्टसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सन्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-णिग्घोसणाइयरवेणं महया-महया रायाभिसेणेणं अभिसिचइ, अभिसिचित्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेत्ति, लूहेत्ता सरसेण गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिपति एवं जहेव जमालिस्स अलंकारो तहेव-जाव-कप्परुक्खगं पिव अलंकिय विभूसियं करेइ, करेत्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु सिवभद्रं कुमारं जएणं विजएणं वट्टावेइ, वट्टावेत्ता ताहि इट्टाहि-जाव-वग्गीहि जयविजयमंगलसएहि अण-वरयं अभिणंदंतो य अभित्युणंतो य एव वयासी—

“जय-जय नंदा ! जय-जय भद्रा ! भद्रं ते, अजियं जिगाहि जियं पालियाहि, जियमज्जे वसाहि । इंदो इव देवाणं, चमरो इवासुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुयाणं वहइं वासाइं वहइं वाससयाइं वहइं वाससहस्साइं वहइं वाससयसहस्साइं अणहसमग्गो हट्टुट्टो परमाउं पालयाहि इट्टुजणसंपरिवुडे हत्थिणापुरस्स नगरस्स, अण्णेसि च वहूणं गामागार-नगर-खेड-कव्वड-दोणमुह-मडं व - पट्टण-आसम-निगम-

उत्तम सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध से सुगन्धवतिका के समान करो और करवाओ और वसा करके एवं करवाकर आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो ।’

वे भी वसा करके आज्ञा को वापस लौटाते हैं अर्थात् कार्य सम्पन्न होने की सूचना देते हैं ।

शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेक—

५२६. तत्पश्चात् वह शिवराजा पुनः दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही शिवभद्रकुमार के राज्याभिषेक के लिये महाअर्थवाली महामूल्यवान, महापुरुषों के अनुरूप, योग्य सामग्री तैयार करो । तब वे कौटुम्बिक पुरुष तदनु रूप तैयारी करते हैं—उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् वह शिव राजा अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इब्भ, श्रेष्ठी, सेना-पति, सार्थवाह, दूत, संधिपालों से परिवृत्त होकर शिवभद्र कुमार को उत्तम सिंहासन पर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठाता है, बैठाकर एक सौ आठ सुवर्ण कलशों-यावत्-एक सौ आठ मिट्टी के कलशों द्वारा संपूर्ण ऋद्धि सहित-यावत्-वाद्यों के निर्घोषपूर्वक महान राज्याभिषेक से अभिषेक करता है, अभिषेक करके पक्षमल के समान सुकोमल काषायिक, गंध से सुगन्धित वस्त्र से शरीर पौष्टता है, पौष्टकर सरस गोशीर्ष चंदन का शरीर का लेप करता है आदि जैसे जमालि का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार -यावत्-कल्पवृक्ष के सदृश उसे अलंकृत-विभूषित करता है, विभूषित करके दसों नखों को एकत्रित करके दोनों हाथों को जोड़ मस्तक से स्पर्श कर अंजलि करके शिवभद्र कुमार को जय विजय शब्दों से वधाता है, वधाकर इष्ट -यावत्-वाणी द्वारा जय विजय सूचक सैकड़ों मंगल वचनों से अनवरत अभिनंदन करते हुए स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—

‘हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय-जयकार हो, अविजितों को जीतो, और अविजितों का पालन करो, जीते हुआ के बीच निवास करो । देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, ताराओं में चन्द्र के समान, और मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान बहुत वर्षों तक, बहुत सैकड़ों वर्षों तक, बहुत हजारों वर्षों तक, बहुत लाखों वर्षों तक बिना किसी विघ्न वाधा के हृष्ट तुष्ट होकर दीर्घायु का भोग करो और इष्ट जनों के परिवार से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर का तथा और दूसरे अनेक ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्वट, द्रोणमुख, मंडव, पट्टन, आश्रम, निगम, संवाह

संवाह-सणिवेसाणं आह्वेवच्चं पारेवच्चं तामित्तं भट्टित्तं महत्त-
रगतं थाणा-ईसर-सेणादच्च कारेमाणे पालेमाणे म्हायाहय-नट्ट-
गीय-वाइय-तंती-तन-ताल - तुडिय-घण-मुट्ठंग - पट्टणवाइयरेवेणं
विडलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि” त्ति कट्टं जयजय-
सहं पउज्जति ।

तए णं से सिवभट्टे कुमारे राया जाते—महया द्विमवंत-
महंत-मलय-मंदर-महिदसारे, वणधो-जाय-रज्जं पसासेमणे
विहरइ ।

सिचस्त विसापोविखयतावसपव्यज्जा—

५३०. तए णं से सिवे राया अणया कयाइ सोभणत्ति तिहि-
करण-विधस-मुहूत्त-नवखत्तंसि विपुलं असण-पाण-चाइम-साइम
उवयउडावेत्ति, उवयउडावेत्ता मित्तनाइ-नियग-नयण-संवंधि-
परिजणं रायाणो य एत्तिए य आमतेत्ति, आमतेत्ता तथो पच्छा
ण्हाए कयवलिक्कमे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते मुट्टुप्पावेनाइं
मंगलनाइं घत्थाइं पवर परिहिए अणमहाघाभरणालंकिवत्तरीरे
भोयणवेत्ताए भोयणमंडवंसि सुहासणवरणए तेणं मित्त-नाइ-नियग-
सयण-संवंधि-परिजणेणं राणाहि य एत्तिएहि य त्ति विपुलं असण-
पाण-चाइम-साइमं आसावेमाणे वीसावेमाणे परिभाएमाणे परि-
भुंजेमाणे विहरइ ।

जिमिदभुत्तरागए वि ष णं तमाणे आयंते चोवये परम-
मुशभए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संवंधि-परिजणं विडत्तेणं असण-
पाण-चाइम-साइमेष पत्य-मंध-मत्तलालंकारेण य सवकारेऽ
गमनासेऽ, सवकारेत्ता तन्ममाणेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-
संवंधि-परिजणं रायाणो य एत्तिए य सिवभट्टं य रायाणं आवु-
षधए, आवुच्छित्ता सुवट्टं तीणीत्तोहसयान-कउच्छयं तंपियं
तायनभंडगे गहाय जे इमे गगाकूलगा पावत्तया तायता भवत्ति,
तं खेर-जाय तेसि अंतियं मुट्टे भविता दिनावेधियपताउत्ताए
पण-एए, पण-इए वि ष णं तमाणे अयमेपाण्यं अत्तिमहं अग्नि-
मिहत्ति—अणए मे आयज्जीराए एट्टुएट्टुण अग्निविधनेऽ
दितायसरावोणं तयोकाभेसं इट्टं पाहाजी पग्निजिजय-वग्निजिजय
विहत्ति ए—अयमेपाहये अग्निमहं अग्निमिहि ता पट्टं एट्टुएट्टुणा
अयज्जीरासण विहरइ ।

सन्निवेशों का आधिपत्य प्रकृतत्व, स्थानित्व, भवतिर, भवतिरराय, आजा-गृह्ययत्वं एवं सेनापरित्यक्त करते हुए, वादने हुए मरण हुए, नीत, वाद्य, तंत्री, तल-नाय, वृद्धि, धन, मृत्यु, पट्टं तदि की जंकारों के साथ विपुल भोगभोगों की भोगने ए विवरायरीनी इन प्रकार जय जयकार करता है ।

तत्पश्चात् वह विवभट्टकुमार राजा राजा-समान श्रमण पर्वत एवं मशान मलय मंदराचल के समान समान राजाओं के मुख्य हुआ, वर्णन-वायन-राज्य का प्रमाणन करता हुआ विवरायरीनी करता है ।

शिव की दिशाप्रौढिक तात्पर्य प्रदश्या—

५३०. तत्पश्चात् वह राजा किसी एक दिन सुभ विरि, अण, दिवन, मुहूर्त, तत्र के योग में विपुल अण, पाण, चाइ, नयण तैयार करवाता है, तैयार करवाकर मिथ, अग्नि, मित्री, नयण, नयवन्धी, परिजन, राजा और अग्निवी की आमाता करवा, आमन्त्रित करने के बाद स्नान किया, अग्निवर्मा किया, तैयारी मुंगल, प्रयश्चित्त शिवे और उनके बाद मुट्ट, उवय मण्डल वस्त्रों की पहिना और अण विपुल अण्यवी-वस्त्रों की अलङ्कन करके भोजन के समय भोजन मण्डल मण्डल मण्डल पर बैठकर उन मिथ, अग्नि, मित्री, नयण, नयवन्धी, परिजन, राजा और अग्निवी के साथ विपुल अण, पाण, चाइम-साइम आस्वादन करने ए, विविध रूप में आवा देता ए और अण में परमने एण, याने एण विवरायरीनी ।

गिण्हइ, गिण्हत्ता पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसि-अभिरक्खउ सिवं रायरिसि, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुष्पाणि य फलाणि य वीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पासइ, पासित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य-जाव-हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गेण्हत्ता किडिण-संकाइयगं भरेइ, भरेत्ता दग्गे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोड च गिण्हइ, गिण्हत्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता किडिण-संकाइयग ठवेइ, ठवेत्ता वेदिं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवण-संमज्जणं करेइ, करेत्ता दग्गकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानदी ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जण करेइ, करेत्ता जलक्रीडं करेइ, करेत्ता जलामिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोवखे परमसुइभूए देवय-पित्त-कयकज्जे दग्ग-मग्ग कलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दग्गेहि य कुसेहि य बालुयाए य वेदि रत्ति, रत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गि पाडेइ, पाडेत्ता अग्गि संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्टाडं पविण्वइ, पविण्वित्ता अग्गि उज्जालेइ, उज्जालेत्ता "अग्गिस्स वाहिणे पासे, तत्तंगाइं समादहे", तं जहा —

सकहं वपरुलं ठाण, सिज्जाभंउं कमंडलुं ।

दंडदाब्बं तहूप्पाण, अहेत्ताइ तमावहे ॥१॥

मट्ठणा य घएण य तंडुलेहि य अग्गि ट्ठणइ, ट्ठणित्ता चहं माहेइ, माहेत्ता प्रति-वड्ढस्सदेवं करेइ, करेत्ता अतिहिपूर्यं करेइ, करेत्ता ततो पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति ।

तए अं ते निरे रायरिसी रोक्खं छट्ठममणं उवत्तंपग्गिताण विहरइ ।

तए अं ते निरे रायरिसी रोक्खं छट्ठममणपारणमंति जाणवत्तमूनीओ पक्खोहरइ, पक्खोहरित्ता यान्तवत्तनिपरये जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किडिण-संकाइयग ठवेइ, ठवेत्ता वेदिं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवण-संमज्जणं करेइ, करेत्ता दग्गकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानदी ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जण करेइ, करेत्ता जलक्रीडं करेइ, करेत्ता जलामिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोवखे परमसुइभूए देवय-पित्त-कयकज्जे दग्ग-मग्ग कलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दग्गेहि य कुसेहि य बालुयाए य वेदि रत्ति, रत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गि पाडेइ, पाडेत्ता अग्गि संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्टाडं पविण्वइ, पविण्वित्ता अग्गि उज्जालेइ, उज्जालेत्ता "अग्गिस्स वाहिणे पासे, तत्तंगाइं समादहे", तं जहा —

किडिन (वांस का पात्र) और कावड़ को लेता है, लेकर पूर्वदिशा को प्रोक्षित करता है कि पूर्वदिशा के सोम महाराज धर्म साधना में प्रवृत्त शिव राजर्षि की रक्षा करो, शिव राजर्षि का रक्षण करो और उस दिशा में रहे हुए कंद, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरित वनस्पति लेने की अनुमति दो—ऐसा कहकर पूर्व दिशा में देखना है, देखकर वहाँ विद्यमान कंद-यावत्-हरित वनस्पति को लेता है लेकर किडिण और कावड़ भरता है, भरकर दग्ग, कुश, समिध काष्ठ और वृक्ष की शाखा को मरोड़कर पत्ते लेता है, लेकर जहाँ अपनी कुटिया है, वहाँ आता है आकर किडिन, कावड़ नीचे रखता है, रखकर वेदिका बनाता है, बनाकर वेदिका को लीपकर शुद्ध करता है, शुद्ध करके दग्ग युक्त कलश को हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी है, वहाँ आता है, आकर गंगा महानदी में घुसता है, घुसकर डुबकी लगाता है, डुबकी लगाकर जलक्रीड़ा करता है, क्रीड़ा करके जलामिपेक स्नान करता है, स्नान करके अच्छी तरह स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर देवता और पितृ कार्य करके दग्ग और कलश को हाथ में लेकर गंगा महानदी से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर दग्ग, कुश और बालुका द्वारा वेदिका को रंगना है, रंग कर शर से अरणि को घिसता है, घिसकर अग्नि पैदा करता है, पैदा करके सुलगाता है, सुलगाकर समिध काष्ठों को डालता है, डालकर अग्नि को प्रज्वलित करता है, प्रज्वलित करके अग्नि की दक्षिण बाजू में सात वस्तुओं को रखता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सकथा (उपकरण विशेष), वल्कल, दीपस्थान, शैया उपकरण, कमंडलु, दंड और स्वयं, इन सबको एकत्रित करता है ।

उसके बाद मधु, घी और चावल (धान) द्वारा अग्नि में होम करता है, होम करके चरु-पूजा सामग्री तैयार करता है, तैयार करके उस पूजा सामग्री से चण्डदेव की पूजा करता है, पूजा करके अतिथि पूजा करना है, उसके बाद स्वयं आहार—भोजन करना है ।

तारावत्तं वह शिवराजर्षि दूसरी बार पण्ड तप करके विचरण करता है ।

उसके बाद वह शिवराजर्षि दूसरी बार के पण्ड तप के पारणा के समय आनापना भूमि के नीचे उतरता है, उतरकर बहल वन पट्टनर जहाँ अपनी कुटिया थी वहाँ आता है, किडिन, कावड़ पट्टन करता है, पट्टन करके दक्षिण दिशा को प्रोक्षित करता है कि दक्षिण दिशा के यम महाराज, धर्मारघना के लिए प्रवृत्त शिव राजर्षि की रक्षा करो, उसके बाद समस्त वर्तमान पूर्व दिशा के वर्तमान के समान समस्त वर्तमान-यावत्-उसके बाद-वय आहार करता है ।

तए णं से सिधे रायरिसी तच्चं छट्टुवखमण उवत्तंपज्जित्तान
विहरइ ।

तए णं से सिधे रायरिसी तच्चे छट्टुवखमणपारणगसि आया-
वणभूमिओ पच्चोरहइ, पच्चोरहिता वागतवत्थनियत्थे जेणेव
सए उइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किट्ठिण-संका
इयं गिण्हइ, गिण्हित्ता पच्चत्थिमं दिसं पोवणेइ, पच्चत्थिमाए
दिसाए वरणे महाराया पत्थाणे पत्थिय अभिरक्खउ सियं राय-
रिसि, सेसं तं चेष-जाय-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

तए णं से सिधे रायरिसी चउत्थं छट्टुवखमणं उवत्तंपज्जि-
त्तानं विहरइ ।

तए णं से सिधे रायरिसी चउत्थे छट्टुवखमणपारणगसि
आयावणभूमिओ पच्चोरहइ, पच्चोरहिता वागतवत्थनियत्थे
जेणेव सए उइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किट्ठिण-
सकाइयं गिण्हइ, गिण्हित्ता उत्तरदिसं पोवणेइ, उत्तराए दिसाए
वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सियं रायरिसि,
सेसं तं चेष-जाय-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

सिधस्स विभंगनाणं सत्तदीवविसयं—

५३२. तए णं तस्स सिधस्स रायरिसिस्स छट्टुं छट्टुणं अनिवस-
त्तेणं दिसाचक्कवात्तेणं तओकम्मणं उइउं वाहाओ पगिज्जिय-
पगिज्जिय सूर्राभिगुहस्स आयावणभूमिए आयावेमाणस्स पणइ-
भट्ट्याए पणइउयसताए पणइपयणुकोहमाण-मायालोभयाए मिउमह-
षसंपदाए अत्तोणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावर-
णिज्जाणं कमाणं पओवसमेणं ईहापूहमगणगयेसणं करेमाणस्स
दिग्भवे नामं नाणे तमुप्परे । से णं तेषं दिग्भवेणोणं तमुप्पन्नेजं
पावति अस्सि लोए सत्त दीवे सत्त तमुहे, तेण परं न जाणइ, न
पासइ ।

तए णं तस्स सिधस्स रायरिसिस्स अयमेवाए अयमत्थिए-
आय-सकाये तमुप्पज्जिता—अथि ण ममं अतिसेने नागदेमजे
तमुप्पणे, एथ एत्तु अस्सि लोए तस्स दीवा सत्त तमुहा, तेण परं
पोवणा दीवा य तमुहा य-एवं तवेहेइ, तवेहेता आयावणभूमिओ
पच्चोरहइ, पच्चोरहिता वागतवत्थनियत्थे जेणेव सए उइए तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मुत्तुं लोणे-लोहकाइ-कम्मउ-
त्थिये वागतवत्थं किट्ठिण सकाइयं य गेण्हइ, गेण्हित्ता अयेव
होवणापुरे अयेव अयेव तावनाइहे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता संइकिउइ करेइ, करेता हविमापुर अयेव विवाइय-

उनके बाद वह सिध राजपि भीरी बार पाठ उप
करके विचरता है ।

पञ्चान् वह सिध राजपि भीरी बार के पारणा
के समय आतापना भूमि ने भीरे उतरता है, उतरकर
वत्थन धारण करके उहाँ अपनी कुटिया भी, बग जाता है, सोकर
किट्ठिन, कायड़ लेता है, सोकर पत्थिय दिशा की
प्रोक्षित करता है कि हे पत्थिय दिशा के जायसि वत्थन मा-
राज ! आत्मसाधना के लिये तमुत्त मायरराजपि का रक्षण करो ।
मेव पूर्व दिशा के वर्णन के समान जानना चाहे, माय-उमके
बाद आहार करता है ।

इसके बाद वह सिध राजपि भीरी बार पाठ उप
विचरता है ।

उनके बाद वह सिधराजपि भीरी बार के पाठ उप के
पारणा के समय आतापना भूमि ने भीरे उतरता है, उतरकर
वत्थन पहनकर जहाँ अपनी कुटिया भी, बग जाता है, सोकर
किट्ठिन, कायड़ धारण करता है, वत्थन करके उतर दिशा की
प्रोक्षित करता है कि उतर दिशा के वर्णमण मारराज ! मायर-
की ओर अग्रसर सिध राजपि की रक्षा करो, मेव वर्णन पूर्व की
तरह-माय-उमके बाद करना आहार करता है ।

सिध को मत्तदीव विषयक विभंगनाण—
५३२. तस्सपञ्चात् निस्सार पाठ-पाठ भक्त उप करण से आया-
चक्रवाल तपकर्म से और उतर की और जायी की उतरकर नुवे न
तमुत्त मुहं रखकर आतापना भूमि ने उतरना उन के पुन
प्रकृति ने भद्र, प्रकृति ने माइ, अद्वय-भीय-मान, माय, लीन
पाया होने, मुत्तुमार्य तमुत्त लेने आतापना भूमि काय-मि,
विनीत होने ने उन सिध राजपि की जकी मुत्तुत्त तदावणमि
कर्म का अर्थापलम होने ने उमा, अरीय, कायेव लीय करण
करने ने विभंग भावक तप-तस्स मुत्तुत्त उन उतरकर वर्णन
जान ने पर देखना है कि उतर न माइ लीय और माय पाठ
है, उमने बाद जाने न आया है और न रावता है

सिधराजपि भीरी बार पाठ उप के विचरता है ।

गिण्हइ, गिण्हत्ता पुरत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसि-अभिरक्खउ सिवं रायरिसि, जाणि य तत्थ कंदाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुष्पाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ त्ति कट्ठु पुरत्थिमं दिसं पासइ, पासित्ता जाणि य तत्थ कंदाणि य-जाव-हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गेण्हत्ता किडिण-संकाइयगं भरेइ, भरेत्ता दब्भे य कुसे य समिहाओ य पत्तामोडं च गिण्हइ, गिण्हत्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता किडिण-संकाइयगं ठवेइ, ठवेत्ता वेदि वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवण-संमज्जणं करेइ, करेत्ता दब्भकलसाहत्थगए जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महानदि ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जणं करेइ, करेत्ता जलकीडं करेइ, करेत्ता जलाभिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए देवय-पित्ति-कयकज्जे दब्भ-सगवभ कलसाहत्थगए गंगाओ महानदीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए य वेदि रएत्ति, रएत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्निं पाडेइ, पाडेत्ता अग्निं संधुक्केइ, संधुक्केत्ता समिहाकट्टाइं पविखवइ, पविखवित्ता अग्निं उज्जालेइ, उज्जालेत्ता “अग्निस्स दाहिणे पासे, सत्तंगाइं समादहे”, तं जहा—

सकहं वक्कलं ठाणं, सिज्जाभंडं कमंडलुं ।

दंडदारुं तहप्पाणं, अहेताइ समावहे ॥१॥

महुणा य घएण य तंडुलेहि य अग्निं हुणइ, हुणित्ता चरुं साहेइ, साहेत्ता वलि-वइस्सदेवं करेइ, करेत्ता अतिहिपूयं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेति ।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चं छट्ठुक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से सिवे रायरिसी दोच्चे छट्ठुक्खमणपारणगंति आयावणभूमिओ पच्चोहइ, पच्चोहत्ता वागलवत्थनिपत्थे जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किडिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हत्ता दाहिणग दिसं पोक्खेइ, दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसि, सेसं तं चव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

किडिन (वांस का पात्र) और कावड़ को लेता है. लेकर पूर्वदिशा को प्रोक्षित करता है कि पूर्वदिशा के सोम महाराज धर्म साधना में प्रवृत्त शिव राजपि की रक्षा करो, शिव राजपि का रक्षण करो और उस दिशा में रहे हुए कंद, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरित वनस्पति लेने की अनुमति दो—ऐसा कहकर पूर्व दिशा में देखता है, देखकर वहां विद्यमान कंद-यावत्-हरित वनस्पति को लेता है लेकर किडिण और कावड़ भरता है, भरकर दर्भ, कुश, समिध काष्ठ और वृक्ष की शाखा को मरोड़कर पत्ते लेता है, लेकर जहां अपनी कुटिया है, वहाँ आता है आकर किडिन, कावड़ नीचे रखता है, रखकर वेदिका बनाता है, बनाकर वेदिका को लीपकर शुद्ध करता है, शुद्ध करके दर्भ युक्त कलश को हाथ में लेकर जहां गंगा महानदी है, वहाँ आता है, आकर गंगा महानदी में घुसता है, घुसकर डुबकी लगाता है, डुबकी लगाकर जलक्रीड़ा करता है, क्रीड़ा करके जलाभिषेक स्नान करता है, स्नान करके अच्छी तरह स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर देवता और पितृ कार्य करके दर्भ और कलश को हाथ में लेकर गंगा महानदी से बाहर निकलता है, निकलकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर दर्भ, कुश और वालुका द्वारा वेदिका को रंगता है, रंग कर शर से अरणि को घिसता है, घिसकर अग्नि पैदा करता है, पैदा करके सुलगाता है, सुलगाकर समिध काष्ठों को डालता है, डालकर अग्नि को प्रज्वलित करता है, प्रज्वलित करके अग्नि की दक्षिण बाजू में सात वस्तुओं को रखता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

सकथा (उपकरण विशेष), वल्कल, दीपस्थान, शैया उपकरण, कमंडलु, दंड और स्वय, इन सबको एकत्रित करता है ।

उसके बाद मधु, घी और चावल (धान) द्वारा अग्नि में होम करता है, होम करके चरु-पूजा सामग्री तैयार करता है, तैयार करके उस पूजा सामग्री से वैश्वदेव की पूजा करता है, पूजा करके अतिथि पूजा करता है, उसके बाद स्वयं आहार—भोजन करता है ।

तत्पश्चात् वह शिवराजपि दूसरी वार पष्ठ तप करके विचरण करता है ।

उसके बाद वह शिवराजपि दूसरी वार के पष्ठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि के नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहाँ अपनी कुटिया थी वहाँ आता है, किडिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके दक्षिण दिशा को प्रोक्षित करता है कि दक्षिण दिशा के यम महाराज, धर्माधना के लिये प्रस्तुत शिव राजपि की रक्षा करो, इसके बाद समस्त वर्णन पूर्व दिशा के वर्णन के समान समझना चाहिये-यावत्-उसके बाद स्वयं आहार करता है ।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चं छट्टवखमणं उवसंपज्जित्ताण विहरइ ।

तए णं से सिवे रायरिसी तच्चे छट्टवखमणपारणगंसि आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता वागलवत्थनियत्ये जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किट्ठिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता पच्चत्थिमं दिसं पोक्खेइ, पच्चत्थिमाए विसाए वरुणे महाराया पत्थाणे पत्थिय अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थं छट्टवखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से सिवे रायरिसी चउत्थे छट्टवखमणपारणगंसि आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता वागलवत्थनियत्ये जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किट्ठिण-संकाइयगं गिण्हइ, गिण्हित्ता उत्तरदिसं पोक्खेइ, उत्तराए विसाए वेसमणे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सिवं रायरिसिं, सेसं तं चेव-जाव-तओ पच्छा अप्पणा आहारमाहारेइ ।

सिवस्स विभंगनाणं सत्तदीवविसयं—

५३२. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्टंछट्टेणं अणिकवत्तेणं विसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्डं वाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमिओ आयावेमाणस्स पगइ-भदयाए पगइउवसंताए पगइपयणुकोहमाण-मायालोभयाए मिउमद्द-वसंपन्नाए अल्लोणयाए विणीययाए अण्णया कयाइ तयावर-णिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स विभंगे नामं नाणे समुप्पन्ने । से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासति अस्सि लोए सत्त दीवे सत्त समुद्दे, तेण परं न जाणइ, न पासइ ।

तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अयमेयास्से अज्झत्थिए-जाव-संकापे समुप्पज्जित्था—अत्थि णं ममं अत्तिसेसे नाणदंतणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना देवा य समुद्दा य-एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता वागलवत्थनियत्ये जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवहुं लोही-लोहकटाह-कडच्छय-तवियं तावससंडगं किट्ठिण-संकाइयगं च गेहइ, गेण्हित्ता जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव तावसावत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे तिघाडग-

उसके वाद वह शिव राजपि तीसरी वार पठ तप करके विचरता है ।

पश्चात् वह शिव राजपि तीसरी वार के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वल्कल वस्त्र धारण करके जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है आकर किडिन, कावड़ लेता है, लेकर पश्चिम दिशा को प्रोक्षित करता है कि हे पश्चिम दिशा के अधिपति वरुण महाराज ! आत्मसाधना के लिये समुद्यत शिवराजपि का रक्षण करो । शेष पूर्व दिशा के वर्णन के समान जानना चाहिये -यावत्-उसके वाद आहार करता है ।

इसके वाद वह शिव राजपि चौथी वार पठ तप करके विचरता है ।

उसके वाद वह शिवराजपि चौथी वार के पठ तप के पारणा के समय आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर वस्त्र पहनकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आता है, आकर किडिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके उत्तर दिशा को प्रोक्षित करता है कि उत्तर दिशा के वैश्रमण महाराज ! साधना की ओर अग्रसर शिव राजपि की रक्षा करो, शेष वर्णन पूर्व की तरह -यावत्-उसके वाद अपना आहार करता है ।

शिव को सप्तद्वीप विषयक विभंगज्ञान—

५३२. तत्पश्चात् निरन्तर पठ-पठ भक्त तप करने से, दिशा-चक्रवाल तपक्रम से और ऊपर की ओर हाथों को उठाकर सूर्य के सम्मुख मुँह रखकर आतापना भूमि में आतापना लेने से एव प्रकृति से भद्र, प्रकृति से शांत, अत्यल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाला होने, मृदुमार्दव सम्पन्न होने, आज्ञानुरूप वृत्ति वाला होने, विनीत होने से उस शिव राजपि को किसी एक दिन तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेपणा करने में विभंग नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ । उस उत्पन्न विभंग ज्ञान में वह देखता है कि लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके वाद आगे न जानता है और न देखता है ।

तत्पश्चात् उन शिव राजपि को यह इन प्रकार का अल्प-साय-यावत्-संकल्प हुआ—मुझे प्रतिशय वांछित ज्ञान, दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उनके वाद द्वीप और समुद्र नहीं हैं—इन प्रकार का विचार करना है, विचार करके आतापना भूमि से नीचे उतरता है, उतरकर जहाँ अपनी कुटिया है, वहाँ आता है, आकर अनेक प्रकार की चीजें लोहकटाह, कुड़छा, तांबे के तापनों के उपकरण, किडिन, कावड़ ग्रहण करता है, ग्रहण करके जहाँ हत्थिणापुर नगर है, जहाँ तापन मठ है, वहाँ आता है, आकर उपकरणों को नीचे रखता है, रखकर हत्थिणापुर नगर में भूमिपक, पिक, चतुष्क, पावर,

तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मह-महापह पहेसु बहुजणस्स एवमाइयखइ जाव-एवं परुवेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाण-दंसणे सम्पुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए—सत्त दीवा य सत्त समुद्दा तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य ।

५३३. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्टं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मह-महापह-पहेसु बहुजणो अणमणस्स एवमाइयखइ-जाव-परुवेइ—
“एवं खलु देवानुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइयखइ-जाव-परुवेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाण-दंसणे सम्पुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य । से कहमेयं मन्ने एवं ?”

महावीरसमोसरणे सिवविभंगजाणविरुय पप्होत्तरेसु असंखेज्जदीव-समुद्दपरुवणं—

५३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसडे, परिसा—
निग्गया । धम्मो कह्हिओ, परिसा पडिग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जहा वित्तियसए निपंठुट्ठेसए-जाव-घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसट्ठं निसा-मेइ, बहुजणो अणमणस्स एवमाइयखइ-जाव-एवं परुवेइ—एवं खलु देवानुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइयखइ-जाव-एवं परुवेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाणदंसणे सम्पुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य । से कहमेयं मन्ने एवं ?

तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्टं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे-जाव-समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं चयासी—

“एवं खलु भंते ! अहं तुवभेहि अब्भणुणाए समाणे हत्थिणा-पुरे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खा-यरियाए अडमाणे बहुजणसट्ठं निसामेमि—एवं खलु देवानुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइयखइ-जाव-परुवेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाणदंसणे सम्पुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य ।

से कहमेयं भंते ! एवं ?”

गोयमा ! दि ससणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं चयासी—

चतुमुंख, महापथ और पय आदि में अनेक लोगों से इस प्रकार कहता है-यावत्-प्ररूपित करता है—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं । उसके बाद द्वीप और समुद्रों का अन्त हो जाता है ।

५३३. तत्पश्चात् उस शिवराजपि के पास इस अर्थ—वान तो सुनकर और अवधारण करके हस्तिनापुर नगर में श्रृंगटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुमुंख, महापथ और पयों में अनेक लोग एक-दूसरे से ऐसा कहते हैं यावत्-प्ररूपित करते हैं—हे देवानुप्रियो ! शिवराजपि ऐसा कहते -यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप, समुद्र नहीं है । तो इस प्रकार कैसे हो सकता है ?

महावीर समवसरण में शिव के विभंगज्ञान विषयक प्रश्नोत्तरों में असंख्यद्वीप समुद्रों की प्ररूपणा—

५३४. उस काल, उस समय में महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, पपंदा निकली । धर्म कहा, परिपद् वापस लौटी ।

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर के जेट्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगर द्वितीय शतक(भग.)के निर्रन्ध-उद्देशक में किये गये वर्णन के अनुसार-यावत्-प्ररूपणा नुदानिक भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण करते हुए अनेक मनुष्यों के शब्दों को सुनते हैं, वे अनेक मनुष्य एक-दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे—यावत्-प्ररूपित करते थे—हे देवानुप्रियो ! शिव राजपि ऐसा कहते हैं -यावत्-प्ररूपित करते हैं कि—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय युक्त ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं, इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं । उसके बाद द्वीप समुद्रों का विच्छेद हो जाता है । तो इस प्रकार कैसे माना जा सकता है ?

तत्पश्चात् भगवान गौतम उन अनेक मनुष्यों के मुख से इस बात तो सुनकर और अवधारण कर श्रद्धा वाले होकर -यावत्-श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करते हैं, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

‘हे भगवन् ! मैंने आपकी अनुज्ञापूर्वक हस्तिनापुर नगर के उच्च-नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हुए बहुत से मनुष्यों के शब्दों को सुना है कि—हे देवानुप्रियो ! शिव राजपि इस प्रकार कहते हैं—यावत्-प्ररूपणा करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप एवं सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप एवं समुद्रों का विच्छेद हो जाता है ।

तो हे भदन्त ! इस प्रकार कैसे हो सकता है ?’

‘हे गौतम !’ इस प्रकार संबोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से इस प्रकार कहा—

“जणं गोयमा ! एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाच्चक्कवालेणं तवोकम्मिणं उड्ढं वाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय. सूरामिम्हस्स आयावणभूमि ए आयावेमाणस्स पगइमद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइपयणुकोहमा-णमायालोमयाए मिउमद्दसंपन्तयाए अत्तीणयाए विणीययाए अणया कयाइ तयावरणिज्जाणं कम्मणं खओवसमेणं ईहापूह-मगणगवेसणं करेमाणस्स विव्भंगे नामं नाणे समुप्पन्ने । तं चैव सव्वं भाणियव्वं-जाव-भंडनिकखेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ-जाव-पव्वं पव्वेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य ।

‘हे गौतम ! अनेक मनुष्य जो परस्पर ऐसा कहते हैं, उनका कारण यह है कि निरन्तर पण्ड-पण्ड भक्तपूर्वक दिगा चक्रवाल तपक्रम से ऊँचे हाथ रखे नूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए उस शिव राजपि को स्वभावतः भद्र, शांत और अत्यन्त अल्प मात्रा में क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होने से, मृदु मार्दव संपन्न होने से, आज्ञानुसार वृत्तिवाला होने से और विनीत होने से किमी एक दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम एवं ईहा, अपोह, मार्गणा, नवपणा करते हुए विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ है। पूर्ववत् यह! नव वर्णन करना चाहिये-यावत्-उपकरणों को नीचे रखता है, नीचे रखकर हस्ति-नापुर नगर के श्रृंगटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्भुज महापथ और पथों में अनेक जनों से इस प्रकार कहता है—यावन इस प्रकार प्ररूपित करता है कि—हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इन लोक में मातृद्वीप और सात समुद्र हैं, उसके आगे द्वीप और समुद्रों का विच्छेद हो जाता है अर्थात् आगे द्वीप समुद्र नहीं हैं।

५३५. तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंति एयमद्दं सोच्चा निसम्म हत्थिणापुरे नगरे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अणमणस्स एवमाइक्खइ-जाव-पव्वेइ—“एवं खलु देवानुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ-जाव-पव्वेइ—अत्थि णं देवानुप्पिया ! ममं अत्तिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुद्दा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुद्दा य, तणं मिच्छा ! अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि-जाव-पव्वेमि—एवं खलु जंबुद्वीवा दीया दीया, लवणादीया समुद्दा संठाणओ एगविहिविहाणा, वित्थरओ अणेगविहिविहाणा एवं जहा जीवाभिगमे, -जाव-पयं-नूरमणपज्जद-साणा अस्सि तिरियलोए अत्तंखेज्जा दीवसमुद्दा पणत्ता सनणाउसो !”

५३५. तत्पश्चात् शिव राजपि के पास से इन ज्ञान को सुनकर हस्तिनापुर नगर में श्रृंगटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्भुज, महापथ और सामान्य पथों में जो अनेक मनुष्य परस्पर ऐसा कहते हैं-यावत्-प्ररूपित करते हैं कि—‘हे देवानुप्रियो ! शिव-राजपि ऐसा कहते हैं - यावत्-प्ररूपित करते हैं कि—‘हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशयवन्त ज्ञान—दर्शन उत्पन्न हुए हैं और यह लोक सात द्वीप एवं सात समुद्र पर्यन्त है और उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं हैं, वह मिथ्या है, हे गौतम ! में इस प्रकार कहता हूँ-यावत्-प्ररूपित करता हूँ कि इस प्रकार जम्बुद्वीप आदि द्वीप और लवण आदि समुद्र सभी प्रकार के एक नरीयें हैं किन्तु विज्ञानता की दृष्टि में अनेक प्रकार के हैं, इत्यादि जीवाभिगम सूत्र में कहे अनुसार सर्वव्यपन ज्ञानना-यावत्-हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस त्रियं लोके में स्वर्गभ्रमण समुद्र पर्यन्त अनन्तज्ञान द्वीप समुद्र हैं ।

अत्थि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे दव्वाइ-सवण्णाइं पि अयप्पाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरस्ताइं पि अरस्ताइं पि, सक्कासाइं पि अक्कासाइं पि, अणमणयत्ताइं अणमणयत्ताइं पुद्दाइं अणमणयत्ताइं चिट्ठंति ?

हंता अत्थि ।

अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अयप्पाइं पि सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरस्ताइं पि अरस्ताइं पि, सक्कासाइं पि अक्कासाइं पि अणमणयत्ताइं अणमणयत्ताइं पुद्दाइं अणमणयत्ताइं चिट्ठंति ।

हंता अत्थि ।

अत्थि णं भंते ! धायइसंडे दीवे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि अण्णमण्णवद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णवद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?

हंता अत्थि । एवं-जाव—

अत्थि णं भंते ! सयंभूररणसमुद्धे दव्वाइं—सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अण्णमण्णवद्धाइं अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णवद्धपुट्ठाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठन्ति ।

हंता अत्थि ।

तए णं सा महत्तिमहालिया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउव्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

५३६. तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ “जणं देवाणुप्पिया ! सिवे रायरिसी एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुट्ठा, तेणं परं वोच्छिन्ना दीवा य समुट्ठा य । तं नो इणट्ठे समट्ठे ।

समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—एवं खलु एयस्स सिवस्स रायरिसिस्स छट्ठंछट्ठेणं० तं चेव-जाव-भंडनिकखेवं करेइ, करेत्ता हत्थिणापुरे नगरे सिघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ—अत्थि णं देवाणुप्पिया ! ममं अतिसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने, एवं खलु अस्सि लोए सत्त दीवा य सत्त समुट्ठा, तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुट्ठा य । तए णं तस्स सिवस्स रायरिसिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव तेण परं वोच्छिन्ना दीवा य समुट्ठा य तण्णं मिच्छा, समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ—एवं खलु जंबूद्वीवादीया दीवा लवणादीया समुट्ठा०, तं चेव जाव असंखेज्जा दीवसमुट्ठा पण्णत्ता समणाउसो !”

हे भगवन् ! घातकीखंड नामक द्वीप में सवर्ण, अवर्ण, सगंध, अगंध, सरस, अरस, सस्पर्श; अस्पर्श द्रव्य अन्योन्य वद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य वद्ध स्पृष्ट एवं अन्योन्य संबद्ध हैं ?

हे गौतम ! हां है ।

इसी प्रकार-यावत्-हे भगवन् ! स्वयंभूरमण समुद्र में सवर्ण और अवर्ण, सगंध और अगंध, सरस और अरस, सस्पर्श और अस्पर्श द्रव्य अन्योन्यवद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य वद्ध स्पृष्ट, अन्योन्य संबद्ध हैं ?

हाँ हैं ।

तत्पश्चात् वह अत्यन्त विशाल परिपदा श्रमण भगवान महावीर के पास से इस अर्थ को सुनकर और अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करती है, वंदना नमस्कार करके जिस दिशा में से प्रगट हुई—आई थी, उसी दिशा में लौट गई ।

५३६. तत्पश्चात् हस्तिनापुर नगर के श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और सामान्य पथों में अनेक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं—यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! शिव राजपि जो यह कहते हैं—यावत्-प्ररूपणा करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं और उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं है, उनका यह कथन युक्त-यथार्थ नहीं है ।

श्रमण भगवान महावीर तो यह कहते हैं—यावत्-प्ररूपित करते हैं कि पष्ठ पष्ठ तप को निरन्तर करने से शिव राजपि को पूर्व में कहे गये अनुसार-यावत्-उपकरणों को नीचे रखता है, नीचे रखकर हस्तिनापुर में श्रृंगाटक त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ एवं दूसरे मार्गों में अनेक लोगों से ऐसा कहते हैं—यावत्-प्ररूपित करते हैं कि हे देवानुप्रियो ! मुझे अतिशय वाले ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुए हैं और इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके बाद द्वीप समुद्र नहीं है । तत्पश्चात् उस शिव राजपि के पास से यह बात सुनकर और अवधारण कर -यावत्-उसके बाद द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हो जाते हैं—नहीं हैं, वह मिथ्या है, श्रमण भगवान महावीर तो इस प्रकार कहते हैं कि हे आयुष्मन् श्रमणो ! जंबूद्वीप आदि द्वीप और लवण आदि समुद्र, इत्यादि पूर्व में कहे अनुसार जानना चाहिये-यावत्-असंख्यात द्वीप समुद्र कहे हैं ।

सिवस्स अप्पणो नाणे संका महावीरपज्जुवासणं च—

५३७. तए णं से तिवे रायरिसी बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म संकिए कंखिए वित्तिगिच्छिए भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने जाए यावि होत्था । तए णं तस्स तिवस्स रायरिसिस्स संकियस्स कंखियस्स वित्तिगिच्छियस्स भेदसमावन्नस्स कलुससमावन्नस्स से विभंगे नाणे खिप्पामेव परिवडिए ।

तए णं तस्स तिवस्स रायरिसिस्स अयमेयाह्वे अज्झत्थिए-ज.व-संक्रप्पे समुप्पज्जित्था—“एवं खलु समणे भगवं महावीरे तित्थगरे आदिगरे जाव-सव्वणू सव्वदरिसी अगासगएणं चक्केणं जाव सहसंववणे उज्जाणे अहापडिह्वं ओगगहं ओगिण्हित्ता सतनेणं तत्रता अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं महप्फलं खलु तहाह्वानं अरहंतानं भगवंतानं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंगपुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि, एयं णे इहभवे य परनवे य हियाए सुइए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविससइ” त्ति कट्ठु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव तावसावसहे तेणेव उयागच्छइ, उयागच्छित्ता तावसावसहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सुवडुं लोही-लोहकडाह-कडच्छुयं तंविंयं तावभंडगं किडिण-संकाइयगं च गेण्हइ, गेण्हित्ता तावसावसहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पडिवडियविभंगे हत्थियण।पुरं नगरं मज्झमज्जेग निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव सहसंववणे उज्जाणे, जेणेव समणे भगवं महावीरं, तेणेव उयागच्छइ, उयागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिवसुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता नच्चासत्ते नात्तिदूरे सुस्सुसमाणे नमसमाणे अभिमुहे त्रिणएणं पंजलिकटे पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे तिवस्स रायरिसिस्स तीसे य सहत्तिमहात्थियाए परित्ताए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भयइ ।

सिवस्स एव्वज्जा निव्वाणगमणं च—

५३८. तए णं मे तिये रायरिसी समणस्स भगवओ महावीरस्स प्रतियं धम्मं सोच्चा निसम्म जहा चंडओ-जाव-उत्तरपुरथियं

शिव को अपने ज्ञान में शंका और महावीर पर्युपासना—

५३७. तत्पश्चात् वह शिवराजपि बहुत से मनुष्यों से इत अर्थ को सुनकर और अवधारण करके जंकिंत, कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित, और कलुपित मना हुआ । तत्पश्चात् उन जंकिंत, कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित और कलुपित भाव को प्राप्त शिवराजपि का वह विभंग नामक ज्ञान तत्काल नष्ट हो गया ।

उसके बाद उस शिव राजपि को यह, इन प्रकार का अधवसाय विचार उत्पन्न हुआ—‘इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर, धर्म की आदि करने वाले—यावन्-मवंस, मवंदगी हैं और आकाश में गमन करते हुए धर्म चक्र द्वारा—यावन्-सहस्राश्रवण उद्यान में व्यायोग्य अवग्रह धारण करके मयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहार करने हे तो जब उस प्रकार के अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र का श्रवण करना महाफल वाला है, तब फिर उनके सामने जाना, उनका वंदना नमस्कार करना, उनसे पूछना और उनकी पर्युपासना करने के लिये क्या कहना ? एक ही आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण करना जब महाफलदायक है तो फिर उनके विपुल अर्थ के अवधारण करने के लिये कहना ही क्या ? इसलिये मैं श्रमण भगवान महावीर के पास जाऊँ, उनकी वंदना कहूँ—यावन्-उनही पर्युपासना कहूँ, ऐसा करना मेरे लिये इन भव और परभव में हित, सुख, क्षमा और अनुकूल से निश्चयम कल्याण के लिये होगा’ ऐसा विचार करता है, विचार करके जहा तापनों का मठ था, वहाँ आता है, आकर तापनों के मठ में प्रवेश करता है, प्रवेश करके अनेक लोढ़ी, लोहे की कट्टाही, कुडुछा, और तापे के तापनों के उपकरण, किडिन, कावइ, लेता है, लेकर तापनों के मठ से बाहर निकलता है. निकलकर विभंगज्ञान रहित यह हस्तिनापुर नगर के मध्यात्तिमध्य भाग में ने निकलता है. निकलकर जहाँ सहस्राश्रवण उद्यान है, जहा श्रमण भगवान महावीर हैं, वहाँ आता है. आकर श्रमण भगवान महावीर से तीन बार वंदना नमस्कार करता है. वंदना नमस्कार करके उनसे न अति निकट और न अति दूर पड़े हीगए सुदुसा करने हुए, आश्लेष-प्रदक्षिणा भी, करके नमस्कार किया और तापनों विनयपूर्वक अज्ञप्ति करते पर्युपासना करता है ।

तत्पश्चात् उन शिव राजपि एवं उन शिवराजपि को श्रमण भगवान महावीर से क्या कहा है—यावन्-उत्तरपुर आराधन क्षेत्र है ।

शिव की प्रवृत्त्या एवं निर्वाणगमन—

५३८. तत्पश्चात् यह शिव राजपि श्रमण भगवान महावीर के पास धम्मं प्रवचन कर लेते उदयावसान कर के वंदना के प्रवचन

दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सुवहुं लोही-लोहकडाह-
कडच्छुयं तवियं तावसभंडगं किडिण-संकाइयगं च एगंते एडेइ,
एडेत्ता सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करेइ, करेत्ता समणं भगवं महावीरं
तिवखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता
नमंसित्ता एवं जहेव उसभदत्तो तहेव पव्वइओ, तहेव एक्कारस
अंगाइ अहिज्जइ, तहेव सव्वं-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—भग० स० ११, उ० ६ ।

कहे गये अनुसार-यावत्-उत्तरपूर्व दिशाभाग-ईशानकोण में जाता
है, वहाँ आकर उन बहुत सी लोढ़ियों, लोहकटाहों, कुड़छों,
ताँवों के तापसों के उपकरणों, किडिन और कावड़ को एकान्त
स्थान में रखता है, रखकर स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच करता है,
लोच करके श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-
प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके, वंदना नमस्कार करता है,
वंदना नमस्कार करके ऋषभदत्त की तरह प्रब्रज्या स्वीकार करता
है, उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, उसी प्रकार
सब वर्णन करना चाहिये-यावत्-समस्त दुःखों से मुक्त होता है ।



४१. महावीरतित्थे उदायणराय कहाणयं ४१. महावीरतीर्थ में उदायन राज कथानक

चंपाए महावीरसमोसरणं—

५३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—
वण्णओ । पुण्णभद्दे चंडेए—वण्णओ । तए णं समणे भगवं
महावीरे अण्णदा कदाइ पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं
दुइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नगरी जेणेव पुण्ण-
भद्दे चंडेए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिळ्ळं ओग्गहं
ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवत्ता अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ।

वीतीभए उदायणराया—

५४०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिधूसोवीरेसु जणवएसु वीतीभए
नामं नगरे होत्था—वण्णओ । तस्स णं वीतीभयस्स नगरस्स
वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं मियवणे नामं उज्जाणे
होत्था—सव्वोउय-पुष्फ-फलसमिद्धे—वण्णओ । तत्थ णं वीतीभए
नगरे उदायणं नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-
मंदर-महिदमारं—वण्णओ ।

तस्स णं उदायणस्स पउमा रतो नामं देवी होत्था—सुकुमाल०
वण्णओ । तस्स णं उदायणस्स रणो पमावती नामं देवी होत्था—
सुकुमाल वाणिवाया—वण्णओ ।

चंपा में महावीर समवसरण—

५३६. उस काल, उस समय में चंपा नाम की नगरी थी—
वर्णन । पूर्णभद्र चैत्य था—वर्णन । तत्पश्चात् श्रमण भगवत्
महावीर किसी एक दिन अनुक्रम से चलते हुए, ग्राम-ग्राम का
स्पर्ण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ चम्पा नगरी
थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे, पधारकर यथायोग्य
अवग्रह ग्रहण करते हैं, ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को
भावित करते हुए विचरते हैं ।

वीतभय में उदायन राजा—

५४०. उस काल उस समय में सिन्धु सीवीर जनपद में वीतभय
नाम का नगर था—वर्णन । उस वीतभय नगर के बाहर उत्तर-
पूर्व दिशा में मृगवन नाम का उद्यान था—जो सर्व ऋतुओं के
पुष्पों और फलों से समृद्ध था—वर्णन । उस वीतभय नगर में
उदायन नामक राजा था—जो महाहिमवन एवं पृथ्वी के शिर-
मोर रूप मलय मंदराचल के समान सर्व राजाओं में श्रेष्ठ था—
वर्णन ।

उस उदायन राजा के पद्मावती नाम की रानी थी—जो
सुकुमाल, हाथ पर वाली आदि वर्णन । उस उदायन राजा के
प्रभावती नाम की रानी थी, जो सुकुमाल हाथ पर वाली आदि
वर्णन ।

तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए अभीयी नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माणपमाण-पडिपुण्ण-सुजायसच्चवंग-सुन्दरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुखे पडिख्वे । से णं अभीयी कुमारे जुवराया वि होत्था—उद्दायणस्स रण्णो-रज्जं च रट्ठं च वलं च वाहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे-पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ।

तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो नियए भाइणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए-जाव-सुखे ।

से णं उद्दायणे राया सिधूसोवीरप्पामोवखाणं सोलसहं जणवयाणं, वीतीभयप्पामोवखाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरत्तयाणं, महसेणप्पामोवखाणं दसहं राईसरं वट्टमउडाणं विदिघ्णत्त-चामर-वालवीयणाणं, अण्णेसि च वूहणं राईसर-तलवर-कोडुंबिय-माडंबिय-इम्म-सेट्ठि-सेणावइ—सत्यवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं-आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिगहिएहि तवोकम्मिहि अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से उद्दायणे राया अण्णया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, जहा संखे-जाव-पोसहिए बंभचारी ओमुक्क-मणिमुवणे भवगयमाला-वण्णगविलेवणे निखित्तसत्य-मुसले एगे अबिइए दम्मसंथारोवगए पविलयं पोसहं पाउजागरमाणे विहरइ ।

उद्दायणस्स महावीरवंदणाइम्मि अहिलासो—

५४१. तए णं तस्स उद्दायणस्स रण्णो पुध्वरत्तावरत्तकालत्तमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयाख्वे अज्जत्थिए-जाव-त्तकप्पे तसुपञ्जित्था—“धम्मो णं ते गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टपासम-संवाहसप्पिवेत्ता जत्थे णं तमणे भगवणं महावीरे विहरइ, धन्ना णं ते राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इम्म-सेट्ठि-सेणावइ-त्तपवाहप्पमितयो जे णं तमणं भगवणं महावीरं वंदति नमंसति-जाव-एउज्जयात्ति ।

अइ णं तस्स भगवणं महावीरे पुब्बाणुपुट्ठि चरमाणे गाना-शुणामं इइउअमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इहमागच्छेज्जा, इह

उस उदायन राजा का पुत्र प्रभावती देवी का नात्मज अभीचि नामक कुमार था—जो सुकुमार हाथ-पैर वाला, सर्व अंगों से पूर्ण, परिपूर्ण पंच इन्द्रियों, शरीर के लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त था, अंग-प्रत्यंग सामुद्रिक शास्त्र के अनुसृत मानो-न्मान प्रमाण से युक्त, परिपूर्ण से सुघटित, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाला, कांत, प्रियदर्शन और रूप मोंदर्श से परिपूर्ण था । वह अभीचिकुमार युवराज भी था, जो उदायन राजा के राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्टानगर, पुर और अन्तःपुर की व्यवस्था-प्रबन्ध करते हुए विचरता था ।

उस उदायन राजा के केशीकुमार नामक भानजा था, जो सुकुमार हाथ पैर वाला-यावत्-सुरूप था ।

वह उदायन राजा सिधु सोवीर प्रमुख सोलह देशों, वीत-भय प्रमुख तीन सौ तिरैसठ नगरों, महासेन प्रमुख दस मुकुट वट्ट राजाओं का जिनके ऊपर छत्र ताना जाता था और चामर डारे जाते थे तथा ऐसे ही दूसरे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडयिक, कौटुम्बिक, इम्म श्रेष्ठी, सेनापति, सार्धवाह प्रभृति का आधिपत्य करते हुए, प्रमुखपना भोगते हुए, स्वामित्व, भृत्यत्व, सार्धवर्धत्व, सेनापतित्व करते हुए, पालन करते हुए जीवाजीव तत्व का शाता श्रमणोपासक था-यावत्-यथाविधि तप कर्म को ग्रहण करके आत्मा को भाते हुए विचरता था ।

तत्पश्चात् वह उदायन राजा अन्य किसी दिन ब्रह्मा पीपघशाला घी वहाँ आया, आकर शंख श्रमणोपासक की तरह - यावत्-पीपघ धारण कर ब्रह्मचारीयत् मनि-मुषणं आदि को त्यागकर, माला-श्रृंगार प्रसाधन, विलेपन को छोड़कर, गन्ध, मूशल आदि को भीषे रखकर एकाकी, विकल्प विहीन हो, दर्भ संस्तारक पर बैठकर पादिक पीपघ में जागरणा करते हुए विचरता है ।

उदायन की महावीर की वंदनादि की अभिवादा—

५४१. तत्पश्चात् उस उदायन राजा को मध्यरात्रि के समय में धर्म जागरणा करते हुए यह इन प्रकार का अल्पवयस-यावत्-विचार उत्पन्न हुआ कि 'ये ग्राम, आकर, नगर, खेड, वट्ट, मडंब, मडव, दौणमुय, पत्तन, आश्रम, महाह मनिषेय धम्म हे, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विचरण करने हे ये राजा, ईश्वर, तलवर, मांडयिक, कौटुम्बिक, इम्म, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्धवाह आदि धम्म हे जो श्रमण भगवान महावीर की वंदना-नन्दन करत हे-यावत्-सुणुं-पासना सेवा करत हे ।

यदि श्रमण भगवान महावीर अनुसृत से चरत हुए जनापु-शाम की स्तन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए ब्रह्मा

समोसरेज्जा, इहेव वीतीभयस्स नगरस्स वहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिह्वं ओगगहं ओगिण्हिता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा, तो णं अहं समणं भगवं महावीरं वंवेज्जा नमंसेज्जा-जाव-पज्जुवासेज्जा ।'

महावीरेण अहिलासवियाणणा—

५४२. तए णं समणे भगवं महावीरे उदायणस्स रण्णे अयमेया-रूवं अज्झत्थिय-जाव-संकप्पं समुप्पन्नं वियाणित्ता चंपाओ नगरीओ पुण्णभद्दाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुच्चि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सिधुत्तोवीरे जणवए जेणेव वीतीभये नगरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-जाव-सजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

वीतीभए समोसरणं—

५४३. तए णं वीतीभये नगरे सिघाडग-तिग-चउवक-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु-जाव-परिसा पज्जुवासइ ।

तए णं से उदायणे राया इमीसे कहाए लद्धे समाणे हट्ट-तुट्टे कोडुंविपुुरिसे सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! वीयीभयं नगरं सर्व्वभतर-बाहिरियं-जहा कूणिओ उववाइए-जाव-पज्जुवासइ ।

पउमावतीपामोक्खाओ देवीओ तहेव-जाव-पज्जुवासंति ।

धम्मकहा ।

उदायणस्स पव्वज्जासंकप्पो—

५४४ तए णं से उदायणे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टे उट्टाए उट्टेइ, उट्टेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो-जाव-नमंसित्ता एवं वयासी—

एवमेयं भन्ते ! तहमेयं भन्ते !—जाव-से जहेयं तुम्भे वदहं त्ति कट्टुं जं नवरं—देवानुप्पिया ! अभीयिकुमारं रज्जे ठावेमि, तए णं अहं देवानुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अण-गारियं पव्वयामि ।

आयें, उनका यहां पदापर्ण हों इसी वीतभय नगर के बाहर मृग वन उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह धारण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार करें तो मैं श्रमण भगवान महावीर को वंदन कहूँ, नमस्कार कहूँ—यावत्-उनकी पर्यु-पासना कहूँ ।

महावीर द्वारा अभिलापा जानना—

५४२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर उदायन राजा के इस प्रकार के उत्पन्न हुए अध्यवसाय-यावत्-संकल्प को जानकर चंपानगरी से, पूर्णभद्र चैत्य से बाहर निकले, निकलकर अनुक्रम से गमन करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में श्रमण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां शिशु सीवीर जनपद हैं, जहां वीतभय नगर है और जहां मृगवन उद्यान है वहां आयें, आकर यावत्-संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

वीतभय में समवसरण—

५४३. तत्पश्चात् वीतभय में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापय और दूसरे पथों में-यावत्—परिपद पर्यु-पासना करती है ।

तब उस उदायन राजा ने इस वार्ता को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही वीतभय नगर को अन्दर बाहर से निश्चित कर-यावत्-जैसा आपपातिक-सूत्र में कूणिक का वर्णन है, पर्यु-पासना करता है ।

पद्मावती प्रमुख रानियाँ भी उसी प्रकार-यावत्-पर्यु-पासना करती हैं ।

धर्मकथा कही ।

उदायन का प्रव्रज्या संकल्प—

५४४. उसके बाद वह उदायन राजा श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म श्रवण कर और अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो स्थान से उठा, उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन वार प्रदक्षिणा करके-यावत्-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह तथ्य है; यावत्-जैसा आप कहते हैं; इस प्रकार कहकर परन्तु इतना विशेष है कि—हे देवानुप्रियो ! अभीचिकुमार को राज्य शासन में स्थापित करूँगा, तत्पश्चात् आप देवानुप्रियो के पास मुण्डित होकर आंगार त्याग करके आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार करूँगा ।

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! वीयीमयं नगरं सन्मितर-
वाहिरियं आसियसमज्जिओवलित्तं-जाव-सुगंधिवरगंधगंधियं गंध-
वट्टिभ्यं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणह । ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं से उदायणे राया वोच्चं पि कोडुंवियपुरिसे सदावेइ,
सदावेत्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! केसिस्स कुमारस्स महत्थं
महग्घं महरिहं विउलं एवं रायाभिसेओ जहा सिवभद्दस्स(स० ११,
उ० ६)तहेव भाणियव्वो-जाव-परमाउं पालयाहि, इट्टुजण-संपरिवुडे
सिधूसोवीरपामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीयीमयपामोक्खाणं
तिणिण तेसट्टीणं नगरागरसयाणं महसेणपामोक्खाणं दसण्हं
राईणं, अणोसि च वहणं राईसर-तलवर- मांडविय-कोडुंविय-
इब्भ - सेट्टि - सेणावइ - सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं
सामित्तं भट्टित्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारमाणे, पालेमाणे
विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउञ्जंति ।

तए णं से केसी कुमारे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-
मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

उदायणस्स पव्वज्जा—

५४६. तए णं से उदायणे राया केसि रायाणं आपुच्छइ ।

तए णं से केसी राया कोडुंवियपुरिसे सदावेइ—एवं जहा
जमालिस्स तहेव सन्मितरवाहिरियं तहेव-जाव-निक्खमणाभिसेयं
उवट्टुवेत्ति ।

तए णं से केसी राया अणेगणनायग-दंडनायग-राईसर-
तलवर-मांडविय-कोडुंविय-इब्भ-सेट्टि-सेणावइ सत्थवाह-द्वय - संधि-
पाल, सद्धि संपरिवुडे उदायणं रायं सीहासनवरंसि पुरत्थाभिमुहे
निसीयावेत्ति-निसीयावेत्ता अट्टुसएणं सोवणिणयाणं कलसाणं एवं जहा
जमालिस्स-जाव महया-महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिचित्ति,
अभिसिचित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं
कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—
अण सामी ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा वा ते अट्टो ?

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही वीतभय नगर को अन्दर बाहर
से जल से सिंचित कर, बृंहार कर और लीपकर -यावत्-श्रेष्ठ
सुगन्धित द्रव्यों की गंध से गंधवट्टी के समान करो और कर-
वाओ, ऐसा करके और करवाके इस आज्ञा को वापस लौटाओ ।
वे भी वसा करके उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

तत्पश्चात् वह उदायन राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों
को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार बोला—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही केशीकुमार के महाअर्थ वाले,
महा-मूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल ऐसा राज्याभिषेक
करो—जैसा शिवभद्र का (भ० स० ११, उ० २) हुआ वैसा वर्णन
कहना चाहिए । यावत्-दीर्घायु का भोग करो, इष्टजनों से सदा
घिरे हुए सिन्धु सीवीर आदि सोलह जनपदों, वीतशोक प्रमुख
तीन सौ तिरेसठ नगर और आकरों, महासेन प्रमुख दस राजाओं
एवं दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक,
इब्भ, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति का आधिपत्य, प्रमुखत्व,
स्वामित्व, भर्तृत्व, आज्ञैश्वर्यत्व, सेनापतित्व करते हुए, पालते
हुए विचरण करो, ऐसा कहकर जय जयकार करता है ।

तत्पश्चात् वह केशीकुमार राजा हो गया—महा हिमवंत
मलय मंदर पर्वत की तरह राजाओं में श्रेष्ठ राजा की तरह
-यावत्-राज्य पर शासन करते हुए विचरता है ।

उदायन की प्रव्रज्या—

५४६. तत्पश्चात् वह उदायन राजा केशीराजा से आज्ञा
मांगता है ।

तत्पश्चात् उस केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया—
इत्यादि जैसा जमालि के सम्बन्ध में कहा है, उसी प्रकार नगर
के बाहर अन्दर साफ कराओ इत्यादि-यावत्-निष्क्रमणाभिषेक
की तैयारी करते हैं ।

तत्पश्चात् वह केशीराजा अनेक गणनायक, दंडनायक,
राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इब्भ, श्रेष्ठी,
सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल से परिवृत्त होकर उदायन
राजा को उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठाता है,
बैठाकर एक सौ आठ सुवर्ण कलशों द्वारा अभिषेक करता है
इत्यादि जमालि के अभिषेक की तरह-यावत्-महान निष्क्रमणा-
भिषेक करता है, अभिषेक करके दसों नखों सहित दोनों हाथों
को जोड़ मस्तक से स्पर्श कर अंजलि करके जय विजय शब्दों से
वधाता है, वधाकर इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! हम आपको
क्या दें, क्या अर्पित करें अथवा आपको क्या इष्ट है—आपका
क्या प्रयोजन है ?

तए णं से उद्दायणे राया केसि रायं एवं वयासी—इच्छामि णं देवानुप्पिया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिगहं च आणितं, कासवगं च सहाविउं—एवं जहा जमालिस्स, नवरं पउमावती अगकेसे पडिच्छइ पियविप्पयोगदूसहा ।

तए णं से केसी राया दोच्चं पि उत्तरावकमणं सीहासणं रया वेति, रयावेत्ता उद्दायणं रायं सेया-पीतएहि कलसेहि ण्हावेत्ति, ण्हावेत्ता सेसं जहा जमालिस्स-जाव-चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अम्मुट्टेई, अम्मुट्टेत्ता सीयं अणुप्पवाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहत्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे-सणिसण्णे, तहेव अम्मधाती, नवरं पउमावती हंसलवखणं पउसाडगं गहाय सीयं अणुप्पवाहिणीकरेमाणो सीयं दुरुहइ, दुरुहत्ता उद्दायणस्स रण्णो दाहिणे पासे भदासणवरंसि सणिसण्णा सेसं तं चेव-जाव-छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणि सीयं ठावेइ ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ गोयाओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं त्रिवखुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ ।

तए णं सा पउमावती देवी हंसलवखणं पउसाडणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिद्धुवार - छिन्न - मुत्तावतिप्पगासाइं अंसुणि विणिम्मयमाणो विणिम्मयमाणो उद्दायणं रायं एवं वयासी—

अइययं तामो ! पडिययं तामो ! परक्कमिययं तामो ! अरिस च णं अट्टे नो पमादेययं त्ति कट्टु केसी राया पउमावती य समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता आनेअ रिसं पाउरुभुआ तानेअ रिसं पडिगया ।

तए णं से उद्दायणे राया सयमेव पंचमुट्ठिय सोय करेइ तेसं ण्हा उव्वरत्तस्स-जाव-सम्मदुबउप्पहोणे ।

तव उस उदायन राजा ने केशी राजा ने इस प्रकार कहा— हे देवानुप्रिय ! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मंगधाना और काश्यप को बुलवाना चाहता हूँ—इत्यादि जैसा जमानि के सम्बन्ध में वर्णन किया है, उन्ही प्रकार यहाँ कहना चाहिये, परन्तु इतना विशेष है कि दुम्सह प्रिय विजोग से दुग्घिन परमावती अग्रकेशों को ग्रहण करती है ।

तत्पश्चात् केशी राजा द्वारा उनर दिना में मिहामन को रथ-वाता है, रखवाकर उदायन राजा को श्वेत-पीत (चांशी-मोने के) कलशों से नहलाता है, नहलाकर जेप जमालि के वर्णन की तरह -यावत्-चारों प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर परिपूर्ण रूप से अलंकृत हुआ मिहासन से उठता है, उठकर शिविका की अनु-प्रदक्षिणा करके शिविका पर आरुढ़ होता है, आरुढ़ होकर श्वेत मिहासन पर पूर्व की ओर मुग्न्य करके बँटा, उन्ही प्रकार धाय माता के सम्बन्ध में भी जानना, किन्तु यह विशेष है कि परमावती हंस सहज श्वेत वस्त्र को लेकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करके शिविका पर आरुढ़ हुई, आरुढ़ होकर उदायन राजा की दाहिनी बाजू में रखे भद्रासन पर बँटी, जेप पूर्ववत् जानना -यावत्-छात्रादिक तीर्थकर के अतिशयों की श्रेयता है, देखकर सहस्र पुरुषवाहिनी शिविका को छोड़ी करवाता है, उन पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका से नीचे उतरता है, उतरकर तदा श्रमण भगवान महावीर हैं, यहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिशा भाग में गया, जाकर स्वयमेव आभरण, माला, आभारणों को उतारता है ।

अभीचीकुमारस्स उदायणं पइ वैरभावणा कूणियसमी-
वगमणं य—

५४७. तए णं तस्स अभीचीस्स कुमारस्स अण्णदा कदाइ
पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंजजागरियं जागरमाणस्स
अयमेयाख्वे अज्जत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं
उदायणस्स पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तए णं से उदायणे राया
ममं अवहाय नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठावेत्ता
समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ
अण्णारियं पव्वइए—इमेणं एयाख्वेणं महया अप्पत्तिएणं
मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतेउरपरियाल-
संपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए वीतीभयाओ नयराओ
निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुंठ्व चरमाणे गामाणुगामं
दुइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव कूणिए राया, तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कूणियं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।
तत्थ वि णं से विउलभोगसमितिसमत्तागए यावि होत्था । तए णं
से अभीचीकुमारे समणोवासए यावि होत्था—अभिगयजीवाजीवे-
जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ,
उदायणम्मि रायरिसिम्मि समणुवद्धवेरे यावि होत्था ।

अभीचीकुमारस्स असुरदेवेषु उत्पत्ती—

५४८. तेणं कालेण तेणं समएणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए
निरयपरिसामंतेसु चोयट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

तए णं से अभीचीकुमारे व्हइं वासाइं समणोवासगंपरियागं
पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं
अणसणाए छेएइ, छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयापडिक्कते
कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरि-
सामंतेसु चोयट्ठीए आयावाअसुरकुमारावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि
आयावाअसुरकुमारावासंसि आयावाअसुरकुमारदेवत्ताए उव्वण्णे ।

तत्थ णं अत्थेगतियाणं आयावगाणं असुरकुमाराणं देवाणं एगं
पत्तिओवमं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं अभीचीस्स वि देवस्स एगं
पत्तिओवमं ठिई पण्णत्ता ।

से णं भते ! अभीचीदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं
भवमएणं ठिइवएणं अणंतरे उव्वट्ठित्ता कहिं भच्छिहिति ? कहिं
उव्वरिज्जहिति ?

अभीचीकुमार की उदायन के प्रति वैर भावना और कूणिक
के समीप गमन—

५४७. तत्पश्चात् उस अभीचीकुमार को अत्यं कोई दिन मध्य
रात्रि के समय कुटुम्ब जागरिका में जागरण करते हुए यह इस
प्रकार का अध्यवसाय -यावत्-विचार उत्पन्न हुआ कि यथार्थ रूप
में मैं उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज हूँ,
तब भी उदायन राजा ने मुझे छोड़कर अपने भानजे केशीकुमार
को राज्य पर स्थापित कर श्रमण भगवान महावीर के पास
मुंडित होकर गृहत्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या ग्रहण की है—
इस प्रकार के महा अप्रीतिरूप मानसिक दुःख से पीड़ित होकर
अंतःपुर और पारिवारिक जनों सहित अपने भांडोपकरण आदि
लेकर वीतिभय नगर से निकला, निकलकर क्रम-क्रम से चलते
हुए, एक गांव से दूसरे गांव जाते हुए जहां चम्पानगरी थी, जहां
कूणिक राजा था वहाँ आया, आकर कूणिक राजा का आश्रय
लेकर विचरण करता है। वहाँ भी उसे विपुल भोगोपभोग की
सामग्री प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वह अभीचीकुमार श्रमणोपासक
भी हुआ-जीवाजीव तत्वों का ज्ञाता -यावत्-विधिपूर्वक तपःकर्म
की आराधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता था
तो भी उदायन राजर्षि के प्रति वैरानुबंध से युक्त था।

अभीचीकुमार को असुरदेवों में उत्पत्ति—

५४८. उस काल उस समय इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों
के पास चौसठ लाख असुरकुमारों के आवास कहे गये हैं।

तत्पश्चात् अनेक वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करके
वह अभीचीकुमार अर्धमासिक संलेखना से तीस भक्तों को अनशन
पूर्वक व्यतीत कर उस पाप स्थानक की आलोचना, प्रतिक्रमण
किये बिना मरण समय में कालधर्म को प्राप्त कर इसी रत्न
प्रभा पृथ्वी के नरकावासों के पास स्थित चौसठ लाख आतापरूप
अनुरकुमारों के आवासों में से किसी एक आतापरूप असुर
कुमार आवास में आतापरूप, असुरकुमार देव रूप से उत्पन्न
हुआ।

वहाँ कितने ही आतापरूप असुरकुमार देवों की एक
पत्न्योपम स्थिति कही है, वह अभीचीदेव भी वहाँ एक पत्न्योपम
की स्थिति वाला हुआ।

हे भगवन् ! वह अभीचीदेव भी आयुक्षय होने, भवक्षय
होने, और स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से निकल
कर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

तए णं ते मागंदिय-वारए अम्मापियरो एवं वयासी—

“इमे भे जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुवहु हिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य मणिमोत्तिय-संख-सिल-प्पाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे य अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पगामं दाउं पगामं भोत्तुं पगामं परिभाएउं । तं अणुहोह ताव जाया ! विपुले माणुस्सए इड्ढीसवकारसमुवए । किं भे सपच्चवाएणं निरालंबणेणं लवणसमुद्दोत्तारेणं ? एवं खलु पुत्ता ! दुवालसमी जत्ता सोवसग्गा यावि भवइ । तं मा णं तुब्भे दुवे पुत्ता दुवालसमंपि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहेह । मा हु तुब्भं सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ ।”

तए णं ते मागंदिय-दारगा अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—“एवं खलु अम्हे अम्मयाओ ! एक्कारसवाराओ लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाढा । सव्वत्थ वि य णं लद्धट्ठा कयकज्जा अणहसमग्गा पुणरवि नियघरं हव्वमागया । तं सेयं खलु अम्हं अम्मयाओ ! दुवालसं पि लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहित्तए ।”

तए णं ते मागंदिय-दारए अम्मापियरो जाहे नो संचाएत्ति वहाँहि आघवणाहि य पणवणाहि य आघवित्तए वा पणवित्तए वा ताहे अकामा चेव एयमट्टं अणुमणित्था ।

तए णं ते मागंदियदारगा अम्मापिऊँहि अब्भणुण्णाया समाणा गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेहँति, जहा अरहन्नगस्स जाव-लवणसमुद्दं वहुइं जोयणसयाइं ओगाढा ।

नावा-भंगो—

५५१. तए णं तेसि मागंदिय-दारगणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं अणेगाइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्धे कालियवाए-तत्थ-समुट्टिए ।

तए णं सा नावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी-आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी-संचालिज्जमाणी संखोभिज्जमाणी-संखोभिज्जमाणी सलिल-तिक्ख-वेगेहि आयट्टिज्जमाणी-आयट्टिज्जमाणी कोट्टिमंसि करतलाहते विव तिदूत्तए तत्थेव-तत्थेव ओवयमाणी व उप्पयमाणी य ।

तव माता-पिता ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

‘हे पुत्रो ! यह तुम्हारे पितामह-प्रपितामह और पिता के पितामह द्वारा उपाजित प्रचुर हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र, मणि, मौक्तिक, शंख, मूंगा, माणिक आदि सर्वोत्तम धन संपत्ति है जो सात पीढ़ी तक यथेच्छ देने, भोगने और वंटवारा करने के लिये पर्याप्त है । अतएव पुत्रो ! मनुष्य सम्वन्धी विपुल ऋद्धि-सत्कार के समुदाय वाले भोगों का भोग करो । विघ्न वाधाओं से युक्त और जिसमें कोई आलम्बन नहीं ऐसे लवणसमुद्र में उतरने से क्या लाभ है ? हे पुत्रो ! बारहवीं बार को यात्रा सोपसर्ग भी होती है, अतएव हे पुत्रो ! तुम दोनों बारहवीं बार लवण समुद्र में प्रवेश मत करो, जिससे तुम्हारे शरीर में व्याप्ति (विनाश या पीड़ा) न हो ।’

तत्पश्चात् माकंदी-पुत्रों ने माता-पिता से दूसरी बार और और तीसरी बार इस प्रकार कहा—‘हमने ग्यारह बार पीत-वाहन से लवण समुद्र में अवगाहन किया और सभी बार हमने अर्थ की प्राप्ति की, करने योग्य कार्यों को किया और बिना किसी विघ्न-वाधाओं के शीघ्र ही अपने घर लौट आये तो हे माता-पिता ! बारहवीं बार भी पीतवाहन से लवण समुद्र में प्रवेश करना हमारे लिये श्रेयस्कर होगा ।’

तत्पश्चात् माता-पिता जब उन माकंदी पुत्रों को सामान्य कथन द्वारा विशेष कथन द्वारा, सामान्य या विशेष रूप से सम-ज्ञाने में समर्थ न हुए तब इच्छा न होने पर भी उन्होंने इस बात की अनुमति दे दी ।

तत्पश्चात् माता-पिता की अनुमति पाये हुए वे माकंदी पुत्र गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-चार प्रकार का माल जहाज में भरकर अर्हन्नक की भांति लवणसमुद्र में अनेक सैकड़ों योजन तक चले गये ।

नौका-भंग—

५५१. तत्पश्चात् उन माकंदीपुत्रों के अनेक सैकड़ों योजन तक अवगाहन कर जाने पर सैकड़ों उत्पात (उपद्रव) उत्पन्न हुए, यथा—अकाल में मेघ गर्जना होने लगी, अकाल में विजली चमकने लगी, अकाल में स्तनित शब्द (गहरी मेघ घटाओं की ध्वनि-गड़गड़ाहट) होने लगा, प्रतिकूल तेज हवा चलने लगी ।

तत्पश्चात् वह नौका उस प्रतिकूल तूफानी वायु से बार-बार कांपने लगी, बार-बार एक जगह से दूसरी जगह चलायमान होने लगी, बार-बार संक्षुब्ध होने लगी, जल के तीक्ष्ण वेग से बार-बार थपेड़े खाने लगी, हाथ से भूतल पर पछाड़ी हुई गेंद के समान बार-बार नीची-ऊँची उछलने लगी ।

उप्यमाणी विव धरणीयलाओ सिद्धविज्जा विज्जाहरकप्रगा,
ओषयमाणी विव गगणतलाओ मट्टविज्जा विज्जाहरकप्रगा,

विपलायमाणी विव महागरुल-वेग-वित्तासिया भूयगवर-
कप्रगा,

धावमाणी विव महाजण-रसियसद्द-वित्तत्या ङाणमट्टा
आसकिसोरो,

निगुंजमाणी विव गुरुजण-विट्ठावराहा सुजणकुलकप्रगा,

धुम्ममाणां विव वोच्चि-पहार-सय-तालिया, गल्लिय-संवणा
विव गगणतलाओ,

रोयमाणी विव सल्लिगंयिविप्पइरमाण-धोरंसुवाएहि नववहू
उवरयमत्तुया,

वित्तवमाणी विव परच्चकरायाभिरोहिया परममहम्मया-
भिद्धुया महापुरवरी,

भायमाणी विव कवड-छोम-प्पओगजुत्ता जोगपरिव्याइया,

नीससमाणी विव महाकंतार-विणिग्ग-परिस्तंता परिण-
सवया अम्मया,

नीयमाणी विव तय-वरणखीणपरभोगा कवडकाले
देववरवहू ।

संशुण्णसकड्ड-कूहरा, भागजेडि-मोडिय-सहस्समाणा, सुत्ताइय-
कण्ठपरियाणा, कल्लहत्तर-तइतडेत्त-सुत्त-सधियविपत्त-सोहकसोडिया,
सम्मक-विपभिया, एत्तिहियरज्जुदित्तरत्तसम्मयत्त, अम्मययात्त-

जित्से विद्या सिद्ध हुई है ऐसी विद्याधर कन्या जैसे पृथ्वीतल
से ऊपर उछलती है, उसीप्रकार वह नौका उछलने लगी और
विद्या से अष्ट विद्याधर-कन्या जैसे आकाशतल में नीचे गिरती
है, उसी प्रकार वह नौका नीचे भी गिरने लगी ।

जैसे महान गरुड़ के वेग से प्राप्त पाई हुई नाग की उभम
कन्या भयभीत होकर भागती है, उसी प्रकार वह नौका भी दधर
उधर भागने लगी ।

जैसे अपने स्वान से विद्युड़ी बछेरी (फोड़े की बन्धी) बहुत
से लोगों के (बड़ी भोड़ के) कोलाहल से प्रस्त होकर दधर-उधर
दौड़ती-भागती है, उसी प्रकार वह नाव भी दधर-उधर दौड़-
भाग करने लगी ।

गुरुजनों (माता-पिता) के द्वारा जितका प्रसराध-दुराचार
जान लिया गया है, ऐसी सत्पुलोत्पन्न कन्या के समान नीचे
नमने लगी ।

तरंगों के मँकड़ों प्रहारों से ताड़ित होकर वह सरसराने
लगी, जैसे बिना आलंबन की चतु आकाश में नीचे गिरती है,
उसी प्रकार वह नौका भी नीचे गिरने लगी ।

जितका पति मर गया हो, ऐसी नवविवाहिता बहुत जैने
बधुपात करती है, उसी प्रकार पानी में भीगी प्रस्थिनी (भीड़ी)
में से झरने वाली जलधारा के कारण वह नौका भी प्रवृत्ता
करती हुई-नी प्रतीत होने लगी ।

परचओ (मधु) राजा के द्वारा जवग्ग (पिरी हुई) और
इस कारण घोर महाभय से पीड़ित किसी उभम महाजणी से
समान वह नौका भी क्लिप्त करती हुई-नी प्रतीत होने लगी ।

कपट (पेप परिपत्तन) में किये प्रयोग (परययत्तास्य प्यावार)
से मुक्त योग साधने वाली परिप्रायिका जैसे ध्यान करती है,
उसी प्रकार वह नौका भी कभी-कभी विपट हो जाने के कारण
ध्यान करनी-नी जान पड़ती थी ।

किसी बड़े बीकाजान संतल में से उभरत आने लगी हुई और
हारी-पथी हुई परिपवड इय वाली माता (पुत्रवती पत्नी) से
हावती है, उसी प्रकार वह नौका भी विप्राज से छँदने लगी ।

अत्यन्तरण के प्रवृत्तवत्त प्रान्त-नी के भाव-साय-साय-साय-
जैसे अष्ट देवी अपने अस्त्र के प्रवृत्तवत्त करती है, उसी प्रकार
वह नौका भी आकाश करती लगी अर्थात् नौका उभर-उधर-उधर-
उधर करती लगी ।

भूया, अकयपुण्ण-जणमणोरहो विव चित्तिज्जमाणगुरुई हाहाक्कय कण्णधार-नाविय-वाणिय-जण-कम्मकर-विलविया नाणाविहरयण-पणिय-संपुण्णा बहूहि पुरिससएहि रोयमाणोहि-जाव-विलवमाणोहि एगं-महं अंतो जलगयं गिरिसिहरमासाइत्ता-संभग्ग-कूवतोरणा मोडियज्ज-दंडा वलयसयखंडिया करकरस्स तत्थेव विद्वं उवगया ।

तए णं तीए नावाए मिज्जमाणीए ते बह्वे पुरिसा विपुल-पणिय-मंडमायाए अंतोजलंमि निमज्जाविद्या यावि होत्था ।
मागंदियदारया फलखंडासादणेण रयणदीवे संपत्ता—

५५२. तए णं ते मागंदिय-दारया छेया दक्खा पत्तट्ठा कुसला मेहावी निउणसिप्पोवगया बहूसु पोयवहण-संपराएसु कयकरणा लद्धविजया अमूढा अमूढहत्था एगं महं फलखंडं आसावेति ।

जंसि च णं पएसंसि से पोयवहणे विवण्णे तंसि च णं पएसंसि एगे महं रयणदीवे नामं दीवे होत्था—अणेगाइं जोयणाइं आया-मविय-अणेगाइं जोयणाइं परिवखेवेणं नाणाद्रुमसंड-मंडि-उद्वेसे सस्सिरोए पासाईए-जाव-पडिह्वे ।

तस्स बद्धमज्जादेसनाए, एत्थ णं महं एगे पासायवउंसए यावि होत्था—अवमुग्गयन्नुत्तिय-पहसिए-जाव-सस्सिरीयह्वे पासाईए-जाव-पडिह्वे । तत्थ णं पासायवउंसए रयणदीव-देवया नाम देवया पत्थिसइ—पावा चंडा ह्दा पुद्दा साहस्सिया ।

तस्स णं पासायवउंसदस्स चउट्ठिसि चत्तारि वणसंडा—
किन्ना किन्नामासा ।

पर चढ़ गई ही, उसे जल का स्पर्श बक्र (वांका) होने लगा अर्थात् नौका वांकी टेढ़ी हो गई, एक-दूसरे से जुड़े पाटियों में तड़-तड़ शब्द होने लगा, उनके जोड़ टूटने लगे, लोहे की कीलियाँ निकल गई, उसके सब अंग-भाग अलग-अलग हो गये, उसके पाटियों के साथ बंधी रस्सियाँ सड़ गलकर टूट गई, जिससे उसके हिस्से बिखर गये, वह कच्चे सिकोरे जैसी हो गई अर्थात् पानी में विलीन हो गई, अभागे मनुष्यों के मनोरथ के समान वह अत्यन्त दयनीय-चिन्तनीय हो गई, नौका पर आरूढ़ कर्ण-धार, मल्लाह, वणिक् और कर्मचारी हाय-हाय करते हुए विलाप करने लगे, वह नाना प्रकार के रत्नों और मालों से भरी हुई थी, इस विपदा के समय सैकड़ों मनुष्य रुदन करने लगे-यावत्-विलाप करने लगे, उसी समय जल के भीतर विद्यमान एक बड़े पर्वत के शिखर के साथ टकराकर मस्तूल और तोरण भग्न हो गया और ध्वजदंड मुड़ गया, वलय जैसे सैकड़ों टुकड़े-टुकड़े हो गये और कड़ाक ध्वनि करते हुए वह नौका उसी जगह नष्ट हो गई अर्थात् समुद्र तल में विलीन हो गई—डूब गई ।

तत्पश्चात् उस नौका के भग्न होकर डूब जाने पर बहुत से लोग विपुल रत्नों, भांडों और माल के साथ जल में डूब गये । माकंदीपुत्र फलखंड के आश्रय द्वारा रत्नद्वीप में समागत—

५५२. तत्पश्चात् चतुर, दक्ष, अर्थ को प्राप्त, कुशल, बुद्धिमान, निपुण शिल्प को प्राप्त, बहुत से पोतवहन के युद्ध जैसे खतर-नाक कार्यों में कृतार्थ, विजयी, मूढतारहित और चंचल-फुर्तिलि ऐसे उन दोनों माकन्दी-पुत्रों ने एक बड़ा सा फलक खण्ड—पटिये का टुकड़ा प्राप्त कर लिया ।

जिस प्रदेश में वह पोतवहन नष्ट हुआ था, उसी के निकट स्थान में ही रत्नद्वीप नाम का एक बड़ा द्वीप था, जो अनेक योजन लम्बा-चौड़ा और अनेक योजन की परिधि वाला था, उसके प्रदेश अनेक प्रकार के वृक्षों के वनों से मंडित थे, वह सुन्दर सुपमा वाला, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला-यावत्-प्रति-रूप था ।

उसके एकदममध्य भाग में एक विशाल उत्तम प्रासाद था, उसकी ऊँचाई प्रगट थी—वह बहुत ऊँचा था-यावत्-सश्रीक प्रसन्नताप्रदा भी यावत्-प्रतिरूप था । उस प्रासादवतंसक में रत्नद्वीपदेवता नामक एक देवी-वास करती थी—जो पापिनी, चंडा, क्रूरा, भयंकर, क्षुद्र स्वभाववाली और साह-सिक थी ।

उस प्रासादवतंसक की चारों दिशाओं में चार वनखंड थे—जो श्यामवर्ण और श्याम कांति वाले थे ।

तए णं ते मार्गदिय-दारया तेणं कलयखंडेणं ओवुज्झमाणा-
ओवुज्झमाणा रयणदीयतेणं सबूढा याचि होत्था ।

तए णं ते मार्गदिय-दारया चाहं लभंति, २ मुहुत्ततरं भाससति,
२ फलखंडं विसंज्जति, २ रयणदीवं उत्तरंति, २ फलाणं
मग्गण-गवेसणं करेति, फलाइं गिण्हंति, २ फलाइं आहारंति,
२ नातिएराणं मग्गण-गवेसणं करेति, २ नातिएराइं फोडंति,
२ नातिएरतेल्लेणं अण्णमण्णस्त गायान् अन्नं गेति, २ पोक्खर-
णीओ ओगांहेति, २ जलमज्जणं करेति, २ पोक्खरणीओ
पच्चुत्तरंति, २ पुडविसित्तायट्ठयंति निसीरंति, निसीइत्ता आसत्था
घोसत्था मुहासण-वरगया चंपं नयारि अम्मापिउआपुच्छणं च
लवण-समुद्धोत्तारणं च कालिययायसम्मच्छणं च पोयवहणविवत्ति
च फलयखंडस्तासायणं च रयण-दीवोत्तारं च अणुचितेमाणा-
अणुचितेमाणा ओह्यमणसंकप्पा करयलपल्हत्थमुहा अट्ट-
ज्जाणोवगया श्रियायति ।

रयणदीवदेवयाए सद्धि भोगभुंजणं

५५३. तए णं ता रयणदीवदेवया ते मार्गदिय-दारए ओहिणा
आमोएइ, अस्ति-फलग-वग्ग-हत्था सत्तट्टतलप्पमाणं उट्ठं वेहानं
उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्खिट्ठाए-जाव-देवगईए घोईयमाणो-
घोईयमाणो ओणेव मार्गदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता आसुरत्ता ते मार्गदिय-दारए धर-करत्त-निट्ठुरयणोहि
एवं वयासी—

“हंभो मार्गदिय-दारया ! अपत्तियपत्तियया ! जइ प तुम्हे
मए तद्धि विउत्ताइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरह, तो भे अत्थि
ओवियं; अहणं तुम्हे मए तद्धि विउत्ताइं भोगभोगाइं भुंजमाणा
तो विहरह तो भे इमेणं नीतुप्पल-गवत्तगुत्तिय-अयनिक्कुमुसप्पयातेणं
अरुत्तारेणं असिणा रत्तगइमंमुपाइं माउआहि उवत्तोहियाइं
सात्तकयाणि थ सीत्ताइं एगंते एइमि ।

तए णं ते मार्गदिय-दारया रयणदीवदेवयाए अत्थि एवमइ
तीरवा निसम्भ सीया करउत्तरिग्गइय विरत्तावर्त्तं मन्वए
अंकेलि कएट्ट एइ वयासी—

तत्तरय्यात् ये दोनों माकरी-पुत्र उव फलखंड के लक्षरे
तरंते-तरंते रत्नद्वीप के निकट आ पहुँचे ।

तत्तरय्यात् उन माकरी पुत्रों को पापु मिनो, पापु भाकर
उन्होंने घड़ी भर विश्राम किया, विश्राम करके फलखंड की
छोड़ दिया, छोड़कर रत्नद्वीप में उभरे, उभरकर फलों की मार्गदा
गवेसणा की, फलों को ग्रहण किया, फिर फलों को ग्रहण करके
चाया, चाकर नारियल की मार्गदा गवेसणा की, नारियल छोड़
फोड़कर उनके तेल से दोनों ने परस्पर एक दूसरे के सरीर की
मालिश की, मालिश करके पुष्करिणी-जल में प्रवेश किया, प्रवेश
करके स्नान किया, स्नान करके पुष्करिणी में जाकर प्रातः
आकर पृथ्वी जिला रूप पाट पर बैठे, बैठकर प्राथम्य प्राप्त
हुए, विश्राम किया और श्रेष्ठ सुखासन पर आसीन हुए, बैठे-
बैठे चंपानगरी, मानार्जवता में जाजा मना और लखनपट्ट में
उत्तरना, तूफानी, प्रसन्न वायु का उदय हुआ, लखनपट्ट का
भंग होकर दूर जाना, काष्ठ फलखंड (रत्नद्वीप के मार्गदा का
टुकड़ा) मिल जाना और जल में रत्नद्वीप में उतरना, जाकर
दुन मय वानों का धारदार विचार करने हुए अणुमन प्राप्त
होकर पृथ्वी पर भुव की रखकर पित्ता में दूर गये ।

रत्नद्वीप-देवता के साथ भोग भोगना—

५५३. तत्तरय्यात् उन रत्नद्वीप की देवी ने उन माकरी-पुत्रों का
अवधिज्ञान से देखा, देखकर उसने आप में जाव और लखनपट्ट
की, नात-जाठ ताट प्रमाण जिनको जेसाई पर जाकर में उठी,
उड़कर उठकूट-वायु-देवगति से धरणी-धरणी जहाँ माकरी-
पुत्र थे, वहाँ जाई, जाकर हुंरिह हुई और वहाँ लगेर लगेर
निष्कुर धरणी द्वारा माकरी पुत्रों से एक प्रभाव की थी—

“अरे माकरी-पुत्रों ! प्रमापिड तो दण्डा करने वाले हैं जो
तुम मेरे साथ विपुल काम-भोग भोगने हुए रहिये तो तुम सब
जीवन है—तुम जीवित रहिये और यदि तुम सब मर जाओ
यान-भोग भोगने हुए विवरथ जनी कराय जाइय नीतवत्त
भोग के भोग और जयती के तुम को प्रता हो लखनपट्ट
के धार जैनी तिरी करवाह से तुम सब सब मरने का जो
मज्जकली का और दाही-पुत्रों को मर जाव कर लह लगेर का
मात जाइ के धार मवाह कर पुण्यपण जइइ तुम सब
कोभावमान है जइ ता की उरु करवाह से वान भोग

“जणं देवाणुप्पिया वइस्ससि तस्स आणां-उवचाय-वयण-निहेसे चिद्धिस्सामो ।”

तए णं सा रयणदीवदेवया ते भागंदिय-दारए गेण्हइ, २ जेणेव पासायवडेसए तेणेव उवागच्छइ, २ असुमपोगलावहारं करेइ, २ सुमपोगलपक्खेवं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा तेहि सिद्धि विजलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ, कल्लाकल्लि च अमयफलाइं उवणेइ ।

रयणदीवदेवयाए लवणसमुद्दसच्छीकरणत्थं गमणं वणसंडे रमणादेसो य—

५५४. तएणं सा रयणदीवदेवया सक्कवयण-संदेसेणं सुट्टिएणं लवणाहिवइणा लवण-समुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठेयव्वे त्ति जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइपूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेयव्वं ति कट्ठु निउत्ता ।

तए णं सा रयणदीवदेवया ते भागंदिय-दारए एवं वयासी—

“एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! सक्कवयण-संदेसेणं सुट्टिएणं लवणाहिवइणा तं चैव-जाव-निउत्ता । तं-जाव-अहं देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्दे तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ता जं किंचि तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइपूइयं दुरभिगंधमचोक्खं, तं सव्वं आहुणिय-आहुणिय तिसत्तखुत्तो एगंते एडेमि ताव तुब्भे इहेव पासायवडेसए सुहंसुहेणं अभिरममाणा चिट्ठह । जइ णं तुब्भे एयंसि अंतरंसि उव्विग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं तुब्भे पुरत्थिमिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह ! तत्थ णं वो उरु सया साहीणा, तं जहा—पाउसे य वासारत्ते य ।

गाथा—

तत्थ उ—कंदल-सिल्लिध - दंतो,

निउर-वरपुष्पपीवरकरो ।

कुडयज्जुण-नीव-सुरभिदाणो,

पाउसउरु गयवरो साहीणो ॥१॥^१

‘देवानुप्रिया जो कहेंगे, हम आपकी आज्ञा, उपपात-आदेश और वचन निर्देश में तत्पर रहेंगे ।’

तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने मांकदी-पुत्रों को ग्रहण किया, ग्रहण करके जहां अपना उत्तम प्रासाद या वहां आई, आकर अशुभ पुद्गलों को दूर किया और शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण किया और उसके बाद उनके साथ विपुल काम-भोगों को भोगते हुए विहार करने लगी, प्रतिदिन उनके लिये अमृत जैसे मधुर फल लाने लगी ।

रत्नद्वीप की देवी का लवणसमुद्र के स्वच्छीकरण हेतु गमन और वनखंड में रमण करने का आदेश—

५५४. तत्पश्चात् शक्रेन्द्र के वचन—आदेश से सुस्थित नामक लवणसमुद्र के अधिपतिदेव ने उस रत्नद्वीप की देवी से कहा—‘तुम्हें इक्कीस वार लवणसमुद्र का चक्कर लगाना है और वहां जो कुछ भी तृण (घास), पत्ता, काष्ठ, कचर, अशुचि (अपवित्र वस्तु), सड़ी-गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु आदि गन्दी चीजें हों, उन सबको इक्कीस वार हिला-हिलाकर समुद्र से निकालकर एक तरफ फेंक देना ।’ इस प्रकार कहकर उसे समुद्र की सफाई के कार्य में नियुक्त किया ।

तत्पश्चात् उस रत्नद्वीप की देवी ने उन मांकदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! मैं शक्रेन्द्र के वचनादेश से सुस्थित नामक लवण समुद्राधिपति देव द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से यावत्-नियुक्त की गई हूँ । सो हे देवानुप्रियो ! जब तक मैं लवण-समुद्र का इक्कीस वार चक्कर काटकर वहां जो कुछ भी तृण, पत्र, काष्ठ, कचरा, अशुचि, सड़ी गली वस्तु या दुर्गन्धित वस्तु आदि अशुद्ध वस्तुएँ हैं, उनको इक्कीस वार हिला-हिलाकर एकान्त में फेंकती हूँ तब तक तुम इसी प्रासादवतंसक में आनन्दपूर्वक रमण करते हुए रहना । यदि इस बीच ऊब जाओ अथवा उत्सुक होओ या कोई उपद्रव हो जाये तो तुम पूर्व दिशा के वनखंड में चले जाना । वहाँ दो ऋतुयें सदा स्वाधीन हैं—विद्यमान रहती हैं, यथा प्रावृष (आषाढ़ एवं श्रावण मास) तथा वर्षारित्र (भाद्रपद और आश्विन मास)

गाथा—

उसमें—प्रावृष ऋतु रूपी हाथी स्वाधीन है । कंदल-नवीन लतायें और सिल्लिध्र-भूमिफोड़ा उस प्रावृष-हाथी के दाँत हैं, निउर नामक वृक्ष के उत्तम पुष्प उसकी उत्तम सूँड है, कुटज, अर्जुन और नीप वृक्षों के पुष्प ही उसका सुगन्धित मदजल है । १।

१. यह सब वृक्ष प्रावृषऋतु में फूलते हैं, किन्तु उस वनखंड में सदैव फूले रहते हैं, इसी कारण प्रावृष को वहाँ सदा विद्यमान कहा है ।

तत्थ य—सुरगोबमणि-विचित्तो,
 बद्धुरकुलरसिय-उज्जररयो ।
 बरहिणवंद - परिणट्ठसिहरो,
 वासारत्तउज्ज पव्वओ साहीणो ॥२॥

तत्थ णं तुम्हे देवानुप्पिया ! बहसु वावोसु य-जाव-सरसर-
 पंतियासु य बहसु आलोपरएसु य मालीपरएसु य-जाव-कुमुमपरएसु
 य मुहंसुहेणं अभिरममाणा-अभिरममाणा विहरिज्जाह । जइ णं तुम्हे
 तत्थ वि उच्चिग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो णं
 तुम्हे उत्तरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं वो उज्ज सया
 साहीणा, तं जहा—सरदो य हेमंतो य ।

गाथा—
 तत्थ उ—सण-सत्तिवण-कउहो,
 नीलुप्पल-पउम-नल्लिण-सिगो ।
 सारस-ववकाय-रवियघोसो,
 सरयउज्ज गोवई साहीणो ॥३॥
 तत्थ य—सियकुन्द-धवलओप्पहो,
 कुमुमिय - लोद्धवणसंड-मंडलतलो ।
 तुसार - दगधार - पावरकरो,
 हेमंतउज्ज ससो सया साहीणो ॥४॥

तत्थ णं तुम्हे देवानुप्पिया ! बहसु वावोसु य-जाव-सरसर-
 पंतियासु य बहसु आलोपरएसु य मालीपरएसु य-जाव-कुमुम-
 परएसु य मुहंसुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा विहरिज्जाह । जइ
 णं तुम्हे तत्थ वि उच्चिग्गा वा उस्सुया वा उप्पुया वा भवेज्जाह तो
 णं तुम्हे अबरिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं वो उज्ज सया
 साहीणा तं जहा—वसंतो य गिन्हे य ।

गाथा—
 तत्थ उ—सहकार-वारहारो,
 हिनुय-कलियारासोगमउओ ।
 असिपत्तिवण-वकुलायवसो,
 वसंतउज्ज नरवई साहीणो ॥५॥
 तत्थ य—वाइल-विरोस-सत्तिरो,
 भाल्लवा-वासदिय-उउरदेलो ।
 लोवलसुरभि-मिल भगरजरओ,
 सिहउज्ज सगधी साहीणो ॥६॥

उत्तमें—वर्षाश्रुतु स्त्री पर्वत भी नरा स्थायीन-विद्यमान है ।
 क्योंकि वह इन्द्रगौर स्त्री पद्मराग आदि नक्षत्रों में विद्यमान
 वर्ण वाला रहता है और उसमें मंडलों के श्रुतों के मध्य स्त्री
 श्रुतों की ध्वनि सर्वत्र होती रहती है । वहां मयूरा के मध्य
 सर्वत्र गिच्छरों पर विचरते रहते हैं ।

हे देवानुप्रियो ! उन पूर्व दिशा के उद्यान में तुम बहुत ही
 वावट्टियों में और -वावट्ट-सरोवरों की पत्तियों में, बहुत ही
 लता मंडलों में, पत्तियों के मंडलों में और -वावट्ट-पुष्पों में
 सुन्दरपूर्वक रमण करते हुए समय व्यतीत करना । अगर तुम वहां
 भी ऊब जाओ, उत्सुक हो जाओ या उदास हो जाओ तो तुम
 उत्तर दिशा के वनखंड में चले जाना । वहां भी श्रुतों नरा
 विद्यमान रहती है, यथा—सरद और हेमन्त ।

गाथा—
 उत्तमें—सरद श्रुतु स्त्री गोपति—दुग्ध नरा स्थायीन है,
 सप्तच्छद वृक्षों के पुष्प उमका ककुद (काष्ठा) है, नीलीपल
 पत्र और नखिल उसके नीचे है, गारम और चन्द्रवाल पत्तियों
 का कूजन ही उसका फीप (दोलाकना) है ।

उत्तमें—हेमन्त श्रुतु स्त्री पद्मना नरा स्थायीन है, वहां
 कुन्दकुमुम उमकी पत्रल ग्योत्तना है, कुमुनि लोभ पत्रच्छद
 उसका मंडलतल (बिम्ब) है और तुसार के वन श्रुतों की
 धारार्ये उमकी स्तूल-पूहट्ट किरणें हैं ।

हे देवानुप्रियो ! वहां तुम बहुत ही वावट्टियों में -वावट्ट-
 सरोवरों की पत्तियों में, बहुत ही लताश्रुतों में, स्त्री मयूरा में
 -वावट्ट-पुष्प मंडलों में सुन्दरपूर्वक रमण करते हुए समय व्यतीत
 करना । यदि तुम वहां भी ऊब जाओ या उत्सुक हो जाओ या उदास
 हो जाओ तो तुम पश्चिम दिशा के वनखंड में चले
 जाना । उन वनखंड में भी दो श्रुतों सर्वत्र स्थायीन हैं, यथा—
 वसंत और धाम ।

गाथा—

तत्थ णं बहसु वावीसु य-जाव-सरसरपंतियासु य बहसु
आलीघरएसु य मालीघरएसु य-जाव-कुसुमघरएसु य सुहंसुद्धेणं
अभिरममाणा-अभिरममाणां विरहेज्जाह ।

रयणदीवदेवयाए मांगदीपुत्ताणं दिट्ठीचिससप्पसमीवे
गमणनिसेही—

५५५. जइ णं तुब्भे देवानुप्पिया ! तत्थ वि उविग्गा वा उस्सुया
वा उप्पुया वा भवेज्जाह तओ तुब्भे जेणेव पासायवडेंसए तेणेव
उवागच्छेज्जाह ममं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठेज्जाह, मा
णं तुब्भे दक्खिणिल्लं वणसंडं गच्छेज्जाह । तत्थ णं महं एगे उग्ग-
विसे चंडविसे घोरविसे महाविसे अइकाए महाकाए जहा तेयनिसग्गे-
मसि-महिस्स-भूसा-कालए नयणविसरोसपुग्गे अंजणपुंज-नियरप्प-
गासे रत्तच्छे जमल-जुथल-चंचल-चलंतजोहे धरणितल-वेणिभूए
उक्कड-फुड-कुडिल-जडुल - कक्खड-वियड - फडाडोव - करणद-
च्छेलोहागर-धम्ममाण-धमधमंतघोसे अणागलिय चंड-तिव्वरोसे समु-
हिय-तुरिय-चवलं धमधमंते दिट्ठीविसे सप्पे परिवसइ । मा णं तुब्भं
सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ—ते मागंदिय-दारए दोच्चं पि
तच्चं पि एवं वदति, वदित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ,
समोहणित्ता ताए उक्कट्ठाए देवगईए लवणसमुद्धं तिसत्तखुत्तो
अणुपरियट्ठे उं पयत्ता यावि होत्था ।

मागंदियपुत्ताणं वणसंडगमणं—

५५६. तए णं ते मागंदिय-दारया तओ सुहुत्तंतरस्स पासायवडेंसए
सइं वा रइं वा धिइं वा अलभमाणा अणमणं एवं वयासी—

एवं खलु देवानुप्पिया ! रयणदीवदेवया अम्हे एवं वयासी—

एवं खलु अहं सक्कवयण-सदेसेणं सुट्ठिएणं लवणाहिवइणा
निउत्ता-जाव-मा णं तुब्भं सरीरगस्स वावत्ती भविस्सइ । तं सेयं

उस वनखण्ड में बहुत-सी वापिकाओं और -यावत्-सरोवरों
की पंक्तियों में और अनेक लतागृहों में, वल्लियों के मण्डपों में
और -यावत्-कुसुमगृहों में सुखपूर्वक रमण करते हुए विचरण
करना ।

रत्नद्वीप देवी का माकंदी-पुत्रों को दृष्टिविष सर्प के समीप
गमन निषेध—

५५५. हे देवानुप्रियो ! अगर तुम वहां भी ऊब जाओ अथवा
उत्सुक हो जाओ या उपद्रव हो जाये तो तुम जहां श्रेष्ठ प्रासाद
है, वहां लौट आना और मेरी प्रतीक्षा करते हुए यहीं ठहरना ।
किन्तु दक्षिण दिशा के वन खण्ड की ओर मत जाना । वहां पर
एक विशाल, उग्रविष, चंडविष, घोरविष, महाविष युक्त, दीर्घ-
काय, महाकाय तथा 'जहातेयनिसग्गे' अर्थात् तेजोलेश्या के
निसर्ग काल में गोशालक के वर्णन में कहे गये अनुसार शेष
विशेषण यहां भी जान लेना चाहिये जो इस प्रकार हैं कि
काजल, भैंसा और कसीटी पापाण के सदृश काला तथा जिसके
नेत्र विष और रोष-क्रोध से परिपूर्ण हैं, जिसकी आभा काजल
के ढेर के समान काली है, आँखें लाल हैं, उसकी दोनों जीभें
चपल एवं लपलपाती हैं, जो पृथ्वी रूपी स्त्री की वेणी के समान
है, वह उत्कट, स्फुट—प्रकट, कुटिल, जटिल, कर्कश और
विकट-विस्तार वाला फटाटोप करने (फण फैलाने) में दक्ष,
लोहार की धाँकनी के धाँके जाने पर जैसे वह धम-धम शब्द
करती है, उसी प्रकार धम-धम शब्द करने वाला है, जिसका
रोष प्रचण्ड, तीव्र एवं अपरिमित है, कुत्तों के भाँकने के समान
शीघ्रता एवं चपलता से धम-धम ध्वनि करने वाला ऐसा दृष्टि-
विष सर्प रहता है । अतएव कहीं ऐसा न हो कि तुम वहां चले
जाओ और तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाये । उसने यह
बात दो बार, तीन बार, भी उन माकंदी पुत्रों से कही, कहकर
उसने वैक्रिय समुद्घात से विक्रिया की, विक्रिया करके उत्कृष्ट
देवगति से लवण समुद्र के इक्कीस वार चक्कर काटने में प्रवृत्त
हो गई ।

माकंदी पुत्रों का वनखण्ड गमन—

५५६. तत्पश्चात् वे माकंदीपुत्र उसके चले जाने पर एक मुहूर्त
में ही (कुछ क्षणों में ही) उस श्रेष्ठ प्रासाद में सुखद स्मृति,
रति और धृति नहीं पाते हुए आपस में इस प्रकार बोले—

देवानुप्रिय ! रत्नद्वीप की देवी ने हमसे इस प्रकार कहा
है—

“शक्रेन्द्र के वचनादेश से लवण समुद्राधिपति देव सुस्थित ने
मुझे इस कार्य के लिये नियुक्त किया है -यावत्-ऐसा न हो ।

खलु अहं देवानुष्पिया ! पुरस्वितिल्ले वणसंडं गमित्ताए—
अणमणस्त एयमट्टं पडिमुणेति, पडिमुणेत्ता जेणेव पुरस्वितिल्ले
वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, २ तस्य णं वाचीसु य-जाव-आली-
परएसु य-जाव-सुहंसुहेणं अनिरममाणा अनिरममाणा विहरंति ।

तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्य वि सइं वा रइं वा धिइं वा
अलममाणा जेणेव उत्तरिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति, २ तस्य
णं वाचीसु य-जाव-आलीपरएसु य सुहंसुहेणं अनिरममाणा-अनि-
रममाणा विहरंति ।

तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्य वि सइं वा रइं वा धिइं
वा अलममाणा जेणेव पच्चस्वितिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छंति,
२ तस्य णं वाचीसु य-जाव-आलीपरएसु य सुहंसुहेणं अनिरममाणा-
अनिरममाणा विहरंति ।

मागंदियपुत्ताणं देवयानिसिद्धट्टाणे गमणं—

५५७. तए णं ते मागंदिय-दारगा तस्य वि सइं वा रइं वा धिइं
वा अलममाणा अणमणं एवं वयासी—एवं खलु देवानुष्पिया !
अहं रयणदीयदेवया एवं वयासी—

एव खलु अहं देवानुष्पिया ! तत्रकवयण-संदेसेणं सुट्टिएण
सवणाहियइणा निउत्ता-जाव-मा णं तुम्हं सरीरगस्त वावसी
भयिसाद् । तं भयियच्चं एस्य कारणेणं । तं मेवं खलु अहं
इविअणिल्ले वणसंडं गमित्ताए ति षट्ठ अणमणस्त एयमट्टं
पडिमुणेति, पडिमुणेत्ता जेणेव इविअणिल्ले वणसंडे तेणेव पट्टारोप
गमणाए । तओ णं गंधे निउत्ताद्, से अहानामए—अहिमडे इ वा-
जाव-अणिट्टतराए धेव ।

वणसंडे देवयाकवसूत्ताइयपुरिसदंसणं—

५५८ तए णं ते मागंदिय-दारगा तेणं अमुणेणं गंधेणं अभिभूया
समाणा सण्णित्तएहि उत्तरिअहेहि आसाइ विहेति, सिहेता जेणेव
इविअणिल्ले वणसंडे तेणेव उवागसा । तस्य णं मट्ट एय अ-परणं
पातवि—अट्टियराति सय-महुत्तं भीम-इरिसाणउत्तं । एवं च तस्य
पू-सदयं पुरिसे व-सूनाद् कट्टाई पिरसराटं कूदसाण पातवि, भीमा
गंसा सविता इरिसाणा संव वससा जेणेव मे सु-सदए पुरिसे तेणेव
इय मवउंति, उरसाव-सना व सु-सदयं पुरिसे एवं वयासी—

कि तुम्हारे सरीर का विनाश हो जाय, तो हे देवानुष्पिय ! तब
पूर्व दिशा के वनघड में अपना शक्ति—एक पक्ष में इस
विचार को सुना, सुनकर जहाँ पूर्व दिशा का वनघड था वहाँ
आये, आकर वहाँ की शक्तिमें से—सामान्य शक्तियों से—पारशु-
मुखपूर्वक रमण करने हुए विहार करने लगे ।

तदनन्तर वे माकंदी-मुख जब वहाँ भी मुखमुखी, तब और
नाति प्राप्त न कर सकें तो वहाँ उत्तरदिशा का वनघड था,
वहाँ पहुँचे वहाँ भी शक्तिशाली से—सामान्य शक्तियों से—पारशु-
मुखे-मुखे मुखपूर्वक रमण करने हुए विहार करने लगे ।

उनके बाद वे माकंदी-मुख वहाँ भी मुखमुखी, तब
और नाति अनुभव नहीं कर सकें तो जहाँ उत्तरदिशा का
वनघड था, इन और पक्ष दिशि, वहाँ भी शक्तिशाली से—सामान्य-
शक्तियों से मुखपूर्वक रमण करने हुए विहार करने लगे ।

माकंदी-मुखों का देवी द्वारा निषिद्धपथ में गमन—
५५७. तदवस्थात् वे माकंदी-मुख वहाँ भी मुखमुखी, तब पूर्व
माति नहीं पाकर आत्म में इस प्रकार शक्ति—से सामान्य शक्ति
रत्नदीप की देवी ने हमें ऐसा कहा था कि—

हे देवानुष्पिय ! मरु के वनघड में जब शक्तिशाली मुख-मुख
देव द्वारा मैं नियुक्त की गई हूँ—पारशुमुखी के शरीर का विनाश
न हो जाये । तो हममें कोई कारण होता शक्तिशाली मुख-मुख
दक्षिण दिशा के वनघड में भी जाता शक्ति, इस प्रकार
कहकर उन्होंने एक पक्ष के इस विचार को स्वीकार किया,
स्वीकार करते जिन और दक्षिण दिशा का वनघड था, इन
और जाने के विषय उद्यत हुए । तब वे मुखमुखी शक्तिशाली देवी
जैसे कोई मरु का मुखमुखी से—सामान्य शक्तियों से—पारशु-
मुखी बन गयी ।

एव खलु देवानुष्पिया ! तत्रकवयण-संदेसेणं सुट्टिएण सवणाहियइणा निउत्ता-जाव-मा णं तुम्हं सरीरगस्त वावसी भयिसाद् । तं भयियच्चं एस्य कारणेणं । तं मेवं खलु अहं इविअणिल्ले वणसंडं गमित्ताए ति षट्ठ अणमणस्त एयमट्टं पडिमुणेति, पडिमुणेत्ता जेणेव इविअणिल्ले वणसंडे तेणेव पट्टारोप गमणाए । तओ णं गंधे निउत्ताद्, से अहानामए—अहिमडे इ वा-जाव-अणिट्टतराए धेव ।

तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंविद्य-दारगे एवं वयासी—

एस णं देवाणुप्पिया ! रयणदीवदेवयाए आघयणे । अहं णं देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवाओ वीवाओ भारहाओ वासाओ कागवीए आसवाणियए विपुलं पणियभंडमायाए पोयवहणेणं लवणसमुद्धं ओयाए । तए णं अहं पोयवहण-विवत्तीए निब्बुद्ध-भंडसारे एगं फलगखंडं आसाएमि । तए णं अहं ओवुज्जमाणे-ओवुज्जमाणे रयणदीवतेण संबूडे । तए णं सा रयणदीवदेवया ममं ओहिणा पासइ, पासित्ता ममं गेण्हइ, गेण्हित्ता मए सद्धि विजलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणी विहरइ । तए णं सा रयणदीव-देवया अणया फयाइ अहालहुसगंसि अवरारुंसि परिकुविया समाणी ममं एयारुवं आवइं पावेइ । तं न नज्जइ णं देवाणुप्पिया ! तुभं पि इमेसि सररीरगाणं का मण्णे आवइं भविस्सइ ?

मायंविद्यदारगेहिं नित्थारपुच्छा—

५५६. तए णं ते मागंविद्य-दारगा तस्स सूलाइगस्स अंतिए एयमद्धं सोच्चा-निसम्म बलियतरं भीया तत्था तसिया उच्चिग्गा संजाय-भया सूलाइयं पुरिसं एवं वयासी—

“कहणं देवाणुप्पिया ! अहं रयणदीवदेवयाए हत्याओ साहत्थि नित्थरेज्जामो ?”

तए णं से सूलाइए पुरिसे ते मागंविद्य-दारगे एवं वयासी—

“एस णं देवाणुप्पिया ! पुरत्थिमिल्ले वणसंडे सेलगस्स जक्खस्स जक्खाययणे सेलए नामं आसखुवधारी जक्खे परिवसइ । तए णं से सेलए जक्खे चाउद्दसद्धमूद्धिपुणमासिणीसु आगयसमए पत्तसमए महया-महया सहेणं एवं वदइ—कं तारियामि ? कं पालयामि ? तं गच्छह णं तुभं देवाणुप्पिया ! पुरत्थिमिल्लं वणसंडं सेलगस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणियं करेह, करेत्ता जल्लुपायवडिया (पजलिउडा विणएणं पज्जुवासमाणा विहरह । जाहे णं से सेलए जक्खे आगयसमए पत्तसमए एवं वएज्जा—कं तारियामि ? कं पालयामि ? ताहे तुभं एवं वदह—अहं तारयाहिं अहं पालयाहि । सेलए भे जक्खे परं रयणदीवदेवयाए हत्याओ साहत्थि नित्थारेज्जा । अण्णहा भं न याणामि इमेसि सररीरगाणं का मण्णे आवइं भविस्सइ ?”

तव शूली पर चढ़े उस पुरुष ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! यह रत्नद्वीप की देवी का वध स्थल है । हे देवानुप्रियो ! मैं जम्बूद्वीप के भारत वर्ष में स्थित काकंदी नगरी का वासी अश्व वणिक् हूँ, मैं बहुत से अश्वों और भांडोपकरणों को पोत में भरकर लवण समुद्र में चला या । तत्पश्चात् पोतवहन के भंग हो जाने और भांडोपकरणों के डूब जाने पर मुझे एक पाटिये का टुकड़ा मिल गया । तब उसी के सहारे तिरता-तिरता मैं रत्नद्वीप के समीप आ पहुँचा । उसी समय रत्नद्वीप की देवी ने मुझे अघघिज्ञान से देखा, देखकर उसने मुझे ग्रहण किया, ग्रहण करके वह मेरे साथ विपुल कामभोगों को भोगती हुई विचरण करने लगी । तत्पश्चात् रत्नद्वीप की वह देवी किसी एक समय एक छोटे से अपराध पर अत्यन्त कुपित हो गई और कुपित होकर उसी ने मुझे इस विपत्ति में डकेल दिया है । हे देवानुप्रियो ! न मालूम तुम्हारे इस शरीर को भी कौन सी आपदा आ सकती है ?

माकंदी-पुत्रों द्वारा निस्तार पृच्छा—

५५६. तत्पश्चात् वे माकंदी-पुत्र उस शूली पर चढ़े, हुए पुरुष से यह वृत्तांत सुनकर और हृदय में धारण कर अत्यधिक भयभीत हो गये और त्रसित, उद्विग्न, भयग्रस्त होकर उन्होंने शूली पर चढ़े हुए पुरुष से इस प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रिय ! हम लोग रत्नद्वीप की देवी के हाथ से किस तरह अपने हाथों अपने आप निस्तार-छुटकारा पा सकते हैं ?”

तव शूली पर चढ़े हुए पुरुष ने उन माकंदी-पुत्रों से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! इस पूर्व दिशा के वनखण्ड में शैलक यक्ष का यक्षायतन है, उसमें अश्वरूप धारी शैलक नाम का एक यक्ष निवास करता है । वह शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन आगत समय और प्राप्त समय पर अर्थात् एक नियत समय पर जोर-जोर से चिल्लाता हुआ इस प्रकार बोलता है—किसको तारू ? किसको पालू ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग पूर्व दिशा के वनखण्ड में जाना और शैलक यक्ष की महान जनों के योग्य पुष्पों से पूजा अर्चना करना, पूजा करके छुटने और पैर नमाकर, दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उसकी सेवा करते हुए ठहरना । जब वह शैलक यक्ष आगत समय और प्राप्त समय होकर नियत समय आने पर—कहे कि किसे तारू ? किसे पालू ? तब तुम कहना—हमें तारो, हमें पालो । इस प्रकार शैलक यक्ष ही रत्नद्वीप की देवी के हाथ से स्वयं तुम्हारा निस्तार करेगा । अन्यथा मैं नहीं जानता हूँ कि तुम्हारे इस शरीर को कौनसी आपदा हो जायेगी ।

मागंदियदारगाणं सेलगपट्टारोहणं—

५६२. तए णं ते मागंदिय-दारया हट्ठं सेलगस्स जवखस्स पणासं करेत्ति, करेत्ता सेलगस्स पिट्ठं दुरुद्धा ।

तए णं से सेलए (ते मांगदिए-दारए पिट्ठे) दुरुद्धे जाणित्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए दिव्वाए देवगईए लवणसमुद्धं मज्झमज्जेणं जेणेव जंबुद्वीवे-दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव चंपा नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

रयणदीवदेवयाकया पडिलोमा उवसग्गा—

५६३. तए णं सा रयणदीवदेवया लवणसमुद्धं तिसत्तखुत्तो अणपरियट्ठइ, जं तत्थ तणं वा-जाव-एगंते एडेइ, जेणेव पासायवडेंसए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते मागंदिय-दारए पासायवडेंसए अपासमाणी जेणेव पुरत्थिमिल्ले वणसंडे तेणेव उवागच्छइ-जाव-सव्वओ समंता मगण-गवेसणं करेइ, करेत्ता तेसि मागंदिय-दारगाणं कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्ति वा अलभमाणी जेणेव उत्तरिल्ले, एवं चेव पच्चत्थिमिल्ले वि जाव अपासमाणी ओहिं पउंजइ, ते मागंदिय-दारए सेलएणं सट्ठि लवणसमुद्धं मज्झमज्जेणं वीईवयमाणे पासइ, पासित्ता आसुहत्ता असिगांडगं गेहइ गेण्हत्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासं उप्पयइ, उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए देवगईए जेणेव मागंदिय-दारया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

“हंभो मागंदिय-दारगा ! अपत्थियपत्थया ! क्खिणं तुब्भे ज्ञाणहं ममं विप्पज्जाय सेलएणं जवखेणं सट्ठि लवणसमुद्धं मज्झमज्जेणं वीईवयमाणा ? तं एवमवि गए जइ ण तुब्भे ममं जवखेणं तो ने अत्थि जीयिं । अहं णं नावयज्जहं तो ने इमेणं नीलुप्पवगवत्तुल्लिय-अयनिदुमुत्तण्णसासेणं पुरधारेणं अग्निना रत्तगंठमंमुयाइं माउआहिं अत्तोहिंयाइं तात्तकलाणि व नीमाइं एग्गेत्ति ।”

तए णं ते मागंदिय-दारया रयणदीवदेवयाए अंतिए एवमट्ठं गेहत्था विक्खम अत्तोदा अत्ता अणुविग्गा अणुत्तिवा अमंभंता

माकंदी-पुत्रों का शैलक पृष्ठारोहण—

५६२. तव माकंदी-पुत्रों ने हर्षित एवं संतुष्ट होकर शैलक यक्ष को प्रणाम किया और प्रणाम करके वे शैलक की पीठ पर आरूढ़ हो गये ।

तत्पश्चात् वह शैलक माकंदी पुत्रों को पीठ पर आरूढ़ हुआ जानकर सात-आठ ताड़ के वरावर ऊँचा आकाश में उठा, उठकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, प्रचण्ड और दिव्य देवगति से लवण समुद्र के बीचोंबीच होकर जिधर जम्बूद्वीप था, जिधर भरत क्षेत्र था, जिधर चंपानगरी थी उसी ओर चलने के लिए उद्यत हो गया ।

रत्नद्वीप देवताकृत प्रतिलोम उपसर्ग—

५६३. तत्पश्चात् रत्नद्वीप की देवी ने लवणसमुद्र के चारों तरफ इक्कीस वार चक्कर लगाकर, उसमें तृण अथवा -यावत्-एकान्त में फँक दिया, जहाँ अपना श्रेष्ठ प्रासाद था, वहीं आई आकर उन माकंदी-पुत्रों को उत्तम प्रासाद में न देखकर पूर्वं दिशा के वनखण्ड में गई -यावत्- मव जगह मार्गणा गवेपणा की, गवेपणा करने पर उन माकंदी-पुत्रों को कहीं पर भी श्रुति अथवा क्षुति-ठींकने की आवाज अथवा प्रवृत्ति समाचार न पाती हुई, उत्तर दिशा के ओर इसी प्रकार पश्चिम दिशा के वनखण्ड में भी न दिखाई देने पर अवधिज्ञान का प्रयोग किया, उन माकंदी पुत्रों को शैलक के साथ लवणसमुद्र के बीचों बीच होकर जाते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो ढाल तलवार ली, लेकर सात-आठ ताल आकाश में ऊँची उठी, उठकर उत्कृष्ट देवगति से जहाँ माकंदी-पुत्र थे, वहाँ आई और आकर इस प्रकार बोली—

‘अरे माकंदी-पुत्रो ! अरे अप्राथित (मोक्ष) के अभिलाषी ! क्या तुम नहीं जानते हो कि मेरा त्याग करके शैलक यक्ष के साथ लवणसमुद्र के मध्य में होकर तुम निकल जाओगे ? इतना होने पर भी यदि तुम मेरी अपेक्षा रखोगे तो तुम जीवित रह नकोगे । यदि मेरी अपेक्षा नहीं रखोगे तो नील कमल, भ्रम के नींग और अलनी के फूल जैसी प्रभा वाली और टुरे की धार जैसी तलवार से गंडस्थलों को और दाढ़ी-मूठों को लान करने वाले, माना आदि के द्वारा नवारकर मुशोभित किये गये केशों के शोभा-मय तुम्हारे दंत मस्त्रकों को साहक्य की तरह काटकर एकान्त में फँक दूँगी ।’

तत्पश्चात् वे माकंदी-पुत्र रत्नद्वीप की देवी के इस कथन को सुनकर और समझकर भी भयभीत नहीं हुए, प्रास को प्राप्त करने हुए, उद्दिग्न नहीं हुए, अभिभूत नहीं हुए, संभ्रान्त नहीं हुए

अकयणुय ! सिडिलभाव ! निल्लज्ज ! लुक्ख ! अकलुण !
जिणरक्खिय ! मज्झं हिययरक्खगा !,

“ण हु जुज्जसि एविकयं अणाहं अवंधवं तुज्ज
चलणओवायकारियं उज्जिणं अहण्णं,

“गुणसंकर ! अहं तुमे विणा ण समत्था वि जीविउं खणं पि,
इमस्स उ अणेग झस-मगर-विविधसावयसयाजलधरस्स रयणागरस्स
मज्झे अप्पाणं वहेमि तुज्ज पुरओ,

“एहि णियत्ताहि, जइ सि कुविओ खमाहि एक्कावराहं मे,

“तुज्ज य विगयघणविमलससिमंडलागारसस्सिरीयं
सारयनवकमलकुमुदकुवलयविमलदलनिकरसरिसनिभं नयणं वयणं
पिवासागयाए सद्धा मे पेच्छिउं जे, अवलोएहि ता इओ ममं
णाह ! जा ते पेच्छामि वयणकमलं”

एवं सप्पणयसरलमहुराइं पुणो पुणो कलुणाइं वयणाइं
जंपमाणी सा पावा मग्गओ समण्णेइ पावहियया ।

जिणरक्खियविवत्ती—

५६५. तए णं से जिणरक्खिए चलमणे तेणेव भूसणरवेणं
कण्णसुहमणहरेणं तेहि य सप्पणय-सरल-महुर-मणिएहि संजाय-
विउण-राए रयणदीवस्स देवयाए तीसे सुंदरथण-जहण-वयण
कर-चरण-नयण-लावण-रूव-जोव्वणसिंरि च दिव्वं सरभस-
उवगूहियाइं विव्वोय-विलसियाणि य विहसिय-सकडक्खदिट्ठि-
निस्ससिय-मलिय-उवल्लिय-थिय-गमण-पणयखिज्जिय-पसाइयाणि
य सरमाणे रागमोहियमती अवसे कम्मवसगए अवयक्खइ मग्गतो
सविलियं ।

तए णं जिणरक्खियं समुप्पणकलुणभावं मच्चु-गलत्थल्ल-
णोल्लियमइं अवयक्खंतं तहेव जक्खे उ सेलए जाणिऊण सणियं-
सणियं उव्विहइ नियगपिट्ठाहि विगयसत्तं ।

को नहीं जानने वाले ! निर्मोही ! निष्क्रिय—कर्त्तव्य शून्य !
अकृतज्ञ—कृतघ्नी ! शिथिलमना ! निर्लज्ज ! रूक्ष—स्नेह रहित !
अकहण ! जिनरक्षित ! मेरे हृदय रक्षक !

‘मुझ अकेली, अनाथ, बान्धवविहीन, तुम्हारे चरणों की
सेवा करने वाली—चरणदासी और अधन्या—हृतभागिनी को
त्याग देना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है ।

‘हे गुण भंडार ! मैं तुम्हारे विना एक क्षण के लिये भी
जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ, अनेक सैकड़ों मत्स्य, मगर और
विविध क्षुद्र जलचर प्राणियों के गृहरूप इस रत्नाकर के मध्य
तुम्हारे सामने मैं अपना वध करती हूँ—अपने प्राण त्यागती हूँ ।

‘आओ वापस लौट चलो, यदि तुम कुपित हो गये हो तो
मेरा एक अपराध क्षमा करो ।

‘शरद् ऋतु के मेघविहीन विमल चन्द्रमा के समान एवं सद्यः
विकसित कमल, कुमुद और कुवलय के विमल समूह के सदृश
शोभायमान तुम्हारे मुखमंडल और नेत्रों के दर्शन करने की
पिपासा (इच्छा) से मैं यहाँ आई हूँ, तुम्हारे मुख को देखने के
लिये अधीर हूँ इसलिये हे नाथ ! इस ओर तुम मुझे देखो,
जिससे मैं तुम्हारा मुख-कमल देख लूँ ।’

इस प्रकार प्रेमपूर्ण, सरल और मधुर वचनों को वार-वार
बोलती हुई वह पापिनी और पापपूर्ण हृदय वाली देवी मार्ग में
पीछे-पीछे चलने लगी ।

जिनरक्षित का विनाश—

५६५. तत्पश्चात् पूर्वोक्त कानों को सुख देने वाले और मन को
हरण करने वाले आभूषणों के शब्दों से तथा उन प्रणययुक्त,
सरल और मधुर वचनों से जिनरक्षित का मन चलायमान हो
गया, पूर्व की अपेक्षा उसे दुगुना राग हो गया, रत्नद्वीप की
देवी के सुन्दर स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर और नेत्रों के लावण्य
को, रूप—शरीर सौन्दर्य और यौवन की सुन्दरता, हर्षातिरेकवश
किये गये दिव्य आलिंगनों का, विव्वों को—काम चेष्टाओं को,
विलासों को, विहसित-मुस्कराहट को, कटाक्षों को, कामक्रीड़ा
जनित निःस्वासों को, मर्दन को, उपललित को, स्थित को,
गति को, प्रणयकोप को और प्रसादित-मानिनी को रिझाने को
स्मरण करते हुए जिनरक्षित की मति राग से मोहित हो गई,
वह विवश हो गया, कर्म के अधीन हो गया और लज्जा के साथ
पीछे की ओर मैं मुड़कर उसकी ओर देखने लगा ।

तत्पश्चात् जिनरक्षित को देवी पर अनुराग भाव उत्पन्न
हुआ कि मृत्यु रूपी राक्षस ने उसके गले में हाथ डालकर उसकी
मति पलट दी, उसने देवी की ओर देखा कि वैसे ही इस बात
को जानकर शैलक यक्ष ने उसको शनैः शनैः अपनी पीठ से उठा
कर फेंक दिया ।

दिंसि पाउब्भूए तामेव दिंसि पडिगए ।

तए णं से जिणपालिए चंपं नयरि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे तिप्पमाणे विलवमाणे जिणरक्खिय-वावत्ति निवेदेइ ।

तए णं जिणपालिए अम्मापियरो मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेण सट्ठि रोयमाणा कंदमाणा सोयमाणा तिप्पमाणा विलवमाणा बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करंति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया ।

तए णं जिणपालियं अणया कयाइ सुहासणवरगयं अम्मापियरो एवं वयासी—कहणं पुत्ता ! जिणरक्खिए कालगए ?

तए णं से जिणपालिए अम्मापिऊणं लवणसमुद्दोत्तारं च कालियवाय-संमुच्छणं च पोयवहण-विवात्ति च फलहखंड-आसायणं रयणदीवुत्तारं च रयणदीवदेवयागिहं च भोगविभूइं च रयणदीवदेवया-आघयणं च सूलाइपुरिसदरिसणं च सेलगजक्ख-आरुहणं च रयणदीवदेवया-उवसगं च जिणरक्खियवावत्ति च लवणसमुद्दउत्तरणं च चंपागमणं च सेलगजक्खआपुच्छणं च जहाभूमवित्तहमसंदिद्धं परिकहेइ ।

तए णं से जिणपालिए अप्पसोगे-जाए-जाव-विपुलाइं भोगभोगाणं भुंजमाणे विहरइ ।

जिणपालियस्स पट्ठवज्जा—

५६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं ममणे भगवं महावीरे समोसडे । जिणपालिए धम्मं तोच्चा पट्ठवइए । एगारसंगवी । मासियाए संवेहणाए अप्पणं सोसेत्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता कालमासे कालं किच्चा सोह्ममे कप्पे देवत्ताए उववण्णे । दो नागरोपमाइं ठिइं । महाविदेहे वात्ते त्तिम्माहिइ—जाव—मध्यदुस्सयाणसंत्तं काहिइ ।

एगामेव नमगाउत्तो ! जो अन्हू निर्गंधो वा निर्गंधी वा अणुपविस-उपविसायाणं अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अनगारियं पट्ठवइं ममाने मानुस्सए कामभोगे नो पुनरधि आनापद

पालित से आज्ञा ली और आज्ञा लेकर जिस दिशा से आया था उधर ही लौट गया ।

उसके बाद जिनपालित ने चंपानगरी में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ अपना घर था, जहाँ माता-पिता थे, आकर रोते हुए, आक्रन्दन करते हुए, शोक करते हुए, परिताप करते हुए, विलाप करते हुए माता-पिता से जिनरक्षित के विनाश के बारे में निवेदन किया ।

तत्पश्चात् जिनपालित ने और उसके माता-पिता ने मित्र, ज्ञाति, अपने निजी स्वजन, सम्बन्धी और परिजनो के साथ रोते हुए, क्रन्दन करते हुए, शोक करते हुए, परिताप करते हुए और विलाप करते हुए बहुत सी लौकिक मरणोत्तर क्रियाएँ कीं और क्रियार्थे करके कुछ समय के बाद शोकरहित हुए ।

तत्पश्चात् किसी एक समय सुखासन पर बैठे हुए जिनपालित से उसके माता-पिता ने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! जिनरक्षित किस प्रकार कालगत हुआ ?

तब जिनपालित ने माता-पिता से लवणसमुद्र में प्रवेश करने, तूफानी हवा के उठने, पोतवहन के नष्ट होने, काष्ठ खंड के मिलने, रत्नद्वीप में उतरने, रत्नद्वीप की देवी द्वारा ग्रहण करने, भोगोपभोग भोगने, रत्नद्वीप की देवी के वध स्थान और शूली पर चढ़े पुरुष को देखने, शैलक यक्ष की पीठ पर बैठने, रत्नद्वीप की देवी द्वारा उपसर्ग किये जाने, जिनरक्षित के विनाश—मरण होने, लवण समुद्र को पार करने, चंपा में आने, शैलक यक्ष के द्वारा आज्ञा लेने आदि जो कुछ भी वृत्तान्त था उसे ज्यों का त्यों यथाक्रम सत्य और असंदिग्ध कह सुनाया ।

तत्पश्चात् वह जिनपालित शोकरहित होकर -यावत्-विपुल भोगों को भोगता हुआ विहार करता है ।

जिनपालित को प्रव्रज्या—

५६७. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर पधारे । जिनपालित ने धर्मोपदेश श्रवण कर दीक्षा अंगीकार की । ग्यारह अंगों का ज्ञान हुआ । मासिक मंलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करके, साठ भक्तों का अनशन करके काल के समय काल करके मोघमकल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुआ । वहाँ दो नागरोपम की स्थिति प्राप्त की । महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर निदिष्टि प्राप्त करेगा-यावत्-सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारे निर्ग्रथ अथवा निर्ग्रथी अथवा आचार्य, उपाध्याय के पास मुंडित होकर वृहत्वागकर आनगारिक प्रव्रज्या धारण कर मनुष्य सम्बन्धी

जाणामो णं अज्जो ! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो !
सामाइयस्स अट्ठं ; जाव-जाणामो णं अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं
वयासी—

जति णं अज्जो ! तुव्भे जाणह सामाइयं, जाणह
सामाइयस्स अट्ठं ; जाव-जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं ; किं भे
अज्जो ! सामाइए ? किं भे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ?—
जाव-किं भे विउस्सग्गस्स अट्ठे ?

तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं
एवं वयासी—

आया णे अज्जो ! सामाइए, आया णे अज्जो ! सामाइयस्स
अट्ठे—जाव-आया णे अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठे ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं
वयासी—

जति भे अज्जो ! आया सामाइए, आया सामाइयस्स
अट्ठे ; एवं—जाव-आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्ठे, कोह-माण-
माया-लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?

कालासवेसियपुत्ता ! संजमट्ठयाए ।

से भंते ! किं गरहा संजमे, अगरहा संजमे ?

कालासवेसियपुत्ता ! गरहा संजमे, नो अगरहा
संजमे, गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं वालियं
परिण्णाए एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे
आया संजमे उवचिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते
भवति ।

एत्य णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते
वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

एत्तेसि णं भंते ! पदानं पुक्खि अण्णाणयाए असवणयाए अवो-
हीए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं अस्सुताणं अमुताणं अविण्णायाणं
अव्वोगडाणं अवोच्छिन्नाणं अणिज्जूदाणं अणुवधारित्ताणं एतमट्ठे

“हे आर्य ! हम सामायिक को जानते हैं, सामायिक
के अर्थ को भी जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और
व्युत्सर्ग के अर्थ को भी जानते हैं ।

उसके पश्चात् कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्वविर
भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

हे आर्यो ! यदि आप सामायिक को (जानते हैं) और
सामायिक के अर्थ को जानते हैं, यावत् - व्युत्सर्ग को एवं
व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं, तो वतलाइये कि (आपके मत्ता-
नुसार) सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है ?
यावत्.....व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ?

तब उन स्वविर भगवन्तों ने इस प्रकार कहा कि—

हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी अत्मा
सामायिक का अर्थ है; यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है, हमारी
आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है ।

इस पर कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्वविर भगवन्तों
से इस प्रकार पूछा—

‘हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही
सामायिक का अर्थ है, और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग
है तथा आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध मान-माया
और लोभ का परित्याग करके क्रोधान्दि की गहीं— निन्दा
क्यों करते हैं ?’

‘हे कालास्यवेपिपुत्र ! हम संयम के लिये क्रोध आदि की
गहीं करते हैं ।

तो ‘हे भगवन् ! क्या गहीं (करना) संयम है या अगहीं
(करना) संयम है ?’

‘हे कालास्यवेपिपुत्र ! गहीं (पापों की निन्दा) संयम है,
अगहीं संयम नहीं है । गहीं सब दोषों को दूर करती है—
आत्मा समस्त मिथ्यात्व को जान कर गहीं द्वारा दोषनिवारण
करता है । इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है,
और इसी प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है ।

(स्वविर भगवन्तों का उत्तर सुनकर) वह कालास्यवेपिपुत्र
अनगार बोध को प्राप्त हुए और उन्होंने स्वविर भगवन्तों को
वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार
कहा—

‘हे भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) पदों को न जानने से, पहले
सुने हुए न होने से, बोध न होने से अभिगम (ज्ञान) न होने से,
दृष्ट न होने से, विचारित (सोचें हुए) न होने से, सुने हुए न

जाणामो णं अज्जो ! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो !
सामाइयस्स अट्ठं; जाव-जाणामो णं अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं
वयासी—

जति णं अज्जो ! तुव्भे जाणह सामाइयं, जाणह
सामाइयस्स अट्ठं; जाव-जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं; किं भे
अज्जो ! सामाइए ? किं भे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ?—
जाव-किं भे विउस्सग्गस्स अट्ठे ?

तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं
एवं वयासी—

आया णे अज्जो ! सामाइए, आया णे अज्जो ! सामाइयस्स
अट्ठे—जाव-आया णे अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठे ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं
वयासी—

जति भे अज्जो ! आया सामाइए, आया सामाइयस्स
अट्ठे; एवं—जाव-आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्ठे, कोह-माण-
माया-लोभे किमट्ठं अज्जो ! गरहह ?

कालासवेसियपुत्ता ! संजमट्ठयाए ।

से भंते ! किं गरहा संजमे, अगरहा संजमे ?

कालासवेसियपुत्ता ! गरहा संजमे, नो अगरहा
संजमे, गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं वालियं
परिण्णाए एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे
आया संजमे उवचिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते
भवति ।

एत्य णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते
वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

एतेसि णं भंते ! पदाणं पुर्व्वे अण्णाणयाए असव्वणयाए अबो-
हीए अणभिगमेणं अविट्ठाणं अस्सुताणं अमुताणं अविण्णायाणं
अव्वोगडाणं अव्वोच्छिन्नाणं अणिज्जूदाणं अणुवधारिताणं एतमट्ठे

‘हे आर्य ! हम [सामायिक को जानते हैं, सामायिक
के अर्थ को भी जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्ग को जानते हैं और
व्युत्सर्ग के अर्थ को भी जानते हैं ।

उसके पश्चात् कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्थविर
भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

हे आर्यो ! यदि आप सामायिक को (जानते हैं) और
सामायिक के अर्थ को जानते हैं, यावत् - व्युत्सर्ग को एवं
व्युत्सर्ग के अर्थ को जानते हैं, तो वतलाइये कि (आपके मता-
नुसार) सामायिक क्या है और सामायिक का अर्थ क्या है ?
यावत्.....व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है ?

तब उन स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार कहा कि—

हे आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी अत्मा
सामायिक का अर्थ है; यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है, हमारी
आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है ।

इस पर कालास्यवेपिपुत्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तों
से इस प्रकार पूछा—

‘हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही
सामायिक का अर्थ है, और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग
है तथा आत्मा ही व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो आप क्रोध मान-माया
और लोभ का परित्याग करके क्रोधादि की गर्हा— निन्दा
क्यों करते हैं ?’

हे कालास्यवेपिपुत्र ! हम संयम के लिये क्रोध आदि की
गर्हा करते हैं ।

तो ‘हे भगवन् ! क्या गर्हा (करना) संयम है या अगर्हा
(करना) संयम है ?’

हे कालास्यवेपिपुत्र ! गर्हा (पापों की निन्दा) संयम है,
अगर्हा संयम नहीं है । गर्हा सब दोषों को दूर करती है—
आत्मा समस्त मिथ्यात्व को जान कर गर्हा द्वारा दोषनिवारण
करता है । इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में पुष्ट होती है,
और इसी प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है ।

(स्थविर भगवन्तों का उत्तर सुनकर) वह कालास्यवेपिपुत्र
अनगार बोध को प्राप्त हुए और उन्होंने स्थविर भगवन्तों को
वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार
कहा—

‘हे भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) पदों को न जानने से, पहले
सुने हुए न होने से, बोध न होने से अभिगम (ज्ञान) न होने से,
दृष्ट न होने से, विचारित (सोचे हुए) न होने से, सुने हुए न.

णो सद्दहिते, णो पत्तिए, णो रोइए; इदाणि भन्ते ! एतेसि पदाणं जाणताए सवणताए वोहीए अभिगमेणं विट्ठाणं सुताणं मुताणं विष्णाताणं वोगडाणं वोच्चिन्नारणं णिज्जूडाणं उवधारिताणं एतमद्दं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि; एवमेतं से जहेय तुम्भे वयह ।

कालासवेसियस्स चाउज्जामधम्मआओ

पंचमहव्वइयधम्मउवसंपज्जणा—

५६६. तए णं ते थेरा भगवंतो कान्नासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—सद्दहाहि अज्जो ! पत्तियाहि अज्जो ! रोएहि अज्जो ! से जहेयं अम्हे वयामो ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भन्ते ! तुम्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्मआओ पंच-महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ते ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।

५७०. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्मआओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरति ।

तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे वृहणि वासाणि सामणपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे भुंडभावे अण्हाणयं अदंतवणयं अचछत्तयं अणोवाहणयं भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्टसेज्जा केसलोओ वंसचेरवासो परघरप्पवेसो लट्ठावलट्ठी उच्चावया गामकंटगा वावीसं परिसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमद्दं आराहेइ, आरोहेत्ता चरमेहि उस्सास-नीसासेहि सिद्धे बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वट्टुक्खप्पहीणे ।

—भग० स० १, उ० ६ ।

होने से, विशेषरूप से न जानने से, कहे हुए न होने से, अनिर्णीत होने से, उद्धृत न होने से, और ये पद अवधारण किये हुए न होने से इस अर्थ में श्रद्धा नहीं की थीं, प्रतीति नहीं की थी, रुचि नहीं की थी; किन्तु भगवन् ! अब इन (पदों) को ज्ञान लेने से, सुन लेने से, बोध होने से, अभिगम होने से, दृष्ट होने से, चिन्तित (चिन्तन किये हुए) होने से, श्रुत (सुने हुए) होने से, विशेष जान लेने से, (आपके द्वारा) कथित होने से, निर्णीत होने से, उद्धृत होने से, और इन पदों का अवधारण करने से इस अर्थ (कथन) पर मैं श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ, हे भगवन् ! आप जो यह कहते हैं, वह यथार्थ है. वह इसी प्रकार है ।

कालास्यवेपि का चातुर्याम धर्म से पंचमहाव्रत धर्म स्वीकरण—

५६६ तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तों ने कालास्यवेपिपुत्र अनगार को इस प्रकार कहा—हे आर्य ! जैसा हम कहते हैं, उसी प्रकार तुम श्रद्धा रखो, प्रीति करो और रुचि रखो ।

तब वह कालास्यवेपिपुत्र अनगार स्थविर भगवन्तों को वंदना नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भदन्त ! तुम्हारे पास चातुर्याम धर्म—चार महाव्रत वाला धर्म छोड़कर प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत वाला धर्म प्राप्त कर विचरण करना चाहता हूँ ।

हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, विलंब मत करो —स्थविरों ने कहा ।

५७० तत्पश्चात् वह कालास्यवेपिपुत्र अनगार स्थविर भगवन्तों को वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार करके चातुर्याम धर्म को छोड़ प्रतिक्रमण सहित पंच महाव्रत वाला धर्म प्राप्त करके विचरण करता है ।

तदनन्तर उस कालास्यवेपि अनगार ने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया, पालन करके जिस प्रयोजन के लिये नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दंत-धावन न करना, छत्र न रखना, जूता न पहनना, पृथ्वी पर बैठना, फलकशीया, काण्ट पर सोना, केश लोच करना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, भिक्षार्थ पर-गृह प्रवेश, कहीं मिले कहीं न मिले अथवा कम मिले और अनु-कूल तथा प्रतिकूल, इन्द्रियों को कांटों जैसे वाईस परिपह उप-सर्गों को सहन किया जाता है उस अर्थ की आराधना की, आराधना करके चरम-उच्छ्वास-निःश्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त और सर्व दुःखों से हीन हुआ ।

४५. महावीरतिथे उदएपेटाल पुत्ते

नालंदाए लेवे समणोवासए—

५७१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था—
रिद्धत्थिमियसमिद्धे, वण्णओ-जाव-पडिख्खे ।

तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे
दिसीभाए, एत्थ णं णालंदा णामं वाहिरिया होत्था—
अणेगभवणसयसण्णिविद्धा पासादीया-जाव-पडिख्खे ।

तत्थ णं णालंदाए वाहिरिया लेवे णामं गाहावई होत्था—
अड्ढे-जाव-अपरिभूए यावि होत्था ।

से णं लेवे णामं गहावई समणोवासए यावि होत्था—
अभिगयजीवा-जीवे-जाव-णिग्गंथिए पावयणे णिस्संकिए णिक्कंखिए
णिच्चित्तिगिच्छे लद्धुं गहियहुं पुच्छियहुं विणिच्छियहुं
अभिगयहुं अट्ठिमिजपेम्माणुरागरत्ते “अयमाउसो ! णिग्गंथे
पावयणे अहुं अयं परमहुं सेसे अणहुं” ऊसियफलहे अवंगुयदुवारे
चियत्तंतेउर - परधरदारप्पवेसे चाउद्दसदुमुद्धिपुण्णमासिणीसु
पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे णिग्गंथे फासुएसणिज्जेणं
असण-पाण-खाइम-साइमेण वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं
ओसहंसेसज्जेणं पीढ-फलग - सेज्जासंयारएणं पडिलामेमाणे वूर्हाह
सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खण-पोसहोववासोहं अहापरिग्गहिंएहिं
तवोक्कमेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

लेवस्स उदगसालाए समीवे गोयमविहारो—

५७२. तस्स णं लेवस्स गाहावइस्स णालंदाए वाहिरियाए उत्तर-
पुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं सेसदविया णाम उदगसाला
होत्था—अणेगखंभसयसण्णिविद्धा पासादीया-जाव-पडिख्खे ।

तीसे णं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए,
एत्थ णं हत्थिजामे णामं वणसंडे होत्था—किण्हे०, वण्णओ
वणसंडस्स । तस्सि च णं गिहपदेत्तंसि भगवं गोयमे विहरइ, भगवं
च णं अहे आरासंसि ।

४५. महावीरतीर्थ में उदकपेटाल-पुत्र

नालन्दा में लेप श्रमणोपासक—

५७१. उस काल और समय में राजगृह नाम का नगर था—श्रद्धि-
समृद्धि से परिपूर्ण, वर्णन-यावत्-परिपूर्ण था ।

उसी राजगृह नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण
में नालंदा नामक एक उपनगर था जो अनेक सैकड़ों, भवनों से
सुशोभित, दर्शनीय-यावत्-प्रातिरूप था ।

उस नालंदा नामक उपनगर में लेप नाम का गाथापति-
गृहस्थ था-जो घनाड्य-यावत्-पराभव पाने के भी योग्य न था ।

वह लेप नामक गाथापति श्रमणोपासक भी था जो जीवाजीव
तत्त्वों को जानने वाला-यावत्-निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंक एवं अन्य
दर्शनों की इच्छा से रहित गुणोजनों की निन्दा नहीं करनेवाला,
वस्तु स्वरूप का ज्ञाता, मोक्षमार्ग को स्वीकार किया हुआ, पृष्ठ-
कर विशेष रूप से पदार्थों का निश्चय किया, प्रयत्नोत्तर के द्वारा
पदार्थों को अच्छी तरह समझा हुआ, पदार्थों का विशेष रूप से
जानकार, अस्थि और मज्जा में भी धर्मानुराग था अर्थात् जिसके
रोम रोम में धर्म के प्रति अनुराग व्याप्त था कि—‘आयुष्मन् !
यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है और यही परमार्थ है, शेष सब
दर्शन अनर्थ हैं; उसका निर्मल यश जगत में फैला हुआ था, उसके
घर का द्वार खुला रहता था, अन्तःपुर में या अन्य किसी घर में
भी उसका प्रवेश बन्द नहीं था, वह चतुर्दशी, अष्टमी तथा
पूर्णिमासी आदि तिथियों में परिपूर्ण पौषधव्रत का पालन करता
था, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य,
स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोच्छन, औषधि, भैषज, पीठ,
फलक, शैया, संस्तारक का दान करता हुआ तथा बहुत से शील-
व्रत, गुण व्रत, विरमण प्रत्याख्यान, पौषध और उपवास आदि यया-
योग्य तपोकर्म के द्वारा अपने को निर्मल बनाते हुए—आत्मा का
चिन्तन करते हुए विचरता था ।

लेप की उदकशाला के समीप गौतम का विहार—

५७२ उस लेप नामक गाथापति की नालंदा से बाहर उत्तर-पूर्व
दिशा में शेषद्रव्या नामक जलशाला थी-जो अनेक प्रकार के सैकड़ों
स्तम्भों से युक्त मन को प्रसन्न करने वाली-यावत्-प्रतिरूप थी ।

उस शेष द्रव्या उदकशाला के उत्तर पूर्व दिशा में हस्ति याम
नामक एक वनखण्ड था जो कृष्ण वर्ण वाला था, वनखण्ड का
वर्णन करना । उसके गृह प्रदेश में भगवान गौतम स्वामी विचरते
थे, भगवान [गौतम स्वामी] नीचे वगीचे में विराजते थे ।

उदगपेढालपुत्तस्स पण्हत्थं गोयमसमीवे आगमणं—

५७३. अहे णं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे णियंठे मेदज्जे गोत्तेणं जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—“आउसंतो ! गोयमा ! अत्थि खलु मे केइ पदेसे पुच्छियव्वे, तं च मे आउसो ! अहासुयं अहावरि-सियमेव वियागरेहि ।”

सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—“अवियाइ आउसो ! सोच्चा णिसम्म जाणिस्तामो ।”

उदगपेढालपुत्तस्स समणोवासगपच्चवखाणविसए पण्हो—

५७४. सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

“आउसंतो ! गोयमा ! अत्थि खलु कम्मरपुत्तिया णाम समणा णिग्गया तुम्हाग पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपण्णं एवं पच्चवखावेत्ति—‘णणत्थ अभिजोगेणं, गाहावइ-चोरग्गहण-विमोक्खणयाए त्सेहि पाणेहि णिहाय दंडं ।’

एवं ण्हं पच्चवखंताणं दुप्पच्चवखायं भवइ । एवं ण्हं पच्च-वखावेमाणाणं दुप्पच्चवखावियं भवइ । एवं ते परं पच्चवखावेमाणा अइयरंति सयं पइण्णं ।

कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—थावरा वि पाणा तसत्ताएपच्चायंति । तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति । थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति । तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति । तेसि च णं थावरकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं घत्तं ।

एवं ण्हं पच्चवखंताणं सुपच्चवखायं भवइ ।

एवं ण्हं पच्चवखावेमाणाणं सुपच्चवखावियं भवइ ।

एवं ते परं पच्चवखावेमाणा णाइयरंति सयं पइण्णं—
‘णणत्थ अभिजोगेणं, गाहावइ-चोरग्गहण-विमोक्खणयाए तस-

उदकपेढालपुत्र का प्रश्नार्थं गौतम के समीप आगमन—

५७३ इस अवसर पर भगवान पार्श्व की शिष्य परम्परा का मेदार्यं गोत्रीय उदकपेढालपुत्र निर्ग्रन्थ जहाँ भगवान गौतम विराजते थे, वहाँ आया, आकर भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—‘हे आयुष्मन् गौतम ! हमें आपसे कोई प्रश्न पूछना है, हे आयुष्मन् ! उसे आपने जैसा सुना है और जैसा निश्चय किया है, वैसा वाद सहित मुझसे कहें ।’

भगवान् गौतम स्वामी ने उदकपेढालपुत्र से इस प्रकार कहा—‘हे आयुष्मन् ! आपके प्रश्न को सुनकर और समझकर यदि मैं जान सकूँगा तो उत्तर दूँगा ।’

उदकपेढालपुत्र का श्रमणोपासक प्रत्याख्यान विषयक प्रश्न—

५७४. वाद सहित उदकपेढालपुत्र ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

‘हे आयुष्मन् ! गौतम ! कुमारपुत्र नामक एक श्रमण निर्ग्रन्थ है जो तुम्हारे प्रवचन की प्ररूपणा करते हुए उनके निकट आये हुए गाथापति, श्रमणोपासक को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते हैं—‘राजा आदि के अभियोग को छोड़कर गाथापति चोर ग्रहण विमोक्षण न्याय से त्रस प्राणियों को दण्ड देने का प्रत्याख्यान है ।’

परन्तु उनका इस प्रकार का प्रत्याख्यान करना दुष्प्रत्याख्यान है । इस रीति से जो प्रत्याख्यान करते हैं वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हैं । इसप्रकार से दूसरे को प्रत्याख्यान कराते वाले पुरुष स्वयं अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करते हैं ।

उसका क्या कारण है ?

क्योंकि संसारी प्राणी परिवर्तनशील हैं, अतएव स्थावर प्राणी भी त्रसरूपता को प्राप्त होते हैं और त्रस प्राणी भी स्थावर रूप में उत्पन्न होते हैं । वे स्थावर काय को छोड़कर त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं । त्रसकाय को छोड़कर स्थावर काय में उत्पन्न होते हैं । वे त्रस प्राणी जब स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं तब वे उन त्रस काय को दंड न देने वालों के द्वारा घात करने के योग्य होते हैं ।

परन्तु जो लोग इसप्रकार प्रत्याख्यान करते हैं उनका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

इस प्रकार जो प्रत्याख्यान कराते हैं, उनका कराना सुप्रत्याख्यान कराना होता है ।

इस प्रकार जो दूसरे को प्रत्याख्यान कराते हैं क्या वे अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं—‘राजा के अभियोग को

भूएहि पाणेहि णिहाय दंडं । एवं सइ भासाए परिकम्मे विज्ज-
माणे जे ते कोहा वा लोहा वा परं पच्चखावेति । अयं पि णो
उवएसे किं णो णैयाउए भवइ ? अवि घाइं आउसो ! गोयमा !
तुवभं पि एयं एवं रोयइ ?”

भगवओ गोयमस्स उत्तरं—

५७५. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेडालपुत्तं एवं वयासी—
“आउसंतो ! उदगा ! णो खलु अम्हं एयं एवं रोयइ—जे ते
समणा वा माहणा वा एवमाइवखंति, एवं भासेति, एवं पणवेति,
एवं परुवेति णो खलु ते समणा वा णिग्गंया वा भासं भासंति,
अणुताविद्यं खलु ते भासं भासंति, अब्भाइवखंति खलु ते समणे
समणोवासए वा । जेहिं वि अणोहि पाणेहि-जाव-सत्तेहि संजमयंति
ताणि वि ते अब्भाइवखंति ।

कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चार्यंति । थावरा वि पाणा
तसत्ताए पच्चार्यंति ।

तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा थावरकार्यंसि उववज्जंति ।
थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा तसकार्यंसि उववज्जंति । तेसि च
णं तसकार्यंसि उववण्णाणं ठाणमेयं अधत्तं ।”

उदगपेडालपुत्तस्स पडिपण्हो—

५७६. सवायं उदए पेडालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—

“क्यरे खलु आउसंतो ! गोयमा ! तुवभे वयह तसपाणा
तसा आउ अण्णहा ?”

‘तसभूया पाणा तसा तसा पाणा तसे’ त्ति एकट्ठं
इति गोयमव्ययणं—

५७७. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेडालपुत्तं एवं वयासी—

“आउसंतो ! उदगा ! जे तुवभे वयह तसभूया पाणा तसभूता
पाणा, ते वयं वदामो तसा पाणा, तसा पाणा । ज वयं
वयामो तसा पाणा तसा पाणा, ते तुवभे वदह तसभूया पाणा
तसभूता पाणा । एए संति दुवे ठाणा तुल्ला एगट्ठा । किमाउसो !

छोड़कर तथा गाथापति चोर ग्रहण विमोक्षण न्याय से वर्तमान
में त्रस रूप से परिणत प्राणी को दण्ड देने का त्याग है ।’ इस
प्रकार होने से भापा में शक्ति विशेष का विद्यमान न होने से
वे क्रोध या लोभ के बश दूसरे को प्रत्यान्यायन करते हैं । क्या
हमारा यह उपदेश न्याय-संगत नहीं है ? हे आयुष्मन् गौतम !
हमारा यह कथन क्या आपको भी अच्छा लगता है ?”

भगवान गौतम का उत्तर—

५७५. भगवान गौतम ने उदक पेडालपुत्र से वाद सहित इस
प्रकार कहा—“हे आयुष्मन् उदक ! इस प्रकार प्रत्यान्यायन
कराना हमें अच्छा नहीं लगता है—जो श्रमण या माहण तुम्हारे
कहे अनुसार प्ररूपणा करते हैं वे श्रमण और निर्ग्रन्थ ययार्य
भापा का भापण करने वाले नहीं हैं, वे अनुताप को उत्पन्न
करने वाली भापा का भापण करते हैं, वे श्रमण और श्रमणो-
पासकों का अभ्याख्यान करते हैं—उनको व्यर्थ कलंक देते
हैं । जो अन्य प्राणियों-यावत्-सत्त्वों के विषय में संयम ग्रहण
करते हैं, उन पर भी वे कलंक लगाते हैं ।

इसका कारण क्या है ?

सभी प्राणी संसारी है—परिवर्तनशील है—

त्रस प्राणी भी स्थावर रूपता को प्राप्त होते हैं और
स्थावर प्राणी भी त्रसभाव को प्राप्त करते हैं ।

वे त्रसकाय को त्यागकर स्थावरकाय में उत्पन्न होते हैं और
स्थावरकाय को त्यागकर त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं । जब वे
त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं तब वे हनन करने योग्य नहीं
होते हैं ।”

उदक पेडालपुत्र का प्रतिप्रश्न—

५७६. उदक पेडालपुत्र ने वाद सहित भगवान् गौतम से इस
प्रकार कहा—

‘हे आयुष्मन् गौतम ! वे प्राणी कौन हैं, जिन्हें तुम त्रस
कहते हो ? तुम त्रस प्राणी को त्रस कहते हो या किसी दूसरे
को ?

‘त्रसभूत प्राणी त्रस, त्रस प्राणी त्रस’ एकार्थक हैं
यह गौतम वचन—

५७७. भगवान गौतम ने उदक पेडालपुत्र से वादसहित इस
प्रकार कहा—

‘हे आयुष्मन् उदक ! जिन प्राणियों को तुम त्रसभूत प्राणी—
त्रस भूतप्राणी कहते हो, उन्हीं को हम त्रसप्राणी त्रसप्राणी कहते
हैं और हम जिन्हें त्रसप्राणी—त्रसप्राणी कहते हैं, उन्हीं को तुम
त्रसभूतप्राणी—त्रसभूतप्राणी कहते हो । ये दोनों ही स्थान समान

इमे भे सुप्पणीयतराए भवइ—तसभूया पाणा तसभूता पाणा ?
इमे भे दुप्पणीयतराए भवइ—तसा पाणा तसा पाणा ? भो
एगमाउसो ! पलिकोसह, एवकं अभिणंदह । अयं पि भे देसे णो
णैयाउए भवइ ।

भगवं च णं उदाह—संतेगइया मणुस्सा भवन्ति, तेसि च णं
एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता
अगाराओ अणगारियं पवइत्तए । वयं णं अणुपुव्वेणं गोत्तस्स
लित्तिस्सामो । ते एवं संखंसावेत्ति—ते एवं संखं ठवयन्ति,
ते एवं संखं सोवट्ठावयन्ति, “णण्हथ अभिजोगेणं गाहा-
वड-चोरगहण-विमोक्खणयाए तसेहि पाणेहि णिहाय वंडं ।” तं
पि तेसि कुसलमेव भवइ । तसा वि वुच्चन्ति तसा तससंभारकडेणं
कम्मणा, णामं च णं अट्ठुवगयं भवइ । तसाउयं च णं
पलिव्खीणं भवइ, तसकायट्ठिइया ते तओ आउयं विप्पजहन्ति,
ते तओ आउयं विप्पजहिन्ता थावरत्ताए पच्चायन्ति । थावरा
वि वुच्चन्ति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मणा, णामं च णं
अट्ठुवगयं भवइ । थावराउयं च णं पलिव्खीणं भवइ,
थावरकायट्ठिइया ते तओ आउयं विप्पजहन्ति, ते तओ आउयं
विप्पजहिन्ता भुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायन्ति । ते पाणा वि
वुच्चन्ति, ते तसा वि वुच्चन्ति, ते महाकाया, चिरट्ठिइया ।

उदगपेढालपुत्तस्स सपक्ख-ठावणा—

५७८. सवार्यं उदए पेढालपुत्ते भयवं गोयमं एवं वयासी—
“आउसंतो ! गोयमा ! पत्थि णं से केइ परियाए जण्णं समणोवास-
गस्स ‘एगपाणातिवायविरए वि दंडे णिक्खित्ते । कस्स णं तं
हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

थावरा वि पाणा तसत्ताए पच्चायन्ति । तसा वि पाणा
थावरत्ताए पच्चायन्ति ।

थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसकार्यसि उव्वज्जन्ति ।
तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावरकार्यसि उव्वज्जन्ति ।
तेसि च णं थावरकार्यसि उव्वण्णणं ठाणमेयं घत्तं ।

और एकार्थक है । तब हे आयुष्मन् ! त्रसभूत प्राणी त्रसभूत
प्राणी कहना आप शुद्ध मानते हैं और त्रस प्राणी त्रस प्राणी
कहना दुष्प्रणीत समझते हैं ? जिससे आयुष्मन् ! एक की आप
निन्दा और दूसरे की प्रशंसा करते हैं ? अतः आपका यह पूर्वोक्त
भेद न्यायसंगत नहीं है ।

भगवान् गौतम ने पुनः कहा—ऐसे भी कई मनुष्य हैं,
जिनका यह पूर्व कथन होता है कि हम मुण्डित होकर गृह
त्याग करके आनगारिक दीक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं है,
किन्तु क्रमशः साधुत्व स्वीकार करेंगे । वे अपने मन में ऐसा ही
विचार करते हैं—वे मन में ऐसा विचार स्थिर (पक्का) करते
हैं और फिर उस पर उपस्थित—प्रस्तुत हो जाते हैं—‘राजा
आदि के अभियोग आदि कारणों से गाथापति चोर ग्रहण विमोक्ष
न्यास से त्रस प्राणियों का घात न करने की प्रतिज्ञा कराते हैं ।’
इतना त्याग भी उनके लिए अच्छा ही होता है । त्रस जीव भी
त्रस नाम कर्म के फल का अनुभव करने के कारण त्रस कहलाते
हैं और वे उक्त कर्म का फल भोग करने के कारण ही त्रसनाम
को धारण करते हैं । जब उनकी त्रस आयु क्षीण हो जाती है
और त्रसकाय में उनकी स्थिति का हेतुरूप कर्म भी क्षीण हो
जाता है, तब वे उस आयु को छोड़ देते हैं और उसे छोड़कर वे
स्थावर भाव को प्राप्त करते हैं । स्थावर प्राणी भी स्थावर
नाम कर्म के फल का अनुभव करते हुए स्थावर कहलाते हैं और
इसीकारण वे स्थावर नाम को भी धारण करते हैं । जब
उनकी स्थावर की आयु क्षीण हो जाती है और स्थावर काय में
उनकी स्थिति का काल समाप्त हो जाता है, तब वे उस आयु
को छोड़ देते हैं और उस आयु को छोड़कर पुनः परलोकभाव
को प्राप्त करते हैं । वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते
हैं, वे महाकाय वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले भी
होते हैं ।

उदकपेढालपुत्र की स्वपक्ष स्थापना—

५७८. उदक पेढालपुत्र ने वाद सहित भगवान् गौतम से इस
प्रकार कहा—‘हे आयुष्मन् गौतम ! कोई भी वह पर्याय नहीं
है, जिसमें श्रमणोपासक एक प्राणी के प्राणातिपातविरति रूप
त्याग को भी सफल बना सके । इसका कारण क्या है ?

प्राणी संसरणशील—परिवर्तनशील हैं—

अतः कभी स्थावर प्राणी भी त्रस हो जाते हैं—त्रस प्राणी
भी स्थावर रूप से उत्पन्न हो जाते हैं ।

वे सबके सब स्थावर काय को छोड़कर त्रसकाय में उत्पन्न
हो जाते हैं । सभी त्रसकाय को छोड़कर स्थावरकाय में उत्पन्न
होते हैं । जब वे सभी स्थावरकाय में उत्पन्न हो जाते हैं, तब वे
घात के योग्य हो जाते हैं ।

भगवओ गोयमस्स पच्चुत्तरं—

५७९. सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—
“णो खलु आउसो ! अस्माकं वत्तव्वएणं तुव्वं चैव अणुप्पवाएणं
अत्थि णं से परियाए जम्मि समणोवासगस्स सव्वपाणोहिं-जाव-
सव्वसत्तोहिं दंडे णिविखत्ते भवइ ।

कस्स णं तं हेउं ?

संसारिया खलु पाणा—

तसा वि पाणा थावरत्ताए पच्चार्यंति । थावरा वि पाणा
तसत्ताए पच्चार्यंति । तसकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे थावर-
कायंसि उववज्जंति । थावरकायाओ विप्पमुच्चमाणा सव्वे तसका-
यंसि उववज्जंति । तेसि च णं तसकायंसि उववण्णाणं ठाणमेयं
अघत्तं ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया,
ते चिरद्विइया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्च-
वखायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्च-
वखायं भवइ । इति से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवद्वियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुव्वे वा अण्णो वा एवं वयह—‘णत्थि णं से
केइ परियाए जंसि जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे
णिविखत्ते’ । अयं वि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

समणदिट्ठंतो—

५८०. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो !
णियंठा ! इह खलु संत्तेगइया मणुस्सा भवंति । तेसि च णं एवं
वुत्तपुव्वं भवइ—जे इमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं
पव्वइत्ता, एएसि णं आमरणंताए दंडे णिविखत्ते । जे इमे अगार-
मावसंति, एएसि णं आमरणंताए दंडे णो णिविखत्ते ।

केइ च णं समणे-जाव-वासाइं चउपंचमाइं छइसमाइं अप्परयो
वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जित्ता अगारं वएज्जा ?

हंता वएज्जा ।

तस्स णं तमगारत्थं वहमागस्स से पच्चवखाणे भग्गे भवइ ?

णो इणट्टे समट्टे ।

भगवान गौतम का प्रत्युत्तर—

५७९. भगवान गौतम ने वादसहित उदकपेढालपुत्र से इस
प्रकार कहा—‘हे आयुष्मन् ! हमारे वक्तव्य के अनुसार ही
नहीं, किन्तु तुम्हारे वक्तव्य के अनुसार भी वह पर्याय हैं, जिसमें
श्रमणोपासक सब प्राणियों-यावत्-समस्त सत्त्वों के घात का त्याग
कर सकता है ।

इसका कारण क्या है ?

प्राणी संसरणशील हैं—

अतः त्रस प्राणी भी स्थावर रूप से (उत्पन्न) होते हैं और
स्थावर भी त्रस रूप से होते हैं । वे सब त्रसकाय को छोड़कर स्था-
वरकाय में उत्पन्न होते हैं और वे सभी स्थावर काय को छोड़कर
त्रसकाय में उत्पन्न होते हैं । इसलिये जब वे सब त्रसकाय में
उत्पन्न होते हैं, तब वह स्थान घात के योग्य नहीं होता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहे जाते हैं, वे महान
शरीर वाले और चिर काल तक स्थित रहने वाले होते हैं । वे
प्राणी बहुत हैं, जिससे श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है । वे
प्राणी अल्पतर होते हैं, जिनसे श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता
है । इस प्रकार वह महान त्रसकाय के घात से शान्त और विरत
होता है, जिससे तुम अथवा अन्य व्यक्ति जो यह कहते हैं—‘ऐसी
एक भी पर्याय नहीं है, जिसके लिए श्रमणोपासक का एक प्राणी
के घात का भी त्याग हो सके ।’ सो आपका यह कथन न्यायसंगत
नहीं है ।

श्रमण दृष्टान्त—

५८०. भगवान् (गौतम स्वामी) कहते हैं कि निर्ग्रन्थों से यह
पूछा जाता है—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में कोई
मनुष्य ऐसे होते हैं, जो इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं—ये जो
मुण्डित होकर गृह त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार
कर चुके हैं, इनको मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग नहीं
करता हूँ ।

उन श्रमणों में से कोई श्रमण चार, पाँच या छह अथवा
दस वर्ष तक थोड़े या बहुत देशों में विचरण कर क्या पुनः
गृहस्थ बन जाते हैं ?

हां, वे गृहस्थ बन जाते हैं ।

उन गृहस्थों को मारने वाले उस प्रत्याख्यानधारी पुरुष-
का क्या वह प्रत्याख्यान भंग हो जाता है ?

यह कथन युक्ति संगत नहीं है ।

एवामेव समणोवासगस्स वि तसेहि पाणेहि दंडे णिखित्ते,
थावरेहि पाणेहि दंडे णो णिखित्ते । तस्स णं तं यावरकायं
वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भग्गे भवइ । सेवमायाणह णियंठा !
सेवमायाणियव्वं ।

५८१. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो
णियंठा ! इह खलु गाहावइणो वा गाहावइपुत्ता वा तहप्पगारेहि
कुलेहि आगम्म धम्मस्सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा ?

हंता उवसंकमेज्जा ।

तेसि च णं तहप्पगाराणं धम्मे आइखियव्वे ?

हंता आइखियव्वे ।

किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा—
इणमेव णिग्गं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुष्णं
णेयाउयं संमुद्धं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं
अवितहं असंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं । एत्थ ठिया जीवा
सिज्जंति बुज्जंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं
करंति ।

तमाणए तहा गच्छामो तहा चिट्ठामो तहा णिसीयामो तहा
उयट्टामो तहा भंजामो तहा भासामो तहा अब्भुट्टेमो तहा उट्टाए
उट्टेत्ता पाणाणं-जाव-सत्ताणं संजमेणं संजमामो त्ति वएज्जा ?

हंता वएज्जा ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्टावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

तेसि च णं तहप्पगाराणं सव्वपाणेहि-जाद-सव्वसत्तेहि दंडे
णिखित्ते ?

हंता णिखित्ते ।

इसी तरह श्रमणोपासक ने भी त्रस प्राणी को दण्ड देने का
त्याग किया है, स्थावर प्राणी को दण्ड देने का त्याग नहीं
किया है । इसलिए स्थावरकाय के प्राणियों का हनन करने पर
भी उसका प्रत्याख्यान भंग नहीं होता है । हे निर्ग्रन्थो ! इसी
तरह समझो और इसी तरह ही समझना चाहिये ।

५८१. भगवान् गौतम स्वामी ने कहा—मैं निर्ग्रन्थों से पूछता
हूँ—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में गाथापति या गाथापति
के पुत्र उस प्रकार के कुल में जन्म लेकर धर्म श्रवण के लिये
क्या आ सकते हैं ?

हां, आ सकते हैं ?

उस प्रकार के उस उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों को क्या
धर्म का उपदेश करना चाहिए ?

हां, उन्हें धर्म का उपदेश करना चाहिए ।

क्या वे इस प्रकार का धर्म श्रवण कर और समझकर इस
प्रकार कह सकते हैं कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है,
सर्वोत्तम है, केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, परिपूर्ण है,
न्याय युक्त है, भली प्रकार से शुद्ध है, शल्य को नष्ट करने वाला
है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति मार्ग है, निर्याण मार्ग है, निर्वाण
मार्ग है, अवितथ, असंदिग्ध और समस्त दुःखों के नाश का
मार्ग है । इस धर्म में स्थित जीव सिद्ध होता है, बोध को प्राप्त
करता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त करता है और
सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करता है ।

अतः हम इस मार्ग की आज्ञा के अनुसार चलेंगे, स्थित
होंगे, बैठेंगे, शयन करेंगे, भोजन करेंगे, बोलेगे, उठेंगे और उठ
कर प्राणियों-यावत्-सत्त्वों का संयम करने—रक्षा करने के लिए
संयम धारण करेंगे, इस प्रकार क्या वे कह सकते हैं ?

हां वे ऐसा कह सकते हैं ।

क्या वे इस प्रकार के विचार वाले दीक्षा देने के योग्य हैं ?

हां, वे योग्य हैं ।

क्या वे ऐसे विचार वाले पुरुष मुण्डित करने योग्य हैं ?

हां योग्य हैं ।

क्या इस तरह के विचार वाले वे शिक्षा देने योग्य हैं ?

हां, अवश्य हैं ।

क्या वे ऐसे विचार वाले व्यक्ति प्रव्रज्या में उपस्थित करने
योग्य हैं ?

हां, योग्य हैं ।

तो क्या ऐसे विचार वाले पुरुषों ने समस्त प्राणियों-
यावत्-समस्त सत्त्वों को दण्ड देना छोड़ दिया है ?

हां, छोड़ दिया है ।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा-जाव-वासाइं चउपंच-
माइं छहसमाइं वा अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जिता
अगारं वएज्जा ?

हंता वएज्जा ।

तस्स णं सव्वपाणेहिं सव्वसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते ? णो इणट्ठे
समट्ठे । से जे से जीवे जस्स परेणं सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं
दंडे णो णिक्खित्ते । से जे से जीवे जस्स आरेणं सव्वपाणेहिं-जाव-
सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते । से जे से जीवे जस्स इयाणिं
सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ । परेणं
अस्संजए, आरेणं संजए, इयाणिं अस्संजए । अस्संजयस्स णं
सव्वपाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ । सेवमा-
याणह णियंठा । सेवमायाणियव्वं ।

५८२. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो !
णियंठा ! इह खलु परिव्वायया वा परिव्वाइयाओ वा अप्पयरे-
हितो तित्थायतणेहितो आगम्म धम्मस्सवणवत्तिं उवसंकमेज्जा ?
हंता उवसंकमेज्जा ।

किं तेसिं तहप्पगाराणं धम्मे आइक्खियव्वे ?

हंता आइक्खियव्वे ।

किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा—
इणमेव णिग्गं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेयाउयं
संसुद्धं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाण-
मग्गं अवित्तहं असंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं । एत्थ ठिया जीवा
सिज्जंति युज्जंति मुच्चंति परिणिव्वंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति ।
तमाणाए तहा गच्छामो तहा चिद्धामो तहा णिसीयामो तहा
तुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अब्भुट्टामो तहा उट्टाए
उट्टेत्ता पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामो त्ति
वएज्जा ?

हंता वएज्जा ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति पव्वावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुण्डावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

तो क्या इस प्रकार के विहार द्वारा विचरण करने वाले
यावत्-चार, पाँच, छह अथवा दस वर्ष तक थोड़े या बहुत से
देशों में परिभ्रमण कर पुनः गृहस्थावास में जा सकते हैं ?

हाँ, जा सकते हैं ।

तब वे क्या सम्पूर्ण प्राणियों, सम्पूर्ण सत्त्वों को दण्ड देना
छोड़ देते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् युक्तिसंगत नहीं है ।
वह जीव वही है, जिसने पूर्व में समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त
सत्त्वों को दण्ड देना त्याग नहीं किया था । वह जीव वही है, जिसने
पहले समस्त प्राणियों-यावत्-समस्त सत्त्वों को दण्ड देना त्याग नहीं
किया है । वह जीव वही है, जिसके अभी समस्त प्राणियों-
यावत्-समस्त सत्त्वों को दंड देना का त्याग नहीं होता है ।
वह पहले तो असंयमी था, अभी संयमी है और फिर इस समय
असंयमी हुआ । असंयमी जीव को सम्पूर्ण प्राणियों-यावत्-सम्पूर्ण
सत्त्वों को दण्ड देने का त्याग नहीं होता है । हे निर्ग्रन्थो !
इसी तरह जानो और इसी तरह जानना चाहिए ।

५८२. भगवान ने कहा कि मैं निर्ग्रन्थों से पूछता हूँ—हे आयुष्मन्
निर्ग्रन्थो ! इस लोक में परिव्राजक अथवा परिव्राजिकायें किसी
दूसरे तीर्थ के स्थान में रहकर धर्म सुनने लिये क्या साधु के
निकट आ सकती हैं ? हाँ, आ सकती है ।

क्या उन वैसे व्यक्तियों को धर्म सुनाना चाहिए ?

हाँ, सुनाना चाहिए ।

क्या वे इस प्रकार के धर्म को सुनकर और समझकर
इस प्रकार कह सकते हैं—यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है,
अनुत्तर है, केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, परिपूर्ण है,
न्याययुक्त है, संशुद्ध है, शल्यनाशक है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति-
का मार्ग है, निर्याण पथ है, निर्वाण मार्ग है, अवित्तय मिथ्यात्व
रहित, संदेह रहित और समस्त दुःखों के नाश का मार्ग है ।
इस धर्म में स्थित जीव सिद्ध होता है, बोध को प्राप्त होता है,
मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और समस्त दुःखों
का नाश करता है । अतः हम इसकी आज्ञानुसार इसके द्वारा
विधान की गई रीति से चलेंगे, स्थित होंगे, बैठेंगे, करवट
वदलेंगे, भोजन करेंगे, बोलेंगे, उठेंगे और उठकर सम्पूर्ण प्राणियों,
भूतों, जीवों और सत्त्वों की रक्षा के लिए संयम धारण करेंगे—
इस प्रकार वे कह सकते हैं क्यों ?

हाँ वे ऐसा कह सकते हैं ।

क्या इस प्रकार के विचार वाले वे जीव दीक्षा देने के योग्य हैं ?

हाँ वे योग्य हैं ।

क्या वे ऐसे विचार वाले पुरुष मुण्डित करने योग्य हैं ?

हाँ, वे योग्य हैं ।

कि ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

कि ते तहप्पगारा कप्पंति उवट्ठावेत्तए ?

हंता कप्पंति ।

कि ते तहप्पगारा कप्पंति संभुजित्तए ?

हंता कप्पंति ।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा-जाव-वासाइं चउ-पंच-माइं छहसमाइं वा अप्पयरो वा भुज्जयरो वा देसं दूइज्जिता अगारं वएज्जा ? हंता वएज्जा ।

ते णं तहप्पगारा कप्पंति संभुजित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे ।

से जे से जीवे जे परेणं णो कप्पंति संभुजित्तए । से जे से जीवे जे आरेणं कप्पंति संभुजित्तए । से जे से जीवे जे इयाणि णो कप्पंति संभुजित्तए ।

परेणं अस्समणे, आरेणं समणे, इयाणि अस्समणे । अस्समणेणं सद्धि णो कप्पंति समणानं णिग्गंथाणं संभुजित्तए । सेवमायाणह णियंठा ! सेवमायाणियव्वं ।

पच्चक्खाणस्स विसय-उवदंसणं—

५८३. भगवं च णं उदाहु—णियंठा खलु पुच्छियव्वा—आउसंतो ! णियंठा ! इह खलु संतेगइया समणोवासगा भवंति । तेसि च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, वयं णं चाउदसट्ठमुद्धिपुण्ण-मासिणोसु पडिपुण्ण पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरिस्सामो । यूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो-जाव-यूलगं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो, इच्छापरिमाणं करिस्सामो दुविहं तिविहेणं । मा खलु ममट्ठाए किंचि वि करेह वा कारवेह वा तत्थ वि पच्चक्खाइस्सामो । ते णं अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेडियाओ पच्चोसहित्ता ते तह कालगया कि वत्तव्वं सिया ?

सम्मं कालगय त्ति वत्तव्वं सिया ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरदिठइया । ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । इति से महयाओ तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स

ऐसे विचार वाले वे पुरुष क्या शिक्षा देने के योग्य हैं ? हाँ, अवश्य योग्य हैं ।

क्या ऐसे विचार वाले वे पुरुष प्रव्रज्या में उपस्थित करने योग्य हैं ?

हाँ, योग्य हैं ।

क्या वैसे विचार वाले वे पुरुष साथ बैठकर भोजन करने के योग्य हैं ?

हाँ, योग्य हैं ।

क्या अब वे इस प्रकार की चर्या में स्थित होकर—यावत्—चार, पाँच या छह तथा दस वर्ष तक थोड़े या बहुत देशों में घूमकर पुनः गृहस्थावास में जा सकते हैं ? हाँ, जा सकते हैं ।

अब वे गृहवास को प्राप्त कर क्या साधु के संभोग के योग्य होते हैं ? नहीं, यह बात उचित नहीं है ।

वह जीव तो वही है जिसके साथ पहले संभोग रखना नहीं कल्पता है । वह जीव तो वही है, जिसके साथ अभी संभोग रखना कल्पता है । वह जीव तो वही है जिसके साथ इस समय साधु का संभोग नहीं कल्पता है ।

पहले वह जीव अश्रमण था, अभी श्रमण है और इस समय अश्रमण है । अश्रमण के साथ श्रमण निर्ग्रन्थों का संभोग नहीं कल्पता है । हे निर्ग्रन्थो ! इसी तरह जानो और ऐसा ही जानना चाहिये ।

प्रत्याख्यान का विषय—उपदर्शन—

५८३. भगवान् ने पुनः कहा—निर्ग्रन्थों से मैं पूछता हूँ—हे आयुष्मान् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में कोई श्रमणोपासक बड़े शान्त होते हैं । वे इस प्रकार कहते हैं—हम प्रव्रज्या धारण करके गृहवास को त्यागकर अनगर होने के लिए समर्थ नहीं हैं, अतः हम चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा के दिन, परिपूर्ण पीषधन्न का सम्यक् प्रकार से पालन करते हुए विचरण करेंगे तथा स्थूल प्राणात्तिपात का प्रत्याख्यान करेंगे—यावत्—स्थूल परिग्रह का त्याग करेंगे, हम दो करण तीन योग से अपनी इच्छा का परिमाण करेंगे । हमारे लिए कुछ मत करो और कुछ मत कराओ, ऐसा भी हम प्रत्याख्यान करेंगे, वे श्रावक बिना खाये पीए और बिना स्नान किये आसन से उतर कर यदि कालगत हो जायें तो उनके काल के विषय में क्या कहना होगा ?

वे अच्छी रीति से काल को प्राप्त हुए हैं, यही कहना पड़ेगा ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और व्रत भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक हैं, जिससे श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है । वे प्राणी अल्प हैं, जिनके विषय में श्रमणोपासक का

जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

५८४. भगवं च णं उदाहु णियंठा खलु पुच्छिव्वा—आउसंतो ! णियंठा ! इह खलु संतेगइया समणोवासगा भवन्ति । तेसि च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसड्डु-मुद्धिपुण्णमासिणोसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरित्तए । वयं णं अपच्छिममारणतियसंलेहणाञ्जूसणाञ्जूसिया भत्तपाणपडियाइविखया कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो । सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो, एवं सव्वं मुसावायं सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिगहं पच्चक्खाइस्सामो । तिविहं तिविहेणं मा खलु ममट्टाए किञ्चि वि करेह वा कारवेह वा करंतं समणुजाणेह वा, तत्थ वि पच्चक्खाइस्सामो । ते णं अभोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेडियाओ पच्चोस्सित्ता ते तह कालगया कि वत्तव्वं सिया ?

सम्मं कालगय ति वत्तव्वं सिया ।

ते पाणा वि वुच्चन्ति, ते तसा वि वुच्चन्ति, ते महाकाया, ते चिरट्टिइया । ते वहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

५८५. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवन्ति, तं जहा—महिच्छा महारंभा महापरिगहा अहम्मिया-जाव-अधम्मणेण चैव विन्ति कप्पेमाणा विहरन्ति, ‘हण’ ‘छिद’ ‘भिद’ विगत्तगा लोहियपाणी चंडा रूढा खुद्दा साहस्सिया उक्कंचण-वंचण-माया-णियडि-कूड-कवड-साइसंपओगवहुला दुस्सीला दुव्वया दुप्पडियाणंदा असाह । तव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए-जाव-गव्वाओ परिगहाओ अप्पडिविरया जावज्जीवाए, जेहिं समणो-

अप्रत्याख्यान होता है । अतः वह श्रमणोपासक महान त्रसकाय की विराधना से उपशांत, उपरत, मुमुक्षु प्रतिविरत होने पर भी आप लोग एवं अन्य जो यह कहते हैं—‘ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान हो सके ।’ आपका यह कथन न्यायसंगत नहीं है ।

५८४. भगवान ने कहा कि मैं निर्ग्रन्थों से पूछता हूँ—हे आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस लोक में कोई श्रमणोपासक बड़े शांत होते हैं । वे इस प्रकार कहते हैं—हम मुण्डित होकर, गृह त्याग कर अनगार होने के लिए समर्थ नहीं हैं तथा चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा तिथियों में परिपूर्ण पीपधत्रत का पालन करते हुए विचरने में भी समर्थ नहीं हैं । हम तो अन्त समय में मरण काल आने पर संलेखना का सेवन करके भक्तपान का त्यागकर काल की इच्छा न रखते हुए विचरण करेंगे । उस समय हम तीन करण और तीन योग से समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करेंगे, इसी प्रकार समस्त मृषावाद, समस्त अदत्तादान, समस्त मथुन और समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करेंगे और मेरे लिए कुछ मत करो, कराओ मत, और न करते हुए की अनुमोदना करो, उसका भी प्रत्याख्यान करेंगे । वे श्रमणोपासक विना खाये, पीये और विना स्नान किये आसन से उतर कर यदि काल को प्राप्त हो जायें तो उनके काल के विषय में क्या कहना होगा ?

वे अच्छी तरह से काल को प्राप्त हुए हैं, यही कहना होगा ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरकाल तक स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है । वे प्राणी अल्पतर हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत श्रावक के लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—‘उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके ।’ यह भी कथन न्यायसंगत नहीं है ।

५८५. भगवान् ने कहा—इस संसार में कोई ऐसे मनुष्य होते हैं यथा—महान इच्छा वाले, महान आरम्भ वाले, महापरिग्रह वाले, अधार्मिक यावत्—अधर्म से ही वृत्ति उपार्जन करने वाले तथा हनन, छेदन, भेदन और जीवों को काटने, वध करने से जिनके हाथ खून से सने हुए हैं, चण्ड, रुद्र, क्षुद्र, साहसिक, चापलूस, वंचक, मायावी, कपटी, कूट-कपट में रत, उत्तम वस्तु के साथ हीन वस्तु मिलाने वाले, दुःशील वाले, व्रतहीन

वासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, ते चइत्ता भुज्जो सगमादाए दोग्गइगामिणो भवंति ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरइट्ठिया । ते बहुतरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्च-क्खायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्च-क्खायं भवइ । ते महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुभे वा अणो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

५८६. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—अणारंभा अपरिग्गहा धम्मिया-जाव-धम्मेणं चैव विंत्ति कप्पेमाणा विहरंति सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहू । सव्वाओ पाणा-इवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए-जाव-सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए, जेहि समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, विप्प-जहित्ता ते तओ भुज्जो सगमायाए सोग्गइगामिणो भवंति ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरइट्ठिया । ते बहुतरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । ते महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिविरयस्स जं णं तुभे वा अणो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

५८७. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—अप्पिच्छा अप्परंभा अप्परिग्गहा धम्मिया-जाव-धम्मेणं चैव

और बड़ी कठिनाई से प्रसन्न होने योग्य और असाधु होते हैं । वे जीवन पर्यन्त के लिए समस्त प्राणातिपात से निवृत्त नहीं होते हैं—यावत्—जाव-जीव [जीवन पर्यन्त] के लिए समस्त परिग्रहों से निवृत्त नहीं होते हैं । इन प्राणियों का घात करने का श्रमणोपासक व्रतग्रहण के समय से मरण पर्यन्त त्याग करता है, वे पुरुष काल के समय अपनी आयु को छोड़ देते हैं और छोड़कर अपने पापकर्म को अपने साथ लेकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, व्रस भी कहलाते हैं, वे बड़े शरीर वाले और चिरकाल की स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । अतः उस महान व्रसकाय की हिंसा से उपरत, व्रत में स्थित और प्रतिविरत श्रमणोपासक के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं कि 'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके ।' यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है ।

५८६. भगवान् ने कहा—संसार में कोई मनुष्य ऐसे होते हैं, जो आरम्भ नहीं करते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं, धार्मिक यावत्—धर्म से ही वृत्ति का अर्जन करते हुए विचरण करते हैं, सुशील, सुव्रतों के धारक, सरलता से प्रसन्न करने योग्य सुसाधु होते हैं । जो जीवन पर्यन्त के लिए सम्पूर्ण प्राणातिपात से विरत होते हैं—यावत्—यावज्जीवन के लिए परिग्रह से प्रतिविरत होते हैं । श्रमणोपासक व्रतग्रहण के समय से मरणपर्यन्त इन प्राणियों का घात करने का त्याग करता है, वे पुरुष काल के समय अपनी आयु को छोड़ देते हैं, आयु छोड़कर अपने शुभ कर्मों को अपने साथ लेकर मुगति को प्राप्त होते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, व्रस भी कहलाते हैं, वे महान-काय वाले और चिरकाल की स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । अतः उस महान व्रस काय की हिंसा से उपरत, व्रतों में स्थित और प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके ।' यह कथन भी न्याययुक्त नहीं है ।

५८७. भगवान् ने कहा—संसार में कोई मनुष्य ऐसे होते हैं जो अल्प इच्छा वाले, अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह वाले,

वित्ति कप्पेमाणा विहरंति, सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंवा सुसाहू । एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया । -जाव-एगच्चाओ परिग्गहाओ पडिविरया जावज्जीवाए, एगच्चाओ अप्पडिविरया । जेहि समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउगं विप्पजहंति, विप्पजहित्ता ते तओ भुज्जो -सगमादाए सोग्गइगामिणो भवंति ।

ते पाणा वि बुच्चंति, ते तसा वि बुच्चंति ते महाकाया, ते चिरट्ठइया । ते बहुतरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठ-यस्स पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह— 'णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।' अयं पि भे देसे णो गेयाउए भवइ ।

५८८. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया मणुस्सा भवंति, तं जहा—आरणिगया आवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया—जेहि समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ—णो बहुसंजया णो बहुपडिविरया सव्वपाणभूयजीवसत्तोहि अप्पणा सच्चामोसाइं एवं विउंजंति—अहं ण हंतव्वो अण्णे हंतव्वा, अहं ण अज्जावेयव्वो अण्णे अज्जावेयव्वा, अहं ण परिघेतव्वो अण्णे परिघेतव्वा, अहं ण परितावेयव्वो अण्णे परितावेयव्वा, अहं ण उद्वेयव्वो अण्णे उद्वेयव्वा ।

एवामेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गडिया अज्जोववण्णा -जाव-वासाइं चउपंचमाइं छहसमाइं अप्पयरो वा भुज्जयरो वा भुज्जित्तु भोगभोगाइं कालपासे कालं किच्चा अण्णयराइं आसुरियाइं किट्ठिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति । तओ वि विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए तमोव्वत्ताए पच्चारंति ।

ते पाणा वि बुच्चंति, ते तसा वि बुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्ठइया । ते बहुतरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्च-

धार्मिक—यावत—धर्म के द्वारा आजीविका अर्जन करने वाले, शील सम्पन्न, सुव्रती, सरलता से प्रसन्न होने वाले और नुसाधु होते हैं । वे यावज्जीवन के लिए किसी प्राणातिपात प्रतिविरत और किसी एक से अविरत—यावत्—जीवनपर्यन्त के लिए किसी एक परिग्रह से विरत और किसी एक से अविरत होते हैं । श्रमणोपासक व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरणपर्यन्त इन प्राणियों के घात करने का त्याग करता है, वे अपनी उस आयु का त्याग करते हैं और त्याग करके पुनः अपने शुभ कर्मों को साथ लेकर सुगति को प्राप्त होते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, व्रस भी कहलाते हैं, वे महान शरीर वाले और दीर्घ स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है । अतः उस महान व्रस काय की हिंसा से उपरत, व्रतुमें स्थित और प्रतिविरत के लिए आप लोग अथवा अन्य लोग जो कहते हैं कि 'उनके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके ।' यह उपदेश—कथन न्याययुक्त नहीं है ।

५८८. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो जंगल में निवास करते हैं, मठ में रहते हैं, गाँव की सीमा पर रहने वाले हैं, किसी रहस्य को जानने वाले होते हैं—उनको श्रमणोपासक व्रत ग्रहण करने के दिन से लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है—वे संयमी नहीं हैं, वे सर्वसाधक कर्मों से निवृत्त नहीं हैं, समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों में अपने मन से सच्ची-झूठी बात इस प्रकार कहते हैं—मुझको नहीं मारना चाहिये, दूसरों को मारना चाहिये, मुझको आज्ञा नहीं देना चाहिये, दूसरे को आज्ञा देना चाहिये, मुझे ग्रहण नहीं करना चाहिये, अन्य को ग्रहण करना चाहिये, मुझे परिताप नहीं देना चाहिये, दूसरे को परिताप देना चाहिये, मुझे उद्वेलित नहीं करना चाहिये, अन्य को उद्वेलित करना चाहिये ।

इस प्रकार से वे स्त्री-भोगों में मूर्च्छित, गुद्ध, आसक्त—अत्यन्त आसक्त—यावत्,—चार, पांच, छह अथवा दस वर्ष तक अल्प या अधिक भोगोपभोगों को भोगकर काल के समय काल करके अन्यतर असुर योनि में या किल्बिषयोनि में उत्पन्न होते हैं, वे वहाँ से च्यवकर फिर वकरे की तरह मूक और तामस वृत्ति वाले होते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और व्रस भी कहलाते हैं, वे महाकाय वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी

वखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्च-
वखायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडि-
वियरस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ
परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिविखत्ते ।”
अयं पि भे देसे णो जेयाउए भवइ ।

५८६. भगवं च णं उदाहु—संतगेइया पाणा दीहाउया, जेहिं
समणोवासस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिविखत्ते भवइ ।
ते पुव्वामेव कालं करेति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चार्यति ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते
चिरिट्ठिइया, ते दीहाउया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवास-
गस्स सुपच्चवखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवास-
गस्स अपच्चवखायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स
उवट्ठियस्स पडिवियरस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—
“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि
दंडे णिविखत्ते ।” अयं पि भे देसे णो जेयाउए भवइ ।

५९०. भगवं च णं उदाहु—संतगेइया पाणा समाउया, जेहिं
समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिविखत्ते भवइ ।
ते सममेव कालं करेति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चार्यति ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते
समाउया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं
भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चवखायं
भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स पडिवियरस्स
जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ से परियाए
जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिविखत्ते ।” अयं पि भे
देसे णो जेयाउए भवइ ।

५९१. भगवं च णं उदाहु—संतगेइया पाणा अप्पाउया, जेहिं
समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिविखत्ते भवइ । ते
पुव्वामेव कालं करेति, करेत्ता पारलोइयत्ताए पच्चार्यति ।

बहुत होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्या-
ख्यान होता है । वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणो-
पासक का अप्रत्याख्यान होता है । अतः उस महान त्रस काय
की हिंसा से उपशांत, व्रत में उपस्थित, प्रतिविरत को जो आप
अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—‘उसके लिए ऐसी कोई
पर्याय नहीं है, जिससे श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड
का त्याग हो ।’ आपका यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है ।

५८६. भगवान ने कहा—इस जगत में बहुत से प्राणी दीर्घायु
वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रतग्रहण करने के समय से
लेकर मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है । वे प्राणी पहले
ही काल को प्राप्त होकर परलोक में जाते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले तथा चिरकाल की स्थिति वाले और दीर्घ आयु
वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत संख्या वाले हैं, जिनमें श्रमणोपासक
का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर
होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है । अतः
उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपशांत, संयम में स्थित,
प्रतिविरत के लिए जो आप अथवा दूसरे कोई यह कहते हैं—
‘उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के
एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो ।’ यह उपदेश भी न्याय-
युक्त नहीं है ।

५९०. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई प्राणी समान आयु
वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रत ग्रहण के समय से लेकर
मरणपर्यन्त दण्ड देना वजित करता है । वे समकाल में काल
को प्राप्त होते हैं, प्राप्त होकर परलोक में जाते हैं ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले और सम आयु वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक होते हैं
जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे
प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं
होता है । उस महान त्रसकाय की हिंसा से विरत, मुमुक्षु, प्रतिविरत
के लिए आप लोग अथवा अन्य कोई जो यह कहते हैं—‘उसके
लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक
प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो ।’ यह कथन न्याययुक्त नहीं है ।

५९१. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई प्राणी धलर आयु
वाले होते हैं, जिनको श्रमणोपासक व्रतग्रहण के दिन से लेकर
मरणपर्यन्त दण्ड देने का त्याग करता है । वे पहले ही काल
वरते हैं, करके परलोक में जाते हैं ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते अप्पाउया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्च-
वखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपञ्च-
वखायं भवइ । ते महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से
केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिविखत्ते ।”
अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

णवभंगोहिं पच्चवखाणस्स विसय-उवदंसणं—

५६२. भगवं च णं उदाहु—संतेगइया समणोवासगा भवंति ।
तेसि च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—णो खलु वयं संचाएमो मुंडा
भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । णो खलु वयं संचाएमो
चाउद्दसद्धमुद्धिपुण्णमासिणोसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालित्तए ।

णो खलु वयं संचाएमो अपच्छिममारणत्तियसंलेहणाञ्जसणा
ञ्जसिया भत्तपाणपडियाइविखया कालं अणवकंखमाणा विहरित्तए ।
वयं णं सामाइयं देसावगासियं—पुरत्था पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं
एतावताव सव्वापाणेहिं-जाव-सव्वसत्तेहिं दंडे णिविखत्ते सव्वपाण-
भूयजीवसत्तेहिं खेमंकरे अहमंसि ।

१. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स
आयाणसो आमरणंताए दंडे णिविखत्ते, ते तथो आउं विप्पजहंति
विप्पजहित्ता तत्थ आरेणं चेव जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स
आयाणसो आमरणंताए दंडे णिविखत्ते, तेसु पच्चायंति तेहिं
समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते
चिरट्ठिइया । ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्च-
वखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपञ्च-
वखायं भवइ । ते महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्ठियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से
केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे
णिविखत्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, वे त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले होते हैं और अल्प आयु वाले होते हैं । वे प्राणी
अधिक होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है ।
वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान
होता है । उस महान त्रस काय की हिंसा से उपशांत, विरक्त,
प्रतिविरक्त के लिए आप अथवा अन्य लोग जो यह कहते हैं—
'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के
एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो ।' आपका यह कथन भी
न्याययुक्त नहीं है ।

नौ भंगों के द्वारा प्रत्याख्यान का विषय—उपदर्शन—

५६२. भगवान ने कहा—इस जगत में कोई श्रमणोपासक
होते हैं वे इस प्रकार कहते हैं—हम मुण्डित होकर गृह त्याग
कर अनगर प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ नहीं हैं तथा
चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध पालन करने
के लिए भी समर्थ नहीं हैं ।

हम अन्त समय में मारणांतिक संलेखना का सेवन करके,
भक्तपान का त्यागकर, काल की इच्छा न रखते हुए विचरण
करने में भी समर्थ नहीं हैं । अतः हम सामायिक, देशावकाशिक
व्रत को—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में देश
की मर्यादा को स्वीकार करके उससे बाहर के सर्वप्राणियों—
यावत्—सर्व सत्वों को दण्ड देना छोड़कर प्राण, भूत, जीव और
सत्वों का क्षेम करने वाले होंगे ।

१—उससे पहले जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक
ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दंड देने का
त्याग कर दिया है, वे अपनी आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर उस
मर्यादा के बाहर के क्षेत्र में त्रसरूप से उत्पन्न होते हैं, जिनको
श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त
दंड देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं, जिनमें
श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले और निरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक
होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता
है । वे प्राणी अल्प होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान
होता है । उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त,
प्रतिविरक्त के लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—
'उसके लिए ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के
एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो ।' यह कथन भी न्यायसंगत
नहीं है ।

२. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहिंत्ता तत्थ आरेणं चैव जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते, अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चार्यंति । तेहिं समणोवासगस्स अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए णिक्खित्ते दंडे ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्टिइया । ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स पडिविरयस्स जं णं तुढ्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

३. तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति विप्पजहिंत्ता तत्थ परेणं चैव जे तसा थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चार्यंति । तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्टिइया । ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स पडिविरयस्स जं णं तुढ्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

४. तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहिंत्ता तत्थ आरेणं चैव जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चार्यंति । तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ।

२—उस समीप देश में रहने वाले जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को छोड़ देते हैं, और छोड़कर वहीं समीप देश में जो स्थावर जीव हैं, जिनको श्रमणोपासक ने अनर्थ दंड देना वर्जित किया है किन्तु अर्थदण्ड देना वर्जित नहीं किया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें श्रमणोपासक ने अनर्थ दण्ड देना वर्जित नहीं किया है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, और त्रस भी कहलाने हैं, वे महान् शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । उस महान् त्रसकाय की हिंसा से उपशान्त, मुमुक्षु, प्रतिविरत के लिए जो आप अथवा अन्य लोग यह कहते हैं—‘ऐसी एक भी पर्याय नहीं है जिसके लिए श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके ।’ सो यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है ।

३—वहाँ समीप देश में रहने वाले जो त्रसप्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर उससे दूर देश में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, जिनमें श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया था, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, और त्रस भी कहलाने हैं वे महान् शरीर और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी बहुत होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । उस महान् त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त, प्रतिविरत के लिए आप अथवा अन्य जो यह कहते हैं—‘ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके ।’ यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है ।

४—वहाँ समीप देश में जो स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने अनर्थ दंड देना वर्जित किया है, किन्तु अर्थदंड देना वर्जित नहीं किया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं, छोड़कर वहीं समीप देश में जो त्रस प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के दिन से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड देना त्याग दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरट्टिइया । ते बहुयरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्च-
क्खायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्च-
क्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स पडि-
विरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ
परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।”
अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

५. तत्थ आरेणं जं थावरा पाणा, जेहि समणोवासगस्स अट्टाए
दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति,
विप्पजहिता ते तत्थ आरेणं चैव जे थावरा पाणा, जेहि समणो-
वासगस्स अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु
पच्चायंति । तेहि समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया,
ते चिरट्टिइया । ते बहुयरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्च-
क्खायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्च-
क्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं
से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे
णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

६. तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहि समणोवासगस्स
अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं
विप्पजहंति, विप्पजहिता तत्थ परेणं चैव जे तसा थावरा पाणा,
जेहि समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते,
तेसु पच्चायंति । तेहि समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया,
ते चिरट्टिइया । ते बहुयरगा पाणा जेहि समणोवासगस्स सुपच्च-
क्खायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहि समणोवासगस्स अपच्च-
क्खायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं
से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे
णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक
होते हैं । जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता
है और वे प्राणी अल्पतर होते हैं जिनमें श्रमणोपासक का
प्रत्याख्यान नहीं होता है । अतः उस महान त्रसकाय की हिंसा
से उपशांत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये आप अथवा
दूसरे लोग जो यह कहते हैं—‘ऐसी कोई पर्याय नहीं है, जिसमें
श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड का त्याग हो सके ।’
यह भी उपदेश न्याय संगत नहीं है ।

५—वहां समीप देश में जो स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें श्रमणो-
पासक ने प्रयोजनवश दंड देना तो नहीं छोड़ा है, किन्तु
विना प्रयोजन के दण्ड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को
छोड़ते हैं, छोड़कर वहीं समीपवर्ती देश में जो स्थावर प्राणी हैं,
जिन्हें श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दण्ड देना तो नहीं छोड़ा है
किन्तु निष्प्रयोजन दण्ड देना छोड़ दिया है, उनमें उत्पन्न होते
हैं । उन्हें श्रमणोपासक प्रयोजनवश तो दण्ड देता है, परन्तु विना
प्रयोजन के दण्ड नहीं देता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं, त्रस भी कहलाते हैं, वे महाकाय
वाले और चिर स्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक होते हैं,
जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी
अल्पतर हैं, जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है । अतः
उस महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त, प्रतिविरत के
लिए आप लोग अथवा अन्य जो यह कहते हैं—‘ऐसी कोई
पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक भी प्राणी के दण्ड
का त्याग हो सके ।’ यह कथन भी न्याययुक्त नहीं है ।

६—वहां अन्य देश में उत्पन्न जो स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें
श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दण्ड देना तो नहीं त्यागा है किन्तु
निष्प्रयोजन दण्ड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं
और छोड़कर वहीं जो अन्य देशवर्ती त्रस स्थावर प्राणी हैं, जिन्हें
श्रमणोपासक ने व्रत ग्रहण के दिन से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड
देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें
श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान
शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक हैं,
जिनमें श्रमणोपासक का सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी
अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का अप्रत्याख्यान होता है । उस
महान त्रसकाय की हिंसा से उपरत, विरक्त और प्रतिविरत के
लिए आप अथवा दूसरे लोग जो यह कहते हैं—‘ऐसी कोई
पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दण्ड
का त्याग हो सके ।’ यह कथन भी न्यायसंगत नहीं है ।

७. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहिंत्ता तत्थ आरेणं जे तसा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरद्विइया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चवखायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवद्वियस्स पडि-विरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

८. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहिंत्ता तत्थ आरेणं जे थावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स अट्टाए दंडे अणिक्खित्ते अणट्टाए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायति । तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया, ते चिरद्विइया । ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ । ते अप्पयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चवखायं भवइ । से महया तसकायाओ उवसंतस्स उवद्वियस्स पडि-विरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

९. तत्थ परेणं जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, ते तओ आउं विप्पजहंति, विप्पजहिंत्ता ते तत्थ परेणं चैव जे तसथावरा पाणा, जेहिं समणो-

७—वहाँ अन्य देश में उत्पन्न जो ब्रह्म और स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने ब्रतारंभ से लेकर मरणपर्यन्त दंड देना छोड़ दिया है, वे उस आयु को छोड़ देते हैं, छोड़कर श्रावक के द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण में रहने वाले जो ब्रह्म प्राणी हैं, जिनको श्रावक ने ब्रतारंभ से लेकर मरण पर्यन्त दंड देना छोड़ दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहे जाते हैं और ब्रह्म भी कहे जाते हैं, वे महान शरीर वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं वे प्राणी अधिक हैं, जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्प हैं जिनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । उस महान ब्रह्म काय की हिंसा से उपरत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये जो आप अथवा दूसरे लोग यह कहते हैं—‘उसको ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके ।’ यह प्रतिपादन न्यायसंगत नहीं है ।

८—वहाँ अन्य देश में जो ब्रह्म और स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने ब्रत ग्रहण के समय से लेकर मरणपर्यन्त दंड देना त्याग दिया है, वे उस आयु को छोड़ते हैं और छोड़कर श्रावक द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण में रहने वाले जो स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने प्रयोजनवश दंड देना तो नहीं त्यागा है किन्तु निष्प्रयोजन दंड देना त्याग दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहे जाते हैं और ब्रह्म भी कहे जाते हैं, वे महाकाय वाले और चिरस्थिति वाले होते हैं । वे प्राणी अधिक हैं जिनके लिए श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है और वे प्राणी अल्पतर हैं जिनके लिये श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान नहीं होता है । उस महान ब्रह्मकाय की हिंसा से उपशान्त, ब्रत में स्थित और प्रतिविरत के लिये जो आप लोग अथवा अन्य लोग ऐसा कहते हैं ‘उसको ऐसी कोई पर्याय नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग हो सके ।’ यह भी सिद्धान्त-मत न्यायसंगत नहीं है ।

९—वहाँ अन्य देश में उत्पन्न जो ब्रह्म स्थावर प्राणी हैं, जिनको श्रमणोपासक ने ब्रत ग्रहण करने के समय से लेकर मरण पर्यन्त दण्ड का त्याग कर दिया है । वे उस आयु को छोड़ देते हैं, छोड़कर वे श्रावक के द्वारा ग्रहण किये हुए देश परिमाण से अन्य देशवर्ती जो ब्रह्म और स्थावर प्राणी हैं जिनको श्रमणोपासक ने ब्रत ग्रहण करने के दिन से लेकर मरणपर्यन्त दंड

वासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते, तेसु पच्चायंति ।
तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चवखायं भवइ ।

ते पाणा वि वुच्चंति, ते तसा वि वुच्चंति, ते महाकाया,
ते चिरट्टिइया । ते बहुरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्च-
वखायं भवइ । ते अप्परगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स
अपच्चवखायं भवइ । ते महया तसकायाओ उवसंतस्स उवट्टियस्स
पडिविरयस्स जं णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं वयह—“णत्थि णं
से केइ परियाए जंसि समणोवासगस्स एगपाणाए वि दंडे
णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए भवइ ।

तस-थावर-पाणाणं अव्वोच्छित्ती—

५६३. भगवं च णं उदाहु—ए एयं भूयं ण एय भव्वं ण एयं
भविस्सं जण्णं—तसा पाणा वोच्छिज्जिहंति, थावरा पाणा भविस्संति ।
थावरा पाणा वोच्छिज्जिहंति, तसा पाणा भविस्संति । अवो-
च्छिण्णेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुब्भे वा अण्णो वा एवं
वदह—“णत्थि णं से केइ परियाए-जाव-जंसि समणोवासगस्स
एगपाणाए वि दंडे णिक्खित्ते ।” अयं पि भे देसे णो णेयाउए
भवइ ।

उवसंहारो—

५६४. भगवं च णं उदाहु—आउसंतो ! उदगा ! जे खलु समणं
वा माहणं वा परिभासइ मित्ति मण्णइ आगमित्ता णाणं, आग-
मित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं पावाणं कम्मणं अकरणयाए से
खलु परलोगपत्तिमंथत्ताए चिट्ठइ ।

जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिभासइ मित्ति मण्णइ
आगमित्ता णाणं, आगमित्ता दंसणं, आगमित्ता चरित्तं पावाणं
कम्मणं अकरणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिट्ठइ ।

तए णं से उदए पेडालपुत्ते भगवं गोयमं अणाढायमाणे जामेव
दिंसि पाउब्भूए तामेव दिंसि पहारेत्थ गमणाए ।

भगवं च णं उदाहु—आउसंतो ! उदगा ! जे खलु तहाह-
वस्स तमणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं
सुवयणं सोच्चा णिसम्म अप्पणो चैव तुहुमाए पडिलेहाए अणुत्तरं
जोग्गेमपयं लंभिए समाणे सो वि ताव तं आडाइ परिजाणेइ
वंदइ णमंसइ सक्कारेइ तम्मणोइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं
पञ्जुवासइ ।

देने का त्याग कर दिया है, उनमें उत्पन्न होते हैं । उनमें
श्रमणोपासक का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान होता है ।

वे प्राणी भी कहलाते हैं और त्रस भी कहलाते हैं, वे महान-
काय और चिर स्थिति वाले होते हैं । उस महान त्रसकाय की
हिंसा से उपशांत, संयम में स्थित और प्रतिविरत के लिये
आप या अन्य कोई जो यह कहते हैं—‘उसको ऐसी कोई पर्याय
नहीं है जिसमें श्रमणोपासक के एक प्राणी के भी दंड का त्याग
हो ।’ यह मत भी न्यायसंगत नहीं है ।

त्रस स्थावर प्राणियों की अव्युच्छित्ति—

५६३. भगवान ने कहा—पूर्वकाल में यह नहीं हुआ और अना-
गत अनन्त काल में भी यह नहीं होगा और वर्तमान में भी यह
नहीं होता है—त्रस प्राणी सर्वथा उच्छिन्न हो जायेंगे और सबके
सब स्थावर हो जायेंगे । स्थावर प्राणी सर्वथा उच्छिन्न हो जायें
और सबके सब त्रस हीं जायेंगे । त्रस और स्थावर प्राणियों के
सर्वथा उच्छिन्न न होने पर तुम लोग अथवा दूसरे लोग जो यह
कहते हैं—‘वह कोई पर्याय नहीं है, जिसमें श्रमणोपासक के एक
प्राणी के भी दंड का त्याग हो ।’ आपका यह सिद्धान्त भी न्याय-
संगत नहीं है ।

उपसंहार—

५६४. भगवान ने कहा—हे आयुष्मन् उदक ! जो व्यक्ति श्रमण
या माहण के प्रति मैत्री भाव रखते हुए भी उनकी निन्दा करता
है तो ज्ञान को प्राप्त करके, दर्शन को प्राप्त करके चारित्र्य को
प्राप्त करके पाप कर्मों का विनाश करने के लिए तत्पर होकर
भी परलोक का विघात करता है ।

जो श्रमण अथवा माहण की निन्दा नहीं करता है किन्तु
मैत्री भाव रखता है तो ज्ञान को प्राप्त करके, दर्शन को प्राप्त
करके और चारित्र्य को प्राप्त करके, पाप कर्मों का विघात करने
के लिये उद्यत है, वह निश्चय ही परलोक की विशुद्धि के लिये
स्थित है [समर्थ होता है ।]

तत्पश्चात् वह उदक पेडालपुत्र भगवान गौतम का आदर
नहीं करता हुआ जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में जाने
के लिए उद्यत हुआ ।

भगवान ने कहा—हे आयुष्मन् उदक ! जो पुरुष तथारूप
श्रमण अथवा माहण के निकट एक भी आर्य, धार्मिक सुवचन को
सुनकर एवं समझकर अपनी सूक्ष्म बुद्धि से यह विचार कर कि
इन्होंने अनुत्तर योग क्षेम का मार्ग प्राप्त कराया है वह भी
उन्हें आदर देता है, उपकारी मानता है, वंदना नमस्कार करता
है, सत्कार-सम्मान करता है, कल्याण और मंगल रूप समझता
है और देवता एवं चैत्य की तरह उनकी पर्युपासना करता है ।

५६५. तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—
“एएसि णं भंते ! पदाणं पुँद्वि अण्णाणयाए अस्सवणयाए
अबोहीए अणभिममेणं अदिट्ठाणं अस्सुयाणं अमुयाणं अविण्णायाणं
अणिज्जूढाणं अब्बोगडाणं अब्बोच्छिण्णाणं अणिसिट्ठाणं अणिज्जू-
ढाणं अणुवहारियाणं एयमट्ठं णो सहहियं णो पत्तियं णो रोइयं !
एएसि णं भंते ! पदाणं एण्हि जाणयाए सवणयाए बोहीए
अभिममेणं दिट्ठाणं सुयाणं सुयाणं विण्णायाणं णिज्जूढाणं वोगडाणं
वोच्छिण्णाणं णिसिट्ठाणं णिवूढाणं उवधारियाणं एयमट्ठं सहहामि
पत्तियामि रोएमि ‘एवमेयं जहा णं, तुभ्भे वदह ।’

तए णं भगवं गोयमे उदगं पेढालपुत्तं एवं वयासी—
“सहहाहि णं अज्जो ! पत्तियाहि णं अज्जो ! रोएहं णं अज्जो !
एवमेयं जहा णं अह्हे वयामो ।”

उदयस्स चाउज्जामधम्माओ पंचमहव्वयग्गहणं—

५६६. तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—
इच्छामि णं भंते ! तुव्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमह-
व्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

तए णं भगवं गोयमे उदगं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे
भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ ।

तए णं से उदए पेढालपुत्ते समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो
आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता
एवं वयासी—

“इच्छामि णं भंते ! तुव्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ
पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।”

अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिबंघं करेहि ।

तए णं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स
अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं
उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

—त्ति वेमि ।

—सुय०, सु०२, अ० ७

५६५. तत्पश्चात् उस उदक पेढालपुत्र ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—‘हे भदन्त ! मैंने इन पदों को पहले कभी नहीं जाना है, न सुना है, न समझा है, न हृदयंगम किया है, जिससे ये पद मेरे द्वारा अदृष्ट, अर्थात् नहीं देखे हुए तथा नहीं सुने हुए हैं, मेरे द्वारा नहीं जाने हुए और स्मरण नहीं किए हुए हैं, गुरुमुख से प्राप्त नहीं किये हैं, ये पद मेरे लिये प्रगट नहीं हैं, मेरे द्वारा संशय रहित ज्ञात नहीं है, इनका मैंने निर्वह नहीं किया है, इनका मैंने अवधारण—निश्चय नहीं किया है, अतएव इन पदों में मैंने श्रद्धान नहीं किया है, विश्वास नहीं किया है तथा रुचि नहीं की है । हे भदन्त ! इन पदों को मैंने अभी जाना है, अभी सुना है, अभी समझा है, अभी हृदयंगम किया है, देखा है, सुना है, स्मरण किया है, इनका विशेष रूप से ज्ञान किया है, ये पद अभी निर्वूढ हुए हैं, प्रगट हुए हैं, संशयरहित ज्ञात हुए हैं, अनुज्ञात हुए हैं, निर्वूढ हुए हैं, इनका निश्चय हुआ है, इसलिये अब मैं इन पदों में श्रद्धान करता हूँ, विश्वास करता हूँ, रुचि करता हूँ, ‘यह बात वैसी ही है, जैसा आप कहते हैं ।’

इसके बाद भगवान् गौतम ने उदक पेढालपुत्र से इस प्रकार कहा—‘हे आर्य ! जैसा हम कहते हैं, वैसा श्रद्धान करो, हे आर्य ! वैसा विश्वास करो, हे आर्य ! वैसी ही रुचि करो ।

उदक का चातुर्यामि धर्म से पंच महाव्रत ग्रहण—

५६६. तत्पश्चात् वह उदक पेढालपुत्र भगवान गौतम से इस प्रकार बोला—हे भदन्त ! मैं आपके पास चार याम वाले धर्म को छोड़कर पंच महाव्रत युक्त धर्म को प्रतिक्रमण के साथ स्वीकार करके विचरना चाहता हूँ ।

इसके बाद भगवान गौतम उदक पेढालपुत्र को लेकर जहां श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे, वहाँ आये ।

तत्पश्चात् उदक पेढालपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर की तीन वार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘हे भदन्त ! मैं आपके निकट चार याम वाले धर्म को छोड़कर पंच महाव्रत वाले धर्म को प्रतिक्रमण के साथ धारण करके विचरना चाहता हूँ ।’

हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम को सुख हो, वैसा करो, प्रतिवन्ध न करो । [श्रमण भगवान महावीर ने कहा ।]

इसके पश्चात् वह उदक पेढालपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के निकट चार याम वाले धर्म से पांच महाव्रत वाले धर्म को प्रतिक्रमण के साथ प्राप्त करके विचरण करता है ।

—इस प्रकार मैं कहता हूँ ।

४६. महावीरतिथे नंदीफलणाय

चंपाए धणसत्थवाहो—

५६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था ।
पुण्णभहे चेइए । जियसत्तू राया ।

तत्थ णं चंपाए नयरीए धणे नामं सत्थवाहे होत्था—अड्ढे-
जाव-अपरिभूए ।

तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता
नाम नयरी होत्था—रिद्धत्थिमिय-समिद्धा वण्णओ ।

तत्थ णं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेऊ नामं राया होत्था—
महया० वण्णओ ।

धणस्स अहिच्छत्तगमणघोसणा—

५६८. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्व-
रत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्जत्थिए-जाव-संकप्पे समुष्प-
ज्जित्था—सेयं खलु मम विपुलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नयरिं
वाणिज्जाए गमित्ताए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता गणिमं च धरिमं च
मेज्जं च पारिच्छेज्जं च—चउव्विहं भंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सगडी-
सागडं सज्जेइ, सज्जेत्ता सगडी-सागडं भरेइ, भरेत्ता कोडुंबिय-
पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासीं—

“गच्छहं णं तुवमे देवानुप्पिया ! चंपाए नयरीए सिंघाडग-
जाव-महापहवहेसु उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु
देवानुप्पिया ! धणे सत्थवाहे विपुलं पणियं आदाय इच्छइ अहिच्छत्तं
नयरिं वाणिज्जाए गमित्ताए, तं जो णं देवानुप्पिया ! चरए वा
चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा पंडुरंगे वा गोयमे वा
गोव्वत्तिए वा गिह्धिम्ममे वा धम्मचिंतए वा अविच्छ-विच्छ-
वुड्ढसावग-रत्तपट-निगंथप्पभिई पासंडत्थे वा गिह्त्थे वा धणेणं
सत्थवाहेणं सद्धि अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे
अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ, अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ,
अकुंडिस्स कुण्डियं दलयइ, अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, अपक्खे-

४६. महावीरतीर्थ में नंदीफल ज्ञात (उदाहरण)

चम्पा में धन्य सार्थवाह—

५६७. उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी ।
पूर्णभद्र चैत्य था । जितशत्रु नामक राजा था ।

उस चंपा नगरी में धन्य नामक सार्थवाह था, जो धनाढ्य-
यावत्-किसी से पराभूत होने वाला नहीं था ।

उस चंपा नगरी की उत्तर-पूर्व दिशा में अहिच्छत्रा नामक
नगरी थी—जो भवनों आदि की ऋद्धि तथा समृद्धि से परिपूर्ण
थी, वर्णन करना :

उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामक राजा था—वह
महाहिमवन्त पर्वत आदि; वर्णन करना ।

धन्य की अहिच्छत्रा-गमन घोषणा—

५६८. तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् उस धन्य सार्थवाह के मन
में मध्य रात्रि के समय में इस प्रकार का अध्यवसाय-यावत्-
संकल्प उत्पन्न हुआ—विक्रय करने योग्य विपुल वस्तुओं को
लेकर मुझे अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार करने के लिये जाना
श्रेयस्कर है—उसने ऐसा विचार किया, विचार करके गणिम,
धरिम, मेय और परिच्छेद्य—इस प्रकार चारों प्रकार के पदार्थों
को ग्रहण किया, ग्रहण करके गाड़ी-गाड़े तैयार किये, तैयार
करके गाड़ी-गाड़े भरे, भरकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया,
बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रियो ! जाओ और चंपा नगरी के श्रृंगाटक-यावत्-
राजमार्गों और मार्गों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार
कहो—हे देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह विपुल विक्रय वस्तुओं
को लेकर वाणिज्य के निमित्त अहिच्छत्रा नगरी में जाने की
इच्छा करता है, इसलिये हे देवानुप्रियो ! जो भी चरक अथवा
चोरिक अथवा चर्मखंडिक अथवा भिच्छुंड या पांडुरंग या गौतम
या गोव्रतिक, या गृह्धिर्मा या धर्मचिन्तकं या अविच्छ-विच्छ-
वृद्ध-श्रावक-रत्तपट-निग्रन्थ आदि व्रतवान या गृहस्थ-जो भी कोई
धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहता हो,
उसको धन्य सार्थवाह साथ ले जायेगा और जिसके पास छतरी
नहीं होगी उसे छतरी देगा, विना जूते वाले को जूता दिलायेगा,
जिसके पास कर्मडलु नहीं होगा उसे कर्मडलु दिलायेगा जिसके
पास पाथेय नहीं होगा उसे पाथेय [मार्ग में खाने के लिये भोजन]

वगस्स पक्खेवं दलयइ, अंतरा वि य से पडियस्स वा भग्गलुगस्स साहेज्जं दलयइ, सुहंसुहेणं य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्ठु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठुट्ठा चंपाए नयरीए सिघाडग-जाव-महापहपहेसु एवं वयासी—हंदि सुणंतु भगवंतो ! चंपानयरीवत्थवा ! वहवे चरगा ! वा-जाव-गिहत्था ! वा, जो णं धणेणं सत्थवाहेणं सद्धि अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ, तस्स णं धणे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलयइ जाव-सुहंसुहेणं य अहिच्छत्तं संपावेइ त्ति कट्ठु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणति ।

तए णं तेसि कोडुम्बियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा चंपाए नयरीए वहवे चरगा य-जाव-गिहत्था य जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति ।

तए णं धणे सत्थवाहे तेसि चरगाण य-जाव-गिहत्थाण य अच्छत्तगस्स छत्तं दलयइ-जाव-अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ, दलयित्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुव्भे देवानुप्पिया ! चंपाए नयरीए वहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवाल्लेमाणा-पडिवाल्लेमाणा चिट्ठह ।

तए णं ते चरगा य-जाव-गिहत्था य धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा चंपाए नयरीए वहिया अग्गुज्जाणंसि धणं सत्थवाहं पडिवाल्लेमाणा-पडिवाल्लेमाणा चिट्ठंति ।

धणकओ नन्दीफलरुक्खोवभोगनिसेहो—

५६६. तए णं धणे सत्थवाहे सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्तंसि विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावेत्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडी-ज्जागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता चंपाओ नयरीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता नाइविप्पगिट्ठेहि अट्ठाणोहि वसमाणे-वसमाणे सुहेहि वसहि-पायरा तेहि अंगं जणशयं मज्झंमज्जेणं जेणेव देसगं तेणेव उवागच्छइ,

देगा, जिसके पास प्रक्षेप नहीं होगा, उसे प्रक्षेप [मार्ग व्यय के लिये धन] दिलायेगा, जो बीच में पड़ जायेगा, भग्न हो जायेगा अथवा रुग्ण हो जायेगा उसकी सहायता—सार-सम्भाल करेगा और सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचायेगा—ऐसा करके दुवारा और तिवारा भी घोषणा करो, घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुए और चंपा नगरी के श्रृंगाटक-यावत्-राजमार्गों, मार्गों में जाकर इस प्रकार बोले—‘हे चंपा नगरी के निवासी भगवन्तो ! चरको ! अथवा-यावत्-गृहस्थो ! आदि सुनो—जो धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी में जाना चाहता हो, उसको धन्य सार्थवाह ले जायेगा और जिसके पास छतरी नहीं होगी उसे छतरी दिलायेगा-यावत्-सुखपूर्वक अहिच्छत्रा नगरी तक पहुँचायेगा, इस तरह कहकर दूसरी वार और तीसरी वार भी घोषणा की और घोषणा करके उसकी आज्ञा उसे वापस लौटाते हैं ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस बात को सुनकर चंपा नगरी के जो बहुत से चरक और-यावत्-गृहस्थ थे, वे जहाँ धन्य सार्थवाह था वहाँ आये ।

तत्पश्चात् उन चरकों और-यावत्-उन गृहस्थों में से जिनके पास छतरी नहीं थी उनको धन्य सार्थवाह ने छतरी दिलवाई-यावत्-पाथेय नहीं था उन्हें पाथेय दिया, देकर इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और चंपा नगरी के बाहर-प्रधान उद्यान में मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरो ।

तदनन्तर वे चरक और-यावत्-गृहस्थ धन्य सार्थवाह के इस कथन को सुनकर चंपानगरी के बाहर प्रधान उद्यान में धन्य सार्थवाह की प्रतीक्षा करते हुए ठहर गये ।

धन्यकृत नन्दीफलवृक्षोवभोग निपेध—

५६०. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने शुभ तिथि, करण और नक्षत्र में विपुल अन्न, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनवाया, बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन, मन्वन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करके उन्हें भोजन कराया, भोजन कराके उनसे अनुमति ली, अनुमति लेकर गाड़ी—गाड़ी जुतवाये, जुतवाकर चंपानगरी से बाहर निकला, निकलकर बहुत दूर-दूर पर पड़ाव न करता हुआ अर्थात् थोड़ी-थोड़ी दूरी पर मार्ग में वनता बनता हुआ, सुखजनक वसति और प्रायराग [नाशता] करता हुआ, अंगदेश के धीचों धीच होकर देग की मोना पर जा पहुँचा, वहाँ पहुँचकर गाड़ी-गाड़ी खोले, खोलेकर पड़ाव

उवागच्छिता सगडी-सागडं मोयावेइ, मोयावेत्ता सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—“एवं खलु देवाणु-प्पिया ! इमीसे आगामियाए छिण्णावाथाए दीहमद्धाए अडवीए बहुमज्झवेसभाए, एत्थ णं वहवे नंदिफला नामं रुक्खा—किण्हा-जाव-पत्तिया पुप्फिया फलिया हरिया रेरिज्जमाणा सिरीए अईव-अईव उवतोभेमाणा चिट्ठंति—मणुण्णा वण्णेणं मणुण्णा गंधेणं मणुण्णा रसेणं मणुण्णा फासेणं मणुण्णा छायाए ।

तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसि नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चैव जीवियाओ ववरोवेति । तं मा णं देवाणुप्पिया ! केइ तेसि नंदिफलाणं मूलाणि वा-जाव-हरियाणि वा आहरउ, छायाए वा वीसमउ, मा णं से वि अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सउ । तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अण्णेसि रुक्खाणं मूलाणि य-जाव-हरियाणि य आहारेह, छायासु वीसमह' त्ति घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोएइ, जोएत्ता जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तेसि नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि कोडु-म्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—“एए णं देवाणु-प्पिया ! ते नंदिफला रुक्खा किण्हा-जाव-मणुण्णा छायाए । तं जो णं देवाणुप्पिया ! एएसि नंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ-जाव-अकाले चैव जीवियाओ ववरोवेति । तं मा णं तुब्भे तेसि नंदिफलाणं मूलाणि वा-जाव-अहारेह, छायाए वा वीसमह, मा णं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सह, अण्णेसि रुक्खाणं मूलाणि य-जाव-आहारेह, छायाए वा वीसमह त्ति कट्ठु घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।” ते वि तहेव घोसणं घोसेत्ता तमाण-त्तियं पच्चप्पिणंति ।

डाला, पड़ाव डालकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम लोग मेरे सार्थनिवेश में ऊँचे-ऊँचे स्वर से बार-बार उद्घोषणा करते हुए ऐसा कहो—‘हे देवानुप्रिय ! इस आगे आने वाली अटवी में मनुष्यों का आवागमन नहीं होता है तथा यह बहुत लम्बी है, उसके मध्यभाग में बहुत से नन्दीफल नामक वृक्ष हैं जो कृष्ण वर्ण वाले-यावत्-पत्तों-पुष्पां-फलों वाले, हरे, शोभायमान और सौन्दर्य से अतीव-अतीव शोभित हैं,—उनका रूप-रंग मनोज्ञ है, गंध मनोज्ञ है, रस मनोज्ञ है, स्पर्श मनोज्ञ है और छाया मनोज्ञ है ।

किन्तु हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अथवा हरित का भक्षण करेगा अथवा छाया में विश्राम करेगा, उसको आपाततः [क्षण भर] तो अच्छा लगेगा, किन्तु उसके बाद उसका परिणमन होने पर अकाल में ही वह मृत्यु को प्राप्त होगा । अतएव हे देवानुप्रियो ! तुममें से कोई उन नन्दीफलों के मूल अथवा-यावत्-हरित का सेवन न करे, छाया में विश्राम न करे, जिससे अकाल में ही जीवन का नाश न हो । ‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग दूसरे वृक्षों के मूल-यावत्-हरित का भक्षण करना और उनकी छाया में विश्राम लेना ।’ इस प्रकार की घोषणा करो, घोषणा करके मेरी आज्ञा वापस लौटाओ । वे भी उसी तरह घोषणा करके उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

तदनन्तर धन्य सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाये, जुतवाकर जहाँ नन्दीफल नामक वृक्ष थे, वहाँ आया, आकर उन नन्दीफल वृक्षों से न अति दूर और न अति समीप सार्थनिवेश किया—पड़ाव डाला, सार्थ निवेश करके पुनः दूसरी बार और तीसरी बार भी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम मेरे सार्थ निवेश में ऊँचे-ऊँचे स्वर से पुनः पुनः उद्घोषणा करते हुए कहो—‘हे देवानुप्रियो ! वे नन्दीफल वृक्ष ये हैं जो कृष्ण वर्ण वाले-यावत्-मनोज्ञ छाया वाले हैं । अतएव हे देवानुप्रियो ! जो उन नन्दीफल वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज या हरित का भक्षण करेगा-यावत्-वह अकाल में ही जीवन का नाश करेगा । इसलिये तुम उन नन्दीफल वृक्षों के मूल या-यावत्-भक्षण न करना अथवा छाया में विश्राम न करना, जिससे ये अकाल में ही जीवन का नाश न कर सकें । अन्य वृक्षों के मूल और-यावत्-भक्षण करना, छाया में विश्राम करना, इस प्रकार की घोषणा करो, घोषणा करके मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ ।’ वे भी उसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापस सौंपते हैं ।

निसेहानुसरणस्स फलं—

६०० तत्थ णं अत्थेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सहंति पत्तिर्यंति रोयंति, एयमट्ठं सहमाणा पत्तियमाणा रोयमाणा तेसि नंदिफलाणं दूरंदूरेणं परिहरमाणा-परिहरमाणा अण्णेसि खखाणं मूलाणि य-जाव-आहारंति, छायासु वीसमंति । तेसि णं आवाए नोभद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा सुभरूवत्ताए सुभगंधत्ताए सुभरसत्ताए सुभफासत्ताए सुभछायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्जायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचसु कामगुणेषु नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्जइ, नो मुज्जइ नो अज्जोववज्जइ, से णं इहभवे चैव बहूणं समाणां बहूणं समणीणं बहूणं सावागाणं बहूणं सावियाणं य अच्चणिज्जे भवइ, परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थेयणाणि य कण्णछेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं—हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि उल्लंघणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमट्ठं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व ते पुरिसा ।

निसेहापालणे विपत्ती—

६०१. तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स एयमट्ठं नो सहंति नो पत्तिर्यंति नो रोयंति, धणस्स, एयमट्ठं असहमाणा अपत्तियमाणा अरोयमाणा जेणेव ते नंदिफला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता तेसि नंदिफलाणं मूलाणि य-जाव-आहारंति, छायासु वीसमंति तेसि णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा-परिणममाणा अकाले चैव जीवियाओ ववरोवेंति ।

६०२. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्जायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए-समाणे पंचसु कामगुणेषु सज्जइ रज्जइ गिज्जइ मुज्जइ अज्जोववज्जइ, से णं इहभवे-जाव-अणादियं च णं अणवदग्गं वीहमट्ठं संसारकंतारं भुज्जो अणुपरियट्ठिस्सइ—जहा व ते पुरिसा ।

निषेधानुसरण का फल—

६००. उनमें से किन्हीं-किन्हीं पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा की, विश्वास किया, रुचि की, इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करते हुए उन नन्दीफलों का दूर से त्याग करते हुए दूसरे वृक्षों के मूल आदि का सेवन करते थे, छाया में विश्राम करते थे । उन्हें तत्काल भद्र [सुख] तो प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसके पश्चात् ज्यों-ज्यों उनका परिणमन होता गया त्यों-त्यों वे पुनः पुनः शुभ गंध, शुभ वर्ण, शुभरस, शुभ स्पर्श और शुभ छायारूप में परिणत होते गये ।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो निग्रन्थ या निग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर, अनगारत्व अंगीकार करके पाँच इन्द्रियों के काम-भोगों में आसक्त नहीं होते हैं, अनुरक्त नहीं होते हैं, वृद्ध नहीं होते हैं, सूच्छित्त नहीं होते हैं, अत्यन्त आसक्त नहीं होते हैं, वे इसी भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं के पूजनीय होते हैं और परलोक में भी बहुत से हस्तछेदन, कर्ण छेदन, नासाछेदन, उसी तरह हृदय विदारण, वृषण [अंडकोप] उत्पादन, फांसी लगाकर लटकाना आदि दुःखों को प्राप्त नहीं करते हैं और अनादि, अनन्त लम्बे रास्ते वाले, चातुर्गतिक रूप संसार कांतार को पार कर जाते हैं—जैसे वे पुरुष ।

निषेध के न पालन से विपत्ति—

६०१. उनमें से कितनेक पुरुषों ने धन्य सार्थवाह की इस बात पर श्रद्धा नहीं की, विश्वास नहीं किया, रुचि नहीं की, धन्य सार्थवाह की बात पर श्रद्धा न करके, विश्वास न करके, रुचि न करके जहाँ वे नन्दीफल वृक्ष थे, वहाँ आये, आकर उन्होंने उन नन्दीफल वृक्षों के मूलों और-यावत्-भक्षण-सेवन किया, विश्राम किया, उन्हें तत्काल तो सुख प्राप्त हुआ किन्तु उसके बाद में परिणमन होने पर अकाल में ही जीवन का विनाश करते गये ।

६०२. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निग्रन्थ अथवा निग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के निकट मुंडित होकर गृहत्याग कर, अनगार-प्रव्रज्या अंगीकार करके पाँच इन्द्रियों के काम-भोगों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, वृद्ध होता है, सूच्छित्त होता है, अत्यन्त आसक्त होता है, वह इन भव में-यावत्-अनादि, अनन्त, दीर्घपथ वाले संसार कांतार में चारचार परिभ्रमण करता रहता है—जैसे कि वे पुरुष ।

धणस्स अहिच्छत्तागमणं—

६०३. तए णं से धणे सत्थवाहे सगडी-सागडं जोयावेइ, जोयावेत्ता जेणेव अहिच्छत्ता नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता अहिच्छत्ताए नयरीए वहिया अग्गज्जाणे सत्थनिवेसं करेइ, करेत्ता सगडी-सागडं मोयावेइ । तए णं से धणे सत्थवाहे महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेहइ, गेहिहत्ता बहुपुरिसेहि सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयारि मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेइ । तए णं ते कणगकेऊ राया हट्टुट्टु धणस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छत्ता धणं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता उस्सुक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ, भंडविणिमयं करेइ, करेत्ता पडिभंड गेहइ, गेहिहत्ता सुहंसुहेणं जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं अभिसमण्णागए विपुलाइं माणुस्साइं भोगभोगाइं पच्चणु-भवमाणे विहरइ ।

धणस्स पव्वज्जा—

६०४. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं ।

धणे सत्थवाहे धम्म सोच्चा जेट्टुत्तं कुडुम्बे ठावेत्ता पव्वइए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे । महाविदेहे वासे सिज्जि-हिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ ।^१

—जायाधम्मकहाओ सु० १, अ० १५

धन्य का अहिच्छत्तागमन—

६०२. तत्पश्चात् उस धन्य सार्थवाह ने गाड़ी-गाड़े जुतवाये, जुतवाकर जहाँ अहिच्छत्तानगरी थी, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर अहिच्छत्ता नगरी के बाहर प्रधान उद्यान में पड़ाव डाला, पड़ाव डालकर गाड़ी-गाड़े गुलवा दिये । तदनन्तर उस धन्य सार्थवाह ने महामूल्यवान महर्ष्य, महान पुरुषों के योग्य, राजा के योग्य उपहार, लिया उपहार लेकर बहुत पुरुषों के साथ, उनसे परिवृत्त होकर अहिच्छत्ता नगरी के मध्यभाग में होकर प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ कनककेतु राजा था, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर घुमाकर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर उस महामूल्यवान महर्ष्य महान पुरुषों के योग्य राजा के योग्य भेंट को सामने रखा । तदनन्तर राजा कनककेतु ने हर्षित और संतुष्ट होकर धन्य सार्थवाह की उस महामूल्यवान महर्ष्य, उत्तम पुरुषों के योग्य, राजोचित भेंट को स्वीकार किया, स्वीकार करके धन्य सार्थवाह का सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उत्शुल्क कर दिया—राजकर माफ कर दिया, शुल्क माफ करके विदा किया, फिर धन्य सार्थवाह ने अपने भांड-माल का विनिमय किया, विनिमय करके बदले में दूसरा भांड-माल लिया माल लेकर सुखपूर्वक जहाँ चम्पानगरी थी, वहाँ आया, आकर अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों संबंधियों परिजनों के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगोपभोगों का वारंवार अनुभव करते हुए विचरने लगा ।

धन्य की प्रव्रज्या—

५६५. उस काल उस समय स्थविर भगवन्तों का आगमन हुआ ।

धन्य सार्थवाह धर्म श्रवण करके ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके—कुटुम्ब का भार सौंप करके दीक्षित हो गया, और सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके एवं बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को निर्मल करके किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ । महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा, बोधि को प्राप्त करेगा, मुक्ति को प्राप्त करेगा, परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा । □ □

१. वृत्तिकत्ता समुद्धता निगमनगाहा—

चंपा इव मणुयगई, धणोव्व भयवं जिणोदएक्करसो । अहिच्छत्तानयरिसमं, इह निव्वाणं मुणेयव्वं ॥१॥
घोसणया इव तित्थंकरस्स सिवमग्गदेसणमहग्घं । चरगाइणो व्व एत्थं, सिवसुहकामा जिया बहवे ॥२॥
नदिफलाइ व्व इहं, सिवपह्वडिपण्णगाण विसया उ । तव्वभक्खणाओ मरणं, जह तह विसएहि संसारो ॥३॥
तव्वज्जणेण जह इट्टपुरगमो विसयवज्जणेण तहा । परमानंदनिबंधण-सिवपुरगमणं मुणेयव्वं ॥४॥

४७. महावीरतित्थे धणसत्थवाहकहाणयं

रायगिहेधणसत्थवाहदारिया सुसुमा—

६०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—
वण्णओ ।

तत्थ णं धणे नामं सत्थवाहे । भद्रा आरिया ।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्राए अत्तया पंच
सत्थवाहदारणा होत्था, तं जहा—धणे धणपाले धणदेवे धणगोवे
धणरक्खिए ।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स धूया भद्राए अत्तया पंचभूं
पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुसुमा नामं दारिया होत्था—सूमाल-
पाणिपाया० ।

चिलाय-दासचेडेण कुमार-कुमारीणं कीडणकाले तज्जणं—

६०६. तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं दासचेडे
होत्था—अहीणपंचिदियसरीरे मंसोवच्चिए वालकीलावणकुसले
यावि होत्था ।

तए णं से दासचेडे सुसुमाए दारियाए वालगाहे जाए यावि
होत्था, सुसुमं दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हत्ता व्हहिं दारएहिं
य दारियाहिं य डिभएहिं य डिभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं
य सद्धिं अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे तेसिं वहुणं दारयाण य दारियाण
य डिभयाण य डिभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पे-
गइयाणं खुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ, अप्पे-
गइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिद्धसए अवहरइ,
अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ,
अप्पेगइयाणं आभरगमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आओत्तइ
अवहसइ निच्छोडेइ निव्वच्छेइ तज्जेइ तालेइ ।

६०७. तए णं ते वह्वे दारणा य दारिया य डिभया य डिभिया य
कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य तोयमाणा य
तिप्पमाणा य विलवमाणा य ताणं ताणं अम्मापिऊणं निव्वेदेति ।

४७. महावीरतीर्थ में धन्य सार्थवाह कथानक

राजगृह में धन्य सार्थवाह कथानक—

६०५. उस काल और उस समय राजगृह नामक नगर था—
वर्णन करो ।

वहाँ धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था । उसकी
पत्नी का नाम भद्रा था ।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र भद्रा के आत्मज पांच सार्थवाह
दारक थे, यथा—धन, धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित ।

उस धन्य सार्थवाह की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पांच पुत्रों
के पश्चात् जन्मी हुई सुसुमा नामक बालिका थी—जिसके हाथ
पैर आदि अंगोपांग सुकुमार थे ।

चिलात-दासचेटक द्वारा कुमार-कुमारियों का क्रीड़ाकाल
में तर्जन—

६०६. उस धन्य सार्थवाह के चिलात नामक दासचेट था—जो
पाँचों इन्द्रियों और शरीर से परिपूर्ण एवं मांस से उपचित था
तथा वच्चों को लाने (खिलाने) में भी कुशल था ।

तत्पश्चात् वह दासचेट सुसुमा बालिका का बालग्राहक
[बालक को क्रीड़ा कराने वाला] नियत हुआ, वह सुसुमा
बालिका को कमर में ले लेता, लेकर बहुत से बालकों-बालिकाओं,
वच्चों-वच्चियों, कुमारों-कुमारियों के साथ खेलता-खेलता
विचरण करता था ।

उस समय वह चिलात दासचेटक उन बहुत से बालकों और
बालिकाओं, वच्चों-वच्चियों, कुमारों और कुमारिकाओं में से किसी
की क्रीड़ियों को छीन लेता, किसी की गोलियों को चुरा लेता, किसी
की गेंदों को झपट लेता, किसी की दड़ों को हर लेता, किसी के
कपड़ों को छिपा देता, किसी के साडोल्लकों [दुपट्टों] का अन्-
हरण कर लेता, किसी के आनूपण-माना-अलंकारों को चुरा लेता,
किसी पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को
ठग लेता, किसी की भर्त्सना करता, किसी को तर्जना करता और
किसी को मारता-पीटता था ।

६०७. तब वे बहुत से बालक और बालिकाएँ, वच्चे और
बच्चियाँ, कुमार और कुमारिकाएँ रोनी हुईं, चिल्लानी हुईं,
शोकयुक्त होती हुईं, रोती विसूरी हुईं, विनाश करनी हुईं
अपने अपने माता-पिता से जाकर कहनी ।

चिलायस्स गिहाओ निक्कासणं—

६०८. तए णं तेसि बहूणं दारयाण य दारियाणि य डिंभयाण य डिंभियाण कुमारयाण य कुमारियाण य अम्मापियरो जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं बहूहि खिज्जणाहि य हंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य हंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्टं निवेदंति ।

तए णं से धणे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एयमट्टं भुज्जो-भुज्जो निवारैइ, नो चैव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे तेसि बहूणं दारयाण य दारियाण य डिंभयाण य डिंभियाण य कुमारयाण य कुमारियाण य अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं वट्टए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आडोलियाओ अवहरइ, अप्पेगइयाणं तिव्वसए अवहरइ, अप्पेगइयाणं पोत्तुल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं साडोल्लए अवहरइ, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए आओसइ अवहसइ निच्छोडेइ निव्वभेच्छेइ तज्जेइ तालेइ ।

तए णं ते बह्वे दारया य दारिया य डिंभया य डिंभिया य कुमारया य कुमारिया य रोयमाणा य कंदमाणा य सोयमाणा च तिप्पमाणा य विलवमाणा य साणं साणं अम्मापिऊणं निवेदंति ।

तए णं ते आमुक्त्ता रुट्ठा कुविया चंडिकया मिसिमिसेमाणा जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बहूहि खिज्जणाहि य हंटणाहि य उवलंभणाहि य खिज्जमाणा य हंटमाणा य उवलंभमाणा य धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्टं निवेदंति ।

तए णं से धणे सत्थवाहे बहूणं दारयाणं दारियाणं डिंभयाणं डिंभियाणं कुमारयाणं कुमारियाणं अम्मापिऊणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा आमुक्त्ते रुट्ठे कुविए चंडिकए मिसिमिसेमाणे चिलायं दासचेडं उच्चावयाहि आओसणाहि आओसइ उद्धंसइ निव्वभेच्छेइ निच्छोडेइ तज्जेइ उच्चावयाहि तालणाहि तालेइ साओ गिहाओ निच्छुमइ ।

चिलायस्स दुव्वसण-पवत्ती—

६०९. तए णं से चिलाए दामचेडे माओ गिहाओ निच्छेडे समाणे रायमिहे नयरे सिधायग-तिग-चउवरु-चच्चर-चउन्मुह-महापह-

चिलात का गृह निष्कासन—

६०८. तब उन बहुत से बालक और बालिकाओं के, बच्चों और बच्चियों के, कुमार और कुमारिकाओं के माता-पिता धन्य सार्थवाह के पास आते, आकर धन्य सार्थवाह को खेदजनक वचनों से खेद प्रगट करते, रोते और उलाहना देते और फिर धन्य सार्थवाह को यह वृत्तान्त सुनाते ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह चिलात दासचेट को इस बात के लिये बार-बार मना करता, लेकिन चिलात दासचेट नहीं माना—रुका नहीं ।

मना करने के बाद भी वह चिलात दासचेट उन बहुत से बालक और बालिकाओं में से, बच्चों और बच्चियों में से, कुमार और कुमारिकाओं में से किन्हीं की कौड़ियाँ हर लेता, किन्हीं की गोलियाँ चुरा लेता, किन्हीं की गेंदों को हर लेता, किन्हीं के दड़ों को हर लेता, किन्हीं के कपड़े चुरा लेता, किन्हीं के साडोल्लक चुरा लेता, किन्हीं के आभरण, माला, अलंकार चुरा लेता, किसी पर आक्रोश करता, किसी की हँसी उड़ाता, किसी को ठगता, किसी को धमकाता, किसी को तर्जना देता और किसी को ताड़ना देता—चपत मारता ।

तब वे बहुत से बालक और बालिकायें, बच्चे और बच्चियाँ, कुमार और कुमारिकायें रोती, चिल्लाती, शोकयुक्त, रोती विसूरती और विलाप करती हुई अपने अपने माता-पिता से कहतीं ।

तब वे क्रोधित, रुष्ट, कुपित, अति क्रोधित हो मिसमिसाते हुए धन्य सार्थवाह के पास आते, आकर खेद-जनक वचनों से, अनादर भरे वचनों से, उलाहने भरे वचनों से खेद प्रगट करते, रोते और उलाहना देते हुए धन्य सार्थवाह को यह वृत्तान्त सुनाते ।

तब धन्य सार्थवाह ने उन बहुत से बालक और बालिकाओं के, बच्चों और बच्चियों के, कुमार और कुमारिकाओं के माता-पिताओं से यह बात सुनकर अत्यन्त कुपित, रुष्ट, चंडरूप धारण कर दांतों को मिसमिसाते हुए उस चिलात दासचेट पर ऊंचे-नीचे आक्रोश भरे वचनों द्वारा आक्रोश किया, उसका तिरस्कार किया, भर्त्सना की, धमकी दी, तर्जना की और ऊंची-नीची ताड़नाओं से ताड़ना दी और फिर उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया ।

चिलात की दुर्व्यसन-प्रवृत्ति—

६०९. धन्य सार्थवाह द्वारा अपने घर से निकाल दिये जाने के बाद वह चिलात दासचेट राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकां,

पहेसु देवकुलेसु य सभासु य पवासु य ज्यूलएसु य वेसाघरएसु य पाणघरएसु य सुहंसुहेणं परिवड्ढइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सडरप्पयारी, मज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी मंसपसंगी ज्यूपसंगी वेसाप्पसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था ।

रायगिहसमीवे चोरपल्ली तत्थ य विजए चोरसेणावई—

६१०. तए णं रायगिहस्स नयरस्स अडुरसामंते दाहिनपुरत्थिमे विसीभाए सीहगुहा नामं चोरपल्ली होत्था—विसम-गिरिकडग-कोलंव-सण्णिविट्ठा वंसीकलंकपागार-परिक्खित्ता छिण्णसेल-विसमप्पवाय-फरिहोवगूढा एगदुवारा अणेगखंडी विदित्तजण-निग्गमप्पवेसा अंभितरपाणिया सुदुल्लभजल-पेरंता सुवहुस्स वि कुवियवलस्स आगयस्स दुप्पहंसा यावि होत्था ।

६११. तत्थ णं सीहागुहाए चोरपल्लीए विजए नामं चोरसेणावई—परिवसई--अहम्मिए अहमिट्ठे अहम्मवखाई अहम्माणुए अहम्मपलोई अहम्मसीलसमुदायारे अहम्मणे चव वित्ति कप्पेमाणे विहरइ । हण-छिद-भिद-वियत्तए लोहियपाणी चंडे रुद्वे खुद्वे साहस्सिए उवकंचण-वंचण-माया-नियडि-कवड-कूड - साइ - संपओग - बहुले निस्सीले निव्वए निग्गुणे निप्पच्चक्खाणपोसहोवनासे वहुणं दुपय-चउप्पय-मियपसु-पक्खि-सरिसिवाणं घायाए वहाए उच्छायण-याए अहम्मकेज्ज समुट्टिए वहुनयर-निग्गय-जसे सूरु देडप्पहारी साह-सिए सहवेही ।

से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचहं चोरत्तयाणं आहवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगतं आणा - ईतर- सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, देवालियों, सभाओं, व्याजओं, जुआरियों के अड्डों, वेश्याओं के घरों और मद्यपान गृहों में मजे से भटकने लगा ।

तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट कोई हाथ पकड़कर रोकने वाला और वचन से रोकने वाला नहीं रहने से, स्वच्छन्द बुद्धि वाला, स्वैराचारी, मदिरापान में आसक्त, चोरी में आसक्त माँस में आसक्त, जुआ में आसक्त, वेश्याओं में आसक्त और परस्त्रियों में भी आसक्त हो गया ।

राजगृह के समीप चोरपल्ली और वहाँ विजय चोर सेनापति—

६१०. उस समय राजगृह नगर से न अधिक दूर और न अधिक निकट प्रदेश में दक्षिण पूर्व दिशा में सिंह गुफा नामक एक चोरपल्ली थी । जो विपम गिरिनितम्ब [तलहटी] के प्रान्त भाग में बसी हुई थी, वांस की झाड़ियों के प्राकार ने घिरी हुई थी, छिन्न-भिन्न हुए विपम शैल की प्रपात रूपी परिखा से युक्त थी, आने-जाने के लिये एक द्वार वाली थी, अनेक छोटे-छोटे खंडों वाली थी, जानकार ही उसमें प्रवेश कर सकते थे और उसमें ने निकल सकते थे, उसके भीतर ही पानी था उस पल्लो ने बाहर आस-पास में पानी मिलना अत्यन्त दुर्लभ था, चुराये हुए धन को छीनने के लिये आयी हुई सेना भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी ।

६११. उस सिंह गुफा नामक चोर पल्ली में विजय नामक चोर सेनापति रहता था—जो अधार्मिक, अधर्म में स्थित, पापियों का प्रिय, प्रसिद्ध पापी, पाप का उपदेश देने वाला, अधर्म का बीज, अधर्म को देखने वाला, कुधर्म और कुशील का आचरण करने वाला और पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला था । हनन-छेदन-भेदन में प्रवृत्त रहने से जिसके हाथ लून से लाल रहते थे, अति क्रोधी, रौद्र, दुष्ट, दुःसाहसी, धूर्त-शुशासक करने वाला, ठंग, कपटी, छल, कपट और मिलावट करने में चतुर, शील व्रत और गुणों से रहित, प्रोपधोपवास का प्रत्याख्यान नहीं करने वाला, बहूत से मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, साधियों का घात करने वाला, बध करने वाला, विनाश करनेवाला और अधर्म की ध्वजा था, बहुत से नगरों में अर्वात् दूर-दूर तक उसका दग [अपघात] फैला हुआ था, वह गुर था, दड़ प्रहार करनेवाला, नाहनी और शब्दवेधी था ।

वह उस सिंह गुफा चोर पल्ली में पांच नौ चोरों का अधिपतित्व, अग्रैतरत्व, स्वामित्व, भृशत्व, मज्जतरत्व, आनैश्वर्यत्व और नेतापतित्व करने हुए और उनका दानन करते हुए विचरता था ।

६१२. तए णं से विजए तक्करे-चोर-सेणावई वहुणं चोराण य पारदारियाण य गठिभयमाण य संधिच्छेयमाण य खत्तखणमाण य रायावगारीण य अणधारमाण य वालघायमाण य धोसंभघाय-गाण य जूयकाराण य खंडरवखाण य अणोसि च वहुणं छिण्ण-भिण्ण वहिराह्याणं कुडंगे यावि होत्था ।

तए णं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिण-पुरत्थिमं जणवयं वहुहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोगहणेहि य वंदिग्गहणेहि य पंथकुट्टणेहि य खत्तखणणेहि य ओवीलेमाणे-ओवीलेमाणे विद्धंसेमाणे-विद्धंसेमाणे नित्थाणं निद्धं करेमाणे विहरइ ।

चिलायस्स चोरपल्ली-गमणं चोरसेणावइणा विजयेण चोरियविज्जाए सिक्खा य—

६१३. तए णं से चिलाए दासचेडेए रायगिहे वहुहि अत्थामि-संकीहि य चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य घणिएहि य जूयकरेहि य परवमवमाणे-परवभवमाणे रायगिहाओ नगराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं, चोरसेणावइं उपसंप-ज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणावइस्स अग्ग-असिलद्धिग्गाहे जाए यावि होत्था । जाहे वि य णं से विजए चोर-सेणावई गामघायं वा नगरघायं वा गोगहणं वा वंदिग्गहणं वा पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुवहुं पि कुवियवलं हय-महियपवरवीरघाइय-विवडियं चिध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोर्विसि पडिसेहेइ, पडिसेहेत्ता पुणरवि लद्धइ कपकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमागच्छइ ।

तए णं से विजए चोरसेणावई चिलायं तक्करं वहुओ चोर-विज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ ।

चोरसेणावइस्स विजयस्स मच्चू—

६१४. तए णं से विजए चोरसेणावई अणया कयाइ कालधम्मणा संजुत्ते यावि होत्था ।

६१२. वह तस्करों, चोरों का सेनापति विजय बहुतेरे चोरों के लिये, जारों के लिये, जेयकटों के लिये, सेंध लगाने वालों के लिये, खान खोदने वालों के लिये, राजा के अपकारियों के लिये, कजंदारों के लिये, ब्राह्मणों के लिये, विप्रवास-वासकों के लिये, जुआ खेलने वालों के लिये, गुंडरक्षकों के लिये तथा मनुष्यों के हाथ पैर-आदि अवयवों का छेदन-भेदन करने वाले और दूसरे बहुतेरे लोगों के लिये कुडंग [बांस की जाड़ी] के समान आधारभूत वा—आश्रयदाता था ।

उस समय वह विजय तस्कर चोर सेनापति राजगृह नगर की दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित जनपद की ग्रामों के घात द्वारा, नगर के घात द्वारा, गायों का हरण करके, मनुष्यों को कैद करके, पथिकों को नारकूट कर तथा सेंध लगाकर पुनः पुनः उत्पीड़ित करता हुआ, विध्वंस करता हुआ, लोगों को स्थानहीन और धनहीन बनाता हुआ विचरण करता था ।

चिलात का चोरपल्ली गमन और चोर सेनापति विजय द्वारा चौर्य विद्या की शिक्षा—

६१३. तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट राजगृह नगर में बहुत से अर्थाभिशंकी, चौराभिशंकी, दाराभिशंकी, धनिकों और जुआरियों द्वारा पराभव पाया हुआ—प्रताड़ित किया हुआ राजगृह नगर से बाहर निकला, निकलकर जहाँ सिंह-गुफा चोर-पल्ली थी, वहाँ आया, आकर चोर सेनापति विजय की शरण लेकर रहने लगा ।

तत्पश्चात् वह चिलात दासचेट चोर सेनापति विजय का प्रमुख खड्ग और यष्टिधारक हो गया । अतएव जब कभी भी वह विजय चोर सेनापति ग्राम का घात करने, नगर का वध करने, गायों का हरण करने, मनुष्यों को बन्दी बनाने, पथिकों को लूटने-कूटने के लिये जाता था तब उस समय वह दासचेट चिलात बहुत सी कूविय सेना को हत एवं मथित करके, प्रवर वीरों का घात करके, ध्वजा पताका आदि को नष्ट करके, प्राणों को संकट ग्रस्त करके दूर-दूर दिशा-विदिशाओं में भगा देता था, भगाकर पुनः उस धन अर्थ को लेकर अपना कार्य करके अज्ञात मार्ग से सिंह गुफा चोर-पल्ली में सकुशल शीघ्र वापस आ जाता था ।

तत्पश्चात् उस विजय चोर सेनापति ने चिलात तस्कर को बहुत सी चोर विद्यायें, चोर मंत्र, चोर मायायें और चोर निकृतियाँ [चोरों के योग्य छल-कपट] सिखलाई ।

चोर सेनापति विजय की मृत्यु—

६१४. तत्पश्चात् वह विजय चोर सेनापति किसी समय काल-धर्म से युक्त हुआ—अर्थात् मर गया ।

तए णं ताईं पंचचोरसयाईं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया-
महया इड्डीसवकार-समुदएणं नीहरणं करेत्ति, करेत्ता, व्हइं
लोइयाईं मयकिच्चआईं करेत्ति, करेत्ता कालेणं विगयसोया जाया
यावि होत्था ।

चिलायस्स चोरसेणावइत्तं—

६१५. तए णं ताईं पंच चोरसयाईं अणमण्णं सहावेत्ति, सहावेत्ता
एवं वयासी—“एवं खलु अम्हं देवानुप्पिया ! विजए चोरसेणावईं
कालधम्मणा संजुत्ते । अयं च णं चिलाए तवकरे विजएणं चोर-
सेणावइणा व्हओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ य
चोरनिगडीओ य सिक्खाविए । तं सेयं खलु अम्हं देवानुप्पिया !
चिलायं तवकरं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभि-
सिचित्तए” त्ति कट्टु अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेत्ति, पडि-
सुणेत्ता चिलायं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभि-
सिचंति ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावईं जाए अहम्मिए अहम्मिड्ढे
अहम्मवखाईं अहम्माणुए अहम्मपलोईं अहम्मपलज्जणे अहम्मसोल-
समुदायारे अहम्मेणे चेष वित्ति कप्पेमाणे विहरइ ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावईं चोरनायगे व्हणं चोराण य
पारदारियाण य गंठिमेयगाण य संघिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य
रायावगारीण य अणधारगाण य बालघावगाण य वीसंबघायगाण
य जूयकाराण य खंडरवखाण य अण्णेत्ति च व्हणं छिप्पण-भिण्ण
वाहिराहयाणं कुडंगे यावि होत्था ।

से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहे-
वच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्ठित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं
कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावईं रायगिहस्स नयरस्स दाहिण-
पुरत्थिमिल्लं जणवयं व्हइं गानघाएहि य नगरघाएहि य गोग-
हणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंचकुट्टणेहि य उत्तखणणेहि य ओवीले-
माणे-ओवीलेमाणे विद्धंसेमाणे-विद्धंसेमाणे नित्थाणं निड्डणं
करेमाणे विहरइ ।

तव उन पांच सौ चोरों ने विजय चोर सेनापति का बड़े
ठाठ-वाट से नीहरण—शवदाह आदि क्रियायें कीं, फिर बहुत से
मरणोत्तरकालीन लौकिक कृत्य किये, उन कृत्यों को करने के
बाद समय बीतने पर वे शोक रहित हो गये ।

चिलात को चोर सेनापतित्व—

६१५. तत्पश्चात् उन पांच सौ चोरों ने एक दूसरे को बुलाया
और बुलाकर उन्होंने इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रियो ! हमारा
विजय चोर सेनापति कालधर्म से संयुक्त हो गया है । विजय
चोर सेनापति ने इस चिलात तस्कर को बहुत नी चोर विद्यायें,
चोर मंत्र, चोर मायायें और चोर निष्कृतियां सिखलाई हैं ।
अतएव हे देवानुप्रियो ! हमारे लिये यही श्रेयस्कर होगा
कि चिलात तस्कर का सिंह गुफा नामक चोर पल्ली के चोर
सेनापति के रूप में अभिषेक किया जायें—इस प्रकार कहकर
उन्होंने एक-दूसरे की यह बात स्वीकार की. स्वीकार करके
चिलात को सिंह गुफा चोर पल्ली के चोर सेनापति के रूप में
अभिषिक्त किया ।

तव वह चिलात चोरसेनापति हो गया—जो अधार्मिक,
पापियों का प्रिय, पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला—पाप का
उपदेश देने वाला, अधर्म का वीज, अधर्म-प्रेक्षक, अधर्म
में अनुराग रखने वाला, कुधर्म और कुशील का आचरण करने
वाला और पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाला होकर विचरण
करने लगा ।

तत्पश्चात् वह चोर नायक चिलात सेनापति बहुतेरे चोरों
के लिये, जारों के लिये, राजा के अपकारियों के लिये, कर्जदारों
के लिये, बालघातकों के लिये, विश्राम-धानकों के लिये,
जुआरियों के लिये, खण्डरक्षकों के लिये तथा मनुष्यों के हाथ-
पैर आदि अवयवों का छेदन-भेदन करने वाले और दूसरे भी
बहुतेरे लोगों के लिये कुडंग के समान आश्रयदाता हो गया ।

वह उस सिंह गुफा नामक चोर पल्ली में पांच सौ चोरों का
अधिपतित्व, प्रमुखत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, मदनरक्षण,
आज्ञाऐश्वर्यत्व, सेनापतित्व करता हुआ, पालन करता हुआ
विचरने लगा ।

उन समय वह चिलात चोर सेनापति राज्यात्तर नगर के
दक्षिण-पूर्व दिग्भाग में स्थित जनपद की, ग्रामघात द्वारा, नगर-
घात द्वारा, गांवों का हरण करते, मनुष्यों को बन्दी बनाकर,
पथिकों को मार-रूढ़ कर और नैथ नगाकर पुनः पुनः उन्नीत
करता हुआ, विध्वंस करता हुआ, लोगों को मगनरिनीय और
निर्धन करता हुआ विचरण करने लगा ।

चिलायस्स धणसत्थवाहगिहधिलुम्पणं सुंसुमादारिया-
हरणं च—

६१६. तए णं से चिलाए चोरसेणावई अणया कयाइ विपुलं
असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता ते पंच चोरसए आमं-
तेइ । तओ पच्छा ण्हाए कयवलिकम्मे भोगणमंडवंसि तेहि पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं चं
मंसं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे
परिभुंजेमाणे विहरइ । जिमियभुत्तरागए ते पंच चोरसए
विपुलेणं धूव-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ,
सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! रायगिहे नयरे धणे नामं
सत्थवाहे अड्ढे । तस्स णं धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं
अणुमग्गजाइया सुंसुमा नामं दारिया—अहीणा-जाव-सुरूवा ।
तं गच्छामो णं देवानुप्पिया ! धणस्स सत्थवाहस्स गिहं
विलुंपामो । तुव्भं विपुले धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-
सिल-प्पवाले ममं सुंसुमा दारिया ।”

तए णं ते पंच चोरसया चिलायस्स [एयमट्टं ?] पडिसुणेंति ।
६१७. तए णं ते चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं
अल्लं चम्मं दुरुहइ, दुरुहत्ता पच्छावरण्ह-कालसमयंसि पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध-वद्ध-वम्मिय-कवए उप्पोलिय-सरासण-
पट्टिए पिणद्ध गेविज्जे आविद्ध-विमलवर्चिधपट्टे गहियाउह-पहरणे
माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं, निक्खिड्ढाहिं असिलट्टीहिं, अंसगएहिं
तोणेहिं, सज्जीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तोहिं, सरेहिं, समुल्लालियाहिं
दाहाहिं, ओसारियाहिं ऊरुघट्टियाहिं, छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं
महया-महया उक्किट्ट-सीहनाय-वोल-कलकलरवेणं पक्खुभिय-
महासमुद्वरवभूयं पिव करेमाणे सीहगुहाओ चोरपल्लोओ पडि-
निक्खमत्ति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवा-
गच्छति, उवागच्छित्ता रायगिहस्स अद्वरसामंते एगं महं गहणं
अणुप्पविसत्ति, अणुप्पविसत्ता दिवसं खवेमाणे चिड्ढति ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई अद्वरत्त-कालसमयंसि निसंत-
पडिनिसंतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं माइय-गोमुहिएहिं फलएहिं-

चिलात का धन्य सार्थवाह गृह-विनाश और सुंसुमा
दारिका-हरण—

६१६. तत्पश्चात् उस चिलात चोर सेनापति ने किसी एक
समय विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाकर
उन पांच सौ चोरों को आमंत्रित किया । उसके पश्चात् स्नान
करके, बलिकर्म करके भोजन मंडप में उन पांच सौ चोरों के
साथ विपुल अशन, पान, खाद्य, सुरा, मद्य, मांस, सीधु [मद्य-
विशेष] प्रसन्ना [मदिराविशेष] का आस्वादन करते हुए,
चखते हुए, परसते हुए, खाते हुए विचरने लगा । भोजन करने
के पश्चात् उन पांच सौ चोरों का विपुल धूप, पुष्प, गंध, माला,
अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके इस
प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगर में धन्य नामक एक धनाढ्य
सार्थवाह है । उसकी पत्नी भद्रा की आत्मजा और पांच पुत्रों के
वाद जन्मी हुई सुंसुमा नाम की लड़की है—जो परिपूर्ण इन्द्रियों
और शरीर वाली-यावत्-सुन्दर रूप वाली है । तो हे देवानुप्रियो !
हम लोग चलें और धन्य सार्थवाह का घर लूटें । उस लूट में
मिलने वाला विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख,
प्रवाल आदि तुम्हारे होंगे और सुंसुमा लड़की मेरी होगी ।

तत्र उन पांच सौ चोरों ने चिलात की यह बात स्वीकार की ।
६१७. तत्पश्चात् वह चिलात चोर सेनापति उन पांच सौ चोरों
के साथ आर्द्र चर्म पर बैठा, बैठने के पश्चात् दिन के अन्तिम
प्रहर में पांच सौ चोरों के साथ कवच धारण करके तैयार हुआ,
शरासन पट्टिका को कसकर बांधा, गले की रक्षा के लिये
गलूबंध पहना, अपनी पहचान कराने वाला श्रेष्ठ विमल प्रतीक
पट को धारण किया, आयुध और प्रहरण लिये, कोमल गोमुखी
फलक [ढाल] धारण किये, तलवारें म्यान से निकाल लीं, कंधों
पर तरकस धारण किये, धनुष जीवायुक्त कर लिये, बाण बाहर
निकाल लिये, बर्छियां और भाले उछलने लगे, जंघाओं पर बंधी
हुई घंटिकायें लटका दीं, कूच के बाजे बजने लगे और चोरों के
द्वारा जोर-जोर से किये जा रहे सिहनादों और कलकलरवों से
प्रक्षुभित समुद्र जैसी गर्जना करता हुआ सिंह गुफा नामक चोर
पल्ली से निकला, निकलकर जहां राजगृह नगर था, वहां आया,
आकर राजगृह से न अधिक दूर और न अधिक निकट एक सघन
वन में घुस गया और घुसकर सूर्यास्त होने की प्रतीक्षा करने
लगा ।

तत्पश्चात् वह चिलात चोर सेनापति आधी रात के समय
जब सब तरफ शांति और सुनसान हो गयी तब पांच सौ चोरों

-जाव-मूइयाहि ऊरुघंटियाहि जेणेव रायगिहे नयरे पुरत्थिमिल्ले
दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उदगवत्थि परामुसइ आयते चौखे
परम-मुइभूए तालुग्घाडणं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता रायगिहस्स
दुवारकवाडे उदएणं अछोडेइ, अछोडेत्ता कवाडं विहाडेइ,
विहाडेत्ता रायगिहं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता महया-महया
सद्वेणं उघोसेमाणे-उघोसेमाणे एवं वयासी—“एवं खलु अहं
देवाणुप्पिया ! चिलाए नामं चोरसेणावई पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं
सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागए धणस्स सत्थवाहस्स
गिहं घाउकामे । तं जे णं नवियाए माउयाए दुद्धं पाउकामे, से
णं निग्गच्छउ” त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणस्स गिहं विहाडेइ ।

६१८. तए णं से धणे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं
सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे तसिए
उक्खिग्गे संजायभए पंचहिं पुत्तोहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ ।

तए णं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं
घाएइ, घाएत्ता सुवहुं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-
प्पवाल रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेण्हइ,
गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिनिक्खमई, पडिनिक्खमित्ता जेणेव
सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

नगरगुत्तिएहिं चोरनिग्गहो—

६१९. तए णं से धणे सत्थवाहे जेणेव तए गिहे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता सुवहुं धण-कणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं
जाणित्ता महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव नगरगुत्तिया
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं नहत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं
उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी—“एवं खलु देवाणुप्पिया ! चिलाए
चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता सुवहुं धण-कणगं सुंसुमं च
दारियं गहाय रायगिहाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव
पडिगए । तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमाए दारियाए कूवं
गमित्तए । तुव्वं णं देवाणुप्पिया ! से विपुले धण-कणगे, ममं
सुंसुमा दारिया ।”

के साथ कोमल गोमुखाकार फलकों को छाती से बांधकर-यावत्-
जांघों में बंधी हुई घंटियों को लटकाकर जहाँ राजगृह नगर का
पूर्व दिशा का द्वार था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर उसने उदकवस्ती
[मशक] हाथ में ली, और उससे चुल्लू में जल लेकर आचमन
किया, स्वच्छ हुआ, शुद्ध-पवित्र हुआ, फिर ताला खोलने की
विधा का आह्वान किया—स्मरण किया, स्मरण करके राजगृह
के द्वार के किवाड़ों पर पानी छिटका, छिटककर किवाड़ उधाड़
दिये, उधाड़कर राजगृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके ऊँचे-ऊँचे
शब्दों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोला—“हे देवानुप्रियो !
मैं चिलात नामक चोर सेनापति पाँच सौ चोरों के साथ सिंह
गुफा चोर पल्ली से धन्य सार्थवाह का घर लूटने के लिये यहाँ
आया हूँ । इसलिये जो नवीन माता का दूध पीने को इच्छुक हो
वह मेरे सामने आवे”—ऐसा कहकर जहाँ धन्य सार्थवाह का
घर था, वहाँ आया, आकर धन्य सार्थवाह के घर का द्वार
उधाड़ दिया ।

६१८. तत्पश्चात् धन्य ने पाँच सौ चोरों के साथ चिलात चोर
सेनापति के द्वारा घर को लूटे जाने हुए देखा, यह देखकर
भयभीत, चस्त, डरा हुआ, उद्विग्न, भयाक्रान्त हो वह अपने
पाँचों पुत्रों के साथ एकान्त स्थान में छिप कर जा बैठा ।

तत्पश्चात् चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह का घर
लूटकर बहुत सारा धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, जंग, शिला
प्रवाल, रत्नरत्न [माणिक] आदि नारभूत स्वापतेय [धन-मंपत्ति]
तथा सुंसुमा दारिका को लिया, लेकर राजगृह नगर में बाहर
निकला और निकलकर जिधर सिंह गुफा थी, उसी ओर जाने के
लिये उद्यत हुआ ।

नगररक्षकों द्वारा चोर निग्रह—

६१९. तत्पश्चात् धन्यसार्थवाह, जहाँ अपना घर था, वहाँ
आया, आकर बहुत सारा धन, कनक और सुंसुमा दारिका के
अपहरण को जान बहुरूप, महर्षय, उच्च पुरुषों के योग्य भेट
लेकर नगर रक्षकों के पास पहुँचा, पहुँचकर वह उन बहुरूप,
महर्षय, उच्च पुरुषों के योग्य भेट को उनके सम्मते गया और
रथकर इस प्रकार कहा—“हे देवानुप्रियो ! चिलात चोर सेनापति
सिंह गुफा चोर पल्ली में यहाँ आकर पाव सौ चोरों के साथ
मेरे घर को लूटकर बहुत सारा धन, कनक और सुंसुमा दारिका
को लेकर राजगृह में निकल बापस सिंह गुफा के ओट पर आया ।
इसलिये हे देवानुप्रियो ! तम सुंसुमा दारिका को वापस करने के लिये
जाना चाहते हैं । देवानुप्रियो ! तो बहुत धन, कनक, रत्न,
मणि, मोती, जंग, शिला प्रवाल और सुंसुमा दारिका मेरी भेरी है ।”

तए णं ते नगरगुत्तिया धणस्स एयमंहुं पडिसुणेंति, पडि-
सुणेंता सण्णद्ध-वद्ध-वम्मिय-कवया जाव गहियाजहपहरणा महया-
महया उविकट्ट-सीहनाय-दोल-कलकलरवेणं पवखुभिय-महासमुद्धं
रवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता
जेणेव चिलाए चोरसेणावई तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता
चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था ।

तए णं ते नगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं ह्य-महिय-
पवरवीर-घाइय-विवडियच्चिध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं दिसो-
दिसिं पडिसेहेंति ।

तए णं से पंच चोरसया नगरगुत्तिएहि ह्य-महिय-पवरवीर-
घाइय-विवडियच्चिध-धय-पडागा किच्छोवगयपाणा दिसोदिसिं
पडिसेहिया समाणा तं विपुलं धण-कणगं विच्छड्डमाणा य विप्प-
किरमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था ।

तए णं ते नगरगुत्तिया तं विपुलं धण-कणगं गेण्हंति,
गेविहत्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छंति ।

चिलायस्स चोरपल्लीतो सुंसुमासद्धिं पलायणं
सुंसुमा-मारणं च—

६२०. तए णं से चिलाए तं चोरसेनं तेहिं नगरगुत्तिएहिं ह्य-
महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडियच्चिध-धय-पडागं किच्छोवगयपाणं
दिसोदिसिं पडिसेहियं [पासित्ता ?] भीए तत्थे सुंसुमं दारियं
गहाय एगं महं अगामियं दीहमद्धं अडावि अणुप्पविट्ठे ।

तए णं से धणे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं चिलाएणं अडवीमुहिं
अवहीरमाणं पासित्ताणं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठे सण्णद्धवद्ध
वम्मिय-कवए चिलायस्स पयमगविहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते
ह्वकारेमाणे पुक्कारेमाणे अभित्तज्जेमाणे अभितासेमाणे पिट्ठओ
अणुगच्छइ ।

६२१. तए णं से चिलाए तं धणं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं
अप्पच्छट्ठं सण्णद्ध-वद्ध-वम्मिय-कवयं समणुगच्छमाणं पासइ,
पासित्ता अत्थामे अवले अवीरिए अपुरिसवकारपरवकमे जाहे नो

तत्पश्चात् वे नगर-रक्षक धन्य की इग बात को स्वीकार
करते हैं, स्वीकार करके वे कवच धारण करके सन्नद्ध हुए-यावन्-
आयुध और प्रहरण लेकर जोर-जोर से किये जा रहे उदकृष्ट
सिंहनाद की कलकल ध्वनि से प्रक्षुभित समुद्र जैसी गर्जना से
भाकाशमण्डल को व्याप्त करते हुए राजगृह से निकले,
निकलकर जहाँ चिलात चोर सेनापति था, वहाँ पहुँचे और
वहाँ पहुँचकर चिलात चोर सेनापति के साथ युद्ध करने लगे ।

तब नगर-रक्षकों ने चोर सेनापति चिलात के बड़े बड़े वीरों
को हत, मथित और घायल कर, ध्वजा पताकाओं का विनाश कर
और कंठगत प्राण जैसा बनाकर दिशा-विदिशाओं में भगा दिया-
रोक दिया ।

उस समय वे पाँच सी चोर नगर-रक्षकों द्वारा हत, मथित,
बड़े-बड़े वीरों के घायल किये जाने, ध्वजा पताकाओं को नष्ट
करने और कंठगत प्राण जैसा करके दिशा विदिशा में भगा दिये
जाने से उस विपुल धन, कनक आदि को छोड़कर और फँककर
चारों ओर—कोई किसी तरफ और कोई किसी तरफ भाग खड़े
हुए ।

तत्पश्चात् वे नगर-रक्षक उस विपुल धन, कनक आदि को
लेते हैं और लेकर जिस ओर राजगृह नगर था उस तरफ
चल पड़े ।

चिलात का सुंसुमा के साथ चोरपल्ली से पलायन और
सुंसुमा-मारण—

६२०. तत्पश्चात् वह चिलात नगर-रक्षकों द्वारा सैन्य को हत,
मथित, प्रवर वीरों को घायल, ध्वजा पताकाओं को नष्ट, कंठगत
प्राण जैसा करके दिशा विदिशाओं में खदेड़ते देखकर भयभीत
और त्रस्त हो सुंसुमा दारिका को लेकर एक महान अगामिक
और लम्बे मार्गवाली अटवी में घुस गया ।

उस समय धन्य सार्थवाह चिलात द्वारा सुंसुमा दारिका को
अटवी में ले जाई जाती देखकर पाँचों पुत्रों के साथ और छठा
स्वयं कवच और शस्त्र से सन्नद्ध होकर चिलात के पद चिन्हों का
अनुसरण करते हुए, गर्जना करते हुए, चुनौती देते हुए, पुकारते
हुए, तर्जना देते हुए और त्रस्त करते हुए उमके पीछे पीछे चलने
लगा ।

६२१. तत्पश्चात् चिलात ने धन्य सार्थवाह को पाँचों पुत्रों के
साथ तथा छठा स्वयं कवच और शस्त्रों से सज्जित होकर पीछा
करते हुए देखा, यह देखकर वह निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और
पराक्रम विहीन हो गया और जब सुंसुमा दारिका को संभालने-

संचाएइ सुंसुमं दारियं निव्वंहाहित्तए ताहे संते तंते परितंते नीलप्लल-गवल्लुलिय-अयसिकुसुमपपासं खुरधारं अंसि परामुसइ, परामुसित्ता सुंसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिदइ, छिदित्ता तं गहाय तं अगामियं अडविं अणुप्पविट्ठे ।

६२२. तए णं से चिलाए तीसे अगामियाए अडवीए तण्हाए [छुहाए ?] अभिभूए समाणे पम्हुट्ट-दिसाभाए सीहगुहं चोरपल्लि असंपत्ते अंतरा चेव कालगए ।

निगमणपदं—

६२३. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निगंथो वा निगंथी वा आयरिय-उवज्जायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स खेलासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुहय-उरसास-निस्सासस्स दुहय-मुत्त-पुरीस-पूय-वहुपडिपुणस्स उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणितियस्स असात्तयस्स सडण-पडण-विद्धंसणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणि-ज्जस्स वण्णहेउं वा रूवहेउं वा वलहेउं वा विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविद्याण य हीलणिज्जे जाव चाउरंतं संसार-कंतारं अणुपरियट्ठिस्सइ—जहा व से चिज्जाए तवकरे ।

धणस्स सुंसुमाकए कंदणं—

६२४. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं (सडि ?) अप्पच्छुट्ठे चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समता परिघाडेमाणे-परिघाडेमाणे तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाएइ चिलाय चोरसेणावइं साहतिं विणिहत्तए । से णं तओ पडिनिस्सइ, पडि-नियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया चिलाएणं जीवियाओ यवरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुंसुमं दारियं चिलाएण जीवियाओ ववरोवियं पात्तइ, पात्तित्ता परनुनियत्ते व्व चंपगापायवे निव्वत्तमहे व्व इंदलदो विनुवक-संधिबंधणे धरपित्त-लेसि सव्वंगेहिं घत्तत्ति पटिए ।

तए णं से धणे सत्थवाहे [पंचहिं पुत्तेहिं सडि ?] अप्पच्छुट्ठे आत्थे कूयमाणे कंदमाणे वित्तयमाणे महया-महया सदेणं

में—ले जाने में सक्षम नहीं रहा तब श्रांत हो गया—बक गया ग्लानि को प्राप्त हुआ और अत्यन्त श्रांत हो गया—घबरा गया और दूसरा कोई उपाय न देखकर उसने नीलकमल, भैंस के सींग के समान, अलसी के फूल के समान, प्रभावाली तीक्ष्ण धार वाली तलवार हाथ में ली, हाथ में लेकर सुंसुमा दारिका का उत्तमांग—मस्तक काट लिया, काटकर उस सिर को लेकर अग्रामिक अटवी में धुस गया ।

६२२. तत्पश्चात् वह चिलात उस अग्रामिक अटवी में प्यास से [भूख से ?] पीड़ित होकर दिशा [मार्ग] भूल गया और सिंह गुफा चोर पल्ली तक न पहुँचकर बीच में ही मर गया ।

निगमनपदं—

६२३. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो साधु, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्डित हो, गृहवास त्यागकर अनगर प्रत्रज्या अंगीकार करके वन को बहाने वाले, पित्त को बहाने वाले, कफ को बहाने वाले, गुरु को बहाने वाले, रक्त को बहाने वाले, दुग्ध उश्वाम-निःश्वास वाने-दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास वाले, दुर्गन्धयुक्त मूत्र, मल [टट्टी], पीप ने परिपूर्ण, विष्ठा-मूत्र-श्लेष्म, नाक का मैल, वमन, पित्त, गुरु, गोणित ने उत्पन्न होने वाले, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सडन-गलन विध्वंसन-धर्मा और पीछे या पहले अवश्य ही दूटने वाले—ऐसे इत औदारिक शरीर के वर्ण, रूप, बल और विषय प्राप्ति के निमित्त आहार करते हैं, वे इसी लोक में बहूत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं की अवहेलना के पात्र बनते हैं—यावत्-चतुर्गति रूप संसार कांतार ने परिभ्रमण करने हैं—भटकते हैं—जैसे कि वह चिलात नस्कर ।

धन्य का सुंसुमा के लिये क्रन्दन—

६२४. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह पाँचों पुत्रों के साथ तथा छटा स्वयं उस अग्रामिक अटवी में चिलात के पीछे-पीछे श्वर-उधर दीड़ते-भागते तथा एवं दुधा ने श्रान्त, श्रान्त, और प्रसन्न श्रान्त हो जाने पर भी चिलात चोर सेनापति को अपने हाथ से पकड़ने में समर्थ नहीं हो सका । तब वह वहाँ से लौटा और लौटकर जहाँ सुंसुमा दारिका को चिलात ने जीवन्मृति कर दिया था, वहाँ आया, आकर चिलात के डारा मारी गई सुंसुमा दारिका को देखा, देखकर कुलटाड़े से काटे गये अम्पण पुत्र के समान, संधि बंधन ने मुक्त श्वर धन्य के समान बग पटाड़े धारण करती पर गिर पड़ा ।

तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह [साथी पुत्रों के साथ ?] लौट छटा स्वयं जब आररस्थ हुआ तब भीजवाह करने हुए, आररस्थ

कुहुकुहुस्स परुत्ते सुच्चिरकालं बाहप्पमोक्खं करेइ ।

अडविपत्तेहिं धणाईहिं छूहाभिभूएहिं सुंसुमा-
मंससोणियाहारो—

६२५. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचाहिं पुत्तेहिं [सांद्ध ?] अप्पच्छे-
च्चिलायं तीसे अगामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे
तण्हाए छुहाए य परब्भाहते समाणे तीसे अगामियाए अडवीए
सव्वओ समंता उदगस्स मग्गण-गव्वेसणं करेमाणे संते तंते परित्तंते
निच्चिण्णे तीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गव्वेसणं
करेमाणे नो चव णं उदगं आसादेति । तते णं उदगं अणासाए-
माणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविएल्लिया तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता जेट्ठं पुत्तं धणं सहावेइ, सहावेत्ता एवं वयासी—
“एवं खलु पुत्ता ! सुंसुमाए दारियाए अट्टाए चिलायं तक्करं
सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिभूया समाणा
इमीसे अगामियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगव्वेसणं करेमाणा नो
चव णं उदगं आसादेमो । तए णं उदगं अणासाएमाणा नो
संचाएमो रायगिहं संपावित्तए । तण्णं तुब्भे ममं देवानुप्पिया !
जीवियाओ ववरोवेह, ममं मंसं च सोणियं च आहारेह, तेणं
आहारेणं अवथद्धा समाणा तओ पच्छा इमं अगामियं अडवि-
नित्यरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-
संबंधि-परियणं अभित्तमागच्छिहिह, अत्यस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स
य आभागी भविस्सह ।”

६२६. तए णं से जेट्ठे पुत्ते धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे
धणं सत्थवाहं एवं वयासी—“तुब्भे णं ताओ ! अम्हं पिया गुरुज-
णया देवयभूया ठावक्का पइट्ठावक्का संरवखगा संगोवगा । तं
कहणं अम्हे ताओ ! तुब्भे जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भं णं मंसं च
सोणियं च आहारेमो ? तं तुब्भे णं ताओ । ममं जीवियाओ
ववरोवेह, मंसं च सोणियं आहारेह, अगामियं अडवि-
नित्यरिहिह, रायगिहं च संपावेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-
संबंधि-परियणं अभित्तमागच्छिहिह, अत्यस्स य धम्मस्स ण पुण्णस्स
य आभागी भविस्सह ।”

तए णं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी—“ना णं ताओ
अम्हे जेट्ठं भावरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तस्स णं मंसं च
सोणियं च आहारेमो । तं तुब्भे णं ताओ ! ममं जीवियाओ

करते हुए, विलाप करते हुए जोर-जोर से कुह-कुह शब्द से रोते
हुए बहुत देर तक आँसू बहाता रहा ।

अटवी में क्षुधाभिभूत धन्यादि द्वारा सुंसुमा के मांसशोणित
का आहार—

६२५. तत्पश्चात् उस अग्रामिक अटवी में चिलात चोर का
पीछा करते हुए चारों ओर दौड़ भाग करने के कारण भूख-प्यास
से पीड़ित होने पर पांचों पुत्रों सहित और छठा स्वयं धन्य
सार्थवाह ने उस अग्रामिक अटवी में चारों तरफ पानी की
मार्गणा-गव्वेपणा की और गव्वेपणा करने पर भी उसके प्राप्त न
होने से वह श्रान्त हो गया, विपाद में डूब गया—खिन्न हो गया
अत्यन्त क्लान्त हो गया और उदास हो गया एवं उस अग्रामिक
अटवी में जल की खूब खोज करने पर भी जल प्राप्त नहीं हुआ,
तब वह खोजने पर भी जल प्राप्त न कर सका तो जहाँ सुंसुमा
जीवन रहित की गई थी, उसी स्थान पर आया, आकर धन्य
ने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—‘हे पुत्र !
सुंसुमा दारिका के लिये चिलात तस्कर के पीछे चारों ओर
दौड़-भाग करते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होकर हमने इस
अग्रामिक अटवी में जल की मार्गणा-गव्वेपणा की, गव्वेपणा करने पर
भी जल प्राप्त नहीं हुआ । जल के बिना हम लोग राजगृह पहुँचने
में समर्थ नहीं हो सकते हैं । इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम मुझे जीवन
से रहित कर दो, मेरे मांस और रधिर का आहार करो, उस
आहार से स्वस्थ होकर, फिर इस अग्रामिक अटवी को पारकर
जाना, राजगृह को पा लेना, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन
सम्बन्धी और परिचितों से मिलना तथा अर्थ, धर्म और पुण्य के
भागी होना ।’

६२६. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर ज्येष्ठ
पुत्र धन्य सार्थवाह से बोला—‘हे तात ! आप हमारे पिता हो,
गुरु हो, जनक हो, देवता स्वरूप हो, स्थापक हो, प्रतिस्थापक
हो, संरक्षक हो, संगोपक हो । अतः हे तात ! हम आपको कैसे
जीवन से रहित करें, कैसे आपके मांस और रधिर का आहार
करें ? हे तात ! आप मुझे जीवन हीन कर दो, मेरे मांस और
रधिर का आहार करो और इस अग्रामिक अटवी को पार करो,
राजगृह को प्राप्त करो और मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों,
सम्बन्धियों और परिचितों से मिलो और अर्थ, धर्म और पुण्य
के भागी बनो ।’

तत्पश्चात् हमारे पुत्र ने धन्य सार्थवाह से कहा—‘हे तात !
गुरु और देव के समान ज्येष्ठ भ्राता को जीवन से रहित नहीं
करेंगे, उनके मांस और रधिर का आहार नहीं करेंगे । अतएव

ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अगामियं अडवि नित्थ-रिहिह, रायगिहं च संपवेहिह, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्यस्स य अमागी भविस्सह ।” एवं-जाव-पंचमे पुत्ते ।

६२७. तए णं से धणे सत्थवाहे पंचपुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता ते पंचपुत्ते एवं वयासी—“मा णं अम्हे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो । एस णं सुंमुमाए दारियाए सरारे निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पज्जे । तं सेयं खलु पुत्ता ! अम्हं सुंमुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए । तए णं अम्हे तेणं आहारेणं अवयद्धा समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो ।”

तए णं ते पंचपुत्ता धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमट्ठं पडिसुणोति ।

६२८. तए णं धणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तोहिं सद्धि अरणिं करेइ, करेत्ता सरणं करेइ, करेत्ता सरएणं अरणिं महेइ, महेत्ता अग्गि पाडेइ, पाडेत्ता अग्गि संधुवकेइ, संधुवकेत्ता दारुयाइं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गि पज्जालेइ, सुंमुमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेइ । तेणं आहारेणं अवयद्धा समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्त-नाइ-नियग-संयण-संबंधि-परियणं अभिसमणणागया, तस्स य विउलत्तस्स धण-कणग-रयण-भणि-मोत्तिय-सख-सिल्ल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्ज आभागी णाया ।

६२९. तए णं से धणे सत्थवाहे सुंमुमाए दारियाए वहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता कल्लेणं विगयसोए जाए यावि होत्था ।

धणत्स पट्वज्जा—

६३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए समोत्तडे ।

तए णं धणे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पट्वइए । एवकार-संगवी । नासियाए संलेहणाए सोहम्मे कप्पे उववण्णे । महाविदेह वासे तिज्जिहिइ ।

निगमणं—

“जहा वि य णं जं वु ! धणेणं सत्थवाहेणं नो वण्णहेउं वा नो रुवहेउं वा नो उल्लहेउं वा नो वित्तयहेउं वा नुमुमाए दारियाए संतसोणिए आहारिए, नन्तरय एगाए रायगिह-संपावज्जट्टयाए ।

हे तात ! आप मुझे जीवन रहित कीजिए, मेरे मांस और रुधिर का आहार कीजिये, अग्रामिक अटवी को पार कीजिये, राजगृह को प्राप्त कीजिये, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचितों से मिलिये और अर्घ्य, धर्म और पुण्य के भागी बनिये ।’ इसी प्रकार-यावत्-पाँचवें पुत्र ने भी कहा ।

६२७. तत्पश्चान् धन्य सार्यवाह ने पाँचों पुत्रों की हृदयाभिलाषा जानकर उन पाँचों पुत्रों से इस प्रकार कहा—‘हे पुत्रो ! हम अपने में से एक को भी जीवन से रहित न करें । सुंमुमा दारिका का यह निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीव से त्यक्त शरीर है । अतएव हे पुत्रो ! सुंमुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार करना हमारे लिये उचित होगा । जिससे हम लोग उन आहार से स्वस्थ होकर राजगृह को पा सकेंगे ।’

तदनन्तर धन्य सार्यवाह के इस कथन को सुनकर उन पाँचों पुत्रों ने यह बात स्वीकार की ।

६२८. तत्पश्चान् पाँचों पुत्रों के साथ धन्य सार्यवाह ने अरणि की, फिर किया, शर करके शर से अरणि का मंथन किया, मंथन करके अग्नि उत्पन्न की, फिर अग्नि घोंकी, धाँककर उनमें लकड़ियाँ डालीं, अग्नि प्रज्वलित की और फिर सुंमुमा दारिका का मांस पकाकर उस मांस और रुधिर का आहार किया । उन आहार से स्वस्थ होकर राजगृह नगर को प्राप्त किया, अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजनों, सम्बन्धियों से मिले और विपुत्र धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, जंघ, जिनाप्रवाल, रक्त रत्न आदि संसार के सारभूत धन एव पुण्य के भागी बने ।

६२९. तत्पश्चान् धन्य सार्यवाह ने सुंमुमा दारिका के चरत से लौकिक मृतक-कृत्य किये, करके काल के बीत जाने पर मोक रहित हो गया ।

धन्य की प्रवचन—

६३०. उस काल और उस समय धम्म भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में पधारें ।

उस समय पुत्रों सहित धन्य सार्यवाह धर्म श्रवण शर प्रव्रजित हुआ । ग्यारह अंगों का वेला हो गया । अंतिम समय जाने पर एक मान की संलेचना करके मोधर्म-काल से प्रवृत्त हुआ । वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में निरुद्धि प्राप्त करेगा ।

निगमन—

‘हे बन्धू ! जैसे उन धन्य सार्यवाह ने पाँचों के लिये स्वयं से किये, वल के लिये अथवा विपण के लिये सुंमुमा दारिका के मांस और रुधिर का आहार गरी किया था, वैसिते मान राजगृह नगर को जाने के लिये ही आहार किया था ।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निगंथो वा निगंथी वा आय-
रिय-उवज्जायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं
पव्वइए समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स
[खेलासवस्स ?] सुक्कासवस्स सोणियासवस्स दुह्य-उस्सास-
निस्सासस्स दुह्य-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णस्स उच्चार-पासवण-
खेल-सिघाणन-वंत-पित्त-मुक्क-सोणियसंभवस्स अधुवस्स अणि-
तियस्स असासयस्स सडण-पडण-विद्धं सणधम्मस्स पच्छा पुरं च णं
अवस्सविपजहियव्वस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं
वा नो विसयहेउं वा आहारं आहारेइ, नन्तथ एगाए सिद्धिगमण-
संपावणद्वयाए, से णं इहभवे चैव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं
बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे जाव चाउरंतं
संसारकांतारं वोईवइस्सइ—जहा व से सपुत्ते धणे सत्थवाहे ।”

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
अट्टारसमस्स नायज्जयणस्स अयमद्वे पण्णत्ते ।”

त्ति वेमि ।

—णायाधम्मकहाओ सु. १, अ. १८

६३१. अंगवंसाओ णं सत्तहत्तरि रायाणो मुण्डे-जाव-पव्वइया ।

सम० ७७ सु० १५५

इसी प्रकार हे आयुष्मन श्रमणो ! हमारे जो निर्ग्रन्थ अथवा
निर्ग्रन्थिनी, आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्डित होकर, गृह
त्यागकर अनगार दीक्षा लेकर वमन को बहाने वाले, पित्त को
बहाने वाले [कफ को बहाने वाले ?] शुक को बहाने वाले,
शोणित को बहाने वाले, दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास वाले, दुर्गन्ध-
युक्त मल-मूत्र-श्लेष्म, नासिका मल, वमन, पित्त, शुक, शोणित
से उत्पन्न होने वाले अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सड़न-पड़न-
विध्वंसनधर्मा और पहले-पीछे अवश्य छूटने योग्य इस औदारिक
शरीर के वर्ण के लिये, रूप के लिये, बल के लिये अथवा विषय
प्राप्त के लिये आहार नहीं करते हैं, किन्तु मात्र सिद्ध गति
प्राप्त करने के लिये आहार करते हैं, वे इसी भव में बहुत से
श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत-सी
श्राविकाओं के अर्चनीय होते हैं-यावत्-चतुर्गति रूप संसार
कांतार को पार करते हैं—जैसे कि पुत्रों सहित वह धन्य
सार्थवाह ।

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान-यावत्-संप्राप्त महावीर
द्वारा अठारहवें ज्ञात अध्ययन में यह अर्थ कहा गया है ।

—उसी प्रकार मैंने कहा है ।

६३१. अंगवंश के सतहत्तर राजा मुण्डित-यावत्-प्रव्रजित हुए ।

卐

卐

४८. महावीरतित्थे कालोदाइ कहाणयं

४८ महावीरतीर्थ में कालोदायी कथानक

रायगिहट्ठियाणं कालोदाइआईणं अत्थिकायविसये
संदेहो —

६३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था
वन्नओ । गुणसिलए चेइए—वन्नओ, जाव-पुढविसिलापट्टए—
वण्णओ ।

राजगृह स्थित कालोदायी आदि को अस्तिकाय विषयक
संदेह—

६३२. उस काल, उस समय में राजगृह नामक नगर था, वर्णन ।
गुणशिलक चैत्य था—वर्णन, यावत्-पृथ्वी शिलापट्टक था—
वर्णन ।

१. वृत्तिकृता समुद्धता निगमनगाथा—

जह सो चिलाइपुतो सुं सुमगिद्धो अकज्ज-पडिबद्धो ।
तह जीवो विसय-सुहे, लुद्धो काज्जण पावकिरियावो ।
धणसेट्ठी विव गुत्थो, पुत्ता इव साहवो भवो अडवो ।
जह अडवि-नियर-नित्थरण-पावणत्थं तएहि सुयमंसं ।
भव-संरण-सिव-साट्ठणहेउं भुंजंति ण नेहीए ।

धण-पारद्धो पत्तो, महाडवि वसण-सयकलियं ॥१॥
कम्मवसेणं पावइ, भवाडवीए महादुक्खं ॥२॥
नुयमंसमिवाहारो, रायगिहं इह सिवं नेयं ॥३॥
भुत्तं तदेह साह, गुरुण आणाइ आहारं ॥४॥
वण्ण-वत्तह्व-हेउं, व भावियप्पा महासत्ता ॥५॥

तस्स णं गुणसिलयस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते वह्वे अन्न-
उत्थिया परिवसंति, तं जहा—कालोदाई सेलोदाई सेवालोदाई
उदए नामुदए नम्मुदए अन्नवालए सेलवालए संखवालए सुहत्थी
गाहावई ।

६३३. तए णं तैसि अन्नउत्थियाणं अन्नया कयाई एगयओ समु-
वागयाणं सन्निविट्ठाणं सन्निसन्नाणं अयमेयाह्वे मिहो कहासमुल्लावे
समुप्पज्जित्था—“एवं खलु समणे नायपुत्ते पंच अत्थिकाए पन्नवेइ,
तं जहा—धम्मत्थिकायं, जाव आगा सत्थिकायं तत्थ णं समणे नाय-
पुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पन्नवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं
अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं पोग्गलत्थिकायं, एगं च णं समणे
णायपुत्ते जीवत्थिकायं अरुविकायं जीवकायं पन्नवेइ । तत्थ णं
समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरुविकाए पन्नवेइ, तं जहा—
धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकाय आगासत्थिकायं जीवत्थिकायं, एगं
च णं समणे णायपुत्ते पोग्गलत्थिकायं रूविकायं अजीवकायं
पन्नवेइ, कहमेयं मन्ने एवं ?”

कालोदाइआईणं गोयमं पइ अत्थिकायसंकांनिरुवणं—

६३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-गुण-
सिलए चेइए समोसडे-जाव-परिसा पडिगया । तेणं कालेणं तेणं
समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई
णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं एवं जहा विइयसए नियंठुइसए-जाव-
भिवखापरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं पडिगाहित्ता
रायगिहाओ-जाव-अतुरियमचवलमसंभंतं-जाव-रियं सोहेमाणे
सोहेमाणे तैसि अन्नउत्थियाणं अदूरसामंतेणं चीइवयइ ।

उस गुणशिलक उच्चान के समीप छोटी दूर, बहुत ते अन्य
तीर्थिक रहते हैं यथा-कालोदायी, सेलोदायी, सेवालोदायी, उदय
नामोदय, नर्मादय, अन्यपालक, गैलपालक नृष्यपालक, मुत्तुली
गायापति गृहपति ।

६३३. तत्परचात् अन्य किसी एकमय एकत्र हुए, बैठे हुए,
सुखपूर्वक बैठे हुए उन अन्यतीर्थिकों में इन प्रकार का यह
वार्तालाप हुआ—“श्रमण ज्ञानपुत्र पांच अस्तिकायों की प्रवृत्तिया
करते हैं, यथा-धर्मान्तिकाय-यावन्-आकाशास्तिकाय उनमें श्रमण,
ज्ञानपुत्र चार अस्तिकाय अजीवकाय है, ऐसा धनाने है ! ये
इसप्रकार-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय,
पुद्गलास्तिकाय एक जीवास्तिकाय को श्रमण ज्ञानपुत्र अपनी
जीवकाय बताते हैं । उनमें से श्रमण ज्ञानपुत्र चार अस्तिकाय
को अरुणी काय प्रवृत्तित करते हैं, जैसे—धर्मान्तिकाय,
अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय एक
पुद्गलास्तिकाय को रूपी अजीवकाय प्रवृत्तित करने है इस प्रकार
यह कैसे माना जा सकता है ?”

कालोदायी आदि का गौतम से अस्तिकाय ज्ञाना निरुवण—

६३४. उस काल, उस समय श्रमण भगवान महावीर-यावन्-
गुणशिलक चैत्य में नमस्करित हुए-यावन्-परिषदा कायम लोई।
उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के जराठ
अंतेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगर हमारे यहाँ के
निग्रजोडेशक में किये गये वर्णन के अनुसंधान-यावन्-भिआवर्णो के
लिखे अटन करते हुए यथा पर्याप्त भक्तवत्सल की प्रवृत्तियों के
राजगृह नगर से-यावन्-स्वराजहित, अगन्धाराय रूप में—
यावन्-ईर्यात्तमिति को बारम्बार जोधने गए उन अन्यतीर्थिकों में

गोयमकयं कालोयाइआईणं संकाए समाहाणं—

६३५. तए णं से भगवं गोयमे ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

‘नो खलु वयं देवानुप्पिया ! अत्थिभावं नत्थि त्ति वयामो नत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो, अम्हे णं देवानुप्पिया ! सब्बं अत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो, सब्बं नत्थिभावं नत्थि त्ति वयामो, तं चेयसा खलु तुव्भे देवानुप्पिया ! एयमट्ठं सयमेव पच्चुवेखह” त्ति कट्ठु से अन्नउत्थिए एवं वदति, एवं वदित्ता जेणेव गुणत्तिए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे एवं जहा निर्यंठुत्तेसए-जाव-भत्तपाणं पडिदंसेइ, भत्तपाणं पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने-जाव-पज्जुवासइ ।

कालोदाइकयाए पंचत्थिकायसंभ्रंधिविचिहपुच्छाए णातपुत्तकयं समाहाणं—

६३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महाकहा-पडिदन्ने यावि होत्था । कालोदाई य तं देसं हव्वमागए ।

कालोदाई त्ति समणे भगवं महावीरे कालोदाई एव वयासी—
से नूणं ते कालोदाई ! अन्नया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सन्निविट्ठाणं तहेव-जाव-से कहमेयं मन्ने एवं ?

से नूणं कालोदाइ ! अट्ठे समट्ठे ?
हंता ? अत्थि ।

तं सच्चे णं एसमट्ठे कालोदाई ! अहं पंचत्थिकायं पन्नवेमि, तं जहा—धम्मत्थिकायं-जाव-पोगलत्थिकायं, तत्थ णं अहं चत्तारि अत्थिकाए अजीवत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव-जाव-एणं च णं पोगलत्थिकायं रूविकायं पण्णवेमि ।

६३७. तए णं से कालोदाई समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

एयंसि णं भंते ! धम्मत्थिकायंसि अधम्मत्थिकायंसि आगा-सत्थिकायंसि अरूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आस-इत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठइत्तए वा नसीइत्तए वा तुयट्ठित्तए वा ?
णो तिण्णहे समट्ठे ।

कालोदाई ! एयंसि णं पोगलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा सइत्तए वा-जाव-तुयट्ठित्तए वा ।

गीतमकृत कालोदायी आदि की शंका का समाधान—

६३५. तत्पञ्चात् उन भगवान गीतम ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव को नास्ति यह नहीं कहते हैं और उन्नी तरह नास्तिभाव को अस्ति यह भी नहीं कहते हैं, हे देवानुप्रियो ! हम समस्त अस्तिभाव को अस्ति कहते हैं और समस्त नास्तिभाव को नास्ति कहते हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो ! ज्ञान द्वारा तुम स्वयमेव इस अर्थ का विचार करो ।’ ऐसा उन अन्यतीर्थिकों से कहते हैं, इन प्रकार कहकर जहाँ गुणशिलक चैत्य है, जहाँ श्रमण भगवान महावीर हैं, निर्ग्रथ उद्देशक के वर्णन के अनुरूप-यावत्-भवत्तपाण को दिखाते हैं, भक्तपान को दिखाकर श्रमण भगवान महावीर को वदन-नमस्कार करते हैं, वंदन नमस्कार करके न अति निकट-यावत्-पर्युपासना करते हैं ।

कालोदायी-कृत पंचास्तिकाय सम्बन्धी विविध प्रश्नों का ज्ञातपुत्र-कृत समाधान—

६३६. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर महाकथा प्रतिपन्न [धर्मोपदेश करने में प्रवृत्त] थे । उस स्थान पर कालोदायी शीघ्र आया ।

श्रमण भगवान महावीर ने कालोदायी से कहा—

हे कालोदायी ! अन्यदा कोई एक समय एकत्रित हुए, आये हुए, बैठे हुए, तुमको पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार-यावत्-वह बात इस तरह कैसे मानी जा सकती है ?

हे कालोदायी ! सचमुच क्या यह बात यथार्थ है ?

हाँ ! यथार्थ है ।

हे कालोदायी ! यह बात सत्य है, मैं पाँच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ, जैसे कि धर्मास्तिकाय-यावत्-पुद्गलास्तिकाय, उनमें चार अस्तिकाय अजीवास्तिकाय को अजीव रूप में कहता हूँ, पूर्व में कहे प्रमाण-यावत्-एक पुद्गलास्तिकाय को रूपी काय कहता हूँ ।

६३७. तब उस कालोदायी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! इन अरूपी अजीवकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय में बैठने, सोने, खड़े रहने, नीचे बैठने, लौटने में कोई भी शक्तिमान है ?

यह अर्थ योग्य नहीं है ।

हे कालोदायी ! एक रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय में बैठने, सोने-यावत्-लोटने में कोई भी शक्तिमान है ।

एयंसि णं भंते ! योगलत्थिकायंसि रुविकायंसि अजीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावकम्मफलविवागसंजुत्ता कज्जंसि ?

णो इणट्ठे समट्ठे कालोदाई !

६३८. एयंसि णं जीवत्थिकायंसि अरुविकायंसि जीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता ! कज्जंति ।

कालोदाइस्स निग्गंथपवज्जागहणं विहरणं च—

६३९. एत्थ णं से कालोदाई संबुट्ठे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छानि णं भंते ! तुव्वं अंतियं धम्मं नित्तमेत्तए एवं जहा खंवए तहेव पव्वइए तहेव एवकारस अंगाइ-जाव-विहरइ ।

भगवओ महावीरस्स जणवयविहारो—

६४०. तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ रायगिहाओ नगराओ गुणसिलयाओ चेइयाओ पडिनिवपमइ पडिनिखमित्ता वहिया जणवयविहारं विहरइ ।

कालोदाइकयाए पावकम्म-करलाणकम्मफलविवागपुच्छ्याए भगवओ समाहाणं—

६४१. तेणं कालेणं तेण समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए । तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ-जाव-समोसडे ।-जाव-परिसा पडिगया ।

६४२. “तए णं से कालोदाई अणगारे अन्नया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हे भगवन् ! इस रूपी अजीवकाय पुद्गलान्तिकाय में जीवों को पाप फल विपाक सहित पापकर्म लगते हैं ?

हे कालोदायी ! यह अर्थ योग्य नहीं है ।

६३८. क्या इस अरूपीकाय जीवान्तिकाय में जीवों को पाप फल विपाक सहित पाप कर्म लगते हैं ?

हाँ लगते हैं ।

कालोदायी द्वारा निर्ग्रथ प्रत्रय्या ग्रहण और विहरण—

६३९. यहाँ वह कालोदायी संबुद्ध हुआ और श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करते उसने इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूँ— धर्म श्रवण करने का इच्छुक हूँ । इस तरह सादिक के समान उसने प्रत्रय्या अंगीकार की और उसी तरह ग्यारह अंगों को पढ़कर-यावत्-विचरता है ।

भगवान महावीर का जनपद विहार—

६४०. तत्परिधान् अन्यथा कोटि एक दिन श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर और गुणशीलक चैत्य में बाहर निकले ।, निकलकर बाहर जनपदों में विहार करने हे ।

कालोदायीकृत पापकर्म-करलाण कर्म फल विवाग प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४१. उस काल उम समय में राजगृह नामक नगर में गुणशीलक चैत्य था । यहाँ अन्यथा कोटि दिन श्रमण भगवान महावीर-यावत्-परारे । परिपदा वाचन गर्दे ।

६४२. उनके बाद वह कालोदायी जनगार श्रमण कीर्तिमान उठा श्रमण भगवान है, वहाँ आया, जाकर श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करता है, वंदना नमस्कार करते उसने इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! जीवों के पापकर्म पावकम्मफल विवाग संचित होने हैं ?

तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिण-
ममाणे दुखवत्ताए-जाव-भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालो-
दाई ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ।

कल्लाणकम्मविसये पण्होत्तरं—

६४३. अत्थि णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाणफल-
विवागसंजुत्ता कज्जंति ?

हंता ! अत्थि ।

कहन्नं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ?

कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुन्नं थालीपागसुद्धं
अट्टारसवंजणाउलं ओसहमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स
आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे
सुखवत्ताए सुवन्नत्ताए-जाव-सुहत्ताए नो दुखत्ताए भुज्जो भुज्जो
परिणमइ, एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे-जाव-
परिग्रहवेरमण कोहविवेगे-जाव-मिच्छादंसणसस्त्विवेगे तस्स णं
आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे
सुखवत्ताए-जाव-नो दुखत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु
कालोदाई ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा-जाव-कज्जंति ।

कालोदाइकयाए अग्णिकायसमारभण-निव्वावण-
संवंधियकम्मवन्ध पुच्छाए भगवओ समाहाणं—

६४४. दो भंते ! पुरिसा सरिसया-जाव-सरिसभंडमत्तोवगरणा
अन्नमन्नेणं नद्धि अगणिकायं समारभंति तत्थ णं एगे पुरिसे
अगणिकायं उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ, एएत्ति
णं भंते ! दोहं पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव
महाक्रियतराए चेव महासवतराए चेव महावेयणतराए चेव,
कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव-जाव-अप्पवेयणतराए चेव,
जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, जे वा से पुरिसे अगणिकायं
निव्वावेइ ?

कालोदाई ! तस्स णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ
से णं पुरिसे महारुम्मतराए चेव-जाव-महावेयणतराए चेव, तत्थ
णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए
चेव-जाव-अन्नवेयणतराए चेव ।

परिणत होता है, इसी तरह हे कालोदायी ! जीवों को प्राणातिपात-
यावत्-मिथ्यादर्शन शल्य शुरुआत में अच्छा लगता है, उसके
बाद परिणमित होने पर घृणित रूप से-यावत्-वारंवार परिणत
होता है, इसी प्रकार हे कालोदायी ! जीवों के पापकर्म पाप फल
विपाक सहित होते हैं ।

कल्याणकर्म के विषय में प्रश्नोत्तर—

६४३. हे भगवन् ! क्या जीवों के कल्याणकर्म कल्याण फल
विपाक सहित होते हैं ?

हां, होते हैं ।

हे भगवन् ! जीवों के कल्याणकर्म कल्याणफल विपाक सहित
कैसे होते हैं ?

हे कालोदायी ! जैसे कोई एक पुरुष सुन्दर स्थाली में पकाने
से शुद्ध अठारह प्रकार के व्यंजनों से युक्त औषधि मिश्रित भोजन
करता है, वह भोजन खाते समय प्रारम्भ में भद्र-रुचिकर-अच्छा
नहीं लगता है उसके बाद जब वह अत्यन्त परिणाम को प्राप्त
होता है—पचता है तब वह सुरूपने से, सुवर्णपने से-यावत्-
सुखदपने से परिणत होता है किन्तु दुखरूप से परिणत नहीं होता
है, इसी तरह हे कालोदायी ! जीवों को प्राणातिपातविरमण-यावत्-
परिग्रहविरमण, क्रोध का त्याग-यावत्-मिथ्यादर्शनशल्य का
त्याग प्रारम्भ में अच्छा नहीं लगता है, किन्तु उसके बाद जब
वह परिणाम को प्राप्त करता है तब वह वारंवार सुखपने से
परिणत होता है-यावत्-दुखरूप से परिणत नहीं होता है, इस
तरह हे कालोदायी ! जीवों के कल्याणकर्म कल्याणफलविपाक
सहित होते हैं ।

कालोदायीकृत अग्निकाय समारंभण-निर्वापण सम्बन्धी कर्म
बंध के प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४४. हे भदन्त ! सदृश दो पुरुष-यावत्-समान भांड-पात्रादि
उपकरण वाले हों, वे परस्पर साथ में अग्निकाय का समारंभ-
हिंसा करते हैं, उनमें एक पुरुष अग्निकाय को प्रकट करता है
और एक पुरुष उसे बुझाता है, हे भगवन् ! इन दो पुरुषों-
में कौनसा पुरुष महाकर्म—महाक्रिया वाला, महाआस्रव
वाला और महावेदना वाला होता है और कौनसा पुरुष अल्प
कर्मवाला-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है, अथवा जो पुरुष
अग्निकाय को प्रकट करता है वह या जो पुरुष अग्निकाय को
बुझाता है वह ?

हे कालोदायी ! उन दो पुरुषों में जो अग्निकाय को
प्रज्वलित करता है, वह पुरुष महाकर्म वाला-यावत्-महावेदना
वाला होता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह
पुरुष अल्पकर्मवाला-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—तत्थ णं जे से पुरिसे-जाव-अप्पवेयणतराए चेव ?

कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारभइ, बहुतरागं आजवकायं समारभइ, अप्पतरायं तेउकायं समारभइ, बहुतरागं वाउकायं समारभइ, बहुतरायं वणस्सइकायं समारभइ, बहुतरागं तसकायं समारभइ; तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पतरायं पुढविकायं समारभइ, अप्पतरागं आजवकायं समारभइ, बहुतरागं तेउकायं समारभइ, अप्पतरागं वाउकायं समारभइ, अप्पतरागं वणस्सइकायं समारभइ, अप्पतरागं तसकायं समारभइ; से तेणट्ठेणं कालोदाई ! जाव-अप्पवेयणतराए चेव ।

कालोदाइकयाए अचित्तपोगलावभासण - उज्जोवण-संवंधियपुच्छाए भगवओ समाहाणं—

६४५. अत्थि णं भंते ! अचित्ता वि पोगला ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासंति ?

हंता ! अत्थि ।

कयरे णं भंते ! ते अचित्ता वि पोगला ओभासंति-जाव-पभासंति ?

कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गंता दूरं निवपइ, वेसं गंता वेसं निवपइ, जहिं जहिं च णं सा निययइ तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोगला ओभासंति-जाव-पभासंति, एएणं कालोदाई ! ते अचित्ता वि पोगला ओभासंति जाव-पभासंति ।

कालोदाइस्स निव्वाणगमणं—

६४६. तए णं से कालोदाई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता बहूहिं उज्जत्य-एट्ठुदुम-जाव-अप्पाणं भावे-माणे जहा पडमसए कालासवेतियपुत्ते-जाव-सव्वदुक्कएप्पहीणे ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भगवई न. ७, उ. १०

हे भगवन् ! इस तरह आप कैसे—किसलिये करते हैं—उनमें जो पुरुष-यावत्-अल्पवेदना वाला होता है ?

हे कालोदायी ! उन दोनों में से जो पुरुष अग्निकाय को प्रदीप्त करता है, वह पुरुष पृथ्वीकाय का प्रचुर परिमाण में समारंभ करता है, जलकाय का प्रभूत मात्रा में समारंभ करता है, अल्प अग्निकाय का समारंभ करता है, वायुकाय का अधिक समारंभ करता है, बहुत से वनस्पतिकाय का समारंभ करता है, अधिक व्रसकाय का समारंभ करता है; और उनमें जो पुरुष अग्निकाय को वृक्षाता है वह पुरुष अल्पपृथ्वीकाय का समारंभ करता है, अल्प जलकाय का समारंभ करता है, घटूत अग्निकाय का समारंभ करता है, अल्प वायुकाय का समारंभ करता है, अल्प वनस्पतिकाय का समारंभ करता है, अल्प व्रसकाय का समारंभ करता है, इस कारण हे कालोदायी ! यावन्-अल्पतर वेदना वाला होता है ।

कालोदायीकृत अचित्त पुद्गलावभासण-उद्योतन सम्बन्धी प्रश्न का भगवान द्वारा समाधान—

६४५. हे भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं ? उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रकाश करते हैं ?

हां, करते हैं !

हे भगवन् ! अचित्त हानि पर भी कौन से पुद्गल अवभास करते हैं-यावन्-प्रकाश करते हैं ?

हे कालोदायी ! क्रोधित अनगार की मंत्रोलिप्सा निकलकर दूर जाकर दूर पड़ती है, देग में जाकर उस देग में पड़ती है, जहाँ-जहाँ वह पड़ती है वहाँ वहाँ ये अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं-यावन्-प्रकाश करते हैं, इस कारण ये अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं-यावन्-प्रकाश करते हैं ।

कालोदायी का निर्वाणगमन—

६४६. तत्परचान् वह कालोदायी अनगार भयण भगवान महावीर को वंदना-नमस्कार करता है, परमा नमस्कार करते वदुड में चतुर्थे, पच्छ, अष्टम-यावन्-आरणा की भावित करता हुआ — भावना हुआ प्रथम जनक में कालासवेतियपुत्त की उरु-यावत्-सर्वतु या से रहित हुआ ।

हे भगवन् ! यह उस प्रकार है, हे भगवन् ! यह इस प्रकार है ।

४६ पुण्डरीय कण्डरीय कथाणयं

महाविदेहे पुण्डरीगिणी-नगरीए रायपुत्ता पुण्डरीय-कंडरीया—

६४७. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्वीवे दीवे पुव्वविदेहे, सीयाए महानईए उत्तरिल्ले कूले, नीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, उत्तरिल्लस्स सीयामुह्वणसंडस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेल-गस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावई नामं विजए पणत्ते ।

तत्थ णं पुंडरीगिणी नामं रायहाणी पणत्ता—नवजोयण-वित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा ।

तीसे णं पुंडरीगिणीए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए नलिणिवणे नामं उज्जाणे ।

तत्थ णं पुंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था ।

तस्स णं पउमावई नामं देवी होत्था ।

तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा—पुंडरीए य, कंडरीए य—सुकुमालपाणिपाया । पुंडरीए जुवराया ।

महापउमरण्णो पव्वज्जा पुण्डरीयाभिसेओ य—

६४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं । महापउमे राया निग्गए । धम्मं सोच्चा पुंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए । पुंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया । महापउमे अणगारे चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ । तए णं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति ।

तए णं से महापउमे वहूणि वासाणि सामण्यपरियाणं पाउणित्ता-जाव-सिद्धे ।

तए णं थेरा अणया कयाइ पुणरवि पुंडरीगिणीए रायहाणीए नलिणीवणे उज्जाणे समोसढा । पुंडरीए राया निग्गए । कंडरीए महाजणसद्धं सोच्चा जहा महावलो जाव पज्जुवासइ । थेरा धम्मं परिकहेत्ति । पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए ।

४९. पुण्डरीक-कण्डरीक कथानक

महाविदेह में पुण्डरीकिणी नगरी के राजपुत्र पुण्डरीक-कंडरीक—

६४७. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह में सीता महानदी के उत्तरी किनारे, नीलवंत नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, उत्तर की तरफ के सीतामुख नामक वनखण्ड से पश्चिम में और एकशैलक नामक वक्षार पर्वत से पूर्व दिशा में पुष्कलावती नामक विजय है ।

उसमें पुण्डरीकिणी नामक राजधानी है—जो नौ योजन चौड़ी वारह योजन लम्बी - यावत्-साक्षात् देवलोक के समान मनोहर, दर्शनीय, सुन्दर रूपवाली और प्रतिरूप है ।

उस पुण्डरीकिणी नगरी के उत्तर पूर्व दिग्भाग [ईशान कोण] में नलिनीवन नामक उद्यान है ।

उस पुण्डरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था ।

उसकी पद्मावती नाम की रानी थी ।

उस महापद्म राजा के पुत्र, पद्मावती देवी के आत्मज दो राजकुमार थे, यथा—पुण्डरीक और कंडरीक; जिनके हाथ-पैर आदि अंगोपांग सुकुमाल थे । पुण्डरीक युवराज था ।

महापद्म राजा की प्रब्रज्या और पुण्डरीक का अभिषेक—
६४८. उस काल और उस समय में स्थविर मुनियों का आगमन हुआ । महापद्म राजा [वंदना के लिये] निकला । धर्म को सुनकर पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित कर उसने दीक्षा अंगीकार करली । 'पुण्डरीक राजा हो गया और कंडरीक युवराज हुआ । महापद्म अनगार ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया । तदनन्तर स्थविर मुनि बाहर के जनपदों में विहार करने लगे ।

तत्पश्चात् महापद्म ने बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन कर-यावत्-सिद्धि प्राप्त की ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय पुनः स्थविर पुण्डरीकिणी राजधानी के नलिनी वन उद्यान में पधारे । पुण्डरीक राजा वंदना के लिये निकला । कंडरीक भी महाजनों [जन समूह] के मुख से स्थविरों के आने के समाचार सुनकर महाबल की तरह वंदना करने के लिये निकला-यावत्-पर्युपासना करता है । स्थविरों ने धर्मोपदेश दिया । धर्म श्रवणकर पुण्डरीक श्रमणोपासक हो गया-यावत्- अपने घर लौट आया ।

तए णं कंडरीए थेराणं अंतिए घम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुडे उट्टाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता थेरे तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“सट्ठहामि णं भंत्ते ! निग्गयं पावयणं जाव से जहेयं तुव्णे वयह । जं नंबरं-पुंडरीयं रायं आपुच्छामि । तओ पच्छा मुंटे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।”

अहामुहं देवानुप्पिया !

तए णं से कंडरीए थेरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, तमेव चाउघंठं आत्तरहं वुहइ मह्याभड-चडगर-पहकरेण पुंडरीगिणोए नयरीए नज्जमज्जेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउघंटाओ आत्तरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयत्तपरिग्गहियं दसणहं निरमायत्तं मत्तए अंजलि कट्ठु एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए घम्मे निसंत्ते, से वि ष मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं देवानुप्पिया ! तुव्णेहि अट्ठमणुण्णाए तमाणे थेराणं अतिए मुंटे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।”

कंडरीयस्स पव्वज्जा—

६४६. तए णं से पुंडरीए राया कंडरीयं एवं वयासी—

“मा णं तुमं भाउजा ! इयानि मुंटे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि । अहं णं तुमं महारायाभित्तेएण अभित्तिवामि ।”

तए णं से कंडरीए पुंडरीयस्स रणो एयमट्ठु नो आइइ नो परिआप्पाइ तुत्तिणोए सच्चिट्ठु ।

नए णं से पुण्डरीए राया कंडरीयं दोरुच्चवि तत्तच्चवि तथं वयासी—“मा णं तुमं भाउजा ! इयानि मुंटे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयाहि । अहं णं तुमं महारायाभित्तेएण अभित्तिवामि ।”

तए णं से कंडरीए पुण्डरीयस्स रणो एयमट्ठु नो आइइ नो परिआप्पाइ तुत्तिणोए सच्चिट्ठु ।

तत्पश्चान् कंडरीक स्वविर मुनिराजों के मुख से धर्म सुनकर और नमजकर हृषित और ननुष्ट हो अपने स्थान से उठकर खड़ा हुआ, खड़े होकर स्वविरों से तीन बार आशिक्षा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

‘हे भदन्त ! निग्रेव प्रवचन की मैं श्रद्धा करता हूँ-पावन-आपने जो कहा वह वैसा ही है । लेकिन फिर क्या है—मैं पुण्डरीक राजा से अनुमति ले लूँ । उसके बाद मुण्डिन से गुरु त्यागकर अनगर प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा ।’

‘हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें मुख उपजे, वैसा करो’—स्वविरों ने कहा ।

तत्पश्चान् कंडरीक ने स्वविरों की वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके स्वविरों के पास से निजता, निजत कर उनी चार घंटा वाले अश्वरथ पर आसट्ट हुआ और बड़े-बड़े योद्धाओं के ननुह के साथ पुण्डरीकिणी नगरी के पी-पी पी-पी होता हुआ जहाँ अपना भवन था, यहाँ पहुँचा, पहुँचकर चार घंटा वाले अश्वरथ से नीचे उतरा, उतरकर वहाँ पुण्डरीक राजा था, वहाँ आया, आकर हाथ जोड़ नतमस्तक हो अंगीकार करके इस प्रकार बोला—

‘हे देवानुप्रिय ! मैं स्वविर मुनियों से धर्म सुना हूँ, मैं धर्म धर्म की इच्छा करता हूँ, विनय इच्छा करता हूँ, रति करता हूँ । अतएव हे देवानुप्रिय ! अपनी अनुमति प्राप्त करके स्वविरों के पास मुण्डिन से गुरु त्यागकर अनगर प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ ।’

कंडरीक की प्रव्रज्या—

६४६. तए पुण्डरीक राजा से कंडरीक से इयप्रदार उया—

‘हे भाई ! तुम इस समय मुण्डिन से गुरु, गुरु त्यागकर अनगर दीक्षा ग्रहण मत करो । मैं तुम्हें महारायभित्तेए से अभित्ति करके जाता हूँ ।’

तए कंडरीक ने पुण्डरीक राजा से इस प्रकार का आदेश नहीं किया उससे स्वीकार नहीं किया और नीचे उतरा ।

तए पुण्डरीक राजा ने कंडरीक से अनुमति ले ली और स्वविरों के पास गुरु त्यागकर अनगर प्रव्रज्या अंगीकार करने की इच्छा व्यक्त की ।

तए कंडरीक ने पुण्डरीक राजा से इस प्रकार का आदेश नहीं किया, स्वीकार नहीं किया और नीचे उतरा ।

तए णं पुण्डरीए कंडरीयकुमारं जाहे नो संचाएइ बहूहिं
आघवणाहिं य पणवणाहिं य जाव-ताहे अकामए चैव एयमट्ठं
अणुमन्नित्था जाव-निक्खमणाभिसेएणं अभिसिचइ जाव थेराणं
सीसभिवखं दलयइ । पव्वइए । अणगारे जाए । एक्कारसंगवी ।

तए णं थेरा भगवंतो अणया कयाइ पुण्डरीगिणीओ नयरीओ
नलिणिवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, वहिया जणवयविहारं
विहरंति ।

कंडरीयस्स वेयणा—

६५०. तए णं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहिं य
पंतेहिं य जहा सेलगस्स-जाव-दाहवक्कंतीए यावि विहरइ ।

तए णं थेरा अणया कयाइ जेणेव पंडरीगिणी नयरी तेणेव
उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नलिणीवणे समोसढा । पुण्डरीए
निगए । धम्मं सुणेइ ।

कंडरीयस्स तिगिच्छा—

६५१. तए णं पुण्डरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अण-
गारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं वंदइ नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वावाहं
सरीरगं पासइ, पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं
वयासी—

“अहणं भंते ! कंडरीयस्स अणगारस्स अहापवत्तेहिं ओसह-
भेसज्ज-भत्त-पाणेहिं तेगिच्छं आउट्टामि । तं तुव्वे णं भंते ! मम
जाणसालासु समोसरह ।”

तए णं थेरा भगवंतो पुण्डरीयस्स एयमट्ठं पडिसुणंति, पडि-
सुणेत्ता जेणेव पुण्डरीयस्स रणो जाणसाला तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता फासुएसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संधारगं उवसंप-
ज्जित्ता णं विहरंति ।

तए णं पुण्डरीए राया तेगिच्छिए सहावेइ, सहावेत्ता एवं
वयासी—“तुव्वे णं देवाणुप्पिया ! कंडरीयस्स फासु-एसणिज्जेणं
ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेणं तेगिच्छं आउट्टेह ।”

तए णं ते तेगिच्छिया पुण्डरीएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा
हट्टुट्टा कंडरीयस्स अहापवत्तेहिं ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेहिं
तेगिच्छं आउट्टेति, मज्जपाणगं च से उवदिसंति ।

तत्पश्चात् जब पुण्डरीक कंडरीक कुमार को बहुत कुछ कह
कर और समझाकर-यावत्-तव इच्छा न होते हुए भी यह बात
मान ली—यावत्-निष्क्रमणाभिपेक से उसे अभिपिक्त किया-यावत्-
स्थविर मुनियों को शिष्य भिक्षा प्रदान की । कंडरीक प्रव्रजित
हो गया, अनगर हो गया, ग्यारह अंगों का वेत्ता हो गया ।

तत्पश्चात् स्थविर भगवान् अन्यदा किसी समय पुण्डरीकिणी
नगरी के नलिनीवन उद्यान से निकले और निकल कर बाहर के
जनपदों में विहार करने लगे ।

कंडरीक को वेदना—

६५०. तत्पश्चात् कंडरीक अनगर अन्त प्रान्त आहार से
यावत्-दाहज्वर से रुग्ण होकर सेलक के समान विचरने लगे ।

तत्पश्चात् एक बार किसीसमय स्थविर भगवन्त
पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे, पधार कर नलिनीवन उद्यान में
विराजे । पुण्डरीक राजा दर्शन, वंदना करने के लिये निकला ।
उसने धर्म श्रवण किया ।

कंडरीक की चिकित्सा—

६५१. तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा धर्म श्रवण कर जहाँ कंडरीक
अनगर थे, वहाँ आया, आकर कंडरीक को वंदना नमस्कार
किया, वंदना नमस्कार करके कंडरीक अनगर का शरीर सब
प्रकार से बाधा वाला और सरीरोग देखा, देखकर वह स्थविर
भगवंतों के पास आया, आकर स्थविर भगवंतों को वंदना-
नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘भगवन् ! मैं कंडरीक अनगर की यथाप्रवृत्त [साधु
समाचारी के अनुकूल] औषधि, भेषज, भक्त, पान से चिकित्सा
कराना चाहता हूँ । अतः हे भदन्त ! आप मेरी यानशाला में
पधारिये ।’

तत्पश्चात् स्थविर भगवन्तों ने पुण्डरीक की इस बात को
स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ पुण्डरीक राजा की
यानशाला थी, वहाँ पधारे और प्रासुक, एषणीय पीठ, फलक,
शैया, संस्तारक लेकर विचरने लगे ।

तदनन्तर पुण्डरीक राजा ने चिकित्सक को बुलाया और
बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रिय ! आप कंडरीक
अनगर की प्रासुक, एषणीय औषध, भेषज, भक्त (भोजन) पान
से चिकित्सा कीजिये ।’

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा की आज्ञा को सुनकर हर्षित और
संतुष्ट हो कंडरीक की यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, आहारपानी
से चिकित्सा करते हैं और मद्यपान करने का कहते हैं ।

तए णं तस्स कंडरीयस्स अहापवत्तेहि ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेहि मज्जपाणएणं य से रोगायंके उवसंते यावि होत्वा—हट्ठे बलियसरीरे जाए ववगयरीरोगायंके ।

कंडरीयस्स पमत्तविहारो—

६५२. तए णं थेरा भगवंतो पुण्डरीयं रायं आपुच्छंति, आपुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरंति ।

तए णं से कंडरीए ताओ रोगायंकाओ विष्पमुक्के समाणे तंति मणुणंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गिट्ठे गट्ठिए अज्जीववण्णे नो संचाएइ पुण्डरीयं आपुच्छित्ता वहिया अब्भु-ज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए तत्थेव ओसन्ने जाए ।

पुण्डरीएण पडिबोहो—

६५३. तए णं से पुण्डरीए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एहाए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं तिवखुत्तो आपाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंवइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—

“धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे ।
मुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले जे णं तुमं रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च वलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च विछड्ढेत्ता विगोवइत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभा-यइत्ता, मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहण्णं अधन्ने अकयपुण्णे रज्जे-जाव-अतेउरे य माणुस्सएमु य काम-भोगेसु मुच्छिए-जाव-अज्जीववण्णे नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए ।
तं धन्ने सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे ।
मुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले ।

तए णं से कंडरीए अणगारे पुण्डरीयस्स एयमट्ठं नो आडाइ नो परिपाणाइ तुत्तिपीए संचिट्ठइ ।

तए णं से कंडरीए अणगारे पुण्डरीएणं दोच्छंति तत्थंवि एवं बुत्ते समाणे अकामए अबसवसे लज्जाए गारयेण व पुण्डरीयं आपुच्छइ आपुच्छित्ता पेरेहि तट्ठि यहिया जणवयविहारं विहरइ ।

कंडरीयस्स पव्वज्जा-परिच्चाओ—

६५४. तए णं से कंडरीए पेरेहि तट्ठि कंठि क्खं अणं उयंजणेव विहरित्ता लओ पच्छा कणपत्तए-परित्तं कयलक्खण-विचिओ

तत्पश्चात् यथाप्रवृत्त औषध, भेषज, आहार, वस्त्रो ओष मद्यपान से चिकित्सा होने पर कंडरीक को रोग व्याधि उपशान्त हो गई—रोग व्याधि दूर होने से कंडरीक दृष्ट-दुष्ट अस्वास्थ्य शरीर वाने हो गये ।

कंडरीक का प्रमत्त विहार—

६५२. तत्पश्चात् स्वविर-भगवन्तो ने पुण्डरीक कथा से इन प्रकार पूछा और पूछकर वे बाहर जनपद विहार में विहरने लगे ।

उन समय कंडरीक उन रोग-प्रायक से मुक्त हो जाने पर भी उस मनोव अन्न, पान, चारिम, च्याश्म आहार में मुच्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने के कारण पुण्डरीक कथा से पूछकर बाहर जनपदों में उग्र विहार करने में समर्थ नहीं हो सके, वही जियिलाचारी होकर रहने लगे ।

पुण्डरीक द्वारा प्रनिबोध—

६५३. तत्पश्चात् पुण्डरीक ने इन कथा के अर्थ अर्थों से इन बातों के विदित होने पर स्नान विद्या और ज्ञान-पथ के परिश्रम से परिच्युत होकर जहाँ कंडरीक जनगार थे, वहाँ आया, आकर कंडरीक को तीन बार प्रादक्षिणा-प्रदक्षिणा की प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार गया—

समणत्तण-निम्भच्छिण्णं समणगुण-मुक्कजोगी थेराणं अतिपाओ सणियं-सणियं पच्चोत्तयकड्ड, पच्चोत्तयिकता जेणेव पुण्डरीणिणी नयरी जेणेव पुण्डरीयस्त भवणे तेणेव उवागच्छड, उवागच्छिता असोगवणियाए असोगवरपायवस्त अहे पुडविसित्तापट्टमंसि निशीयड, नीशीइत्ता ओहयमणसंकप्पे करतलपत्तलहृत्यमुहे अट्टज्जाणोयगए जियायमाणे संचिट्टड ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्त अम्मघाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छड, उवागच्छिता कंडरीय अणगारं असोगवरपाय-वस्त अहे पुडविसित्तापट्टमंसि ओहयमणसंकप्पं जाव जियायमाणं पासड, पासित्ता जेणेव पुण्डरीए राया तेणेव उवागच्छड, उवा-गच्छिता पुण्डरीयं रायं एवं वयासी—

“एवं खलु देवानुप्पिया ! तव पियभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्त अहे पुडविसित्तापट्टे ओहय-मणसंकप्पे जाव जियायइ ।”

तए णं से पुण्डरीए अम्मघाईए एवमट्टं नोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे उट्टाए उट्टेइ, उट्टेत्ता अंतेउर-परियालसंपरि-वुडे जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छड, उवागच्छिता कंडरीयं अणगारं तिकखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंचइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

“घन्ने सि णं तुमं देवानुप्पिया ! कयत्ये कयपुण्णे कयलक्खणे सुलद्धे णं देवानुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले-जाव-अगाराओ अणगारियं पव्वइए, अहं णं अधन्ने अकयत्ये अकयपुण्णे अकयलक्खणे-जाव-नो संचाएमि पव्वइत्तए । तं घन्नेसि णं तुमं देवानुप्पिया ! -जाव-सुलद्धं णं देवानुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीवियफले ।”

तए णं कंडरीए पुण्डरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्टइ । दोच्चंपि तच्चंपि पुण्डरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्टइ ।

तए णं पुण्डरीए कंडरीयं एवं वयासी—अट्टो भते ! भोगेहि ?

हंता ! अट्टो ।

तए णं से पुण्डरीए राया कोडुम्बियपुरिसे सदावंड, सदावत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! कंडरीयस्त महत्थं रायाभित्तेयं उवट्टवेह-जाव-रायाभित्तेएणं अभिसिच्चति ।

से ऊव गये और समणरा से निर्भरता को प्राप्त हुए, साम्राज्य के गुणों से मुक्त हो गये और धीरे-धीरे स्वयंसे के पास के विमल विण, विमल कर जहाँ पुण्डरीकियो नगरी को, जहाँ पुण्डरीक का भवन था, उन्नी तरफ आये, जाकर अशोक वाटिका में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-विनापट्टक पर बैठ गये, श्रेष्ठकर अश्वेली पर मुख हो रखकर भग्न मनोरथ को आनंदमान करते हुए निम्ना में ब्रूय गये ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक की धायमात्रा यदा अशोकवाटिका थी, वहाँ पहुँची, पहुँचकर उन्नी अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-विनापट्टक पर भग्न मनोरथ होकर-वावत्-विन्ना में ब्रूय हुए कंडरीक अनगार को बँटे देया, देखकर यह पुण्डरीक राजा के पास आई, आकर पुण्डरीक राजा ने उन प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रिय ! आपके प्रिय भाई कंडरीक अनगार अशोक वाटिका में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी-विनापट्टक पर भग्न मनोरथ-वावत्-विन्नावस्त होकर बैठे हैं ।”

तब यह पुण्डरीक राजा धायमात्रा की यह बात सुनकर और समझकर तत्काल संचान्त होकर न्यान से उठा, उठकर अन्तःपुर के परिवार से परिवृत्त होकर जहाँ अशोकवाटिका थी, वहाँ आया, आकर कंडरीक अनगार की तीन वार आदनिगा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

‘देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, कृतायं हो, कृतपुण्य हो, कृत-लक्षण हो, देवानुप्रिय ! तुमने मानव जन्म और जीवन का सुन्दर फल प्राप्त किया है-यावत्-गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की है, मैं अधन्य हूँ, अकृतायं हूँ, अकृतपुण्य हूँ, अकृत लक्षण हूँ-यावत्-दीक्षा लेने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ । देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो-यावत्-देवानुप्रिय ! तुमने मानव जन्म और जीवन का सुन्दर फल पाया है ।’

तत्पश्चात् पुण्डरीक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी कंडरीक मौन होकर बैठा रहा । दूसरी वार भी, तीसरी वार भी, पुण्डरीक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी मौन ही बना रहा ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक ने कंडरीक से इस प्रकार कहा—भदन्त ! क्या भोगों से प्रयोजन है ? अर्थात् क्या भोग भोगने की इच्छा है ?

हां ! प्रयोजन है । कंडरीक ने उत्तर दिया ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही कंडरीक के महान अर्थ व्यय से संपन्न होने वाले राज्याभिषेक की तैयारी करो-यावत्-राज्याभिषेक से कंडरीक का अभिषेक करता है ।

पुण्डरीयस्त पव्वज्जा—

६५५. तए णं से पुण्डरीए सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जिता कंडरीयस्त संतियं आयारमंडगं गेण्हइ, गेण्हिता इमं एयाह्वं अभिगग्हं अभिगिण्हइ—

“कप्पइ मे थेरे वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जिता णं तओ पच्छा आहारं आहारित्तए त्ति कट्टइम एयाह्वं अभिगग्हं अभिगिण्हिता णं पुण्डरीगिणीए पडिणिकखमइ, पडिणिकखमित्ता पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं इइज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

कंडरीयस्त मच्चू—

६५६. तए णं तस्स कंडरीयस्त रण्णे तं पणोयं पाणभोयणं आहारियस्त समाणस्त अइजागरएण य अइभोय-प्पसंगेण य से आहारो नो सम्मं परिणमइ ।

तए णं तस्स कंडरीयस्त रण्णे तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सरीरगंसि वेयणा पाउव्वनूया— उज्जला विउला कबखडा पगाडा चंडा दुपया दुरहिवासा । पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवकंतोए यावि विहरइ ।

तए णं से कंडरीए राया रज्जे य रट्ठे य अंतेउरे य माणु-स्तएसु य कामभोगेसु मुच्चिए गिद्धे गट्टिए अज्जोपवण्णे अट्टुहट्टुसट्टे अकामए अवसवत्ते कालमात्ते कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुट्ठोए उवकोसकालट्टिइयंसि नरयंसि नेरदयत्ताए उववण्णे ।

निगमणं—

६५७. एषामेव समणाउत्तो ! जो अम्हं निग्गंयो वा निग्गंयो वा आपरिय-उयउदायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अनाराओ अपगारियं पव्वइए समाने पुनरपि माणुस्तए कामभोए आनाएइ पव्ववइ पोह्ति, अभित्तइ, से णं इह भवे वेयं पूणं समणानं उहूण नमणीणं अहूणं सावधानं बहूणं साविधानं य होत्तपिउजे निदपिउजे डिग्गपिउजे गह्थिउजे वरिन्धपिउजे, परतोए वि व णं आवउडइ यट्ठोणं उववण्णियं मुण्डणानि य उरज्जणानि य तावणानि य अक्ख-वाउरं संसारकंतारं मुउओ-भुउओ अनुपरियट्टिसइ— इहा व से कंडरीए राजा :

पुण्डरीक की प्रव्रज्या—

६५५. तत्पश्चात् पुण्डरीक स्वयं अपने शिष्यों से तन्मूर्च्छित होकर करता है, स्वयं ही चानुयाम धर्म अंगीकार करता है, अंगीकार करके कंडरीक के श्रमण सम्प्रदायी आचार भंगी हो जाता है, लेकर यह और इस प्रकार का अभिप्रेत प्रव्रज्य करता है—

‘स्थविर भगवान् को वैदिक सम्प्रदाय के लिये शिष्य होने से चानुयाम धर्म अंगीकार करने के लिये ही मुझे आचार करना कल्पता है, ऐसा कहकर और यह एव इस प्रकार का अभिप्रेत प्रव्रज्य करके पुण्डरीकियो शिष्यों से निकल जाते हैं। अतः अनुक्रम से चलने शुरू, एक धाम से दूसरे धाम जाते हुए शिष्य और स्थविर भगवान् से, इस और श्रमण करने के लिये उद्यत हुआ ।

कंडरीक की मृत्यु—

६५६. तत्पश्चात् उस कंडरीक राजा के प्रणीत [श्रमण, शीतल] भोजनपात का आहार करने से, अंत आरण्य से और शीतल भोजन के प्रसंग से यह आहार अच्युत तरह परिचित नहीं हुआ, अर्थात् पच नहीं सका ।

पुण्डरीयस्स आराहणा—

६५८. तए णं से पुण्डरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्जायं करेइ, करेत्ता वीयाए पोरिसीए ज्ञाणं ज्ञियाइ, तइयाए पोरिसीए जाव उच्चनीय-मज्झिमाइ कुलाई घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहेत्ता अहापज्जत्तमि ति कट्टु पडिनिवत्तेइ, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता थेरेहि भगवंतेहि अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिण-जाव-द्विलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणणं तं फासुएसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं सरीर-कोट्टुगंसि पक्खिवइ ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स तं कालाइक्कंतं अरसं विरसं सीयलुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे नो सम्मं परिणमइ ।

तए णं तस्स पुण्डरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहि-यासा । पित्तज्जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कंतीए विहरइ ।

तए णं से पुण्डरीए अणगारे अत्थामे अवले अवीरिए अपुरि-सक्कारपरक्कमे करयलपरिगहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं । नमोत्थु णं थेराणं भगवंताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं । पुंवि पि य णं मए अंतिए थेराणं सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव वहिद्धादाणे पच्चक्खाए, इयाणि पि णं अहं तेसि चेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव-वहिद्धादाणं पच्चक्खामि । सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए । जपि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं तं पि य णं चरिमेहि उस्सास-नीसासेहि वोसिरामि” त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्टुसिद्धे उववण्णे । तओ अणंतरं उव्वट्टिता महाद्विदेहे वासे सिज्झिहिइ वुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

पुण्डरीक की आराधना—

६५८. तत्पश्चात् वह पुण्डरीक अनगार जहां स्थविर भगवान विराजते थे, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर स्थविर भगवान को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके स्थविरों के पास दूसरी बार चातुर्थीय धर्म अंगीकार किया, फिर पण्डित भक्त के पारणक में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया स्वाध्याय करके द्वितीय प्रहर में ध्यान किया, तीसरे प्रहर में-यावत्-उच्च नीच, मध्यम कुलों में ग्रह सामुदायिक भिक्षाचर्या से अटन करते हुए शीत, रुक्ष भोजन-पान ग्रहण किया, ग्रहण करके यह मेरे लिये पर्याप्त है, ऐसा सोचकर लौट आये, और जहाँ स्थविर भगवान थे, उनके पास आये, आकर लिया हुआ भोजन-पानी दिखलाया, दिखलाकर स्थविर भगवन्तों की आज्ञा होने पर मूर्च्छाहीन होकर-यावत्-जैसे सर्प विल में सीधा जाता है, उसी प्रकार उस प्रासुक तथा एपणीय अशन, पान, खाद्य को शरीर रूपी कोठे में डाल लिया ।

तत्पश्चात् कालातिक्रान्त रसहीन, विरस, ठंडे और रुक्ष भोजन-पानी का आहार करने वाले और मध्य रात्रि के समय धर्म जागरणा में तत्पर उन पुण्डरीक अनगार को वह आहार सम्यक् रूप से परिणत नहीं हुआ ।

उस समय उन पुण्डरीक अनगार के शरीर में वेदना उत्पन्न हो गई—जो अत्यन्त तीव्र, विपुल, कर्कश, प्रगाढ़, चण्ड, दुख-प्रद और दुस्सह थी । शरीर में पित्त ज्वर व्याप्त हो जाने से उसके दाह से पीड़ित होकर विचरने लगे ।

तत्पश्चात् पुण्डरीक अनगार निस्तेज, निर्बल, वीर्यहीन और पुरुषाकार पराक्रम से विहीन हो गये, उन्होंने दोनों हाथ जोड़ मस्तक पर आवर्त पूर्वक अंजलि करके इस प्रकार कहा—

‘सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो । मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक स्थविर भगवन्तों को नमस्कार हो । पूर्व में भी मैंने स्थविरों के निकट समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान कर लिया है-यावत्-मैथुन परिग्रह का प्रत्याख्यान कर लिया है, इस समय भी पुनः मैं उनके पास समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ-यावत्-मैथुन परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ । सभी अशन, पान, खादिम, स्वादिम का प्रत्याख्यान करता हूँ यावज्जीवन के लिये चारों प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ । यद्यपि यह शरीर इष्ट और कांत भी है तो भी अंतिम उश्वास-निश्वास तक के लिये त्यागता हूँ इत्यादि कहकर आलोचना प्रतिक्रमण करके, काल मास में काल करके सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ से अनन्तर च्यव करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेंगे, बोधि प्राप्त करेंगे, मुक्ति प्राप्त करेंगे, परिनिवृत्त होंगे और समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ।

निगमणं—

६५६. एवामेव समपाउसो ! जो अन्हं निगंयो वा निगंयो वा आयरिय-उयज्जायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पय्यइए समाने माणुस्सएहि कामनोणेहि नो तज्जइ नो रज्जइ नो गिज्जइ नो मुज्जइ नो अज्जोवज्जइ नो विप्पडिघायमावज्जइ, ते णं इहमवे चैव बहूणं समपाणं बहूणं समपीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविपाणं य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूषणिज्जे सवकारणिज्जे सम्मानणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चैइय विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ ।

परलोए वि य णं नो आगच्छइ बहूणि वंडणाणि य मुण्ड-
णाणि य तज्जणाणि य तात्तणाणि य जाय चाउरंतं संतारकंतारं
योईवइस्सइ—जहा य से पुंडरीए अणगारे ।”^१

—नाया. सु. १, अ. १६

卐

निगमन—

६५६. इसी प्रकार हे आशुप्पमन् धम्मो विगारे की विविध
अपवा निर्गन्धी आवायं उपाध्याय के साथ मुण्डिइ विवर, त्
त्यागकर अनगार योधा त्नीकार करने महुए समानी काम-
भोगों में आनन्द नहीं होते हैं, अनुगत नहीं करते, अन्न नहीं
होते हैं, सूच्छिन नहीं होते हैं, अल्पता आनन्द नहीं होते हैं,
लिप्त नहीं होते हैं, ये इन भव में बहूणं समपा, समपीण,
सावगां एवं साविपाणों के अर्चनीय, परमोय, समभ्युत्थनीय,
पूजनीय, नरकारणीय, सम्माननीय, कल्याणकर, मंगल कारक,
देव और चैत्य के समान उपासना के योग्य होते हैं ।

परलोक में भी विविध प्रकार के ईश, विष्णु, शक्ति और
ताड़न को प्राप्त नहीं करते हैं—पारल-बभुमंनि त्थ मगार-पपाए
को पार कर जाने हैं—असं ये पुंडरीक अणगारे ।

५०. महावीरतित्ये थविरावली

६६०. तथे एए ममणस्स भगवओ महावीरस्स एवकारम वि
मणहरा बुवात्तसिणिओ जोहमपुप्पिणो समत्तगणिपिडगयता रायगिहे
मगरे मानिएणं भत्तिएणं अवाणएणं कात्तमया-त्राव-सध्वबुधएण-
होणा । पेरे इंदमई, पेरे अज्जमुहम्मे तिडि गए महावीरे पच्छा
सोत्ति वि परिनिधवुया ।^१

समणनिगंथाणं अज्जमुहम्मएवच्छिज्जत्तं—

६६१. जे एहे अज्जजाते समणा निगंथा विहरति एए ण तथे
अज्जमुहम्मस अणगारस आवच्छिज्जा, अइसेना मणहरा
भिरज्जथा योपिण्णा ।

अज्जसुहम्ममारब्भ अज्जजसभद्दपज्जंता थेरावली—

६६२. समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेण । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगोत्तस अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणसगोत्तस अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जजंबुनामस्स कासवगोत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगोत्तस अज्जसेज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसेज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगोत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते ।

अज्जजसभद्दमारब्भ संखित्तेथेरावली—

६६३. संखित्तेवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा—

थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते; थेरे अज्जभद्दवाहू पाइणसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते; थेरे अज्जमुह्त्थी वसिट्ठसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जमुह्त्थिस्स वसिट्ठसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठिसुपडिवुद्धा कोडियकाकंदगणं वग्घावच्चसगोत्ता ।

थेराणं सुट्ठिसुपडिवुद्धाणं कोडियकाकंदगणं वग्घावच्चसगोत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिस्सरस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगोत्ते ।

आर्यसुधर्मा से आरंभ कर आर्य यशोभद्र पर्यन्त स्थविरावली—

६६२. श्रमण भगवान महावीर काश्यपगोत्री थे । काश्यप गोत्री श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अग्नि वैश्यायन गोत्री आर्य सुधर्मा स्थविर थे ।

अग्नि वैश्यायन गोत्री स्थविर आर्य सुधर्मा के काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू नामक अन्तेवासी थे ।

काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू के कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव नामक अन्तेवासी थे ।

कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव के वात्स्यगोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव नामक अन्तेवासी थे ।

वात्स्य गोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव के तुंगियायन गोत्री स्थविर आर्य यशोभद्र नामक अन्तेवासी थे ।

आर्य यशोभद्र से लेकर संक्षिप्त स्थविरावली—

६६३. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली संक्षिप्त वाचना के अनुसार इस प्रकार कही गई है, वह इस प्रकार है—

तुंगियायन गोत्री आर्य यशोभद्र स्थविर के दो स्थविर अन्तेवासी थे—

१ माढर गोत्रीय स्थविर संभूतविजय और २ प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रवाहू ।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय के गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र अन्तेवासी थे ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे—एलावच्छगोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और वाशिष्ठगोत्री आर्य सुहस्ती ।

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर सुहस्ती के दो स्थविर अन्तेवासी थे—सुस्थित और सुप्रतिवद्ध, ये दोनों कौंडिय, काकंदक कहलाते थे और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय थे ।

कौंडिय काकंदक के रूप में प्रसिद्ध और व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिवद्ध के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न अन्तेवासी थे ।

कौशिक गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न स्थविर के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न अन्तेवासी थे ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के जिनको जातिस्मरण ज्ञान हुआ था ऐसे कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यसिंहगिरि अन्तेवासी थे ।

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त और कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरि के गौतम गोत्रीय आर्यवज्ज नामक स्थविर अन्तेवासी थे ।

धेरस्त णं अज्जवड्ढरस्त गोयमसगोत्तस अंतियासी चत्तारि
धेरा १ धेरे अज्जनाइले, २ धेरे अज्जपोगिले, ३ धेरे अज्जजयंते,
४ धेरे अज्जतावसे ।

धेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया,
धेराओ अज्जपोगिलाओ अज्जपोगिला साहा निग्गया,
धेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयन्ती साहा निग्गया,
धेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति ।

अज्जजसभद्दमारिद्वभ द्वित्थिण्णा धेरावली—

६६४. वित्थवरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ परओ धेरावली एवं
पतोइज्जइ, तं जहा—

धेरस्त णं अज्जजसभद्दस्त इमे वो धेरा अंतियासी अहावच्चा
अभिन्नाया होत्था, तं जहा—धेरे अज्जमद्दाहू पाईणसगोत्ते,
धेरे अज्ज संभूयधिये माडरसगोत्ते ।

धेरस्त णं अज्जमद्दाहूस्त पाईणसगोत्तस्त इमे चत्तारि धेरा
अंतियासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

धेरे गोवासे, धेरे अग्गिदत्ते, धेरे जण्णदत्ते, धेरे तोमदत्ते
कामधगोत्ते णं ।

धेरेहितो णं गोदासेहितो कासवगोत्तेहितो एत्थ णं गोदासगणे
नामं गणे निग्गए, तस्त णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जति,
तं जहा—तामलित्तिया कोडीयरिनिया पोंउवड्ढणिया दासी
पव्थड्डिया ।

धेरस्त णं अज्जसंभूयधियस्त माडरसगोत्तस्त इमे दुयानस
धेरा अंतियासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

साहाओ—

मंणभद्दे उधमंभद्दे तह तोतभद्दे जमभद्दे ।
धेरे य सुमिणभद्दे मणिभद्दे य पुग्गभद्दे य ।।१।।
धेरे य पूतभद्दे उज्जन्ती जंजानधेरे य ।
धेरे य सीहभद्दे धेरे तह पडुभद्दे य ।।२।।

धेरस्त णं अज्जसंभूयधियस्त माडरसगोत्तस्त इमाओ तत्त
अंतियासीओ अहावच्चाओ अभिन्नाओ होत्था, तं जहा—

साहा—

अथवा य अरुड्ढिया भूया तह मोह भूयावन्ता य ।
तेषा वथा रेष्वा अरुड्ढिओ पुग्गभद्दे य ।।
धेरस्त णं अज्जसंभूयधियस्त माडरसगोत्तस्त इमे वा धेरा
अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

गौतम गोत्रीय स्वविर अर्पेनाइल के चार स्वविर अर्पेनाइली
से—१ स्वविर अर्पेनाइल, २ स्वविर अर्पेपोगिल ३ स्वविर
अर्पे जयंत, और ४ स्वविर अर्पे तापन ।

स्वविर अर्पेनाइल ने अर्पेनाइला माया जियली,
स्वविर अर्पेपोगिल ने अर्पे पोगिला माया जियली,
स्वविर अर्पे जयंत ने अर्पे जयन्ती माया जिय ले और
स्वविर अर्पे तापन ने अर्पे तापनी माया जियली ।

अर्पे यगोभद्र ने प्रारम्भ कर विस्तृत स्वविरावली

६६४. अर्पे यगोभद्र ने अर्पे यो स्वविरावली विस्तृत
वाचना से इन प्रकार हृष्टिगत कीनी है, वह इस प्रकार है—

स्वविर अर्पे यगोभद्र के पुत्र के समान वे चार स्वविर—
प्रत्याय स्वविर अर्पेनाइली से, यथा—प्राचीन माथीय स्वविर
अर्पे भद्रवाहु और माडर गोत्रीय अर्पे मज्झारिद्वर स्वविर ।

प्राचीन गोत्रीय स्वविर अर्पे भद्रवाहु के पुत्रयणीय,
प्रत्याय वे चार स्वविर अर्पेनाइली से, यथा—

स्वविर गोदान, स्वविर अग्गिदत्त, स्वविर जण्णदत्त और
स्वविर तोमदत्त । ये चारो काश्यप गोत्रीय से ।

काश्यप गोत्रीय स्वविर गोदान ने गोदानपुत्र के समान
विक्रान्त—प्रारम्भ हुआ, उन सब को र हृष्टिगत इस
प्रकार कहलाती है, यथा—अमलानया [अमलानया],
कोडीयरिनिया [कोडीयरिवा], गोउवड्ढणिया [गोउवड्ढणिया],
दासीयवड्डिया [दासी वरुड्डिया] ।

माडर गोत्रीय अर्पे मज्झारिद्वर स्वविर के पुत्र के समान
एवं विद्वान् वे चार स्वविर अर्पेनाइली से, यथा—

साहासे—

अज्जसुहम्ममारब्भ अज्जजसभद्दपज्जंता थेरावली—

६६२. समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेण । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगोत्तस अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणसगोत्तस अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जजंबुनामस्स कासवगोत्तस अज्जप्पमवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगोत्तस अज्जसेज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसेज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगोत्तस अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते ।

अज्जजसभद्दमारब्भ संखित्तेथेरावली—

६६३. संखित्तायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तं जहा—

थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा—

थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते; थेरे अज्जभद्दवाहू पाइणसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते; थेरे अज्जसुहत्थी वसिद्धसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिद्धसगोत्तस अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुपडिबुद्धा कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ता ।

थेराणं सुट्ठिसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिस्सरस्स कोसियगोत्तस अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगोत्ते ।

आर्यसुधर्मा से आरंभ कर आर्य यशोभद्र पर्यन्त स्थविरावली—

६६२. श्रमण भगवान महावीर काश्यपगोत्री थे । काश्यप गोत्री श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी अग्नि वैश्यायन गोत्री आर्य सुधर्मा स्थविर थे ।

अग्नि वैश्यायन गोत्री स्थविर आर्य सुधर्मा के काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू नामक अन्तेवासी थे ।

काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू के कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव नामक अन्तेवासी थे ।

कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव के वात्स्यगोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव नामक अन्तेवासी थे ।

वात्स्य गोत्री और मनक के पिता स्थविर आर्य शयंभव के तुंगियायन गोत्री स्थविर आर्य यशोभद्र नामक अन्तेवासी थे ।

आर्य यशोभद्र से लेकर संक्षिप्त स्थविरावली—

६६३. आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली संक्षिप्त वाचना के अनुसार इस प्रकार कही गई है, वह इस प्रकार है—

तुंगियायन गोत्री आर्य यशोभद्र स्थविर के दो स्थविर अन्तेवासी थे—

१ माढर गोत्रीय स्थविर संभूतविजय और २ प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रवाहु ।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय के गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र अन्तेवासी थे ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे—एलावच्छगोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और वाशिष्ठगोत्री आर्य सुहस्ती ।

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर सुहस्ती के दो स्थविर अन्तेवासी थे—सुस्थित और सुप्रतिवद्ध, ये दोनों कौडिय, काकंदक कहलाते थे और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय थे ।

कौडिय काकंदक के रूप में प्रसिद्ध और व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिवद्ध के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न अन्तेवासी थे ।

कौशिक गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न स्थविर के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न अन्तेवासी थे ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के जिनको जातिस्मरण ज्ञान हुआ था ऐसे कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्यसिंहगिरि अन्तेवासी थे ।

जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त और कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरि के गौतम गोत्रीय आर्यवच्च नामक स्थविर अन्तेवासी थे ।

थेरस्त णं अज्जवडरस्त गोयमसगोत्तस अंतेवासी चत्तारि थेरा १ थेरे अज्जनाइले, २ थेरे अज्जपोगिले, ३ थेरे अज्जजयंते, ४ थेरे अज्जतावसे ।

थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जपोगिलाओ अज्जपोगिला साहा निग्गया,
थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयन्ती साहा निग्गया,
थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति ।

अज्जजसभद्मारिद्वभ वित्थिण्णा थेरावली—

६६४. वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ परओ थेरावली एवं पलोइज्जइ, तं जहा—

थेरस्त णं अज्जजसभद्दस्त इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जभद्दाहू पाईणसगोत्ते, थेरे अज्ज संभूयविजये माडरसगोत्ते ।

थेरस्त णं अज्जभद्दाहुस्त पाईणगोत्तस्त इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

थेरे गोदासे, थेरे अग्गिदत्ते, थेरे जण्णदत्ते, थेरे सोमदत्ते कासवगोत्ते णं ।

थेरेहितो णं गोदासेहितो कासवगोत्तेहितो एत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्त णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—तामलित्थिया कोडीवरिसिया पोंडवट्ठणिया दासी पड्वडिया ।

थेरस्त णं अज्जसंभूयविजयस्त माडरसगोत्तस्त इमे दुवात्तस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—

नंदणभद्दे उवनंदभद्दे तह तीसभद्दे जसभद्दे ।
थेरे य सुमिणभद्दे मणिभद्दे य पुन्नभद्दे य ॥१॥
थेरे य धूलभद्दे उज्जुमती जंबुनामधेज्जे य ।
थेरे य दीहभद्दे थेरे तह पंडुभद्दे य ॥२॥

थेरस्त णं अज्जसंभूयविजयस्त माडरसगोत्तस्त इमाओ तत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिन्नताओ होत्था, तं जहा—

गाहा—

जवथा य जसपडिन्ना भूया तह होइ भूयडिन्ना य ।
तेणा येणा रेणा भगिणीओ धूलभद्दस्त ॥१॥

थेरस्त णं अज्जधूलभद्दस्त गोयमसगोत्तस इमे दो थेरा अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

गौतम गोत्रीय स्वविर आर्यवच्च के चार स्वविर अन्तेवानो थे—१ स्वविर आर्यनाइल, २ स्वविर आर्यपोगिल ३ स्वविर आर्य जयंत, और ४ स्वविर आर्य तापन ।

स्वविर आर्यनाइल से आर्यनाइला शाखा निकली,
स्वविर आर्यपोगिल से आर्य पोगिला शाखा निकली,
स्वविर आर्य जयंत से आर्य जयन्ती शाखा निकली और
स्वविर आर्य तापस से आर्य तापनी शाखा निकली ।

आर्य यशोभद्र से प्रारम्भ कर विस्तृत स्वविरावली

६६४. आर्य यशोभद्र से आगे की स्वविरावली विस्तृत वाचना से इस प्रकार दृष्टिगत होती है, वह इन प्रकार है—

स्वविर आर्य यशोभद्र के पुत्र के समान ये दो विद्वान्—
प्रख्यात स्वविर अन्तेवासी थे, यथा—प्राचीन गोत्रीय स्वविर आर्य भद्रवाहु और माडर गोत्रीय आर्य संभूतविजय स्वविर ।

प्राचीन गोत्रीय स्वविर आर्य भद्रवाहु के पुत्रस्थानीय,
प्रख्यात ये चार स्वविर अन्तेवानो थे, यथा—

स्वविर गोदान, स्वविर अग्निदत्त, स्वविर यमदत्त और
स्वविर सोमदत्त । ये चारों काश्यप गोत्रीय थे ।

काश्यप गोत्रीय स्वविर गोदान से गोदानगण नामक गण निकला—प्रारम्भ हुआ, उन गण को ये चार शाखाएँ इन प्रकार कहलाती हैं, यथा—तामलित्थिया [तामलित्थिका], कोडीवरिसिया [कोटिवर्षिया], पोंडवट्ठणिया [पोंडवट्ठणिना] दासीखव्वडिया [दासी कर्पटिका] ।

माडर गोत्रीय आर्य संभूतविजय स्वविर के पुत्र के समान एवं विद्वान ये बारह स्वविर अन्तेवानो थे, यथा—

गाथार्ये—

१ नन्दनभद्र २ उपनन्दनभद्र, ३ निम्पभद्र ४ यशोभद्र
५ स्वविर नुमनभद्र, (स्वप्नभद्र) ६ मणिभद्र, ७ दुम्पभद्र, ८ स्वविर
स्थूलभद्र, ९ ऋजुमति, १० जन्तु, ११ स्वविर दीर्घभद्र और १२
पाण्डुभद्र ।

माडर गोत्रीय स्वविर आर्य संभूतविजय की पुत्री के समान तथा विदुषी प्रवीण यह नाम अन्तेवासिनिना—निम्पभद्र थी,
यथा—

गाथा—

१ यथा, २ यथादत्ता, ३ यथा, ४ यथादत्ता, ५ यथा,
६ यथा और ७ यथा, ये मावी ही स्थूलभद्र की बहिन थीं ।

गौतम गोत्रीय स्वविर आर्य संभूतविजय के पुत्र के समान एवं प्रवीण ये दो स्वविर अन्तेवानो थे, उनका नाम यह है—

थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते; थेरे अज्ज सुहत्थी वासिट्ठसगोत्ते ।

थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्छसगोत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

१ थेरे उत्तरे, २ थेरे वलिस्सहे, ३ थेरे धणड्ढे, ४ थेरे सिरिड्ढे, ५ थेरे कोडिन्ने, ६ थेरे नागे, ७ थेरे नागमित्ते, ८ थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसिए गोत्तेणं ।

थेरेहितो णं छलुएहितो रोहगुत्तेहितो कोसियगोत्तेहितो तत्थ णं तेरासिया निग्गया । थेरेहितो णं उत्तरवलिस्सहेहितो तत्थ णं उत्तरवलिस्सहगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१ कोसंविया, २ सोतित्तिया, ३ कोडवाणी, ४ चंदनागरी ।

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

गाहाओ—

थेरे त्थ अज्जरोहण, भद्दसे मेहगणी य कामिड्ढी ।
सुट्ठियसुप्पडियुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते य ॥१॥
इसिगुत्ते सिरिगुत्ते, गणी य वंभे गणी य तह सोमे ।
दस दो य गणहरा, खलु एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥

थेरेहितो णं अज्जरोहणेहितो कासवगुत्तेहितो तत्थ णं उद्देह-
गणो नाणं गणे निग्गए । तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ
छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति, -१ उदुम्बरिज्जिया, २ मासपूरिया,
३ मतिपत्तिया, ४ सुवन्नपत्तिया, सेत्तं साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहाओ—

पउमं च नागभूयं, वीयं पुण सोमभूइयं होइ ।
अह उल्लगच्छ तइयं, चउत्थयं हत्थिलिज्जं तु ॥१॥
पंचमं नंदिज्जं, छट्ठं पुण पारिहासियं होइ ।
उद्देहगणस्सेते, छच्च कुला हांति नायव्वा ॥२॥

थेरेहितो णं सिरिगुत्तेहितो णं हारियसगोत्तेहितो एत्थ णं
चारणगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ,
सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति ।

एलावच्च [एलावत्तस] गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि और
वाशिष्ठ गोत्री स्थविर आर्य सुहस्ती ।

एलावच्च गोत्रीय आर्य महागिरि स्थविर के अपत्य स्थानीय
प्रख्यात ये आठ स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

१ स्थविर उत्तर, २ स्थविर वलिस्सह ३ स्थविर धणड्ढ
(धनादय) ४ स्थविर सिरिड्ढ (श्री आदय) ५ स्थविर कोडिन्य
६ स्थविर नाग, ७ स्थविर नागमित्र, और ८ षड्लुक कौशिक
गोत्रीय स्थविर रोहगुप्त । ये आठों स्थविर कौशिक गोत्रीय थे ।

कौशिक गोत्रीय स्थविर षड्लुक रोहगुप्त से त्रैराशिक
संप्रदाय निकला । स्थविर उत्तर और वलिस्सह से उत्तर
वलिस्सह गण नामक गण निकला । उसकी ये चार शाखायें इस
प्रकार कही जाती हैं, जैसे—

१ कोसंविया (कौशाम्बिका), २ सोतित्तिया (सौत्रिनिका)
३ कोडवाणी और ४ चंदनागरी ।

वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ती के पुत्र के समान एवं
प्रवीण ये वारह स्थविर अन्तेवासी थे, यथा—

गाथायें—

स्थविर आर्यरोहण, यशोभद्र, मेघगणि, कामिड्ढी
(कामिद्धि), सुस्थित, सुप्रतिवद्ध, रक्षित, रोहगुप्त, ऋषिगुप्त,
श्रीगुप्त, ब्रह्माणि, सोमगणि । वारह गणधर के समान ये आर्य
सुहस्ती के शिष्य थे ।

काश्यपगोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से उद्देहगण नामक
गण निकला । उसकी चार शाखाओं से निकले छह कुल इस
प्रकार कहलाते हैं ।

वे शाखायें कौनसी हैं ?

वे शाखायें इस प्रकार कही जाती हैं—१ उदुम्बरिज्जिया
(उदुम्बरीया) २ मासपूरिया ३ मतिपत्तिया, और ४ सुवन्नपत्तिया,
ये वे शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ? वे कुल इस प्रकार कहलाते हैं, यथा—

गाथायें—

१ नागभूत, २ सोमभूतिक ३ उल्लगच्छ ४ हत्थिलिज्ज
५ नन्दिज्ज, ६ पारिहासिव, उद्देहगण के ये छह कुल जानना
चाहिये ।

हारिय गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से यहाँ चारणगण नामक
गण निकला, उसकी ये चार शाखायें और सात कुल इस प्रकार
कहे हैं ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१ हारियमालागारी, २ संकासिया, ३ गवेधूया, ४ वज्ज-
नागरी, से त्तं साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाहाओ—

पठमेत्थ वच्छलित्जं, वीयं पुण वीचिधम्मकं होइ ।

तइयं पुण हालिज्जं, चउत्थयं पूसमित्तेज्जं ॥१॥

पंचमगं मालिज्जं, छट्ठं पुण अज्जवेडयं होइ ।

सत्तमगं कण्हसहं, सत्त कुला चारणगणस्स ॥२॥

धेरेहितो भद्दजसेहितो भारद्वायसगोत्तेहितो एत्थ णं उडुवा-
डियगणे नामं गणे निग्गए ।

तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिन्निय कुलाइं
एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१ चंपिज्जिया, २ भट्टिज्जिया, ३ काकंदिया, ४ मेहलिज्जिया,
से त्तं साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति—

गाहा—

भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं, तइयं च होइ जसभहं ।

एयाइं उडुवाडियगणस्स, तिन्नेव य कुलाइं ॥१॥

धेरेहितो णं कामिड्डीहितो कुंडिलसगोत्तेहितो एत्थ णं
वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए ।

तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि य कुलाइं
एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति—

सावदियया रज्जवालिया अन्तरिज्जिया खेमलिज्जिया से त्तं
साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति—

गाहा—

गणियं भेट्थिय कामिट्ठियं च, तह होइ इंडुुरण च ।

एयाइं खेमवाडियगणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥१॥

धेरेहितो णं इमिगुत्तेहितो णं काकंदएहितो धामिदुसगोत्तेहितो
एत्थ णं भाणदणणे नामं गणे निग्गए ।

वे शाखायें कौनसी हे ?

शाखायें इस प्रकार हैं, यथा—

१ हरियमाला-गिरि, २ नंकासिया, ३ गवेधूया, ४ वज्जनागरी
ये चार शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

कुल इस इन प्रकार हैं, यथा—

शाखायें—

प्रथम—वत्तलीय, द्वितीय—वीचिधम्मक, तृतीय—पामिदु, ४

चतुर्थ—पूसमित्तेज्ज, पंचम—मालिज्ज, षष्ठ—अज्जवेडर,
सप्तम—कण्हमह । चारणगण के ये नाम कुल हैं ।

भारद्वाज गोत्रीय स्वविर वज्रोभद्र से यहाँ उडुवाडियगण
नामक गण निकला ।

उसकी ये चार शाखायें और तीन कुल इस प्रकार
कहलाते हैं ।

वे शाखायें कौनसी हैं ? शाखायें इस प्रकार हैं, यथा—

१ चंपिज्जिया, २ भट्टिज्जिया, ३ काकंदीया, ४ मेहलिज्जिया,
उसकी ये शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

शाखा—

उडुवाडियगण के ये तीन कुल हैं—१ भट्टिज्जिया, २ भट्टिज्जिया
और ३ जसभद्र ।

कुण्डिल गोत्रीय कामिड्डी स्वविर से यहाँ वेसवाडियगण
नामक गण निकला ।

उसकी ये चार शाखायें और चार कुल इस प्रकार
कहलाते हैं ।

वे शाखायें कौनसी हैं ?

शाखायें इस प्रकार हैं—

सावदियया, रज्जवालिया, अन्तरिज्जिया और
खेमलिज्जिया, ये उसकी शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

शाखा—

गणियं भेट्थिय गणियं च, तह होइ इंडुुरण च ।
३ कामिड्डी गणियं च उडुुरण च ।

धेरेहितो णं इमिगुत्तेहितो णं काकंदएहितो धामिदुसगोत्तेहितो
यहाँ भाणदणण नामक गण निकला ।

नस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइं
एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति—१ कासविज्जिया, २ गोयमिज्जिया,
३ वासिट्ठिया, ४ सोरट्ठिया । से तं साहाओ ।

से किं तं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाथा—

इसिगोत्तियज्जथपढमं, विइयं इसिदत्तियं मुण्येयव्वं ।

तइयं च अभिजसंतं, तिन्नि कुला माणवगणस्स ॥१॥

थेरेहिंतो णं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडियकाकंदिएहिंतो
वग्घावच्चसगोत्तेहिंतो एत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए ।
तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं
एवमाहिज्जंति ।

से किं तं साहाओ ?

साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाथा—

उच्चानागरी विज्जाहरी य, वइरी य मज्झिमिल्ला य ।

कोडियगणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ ॥१॥

से किं कुलाइं ?

कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

गाथा—

पढनेत्थ वंभलिज्जं, वित्तियं नामेण वच्छलिज्जं तु ।

तत्तियं पुण वाणिज्जं, चउत्थयं पन्नवाहणयं ॥१॥

थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं
इमे पंच थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—
थेरे अज्जइंददिन्ने थेरे पियगंथे थेरे विज्जाहरगोवाले
कासवगोत्ते णं थेरे इसिदत्ते थेरे अरहदत्ते । थेरेहिंतो णं
पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया । थेरेहिंतो णं
विज्जाहरगोवालेहिंतो तत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ।

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगोत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे
अन्तेवासी गोयमसगोत्ते । थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स
इमे दो थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया वि होत्था, तं जहा—

थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगोत्ते थेरे अज्जत्तीहगिरी
जाइस्सरे कोसियगोत्ते ।

थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो णं माढरसगोत्तेहिंतो
एत्थ णं उच्चानागरी साहा निग्गया ।

उसकी ये चार शाखायें और तीन कुल इस प्रकार कहे
गये हैं ।

उसकी ये शाखायें कौनसी हैं ?

शाखायें इस प्रकार हैं—१ कासविज्जिया २ गोयमिज्जिया
३ वासिट्ठिया ४ सोरट्ठिया । ये चार शाखायें हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं यथा—

गाथा—

प्रथम—इसिगोत्तिय, द्वितीय—इसिदत्तिय और तृतीय
अभिजसंत । माणवगण के ये तीन कुल हैं ।

वग्घावच्च गोत्रीय कोडिय काकंदक स्थविर सुस्थित और
सुप्रतिबुद्ध से यहां कोडियगण नामक गण निकला । उसकी ये
चार शाखायें और चार कुल इस प्रकार हैं ।

वे शाखायें कौन-कौन सी हैं ?

वे शाखायें इस प्रकार हैं—

गाथा—

१ उच्चानागरी २ [विज्जाहरी ३ वइरी (वज्जी).
और ४ मज्झिमिल्ला । कोडियगण की ये चार शाखायें होती हैं ।

वे कुल कौन से हैं ?

वे कुल इस प्रकार हैं—

गाथा—

प्रथम—वंभलिज्जकुल, द्वितीय—वच्छलिज्जकुल, तृतीय-
वाणिज्जकुल और चतुर्थ-पन्नवाहणकुल ।

व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोडिय काकंदक स्थविर सुस्थित और
सुप्रतिबुद्ध के पुत्र समान प्रवीण ये पाँच स्थविर अन्तेवासी थे,
जिनके नाम इस प्रकार हैं—स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न, स्थविर
प्रियग्रन्थ, स्थविर विद्याधर गोपाल, काश्यपगोत्री स्थविर
ऋषिदत्त, स्थविर अरहदत्त । स्थविर प्रियग्रन्थ से यहाँ मध्यमा
शाखा निकली । स्थविर विद्याधर गोपाल से यहाँ विद्याधरी
शाखा प्रारम्भ हुई—निकली ।

काश्यप गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न के गौतम गोत्रीय स्थविर
आर्यदिन्न अन्तेवासी थे । गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न के
पुत्र के समान प्रख्यात ये दो स्थविर अन्तेवासी थे, वे इस
प्रकार हैं—

माढर गोत्रीय आर्यशांति श्रेणिक स्थविर और कौशिक
गोत्रीय जातिस्मरण ज्ञान संपन्न स्थविर आर्य सिंहगिरि ।

माढर गोत्रीय स्थविर शांति श्रेणिक से यहाँ उच्चानागरी-
शाखा निकली ।

वदति अजहति व कासं खिसारं धीरं । निरुण पदमासे कालाय चतुष्टस ॥४॥

वदति अजहन्म व सुखं सीमलद्विषन् । जस निरुण देवो उतं वरुणं वरु ॥५॥

इत्थं कासगोत्रं धम् निरुणं पणवपामि । सीहं कासगोत्रं धम् पि य कासं वदे ॥७॥

सुतरययणमरिण्ण उमदमदवयुण्हि संपन्ने । देविह्विह्वमामणण कासगोत्रं पणवपामि ॥८॥

—कण्ठे

नदीशुभगत स्थितिरिवती—
६६५. अनिवेयपणन गोत्रीय श्री सुधमा स्वामी की, काश्यप गोत्रीय अर्ध स्वामी की, काश्यपन गोत्रीय प्रभव स्वामी की और वरुणगोत्रीय श्री अर्धमन स्वामी की वदन करता हूँ ॥४॥

सुनिक गोत्रीय यथाशुभ की, माहुर गोत्रीय सुधुल विजय की प्राचीन गोत्रीय श्रद्धाह स्वामी की तथा गोत्र गोत्रीय स्थूल श्रद्ध की तथा ॥२६॥

पुनराववसगोत्रं, वदामि महारि सुहृदि य । ततो कासिगोत्रं, वदिसस सखिय वदे ॥२७॥

‘हरियुतं साहं य, वदिसी हरियं व सासजं । वदे कासिगोत्रं, सखिल अजहणीधर ॥२८॥

नि-सुद-आयकित, दीवसुदेषु गहिय-पुनल । वदे अजसमुदं, अखण्डिम-समुद-गोत्र ॥२९॥

वती अ खिरितं । उतससमलसर्वं । दिसिगणिससमण माहुरगुत्रं । नमसासि ॥३१॥

वती अणुशुभधरं धीरं मरुणारं । मरुणारं पणवपामि ॥३२॥

वती य गोत्रं । गोत्रं कुमारधम् । वदामि गोत्रं गुणीधम् ॥३३॥

सुतरययणमरिण्ण, उमदमदवयुण्हि । संपन्ने । देविह्विह्वमामणण कासगोत्रं पणवपामि ॥३४॥

अवशिवाय प्रलप पाठः ०

सुदर के समान गंधार ऐसे आय सुदर को वदन करता हूँ ॥३६॥

सुधुदो मं प्राणालिकता-पश्चिद प्राण करने वाले, धीमरहित वीन सुधुदो पवन प्रख्यात कोविता, विविध दीप और को वदन करता हूँ ॥३८॥

वदना करता हूँ । काशिक गोत्री शण्डिल्य आय और जीवधर इती गोत्री स्वामि की और इती गोत्री यथाय को की वदन करता हूँ ॥३७॥

हूँ तपश्चराने काशिक गोत्रीय वदिल के समानवय वाले (वलिस्वदे) पुनरावय गोत्र वाले महारि और सुहृदी को वदन करना

श्रद्ध की तथा ॥३६॥

को प्राचीन गोत्रीय श्रद्धाह स्वामी की तथा गोत्र गोत्रीय स्थूल सुनिक गोत्रीय यथाशुभ की, माहुर गोत्रीय सुधुल विजय की प्राचीन गोत्रीय श्रद्धाह स्वामी की वध गोत्रीय स्थूल श्रद्ध की तथा ॥२६॥

वदना करता हूँ । काशिक गोत्री शण्डिल्य आय और जीवधर इती गोत्री स्वामि की और इती गोत्री यथाय को की वदन करता हूँ ॥३७॥

हूँ तपश्चराने काशिक गोत्रीय वदिल के समानवय वाले (वलिस्वदे) पुनरावय गोत्र वाले महारि और सुहृदी को वदन करना

श्रद्ध की तथा ॥३६॥

को प्राचीन गोत्रीय श्रद्धाह स्वामी की तथा गोत्र गोत्रीय स्थूल सुनिक गोत्रीय यथाशुभ की, माहुर गोत्रीय सुधुल विजय की प्राचीन गोत्रीय श्रद्धाह स्वामी की वध गोत्रीय स्थूल श्रद्ध की तथा ॥२६॥

वदना करता हूँ । काशिक गोत्री शण्डिल्य आय और जीवधर इती गोत्री स्वामि की और इती गोत्री यथाय को की वदन करता हूँ ॥३७॥

हूँ तपश्चराने काशिक गोत्रीय वदिल के समानवय वाले (वलिस्वदे) पुनरावय गोत्र वाले महारि और सुहृदी को वदन करना

श्रद्ध की तथा ॥३६॥

गाहाओ—

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं ।
कोच्छि सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जितफणं य ॥१॥

तं वंदिऊण सिरसा चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं ।
णक्खं कासवगोत्तं रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥

वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं ।
विण्हं माडरगोत्तं कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥

^१गोयमगोत्तमभारं सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे ।
^२थेरं च संघवालियकासवगोत्तं पणिवयामि ॥४॥

गायायें—

गोतम गोत्रीय फग्गुमित्त को, वाणिष्ठ गोत्रीय धनमि
कोत्स्य गोत्रीय शिवभूति को और कोशिक गोत्रीय दोज्जित
को वंदन करता हूँ ? ॥१॥

उन सभी को मस्तक नमाकर वंदन करके काश्यप
चित्त को वंदन करता हूँ । काश्यप गोत्रीय नक्षत्र क
काश्यप गोत्रीय रक्ष को भी वंदन करता हूँ ॥२॥

गोतम गोत्रीय आर्यनाग को और वाणिष्ठ गोत्री जेहि
तथा माडर गोत्रीय विण्णु को और गोतम गोत्री कालक
वंदन करता हूँ ॥३॥

गोतम गोत्रीय मभार को सप्पलय को तथा भद्रक को
करता हूँ । काश्यप गोत्री स्वविर संघवालिक—संघपालि
प्रणाम करता हूँ ॥४॥

थेरस्स	णं	अज्जभट्टस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जनक्खत्ते	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स	णं	अज्जनक्खत्तस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जरक्खे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स	णं	अज्जरक्खस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जनागे	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥८॥
थेरस्स	णं	अज्जनागस्स	गोयमसगुत्तस्स ।	अज्जजेहिले	थेरे	अन्तेवासी	वासिट्ठसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स	णं	अज्जजेहिलस्स	वासिट्ठसगुत्तस्स ।	अज्जविण्ह	थेरे	अन्तेवासी	माडरसगोत्ते ॥१०॥
थेरस्स	णं	अज्जविण्हस्स	माडरस्सगुत्तस्स ।	अज्जकालए	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥११॥
थेरस्स	णं	अज्जकालगस्स	गोयमसगुत्तस्स ।	इमे दुवे थेरा	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ता—	
				थेरे	अज्जसंपलिए	थेरे	अज्जभट्टे ॥१२॥
एएसि	दुण्ह	वि थेराणं	गोयमसगुत्ताणं ।	अज्जवुड्ढे	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगुत्ते ॥१३॥
थेरस्स	णं	अज्जवुड्ढस्स	गोयमसगोत्तस्स ।	अज्जसंघपालिए	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥१४॥
थेरस्स	णं	अज्जसंघपालियस्स	गोयमसगोत्तस्स ।	अज्जहत्थी	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स	णं	अज्जहत्थिस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जधम्मे	थेरे	अन्तेवासी	सुव्वयगोत्ते ॥१६॥
थेरस्स	णं	अज्जधम्मस्स	सुव्वयगोत्तस्स ।	अज्जसीहे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स	णं	अज्जसीहस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जधम्मे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स	णं	अज्जधम्मस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जसंडिल्ले	थेरे	अन्तेवासी	॥१९॥

—अर्वाचीनासु प्रतिपु

२. गोयमगोत्तकुमारं—गोयमगोत्तमभारं इतिकल्याणविजय—पट्टावलीपरागे पृ० २६ ।

“गोयमगोत्तमभारं, गोयमगोत्तमभारं” इति प्रत्यन्तरद्वयम् ॥

३. थेरं च अज्जवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसांमि ॥४॥

तं वंदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च संघवालिय गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥५॥

वंदामि अज्जहत्थि च कासवं खंतिभागरं धीरं । गिम्हाण पढममासे कालगयं चैव सुद्धस्स ॥६॥

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । सीहं कासवगुत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥८॥

गाहाओ—

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं ।
कोच्छिं सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जितकंटे य ॥१॥

तं वंदिञ्जण सिरसा चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं ।
णक्खं कासवगोत्तं रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥

वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं ।
विण्हं माढरगोत्तं कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥

१ गोयमगोत्तमभारं सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे ।
२ थेरं च संघवालियकासवगोत्तं पणिवयामि ॥४॥

गाथायें—

गौतम गोत्रीय फग्गुमित्त को, वाशिष्ठ गोत्रीय धनगिरि को,
कौत्स्य गोत्रीय शिवभूति को और कौशिक गोत्रीय दोज्जित कंटक
को वंदन करता हूँ ? ॥१॥

उन सभी को मस्तक नमाकर वंदन करके काश्यप गोत्रीय
चित्त को वंदन करता हूँ । काश्यप गोत्रीय नक्षत्र को और
काश्यप गोत्रीय रक्ष को भी वंदन करता हूँ ॥२॥

गौतम गोत्रीय आर्यनाग को और वाशिष्ठ गोत्री जेहिल को
तथा माढर गोत्रीय विष्णु को और गौतम गोत्री कालक को भी
वंदन करता हूँ ॥३॥

गौतम गोत्रीय मभार को सप्पलय को तथा भद्रक को वंदन
करता हूँ । काश्यप गोत्री स्थविर संघवालिक—संघपालित को
प्रणाम करता हूँ ॥४॥

थेरस्स	णं	अज्जभद्दस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जनक्खत्ते	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स	णं	अज्जनक्खत्तस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जरक्खे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स	णं	अज्जरक्खस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जनागे	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥८॥
थेरस्स	णं	अज्जनागस्स	गोयमसगुत्तस्स ।	अज्जजेहिले	थेरे	अन्तेवासी	वासिट्ठसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स	णं	अज्जजेहिलस्स	वासिट्ठसगुत्तस्स ।	अज्जविण्हू	थेरे	अन्तेवासी	माढरसगोत्ते ॥१०॥
थेरस्स	णं	अज्जविण्हुस्स	माढरस्सगुत्तस्स ।	अज्जकालए	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥११॥
थेरस्स	णं	अज्जकालगस्स	गोयमसगुत्तस्स ।	इमे दुवे थेरा	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ता—	
				थेरे	अज्जसंपलिए	थेरे	अज्जभद्दे ॥१२॥
एएसि	दुण्ह	वि थेराणं	गोयमसगुत्ताणं ।	अज्जवुड्ढे	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगुत्ते ॥१३॥
थेरस्स	णं	अज्जवुड्ढस्स	गोयमसगोत्तस्स ।	अज्जसंघपालिए	थेरे	अन्तेवासी	गोयमसगोत्ते ॥१४॥
थेरस्स	णं	अज्जसंघपालियस्स	गोयमसगोत्तस्स ।	अज्जहत्थी	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स	णं	अज्जहत्थियस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जधम्मे	थेरे	अन्तेवासी	सुव्वयगोत्ते ॥१६॥
थेरस्स	णं	अज्जधम्मस्स	सुव्वयगोत्तस्स ।	अज्जसीहे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स	णं	अज्जसीहस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जधम्मे	थेरे	अन्तेवासी	कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स	णं	अज्जधम्मस्स	कासवगुत्तस्स ।	अज्जसंडिल्ले	थेरे	अन्तेवासी	॥१९॥

—अर्वाचीनासु प्रतिपु पाठः ॥

२. गोयमगोत्तकुमारं—गोयमगोत्तममारं इतिकल्याणविजय—पट्टावलीपरामे पृ० २६ ।

“गोयमगोत्तभमारं, गोयमगोत्तममारं” इति प्रत्यन्तरद्वयम् ॥

३. थेरं च अज्जुवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसांमि ॥४॥

तं वंदिञ्जण सिरसा थिरसत्तचरित्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च संघवालिय गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥५॥

वंदामि अज्जहत्थि च कासवं खतिभागरं धीरं । गिम्हाण पढममासे कालगरं चैव सुद्धस्स ॥६॥

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥

हत्थि कासवगुत्तं धम्मं सिवसाहं पणिवयामि । सीहं कासवगुत्तं धम्मं पि अ कासवं वंदे ॥८॥

तं वंदिञ्जण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं । थेरं च अज्जजंजुं गोयमगुत्तं नमंसांमि ॥९॥

निउमद्वसंपन्नं उवउत्तं नाणचरित्ते । थेरं च नंदियं पि य कासवगुत्तं पणिवयामि ॥१०॥

शेष पृष्ठ ३७७ परः

वंदामि अज्जहत्थि च कासवं खंतिसागरं धीरं ।

गिम्हाण पढममासे कालगयं चेतसुद्धस्स ॥५॥

वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीसलद्विसंपन्नं ।

जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥६॥

हत्थं कासवगोत्तं धम्मं सिवसाहं पणिवयामि ।

सीहं कासवगोत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥७॥

सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्ववगुणेहि संपन्ने ।

देविड्ढिखमासमणे कासवगोत्ते पणिवयामि ॥८॥

—कप्पसुत्तं

नंदिसुत्तगता थेरावली

६६५. सुहम्मं अग्निवेशाणं, जंबूनामं च कासवं ।

पमवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तथा ॥२५॥

जसभहं तुगियं वंदे, संभूयं चैव माडरं ।

भदवाहुं च पाइन्नं, थूलभहं च गोयमं ॥२६॥

एलावच्चसगोत्तं, वंदामि महागिरिं सुहत्थि च ।

तत्तो कोसियगोत्तं, बहुलस्स सरिव्वयं वंदे ॥२७॥

हारियगुत्तं साईं च, वंदिमो हारियं च सामज्जं ।

वंदे कोसियगोत्तं, संडिल्लं अज्जजीयधरं ॥२८॥

ति-समुद्द-खायकिंत्ति, दीवसमुद्देषु गहिय-पेयालं ।

वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥२९॥

तत्तो अ थिरचरित्तं, उत्तमसम्मत्तसंजुत्तं । देसिगणिखमासमणं माडरगुत्तं नमंसामि ॥११॥

तत्तो अणुओगधरं धीरं मइसागरं महासत्तं । थिरगुत्तखमासमणं वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥१२॥

तत्तो अणु ताणदंसणचरित्तवसुद्धिं गुणमहंतं । थेरं कुमारधम्मं वंदामि अग्निं गुणीवेयं ॥१३॥

सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्ववगुणेहि संपन्ने । देविड्ढिखमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१४॥

१. मेरुसुद्धस्यविरावली—

सूरि वलिस्सह साईं, सामज्जो संडिलो य जीयधरो ।

रेवईंसिहो खदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविदा ।

सुत्तत्थ-रयणभरिए, खम-दम-मद्ववगुणेहि संपन्ने ।

काश्यपगोत्री क्षमा के सागर और गंभीर आर्य हस्ती को वंदन करता हूँ । ये, श्रीष्म ऋतु के प्रथम मास चैत्र के शुक्ल पक्ष में कालधर्म को प्राप्त हुए थे । ५।

आर्य धर्म को वंदन करता हूँ जो सुव्रतों और शिष्यों की लब्धि से संपन्न थे तथा जिनके निष्क्रमण-दीक्षा लेने के समय देवों ने श्रेष्ठ उत्तम छत्र-धारण किया था—वहन किया था । ६।

काश्यपगोत्रीय हस्त को और शिव साधक धर्म को नमस्कार करता हूँ । काश्यप-गोत्रीय सिंह और काश्यपगोत्रीय धर्म को भी वंदन करता हूँ । ७।

सूत्ररूप और उसके अर्थरूप रत्नों से सभृद्ध, क्षमा, दम और मार्दव गुणों से संपन्न काश्यपगोत्रीय देवर्षि क्षमाश्रमण को प्रणाम करता हूँ । ८।

नन्दीसूत्रगत स्थविरावली—

६६५. अग्निवेशयायन गोत्रीय श्री सुधर्मा स्वामी को, काश्यप गोत्रीय जम्बू स्वामी को, कात्यायन गोत्रीय प्रभव स्वामी को और वत्सगोत्रीय श्री शर्यभव स्वामी को वंदन करता हूँ । २५।

तुंगिक गोत्रीय यशोभद्र को, माडर गोत्रीय संभूत विजय को प्राचीन गोत्रीय भद्रवाहु स्वामी को तथा गौतम गोत्रीय स्थूल भद्र को तथा । २६।

एलापत्य गोत्र वाले महागिरि और सुहस्ती को वंदन करता हूँ तत्पश्चात् कौशिक गोत्रीय बहुल के समानवय वाले (वलिस्सह) को वंदन करता हूँ । २७।

हरीत गोत्री स्वाति को और हारीत गोत्री श्यामार्य को वंदना करता हूँ । कौशिक गोत्री शाण्डिल्य आर्य और जीतधर को वंदन करता हूँ । २८।

तीन समुद्रों पर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले, विविध द्वीप और समुद्रों में प्रामाणिकता-प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले, क्षोभरहित समुद्र के समान गंभीर ऐसे आर्य समुद्र को वंदन करता हूँ । २९।

—अर्वाचीनासु प्रतिपु पाठः D

१. मेरुसुद्धस्यविरावली—
सूरि वलिस्सह साईं, सामज्जो संडिलो य जीयधरो ।
रेवईंसिहो खदिल, हिमवं नागज्जुणा य गोविदा ।
सुत्तत्थ-रयणभरिए, खम-दम-मद्ववगुणेहि संपन्ने ।

अज्जसमुद्दो मंगू, नंदिल्लो नागहत्थी य ॥
सिरभूइदिन्न-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवड्ढी ॥
देविड्ढिखमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥

भणंगं करंगं शरंगं, पसावंगं णाण-वंसणगुणाणं ।
वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारंगं धीरं ॥३०॥

*वंदामि अज्जधम्मं, तत्तो वंदे य भद्दगुत्तं च ।
तत्तो य अज्जवड्ढरं, तव-नियम-गुणेहि वड्ढरसमं ॥३१॥

*वंदामि अज्जरक्खिय, खवणेरक्खिय-चारित्तं सव्वस्से ।
रयणकरंडगभूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहि ॥३२॥

नारंगमि वंसणमि य, तव-विणए णिच्चकालमुज्जुत्तं ।
अज्जा नंदिल-खवणं, सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥३३॥

वड्ढउ वायगवंसी, जसवंसी अज्जनागहत्थीणं ।
वागरण-करण-भंगिय, कम्मपयडीपहाणाणं ॥३४॥

जच्चंजण-धाउसमप्पहाण मुद्दीय-कुवलयनिहाणं ।
वड्ढउ वायगवंसी, रेवइ—नक्खत्तनामाणं ॥३५॥

अयलपुरा निक्खंतं, कालियसुअ-अणुओगिए धीरे ।
वंभद्दीवग-सीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥३६॥

जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढमरहंमि ।
वहुनयरनिगयजसे, ते वंदे खंदिलाययरिए ॥३७॥

तत्तो हिमवंत-महंत-विक्कमे, धिइपरक्कममणंतं ।
सज्जायमणंतधरे, हिमवंते वंदिमो सिरसा ॥३८॥

कालिय-सुय-अणुओगस्स-धारए, धारए य पुव्व्वाणं ।
हिमवंतखमासमणे, वंदे णागज्जुणायरिए ॥३९॥

मिउमह्वसंपन्ने, अणुपुर्व्वि वायगत्तणं पत्ते ।
ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वन्दे ॥४०॥

*गोविदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणंदाणं ।
णिच्चं खंतिदयाणं, पख्वणे दुल्लभिदाणं ॥४१॥

भापक (कालिक सूत्रों का अध्ययन करने वाले) कारक (सूत्रानुसार क्रिया करने वाले) धर्मध्यान के ध्याता, ज्ञान-दर्शन गुणों का उद्योत करने वाले, श्रुतसागर के पारगामी और वैर्य गुण संपन्न आर्य मंगु को वंदन करता है ॥३०॥

आर्य धर्म को और फिर भद्रगुप्त को वंदन करता है और उसके बाद तप-नियम आदि गुणों से वज्र के समान आर्य वज्र स्वामी को वंदन करता है ॥३१॥

जिन्होंने सभी संयमियों के चारित्र्य सर्वस्व (धन) की रक्षा की तथा जिन्होंने रत्नों की पटी के समान अनुयोग की रक्षा की उन आर्यरक्षित क्षपण को वंदन करता है ॥३२॥

ज्ञान, दर्शन, तप और विनय में प्रतिक्षण उद्यत, प्रसन्नचित्त रहने वाले आर्यनंदिल क्षपण को मस्तक नमाकर वंदन करता है ॥३३॥

(प्रश्न) व्याकरण और करण सित्तरी आदि भागों के ज्ञाता कर्मप्रकृति-प्ररूपण करने में प्रधान ऐसे आर्य नाग हस्ती का वाचक वंश यश-वंश की तरह वृद्धिगत हो ॥३४॥

जाति अंजन धातु के समान प्रभावले तथा कुवलय कमल के समान प्रभा वाले रेवती नक्षत्र नामक मुनिप्रवर का वाचक वंश वृद्धि प्राप्त करे ॥३५॥

अचलपुर में जो दीक्षित हुए, कालिक सूत्रों के व्याख्याता, धीर उत्तम वाचक पद को प्राप्त करने वाले ब्रह्मदीपिक शाखा में सिंह के समान श्री सिहाचार्य को तथा— ॥३६॥

जिनका यह अनुयोग आज भी अर्धभरत क्षेत्र में प्रचलित है और बहुत नगरों में जिनका यश प्रसूत—फैला हुआ है, उन स्कन्दिलाचार्य को वंदन करता है ॥३७॥

तत्पश्चात् हिमवान् की तरह महान विक्रमशाली, अनन्त धैर्य एवं पराक्रम वाले, अनन्त स्वाध्याय के धारक ऐसे हिमवान् आचार्य को नतमस्तक हो वंदना करता है ॥३८॥

कालिक श्रुतसम्बन्धी अनुयोग के धारक और उत्पादि आदि पूर्वों को भी धारण करने वाले आचार्य—हिमवन्त क्षमा श्रमण के सदृश आर्य नागार्जुन को नमस्कार करता है ॥३९॥

मृदु-मार्दव आदि भावों से संपन्न, क्रम से वाचक पद को प्राप्त, ओषधुत का समाखरण करने वाले नागार्जुन वाचक को वंदन करता है ॥४०॥

अनुयोग सम्बन्धी विपुल धारणा करने वालों में इन्द्र के समान क्षमा और दया आदि गुणों की नित्य प्ररूपणा करने में निपुण गोविन्दाचार्य को भी नमस्कार हो ॥४१॥

*तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तव-संजमे अनिच्चिण्णं ।
पुण्डियजणसामन्नं, वंदामो संजमविहिण्णुं ॥४२॥

वर-कणग-तविय-चंपग-विमउल-वर-कमलगवभसरिवन्ने ।
भवियजणहिययदइय, दयागुणविसारए धीरे ॥४३॥
अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह-सज्जाय-सुमुणियपहाणे ।
अणुओगियवरवसमे, नाइलकुलवंसनंदिकरे ॥४४॥
भूयहिययप्पगढ्भे, वंदेऽहं भूयदिन्नमायरिए ।
भवभवयवुच्छेयकरे, सीसे नागज्जणरिसीणं ॥४५॥

सुमुणियनिच्चानिच्चं, सुमुणियसुत्तयधारयं वंदे ।
सव्भावुत्तभावणया, तत्थं लोहिच्च णामाणं ॥४६॥

अत्थमहत्थाक्खाणि, सुसमणवक्खाणकहणनिच्चाणि ।
पयईए महुरवाणि, पयओ पणमामि दूसगणि ॥४७॥

*तव-नियम-सच्च-संजम-विणयज्जव-खंति-मह्वरयाणं ।
सीलगुणगहियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥४८॥
सुकुमालकोमलत्तले, तेसि पणमामि लवखणपसत्थे ।
पाए पावयणीणं, पाडिच्छयसएहि पणिवइए ॥४९॥

जे अन्ने भंगवन्ते, कालियसुण-आणुओगिए धीरे ।
ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परूवणं वोच्छं ॥५०॥

और तत्पश्चात् तप और संयम में सदा ही खेदरहित, पंडितजनों में सम्माननीय तथा संयम के विशेषज्ञ ऐसे आचार्य भूतदिन्न को वंदन करता हूँ ॥४२॥

तपाये हुए विशुद्ध सुवर्ण के समान, स्वर्णिम चंपक पुष्प के तुल्य या विकसित उत्तम कमल के गर्भ सदृश वर्ण वाले, भव्यजनों के हृदयवल्लभ, जनता में दया भावना उत्पन्न करने में अति निपुण, धैर्य गुणयुक्त, अर्धभरत क्षेत्र में युगप्रधान, स्वाध्याय के विना प्रकारों के श्रेष्ठ विज्ञाता, अनेक श्रेष्ठ मुनिवरों को स्वाध्याय आदि में प्रवृत्त कराने वाले, नाइल कुल तथा वंश को प्रसन्न करने वाले, प्राणिमात्र को हितोपदेश करने में समर्थ, संसार भय को नष्ट करने वाले और आचार्य श्री नागार्जुन ऋषि के शिष्य भूतदिन्न आचार्य को मैं वंदन करता हूँ ॥ ४३-४५

नित्यानित्य रूप से वस्तुतत्त्व को सम्यक्तया जानने वाले, भली प्रकार से समझे हुए सूत्रार्थ को धारण करने वाले, यथावस्थित भावों का सम्यक् प्रकार से प्ररूपण करने वाले लोहित्य नामक आचार्य को वंदन करता हूँ ॥४६॥

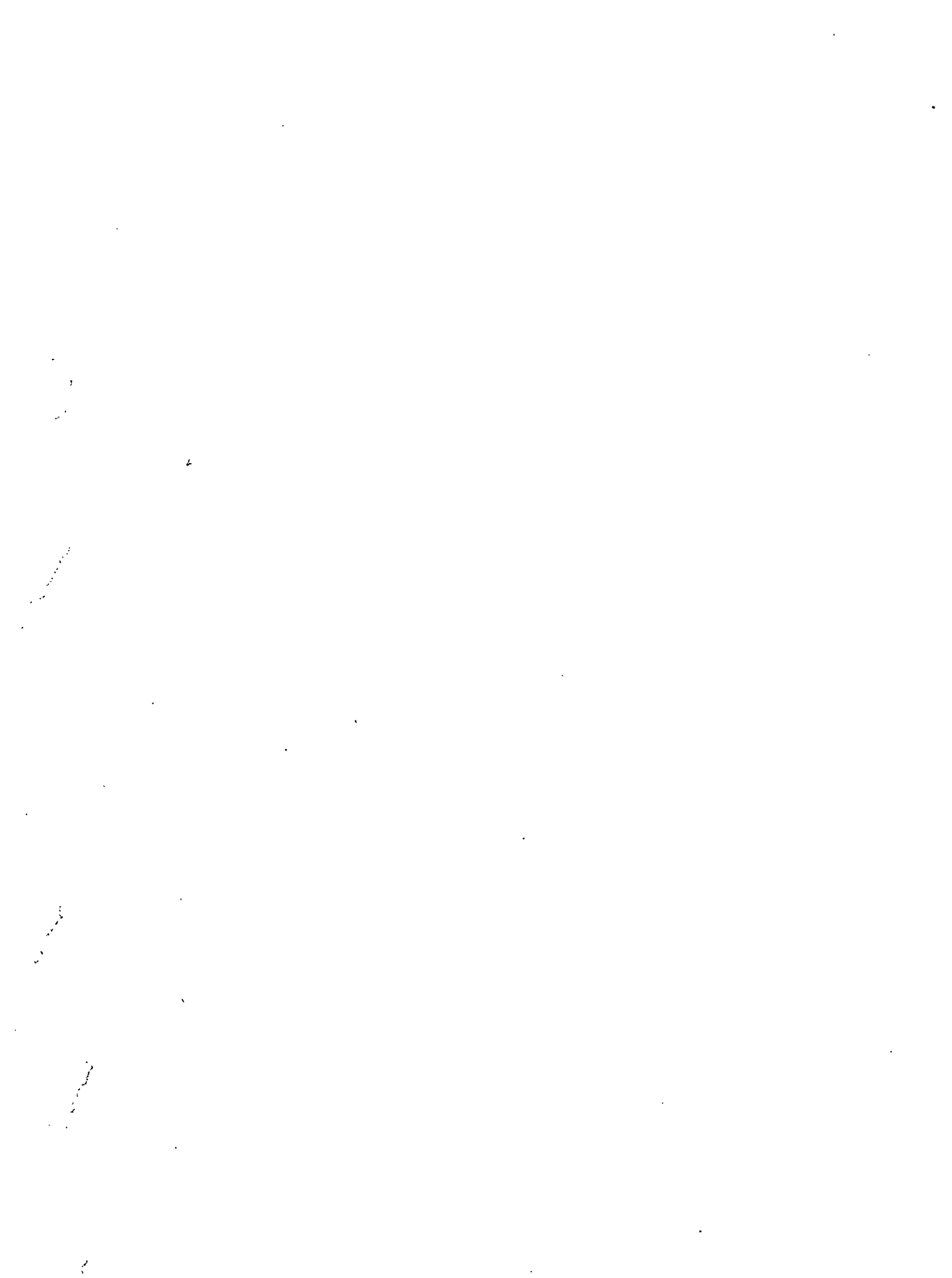
शास्त्रों के अर्थ व महार्थ की खान के समान, सुश्रमणों के लिये आगमों का व्याख्यान और पूछे हुए विषयों का कथन करने में शांति का अनुभव करने वाले और प्रकृति से मधुर वाणी संपन्न उन दूष्यगणि को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

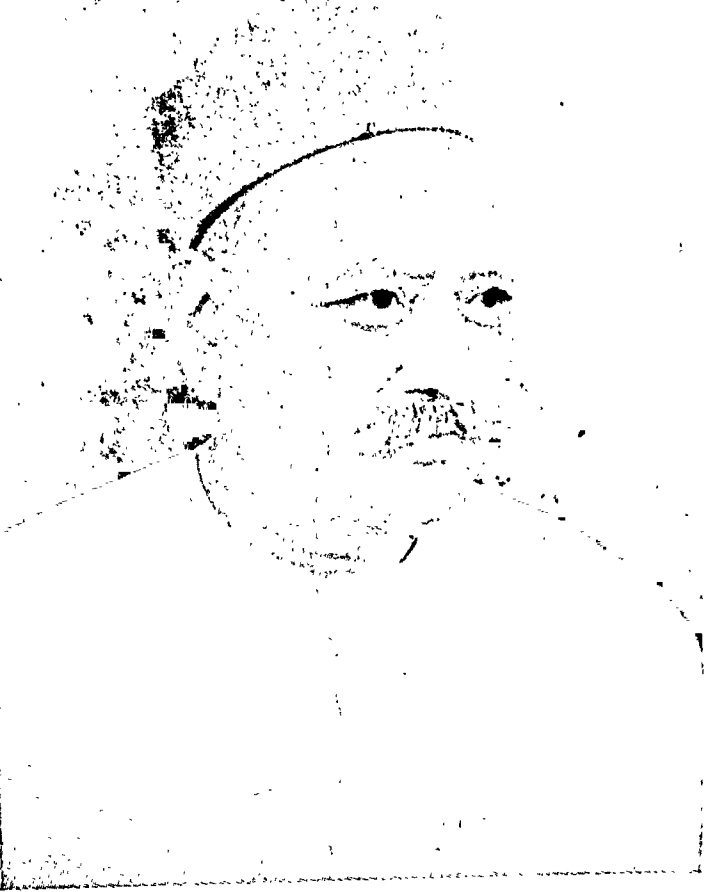
तप, नियम, सत्य, संयम, वित्तय, आर्जव, क्षान्ति, मार्दव आदि गुणों में रत, संलग्न, शील गुणों में ख्याति प्राप्त और अनुयोग की व्याख्या करने में युगप्रधान तथा पूर्वोक्त गुणों से युक्त, प्रवचनकारों के प्रशस्त लक्षणों से उपेत, सैकड़ों प्रतीच्छकों-शिष्यों द्वारा प्रणाम किये गये ऐसे (उन दूष्यगणि के) प्रशस्त लक्षणों से युक्त, सुकुमार सुन्दर तलवे वाले चरणों को प्रणाम करता हूँ तथा—४८-४९॥

इनके अतिरिक्त और जो अन्य-दूसरे कालिकश्रुत तथा अनुयोगधर धीर श्रुतधर भगवन्त हैं, उनको नतमस्तक होकर प्रणाम करके ज्ञान की प्ररूपणा करता हूँ—कहूंगा/कहूँगा ॥५०॥

—नंदी







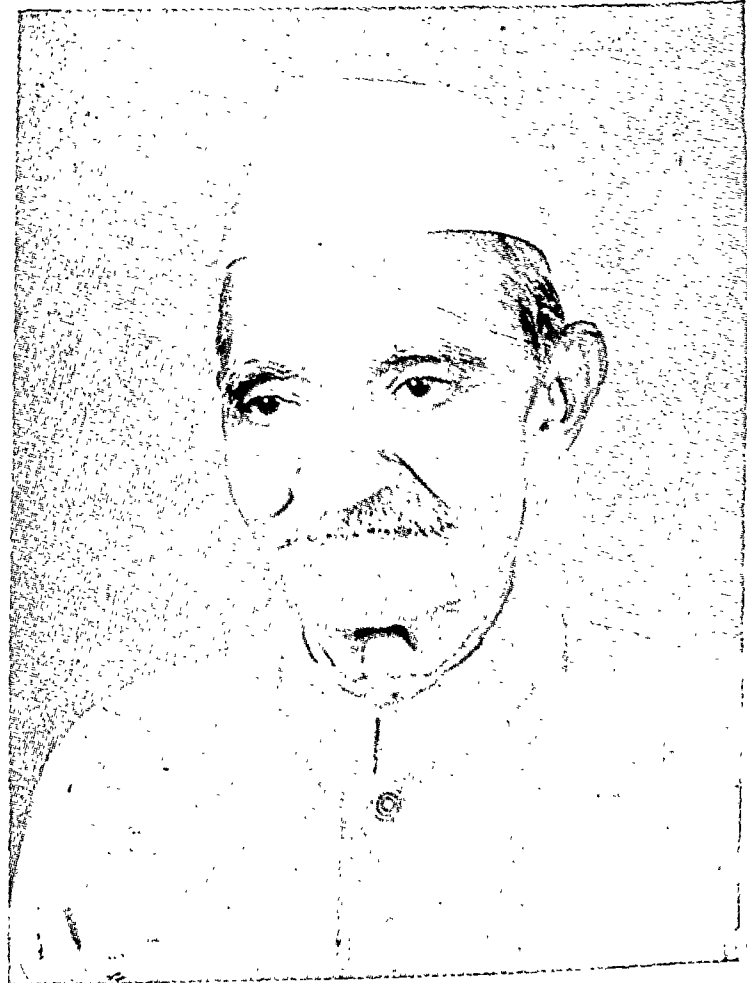
स्व० श्री तेजराजजी वरचन्द्रजी वर, इचलकरंजी
आप मूलतः भादवा मारवाड़ निवासी हैं। आप आठ भाई थे: श्री मूलचन्द जी, श्री तेजराज जी, श्री मदनलाल जी, श्री माणकचन्द जी, श्री मोहनलाल जी, श्री मोतीलाल जी, श्री हिराचन्द जी, श्री श्रीचन्द जी।

श्री तेजराज जी सा० का गत वर्ष निधन हो गया। आप बहुत ही धर्म निष्ठ उदार हृदयी श्रावक थे। आप पूज्य गुरुदेव श्री फतहचन्द जी म० के सुशिष्य अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" के अनन्य भक्त थे। आपके सुपुत्र रूपचन्द जी भी धार्मिक भावना वाले उदार हृदय युवक हैं।

आपका वर्तमान में व्यवसायिक क्षेत्र इचलकरंजी है।

स्व० जगजीवनदास रतनसी बगड़िया दामनगर

आप दामनगर के प्रतिष्ठित सुश्रावक थे। शास्त्रों के बहुत बड़े अभ्यासी थे। अनेक शास्त्रों का प्रकाशन आपने करवाया था। बहुत ही नम्र स्वभाव के थे। साधु साध्वीयों के प्रति आपकी असीम श्रद्धा थी। वोटाद संप्रदाय के श्री अमीचन्द जी म० की प्रेरणा से आपके सुपुत्र भोगी भाई के चतुर्थ व्रत के प्रत्याख्यान के उपलक्ष्य में अनुयोग ट्रस्ट को बहुत बड़ा योगदान दिया है।



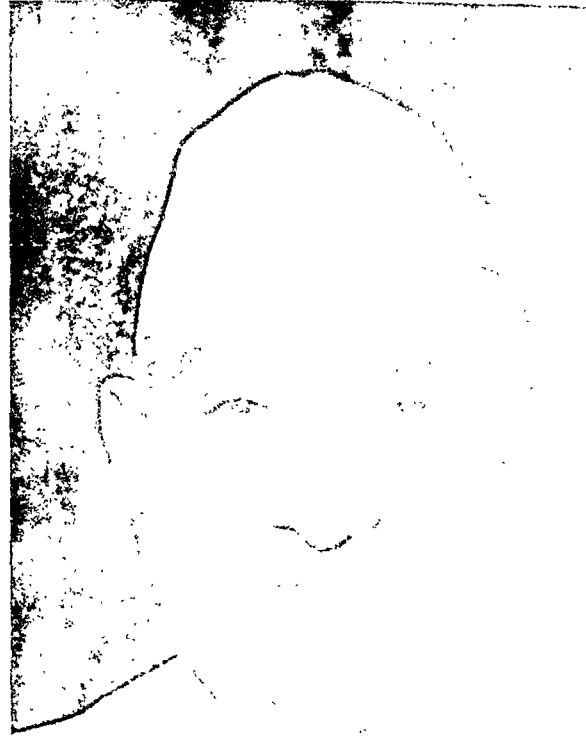
स्व० श्री हरिभाई जयचन्द दोशी

विश्व वात्सल्य ट्रस्ट बम्बई



आप बड़े ही सादगीप्रिय तत्वज्ञानी थावक थे। धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। साधु-साध्वियों के प्रति भक्ति एवं दान की भावना विशेष थी।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप भी प्रथम श्रेणी के सहयोगी रहे हैं।

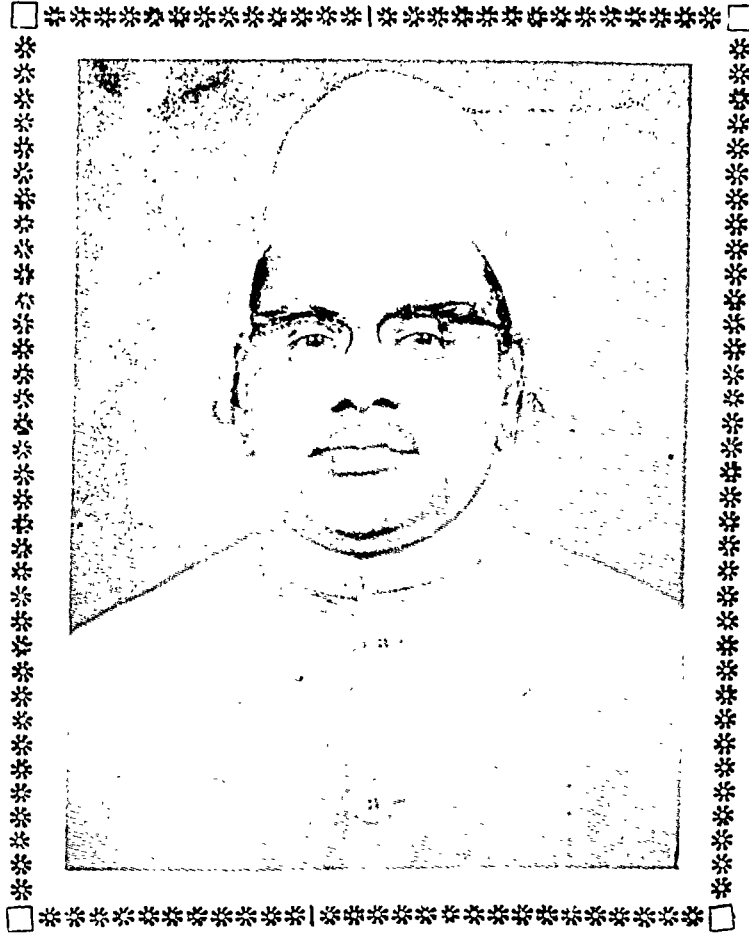


वर्मशीला उदयचंवर दाई अहोबिल ल. ब. म. म.

आप मुहम्मद जो आपिया के मुसलमानी आगम धर्मपत्नी है। बहुत ही उदार, धार्मिक, सादगीप्रिय, सादगी साह्य सुलतः पानी, मायाय के प्रति श्रद्धा रखते थे। नन्धाजी के प्राण है। वर्तमान मद्रास केन्द्र, आगम अनुयोग ट्रस्ट के बड़े पैमाने पर आर्थिक योगदान के लिए आपका नाम में विभिन्न जाकार्य सहाय्य रचना के लिए आभार व्यक्त करते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी के रूप में आपकी सहप्रयत्नियों को सादर धन्यवाद। श्री जी के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं।



स्व० श्री मेघराज जी बम्ब, हैदराबाद



आप मूलतः पीही मारवाड़ निवासी हैं। हैदराबाद में रह कर आपने बहुत बड़ा व्यापार व्यवसाय किया। अनेक सुकृत कार्यों में उदार मन से जीवन पर्यन्त सहयोग करते रहे। शमशेरगंज में धर्म आराधना हेतु एक भवन का निर्माण भी कराया।

आपका स्वास्थ्य कुछ वर्षों से अच्छा नहीं था, ३ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया। आप पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी महाराज के अनन्य भक्त थे, आप अन्तिम समय तक गुरुदेव के चातुर्मास की प्रबल भावना करते रहे। वह भी सफल हुई और गुरुदेव का चातुर्मास वि० सं० २०३८ का हुआ। आपके भाई चांदमल जी भीमराज जी, शिवराज जी भी बहुत ही धार्मिक उदार व गुरुभक्त हैं। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के प्रथम श्रेणी के सहयोगी बने।

श्रीमती केलीबाई देवराज जी काश्री
जैनारण. (मारवा)

आप बहुत ही धार्मिक, दानवीर माँ हैं। आपकी सेवा में श्री शांतिनाथ जी एवं श्री प्रदीपचन्द्र जी का दर्शन हुआ। आपका व्यवसाय निरन्तर राजी में चल रहा है। आपका लम्बे-रे मुनि दर्शनार्थ संघ निरन्तर आपकी सेवा में सद्दुपयोग कर रहे हैं। आपने आपकी सेवा में सद्दुपयोग प्रदान किया है।



श्रीमती चन्द्रादेवी बंब, टोंक (राज०)

आपका जन्म आनोज घदी १२ सन् १९३३ दिल्ली में हुआ। सन् १९४५ में टोंक (राज०) के प्रतिष्ठित परिवार के श्री धन्नालालजी एवं श्री सुपुत्र श्री गंभीरलाल जी के नाथ पाणिग्रहण हुआ। आपके दो सुपुत्र श्री अजीत कुमार एवं श्री अशोक कुमार हैं।

आप अनुयोग प्रपत्रक पं० रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'वसन्त' एवं महाशय्या श्री पानकर जी रत्नकर जी से विशेष प्रभावित हुई हैं।

श्री विनाय मुनि जी 'आगीरा' के जीवन निर्माण में पूरा धर्म की सेवा करके करने में आप प्रसुप्त रहो हैं। आप स्वयं के शिष्या होने के कारण आपने परमपूज्य स्वामी अनुयोग व टोंक के कारण न वे सके। आपका नाम बहुत ही विचार है। आपने अनुयोग पुस्तक में विशेष विवरण दिया है।





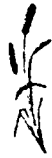
श्री अजयराज जी मेहता, अहमदाबाद

आप मुख्यतः बड़लू भोपालगढ़ के निवासी हैं। आपकी धर्मपत्नी सरोजबेन भी बहुत धार्मिक भावना वाली हैं। आपका अहमदाबाद में फाइनेन्स का व्यवसाय है। आप बहुत ही नम्र सरल एवं उदार व्यक्ति हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।



श्री विजयराज जी बोहरा, अहमदाबाद

आप राणीवाल मारवाड़ के निवासी हैं। बालाराम जी के आपका पुत्र हैं। अहमदाबाद में आपका न्यू क्लोथ मार्केट में फाइनेन्स का बहुत बड़ा व्यापार है। अनुयोग के कार्य हेतु पूज्य गुरुदेव अहमदाबाद के अधारे जब से विशेष रुचि है। आप पूज्य मरुधर केसरी जी म० के अनुन्य भक्त हैं। अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।



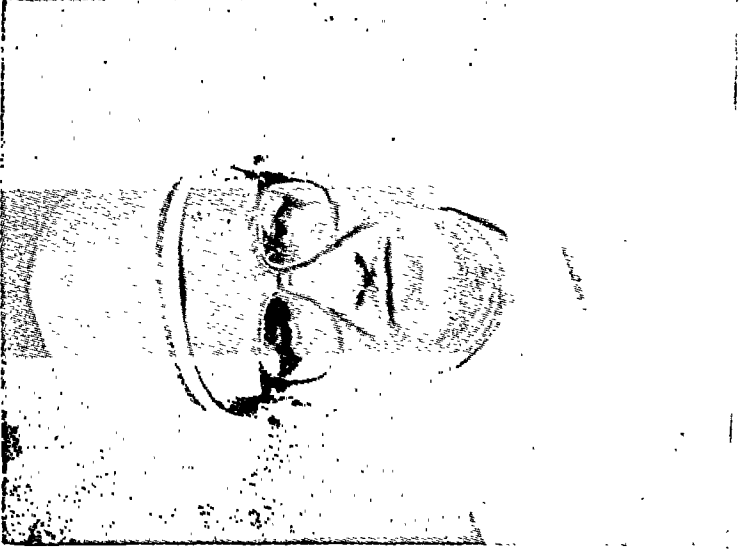
तृतीय श्रेणी सहयोगी



व० शा० कस्तूरचन्द्रजी प्रताप जी साकारिया

सांडेराव

आप वांकली बास के प्रतापजी कपूर जी के सुपुत्र थे ! स्व० तपस्वी स्वामी श्री वक्तावरमल जी म० के अनन्य भक्तों में से एक थे । आपके सुपुत्र शांतिलाल जी, कांतिलाल जी, मदनलाल जी, सुरेशकुमार जी, जगदीश जी भी धर्म में दृढ़ श्रद्धाभाव रखते हैं ।



श्री वृद्धिचन्द्र जी मेघराज जी

सांडेराव

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सांडेराव एवं वर्धमान महावीर केन्द्र आद्व पर्वत के प्रमुख कार्यकर्ता हैं । श्री मूलचन्द्र जी, शेपमलजी, उम्पेदमलजी एवं आप चार भाइयों में सबसे बड़े हैं । पूज्य गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं ।



श्रीमान धनराजजी नाहटा, केकड़ी (राज०)

आप श्री दीपचन्द्र जी नाहटा के सुपुत्र हैं । चित्रकला, कविता, नाटक कला, व्यायाम आदि में आपकी विशेष रुचि है । साथ ही धार्मिक ज्ञान, तत्त्वचर्चा तथा वाद-विवाद में भी कुशल हैं । स्थानकवासी जैन संघ केकड़ी के मंत्रों हैं । पूज्य स्वामीदास जी म० की परम्परा के प्रति अत्यन्त निष्ठा रखते हुए गुरुदेव मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'कमल' के अनन्य भक्त हैं । श्रमण संघ के प्रति गहरी निष्ठा है । आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी हैं ।

श्रीमती पार्वती वहिन शिवलाल तलवसीभाई अजमेरा ट्रस्ट,
अहमदाबाद । हस्ते, नवनीतलाल मणीलाल अजमेरा
श्री शांतिलाल अमृतलाल वोरा, अहमदाबाद
श्री कांतिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला,
अहमदाबाद
श्री वाडीलाल मोहनलाल शाह, सायन, बम्बई
श्री गिरधरलाल पुरुषोत्तमदास ऐलिसत्रिज, अहमदाबाद
श्री जयन्तिलाल भोगीलाल भावसार, सरसपुर, अहमदाबाद
श्री जयन्तिलाल वी. भावसार अहमदाबाद-२
श्री दीनुबाई वी. भावसार अहमदाबाद-२
श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद
श्री अहमदाबाद स्टील स्टोर, अहमदाबाद
हस्ते जयन्तिलाल मनसुखलाल लोखण्डवाला
श्री जादवजी मोहनलाल शाह, अहमदाबाद
डा. धीरजलाल एच. गोसलिया नवरंगपुरा, अहमदाबाद
श्री सज्जनसिंहजी भंवरलालजी काकरिया, पिपाड़सिटी
(वर्तमान—अहमदाबाद)
श्री कांतिलाल प्रेमचन्द मुगफलीवाला, अहमदाबाद
मे० प्लाजा इन्डस्ट्रीज, अहमदाबाद
हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
स्व० मणीलाल नेमचन्द अजमेरा तथा स्व० कस्तुरी वहिन
मणीलाल की स्मृति में
हस्ते, चम्पकभाई मणीलाल अजमेरा बम्बई
श्री नगीनदास शिवलाल अहमदाबाद
श्रीमती कांताबेन भाईलाल के वर्षातिप के उपलक्ष्य में
हस्ते, सखीदास महासुखभाई अहमदाबाद
श्रीमती समरथ बेन चतुर्भुज बम्बई
हस्ते, कांतिभाई बेकरीवाला
श्री छगनलाल शामजी भाई विराणी, राजकोट (बम्बई)
श्री रसीकलाल हीरालाई झवेरी बालकेश्वर बम्बई
श्रीमती तरुलताबेन रमेशचन्द दफ्तरी बालकेश्वर बम्बई
श्री ताराचन्द चतुरभाई वोरा बालकेश्वर बम्बई
हस्ते, नंदलाल वोरा
श्री चम्पकलाल एम. लाखाणी, बालकेश्वर बम्बई
श्री हिरजी सोजपाल कच्छकपाया वाला बालकेश्वर बम्बई
श्री अमृतलाल सौभाग्यचन्द की स्मृति में
हस्ते, गुणवंतलाल राजेन्द्रकुमार बम्बई
श्री दलिचन्दभाई अमृतलाल देसाई अहमदाबाद
श्री एम० के० गांधी चेरिट्रिवल ट्रस्ट घाटकोपर, बम्बई
हस्ते, वजुभाई गांधी
श्री भाईलाल जादवजी सेठ कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
श्री जुहारमल दीपचन्द नाहटा सराफ केकड़ी (राज०)
हस्ते धनराज लालचन्द नाहटा

श्री रतनसी भेदा की स्मृति में—
हस्ते, उमरवोई शिवजी भेदा
श्री रतनजी केशवजी भेदा की स्मृति में
हस्ते, उम्मेदभाई शिवजी भेदा, बम्बई
श्री पी. के. गांधी बम्बई
श्री सुखलालजी कोठारी, खार बम्बई
श्री मोहनलाल नागरदास खार, बम्बई
श्री आनन्दीलालजी कटारिया वड़ाला, बम्बई
श्री वसंतलाल के. दोसी विलेपारला बम्बई
श्री प्रोसीजन टेक्सटाईल इन्जीनियरिंग एण्ड कॉम्पोन्टस,
बम्बई
श्री मेहता इन्द्रजी पुरुषोत्तमदास दादर, बम्बई
स्व० भाई अमृतलाल की स्मृति में
श्री पारसमलजी कावडिया सादड़ी मारवाड़ (आरकाट)
श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिट्रिवल ट्रस्ट बम्बई
श्री जयसुखलाल रामजीभाई कांदावाडी, बम्बई
श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाडी बम्बई
श्री मेघजी भाई थोभण कांदावाडी बम्बई
श्री प्रीतमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाडी, बम्बई
श्री प्रभुदास रामजी भाई कांदावाडी बम्बई
श्री एक सद्गृहस्थ बम्बई
श्री सीलमोहन एण्ड कम्पनी बम्बई (टाइपरार्इटर हेतु)
हस्ते, रमणीकलाल मोहनलाल धानेरा
श्री नरोत्तमदास मोहनलाल बम्बई
श्री रतिलाल विठ्ठलदास गोसलिया माधवनगर (महाराष्ट्र)
श्री वाडीलाल जेठालाल शाह बालकेश्वर, बम्बई
श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र, मरीन लाइन बम्बई
आचार्य श्री यशोदेव सूरिस्वरजी म० की प्रेरणा से
शा० मेघजी खिमजी तथा श्रीमति लक्ष्मीबेन मेघजी खिमजी
बम्बई
श्री हरखराजजी दौलतराजजी धारीवाल हैदराबाद
श्री लादुसिंहजी गांग एडवोकेट शाहपुरा (राज)
श्री एस. एन. भीकमचंद सुखाणी लाल बाजार, सिकन्द्राबाद
श्री केशवलाल मणीलाल शाह बम्बई
श्री ताराचंद गुलाबचंद बालकेश्वर बम्बई
श्री नाथालाल भगवानजी घाटलिया बम्बई
श्री पुखराजजी कावडिया सादड़ी मारवाड़ (बम्बई)
श्रीमती भूरीबाई भंवरलालजी कोठारी, सेमा (मेवाड़)
हस्ते, सागरमल मदनलाल रमेशचंद्र बम्बई
श्री प्रेमराजजी चौरडिया मदनगंज (अजमेर)
श्रीमती भानुबेन जयेन्द्रभाई मेहता बम्बई
नगीन भाई जयसुखलाल, सींगपुरवाला, बम्बई

जैन-आगम में सत्य का साक्षात् दर्शन है। जो अखण्ड है, सम्पूर्ण व समग्र मानव चेतना को संस्पर्श करता है। सत्य के साथ शिव का मधुर सम्बन्ध होने से वह सुन्दर ही नहीं, अतिसुन्दर है। वह आर्ष वाणी है। आर्ष का अर्थ तीर्थंकर या ऋषियों की वाणी है। यास्क ने ऋषि की परिभाषा करते हुए लिखा है—'जो सत्य का साक्षात् द्रष्ट है, वह ऋषि है'।^१ प्रत्येक साधक ऋषि नहीं बन सकता, ऋषि वह है जिसने तीक्ष्ण प्रज्ञा, तर्क, शुद्ध ज्ञान से सत्य की स्पष्ट अनुभूति की है।^२ यही कारण है कि वेदों में ऋषि को मंत्रद्रष्टा कहा है। मंत्रद्रष्टा का अर्थ है—साक्षात् सत्यानुभूति पर आधृत शिवत्व का प्रतिपादन करने वाला सर्वथा मौलिक ज्ञान। वह आत्मा पर आयी हुई विभाव परिणतियों के कालुष्य को दूर कर केवलज्ञान और केवलदर्शन से स्व-स्वरूप को आलोकित करता है। जो यथार्थ सत्य का परिज्ञान करा सकता है, आत्मा का पूर्णतया परिवोध करा सके, जिससे आत्मा पर अनुशासन किया जा सके, वह आगम है। उसे दूसरे शब्दों में शास्त्र और सूत्र भी कह सकते हैं।

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में लिखा है—जिसके द्वारा यथार्थ सत्य रूप ज्ञेय का, आत्मा का परिवोध हो एवं आत्मा का अनुशासन किया जा सके, वह शास्त्र है।^३ शास्त्र शब्द शास् धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—शासन, शिक्षण और उद्बोधन। जिस तत्त्व-ज्ञान से आत्मा अनुशासित हो, उद्बुद्ध हो, वह शास्त्र है। जिससे आत्मा जागृत होकर तप, क्षमा, एवं अहिंसा की साधना में प्रवृत्त होती है, वह शास्त्र है। और जो केवल गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्नदश-पूर्वी के द्वारा कहा गया है, वह सूत्र है।^४ दूसरे शब्दों में जो ग्रन्थ प्रमाण से अल्प अर्थ की अपेक्षा महान्, वतीस दोषों से रहित, लक्षण तथा आठ गुणों से सम्पन्न होता हुआ सारवान् अनुयोगों से सहित, व्याकरण विहित, निपातों से रहित, अनिन्द्य और सर्वज्ञ कथित है, वह सूत्र है।^५

इस सन्दर्भ में यह समझना आवश्यक है कि आगम कहो, शास्त्र कहो, या सूत्र कहो, सभी का एक ही प्रयोजन है। वे प्राणियों के अन्तर्मानस को विशुद्ध बनाते हैं। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने कहा—जैसे जल वस्त्र की मलिनता का प्रक्षालन करके उसको उज्ज्वल बना देता है वैसे ही शास्त्र भी मानव के अन्तःकरण में स्थित काम, क्रोध आदि कालुष्य का प्रक्षालन करके उसे पवित्र और निर्मल बना देता है।^६ जिससे आत्मा का सम्यक् बोध हो, आत्मा अहिंसा, संयम और तप साधना के द्वारा पवित्रता की ओर गति करे, वह तत्त्वज्ञान शास्त्र है, आगम है।

आगम भारतीय साहित्य की मूल्यवान् निधि है। डॉ० हरमन जेकोवी, डॉ० शुब्रिग प्रभृति अनेक पाश्चात्य मूर्धन्य मनीषियों ने जैन-आगम साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन कर इस सत्य-तथ्य को स्वीकार किया है कि विश्व को अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद के द्वारा सर्वधर्म-समन्वय का पुनीत पाठ पढ़ाने वाला यह सर्वश्रेष्ठतम साहित्य है।

आगम साहित्य बहुत ही विराट और व्यापक है। समय-समय पर उसके वर्गीकरण किये गये हैं। प्रथम वर्गीकरण पूर्व और अंग के रूप में हुआ।^७ द्वितीय वर्गीकरण अंगप्रविष्ट और अंगवाह्य के रूप में किया गया।^८ तृतीय वर्गीकरण आर्यरक्षित ने अनुयोगों के आधार पर किया है। उन्होंने सम्पूर्ण आगम-साहित्य को चार अनुयोगों में बाँटा है।^९

१. ऋषिदर्शनात्,—निरुक्त, २/११.

२. साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः—निरुक्त, १/२०.

३. 'सात्सिञ्जए तेण त्तिहि वा नेयभायावतो सत्थं'

टीका—शासु अनुशिण्टी शास्यते ज्ञेयमात्मा वाज्जेनास्मादस्मिन्निति वा शास्त्रम् ।

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १३५४

४. सुत्तगणधरकधिमं त्तेव पत्तेयबुद्धकधिमं च ।

सुदकेवलिणा कधिमं अभिण्णदसपुव्विकधिमं च ॥

—मूलाचार, ५/५०

५. अप्पग्गंश महत्थं वत्तीसा दोत्तधिरहियं जं च ।

लत्तवणजुत्तं सुत्तं अट्ठेहि च गुणेहि उववेयं ॥

अप्पग्गंशममंदिदं च सारवं विस्सओ मुहं ।

अत्थोत्तमणत्तज्जं च सुत्तं सब्बण्णुभासियं ॥

—आव० निर्युक्ति, ८८०, ८८६.

६. मन्तिवस्स यथात्तन्नं जत्तं वस्सस्य शोधनम् ।

अन्तःकरणरत्तस्य, तथा शास्त्रं विदुवुं धाः ॥

—योगविन्दु, प्रकरण, २/६.

७. समवासांग—१४/१३६.

८. अत्था तं ममासओ वुच्चिहं षण्णत्तं तं क्हा—अंगप्रविष्टं अंगवाहिरं च ।

—नंदी, सूत्र ४३

९. (क) आवश्यत्त निर्युक्ति, ३६३-३७७.

(ख) विशेषावश्यकभाष्य, २२५४-२२६५.

(ग) दर्शनसाधकनिर्युक्ति, ३ टी०

आचार्य मलयगिरि^१ ने प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक श्रमण तीक्ष्ण बुद्धि के धनी थे, अतः अनुयोग की दृष्टि से अविभक्त रूप से व्याख्या प्रचलित थी। प्रत्येक सूत्र में चरणकरणानुयोग आदि का अविभागपूर्वक वर्तन था। मुख्यता की दृष्टि से निर्युक्तिकार ने यहाँ पर कालिक श्रुत को ग्रहण किया है अन्यथा अनुयोगों का कालिक-उत्कालिक आदि सभी में अविभाग था।^२

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने इस सम्बन्ध में विश्लेषण करते हुए लिखा है—आर्य वज्र तक जब अनुयोग अपृथक् थे तब एक ही सूत्र की चारों अनुयोगों के रूप में व्याख्या होती थी।

अनुयोगों का विभाग कर दिया जाय, उनकी पृथक्-पृथक् छँटनी कर दी जाय तो वहाँ उस सूत्र में चारों अनुयोग व्यवच्छिन्न हो जायेंगे। इस प्रश्न का समाधान करते हुए भाष्यकार ने लिखा है जहाँ किसी एक सूत्र की व्याख्या चारों अनुयोगों में होती थी, वहाँ चारों में से अमुक अनुयोग के आधार पर व्याख्या करने का यहाँ पर अभिप्राय है।

आर्य रक्षित से पूर्व अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था, उसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या चरण-करण, धर्म, गणित और द्रव्य की दृष्टि से की जाती थी। यह व्याख्या पद्धति बहुत ही क्लिष्ट और स्मृति की तीक्ष्णता पर अवलम्बित थी। आर्य रक्षित के १. दुर्बलिका पुष्यमित्र २. फल्गुरक्षित ३. विन्ध्य और ४. गोष्ठासाहिल ये चार प्रमुख शिष्य थे। विन्ध्य मुनि महान् प्रतिभासम्पन्न शीघ्रग्राही मनीषा के धनी थे। आर्य रक्षित शिष्य मण्डली को आगम वाचना देते, उसे विन्ध्य मुनि उसी क्षण ग्रहण कर लेते थे। अतः उनके पास अग्रिम अध्ययन के लिए बहुत सा समय अवशिष्ट रहता। उन्होंने आर्य रक्षित से प्रार्थना की—मेरे लिए अध्ययन की पृथक् व्यवस्था करें। आचार्य ने प्रस्तुत महनीय कार्य के लिए महामेधावी दुर्बलिका पुष्यमित्र को नियुक्त किया। अध्यापन-रत दुर्बलिका पुष्यमित्र ने कुछ समय के पश्चात् आर्य रक्षित से निवेदन किया—आर्य विन्ध्य को आगम वाचना देने से मेरे पठित पाठ के पुनरावर्तन में बाधा उपस्थित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था से मेरी अधीत पूर्व ज्ञान की राशि विस्मृत हो जायेगी। आर्य रक्षित ने सोचा—महामेधावी शिष्य की भी यह स्थिति है तो आगम ज्ञान का सुरक्षित रहना बहुत ही कठिन है। दूरदर्शी आर्य रक्षित ने गम्भीरता से चिन्तन कर जटिल व्यवस्था को सरल बनाने हेतु आगम अध्ययन-क्रम को चार अनुयोगों में विभक्त किया।^३ वह क्रम इस प्रकार है :—

१. चरण-करणानुयोग—कालिक श्रुत, महाकल्प, छेदश्रुत आदि।
२. धर्म-कथानुयोग—ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन आदि।
३. गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि।
४. द्रव्यानुयोग—दृष्टिवाद आदि।

यह महत्त्वपूर्ण कार्य दशपुर में वीर निर्वाण ५६२, वि० सं. १२२ के आस-पास सम्पन्न हुआ था। यह वर्गीकरण विषय सादृश्य की दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत वर्गीकरण करने के बावजूद भी यह भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती कि अन्य आगमों में अन्य अनुयोगों का वर्णन नहीं है। उदाहरण के रूप में, उत्तराध्ययन सूत्र में धर्मकथा के अतिरिक्त दार्शनिक तथ्य भी पर्याप्त मात्रा में है। भगवती सूत्र तो अनेक विषयों का विराट सागर है। आचारांग आदि में भी अनेक विषयों की चर्चाएँ हैं। कुछ

१. यावदायं वज्रा—आर्यवज्रस्वामिनो मुखो महामतयस्तावत्कालिकानुयोगस्य कालिकश्रुतव्याख्यानस्यापृथक्त्वं—प्रतिसूत्रं चरण-करणानुयोगादीनामविभागेन वर्तनमासीत्, तदा साधुनां तीक्ष्णप्रज्ञत्वात्। कालिक ग्रहणं प्राधान्यव्यापनार्थम्, अन्यथा सर्वानुयोगस्यापृथक्त्वमासीत्। —आवश्यकनिर्युक्ति, पृ० ३८३, प्रका. आगमोदय समिति

२. अपुहुत्ते अणिओगो चत्तारि दुवार भासए एगो ।
पुहुताणुओग करणे ते अत्थ तओवि वोच्छिन्ना ॥
कि वइरेहि पुहुत्तं कयमह तदणंतरेहि भणियम्मि ।
तदणंतरेहि तदभिहिय गहिय सुत्तत्थ सारेहि ॥

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २२८६—२२८७.

३. (क) देविद वदिएहि महाणुभावोहि रक्खियज्जेहि ।
जुगमासज्ज विभत्तो, अणुयोगो तो कओ चउहा ॥
चत्तारि अणुयोग चरण धम्म गणियणुयोग य ।
दव्वियणुयोगे तहा जहक्कमं महिड्ढिया ॥
(ख) कालिय सुयं च इसिभासिआइं तइओ अ सूरपन्नत्ती ।
सव्वोअ दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो ॥

—अभिधान राजेन्द्र कोश

—आवश्यकनिर्युक्ति—१२४

दशवैकालिकनिर्युक्ति में एक गाथा है—

“आयारे ववहारे पन्नती चैव दिट्ठवाए य ।

एसा चउव्विहा खलु कहा उ अक्खेवणी होइ ॥” [१६४]

आचार्य हरिभद्र^१ ने आचार का अर्थ आचरण, प्रज्ञप्ति का अर्थ समझाना, और दृष्टिवाद का अर्थ सूक्ष्मत्व का प्रतिपादन किया है। चूर्णिकार ने ‘आयारे’ ‘ववहारे’ ‘पन्नत्ति’ आदि शब्दों को द्वयर्थक नहीं माना है। टीकाकार श्री हरिभद्र ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए आचार आदि को शास्त्रवाचक भी माना है।^२ स्थानांग में आक्षेपणी कथा के जो चार प्रकार बताये हैं, जिनका उल्लेख निर्युक्ति की प्रस्तुत गाथा में हुआ है।^३ आचार्य अभयदेव ने मतान्तर का जो उल्लेख किया है वह आचार्य हरिभद्र के शब्दों में ही किया है।

विक्षेपणी कथा के भी चार प्रकार हैं—१ सम्यग्दृष्टि व्यक्ति स्वयं के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर फिर दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। २ दूसरों के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के पश्चात् अपने सिद्धान्त की संस्थापना करता है। ३ सम्यग्वाद का प्रतिपादन करने के पश्चात् मिथ्यावाद का प्रतिपादन करता है। ४ मिथ्यावाद का प्रतिपादन कर पुनः सम्यग्वाद की स्थापना करता है। विक्षेपणी कथा की परिभाषा में टीका ग्रन्थों में कोई भिन्नता नहीं है।

संवेदनी कथा के भी चार प्रकार बताये हैं—१. इहलोक संवेदनी—मानव जीवन की असारता प्रदर्शित करने वाली कथा। २. परलोक संवेदनी—देव, तिर्यच आदि के जन्मों की मोहमयता व दुःखमयता प्रदर्शित करने वाली कथा। ३. आत्म-शरीर संवेदनी—अपने शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा। ४. पर-शरीर संवेदनी—दूसरे के शरीर की अशुचिता का प्रतिपादन करने वाली कथा।

स्थानांगवृत्तिकार ने संवेदनी कथा की जो व्याख्या की है, वह व्याख्या दशवैकालिकनिर्युक्ति^४ और मूलाराधना^५ की व्याख्या से पृथक् है। उनके अभिमतानुसार इस कथा में वैक्रिय-शुद्धि तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की शुद्धि का कथन होता है। अणिमा, महिमा आदि का नाम विक्रिया है। इन विक्रिया रूप प्रयोजन को सिद्ध करने वाला शरीर वैक्रिय है। उसके निर्माण में जो दोष लगता है, उसका शुद्धिकरण करना “वैक्रियशुद्धि” है। (देखिए—सर्वार्थसिद्धि-२/३६ तथा तत्त्वार्थश्रुतसागरीया वृत्ति—२/३६) धवला की दृष्टि से इस कथा में पुण्य-फल का वर्णन किया जाता है।^६

निर्वेदनी कथा के भी चार प्रकार हैं—१. इहलोक में दुश्चीर्ण कर्म इसी लोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। २. इहलोक में दुश्चीर्ण कर्म परलोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। ३. परलोक में दुश्चीर्ण कर्म इहलोक में दुःखमय फल देने वाले होते हैं। ४. परलोक में दुश्चीर्ण कर्म परलोक में ही दुःखमय फल देने वाले होते हैं।

प्रकारान्तर से निर्वेदनी कथा के चार प्रकार और बताये हैं—१. इहलोक में सुचीर्ण कर्म इसी लोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। २. इहलोक में सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। ३. परलोक में सुचीर्ण कर्म इहलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं। ४. परलोक में सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल देने वाले होते हैं।

१. आचारो—लोचास्तानादिः, व्यवहारः—कथञ्चिदापन्नदोषव्यपोहाय प्रायश्चित्तलक्षणः, प्रज्ञप्तिश्चैव—संशयापन्नस्य मधुरवचनैः प्रज्ञापना, दृष्टिवादश्च—श्रोत्रपेक्षया सूक्ष्मजीवादि भावकथनम् । —दशवैकालिकनिर्युक्ति हरिभद्रीया वृत्ति प० ११०.

२. अन्ये त्वभिदधति—आचारादयो ग्रन्था एव परिगृह्यन्ते, आचाराद्यभिधानादिति ।

—दशवैकालिकनिर्युक्ति हरिभद्रीयावृत्ति, प० ११०.

३. आयारअक्खेवणी ववहारअक्खेवणी पन्नतिअक्खेवणी दिट्ठवातअक्खेवणी ।

—ठाणांग, ४२४७.

४. स्थानांग, ४/२४८.

५. वीरिय विउव्वणिड्ढी, नाण-चरण-दंसणाण तह इड्ढी ।

उवइस्सइ खलु जहियं, कहाइ संवेयणीइ रसो ॥

—दशवैकालिकनिर्युक्ति, गाथा २००

६. संवेयणी पुण कहा, णाण चरित्त तव वीरिय इड्ढिगदा ।

—मूलाराधना ६५७

७. संवेयणी नाम पुण्ण-फल-संकहा । काणि पुण्ण-फलानि ? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्ठि-वलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्वीओ ।

—षट्खण्डागम, भाग १, पृ० १०५.

निर्वेदनी कथा के स्थानांग में आठ त्रिकल्प किये गये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि पुण्य और पाप इन दोनों कथा का कथन करना इस कथा का विषय रहा है। निर्वेदनी की व्याख्या में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। ध्वजाकारों की दृष्टि में इस कथा में पाप फल का कथन है।

उद्योतन मूरि ने कुवलयमाला में कथा के पाँच प्रकार बताये हैं,^३ वे इस प्रकार हैं :—१. नरक कथा २. ध्वजाकार ३. उल्लास कथा ४. परिहास कथा और ५. संकीर्ण कथा। जिस कथा के अन्त में सभी प्रकार से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो, वह सकल कथा है।^४ खण्ड कथा में कथावस्तु बहुत ही छोटी होती है। उल्लास कथा में समुद्र यात्रा या साहसपूर्वक किये जाने वाले प्रेम का निरूपण होता है। परिहास कथा हास्य-व्यंग्यात्मक कथा होती है। इसमें कथा के अन्य तत्त्वों का प्रायः अभाव होता है। संकीर्ण कथा वो दशवैकालिकनिर्युक्ति में मिश्र कथा भी कहा है।^५ जिस कथा में धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुण्यात्तों का निरूपण हो, वह संकीर्ण कथा या मिश्र कथा है। आचार्य हरिभद्र ने प्रस्तुत परिभाषा को स्वीकार करने हुए यह निश्चय है कि कथा सूत्रों में परस्पर तारतम्य होना चाहिए। उद्योतन मूरि^६ का यह अभिमत है कि संकीर्ण कथा में कथा के सभी गुण विद्यमान होते हैं। यह कथा शृंगार की हुई युवती की भाँति मनोहर होती है। इस कथा में राजा, या विशिष्ट व्यक्तियों के शौर्य, वैभ, न्याय, ज्ञान, शील, वैराग्य, समुद्री यात्रा में साहस, आकाश गमन, पर्वतीय प्रदेशों की विकट यात्रा, स्वर्ग-नरक का पर्यटन, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि के दुष्परिणामों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रमुख रूप से होता है।

उद्योतन मूरि ने धर्म-कथा, अर्थ-कथा और काम-कथा ये तीन भेद संकीर्ण कथा के किये हैं। जबकि दशवैकालिक में चारों को कथा के ही भेद माने हैं। अर्थ-कथा वह है, जिसमें मानव की आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में चिन्तन कर नशी नमाधान प्रस्तुत किया जाये और वह समाधान, आख्यान, दृष्टान्त के द्वारा व्यक्त करना चाहिए।^७ राजनैतिक कथाओं का समावेश भी इस कथा के अन्तर्गत होता है। काम-कथाओं में केवल रूप-सौन्दर्य का विश्लेषण ही नहीं होता परन्तु यौन समस्याओं का विश्लेषण भी होता है। समाज के परिशोधन में इन कथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

धर्म-कथा में जीवों के समय-समय पर उद्बुद्ध विविध परिणाम-भावों को उद्घाटित करने वाले जीवन प्रसंग, तथा धर्म, शील, संयम, तप आदि जीवन को उजागर करने वाली घटनाओं का अंकन होता है।^८ उद्योतन मूरि ने आक्षेपणी, संश्लेषणी, निर्वेदनी कथाओं के चारों प्रकारों को धर्म-कथा के अन्तर्गत लिया है।

कथा साहित्य में धर्म-कथा जीवन को आमूलचूल परिवर्तन करने वाली श्रेष्ठतम कथा है। इसलिए आगम-साहित्य में आये हुए धर्म-कथाओं के विविध प्रसंग प्रस्तुत ग्रन्थ में पहली बार संकलित-आकलित किये गये हैं। हम अगली पंक्तियों में तुलनात्मक व समीक्षात्मक दृष्टि से चिन्तन प्रस्तुत करेंगे।

कुलकर : एक विश्लेषण

सुदूर अतीत में भगवान् ऋषभदेव से पूर्व भौतिक व्यवस्था चल रही थी। उस व्यवस्था में न कुल था, न धर्म था, और न जाति ही थी। उस समय एक युगल ही सब कुछ होता था। वह युगल सहज, शान्त और निर्दोष जीवन जीने लगा था। काल के परिवर्तन के साथ व्यवस्था में परिवर्तन होने ने जीवन अस्त-व्यस्त होने लगा, तब कुल व्यवस्था का विकास हुआ। परन्तु व्यवस्था में लोग कुल के रूप में संगठित होकर रहने लगे। प्रत्येक कुल का एक मुखिया होता था। वह कुलकर कहलाता था। धर्म-

१. शिवशेखरी धाम-पाप-फल संकथा। कापि पाप-फलाणि ? शिरस-निरिय कुमाचुन-जोगीसु जाद-परा-भरप-सार्ध-वैश्या-शक्ति-दीपि। संनार-सरीर-भोगेनु-पेर-मुष्पाइणी शिवशेखरी धाम। —पट्टचन्द्रागम, भाग १, पृष्ठ १०४

२. ताओ पुष पंच कथाओं, न जहा—सयलकथा, चण्डकथा, उल्लासकथा, परिहासकथा नह नहिष्ण कथा तैव पापवसा।

३. समस्त पञ्चांगेति कुलवर्णना समरादित्यादिवत् नवन कथा, —

४. धर्मो अर्थो कामो उदरस्तद जन्म सुख कर्मेभु।

लोभे वेणु समये ता उ कथा भीमिवा पाप ॥

५. मन्द-शान्त-सुष-दुता निगार-मनोहरा सुदयणी।

सक-वलागम-सुदया, संश्लेष-कृति पादपया ॥

६. समरादिव कथा, शान्दी, पृष्ठ ३

७. भा उपा १०४ कथा पापार्थ-वैश्या-परिहास-भा-व-विभाषण ५।

वायांग^१, स्थानांग^२ और भगवती^३ में सात कुलकर बताये गये हैं। आवश्यकनिर्युक्ति^४ और आवश्यकचूर्ण^५ में भी इसी तरह सात कुलकरों के नाम प्राप्त हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र,^६ वसुदेवहिण्डी^७ और भरतेश्वर वाहुवलीवृत्ति^८ प्रभृति परवर्ती साहित्य में भी उसका अनुसरण हुआ है। वे नाम ये हैं—विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशोमान, अभिचन्द्र, प्रसेनजित्, मरुदेव और नाभि।

आदि मानव :

जैन दृष्टि से कालचक्र को दो भागों में बाँटा है—१. अवसर्पिणी, और २. उत्सर्पिणी। वे दोनों भी भाग छह-छह भागों में विभक्त किये गये हैं, जिसे जैन पारिभाषिक शब्दों में 'आरा' कहा गया है। अवसर्पिणी काल में प्रत्येक वस्तु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सभी दृष्टियों से क्षीणता होती जाती है और उत्सर्पिणी काल में वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श की दृष्टि से प्रतिपल-प्रतिक्रम उत्कर्ष होता है। अवसर्पिणी काल के छह आरे इस प्रकार हैं—१. सुषमा-सुपम, २. सुपम ३. सुपमा-दुपम ४. दुपमा-सुपम ५. दुपम ६. दुपमा-दुपम। उत्सर्पिणी में उन्हीं का व्युत्क्रम होता है।

अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे में सुख का साम्राज्य होता है। इस काल के मानव का शरीर वज्ररूपभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान युक्त होता है। वे सामाजिक, राजकीय और आर्थिक बन्धनों से मुक्त होते हैं। वे स्वयं अपने आप के राजा होते हैं और उन्हें किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं होती है। वे दिव्य रूप-सम्पन्न, सौम्य, मृदुभाषी, अल्पपरिग्रही, शान्त, सरल, क्रोध-मान-मद, मोह, मात्सर्य आदि दुर्गुणों की अल्पता वाले हैं। उस समय घोड़े-गधे, बैल आदि विविध प्रकार के पशु होने पर भी वे उनका उपयोग नहीं करते हैं।

उन मानवों के शरीर में से कमल के समान और कस्तूरी के समान सुगन्ध आती है। वे उत्कट साहस के धनी तथा सहज शान्त स्वभाव वाले होते हैं। छह मास अवशेष रहने पर युगलिनी पुत्र और पुत्री युगल को जन्म देती, उन-पचासवें (४६) दिन तक प्रतिपालना करने के पश्चात् छीक और उबासी आने पर युगल-दम्पति सदा के लिए आँखें मूँद लेते हैं।

द्वितीय आरे में प्रथम आरक की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श में अनन्त गुनी हीनता हो जाती है। मानव की आयु तीन पल्योपम से कम होकर इस आरक में दो पल्योपम की रह जाती है। पुत्र-पुत्री का पालन (६४) चौंसठ दिन तक करने के पश्चात् युगल दम्पति का देहावसान हो जाता है।

तृतीय आरे में द्वितीय आरे की अपेक्षा अनन्त गुनी पूर्वापेक्षा अपकर्षता हो जाती है। प्रथम आरक में जहाँ मानव की ऊँचाई तीन कोस की थी, वहाँ दूसरे आरे में दो गाउ (कोस) की तो तृतीय आरे में दो हजार धनुष की ऊँचाई रह जाती है। मृत्यु के पूर्व छह मास अवशेष रहने पर एक युगल को जन्म देते हैं और उस युगल का वे उन्यासी (७६) दिन तक पालन-पोषण करते हैं। यह समय भोगभूमि के रूप में विश्रुत है। तीसरे आरे के प्रथम और मध्य विभाग तक यह स्थिति चलती है। उन सभी में किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होता।

तृतीय आरे के एक पल्योपम का आठवाँ भाग अवशेष रहता है, उस समय भरतक्षेत्र में कुलकर पैदा होते हैं।

पउमचरियं,^९ महापुराण,^{१०} हरिवंशपुराण^{११} और सिद्धान्त संग्रह^{१२} में चौदह कुलकरों के नाम मिलते हैं। वे ये हैं—

१. समवायांग, १५७. २. स्थानांग, ७६७.

३. भगवती, ५/६/३. ४. आवश्यकनिर्युक्ति, मलयगिरी वृत्ति, १५२/१५४.

५. आवश्यकचूर्ण, १२६. ६. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १/२/१४२-२०६.

७. वसुदेवहिण्डी, नीलयशा लम्भक खण्ड—संघदास गणिविरचित ८. भरतेश्वर वाहुवली वृत्ति

९. पउमचरियं—३/५०-५५.

१०. आद्यः प्रतिश्रुतिः प्रोक्तः, द्वितीयः सन्मतिर्मतः। तृतीयः क्षेमकृन्नाम्ना, चतुर्थः क्षेमधृन्मनुः ॥

सीमकृत्यंचमो ज्ञेयः, षष्ठः सीमधृदिष्यते। ततो विमलवाहांकश्, चक्षुष्मानष्टमो मतः ॥

यशस्वान्नवमस्तस्मान्, नाभिचन्द्रोऽप्यनन्तरः। चन्द्राभोऽस्मात्परं ज्ञेयो, मरुदेवस्ततः परम् ॥

प्रसेनजित्परं तस्मान्नाभिराजश्चतुदर्शः ॥

—महापुराण, जिनसेनाचार्य; १/३/२२६-२३२, पृ० ६६

११. हरिवंशपुराण में महापुराण की तरह ही चौदह कुलकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। —हरिवंशपुराण, सर्ग ७, श्लोक १२४-१७०

१२. सिद्धान्त संग्रह, पृष्ठ १८.

पउमचरियं में :—१. मृमति २. प्रतिश्रुति ३. सीमङ्कर ४. सीमन्धर ५. क्षेमंकर ६. क्षेमंधर ७. विमलवाहन ८. यधुमान् ९. यशस्वी १०. अभिचन्द्र ११. चन्द्राभ १२. प्रसेनजित् १३. मरुदेव १४. नाभि । आचार्य जिनमेन ने संख्या की दृष्टि में चौदह कुलकर माने हैं, किन्तु पहले प्रतिश्रुत, दूसरे सन्मति, तीसरे क्षेमकृत, चौथे क्षेमंधर, पांचवें सीमंकर और छठे सीमन्धर इस प्रकार कुछ व्युत्क्रम ने संख्या दी है । विमलवाहन के आगे के दोनों ग्रन्थों में (पउमचरियं और महापुराण) नाम समान मिलते हैं । जम्बूद्वीप प्रजपति^१ में इन चौदह नामों के साथ ऋषभ को जोड़ कर पन्द्रह कुलकर बताये हैं । इस तरह अपेक्षा दृष्टि में कुलकरों की संख्या में मनभेद हुआ है । चौदह कुलकरों में पहले के छह और ग्यारहवाँ चन्द्राभ के अतिरिक्त सात कुलकरों के नाम समान आदि के अनुसार ही हैं । जिन ग्रन्थों में छह कुलकरों के नाम नहीं दिये गये हैं, उसके पीछे हमारी दृष्टि से ये केवल पश्च-प्रदर्शक ही होते, उन्होंने दण्ड-व्यवस्था का निर्माण नहीं किया था, इसलिए उन्हें गौण मान कर केवल सात ही कुलकरों का उल्लेख किया गया है ।

भगवान् ऋषभदेव प्रथम सम्राट हुए, और उन्होंने वींगलिक स्थिति को समाप्त कर कर्म-भूमि का प्राप्ति किया था । इसलिए उन्हें कुलकर न माना हो । जम्बूद्वीपप्रजपति में उन्हें कुलकर लिखा है । सम्भव है, मानव समूह के अर्थ में कुलकर शब्द व्यवहृत हुआ हो । कितने ही आचार्य इस संख्या भेद को वाचनाभेद मानते हैं ।^२

कुलकर के स्थान पर वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में मनु का उल्लेख हुआ है । आदिपुराण^३ और महापुराण^४ में कुलकरों के स्थान पर मनु शब्द आया है । स्वानांग आदि की भांति मनुस्मृति^५ में भी सात महतीजस्वी मनुओं का उल्लेख है । उनके नाम इस प्रकार हैं—१. स्वयंभू २. स्वारोचिप् ३. उत्तम ४. तामस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ।

अन्य चौदह मनुओं के भी नाम प्राप्त होते हैं ।^६ वे इस प्रकार हैं—१. स्वायम्भुव २. स्वारोचिप ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. देवसावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि ।

मत्स्य पुराण,^७ मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत् और विष्णुपुराण प्रभृति ग्रन्थों में भी स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओं के नाम प्राप्त हैं । वे इस प्रकार हैं :—

१. स्वायंभुव २. स्वारोचिप ३. औत्तमि ४. तापस ५. रैवत ६. चाक्षुष ७. वैवस्वत ८. सावर्णि ९. रोच्य १०. भोत्य ११. मेरुसावर्णि १२. ऋभु १३. ऋतुधामा १४. विश्वक्सेन ।

मार्कण्डेय^८ पुराण में वैवस्वत के पश्चात् पांचवाँ सावर्णि, रोच्य और भोत्य आदि नाम मनु और माने हैं ।

श्रीमद्भागवत^९ में उपर्युक्त सात नाम वे ही हैं, आठवें नाम से आगे के नाम पृथक् हैं । वे इस प्रकार हैं :— ८. सावर्णि ९. दक्षसावर्णि १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि १३. देवसावर्णि १४. इन्द्रसावर्णि ।

मनु को मानव जाति का पिता व पश्च-प्रदर्शक व्यक्ति माना है । पुराणों के अनुसार मनु ही मानव जाति का गुरु तथा प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित रहता है । वह जाति के कर्तव्य का ज्ञान था । ये मनवगीत और वेदादी-गणना

१. जम्बूद्वीपप्रजपति, व० २, सूत्र २६.

२. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृष्ठ १२०.

३. आदिपुराण, ३/१५.

४. महापुराण, ३/२२६. पृष्ठ ६६.

५. स्वायम्भुवस्वस्य भर्ता. पद्मस्य भवकीर्णरे । मृष्टकतः प्रथाः सताः सता, महाभाती नो विवतः ।

स्वारोचिपश्चोत्तमस्य, तामसो रैवतस्ततः । चाक्षुषश्च मरुतेजा, विश्वरभुवः पुरः पुरः ।

स्वायम्भुवस्यः कर्तारः, मनसो कुरितैजकः । रवेः स्वर्कारे नवीनस्तुवाः प्राणुः पश्च-प्रदर्शकः ।

—मनुस्मृति १/१००

६. (क) मनुस्मृति-वैवस्वतः पश्च-प्रदर्शकः । (ख) मनुस्मृति १/१००.

७. मत्स्य पुराण, अध्याय २ में २१.

८. मार्कण्डेय पुराण

९. श्रीमद्भागवत २. ४. ५

रहे हैं। वह व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, किन्तु उपाधि वाचक हैं। यों मनु शब्द का प्रयोग ऋग्वेद,^१ अथर्ववेद,^२ तैत्तिरीय^३ संहिता, शतपथ^४ ब्राह्मण, जैमिनीय^५ उपनिषद् में हुआ है, वहाँ मनु को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। भगवद्गीता^६ में भी मनुओं का उल्लेख है।

चतुर्दश मनुओं का काल-प्रमाण सहस्र युग माना गया है।^७

आगम-साहित्य में जहाँ कुलकरों के नामों का निर्देश है, वहाँ उनके व्याख्या-साहित्य में और स्वतन्त्र ग्रन्थों में उस समय की परिस्थिति का भी चित्रण किया गया है। हम यहाँ अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही यनिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह यहाँ दे रहे हैं; जिससे जिज्ञासुओं को परिज्ञान हो सके।

सर्वप्रथम मानवों ने अनन्त आकाश में जब चन्द्र और सूर्य को देखा तो भय से कांप उठे। वे सोचने लगे कि आपत्तियों की घनघोर घटाएँ मंडराने वाली हैं। उन भयभीत मानवों को 'प्रतिश्रुत' नामक प्रथम कुलकर ने आश्वस्त करते हुए कहा—ये चन्द्र और सूर्य नये उदित नहीं हुए हैं। ये तो प्रतिदिन इसी तरह से उदित और अस्त होते हैं किन्तु तेजांग जाति के अत्यन्त प्रकाशपूर्ण कल्पवृक्षों के कारण हम इन्हें देख नहीं पाते थे, अब तेजांग नामक कल्पवृक्षों का दिव्य आलोक मन्द हो रहा है, जिससे हमें चन्द्र और सूर्य दिखाई दे रहे हैं, अतः भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। जन-मानस के भय को नष्ट करने से वह कुलकर कहलाया।

प्रतिश्रुत कुलकर के देहावसान के पश्चात् तेजांग नाम के कल्पवृक्ष पूर्ण रूप से नष्ट हो गये थे जिससे गहन अन्धकार मंडराने लगा और अंधकार होने से आकाश-मण्डल में असंख्य तारे जगमगाते हुए दिखाई देने लगे। मानवों ने सर्वप्रथम ताराओं को देखा तो उनका हृदय भावी आशंका से कांप उठा। 'सन्मति' कुलकर ने उन मानवों को आश्वस्त करते हुए कहा—आप भयभीत न हों, तेजांग नामक कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से रात्रि में अन्धकार का साम्राज्य होने से तारा-मण्डल दिखाई दे रहा है। यह पहले भी था, पर प्रकाश के कारण दिखाई नहीं देता था। सन्मति के कहने से लोगों को डाढस बंधा और वह कुलकर के रूप में विश्रुत हुआ।

समय सरक रहा था और उसके प्रभाव से परिवर्तन आ रहा था। पहले भी जंगलों में व्याघ्र आदि पशुगण थे किन्तु उनमें क्रूरता नहीं थी, वे सौम्य स्वभाव के थे। पर समय ने उनमें भी क्रूरता पैदा की और वे मानवों को संवस्त करने लगे। क्षेमंकर ने मानवों को कहा—इन पशुओं का विश्वास न करो तथा समूह बनाकर रहो, जिससे वे तुम लोगों को कष्ट नहीं दे सकें। इसलिए वह तृतीय कुलकर के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

चतुर्थ कुलकर 'क्षेमंधर' ने जब पशु अधिक क्रूर बनकर मानव-समूह पर हमला करने लगे तो उसने कहा—पशुओं से बचने के लिए दण्ड आदि अपने पास रखो, जिससे वे सहसा आक्रमण न कर सकें। इसलिए वह कुलकर कहलाया।

पाँचवें कुलकर 'सीमंकर' के समय कल्पवृक्ष अल्प मात्रा में फल देने लगे, जिससे सभी मानवों की पूर्ति नहीं हो पाती थी। वे एक दूसरे के वृक्ष पर अपना स्वामित्व स्थापित करने का प्रयास करने लगे। सीमंकर ने कहा—यों संघर्ष करने से समाधान नहीं होगा। समाधान का सही तरीका यही है कि सीमा का निर्धारण करलो। सीमा निर्धारण करने से संघर्ष मिट गया और वह कुलकर के रूप में विश्रुत हुआ।

इन पाँचों कुलकरों ने भोग-युग के समाप्त होने तक और कर्म युग के आगमन की पूर्व सूचना देने के कारण अपने युग के मानवों को तदनुकूल जीवन बिताने की प्रेरणा दी, जो कोई भी व्यक्ति नीति का उल्लंघन करते तो ये 'हा तुमने यह काम किया' यह 'हाकार नीति' अपनाते, जिससे अपराधी पानी-पानी हो जाता। उसे अपनी भूल का परिज्ञान होता।

१. ऋग्वेद, १/८०, १६; ८/६३, १; १०. १००/५.

२. अथर्ववेद, १४/२, ४१.

३. तैत्तिरीय संहिता, १/५, १, ३; ७/५, १५, ३; ६/७, १; ३, ३, २, १; ५/४, १०, ५; ६/६, ६, १; का० सं० ८१५;

४. शतपथ ब्राह्मण, १/१, ४/१४

५. जैमिनीय उपनिषद्, ३/१५, २

६. भगवद्गीता, १०/६.

७. (क) भागवत, स्कन्ध ८, अध्याय १४.

(ख) हिन्दी विश्वकोष, १६वाँ भाग, पृ० ६४८ से ६५५.

८. तिलोयपण्णत्ति महाधिकार, गाथा ४२१-५०६.

जन-साधारण में क्रमशः धृष्टता बढ़ती जा रही थी। 'माकार नीति' असफल हो गई थी, इसलिए ग्यारहवें से चौदहवें कुलकर तक 'धिवकार' नीति का प्रचलन हुआ। इस नीति के अनुसार 'तुझे धिवकार है, ऐसा कार्य किया' इस प्रकार तिरस्कारसूचक शब्द को सुनकर वे मृत्युदण्ड से अधिक अपने आपको दण्डित समझते थे। इस युग में जघन्य अपराध के लिए खेद, मध्यम अपराध के लिए निषेध और उत्कृष्ट अपराध के लिए तिरस्कार मुख्य दण्ड था।

महापुराण में जिनसेन के लिखा है—ये चौदह ही कुलकर पूर्वभव में महाविदेह क्षेत्र में उच्च कुलीन महापुरुष थे। इनमें से कितने ही कुलकर जाति-स्मरण ज्ञान के धारक थे और कितने ही अवधिज्ञान के धारक थे। इसलिए उन्होंने अपने ज्ञान बल से उपर्युक्त कार्य करने का आदेश दिया।

अन्य कुलकरों में नाभिराय अधिक प्रतिभासम्पन्न थे। श्रीमद्भागवतकार ने उन्हें आदि मनु स्वायम्भुव के पुत्र प्रियव्रत और प्रियव्रत के आग्नीध्र तथा आग्नीध्र के नौ पुत्रों में ज्येष्ठ माना है।^१ नाभिराय ने अपने विशिष्ट ज्ञान से जो भी प्रश्न आये, उसका समाधान किया। वे जन-जन के त्राणकर्ता थे, इसलिए उन्हें क्षत्रिय कहा गया। आगे चलकर क्षत्रिय शब्द नाभि के अर्थ में ही रूढ़ हो गया। अमरकोशकार ने 'क्षत्रिये नाभिः' लिखा है।^२ अभिधान चिन्तामणि में भी आचार्य हेमचन्द्र ने 'नाभिश्च क्षत्रिये' लिखा है।^३ मेदिनीकोश में लिखा है कि चक्र के मध्य भाग में जैसे नाभि मुख्य है वैसे ही क्षत्रिय राजाओं में नाभि मुख्य थे।^४

आचार्य जिनसेन ने तो नाभि के गुणों का उत्कीर्तन करते हुए लिखा है—वे चन्द्र के सदृश अनेक कलाओं के आधार थे, सूर्य के समान तेजस्वी थे, इन्द्र के समान वैभवसम्पन्न थे और कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित फल प्रदान करने वाले थे।^५ अरवी में एक शब्द 'नवी' है, जिसका अर्थ है—'ईश्वर का दूत', 'पैगम्बर' और 'रसूल'।^६ यह शब्द संस्कृत में नाभि और प्राकृत में 'णाभि' का रूपान्तर है। वे अपने तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण ईश्वर के दूत के रूप में जनता के आदर-पात्र बने थे।

नाभि का अपर नाम 'अजनाभ' भी मिलता है, उन्हीं के नाम के आधार पर आर्यखण्ड को 'नाभिखण्ड' या 'अजनाभ वर्ष' कहा है। स्कन्दपुराण में 'हिमाद्रि जलधेरन्तर्नाभि-खण्डमिति स्मृतम्' पद धाया है।^७ डा० अवध विहारीलाल अवस्थी ने लिखा है—जम्बूद्वीप के नौ वर्षों में से हिमालय और समुद्र के बीच में स्थित भूखण्ड को आग्नीध्र के पुत्र नाभि के नाम पर ही नाभि खण्ड कहा गया है।^८ नाभि का अपर नाम अजनाभ था, जिससे इस खण्ड का नाम 'अजनाभ वर्ष' हुआ। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—'स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के पुत्र नाभि, नाभि के पुत्र ऋषभ और ऋषभदेव सौ पुत्र हुए, जिनमें भरत ज्येष्ठ थे। यही नाभि अजनाभ भी कहलाते थे जो अत्यन्त प्रतापी थे और जिनके नाम पर यह देश 'अजनाभ वर्ष' कहलाता था।^९ श्रीमद्भागवत में लिखा है 'अजनाभ वर्ष ही आगे चलकर "भारतवर्ष" इस संज्ञा से अभिहित हुआ।'^{१०}

जैन आगमों में अतीत उत्सर्पिणी और अतीत अवसर्पिणी के कुलकरों का उल्लेख हुआ है। स्थानांग में अतीत उत्सर्पिणी के दश कुलकर बताये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :—१. स्वयंजल २. शतायु ३. अनन्तसेन ४. अमितसेन ५. तर्कसेन ६. भीमसेन ७. महाभीमसेन ८. दृढरथ ९. दशरथ १०. शतरथ। जबकि समवायांग में अतीत उत्सर्पिणी के केवल सात ही कुलकर गिनाये हैं,

१. प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिः ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥
—भागवतपुराण, ११/२/१५,
२. अमरकोष, ३/५/२०.
३. अभिधान चिन्तामणि, १/३६.
४. नाभिर्मुख्य नृपे चक्रमध्यक्षत्रियोरपि ।
—मेदिनी कोष भ० वर्ग ५.
५. शशीव स कलाधारः तेजस्वी भानुमानिव ।
प्रभु शक्र इवाभीष्टफलदः कल्पशाखिवत् ॥
—महापुराण, १२/११.
६. 'उर्दू-हिन्दी कोश' सम्पादक—रामचन्द्र वर्मा, प्रका० हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, चतुर्थ संस्करण, अगस्त १९५३,
पृ० २२४.
७. स्कन्दपुराण—१/२/३७-५५.
८. प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, प्रका० कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, सन् १९६४, पृ० १२३, परिशिष्ट—२.
९. नाकण्डेय पुराण : सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पाद टिप्पण सं० १, पृ० १३८.
१०. अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत् आरन्य व्यपदिशन्ति ।
—श्रीमद्भागवत, ५/७/३.

जो इन प्रकार हैं—१. मित्रदाता २. नुदाता ३. नुपाज्व ४. स्वयंप्रभ ५. विनतधोप ६. मुधोप और ७. मदापोप । मैत्री की गणना के कुलकरों के नामों में विलकुल ही भेद है ।

समवायांग में अतीत अवर्तपिणी के दस कुलकरों के नाम इन प्रकार बताये हैं :—

१. स्वयंजन २. गतायु ३. अजितमेत ४. अनन्तमेत ५. कार्यमेत ६. भीममेत ७. महाभीममेत ८. रुरथ ९. इशरथ और १०. शतरथ । इन नामों के साथ यदि हम 'अजितमेत' और 'कार्यमेत' ये दो नाम हटा दें तो अन्य सभी नाम एक सङ्ग हैं । हमारी दृष्टि ने स्थानांग में उत्तपिणी के स्थान पर अवर्तपिणी पाठ होता तो अधिक उपयुक्त था । क्योंकि स्थानांग में मानव स्थान में उत्तपिणी के गान कुम्भर बताये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. मित्रवाहन २. मुसुम ३. मुप्रभ ४. स्वयंप्रभ ५. शत ६. मुधुम ७. मुवन्धु । ये दस कुलकरों के जो नाम पहले बताये गये हैं, उनसे पृथक् हैं । और यही नामों नाम समवायांग में भी मिलते हैं । इसलिए ये नाम अतीत अवर्तपिणी के गिनने चाहिए । समवायांग के साथ जो दो नामों में भेद है वह हमारी दृष्टि में यथार्थ भेद हो सकता है ।

कल्पवृक्ष : एक अनुचिन्तन

प्रस्तुत विभाग में मात प्रकार से वृक्षों का भी उल्लेख है । मानव का वृक्षों के साथ अत्यन्त सधुन सम्बन्ध रहा है, उसकी मारी अपेक्षाएँ वृक्षों ने पूर्ण होती थीं, इसलिए वह खाद तथा पानी आदि में उनका संतोषण भी करना रहा है । और कुल्लुक कालिदास ने 'प्रभिज्ञान शाकुन्तल' में शाकुन्तला का वृक्षों पर सहोदर की भाँति स्नेह बताया है ।

योगिक युग में मानव की इच्छाएँ अल्प थी । उसकी भूय-स्थान का शमन, वस्त्र-पान, मत्तान आदि सभी ही पूर्ण वृक्षां में होती थी । उन वृक्षां को जैन आगम साहित्य में 'कल्पवृक्ष' कहा गया है । यों कल्प शब्द जने-सर्जक है । नामर्थ, संस्था, छेदन करना, औपम्य और अधिमान प्रभृति विविध अर्थ कल्प शब्द के हैं, पर यहाँ समर्थ अर्थ में प्रयोग उचित लगता है । जो वृक्ष विविध प्रकार के फल प्रदान करने में समर्थ हों, वह 'कल्पवृक्ष' हैं । नालन्दा हिन्दी शब्दकोश में स्वर्ण के वृक्ष का नाम 'कल्पकल्प' लिखा है । यह सम्भव है, वह कल्पवृक्ष हो । वह वृक्ष देवलोक का वृक्ष माना गया है । कल्पना के अनुसार फल प्रदान करने के कारण यह वृक्ष 'कल्पवृक्ष' के नाम से विश्रुत है ।

कितने ही लोगों ने यह धर्म है कि एक ही प्रकार का वृक्ष सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, दिन-रात की जिन वस्तु की आवश्यकता होती वह उस वृक्ष के नीचे पहुँच जाता और इच्छित वस्तु प्राप्य कर आनन्दित होता । यद्यपि ये पिशाचों का घर भी अभिमत है कि इन वृक्षां के अधिष्ठाता देव विनोद थे, जो उनकी उच्छ्रात्रों की पूर्ति करते थे, पर यह सच सच भी मुक्तिमुक्त नहीं है । क्योंकि स्थानांग में स्वर्ण के मातये स्थान में मान प्रकार के वस्तुओं का इच्छित रूप में स्थानांग के स्थाने स्थान में दस प्रकार के कल्पवृक्षां का वर्णन है । समवायांग और प्रवर्तपिणीस्थान में भी दस प्रकार के कल्पवृक्ष बताये हैं । ये सभी वृक्ष अपनी-अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति करते थे । हमने यह स्पष्ट है कि सभी वृक्षां का अपना-अपना स्वतंत्र स्थान था और उन सीमा तक अपना कार्य करते थे ।

स्थानांग में जो सात प्रकार के कल्पवृक्ष बताये गये हैं, वे 'विमलमान' कुम्भर के नाम से हैं । उन वृक्षां में एक खोजीपक और बुद्धिमान वृक्षों के नाम नहीं आये हैं । सम्भव है, उन समय का इस क्षेत्र में बाघ और शेर का दबका वृक्ष का अभाव होगा । जोवाचिधर्म सूत्र में वे कल्पवृक्ष खोजीपक वृक्ष में बताये हैं । उन दस प्रकार के कल्पवृक्षों का नाम इस प्रकार है :—

- [१] मत्तांगक—स्वादु पेय की पूर्ति करने वाले ।
- [२] भृत्तांग—अनेक प्रकार के भाजनों की पूर्ति करने वाले
- [३] तूर्यांग—वाद्यों की पूर्ति करने वाले ।
- [४] दीपांग—सूर्य के अभाव में दीपक के समान प्रकाश देने वाले ।
- [५] ज्योतिरंग—सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाश देने वाले ।
- [६] चित्रांग—विचित्र पुष्प [माला] देने वाले ।
- [७] चित्र रसांग—विविध प्रकार के भोजन देने वाले ।
- [८] मण्यंग—मणि, रत्न आदि आभूषण देने वाले ।
- [९] गृहाकार—घर के समान स्थान देने वाले ।
- [१०] अनग्न—वस्त्रादि की पूर्ति करने वाले ।

ये कल्पवृक्ष मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । 'मत्तांगक' वृक्ष से चन्द्रप्रभा, मनःशीला, सिन्धुवारुणी आदि विशेष प्रकार के पौष्टिक पदार्थों से युक्त वह पेय उत्पन्न होता था, जिसे पीकर यौगलिकों में अभिनव स्फूर्ति का संचार होता था । समय पर उनसे स्वतः स्राव होता था । जिससे यौगलिक पूर्ण स्वस्थ रहते थे । वे वृक्ष उस समय सहज रूप में पैदा होते थे । उनका निर्माता कोई ईश्वर आदि नहीं था, वे वृक्ष स्वतः ही समय पर पकते थे और समय पर ही उनमें से स्वतः स्राव झरने लगता, उसका उपयोग कर मानव पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त करते थे ।^१

'भृत्तांग' नामक वृक्ष से सहज रूप में उन्हें पात्र मिल जाते थे । आज जिस प्रकार के पात्रों का प्रचलन है, उस प्रकार के पात्र यौगलिक काल में नहीं थे । भृत्तांग नामक वृक्ष के पत्र और शाखायें वर्तनाकार होती थीं अथवा उनके पत्रों को सहज रूप से पात्र का आकार दिया जा सकता था । जीवाभिगम^२ सूत्र में उल्लेख है कि वे वृक्ष घट, कलश, करकरी (भाजन पीतल का), पादकांचनिका (पैरों को प्रक्षालन करने वाली स्वर्ण पात्री), उदक (पानी लेने का पात्र), भृंगार (लोटा), सरक (बाँस का पात्र) तथा मणिरत्नों की रेखाओं से खचित तथा विविध प्रकार के पत्र और फूलों के रूप में पात्र प्रदान करते थे ।

जब मानव कार्य करते हुए थक जाता है, तब वह मनोरंजन की सामग्री जुटाता है । नृत्य, वाद्य आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन हैं । प्रागैतिहासिक काल में मनोरंजन के लिए वादित्र का मुख्य स्थान रहा है, वे वादित्र कृत्रिम नहीं किन्तु स्वतः निर्मित थे । उन वादित्रों में मृदंग, पणव, दर्दरक, करटी, डिमडिम, ढक्का, मूरज, शंखिका, विपंची, महत्ती, तलताल, कंसताल, प्रभृति वाद्य मुख्य थे । 'तूर्यांग' नामक वृक्ष समूह से स्वतः ही तत, वितत, घन, सुषिर प्रभृति विविध प्रकार के स्वर प्रस्फुटित होते थे । यौगलिक मानव इन वृक्षों से मनोरंजन करता था ।

प्राचीन युग में जब विद्युत शक्ति का विकास नहीं हुआ था, तब मशालों से या दीपकों से मानव अन्धकार में ज्योति प्राप्त करता था । यौगलिक काल में अग्नि का अभाव था । इसलिए उस समय वृक्षों से ही निर्मल प्रकाश प्राप्त होता था ।^३ वे वृक्ष निर्धूम अग्नि की तरह चमकते थे । उन वृक्षों का प्रकाश सुवर्ण, केसुक, अशोक और जपा वृक्षों के विकसित फूलों की तरह और मणि रत्नों के किरणों की भाँति दैदीप्यमान था । वह जात्य हिंगुल के रंग के सदृश्य सुन्दर 'ज्योतिष्क' नामक वृक्षों का समूह कहलाता था । अग्नि की तरह प्रकाशमान होने से अन्धकार का अभाव रहता था । शीतकाल में भी वे वृक्ष यौगलिक मानवों को शान्ति प्रदान करते थे । वे वृक्ष 'दीपांग' और 'ज्योतिरंग' के रूप में विश्रुत थे ।

यौगलिक काल के मानव कृत्रिम कलाओं से परिचित नहीं थे । पर उस समय कुछ वृक्ष ऐसे थे जो चित्रमय थे । वे चित्र बड़े ही दर्शनीय, रम्य और विविध वर्ण वाले थे । वे वृक्ष 'चित्रांग' के नाम से जाने जाते थे ।^४

१. देखिए—(क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूत्र २० पृ० ६६

(ख) पन्नवणा ३६४

२. घड कलस कडग कक्करी.....

—जीवाभि० पा० ३४७

३. जहा से.....अइरुगय सरय सूर मण्डल.....

—जीवा० पा० ३४८.

४. जहा से पेच्छा घरे विचित्ते.....

—जीवा० पा० ३४८.

मंनार का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो आहार के अभाव में दीर्घकाल तक जीवित रह सके। आहार ही उस की अविद्यार्थ आवश्यकता है। यौगनिक काल में मानव आजकल की तरह भोजन का निर्माण नहीं करता था। उस युग में ऊपर उल्लेख नामक ऐसे वृक्ष थे, जिन पर विविध प्रकार के फल लगते थे। जैसे—'बकवर्ती' नाटक के विष्णु मुनिप्रदा और राम नामक मानव जातियों ने भीर बनाते थे, विविध पदार्थों से मोदक तैयार करते थे, उन्में खाकर प्रत्येक व्यक्ति तृप्ति का अनुभव करता है, ये भी अठारह प्रकार के विविध भोजन गुणों से युक्त थे फल मानव को पूर्ण तृप्ति प्रदान करते थे।

अनुगन्धिधनुषों का यह मन्तव्य है कि आधुनिक युग में भी अमेरिका में ऐसे वृक्ष हैं जो 'मिन्क ट्री', 'रीड ट्री' और 'लाइट ट्री' आदि नामों से पुकारे जाते हैं। इन वृक्षों के फल, दूध, रोटी और प्रकाश से व्यक्ति लाभान्वित होते हैं।

यौगनिक काल के मानवों का जीवन प्रकृति पर अवलम्बित था। आज के युग में मोने, चाँदी, त्रि-रत्न आदि बहुसुख रत्नों से विविध प्रकार के आभूषण बनते हैं, पर उन युग में मानव वृक्षों के ही फल-फलों से तथा फूलों से आभूषण तैयार करता था। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक में शकुन्तला के आभूषणों का उल्लेख है। ऋषि कश्यप ने आभूषणों की तान का आदेश शोचनी को दिया। शोचनी जब आभूषण लेकर उपस्थित हुई तो उन्होंने पूछा—कहाँ से लार्ड ट्री ? उगने उत्तर दिया—मेरे से विविध वृक्ष से प्राप्त किये हैं। 'मण्यंग' नामक वृक्ष से विविध प्रकार के हार, अर्द्धहार, मुकुट, कुम्भक, मूत्र, गुलाबनी, बुधमणि, विषक, कनकपर्णी, हृन्मभावक, कैपूर, बलय, अंगूठी, मेघना, पण्डिका, नूपुर, आदि विविध प्रकार के आभूषण प्राप्त होते थे। अतएव उन वृक्षों के फूल और फलों से सहज रूप से आभूषण बन जाते होंगे, उन आभूषणों की कान्ति रत्नों, मणि और रत्नों से भी अधिक थी।

यौगनिक काल में मानव समूह के रूप में नहीं रहता था। न उन्हें परिवार की चिन्ता थी और न समाज की। वे वृक्ष युक्त स्थान में पैदा होते और युवक रूप में जीवन की माध्या केला तक साथ रहते पर उनके पास मर्यादा निर्माण की आवश्यकता नहीं थी। वे 'गूदाहार' वृक्षों से कारण धूप, छाया आदि से बचे रहते थे, वे वृक्ष भव्य भवनों का कार्य करते थे। वे अशुद्धि, अशुद्धि, प्राणाद, एष्यमान, डिमान, अनुमान, गर्भगूट, मोहन गूट, बल्लभी गूट, आपण, निगूट, अवपरक, अन्धगादी आदि विविध प्रकार के मकान भी तरह-तरह निमित्त हो जाते थे। उन मकानों में ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ भी लीनी थी और शत्रु भी होते थे।

कल्पवृक्षों को ही इस्लाम धर्म में 'तोवे' कहा गया है और क्रिश्चियन धर्म में उसे 'स्वर्ग' का वृक्ष' माना है।^१ पैर देश में आज भी ऐसे वृक्ष हैं जो हवा में से पानी तत्त्व को खींचते रहते हैं, और गर्मी के दिनों में उन वृक्षों में से स्वतः पानी झरने लगता है। कितने ही वृक्षों के फूल आज भी लोग आभूषणों के रूप में धारण करते हैं, कितने ही फल भूख और प्यास को शांत करते हैं, कितने ही वृक्षों की छाल आज भी वस्त्र के रूप में उपयोग की जाती है। इस तरह वृक्ष मानवों के लिए सदा उपयोगी रहा है। कल्पवृक्ष कोई काल्पनिक वृक्ष नहीं था, क्योंकि आज वे वृक्ष नहीं हैं परं कुछ उनकी तुलना वाले वृक्ष आज भी हैं। इससे यह अनुमान हो सकता है कि किसी युग में इस प्रकार के वृक्ष रहे होंगे।

भगवान् ऋषभदेव

भगवान् ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। जिनकी गौरव गाथाओं का उल्लेख जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में गाया गया है। वे विश्व-वन्द्य महापुरुष थे। यहाँ पर प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके जीवन के कुछ त्यों पर प्रकाश डाला है।

भगवान् ऋषभ को कुलकर भी माना है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में वे पन्द्रहवें कुलकर हैं और प्रथम तीर्थंकर हैं। प्रथम राजा, प्रथम केवली और प्रथम धर्म चक्रवर्ती हैं, इसलिए उनकी जीवन गाथा यहाँ सर्वप्रथम दी जा रही है।^२

तीर्थंकरों का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य कल्याणक है। कल्पसूत्र में पाँच कल्याण माने गये हैं, अतः सर्वप्रथम कल्याणकों का उल्लेख है। जन्मोत्सव मनाने के लिए छप्पन महत्तरिका दिशाकुमारियाँ और चौंसठ इन्द्र आते हैं। सबसे पहले अधोलोक में अवस्थित "भोगंकरा" आठ दिशाकुमारियाँ सपरिवार आकर मरुदेवी को नमन कर निवेदन करती हैं—हम जन्मोत्सव मनाने आई हैं। आप भयभीत न वनें। धूल और दुरभिगंध आदि को दूर कर एक योजन तक का समस्त वातावरण परम सुगन्धमय बनाती हैं तथा गीत गाती हुई मरुदेवी के चारों ओर खड़ी हो जाती हैं।

उसके पश्चात् ऊर्ध्वलोक में रहने वाली 'मेघंकरा' आदि दिक्कुमारियाँ सुगन्धित जल की वृष्टि करती हैं और दिव्य धूप से एक योजन के परिमण्डल को देवों के आगमन योग्य बना देती हैं। मंगल गीत गाती हुई मरुदेवी के सन्निकट खड़ी हो गईं। उसके बाद रूचक कूट पर रहने वाली नन्दुतरा आदि दिक्कुमारियाँ हाथों में दर्पण लिए आती हैं, दक्षिण के रूचक पर्वत पर रहने वाली "समाहारा" आदि दिक्कुमारियाँ अपने हाथों में झारियाँ लिए हुए, पश्चिम दिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली "इला देवी" आदि दिक्कुमारियाँ पंखे लिए हुए, उत्तर रूचक पर्वत पर रहने वाली "अलम्बुपा" आदि दिक्कुमारियाँ चामर लिए हुए मंगल गीत गाती हुई मरुदेवी के सामने खड़ी हो गईं। विदिशा के रूचक पर्वत पर रहने वाली चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सुदामिनी चारों दिशाओं में प्रज्वलित दीपक लिए हुए खड़ी होती हैं। उसी प्रकार मध्य रूचक पर्वत पर रहने वाली, रूपा, रूपांशा, सुरुपा और रूपकावती ये चारों महत्तरिका दिशाकुमारियाँ नाभि-नाल को काटती हैं और उसे गड्ढे में गाड़ देती हैं। रत्नों से उस गड्ढे को भरकर उस पर पीठिका निर्माण करती हैं। पूर्व, उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशाओं में तीन कदली-घर और उसमें एक-एक चतुःसाल और उसके मध्य भाग में सिंहासन बनाती हैं। मध्य रूचक पर्वत पर रहने वाली "रूपा" आदि दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशा के कदली गृह में माता मरुदेवी को ऋषभ के साथ सिंहासन पर लाकर बिठाती हैं। शतपाक, सहस्रपाक तैल का मर्दन करती हैं और सुगन्धित द्रव्यों से पीठी करती हैं। वहाँ से वे उन्हें पूर्व दिशा के कदली गृह में ले जाती हैं। गंधोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदक से स्नान कराती हैं। वहाँ से उत्तर दिशा के कदली गृह के सिंहासन पर बिठाकर गोशीर्ष चन्दन से हवन और भूतिकर्म निष्पन्न कर रक्षा पोटली बाँधती है और मणि रत्नों से कर्णमूल के पास शब्द करती हुई चिरायु होने का आशीर्वाद देती हैं। वहाँ से माता मरुदेवी के साथ भगवान् ऋषभ को जन्म-गृह में लाती हैं और शय्या पर बिठा कर मंगल गीत गाती हैं।

उसके पश्चात् आभियोगिक देवों के साथ सौधर्मन्द्र आता है और माता मरुदेवी को नमस्कार कर उन्हें अवस्वापिनी निद्रा देता है। ऋषभ का दूसरा रूप बनाकर माता के पास रखता है तथा स्वयं वैक्रिय शक्ति से अपने पाँच रूप बनाता है। एक रूप से भगवान् ऋषभ को उठाता है, दूसरे रूप से छत्र धारण करता है और दो रूप इधर-उधर दोनों पार्श्व में चामर बीजते हैं

१. भरतमुक्ति : एक अध्ययन, ले० महेन्द्र मुनि, पृष्ठ ४.

२. उसह-चरियं, धम्मकहाणुओगे, पढम खंधे

तीन गव्युति, एक योजन की दूरी पर थे। ये सात एक ही समय पैदा हुए। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व को लेकर कपिल-वस्तु नगर में आये।^१

कालदेवल तपस्वी जो आठ समाधि से सम्पन्न थे, वे भोजनादि से निवृत्त होकर मनोविनोदार्थ त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहाँ विश्रान्ति लेते हुए देवगणों से उसने पूछा—आप सन्तुष्ट होकर क्रीड़ा किस तरह से कर रहे हैं? हमें भी इसका रहस्य बतायें। देवों ने कहा—राजा शुद्धोदन के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह धर्मचक्र प्रवर्तन करेगा उसकी अनन्त लीला देखने और सुनने का हमें अवसर मिलेगा। यही हमारी प्रसन्नता का मुख्य कारण है।

तपस्वी देवलोक से उतर कर राजमहल में पहुँचा। राजा को जाकर कहा कि मैं आपके पुत्र को देखना चाहता हूँ। राजा ने उसी क्षण पुत्र को अपने पास मँगवाया और पुत्र को तपस्वी के चरणों में लगाना चाहा पर बोधिसत्व के चरण इतने लम्बे हो गये कि तापस की जटा में जा लगे, क्योंकि बोधिसत्व किसी को भी नमस्कार नहीं करते। यदि वही चरण अनजान में लग जाता तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जाते। तथागत के दिव्य तेज को देखकर तापस उनके चरणों में गिर पड़ा। बोधिसत्व के चरण स्पर्श से उसे अस्सी कल्प की स्मृति हो आई। उसने बालक के शारीरिक लक्षणों को देखा, उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह अवश्य ही बुद्ध बनेगा और वह ज्ञान से यह सोचने लगा कि मैं यहाँ मरकर अरुण लोक में पैदा होऊँगा जिससे इनके दर्शन नहीं हो सकेंगे। इस तरह बोधिसत्व के जन्म की घटनाओं में भी अलौकिकता रही हुई है। यह अलौकिकता यह सिद्ध करती है कि ये घटनायें श्रद्धा के युग में लिखी हुई हैं। श्रद्धालु घटना-विशेष को तर्क की कसौटी पर नहीं कसता। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में भी श्रद्धा युग की अनेक घटनायें मिलती हैं।

ऋषभ कथा का विस्तार

भगवान् ऋषभदेव के जन्म, वंश, उत्पत्ति, विवाह, राज्याभिषेक और उनके एकसौ दो सन्तान आदि का उल्लेख जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में विस्तार से नहीं है। आवश्यकनियुक्ति,^२ आवश्यक चूर्णि,^३ आवश्यक हरिभद्रियावृत्ति,^४ आवश्यक मलयगिरी वृत्ति^५ चउपन्न महापुरिस चरियं,^६ त्रिपण्डितशलाका पुरुष चरित्र^७ आदि में विस्तार से घटनाओं के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि जीवन-प्रसंग धीरे-धीरे अधिक विकसित हुए हैं।

आवश्यकनियुक्ति^८ और आवश्यकचूर्णि^९ के अनुसार जब ऋषभदेव गर्भ में आये थे तब माता ने ऋषभ का स्वप्न देखा था और जन्म के पश्चात् शिशु के उरु स्थल पर ऋषभ का लांछन भी था, इसलिए उनका गुणनिष्पन्न नाम ऋषभ रखा। श्रीमद्भागवत् के अनुसार उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम आदि सद्गुणों के कारण नाभि ने उनका नाम ऋषभ रखा।^{१०} आचार्य जिनसेन^{११} ने ऋषभदेव के स्थान पर 'वृषभदेव' लिखा है। वृष कहते हैं श्रेष्ठ को, भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान थे, इसीलिए उन्हें 'वृषभ स्वामी' के नाम से पुकारा गया है। वे धर्म और कर्म के आद्य निर्माता थे, इसीलिए आदिनाथ के नाम से भी वे विश्रुत रहे हैं। आचार्य जिनसेन^{१२} और आचार्य समन्तभद्र^{१३} ने उनका एक गुणनिष्पन्न

१. देखिए—आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ० १५५ डा० मुनि नगराज जी

२. आवश्यकनियुक्ति, पूर्वभाग, प्रकाशक—श्री आगमोदय समिति, सन् १९२८

३. आवश्यकचूर्णि, ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वे० संस्था, रतलाम, सन् १९२८

४. आवश्यक हरिभद्रियावृत्ति, प्रथम विभाग, प्रकाशक—आगमोदय समिति

५. आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पूर्व भाग, प्रकाशक—आगमोदय समिति

६. चउपन्न महापुरिस चरियं—आचार्य शीलांक विरचित—वाराणसी

७. त्रिपण्डितशलाकापुरुष चरित्र—हेमचन्द्राचार्य, प्रका० आत्मानन्दसभा, भावनगर

८. आवश्यकनियुक्ति, १९२/१.

९. उरुमु उसभलंछणं उसभो सुमिणंमि तेण कारणेण उसभोत्ति णामं कयं।

—आवश्यकचूर्णि, पृ० १५१.

१०. श्रीमद्भागवत्, ५/४/२, प्र० खण्ड, गोरखपुर संस्करण ३, पृ० ५५६.

११. महापुराण, १४/१६०-१६१.

१२. महापुराण १६०/१३/३३३.

१३. प्रजापतिर्विः प्रथमं त्रिजीविपुः शशास कृष्यादिपुः कर्मसु प्रजाः।

प्रवृत्तस्त्वः पुनरद्भगतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदाम्बरः ॥

नाम 'प्रजापति' लिखा है। जब वे गर्भ में आये तब हिरण्य की वृष्टि हुई, इसलिए उनका एक नाम 'हिरण्यगर्भ'^१ भी है। इक्षुरस का पान करने के कारण वे 'काश्यप' भी कहलाये।^२ इसके अतिरिक्त वे विधाता, विश्वकर्मा, स्रष्टा आदि विविध नामों से भी पुकारे जाते हैं।^३

आवश्यकनिर्युक्ति में लिखा है कि जब भगवान् एक वर्ष से कुछ कम के थे तब पिता की गोद में बैठे हुए शक्रेन्द्र के हाथ से इक्षु लेकर खाने इच्छा व्यक्त की, तो शक्रेन्द्र ने उनके वंश को 'इक्ष्वाकुवंश' के नाम से अभिहित किया।^४ सर्वप्रथम इसी वंश की स्थापना हुई। आचार्य जिनसेन ने लिखा है—ऋषभदेव के समय इक्षु-दण्ड अपने आप पैदा होते थे किन्तु लोग उसका उपयोग करना नहीं जानते थे। ऋषभदेव ने रस निकालने की विधि बताई, इसलिए वे 'इक्ष्वाकु' कहलाए।^५

यौगलिक काल में भाई और भगिनी ही पति-पत्नी के रूप में परिवर्तित हो जाया करते थे। सुनन्दा के भ्राता की अकाल में मृत्यु हो जाने से नाभि ने ऋषभदेव सहजात सुमंगला और सुनन्दा का पाणिग्रहण ऋषभदेव के साथ करवाकर एक नई व्यवस्था स्थापित की।^६ आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—ऋषभदेव ने लोगों में विवाह-प्रवृत्ति चालू रखने के लिए विवाह किया।^७ आचार्य जिनसेन ने सुमंगला के स्थान पर 'नन्दा' का नाम दिया है। सुनन्दा ने बाहुवली और सुन्दरी को जन्म दिया और सुमंगला ने भरत, ब्राह्मी आदि निन्यानवें पुत्रों को जन्म दिया। पद्म पुराण में ऋषभदेव की 'यशस्वती' रानी से भरत का जन्म हुआ, ऐसा लिखा है।^८ श्वेताम्बर परम्परा में ऋषभदेव के सौ पुत्र तथा दो पुत्रियाँ, इस तरह एक सौ दो सन्तान मानी हैं तो दिग्म्बर परम्परा में एक सौ तीन सन्तान मानी हैं।^९

हम यह पूर्व ही बता चुके हैं कि यौगलिक काल में मानव स्वयं शासित था, उसमें किसी भी प्रकार की उच्छृंखलता नहीं थी और ज्यों ज्यों उच्छृंखलता बढ़ती गई, त्यों त्यों 'हाकार', 'माकार' और 'धिक्कार' नीति का विकास हुआ और वह धिक्कार नीति ऋषभदेव तक चलती रही। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभदेव को पन्द्रहवें कुलकर माना है साथ में प्रथम राजा के रूप में भी उल्लेख किया गया है।^{१०} नाभि कुलकर थे और उनकी उपस्थिति में ही वे राजा बने, इसीलिए ऋषभदेव ने कुलकर पद को ग्रहण नहीं किया होगा, यह स्पष्ट है क्योंकि एक समय एक ही स्थान पर दो कुलकर नहीं हो सकते। फिर यहाँ जो उल्लेख हुआ है, वह हमारी दृष्टि ने कुलकर की भांति कार्य करने से ऋषभदेव कुलकर कहलाये होंगे। वह संक्राति काल था। प्राचीन मर्यादायें विच्छिन्न हो रही थीं, यौगलिकों ने घबरा कर उस स्थिति पर नियंत्रण करने हेतु ऋषभदेव से प्रार्थना की।^{११} ऋषभदेव ने कहा—आप नाभि कुलकर से निवेदन करें, वे आपको राजा प्रदान करेंगे। जो इस सारी स्थिति को नियंत्रित कर सुव्यवस्था करेंगे। यौगलिकों की प्रार्थना पर नाभि कुलकर ने ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर राजा घोषित किया।^{१२}

१. महापुराण; पर्व १२/६५.

२. (क) कासं—उच्छ्र, तस्य विकारो कास्यः—रसः सो जस्त पाणं सो कासवो—उसभस्वामी।

—दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्ण

—महापुराण १६/२६६, पृ० ३७०.

(ख) काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्।

३. विधाता विश्वकर्मा च स्रष्टा चेत्यादिनामभिः। प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म, जगतां पतिमच्युतम्॥

—महापुराण १६/२६७/३७०.

४. (क) सक्को वंसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हन्ति इक्खागा।

—आवश्यकनिर्युक्ति, १८६.

(ख) आवश्यकचूर्ण—१५२.

५. आकानाच्च तदिक्षुणां रससंग्रहणे नृणाम्। इक्ष्वाकुरित्यभूद् देवो जगतामभिसम्मतः॥

—महापुराण १६/२६४.

६. आवश्यकनिर्युक्ति, १५१-१६३.

७. त्रिपष्टिशालाकापुरुष चरित्र, १/२/८८१.

८. हरिवंशपुराण, ६/१८.

९. पद्मपुराण—रविपेणाचार्य, २०/१०४.

१०. महापुराण, १६/३४६.

११. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सू० २६-३०.

१२. नीतीण अइक्कमणे निवेयणं उसभसामिस्स।

—आवश्यकनिर्युक्ति मलयगिरी, १६३.

१३. आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ १५३-१५४.

राज्य की सुव्यवस्था के लिए आरक्षक दल की स्थापना की, जिसके अधिकारी 'उग्र' कहलाये। मंत्रिमण्डल बनाया, जिसके अधिकारी 'भोग' के नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट के पास रहने वाले और परामर्श देने वाले 'राजन्य' कहलाये तथा अन्य कर्मचारी 'क्षत्रिय' के नाम से पहचाने गये।^१ दुष्टों के दमन तथा प्रजा व राज्य के संरक्षणार्थ चार प्रकार की सेना व 'सेनापतियों' की व्यवस्था की गई।^२ गज, अश्व, रथ, पादातिक, चतुर्विध सेना का संगठन किया। अपराधों के निरोध हेतु साम, दाम, दण्ड, और भेद नीति का प्रचलन किया। साथ ही चार प्रकार की दण्ड व्यवस्था भी बनाई।^३

१. परिभास—कुछ समय के लिए अपराधी को आक्रोशपूर्ण शब्दों में नजरबन्द रहने का दण्ड देना।

२. मण्डलबन्ध—सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड प्रदान करना।

३. चारक—बन्दीगृह में बन्द रहने का दण्ड देना।

४. छविच्छेद—कर आदि अंगों का छेदन करना।

आचार्य अभयदेव का अभिमत है—परिभास और मण्डलबन्ध ये दो नीतियाँ ऋषभदेव के समय चलीं तथा चारक और छविच्छेद ये दो नीतियाँ भरत के समय चलीं।^४ आचार्य भद्रबाहु^५ और आचार्य मलयगिरि^६ की दृष्टि से बन्ध, (वेड़ी का प्रयोग) घात, ये दो दण्ड ऋषभ के समय में प्रारम्भ हुए। मृत्युदण्ड का प्रारम्भ भरत के समय में हुआ। जिनसेन^७ आचार्य ने लिखा है—वध, बन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय में प्रचलित हुए।

ऋषभदेव के समय कल्पवृक्ष पूर्णतया नष्ट हो चुके थे। मानव स्वतः पैदा होने वाले, कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि का उपयोग करते थे। साथ ही चावल, गेहूँ, मूँग, चना आदि का भी उपयोग करते थे। पकाने के साधन के अभाव में अपक्व अन्न दुष्पाच्य हो गया तो वे लोग ऋषभदेव के पास पहुँचे। ऋषभ ने समस्या का समाधान करते हुए कहा—पहले छिलके उतार लें और फिर मल कर खायें। कुछ समय के बाद जब वह भी दुष्पाच्य हो गया तो पानी में भिगोकर मुट्ठी व बगल में रखकर खाने की सलाह दी, पर यह भी स्थाई समाधान नहीं था। ऋषभदेव जानते थे कि यह एकान्त स्निग्ध काल है, इस समय अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती। अग्नि की उत्पत्ति के लिए एकान्त स्निग्ध और एकान्त रूक्ष ये दोनों ही काल उपयुक्त नहीं हैं। समय द्रुत गति से आगे बढ़ रहा था। वृक्षों के परस्पर टकराने से अग्नि उत्पन्न हुई। मानवों ने जब अग्नि देखी तो रत्न राशि समझ कर उसे हाथ में लेना चाहा पर हाथ जल गये। उन्होंने ऋषभदेव से निवेदन किया कि कोई भूत जंगल में पैदा हुआ है, जो हमारे को कष्ट दे रहा है। ऋषभदेव ने कहा—स्निग्ध-रूक्ष काल आगया है, इसलिए अब तुम्हारी समस्या का स्थाई समाधान हो जायेगा। उन्होंने मिट्टी का पात्र बनाकर एवं अन्नादि पकाकर खाने की सलाह दी। यही कारण है कि अथर्ववेद के ऋषभसूक्त में ऋषभदेव के अन्य विशेषणों के साथ 'जातवेदस्' [अग्नि] के रूप में स्तुति की है।^८ वहाँ लिखा है—'रक्षा करने वाला, सभी को अपने भीतर रखने वाला, स्थिर स्वभावी, अन्नवान ऋषभ संसार के उदर का परिपोषण करता है। उस दाता ऋषभ को परम ऐश्वर्य के लिए विद्वानों के जाने योग्य मार्गों से बड़े ज्ञान वाला, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष प्राप्त करें।'

शिल्पों में सर्वप्रथम कुम्भकार का शिल्प प्रचलित हुआ। उसके पश्चात् भवन-निर्माण करने की कला सिखाई। मनोरंजन के लिए चित्र शिल्प का आविष्कार हुआ। वस्त्र निर्माण की शिक्षा दी। बाल, नाखून आदि की अभिवृद्धि से शरीर अभद्र प्रतीत

१. (क) आवश्यक निर्युक्तिमलयगिरी वृत्ति, १६८/१६५/१:

(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, १/२/६७४-६७६.

२. त्रिषष्टि० १/२/६२५-६३२.

३. आवश्यकचूर्णि—१५६.

४. स्थानांग वृत्ति—७/३/५५७.

५. निगडाइजमो वन्धोघातो दण्डादितालणया।

६. आवश्यकमलयगिरी वृत्ति—१६६/२०२.

७. शरीरदण्डनञ्चैव वधवन्धादिलक्षणम् । नृणां प्रवलदोषाणां भरतेन नियोजितम् ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २१७.

८. पुमानन्तर्वान्त्सविरः पयस्वान् वसोः कवन्धमृषभो विभति ।

तमिन्द्राय पविभिर्देवयानैर्दुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥

—महापुराण ३/२१६/६५.

—अथर्ववेद—६/४/३.

होने लगा तब नापित शिल्प का प्रशिक्षण दिया। इन पाँच मुख्य शिल्पों के बीस-बीस अवान्तर भेद हुए, इस तरह कुल सौ शिल्प विकसित हुए।

आचार्य जिनसेन ने ऋषभदेव के समय प्रचलित छह आजीविकाओं के साधनों का उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार से हैं :—

(१) असि—अर्थात् सैनिक वृत्ति (२) मषि—लिपि विद्या (३) कृषि—खेती का कार्य (४) विद्या—अध्यापन या शास्त्रोपदेश का कार्य (५) वाणिज्य—व्यापार, व्यवसाय (६) शिल्प—कला कौशल^१। उस समय के मानवों को 'पट्कर्म जीवीनाम्' कहा गया है।^२

ऋषभदेव ने अपने बड़े पुत्र भरत को बहत्तर कलाओं का^३ और लघु पुत्र वाहुवली को प्राणी-लक्षणों का ज्ञान कराया^४। आचार्य जिनसेन^५ ने आदिपुराण में लिखा है कि ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को अर्थशास्त्र, संग्रह प्रकरण और नृत्य शास्त्र की शिक्षा दी। वृषभसेन को गान्धर्व विद्या की, अनन्त विजय को चित्रकला, वास्तुकला और आयुर्वेद की शिक्षा दी। वाहुवली को काम नीति, स्त्री-पुरुष लक्षण, धनुर्वेद, अश्वलक्षण, गजलक्षण, रत्न परीक्षा एव तंत्र-मंत्र की शिक्षा दी थी। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दक्षिण हस्त से अठाहरह लिपियों का अध्ययन कराया^६ तथा सुन्दरी को वामहस्त से गणित विद्या का परिज्ञान कराया।^७ व्यवहार-साधन हेतु मान, [माप], उन्मान [तोला-माशा आदि,], अवमान [गज, फीट, इंच आदि], प्रतिमान [छटांक सेर-मन आदि] सिखाये।^८ ब्राह्मी लिपि जो आज प्रचलित है, उसका आविष्कार ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी के द्वारा हुआ। विश्व में आज जितनी भी लिपियाँ प्रचलित हैं, उनका मूल आधार ब्राह्मी लिपि है। आज जो गणित शास्त्र [Mathematics] है, वह सुन्दरी के गणित शास्त्र का ही विकसित रूप है। इस तरह ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अम्युदय के लिए पुरुषों को बहत्तर कलाओं, स्त्रियों को चौंसठ कलाओं और सौ प्रकार के शिल्पों का परिज्ञान कराया^९। संक्षेप में कहें तो असि, मषि और कृषि की व्यवस्था की।

ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की। यह स्थापना ऊँचता और नीचता की दृष्टि से नहीं, किन्तु आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए की^{१०}। ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट भरत ने की थी, ऐसा स्पष्ट उल्लेख आवश्यकनियुक्ति, आवश्यकचूर्ण, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रन्थों में है।^{११} ऋग्वेद^{१२} संहिता में वर्णों की

१. असिमषिः कृषिविद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च। कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥

—आदिपुराण १६/१७६.

२. आदिपुराण, ३६/१४३.

३. समवायांग सूत्र, समवाय ७४.

४. भरहस्स रूवकम्मं, नराइ लवखणमहोइयं वलिणो।

—आवश्यकनियुक्ति ११३.

५. आदिपुराण, १६/११८-१२५.

६. (क) ऋषभदेव : एक परिशीलन, परिशिष्ट विभाग चौथा, ले० देवेन्द्रमुनि
(ख) आवश्यकनियुक्ति, २१२.

७. (क) ऋषभदेव : एक परिशीलन, द्वितीय संस्करण, पृ० १४६.
(ख) विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति, १३२.

८. "माणुम्माणवमाणपमाणंगणिमाई वत्थुण"

—आवश्यकनियुक्ति, २१३.

९. कल्पसूत्र, १६५/५७ पुण्य० सं०

१०. महापुराण, १८३/१६/३६२.

११. (क) आवश्यकनियुक्ति पृ० २३५/१. (ख) आवश्यक चूर्ण पृ० २१२-२१४. (ग) त्रिषष्टि० १/६.

१२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।

उरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ॥

—ऋग्वेद संहिता १०/६०; ११-१२.

उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है, वहाँ ब्राह्मण को मुख, क्षत्रिय को बाहु, वैश्य को उर और शूद्र को पैर बताया है। यह लाक्षणिक वर्णन समाज रूप विराट शरीर के रूप में चित्रित किया गया है। श्रीमद्भागवत^१ आदि में भी इस सम्बन्ध में चर्चा है। वैदिक साहित्य में ऋषभदेव को अनेक स्थलों पर ब्रह्मा भी कहा है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभदेव की दीक्षा का उल्लेख है, पर वैराग्य किस कारण से उद्बुद्ध हुआ, इसकी चर्चा नहीं है^२। जबकि आचार्य हेमचन्द्र^३ ने और शीलाचार्य^४ ने लिखा है—वसन्तु ऋतु में नागरिक गण विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ कर रहे थे, क्रीड़ाएँ देखकर वे चिन्तन करने लगे—क्या इससे भी अधिक सुख कहीं पर है? चिन्तन करते हुए अवधिज्ञान से पूर्वभव में अनुत्तर विमान में जो सुखोपभोग अनुभव किया था, उसके सामने यह कुछ भी नहीं है। वह लम्बे समय का सुखोपभोग आज स्वप्नवत् हो गया है, अतः वे संयम के पथ पर बढ़ गये। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ हरिवंश पुराण^५ और अन्यान्य ग्रन्थों में 'नीलांजना' नर्तकी नृत्य करते-करते मृत्यु को प्राप्त हुई, उसे देखकर ऋषभदेव प्रतिबुद्ध हुए, ऐसा उल्लेख है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अभिनिष्क्रमण के पूर्व ऋषभदेव ने वार्षिक दान दिया, ऐसा उल्लेख नहीं है, पर आवश्यक-नियुक्ति^६ और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र^७ में उनके वार्षिक दान का उल्लेख है।

ऋषभदेव ने चार मुष्टिक लुंचन किया, यह उल्लेख जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में है। जबकि अन्य तीर्थकरों के वर्णन में पंच-मुष्टिक लुंचन का उल्लेख हुआ है। टीकाकार ने विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है—जिस समय भगवान् लोच कर रहे थे, उस समय उनके स्वर्ण सट्टा केश राशि को देखकर इन्द्र ने प्रार्थना की—एक मुष्टिक केश इसी तरह रहने दें। भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना से उसी प्रकार केशों को रहने दिया^८। केश रखने से वे 'केशी' या 'केशरिया जी' के नाम से विश्रुत हुए। पद्मपुराण^९, हरिवंश पुराण^{१०} में ऋषभदेव की जटाओं का उल्लेख है। ऋग्वेद^{११} में ऋषभ की स्तुति 'केशी' के रूप में की गई है। वहाँ पर कहा है—केशी अग्नि, जल, स्वर्ग तथा पृथ्वी को धारण करता है। केशी विश्व के समस्त तत्त्वों का दर्शन कराता है और केशी ही प्रकाशमान् ज्ञान ज्योति कहलाता है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में चार हजार उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय वंश के व्यक्तियों के साथ ऋषभदेव की दीक्षा का उल्लेख है।^{१२} यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि भगवान् ऋषभ ने उनको दीक्षा नहीं दी थी, पर उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही लुंचन आदि क्रियाएँ की थीं।^{१३}

१. विप्रक्षत्रियविद्गुद्रा, मुखबाहुरूपादजाः। वैराजात् पुरुषाज्जाताय आत्माचार लक्षणाः ॥

—भागवत ११/१७/१३ द्वि० भा० पृ० ८०६

२. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सूत्र ३०.

३. त्रिषष्टिशलाका० १/२/६८५-१०३३.

४. चउपन्न महापुरिस चरियं

५. सोऽथ नीलाञ्जसां दृष्ट्वा नृत्यन्तीमिन्द्रनर्तकीम् ।

बोधस्याभिनिबोधस्य, निविवेदोपयोगतः ॥

—हरिवंशपुराण, ६/५७.

६. आवश्यकनियुक्ति, २३६.

७. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, १/३/२३.

८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २ सूत्र ३०.

९. वातोद्धता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः ।

—पद्मपुराण ३/२८८.

१०. स प्रलम्बजटाभारभ्राजिष्णुः ।

—हरिवंशपुराण, ६/२०४.

११. केश्यग्निं विषं केशी विभर्ति रोदसी ।

केशी विश्व स्वर्हंशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥

—ऋग्वेद १०/१३६/१.

१२. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार २, सूत्र ३०.

१३. चउरो साहस्सीओ, लोयं काऊण अप्पणा चैव ।

जं एस जहा काही तं तह अम्हेवि काहामो ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० ३३७.

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा के पश्चात् कब प्रथम आहार ग्रहण किया, इसका उल्लेख नहीं है। समवायांग^१ में “संवच्छरेण भिक्षा लब्धा उसहेण लोगनाहेण” इस प्रकार उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेव को दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत होने पर भिक्षा मिली। किस तिथि को उन्हें भिक्षा प्राप्त हुई? इसका उल्लेख वसुदेव हिण्डी^२ और हरिवंश पुराण^३ में नहीं हुआ है। वहाँ केवल संवत्सर का ही उल्लेख है। खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली,^४ त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र^५ तथा महाकवि पुष्पदंत के महापुराण^६ में अक्षय तृतीया के दिन ऋषभदेव का पारणा हुआ, यह स्पष्ट उल्लेख है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार ऋषभदेव ने वेले का तप धारण किया था, और दिग्म्बर परम्परा के अनुसार उन्होंने छह मास का तप धारण किया था। पर लोग आहार-दान देने की विधि से अनभिज्ञ थे। अतः स्वतः आर्चीर्ण तप उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और एक वर्ष से अधिक अवधि व्यतीत होने पर उनका पारणा हुआ। श्रेयांसकुमार ने ईक्षु रस उन्हें प्रदान किया। इसका सूचन वाचस्पत्याभिधान के निम्न श्लोकों से भी होता है—

“वंशाखमासि राजेन्द्र, शुक्लपक्षे तृतीयका ।

अक्षया सा तिथि प्रोक्ता, कृत्तिकारोहिणीयुता ॥

तस्यां दानादिकं सर्वमक्षयं समुदाहृतम् ।.....”

इन प्रमाणों के आलोक में यह स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभदेव का पारणा अक्षयतृतीया के दिन हुआ। भगवान् ऋषभ एक वर्ष तक इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र को धारण करते रहे। उसके पश्चात् वे अचेलक हो^७ गये। साधना काल में देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यक सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आये, उन उपसर्गों को उन्होंने बहुत ही शान्त भाव से सहन किया।^८ वे अपने साधनाकाल में व्युत्सर्ग काय और त्यक्त देह की भांति रहे। श्रीमद्भागवत^९ में श्रमण बनने के बाद ऋषभदेव को अज्ञानी लोगों ने दारुण कष्ट दिये, यह उल्लेख है, पर हमारी दृष्टि से उस युग के मानव इतने क्रूर नहीं थे जो ऋषभ को इतना कष्ट देते।

भगवान् के जीवन और साधना का शब्द-चित्र विविध उपमाओं के द्वारा शास्त्रकार ने प्रस्तुत किया है। एक सहस्र वर्ष के पश्चात् भगवान् को केवलज्ञान तथा केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। जिसे जैनागमों में केवलज्ञान कहा है, उसे बौद्ध ग्रंथों में ‘प्रज्ञा’, सांख्य-योग में ‘विवेक-ख्याति’ कहा है।^{१०} उन्होंने तीर्थ की स्थापना की। उनके चौरासी गण तथा चौरासी गणधर हुए। वैदिक पुराणों में भी भगवान् ऋषभदेव को दस विध धर्म का प्रवर्तक माना है। तृतीय आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान् ऋषभदेव दश हजार श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ़ हुए। चतुर्दश भक्त से अत्मा को भावित करते हुए अभिजित नक्षत्र के योग में पर्यंकासन से स्थित शुक्लध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर-

१. समवायांग—सूत्र १५७

२. “भयवं पियामहो निराहारो परमधिति-वल-सायरो सयंभुसागरोइव थिमियो अणाजलो संवच्छरं विहरइ, पत्तो य हत्थिय-णाउरं.....ततो परमहरिसियो पडिलाहेइ सार्मि खोयरसेणं । —वसुदेव हिण्डी

३. हरिवंशपुराण, सर्ग ६, श्लोक १८०-१८१.

४. श्री युगादिदेव पारणकपवित्रितायां वंशाख शुक्लपक्ष तृतीयायां स्वपदे महाविस्तरेण स्थापिताः ।

—खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली [सिंधी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन, वम्बई]

५. राघशुक्ल तृतीयायां, दानमासीत्तदक्षयम् । पवाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते ॥

—त्रिपष्टिशलाकापुरुष चरित्र, १/३/३०१.

६. सेयंसहु घणएण णिउंजिय, उक्कहि उडमाला इव पंजिय । पूरियसंवच्छर उववासं, अक्खयदाणु मणिउं परमेसे ॥

—महापुराण, संधि ६, पृ० १४८-१४९

७. उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छर-साहियं चीवरधारी होत्वा, तेण परं अचेलए । —धम्मकहाणुजोगे, पढम चंथे, पृ० २०.

८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार १, सूत्र ३१.

९. भागवत ५/५/३०/५६४.

१०. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।

—योग सूत्र २/२६.

अजर-अमर पद को प्राप्त हुए,^१ जिसे जैन परिभाषा में 'निर्वाण' या 'परिनिर्वाण' कहा है। शिवपुराण में अष्टापद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।^२

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,^३ कल्पसूत्र,^४ त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र^५ के अनुसार ऋषभदेव की निर्वाण तिथि माघ कृष्ण त्रयोदशी है और तिलोयपण्णत्ति^६ एवं महापुराण^७ के अनुसार माघ कृष्ण चतुर्दशी है। सूत्रान्त्य मनीषियों का यह मानना है कि भगवान् की स्मृति में उस दिन श्रमणों ने उपवास रखा और रात भर धर्म-जागरण करते रहे। इसलिए वह रात्रि 'शिवरात्रि' के रूप में प्रसिद्ध हुई। ईशान^८ संहिता में उल्लेख है—माघ कृष्ण चतुर्दशी की महानिशा में कोटि सूर्य प्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इस लिङ्ग से प्रकट हुए; जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव कहे जाते थे, वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से 'शिव' कहलाने लगे।

ऋषभदेव का महत्त्व केवल जैन परम्परा में ही नहीं रहा है, अपितु ब्राह्मण परम्परा में भी वे उपास्य देव रहे हैं। डा० राधाकृष्णन्, डा० जिमर, प्रो० विरूपाक्ष, वॉडियर प्रभृति अनेक विद्वानों ने इस सत्य-तथ्य को स्वीकार किया है कि वेदों में भी भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है। वैदिक ऋषि भक्ति भावना से तल्लीन होकर महाप्रभु ऋषभ की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परमसुख प्राप्त करने के लिए हम आपकी शरण में आना चाहते हैं।^९ ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है।^{१०} यजुर्वेद में भी कहा है—मैंने उस महापुरुष को जाना है, जो सूर्यवत् तेजस्वी तथा अज्ञान आदि अन्धकार से बहुत दूर है; उसी का परिज्ञान कर मृत्यु से पार हुआ जा सकता है। मुक्ति के लिए इसके सिवाय अन्य को मार्ग नहीं।^{११} अथर्ववेद के ऋषि ने मानवों को यह प्रेरणा दी कि वे ऋषभदेव का आह्वान करें। हे सहचर बन्धुओ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मवल और तेज को धारण करो।^{१२} क्योंकि वे प्रेम के राजा हैं, उन्होंने उस संघ की स्थापना की है, जिसमें पशु भी मानव के सदृश माने जाते हैं तथा उनको कोई भी नहीं मार सकता।

वैदिक ऋषियों ने विविध प्रतीकों के द्वारा भी ऋषभदेव की स्तुति की है। कहीं वे जाज्वल्यमान अग्नि के^{१३} रूप में, कहीं परमेश्वर के रूप में,^{१४} कहीं रुद्र के रूप में,^{१५} कहीं शिव^{१६} के रूप में, कहीं हिरण्यगर्भ^{१७} के रूप में, कहीं ब्रह्मा^{१८} के

१. चुलसीतीऐ जिणवरो, समण सहस्सेहि परिवुडो भगवं । दसहि सहस्सेहि समं, निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥

—आवश्यकचूर्ण २२१.

२. कैलाशे पर्वते रम्य, वृषभोज्यं जिनेश्वरः । चकार स्वावतारं च, सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥

—शिवपुराण ५६.

३. 'जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे । माह बहुले तस्स णं माहवहुलस्स तेरसी पक्खेणं ॥

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ४८/६१.

४. कल्पसूत्र १६६/५६

५. त्रिषष्टि० १/६

६. 'माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णियय—जम्मणक्खत्ते अट्टावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोभि ।

—तिलोयपण्णत्ति

७. महापुराण ३७/३.

८. माघे कृष्ण चतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि । शिवलिङ्ग तयोद्भूतः कोटि सूर्यसमप्रभः ।

तत्काल व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिर्नते तिथिः ॥

—ईशान संहिता

९. मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमिर्याभि वाचमृताय भूषन् । इन्द्र क्षितीमासास मानुषीणां विशां देवी नामुत पूर्वयाया ॥

—ऋग्वेद २/३४/२.

१०. ऋग्वेद—१०/१६६/१.

११. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

१२. अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां, विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् । अपां न पातमश्विना हुं वे धिय, इन्द्रियेण इन्द्रिय दत्तमोजः ॥

—अथर्ववेद, कारिका १६/४२/४.

१३. अथर्ववेद ६/४/३; ६/४/७; ६/४/१८;

१४. अथर्ववेद ६/४/७.

१५. (क) ऋग्वेद १०/१३६., २/३३/१५.

(ख) यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता १/८/६, वाजसनेयी ३/५७/६३.

१६. प्रभासपुराण ४६.

१७. (क) ऋग्वेद १०/१२१/१.

(ख) तैत्तिरीयारण्यक भाष्य-सायणाचार्य, ५/५/१/२.

(ग) महाभारत, शान्तिपर्व ३४६. (घ) महापुराण १२/६५.

१७. ऋषभदेव : एक परिशीलन, द्वि० संस्करण, पृ० ४६.

रूप में, कहीं विष्णु^१ के रूप में, कहीं वातरसना^२ श्रमण के रूप में, कहीं केशी^३ के रूप में भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हैं।

श्रीमद्भागवत^४ में तो ऋषभदेव का बड़ा ही विस्तार से निरूपण है, लगता है कि जैन परम्परा के ग्रन्थ को ही हम पढ़ रहे हैं। उनके माता-पिता के नाम, सुपुत्रों का उल्लेख, उनकी ज्ञान साधना, उपदेश, धार्मिक-सामाजिक नीतियों का प्रवर्तन, और भरत के अनासक्त योग का चित्रण हुआ है। श्रीमद्भागवत में ही नहीं, अपितु लिङ्गपुराण,^५ शिवपुराण,^६ आग्नेयपुराण,^७ ब्रह्माण्डपुराण^८ विष्णुपुराण,^९ कूर्मपुराण,^{१०} नारदपुराण,^{११} वाराहपुराण,^{१२} स्कन्दपुराण,^{१३} प्रभृति पुराणों में ऋषभदेव का केवल नामोल्लेख ही नहीं हुआ है, किन्तु कहीं-कहीं उनके जीवन-प्रसंग भी उद्धृत किये हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में ऋषभदेव का उल्लेख जितना विस्तार के साथ होना चाहिए, उतना नहीं हो पाया। 'धम्मपद' में ऋषभ और महावीर का नाम एक साथ आया है, उसमें ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ धीर अभिहित किया।^{१४} धर्मकीर्ति ने 'न्याय विन्दु' ग्रन्थ में सर्वज्ञ का दृष्टान्त देते हुए ऋषभदेव और भगवान् महावीर का उल्लेख किया है।^{१५} जो सर्वज्ञ अथवा आप्त हैं, वे ज्योतिर्ज्ञानादिक के उपदेष्टा होते हैं।

पाश्चात्य और पौराणिक सभी ने ऋषभदेव को आदिपुरुष माना है और विविध रूप में उनका चित्रण किया है। विस्तार भय से हम यहाँ उन सभी के विचार उद्धृत नहीं कर रहे हैं, विशेष जिज्ञासुजन लेखक का 'ऋषभदेव : एक परिशीलन' ग्रन्थ अवलोकन करें।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जन्मोत्सव का जैसे विस्तार से निरूपण हुआ है, वैसे ही उनके निर्वाण का भी विस्तार से निरूपण है। निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए चौंसठ इन्द्र अपने विशाल-परिवार के साथ वहाँ उपस्थित होते हैं। शक्र ऋषभदेव के शरीर को क्षीरोदक से स्नान करवाता है, अन्य देव गण, गणधर तथा अन्य अन्तेवासी शिष्यों के पार्थिव शरीरों को क्षीरोदक से स्नान करवाते हैं फिर गोशीर्ष चन्दन का विलेपन करते हैं। तीन प्रकार की शिविकाएँ तैयार करते हैं। एक में ऋषभदेव को, दूसरी में गणधरों को और तीसरी शिविका में सामान्य साधुओं को रखते हैं। "जय-जय नन्दा, जय-जय भद्रा" के दिव्य आघोष से आकाश को गुंजायमान करते हुए तीन चिताओं में तीर्थंकर, गणधर तथा सामान्य साधुओं को स्थापित करते हैं। शक्र की आज्ञा से अग्नि कुमार देव ने अग्नि की विकुर्वणा की और वायु कुमार देव ने अग्नि को प्रज्वलित किया। गोशीर्ष चन्दन की बनी हुई चिताएँ जलने लगीं। जब सभी के पार्थिव शरीर जल गये तब शक्रेन्द्र की आज्ञा से मेघ कुमार देव ने क्षीरोदक से उन चिताओं को ठण्डा किया। सभी इन्द्र अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार प्रभु की डाहों और दाँतों को तथा शेष देवों ने प्रभु की अस्थियों को ग्रहण किया। तीनों चिताओं पर स्मृति चिन्ह बनाकर वे देवेन्द्र अपने परिवार के साथ नन्दीश्वर द्वीप गये और अष्टाह्निका महोत्सव मनाया।

१. सहस्रनाम ब्रह्मशतकम् श्लोक १००-१०२.

२. (क) ऋग्वेद १०/१३६/२. (ख) तैत्तिरियारण्यक २/७/१. पृ० १३७. (ग) बृहदारण्यकोपनिषद् ४/३/२२.

(घ) एन्शियेन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय मैगस्यनीज एण्ड एरियन, कलकत्ता, १९१६, पृ० ९७-९८.

(ङ) ट्रान्सलेशन आव द फ्रैग्मेन्ट्स आव द इण्डिया आव मैगस्यनीज, वान १८४६, पृ० १७५.

३. (क) पद्मपुराण ३/२८८. (ख) हरिवंश पुराण ६/२०४. (ग) ऋग्वेद १०/१३६/१.

४. श्रीमद्भागवत १/३/१३; २/७/१०; ५/३/२०; ५/४/२०; ५/४/५; ५/४/८; ५/४/९-१३; ५/५/१६; ५/५/१६; ५/५/२८; ५/१४/४२-४४; ५/१५/१.

५. लिङ्गपुराण, ४८/१९-२३.

६. शिवपुराण, ५२/८५.

७. आग्नेयपुराण, १०/११-१२.

८. ब्रह्माण्डपुराण पूर्व, १४/५३.

९. विष्णुपुराण, द्वितीयांश, अ० १/२६-२७.

१०. कूर्मपुराण, ४१/३७. ३८.

११. नारदपुराण, पूर्वखण्ड, अ० ४८.

१२. वाराहपुराण, अ० ७४.

१३. स्कन्दपुराण, अ० ३७.

१४. उत्तमं पवरं वीरं महेत्ति विजितादिनं । अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

—धम्मपद ४२२.

१५. यः सर्वज्ञ आप्तो वा स ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् तद्यथा ऋषभवर्धमानादिरिति ।

—न्यायविन्दु

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव का ओजस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व एवं कृतित्व अत्यन्त प्रेरणादायी है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके जीवन के कुछ बिन्दुओं पर चिन्तन किया है और ये ही बिन्दु आगम साहित्य के पश्चात् निर्मित साहित्य के उपजीव्य रहे हैं हैं।

मल्ली भगवती :

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ में मल्ली भगवती का चरित्र आया है। मल्ली भगवती के चरित्र का मूल आधार ज्ञाताधर्मकथा है। मल्ली भगवती का जीव अपने तीसरे पूर्वभव में 'महावल' नामक राजा बना था। वह छह स्नेही साथियों के साथ श्रमणधर्म में दीक्षित हुआ और साथ ही समान तप करने का निश्चय किया। पर महावल के अन्तर्मानस में ये विचार उद्बुद्ध हुए कि मैं गृहस्थाश्रम में भी इनसे बढ़कर था। यदि इस समय समान साधना की तो इन्हीं के समान भविष्य में रहना पड़ेगा। अतः महावल ने विशिष्ट तप की साधना प्रारम्भ की। यदि छहों साथी पठभक्त तप करते तो महावल अष्टमभक्त तप करते, यदि अन्य साथी अष्टमभक्त तप करते तो वे दशम भक्त तप करते। साथी मुनियों के पूछने पर शारीरिक और मानसिक कारण बताकर वे पारणा नहीं करते। माया के कारण उन्होंने स्त्रीनामकर्म का अनुबन्धन किया स्त्रीवेद का बन्ध कर लेने के पश्चात् सभी प्रकार के शल्यों से मुक्त होकर निष्काम भाव से उग्र तप के साथ तीर्थंकर नाम गोत्र का बन्ध किया। सातों ही श्रमणों ने भिक्षु की द्वादश प्रतिमाओं को धारण किया, लघुसिंह निष्क्रीडित तथा महासिंह निष्क्रीडित आदि विविध प्रकार की तपस्याएँ करने के बाद अन्त में पादपोषण संथारा कर स्वर्गस्थ हुए। महावल का जीव बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति सहित अनुत्तर विमान में पैदा हुआ और अन्य छहों मुनि बत्तीस सागर से कुछ कम स्थिति वाले देव बने।

वहाँ से च्युत होकर महावल का जीव मिथिला नगरी में महाराजा कुम्भ की महारानी प्रभावती की कुक्षि से मल्ली भगवती के रूप में उत्पन्न हुआ और उनके पूर्वभव के छह मित्र जिनमें से "अचल" का जीव कौशल, की राजधानी अयोध्या में 'प्रतिबद्ध' नामक राजकुमार हुआ। "धरण" का जीव अंग की राजधानी चम्पा में 'चन्द्रछाय' नामक राजकुमार हुआ। "अभिचन्द्र" का जीव काशी की राजधानी वाराणसी में 'शंख' राजकुमार बना। 'पूरण' का जीव कुणाला की राजधानी कुणाला नगरी में 'रुक्मी' नामक राजकुमार हुआ। 'वसु' का जीव पुरु की राजधानी हस्तिनापुर में 'अदीनशत्रु' नामक राजकुमार के रूप में पैदा हुआ तथा 'वैश्रमण' का जीव पांचाल की राजधानी काम्पिल्यपुर में 'जितशत्रु' राजा बना।

द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति मल्ली कुमारी दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसका रूप अद्भुत था। जो भी उसे निहारता, वह ठगा सा रह जाता। राजकुमारी ने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा कि मेरे छहों मित्र मेरे रूप की ख्याति सुनकर मेरे से विवाह करने के लिए तत्पर होंगे, अतः उन्हें प्रतिबोध देने हेतु उसने विशिष्ट कलाकारों को बुलवाया और अशोक वाटिका में मोहन गृह का निर्माण करवाया, छह गभंगुहों के बीच एक जाल-गृह का निर्माण करवाया। उस जाल-गृह में मणि पीठिका पर अपने ही समान स्वर्ण पुतली बनवाई, उस पुतली को देखने वाला यही समझता कि साक्षात् मल्ली भगवती ही खड़ी है। उस पुतली के सिर पर एक छिद्र बनवाया और पद्म पत्र की तरह उसका ढक्कन निर्माण करवा कर प्रतिदिन अपने भोजन के बाद एक कवल उस पुतली में डालने लगी। वह अन्न प्रतिदिन अन्दर ही अन्दर सड़ने लगा, जिससे दुसह्य दुर्गन्ध पैदा हुई। छहों मित्र राजाओं ने मल्ली भगवती के रूप की प्रशंसा सुनी तो उन सबने उसे अपनी-अपनी पत्नी बनाने के लिए कुम्भ राजा के पास दूत प्रेषित किये। छहों दूतों को एक साथ आया हुआ देखकर महाराजा कुम्भ यह निर्णय न ले सके कि किसके साथ राजकुमारी का पाणिग्रहण कराया जाय, अतः छहों दूतों को निषेध कर दिया। छहों राजकुमारों के दूतों ने अपने-अपने राजाओं को निवेदन किया तथा वे छहों सेना से सुसज्जित होकर आक्रमण करने हेतु मिथिला की ओर बढ़े जिससे कुम्भ राजा अत्यन्त चिन्तित हुआ। मल्ली भगवती के संकेत से छहों राजाओं को पृथक्-पृथक् गर्भ गृहों में ठहरा दिया गया। छहों ने मल्ली भगवती की प्रतिकृति देखी, वे देखते ही उस पर मन्त्र-मुग्ध हो गये। मल्ली भगवती जाल-गृह में से अपनी कनकमयी प्रतिकृति के पास आई और पद्म कमल के ढक्कन को पुतली के सिर पर से हटा दिया। ढक्कन हटते ही असह्य और भीषण दुर्गन्ध निकली, जिससे सारा वायुमण्डल दुसह्य दुर्गन्ध से व्याप्त हो गया। छहों राजाओं ने अपने उत्तरीय वस्त्रों से नाक को ढक लिया और मुख को मोड़कर बैठ गये। राजकुमारी मल्ली भगवती ने उन सभी राजाओं को सम्बोधित कर कहा—आप सभी मुख को मोड़कर और नाक आदि ढक कर क्यों बैठे हैं? इस स्वर्णमूर्ति में प्रतिदिन एक-एक ग्रास श्रेष्ठ भोजन का डाला गया है। जब एक-एक ग्रास से भी इतनी भयंकर सड़ाण पैदा हुई है तो हम इस शरीर में प्रतिदिन कितने ग्रास डालते हैं? यह शरीर मल-मूत्र, श्लेष्म, रज आदि अशुचियों का भण्डार है, इसमें आप क्यों आसक्त हो रहे हैं? स्मरण करो अपने पूर्वभव को! हम पूर्वभव में मित्र थे। साधना

करते हुए मैंने माया का सेवन किया, जिसके कारण मैंने स्त्री नाम कर्म का बन्धन किया। उहाँ राजाओं को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ और वे प्रतिबुद्ध हुए। तीन सौ पुरुष और तीन सौ महिलाओं के साथ मल्ली भगवती ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी दिन उन्हें केवलज्ञान एवं केवलदर्शन हो गया। एक प्रहर से कुछ अधिक समय तक वे छद्मस्थ अवस्था में रहे। केवलज्ञान होने पर उहाँ राजा भी उनके प्रथम उपदेश को सुनकर दीक्षित हुए।

प्रस्तुत कथा में भोग के दलदल में फँसने वाले, रूप और लावण्य के पीछे पागल बने हुए उहाँ राजाओं को विशुद्ध सदाचार का मार्ग बताया है। जो शरीर ऊपर से चमक-दमक रहा है, जिसकी चमक-दमक से उसके प्रति आकर्षण पैदा होता है, उस शरीर में रही हुई अपार गंदगी को बताकर राजाओं का हृदय परिवर्तन किया गया है। बौद्ध साहित्य में भिक्षुणी शुभा का एक प्रसंग है। शुभा का सौन्दर्य निराला था। एक कामुक व्यक्ति उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उस कामुक व्यक्ति ने कहा— तुम्हारे नेत्र कितने सुन्दर और आकर्षक हैं कि उनको पाये बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा। भिक्षुणी ने अपने शील की रक्षा के लिए तीक्ष्ण नाखूनों से अपने नेत्र निकाल कर उसके हाथ में दे दिये और उस कामुक व्यक्ति से कहा—जिन नेत्रों पर तुम मुग्ध हो, वे नेत्र तुम्हें समर्पित कर रही हूँ। किन्तु उस कथा से भी मल्ली भगवती की कथा अधिक आकर्षक और प्रभावशाली है।

रूपक की भाषा में यदि कहा जाये तो वे उहाँ राजा काम, क्रोध, मद, मोह आदि षट् रिपुओं के रूप में हैं। सभी धर्म और सम्प्रदायों ने षट् रिपुओं को जीतने पर बल दिया है। उन रिपुओं को कला से ही जीता जा सकता है। मल्ली भगवती की तरह साधक उन रिपुओं पर विजय-वैजयन्ती फहरा सकता है।

प्रस्तुत कथा में उत्कृष्ट चित्रकला का रूप भी देखने को मिलता है। प्राचीन भारत में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ था। चित्रों को बनाने के लिए चित्रकार अपनी कूँची और विविध प्रकार के रंगों का उपयोग करता था। चित्रकार सर्वप्रथम भूमि को तैयार करता फिर उसको सजाता-संवारता। मल्ली भगवती के भ्राता मल्लदत्त कुमार ने हाव-भाव, विलास और शृंगार चेष्टाओं से युक्त एक चित्र सभा बनवाई थी। चित्रकार श्रेष्ठतम चित्र बनाने में संलग्न हो गये। उसमें एक चित्रकार अद्भुत प्रतिभा का धनी था। वह द्विपद, चतुष्पद, अपद [वृक्ष आदि] के किसी एक हिस्से को निहार कर उसके सम्पूर्ण रूप को चित्रित कर देता था। राजा-महाराजा और श्रेष्ठी गणों को चित्र-कला अत्यन्त प्रिय थी। वे विविध प्रकार की चित्र-शालायें बनवाते थे।

बृहत्कल्पभाष्य में आचार्य संघदासगणि ने चित्र कर्म के निर्दोष और सदोष ये दो प्रकार बताये हैं। वृक्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, भवन, वल्ली, लता वितान, पूर्ण कलश, स्वस्तिक, आदि मांगलिक पदार्थों का आलेखन निर्दोष चित्र कर्म माना है और स्त्रियों के शृंगार आदि आलेखन को सदोष चित्र कर्म माना है।^१ चित्र मुख्य रूप से भित्तियों पर और पट्ट फलक पर बनाये जाते थे। चित्र-सभायें उस युग में राजाओं के लिए अत्यन्त गर्व की वस्तु होती थीं। चित्र सभाओं में सैकड़ों खम्भे होते थे।

प्रस्तुत कथा में कुछ अवान्तर कथायें भी हैं। चोख्खा परिव्राजिका राजा जितशत्रु के दरवार में पहुँचती है। जितशत्रु को अपने अन्तःपुर पर बड़ा गर्व था। वह सोचता था कि मेरे अन्तःपुर के सदृश सुन्दरियाँ अन्यत्र कहीं पर भी नहीं हैं। विश्व का सम्पूर्ण सौन्दर्य मेरे अन्तःपुर में सिमटा हुआ है, अतः वह अभिमान के साथ परिव्राजिका के बोला—आप तो देश-विदेशों में घूमती हैं। क्या आपने मेरे अन्तःपुर सदृश्य अन्य अन्तःपुर देखा है। परिव्राजिका ने मुस्कराते हुए कहा—तुम तो कूप-मण्डूक सदृश हो; और वह कूप-मण्डूक की कथा सुनाती है।

समुद्र-यात्रा : एक चिन्तन

प्रस्तुत कथानक में अरणक श्रावक की सुदृढ़ धर्म-श्रद्धा का भी उल्लेख है। वणिक् लोग मूल धन की रक्षा करते हुए धनोपाजन करते थे।^२ कितने ही व्यापारी एक स्थान पर दुकान लगाकर व्यापार करते थे और कितने ही व्यापारी बिना दुकान लगाये इधर-उधर घूम-फिरकर व्यापार करते थे।^३ निशीथचूणि^४ में 'समुद्र जाणी' शब्द प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है—समुद्र यात्री! ज्ञातृधर्मकथा^५ में अनेक स्थलों पर 'पोत पट्टन' और 'जल पत्तन' शब्द आये हैं, जो समुद्री बन्दरगाह के सूचक हैं, जहाँ पर विदेशों से माल उतरता था और देशी माल का वहाँ से निर्यात होता था। आचारांग^६ और उत्तराध्वयन^७ में नाव और

१. बृहत्कल्पभाष्य १/२४२८.

२. निशीथचूणि ११/३५३२.

३. निशीथभाष्य १६/५७५०. की चूणि.

४. समुद्रजाणीए चव पावए

—निशीथचूणि

५. पायाधर्मकथा, अध्या० ८वां

६. आचारांग, ३/२.

७. उत्तराध्वयन, अध्या० ३३.

पोत शब्द भी प्राप्त होते हैं। पोतवह^१ शब्द जहाज का याचक है। आधुनिक युग में 'वाणिय' शब्द सामान्य व्यापारी के अर्थ में व्यवहृत होता है, पर ज्ञाताधर्मकथा में 'वाणिय' शब्द समुद्री यात्री के लिए प्रयुक्त हुआ है।^२

आगम साहित्य में व धर्मकथानुयोग में अनेक स्थलों पर समुद्र यात्रा का निरूपण है। आवश्यकचूर्णि^३ से यह पता चलता है कि दक्षिण मद्रास से सुराष्ट्र में जहाज चलते थे। समुद्र यात्रा के लिए वायु का अनुकूल होना आवश्यक माना गया है।^४ निर्यामकों को समुद्री हवा के बारे में कुशल होना आवश्यक माना गया है। समुद्र में "कालियावात" न चलने पर और ताय ही गर्भज वायु के चलने पर जहाज सकुशल बन्दरगाहों पर पहुँच जाते थे। 'कालियावात' यानी तूफानों में जहाजों को डूबने का अत्यधिक खतरा रहता था। उस युग में समुद्र-यात्रा निर्विघ्न नहीं थी।^५ जहाज आज की भाँति दोनों प्रकार के होते थे—बढ़ने योग्य और माल ढोने योग्य।^६ जो जहाज व्यापार के लिए जाते थे, उनमें जो माल भरा जाता था; वह १. गणिम—सुपारी, नारियल आदि जो गिन करके भरा जाता था। २. धरिम—शक्कर आदि जिसे तोलकर भरते थे। ३. मेय—चावल, घी आदि जो पाली आदि से मापकर दिया जाता था। ४. परिच्छेद्य—जिसे केवल आँखों से जाँचकर देते थे जैसे—कपड़ा, हीरे-पन्ने, माणिक-मोती आदि जवाहरात।^७ बन्दरगाह तक व्यापारी लोग हाथी, घोड़ा, शकट तथा गाड़ियों पर बैठकर पहुँचते थे। विविध भाषाओं का परिज्ञान न होने पर लोग संकेतों से काम लेते थे। जब तक सौदा पूरा नहीं होता वहाँ तक लोग माल को ढँक कर रखते थे।^८

उत्तराध्ययन की टीका के अनुसार गुप्त काल में भारत का ईरान के साथ अत्यन्त मधुर सम्बन्ध था। शंख, चन्दन, अगर-तगर, रत्न आदि भारत से ईरान में जाते थे और ईरान से मजीठ, स्वर्ण, चाँदी, मूँगे, मुक्तायें प्रभृति अनेक वस्तुएँ भारत में आती थीं।^९ यह भी ज्ञात होता है कि भारत में सोमाली-लैण्ड, वंक्षु प्रदेश, यूनान, सिहल, अरब, हटगना, फारस प्रभृति देशों से अनेक दास-दासियाँ अन्तःपुर में महारानियों की सेवा के लिए आती थी।^{१०} उनके लालन-पालन में बढ़ती हुई सन्तान सहज रूप से वहाँ की भाषाओं से परिचित हो जाते थे। उन्हें भाषाओं के अध्ययन के लिए विशेष श्रम करने की आवश्यकता नहीं होती थी। धाय-माताओं की घूँट के साथ ही भाषा भी उन्हें हृदयंगम हो जाती।

आज के युग की तरह प्राचीन युग में भी विदेशों से जो बहुमूल्य माल आता था, उस माल का (राजस्व) कर न चुकाना पड़े, इसलिए व्यापारी गण राजमार्ग का परित्याग कर वीहड़-पथ पर भी चल पड़ते थे और जब वे पकड़े जाते तो राजा-गण उन्हें कठोर दण्ड देते थे।^{११} इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में सभी ईमानदार व्यक्ति पैदा नहीं होते। लोभ की वृत्ति से मानव अनैतिकता की ओर बढ़ता है।

जैन श्रमण की आचार संहिता अत्यधिक कठिन थी इसलिए वह समुद्र यात्रा नहीं करते थे, पर जैन सार्ववाह और व्यापारीगण व्यापार के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति करना चाहते थे, इसलिए वे समुद्र-यात्रा किया करते थे। एक बार नहीं, किन्तु अनेक बार वे माल को इधर से उधर आयात और निर्यात करते रहते थे। आगम व व्याख्या साहित्य और स्वतन्त्र कथा-साहित्य में सैकड़ों व्यक्तियों के समुद्र-यात्रा के प्रसंग प्राप्त हैं। उन्हें समुद्री मार्गों का भी विशेष परिज्ञान था। यह सत्य है कि आज के युग की तरह उस युग में वाहन इतने सबल नहीं थे। पवन की प्रतिकूलता से वाहन क्षत-विक्षत भी हो जाते थे; तथापि व्यापारी हिम्मत नहीं हारते थे।

प्रस्तुत कथानक में छह राजाओं का परिचय भी दिया गया है। मल्ली भगवती के युग में राज्य-व्यवस्था कैसी थी? इसका भी इससे पता चलता है। राजाओं के पास चतुरंगिणी सेनायें होती थी। वे स्वाभिमानी होते थे। उनके अहंकार को जरा सी ठेस पहुँचने पर वे युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हो जाते। सभी राजाओं की यही इच्छा रहती कि विश्व में जो भी सर्वश्रेष्ठ वस्तु

१. णायाधम्मकहा, अध्याय ८, ९, १७.

३. आवश्यकचूर्णि, पृ० ७०६.

५. णायाधम्मकहा, अध्ययन ६.

७. (क) णायाधम्मकहा, अध्ययन ८, ९, १७.

८. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ४२.

१०. अन्तगडदसाओ, वारनेट का अनुवाद, पृष्ठ २८ से २९.

२. णायाधम्मकहा, अध्याय ८, ९, १७.

४. आवश्यकचूर्णि पृ० ६६.

६. उपासकदशांग सूत्र ५.

(ख) निशीथचूर्णि ५६३२.

९. उत्तराध्ययन टीका, पृष्ठ ६४.

११. उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र २५२.

है, उसके अधिपति हम ही हैं। यही कारण है कि मल्ली भगवती के सौन्दर्य-रस का पान करने के लिए छहों राजा रूपी भँवरे एक साथ मंडराये और अधिकार की भाषा में सभी ने अपना-अपना अधिकार व्यक्त किया।

प्रस्तुत कथानक के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग में, आज की तरह लड़की माता-पिता के लिए एक समस्या ही थी। यदि लड़की अत्यन्त रूपवान होती तो रूप-लुब्धक व्यक्ति उसे पाने के लिए अपनी जान दाँव पर लगा देते और जब एक से अधिक व्यक्ति उसे प्राप्त करने के लिए आनुर हो जाते तो माता-पिता के लिए गम्भीर समस्या बन जाती थी। यदि वह लड़की सुरूपा नहीं होती तो भी विवाह की समस्या ही बनी रहती। इस तरह दोनों ही प्रकार से लड़की की समस्या रहती थी।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक में सांस्कृतिक, धार्मिक सामग्री रही हुई है।

भगवान् अरिष्टनेमि :

भगवान् ऋषभदेव और मल्ली भगवती ये दोनों तीर्थंकर प्राग् ऐतिहासिक काल में हुए हैं। आधुनिक इतिहासकार भगवान् अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। क्योंकि कर्मयोगी श्रीकृष्ण को इतिहासकार इतिहास के एक जाण्वल्यमान नक्षत्र मानते हैं। उसी युग में अरिष्टनेमि का भी प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में संकोच की आवश्यकता नहीं है।

ऋग्वेद में अरिष्टनेमि शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है।^१ “स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः” [ऋग्वेद १/१४/८६/६] यहाँ पर ‘अरिष्टनेमि’ शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए प्रयुक्त हुआ है। कितने ही मूर्धन्य मनीषीगणों का यह मन्तव्य है कि ‘छान्दोग्योपनिषद्’ में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम ‘धोर आंगिरस’ के नाम से आया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को आत्म-यज्ञ की शिक्षा प्रदान की। उसकी दक्षिणा, दान, तपश्चर्या, ऋजुभाव, अहिंसा, सत्यवचन रूप थी।^२ धर्मानन्द कौशाम्बी ने ‘आंगिरस’ ऋषि को भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम माना है।^३

ऋग्वेद,^४ यजुर्वेद^५ और सामवेद^६ में भगवान् अरिष्टनेमि को ‘तार्क्ष्य अरिष्टनेमि’ लिखा है। “स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिदधातु”।^७ वेदों में जो अरिष्टनेमि शब्द प्रयोग हुआ है, वह भगवान् अरिष्टनेमि के लिए है। महाभारत में भी ‘तार्क्ष्य’ शब्द का प्रयोग हुआ है। वह भी भगवान् अरिष्टनेमि का ही दूसरा नाम होना चाहिए।^८

यजुर्वेद में लिखा है—‘अध्यात्मयज्ञ को प्रगट करने वाले, संसार के भव्य जीवों को यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से आत्मा पवित्र बनती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ’।^९

डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है—यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों के नाम हैं।^{१०}

१. (क) ऋग्वेद १/१४/८६/६. (ख) ऋग्वेद १/२४/१८०/१०
- (ग) ऋग्वेद ३/४/५३/१७. (घ) ऋग्वेद १०/१२/१७८/१.
२. अतः यत् तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा । —छान्दोग्य उपनिषद् ३/१७/८.
३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृ० ५७.
४. (क) त्वम् पु वाजिनं देवजूतं सहावान तरुतारं रथानाम् । अरिष्टनेमि पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा वृवेम ॥
(ख) ऋग्वेद १/१/१६. —ऋग्वेद १०/१२/१७८/१.
५. यजुर्वेद २५/१६. ६. सामवेद ३/६. ७. ऋग्वेद १/१/१६
८. एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्यः सर्वशास्त्र विदांवरः । विबुध्य संपदं चाशूयां सद्वाक्यमिदमवब्रवीत् ॥ —महाभारत, ज्ञान्ति पर्व, २८८/४.
९. वाजसनेयि-माध्यन्दिनमुत्तयजुर्वेद, अध्याय ६, मंत्र २५. सातवलेकर संस्करण (विक्रम १६८४)
१०. The Yajurveda mentions the names of three Tirthankaras—Rishabha, Ajitnath and Arishtanemi.

‘स्कन्दपुराण’^१ में एक प्रसंग है—वामन ने तप किया। तप के दिव्य प्रभाव से प्रभावित होकर शिव ने वामन को दर्शन दिये। शिव उस समय श्याम वर्ण, अचेल और पद्मासन में बैठे हुए थे। वामन ने उनका नाम ‘नेमिनाथ’ रखा। ये नेमिनाथ कलिकाल के सभी घोर पापों को नष्ट करने वाले हैं। इनके दर्शन और चरण स्पर्श से करोड़ों यज्ञ का फल प्राप्त होता है। प्रभासपुराण^२ में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत^३ में भी उनकी स्तुति में स्वर प्रस्फुटित हुए हैं।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० रायचौधरी ने “वैष्णव धर्म के प्राचीन इतिहास” में भगवान् अरिष्टनेमि को श्रीकृष्ण का चचेरा भाई लिखा है।^४

अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में कर्नल टॉड^५ ने लिखा है—मुझे ऐसा ज्ञात होता है, अतीत काल में चार युद्ध या मेधात्री महापुरुष हुए हैं, उनमें प्रथम आदिनाथ और द्वितीय नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ऑडिन तथा चीनियों के प्रथम ‘फो’ देवता थे।

डा० नगेन्द्रनाथ वसु, डा० फुहर, प्रोफेसर बॉरनेट, मि० कर्वा, डा० हरिदत्त, डा० प्राणनाथ विद्यालंकार आदि अनेक आधुनिक विद्वानों ने भी भगवान् अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक एवं प्रभावशाली महापुरुष माना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उनके कल्याण, गर्भ में आने पर माता ने जो चौदह महास्वप्न देखे, उनका उल्लेख है। जन्म, प्रव्रज्या केवलज्ञान, गणधर, अन्तकृत भूमि और कुमारावस्था में निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख हुआ है।

‘वसुदेव हिण्डी’, ‘चउपन्न महापुरिस चरियं’, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, नेमिनाह चरिउं, भव-भावना, उपदेश-माला प्रकरण, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण, नेमि निर्वाण काव्य, अरिष्टनेमि चरित्र, नेमिनाथ चरित्र आदि लगभग सौ से भी अधिक रचनायें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी भाषा में उपलब्ध हैं। जिन रचनाओं में भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन के पावन-प्रसंग उद्धृत हैं। विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा लिखित ‘भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन’ ग्रन्थ का अवलोकन करें।^६

भगवान् अरिष्टनेमि लोकोत्तर महापुरुष थे। जीवन के उपा काल से ही उनमें विरक्ति की भावना अंगड़ाइयाँ ले रही थी। नारी शक्ति उन्हें पराजित करने के लिए तुली हुई थी। वह हाव-भाव और विलास के द्वारा उनके वैराग्य को विचलित करना चाहती थी। श्रीकृष्ण की महारानियाँ विविध प्रकार की शृंगार चेष्टायें कर उन्हें संसार के प्रति आकर्षित करना चाहती थीं। मोह-मुग्ध रानियों की स्थिति पर चिन्तन करते हुए अरिष्टनेमि के मुख पर हल्की सी स्मित रेखा उभरती तो रानियाँ झूम उठतीं अपनी सफलता पर! वे यह कल्पना करतीं कि हमने इनके हृदय को जीत लिया है। पर अरिष्टनेमि तो हिमालय की तरह अडोल थे।

भगवान् अरिष्टनेमि के युग का हम अध्ययन करें तो सूर्य के प्रकाश की भाँति यह स्पष्ट होगा कि उस युग में क्षत्रिय-गण मांस और मदिरा के पीछे पागल बने हुए थे। वे उसे अपना गौरव मानते थे। अरिष्टनेमि के विवाह के पावन-प्रसंग पर पशुओं को एकत्रित किया गया। हिंसा की इस पैशाचिक प्रवृत्ति की ओर जन-मानस का ध्यान केन्द्रित करने के लिए तथा क्षत्रियों को मांस-भक्षण से विरत करने के लिए वे बिना विवाह किये ही लौट गये। उनका यह लौटना क्षत्रियों के पापों का प्रायश्चित्त था। उसका अद्भुत प्रभाव बिजली की भाँति हुआ। उससे सारा समाज विचलित हो उठा। अरिष्टनेमि के त्याग ने मानव समाज को नया मार्गदर्शन दिया। जो मानव अपनी क्षणिक तृप्ति के लिए दूसरे जीवों के जीवन के साथ खिलवाड़ करते थे, उन्हें आत्मालोचन की प्रेरणा मिली कि हम किसी भी प्राणी को कष्ट न देंगे। भगवान् अरिष्टनेमि का यह अपूर्व उद्बोधन सभी प्राणियों के लिए वरदान था।

मदिरा ने ही द्वारिका का विनाश किया था। मदिरा के विरोध में अरिष्टनेमि ने जोरदार स्वर बुलन्द किया, जिसके फलस्वरूप द्वारिका में मदिरा-पान बिल्कुल ही बन्द हो गया। अरिष्टनेमि अध्यात्म जगत के तेजस्वी सूर्य थे। कर्मयोगी श्रीकृष्ण

१. स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड

२. प्रभास पुराण ४६-५०.

३. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १४६, श्लोक ५०-६२.

४. अन्नल्स ऑफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पत्रिका जिल्द २३, पृष्ठ १२२.

५. “भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन”—ले० देवेन्द्र मुनि शास्त्री,

प्रका० तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राज०)

अब किसी को भी क्षति नहीं पहुँचायेगा। भगवान् महावीर ने चण्डकौशिक नाग का उद्धार किया तो तथागत बुद्ध ने चण्डनाग पर विजय पताका फहराई। घटना समान होने पर भी दोनों की प्रक्रिया और शैली में अत्यधिक अन्तर है। महावीर की घटना अधिक प्रभावोत्पादक है। महापुरुष स्नेह, सद्भावना, प्रेम, कृपा और अहिंसा का अमृत वांटते हैं। वे राग, द्वेष, ईर्ष्याहृषी नागों के भयंकर विष से स्वयं तो मुक्त होते ही हैं और विश्व को भी अभय बनाते हैं।

संगमदेव ने भगवान् महावीर को एक रात्रि में बीस भयंकर उपसर्ग दिये और उसके पश्चात् भी वह छह माह तक प्रभु के साथ रहकर उन्हें भयंकर कष्ट देता रहा, किन्तु भगवान् को वह विचलित न कर सका। यह प्रसंग भी आचारांग और कल्प-सूत्र आदि में नहीं है। किन्तु आवश्यकनियुक्ति,^१ विशेषावश्यकभाष्य^२ आदि अनेक श्वेताम्बर ग्रन्थों में यह प्रसंग मिलता है।

एक वार भगवान् महावीर ने घोर अभिग्रह ग्रहण किया—द्वय से—उड़द के वाकुले हों, शूर्प के कोने मे हो, क्षेत्र से—दाता का एक पैर देहली के अन्दर व एक बाहर हो, काल से—भिक्षाचरी की अतिक्रान्त बेला हा, भाव से—राज्यकन्या हो, दासत्व प्राप्त हो, शृंखला-बद्ध हो, सिर से मुण्डित हो, तीन दिन की उपोसित हो, ऐसे संयोग में मुझे भिक्षा लेना है, अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा नहीं लेना है।^३

कठोरतम प्रतिज्ञा को ग्रहण कर भगवान् महावीर कोशाम्बी की झोंपड़ियों से लेकर उच्च अट्टालिकाओं में पधारते, पर विना कुछ लिये ही लौट जाते। पाँच मास और पच्चीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनकी मुख-मुद्रा उसी तरह तेजोदीप्त थी। अन्त में चन्दनवाला के हाथ से भगवान् का अभिग्रह पूर्ण हुआ।^४

भगवान् महावीर के साधनाकाल में प्रविष्ट होते ही प्रथम उपसर्ग भी ग्वाले ने दिया था एवं अन्तिम उपसर्ग भी ग्वाले के द्वारा दिया गया। ग्वाले ने भगवान् महावीर के कानों में कीलें (कांस्य की तीक्ष्ण शलाकाएँ) ठाँकी। उन शलाकाओं को कोई न देख ले, अतः उनका वाह्य भाग छेद दिया। प्रभु को अत्यधिक वेदना होने पर भी वे पूर्ण शान्त एवं प्रसन्न थे। खरक वैद्य ने जब भगवान् ध्यानस्थ थे, तब शरीर पर तेल का मर्दन किया और सँडासी से पकड़कर शलाकायें निकालीं। कानों से रक्त की धारा प्रवाहित हुई। वैद्य ने 'संरोहण' औषधि से रक्त को बन्द कर दिया।^५ भगवान् महावीर को जो शताधिक उपसर्ग प्राप्त हुए, उन सभी उपसर्गों में यह उपसर्ग सबसे बड़ा था।^६ ग्वाले की तांत्र अशुभ भावना होने से वह मरकर सातवीं नरक में गया और वैद्य खरक की प्रशस्त भावना होने से वह देवलांक का अधिकारी बना।^७

आवश्यकनियुक्ति के अनुसार अन्य तीर्थकरों की अपेक्षा महावीर का तपःकर्म अधिक उत्कृष्ट था।^८ बारह वर्ष और तेरह पक्ष की लम्बी अवधि में केवल तीन सौ उनपचास (३४६) दिन भगवान् ने आहार ग्रहण किया और शेष दिन निजल और निराहार रहे।^९

संक्षेप में भगवान् महावीर का तपःकर्म इस प्रकार रहा^{१०}—

एक छः मासी तप	ती चातुर्मासिक
एक पाँच दिन न्यून छः मासी	दो त्रिमासिक

१. आवश्यकनियुक्ति ३००

२. विशेषावश्यकभाष्य १६३२

३. आवश्यकचूर्ण ३१६-३१७

४. आवश्यकचूर्ण ३१६.

५. आवश्यकचूर्ण ३२२.

६. (क) अहवा जहन्नगाण उवरि कडपूयणासीतं, मज्झिमाण काल-चक्कं, उक्कोसग्गण उवरि मत्तुद्धरणं !

—आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ ३२२

(ख) महावीर चरियं ७/२५०.

७. एवं गोवेण आरद्धा उवसग्गा गोवेण चैव निट्ठिता। गोवो सत्तभिगतं। खरतो य दियलांगं तिच्चमपि उदीरत्तं नाचि मुट्ठभावा।

—आवश्यकचूर्ण, पृष्ठ ३२२

८. उग्गं च तवोकम्मं विसेसओ वड्डमाणस्स।

—आवश्यकनियुक्ति

९. (क) तिण्णि मत्ते दिवसाणं अउणापण्णे व पारणाकालो उक्कुडुअणि नेज्जाणं टिनपडिमाणं मते ग्रहणं।

—आवश्यकनियुक्ति ४१०

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १६६६.

१०. (क) आवश्यकनियुक्ति ४०६-४१६.

(ख) विशेषावश्यकभाष्य १६६१ ने १६६२.

(ग) आ० हरिभट्टीयावृत्ति २२७-२२८.

(घ) आवश्यक मन्. वृत्ति २६२-२६६

(ङ) महावीर चरियं (नुपचन्द्र) ३/२५०.

(च) विपट्टि १०/६, ६५२-६५६.

दो सार्धद्विमासिक
छह द्विमासिक
दो सार्धमासिक
वारह मासिक अर्थात् एक-एक मास का तप (१२ मासखमण किये)
वहत्तर पाक्षिक
एक भद्र प्रतिमा (दो दिन)

एक महाभद्र प्रतिमा (चार दिन)
एक सर्वतोभद्र प्रतिमा (दस दिन)
दो सौ उनतीस छट्ठभक्त
वारह अष्टभक्त
तीन सौ उनपचास दिन पारणे के
एक दिन दीक्षा का ।

आचारांग सूत्र के अनुसार भगवान् महावीर ने दशमभक्त आदि तपस्यार्थे भी की थीं ।^१

कुल मिलाकर भगवान् महावीर ने अपने साधक जीवन के ४५१५ दिनों में से केवल ३४६ दिन आहार ग्रहण किया तथा ४१६६ दिन निर्जल तपश्चरण किया ।

आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर की विहार-चर्या का सजीव निरूपण है । भगवान् महावीर की तप के साथ ध्यान-साधना अनुस्यूत थी । भगवान् एक-एक प्रहर तक तिरछी भीत पर आँखें गड़ाकर ध्यान करते थे । “तिरिय भित्ति चखुमासज्ज अंतसो ज्ञाति” यहाँ पर जो ‘तिरियभित्ति’ शब्द आया है, वह चिन्तनीय है । आचार्य अभयदेव ने भगवती में ‘तिर्यग्भित्ति’ का अर्थ प्राकार, वरण्डिका आदि की भीत अथवा पर्वतखण्ड किया है ।^२ बौद्ध साहित्य में भी वर्णन है कि साधक भित्ति पर दृष्टि टिका कर ध्यान करे । जब भगवान् तिर्यग्भित्ति पर दृष्टि जमाकर ध्यान करते थे तब उनकी आँखों की पुतलियाँ ऊपर उठ जाती थीं, जिन्हें निहार कर बालकों की मण्डली भयभीत हो जाती थी, और वह बच्चों की टोली मिलकर इस प्रकार चिल्लाती कि अन्य सामान्य साधक ध्यान नहीं कर पाता पर भगवान् विघ्न उपस्थित होने पर भी ध्यान में मग्न रहते ।^३ भगवान् महावीर एकान्त स्थान न मिलने पर जब गृहस्थों तथा अन्यतीर्थिकों के संकुल स्थान पर ठहरते तो उनके अद्भुत रूप-यौवन को देखकर कामातुर स्त्रियाँ उनसे प्रार्थना करतीं और ध्यान में विघ्न डालतीं ।^४ महावीर अब्रह्म का सेवन न कर ध्यान में लीन रहते थे । कई बार विविध प्रकार के प्रश्न पूछकर लोग उनके ध्यान में विघ्न डालते, पर भगवान् किसी से कुछ नहीं कहते थे । यदि एकान्त स्थान मिल जाता तो महावीर वहाँ चले जाते और न मिलता तो भीड़-संकुल स्थान में भी अपने आपको एकाकी बनाकर ध्यानस्थ रहते ।^५ जो भगवान् को अभिवादन करते तो भी महावीर आशीर्वाद प्रदान नहीं करते थे । कुछ अभागों ने प्रभु को डण्डों से पीटा, उन पर पागल कृत्ते छोड़े तो भी उन्होंने शाप नहीं दिया । समौन रहकर ध्यान में मग्न रहे । यह स्थिति सामान्य साधक के लिए बहुत ही कठिन थी । वीणा-वादकों ने भगवान् से कहा—जरा ठहरो ! हमारा वीणावादन सुनकर आगे बढ़ो । कितने ही नृत्य-संगीत, दण्ड-युद्ध, मुष्टि-युद्ध आदि मनोरंजक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए निवेदन करते पर भगवान् प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थितियों को ध्यान में विघ्न समझकर उनसे विरत रहते तथा अपने ध्यान में स्थित रहते ।^६

भगवान् महावीर की संयम-साधना के मुख्य आठ अंग थे—शरीर संयम, मन संयम, आहार संयम, वासस्थान-संयम, इन्द्रिय संयम, निद्रा-संयम, क्रिया-संयम और उपकरण संयम । विविध प्रकार के आसन, चाटक आदि सहज-योग की क्रियाओं से शरीर को सुस्थिर, सन्तुलित, मोह-ममता रहित, स्फूर्तिवान रखने का प्रयास करते । भगवान् की निद्रा, संयम-विधि अद्भुत थी । वे ध्यान के द्वारा निद्रा संयम करते थे । निद्रा पर विजय प्राप्त करने के लिए वे कभी खड़े होते, कभी चंक्रमण करते । वे ऐसा उपाय करते, जिससे निद्रा उन्हें परेशान नहीं करे ।^७

भगवान् को वाम-स्थानों में प्रायः ये उपसर्ग सहन करने पड़ते । कभी सांप, नेत्रला उन्हें काटते, कभी गिद्ध आदि पक्षी उनका मांस नोंचते, कभी चींटी, डोंग, मच्छर, मकड़ी आदि उन्हें संत्रस्त करते, कभी शून्य गृह में तस्कर व लम्पट पुरुष उन्हें सताते, कभी नशस्त्र ग्रामरक्षक उन पर आक्रमण करते, कभी कामासक्त ललनाएँ हाव-भाव-कटाक्ष द्वारा उन्हें अपनी ओर आर्काषित करने का प्रयास करतीं, कभी देव, मानव एवं तिर्यचों के विविध उपसर्ग उपस्थित होते और कभी एकाकी समझकर भगवान् को विविध प्रकार के ऋषपदांग प्रश्न पूछकर ध्यान से विचलित करने का प्रयास करते ।^८

१. छट्ठेण एगया भुञ्जे अदुवा अट्ठमेण दममेण । दुवाणसमेण एगया भुञ्जे पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ।।

—आचारांग १/६/४/७.

२. भगवतो मूव वृत्ति, पत्र ६४३-६४४.

३. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२.

४. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२.

५. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०२.

६. आयारो—मुनि नथमन, पृ० ३४३.

७. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०७-३०८.

८. आचारांग—शीला० टीका, पत्र ३०३.

भगवान् को ठहरने के लिए कभी भयंकर दुर्गन्ध-युक्त स्थान मिलता, कभी ऊबड़-खाबड़ विषम स्थान मिलता। कभी वन्द स्थान के अभाव में सर्दों का प्रकोप उन्हें परेशान करता। इस प्रकार साढ़े बारह वर्ष तक अहर्निज यत्नशील, अप्रमत्त होकर भगवान् महावीर ध्यानस्थ रहे।

आवश्यकचूर्ण के अनुसार भगवान् महावीर ने चिन्तन किया कि मुझे बहुत से कर्मों की निर्जरा करनी है, अतः लाड़ देश की ओर जाऊँ, जिससे अधिक कर्म-निर्जरा के निमित्त उपलब्ध होंगे। ऐसा विचारकर भगवान् लाड़ प्रदेश में पधारे। ऐतिहासिक अन्वेषणा के आधार पर यह पता चला है कि वर्तमान में बीर-भूम, सिंह-भूम तथा मान-भूम (धनवाद आदि जिले) एवं पश्चिम बंगाल के तमलूक, मिदनापुर, हुगली, तथा वर्धवान जिले का हिस्सा लाड़ देश माना जाता था। लाड़ देश पर्वतों, झाड़ियों और सघन जंगलों के कारण अत्यन्त दुर्गम था। उस प्रदेश में घास अत्यधिक होती थी। चारों ओर पर्वतों से घिरा होने के कारण सर्दों और गर्मों वहाँ अधिक पड़ती थी। वर्षा ऋतु में पानी अधिक होने से दलदल हो जाती, जिससे डांस, मच्छर जलोंका प्रभृति अनेक जीव-जन्तु पैदा हो जाते थे। यहाँ नगर कम थे और गाँवों में वस्ती भी कम थी। वहाँ के लोग असभ्य थे। साधु को देखते ही उन पर टूट पड़ते। वहाँ पर तिल भी नहीं थे और गायें भी बहुत कम थीं। इसलिए घी, तेल मुलभ नहीं था। लोग हखा-सूखा खाते थे, अतः वे स्वभाव से भो हखे थे।^१ वात-वात में उत्तेजित होकर गाली देते, झगड़ा करते। वहाँ पर कुत्तों का अधिक उपद्रव था, वे कुत्ते बड़े खूँखार थे। अन्य तीर्थिक भिक्षु उनसे वचने के लिए लाठी और डण्डा रखते थे; पर भगवान् पूर्ण अहिंसक थे। उनके पास लाठी आदि नहीं थी, इसलिए वे निःशंक होकर भगवान् पर हमला करते, कितने ही अनार्य तो छू-छू करके कुत्तों को बुलाते तथा भगवान् को काटने के लिए उकसाते।^२ दुष्कर और दुर्गम परीपह एवं उपसर्गों को भगवान् महावीर शांति से सहन करते।

जिन साधकों की चेतना का स्तर निम्न होता है, उन्हें शारीरिक कष्टों की अनुभूति अधिक होता है। किन्तु भगवान् महावीर की चेतना का स्तर बहुत ही उच्च था। वे चाहे जितना कठोर तप करते लेकिन साथ में समाधि का सतत प्रेक्षण करते रहते। वे जिस किसी भी क्रिया को करते, उसमें पूर्णतया तन्मय हो जाते। न अतीत की स्मृति सताती और न भविष्य की कल्पना ही परेशान करती। वे केवल वर्तमान में रहकर ही उस क्रिया को सर्वात्मना समर्पित होकर करते। वे जब चलते थे तो इधर-उधर झाँकते भी नहीं थे और न अन्य बातों पर चिन्तन ही करते। वे जब खाते थे तो खाते ही थे, स्वाद की ओर ध्यान नहीं देते और न वातचीत ही करते। वे इतने अधिक आत्म-विभोर थे कि उन्हें भूख-प्यास, सर्दों-गर्मों आदि की कोई भी अनुभूति नहीं होती। उनकी चेतना की समग्र धारा आत्मा की ओर प्रवाहित थी। इस प्रकार भगवान् महावीर की साधना का रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में है।

साढ़े बारह वर्ष के मुदीर्घकाल की साधना के पश्चात् भगवान् को केवलज्ञान एवं केवलदर्शन का दिव्य आलोक प्राप्त हुआ। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने आकर कैवल्य-महोत्सव उत्सान के क्षणों में सम्पन्न किया।

औपपातिक सूत्र में आये हुए भगवान् महावीर के शरीर का शब्द चित्र भी इस ग्रन्थ में निर्दिष्ट है और साथ ही भगवान् महावीर के अन्तेवासी श्रमणों का भी निरूपण हुआ है। प्रभु महावीर ने एक मास व्राम रात्रि व्यतीत होने पर वर्षावास पनुपणा की। भगवान् के जिन-जिन क्षेत्रों में वर्षावास सम्पन्न हुए, उनकी सूची भी प्रस्तुत ग्रन्थ में दी गई है। उनका परिनिर्वाण, अन्तिम उपदेश, गौतम को केवलज्ञान, नव मल्लवी, नव निच्छवी राजाओं के द्वारा किये गये पाँच और द्रव्य-उद्योत का भी निरूपण हुआ है। निर्वाण के पश्चात् भस्मग्रह और उसका प्रभाव, महावीर का जिप्य समुदाय, महावीर के आठ राजा जिप्य हुए थे, महावीर के समय तीर्थंकर नामकर्म का नव व्यक्तियों ने अनुबन्धन किया था। उनके तीर्थ में नौ प्रवचन निह्वन हुए थे। इस प्रकार ज्ञान साहित्य में आये हुए महावीर चरित्र को प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित किया गया है। महावीर के तेजस्वी व्यक्तित्व को समझने के लिए उपर्युक्त प्रसंग अत्यन्त उपयोगी है।

महापद्म-चरित्र :

मम्राट श्रेणिक महावीर प्रभु के परमभक्त थे। उन्होंने भगवान् महावीर के तीर्थ में तीर्थंकर नामकर्म का अनुबन्धन किया था। वे नरक से निकलकर आगामी उत्सर्पिणी काल में तीर्थंकर पद को प्राप्त करेंगे। उनका रत्नों की वर्षा होने के कारण पिता ने 'महापद्म' नाम रखा। दूसरा नाम 'देवसेन' और तीसरा नाम 'विमलराहन' रखा गया। तीन वर्ष श्रद्धाधर्म में रह कर ३ धर्मण करेंगे। कुछ अधिक बारह वर्ष तक उपसर्गों को सहन कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। वे पञ्चान भावना मतिन पात्र महापद्म

१. आश्वकचूर्ण, पृष्ठ ३१८.

२. आचार्य—तीर्थंकराचार्य योग २५-३१८

का तथा षट्जीवनिकाय का उपदेश देंगे। भगवान् महावीर की तरह ही उनके भी नी गण तथा ग्यारह गणधर होंगे। उनकी बहत्तर वर्ष की आयु होगी। महापद्म तीर्थकर के समय आठ राजा दीक्षित होंगे। इस प्रकार महापद्म का चरित्र विस्तार के साथ निरूपित है।

स्थानांग और समवायांग में आये हुए विविध तीर्थकरों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ भी इसमें दी गई हैं।

भरत-चक्रवर्ती :

भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत थे, जिनके नाम पर ही 'भारतवर्ष' का नामकरण हुआ है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भरत-चक्रवर्ती का वर्णन करते हुए लिखा है—भरत-चक्रवर्ती और देव के नाम से 'भारतवर्ष' नामकरण हुआ। वसुदेव हिण्डो' में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है। वायुपुराण,^२ ब्रह्माण्डपुराण,^३ आदिपुराण,^४ वाराहपुराण,^५ वायुपुराण,^६ लिंगपुराण,^७ स्कन्दपुराण,^८ मार्कण्डेयपुराण,^९ श्रीमद्भागवतपुराण^{१०}, आग्नेयपुराण^{११}, विष्णुपुराण^{१२}, कूर्मपुराण^{१३}, शिवपुराण^{१४}, नारदपुराण^{१५} प्रभृति ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से संकेत है कि ऋषभपुत्र भरत के नाम से ही प्रस्तुत देश का नामकरण 'भारतवर्ष' हुआ। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन^{१६} का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम०ए०^{१७} व रामधारीसिंह दिनकर^{१८} का भी यही मन्तव्य है।

भरत महान् प्रतिभा सम्पन्न, प्रतापशाली एवं परम यशस्वी सम्राट् थे। अन्य सम्राटों का जीवन जहाँ भौतिक दृष्टि से महान् होता है, वहाँ भरत चक्रवर्ती भौतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु आध्यात्मिक दृष्टि से भी महान् थे। जिस दिन भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ, उसी दिन भरत की आयुधशाला में चक्र-रत्न उत्पन्न हुआ। ये समाचार सुनकर उन्होंने मुकुट के

१. वसुदेवहिण्डो, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १८६.
२. वायुपुराण ४५/७५.
३. ब्रह्माण्डपुराण, पर्व २/१४.
४. प्रमोदभरतः प्रेमनिर्भराबन्धुता तदा. तमाह भरतं भावि समस्त भरताधिपम् ।
तन्नाम्ना भारतवर्षमिति ह्यासेज्जनास्पदं, हिमाद्रौ रासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्र भूतामिदं ॥ —आदिपुराण पर्व १५/१५८-५९.
५. नाभेर्महोदध्यां पुत्रमजनयनृषभ नामानं तस्य भरतो पुत्रञ्च तावदग्रजः तस्य भरतस्य पिता ऋषभः—हेमाद्रौर्दक्षिणं वर्षमहद् भारतं नाम शशास ।
—वाराहपुराण ७४/४९.
६. हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् । तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।
—वायु महापुराण ३३/५२.
७. हिमाद्रौ दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् । तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥
—लिंगपुराण ४६/२४.
८. नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत् । तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ॥
—स्कन्दपुराण, कौमारखण्ड ३७/५७.
९. हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ । तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥
—मार्कण्डेयपुराण—५०/४१.
१०. (क) येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणः । आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशति ॥
(ख) अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत् आरभ्य दिशति ।
—श्रीमद्भागवतपुराण ५/४.
११. भरताद् भारतं वर्षं ।
—आग्नेयपुराण १०७/१२.
१२. ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशताग्रजः । तस्य राज्यं स्वधर्मेण तथेष्टं वा विविधान् मखान् ।
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथ्वीपतिः । तपसे स महाभागः पुलहस्थाश्रमं ययौ ।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
—विष्णुपुराण, अंश २, अ० १/२८-२९/३२.
१३. ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः । सोभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथ्वीपतिः ॥
—कर्मपुराण ४१/३८.
१४. खण्डानि कल्पयामास नवान्यपि हिताय च । तत्राऽपि भरते ज्येष्ठं खण्डेऽस्मिन् स्पृहणीयके ।
तन्नाम्ना चैव विख्यातं खंडं च भारतं तदा । सर्वेष्वविचरखंडेषु श्रेष्ठं भरतमुच्यते ॥
—शिवपुराण ५२/८५.
१५. आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठो, भरतो नाम भूपतिः । आर्षभो यस्य नाम्नेदं, भारतं खण्डमुच्यते ॥
—नारदपुराण ४८/५.
१६. Brahmanical puranas prove Rishabha to be the father of that Bharat, from whom India took to name "Bharatvarsha."
—Kalpasutra Introd., P. XVI.
१७. ऋषियों ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा ।
—प्राचीन भारत, पृष्ठ ५.
१८. भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा ।
—संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ १३६.

अतिरिक्त अन्य सारे पहनने के आभूषण आयुधशाला के रक्षक को प्रदान किये। पहले उन्होंने भगवान को बन्दन कर केवलज्ञान महोत्सव मनाया उसके पश्चात् स्वयं आयुधशाला में जाकर चक्ररत्न को प्रणाम किया एवं अष्टान्हिका महान्मव मनाया। एक हजार देवों से सुसेवित चक्र-रत्न आकाश-मार्ग से चलकर विनीता नगरी के मध्य भाग में होता हुआ गंगा के दक्षिणी तट से मागध तीर्थ की ओर बढ़ा। चक्र-रत्न द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण कर भरत चक्रवर्ती पीछे चले। मागध तीर्थ पर जाकर उन्होंने लवण समुद्र में प्रवेश किया और वाण छोड़ा। नामांकित वाण बारह योजन की दूरी पर मागध तीर्थाधिपति देव के वहाँ गिरा। पहले वह क्रुद्ध हुआ पर भरत चक्रवर्ती नाम पढ़कर वह उपहार लेकर पहुँचा। इस तरह चक्र-रत्न के पीछे चलकर वरदाम तीर्थ कुमार देव को अधीन किया, उसके बाद प्रभासकुमार देव, सिन्धु देवी, वैताद्वयगिरि कुमार, कृतमालदेव आदि को अधीन करते हुए भरत सम्राट ने पट्टखण्ड पर विजय-वैजयन्ती फहराई।

चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न और नौ निधियाँ होती हैं। चौदह रत्न इस प्रकार हैं—

१. चक्र-रत्न—यह आयुधशाला में उत्पन्न होता है। सेना के आगे प्रयाण करता हुआ चक्रवर्ती को पट्टखण्ड नाथने का मार्ग दिखाता है। चक्रवर्ती उसकी सहायता से शत्रु का शिरच्छेदन भी कर सकता है।

२. छत्र-रत्न—यह रत्न बारह योजन लम्बा और चौड़ा होता है। छत्राकार के रूप में सेना की सर्दी, वर्षा एवं धूप से रक्षा करता है। छत्री की भाँति उसको समेटा भी जा सकता है।

३. दण्ड-रत्न—यह विपम मार्ग को सम बनाता है। वैताद्वय पर्वत की दोनों गुफाओं के द्वार खोलकर उत्तर भारत को ओर चक्रवर्ती को पहुँचाता है। दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से वृषभाचल पर्वत पर नाम लिखने का कार्य भी यह रत्न करता है।

४. असि-रत्न—यह रत्न पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा एवं आधा अंगुल मोटा होता है। अपनी तीक्ष्ण धार से यह रत्न दूर में रहे हुए शत्रुओं को भी नष्ट कर डालता है।

५. मणि-रत्न—सूर्य और चन्द्रमा की तरह यह रत्न अन्धकार को नष्ट करता है। इस रत्न को मस्तक पर धारण कर लेने से मनुष्य, देव तथा तिर्यच कृत उपसर्ग नहीं होता है। हस्तिरत्न के दक्षिण कुम्भस्थल पर रख देने से अवश्यमेव विजय होती है।

६. काकिणी-रत्न—यह रत्न चार अंगुल प्रमाण का होता है। इस रत्न से चक्रवर्ती वैताद्वय पर्वत की गुफा में उनपचास मण्डल बनाते हैं। एक-एक मण्डल का प्रकाश एक-एक योजन तक फैलता है और इसी रत्न से चक्रवर्ती ऋषभकूट पर्वत पर अपना नाम अंकित करते हैं।

७. चर्म-रत्न—दिग्विजय के समय नदियों को पार कराने में यह रत्न नौका के रूप में बन जाता है और स्नेच्छ (अनार्य) नरेशों के द्वारा जल-वृष्टि कराने पर यह रत्न सेना की सुरक्षा करता है।

८. सेनापति-रत्न—यह सेना का प्रमुख होता है। वासुदेव के समान शक्ति-मम्पन्न होता है। यह चार गुणों पर विजय करता है।

९. गाथापति-रत्न—यह रत्न चक्रवर्ती की सेना के लिए उत्तम भोजन की व्यवस्था करता है। दिगम्बर ग्रन्थों में गाथापति रत्न को गृहपति-रत्न कहा है। उसका नाम है—कामवृष्टि गृहपति रत्न !

१०. बर्धकी-रत्न—यह चक्रवर्ती की सेना के लिए आवास-व्यवस्था करता है। उन्मग्नजना, निमग्नजना आदि नदियों पर पुल बांधने का काम भी यह रत्न करता है।

११. पुरोहित-रत्न—यह ज्योतिषशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्त-शास्त्र, लक्षण और ध्वंजन आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। इसी उपद्रवों को ज्ञान करता है।

१२. स्त्री-रत्न—यह सर्वांग सुन्दरी होती है। नदी बहती बनी रहती है। उसे नौका नौकावली कर्म का उदय होता है। इसके प्रति चक्रवर्ती का अत्यधिक राग होता है।

१३. अश्व-रत्न—यह श्रेष्ठ अश्व एक क्षण में नौ योजन तार जाने की शक्ति रखता है। शीघ्रतः जल, पशु, मनुष्य आदि विपम स्वयं को भी महज पार कर जाता है। भरत चक्रवर्ती के अश्व-रत्न का नाम समशीतो वा है।

१४. हस्ति-रत्न—यह ऐरावत हाथी की तरह सर्वगुणमन्वत होता है।

प्रत्येक रत्न के एक-एक हजार देव रक्षक होते हैं। चौदह रत्नों के चौदह हजार देव रक्षक हैं। चौदह रत्नों के नाम प्रत्यक्ष होते हैं।

वैदिक-साहित्य के चौदह रत्न :

१. हाथी २. घोड़ा ३. रथ ४. स्त्री ५. वाण ६. भण्डार ७. माला ८. वस्त्र ९. वृक्ष १०. शक्ति ११. पाश १२. मणि १३. छत्र और १४. विमान ।

चक्रवर्ती की नव निधियाँ :^१

सम्राट् भरत के पास नौ निधियाँ थीं जिनसे वे मनोवांछित वस्तुएँ प्राप्त करते थे । निधि का अर्थ खजाना है । आचार्य अभयदेव के अनुसार चक्रवर्ती को अपने राज्य के लिए उपयोगी सभी वस्तुओं की प्राप्ति इन नौ निधियों से होती थी । इसलिए इन्हें नव निधान के रूप में गिनाया है । (स्थानांग वृत्ति पत्र ४२६) । वे नव निधियाँ निम्न प्रकार हैं—

१. नैसर्गनिधि—यह निधि ग्राम-नगर-द्रोणमुख-मंडप आदि स्थानों के निर्माण में सहायक होती है ।
२. पांडुकनिधि—मान-उन्मान और प्रमाण आदि का ज्ञान कराती है तथा धान्य और बीजों को उत्पन्न करती है ।
३. पिंगलनिधि—यह निधि मनुष्य एवं तिर्यचों के सर्वविध आभूषणों की विधि का ज्ञान कराने वाली तथा योग्य आभरण प्रदान करती है ।
४. सर्वरत्ननिधि—इस निधि से वज्र, वैडूर्य, मरकत, माणिक्य, पद्मराग, पुष्पराज आदि बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं ।
५. महापद्मनिधि—यह निधि सभी प्रकार के शुद्ध एवं रंगीन वस्त्रों की उत्पादिका है । किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में इसका नाम पद्मनिधि है ।
६. कालनिधि—वर्तमान, भूत, भविष्य, कृपि कर्म, कलाशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि का यह निधि ज्ञान कराती है ।
७. महाकालनिधि—सोना, चांदी, मोती, प्रवाल, लोहा आदि की खानें उत्पन्न कराने में सहायक होती हैं ।
८. माणवनिधि—कवच, ढाल, तलवार आदि विविध प्रकार के दिव्य अयुध, युद्धनीति तथा दण्डनीति आदि की जानकारी कराने वाली ।

९. शंखनिधि—विविध प्रकार के वाद्य-काव्य-नाट्य-नाटक आदि की विधि का ज्ञान कराने वाली ।

ये सभी निधियाँ अविनाशी होती हैं, दिग्विजय से लौटते हुए गंगा के पश्चिमी तट पर, अट्ठमतप के तदुपरान्त चक्रवर्ती सम्राट् को प्राप्त होती हैं । प्रत्येक निधि एक-एक हजार यक्षों से अधिष्ठित होती हैं । इनकी ऊँचाई आठ योजन, चौड़ाई नौ योजन तथा लम्बाई दस योजन होती है । ये सभी निधियाँ स्वर्ण और रत्नों से परिपूर्ण होती हैं, चन्द्र और सूर्य के चिह्नों से चिह्नित होती हैं, तथा पर्व्यापम की आयु वाले नागकुमार जाति के देव इनके अधिष्ठायक होते हैं ।^२

ये नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति-रत्न के अधीन थीं एवं चक्रवर्ती के समस्त मनारथों को सदैव पूर्ण करती थीं ।^३ हिन्दू धर्मशास्त्रों में इन नव-निधियों के नाम इस प्रकार से बताये हैं—

१. महापद्म २. पद्म ३. शंख ४. मकर ५. कच्छप ६. मुकुन्द ७. कुन्द ८. नील और ९. खर्व । ये निधियाँ कुबेर का खजाना भी कही जाती हैं ।

भरत महाराज ने माठ हजार वर्षों की अवधि में पट् खण्ड पर विजय-पताका फहरा कर चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए विनीता नगरी की ओर प्रस्थान किया । बत्तीस हजार मुकुटधारी महाराजा भरत के अधीन थे । विनीता नगरी चिर काल के बाद अपने स्वामी को पाकर फूली नहीं ममा रही थी । पट्खण्ड पर विजय करने के कारण एक विशाल अभिषेक मण्डप तैयार किया गया और भरत महाराज ने आभियोगिक देवों से कहा—मेरा महाभिषेक करो । आभियोगिक देवों ने भरत महाराज का अभिषेक किया । बत्तीस हजार राजाओं ने तथा सेनापति रत्न, सार्धवाह रत्न, वार्धकि रत्न, पुरोहित रत्न, आदि ने भी भरत का महाभिषेक किया तथा अपने कर्तव्य का पालन किया ।

भरत महाराज एक बार स्नानादि में निवृत्त होकर शीशमहल में पहुँचे । शीशमहल में सिंहासन पर आसीन हुए । चारों ओर अपना रूप देखकर अन्तर्गम हो और आकृष्ट हुए । शुद्ध परिणामों की धारा प्रवाहित हुई । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार भाशे को तीव्रता से भरत महाराज को केवलज्ञान हो गया । आवग्यकनियुक्ति के अनुसार शीशमहल में भरत अपनी दिव्य

१. (क) शिपिण्ड १४.

(ख) अनाग सूत्र, टाणा २. सूत्र १२.

(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चक्रवर्ती अधिकार.

(घ) शिपिण्ड १४.

(ङ) भावनन्दोदितरचित शास्त्रमार समुच्चय, सूत्र १२, पृष्ठ ७४.

२. शिपिण्ड १४.

३. हरिवंशपुराण—जिनमेन, ११/१२३.

३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, अध्याय ३.

४. आवग्यकनियुक्ति, गाथा ४३३.

छटा को देखकर विस्मित थे। उनकी दृष्टि अंगुलियों पर गिरी, एक अंगुली जो भाविहीन थी, क्योंकि उनमें से पहली हुई अंगुठी गिर गई थी। उन्होंने दूसरी अंगुलियों की अंगुठियाँ भी धीरे-धीरे निकालना प्रारम्भ किया और देखने लगे कि वे अंगुठियाँ कैसे लगती हैं? इस तरह उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये। वे सोचने लगे—शरीर का मोन्दर्य मेरा नहीं है, जो शरीर कुछ भागों पहले चमक रहा था, वह आभूषणों के अभाव में कान्तिहीन प्रतीत हो रहा है। भौतिक अलंकारों ने लदी हुई मुन्दरता कुद्विम और भ्रामक है। उनमें फँसकर मानव अपने शुद्ध स्वरूप को विस्मृत हो जाता है। इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन्हें केवलज्ञान हुआ। आवश्यकनिर्युक्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में यही अन्तर है कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में पहले केवलज्ञान होता है और उनके बाद भरत अपने वस्त्रालंकार उतारते हैं; जबकि आवश्यकनिर्युक्ति में वस्त्रालंकार उतारने के बाद केवलज्ञान होने का उल्लेख है।

आवश्यकनिर्युक्ति आदि में सम्राट भरत के जीवन से सम्बन्धित अन्य अनेक प्रेरक प्रसंग हैं। विस्तारभय से हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में चक्रवर्ती की विजय, और अन्य जानकारी स्थानांग और समवायांग सूत्र में उद्धृत की गई है।^१

बलदेव-वामुदेव :

बलदेव, वामुदेव ये दोनों भाई के रूप में होते हैं। तीनों बलदेव और तीनों वामुदेव तथा तीनों प्रतिवामुदेव उन प्रकार नन्दाईय विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। वामुदेव अर्धचक्री होते हैं। वे तीन खण्ड के अधिपति होते हैं। वे उत्तम पुण्य माने गये हैं। वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली और सुरूप होते हैं। वे कान्त, सौम्य, मुभग, प्रियदर्शी होते हैं। वे महाबली, अप्रतिहत और अपराजित होते हैं। शत्रुओं का अच्छी तरह से मर्दन करने वाले होते हैं। हजारों शत्रुओं के मान को एक क्षण में नष्ट कर देते हैं। वे दयालु, अमत्सर, अचपल और अचण्ड होते हैं। उनका स्वभाव बहुत ही मधुर होता है। उनकी वाणी गम्भीर, मृदु तथा मन्व्य होती है। उनके शरीर में अनेक शुभ लक्षण होते हैं। वे चन्द्र की तरह सौम्य, सूर्य के समान प्रचण्ड, प्रकाण्ड दण्डनीतिज्ञ, समुद्र के समान गम्भीर, युद्ध में दुर्द्धर तथा धनुर्धर होते हैं। वे राजवंश में तिलक के समान होते हैं। बलदेव के हाथ में हनु होता है और वामुदेव धनुष रखते हैं। वामुदेव शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते हैं। उनके मुकुट में श्रेष्ठ, उज्ज्वल, शुक्ल, विमल कीस्तुभमणि होती है और कान में कुण्डल होते हैं। उनकी आँखें कमल के समान होती हैं। उनके गले में एकावली हार होता है। शीवस्व का लांछन होता है तथा पंचरंगों के मुगन्धित फूलों की माला होती है। उनके अंगोपांग में आठ माँ प्रयस्त निह्नु होते हैं। उनके अंगोपांग सर्वांग मुन्दर होते हैं। बलदेव, नीले तथा वामुदेव पोले रंग के वस्त्र धारण करते हैं। बलदेव निदानरहित होते हैं तो वामुदेव निदानकृत होते हैं। बलदेव ऊर्ध्वगामी होते हैं तो वामुदेव अधोगामी होते हैं।^२ प्रतिवामुदेव को वामुदेव पराजित करते हैं और अन्त में स्वचक्र से ही प्रतिवामुदेव की मृत्यु होती है।^३

बलदेव, वामुदेव के पूर्वभव तथा सभी के नाम, माता-पिताओं के नाम आदि का निरूपण प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है। अथवा बलदेव अस्ती धनुष जँचे थे। विजय बलदेव त्रयोत्तर लाख वर्ष आयु भोगकर निद्रा हुए। मुश्रभ बलदेव उकावन लाख वर्ष मर्ग्य भोगकर निद्रा हुए। नन्दन बलदेव तंतीस धनुष जँचे थे तथा राम बलदेव दश धनुष जँचे थे।

इस तरह विपुल सामग्री बलदेव, वामुदेव के सम्बन्ध में दी गई है। अतामी उत्सर्पिणी काव में होने वाले प्रयत्न, वामुदेव तथा प्रतिवामुदेव का भी इसमें निरूपण हुआ है। इस प्रकार प्रथम स्कन्ध में उनमें पुरुषों की कथाएँ दी गई हैं।

महाबल :

द्वितीय स्कन्ध में धर्मणों की कथाएँ दी गई हैं। सर्वप्रथम महाबल का पवित्र-नारिय दिया गया है। महाबल विमलनाथ अरिहंत के समय में हुए। उनका जन्म हस्तिनापुर के बलराजा एवं प्रभावती की कुक्षि में हुआ। जब महाबल का और गर्भ में आया, तब माता प्रभावती ने मिह का स्वप्न देखा और विविध प्रकार के शोद्ध उन्मत्त हुए। जन्म देने पर माता ने बाली हृदय का आह्लाद करती जनों को मुक्त कर व्यक्त किया तथा विविध प्रकार के उन्मत्त मनाये। बलराजा का पुत्र होने से उनका नाम 'महाबल' रखा। औरधात्री, मञ्जन्धात्री, मण्डनधात्री, धीङ्कधात्री एवं अंजुधात्री उन पांच धात्रियों से सम्बन्धित पांच हुआ महाबल बचने लगा। सूर्य-दर्शन, जागरण, नामकरण, पुटनों के बल चन्तान, पैरों के चन्तान, अन्त-नील जल मन्मथ प्रणय

१. इसका सौक्ति—अनुसरनिकय (२, ११३) में बताया है कि चक्रवर्ती का चक्र मोड़ना नहीं है। उनमें पांच चक्रों का चक्र है—एक चक्र ही होता है, धर्म ही होता है, सर्वांगोत्तम ही होता है। काव्य ही होता है और अरिण्ड ही काव्य काव्य ही होता है।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, भाषा २१५.

३. आवश्यकनिर्युक्ति, भाषा २१५.

प्रास बढ़ाना, सम्भाषण करना, कान विधाना, वर्ष गाँठ मनवाना, चोटी रखवाना, उपनयन करना, आदि ब्रह्म से गर्भ धारण, जन्म-महोत्सव आदि विविध प्रसंगों को लेकर विविध प्रकार के कौतुक किये ।

संस्कार चिन्तन :

जैनधर्म की आचार-संहिता में ब्राह्म विधि-विधानों का निरूपण कम हुआ है जबकि ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थों में संस्कार-विधियों का विस्तार से निरूपण है । गौतम धर्मसूत्र,^१ आपस्तम्भ धर्मसूत्र^२ और वसिष्ठ धर्मसूत्र,^३ में विस्तार से वर्णन है । स्मृतियों में संस्कारों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है । गौतम ने चालीस संस्कारों का वर्णन किया है । वेद्यानस ने अठारह शारोरिक संस्कारों के नाम दिये हैं । अंगिरा ने पच्चीस संस्कारों के नाम बताये हैं । व्यास ने सोलह संस्कार बताये हैं ।^४ मनु, याज्ञवल्क्य और विष्णु धर्मसूत्र में संख्या का निर्देश नहीं है । निबन्धों में मुख्य रूप से सोलह संस्कार बताये हैं । वे इस प्रकार हैं:—

१. गर्भाधान २. पुंसवन ३. सीमन्तोन्नयन ४. विष्णुवलि ५. जातकर्म ६. नामकरण ७. निष्क्रमण ८. अन्नप्राशन ९. चोल १०. उपनयन ११-१४. वेदव्रत चतुष्टय १५. समावर्तन और १६. विवाह । स्मृतिचन्द्रिका आदि में प्रकारान्तर से अन्य नाम भी मिलते हैं । गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में एवं रघुनन्दनकृत संस्कार तत्त्व, नीलकण्ठकृत संस्कार मयूख, मित्रमिश्र कृत संस्कार प्रकाश, अनन्तदेवकृत संस्कार कौस्तुभ और गोपीनाथकृत संस्कार रत्नमाला, आदि ग्रन्थों में विराट सामग्री भरी पड़ी है, अतः विशेष जिज्ञासु उन ग्रन्थों का अवलोकन करें ।

संस्कारों में उपनयन संस्कार एक विशेष महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है । महावल कथा में "उवनयण" शब्द का प्रयोग हुआ है । जैन परम्परा में "उपनयन संस्कार" किस प्रकार होता था ? इसका वर्णन आगम ग्रन्थों में नहीं है । ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थों में कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए ले जाना, उपनयन संस्कार माना गया है । यह संस्कार विद्यार्थी को गायत्री मंत्र सिखाकर किया जाता था । गुरु के सन्निकट रहने से शतपथ ब्राह्मण^५ और तैत्तिरीयापनिषद्^६ में उसे अन्वेवासी कहा है । उपनयन संस्कार कब किया जाये, इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए आश्वलायन गृहसूत्र में लिखा है—ब्राह्मण आठ वर्ष में, क्षत्रिय ग्यारह वर्ष में, वैश्य बारह वर्ष में उपनयन करें; अथवा सोलह, बाबीस और चौबीसवें वर्ष में उपनयन करें । आपस्तम्ब शांखायन,^{१०} बौद्धायन,^{११} भारद्वाज,^{१२} गोभिल,^{१३} गृहसूत्र तथा याज्ञवल्क्य^{१४} में यह स्पष्ट संकेत है कि वर्षों की परिगणना गर्भाधान से करनी चाहिए । शांखायन गृहसूत्र आदि में वर्षों के सम्बन्ध में विभिन्न मत रहे हैं । धर्मशास्त्रों में उपनयन के लिए मुहूर्त्त आदि की भी चर्चा की गई है । उपनयन के समय वस्त्र, दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, गायत्री उपदेश, आदि देने की विधि भी बताई गई है ।

महावल की कथा में यह भी बताया है कि जब महावल आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र का हुआ तब वह कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए भेजा गया और पूर्ण युवा होने पर उसका आठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ । यहाँ पर दो बातें चिन्तनीय हैं कि प्राचीनकाल में शिक्षा का प्रारम्भ आठ वर्ष की या उससे कुछ अधिक उम्र होने पर होता था; क्योंकि तब तक बालक का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता था । यही कारण है आगम साहित्य में और परवर्ती साहित्य में यह वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है ।^{१५} आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार भी हो जाता था, इसलिए उपनयन संस्कार को कला ग्रहण-उत्सव भी कहा गया है ।^{१६} स्मृतियों में पाँच वर्ष की वय में शिक्षा प्रारम्भ करने का विधान भी मिलता है । वह अपवाद रूप में

- | | | |
|---|--|--------------------------------|
| १. गौतम धर्मसूत्र ८/८. | २. आपस्तम्भ धर्मसूत्र, १/१/१/६. | ३. वसिष्ठ धर्मसूत्र ४/१. |
| ४. गौतम, ८/१४—२४. | ५. व्यास, १/१४—१५. | |
| ६. शतपथ ब्राह्मण ५/१/५/१७. | ७. तैत्तिरीयोपनिषद् १/११. | ८. आश्वलायन गृहसूत्र १/१६/१-६. |
| ९. आपस्तम्ब १०/२. | १०. शांखायन २/१. | ११. बौद्धायन २/५/२. |
| १२. भारद्वाज १/१. | १३. गोभिल २/१०. | १४. याज्ञवल्क्य १/१४. |
| १५. (क) द जैन सिस्टम ऑफ एजुकेशन' जर्नल ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ बोम्बे, जनवरी १९४०, पृष्ठ २०६ आदि
(जगदीशचन्द्र, लाइफ इन एन्शिअन्ट इन्डिया एज डिपिकटेड इन जैन केनन्स, ज० जै० के० पृष्ठ १६६ पर उद्धृत एच० आर० कापड़िया) डी. सी० दासगुप्त. | | |
| (ख) (i) 'जैन सिस्टम ऑफ एजुकेशन' पृष्ठ ७४. | (ii) भगवती (अभयदेव वृत्ति) ११/११, ४२६ पृ० ६६६. | |
| (iii) नायाधम्मकहाओ, १-२०, पृष्ठ ३१, | (iv) कथाकोपप्रकरण, पृ० ८. | |
| (v) ज्ञानपंचमी कहा, ६-६२ आदि । | | |
| १६. 'प्राचीन भारत में जैन शिक्षण पद्धति'—डा० हरीन्द्रभूषण, संसद्-पत्रिका, १९६५. | | |

रहा है। इसके साथ यह भी स्मरण रखना होगा कि उस समय आज की तरह शिक्षा भार रूप नहीं थी। गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श था। विद्यार्थी के लिए आवश्यक था कि वह खूब मन लगाकर अध्ययन करे, विनयपूर्वक गुरु चरणों में रहे तथा नियम-सम्पन्न हो। पुरुषों के लिए बृहत्तर कलाओं तथा स्त्रियों के लिए चौंसठ कलाओं का अध्ययन आवश्यक माना जाता था।

प्राचीनतम युग में बाल-विवाह नहीं था। आगम-साहित्य में स्थान-स्थान पर "उमुदक कालमःवं जव अलं भोगसमत्थं" शब्द व्यवहृत हुआ है। बाल-विवाह मध्य युग की देन प्रतीत होती है। इसीलिए अलबहनी ने लिखा है—हिन्दू लोग अपने लड़कों के विवाह का आयोजन करते थे क्योंकि विवाह बहुत ही छोटी उम्र में हुआ करते थे।^१ एक स्थान पर यह भी लिखा है—बाह्यगों में अर्जसवना कन्या को ही ग्रहण किया जाता था।^२ गुप्तकाल में बाल-विवाह का प्रचलन रहा।^३

यों जैन साहित्य में विवाह के तीन प्रकारों का वर्णन मिलता है—१. वर और कन्या दोनों पक्षों के माता-पिताओं के द्वारा आयोजित विवाह २. स्वयंवर विवाह ३. गान्धर्व विवाह। मुख्य रूप से स्वयं की जाति में ही विवाह करने की प्रथा थी। बौद्ध ज्ञातकों में भी समान स्थिति और समान व्यवसाय वाले लोगों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के उल्लेख मिलते हैं जिससे कि निम्न जातिगत तत्त्वों के सम्मिश्रण से कुल की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा जा सके।^४ यों आगम-साहित्य में अन्य जातियों के साथ भी विवाह करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैसे—राजमंची तैत्तलीपुत्र ने एक मुनार की कन्या से, क्षत्रिय गजमुकुमान ने सोमिल ब्राह्मण की कन्या से, राजा जितगञ्जु ने चित्रकार की कन्या से,^५ राजकुमार ब्रह्मदत्त ने ब्राह्मण तथा यणियों की कन्याओं से पाणिग्रहण किया था।^६

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में यह स्पष्ट है कि विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति था। सन्तानोत्पत्ति के लिए एक में अधिक विवाह करने की अनुमति स्मृतिकारों ने प्रदान की। बृहस्पतीन्व विवाह का यही मुख्य उद्देश्य रहा था। आगे चलकर बहु-विवाह विशिष्ट व्यक्तियों के गौरव की चीज हो गई। राजा और राजकुमार अपने अन्तःपुरों में अधिक से अधिक पत्नियाँ रखने में वे गौरव का अनुभव करते थे। अनेक राजाओं के साथ स्नेहपूर्ण-सम्बन्ध स्थापित होने के कारण बहुविवाह राजनीतिक सन्तानों जन्माने में सहायक होता था। इसीलिए महाबल राजकुमार का भी आठ कन्याओं के साथ विवाह होने का उल्लेख है।

जैन कथाओं की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि जो व्यक्ति भोग के दलदल में फँसा है, वह भी वीतराग-वार्त्ता का श्रवण कर भोग को रोग समझकर मुक्त हो जाता है। वैराग्यभावना प्रबुद्ध होने पर कोई भी जक्ति उन्हें संसार में रोकने के लिए समर्थ नहीं होती। प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् साधक पहले अध्ययन करता है, आगम-साहित्य का दोहन करता है और उसके पश्चात् उग्र जप-तप की साधना कर कर्मों को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर देव बनता है।

उत्तराध्ययन के अठारहवें अध्ययन की पञ्चमवीं गाथा में भी महाबल का उल्लेख हुआ है। टोकाकार नेमिचन्द्र ने इनकी गाथा विस्तार से दी है और अन्त में व्याख्याप्रज्ञप्ति का निर्देश किया है पर निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता कि यह महाबल भगवती में वर्णित हो है या अन्य? सम्भव है विपाक सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, अध्याय ३ में वर्णित महापुत्र नगर का राजा यह ही पुत्र महाबल हो। भगवती का महाबल उस महाबल से पृथक् होना चाहिए।

कातिक श्रेष्ठी :

प्रस्तुत विभाग में कातिक श्रेष्ठी की कथा भी आटी है, जो भ० मुनिमुद्रत के तीर्थ में दृष्ट थी। ये ही कातिक श्रेष्ठी प्रथम देवताओं के उद्भूत बने। भारतीय साहित्य में उद्भूत के हजार नाम प्रसिद्ध हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में उद्भूत के सम्बन्ध में कहा है। इस यहाँ उद्भूत के अनेक नामों में से कुछ जर्दों का उल्लेख कर रहे हैं, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लेखित हुए हैं। "शक" नामक महामान पर घैटने से तथा नामधर्यान होने से यह 'शक' कहलाया। देवताओं के मध्य प्रथम स्थानपुत्र होने से इस 'उद्भूत' के नाम में विश्रुत हुआ। उद्भूत नाम मयमें अधिक प्रचलित है। ऋग्वेद में प्रायः दो सौ पञ्चम सूक्तों में उद्भूत का उल्लेख है और पञ्चम सूक्त ऐसे भी है, जिनमें हमने सूक्तों के साथ उद्भूत का वर्णन है। उस तरह ऋग्वेद का नवमस सूक्तों में उद्भूत का उल्लेख

१. एशियाटिका सर्विसिया २. पृष्ठ १५४
 २. एशियाटिका सर्विसिया पृष्ठ १५५
 ३. एशियाटिका सर्विसिया पृष्ठ १५६—आर० एन० नाथरोयकर
 ४. एशियाटिका सर्विसिया पृष्ठ १५७—आर० एन० नाथरोयकर
 ५. एशियाटिका सर्विसिया पृष्ठ १५८
 ६. एशियाटिका सर्विसिया पृष्ठ १५९

से भरा पड़ा है। ऋग्वेद में इन्द्र को अग्नि का जुड़वाँ भाई बताया है।^१ पौराणिक युग में मानव तप से इन्द्र पद प्राप्त करने के लिए लालायित रहता था। इन्द्र अपने सिंहासन की रक्षा के लिए अप्सराओं को प्रेषित करता है जो तपस्वियों को मोहित कर पथ-भ्रष्ट करती हैं। पौराणिक इन्द्र शक्तिमान्, समृद्ध और विलासी है।

जैन दृष्टि से अन्य देवों में नहीं पाई जाने वाली असाधारण अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों के धारक ऐसे देवाधिपति को इन्द्र के नाम से अभिहित किया है।^२ देवताओं का राजा होने से वह देवराज भी कहलाता है। हाथ में वज्र नामक शस्त्र को धारण करने से 'वज्रपाणि' है। शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने के कारण वह 'पुरन्दर' है। कार्तिक श्रेष्ठी के भव में सौ वार श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा अर्थात् अभिग्रह विशेष को धारण करने के कारण वह 'शतक्रतु' कहलाता है। यद्यपि भगवती सूत्र में जो कार्तिक श्रेष्ठी की कथा है, उसमें कार्तिक श्रेष्ठी के द्वारा सौ वार प्रतिमा धारण की गई, ऐसा उल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु आचार्य श्री जयमलजी म० ने बड़ी साधु वन्दना में लिखा है—

“वलि कार्तिक शेठे, पड़िमा वही सूर वीर।

जीमी मोराँ ऊपर, तापस बलती खीर ॥३३॥

पछी चारित्र लीधँ, मित्र एक सहस आठ धीर।

मरी हुआ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भव तीर ॥३४॥

वैदिक परम्परा के अनुसार शतक्रतु का अर्थ है—सौ यज्ञ करने वाला। कहा जाता है कि इन्द्र पूर्वभव में कार्तिक श्रेष्ठी था। उसकी वीतराग धर्म पर अनन्य आस्था थी। उसने सौ वार श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा तक की आराधना की। नगर में एक वार गैरिक नामक उग्र तपस्वी आया। उसके कठोर तप से सभी प्रभावित हुए। जन-समूह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। विराट जनसमूह को देखकर तपस्वी के मन में अहंकाररूपी नाग फन फैलाकर खड़ा हो गया। उसने लोगों से पूछा—क्या सभी लोग मेरे दर्शनार्थ आ चुके हैं ?

एक भक्त ने निवेदन किया कि कार्तिक श्रेष्ठी को छोड़कर अन्य सभी लोग आ गये हैं। तपस्वी ने क्रोध और अहंकार के वण होकर यह अभिग्रह किया—मैं कार्तिक श्रेष्ठी की पीठ पर थाली रखकर ही पारणा करूँगा अन्यथा जीवनभर कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा। राजा ने जब तपस्वी को पारणा करने के लिए प्रार्थना की तो तपस्वी ने अभिग्रह की बात दोहराई। राजा ने श्रेष्ठी को बुलाया तथा गरमा-गरम खीर तैयार की गई। राजा के आदेश से सेठ ने सिर झुकाया और तपस्वी ने क्रूरतापूर्वक सेठ की पीठ पर खीर से भरी थाली रखी। श्रेष्ठी की चमड़ी जलने लगी। तपस्वी ने नाक पर अंगुली रखकर कहा—तू मुझे वन्दन करने नहीं आया, उसका फल चख ! मैंने तेरा नाक काट ही दिया। सेठ मन ही मन सोचने लगा—यदि मैं पहले साधु बन जाता तो आज जो यह दयनीय दशा हुई है, वह नहीं होती। वह समभावपूर्वक कष्ट सहन करता रहा। एक हजार आठ पुरुषों के साथ श्रेष्ठी ने मुनिसुव्रत स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की और शक्रेन्द्र बना। तापस गैरिक भी अपना आयुष्य पूर्णकर शक्रेन्द्र का ऐरावत हाथी बना। इन्द्र को अपने ऊपर बैठा देखकर ऐरावत हाथी घबराया। इन्द्र ने भी अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव देखा और ऐरावत का भी। उसे डाँटा, फटकारा। ऐरावत शान्त हो गया। प्रस्तुत ग्रन्थ में कार्तिक श्रेष्ठी की दीक्षा आदि का विस्तार से निरूपण हुआ है।

गंगदत्त :

मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में होने वाले गंगदत्त की कथा भी यहाँ पर दी गई है। गंगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर की सभा में उपस्थित हुआ। गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने उसका पूर्वभव सुनाते हुए कहा—हस्तिनापुर में गंगदत्त नामक गाथापति था। अरिहंत मुनिसुव्रत के पावन-प्रवचन को श्रवण कर तथा ज्येष्ठ पुत्र की अनुमति प्राप्त कर गंगदत्त ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उत्कृष्ट तप-जप की आराधना कर यह देव बना और यहाँ से आयु पूर्ण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा। प्रस्तुत कथा का सम्बन्ध मुनिसुव्रत स्वामी के साथ है। यही इस कथा की विशेषता है। प्राग् ऐतिहासिक काल का यह प्रसंग बहुत ही प्रेरणादायी है।

चित्त-संभूति :

उसके अगे चित्त-संभूति की कथा दी गई है। इस कथा-वस्तु का बौद्ध परम्परा के 'चित्त-संभूति जातक' में भी वर्णन है। दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में कथा-वस्तु बहुत कुछ समानता लिये हुए है। दोनों ही कथाकारों ने कथा-वस्तु गद्य और

१. ऋग्वेद ३/५६/२.

२. (क) अन्य देवताधारणाणिमादि योगादिन्दन्तीति इन्द्राः—सर्वायंसिद्धि ४/४ (ख) तत्त्वार्थश्लोककार्तिक ४/४

पद्य में गठित की है। कथा-वस्तु गद्य में है तो संवाद पद्य में है। कथा ब्रह्मदत्त की उत्पत्ति में प्रारम्भ होती है। उसमें दोनों भाई चिन्त और संभूत परस्पर मिलते हैं तथा सुख-दुःख के फल-विपाक की चर्चा करने लगते हैं। चिन्त का जीव श्रमण अवस्था में ब्रह्मदत्त को संसार की निःसारता का परिज्ञान कराते हुए कहता है—'ऐश्वर्यं विद्युत् की तरह चंचल है और भोग भी नश्यत है, अतः तुम श्रमण धर्म को स्वीकार कर अपने जीवन को पावन बनाओ।' जब चिन्त मुनि ने देखा—ब्रह्मदत्त श्रमण बनने की स्थिति में नहीं है तो गृहस्थाश्रम में रहकर ही मुनि ने धर्म-साधना करने की प्रेरणा दी। पर ब्रह्मदत्त का मन धर्म में नहीं था। चिन्त मुनि धर्माग्रधन कर मित्र हुआ तथा ब्रह्मदत्त भोगों में आसक्त होकर नरक का अधिकारी बना। पांचवीं, छठी और नानवी गाथा में पूर्व जन्मों का नामोल्लेख हुआ है। पर वहाँ विस्तार से चर्चा नहीं है, टीकाकार नेमिचन्द्र ने पूर्व के पांच भवों का सविस्तर वर्णन किया। गर्भोद में छह भव इस प्रकार हैं—१. दशपुर नगर में शांडिल्य ब्राह्मण की दाम्नी यशोमती के गर्भ में पुत्र रूप में पैदा होता। २. काविजरे पर्वत पर मृगी की कुक्षी में युगल रूप में उत्पन्न होता। ३. मृतगंगा के तीर पर हंसों के गर्भ में उत्पन्न होता। ४. वागजम्बी में श्वपाक के पुत्र रूप में उत्पन्न होता। ५. देवलाक में उत्पन्न होता। ६. चिन्त का जीव पुरिमताल नगर में ईश्वर श्रेष्ठी के यहाँ पुत्र रूप में और संभूत का जीव काम्पिन्यपुर में ब्रह्मराजा की रानी चूलनी के गर्भ से ब्रह्मदत्त रूप में उत्पन्न हुआ।

बौद्ध-साहित्य में :

बौद्ध साहित्य में संक्षेप में कथा का रूप इस प्रकार है—

१. निरंजरा नदी के किनारे मृगी की कुक्षी में उत्पन्न होता।
२. नर्मदा नदी के किनारे वाज पक्षी के रूप में उत्पन्न होता।

३. चिन्त का जीव कोशाम्बी में पुरोहित का पुत्र हुआ तथा संभूत का जीव पांचाल राजा के रूप में उत्पन्न हुआ।^१ जब दोनों भाई परस्पर मिलते हैं तो चिन्त संभूत को उपदेश प्रदान करता है, किन्तु संभूत का मन भोगों में धिरत नहीं होता। जिसमें चिन्त संभूत के मिर पर धूल गिराता है और स्वयं हिमालय की ओर प्रस्थान कर जाता है। अजय राजा संभूत ने यह देखा तो उसके अन्तर्मनिस में वैराग्य समुत्पन्न हुआ और वह भी हिमालय को चल दिया। चिन्त ने उसे वांग विला सिद्धलाई, जिसमें संभूत को ध्यान-लाभ हुआ। इस प्रकार चिन्त और संभूत दोनों ब्रह्मलोकवासी हुए।

जैन और बौद्ध दोनों ही कथा-वस्तुओं का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जैन कथा-वस्तु विस्तृत है। कुमार ब्रह्मदत्त अपने मंत्री-पुत्र वरधनु के साथ घर से निकलकर दूर चला गया और पुनः लौटकर नगर में गया जैसे यह नरक की कथा छोटी-बड़ी अनेक घटनाओं के कारण जटिल हो गई है। सारी अवान्तर घटनाएँ ब्रह्मदत्त में सम्बन्धित हैं तथा उन अवान्तर घटनाओं का अन्त होता है किन्ती कन्या के साथ विवाह या पाणिग्रहण करने पर। कुमार ब्रह्मदत्त वरधनु के साथ अपनी लक्ष्मी में लौटना है। राज्याभिषेक होने के पश्चात् उसे अपने भ्राता की मधुर स्मृति हो आती है। दोनों भाई मिलते हैं। मुनि चिन्त का जीव धर्माग्रधन कर मुक्त बनता है। कुमार ब्रह्मदत्त भोगों में आसक्त होकर नरक में जाता है। जैन दृष्टि में संभूत का जीव कुमार ब्रह्मदत्त नरक का अधिकारी बनता है तो बौद्ध दृष्टि में संभूत ब्रह्मलोक में जाता है। मरगेन्द्रियर ने लिखा है— इस दोनों कथाओं में साम्य ही नहीं अपितु दोनों की गाथाओं में भी पूर्ण साम्य है। उदाहरण के रूप में देखिए—

समान गाथाएँ

जैन परम्परा			बौद्ध परम्परा	
उत्तराध्ययन, अध्ययन १३			चिन्त संभूत जातक (म० ६२८)	
श्लोक			गाथा	
दासा	दक्षणे	आसी	सज्जालाहुम्ह	अवगोसु
मिया	कानिजरे	नगे ।	मिना	नेरुजरे
हंसा		मपंगतीरे	उवहुत्ता	नम्मदा
सोवासा		रासिभूमिम् ॥६॥	अवज	राज्जण

१. जैन कथा-वस्तु में ब्रह्मदत्त का जन्म ६२८ विंशति संभूत जातक पृष्ठ १०५

२. The Uttar-Adhyayana Sutra, p. 45.

मरुपेन्द्रियर ने प्रस्तुत कथानक की तीन गाथाओं को अर्वाचीन माना है।¹⁹ परन्तु उनके लिए कोई प्रबल तर्क नहीं दिया है। चूणि, टीका प्रभृति व्याख्या ग्रन्थों में उस मन्वन्ध में मनीषी आचार्यों ने कहीं भी किसी प्रकार का उपासक नहीं किया है। ये तीनों गाथाएँ प्रकरण की दृष्टि से भी अनुपयुक्त नहीं हैं। उन तीनों गाथाओं में उनके जन्म-स्थान, जन्म का कारण और जन्म में मिलने का वर्णन है। ये गाथाएँ अगली गाथाओं में मन्वन्धित हैं। ये तीनों गाथाएँ आर्याभन्द में निबद्ध हैं जब कि आगे की गाथाएँ अनुष्टुप, उपजाति आदि विभिन्न छन्दों में निमित्त हैं। छन्दों की भिन्नता ने उन्हें प्रथित या अर्वाचीन नहीं मान सकते। यह कथा भगवान् अरिष्टनेमि के युग की है।

निपथकुमार :

प्रस्तुत कथा का प्रसंग भी भगवान् अरिष्टनेमि में मन्वन्धित है। भगवान् अरिष्टनेमि एक बार द्वारिका नगरी में पधारे। उनके आगमन के संवाद को सुनकर द्वारिका नगरी के निवासी तथा श्रीकृष्ण आनन्द में जूम उठे। राजर्षि वैशम्पैय के साथ प्रभु के दर्शन को चले। निपथकुमार भी भगवान् को वन्दन करने के लिए पहुँचा। भगवान् को विमल-वाणी सुनकर उनसे श्रावक के वारह व्रत ग्रहण किये। निपथकुमार के दिव्य रूप को देखकर अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य वरदत्त अगार ने पुत्र—प्रभो ! यह ऋद्धि, समृद्धि और मुरूप इन्हें कैसे प्राप्त हुआ ? भगवान् ने कहा—भरतक्षेत्र में रोहितक नामक नगर था। नगरका राजा और पद्मावती रानी थी। विरंगन कुमार का बर्तमान कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। आचार्य मिद्धार्य के उपदेश हो कर वह श्रमण बना और उत्कृष्ट तप की साधना कर पाँचवे ब्रह्मदेवलोक में देव बना। यह विराट मन्थान और ऋद्धि पूर्वकृत पुण्य का फल है।

वरदत्त गणधर ने पूछा—भस्ते ! क्या यह आपके मन्निकट प्रव्रजित होगा ? भगवान् ने स्वीकृतिपूर्वक मनेज किया। कुछ समय के पश्चात् भगवान् का द्वारिका नगरी में पुनः पदार्पण हुआ। निपथकुमार ने संयम ग्रहण किया। सामाजिक में भ्रष्ट स्यारह अंगों का अध्ययन किया। नौ वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय में उत्कृष्ट तप की आराधना की और ब्रह्मर्षि भक्त का अनुत्पन्न कर, मनेग्रना—संधारे के द्वारा समाधिपूर्वक काल कर सर्वोत्तमिद्ध विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

भगवान् अरिष्टनेमि के तीर्थ में ही गौतम अगार ने भी अपने जीवन को पावन बनाया था। भगवान् अरिष्टनेमि के पावन उपदेश में प्रभावित होकर वह आठ पत्नियों का त्याग कर भगवान् अरिष्टनेमि के पान संयम स्वीकार करता है तथा उत्कृष्ट तप की आराधना करता है। उसके बाद वह भिक्षु-प्रतिमा की साधना करता है और अर्द्धाग्नि नाम तथा वैश्याम दिन में प्रतिमा की साधना पूर्ण कर भुण्णरत्न-संयत्तर तप की आराधना करता है। अन्त में जब गौतम अगार का गर्भर क्षीय हो गया, "जीव जीवेष चिद्दृष्ट" जीव अपनी जीवनी-शक्ति के सहारे ही टिका हुआ था। तब उन्होंने मृत्यु की उच्छा न करने हुए और न जीव ही कृमिता करने हुए एक मान का संघारा किया तथा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। गौतम अगार तप ही जीवनी-साधनी प्रतिमा थे। उनका जीवन अत्यन्त प्रेरणादायी है।

अपीषमेन आदि छह भाई :

भद्रिनपुर नगर में नाम गाथापति की धर्मपत्नी गुणसा अत्यन्त रूपकी है। उनके अपीषमेन अन्ध-श्रित, पीषमेन, अनन्दिअरिषु, देवमेन तथा वावुमेन ये छह पुत्र थे। उन छहों ने भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश हो कर परमार्थ प्राप्त की। वे सब स्वर्ण-रत्नना होशा कि वे छहों भाई देवकी के गर्भ में महारण कर मृत्यु के दुःख में स्वाधिक विषे अरिषे। उन सब भाइयों ने उत्कृष्ट तप-साधना कर मुक्ति को प्राप्त किया था। ये छहों श्रीकृष्ण समुद्र के भाई हैं। उन सबका नाम उपदेश भगवान् आर्यभोम ने किया। वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में यह परमार्थ उपदेश नहीं है।

वसन्तुमात्र :

पावन उपदेश को श्रवण कर गजसुकुमाल का अन्तर्मानस वैराग्य में भावित हो गया। उसके जीवन का नयना बदल गया। वह आया था उपदेश सुनने के लिए, किन्तु श्रमण बनने के लिए तत्पर हो गया। अग्नि की नन्ही सी चिमगाड़ी धाग-कूम को छू जाय तो वह आग प्रज्वलित हो जाती है। हवा का झोंका उसे बुझा नहीं पाता किन्तु और बड़ा देता है। यही स्थिति गजसुकुमाल के वैराग्य की थी। वैराग्य की ज्वाला को बुझाने के लिए माता-पिता के हजार-हजार आंगू बट्टे, जिनमें पुत्र का वैराग्य उन आंगुओं में वह जाय, पर वह महाशक्ति विचलित नहीं हुई। श्रीकृष्ण ने एक दिन का राज्य प्रदान किया। सोना, मिहामन का प्रलोभन इसके वैराग्य को धुंधला बना देगा पर वह महादावानल था जिसे सुख और माधनों के ऐज्यवं तथा जय-जयघोष के जंत्रावात बुझा नहीं सके। वह ज्वाला ता निरन्तर जलती ही रही। वह महान् साधक अनुमति प्राप्त कर दोक्षित हो गया। उन नवदोषित मुनि को आत्मकल्याण के लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा बनाई गई। वह अभिनव साधक निजंन गमजान भूमि में मन को एकाग्र कर ध्यानस्थ हो गया।

मुनि के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बांधकर जाज्वल्यमान अंगारे रख दिये गये। मान जल रहा था, रक्त उबल रहा था, सारे शरीर में भयंकर वेदना हो रही थी तथापि वह ज्ञानभाव में लड़ा था। जलते हुए आग के शोना के नीचे भी वह हँस रहा था। मस्तक पर आग जल रही थी तथा अन्तर्मन में चिन्तन-मनन चल रहा था। शरीर लपटों में जल रहा था पर वह क्षमा एवं सहिष्णुता का देवता उस समय भी मुस्करा रहा था। यह अलंकार की भाषा नहीं, जीवन का वास्तविक तथ्य है। जितने ध्यान-साधना को सिद्ध कर लिया, वह साधक देह में रह करके भी देहातीत स्थिति में पहुँच जाता है और ऐसे अन्वेषित साधक ध्यानाग्नि से कर्मों को ध्वस्त कर देते हैं। गजसुकुमाल जैसे वरिष्ठ साधक बौद्ध और वैदिक परम्परा में दृढ़ने पर भी मिन नहीं सकते। बड़ा अद्भुत और अनूठा कृतित्व है उसका! श्रीकृष्ण के लघुभ्राता होने पर भी वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं है। गजसुकुमाल को कथा इतनी अत्यधिक लोकप्रिय हुई कि अन्तकृद्गांग के अतिरिक्त मन्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तथा राजस्थानी एवं गुजराती कथा साहित्य में विविध लेखकों ने इस पर अनेक मार्मिक रचनाएँ लिखी हैं।

सुमुख आदि कुमार :

सुमुखकुमार बलदेव के पुत्र थे तथा दुर्मुख, कूपदारक और दारुक—ये क्रमशः बलदेव तथा वसुदेव के पुत्र थे। जालि, मयालि, उवयाली, पुरुषसेण, वारिपेण, प्रद्युम्नकुमार, शाम्बकुमार, अनिरुद्धकुमार, सत्यनेमिकुमार, दृढ़नेमिकुमार इन दसों राजकुमारों में पूर्व के पाँच राजकुमार वसुदेव के पुत्र थे तथा प्रद्युम्नकुमार और शाम्बकुमार के पिता श्रीकृष्ण थे। अनिरुद्धकुमार के पिता प्रद्युम्न थे। सत्यनेमि और दृढ़नेमि के पिता समुद्रविजय थे। ये सभी राजकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के उपदेश को श्रवण कर राजवैभव का परित्याग कर साधना के महा राजमार्ग को स्वीकार करते हैं और वीर सेनानी की भाँति आगे बढ़कर अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इन राजकुमारों के उल्लेख भी इतर साहित्य में अनुपलब्ध हैं। ये कथाएँ जैन साहित्य की ही अपनी देन हैं।

थावच्चापुत्र :

ज्ञानासूत्र में थावच्चापुत्र की दीक्षा का वर्णन है। मुनि श्री जीवराज जो ने “थावच्चापुत्र रास” नामक ग्रन्थ में उनके जीवन का एक प्रसंग दिया है। उस प्रसंग का मूल स्रोत कहाँ है? यह अन्वेषणीय है। थावच्चापुत्र का यह नाम उनकी माता के नाम पर पड़ा है। उनका असली नाम क्या था? यह कहीं भी निर्दिष्ट नहीं है। वह सार्थवाह का पुत्र था। वह बाल्यकाल से ही चिन्तनशील था। वह जो भी देखता, सुनता उसके सम्बन्ध में गहराई से चिन्तन करता। जब तक सही तथ्य का परिज्ञान नहीं हो जाता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता।

एक समय प्रातःकाल का सुनहरा प्रभात दिल को लुभा रहा था। मंगल गीतों को मधुर ध्वनि पड़ौसी के घर से आ रही थी। वह एकाग्र होकर गीतों को सुनने लगा। उसे गीतों की स्वर लहरियाँ अत्यन्त प्रिय लगीं। उसने माँ से जिज्ञासा की—माँ! इतने सुन्दर और मधुर गीत पड़ौस में क्यों गाये जा रहे हैं? माँ ने बताया—वत्स! पड़ौसी के यहाँ पुत्र पैदा हुआ है। उसकी प्रसन्नता में ये गीत गाये जा रहे हैं। माँ! क्या मेरे जन्म के समय भी इसी प्रकार गीत गाये गये थे?

माँ ने अपने लाड़ले को चूमते हुए कहा—वत्स! केवल गीत ही नहीं गाये गये, बाजे भी बजाये गये और बहुत बड़ा उत्सव किया गया। माँ! ये गीत मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। तू भी ऊपर की छत पर चल और गीतों का आनन्द ले! माँ ने कहा—मुझे समय नहीं है, तू ही जाकर सुन ले! थावच्चापुत्र ऊपर आया, किन्तु उसे सुमधुर स्वर लहरियों के स्थान पर कर्ण-कटु आक्रन्दन सुनाई दिया और साथ ही भयावना-सा कोलाहल भी उसके कानों में गिरा। उसका मन हँसा होने लगा। वह

उल्टे पैरों लोटकर माता के पास पहुँचा। माँ ! जो नीत पहने मुहाबने लगने थे, वे अब उखाबने लगे वगैरे ? माँ ने पापसों की आकस्मिक विपत्ति को समझ लिया और उसकी आँखों में भी आंसू छनक पड़े। माँ ने अपने अश्रुधर बालक को गले लगाया और कहा—बन्स ! जिस पुत्र का उत्सव मनाया जा रहा था, वह पुत्र मर गया। उसीनिष्ठ नायक रत्न के रूप में प्रकट गया। परमेश्वर के स्थान पर जोक की काली घटाएँ छा गईं।

माँ ! क्या मैं भी एक दिन इसी तरह मर जाऊँगा ? माँ ने उसके मुँह को चूमते हुए कहा—तू मेरी अंशुला का भाग्य है, नयनों का नितारा है। तू क्यों मरेगा ? मरेगे तेरे दुग्मन ! थावच्चापुत्र के भोले-भाले चेटरे पर धरौँ विजाता समझ रहा थी। अन्त में माँ का कहना पड़ा—बन्स ! एक दिन ममी को मरना है। पर मनीने बंटे ऐसी बात नहीं किया करने। मन में जो प्रणय पनपना रहा और एक दिन अर्हंत अरिष्टनेमि की बाणी को श्रवण कर माधना के महामार्ग पर धरने के लिए वह तयार हो गया। श्रीकृष्ण ने उसका अभिनिष्क्रमण महात्म्य मनाया। वामुदेव श्रीकृष्ण की उत्कट धार्मिक भावना उसमें उजागर हो रही है। श्रीकृष्ण वामुदेव जैसे वरिष्ठ तद के धनी होते हुए भी माधना के प्रति उनके अन्तर्मनिस में कितनी श्रद्धा थी ? यह हमें स्पष्ट होना है।

थावच्चापुत्र के अन्तर्मनिस में वैराग्योत्पत्ति का मूल कारण मृत्यु-दर्शन है, जो तथागत बुद्ध के जीवन में भी वैराग्योत्पत्ति का एक कारण मृत्यु-दर्शन है। मृत्यु, जीवन का अन्तिम सत्य है। यदि व्यक्ति उसे समझ ले तो यह भोग के स्वप्न में पकड़ा सकना। यह कथा अत्यन्त प्रेरणादायी है।

रथनेमि एवं राजीमती :

रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघु भ्राता थे। रथनेमि का आकषेण राजीमती की ओर प्रारम्भ में ही रहा। यह भगवान् अरिष्टनेमि ने राजीमती को बिना विवाह किये ही छोड़ दिया तो रथनेमि उनके साथ विवाह करने के लिए सा मरिचि हो उठे और अपनी भावना राजीमती के नामने व्यक्त करने लगे। राजीमती ने वसत कर उसे पीने के लिए रखा। रथनेमि ने प्युद्ध-मोकर कहा, क्या तू मेरा अपमान करती है ? राजीमती ने कहा—भाई के द्वारा वसत किये हुए को ग्रहण करना क्या बुराये लिए उपयुक्त है ? रथनेमि का विवेक जागृत हो उठा। यहाँ एक प्रश्न चिन्तनीय है। यह यह है—अर्हन्त अरिष्टनेमि के दीक्षा दिने त पशान् रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण की। आवश्यकनियुक्ति' वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र ने विपष्टिगतात्ता पुण्य पाँचगै में कहा है—रथनेमि चार सौ वर्षे गृहस्थाश्रम में रहे, एक वर्षे छग्रन्थ अवस्था में रहे और पाँच सौ वर्षे केवली अवस्था में। उत्तर, जो सौ वर्षे का जागुण्य हुआ। उसी तरह कुमारवस्था, छग्रन्थ अवस्था और केवली अवस्था का विभाग करके राजीमती में भा उल्लेख ही जागुण्य का उपभाग किया।

अरिष्टनेमि तीन सौ वर्षे कुमारवस्था में रहे, मात सौ वर्षे छग्रन्थ व केवली अवस्था में रहे। इस तरह कुमारी व छग्रन्थ वषे का अनुष्य भोगा।

विजाता यह है—रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता है, भगवान् नीत सौ वर्षे गृहस्थाश्रम में रहे, तथा रथनेमि और राजीमती चार सौ वर्षे। राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण में सिद्धे जीपन ईस का अन्तर है। जीपन १२५० अन्तर का उल्लेख कथियों की रचना में मिलता है। यदि इस उल्लेख को प्रामाणिक माना जाय तो यह स्पष्ट है कि राजीमती का जीपन ...

१. (क) नियुक्ति—रथनेमिस्मि भगवत्प्रो, निरुत्तरं चउर दृमि ज्ञानमया । संस्तरच्छउमयो, पयस्यु दे-की दृमि ज्ञानमया । भगवत्प्रो, मना-निष्ठा उ लघुवत्प्रमना भावय । एते उ देव कर्तो, मर (ब) मरिचि उ लघुवत्प्रमना भावय ।
 —प्रनिष्ठाया रथिष्ट उरु मया उ दृमि ज्ञानमया ।
 (ख) नराय मरिचि एतेवामि सुखवत्प्रमया, मय छग्रन्थवत्प्रमयाः सरे लघुवत्प्रमया केवलीवत्प्रमया । एते मरिचि लघुवत्प्रमया मया भावय । एते मरिचि लघुवत्प्रमया मया भावय ।
 २. लघुवत्प्रमया मरिचि छग्रन्थवत्प्रमया कर्तो पुनः । केवली वत्प्रमया मरिचि लघुवत्प्रमया मया भावय ।
 ३. ईशानुः केवली राजीमत्यामतीत्तात्प्रमया । तीमार-छग्रन्थवत्प्रमया केवली वत्प्रमया मया भावय ।
 ४. (क) अन्तेव उ भगवत्या कुमारवत्प्रमया अरिष्टनेमिस्मि । मय य वत्प्रमया उ लघुवत्प्रमया मया भावय ।
 (ख) अन्तेव उ भगवत्या कुमारवत्प्रमया अरिष्टनेमिस्मि । मय य वत्प्रमया उ लघुवत्प्रमया मया भावय ।
 (ग) अन्तेव उ भगवत्या कुमारवत्प्रमया अरिष्टनेमिस्मि । मय य वत्प्रमया उ लघुवत्प्रमया मया भावय ।
 (घ) अन्तेव उ भगवत्या कुमारवत्प्रमया अरिष्टनेमिस्मि । मय य वत्प्रमया उ लघुवत्प्रमया मया भावय ।

वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम में रहना चिन्तनीय विषय है। विज्ञों को इस सम्बन्ध में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति^१ तथा वादी वेताल शान्तिसूरि रचित बृहद्वृत्ति^२, मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव-भावना ग्रन्थ^३ की दृष्टि से भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के^४ अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती, नन्द की कन्या एकवासा तथा यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करती है। राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया। मुझे धिक्कार है, जो मैं मोह के दलदल में फँसी हूँ। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। इस प्रकार राजीमती ने हृदय संकल्प कर कंधी से सँवारे हुए काले केशों को उखाड़ डाला। श्रीकृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्ये ! इम भयंकर संसार रूपी सागर से तू शीघ्र तिर जा।^५ रथनेमि ने भी उसी समय भगवान् के पास संयम ग्रहण किया।^६

एक दिन की घटना है—बादलों की गड़गड़ाहट से दिशायें काँप रही थीं। बिजलियाँ कौंध रही थीं। रेवतक का वनप्रान्तर साँय-माँय कर रहा था। साध्वी समूह के साथ राजीमती रेवतक गिरि पर चढ़ रही थी। एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर विखर गया। बिछुड़ी हुई राजहंसिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया। राजीमती ने एकान्त स्थान निहार कर सम्पूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिया।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उसी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा में अवस्थित था। बिजली की चमक में निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर रड़ी। वह अपने अंगों का गोपन कर बैठ गई। कामविह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुरूपे ! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हूँ। तू मुझे स्वीकार कर ! मैं तेरे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर; फिर समय आने पर हम दोनों संयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे वासना से विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो, पर मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसन्द करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष का पान नहीं करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यों कर रहे हो ? जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है वैसे ही रथनेमि का मन संयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा-प्रसंग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ, तब नारी ने उसका सच्चा पथ-प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहुवली को अहंकार के गज से उतरने को प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणों का निरूपण इस अध्याय में हुआ है। इसके पश्चात् पुरुषादानीय भगवान् पाञ्च के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि की बहुत ही संक्षेप में कथायें हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी इसमें दी गई है। इस कथा में दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिन्तन किया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उन युग में प्रचलित थी। विश्व में कोई भी पदार्थ एकान्त रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ ने अशुभ में परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो सकता है। अतः अन्तर्मानस में किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है। यह बात प्रस्तुत कथानक में स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महाबोर इन दो तीर्थकरों के अतिरिक्त शेष वावीस तीर्थकरों के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर वावीस तीर्थकरों के श्रमणोपासक द्वादश व्रतों को ही धारण करने थे। उनके लिए पाँच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।^७

१. पग्निवृद्धमणा य रायमदे वि पत्ता समोसरणं ।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा—पृ०. २५१.

२. उर्थं चामा नावदवन्थिता यादवन्वयत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्न केवलस्य भगवतो निशम्य देशनां विशेषत उन्पन्न वैराग्या कि कृतवती त्याह 'अहे' त्यादि ।

—बृहद्वृत्ति पत्र ४६३.

३. भव-भावना—३७९. १७. पृष्ठ १५६.

४. विषयिष्ठलाका पुरुष चरित्र, २/१०/१४८.

५. (क) वामुदेवो य ण भगवः लुत्तकेमं जिइन्दियं ! संसार सागरं घोरं, तर कन्ने ! लहु-लहु ॥

—उत्तराध्ययन, २२/३१.

(ग) उत्तराध्ययन २२, ३०.

६. (क) उत्तराध्ययन—२२/३२.

(ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा २६१.

७. 'अणु वं सुबुद्धीं जितमत्तस्म विचिन्तं केवलविषण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं 'परिकहेइ'.....तं इच्छामि णं तत्र अंतिणं पंचाणुव्वइयं भत्तमिमाव्वएण उचनंपज्जिनायं विहरित्तणं ।'

—धर्मकथानुयोग, पृष्ठ ५४२२४

ने गी-यातन पर बल दिया; किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि ने नभी प्राणियों की रक्षा पर बल दिया जिसके कारण भारत में अहिंसा की गुरीली स्वयंलहरियाँ अंकुश हुईं और वे इनने अधिक लोकप्रिय हुए कि वैदिक और बौद्ध धर्मों के ग्रन्थों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख बहुत ही गौरव के साथ हुआ है।

भगवान् पार्श्वनाथ :

पार्श्वनाथ और पौर्वात्य सभी मूर्धन्य मनीषी भगवान् पार्श्व को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। वे भगवान् महावीर के जन्म से तीन सौ पचास वर्ष पूर्व जन्मे थे। सर्वप्रथम डा० हरमन जेकोबी ने जैनाग्रहों के नाम ही बौद्ध विप्लवियों के आधार पर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है।^१ उसके बाद कॉलब्रुक, स्टीवेन्सन, एडवर्ड टामन, डा० वेन्कटर, राममुष्ठा, डा० राधाकृष्णन,^२ गार्पेन्टियर, नेरीनोट, मजूमदार, ईलियट, पुसिन आदि विद्वानों ने सम्प्रमाण यह प्रमाणित किया है कि धर्मनाथ भगवान् महावीर से पूर्व एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय था, जो बहुत प्रभावशाली था। उस निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के प्रधान नाथक पार्श्वनाथ थे। डा० चार्ल्स गार्पेन्टियर का अभिमत है कि हमें इन दो बातों का स्मरण रखना होगा—जैन धर्म निश्चित रूप से महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं। परिणामस्वरूप, मूल सिद्धान्तों की प्रमुख बातें महावीर से पूर्व सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।^३

भगवान् पार्श्व के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूचना श्वेताम्बर आगमों में समवायान और बल-सूत्र में मिलती है। समवायांग में पार्श्व के माता-पिता, उनकी दीक्षा तगरी, शिविका, चैत्य वृक्ष और उनके प्रमुख शिष्य एवं शिष्याओं का नाम निरिष्ट हुआ है। जीवन वृत्त के क्रम से एक ही घटना उसमें नहीं आई है। नामों के अनिश्चित पार्श्व के नाम दीक्षा लेने वालों की संख्या, प्रथम तप के दिनों की संख्या बताई है तथा पार्श्व के पूर्वभय का नाम 'मुदगंन' बताया है। उन भय में वे माण्डलिक राजा थे। मुनि बनने के पश्चात् ग्यारह अंग के ज्ञाता बने।

कल्पसूत्र में पार्श्व का जीवन-वृत्त प्राप्त होता है पर उसमें पार्श्व के पूर्वभवों का कोई उल्लेख नहीं है। पार्श्व के कुशस्थल जाने का, रविकीर्ति या प्रसेनजित के सहयोग से कलिगराज यवन से युद्ध करने का तथा राजकुमारी प्रभासनी से विवाह करने का कोई भी वर्णन नहीं है। उसमें कण्ठ व सर्पों की घटना, मेघनाली कृत उपसर्गों का भी वर्णन नहीं है। भगवान् पार्श्व को किस निमित्त से वैराग्य हुआ? उसका भी उसमें उल्लेख नहीं है।

आगम ग्रन्थों के पश्चात् रचित 'चउपत्र महापुरिस चरियं' जिसके रचयिता आचार्य गोसांन हैं और 'निर्दिष्ट पार्श्वनाथ चरियं' जिसके रचयिता आचार्य अभयदेव के शिष्य आचार्य देवभद्र मूरि हैं, 'त्रिपष्टिजनाका पुरय चरियं', जिसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं। इन श्वेताम्बर आचार्यों ने पार्श्वनाथ के कथानक को विकसित किया है।

श्वेताम्बर परंपरा में सर्वप्रथम आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में, महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण में, आचार्य मूरि ने 'पार्श्वनाथ चरित' में भगवान् पार्श्वनाथ के मौलिक प्रसंगों को उद्धृत किया है। पार्श्वानुष्म काव्य, जिसके रचयिता आचार्य जिनसेन हैं, यह काव्य उत्तरपुराण से भी पहले का है, पर यह काव्य-ग्रन्थ है। इसकी रचना नागिदान के 'विपद' की प्रेरणा हुई है। इस काव्य में "भगवान् पार्श्व" ध्यानावस्था में अवस्थित हैं और अन्धकार उन्हें उपसर्ग प्रदान करता है, इसका उल्लेख हुआ है। किन्तु जीवन मूल का परिचायक यह ग्रन्थ नहीं है। जिनसेन 'कीर्ति' ने पता चलता है कि आचार्य जिनसेन ने भी महापुराण या त्रिपष्टिजनाका पुराण की रचना की है पर यह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। उनका भी आचार्य के आचार्य के प्रसंग है।

वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम में रहना चिन्तनीय विषय है। विज्ञों को इस सम्बन्ध में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए।

उत्तराध्ययन भूत्र की सुखबोधा वृत्ति^१ तथा वादी वेताल शान्तिसूरि रचित बृहद्वृत्ति^२, मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव-भावना ग्रन्थ^३ की दृष्टि से भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के^४ अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती, नन्द की कन्या एकवामा तथा यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करती हैं। राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया। मुझे धिक्कार है, जो मैं मोह के दलदल में फँसी हूँ। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं दीक्षा ग्रहण करूँ। इस प्रकार राजीमती ने दृढ़ संकल्प कर कंधी से संवारे हुए काले केशों को उखाड़ डाला। श्रीकृष्ण ने आर्जीर्वाद दिया—हे कन्ये ! इस भयंकर संसार रूपी सागर से तू शीघ्र तिर जा।^५ रथनेमि ने भी उमी समय भगवान् के पाम संयम ग्रहण किया।^६

एक दिन की घटना है—वादलों की गड़गड़ाहट से दिशायें कांप रही थी। विजलियाँ कौंध रही थीं। रेवतक का वनप्रान्तर साँय-साँय कर रहा था। साध्वी समूह के साथ राजीमती रेवतक गिरि पर चढ़ रही थी। एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया। विछुड़ी हुई राजहंमिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया। राजीमती ने एकान्त स्थान निहार कर सम्पूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिया।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना, हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उमी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा में अवस्थित था। बिजली की चमक में निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर रड़ी। वह अपने अंगों का गोपन कर बैठ गई। कामबिह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुहृदे ! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हूँ। तू मुझे स्वीकार कर ! मैं तेरे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। तू मेरी मनाकामना पूर्ण कर; फिर समय आने पर हम दोनों संयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे वासना से विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो, पर मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसन्द करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष का पान नहीं करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यों कर रहे हो? जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है वैसे ही रथनेमि का मन संयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा-प्रसंग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ, तब नारी ने उसका सच्चा पथ-प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहुवली को अहंकार के गज से उतरने की प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणों का निरूपण इस अध्याय में हुआ है। इसके पश्चात् पुरुपादानीय भगवान् पार्श्व के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि का बहुत ही संक्षेप में कथायें हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी इसमें दी गई है। इस कथा में दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिन्तन किया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उस युग में प्रचलित थी। विश्व में कोई भी पदार्थ एकान्त रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ में परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो सकता है। अतः अन्तर्मानस में किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है। यह बात प्रस्तुत कथानक में स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावोर इन दो तीर्थकरों के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थकरों के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर बावीस तीर्थकरों के श्रमणोपासक द्वादश व्रतों को ही धारण करते थे। उनके लिए पाँच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।^७

१. परिबुद्धमणा य रायमई वि पत्ता समोसरणं । —उत्तराध्ययन सुखबोधा—पृ०. २५१.
२. इत्थं चासौ तावदवस्थिता यादवन्धुत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्न केवलस्य भगवतो निशम्य देशनां विशेषत उत्पन्न वैराग्या कि कृतवती त्याह 'अहे' त्यादि । —बृहद्वृत्ति पत्र ४६३.
३. भव-भावना—३७१६, १७, पृष्ठ १५६. ४. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, ८/१०/१४८.
५. (क) वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं । संसार सागरं घोरं, तर कन्ने ! लहु-लहु ॥ —उत्तराध्ययन, २२/३१. (ख) उत्तराध्ययन २२/३०. ६. (क) उत्तराध्ययन—२२/३२. (ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा २६१.
७. "तं णं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलपण्णत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ.....तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिख्खाव्वइयं उव्वसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।" —धर्मकथानुयोग, पृष्ठ ५४१२४

ने गौ-पालन पर बल दिया; किन्तु भगवान् अरिष्टनेमि ने सभी प्राणियों की रक्षा पर बल दिया जिसके कारण भारत में अहिंसा की सुरीली स्वरलहरियाँ झंकृत हुईं और वे इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि वैदिक और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख बहुत ही गौरव के साथ हुआ है।

भगवान् पार्श्वनाथ :

पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी मूर्धन्य मनीषी भगवान् पार्श्व को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं। वे भगवान् महावीर के जन्म से तीन सौ पचास वर्ष पूर्व जन्मे थे। सर्वप्रथम डा० हरमन जेकोवी ने जैनागमों के साथ ही बौद्ध त्रिपिटकों के आधार पर पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध किया है।¹ उसके बाद कॉलब्रुक, स्टीवेन्सन, एडवर्ड टामस, डा० वेलवलकर, दासगुप्ता, डा० राधाकृष्णन,² शार्पेन्टियर, गेरीनोट, मजूमदार, ईलियट, पुसिन आदि विद्वानों ने सप्रमाण यह प्रमाणित किया है कि श्रमण भगवान् महावीर से पूर्व एक निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय था, जो बहुत प्रभावशाली था। उस निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के प्रधान नायक पार्श्वनाथ थे। डा० चार्ल्स शार्पेन्टियर का अभिमत है कि हमें इन दो बातों का स्मरण रखना होगा—जैन धर्म निश्चित रूप से महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं। परिणामस्वरूप, मूल सिद्धान्तों की प्रमुख बातें महावीर से पूर्व सूत्र रूप धारण कर चुकी होंगी।³

भगवान् पार्श्व के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सूचना श्वेताम्बर आगमों में समवायांग और कल्प-सूत्र में मिलती है। समवायांग में पार्श्व के माता-पिता, उनकी दीक्षा नगरी, शिविका, चैत्य वृक्ष और उनके प्रमुख शिष्य एवं शिष्याओं का नाम निर्दिष्ट हुआ है। जीवन वृत्त के क्रम से एक ही घटना उसमें नहीं आई है। नामों के अतिरिक्त पार्श्व के साथ दीक्षा लेने वालों की संख्या, प्रथम तप के दिनों की संख्या बताई है तथा पार्श्व के पूर्वभव का नाम 'सुदर्शन' बताया है। उस भव में वे माण्डलिक राजा थे। मुनि बनने के पश्चात् ग्यारह अंग के ज्ञाता बने।

कल्पसूत्र में पार्श्व का जीवन-वृत्त प्राप्त होता है पर उसमें पार्श्व के पूर्वभवों का कोई उल्लेख नहीं है। पार्श्व के कुशस्थल जाने का, रविकीर्ति या प्रसेनजित के सहयोग से कलिगराज यवन से युद्ध करने का तथा राजकुमारी प्रभावती से विवाह करने का कोई भी वर्णन नहीं है। उसमें कमठ व सर्प की घटना, मेघमाली कृत उपसर्गों का भी वर्णन नहीं है। भगवान् पार्श्व को किस निमित्त से वैराग्य हुआ ? उसका भी उसमें उल्लेख नहीं है।

आगम ग्रन्थों के पश्चात् रचित 'चउपन्न महापुरिस चरियं' जिसके रचयिता आचार्य शीलांक हैं और 'सिरि पासनाह चरियं' जिसके रचयिता आचार्य अभयदेव के शिष्य आचार्य देवभद्र सूरि हैं, 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र', जिसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं। इन श्वेताम्बर आचार्यों ने पार्श्वनाथ के कथानक को विकसित किया है।

दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में, महाकवि पुष्पदन्त ने महापुराण में, वादिराज सूरि ने 'पासनाह चरिउ' में भगवान् पार्श्वनाथ के मौलिक प्रसंगों को उद्धृत किया है। पार्श्वनाथकाव्य, जिसके रचयिता आचार्य जिनसेन हैं, यह काव्य उत्तरपुराण से भी पहले का है, पर यह काव्य-ग्रन्थ है। इसकी रचना कालिदास के 'मेघदूत' की भांति हुई है। इस काव्य में "भगवान् पार्श्व" ध्यानावस्था में अवस्थित हैं और शम्बर देव उन्हें उपसर्ग प्रदान करता है, इसका चित्रण हुआ है। किन्तु जीवन वृत्त का परिचायक यह ग्रन्थ नहीं है। जिनरत्न कोष⁴ से पता चलता है कि आचार्य मल्लीसेण ने भी महापुराण या त्रिषष्टिशलाका पुराण की रचना की है पर वह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। उसमें भी पार्श्व के जीवन के प्रसंग हैं।

1. The Sacred Books of the East, Vol. XLV, Introduction, page 21. "That Parsva was a historical person, is now admitted by all as very probable,....."
2. Indian Philosophy, Vol. I. p. 287.
3. The Uttaradhyayana Sutra, Introduction, p. 21 : "We ought also to remember that the Jain religion is certainly older than Mahavira, his reputed predecessor Parsva having almost certainly existed as a real person, and that, consequently, the main points of the original doctrine may have been codified long before Mahavira."
4. जिनरत्न कोष, लेखक—हरि दामोदर वेलनकर, पृ० १६२.

समवायांग में तीर्थकरों के पूर्वभवों के नामों का कुछ उल्लेख हुआ है, उसका विकसित रूप हमें विमलसूरि रचित 'पञ्चमचरियं' में मिलता है। विमलसूरि ने अन्तिम दो भवों से पहले भव का विवरण प्रस्तुत किया है। सभी तीर्थकरों के उस तीसरे भव के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्वभव से सम्बन्धित कोई भी विवरण 'पञ्चमचरियं' में नहीं है। समवायांग में चौबीस तीर्थकरों के नाम आये हैं, उनमें से कुछ ही नाम उसमें मिलते हैं, जेप नाम पृथक् है। जैसे—'समवायांग' में पार्श्व का नाम 'सुदर्शन' है, जबकि 'पञ्चमचरियं' में 'आनन्द' है। समवायांग के "सुदर्शन" नाम का विवरण अन्य किसी भी पार्श्व चरित्र में नहीं मिलता है।

विमलसूरि रचित पञ्चमचरियं के समान ही आचार्य रविपेण ने भी पद्मपुराण में पार्श्वनाथ का विवरण दिया है।

पूर्वभवों का सर्वप्रथम व्यवस्थित उल्लेख श्वेताम्बर परम्परा में 'चउपन्न महापुरिस चरियं' में है तथा दिगम्बर परम्परा में 'उत्तरपुराण' में है। फिर उसके बाद रचित ग्रन्थों में प्रायः उन्हीं का अनुसरण हुआ है।

समवायांग और कल्पसूत्र में पार्श्व का नामकरण किस कारण हुआ? इसकी कोई सूचना वहाँ पर नहीं है। आवश्यकनिर्युक्ति में सर्वप्रथम इसके निमित्त की चर्चा की गई है। वहाँ लिखा है—“सर्पं सयणे जणणी तं पासइ तमसि तेण पास^३ जिणो।”

आचार्य हरिभद्र^३ ने प्रस्तुत विषय पर विस्तार से चिन्तन करते हुए लिखा है कि पार्श्व की माता वामा भगवान् के गर्भ में आने पर स्वप्न में नाग देखती है तथा पार्श्वनाथ के दिव्य प्रभाव से अन्धकार में भी सन्निकट में से निकलते हुए सर्प को देखती है, इसलिए भगवान् का नाम 'पार्श्व' रखा गया। आचार्य हेमचन्द्र,^४ भावदेव,^५ विनयविजय^६ जी आदि ने नामकरण में 'पार्श्व' में जाते हुए सर्प को देखा, इसलिए उनका नाम पार्श्व हुआ, ऐसा स्पष्ट उल्लेख किया है। उत्तरपुराण,^७ पासनाहचरिउ^८ प्रभृति ग्रन्थों में इन्द्र ने बालक का नाम 'पार्श्व' रखा, ऐसा उल्लेख है। दिगम्बर ग्रन्थों में सर्प के देखने का उल्लेख नहीं है और न उसका नाम के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है।

पार्श्वनाथ के गृहस्थ जीवन की दो मुख्य घटनायें हैं। प्रथम घटना है—कुशस्थलपुर का युद्ध और प्रभावती के साथ विवाह; और दूसरी घटना है—कमठ के साथ विवाद और नाग का उद्धार।

कुशस्थलपुर युद्ध के लिए जाने का वर्णन न आगम ग्रन्थों में है और न चउपन्न महापुरिस चरियं में ही है। सर्वप्रथम पद्मकीर्ति रचित पासनाहचरिउ में तथा देवभद्र सूरि रचित पासनाहचरियं में यह वर्णन मिलता है। पर दोनों ग्रन्थों में श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा-भेद होने से कथानक में ही मूलभेद होना स्वाभाविक है। आचार्य शीलांक ने कुशस्थलपुर जाने का वर्णन नहीं किया है, किन्तु उन्होंने प्रभावती के साथ पार्श्व का विवाह होना बताया^९ है। दिगम्बर आचार्य पद्मकीर्ति के अनुसार प्रभावती के साथ पार्श्व का विवाह सम्बन्ध स्वीकृत होता है^{१०} पर उसी समय कुशस्थलपुर में ही कमठ और नाग की घटना

१. पञ्चमचरियं २०/१-२५. डा० हरमन जेकोवी इसकी रचना तीसरी शताब्दी मानते हैं। ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचना-काल वीर नि० सं० ५३० अर्थात् ई० सन् ३ बताया है। पर सभी विज्ञों में एकमत नहीं।
२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १०६१.
३. आवश्यकनिर्युक्ति, हरिभद्रियावृत्ति, पृ० ५०६.
४. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित, ६/३/४३-४४.
५. पार्श्वनाथ चरित्र, सर्ग ५.
६. कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका, पृष्ठ २०३.
७. जन्माभिषेक कल्याण पूजा निर्वृत्यनन्तरम् पार्श्वभिधानं कृत्वास्य पितृभ्यां तं समर्पयन् !
—उत्तरपुराण ७३/६२, पृष्ठ ४३५.
८. पासनाहचरिउ, पद्मकीर्ति ८/२३/७०.
९. एथावसरम्मि य सयलगुणगणालंकियसविसेसीकयर, वसोहग्गाइसयस्स भयवओ पसेणइणा अच्चन्तसोहग्गसालिणी पहावती णाम णिययधूया णणामिया ।
—चउपन्नमहापुरिसचरियं, पृ० २६१.
१०. जोवसियइ बहु-गुण कहिउ लग्गु । णरणाहहो तं णिय-चित्ति लग्गु ॥
गड वियसिय-वयणु खणेण तिरथु । अच्छइ धवलहरि कुमारु जित्थु ॥
करि लेयि णरिदे वुत्तु देउ । महु कण्ण परिणि करि वयणु एउ ॥ पडिण्णु कुमारे एउ होउ ॥ —पासनाहचरिउ, १३/६.

घटित होने से पार्श्व प्रभावती से विवाह न कर वे विरक्त हो जाते हैं।^१ जबकि देवभद्रसूरि ने विवाह होना माना है। पार्श्वनाथ के जितने भी अन्य चरित्र ग्रन्थ हैं, उन सभी में कमठ और नाग की घटना वाराणसी में मानी है। केवल पद्मकीर्ति ने ही वह कुशस्थलपुर में मानी है।

कमठ-विवाद का प्रसंग सर्वप्रथम हमें चउपन्न महापुरिस चरियं और उत्तरपुराण में प्राप्त होता है। दोनों में अन्तर यही है कि आचार्य शीलांक ने तो अग्नि में जलते काष्ठ में नाग को पीड़ित होते बताया है,^२ जबकि गुणभद्र ने काष्ठ को चीरने पर नाग-नागिन को पीड़ित होते बताया है।^३ आचार्य हेमचन्द्र^४ ने तथा भावदेव^५ सूरि ने शीलांकाचार्य का अनुसरण किया है। पद्मकीर्ति^६ ने पासनाहचरिउ में केवल एक नाग को ही जलते बताया है, जबकि वादिराज^७ सूरि ने पार्श्वनाथ चरित्र में नाग-गुम्भ का धरणेन्द्र-पद्मावती के रूप में उल्लेख किया है। दोनों ही परम्पराओं के अर्वाचीन ग्रन्थों में नाग-नागिन और धरणेन्द्र पद्मावती का उल्लेख हुआ है। कितने ही लेखकों ने यह लिखा है कि नागिन मर कर धरणेन्द्र की स्त्री पद्मावती देवी बनी।^८ पर स्थानांग,^९ भगवती,^{१०} ज्ञाता सूत्र^{११} में धरणेन्द्र नागराज की १. आला २. शक्रा ३. सतेरा ४. सोदामिनी ५. इन्द्रा ६. घनविद्युता, ये छह अग्रमहिषियां बताई गई हैं, उनमें पद्मावती का नामोल्लेख नहीं है।

जिस प्रकार इन्द्रों के नाम शाश्वत हैं, उनमें परिवर्तन नहीं होता वैसे ही अग्रमहिषियों के नाम भी शाश्वत हैं। ज्ञाता-सूत्र के अनुसार वर्तमान में धरणेन्द्र की जो अग्रमहिषियां हैं, वे भगवान् पार्श्वनाथ के शासन में बनी हैं। अग्रमहिषियों की स्थिति अर्धपल्योपम से भी अधिक बताई है।^{१२} इससे यह स्पष्ट है कि धरणेन्द्र के पूर्व जो अग्रमहिषियां थीं, वे सत्रहवे तीर्थंकर कुन्धुनाथ के समय बनी होंगी, इसलिए वे भगवान् पार्श्व के गृहस्थाश्रम तक जीवित थीं।^{१३}

आचार्य हेमचन्द्र^{१४} और भावदेव^{१५} ने भगवान् पार्श्व के शासनदेव का नाम 'पार्श्व यक्ष' दिया है तथा शासनदेवी का नाम 'पद्मावती यक्षिणी' दिया है। कहीं कहीं पर धरणेन्द्र और पार्श्व ये दोनों एकार्थक रूप में व्यवहृत हुए हैं।^{१६} लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ^{१७} तथा हार्ट ऑफ जैनिज्म^{१८} में भी धरणेन्द्र और पद्मावती को शासनदेव और शासनदेवी

१. - पासणाहचरिउ, १३/६-१३.
२. चउपन्नमहापुरिस चरियं, पृष्ठ २६१
३. उत्तरपुराण ७३/१०१-१०३.
४. त्रिषष्टिशलाकापुरष चरित्र, अँग्रेजी अनुवाद, खण्ड ५, पृ० ३६१-३६२.
५. पार्श्वनाथ चरित्र, सर्ग छठा
६. पासनाह चरिउ
७. परिणमदनलामपाकजात-श्रम भरितं भुजंग प्रियासमेतम् ।
जिनवररविरुदयन् स्वाघाम्बा सकलमपास्य तताप तापसस्य ॥८४॥
परिगतदहनं व्युदस्य देहं भुजगपति भवेन वभूव देवः ।
समजनि भुजगी च तस्य देवी-वदलत्कोमल नीलनीरजाक्षी ॥८६॥
पद्मावती च धरणश्च कृतोपकारं तत्काल जातमवधिं प्रणिधायबुद्ध्वा ।
आनम्र मौलिकचिरच्छ विचचिताघ्नि-मानचंतुः सुरतरुप्रसवैजिनेन्द्रम् ॥८७॥
—श्री पार्श्वनाथ चरितं, सर्ग १०२, श्लोक ८४, ८६, ८७.
८. उत्तरपुराण ७३/११८-११९, पृष्ठ ४३६-४३७.
९. धरणस्स णं नागकुमारिदस्स नागकुमाररत्तो छ अगमहिसीओ पणत्ताओ तंजहा—आला, सक्का, सतेरा, सोयामणा, इन्द्रा, षणविज्जुया ।
—स्थानांग सूत्र ३५, घासीलाल जी, म० द्वारा सम्पादित, भा० ४, पृ० ३७१.
१०. धरणस्स णं भंते ! नागकुमारिदस्स नागकुमाररत्तो कति अगमहिसीओ पणत्ताओ ? अज्जो ! छ अगमहिसीओ पणत्ताओ, तंजहा—१. इला २. सुक्का ३. सतारा ४. सोदामिणी ५. इन्द्रा ६. घणविज्जुया ।
—भगवती, शतक १०, उद्देशक ५, खण्ड ३, पृष्ठ १०१.
११. ज्ञातासूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंध, तृतीय वर्ग, पृ० ६०६. प्रकाशक—तिलोक रत्न स्था० परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी.
१२. णवरं धरणस्स अगमहिसित्ताए उववाओ सातिरेगअद्धपलिओवमठिई । —ज्ञातासूत्र, द्वि० श्रुतस्कंध, २/३/पृ० ६०६.
१३. समर्थ समाधान, भाग १ला, पृष्ठ ६५.
१४. (क) त्रिषष्टि—६/३/पृष्ठ ४८६-४८७. गुजराती । (ख) अभिधान चिन्तामणि ४३.
१५. पार्श्वचरित, सर्ग ७, श्लोक ८२७.
१६. श्री पार्श्वचरित सर्ग ६, श्लोक १६०-१६४.
१७. लाइफ एण्ड स्टोरीज् ऑफ पार्श्वनाथ, फुटनोट, पृ० ११८, १६७.
१८. हार्ट ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ ३१३.

माना है। वादिराज सूरि विरचित पार्श्वनाथ चरित^१ तथा बृहद् पद्मावती स्तोत्र^२ में भी यह वर्णन है। मेरी दृष्टि से लेखकों ने भूल से ऐसा किया है क्योंकि पद्मावती को यक्षिणी और धरणेन्द्र को यक्ष लिखा गया है। यक्ष और यक्षिणी यह वाणव्यन्तर देवों का ही एक प्रकार है।^३ जबकि धरणेन्द्र भवनपति के इन्द्र हैं।^४ इसलिए पद्मावती यक्षिणी उनकी देवी किस प्रकार हो सकती है? वाणव्यन्तर की देवी भवनातियों की देवी नहीं बन सकती, अतः प्रस्तुत कथन आगमसम्मत नहीं है। आगमजों के लिए चिन्तनीय है।

चउपन्नमहापुरिस चरियं^५ में लिखा है कि एक वार पार्श्वकुमार बावीसवें तीर्थकर अरिष्टनेमि के भीति-विश्रों का अवलोकन कर रहे थे। अवलोकन करते-करते उनके अन्तर्मानस में वैराग्य भावना जागृत हुई। उत्तरपुराण^६ में लिखा है कि भगवान् पार्श्व जब गृहस्थाश्रम में थे, तब अयोध्या का दूत वाराणसी आया, उस दूत ने भगवान् ऋषभदेव का वर्णन सुनाया, जिससे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। आचार्य देवभद्र सूरि ने पासनाह चरिउं^७ में शीलांक का ही अनुकरण किया है। पद्मकीर्ति^८ के अभिमतानुसार कमठ और नाग की घटना उनके वैराग्य का निमित्त बनी। आचार्य हेमचन्द्र^९ और वादिराज^{१०} सूरि ने उनके वैराग्योत्पत्ति का कोई कारण नहीं दिया है। आधुनिक श्वेताम्बर साहित्य में शीलांक का विशेष रूप से अनुसरण हुआ है।

समवायांग और कल्पसूत्र में कमठ कृत उपसर्गों की विल्कुल चर्चा नहीं है। पर चउपन्नमहापुरिसचरियं,^{११} श्री पासनाह चरियं,^{१२} त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र^{१३} में यह घटना आई है।

कमठ तापस मरकर मेघमाली देव बना। विभंगज्ञान से भगवान् पार्श्व को ध्यान मुद्रा में देखकर उसका अहंकार जागृत हो उठा। इसने मुझे पूर्वभव में पराजित किया था। अब मैं इसे पराजित कर अपनी शक्ति प्रदर्शित करूँ! उसने सर्प, बिच्छू आदि के विविध रूप बनाकर भगवान् को भयंकर यातनायें दीं, किन्तु वे मेरे की तरह अडोल रहे। तब खिसिया कर भयंकर गर्जना करते हुए अपार जल की वृष्टि की।^{१४} नासाय तक पानी आ जाने पर भी पार्श्व ध्यान से विचलित नहीं हुए।^{१५} धरणेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से मेघमाली के उपसर्ग को देखा। सात फनों का छत्र बनाकर मेघमाली देव के उपसर्ग का निवारण किया।^{१६}

भक्ति भावना से विभोर होकर धरणेन्द्र ने भगवान् की स्तुति की। पर समतायोगी भगवान् पार्श्व न धरणेन्द्र पर तुष्ट हुए और न कमठ के जीव पर रुष्ट ही हुए। यही कारण है कि आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है^{१७}—

“कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचिते कर्म कुर्वन्ति । प्रमोस्तुल्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः” ॥

धरणेन्द्र के भय से भयभीत बना हुआ मेघमाली प्रभु के चरणों में गिरकर अपने अपराधों की क्षमायाचना करने लगा।

१. पद्मावती जिनमतस्थितिमुन्नयती, कि नैव तत्सदसि शासनदेवतासीत् ।
तस्याः पतिस्तु गुणसंग्रहदक्षचेता, यक्षो बभूव जिनशासनरक्षणज्ञः ॥

—श्री पार्श्वनाथ चरितम् १२/४२, पृष्ठ १६३.

२. पातालाधिपति प्रिया प्रणयिनी चिन्तामणि प्राणिनां । श्री मत्पार्श्वजिनेश शासन-सुरी पद्मावती देवता ॥

—बृहद् पद्मावती स्तोत्र २२.

(प्रकाशक—माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, बम्बई)

- | | |
|--|---|
| ३. स्थानांग-समवायांग, पृष्ठ ४५५. | ४. स्थानांग-समवायांग, पृष्ठ ४८१. |
| ५. चउपन्नमहापुरिस चरियं, पृष्ठ २६३. | ६. उत्तरपुराण ७३/१२०-१२४. |
| ७. पासनाह चरिउ १६२. | ८. पासनाह चरिउ १३/१२. |
| ९. त्रिषष्टि० ६/३/२३१. | १०. पार्श्वनाथ चरित्र ११वाँ सर्ग, श्लोक १-५५. |
| ११. चउपन्नमहापुरिस चरियं २६६. | १२. श्री पासनाह चरियं ३/१६१. |
| १३. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र ६/३ | १४. सिरि पासनाह चरियं—देव०, ३/१६२. |
| १५. सिरि पासनाह चरियं ३/१६३. | १६. (क) चउपन्नमहापुरिस चरियं २६७. |
| १७. त्रिषष्टि० पर्व ६, सर्ग १, श्लोक २५. | (ख) सिरिपासनाहचरियं ३/१६३. |

चउपन्नमहापुरिस चरियं,^१ सिरि पासनाह चरियं,^२ त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र^३, पद्मकीर्तिकृत पासनाह चरिउ^४ प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों में विघ्नकर्ता का नाम मेघमालिन् दिया है। उत्तरपुराण,^५ पुष्पदन्त कृत महापुराण और रङ्ग के पासचरिय में विघ्न उपस्थित करने वाले का नाम 'शम्बर' दिया है। वादिराज^६ ने उसका नाम 'भूतानन्द' लिखा है। आचार्य सिद्धसेन^७ दिवाकर ने लिखा है—हे स्वामिन् ! उस शठ कमठ ने जो धूलि आप पर फैंकी, वह धूलि आपकी छाया पर भी आघात नहीं पहुँचा सकी।^८

पद्मकीर्ति^९ के अनुसार भगवान् पार्श्व को जब कमठ उपसर्ग दे रहा था, तब उनको केवलज्ञान हुआ। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार कमठ के उपसर्ग के कुछ दिनों बाद भगवान् पार्श्व को केवलज्ञान हुआ।^{१०}

समवायांग और कल्पसूत्र के अनुसार पार्श्व के प्रथम शिष्य 'दिन्न' [आर्यदत्त] हुए तथा प्रथम शिष्या 'पुष्पचूला' हुई।^{११} प्रथम श्रावक सुनन्द तथा प्रथम श्राविका सुनन्दा हुई। दिग्म्बर परम्परा के अनुसार प्रथम शिष्य का नाम 'स्वयंभू' है और प्रथम शिष्या का नाम 'सुलोका' या 'सुलोचना' है।^{१२} पद्मकीर्ति के अनुसार प्रथम शिष्या का नाम प्रभावती है।^{१३}

स्थानांग,^{१४} समवायांग^{१५} और कल्पसूत्र^{१६} के अनुसार भगवान् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. शुभ २. शुभघोष ३. वसिष्ठ ४. ब्रह्मचारी ५. सोम ६. श्रीधर ७. वीरभद्र और ८. यश। आवश्यक निर्युक्ति^{१७} आवश्यक^{१८} मलयगिरी वृत्ति, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र,^{१९} सिरि पासनाह चरिउ,^{२०} तिलोयपण्णत्ति^{२१} ग्रन्थों में भगवान् पार्श्व के दस गणधर लिखे हैं। उनके नामों में भी अन्तर है। उदाहरण के रूप में, द्वितीय गणधर का नाम कल्पसूत्र में 'आर्यघोष' है, तो समवायांग में 'शुभघोष' है। कल्पसूत्र में प्रथम गणधर का नाम 'शुभ' है तो श्री पासनाह चरियं में 'शुभदत्त' है। गणधरों की संख्या के सम्बन्ध में उपाध्याय विनयविजयजी^{२२} ने यह समाधान दिया है कि भगवान् पार्श्वनाथ के दो गणधर अल्प आयुष्य वाले थे, इसलिए समवायांग और कल्पसूत्र में आठ गणधरों का उल्लेख हुआ है। अन्य ग्रन्थों में दस गणधरों का उल्लेख हुआ है।

आवश्यकनिर्युक्ति^{२३} के अनुसार भगवान् पार्श्व मुख्य रूप से अंग, बंग, तथा मगध में विचरे थे। पर भारत के दक्षिण-पश्चिम अंचल को भी उन्होंने स्पर्श किया था। भगवान् पार्श्व ने कर्नाटक से सौराष्ट्र तक एवं अनार्य देशों में भी विहार

१. चउपन्न० २६६.
२. ताव पुञ्जुत्तकढो, मेहकुमारत्तणेण वट्टंतो ! —सिरिपास० ३/१६१.
३. त्रिषष्टि० ६/३.
४. तं पेक्खेवि धवलुज्जलु थक्कउ अविचलु मेहमल्लिभडु कुद्धउ ।
—पासणाह चरिउ १४/५/११६.
५. उत्तरपुराण ७३/१३६-१३७.
६. श्री पार्श्वनाथ चरित्र १०/८८.
- ७.—८. कल्याणमन्दिर स्तोत्र ३१.
८. पासणाह चरिउ १४/३०/१३२.
१०. भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १०४-१०५—ले० देवेन्द्रमुनि
११. (क) समवायांग १५७, गा० ३६-४१. (ख) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ ।
—कल्पसूत्र १५७.
- (ग) पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओसुनन्दपामोक्खाणं...सुनन्दापामोक्खाणं...!—कल्पसूत्र १५७
- (घ) समवायांग १५७/४२-४.
१२. (क) तिलोयपण्णत्ति ४/६६६, पृष्ठ २७१. प्र० भाग (ख) पासणाह चरिउ १५/१२/१३८.
- (ग) तिलोयपण्णत्ति ४/११/८०.
१३. तहो दुहिय पहावइ वर-कुमारि । अवयरिय जुवाणहं णाइ मारि । सा अज्जिय संघहो वर-पहाण.....
—पासणाह चरिउ, १५/१२/१३८.
१४. स्थानांग, ६१७.
१५. समवायांग ८/८.
१६. कल्पसूत्र १५६, पृष्ठ २२३.
१७. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६०.
१८. आवश्यक मलयगिरी वृत्ति, पत्र २०६.
१९. त्रिषष्टि० ६/३.
२०. (क) सिरि पासणाह चरियं ४/२०२. २१. तिलोय पण्णत्ति
- (ख) पार्श्व चरित्र ५/४३७-४३८
२२. द्वौ अल्पायुत्कत्वादिकारणान्त्वोवती इति टिप्पणके व्याख्यातम् । —कल्पसूत्र, सुवोदिका टीका, पृ० ३०१.
२३. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २५६.

क्रिया था। सकलकीर्ति^१ की दृष्टि से भगवान् पार्श्व का विहार-क्षेत्र इस प्रकार रहा—कुरु, कौशल, काशी, सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालव, अंग, वंग, कर्लिंग, पांचाल, मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्णाटक, कोंकण, मेवाड़, लाट, द्राविड़, काश्मीर, कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स, आभीर आदि देशों में उन्होंने विहार किया था। अन्य आचार्यों ने^२ भी इसी प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ के विहार का वर्णन किया है। भगवान् पार्श्व शाक्य द्वीप में पधारे थे। शाक्य भूमि नेपाल की उपत्यका में थी। वहाँ पर पार्श्वनाथ अत्यधिक अनुयायी गण रहते थे। तथागत बुद्ध के चाचा भगवान् पार्श्व के अनुयायी श्रावक थे।^३ प्राचीन काल से भारत और शाक्य प्रदेश में अत्यन्त मधुर सम्बन्ध रहे हैं। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ भगवान् पार्श्व का परिनिर्वाण सम्मत शिखर मानते हैं, जो पर्वत आज भी बिहार राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित है और 'पार्श्वगिरी' के नाम से विश्रुत है। उसके निकटस्थ रेलवे का नाम भी पारसनाथ है।

भगवान् महावीर :

श्रमण भगवान् महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी था। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक मूलभूत समस्याओं का मौलिक समाधान किया था। जिस समय ईरान में जरथोस्त्र, फिलिस्तीन में जीरेमिया, तथा ईजिकिल, चीन में कन्फ्यूशियस एवं लाओत्से, यूनान में पाइथागोरस, अफलातून और सुकरात आदि विविध चिन्तक अपना चिन्तन प्रस्तुत कर रहे थे, उसी समय भारत में पूरण कश्यप, मंखली गौशालक, अजित केसकम्बली, प्रकुद्ध कात्यायन, संजय-विरट्ठीपुत्र, तथागत बुद्ध, आदि विचारक तात्कालिक समस्या का समाधान कर रहे थे।

उस समय वैदिक संस्कृति में उच्छृंखलता, अमानवीयता एवं घनघोर अहंकार के मद में क्रूरता प्रदीप्त थी। यज्ञ में मूक पशु-पक्षी और निरपराधी नर-नारी तथा शिशु समुदाय को समर्पित किया जा रहा था। "यज्ञार्थं पशवः स्रष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा" तथा "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"—इस प्रकार के अनुचित नारे लगाकर यज्ञ आदि अनुष्ठानों का औचित्य प्रगट किया जा रहा था। जातिवाद एवं वर्णवाद की सीमायें अत्यन्त संकीर्ण हो गई थीं। शूद्र वर्ग को पतित माना जाता था। वेदाध्ययन का उसे अधिकार नहीं था। यदि वेद के शब्द उनके कर्ण कुहरों में गिर जाते तो उनके कानों में शीशा भर दिया जाता तथा वेद के शब्दोच्चार होने पर जिह्वा छेदन कर देते थे। इस प्रकार जन-जीवन के साथ खिलवाड़ की जा रही थी। यज्ञ-हिंसा के साथ जातिगत हिंसा भी कम नहीं थी। गरीब-अमीर तथा दास और स्वामी आभिजात्य और निम्न वर्गों के बीच गहरी खाई पैदा हो गई थी। सम्पूर्ण समाज में कुण्ठा थी। उस समय भगवान् महावीर का जन्म होता है।

महावीर के जीवन में गर्भापहरण की घटना प्राचीनतम आगम ग्रन्थों में मिलती है।^४ मथुरा में प्राप्त एक प्लेट क्रमांक १८. पर भी डा० वूलर ने "भगवानेमेसो" पढ़ा है, जो भगवान् महावीर के गर्भ-परिवर्तन का सूचक है।^५ प्रस्तुत ग्रन्थ में यह घटना विस्तार से निरूपित है। वयासी रात्रि व्यतीत होने पर इन्द्र के आदेश से हरिणगमेषी देव ने देवानन्दा की कुक्षी से संहरण कर उन्हें त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षी में प्रस्थापित किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ। आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य, आदि प्राचीन साहित्य में महावीर के द्वारा मेरु कम्पन का उल्लेख नहीं है। सर्वप्रथम पउमचरियं में विमलसूरि ने लिखा है—मेरुपर्वत को अपने अँगूठ से क्रीड़ा मात्र में भगवान् ने हिला दिया था, इसलिए सुरेन्द्रों ने उनका नाम 'महावीर' रखा।^६ उसके पश्चात् आचार्य शीलांक,^७ आचार्य नेमिचन्द्र,^८ आचार्य गुणचन्द्र,^९ आचार्य हेमनन्द^{१०} और कल्पसूत्र की विविध टीकाओं में विस्तार से इस प्रसंग को लिखा है।

१. सकलकीर्ति—पार्श्वनाथ चरित्र २३/१८-१९, १५/७६-८५.
२. (क) पार्श्वनाथ चरित, सर्ग १५/७६-८५. (ख) त्रिपष्टि०—६/४ पृ० २६३-३०८ (गुजराती अनुवाद)
(ग) सिरिपासणाहचरियं सर्ग ८. ३. अंगुत्तरनिकाय की अट्ठ कथा, भाग २, पृ० ५५६.
४. भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन—ले० देवेन्द्रमुनि "शास्त्री"
५. (क) स्वानांग ७७०. (ख) समवायांग ८३. (ग) आचारांग २/१५. (घ) भगवती, शतक ५, उद्दे० ४.
६. The Jain Stupa and other Antiquities of Mathura, p. 25.
७. आकम्पिओ व जेणं, मेरु अंगुठेण लीलाए । तेणेह महावीरो, नामं सि कयं सुरिन्देहि ॥—पउमचरियं २/२६, पृ० १०.
८. चउप्पन्न महापुरिस चरियं, २७१ पृष्ठ ६. महावीर चरियं, गा० १-३४, पृष्ठ ३०-३१.
९. महावीर चरियं, गा० १-३, तथा पृष्ठ १२०-१२१. ११. त्रिपष्टि० १०/२/५८-६६.

विमलसूरि तथा दिग्भर आचार्य रविषेण इन दोनों ने प्रस्तुत प्रसंग के साथ भगवान् महावीर के नामकरण का सम्बन्ध भी जोड़ा है, किन्तु अन्य आचार्यों ने नहीं। पं० सुखलाल जी सिधवी ने भागवत् में आये हुए श्रीकृष्ण के जीवन के उस प्रसंग के साथ तुलना की है कि श्रीकृष्ण ने इन्द्र के द्वारा किये गये उपद्रवों से रक्षण करने के लिए योजन प्रमाण गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक ऊपर उठाये रखा।^१ किन्तु जन्मते हुए महावीर ने अंगूठे से मेरुपर्वत को कंपा दिया।^२

बौद्ध परम्परा के मज्झिमनिकाय ग्रन्थ में वर्णन है—भिक्षु मौद्गल्यायन ने वैजयन्त प्रासाद को अंगुष्ठ-स्पर्श से प्रकम्पित कर इन्द्र को प्रभावित किया।^३ इस तरह मेरु-कम्पन, गोवर्धन-धारण एवं प्रासाद-कम्पन की घटनायें उस युग में अपने-अपने आराध्य पुरुषों के सामर्थ्य, पराक्रम और ऐश्वर्य की प्रतीक बन गई थीं। राजा सिद्धार्थ ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। डा० हॉर्नल,^४ डा० जेकोबी,^५ ने अपने लेखों में सिद्धार्थ को राजा न मान कर एक प्रतिष्ठित उमराव व सरदार माना है। उनका यह मानना आगम-सम्मत नहीं है। आचारांग एवं कल्पसूत्र आदि में 'सिद्धत्ये खत्तिए' शब्द का प्रयोग हुआ है, लगता है जिसके कारण उनको यह भ्रम पैदा हुआ हो। क्षत्रिय का अर्थ सामान्य क्षत्रिय ही नहीं, अपितु राजा भी है। अभिधान चिन्तामणि में कहा है—क्षत्रिय, क्षत्र आदि शब्दों का प्रयोग राजा के लिए भी होता है।^६ प्रवचनसारोद्धार में 'महसेणे य खत्तिए' शब्द आया है। वहाँ टीकाकार ने क्षत्रिय का अर्थ राजा किया है।^७

आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य आदि में वर्णन है—भगवान् महावीर का जन्म होने पर देवों ने स्वर्ण, रत्न आदि सिद्धार्थ राजा के घर पर लाकर रखे तथा जृम्भक देवों ने भी रत्न आदि की वृष्टि की, इसलिए भगवान् का नाम 'वर्धमान' हुआ, ऐसा उल्लेख नहीं है। पर आचारांग,^८ महावीर चरियं,^९ चउपन्नमहापुरिस चरियं^{१०}, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र^{११} आदि के वर्णन से यह स्पष्ट है, कि निरन्तर धन-धान्य की अभिवृद्धि होने से उनका नाम 'वर्धमान' रखा गया। वे किसी भी प्रकार के भय उत्पन्न होने पर भी विचलित नहीं हुए। इसलिए उनका दूसरा नाम 'महावीर' हुआ। आचारांग,^{१२} कल्पसूत्र,^{१३} आवश्यकनिर्युक्ति,^{१४} महावीर चरियं,^{१५} त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र^{१६} आदि में भी इसका समर्थन है।

वर्धमान, महावीर, सन्मति, काश्यप, समण, ज्ञातपुत्र, विदेह, वैशालिक आदि विविध नाम अनेक ग्रन्थों में प्राप्त हैं।^{१७}

१. भागवत, दशमस्कंध, अ० ४३, श्लोक २६-२७.
२. चार तीर्थंकर पं० सुखलाल जी, पृष्ठ ६०.
३. मज्झिमनिकाय, चूलतण्हासंख्यसुत्त।
४. 'महावीर तीर्थंकरनी जन्मभूमि' लेख—जैन साहित्य संशोधक, खण्ड १, अंक ४, पृष्ठ २१६.
५. 'जैन सूत्रोनी प्रस्तावना का अनुवाद'—जैन साहित्य संशोधक, खण्ड १, अंक ४, पृष्ठ ७१.
६. क्षत्रं तु क्षत्रियो राजा; राजन्यो बाहुसंभवः। —अभिधान चिन्तामणि, काण्ड ३, श्लोक ५२७.
७. (क) प्रवचनसारोद्धार सटीक पत्र ८४. (ख) चन्द्रप्रभस्य महासेनः क्षत्रियो राजा। —प्रवचनसारोद्धार, सटीक पत्र ८४.
८. चूलिका २/१५/१२-१३.
९. (क) महावीर चरियं, गुणचन्द्र, प्र० ४, पृष्ठ ११४-१२४ (ख) महावीर चरियं ७७०, पृष्ठ ३४, नेमिचन्द्र
१०. चउपन्न० पृष्ठ २७१. ११ त्रिषष्टि० १०/२/६८-६९.
१२. 'भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परिसहं सहइ त्ति कट्टु, देवेहिं से णामं कयं 'समणे भगवं महावीरे ।'
—आयारो० आयार० २/१५-१६
१३. अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खत्तिखए पडिमाणं पालए धीयं अरतिरति सहे दविए वीरियसम्पन्ने देवेहिं से णामं कयं
'समणे भगवं महावीरे' !
—कल्पसूत्र १०४.
१४. (क) घोरं परीसहचमु' अधियासित्ता महावीरो।
(ख) विशेषावश्यक भाष्य १६७२ (ग) आ० हरिभद्रीय० ५३७
—आवश्यकनिर्युक्ति ४२०
१५. महावीर चरियं ४/१२५.
१६. महोपसर्गोप्येप न कप्यं इति वज्जिणा । महावीर इत्यपरं नाम चक्रे जगत्पतेः ॥
—त्रिषष्टि० १०/२/१००.
१७. भगवान् महावीर : एक अनुशीलन—ले० देवेन्द्रमुनि "शास्त्री", पृष्ठ २३८-२५८.

भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वपत्य श्रमणोपासक थे। जीवन की सांध्य वेला में संलेखना सहित आयु पूर्ण कर वे देव बने। आचारांग तथा कल्पसूत्र में उनके तीन-तीन नाम आये हैं एवं पारिवारिक जनों के नाम भी वर्णित है। महावीर वार्षिक दान देकर बड़े ही उल्लास के क्षणों में एकाकी दीक्षित होते हैं।^१ दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। एक संवत्सर से अधिक मास तक भगवान् वस्त्र-धारी रहे। उसके बाद वे अचेलक बन गये। उन्होंने नाना प्रकार के अभिग्रह ग्रहण किये। जो भी मनुष्य, देव तथा तिर्यच सम्बन्धी उपसर्ग उपस्थित हुए, उन्हें शान्तभाव से प्रभु ने सहन किये। आचारांग आदि में केवल उपसर्गों का संकेत है किन्तु कौन-कौन से उपसर्ग उन्हें साधना-काल में उपस्थित हुए, इसका किंचित् मात्र भी वर्णन नहीं है। सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति एवं आवश्यकचूर्णि आदि में उनके विविध उपसर्गों का क्रमवद्ध वर्णन है। सर्वप्रथम चाला बिल गुम जाने से भगवान् को चोर समझ कर बिलों को बांधने की रस्सी से उन्हें मारने दौड़ा। इन्द्र ने, प्रभु से, साथ में रहने की प्रार्थना की, किन्तु महावीर ने उसकी प्रार्थना को यह कहकर टाल दिया कि आत्म सिद्धि या मुक्ति दूसरों के सहारे प्राप्त नहीं हो सकती। शूलपाणि यक्ष ने भी प्रभु को रोमांचकारी कष्ट दिये। प्रथम वार इतने कष्ट एक साथ आये, जिससे उन्हें कुछ थकान महसूस हुई; और भगवान् को दश स्वप्न आये। उन दश स्वप्नों का उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है। ये दश स्वप्न भगवान् के भावी जीवन को प्रतिबिम्बित कर रहे थे।

अंगुत्तरनिकाय^२ में तथागत बुद्ध ने भी अपने साधना काल की अन्तिम रात्रि में पाँच स्वप्न देखे, जिनका सम्बन्ध उनके भावी जीवन से था। बुद्ध ने स्वप्न में देखा—मैं एक महापर्यक पर सोया हुआ हूँ, मैंने हिमालय का उपघान [तकिया] लगा रखा रखा है। बायें हाथ से मैं पूर्वी समुद्र को छू रहा हूँ और दायें हाथ से पश्चिमी समुद्र को स्पर्श कर रहा हूँ। मेरे पैर दक्षिण समुद्र को छू रहे हैं। इस स्वप्न का अर्थ है—मुझे पूर्ण बोधि प्राप्त होगी।^३ बुद्ध ने दूसरे स्वप्न में देखा—“तिर्या” नामक एक वृक्ष उनके हाथ में पैदा हुआ और वह वृक्ष अनन्त आकाश को छूने लगा। इस स्वप्न का फल होगा—मैं अष्टाङ्गिक मार्ग का निरूपण करूँगा। तीसरे स्वप्न में उन्होंने देखा श्वेत कीट, जिसका सिरोभाग काला है, वह कीट मेरे घुटने तक रँग रहा है। इसका अर्थ है श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों का शरणागत होना। बुद्ध ने चतुर्थ स्वप्न में देखा—रंग विरंगे चार पक्षी चार दिशाओं से आ रहे हैं और वे पक्षी चरणों में गिर रहे हैं, गिरते ही वे श्वेत हो जाते हैं। इस स्वप्न का तात्पर्य है—चारों वर्ण वाले लोग मेरे पास दीक्षित होंगे तथा वे निर्वाण को प्राप्त करेंगे। पाँचवें स्वप्न में उन्होंने देखा—वे एक गोमय पर्वत पर चल रहे हैं, उस पर्वत पर वे न तो फिसल रहे हैं और न ही गिर रहे हैं। इस स्वप्न का फल यह होगा कि मैं भौतिक सुख-सुविधाओं के होने पर भी अनासक्त रहूँगा।

भगवान् महावीर ने साधना काल में दश स्वप्न देखे तो बुद्ध ने पाँच स्वप्न देखे। भगवती सूत्र आदि में यह स्पष्ट नहीं है कि वे स्वप्न साधना काल के कौन से वर्ष में देखे? कुछ लेखकों ने केवलज्ञान के पहले भगवान् महावीर ने दश स्वप्न देखे, यह उल्लेख किया है। आवश्यकनिर्युक्ति में भगवान् महावीर ने वे स्वप्न प्रथम वर्षावास के सोलहवें दिन देखे, ऐसा स्पष्ट संकेत है।^४ चण्डकौशिक को प्रतिबोध देने की घटना भी आचारांग तथा कल्पसूत्र आदि में नहीं है। आवश्यकचूर्णि,^५ महावीर चरियं-नेमीचन्द्र,^६ गुणचन्द्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र^७ आदि में, चण्डकौशिक को महावीर के द्वारा प्रतिबुद्ध किया गया, यह वर्णन है। विनयपिटक महावग्ग में बुद्ध के द्वारा चण्डनाग विजय का उल्लेख है।^८ दोनों घटनाओं में बहुत कुछ समानता है। तथागत बुद्ध एक बार काश्यपजटिल के आश्रम में पहुँचे और उन्होंने कहा—काश्यप! मैं तुम्हारी अग्नि-शाला में निवास करना चाहता हूँ। काश्यप उरुवेल ने सनम्र निवेदन किया—भगवन्! मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु वहाँ पर अत्यन्त चण्ड, दिव्य शक्ति सम्पन्न आशीविष नागराज रहता है, जो आपको कहीं कष्ट न दे! तथागत बुद्ध ने उत्तर में कहा—वह नाग मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देगा। बहुत बार कहने पर पुरुवेल ने बुद्ध को वहाँ रहने की स्वीकृति प्रदान की। बुद्ध अपना आसन लगाकर वहाँ बैठ गये। नागराज बुद्ध को देखकर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह जहरीला धुआँ उगलने लगा। बुद्ध ने अपने विशिष्ट योग-बल से नागराज के चर्म, मांस, अस्थि, मज्जा को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये उसका सारा तेज खींच लिया। प्रातः उसे अपने पात्र में रखकर पुरुवेल काश्यप को दिखाते हुए कहा—अब यह नागराज पूर्णरूप से निर्विष हो गया है। यह नागराज

१. आचाराङ्ग २/१५/२६.

२. (क) अंगुत्तरनिकाय ३-२४०. (ख) महावस्तु २/१३६.

३. प्रस्तुत स्वप्न का फल भगवती में उसी जन्म में मोक्ष में मोक्ष-प्राप्ति माना है।

—भगवती १६/६, सूत्र ५५०.

४. आवश्यकनिर्युक्ति, पृष्ठ २६६.

५. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २७८.

६. महावीर चरियं—नेमीचन्द्र ६६३—गुणचन्द्र ५/१४६.

७. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०/३/२२५-२२८

८. विनयपिटक महावग्ग, महाखंधक !

नमि राजर्षि :

श्रमण वही बनता है, जिसे बोधि प्राप्त हो। वह बोधि तीन प्रकार की है, जो स्वयं प्राप्त होती है वह "स्वयंबुद्ध" है, जिसे किसी घटना के निमित्त से बोधि प्राप्त होती है वह "प्रत्येकबुद्ध" है और जो बोधि प्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधिलाभ करते हैं वे "बुद्धबोधित" हैं।^१ नमि राजर्षि प्रत्येकबुद्ध हैं।

विदेह राज्य में दो नमि हुए और वे दोनों स्वयं के राज्य का परित्याग कर श्रमण बने। एक तीर्थंकर हुए और एक प्रत्येकबुद्ध हुए।^२ सुदर्शनपुर में मणिरथ का राज्य था। युगवाहु उसका कनिष्ठ भ्राता था। मदनरेखा युगवाहु की पत्नी थी। मणिरथ ने माया से युगवाहु को मार डाला। उस समय मदनरेखा गर्भवती थी। शील रक्षा के लिए वह वन में चली गई। उसने वन में पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र को राजा पन्नरथ मिथिला ले गया और उसका नाम 'नमि' रखा। वह मिथिला का राजा बना। एक बार वह दाह-ज्वर से संत्रस्त हुआ। छह माह तक दाह-ज्वर की उपशान्ति के लिए विविध प्रकार के उपचार किये गये। स्वयं रानियाँ चन्दन घिसतीं और नमि के शरीर पर दिलेपन करतीं। उनके हाथों में पहने हुए कंगनों की ध्वनि से नमि का सिर चढ़ गया। रानियों ने सौभाग्य-चिन्ह स्वरूप एक-एक कंगन हाथों में रखकर शेष कंगन उतार दिये।

नमि सोचने लगे—जहाँ दो हैं, वहाँ द्वन्द्व है, दुःख है। अकेलेपन में सुख है। विरक्तभाव आगे बढ़ा, वे प्रव्रजित हुए।^३ नमि को अकस्मात् प्रव्रजित होते देखकर इन्द्र ब्राह्मण का वेप बनाकर नमि को लुभाने के लिए प्रबल प्रयास करता है। उन्हें कर्त्तव्य-बोध का पाठ पढ़ाना चाहता है। नमि राजर्षि ब्राह्मण को अध्यात्म की गहरी बातें बताते हैं।

बौद्ध साहित्य में भी चार प्रत्येकबुद्धों का वर्णन है। पर उनके जीवन-चरित्र तथा बोधि-प्राप्ति के निमित्तों के उल्लेख में पृथक्ता है।^४ डिक्सनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स ग्रन्थ में^५ दो प्रकार के बुद्ध बताये हैं—प्रत्येकबुद्ध और सम्मासम्बुद्ध ! जो अपने आप ही बोधि को प्राप्त करते हैं पर संसार को उपदेश प्रदान नहीं करते, वे "प्रत्येकबुद्ध" हैं। इन्हें उच्च आत्मदृष्टि पैदा होती है। वे जीवन पर्यन्त अपनी उपलब्धि का वर्णन नहीं करते, इसलिए वे "मौनबुद्ध" भी कहलाते हैं। वे दो हजार असंख्येय कल्प तक 'पारामी' की साधना करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और गाथापति के कुल में उन्हें समस्त ऋद्धि, सम्पत्ति, प्रतिसम्पदा उपलब्ध होती है। उनका तथागत बुद्ध से कभी साक्षात्कार नहीं होता। वे एक साथ अनेक हो सकते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में नमि की तरह ही प्रत्येकबुद्ध का प्रसंग है।^६ वह इस प्रकार है—

विदेह राष्ट्र में मिथिला नगरी का नमि नाम का राजा था।^७ गवाक्ष में बैठा हुआ राजा राज-पथ को निहार रहा था। एक चील मांस के टुकड़े को लेकर अनन्त आकाश में उड़ी जा रही थी। गिद्ध पक्षियों ने देखा, वे मांस के टुकड़े की छीना-झपटी करने लगे। चील के मुँह से मांस का टुकड़ा छूट गया। दूसरे पक्षियों ने उसे ग्रहण किया। अन्य पक्षी उसके पीछे पड़ गये। नमि राजा ने सोचा—जो कामभोगों को ग्रहण करता है, वह दुःख पाता है। मेरे सोलह हजार स्त्रियाँ हैं, मुझे काम-भोगों का परित्याग कर सुखपूर्वक रहना चाहिए।

नमि प्रव्रज्या की आंशिक तुलना हम "महाजनक जातक" से भी कर सकते हैं। वह प्रसंग इस प्रकार है—मिथिला नगरी में महाजनक राजा था। उसके अरिदूठजनक और पोलजनक ये दो पुत्र थे। राजा की मृत्यु के बाद अरिदूठजनक राजा हुआ। कुछ समय के बाद दोनों भाइयों में मनमुटाव हो गया। पोलजनक ने प्रत्यन्त ग्राम में जाकर सेना इकट्ठी की और भाई को युद्ध के लिए ललकारा। युद्ध में अरिदूठजनक मारा गया। पति की मृत्यु से पत्नी को आघात लगा। वह राजमहल को छोड़कर निकल गई। वह गर्भवती थी, उसने पुत्र को जन्म दिया। पितामह के नाम पर उसका नाम भी महाजनक रखा। बड़े होने पर वह पिता के राज्य को लेने के लिए पहुँचा। पोलजनक की मृत्यु हो चुकी थी। उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः महाजनक राजा बन गया। सीवलीकुमारी से उसका पाणिग्रहण हुआ। दीर्घायु नामक पुत्र हुआ। एक दिन महाजनक उद्यान में गये, वहाँ आम के

१. नन्दीसूत्र, सूत्र २०

२. दुस्त्रिवि नमी विदेहा, रज्जाइ पयहिऊण पव्वइया।

एगो नमित्तिथयरो, एगो पत्तियबुद्धो अ॥

३. उत्तराध्ययन, मुखबोधिवृत्ति, पत्र १३६ से १४३।

४. कुम्भजातक, सं० ४०८, जातक खण्ड ४, पृ० ३६।

५. कुम्भजातक, सं० ४०८, जातक खण्ड ४, पृष्ठ ३६।

६. देखिए—उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन—मुनि नथमल जी

—उत्तराध्ययननियुक्ति, गाथा २६७

७. डिक्सनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग २, पृष्ठ २६४।

दो वृक्ष थे। एक आम से लदा हुआ था और दूसरा ठूंड की तरह खड़ा था। राजा ने एक वड़िया पके हुए फल को तोड़ा। राजा के पीछे चलने वाले सभी सैनिकों ने फल तोड़े। जिससे वह आम वृक्ष भी ठूंड की तरह हो गया। वन परिभ्रमण करके राजा लौटा। उसने देखा—जो वृक्ष पहले हरा-भरा एवं फलों से लदा हुआ था, वह अब फल एवं पत्तों से रहित खड़ा था। राजा ने माली से पूछा—यह वृक्ष फल-रहित कैसे हुआ? माली ने सारी बात बता दी। राजा सोचने लगा—जो फलदार होते हैं, वे नीचे जाते हैं। यह राज्य भी फलदार वृक्ष की तरह है, जो एक दिन नीचा जायेगा। वह प्रतियुद्ध हुआ। राजप्रासाद में रहते हुए भी वह विरक्त हो गया। उसे राजप्रासाद नरक की तरह प्रतीत होने लगा, वह चिन्तन करने लगा—मैं मिथिला को छोड़कर कब प्रव्रजित होऊँगा? रानियों ने रोकने का प्रयास किया। सीवली देवी ने एक उपाय खोजा। उसने महासैनारक्षक को बुलाकर आदेश के स्वर में कहा—तात! राजा के जाने के मार्ग पर जो आगे-आगे पुराने घर हैं, जीर्ण-शालाएँ हैं, उनमें आग लगा दो। जहाँ-तहाँ घास-पत्ते जलाकर धुँआँ पैदा कर दो। वैसा ही किया गया। सीवली देवी ने राजा से नम्र निवेदन करते हुए कहा—“घरों में आग लग रही है, ज्वालाएँ निकल रही हैं, खजाने जल रहे हैं, सोना-चाँदी, मणि-मुक्ता सभी जलकर नष्ट हो रहे हैं। हे राजन्! आप आकर उनको रोकने का प्रयास करें।” राजा महाजनक ने प्रत्युत्तर में कहा—

“सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।

मिथिलाय ड्यहमानाय न मे किञ्चि अड्यह्थ ॥

“मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। मिथिला नगरी के जलने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जलता।”

“सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।

रदठे विलुप्पमानमिह न मे किञ्चि अजीरथ ॥

सुसुखं बत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।

पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥”

“मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। राष्ट्र के नष्ट होने से मेरी कुछ भी हानि नहीं।”

“मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं सुखपूर्वक जीता हूँ। जैसे—अभास्वर देव हैं, वैसे ही हम प्रीतिभक्षक होकर रहेंगे।”

सभी का परित्याग कर राजा आगे बढ़ गया। देवी भी साथ ही थी। वे नगर द्वार पर पहुँचे। एक लड़की वालू रेली को थपथपा रही थी। उसके एक हाथ में कंगन था, वह बज रहा था। राजा ने पूछा—एक हाथ में कंगन क्यों बज रहा है? उसने कहा—एक हाथ में दो कंगन हैं, परस्पर रगड़ने से शब्द होता है। जो अकेला है, वह शब्द नहीं करता। विवाद का मूल दो है।^१

राजा आगे बढ़ा। एक उसुकार (बाँस-फोड़) एक आँख को बन्द कर देख रहा था। राजा ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—तुम ऐसा क्यों देख रहे हो? उसने कहा—दोनों आँखों से देखने पर रौशनी फैल जाती है, जिससे टेढ़ी जगह का पता नहीं लगता। एक आँख के बन्द करने से टेढ़ापन स्पष्ट दिख जाता है और बाँस सीधा किया जाता है।^२

रानी सीवली पीछे-पीछे चल रही थी। राजा ने मूँज के तिनके से रेखा को खींच कर कहा—अब इसे मिलाया नहीं जा सकता। इसी तरह से मेरा और तेरा साथ नहीं हो सकता। रानी पुनः लौट गई। महाजनक अकेले आगे चले गये। यह कथा जातक में बहुत ही विस्तार के साथ दी गई है। हमने संक्षेप में सार प्रस्तुत किया है। पूर्णरूप से कथा समान न होने पर भी दोनों का प्रतिपाद्य प्रायः समान सा है। दोनों ही कथाओं में ये विचार प्रतिपाद्य किये गये हैं—अन्यान्य आश्रमों से संन्यासाश्रम श्रेष्ठ है।^३ सन्तोष त्याग में है, भोग में नहीं।^४ सुख का मूल एकाकीपन है, और दुःख का मूल द्वन्द्व है।^५ सुख अकिञ्चनता में है।^६ साधना में विघ्न हैं—कामभोग।^७

दोनों ही कथा-वस्तुओं में अनेक प्रसंग एक सदृश हैं। जैसे—“सम्पत्ति से युक्त मिथिला नगरी का परित्याग कर

१. जातक ५३६, श्लोक १५८-१६१.

२. (क) उत्तराध्ययन ६/४४.

३. (क) उत्तराध्ययन ६/४८, ४९.

४. (क) उत्तराध्ययन ६/१६.

५. (क) उत्तराध्ययन ६/१४.

६. (क) उत्तराध्ययन ६/२३.

२. जातक ५३६, श्लोक १६६-१६७.

(ख) जातक २५-११५.

(ख) जातक १२२.

(ख) जातक १६१-१६८.

(ख) जातक १२५.

(ख) जातक १३२.

प्रव्रजित होना, मिथिला को प्रज्वलित बताकर प्रव्रज्या से विचलित करने का प्रयास करना, “मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है,” इस तरह ममत्व-रहित भाव व्यवत करना दोनों ही कथा-वस्तुओं में हैं। जैन कथा-वस्तु की दृष्टि से इन्द्र नमि राजर्षि की परीक्षा करने आता है तो जातक की दृष्टि से सीवली देवी महाजनक राजा की परीक्षा करती है। जैन कथा की दृष्टि से मिथिलानरेश कंकण के शब्दों को सुनकर प्रतिबुद्ध होते हैं तो बौद्ध दृष्टि से मिथिला नरेश आम्र वृक्ष को देखकर प्रतिबोधित होते हैं।

सोनक जातक में भी कुछ प्रसंग इससे मिलते-जुलते हैं।^१

महाभारत में माण्डव्य मुनि और जनक का मधुर संवाद है। भीष्म पितामह से युधिष्ठिर ने जिज्ञासा प्रस्तुत की— तृष्णा क्षय का उपाय बताइये। भीष्म पितामह ने कहा—राजन् ! माण्डव्य मुनि ने यही जिज्ञासा प्रस्तुत की थी विदेहराज जनक से। उन्होंने समाधान करते हुए कहा—

“सुखं बत जीवामि यस्य मे नास्ति किञ्चन ।

मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन ॥”

“मैं बहुत ही सुख से जीवन यापन कर रहा हूँ। इस विश्व में कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। मिथिला नगरी के प्रज्वलित होने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जलता है।”

जो विवेकी व्यक्ति हैं, उन्हें समृद्धि से युक्त विषय भी दुःखरूप ज्ञात होते हैं। अज्ञानी व्यक्ति विषय में लिप्त रहत है। जो काम जनित सुख हैं, वे तृष्णा क्षय होने पर सुख की सोलहवीं कला की तुलना भी नहीं कर सकते। उन्होंने आगे कहा—धन की अभिवृद्धि के साथ तृष्णा की भी अभिवृद्धि होती है। ममकार ही दुःख का कारण है। भोग और आसक्ति से दुःख में अभिवृद्धि होती है। तृष्णा को छोड़ना अत्यन्त कठिन है। जो तृष्णा का परित्याग करता है, वह सुख के सागर पर तैरता है। इस तरह उत्तराध्ययन के प्रस्तुत कथा प्रसंग के साथ महाभारत में वर्णित इस संवाद की आंशिक तुलना की जा सकती है।

दूसरा प्रसंग यह है—एक बार भीष्म ने कहा—धन की तृष्णा से दुःख और उसकी कामना के त्याग से परमसुख प्राप्त होता है। यह बात जनक ने भी कही है^२—

अनन्तमिव मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन ।

मिथिलायां प्रदीप्तायां, न मे दह्यति किञ्चन ॥

“मेरे पास असीम धन-सम्पदा है। तथापि मेरा किञ्चित मात्र भी नहीं है। मिथिला नगरी के प्रदीप्त होने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता है।”

यहाँ हमने तुलनात्मक दृष्टि से देखा कि एक ही कथावस्तु विविध धर्मग्रन्थों में अपनी मान्यता और सिद्धान्त के अनुसार ढाल दी गई है। जातक कथा का गद्य भाग अर्वाचीन है। ‘राइस डेविड्स’ ने जातकों के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है—बौद्ध साहित्य के नौ विभागों में जातक एक विभाग है। पर वह विभाग आज जो जातक प्रचलित हैं, उससे विल्कुल भिन्न है। प्राचीन जातक के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन जातक का अधिकांश भाग किसी एक ढाँचे में ढला हुआ नहीं था। उसमें पद्य-भाग नहीं था। वे केवल काल्पनिक कथायें (Fables), उदाहरण (Parables), और आख्यायिकाएँ (Legends) मात्र थे। दूसरी बात यह है कि जो वर्तमान में जातक उपलब्ध हैं, वे प्राचीन जातक के अंशमात्र हैं।^३

अपन्नक (सं० १), मखादेव (सं० ६), सुखविहारी (सं० १०), तित्तिर (सं० ३७), लित्त (सं० ६१), महा-मुदस्सन (सं० ६५), खण्डवट्ट (सं० २०३), मणि-कण्ठ (सं० २५०), वक-त्रह्य (सं० ४०५) आदि जातकों के सूक्ष्म अध्ययन से राइस डेविड्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्ध से पूर्व भी जन-कथायें इन जातकों में थी। ये बुद्ध से भी प्राचीन हैं। ये जातक केवल बौद्धमत की ही नहीं हैं, ये भारतीय लोक-कथाओं के संग्रह हैं। बौद्ध विज्ञान ने अपने-अपने आचार-विचार के अनुसार कुछ परिवर्तन कर इसे अपनाया।^४ इससे यह स्पष्ट है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहले कई कथायें प्रचलित थीं। जिन कथाओं को भारत की जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों धाराओं ने अपनाया।

१. सोनक जातक, संख्या ५२६, जातक भाग ५, पृ. ३३१-३४६.

२. महाभारत—शान्तिपर्व, अध्याय २३६, श्लोक ४

३. महाभारत—शान्तिपर्व, अध्याय १७८, श्लोक २.

४. Buddhist India, pp. 196-197.

५. Buddhist India, p. 197.

इन सभी कथाओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि एक परम्परा ने दूसरी परम्परा का अनुसरण किया है। पर किस परम्परा ने किसका अनुसरण किया, यह अन्वेषणीय है।

ऋषभदत्त और देवानन्दा :

एक वार भगवान् महावीर धर्म की दिव्य ज्योति जगाते हुए ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में पहुँचे और वहुसाल चैत्य में विराजे। बहुसाल चैत्य ब्राह्मणकुण्ड एवं क्षत्रियकुण्ड के बीच में था। दोनों कुण्डपुरों की जनता भगवान् के प्रवचन-श्रवणार्थ उपस्थित हुई। ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण रहता था। आचारांग^१, कल्पसूत्र,^२ आवश्यकचूर्णि^३ में उसे केवल ब्राह्मण लिखा है। पर भगवती^४ में उसे चार वेदों के ज्ञाता के साथ श्रमणोपासक भी लिखा है। वह अपनी पत्नी देवानन्दा के साथ भगवान् को बन्दन के लिए पहुँचा। भगवान् महावीर को देखकर देवानन्दा को अपार प्रसन्नता हुई। उसके स्तनों से दूध की धारा छूटने लगी। आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। गौतम ने भगवान् से जिज्ञासा की—भगवन् ! इसके स्तनों से दूध की धारा क्यों छूटने लगी है ? आँखों से अश्रु क्यों बह रहे हैं ? भगवान् ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता हैं। मैं इसका पुत्र हूँ।^५ भगवान् ने गर्भ परिवर्तन की सारी घटना सुनाई। इसके पूर्व भगवान् महावीर के गर्भ परिवर्तन की बात किसी को ज्ञात नहीं थी। देवानन्दा और ऋषभदत्त के साथ सारी परिषद आश्चर्यचकित हो गई। उसके पश्चात् भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर ऋषभदत्त ने दीक्षा ग्रहण की तथा विविध तप का अनुष्ठान कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए मोक्ष प्राप्त किया। इसी तरह देवानन्दा भी दीक्षित होकर मुक्त हुई।

बाल तपस्वी मौर्यपुत्र तथा तामली अणगार :

प्रस्तुत कथा का मूल स्रोत भगवती सूत्र है। भगवान् महावीर का समवसरण मोका नगरो में लगा हुआ था। ईशानेन्द्र भगवान् के दर्शनार्थ आये। उन्होंने बत्तीस प्रकार के नाट्य किये। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की, यह अपूर्व ऋद्धि इन्हें कैसे प्राप्त हुई ?

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—ताम्रलिप्ति नगर में तामली नामक मौर्य पुत्र था। उसके पास विराट सम्पत्ति थी। एक दिन उस विराट वैभव का परित्याग कर उसने 'प्राणामा' प्रव्रज्या ग्रहण की और यह अभिग्रह धारण किया कि मैं छट छट तप करूँगा तथा सूर्य के सम्मुख दोनों हाथ ऊँचे कर आतापना लूँगा। पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतर कर, लकड़ी का पात्र हाथ में लेकर शुद्ध ओदन ग्रहण करूँगा और फिर उसे इकतीस वार धोकर उसे आहार के रूप में उपयोग में लूँगा। प्राणामा प्रव्रज्या का धारक होने से वह इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रवण, आर्या, चण्डिका, राजा, मंत्री, पुरोहित, सार्थवाह, कौवे, कुत्ते, चाण्डाल आदि को जहाँ कहीं भी देखता, उनको प्रणाम करता। ऊँचे आकाश में देखकर ऊँचे तथा नीचे खड्डे आदि में देखकर नीचे प्रणाम करता।

प्राणामा प्रव्रज्या वालों को सूत्रकृतांग^६ में विनयवादी कहा है। औपपातिक,^७ ज्ञाताधर्मकथा^८ तथा अंगुत्तरनिकाय^९ में विनयवादियों को अविरोध भी कहा है। ये मोक्ष प्राप्ति के लिए विनय को आवश्यक मानते थे।^{१०} उत्तराध्ययन की टीका में^{११} भी यह स्पष्ट लिखा है—ये तापस सभी को प्रणाम करते थे। सूत्रकृतांग की टीका में^{१२} इनके बत्तीस भेद कहे हैं।

तामली तापस ने जब देखा कि उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तो उसने पास के लकड़ी आदि के उपकरणों को एकान्त स्थान में डाल कर पादपोषणमन संथारा किया। उस समय असुरेन्द्र चमर की सावधानी इन्द्र से रहित थी। असुर कुमार देवों ने अवधिज्ञान से देखकर तामली तपस्वी से प्रार्थना की—आप हमारे इन्द्र बनें ! किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। और ईशान कल्प में ईशानेन्द्र बना। तामली तपस्वी ने साठ हजार वर्ष तक उत्कृष्ट तप की आराधना की थी। उससे वह ईशानेन्द्र बना। प्राचीन आचार्यों का अभिमत है—यदि सज्जानी (जिनमतानुयायी) इतना उत्कृष्ट तप करता तो उतनी तपस्या से सात जीव मोक्ष में चले जाते। यह सज्जान (जिनमत के) तप का महत्व है।

१. आचारांग २, पृष्ठ २४३, बाबू धनपतसिंह

२. कल्पसूत्र, सूत्र ७, पृष्ठ ४३. देवेन्द्रमुनि सम्पादित

३. आवश्यकचूर्णि, पूर्वाद्धि, पत्र २३६.

४. भगवती ६/६/३८०, पत्र ८३७.

५. धम्मकहाणुओगे, वित्तियो खंधो, पृष्ठ ५८/२५४.

६. सूत्रकृतांग १।१२।१

७. औपपातिक, सूत्र ३८, पृष्ठ १६६

८. ज्ञाताधर्मकथा टीका, १५, पृष्ठ १६४

९. अंगुत्तरनिकाय ३, पृष्ठ २७६

१०. सूत्रकृतांग १।१२।२. आदि की टीका

११. उत्तराध्ययन टीका १८, पृष्ठ २३०

१२. सूत्रकृतांग टीका १।१२, पृष्ठ २०६ अ

आर्द्रकीय मुनि का अन्य तीर्थियों के साथ वाद :

आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर के राजकुमार थे ।^१ निरुक्तिकार के अनुसार उनके पिता ने राजा श्रेणिक के लिए बहुमूल्य उपहार प्रेषित किये । आर्द्रककुमार ने भी अभयकुमार के लिए उपहार भेजे । आर्द्रककुमार को भव्य और शीघ्र मोक्षगामी समझ कर अभयकुमार ने उसके लिए आत्मसाधनोपयोगी उपकरण उपहार में भेजे । उसे निहारते ही आर्द्रककुमार को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया । आर्द्रककुमार का मन काम-भोगों से विरक्त हो गया । वह अपने देश से निकलकर भारत पहुँचा । दिव्य-वाणी ने उसे संकेत किया कि अभी प्रव्रज्या ग्रहण न करे पर वह उस दिव्य-वाणी की ओर ध्यान न देकर आर्हत् धर्म में प्रव्रजित हो गया । भोगावली कर्मोदयवश दोषा परित्याग कर उसे पुनः गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट होना पड़ा । अवधि पूर्ण होने पर उसने पुनः श्रमण वेश अंगीकार किया और जहाँ भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ पहुँचने के लिए चल दिया । पूर्वजन्म का स्मरण होने से उसे भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म का बोध था । सूत्रकृतांगनियुक्ति के अनुसार आर्द्रकमुनि ने पाँच मतवादियों के साथ विवाद किया ।^२ वे थे—

(१) गोशालक (२) बौद्धभिक्षु (३) वेदवादी ब्राह्मण (४) सांख्यमतवादी एकदण्डी^३ और (५) हस्तितापस । आर्द्रकमुनि ने सप्रमाण निर्ग्रन्थ सिद्धान्त के अनुसार बहुत ही रोचक व चित्ताकर्षक उत्तर प्रदान किये जिन्हें सुनकर सभी स्तम्भित हो गये । आर्द्रकमुनि ने उन्हें दीक्षित किया । यहाँ यह भी चिन्तनीय है कि गोशालक आदि विरोधी पक्षों ने श्रमण भगवान् महावीर के जीवन और सिद्धान्त पर जो आक्षेप किया, उससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् महावीर की विद्यमानता में भी उनके प्रति कितनी भ्रान्तियाँ फैलाई गई थीं और विरोधी उन पर किस तरह आक्षेप करते थे ? आर्द्रकमुनि ने तर्क पुरस्सर समाधान कर उनके विरोधों का शमन किया ।

अतिमुक्तक कुमार :

एक बार भगवान् महावीर पोलासपुर में पधारे । उपासकदशांग में पोलासपुर के राजा का नाम जितशत्रु लिखा है तथा उपवन का नाम सहस्राश्रवन लिखा है । अन्तकृद्दशांग में राजा का नाम विजय, रानी का नाम श्रीदेवी तथा उद्यान का नाम श्रौवन लिखा है ।^४ हमारी दृष्टि से जितशत्रु, यह राजा का नाम न होकर विशेषण होना चाहिए । अनेक स्थलों पर 'जितशत्रु' इस नाम का उल्लेख हुआ है । अनेक राजाओं का एक ही नाम हो, यह कम सम्भव है । शत्रुओं पर विजय-वैजयन्ती फहराने के कारण उन्हें जितशत्रु के नाम से सम्बोधित करते रहे हों, अस्तु !

भगवान् के प्रमुख शिष्य गणधर गौतम भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे थे । अतिमुक्तक कुमार बाल-साधियों के साथ खेल रहा था । शान्त-दान्त, मंजुल मूर्ति गौतम को निहार कर अतिमुक्तक ने पूछा—आप क्यों घूम रहे हैं ? गौतम ने मन्दस्मित के साथ कहा—हम भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे हैं । उस संस्कारी बालक ने गौतम की अंगुली पकड़ ली और अपने घर चलने के लिए आग्रह करने लगा । महारानी ने जब देखा तो उसका अंग-अंग प्रसन्नता से झूम उठा । अतिमुक्तक ने माता से कहा—इन्हें इतना भोजन दीजिए, जिससे इनको दूसरे घर न जाना पड़े । भिक्षा लेकर गौतम महावीर के समीप पहुँचे । बालक अतिमुक्तक भी साथ ही था । भगवान् महावीर की अमृत-वाणी को सुनकर उसने दीक्षा ग्रहण की । अचार्य अभयदेव ने लिखा है—उस समय अतिमुक्तक कुमार को उम्र छह वर्ष की थी ।^५

१. (क) सूत्रकृतांगनियुक्ति, टीका सहित, श्रु० २, अ०६, प० १३६

(ख) त्रिपिट० १०।७।१७७-१७९

(ग) पशुपणाऽऽट्टाह्निका व्याख्यान, श्लो० ५, प० ३

(घ) डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने आर्द्रककुमार को ईरान के ऐतिहासिक सम्राट कुरुष [ई० पू० ५५२-५३०] का पुत्र माना है ।

—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ६३-६२

२. (क) सूत्रकृतांग शोलांक वृत्ति पत्रांक ३२५ से ३२८ (ख) सूत्रकृतांगनियुक्ति गा० १२३, १९०, १९२, १९६

३. टीकाकार आचार्य शोलांक ने (२।६।४९) में इसे एकदण्डी कहा है । डा० हरमन जेकोवी ने अपने अंग्रेजी अनुवाद (S.B.E. Vol. XIV. P.417h. में) इसे वेदान्ती कहा है । प्रस्तुत मान्यता को देखते हुए डा० जेकोवी का अर्थ मंगत प्रतीत होता है । टीकाकार ने भी अगली गाथा में यही अर्थ स्वीकार किया है ।

४. उपासकदशांग, अध्ययन ७, सूत्र १

५. अन्तकृद्दशांग, वर्ग ३, अध्ययन १५

६. (क) 'कुमार समये' ति पड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजित्वात् आह च "छव्वरिनो पव्वइओ निग्गंध रोडऊण पाववपणं" ति, एतदेव चाश्वर्यमिह अन्यथा वर्षाण्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति ।—भगवती सटीक, भाग १, ज० ५, उ० ४, सू० १२२, पत्र ०१६-२०

एक बार वर्षा हो चुकी थी। स्थविरों के साथ अतिमुक्तक मुनि विहार-भूमि को निकले। बहते हुए पानी को देखकर बचपन के संस्कार उभर आये। मिट्टी से पाल को बाँध कर उसमें अपना पात्र छोड़ दिया और आनन्द विभोर होकर "तिर मेरी नैया, तिर" इस प्रकार बोल उठे। शीतल मंद पवन चल रहा था। उनकी नैया थिरक रही थी। प्रकृति नटी मुस्करा रही थी। स्थविरों ने अतिमुक्तक मुनि को श्रमण-मर्यादा से विपरीत कार्य करते हुए देखा, उनका अन्तर् का रोप मुख पर झलकने लगा। अतिमुक्तक सम्भल गये। उन्हें अपने कृत्य पर ग्लानि हुई। अन्तर् के पश्चात्ताप से उसने अपने आपको पावन बना दिया। स्थविरों ने भगवान् से पूछा—यह कितने भव में मुक्त होगा? भगवान् ने बताया—यह इसी भव में मुक्त होगा, तुम इसकी निन्दा, गर्हा मत करो। भले ही यह देह से लघु है, पर इसकी अन्तरात्मा बहुत ही विराट् है। अतिमुक्तक कुमार ने उत्कृष्ट तप की आराधना कर मुक्ति को वरण किया।

श्रमण भगवान् महावीर ने अतिमुक्तक कुमार की आन्तरिक तेजस्विता को देखकर दीक्षा प्रदान की थी। जैनधर्म में कहीं पर भी बाल-दीक्षा का निषेध नहीं है, वहाँ अयोग्य दीक्षा का निषेध है। बालक भी उत्कृष्ट प्रतिभा का धनी हो सकता है और युवक तथा वृद्ध भी अयोग्य हो सकता है। जो भी योग्य हो, वह श्रमण-धर्म को स्वीकार कर अपने जीवन को साधना की आराधना से चमका सकता है।^१ निशीथभाष्य में बालकों को दीक्षा देने का जो निषेध है, वह अयोग्य बालकों के लिए है।^२ दीक्षा बुभुक्षु व्यक्ति नहीं, किन्तु मुमुक्षु व्यक्ति ग्रहण करता है।

अलक्ष राजा :

अलक्ष नरेश वाराणसी के अधिपति थे। श्रमण भगवान् महावीर के पावन-प्रवचन को श्रवण कर अपने राज्य सिंहासन पर पुत्र को आसीन कर दीक्षा ग्रहण की तथा उत्कृष्ट तप की आराधना कर मोक्ष प्राप्त किया।

मेघकुमार श्रमण :

मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था। भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर दीक्षित हुआ। सबसे लघु होने के कारण सोने के लिए उसे द्वार के पास स्थान मिला। श्रमणों के आने-जाने का मार्ग होने के कारण मेघमुनि के शरीर से सन्तों के पैर टकरा जाते थे। पैरों की धूल से उनके वस्त्र धूल से सन गये। उनको शान्ति से नींद भी नहीं आ सकी, जिससे आँखें लाल हो गईं और शरीर शिथिल हो गया। भगवान् महावीर ने उन्हें उनका पूर्वभव सुनाकर साधना में स्थिर किया।

तुलना—नन्द के साथ

बौद्ध साहित्य में भी मेघकुमार की तरह सद्यः दीक्षित नन्द का उल्लेख है।^३ वह अपनी नव-विवाहिता पत्नी नन्दा का स्मरण कर विचलित हो जाता है। बुद्ध उसे एक वन्दरी दिखाकर उससे पूछते हैं—क्या तेरी पत्नी इससे अधिक सुन्दर है? उसने कहा—वह तो बहुत ही सुन्दर है। उसके पश्चात् बुद्ध उसे त्रायस्त्रिंशत् स्वर्ग की अप्सराओं को दिखाते हैं और पूछते हैं—क्या तेरी जनपदकल्याणी नन्दा इससे अधिक सुन्दर है? नन्द निवेदन करता है—भगवन! इन अप्सराओं के सामने तो वह कुछ भी नहीं है। बुद्ध उसे प्रतिबोध देते हुए कहते हैं—फिर तुम उसके पीछे क्यों पागल बन रहे हो? तुम भी धर्म की साधना करो। इससे भी अधिक सुन्दर अप्सरायें प्राप्त होंगी। नन्द पुनः श्रमण-धर्म की आराधना करने लगा, किन्तु उसका वैपयिक लक्ष्य मिटा नहीं। एक बार सारिपुत्र आदि अस्सी महाश्रावकों (भिक्षुओं) ने उसका उपहास करते हुए कहा—यह तो अप्सराओं के लिए साधना कर रहा है। यह सुनकर उसे अत्यन्त ग्लानि हुई और वह साधना में जुट गया।

मेघकुमार और नन्द दोनों साधना से विचलित हुए, पर घटना-क्रम में जरा सा अन्तर है। श्रमण भगवान् महावीर ने पूर्वभव में भोगी हुई दारुण-वेदना का स्मरण कराया और मानव-जीवन की महत्ता बता कर उसे श्रमण-धर्म में स्थिर किया। तो तथागत बुद्ध ने नन्द को आगामी भवों के कमनीय सुखों को बता कर उसे संयम में स्थिर किया। संगामावचर जातक आदि से यह भी स्पष्ट है कि नन्द भी मेघकुमार की तरह प्राकृतन भवों में हार्थी था।^४

१. जैन आचार : सिद्धान्त और स्वरूप, पृष्ठ ४४४ से ४४६.

२. (क) निशीथभाष्य ११, ३५३१/३२.

(ख) तुलना कीजिए—महावग्ग, १-४१-६६, पृष्ठ ५०-५१.

३. (क) सुत्तनिपात—अट्ठकथा, पृष्ठ २७२.

(ख) धम्मपद—अट्ठकथा, खण्ड १, पृ० ६६-१०५.

(ग) जातक सं० १२२.

(घ) थेरगाथा १५७.

४. (क) संगामावचर जातक संख्या १२२ (हिन्दी अनुवाद) खण्ड २, पृष्ठ २४८-२५४.

(ख) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन (देवेन्द्रमुनि) पृष्ठ ४२० से ४२५.

मकाई और किंकम :

मकाई और किंकम ये दोनों राजगृह नगर के गाथापति थे। इन्होंने भगवान महावीर के त्याग-वैराग्य युक्त प्रवचन को श्रवण कर दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट संयम और तप की आराधना कर विपुलगिरि पर्वत पर मुक्त हुए।

अर्जुन मालाकार :

राजगृह में अर्जुन नाम का माली था। बन्धुमती उसकी पत्नी थी। पुष्पाराम उसका उद्यान था। उस उद्यान के समीप ही मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। अर्जुनमाली के पूर्वज उस यक्ष के उपासक थे। अर्जुनमाली भी वचपन से ही उसका उपासक था। राजगृह में "ललित" नामक एक मित्र-मण्डली थी, जो उच्छृंखल और स्वच्छन्द थी। उन्होंने बन्धुमती के साथ अमानवीय व्यवहार किया, जिससे अर्जुन मालाकार को अत्यधिक रोप आया, पर उसे पहले ही वाँध कर उन्होंने गिरा रखा था। अपनी पत्नी के साथ वीभत्स काण्ड करते हुए देखकर उसका खून खौल उठा, नसें फड़कने लगीं। उसने मन में राजा को भी धिक्कारा और अपने कुलदेव मुद्गरपाणि यक्ष पर भी उसे रोप आया कि उसकी मूर्ति के समक्ष उसकी पत्नी का शीलभंग किया जा रहा है। तू देवता होकर भी टुगर-मुगर देख रहा है। देव ने अपने भक्त की संतप्त आत्मा को देखा। तत्काल यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में प्रविष्ट हुआ। उसका अद्भुत पौरुष जाग उठा। तड़-तड़ कर सब बन्धन टूट गये। यक्ष का मुद्गर उठाकर एक ही प्रहार में अर्जुन मालाकार ने छहों मित्रों और अपनी पत्नी को मिट्टी का ढेर बना दिया, तथापि उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। क्रोध से आगववूला हुआ हाथ में मुद्गर लेकर वह बगीची के बाहर दूमता। रास्ते से गुजरने वाले राहगीरों में से छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करके ही मुँह में अन्न-जल लेता। नगर में भयंकर आतंक छा गया। राजा ने नगर का द्वार बन्द करवा कर यह उद्धोषणा करवा दी, कोई भी नगर के बाहर न जाये। संसृष्ट राजगृह एक कैदखाना बन गई। उसमें बैठकर सभी के दम घुट रहे थे। पर किसी का साहस नहीं था।

भगवान महावीर का राजगृह में शुभागमन हुआ। जिस महानगरी में भगवान ने चौदह वर्षावास किये, जहाँ प्रभु के भक्तों की कोई कमी नहीं थी, पर किसी का भी साहस अर्जुनमाली से जूझने का नहीं हो रहा था। जब सुदर्शन ने भगवान के आगमन का संवाद सुना तो उसका शौर्य दीप्त हो उठा। वह पारिवारिक जन तथा अन्य व्यक्तियों के इन्कार होने पर भी भगवान के दर्शनार्थ चल पड़ा। नगर का द्वार खुला और तुरन्त बन्द कर दिया गया। कुछ दूर चलने पर अर्जुनमाली हाथ में मुद्गर घुमाता हुआ वेतहाशा दौड़ता हुआ सुदर्शन के सामने आ पहुँचा। उसकी रौद्र आकृति देखकर सामान्य व्यक्ति काँप जाता, पर सुदर्शन वहीं ध्यान-मुद्रा में खड़ा हो गया। उसने सुदर्शन पर प्रहार करने के लिए मुद्गर उठाया। उसका हाथ उठा ही रह गया। वह पीछे हटकर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ा, पर जैसे शरीर में लकड़ा मार गया हो। हतप्रभ-सा वह सोचने लगा—यह क्या हो गया? सुदर्शन के धैर्य और तेज के सामने यक्ष का तेज निस्तेज हो गया, वह सत्वहीन होकर भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। अर्जुन को लेकर सुदर्शन भगवान के चरणों में पहुँचा। भगवान का उपदेश सुनकर अर्जुन मालाकार उनके चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा—मेरा उद्धार करो। मैंने जीवन भर पाप किये हैं। निरपराध स्त्री-पुरुषों का खून किया है। मैं बड़ा पापी हूँ, अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। भगवान ने उसे दीक्षा दी। वह बेलें-बेलों की तपस्या करता और पारण के लिए जब वह नगर में जाता तो लोग आक्रोशपूर्वक ढेले फेंकते, ताड़ना-तर्जना करते। किन्तु वह अपनी आत्मा को कसता और स्वर्ण को तरह उज्ज्वल बनाता। अन्त में कर्मों को नष्ट कर वह मुक्त बन गया। बड़ा अद्भुत और अनूठा है यह कथानक। एक क्रूर हत्यारा महापुरुष के सान्निध्य को पाकर पावन बन गया। पारस पुरुष का संस्पर्श लौह रूपी जीवन को एक क्षण में स्वर्ण बना देता है।

बौद्ध साहित्य में भी अंगुलिमाल डाकू का वर्णन आता है जो मानवों की अंगुलियों की माला बनाकर धारण करता था। जिसकी अंखों से खून टपकता था। तथागत बुद्ध को मारने के लिए वह लपका, पर बुद्ध के तेजस्वी व्यक्तित्व ने वह हतप्रभ हो गया तथा अहिंसा का पुजारी बन गया। जो कार्य बड़े-बड़े तान्त्रिक, यांत्रिक और मान्त्रिक नहीं कर सकने वह कार्य एक मन्त्र कर सकता है।

काश्यप आदि श्रमण :

काश्यप, क्षेमक, धृतिधर, कैलाश, हरिनन्दन, चारत्तक, सुदर्शन, पूर्णभद्र, नुमनभद्र, नुप्रतिष्ठित, मेघकुमार ये सभी दीक्षा-पर्याय पालन कर विपुल पर्वत पर मुक्त हुए। इनके जीवन के सम्बन्ध में त्रिज्येय सामग्री का अभाव है, केवल नगर, उद्यान और दीक्षा पर्याय का सूचन है।

जालि मयालि आदि कुमार :

जालि, मयालि, पुरुषसेण, उपजालि, वारिपेण, दीर्घदन्तकुमार, लष्टदन्त, वेहल्ल, वेहायस, अभय ये सभी कुमार सम्राट् श्रेणिक के पुत्र थे। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर दीक्षित होते हैं तथा श्रमण बनकर गुणरत्नसंवत्सर आदि तप की आराधना कर अनुत्तर विमान में देव बनते हैं। इसी तरह दीर्घसेन, महासेन, लष्टदन्त, गूढदन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन, पुण्यसेन ये राजकुमार भी श्रेणिक सम्राट् के पुत्र थे। इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर विविध तपों की आराधना कर अनुत्तर विमान को प्राप्त किया। ये जो आख्यान इसमें दिये गये हैं, वे केवल संकेत मात्र हैं। पर ये सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक होने से बहुत से इतिहास के अनद्युत पहलुओं पर प्रकाश डालने में मक्षम हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं ने श्रेणिक के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। हम यथाप्रसंग इस पर चिन्तन करेंगे। पर यह स्पष्ट है कि श्रेणिक की छविस महारानियों ने और उनके पुत्र तथा पौत्रों ने भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर साधना से अपने जीवन को पावन बनाया था। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रेणिक जैन था एवं भगवान् श्री महावीर का अनन्य भक्त भी।

धन्य अणगार :

धन्यकुमार काकन्दी की भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। अपार वैभव उसके पास था। भगवान् के उपदेश को श्रवण कर वीर सैनिक की तरह वह साधना के पवित्र पथ पर बढ़ता है। उसके तपोमय जीवन का जो शब्दचित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसे पढ़ कर भौतिकवाद के तार्किक युग में भी व्यक्ति का श्रद्धा से सिर नत हो जाता है। मज्झिमनिकाय के महासिंहनाद सुत्त में^१ वर्णन है—बुद्ध ने इसी प्रकार उत्कृष्ट तप की आराधना की थी। उन्होंने अपने साधना-काल में जो छः वर्ष तक उत्कृष्ट तप की आराधना की वह भी इससे मिलती-जुलती है। कवि कुलगुरु कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य में^२ पार्वती के तप का रोमांचकारी वर्णन किया है, पर धन्यकुमार के तप के समान उसमें सजीव वर्णन नहीं हो पाया है। धन्यकुमार के तप के वर्णन को पढ़कर अध्येता विस्मय से विमुग्ध बने बिना नहीं रहेगा। जैन तपःसाधना की यह विशेषता है कि वहाँ बाह्य तप के साथ आभ्यन्तर तप को भी महत्व दिया गया है, जिसमें देह-दमन के साथ चित्त-वृत्तियों का शोधन भी मुख्य रूप से रहा हुआ है। धन्य अणगार जितने अधिक दीर्घ तपस्वी थे उतने ही स्थिर ध्यानयोगी भी थे। ध्यान की निर्मल साधना से तप उनके लिए तापस्वरूप नहीं था। श्रमण साहित्य में ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में इस प्रकार का वर्णन दुर्लभ है।

सुनक्षत्र अणगार :

सुनक्षत्र अणगार का जन्म काकन्दी नगरी में हुआ था। वह भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। स्नेह के वातावरण में उसका पालन-पोषण हुआ। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर वे श्रमण बने और उत्कृष्ट तप की आराधना कर अनुत्तरविमान में उत्पन्न हुए।

सुबाहुकुमार आदि अन्य मुनि

हस्तिशीर्ष नगर का स्वामी अदीनशत्रु था। सुबाहुकुमार उसका पुत्र था। पाँच सौ कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ। उनके साथ वह अपना जीवन यापन कर रहा था। एक बार भगवान् महावीर का शुभागमन हुआ। सुबाहुकुमार ने श्रावक व्रत का ग्रहण किये। उनके दिव्य रूप को निहार कर गौतम ने प्रभु से जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह दिव्य, कान्त और प्रिय रूप इन्हें कैसे प्राप्त हुआ? इन्होंने पूर्वभव में ऐसा कौन सा दान दिया? भगवान् ने सुबाहु का पूर्वभव सुनाते हुए कहा—हस्तिनापुर नगर में सुमुख नामक गाथापति था। सुदत्त अणगार, जो एक मास के उपवासी थे, उन्हें अत्यन्त उदार भावना से सुमुख गाथापति ने आहारदान दिया। उस दिव्य दान के फलस्वरूप इसे यह महान् ऋद्धि तथा अद्भुत सौन्दर्य प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत कथनक में सुख प्राप्ति का प्रधान कारण सुपात्रदान को बताया है। दान की अद्भुत शक्ति से दिव्य ऋद्धि और समृद्धि सहज ही उपलब्ध होती है। मानव समृद्धि तो चाहता है पर दान आदि देने से कतराता है। जिससे उसे विराट् वैभव की संप्राप्ति नहीं हो पाती। इसी तरह भद्रनन्दी, सुजातकुमार, सुवासकुमार, जिनदास, धनपति, महावल, भद्रनन्दीकुमार, महाचन्द्रकुमार और वरदत्तकुमार ये सभी राजकुमार थे। सभी ने भगवान् महावीर के उपदेशामृत को सुनकर दीक्षा ग्रहण की। सुबाहुकुमार आदि समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर देव बने और वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके कितने ही एक भव में और कितने ही राजकुमार पन्द्रह भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

पद्मकुमार श्रमण आदि :

चम्पा नगरी में राजा कूणिक का राज्य था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। राजा श्रेणिक की एक रानी का नाम काली था। उसके काल नामक पुत्र हुआ। काल की पत्नी का नाम भी पद्मावती था। उसके पद्मकुमार नामक पुत्र हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर साधना के द्वारा जीवन को तपाया और सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जायेगा। इसी तरह महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, नलिनीगुल्म, आनन्द और नन्दन ये सभी श्रेणिक के पौत्र थे, इन्होंने प्रभु महावीर के पास श्रमण धर्म को ग्रहण कर जीवन को पावन बनाया। इन सभी के पिता काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह, रामकण्ह, पिउसेनकण्ह, महासेनकण्ह थे जो कपाय के वशीभूत होकर नरक में गये और उन्हीं के पुत्र सत्कर्म का आचरण कर देवलोक को प्राप्त करते हैं। उत्थान और पतन का दायित्व मानव के स्वयं के कर्मों पर आधृत है, मानव साधना से भगवान् भी बन सकता है और विराधना से भिखारी भी बन सकता है।

हरिकेशी मुनि :

पूर्वजन्म में जाति-अहंकार करने के कारण हरिकेशवल चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए। वे स्वभाव से ही नहीं, शरीर से भी अत्यन्त क्रूर थे। सभी उनसे घृणा करते थे। घृणा और उपेक्षा के कारण वे अधिक कठोर बन गये थे। एक बार वे उत्सव में गये। साथी के अभाव में वे उस भीड़ में भी अकेले थे। कोई भी लड़का उनसे बोलना पसन्द नहीं करता था। इतने में एक सर्प निकला। उस सर्प को लोगों ने मार दिया। कुछ क्षणों के बाद गोह (अलसिया) निकला, किन्तु उसे किसी ने नहीं मारा। इस घटना से हरिकेशवल सोचने लगे—जो क्रूर होता है, वह मारा जाता है। किन्तु निर्विप प्राणी को कोई नहीं मारता। चिन्तन करते हुए उन्हें जातिस्मरण हुआ और वे मुनि बन गये। तप से उनका शरीर कृश हो गया। तिन्दुक वृक्ष निवासी यक्ष, मुनि के दिव्य तप से प्रभावित होकर उनकी सेवा में रहने लगा। एक बार हरिकेशमुनि यक्ष-मन्दिर में ध्यानस्थ थे। राजपुत्री भद्रा यक्ष की अर्चना के लिए वहाँ पर आई। मुनि की क्रूरता को देखकर उसका मन घृणा से भर गया और उसने मुनि पर थूक दिया। यक्ष मुनि के अपमान को सहन न कर सका। वह राजकुमारी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। अनेक उपचार करने पर भी वह स्वस्थ नहीं हुई। यक्ष ने प्रकट होकर कहा—इसने मुनि का अपमान किया है, इसे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। राजा ने अपराध की क्षमा माँगी और कन्या के साथ मुनि से विवाह की प्रार्थना की। मुनि ने कहा—मेरा कोई अपमान नहीं हुआ है। मैं किसी भी तरह विवाह नहीं कर सकता। राजा निराश हो गया। उसने ब्राह्मण रुद्रदेव को ऋषि समझकर राजकन्या का विवाह उसके साथ कर दिया। यज्ञशाला में राजकुमारी के विवाह के निमित्त से भोजन बन रहा था। हरिकेशमुनि ने भोजन की याचना की। ब्राह्मणों ने उनको अपमानित कर निकालने का प्रयास किया। मुनि की सेवा में रहने वाला यक्ष ब्राह्मणों के व्यवहार से क्रुद्ध हो गया। उसने उन्हें प्रताड़ित किया। राजकुमारी ने ब्राह्मणों को समझाया—ये जितेन्द्रिय हैं, इनका अपमान मत करो। मुनि ने दान का अधिकारी, जातिवाद, यज्ञ का स्वरूप, जनस्नान आदि विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला। मुनि का यह संवाद अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

इसी तरह बौद्ध साहित्य के मातंग जातक में^१ एक प्रसंग है—वाराणसी के माण्डव्यकुमार का प्रतिदिन सोलह हजार ब्राह्मणों को भोजन देना; हिमालय के आश्रम में मातंग पण्डित का शिक्षा लेने के लिए आना; उसके पुराने जौर्ण-गौर्ण, मन्दिन वस्त्रों को देखकर वहाँ से उसे हटाना, मातंग पण्डित का माण्डव्य को उपदेश देकर दान-क्षेत्र को यथार्थता का प्रतिपादन करना, माण्डव्य के साथी मातंग को पीटते हैं, नगर-देवताओं के द्वारा ब्राह्मणों की बुदंजा करना, उस समय श्रेण्टी की कन्या दीट्टमंगलिका का वहाँ पर आगमन और वहाँ की स्थिति को देखकर सारी बात जान लेना, स्वर्ण-कलश और प्याला लेकर मातंग मुनि के सन्निकट आना, और क्षमायाचना करना, मातंग पण्डित ने ब्राह्मणों को ठीक होने का उपाय किया तथा दीट्टमंगलिका ने सभी ब्राह्मणों को दान-क्षेत्र की यथार्थता बताई। इस प्रकार दोनों कथाओं में समानता है।

डा० घाटगे की दृष्टि से बौद्ध परम्परा की कथा विस्तृत होने के साथ इसमें अनेक विचारों का सम्मिश्रण हुआ है। किन्तु जैन परम्परा की कथा सरल और संक्षिप्त है और वह बौद्ध कथावस्तु से प्राचीन है। मातंग जातक में ब्राह्मणों के प्रति अधिक कटु भावना व्यक्त की गई है पर जैन कथावस्तु में ऐसा नहीं है। उस युग में ब्राह्मण वर्ग जन्मना जाति के आधार पर अनेक

१. मातंग जातक—चतुर्थ खण्ड ४२७, पृष्ठ ५२३-५२७.

तुम्हेत्य भो भारधरा गिराणं,
 अट्टं न जाणाह अहिञ्ज वेए ।
 उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति,
 ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥
 के एत्थ खत्ता उवजोइया वा,
 अञ्जावया वा सह खण्डिएहि ।
 एयं दण्डेण फलेण हन्ता,
 कण्ठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं ॥१८॥
 अञ्जावयाणं वयणं सुणेत्ता,
 उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
 दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चव,
 समागया तं इसि तालयन्ति ॥१९॥
 गिरिं नहेहि खणह,
 अयं दन्तेहि खायह ।
 जायतेयं पाएहि हणह,
 जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥
 अवहेडिय पिट्टिसउत्तमंगे,
 पसारियावाहु अकम्मचेट्टे ।
 निम्भेरियच्छे रहिरं वमन्ते,
 उड्डंमुहे निग्गयजीहनेत्ते ॥२९॥
 पुण्वि च इण्हि च अणागयं च,
 मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ।
 जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति,
 तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥३२॥
 अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा,
 तुम्भे न वि कुप्पह भूइपत्ता ।
 तुम्भं तु पाए सरणं उवेमो,
 समागया सब्वजणेण अम्हे ॥३३॥

जाति मदो च अतिमानिता च,
 लोभो च दोसो च मदो च मोहो ।
 एते अगुणा येसु न सन्ति सब्बे,
 तानीध खेत्तानि सुपेसलानि ॥७॥

कत्थेव भट्टा उपजोतियो च,
 उपञ्जायो अथवा भण्डकुच्छि ।
 इमस्स दण्डं च वधं च दत्त्वा
 गले गहेत्त्वा खलयाथ जम्मं ॥८॥
 गिरिं नखेन खणसि,
 अयो दन्तेन खादसि ।
 जातवेदं पदहसि,
 यो ईसि परिभाससि ॥९॥
 आवेठितं पिट्टितो उत्तमाङ्ग,
 बाहं पसारेति अकम्मनेय्यं ।
 खेत्तानि अक्खीनि कथा मतस्स,
 को मे इयं पुत्तं अकासि एवं ॥११॥
 तदेव हि एतरहि च मय्हं,
 मनोपदोसो मम नत्थि कोचि ।
 पुत्तो च ते वेद मदेन मत्तो,
 अत्थं न जानाति अधिच्च वेदे ॥१२॥
 अद्धा हवे भिक्खु मुहुत्तकेन,
 मम्ममुह्यते व पुरिसस्स सञ्ज्रा ।
 एकापराधं खम भूरिपञ्जा,
 न पण्डिता क्रोध वला भवन्ति ॥१९॥

अनाथो महानिर्ग्रन्थ :

सम्राट श्रेणिक एक बार मण्डित कुक्षी उद्यान में पहुँचा । उद्यान की शोभा को देखते हुए उसकी आँखें एक ध्यानस्थ मुनि पर जा टिकी । उस मुनि के अद्भुत रूप-लावण्य को देखकर वह विस्मित हुआ । उसने पूछा—आप तरुण है, भोग भोगते योग्य है, फिर आपने इस आयु में संन्यास क्यों ग्रहण किया ? उत्तर में मुनि ने कहा—मैं अनाथ था. मेरा कोई भी नाथ नहीं था. उनीचिए मैं मुनि बना । राजा ने मुस्कराते हुए कहा—शरीर सम्पदा से आप ऐश्वर्यजाती प्रतीत होते हैं, फिर अनाथ कैसे ? मैं आपका नाथ बनता हूँ । मेरे साथ चलें । मुखपूर्वक भोग भोगे ।

मुनि ने कहा—तुम स्वयं अनाथ हो । मेरे नाथ कैसे बन सकोगे ? राजा को यह वाक्य तीक्ष्ण मन्त्र की तरह चुभ गया । उसने कहा—आप झूठ बोलते हैं । मेरे पास विराट् सम्पदा है. मेरे आश्रय में हजारों व्यवित हैं । ऐसी अवस्था में मैं अनाथ कैसे ? मुनि ने समाधान करते हुए कहा—तुम अनाथ का अर्थ नहीं जानते । मैं तुम्हें इसका रहस्य बताता हूँ । मैं गृहस्थाश्रम में तौशाम्बी नगरी में रहता था । मेरे पिता के पान विराट् वैभव था । मेरा विवाह उच्च कुल से हुआ था । मुझे एक ब्राह्मण अक्षि-रोग दूरा । सभी पारिवारिक जनो ने रोग दूर करने का खूब प्रयत्न किया, सभी ने मेरी वैदना पर आँसू बहाये. पर मे वैदना को बँदा नहीं करे । यद् भी मेरी अनाथता ! मैंने दृढ़ संकल्प किया यदि मैं वैदना से मुक्त हो जाऊँ तो मैं मुनि बन जाऊँगा । उन संकल्प के फल में मैं

गया, ज्यों-ज्यों रात बीतती गई, मेरा रोग शान्त होता गया। मुझ होने पर मैंने अपने आप ही पूर्ण रूप में स्वस्थ पाया। मैं श्रमण बनकर सभी व्रत एवं स्थावर प्राणियों का नाथ बन गया। मैंने आत्मा पर जागृत किया और मैं विधिपूर्वक श्रमण-धर्म का परिपालन करता हूँ। यह मेरी सनाथता है। सम्राट् श्रेणिक ने पहली बार ही सनाथ-अनाथ का विवेचन गुना। उसके जान-बुझ चुल गये। सम्राट् श्रेणिक ने कहा—वस्तुतः आप ही सनाथ हैं और सभी के मन्त्रे बान्धव हैं। मैं आपसे धर्म का अनुगमन चाहता हूँ। मुनि ने उसे धर्म का मर्म बताया, वह धर्म में अनुरक्त हो गया। इस कथानक में अनेक महत्त्वपूर्ण विषय चिन्तित हैं। इमें आई हुई अनेक गाथाओं की तुलना अन्य साहित्य से की जा सकती है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ कुछ गाथाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

उत्तराध्ययन, अ० २०

अप्पा नई वेयरणी,
अप्पा मे कूडसामनी।
अप्पा कामदुहा धेणू,
अप्पा मे नन्दणं वणं ॥३६॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य,
दुहाण य मुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठय सुपट्ठओ ॥३७॥

न तं अरी कण्ठछेत्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥ ४८॥

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरंगणे सब्बओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुहं व महाभवोघं,
समुहपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

उपर्युक्त गाथाओं में भावों में तो एकरूपता है ही साथ ही विषय की दृष्टि से भी अत्यधिक समानता है।

समुद्रपालीय :

चम्पा नगरी में पालित नामक श्रमणोपासक था। उसका व्यापार दूर-दूर तक फैला हुआ था। एक बार सुपारी, सोना आदि वस्तुएँ लेकर वह सामुद्रिक यात्रा के लिए यान-पात्र पर आरूढ़ होकर प्रस्थित हुआ। वह समुद्र के किनारे 'पिहुण्ड' नगर में रुका। एक सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ किया। नवोद्वा पत्नी गर्भवती हुई। समुद्र यात्रा के बीच ही उसने पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा। वह एक बार अपने भव्य प्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगरश्री का अवलोकन कर रहा था। उसने देखा—राजपुरुष एक व्यक्ति को वध-भूमि की ओर ले जा रहे हैं। उसके वस्त्र लाल हैं और गले में कनेर की माला है। उसका मन संवेग से भर गया। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह दीक्षित बन गया। कर्मों को नष्ट कर वह सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

प्रस्तुत कथानक में समुद्र-यात्रा का उल्लेख हुआ है। उस युग में भारत के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यान-पात्र हुआ करते थे। वे एक स्थान से दूसरे स्थानों पर

धम्मपद

अत्ता हि अत्तनां नाथो,
को हि नाथो परां निया।
अत्तना व मुदग्गेण,
नाथं नभति दुल्लभं ॥४॥
अत्तना व कतं पापं,
अत्तजं अत्तमम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मंथं,
वजिरं वस्समयं मणि ॥ ५ ॥
अत्तना व कतं पापं,
अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं,
अत्तना व विमुज्जति ॥
मुद्धि असुद्धि पच्चत्तं,
नाञ्चो अञ्चं विसोधये ॥ ६ ॥
दिसो दिसं यन्तं कयिरा,
वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं।
पापियो नं ततो करे ॥ १० ॥

मुण्डकोपनिषद्

यदा पश्यः पश्यते रक्मवर्णं
कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरंजनं परमं साम्यमुपैति ॥३।१।३॥

माल लेकर जाते थे। नदियों के द्वारा भी माल आता था। नदी-तट पर उतरने के लिए स्थान बने हुए थे। निशीथभाष्य में चार प्रकार की नावों का उल्लेख मिलता है^१—१. अनुलोमगामिनी २. प्रतिलोमगामिनी ३. तिरिच्छसंतारणी [एक तट से दूसरे तट पर सरल रूप से जाने वाली] और ४. समुद्रगामिनी। इनके अतिरिक्त उर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी, योजनवेलागामिनी एवं अर्ध-योजनवेलागामिनी इन चार नामों का भी उल्लेख है।^२ समुद्र यात्रा खतरों से खाली नहीं थी। कई बार इतने भयंकर उपद्रव आ जाते कि जहाज छह-छह महीने तक चक्कर काटते रहते।^३ देवी-देवताओं के उपद्रव से बचने के लिए उनकी मूर्तियाँ भी की जाती थीं। जहाज फट जाने पर यात्रियों को बड़ी कठिनाई होती थी।^४ जहाज डूबने के वर्णन भी आगम-साहित्य में यत्र-तत्र आये हैं। जब प्रतिकूल पवन चलता, आकाश बादलों से आच्छन्न हो जाता, उस समय जहाज में बैठने वाले यात्रियों के प्राण संकट में पड़ जाते। उन्हें दिशाभ्रम हो जाता। वे उस विकट वेला में यह निर्णय नहीं ले पाते कि उन्हें क्या करना चाहिए। या तो ऐसे समय में जीने की आशा छोड़कर दीन भाव से बैठ जाते या समुद्र की उपासना करते।^५ अथवा वीतराग प्रभु की उपासना में संलग्न हो जाते। यहाँ पर प्रस्तुत कथानक में एक 'ववहार' शब्द आया है, जिसका संस्कृत रूप 'व्यवहार' है। आगम युग में यह शब्द क्रय-विक्रय, आयात और निर्यात के अर्थ में व्यवहृत हुआ है और 'वध्य मंडन शोभाक' शब्द दण्ड-विधान के अर्थ में प्रयुक्त था। तस्करों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उसे कनेर के फूलों की माला तथा लाल वस्त्र पहनाये आते थे। उसके कुकृत्यों की विजापना नगर के मुख्य मार्गों से वध-भूमि की ओर ले जाकर की जाती थी।

मृगापुत्र और बलश्री श्रमण :

मुग्रीव नगर में बलभद्र और मृगावती का पुत्र बलश्री था। पर वह 'मृगापुत्र' के नाम से प्रसिद्ध था। युवा होने पर उसका पाणिग्रहण हुआ। वह पत्नियों के साथ राजप्रासाद के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर का अवलोकन कर रहा था, उसकी दृष्टि निग्रन्थ मुनिराज पर गिरी। मुनि के तेजोदीप्त ललाट, चमकते हुए नेत्र, और तपस्या से अत्यन्त कृश शरीर को वह अपलक दृष्टि से देखता रहा। चिन्तन तीव्र हुआ मैंने ऐसा रूप पहले भी देखा है, उसे जातिस्मृति ज्ञान उत्पन्न हो गया—मैं पूर्वभवं में श्रमण था। इस अनुभूति से मन वैराग्य से भर गया। माता-पिता से उसने निवेदन किया—मैं प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय और संक्लेशों का भाजन है। जिसे आज नहीं तो कल अवश्यमेव छोड़ना पड़ेगा। माता-पिता ने दुश्चरता और कठोरता का परिज्ञान कराया। तुम सुकोमल हो, तुम्हारे लिए श्रमण-जीवन का पालन करना कठिन है। श्रमण-जीवन यावज्जीवन का होता है। बालुका कवल की तरह निस्वाद और असिधारा की तरह दुश्चर है। श्रमण-धर्म स्वीकार करने पर रोग की चिकित्सा कौन करेगा ? उत्तर में मृगापुत्र ने कहा—अरण्य में बसने वाले मृग आदि पशु-पक्षियों की कौन चिकित्सा करता है, कौन उन्हें और भक्त्यान देता है ? वैसे ही मृगचारिका से मैं अपना जीवन यापन करूँगा। अन्त में मुनि-धर्म स्वीकार कर मृगापुत्र श्रमण-धर्म का परिपालन कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

मृगापुत्र और माता-पिता का संवाद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है तथा साथ ही प्रेरणादायी भी है।

गर्दभाली और संजय राजा :

काम्पिल्य नगर का अधिपति राजा संजय शिकार के लिए केशर उद्यान में पहुँचा। उसने मृगों को मारा। उसकी दृष्टि एकाएक ध्यान-मुद्रा में अवस्थित गर्दभाली मुनि पर गिरी। वह भय से काँप उठा। मैंने मुनिराज के मृग को मारकर आशातना की है। वह धोड़े से नीचे उतरकर मुनि से क्षमा-याचना करने लगा। पर मुनि ध्यानस्थ थे। अतः राजा भय में और अधिक व्यथित हो गया कि मुनि यदि क्रुद्ध हो गये तो अपने दिव्य तेज से समूचे राज्य को नष्ट कर देंगे। अतः उसने पुनः मुनि से निवेदन किया। मुनि ने ध्यान ने निवृत्त होकर उससे कहा—मैं तुझे अभय प्रदान करता हूँ। तुम भी सभी प्राणियों को अभय प्रदान करो। मुनि के त्याग वैराग्य ने छत्रछायाते हुए उपदेश को ध्वज कर राजा संजय श्रमण बन गया। एक दिन एक भविय मुनि संजय मुनि के पास आया और उसने पूछा—तुम्हारा नाम व गोत्र क्या है ? तुम क्यों मुनि बने हो ? किन आचार्यों की सेवा कर रहे हो ? संजय मुनि ने कहा—मेरा नाम संजय है, गौतम गोत्र है, मेरे आचार्य गर्दभाली हैं। मैं मुक्ति के निम्न श्रमण बना हूँ। आचार्य की आज्ञानुसार कार्य करता हूँ, इसीलिए विनोत हूँ।

१. निशीथभाष्य, पौंडिका १=३.

२. (क) निशीथ सूत्र १=१२-१३. (ख) महानिशीथ ५१/३५, (ग) गच्छाचार मुनि पृ० ५०.

३. उत्तराखण्ड टीका १=, पृ० २५२ अ.

४. ज्ञानाधर्मकथा २/६ पृ० १२३.

५. (क) ज्ञानाधर्मकथा १७ पृ० २०१.

(ख) कथामरित्नागर, पञ्जर. जिल्द ७, अ. १०१, पृ० १५०.

इस कथानक में भरत, सगर, मधवा, सनत्कुमार, शान्ति, अर, कुन्धु, महापद्म, हरिषेण, जय, आदि चक्रवर्ती राजाओं के नाम हैं। दशार्णभद्र, नमि, करकण्डु, द्विमुख, नगति, उदायण, काशिराज, विजय, महाबल आदि राजाओं के नाम हैं। दशार्ण, कलिंग, पांचाल, विदेह, गान्धार, सौवीर, काशी आदि देशों के नाम हैं। क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद का भी उल्लेख हुआ है। इस तरह प्राग् ऐतिहासिक और ऐतिहासिक सामग्री का सुन्दर संकलन है।

इषुकार राजा :

प्रस्तुत कथानक के मुख्य छह पात्र हैं—(१) इषुकार महाराजा (२) महारानी कमलावती (३) भृगु पुरोहित (४) पुरोहित की पत्नी यशा (५) पुरोहित के दो पुत्र।

उत्तराध्ययननियुक्ति में इन सभी पात्रों के पूर्वभ्रम, वर्तमान भ्रम और उनकी उत्पत्ति तथा निर्वाण प्राप्ति का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। हम विस्तार में न जाकर संक्षिप्त में यह बतायेंगे कि पुरोहित के दो पुत्र दीक्षा के लिए तैयार होते हैं। उनके माता-पिता उन्हें गृहस्थाश्रम में रहकर ब्राह्मण कृत्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। पर जहाँ वैराग्य का पयोधि उछालें मार रहा हो, वहाँ वह व्यक्ति संसार में कैसे रह सकता है? वे दोनों पुत्र माता-पिता को विविध रूपों एवं अकाट्य तर्कों से संसार की असारता बताते हैं। पिता ब्राह्मण-संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर अपने तर्क प्रस्तुत करता है तो दोनों पुत्र श्रमण-संस्कृति का नेतृत्व करते हुए अपनी दलीलें रखते हैं। अन्त में भृगुपुरोहित को संसार की असारता और क्षणभंगुरता पर विश्वास पैदा हो जाता है, वह अपनी पत्नी को समझाता है। उसकी पत्नी भी दीक्षा के लिए तैयार हो गई, पुरोहित का कोई भी उत्तराधिकारी नहीं था। राजा का मन उसकी विराट् सम्पत्ति को लेने के लिए ललचा रहा था। रानी कमलावती इषुकार राजा को कहती है—राजन्! वमन को खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करना चाहते हैं। वह वमन को पीने के सदृश है। रानी ने भोगों की असारता पर प्रकाश डाला। राजा का मन विरक्ति से भर गया। राजा और रानी दोनों भी प्रब्रजित हो जाते हैं।

बौद्ध साहित्य में :

प्रस्तुत कथानक की तरह बौद्ध साहित्य में भी यह कथा कुछ रूपान्तर के साथ आई है। वहाँ भी यह कथा बहुत ही विस्तार के साथ दी गई है। बौद्ध कथावस्तु में मुख्य पात्र आठ हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) राजा एसुकारा (२) पटरानी (३) पुरोहित (४) पुरोहित की पत्नी (५) पहला पुत्र हस्तिपाल (६) दूसरा पुत्र अश्वशाल (७) तीसरा पुत्र गोपाल (८) चौथा पुत्र अजपाल।

न्यायांध वृक्ष के अधिष्ठायक देव के वरदान से पुरोहित के चार पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों प्रब्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं। पिता उन चारों की परीक्षा लेता है। पिता और पुत्रों में परस्पर संवाद होता है। चारों पुत्र क्रमशः अपने पिता के सामने जीवन की नश्वरता, संसार की असारता और कामभोगों की क्षणिकता का प्रतिपादन करते हैं। चारों ही प्रब्रज्या ग्रहण करते हैं। पुरोहित भी दीक्षा ग्रहण करता है। दूसरे दिन ब्राह्मणी प्रब्रजित हो जाती है तथा राजा-रानी भी प्रब्रज्या ले लेते हैं। सरपेण्टियर ने लिखा है—इषुकार के कथानक के साथ बौद्ध कथा-वस्तु की अत्यधिक समानता है। इषुकार की कथा बौद्ध कथा-वस्तु से प्राचीन होनी चाहिए।^१

डा० घाटगे का अभिमत है कि जैन कथावस्तु व्यवस्थित, स्वाभाविक, यथार्थ और जातक से प्राचीन है। उन्होंने यह भी लिखा है—जातक की कथा, कथा-वस्तु की दृष्टि से पूर्ण है, उसमें पुरोहित के चारों पुत्रों का विस्तार से निरूपण है, जबकि जैन कथा में उसका अभाव है। द्वितीय अन्तर यह है कि जातक में पुरोहित के चार पुत्रों का उल्लेख है, जबकि उत्तराध्ययन में दो पुत्रों का ही वर्णन है। जैन कथा में राजा और पुरोहित के बीच सम्बन्ध नहीं बताया गया है, जबकि जातक में पुरोहित और राजा का सम्बन्ध है। पुरोहित पुत्रों की परीक्षा लेने के लिए राजा से परामर्श करता है और दोनों मिलकर पुत्रों की परीक्षा लेते हैं। जैन दृष्टि से जब पुरोहित सपरिवार दीक्षित हो जाता है तो राजा उस सम्पत्ति पर अपना अधिकार समझकर उस पर

१. उत्तराध्ययननियुक्ति, गाथा ३६३ से ३७३.

2. This legend certainly presents a rather striking resemblance to the prose introduction of the Jataka 509, and must consequently be old.

स्वामित्व स्थापित करता है। इससे रानी का मन वैराग्य से भर जाता है। वह स्वयं दीक्षित होने के लिए प्रस्तुत होती है और साथ ही राजा को भी प्रेरणा देती है। यह बात बहुत ही स्वाभाविक और यथार्थ भी है, पर जातक कथा में ऐसी स्वाभाविकता नहीं है। जातक कथा-वस्तु में न्यग्रोध वृक्ष के देवता द्वारा चार पुत्रों का वरदान पुरोहित को प्राप्त होता है, जबकि राजा को पुत्र की अत्यधिक आवश्यकता होने पर भी उसे एक भी पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इससे यह स्पष्ट है कि यह कथा जैन कथा-वस्तु में बाद में लिखी गई है।^१

महाभारत में :

प्रस्तुत कथा की तरह महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १७५ में भी और अध्याय २७७ में जो पिता-पुत्र के संवाद आये हैं, उन संवादों से सहज रूप से तुलना की जा सकती है। यद्यपि दोनों अध्यायों का प्रतिपाद्य विषय एक है, नामों में भी कोई अन्तर नहीं है, दोनों में सम्राट युधिष्ठिर भीष्मपितामह से कल्याण का मार्ग जानना चाहते हैं, समाधान प्रदान करते हुए भीष्मपितामह एक ब्राह्मण और उसके एक मेधावी पुत्र का संवाद जो प्राचीन इतिहास में आया है, वह उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं। उत्तराध्ययन में त्रेपन गाथाएँ हैं तो महाभारत में उनचालीस श्लोक हैं। अर्थ और शब्द साम्य दोनों ही पाठक को विस्मय में डाल देते हैं। जैन और बौद्ध कथा-वस्तु में पिता और पुत्र के साथ ही राजा एवं रानी का पूरा सम्बन्ध है तथा यह बताया गया है कि वे अन्त में प्रव्रजित होते हैं, जबकि महाभारत में पिता-पुत्र का ही मुख्य संवाद है। अन्त में पुत्र के उपदेश से वे सत्य-धर्म को ग्रहण करते हैं। महाभारत के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि पिता पुत्र को ब्राह्मण धर्म की बातें समझाता है, और उसे वह कहता है—वत्स ! वेदों का गहन अध्ययन करो, गृहस्थाश्रम को धारण करो। बिना पुत्र पैदा हुए पितरों की सद्गति नहीं होती, यज्ञ-याग करो। उसके पश्चान् वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण करो। पिता के तकों का पुत्र समाधान करते हुए कहता है—बापका कथन सत्य है, पर आप जरा चिन्तन करें, संन्यास के लिए काल की मर्यादा कोई आवश्यक नहीं है, धर्माचरण करने के लिए मध्यम वय अधिक उपर्युक्त है। जो भी कर्म हैं, उनका फल अवश्य मिलता है। आपने यज्ञ के लिए कहा, पर हिंसा-युक्त जो यज्ञ है, वह तामस यज्ञ है और वह यज्ञ साधक के लिए करने योग्य नहीं है। त्याग-तप और सत्य ही सच्चा शान्ति का राजपथ है। इस विश्व में त्याग के समान कुछ नहीं है। सन्तान संसार से पार नहीं उतार सकती। विराट् वैभव और परिजन त्राण-प्रदाता नहीं हैं, इसलिए आत्मा की अन्वेषणा करनी चाहिए। पुत्रों ने अपनी चर्चा में जो तथ्य दिये हैं, वे तथ्य श्रमण परम्परा के अधिक अनुकूल हैं। यहाँ तक कि महाभारत और हस्तिपाल जातक में जो श्लोक आये हैं, उन श्लोकों में तथा उत्तराध्ययन की प्रस्तुत कथा में जो गाथाएँ आई हैं, उनमें बहुत कुछ ममानता है। हम यहाँ गोधार्थियों के लिए तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु गाथाएँ और श्लोक प्रस्तुत कर रहे हैं।

उत्तराध्ययन (अध्ययन १४)

जाई जरामच्चुभयाभिभूया,
वर्हि विहाराभिनविट्टुचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा,
दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥
अहिञ्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया ।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहि,
आरण्णग्गा होह मुणो पसत्था ॥६॥

महाभारत (शान्ति० अ० १७५)

मृत्युर्जरा च व्याधिश्च,
दुःखं चानेककारणम् ।
अनुपकृतं यदा देहे,
किं स्वस्थ इव तिष्ठसि ॥२३॥
वेदानधीदय ब्रह्मचर्येण पुत्र,
पुत्रानिच्छेत् पावनार्थं पितृणाम् ।
अग्नीनाशाय विधिवच्चेष्टयज्ञो
वनं प्रविश्याय मुनिबुभूषेत् ॥६॥

हस्तिपाल जातक (सं० १०६)

अधिच्च वेदे परियेत्त विन्तं,
पुत्ते गेहे नान पतिट्ठपेत्त्वा ।
गन्धे रसे पच्चनुमुत्त्व सच्चं
अरञ्जं माधु, मुनि सो पसत्थो ॥३॥

१. Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 17. [1935-36], 'A few Parallels in Jaina and Buddhist Works', pp. 343-344.

उत्तराध्ययन

वेया अहीया न भवन्ति ताणं,
भुत्ता दिया निन्ति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं,
को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥१२॥

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥१३॥

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि,
इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति क्हं पमाए ? ॥१५॥

महाभारत

मोहेन हि समाविष्टः
पुत्रदारार्थमुद्यतः ।
कृत्वा कार्यमकार्यं वा,
पुष्टिमेपां प्रयच्छति ॥१७॥
त पुत्रपशुसम्पन्नं,
व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्तं व्यात्रो मृगमिव,
मृत्युरादाय गच्छति ॥१८॥
मृत्योर्वा मुखमेतद् वै,
या ग्रामे वसतो रतिः ।
देवानामेष वै गोष्ठो,
यदरण्यमिति श्रुतिः ॥२५॥
निबन्धनी रज्जुरेपा,
या ग्रामे वसतो रतिः ।
छित्त्रैतां सुकृतो यान्ति,
नैनां छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥२६॥
आत्मन्येवात्मना जात,
आत्मनिष्ठोऽप्रजोऽपि वा ।
आत्मन्येव भविष्यामि,
न मां तारयति प्रजा ॥३६॥

हस्तिपाल जातक

वेदा न सच्चा न च वित्तलाभो,
न पुत्तलाभेन जरं विहन्ति ।
गन्धे रसे मुच्चनं आहुसन्तो,
सकम्मुना होति फलूपपत्ति ॥५॥
गवं न नट्ठं पुरिसो यथा वने,
परियेसति राज अपस्समानो ।
एवं नट्ठो एसुकारी मं अत्थो,
सो हं कथं न गवेस्सेय्य राज ॥११॥

महाभारत

इदं कृतमिदं कार्य-
मिदमन्यत् कृताकृतम् ।
एवमीहासुखासक्तं
कृतान्तः कुस्ते वशे ॥२०॥
कृतानां फलमप्राप्तं,
कर्मणां कर्मसंज्ञितम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तं,
मृत्युरादाय गच्छति ॥२१॥

उत्तराध्ययन

धनं पभूयं सह इत्थियाहि,
सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो,
तं सव्व साहीणमिहेव तुब्भं ॥१६॥
धणेण कि धम्मधुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

जहा वयं धम्ममजाणमाणा,
पावं पुरा= कम्ममकासि मोहा ।
ओरुज्जमाणा परिरक्खियन्ता,
तं नेव भुज्जो वि-समायरामो ॥२०॥

अब्भाहयमि लोगमि,
सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहि पडन्तीहि,
गिहंसि न रइ लभे ॥२१॥
केण अब्भाहओ लोगो ?
केण वा परिवारिओ ?
का वा अमोहा बुत्ता ?
जाया ! चिंतावरो हूमि ॥२२॥
मच्चुणा अब्भाहओ लोगो,
जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी बुत्ता,
एधं तान ! वियाणह ॥२३॥

महाभारत

दुर्वलं बलवन्नं च,
सूर-भीरुं जडं कविम् ।
अप्राप्तं सर्वकामार्थान्,
मृत्युरादाय गच्छति ॥२२॥

हस्तिपाल जातक

हिय्यो ति हिय्यो ति,
पोसो परेति (परिहायति) ।
अनागतं नेतं अत्योतिजत्वा,
उपन्नछन्दं को नुपदेय्य धारो ॥१२॥

महाभारत

नेतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं,
यथैकता समता सत्यता च ।
शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं,
ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः ॥३७॥
किं ते धनैर्वान्धवैर्वापि किं ते,
किं ते दारैर्ब्राह्मण यो मरिष्यसि ।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं,
पितामहास्ते क्व गताः पिता च ॥३८॥

हस्तिपाल जातक

अयं पुरे लुद् अकासि कम्मं,
स्वार्थं गहीतो, न हि मोक्खे इतोमि ।
ओरुधिया नं परिरक्खिस्सामि,
मायं पुन लुद् अकासि कम्मं ॥२०॥

महाभारत

एवमभ्याहते लोकं,
समन्तात् परिवारिते ।
अमोघानु पतन्तीषु,
किं श्वोर इव भाषते ॥३७॥
कथमभ्याहतो लोकः,
केन वा परिवारितः ।
अमोघाः क्वा पतन्तीह,
किं नु भोगयसीव मान् ॥३८॥
मृत्युनाभ्याहतो लोकः,
जस्या परिवारितः ।
अहोरात्रा पतन्त्येते
ननु क्वास्मात् रुष्यन्ते ॥३९॥

उत्तराध्ययन

महाभारत

जा जा वच्चइ रयणी,
 न सा पडिनियत्तई ।
 अहम्मं कुणमाणस्स,
 अफला जन्ति राइओ ॥२४॥

जा जा वच्चइ रयणी,
 न सा पडिनियत्तई ।
 धम्मं च कुणमाणस्स,
 सफला जन्ति राइओ ॥२५॥

अमोघा रात्रयश्चापि
 नित्य—मायान्ति यान्ति च ।
 यदाहमेतज्जानामि,
 न मृत्युस्तिष्ठतीति ह ।
 सोऽहं कथं प्रतीक्षिष्ये,
 जालेनापिहितश्चरन् ॥१०॥

रात्र्यां रात्र्यां व्यतीताया—
 मायुरल्पतरं यदा ।
 गाधोदके मत्स्य इव,
 सुखं विन्देत कस्तदा ॥११॥

तदेव वन्यं दिवसमिति,
 विद्याद् विचक्षणः ।
 अनवाप्तेषु कामेषु,
 मृत्युरभ्येति मानवम् ॥१२॥

हस्तिपाल जातक

यस्स अस्स सक्खी मरणेन राज,
 जराय मेत्ती नरविरियसेट्ठ ।
 यो चापि जज्जा स मरिस्सं कदाचि,
 पस्सेय्युं तं वस्ससतं अरोगं ॥७॥

महाभारत

श्व कार्यमद्य कुर्वीत,
 पूर्वाह्ने चापराह्लिकम् ।
 न हि प्रतीक्षते मृत्युः,
 कृतमस्य न वा कृतम् ॥१५॥

को हि जानाति कस्याद्य,
 मृत्युकालो भविष्यति ।
 अबुद्ध एवाक्रमते,
 मीनान् मीनग्रहो यथा ॥१५॥

पुत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा,
 यथा कार्षीत् पिता नृपः ।
 तथा स्वमपि वर्तस्व,
 सत्यधर्मं परायणः ॥३६॥

हस्तिपाल जातक

अवमो ब्राह्मणो कामे,
 ते त्वं पच्चावमिस्ससि ।
 वन्तादो पुरिसो राज,
 न सो होति पसंसियो ॥१८॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं,
 जस्स वत्थि पलायणं ।
 जो जाणे न मरिस्सामि,
 सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
 जहि पवन्ता न पुणब्भवामो ।
 अणागयं नेव य अत्थि किञ्चि,
 सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

पुरोहितं तं ससुयं सदारं,
 सोच्चाऽभिनिक्खम्मं पहायभोए ।
 कुडुम्बं सारं विउलुत्तमं तं,
 रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

वन्तासी पुरिसो रायं,
 न सो होइ पसंसिओ ।
 माहणेण परिच्चत्तं,
 धणं आदाउमिच्छसि ॥३८॥

	उत्तराध्ययन	हस्तिपाल जातक
नागो	व्व बन्धणं छित्ता,	इदं वत्वा महाराज,
अप्पणो	वसहिं वए।	एमुकारी दिसमत्ति।
एयं	पत्थं महारायं!	रट्ठं हित्वाण पञ्चजि,
उसुयारि	त्ति मे सुयं ॥४८॥	नागो छेत्वा व बंधनं ॥२०॥

सरपेण्टियर ने उत्तराध्ययन की ४४-४५ गाथा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि इन गाथाओं का प्रतिपाद्य जातक के अठारहवें श्लोक में प्रतिपादित कथा से जान सकते हैं। संक्षेप में कथा का सारांश इस प्रकार है—

पुरोहित का सम्पूर्ण परिवार प्रव्रजित हो गया। राजा ने उसकी विराट् सम्पत्ति अपने पान मंगवा ली। रानो को परिज्ञात होने पर वह समझाने का उपक्रम करने लगी। रानी ने कमाई के वहाँ से मांस मंगवाया और राजप्रानाद ने उसे बिखेर दिया। मीधे मार्ग को छोड़कर चारों ओर जाल लगवा दिया। मांस को निहार कर गिद्ध पक्षी आये। उन्होंने खूब मांस खाया। जो गिद्ध पक्षी बुद्धिमान् थे, उन्होंने जाल को देखा और चिन्तन करने लगे—हम मांस खा-खाकर बहुत ही भारी हो चुके हैं, जिससे हम मीधे आकाश में उड़ नहीं सकेंगे, उन्हींने खाये हुए मांस को वमन किया और हल्के हाँकर आकाश में उड़ गये। जो गिद्ध बुद्धहीन थे, उन्हींने वमन किये हुए मांस को भी खा लिया और अत्यन्त भारी हो गये, जिससे वे मीधे उड़ नहीं सकते थे। वे टेंटे उड़ने लगे तथा जाल में फँस गये। एक गिद्ध को लाकर अनुचरों ने रानी को दिखाया। वह राजा के नम्निकट पहुँची और उसने झरोखा खोलकर राजा से कहा—आप भी जरा तमाशा देखें। आर्यपुत्र ! जो मीधे मांस खाकर पुनः वमन कर रहे हैं, वे मीधे आकाश में उड़ें चले जा रहे हैं और जो मीधे मांस खाकर वमन नहीं कर रहे हैं, वे मेरे द्वारा लगाये गये जाल में फँस रहे हैं।^१

सरपेण्टियर ने प्रस्तुत कथानक में उनपचास से तरेपन तक की गाथा को मूल नहीं माना है। उनका अभिमत है कि ये पाँच गाथायें मूल-कथा से सम्बन्धित नहीं हैं। सम्भव है, जैन कथाकार ने बाद में निर्माण कर यहाँ रखा हो।^२ पर उत्तराध्ययन के व्याख्या साहित्य में इस सम्बन्ध में कहीं भी कोई संकेत नहीं है, अतः सरपेण्टियर का कथन केवल तर्क पर आधारित है, तथ्य पर नहीं।

पुराण साहित्य में :

मार्कण्डेय पुराण में प्रस्तुत प्रसंग से सम्बन्धित मधुर संवाद है। एक बार पक्षियों से जैमिनी ने प्राणियों के जन्म आदि से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं। उस जिज्ञासा के समाधान में उन्होंने पिता-पुत्र का एक संवाद प्रस्तुत किया। भार्गव नामक ब्राह्मण का पुत्र मुमति था। उसने धर्म तत्त्व को गहराई से समझा था। एकदिन भार्गव ने पुत्र से कहा—वन् ! प्रथम वेदों को पढ़कर तथा गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा कर, गृहस्थ जीवन सम्पन्न कर, यज्ञ-याग प्रभृति कृत्यों से निवृत्त होकर, पुत्रों को जन्म देकर उसके पश्चात् संन्यास ग्रहण करना, पहले नहीं।^३

मुमति ने निवेदन किया—जिन बातों के लिए आप मुझे संकेत कर रहे हैं। मैंने पूर्व भी उनका अनेक बार अभ्यास किया है। उसके अतिरिक्त विविध प्रकार के शास्त्र और जित्तों को भी मैंने अनेक बार पढ़ा है, इसलिए मुझे यह जान ही चुका है कि वेदों में मुझे क्या प्रयोजन है।^४

पूज्यवर ! मैं उन विराट् संन्यास में बहुत ही परिश्रमण कर चुका हूँ। मैंने अनेक बार माता-पिता के मरोग और विरोग का भी अनुभव किया। सुख और दुःख को भी समझ लिया है, जन्म एवं मृत्यु के चक्र में चक्रमय रहने हुए मुझे विनिष्ट मान चुका है। मैं अपने लालों पूर्वजन्मों को निहार रहा हूँ। मुझे मोक्ष प्राप्त करने वाला ज्ञान समुपलब्ध हो चुका है। इस विनिष्ट ज्ञान के

१. जातक संख्या १०६, पाचवा खण्ड, पृष्ठ ७५.
२. The verses from 49 to the end of the chapter certainly do not belong to original legend, but must have been composed by the Jain author. —The Uttaradhyana Sutra p. 333.
३. वेदानधीत्य मुमते ! यथानुक्रम मारितः। गुरुशुश्रूषणेऽप्यसौ, भैशान्वकृतमोजनम् ॥ ततो गार्हस्थ्यमास्थानं वैष्ट्या यथावदनुत्तमान्। इदमुत्पादयामासनाश्रयेथा वक्तव्यम् ॥ —मार्कण्डेय पुराण १.११.१३
४. तानेतद् बहुशोभ्यतं, सत्यमाद्योपदिश्यते। तथैतन्मामि शक्यथापि जित्वापि विविधार्थैः च —मार्कण्डेय पुराण १.११.१४

कारण ऋक्, यजु, साम, प्रभृति वेदों के क्रिया कलाप मुझे उचित ज्ञात नहीं होते हैं। मुझे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हो चुका है। मैं निरीह हूँ, वेदों से मुझे क्या प्रयोजन। इसी उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना और साधना से मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो जायेगी।¹

पिता ने कहा—वत्स ! तू ऐसी बातें क्यों कर रहा है ? ऐसा प्रतीत होता है, किसी ऋषि या देव का शाप तुझे लगा है।² सुमति ने कहा—तात ! पूर्व जन्म में मैं एक ब्राह्मण था। परमात्मा के ध्यान में मैं सदा तल्लीन रहता था। आत्मविद्या के विचार मेरे में पूर्ण रूप से विकसित हो चुके थे। मैं साधना में सदा लगा रहता, मुझे लाखों जन्मों की स्मृति हो आई है। जाति-स्मरण ज्ञान की प्राप्ति धर्मत्रयी में रहे हुए मानव को होती है, मुझे यह ज्ञान पहले से ही प्राप्त है, अब मैं आत्ममुक्ति के लिए प्रयास करूँगा।³

पिता-पुत्र का संवाद आगे बढ़ा। पुत्र पिता के नमस्कार मृत्यु-दर्शन उपस्थित करता है। यह संवाद प्रस्तुत कथानक में आये हुए जैन कथानक से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस संवाद में आत्मज्ञान और वेदज्ञान के तारतम्य को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

विन्टरनीट्ज का अभिमत है—मार्कण्डेय पुराण में आया हुआ यह संवाद बहुत कुछ सम्भव है बौद्ध-या-जैन परम्परा का रहा हो। उसके पश्चात् महाकाव्य या पौराणिक साहित्य में सम्मिलित कर लिया गया हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है—यह बहुत प्राचीन काल से प्रचलित श्रमण-साहित्य का अंश रहा होगा और उसी में जैन, बौद्ध, महाकाव्यकारों तथा पुराणकारों ने ग्रहण कर लिया होगा।⁴

आर्य स्कन्दक परिव्राजक :

वैदिक परम्परा का 'परिव्राजक' शब्द विशिष्ट अर्थ को लिये हुए है। निरुक्त में भिक्षा से आजीविका करने वाले साधु को 'परिव्राजक' माना है।⁵ डा० राजवली पाण्डेय ने लिखा है—परिव्राजक चारों ओर भ्रमण करने वाला संन्यासी था। वह संसार से विरक्त तथा सामाजिक नियमों से अलग-थलग रहकर अपना सम्पूर्ण समय ध्यान, शिक्षण, चिन्तन आदि में व्यतीत करता था।⁶

जैन आगम-साहित्य में तथा उत्तरवर्ती साहित्य में तापस, परिव्राजक, संन्यासी आदि विविध प्रकार के साधकों का सविस्तृत वर्णन है। औपपातिक,⁷ सूत्रकृतांगनिर्युक्ति,⁸ पिण्डनिर्युक्ति,⁹ बृहत्कल्पभाष्य¹⁰ निशीथसूत्र सभाष्य चूर्णि¹¹, भगवती¹², आवश्यकचूर्णि¹³ धम्मपद अट्ठकथा¹⁴, ललित विस्तर¹⁵, आदि ग्रन्थों को निहारा जा सकता है। परिव्राजक श्रमण ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ठ धर्मसूत्र के उल्लेखानुसार परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना, एक वस्त्र वें चर्मखण्ड धारण करना, गायों के लिए लाई हुई घास से अपने शरीर को आच्छादित करना और उसे जमीन पर गयन करना चाहिए।¹⁶ मलालसेकर ने डिक्सनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्स आदि में परिव्राजक की परिभाषा प्रस्तुत की है।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर कृतंगला नामक नगरी में पधारे और छत्रपलाश चैत्य में विराजे। भगवान् के प्रवचन को सुनने के लिए जनसमूह उमड़ पड़ा। कृतंगला नगरी के सन्निकट ही श्रावस्ती नामक नगर था। वहाँ 'कात्यायन' परिव्राजक का शिष्य 'स्कन्दक' परिव्राजक रहता था। वह चार वेद, इतिहास, निघंटु और पण्डितंत्र [कापिलीय शास्त्र] में निपुण था। साथ ही

१. एवं संसार चक्रेस्मिन्, भ्रमता तात ! संकटे । ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तं, मोक्षसम्प्राप्ति कारकम् ॥

विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुः सामसंहितः । क्रियाकलापो विगुणो, न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥

२. तस्मादुत्पन्नबोधस्य, वेदैः किं मे प्रयोजनम् । गुरुविज्ञानतृप्तस्य, निरीहस्य सदात्मनः ॥

३. —मार्कण्डेयपुराण, १०।२७, २८, २९

४. The Jaino in the history of Indian Literature, p. 7.

५. हिन्दू धर्मकोश, पृष्ठ ३६०-३६१.

६. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति ३।४।२, ३।४ पृष्ठ ६४-६५

७. बृहत्कल्पभाष्य, भाग ४, पृष्ठ ११७०

८. भगवती सूत्र ११।६

९. धम्मपद अट्ठकथा-२, पृष्ठ २०६

१०. ललित विस्तर पृष्ठ-२४८

११. (ख) डिक्सनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्स, जिल्द २, पृष्ठ १५६ आदि-मलालसेकर । (ग) महाभारत १२।१६०।३

—मार्कण्डेयपुराण, १०।२७, २८, २९

३. मार्कण्डेय पुराण, १०।३७, ४४.

५. निरुक्त १।१४. वैदिक कोश

७. औपपातिक सूत्र ३८, पृष्ठ १७२से १७६

८. पिण्डनिर्युक्ति गा० ३१४

११. निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि, भाग २

१३. आवश्यकचूर्णि पृष्ठ २७८

१५. दीघनिकाय अट्ठकथा-१, पृष्ठ २७०

१७. (क) वशिष्ठ धर्मसूत्र-१०३-११

गणितशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, ब्राह्मण, नीति शास्त्र व अन्य दर्शनों में पारंगत था। वहाँ पर 'पिंगल' नामक निर्ग्रन्थ धावक रहता था। उनसे स्कन्दक परिव्राजक ने आक्षेपात्मक भाषा में पूछा—

मागध ! यह लोक नान्त है वा अनन्त है ?

जीव नान्त है वा अनन्त है ?

सिद्धि नान्त है वा अनन्त है ?

निद्ध नान्त है वा अनन्त है ?

किन प्रकार का मरण पाकर जीव संसार को घटाता और बढ़ाता है ? क्या तुम मेरे प्रश्नों का समाधान कर सकोगे ?

स्कन्दक परिव्राजक प्रश्नों को सुनते ही गंकाशील हो उठा। उने समय में नहीं आया कि क्या उत्तर है। पिंगल ने पुनः पुनः उन प्रश्नों को दोहराया किन्तु उत्तर न आने से स्कन्दक मोचने लगा—इसका सही समाधान क्या हो सकता है ? उनी समय उने जात हुआ—छत्रपलाण उद्यान में भगवान् महावीर का आगमन हुआ है, अतः स्कन्दक परिव्राजक त्रिदण्ड, कुण्डी, यद्राक्षमान्वा, मृतुभाध, अंसन, पात्रं प्रसाजनं का वस्त्र खण्डे, त्रिकाण्डिका, अंकुश, कुण की मुद्रिका धारण कर कृतंगना की ओर प्रस्थित हुआ।

उस समय भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—तुम अपने पूर्व परिचित को देखोगे। गौतम की जिज्ञासा ने भगवान् ने कहा—पिंगल निर्ग्रन्थ ने स्कन्दक से प्रश्न पूछे हैं, वह उनका उत्तर नहीं दे सका, अतः तापमी उपकरणों को धारण कर यहाँ आने के लिए प्रस्थित हो गया है।

गौतम ने पुनः पूछा—भगवन् ! क्या वह आपका गिष्य बनेगा ? भगवान् ने स्वीकृति सूचक संकेत किया। भगवान् और गौतम का वार्तालाप चल ही रहा था कि गौतम को दूर से आता हुआ स्कन्दक परिव्राजक दिखाई दिया। गौतम अपने स्थान से उठे और स्कन्दक के सामने गये और मधुर वाणी में बोले—स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, मुस्वागत है। अन्वागत है। हे मागध ! यह सत्य है कि पिंगल नामक निर्ग्रन्थ धावक ने आप से कुछ प्रश्न पूछे जिनके उत्तर आप नहीं दे सके। उनके उत्तर को लेने के लिए आपका यहाँ आगमन हुआ है।

गणधर गौतम के द्वारा अपने मन की बात को सुनकर स्कन्दक परिव्राजक को बहुत ही आश्चर्य हुआ। गौतम ने कहा—मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक भगवान् महावीर सर्वज्ञ हैं। आपके मानसिक विचारों से पूर्ण परिचित हैं। उन्होंने ही मुझे बताया कि आप किस उद्देश्य से यहाँ आये हैं ? चलाएँ, उन्हें श्रद्धास्निग्ध हृदय से वन्दन-नमस्कार कीजिए। स्कन्दक ने भगवान् को वन्दन किया। प्रभु ने कहा—मागध ! धावस्ती में रहने वाले पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुम्हारे ने 'लोक, जीव, मोक्ष, सिद्ध आदि नान्त है वा अनन्त'। इस प्रकार प्रश्न पूछे थे न ?

स्कन्दक—हां, भगवन् ! पूछे थे।

महावीर—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य दृष्टि में एक और नान्त है, क्षेत्र दृष्टि में असंख्य कोटकोटि योजन आयाम विषयमन्त्र वाला है। इसकी परिधि असंख्य कोटकोटि योजन है। काल की दृष्टि में किसी दिन नहीं होता है, ऐसा नहीं। किसी दिन नहीं था—ऐसा नहीं। किसी दिन नहीं रहेगा—ऐसा भी नहीं। यह बीना कल्पों में रहेगा, यह ध्रुव, माशवत, नियत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। भाव दृष्टि में यह अनन्त वर्ष, गंध, रस, मार्शपर्यय रूप है।

स्कन्दक ! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा में यह लोक नान्त है, काल और भाव की अपेक्षा में अनन्त है, इसीलिए लोक नान्त भी है और अनन्त भा है।

और के समस्त में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा में ही नमशा प्राप्त। द्रव्य की अपेक्षा में जीव एक और नान्त है। जीव की अपेक्षा में यह असंख्य प्रदेवी है और नान्त है। काल की अपेक्षा में यह अनन्त में वा, संभव में ही और भविष्य में रहेगा। अतः नित्य है, उसका कभी भी अन्त नहीं है। भाव की अपेक्षा में यह अनन्त भावपर्यय रूप है, अक्षय मार्शपर्यय रूप है और अनन्त गुरु-बुध परिवर्त्य है। इसका अन्त नहीं है। इस प्रकार स्कन्दक ! द्रव्य व क्षेत्र की अपेक्षा में जीव एक और नान्त भी है और अनन्त भा है।

इसी प्रकार मोक्ष भी नान्त और अनन्त है। द्रव्य की दृष्टि में माशवत और नान्त है, क्षेत्र की दृष्टि में असंख्य कोटकोटि योजन आयाम विषयमन्त्र वाला है। काल की दृष्टि में यह नहीं रहा कि नान्त है कि किसी दिन भाव नान्त नान्त को नहीं है और नहीं रहेगा। भाव की दृष्टि में यह अनन्त रहित है। इस तरह द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा में लोक नान्त और अनन्त भी है और अनन्त भा है।

स्कन्दक ! इसी तरह सिद्ध के सम्बन्ध में भी तुम्हें समझना चाहिए । द्रव्य की दृष्टि से सिद्ध एक है और अन्त-युक्त है । क्षेत्र की दृष्टि से सिद्ध असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होने पर भी अन्त-युक्त है । काल की दृष्टि से सिद्ध की आदि तो है पर अन्त नहीं । भाव की दृष्टि से ज्ञान-दर्शन पर्यवरूप है और उसका अन्त नहीं ।

मरण के सम्बन्ध में भी तुम्हारे अन्तर्मानस में विकल्प है कि किस मरण से संसार बढ़ता है तथा किस मरण से संसार घटता है । मरण के दो प्रकार हैं—वाल-मरण और पण्डित-मरण ! वाल-मरण के वारह प्रकार हैं तथा पण्डित-मरण के पादपोषण और भक्त प्रत्याख्यान ये दो प्रकार हैं एवं अवान्तर भेद भी अनेक हैं । पण्डित-मरण से संसार घटता है और वाल-मरण से संसार बढ़ता है ।

इस प्रकार मभी प्रश्नों के उत्तर सुनकर स्कन्दक परिव्राजक आल्हादित हुआ, उसने दीक्षित होने की भावना व्यक्त की । प्रभु ने उसे जैनेश्वरी दीक्षा दी और ज्ञान-ध्यान की साधना से स्कन्दक परिव्राजक कर्मों को नष्ट कर मुक्त हुआ ।

प्रस्तुत कथानक से यह ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के समय इस प्रकार के प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे । अनेक परिव्राजक, संन्यासी और श्रमण इन प्रश्नों पर चिन्तन-मनन करते किन्तु सही समाधान के अभाव में इधर-उधर मुर्धन्य मनीषियों से व धर्म-प्रवर्तकों से समाधान पाने के लिए घूमते रहते थे । तथागत बुद्ध के पास इस प्रकार के प्रश्न लेकर कोई जाता तो बुद्ध अब्याकृत कह कर उन्हें टालने का प्रयास करते थे । किन्तु भगवान् महावीर ऐसे प्रश्नों पर कभी भी मौन नहीं होते, वे उसका सटीक उत्तर देते जिससे साधक यथार्थ सत्यतथ्य को जानकर साधना के पथ पर बढ़ जाता ।

यहाँ एक प्रश्न चिन्तनीय है—स्कन्दक परिव्राजक वैदिक परम्परा का अनुयायी था फिर उसने धर्म-परिवर्तन क्यों किया ? उत्तर में निवेदन है—यह जाति-परिवर्तन नहीं किन्तु विचार-परिवर्तन है । भारतीय जाति में विचार-परिवर्तन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी । स्कन्दक, अम्बड आदि अनेक परिव्राजक जो प्रभु महावीर के पास प्रव्रजित हुए थे यह परिवर्तन स्वयं के विचार एवं रुचि के अनुसार हुआ था । सम्भव है इसी तरह जैन, बौद्ध और आजीवक भी वैदिक धर्म में दीक्षित हुए हों । यह न तो जाति-परिवर्तन था और न राष्ट्रीय चेतना में ही परिवर्तन था । यह कार्य विचार-परिवर्तन एक ही सीमित था । इसीलिए सभी धर्म वाले इस परिवर्तन को विना रोकटोक के स्वीकार करते थे । आज जो धर्म-परिवर्तन का दौर द्रुत गति से बढ़ रहा है । वह विचार-परिवर्तन नहीं किन्तु जाति-परिवर्तन है और अर्थतन्त्र पर आधृत है । जिससे पारस्परिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है ।

पुद्गल परिव्राजक :

एक बार भगवान् महावीर आलभिका नगरी के शंखवन उद्यान में पधारे । शंखवन उद्यान के पास 'पुद्गल परिव्राजक' रहता था । उसे विभंगज्ञान हुआ जिससे वह पांचवें ब्रह्म देवलोक में रहे हुए देवों की स्थिति जानने लगा 'मुझे अतिशय ज्ञान उत्पन्न हुआ है ।' देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ग तथा उत्कृष्ट दश सागरोपम की है । उसके आगे देव और देवलोक नहीं है । सारे नगर में यह चर्चा फैल गई । भगवान् ने कहा—पुद्गल परिव्राजक का कथन असत्य है । मैं कहता हूँ—देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ग की है एवं उत्कृष्टतम स्थिति तैतीम सागरोपम की है । पुद्गल परिव्राजक ने आलभिका नगरी के निवासियों से यह बात सुनी । उसे अपने ज्ञान पर संशय हुआ जिससे उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया । वह अपने धर्मोपकरण लेकर भगवान् महावीर के पास आया । महावीर ने शंकाओं का निवारण किया और समाधान होने पर वह श्रमण भगवान् महावीर के शासन में प्रव्रजित हुआ तथा कर्मों का अन्त कर सिद्धि प्राप्त की ।

धर्मकथानुयोग में 'मोगल परिव्राजक' शब्द दिया है । पं० ब्रह्मरक्षस जी दोगी ने भी 'मोगल' शब्द का ही प्रयोग

१. तथागत बुद्ध ने जिन प्रश्नों को अब्याकृत कहा, वे वे हैं—

१. क्या लोक शाश्वत है ?
२. क्या लोक अनन्त है ?
३. क्या लोक अगम्य है ?
४. क्या लोक अन्तमान है ?
५. क्या मरने के बाद तथागत नहीं होते ?
६. क्या मरने के बाद तथागत होते भी हैं और नहीं भी होते ?
७. क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं और न नहीं होते ?

किया है और 'पोगान' को उन्होंने पाठान्तर में दिया है। जबकि नैनाना संस्करण, जैन विजयभारती-नाट्य संस्करण द्वय में 'पोगान परिध्वायग' शब्द को ही प्रमुखता दी है।

शिव राजर्षि :

हस्तिनापुर नगर में 'शिव' नामक राजा था और उनकी 'धारिणी' पटरानी थी। रात्रि के तृतीय प्रहर में उभे यह अध्ववनाय उत्पन्न हुआ कि मेरा पुत्र बड़ा हो गया है, मैं उसे राज्य का कार्यभार सौंप कर 'दिशाप्रोक्षक' प्रव्रज्या ग्रहण करूँ। तदनुसार उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और यह अभिग्रह ग्रहण किया—यावज्जीवन निरन्तर वेने-बेने की तपस्या द्वारा दिक भक्त्या तप कर्म से दोनों हाथ ऊँचे रखकर मुझे रहना कल्पता है। इन प्रकार उग्र अभिग्रह धारण कर प्रथम वेने की तपस्या के पारणे के दिन 'शिव राजर्षि' आतापना भूमि से नीचे उतरता है तथा बल्कल के वस्त्र धारण कर बांस की छबड़ी और चाबड़ को लेकर पहले पूर्व दिशा के सोम महाराजा से आज्ञा लेता है और पूर्व दिशा में रहे हुए कन्द, मूल, फल, छाल, पत्र, पुष्प आदि वनस्पति ग्रहण करता है। पुनः कावड़ नीचे रखकर उसने वेदिका का परिमार्जन किया और लीप कर उसे शुद्ध किया। फिर डाभ और कल्पना हाथ में लेकर गंगा नदी पर आया, उसमें डुबकी लगाई फिर झीपड़ी में आकर डाभ, कुण और बानुका में वेदिका का निर्माण किया। अरणी की लकड़ी को घिस कर अग्नि प्रज्वलित की, अग्नि के दाहिनी ओर सात वस्तुओं को रखा। मकथा (उपकरण विशेष) कर्मण दीप, शय्या के उपकरण, कर्मडल, दण्ड और स्वयं का शरीर। मधु, घृत, चावल द्वारा अग्नि में होम कर यैश्वदेव की अर्चना की। अतिथि की पूजा करके आहार ग्रहण किया। दूसरी वार इसी तरह दक्षिण, पश्चिम और उत्तर सभी लोकपालों की आज्ञा लेकर वह पारणा करता। दिकचक्रब्रह्म तप, आतापना, प्रकृति की भद्रता आदि से शिव राजर्षि को विभंगज्ञान हुआ जिनमें यह मात द्वीप और मान समुद्र को देखने लगे। उन्होंने यह उदघोषणा की—लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं।

भगवान् महावीर हस्तिनापुर नगरी के उद्यान में पधारे। इन्द्रभूति गीतम ने शिव राजर्षि की अतिशय ज्ञान की खर्चा सुनी, उन्होंने भगवान् महावीर से निवेदन किया—भगवन् ! सत्य क्या है? प्रभु ने स्पष्ट शब्दों में कहा—शिव राजर्षि का कर्मण मिथ्या है। जम्बूद्वीप आदि सभी वृत्ताकार हैं। विस्तार में एक दूसरे से दुगुने हैं तथा अनख्यात द्वीप और अनख्यात समुद्र हैं। शिव राजर्षि ने भगवान् महावीर की वह बात सुनी, तो उसे अपने ज्ञान के प्रति संशय पैदा हुआ। वह भगवन् के पास पहुँच कर, मही समाधान पाकर प्रबुद्ध हुआ, उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर अंगों का अध्ययन किया। कर्मों को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुआ।

स्कन्दक परिव्राजक, पृद्गल परिव्राजक तथा शिव राजर्षि ये तीनों वैदिक परम्परा के परिव्राजक श्रमण परम्परा को प्रारम्भ करते हैं और साथ ही उन युग के ज्येष्ठत प्रश्न, जो जन-मानस में घूम रहे थे और मही समाधान नहीं होने से जन-मानस विभ्रम भगा हुआ था, उन प्रश्नों का तथैव, तथैवदर्शी भगवान् महावीर स्पष्ट रूप से समाधान करते हैं। कथा के माध्यम से शर्मोन्मत्त विचित्र को प्रस्तुत किया गया है। यही इन तीनों कथाओं की विशेषता है।

उदायन राजा :

नगर में आये हैं, अतः आपको सचेत हो जाना चाहिए, क्रुद्ध होकर राजा केशी ने यह उद्घोषणा करवा दी—मुनि को रहने के लिए स्थान न दें। राजर्षि को नगर में कहीं भी स्थान नहीं मिला। अन्त में एक कुम्भकार के वहाँ पर उन्होंने विश्राम लिया। राजा केशी ने राजर्षि को मरवाने के लिए आहार में जहर मिला दिया पर महारानी प्रभावती, जो देवी बनी हुई थी, उसने उनको उबार लिया। देवी की अनुपस्थिति में विष-मिश्रित आहार राजर्षि के पात्र में आ गया। उन्होंने अनासक्त भाव से उस आहार को ग्रहण किया, जिससे शरीर में विष फैल गया। राजर्षि ने अनशन किया, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति की।

राजर्षि के मोक्ष-गमन से देवी तारिकों और राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई। उसने धूलि की वर्षा की, सारे नगर को धूल से आच्छादित कर दिया। केवल कुम्भकार बचा क्योंकि वह राजर्षि का शय्यातर था। देवी कुम्भकार को सितपल्ली ले गई और उस स्थान का नाम 'कुम्भकारपक्खेव' रख गया।

बौद्ध साहित्य में उदायन :

बौद्ध साहित्य अवदान कल्पलता व दिव्यावदान में भी राजा उदायन का वर्णन है। चूणि साहित्य में उदायन का नाम 'उद्रायण' प्राप्त होता है।^४ वैसे ही अवदान कल्पलता में 'उद्रायण' और दिव्यावदान में 'उद्रायण' नाम प्राप्त होते हैं। दोनों ही परम्परा उसे सिंधु सौवीर देश का राजा मानती हैं पर राजधानी के नाम में अन्तर हैं। जैन साहित्य में राजधानी का नाम 'वीतभय' है तो बौद्ध साहित्य में उसका नाम 'रोहक' दिया है। दोनों ही परम्परा के अनुसार उसकी महारानी स्वर्ग से आकर उसे प्रतिबुद्ध करती है।

राजा उदायन का भगवान् महावीर 'तथो बुद्धे के सम्पर्क' में आने का वर्णन पृथक्-पृथक् रूप से मिलता है। भगवान् महावीर स्वयं सिंधु सौवीर देश में पधारते हैं और राजा को दीक्षा प्रदान करते हैं; जबकि तिथामते बुद्ध उसे मगध में आने पर दीक्षा देते हैं। दोनों ही परम्पराओं के अनुसार मुनि उदायन जब अपनी राजधानी में जाते हैं, वहाँ पर दुष्ट अमात्य राजा को भ्रमिस्त कर देते हैं और राजर्षि का वर्ध करवा देते हैं। राजा दीक्षा लेने के पूर्व अपना राज्य जैन दृष्टि से अपने भ्रातृ केशी को देता है तो बौद्ध दृष्टि से अपने पुत्र शिखण्डी को राज्य देता है। दोनों ही परम्पराओं की दृष्टि से राजा उदायन अर्हत्त्व बनकर निर्वाण प्राप्त करते हैं और देवी-प्रकोप से नगर धूलिसात् हो जाता है।^५

उदायन की कथा भगवती में विस्तार से प्राप्त है।^६ उत्तराध्ययन में भी उसका संक्षेप में उल्लेख हुआ है।^७ चूणि व अन्य टीका साहित्य में यह कथा आई है।^८ भगवती की दृष्टि से उदायन का पुत्र अभीचिकुमार निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक था। पिता के द्वारा राज्य न मिलने से उसके मन में विद्रोह की भावना पैदा हुई और वह असुरयोनि में उत्पन्न हुआ।^९

बौद्ध साहित्य में प्रस्तुत कथानक जैन कथानक से वाद में आया है। क्योंकि उद्रायणावदान प्रकरण पाली साहित्य में नहीं है और न हीनयान परम्परा के अन्य कथा साहित्य में ही है। अवदान कल्पलता और दिव्यावदान ये दोनों महायान परम्परा के ग्रन्थ हैं। ये संस्कृत में हैं और उत्तरकालीन हैं।^{१०} एक व्यक्ति दोनों ही परम्परा में दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करे, यह सम्भव नहीं है। सम्भव है जैन साहित्य में आई हुई प्रस्तुत कथा को बौद्ध साहित्यकारों ने अपनाया हो। क्योंकि राजा विम्बिसार और उदायन का मैत्री-सम्बन्ध भी उसी तरह से कराया गया है जैसे जैन परम्परा में अभयकुमार और आद्रककुमार का।^{११} हमारी दृष्टि से राजर्षि

१. (क) सिणवल्लीए कुम्भकारपक्खेव नाम पट्टणं तस्स नामेणं जातं ।

(ख) सो य अवहरितो अणवराहि ति काउं सिणवल्लीए । कुम्भकारवेवखो नाम पट्टणं तस्स नामेणं कयं ॥

—आवश्यकचूणि

(ग) शय्यातरं मुनेस्तस्य कुम्भकारं निरागमम् । सा सुरो पिनपल्यां प्राग् निन्ये हत्वा ततः पुरम् ॥

तस्य नाम्ना कुम्भकार कृतमित्याह्वयं पुरम् । तत्र सा विदधे कि वा दिव्यं जन्तं गां चरः ॥

—उत्तरा० भावविजय की टीका, पत्र ३५७-२.

२. अवदान ४०

३. दिव्यावदान ३७.

४. उद्रायणं राया, तावसो भतो.

—आवश्यकचूणि, पूर्वार्ध, पत्र ३६६.

५. बौद्ध साहित्य दिव्यावदान, उद्रायणावदान ३७

६. भगवती शतक १३, उद्दे० ६

७. सौवीररायवत्सभो चइत्ताणं मुणी चरे । उदायणो पक्खइओ, पत्तो गइनणुत्तरं ॥

—उत्तरा० १५१४

८. आवश्यकचूणि पूर्वार्ध

९. भगवती शतक १३, उद्दे० ६

१०. दिव्यावदान—सम्पाद्रक पी० एल० वैद्य-प्रस्तावना ।

११. देखिए आद्रकुमार का प्रसंग ।

उदायन जैन परम्परा का ही परम उपासक रहा। सम्भवतः उसके तेजस्वी व्यवितत्व से प्रभावित होकर बाद में बौद्ध साहित्यकारों ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हो।

जिनपालित और जिनरक्षित—

जिनपालित और जिनरक्षित माकंदी सार्थवाह के पुत्र थे और चम्पा के निवासी थे। उन्होंने अनेक बार समुद्र-यात्रा की। जब भी उनके अन्तर्मानस में यात्रा का विचार आता, वे चल पड़ते। उनकी यात्रा का उद्देश्य व्यापार था। निरन्तर मफलता प्राप्त होने से उनका साहस बढ़ गया। जब वे बारहवीं बार समुद्र यात्रा के लिए सन्नद्ध हुए तो माता-पिता ने इन्कार करते हुए कहा—हमारे पास इतना वैभव है कि सात पीढ़ी तक भी वह समाप्त नहीं हो सकता। अतः बारहवीं यात्रा स्थगित कर दो। जवानी के जोश में पुत्र नहीं माने और यात्रा के लिए चल पड़े। नौकाएँ समुद्र में आगे बढ़ रही थीं। आकाश में मेघों की भयंकर गर्जना होने लगी, विजलियाँ कौंधने लगीं तथा भयंकर आँधी ने रौद्र रूप धारण किया। उन दोनों का यान उस आँधी में फँस कर छिन्न-भिन्न हो गया। माता-पिता की बात न मान कर अपने हठ पर कायम रहने का दुष्परिणाम वे भोग चुके थे। एक टूटे हुए पाटिया के सहारे वे समुद्र में तिर रहे थे। जिस प्रदेश में वे पहुँचे वह रत्नद्वीप था। रत्नदेवी उनके पास पहुँची और उनसे भोग की याचना की। कोई विकल्प नहीं होने से वे उसकी इच्छा तृप्त करने लगे। एक बार रत्नदेवा ने जाते हुए जिनपाल और जिनरक्षित को तीन दिशाओं के वनखण्डों में जाने की अनुमति दी किन्तु दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने का निषेध किया। देवी के मना करने पर भी वे उधर ही चल पड़े। उन्होंने वहाँ एक व्यक्ति को शूली पर छटपटाते हुए देखा। पूछने पर उसने अपनी कथन कहानी कही—देवी के कारण ही मेरी यह स्थिति हुई है। माकन्दीपुत्रों का हृदय काँप उठा। उस व्यक्ति ने शैलक यक्ष के पास जाने का संकेत किया। वे दोनों शैलक यक्ष के पास पहुँचे। पर उसने शर्त रखी—रत्नदेवी के प्रलोभन में तुम आ गये तो मैं तुम्हें समुद्र में गिरा दूँगा। जो प्रलोभन में नहीं आयेगा, उसे सकुशल पहुँचा दूँगा। रत्नदेवी अपने ज्ञान से जानकर वहाँ आई। जिनपालित अविचल रहा किन्तु जिनरक्षित उसके अनुराग में अनुरक्त हो गया। यक्ष ने उसे पीठ से गिरा दिया और रत्नदेवी ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिनपालित अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँच गया। इसी प्रकार जो साधक अपनी साधना से विचलित नहीं होता, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक से मिलता-जुलता कथानक बौद्ध साहित्य के 'बलाहस जातक' तथा 'दिव्यावदान' में भी है। तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों कथानकों में परम्परा के भेद से अन्तर अवश्य है पर कथानकों के मूल तत्त्व प्रायः मिलते-जुलते हैं। श्रमण भगवान महावीर के पावन उपदेश को श्रवण कर जिनपालित श्रमण धर्म का स्वीकार करता है और उत्कृष्ट तप-जप की आराधना द्वारा अपनी आत्मा का भावित करते हुए सौधर्म देवलोक में देव बनकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनता है।

कालास्यवेपि अणगार—

कालास्यवेपि अणगार भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के थे। भगवान महावीर के समय हजारों पार्श्वपितृ श्रमण विचरते थे। उसमें कालास्यवेपि पुत्र अणगार भी थे। उनके अन्तर्मानस में यह प्रश्न उद्बुद्ध हुआ कि हमारे में और भगवान महावीर के स्थविरों में क्या अन्तर है? उन्होंने सामायिक आदि के सम्बन्ध में स्थविरों से पूछा। उत्तर पाकर वे अत्यन्त संतुष्ट हुए और पार्श्वपितृ के चातुर्यमि धर्म को छोड़कर भगवान महावीर के शासन को स्वीकार किया।

उदक पेढाल —

राजगृही का उपनगर नालन्दा था। वहाँ 'लेव' नामक श्रमणापासक था। उसकी 'जेपद्रविका' उदकशाला थी। प्रोफेसर डॉ० हर्मन जैकोबी^१ ने तथा गोपालदास पटेल ने^२ उदकशाला का अर्थ 'स्नान गृह' किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रपा' (प्याज) अर्थ किया है^३। शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज ने भी यही अर्थ किया।^४

गौतम गणधर एक बार उदकशाला में ठहरे हुए थे। पार्श्वपितृ मत्तार्य गोत्रीय पेढालपुत्र उदक नामक निग्रन्थ भी

१. सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, वात्स्युम ४५.

—प्रो० डा० हर्मन जैकोबी

२. 'महावीरानो समयमधर्म' (गुजराती) पृष्ठ १२७.

—गोपालदास पटेल

३. अभिधान चिन्तामणि कोष, भूमिकाण्ड, श्लोक ३७.

—आचार्य हेमचन्द्र

४. अर्धमागधी कोष, भाग २, पृष्ठ २१२.

—शतावधानी रत्नचन्द्रजी म०

धन्य सार्धवाह—

धन्य सार्धवाह की पुत्री सुषमा थी। उसकी देखभाल के लिए 'चिलात' दासी-पुत्र को नियुक्त किया गया। वह अत्यन्त उच्छृंखल था। श्रेष्ठी ने उसे निकाल दिया। वह व्यसनों का दास बन गया और तस्कराधिपति भी। बाल्यकाल से ही वह सुषमा को प्यार करता था, अतः उसने सुषमा का अपहरण किया। श्रेष्ठी और उसके पुत्रों ने उसका पीछा किया। अटवी में चिलात के द्वारा मारी गई सुषमा की मृत देह उन्हें प्राप्त हुई। वे कई दिनों से भूखे और प्यासे थे। अन्य कोई भी खाद्य पदार्थ उपलब्ध नहीं था, अतः उन्होंने उस मृत देह का भक्षण कर अपने प्राणों की रक्षा की। उन्हें उस आहार के प्रति किंचित् मात्र भी आसक्ति नहीं थी। वैसे ही श्रमण और श्रमणियाँ संयम निर्वाह के लिए आहार ग्रहण करते हैं। आहार का लक्ष्य संयम-साधना है।

बौद्ध त्रिपिटक साहित्य में भी इसी तरह मृत-कन्या का मांस-भक्षण कर जीवित रहने का उल्लेख है।^१

विमुद्धिमग्न और शिक्षा समुच्चय में भी बौद्ध श्रमणों को इस तरह आहार लेना चाहिए, यह बताया गया है। मनुस्मृति, आपस्तम्बधर्मसूत्र^२ वासिष्ठ^३ बोधायन धर्मसूत्र^४ आदि में संन्यासियों की आहार सम्बन्धी चर्चा भी इसी प्रकार मिलती जुलती है।

प्रस्तुत कथानक से यह भी परिज्ञात होता है कि महावीर युग में तस्करों के द्वारा ऐसी मंत्रशक्ति का प्रयोग किया जाता था, जिससे संगीन से संगीन ताले भी मंत्र शक्ति से खुल जाते थे।^५ इससे यह स्पष्ट है कि उस युग में ताले आदि का उपयोग धन आदि की रक्षा के लिए होता था। विदेशी यात्री 'मेगस्थनीज', ह्यूएनत्सांग अथवा युवानच्चाङ [६००—६४ ई०], फाहियान प्रभृति यात्रियों ने अपने यात्रा-विवरणों में लिखा है—भारत में कोई भी व्यक्ति ताले आदि का उपयोग नहीं करता था, पर आगम साहित्य में ताले आदि का जो वर्णन मिलता है, वह अनुसन्धित्सुओं के लिए अन्वेषणीय है।

कालोदायी अणगार—

राजगृही के गुणशीलक उद्यान के सन्निकट अन्यतीर्थी रहते थे। कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नरमोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ति गृहपति आदि। वे परस्पर वार्तालाप करने लगे। भगवान् महावीर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन पाँचों द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं और इन अस्तिकायों में से पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर शेष चार को अरूपी कहते हैं। उनका यह कथन किस प्रकार माना जा सकता है? उन्होंने गणधर गौतम को सन्निकट से जाते हुए देखा और गौतम से जिज्ञासा प्रस्तुत की। गौतम ने कहा—हम अस्तिकाय को अस्तिकाय कहते हैं और नास्तिकाय को नास्तिकाय। गौतम ने भगवान् महावीर से कहा। उधर कालोदायी प्रभु के समवसरण में पहुँचा। भगवान् ने कहा—तुझे अस्तिकाय सम्बन्धी शंका है। मैं धर्मास्तिकाय आदि की प्ररूपण करता हूँ।

कालोदायी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय इन अरूपी अजीव कार्यों पर क्या कोई बैठना, सोना, खड़े रहना आदि क्रियायें कर सकता है?

भगवान् ने स्पष्टीकरण किया—केवल पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीव है। उन पर बैठने, सोने आदि की क्रियायें की जा सकती हैं, शेष पर नहीं। पुनः कालोदायी ने जिज्ञासा की—रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय में क्या जीवों को अशुभ फल देने वाले पाप कर्म लगते हैं? भगवान् ने कहा—जीव ही पाप कर्म से युक्त होते हैं। समाधान पाकर कालोदायी ने स्कन्दक की तरह प्रभु के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

प्रस्तुत कथा में जैनदर्शन की महत्त्वपूर्ण चर्चा है। जीवद्रव्य अरूपी है। वह चेतनामय है और जिनमें चेतना गुण का अभाव है, वह अजीव है। अजीव द्रव्य रूपी और अरूपी दोनों प्रकार का है। पुद्गल रूपी है, शेष चार द्रव्य अरूपी। रूपी के लिए मूर्त और अरूपी के लिए अमूर्त शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

१. संयुक्तनिकाय २, पृष्ठ ६७।

२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र २.४.६.१३।

३. वासिष्ठ ६ : २०.२१।

४. बोधायन धर्मसूत्र २.७.३१.३२।

५. 'तालुन्घाडणिविज्जं'—ज्ञातामूत्र, प्रथम श्रुत०, अध्ययन १८।

जैनदर्शन ने छह द्रव्यों में जीव और पुद्गल को गतिशील एवं स्थितिशील दोनों माना है। धर्मास्तिकाय गति में सहायक है तो अधर्मास्तिकाय स्थिति में। जैनदर्शन के अतिरिक्त भारत के अन्य किसी भी दर्शन में इन शब्दों का प्रयोग एवं चिन्तन नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों में सर्वप्रथम 'न्यूटन' ने गतितत्त्व [Medium of Motion] को माना है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'अल्बर्ट आइन्स्टीन' ने गति तत्व की स्थापना करते हुए कहा—लोक परिमित है तो अलोक भी परिमित है। लोक परिमित होने का मुख्य कारण यह है कि शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस शक्ति का—द्रव्य का अभाव है, जो गति में सहायक है। वैज्ञानिकों ने जिसे 'ईथर'—गतितत्त्व कहा है, उसे ही जैन साहित्य में धर्मद्रव्य कहा है।^१

यहाँ पर गति से तात्पर्य है—एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की क्रिया। धर्मद्रव्य इस प्रकार की क्रिया में सहायक होता है। जैसे—मछली स्वयं तैरती है तथापि उसकी क्रिया बिना पानी के नहीं हो सकती। पानी उसके तैरने में सहायक है। जहाँ मछली तैरना चाहती है तब उसे पानी की सहायता लेनी पड़ती है। यदि वह तैरना न चाहे तो पानी बल-प्रयोग नहीं करता। वैसे ही जीव और पुद्गल जब गति करते हैं तब धर्मद्रव्य सहायक होता है 'ईथर' आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शोध है। 'ईथर' के सम्बन्ध में भौतिक विज्ञान वेत्ता डा० 'ए० एस० एडिंग्टन'^३ ने लिखा है—

१. (क) उत्तराध्ययन ३६/४। (ख) समवायांग १४९।

2. I am quite sure that you have heard of Ether before now, but please do not confuse it with the liquid Ether used by surgeons, to render a patient unconscious for an operation. If you should ask me just what the Ether is, that is, the Ether that conveys electromagnetic-waves. I would answer that I cannot accurately describe it. Neither can anyone else. The best that anyone could do would be to say that Ether is invisible body and that through it electromagnetic-waves can be propagated.

But let us see from a practical standpoint the nature of the thing called "Ether". We are all quite familiar with the existence of solids, liquids and gases. Now suppose that inside a glass-vessel there are no solids, liquids or gases : that all of these things have been removed including the air as well.

If I were to ask you to describe the condition that now exist within the glass-vessel, you would promptly reply that nothing exists within it, that a vacuum has been created. But I shall have to correct you, and explain that within this vessel there does exist 'Ether', nothing else.

So we may say that 'Ether' is a 'something' that is not a solid, nor liquid, nor gaseous, nor any thing else which can be observed by us physically. Therefore, we may say that an absolute 'vacuum' or a void does not exist anywhere, for we know that an absolute vacuum can not be created for Ether can not be removed.

We get our knowledge of Ether from experiments : by observing results and deducing facts. For example, if within the glass-vessel, mentioned above, we place a bell and cause it to ring, no sound of any kind reaches our ears. Therefore, we deduce that in the absence of air, sound does not exist, and thus, that sound must be due to vibration in the air.

Now let us place a radio transmitter inside the enclosure that is void of air. We find that radio signals are sent out exactly the same as when the transmitter was exposed to the air. So we are right in deducing that electro-magnetic waves or Radio waves, do not depend on air for their propagation that they are propagated through or by means of "something" which remained inside the glass enclosure after the air had been exhausted. This something has been named "Ether."

We believe that Ether exists throughout all space of the universe, in the most remote region of the stars, and at the same time within the earth, and in the seemingly impossible small space which exists between the atoms of all matter. That is to say, Ether is everywhere ; and that electromagnetic wave can be propagated everywhere.

—Hollywood, R. and T. : Instruction Lesson No. 2. 'What is Ether ?'

3 This does not mean that the Ether is abolished. We need an Ether.....in the last century it was widely believed that Ether was a kind of matter having properties such as mass, rigidity, motion like ordinary matter. It would be difficult to say when this view died out.....Now-a-days it is

“आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि ईथर भौतिक द्रव्य नहीं है, भौतिक की अपेक्षा उसकी प्रकृति भिन्न है, भूत में प्राप्त पिण्डत्व और घनत्व गुणों का ईथर में अभाव होगा, परन्तु उसके अपने नये और निश्चयात्मक गुण होंगे..... ईथर का अभौतिक सागर।”

अलवर्ट आइन्सटीन के अपेक्षावाद के सिद्धान्तानुसार 'ईथर अभौतिक, अपरिमाणिक, अविभाज्य, अखण्ड, आकाश के समान व्यापक, अरूप, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप में स्थिर है'।^१

अधर्मास्तिकाय अवस्थिति में सहायक है। कितने ही आधुनिक चिन्तक अधर्म द्रव्य की तुलना या समानता गुरुत्वाकर्षण और फील्ड से करते हैं। किन्तु डॉक्टर मोहनलाल जी मेहता का मन्व्य है कि गुरुत्वाकर्षण [Gravitation] और फील्ड [Field] से अधर्म पृथक् और एक स्वतंत्र तत्व है।

एक बार कालोदायी अणुगार ने भगवान महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! जीव अशुभ फल वाले कर्मों को स्वयं किस प्रकार करता है ?

महावीर ने समाधान दिया—जैसे कोई मानव स्निग्ध, सुगन्धित, विपमिश्रित मादक पदार्थ का भोजन करता है, उसे वह भोजन अत्यन्त प्रिय लगता है, उस समय उससे होने वाली हानि को वह विस्मृत हो जाता है। किन्तु उस भोजन का खाने वाले के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि पापों का सेवन करते समय वे अत्यन्त मधुर लगते हैं, पर उससे जो पाप कर्म बँधता है, वह बड़ा अनिष्टकारक होता है तथा वह फल पाप कृत्य करने वालों को ही भोगना पड़ता है।

भगवन् ! जीव शुभ कर्मों को किस प्रकार करता है ?—कालोदायी ने पूछा।

महावीर—जैसे कोई मानव औषधिमिश्रित भोजन करता है। वह भोजन तीखा या कटुक होने पर भी बल और वीर्य वर्धक होता है, इसलिए लोग उसे खाते हैं। इसी तरह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अलोभ, आदि शुभ कर्मों की प्रवृत्तियाँ मन को मधुर नहीं लगतीं, पर उनका परिणाम अत्यन्त सुखकर होता है।

कालोदायी ने पुनः जिज्ञासा व्यक्त की—भगवन् ! दो व्यक्ति हैं, उन दोनों के पास समान उपकरण हैं। एक अग्नि को प्रज्वलित करता है और दूसरा उसे बुझाता है। कृपया फरमाइये कि अग्नि प्रज्वलित करने वाला अधिक पाप का भागी होता है, या अग्नि बुझाने वाला ?

भगवान् ने कहा—जो अग्नि को प्रज्वलित करता है, वह अधिक आरम्भ और कर्मबन्धन करता है, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति और त्रस की हिंसा वह अधिक करता है, और अग्नि की हिंसा कम करता है। जो अग्नि को बुझाता है, वह अग्नि का आरम्भ अधिक करता है और पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति और त्रस की हिंसा कम करता है। अग्नि से होने वाली हिंसा को वह घटाता है, इसलिए आग जलाने वाला आरम्भ अधिक करता है और आग बुझाने वाला कम।

कालोदायी—भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल प्रकाश या उद्योत करते हैं, वे किस प्रकार प्रकाशित होते हैं ?

महावीर—अचित्त पुद्गल भी प्रकाश करते हैं। जब कोई तेजोलेश्याधारी मुनि तेजोलेश्या छोड़ता है, तब वे पुद्गल दूर-दूर तक गिरते हैं। वे दूर और समीप प्रकाश फैलाते हैं। पुद्गलों के अचित्त होते हुए भी प्रयोक्ता हिंसा करने वाला और प्रयोग हिंसाजनक होता है।

भगवान् के उत्तरों से कालोदायी अणुगार का समाधान हो गया। उसने विविध तप की आराधना की। जीवन की सांध्य वेला में अनशन कर समाधिपूर्वक मोक्ष प्राप्त किया।

agreed that Ether is not a kind of matter, being non-material its properties are signeries [quite unique] characters such as mass and rigidity which we meet within matter will naturally be absent in Ether but the Ether will have new and definite characters of its own.....non-material ocean of Ether.

—The Nature of the Physical World, p. 31.

1. Thus it is proved that Science and Jain Physics agree absolutely so far as they call Dharm [Ether] non-material, non-atomic, non-discrete, continuous, co-extensive with space, indivisible and as a necessary medium for motion and one which does not itself move.

प्रस्तुत कथानक में अनेक तलस्पर्शी दार्शनिक प्रश्नों का समाधान किया गया है। ये समाधान भगवान् महावीर के अतिशय ज्ञान के द्योतक हैं। सामान्य मानव इस प्रकार के उत्तर नहीं दे सकता।

पुण्डरीक और कण्डरीक—

पुण्डरीक विजय में महापद्म सम्राट था। वह श्रमण बना। उसका ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरीक राज्य का संचालन करने लगा और कण्डरीक युवराज बना। महापद्म सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। कुछ समय के पश्चात् दूसरे स्थविर का वहाँ आगमन हुआ। कण्डरीक को वैराग्य हुआ। राजा पुण्डरीक ने उसे बहुत कुछ समझाया पर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। कुछ समय के बाद कण्डरीक मुनि दाह-ज्वर से ग्रसित हो गये। महाराजा पुण्डरीक ने औषधोपचार कराया। स्वस्थ होने पर भी कण्डरीक मुनि वहीं जमे रहे। राजा ने नम्र निवेदन किया—श्रमण मर्यादा की दृष्टि से आपका विहार करना उचित है। मुनि ने विहार किया, किन्तु भोगों के प्रति आसक्त होने से वे पुनः कुछ समय के पश्चात् वहाँ आ गये। पुण्डरीक ने ममज्ञाने का प्रयत्न किया। जब वे न समझे तो उन्हें राज्य देकर स्वयं ने श्रमण-वेष धारण कर लिया। तीन दिन की माधना एवं आराधना से पुण्डरीक मुनि तैतीन सागर की स्थिति का उपभोग करने वाला देव बना और कण्डरीक भोगों में आसक्त होकर तीन दिन की आयु भोग कर तैतीन सागर की स्थिति वाला सातवीं नरक का मेहमान बना। जो साधक वर्षों तक उत्कृष्ट साधना कर बाद में साधना से च्युत हो जाते हैं उनकी दुर्गति होती है जो जीवन की सांध्य बेला में भी उत्कृष्ट साधना करता है, वह सद्गति को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत कथानक में उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सर्वांग चित्रण है।

स्थविरावली—

श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् अनेक स्थविर भगवन्तों ने शासन की सेवा की। उन स्थविर भगवन्तों का उल्लेख कल्पसूत्र और नन्दीसूत्र आदि में है। भगवान् महावीर के पश्चात् गणधर गौतम, आर्य सुधर्मा और जम्बू ये तीनों केवलज्ञानी हुए। प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रवाहु और स्थूलभद्र ये छह श्रुतकेवली हुए। महागिरि, सुहस्ति, गुणसुन्दर, कालकाचार्य, स्कन्दिलाचार्य, रेवतीमित्र, मंगू, धर्म, चन्द्रगुप्त, आर्यद्रज ये दशों आचार्य दश पूर्वधर थे। उसके पश्चात् धीरे-धीरे पूर्वों का ज्ञान न्यून होता चला गया। देवर्दिगणि क्षमाश्रमण एक पूर्वधर आचार्य थे। जैनधर्म में अनेक प्रतिभासम्पन्न ज्योतिर्धर आचार्य हुए। उसकी संक्षिप्त सूचना इसमें दी गई है। इन ज्योतिर्धर आचार्यों के सम्बन्ध में विविध ग्रन्थों में विशिष्ट जानकारी है। पर विस्तार भय से हम उस सम्बन्ध में न लिखकर तत् सम्बन्धी मूल ग्रन्थों को देखने के लिए प्रबुद्ध पाठकों को निवेदन करते हैं।

इस प्रकार धर्मकथानुयोग के सम्बन्ध में तीर्थकरों के शासन में श्रमणों की कथाएँ पूर्ण होती हैं। तृतीय स्कन्ध में तीर्थकरों के शासन में होने वाली श्रमणियों की कथाएँ दी गई हैं।

द्रौपदी—

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन में द्रौपदी श्रमणी का उल्लेख है। द्रौपदी के पूर्वभवों का इसमें वर्णन है। द्रौपदी कई भव पूर्व नागश्री ब्राह्मणी थी। उसने तूम्बे का शाक बनाया, किन्तु जब उसने वह शाक चखा तो वह कटुक और विषाक्त था। उपालम्भ के भय से उसने उसे छिपाकर रख लिया। पारिवारिक जन भोजन से निवृत्त होकर चल दिये। धर्मरुचि अनगार भिक्षा के लिए आये। नागश्री मानवी के रूप में नागिन थी। उसने मुनि के पात्र में विषाक्त तूम्बे का शाक डाल दिया। मानव साधारण लाभ की इच्छा से भयंकर कुत्सित क्रूर कर्म कर बैठता है, उसका फल अत्यंत दारुण होता है। धर्मरुचि मुनि आहार लेकर गुरु के चरणों में पहुँचे। गुरुजी ने उसे चखा और वे उसे परठने का आदेश देते हैं। धर्मरुचि परठने जाते हैं। एक बूँद शाक डाल कर प्रतिक्रिया की वे प्रतीक्षा करते हैं। चीटियाँ आती हैं और प्राण गंवा बैठती हैं। मुनि का हृदय दहल उठा। उन्होंने जीवों की रक्षा के लिए वह विषाक्त शाक खाकर समाधिपूर्वक जीवन का अन्त किया। नागश्री का पाप छिपा न रह सका। उसे सर्वत्र ताड़ना-तर्जना मिली। उसके शरीर में सोलह महारोग पैदा हो गये और हाय-हाय करती हुई मरी। वह छठी नरक में पैदा हुई और अतिदीर्घकाल तक वह पुनः पुनः नरक एवं तिर्यच योनि में जन्म लेती है। सुदीर्घकाल के बाद वह सुकुमालिका नाम से श्रेष्ठी की पुत्री बनती है, पर उस समय भी पाप के फल का अन्त नहीं हुआ। उसके शरीर का स्पर्श तलवार की धार की तरह तीक्ष्ण एवं अग्नि की तरह उष्ण था। इसलिए कोई भी उससे विवाह करने को प्रस्तुत नहीं था। यहाँ तक कि भिखारी भी रात्रि में उसे छोड़ कर भाग जाता है। वह उसका अंग-स्पर्श सहन नहीं कर सका। पिता ने दान-शाला खुलवाई। वहाँ जैन आर्थिकाओं का आगमन हुआ। उसने यंत्र-तंत्र की याचना की। आर्थिकाओं ने अपना धर्म समझाया और सुकुमालिका ने साध्वी-धर्म स्वीकार किया। पर उसके अन्तर्मानस की मलिनता साफ नहीं हुई थी। अतः वह पुनः शिथिलाचारिणी हो गई और एकाकिनी रहने लगी। एक-बार एकान्त में वह

भातापना ले रही थी। उसने एक वेश्या को पाँच पुरुषों से धिरी हुई देखा। कोई उसका पैर दबा रहा था तो कोई चेंबर हुला रहा था। सुकुमालिका के मन में भोगों की लालसा पैदा हुई। उसने ऐसा संकल्प किया कि यदि मेरे तप का फल हो तो मैं भी इस प्रकार सुख भोगूँ। वह मर कर देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई और वहाँ से राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी बनी। द्रौपदी के स्वयंवर का आयोजन हुआ। श्रीकृष्ण, पाण्डव आदि सभी उस स्वयंवर में उपस्थित हुए। निदानकृत होने से उसने पाँचों पांडवों का वरण किया।

एक वार नारद हस्तिनापुर आये। द्रौपदी ने उनका सम्मान नहीं किया जिससे नारद रूष्ट हो गये। वे धातकीखण्ड के अमरकंका के अधिपति परदारालम्पट पद्मनाभ के पास पहुँचे। द्रौपदी के रू-लावण्य की अतिशय प्रशंसा की। उमने दैव की सहायता से द्रौपदी का हरण करवाया। द्रौपदी से उसने भोगों की याचना की। वह पूर्ण पतिव्रता नारी थी। पाण्डवों को लेकर कृष्ण अमरकंका पहुँचे। पद्मनाभ को युद्ध में पराजित किया और राजधानी को तहस-नहस कर द्रौपदी का उद्धार किया। जीवन की सांध्य बेला में द्रौपदी के पुत्र पाण्डुसेन को राज्य देकर पाण्डवों ने तथा द्रौपदी श्रमण-धर्म स्वीकार किया।

प्रस्तुत कथानक में जो द्रौपदी का निरूपण हुआ है, वह जैन दृष्टि से है। वैदिक महाभारत में भी द्रौपदी का निरूपण हुआ है। वैदिक परम्परा में पंच भरतारी होने का एक ही कारण दिया है कि उसने पूर्वभव में पति की कामना से तपस्या की थी। शंकर ने सर्वगुणसम्पन्न पति की प्राप्ति हो, ऐसा पाँच वार वरदान दिया था, जिससे उसे पंच भरतारी बनना पड़ा। वैदिक महाभारत की दृष्टि से द्रुपद राजा द्रौपदी की उत्पत्ति यज्ञाग्नि से करते हैं और उसकी उत्पत्ति का कारण कुरुवंश का विनाश बताया है। जैनदृष्टि से कुरुवंश के विनाश का कारण पाण्डवों के प्रति दुर्योधन की ईर्ष्या, हठ और अभिमान है। दुर्योधन कपट द्यूत में जीतने के पश्चात् द्रौपदी को निर्वस्त्र करना चाहता है, श्रीकृष्ण अपनी अलौकिक शक्ति से चीर बढ़ाते हैं, जबकि जैन परम्परा में चीर बढ़ाने का कारण सती द्रौपदी के स्वयं के शील का प्रभाव है। द्रौपदी के शील से प्रभावित होकर ही शासनदेव सहायता करता है। जैन परम्परा में द्रौपदी कुरुवंश की मर्यादा रखने वाली, व्यवहार कुशल, कुशाग्र बुद्धिशालिनी, पति-परायणा, स्वाभिमानी नारी है।

प्रस्तुत कथानक में श्रीकृष्ण के नरसिंह रूप का भी वर्णन है। नरसिंहावतार की चर्चा श्रीमद्भागवत में है, जो विष्णु के अवतार थे। पर श्रीकृष्ण ने कभी नरसिंह का रूप धारण किया हो, ऐसा प्रसंग वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में देखने में नहीं आया, पर प्रस्तुत कथानक में इसका सजीव चित्रण है।

पद्मावती आदि श्रमणियाँ—

एक वार भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे। कृष्ण महाराज भगवान् को वन्दन-नमस्कार करते गये। उपदेश सुनकर परिपद् लौट गई। कृष्ण महाराज ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—देवलोक सद्यः इस द्वारिका नगरी का विनाश कैसे होगा? भगवान् ने कहा—मदिरा, अग्नि और द्रौपयन ऋषि के कोप के कारण द्वारिका नगरी का विनाश होगा।

कृष्ण चिन्तन करने लगे—जालि, मयालि, उबयालि, पुरुषसेन, वीरसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, वृद्धनेमि, सत्यनेमि आदि राजकुमार धन्य हैं, जिन्होंने श्रमण धर्म ग्रहण किया है, पर मैं संसार का परित्याग नहीं कर पा रहा हूँ।

भगवान् ने कहा—कृष्ण ! वामुदेव निदानकृत होने से प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकते। तुम चिन्तित मत बनो। आगामी उत्सर्पिणी काल में "अमम" नामक द्वारहर्वे तीर्थकर बनोगे। श्रीकृष्ण ने नगर में उद्घोषणा करवाई कि जो भी अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेना चाहें, वे सहर्ष दीक्षित हो सकते हैं। दीक्षार्थी के जो आश्रित कुटुम्बी जन होंगे, उनकी व्यवस्था स्वयं कृष्ण करेंगे और दीक्षामहोत्सव भी कृष्ण करेंगे।

श्रीकृष्ण की प्रेरणा ने उनकी पट्टमहिषी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, मुसीमा, जाम्बवंती, नत्यभाना और रुमिणी इन आठों ने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा शाम्बकुमार की भाव्या मूलश्री एवं मूलदत्ता ने भी यक्षिणी आर्या के पास प्रव्रज्या लेकर अपने जीवन को पावन बताया।

प्रस्तुत कथानक में द्वारिका नगरी के विनाश की तथा श्रीकृष्ण के आगामी काल में तीर्थकर होने की महत्वपूर्ण सूचना है जिसका ऐतिहासिक दृष्टि ने विशेष मूल्य है।

पोटिटल कथानक—

तेतलिपुर नगर के राजा कनकरथ का अनात्य 'तेतलिपुत्र' था। वहीं पर 'सूरिकादारक' की पुत्री 'पोटिटला' थी। पोटिटला के अद्भुत रूप को देखकर तेतलिपुत्र मुग्ध हो गया। दोनों का विवाह हुआ। उनमें परस्पर अत्यन्त अनुराग था। पर

दोनों में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि तैतलिपुत्र उसके नाम से वृणा करने लगा। एक दिन जिसे पोट्टिला के विना रहा नहीं जाता था, वही आज उसके नाम को पसन्द नहीं करता। उसने पोट्टिला को भोजन निर्माण तथा अतिथियों की सेवा का भार सम्हाल दिया। एक दिन 'सुव्रता' नामक आर्या शिष्याओं के साथ तैतलिपुर में पधारीं। वे भिक्षा के लिए पोट्टिला के वहाँ पहुँचीं। उसने साध्वियों को आहारदान देने के बाद निवेदन किया कि मुझे ऐसा वशीकरण मंत्र दो, जिससे मेरा पति मेरे वश में हो जाये। साध्वियों ने कहा—हम ब्रह्मचारिणी साध्वियाँ इस प्रकार की बातें सुनना भी पसन्द नहीं करतीं। पोट्टिला ने श्राविका के व्रत ग्रहण किये। उसकी अन्तरात्मा प्रबुद्ध हो उठी। संयम ग्रहण करने के लिए उसने तैतलिपुत्र से आज्ञा मांगी। तैतलिपुत्र ने कहा—तुम संयम स्वीकार करोगी तो आगामी भव में देव बनोगी। वहाँ से आकर मुझे प्रतिबोध देना स्वीकार करो तो मैं दीक्षा लेने को अनुमति देता हूँ। वह दीक्षित हुई और देव बनी।

वचनबद्ध होने से पोट्टिल देव ने तैतलिपुत्र को प्रतिबुद्ध करने के अनेक उपाय किये, पर तैतलिपुत्र राजा द्वारा अत्यधिक सम्मानित होने से प्रतिबुद्ध नहीं हुआ। अन्त में देव ने राजा को उससे विरुद्ध किया। जब वह राजसभा में गया तो राजा ने मुँह फेर लिया और बात भी नहीं की। राजा के अभिनव व्यवहार से वह भयभीत हो उठा। वह वहाँ से घर पर आया, किन्तु परिजनों ने भी उसे आदर नहीं दिया। आत्मघात करने के लिए वह प्रस्तुत हुआ, उसने अनेक उपाय किये किन्तु कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ। अन्त में पोट्टिल देव ने प्रगट होकर सारपूर्ण शब्दों में प्रतिबोध दिया। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ कि मैं पूर्वजन्म में महाविदेह क्षेत्र में महापद्म नामक राजा था, वहाँ से महाशुक्र नामक देव बना। वहाँ से यहाँ जन्मा हूँ। तैतलिपुत्र को संसार निस्सार लगा। उसने स्वयं दीक्षित होकर उत्कृष्ट तप की आराधना की और अव्यावाध सुख को प्राप्त किया।

जब मानव सुख के सागर पर तैरता है, उस समय धर्मक्रिया के प्रति उसमें रुचि नहीं होती, जब दुःख की दावाग्नि में वह झुलसता है, तब धर्म के अभिमुख होता है। जब तैतलिपुत्र का जीवन सुखी था, उस समय वह धर्म से विमुख था और दुःख आने पर वह धर्म के सम्मुख हुआ।

इस कहानी में राजा कनकरथ की निष्ठुरता का निरूपण है। वह राज्य लोभी था। कहीं पुत्र उससे राज्य छीन न लें, इसीलिए वह उन्हें विकलांग बना देता था। राज्य के लोभ में मानव दानव बन जाता है, वह उचित और अनुचित का विवेक खो बैठता है।

पार्श्वनाथ के तीर्थ की आर्या काली—

महाव्रतों का विधिवत् सम्यक् पालन करने वाला साधक समस्त कर्मों को नष्ट कर निर्वाण प्राप्त करता है। यदि कर्म अवशेष रह जायें, तो वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है। पर महाव्रतों का जो विधिवत् पालन नहीं करता, वह कुशील, काय, क्लेश आदि बाह्य तपों की आराधना कर देवगति को तो प्राप्त करता है, पर वैमानिक जैसे उच्च देवत्व को नहीं। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क की पर्याय प्राप्त कर लेता है। यहाँ पर चमरेन्द्र की अग्रमहिपियों का वर्णन है। वह वर्णन मनुष्य पर्याय में जब वे साध्वियाँ बनीं और कुछ समय तक चारित्र की आराधना की और उसके बाद शरीर वकुशा बनकर चारित्र की विराधिका बनीं—उस समय का है। उन साध्वियों को उनकी गुरुणी ने बहुत कुछ समझाया, पर वे समझी नहीं, अतः उन्हें गच्छ से पृथक् कर दिया। विना दोषों की आलोचना किये उन्होंने शरीर का परित्याग किया और चमरेन्द्र असुरराज की अग्रमहिपियाँ बनीं।

भगवान् महावीर एक बार राजग्रह में विराज रहे थे। उस समय काली देवी एक हजार योजन विस्तृत दिव्य यान में बैठ कर भगवान् के दर्शन के लिए आई। बत्तीस प्रकार के नाट्य विधि दिखाकर लौट गई। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह दिव्य ऋद्धि इसे कैसे प्राप्त हुई। भगवान् ने उसका पूर्वभव बताते हुए कहा—आमलकप्पा नगरी में काल नामक गाथापति की पुत्री काली थी। इसके स्वन अत्यधिक लम्बे थे, जो नितम्ब भाग को स्पर्श करते थे, अतः उसका विवाह नहीं हुआ। भगवान् पार्श्व के उपदेश को श्रवण कर उसने आर्या पुष्पचूला के पास दीक्षा ग्रहण की, अंग साहित्य का अध्ययन किया, संयम की आराधना भी करने लगी, कुछ समय के बाद शरीर पर आसक्ति पैदा हुई। पुनः पुनः अंगों का प्रक्षालन करती तथा जहाँ स्वाध्याय करती, जल छिटकती। उसकी साधवाचार से विपरीत प्रवृत्ति देखकर आर्या पुष्पचूला ने उसका गच्छ से सम्बन्ध तोड़ दिया। वह स्वच्छन्द हो गई, संयम की विराधिका बन गई। अन्तिम समय में पन्द्रह दिन का संघारा किया पर शिथिलाचार की आलोचना नहीं की। वही काली आर्या का जीव काली देवी बना। गौतम गणधर की जिज्ञासा पर भ० महावीर ने कहा—यह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगी और वहाँ से मुक्त होगी। इसी तरह रजनी, विद्युत, मेघा, शुम्भा, निपुम्भा, रम्भा, निरम्भा, मदना आदि ने भी भगवान् पार्श्वनाथ के पधारने पर प्रव्रज्या ग्रहण की किन्तु वे सभी विराधक बनकर देवियाँ बनती हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष सूचना नहीं है, केवल वे जहाँ की थी, उस जन्मस्थली का संकेत किया गया है।

महावीर शासन में नन्दा आदि भ्रमणियाँ—

नन्दा, नन्दवर्ती, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका, मरुता, सुमरता, महामरुता, मरुदेवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमनायिका और भूतदत्ता ये सभी श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं। इन सभी ने भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट तप-जप की आराधना कर मुक्ति को वरण किया।

काली आदि भ्रमणियाँ—

काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा और महासेनकृष्णा ये दशों महाराजा श्रेणिक की रानियाँ थीं। तीर्थंकर महावीर के उपदेश को श्रवण कर ये सभी दीक्षा लेती हैं और रत्नावली, कनकावली, लघुसिंह निष्क्रीडित, महासिंह निष्क्रीडित, सप्त सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा, अष्ट अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा, नव नवमिका भिक्षुप्रतिमा, दश दशमिका भिक्षुप्रतिमा, लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा, महस् सर्वतोभद्र प्रतिमा, भद्रोत्तर प्रतिमा, मुक्तावली, आयम्बिल वर्धमान तप आदि उत्कृष्टतम तपों की आराधना कर वे सभी सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होती हैं। इस प्रकार सम्राट श्रेणिक की तेवीस महारानियाँ ने भगवान् महावीर के शासन में संयम ही नहीं लिया, अपितु इतने उत्कृष्ट तप की आराधना की, जिसे पढ़कर पाठक विस्मित हुए बिना नहीं रह सकता।

जयन्ती भ्रमणोपासिका—

वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। वहाँ 'चन्द्रावतरण' चैत्य था। वहाँ जयन्ती श्राविका थी। जयन्ती श्राविका भ्रमणों के लिए शय्यातर के रूप में विश्रुत थी। जो भी नवीन सन्त आते, वे जयन्ती के वहाँ वसति की याचना करते। भगवान् महावीर के पावन प्रवचन को सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने भगवान् से प्रश्न पूछे—भन्ते ! जीव शीघ्र ही गुरुत्व को कैसे प्राप्त होता है ?

महावीर—जयन्ती ! प्राणातिपात, मृपावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति-अरति, मायामृपावाद और मिथ्यादर्शनशक्त्य इन अठारह पापों के आसेवन से जीव गुरुत्व को प्राप्त होता है।

जयन्ती—भगवन् ! आत्मा लघुत्व को कैसे प्राप्त होता है ?

महावीर—प्राणातिपात आदि अठारह पापों के अनासेवन से आत्मा लघुत्व को प्राप्त होता है। प्राणातिपात आदि की प्रवृत्ति से आत्मा जिस प्रकार संसार को बढ़ाता है, प्रलम्ब करता है, संसार में भ्रमण करता है, उसी प्रकार उसकी निवृत्ति से संसार को घटाता है, ह्रस्व करता है, और उसका उल्लंघन भी कर देता है।

जयन्ती—भगवन् ! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से ?

महावीर—मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव में स्वभाव से होती है, परिणाम से नहीं ?

जयन्ती—भन्ते ! जीवों का सोना अच्छा है या जागना ?

महावीर—कितने ही जीवों का सोना अच्छा है और कितने ही जीवों का जागना अच्छा है।

जयन्ती—भगवन् ! यह कैसे ?

महावीर—जयन्ते ! जो जीव अधार्मिक हैं, अधर्म का अनुसरण करते हैं, अधर्ममें आसक्त हैं और अधर्म के द्वारा ही अपना जीविकोपार्जन करते हैं, उन जीवों का सोना ही अच्छा है। प्राण, भूत, जीव, सत्त्व नमुदाय के शाक एवं परिणाम का कारण नहीं बनेगे, अतः अधार्मिक जीवों का सोना अच्छा है।

हे जयन्ती ! जो जीव धार्मिक, धर्मानुरागी, धर्मप्रिय और धर्मजीवी हैं, उनका जागना अच्छा है। धार्मिक पुरुष जब तक जागते रहते हैं, तब तक प्राणियों के अदुःख और अपरिताप के लिए कार्य करते हैं। ऐसे पुरुष जागते हैं तो अपने और दूसरों के लिए धार्मिक कार्यों में निमग्न बनते हैं, अतः उनका जागते रहना श्रेयस्कर है।

जयन्ती—भन्ते ! क्या सभी भवनिद्रिक आत्माएँ मोक्षगामिनी हैं ?

महावीर—हां, जो भव-निद्रिक हैं, वे सभी आत्माएँ मोक्षगामिनी हैं।

जयन्ती—भगवन् ! यदि सभी भव-निद्रिक जीव मुक्त हो जायेंगे तो क्या मन्त्र उनमें व्याप्त नहीं हो जायेंगे ?

महावीर—ऐसा नहीं। सादि तथा अनन्त व शक्ति और वे परिमित एवं दूबग श्रेणियों में परिभूत महाराज भी श्रेणियों में

से एक-एक परमाणु पुद्गल प्रतिसमय निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो जायें तथापि वह श्रेणी रिक्त नहीं होती। इसी प्रकार भव-सिद्धिक जीवों के मुक्त होने पर यह संसार उनसे रिक्त नहीं होगा।

जयन्ती—जीवों को दुर्बलता अच्छी है या सबलता अच्छी है ?

महावीर—कितने ही जीवों की सबलता अच्छी है और कितने ही जीवों की दुर्बलता।

जयन्ती—वह कैसे ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक हैं, और अधर्म से जीविकोपार्जन करते हैं उनकी दुर्बलता अच्छी है क्योंकि उनकी वह दुर्बलता अन्य प्राणियों के लिए दुःख का निमित्त नहीं बनती। जो लोग धार्मिक हैं, उनका सबल होना अच्छा है।

जयन्ती—जीवों का दक्ष होना अच्छा है या आलसी ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक हैं, अधर्मानुसार विचरण करते हैं, उनका आलसी होना अच्छा। जो जीव धर्माचरण करते हैं, उनका दक्ष [उद्यमी] होना अच्छा है। क्योंकि वे गुरु-आचार्य, उपाध्याय आदि की सेवा करते हैं।

जयन्ती—इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीव क्या कर्म बांधता है ?

भगवान्—इन्द्रियों के वशीभूत होकर जीव संसार में परिभ्रमण करता है।

श्रमणोपासिका जयन्ती प्रभु महावीर से अपने प्रश्नों का समाधान पाकर अत्यन्त हर्षित हुई। जीवाजीवविभक्ति को जानकर उसने महावीर प्रभु के चरणों में दीक्षा ग्रहण की।

प्रस्तुत कथानक में जीवन की गुरु गम्भीर ग्रन्थियाँ जयन्ती ने भगवान् महावीर के समक्ष प्रस्तुत कीं। प्रभु महावीर ने जिस सुगम रीति से समाधान किया, वह उनके अतिशय ज्ञान का द्योतक है।

पार्श्वनाथ तीर्थ : सोमिल ब्राह्मण—

श्रमण और श्रमणियों के कथानक के पश्चात् श्रमणोपासकों की कथायें दी गई हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के युग में वाराणसी में सोमिल ब्राह्मण था। वह वेदों का पारंगत पण्डित था। भगवान् पार्श्व 'अम्बसाल' उद्यान में पधारे। भगवान् के उपदेश को सुनकर वह श्रावक बना।

कालान्तर में सोमिल के विचारों में परिवर्तन हुआ और वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। उसके अन्तर्मानस में ये विचार उद्बुद्ध हुए—मैंने वेदों का अध्ययन किया, पत्नी के साथ विविध प्रकार के भोग भोगे, पुत्र भी उत्पन्न हुए। विराट् ऋद्धि का मैं अधिपति बना। मैंने यज्ञ किये, पशुओं का वध किया और अतिथियों की अर्चना की, इसलिए अब मेरा कर्तव्य है कि विविध वृक्षों वाला वगोचा लगाऊँ। उसने वगोचा लगाया। उसके पश्चात् उसे विचार आया—मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर मित्र और परिजनों की अनुमति प्राप्त कर तापसों के योग्य कड़ाही, कडछी, ताम्बे के पात्र लेकर गंगातट निवासी वानप्रस्थ तपस्वियों की भाँति विचरण करूँ। उसके पश्चात् दिशाप्रोक्षित तापसों से प्रव्रज्या लेकर छट्ठ-छट्ठ तप स्वीकार करता हुआ भुजाएँ ऊपर रखकर वह विचरणे लगा। प्रथम छट्ठ पारणे के दिन वह आतापना भूमि से चलकर, बल्कल के वस्त्र धारण कर और टोकरी को लेकर पूर्व दिशा की ओर चला। उसने सोमदेव की पूजा की। कन्द-मूल, फल आदि से टोकरी को भर कर वह अपनी कुटिया में आया। वहाँ उसने वेदिका को लीप-पोतकर शुद्ध किया। फिर दर्भ और कलश को लेकर गंगा-स्नान के लिए गया। पानी का आचमन कर देवता और पितरों को श्रद्धांजलि दी। पुनः वह कुटिया पर आया। दर्भ, कुश और बालुका आदि से वेदिका का निर्माण किया, अरणी से अग्नि पैदा की और उसके दाहिनी ओर उसने सकथ [उपकरण विशेष], बल्कल, अग्निपात्र, शय्या, कमण्डल, दण्ड और स्वयं को स्थापित किया। उसके पश्चात् मधु, घृत, चावल से अग्नि में होम किया। 'बलि' पकाकर अग्नि देवता की पूजा की। वाद में अतिथियों को भोजन करा कर उसने स्वयं भोजन किया। इसी प्रकार उसने दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण और उत्तर में वैश्रमण की पूजा की।

एक दिन पुनः उसके मन में विचार उद्बुद्ध हुआ—मैं बल्कल वस्त्र धारण कर पात्र तथा टोकरी लेकर, काष्ठमुद्रा से मुँह को बाँधकर उत्तर दिशा की ओर महाप्रस्थान कर अभिग्रह धारण करूँगा। जल, थले, दुर्गम, विषम पर्वत, गतं या गुफा से गिर कर या स्थित होकर पुनः न उठूँगा। यह चिन्तन कर वह अशोक वृक्ष के नीचे गया। वहाँ पर पात्र, टोकरी, एक ओर रखकर उसने वेदिका बनाई, स्नान किया। दर्भ आदि क्रियाओं का अनुष्ठान किया। एक देव ने अन्तरिक्ष में खड़े होकर सोमिल से कहा—तुम्हारे कार्य उचित नहीं हैं। उसने देव के कथन की उपेक्षा की, किन्तु देव के पुनः पुनः उद्बोधन से उसने श्रावक के पाँच अंगुत्र

और सात शिक्षाव्रत ग्रहण किये। उसके बाद वह विविध प्रकार के तप करता रहा। अन्त में अर्धमासिक संलेखना से आत्मा को भावित करता हुआ पूर्वकृत पाप कर्मों की आलोचना नहीं करके वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके शुक्र नामक महाग्रह में उत्पन्न हुआ। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि सोमिल नाम के दो श्रमणोपासकों का वर्णन आगम साहित्य में है। एक का वर्णन मुष्फिया आगम में है तो दूसरे का वर्णन भगवती—शतक अठारहवें, उद्देशक दशवें में है। दोनों वर्ण से ब्राह्मण है। एक ने भगवान् महावीर से प्रश्न किये तो दूसरे ने भगवान् पार्श्व से। भगवान् पार्श्व से प्रश्न करने वाला सोमिल वाराणसी का था और महावीर प्रभु से प्रश्न करने वाला सोमिल ब्राह्मण वाणिज्यग्राम का था। दोनों का काल पृथक् है। नाम साम्य होने से भ्रम न हो जाय, इस लिए प्रबुद्ध पाठक ध्यान रखें।

राजा प्रदेशी—

आमलकप्पा के अम्रसाल चैत्य में भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। उस समय सूर्याभदेव भगवान् के दर्शन के लिए आया। उसने बत्तीस प्रकार के नाट्य किये। बत्तीसवें नाटक में उसने भगवान् महावीर का च्यवन से लेकर परिनिर्वाण तक अभिनय किया। अभिनय के बाद सूर्याभ देव चला गया। गाँतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—यह विशिष्ट देव ऋद्धि इन्हें कैसे प्राप्त हुई? भगवान् ने कहा—श्वेताम्बिका नगरी में राजा प्रदेशी था। उसकी रानी का नाम सूर्यकान्ता और पुत्र का नाम सूर्यकान्त था। चित्त नामक सारथी था, जो बहुत ही बुद्धिमान् था। एक दिन प्रदेशी ने चित्त सारथी को उपहार देकर श्रावस्ती के राजा जितशत्रु के पास भेजा। वहाँ उसने पार्श्वपत्य केशी श्रमण के दर्शन किये। प्रवचन को सुनकर उसने श्रावक-व्रत ग्रहण किये।

राजा जितशत्रु की ओर से उपहार लेकर चित्त सारथी पुनः श्वेताम्बिका की ओर प्रस्थान करने लगा। उसने केशी श्रमण से निवेदन किया—आप श्वेताम्बिका नगरी पधारें। केशी श्रमण ने कहा—राजा प्रदेशी अधार्मिक है, हम वहाँ कैसे आ सकते हैं? चित्त सारथी ने कहा—आप वहाँ पधारें, उन्हें उपदेश देकर कल्याण के मार्ग पर लगावें। उसकी प्रार्थना को सम्मान देकर केशी श्रमण श्वेताम्बिका नगरी के उद्यान में पधारें। चित्त सारथी घोड़ों की परीक्षा के वहाँने राजा प्रदेशी को मृगवन उद्यान में लाया। राजा प्रदेशी केशी श्रमण के दिव्य-भव्य रूप को निहार कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। वह उनके सन्निकट आया। उसने पूछा—क्या आप जीव और शरीर को पृथक् मानते हैं।

केशी—हाँ! हम जीव और शरीर को पृथक् मानते हैं।

प्रदेशी ने तर्क दिया—मेरे दादा अधार्मिक थे। प्रजा का ठीक तरह से पालन नहीं करते थे। आपकी दृष्टि से वे मरकर नरक में गये हैं। उनका मेरा बहुत ही प्रेम था। वे मुझे आकर क्यों नहीं कहते कि मैं नरक में पैदा हुआ हूँ। वहाँ अपार कष्टों का अनुभव कर रहा हूँ।

केशी—तुम्हारी रानी के साथ कोई कामुक व्यक्ति विषय-सेवन की इच्छा करे तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे?

प्रदेशी—मैं उसके प्राण ले लूँगा।

केशी—वह व्यक्ति तुमसे निवेदन करे कि मैं अपने सम्बन्धियों को सूचित कर दूँ कि मुझे दण्ड मिल रहा है, अतः तुम भी इस कृत्य से बचना। उस पुरुष को सूचना देने के लिए क्या तुम मुक्त करोगे?

प्रदेशी—नहीं, वह मेरा अपराधी है।

केशी—तुम्हारे दादा का स्नेह होने पर भी वे नरक से नहीं आ सकते। अतः जीव और शरीर भिन्न है।

प्रदेशी—मेरी दादी धर्मात्मा थी। आपकी दृष्टि से वह स्वर्ग में गई। उसे तो आकर मुझे कहना चाहिए।

केशी—स्नान व सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर तुम जा रहे हो, उन समय कोई व्यक्ति शीघ्र गृह में बैठे हुए तुम्हें वहाँ आकर बैठने के लिए कहे तो क्या तुम वहाँ बैठोगे और उनकी बात को सुनोगे?

प्रदेशी—मे शीघ्र गृह में नहीं जाऊँगा।

केशी—स्वर्ग में उत्पन्न हुआ देव मानव लोक में आना पसन्द नहीं करता। उसे यहाँ ही गन्ध अप्रिय है।

प्रदेशी—एक तस्कर को मैंने कुम्भी में डालकर डबकन लगा दिया। कहीं पर भी छिद्र न रहे, अतः उसे बाहर और जाने से रूक कर दिया। बिरहस्त पहरेदार भी रखा। कुछ समय के बाद कुम्भीको खोलकर देखा, वह मरा हुआ था। इसने स्पष्ट है कि जीव और शरीर एक है।

केशी—एक व्यक्ति कूटागारशाला में द्वार बन्द कर भेरी बजाए ता बाहर बँटा हुआ व्यक्ति सुनता है न ? वैसे ही जीव पृथ्वी, शिला, पर्वत आदि को भेद कर बाहर आता है, अतः जीव और शरीर एक नहीं हैं ।

प्रदेशी—मैंने एक तस्कर को कुम्भी में बन्द किया । उसके मृत कलेवर में कीड़े कुलबुला रहे थे जबकि कुम्भी में कहीं भी छिद्र नहीं था । इससे भी स्पष्ट है कि जीव और शरीर भिन्न नहीं, एक है ।

केशी—तुमने लोहे को फूंकते हुए देखा है न ? वह लोहा अग्निमय हो जाता है । लोहे में अग्नि कैसे प्रविष्ट हुई, उसमें कहीं भी छिद्र नहीं, वैसे ही जीव अनिरुद्ध गति वाला है । इससे जीव और शरीर की पृथक्ता सिद्ध होती है ।

प्रदेशी—एक व्यक्ति धनुर्विद्या में निपुण है, पर वह व्यक्ति बाल्यावस्था में एक भी बाण नहीं छोड़ सकता था । बाल्यावस्था और युवावस्था में जीव एक होता तो मैं समझता जीव और शरीर भिन्न है ।

केशी—धनुर्विद्या निष्णात व्यक्ति शक्तिशाली है, पर उपकरणों के अभाव में अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकता । वैसे ही बाल्यावस्था में उपकरण बलवान न होने से वह अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं कर पाता । पर युवावस्था में उपकरण शक्तिमान होने से वह अपनी शक्ति बताता है ।

प्रदेशी—किसी तस्कर को पहले हम जीवित अवस्था में तौले और फिर मारकर तौले ता वजन में कोई अन्तर नहीं होता, अतः जीव और शरीर में अभिन्नता है ।

केशी—जैसे खाली और हवा से भरी हुई मशक के वजन में (विशेष) अन्तर नहीं पड़ता, वैसे ही जीवित और मृत पुरुष के वजन में अन्तर नहीं पड़ता । जीव अमूर्त है । उसका अपना कोई वजन नहीं है ।

प्रदेशी—मैंने तस्कर के शरीर के प्रत्येक अंग-उपांग को काट कर देखा, कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया, इसलिए जीव का अभाव है ।

केशी—मुझे लगता है कि तुम मूढ़ हो । तुम्हारी प्रवृत्ति भी लकड़हारे की तरह है । कुछ लोग जंगल में लकड़ियाँ लेने पहुँचे । उनके साथ अग्नि थी । उन्होंने एक साथी से कहा—हम बहुत दूर जंगल में जा रहे हैं, तुम हमारे लिए भोजन तैयार करके रखना । यदि अग्नि बुझ जाय तो अरणि की लकड़ियों से आग प्रकट कर लेना । उसके साथी जंगल में चले गये, आग बुझ गई । उसने लकड़ियों को इधर-उधर उलट-पुलट कर देखा, पर आग दिखाई नहीं दी । लकड़ियों के चीर-चीर कर टुकड़े किये । वह हताश और निराश होकर सोचने लगा—मेरे साथियों ने मेरा उपहास किया है । वे यदि लकड़ियों में आग की बात नहीं कहते तो मैं अग्नि को सम्भालकर रखता । भूखे-प्यासे साथीगण लकड़ियाँ लेकर लौटे किन्तु भोजन तैयार नहीं था । एक साथी ने उन अरणि की लकड़ियों को घिस कर अग्नि तैयार की और सभी ने भोजन किया । वह लकड़हारा लकड़ी को चीर कर अग्नि पाना चाहता था, वैसे ही तुम भी शरीर को चीर कर जीव पाना चाहते हो । तुम भी उस मूर्ख लकड़हारे की तरह ही हो न ?

प्रदेशी—हथेली पर रखा हुआ आँवला स्पष्ट दिखाई देता है, उसी तरह क्या आप जीव को दिखा सकते हैं ?

केशी—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीरी जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द, गंध और वायु इन आठ पदार्थों को विशिष्ट ज्ञानी ही देख सकते हैं ।

प्रदेशी—क्या हाथी और चींटी में एक समान जीव होता है ?

केशी—एक समान जीव होता है । जैसे—कोई व्यक्ति कमरे में दीपक जलाए, सम्पूर्ण कमरा उससे प्रकाशित होता है । यदि उसे किसी वर्तन विशेष से ढँक दिया जाय तो वह वर्तन के भाग को ही प्रकाशित करेगा । दीपक दोनों स्थलों पर वही है । स्थान विशेष की दृष्टि से उसके प्रकाश में संकोच और विस्तार होता है, यही बात हाथी और चींटी के जीव के सम्बन्ध में है । संकोच और विस्तार दोनों ही अवस्थाओं में जीव की प्रदेश संख्या समान रहती है, उसमें न्युनाधिकता नहीं होती ।

केशीकुमार श्रमण के अकाट्य तर्कों को श्रवण कर प्रदेशी राजा की सभी शंकाओं का समाधान हो गया । उसने पुनः कहा—यह मेरा ही मन्तव्य नहीं है, किन्तु मेरे पिता भी जीव और शरीर को एक मानते थे । उनकी मान्यताओं को मैं कैसे ठुकरा सकता हूँ ?

केशी—तू भी लोहे के वजन को उठाने वाले व्यक्ति के समान मूढ़ है । जैसे कुछ व्यक्ति धन की अभिलाषा के लिए प्रस्थित हुए । कुछ दूर जाने पर उन्हें लोहे की खदान मिली । वे लोहे को लेकर आगे बढ़े । आगे ताम्बे की खान मिली । लोहा छोड़कर उन्होंने ताम्बा लिया । फिर चाँदी की खदान मिली । ताम्बा छोड़कर चाँदी ली । आगे स्वर्ण की खदान मिली । चाँदी छोड़कर सोना

लिया। फिर रत्नों की खान मिली। सोना छोड़कर रत्न लिये। आगे वज्र रत्नों की खदान मिली। रत्न छोड़कर वज्र रत्न लिये। उनके साथ एक साथी लोहे को ढोकर चल रहा था। वह उनके अस्थिर मस्तिष्क का उपहास करने लगा। साथियों ने उसे ममझाया—लोहा छोड़कर बहुमूल्य रत्न ले लो। तुम्हारी दरिद्रता सदा के लिए मिट जायेगी। पर वह न माना। उसने कहा—जिन लोहे को इतनी दूर से ढोकर लाया हूँ, उसे कैसे छोड़ूँ? वह लोहे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। जो रत्न लेकर गये, वे श्रोमन्त बन गये। वह उमीतरह भिखारी और दरिद्री बना रहा, वह अपने साथियों को श्रीसम्पन्न देखकर मन ही मन पश्चात्ताप करता, वैसे ही यदि तू केवल-प्ररूपित धर्म को स्वीकार न करेगा तो तुझे भी पश्चात्ताप होगा।

प्रदेशी ने केशीश्रमण से श्रावक के व्रत ग्रहण किये। जिसके हाथ खून से रंगे थे, उसका जीवन परिवर्तित हो गया। वह आत्म-साधना में तल्लीन रहने लगा। महारानी सूर्यकान्ता राजा को उदासीन वृत्ति से खिन्न हो गई। वह राजा को विप प्रयोग में मारकर अपने पुत्र को राजगद्दी पर बैठाने का उपाय सोचने लगी। उसने एक दिन राजा के भोजन व वस्त्रों में विप मिला दिया। भोजन व वस्त्र धारण करते ही उसे अपार वेदना हुई। रानी की काली करतूत को समझकर भी उसके अन्तर्मानस में राग पैदा नहीं हुआ। पीपधशाला में जाकर उसने समस्त पापकृत्यों की आलोचना की। वहाँ से सौधर्न स्वर्ग में यह सूर्याभ देव बना।

बौद्ध-ग्रन्थ दीघनिकाय में पायास्सिसुत्त एक प्रकरण है। उसमें राजा पायासि के प्रश्नोत्तर हैं। जो राजप्रश्नोय के प्रदेशी और केशी के प्रश्नोत्तर में मिलते-जुलते हैं। दीघनिकाय में पायासि को कौशल के राजा पसेनदि का वंशधर कहा है तथा चित्त सारथी के नाम के स्थान पर 'खत्त' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'खत्त' का पर्यायवाची संस्कृत में 'धत्' और 'धता' होता है जिसका अर्थ सारथी है। नगरी का नाम 'सेयविया' के स्थान पर 'सेत्तव्या' प्रयुक्त हुआ है।^१ आधुनिक अनुसंधान-कर्त्ताओं ने श्रावस्ती [महेन्द्र-महेन्द्र] कोवलरामपुर से ७ मील की दूरी पर अवस्थित माना है।

प्रस्तुत कथानक में विमान, प्रेक्षागृह, प्रेक्षकों के बैठने का स्थान, पीठिका, प्रेक्षा-मण्डप, वाद्य, नाट्य-विधि, जिसमें वृत्तिस प्रकार के नाट्य आदि का वर्णन सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी तुलना भरत मुनि के नाट्य शास्त्र तथा महाभारत और रामायण आदि से कर सकते हैं।

तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक—

एक बार भगवान् महावीर तुंगिया नगरी के पुष्पवती चैत्य में विराजे। तुंगिया नगरी के श्रावक विराट् सम्पत्ति के अधिपति थे। उनके भव्य भवन थे। उनके यहाँ विपुल दास-दासियाँ थीं। साथ ही नव तत्त्वों के वे ज्ञाता थे। उन तत्त्वों में कौन हेय हैं; कौन जय हैं और कौन उपादेय हैं इनका उन्हें नम्यक् परिज्ञान था। निर्ग्रन्थ प्रवचन पर उनकी दृढ़ आस्था थी। देव, दानव, मानव कोई भी उन्हें विचलित नहीं कर सकता था। उनके जीवन के कण-कण में, मन के अणु-अणु में निर्ग्रन्थ प्रवचन व्याप्त था। व निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही अर्थ वाला मानते थे और शेष सभी को अनर्थ वाला। वे इतने अधिक उदार थे कि उनके द्वार नदा-नवंदा खुले रहते थे। उनका चरित्र इतना निर्मल था कि बिना रोकटोक के राजा के अन्तःपुर में भी वे प्रविष्ट हो सकते थे तथापि किसी को अपतीति नहीं होती थी। वे अष्टमी, चतुर्दशी, अनावस्या और पूर्णिमा को पूर्ण पापधोषवान करते थे। निर्ग्रन्थों को निर्दोष अणन, पान, चादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भोजन—इन सभी का दान देते थे।

एक बार भगवान् पाश्र्वनाथ की परम्परा के स्वधिर भगवन्त वहाँ पधारे। यह सुनकर तुंगिया नगरी के श्रावक प्रमुदित हुए। वे स्वधिर भगवन्तों के पाम पहुँचे। उन्होंने पाँच अभिगम किये—(१) नचित्त द्रव्य—हून, ताम्बूल आदि का त्याग (२) अपित्त द्रव्य—रस आदि को मर्जित करना (३) एक पट के (बिना नीचे टुंग) दुन्दुट्टे का उतरासन करना। (४) नाधु-मुनियोग के दृष्टिगोचर होने ही दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक पर लगाना (५) मन को एकाग्र करना।

इस प्रकार पाँच अभिगम करके वे स्वधिर भगवन्तों के पाम जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर पशुपामना करने लगे। इसके पश्चात् स्वधिर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों को चतुर्विध धर्म का उपदेश दिया। श्रमणोपासकों ने स्वधिर भगवन्तों से पूछा—संयम और तप का फल क्या है? उन्होंने कह—आत्मव ने मुक्त होता। पुनः प्रश्न किया गया—यदि नदम और तप का फल अनास्य है तो फिर संयमी नाथक देवलोक में क्यों उत्पन्न होते हैं? स्वधिरों ने समाधान दिया—संयम के साथ संय-द्रव्य आदि कषाय विद्यमान हैं, उनके कारण वे देव बनते हैं अर्थात् महासंयम संयमनंयम, धान नसंयम शीत अनास्य निर्ग्रन्थ आदि संयम

१. गणपतेश्वरमुत्त का मार, पुच्छ २६ पं० पेशरदास सोनी

से वे देव होते हैं। स्थविरों के उत्तर से श्रमणोपासक सन्तुष्ट हुए। इससे यह स्पष्ट है कि तुंगियानगरी के श्रावकों का जीवन एक आदर्श श्रावक का जीवन था। उनके जीवन में वे सभी सद्गुण मुखरित हुए हैं, जो एक श्रावक के जीवन में अपेक्षित हैं।

गणधर गौतम राजगृह में भिक्षा के लिए परिश्रमण करते हुए, तुंगिया नगरी के श्रावकों ने पार्श्वपात्य स्थविरों से जो प्रश्न पूछे और जो उन्होंने उत्तर दिये, उसे सुना। उन्होंने भगवान् महावीर से पूछा— क्या स्थविरों का उत्तर यथार्थ है? भगवान् ने कहा—पूर्ण यथार्थ है। इससे यह सिद्ध है कि भगवान् महावीर और भगवान् पार्श्वनाथ की आचार-संहिता में तो भेद था, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टियों से दोनों परम्पराओं में मतभेद नहीं था। यहाँ तक कि सैद्धान्तिक दृष्टि से किसी भी तीर्थंकर के शासन में मतभेद नहीं होता।

नन्द मणियार—

भगवान् महावीर का राजगृह में पदार्पण हुआ। दुर्दुरावतंस विमान का वासी 'दुर्दुर' नामक देव वहाँ आया। उसने बत्तीस प्रकार के नाटक किये। गणधर गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया। प्रभु ने कहा—राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार था। मेरा उपदेश श्रवण कर वह श्रमणोपासक बना, किन्तु विरकाल तक साधु समागम नहीं होने से और मिथ्यात्वियों के निकट सम्पर्क में रहने से वह मिथ्यात्वी बन गया तथापि तप आदि क्रियायें पूर्ववत् ही चल रही थीं। एक दिन वह भीष्म-ग्रीष्म ऋतु में अष्टम भक्त तप की आराधना कर रहा था। उसे तीव्र भूख-प्यास सताने लगी। उसके मन में ऐसी भावना हुई—वापिका और बगीचे आदि का निर्माण करूँगा। दूसरे दिन पौषध आदि से निवृत्त होकर वह राजा के पास पहुँचा। अनुमति प्राप्त कर उसने सुन्दर वापिका बनवाई, बगीचे लगवाये, चित्रशाला, भोजनशाला, चिकित्सालय, अलंकारशाला आदि का निर्माण करवाया। उनका लोग उपयोग करने लगे और नन्द मणियार की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। वह प्रशंसा सुनकर हर्षित हुआ, उसकी उनके प्रति गहरी आसक्ति हो गई। नन्द मणियार के शरीर में सोलह महारोग पैदा हो गये। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्वास (२) कास-खांसी (३) ज्वर (४) दाह-जलन (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७) अर्श-त्रवासीर (८) अजीर्ण (९) नेत्रशूल (१०) मस्तक-शूल (११) भोजन विषयक अरुचि (१२) नेत्र वेदना (१३) कर्ण वेदना (१४) कंडू-खाज (१५) दकोदर-जलोदर (१६) कोढ़।

आचारांग में^१ १६ महारोगों के नाम दूसरे प्रकार से मिलते हैं। विपाक^२, निशीथभाष्य^३ आदि में भी सोलह प्रकार की व्याधियों का उल्लेख है, पर नामों में पृथक्ता है। चरक संहिता में^४ भी आठ महारोगों का वर्णन है।

आसक्ति और आर्त्तध्यान में नन्द मणियार मृत्यु को वरण करता है और उसी वापी में 'दुर्दुर' बनता है। कुछ समय के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के आगमन की बात को सुनकर उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो आता है और वह दुर्दुर भगवान् को वन्दन के लिए चलता है। घोड़े की टाप से वह घायल हो गया, संथारा कर वह वहाँ से स्वर्ग का अधिकारी बना।

प्रस्तुत कथानक में इस बात पर बल दिया गया है कि सद्गुरु के समागम से आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है और आसक्ति से पतन होता है। आसक्ति आवाद जीवन को बर्बाद कर देती है।

आनन्द गाथापति—

श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों में आनन्द श्रमणोपासक का शीर्षस्थ स्थान है। वह लिच्छवियों की राजधानी 'वैशाली' के सन्निकट वाणिज्यग्राम में रहता था। उसके पास विराट वैभव था। आधुनिक युग की भाषा में वह अरबपति था। कृषि उसका मुख्य व्यवसाय था। उसके यहाँ दश-दश हजार गायों के चार गोकुल थे। आनन्द गाथापति की समाज में बहुत ही प्रतिष्ठा थी। सभी वर्ग के लोगों में उसका सन्माननीय स्थान था। विलक्षण प्रतिभा का धनी होने के कारण जन-मानस का उसके प्रति अत्यधिक विश्वास था, जिससे वे अपनी गोपनीय बात भी उसके सामने प्रकट कर देते थे। उसकी धर्मपत्नी का नाम 'शिवा-नन्दा' था। वह पतिपरायणा थी। भगवान् महावीर के उपदेश से प्रभावित होकर उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये। उसने

१. आचारांग ६—१—१७३.

२. विपाक १, पृष्ठ ७.

३. निशीथ भाष्य ११/३६४६.

४. वातव्याधिरपस्मारी, कुण्ठी शोफी तयोदरी। गुल्मी च मधुमेही च, राजयक्ष्मी च यो नरः ॥

शिवानन्दा को भी प्रेरणा दी। शिवानन्दा ने भी श्रावक-व्रत स्वीकार किये। धर्माराधना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में वह धर्मचिन्तन करते हुए सोचने लगा—मैं जिस सामाजिक स्थिति में हूँ, अनेक विगिष्ट उत्तरदायित्व मझे ले रखे हैं। जिससे मैं अपने जीवन का अधिक समय धर्माराधना में नहीं लगा सकता। उनसे अपने ज्येष्ठ पुत्र को सामाजिक दायित्व सौंपा और स्वयं को कौटुम्बिक और समाजिक जीवन से पृथक् कर लिया। वह कोलनाकसन्निवेश में स्थित पोषधगाना में धर्मोपासना करने लगा। उसने क्रमशः श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की। उग्र तपोमय जीवन व्यतीत करने से उनका शरीर अत्यन्त कुण हो गया। एक दिन पुनः धर्मचिन्तन करते हुए उसके मन में यह विचार आया—अब मेरा शरीर बहुत ही कुण हो गया है। मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि जीवन भर के लिए अन्न-जल का परित्याग कर शान्त चित्त से अपना अन्तिम नमस व्यतीत करूँ। तदनुसार वह आत्मचिन्तन में लीन हो गया। अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने ने उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम में पधारे। गणधर गौतम ने भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए सुना कि आनन्द श्रावक को संधारे में अवधिज्ञान हुआ है। वे आनन्द के पास पहुँचे। आनन्द श्रावक का शरीर इतना क्षीण हो चुका था कि उधर ने उधर होना भी उसके लिए शक्य नहीं था। गौतम से सन्निकट पधारने की प्रार्थना की, जिससे वह सविधि वन्दन कर सके। आनन्द ने सभक्ति वन्दन कर पूछा—क्या गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है ?

हाँ ! हो सकता है। गौतम ने उत्तर दिया।

भगवन् ! मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है। मैं उसके द्वारा पूर्व की ओर लवण समुद्र में ५०० योजन तक अधोलोक में लोलुयाच्युत नरक तक, उत्तर दिशा में चूलहेमवन्त वर्षधर पर्वत तक, उर्ध्वदिशा में सौधर्न कल्प—प्रथम देवलोक तक, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में पाँच-सौ, पाँच-सौ योजन तक का लवण समुद्र का क्षेत्र जानने लगा हूँ।

गौतम ने कहा—आनन्द ! अवधिज्ञान तो हो सकता है, पर इतना विशाल नहीं। अतः तुम आलोचना कर प्रायश्चित्त लो।

आनन्द—जिनशासन में सत्य की भी आलोचना की जाती है ?

गौतम—नहीं।

आनन्द—तो भगवन् ! मैंने असत्य नहीं कहा है। गौतम भगवान् के चरणों में पहुँचे और सारा वृत्तान्त सुनाया।

भगवान् ने कहा—गौतम ! आनन्द का कथन ठीक है। तुम आलोचना करो और आनन्द से क्षमायाचना भी।

गौतम सरलचेता साधक थे। उन्होंने अपने दोष की आलोचना की और जाकर आनन्द से क्षमायाचना की। जैन दर्शन का यह महान आदर्श है कि व्यक्ति बड़ा नहीं, सत्य बड़ा है। सत्य के प्रति हर किसी को अभिन्न होना ही चाहिए। आनन्द उज्ज्वल परिणामों में उत्तरोत्तर दृढ़-दृढ़तर होने गये और सौधर्न देवलोक में देव बने।

प्रस्तुत कथानक में आनन्द श्रावक के उपामनामय जीवन का शब्दचित्र है। उन नमस भारत की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। आनन्द के पास विशाल भूमि और बृहत् पशुधन था और स्वर्णमुद्राओं के भी अस्वार लगे हुए थे। वे प्राधुनिक धनवानों की तरह नहीं थे, जो बिना सुरक्षित पूँजी के भी अन्धाधुन्ध व्यापार करते हैं। वे अपनी पूँजी का तृतीयोद्योग भाग पहले से ही सुरक्षित रखते थे, जिससे तनाव की स्थिति पैदा न हो। जीवन की मांथ्र्य बेला में वे अपना उत्तरदायित्व पुत्र को देकर पूर्वतया साधना में जुट जाते थे। उनकी साधना के लिए स्वतंत्र पोषधगानाएँ होती थीं। जहाँ जागरूक होकर साधनामय जीवन जीते हुए सहर्ष मृत्यु को वरण करते थे। आज के श्रावक उनके जीवन से पाठ ग्रहण करें तो जीवन में मृग्य और जालिम का गन्गधर भाग महलहा सपता है।

कामदेव गायापति—

कामदेव चम्पा नगरी का निवासी था, उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। उनके पास छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ सभर्षि पूँजी के रूप थीं। छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ व्यापार में लगी हुई थी और छह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ घर आदि के कार्यों में लगी हुई थीं। कामदेव हजार गायों के छह गाँवुन थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखी था। महकीर क्षेत्र में भी उनकी भारी प्रसिद्धि थी। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर कामदेव ने व्रत ग्रहण किये और अन्न में पुत्र की नृत्तमार नृत्तमार स्वर्ण की वपुषा से त-सपता से साधना करने लगा। उसकी साधना में विघ्न डालने के लिए एक निष्कारणदेव आया। इनके पहले निष्कारण देव

बनाकर कामदेव को भयभीत करने का प्रयास किया और स्पष्ट शब्दों में कहा—तुम उपासना को छोड़ दो। पर कामदेव अविचल रहा। शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने का भी प्रयास किया, उन्मत्त हाथी बनकर कामदेव को आकाश में उछाला, दाँतों से वीघ्रा और पैरों से रोंदा तथापि कामदेव अपनी साधना में अडिग रहा। फिर उसने उग्र विषधर का रूप धारण कर तीव्र डंक का प्रहार किया पर कामदेव चलित नहीं हुआ। वह देव कामदेव श्रावक के चरणों में गिर पड़ा। तुम धन्य हो ! जैसा इन्द्र ने तुम्हारा गुणानुवाद किया, उससे भी तुम बढ़कर निकले। कामदेव ने उपसर्ग को समाप्त हुआ जानकर ध्यान आदि से निवृत्ति ली। उसने सुना—भगवान् महावीर का शुभागमन हुआ है। वह दर्शन के लिए पहुँचा। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने कहा—कामदेव ! क्या देव ने तुम्हें इस प्रकार रात्रि को उपसर्ग दिये थे ?

भन्ते ! आपका कथन यथार्थ है।

भगवान् ने साधु-साध्वियों को सम्बोधित कर कहा—कामदेव गृहस्थ होते हुए भी इतना दृढ़ रहा, अतः तुम्हें भी इससे शिक्षा लेनी चाहिए। सारी सभा स्तम्भित हो गई। कामदेव उत्तरोत्तर साधना-पथ पर बढ़ता गया। बीस वर्ष तक श्रमणोपासक के व्रतों का पालन कर, अंतिम समय में संलेखना तथा अनशन कर वह सौधर्म देवलोक में देव बना।

प्रस्तुत कथानक का सार यही है कि उपसर्ग उपस्थित होने पर भी हिमालय की चट्टान की तरह व्रतों के पालन में सुदृढ़ रहना चाहिए, विघ्न साधना की कसौटी है। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'—श्रेष्ठ कार्यों में बृहत् से विघ्न आते हैं, पर जो उन बाधाओं को पार कर जाता है, वही महान् बनता है।

चुलनीपिता—

चुलनीपिता वाराणसी का गाथापति था। उसको पत्नी श्यामा थी। चौबीस करोड़ स्वर्णमुद्रायें उसके पास थीं तथा दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल थे। जब भगवान् महावीर वाराणसी पधारे, तो उनके उपदेश को श्रवणकर चुलनीपिता ने श्रावक के वारह व्रत ग्रहण किये। एक वार वह पौषधशाला में उपामनारत था। एक देव हाथ में चमचमाती हुई तलवार लिए वहाँ प्रगट हुआ और कहा—तुम व्रतों को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को लाकर तुम्हारे सामने ही टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। खौलते हुए पानी में उसका मांस पकाकर तुम्हारे शरीर पर छिटकूंगा। पुत्र के प्रति पिता की सहज ममता होती है, पर वह अविचल रहा। देव का क्रोध उबल पड़ा, उसने देवमाया से वैसा ही कर बताया। उस वीभत्स दृश्य से पत्थर का हृदय भी द्रवित हो जाता, पर चुलनीपिता अडिग रहे। दूसरी वार मझले पुत्र की भी वही स्थिति की तो भी वह साधना से चलित नहीं हुआ। तीसरी वार भी उस देव ने तीसरे पुत्र को समाप्त कर दिया तो भी चुलनीपिता मेरु की तरह अडिग रहा। चौथी वार देव ने उसकी ममतामयी माता की हत्या करनी चाही, तब उसके धैर्य का बाँध टूट गया। वह क्रुद्ध होकर उस देव को पकड़ने के लिए उठा। देव अन्तर्धान हो गया। उसके हाथ में खम्भा आया और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। भद्रा सार्थवाही उसकी आवाज को सुनकर चट से वहाँ पहुँची और कहा—वत्स ! वह देव माया थी। तुमने क्रोध करके व्रत का भंग किया है, इसीलिए प्रायश्चित्त करके शुद्ध बनो। माँ की आज्ञा को शिरोधार्य कर चुलनीपिता ने प्रायश्चित्त किया।

साधक को प्रत्येक क्षण सावधान रहना चाहिए, यदि भूल हो जाये तो उसका परिष्कार करना चाहिए। चुलनीपिता ने उपासना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास किया और अन्तिम समय में संलेखना-समाधिपूर्वक अनशन कर सौधर्म देवलोक में देव बना।

प्रस्तुत कथानक में यह बताया गया है कि अध्यात्म की साधना माँ की ममता से भी बढ़कर है। जब साधक उस उच्च भूमिका पर पहुँच जाता है तो सांसारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।

सुरादेव—

सुरादेव भी वाराणसी का गाथापति था। उसके पास अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें थीं। उसकी पत्नी का नाम धन्या था। भगवान् महावीर के पावन-प्रवचन को श्रवण कर उसने व्रत ग्रहण किये। देव ने पाँच बार उसके पुत्रों को काटा, खौलते हुए पानी के कड़ाह में डाला और सुरादेव पर मांस छिड़का तो भी सुरादेव विचलित नहीं हुआ तब देव ने उसके शरीर में सोलह महारोग उत्पन्न करने की धमकी दी, जिससे सुरादेव विचलित हो उठा। उसने देव को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया, देव आकाश में लुप्त हो गया। सुरादेव की चिल्लाहट को सुनकर उसकी पत्नी वहाँ आई और उसने कहा—पतिदेव ! यह देव उपसर्ग था। आप अपना व्रत खण्डित नहीं करें। उसने भूल का प्रायश्चित्त किया। बीस वर्ष तक श्रावक व्रतों का निरतिचार पालन कर सौधर्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

चुल्लशतक—

आलभिका नगरी में चुल्लशतक गाथापति था। उसके पास अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं थीं। दश-दश हजार गायों के छह गोकुल थे। एक बार भगवान् महावीर आलभिका पधारे। चुल्लशतक ने व्रत ग्रहण किये। एक दिन पीपधजाला में उमने पीपध व्रत स्वीकार कर रखा था। अर्धरात्रि में एक देव प्रगट हुआ। देव ने चुल्लशतक के तीनों पुत्रों के सात-सात टुकड़े कर दिये, पर वह व्रत से विचलित नहीं हुआ। अन्त में देव ने सोचा—धन म्यारहवां प्राण है। अतः उमने कहा—यदि तुम व्रतों का भंग नहीं करोगे तो तुम्हारे सम्पूर्ण धन का अपहरण कर लूंगा। तुम दरिद्र बनकर दर-दर भटकोगे। तीन बार कहने पर चुल्लशतक के विजनों ने कौंध गई। वह धवड़ा गया। उसने उस पुरुष को पकड़ने के लिए हाथ आगे बढ़ाया, पर खम्भे के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगा। व्याकुलता के कारण वह जोर से चिल्ला उठा। पत्नी ने आकर कहा—आपको अपने व्रत में हड़ रहना चाहिए, आलोचना कर आत्म-शोधन करें। उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने शुद्धिकरण किया। दोस वर्ष तक श्रावक व्रतों का पालन कर एव एकादश प्रतिमाओं की आराधना की। एक माम को संलेखना-संधारा कर सौधर्म देवलोक में देव बना।

कुण्डकौलिक—

काम्पिल्यपुर नगर में कुण्डकौलिक गाथापति था। उसकी पत्नी का नाम पूणा था। अठारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का वह अधिपति था। दश-दश हजार गायों के छह-गोकुल थे। भगवान् के उपदेश को सुनकर कुण्डकौलिक ने व्रत ग्रहण किये। वह एक दिन मध्याह्न में अशोक वाटिका में पहुँचा। उसने अपनी अंगूठी और उत्तरीय उतार कर पृथ्वीशिला पट्टक पर रखे; और धर्म-ध्यान में संलग्न हो गया। उस समय एक देव प्रकट हुआ। अंगूठी और उत्तरीय लेकर आकाश में स्थित हो गया। देव ने कहा—मन्थलिपुत्र गीशालक का मिद्धान्त सुन्दर है। वहाँ पुरुषार्थ को स्थान नहीं है। वह नियतिवादी है। जो कुछ भी होगा, वह नियति के अनुसार ही होगा। इसलिए तुम उमके मिद्धान्त को स्वीकार करो।

कुण्डकौलिक—तुमने जो यह विराट ऋद्धि प्राप्त की है, वह पुरुषार्थ से प्राप्त की है या यों ही ?

देव—मैंने यों ही प्राप्त की है।

कुण्डकौलिक—तो फिर प्रत्येक प्राणी जो पुरुषार्थ नहीं करते हैं, वे देव क्यों नहीं बने ?

देव कुण्डकौलिक के तर्क का उत्तर नहीं दे सका। वह अंगूठी और उत्तरीय को जिलापट्ट पर रखकर चल दिया।

दूसरे दिन भगवान् महावीर का काम्पिल्यपुर नगर में पदार्पण हुआ। कुण्डकौलिक वन्दन के लिए गया। भगवान् ने देव-परोक्षा की बात कही और साधु-माध्वियों को प्रेरणा देते हुए कहा—कुण्डकौलिक कितना गहरा तत्त्ववेत्ता है। उमने अपनी मुक्ति से देव को निरुत्तर कर दिया। कुण्डकौलिक की घटना को महत्त्व देने का यही कारण था कि माधवों को अपने मिद्धान्त का मर्मज्ञ परिवोध होना चाहिए।

कुण्डकौलिक ने पन्द्रहवें वर्ष में एकादश प्रतिमाओं को ग्रहण किया। उमके पूर्व चौदह वर्ष तक वह व्रतों का पालन करना रहा था। अन्त में एक माम की संलेखना-संधारा द्वारा आयुष्य का पूर्ण करके वह सौधर्म देवलोक में देवत्व में उत्पन्न हुआ।

शकडालपुत्र—

पोलानपुर नगर में शकडालपुत्र नामक एक कुम्भकार था। उमके पास तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं थीं और दश हजार गायों का एक गोकुल था। उमका प्रमुख व्यवसाय था—मिट्टी के बर्तन तैयार करना और बेचना। पोलानपुर नगर के बाहर उसकी पोलाना कर्मशाखाएँ थीं। जहाँ अनेक बर्तनिक कर्मचारी काम करते थे। ये बर्तन तैयार करने और मार्जजित्त स्थानों पर उठे देवों के। शकडालपुत्र की पत्नी का नाम अग्निनिधा था। वह गीशालक का प्रमुख अनुयायी था। एक बार शकडालपुत्र अशोकवाटिका में धर्मार्पण कर रहा था। उस समय एक देव ने प्रकट होकर कहा—तुम व्रतः मत्समहिम अपनित्त जल-दानी के पारण-विनीतपूजित, अग्नि, जिह, देवता, मर्यादा, मर्यादा आवेग। उमकी तुम पुरुषार्थना करना।

दूसरे दिन भगवान् महावीर मत्समहिम उद्यान में पधारे। शकडालपुत्र उमके वरमे के भिय गया। वह का मस में सोच रहा था कि भगवान् गीशालक पधारेगे और उमकी दृष्टि में वह वरा पर पहुँचा। भगवान् महावीर ने उमने सुन-सोचि श्रावक बनने का देव आया था न? और उमने मेरे आत्मन की तुलना का भी भ? शकडालपुत्र भगवान् महावीर के दिव्य ज्ञान से प्रभावित हुआ। उमने भगवान् से भियदन किया—मेरी कर्मशाखा में पधारे और आत्मिक साधना करे। भगवान् महावीर उहा पधार। एक दिन शकडालपुत्र उमकी की पूर दे रहा था। भगवान् ने पुछा—वे उमके उमने मे शकडालपुत्र के भियदन विद्या-मस के भियदने शुरू की, फिर उमने भियदना कर आर गीशर भियदना तुम तथा तवहा पर-मस पर कर दे रहा है। मेरे भियदना करके उमने बनये।

भगवान्—ये व्रतन पुरुषार्थ से बने हैं अथवा अपुरुषार्थ से ?

शकडालपुत्र—इसमें पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं। जो कुछ होना होता है, वह निश्चित है।

भगवान्—कल्पना करो, कोई व्यक्ति तुम्हारे व्रतनों को तोड़ दे, फोड़ दे अथवा तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ बलात्कार करे तो तुम क्या करोगे ?

शकडालपुत्र—मैं उसे फटकारूँगा, दण्ड दूँगा और अधिक करेगा तो उसकी जान ले लूँगा।

भगवान्—तुम ऐसा क्यों करते हो ? क्योंकि तुम्हारी दृष्टि से जो कुछ भी होने वाला है, वह नियत है। फिर उसे दोषी क्यों मानते हो ? यदि तुम यह मानते हो कि वह पुरुषार्थ करता है तो नियतिवाद का मिद्धान्त खण्डित हो जाता है।

शकडालपुत्र भगवान् महावीर के सामने नत हो गया। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये और उसकी पत्नी अग्निमित्रा ने भी।

मंखलिपुत्र गौशालक ने जब यह सुना तो उसे दुःख हुआ क्योंकि वह उसका प्रमुख श्रावक था। वह आजीवकों के उपाश्रय में ठहरकर शकडालपुत्र के पास आया, पर शकडालपुत्र ने कोई आदरभाव प्रकट नहीं किया। गौशालक ने भगवान् महावीर की खूब स्तवना की। शकडालपुत्र ने अपने गुरु महावीर की स्तवना से प्रभावित होकर कहा—आप मेरी कर्मशाला में रुकें। गौशालक भी यही चाहता था। उसने विविध तर्क देकर उसे समझाने का प्रयास किया पर शकडालपुत्र की धर्मश्रद्धा विचलित नहीं हुई। निराश होकर गौशालक ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

श्रावक व्रतों की आराधना एवं साधना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो चुके थे, पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था। शकडालपुत्र रात्रि में धर्मारधना कर रहा था। एक देव आया। उस देव ने उसके तीनों पुत्रों को मारकर नी-नी मांसखण्ड किये। खौलते हुए पानी में उवालकर उसको शकडालपुत्र के ऊपर छींटा तो भी वह विचलित नहीं हुआ। देव ने मोचा—इसका अग्निमित्रा पत्नी पर अत्यधिक अनुराग है, अतः उसी तरह उसे भी मारने की धमकी दी। वह क्षुब्ध हो उठा, देव का पकड़ने के लिए ज्योंही हाथ आगे बढ़ाये त्योंही हाथ खम्भे से टकरा गये। उसकी चीत्कार को सुनकर अग्निमित्रा वहाँ आई और बोली—आपने व्रत को भंग कर दिया है, प्रायश्चित्त लेकर शुद्धिकरण करें। शकडालपुत्र ने वैसा ही किया। जीवन के अन्तिम क्षणों तक जागरूकता से उसकी साधना चलती रही। आयु पूर्ण कर वह अरुणभूत विमान में देव बना।

महाशतक—

राजगृह में महाशतक गाथापति था। उसके पास चौबीस करोड़ स्वर्णमुद्रायें थीं। दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल थे। उसके तेरह पत्नियाँ थीं। उनमें रेवती प्रमुख थी। रेवती अपने पीहर से आठ करोड़ स्वर्णमुद्रायें और दश-दश हजार गायों के आठ गोकुल प्रीतिदान के रूप में लाई थी, अन्य बारह पत्नियाँ भी एक-एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें और दश-दश हजार गायों का एक गोकुल प्रीतिदान के रूप में लाई थीं। उस युग में पुत्रियों को पीहर से विराट सम्पत्ति प्राप्त होती थी और उस पर उन पत्नियों का ही अधिकार रहता था। भगवान् महावीर के उपदेश को श्रवण कर महाशतक ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

महाशतक की पत्नी रेवती के अन्तर्मानस में अर्थ और भोग के प्रति तीव्र अभिलाषा थी। एक बार उसके मन में विचार आया—मैं बारह ही सौतों को मार दूँ तो उनकी सारी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार हो जायेगा और मैं एकाकिनी विषय-भोगों का सेवन करूँगी। उसने अपनी सौतों को मरवा दिया। रेवती मांस और मदिरा का भी उपभोग करती थी। एक बार राजगृह में अमारि (प्राणी-वध-निषेध) की घोषणा कर दी गई। रेवती ने अपने गोकुल में से दो-दो बछड़े प्रतिदिन मारकर गुप्त रूप से लाने की व्यवस्था की। महाशतक के जीवन में नया मोड़ आ गया। श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए उसे चौदह वर्ष व्यतीत हो गये थे। अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सम्भला कर स्वयं पौषधशाला में धर्मोपासना करने लगा। रेवती मदिरा के नशे में उन्मत्त बनी हुई कामोद्दीपक हाव-भाव करने लगी तथा भोगों की अर्चना करने लगी। किन्तु महाशतक विचलित नहीं हुआ। रेवती अपना-सा मुँह लेकर लौट गई। महाशतक साधना में उत्तरोत्तर प्रगति करता रहा। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। रेवती वासना की ज्वाला में झुलस रही थी। वह पुनः-पुनः आकर कुचेष्टा करने लगी जिससे वह विक्षुब्ध हो उठा। उसने अवधिज्ञान से निहारकर कहा—रेवती ! तू अत्यन्त भयानक रोग से पीड़ित होकर रत्नप्रभा नामक पहली नरक में उत्पन्न होगी, जहाँ चौरासी हजार वर्ष तक भयंकर कष्टों को भोगेगी। वह भय से काँप उठी, उसके सामने मौत की काली छाया नाचने लगी। जैसा महाशतक ने कहा था, वैसा ही हुआ।

भगवान् महावीर का राजगृह में पदार्पण हुआ। उन्होंने गणधर गौतम को बताया—अन्तिम संश्लेषना स्वीकार कर महा-

पुष्कली श्रावक उन सभी की ओर से उन्हें बुलाने गया । उत्पला से पूछा—शंख श्रावक कहाँ है ? उसने कहा—वे पौपधशाला में पौपध करके बैठे हैं । पुष्कली ने शंख को नमस्कार किया और कहा—आपने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाया है, अतः आहार आदि को खाते-पीते पौपध करें । शंख ने कहा—मैंने पौपध कर लिया है, तुम अपनी इच्छानुसार खाते-पीते पौपध करो । उन श्रावकों ने वैसा ही किया ।

रात्रि में धर्म जागरण करते हुए शंख ने सोचा—भगवान् महावीर के दर्शन करने के बाद ही मुझे पौपध पारना श्रेयस्कर है । सुबह होने पर शंख भगवान् की सेवा में पहुँचा । उधर पुष्कली आदि श्रावक भी भगवान् को वन्दन के लिए पहुँचे । उपदेश मुनने के बाद उन्होंने शंख को उपालम्भ दिया । प्रभु ने कहा—तुम शंख श्रावक की अवहेलना न करो, यह प्रियधर्मों एवं दंडधर्मों है । इसने प्रमाद और निद्रा का परित्याग कर मुदर्शन जागरिका जागृत की है ।

गौतम ने जिज्ञामा प्रस्तुत की—जागरिका कितने प्रकार की है ? भगवान् ने उत्तर दिया—जागरिका तीन प्रकार की है—१. बुद्ध जागरिका २. अबुद्ध जागरिका और ३. मुदर्शन जागरिका । सर्वज्ञों की जागरिका बुद्ध जागरिका है, अणगार की जागरिका अबुद्ध जागरिका है और श्रावकों की जागरिका मुदर्शन जागरिका है ।

शंख ने भगवान् महावीर से पूछा—क्रोध आदि कपाय के वशीभूत जीव कौन से कर्म बाँधता है अथवा चय-उपचय करता है ? भगवान् ने कहा—वह मात या आठ कर्मों को बाँधता है, शिथिल कर्म प्रकृतियों को दृढ़ करता है । पुष्कली आदि सभी श्रावकों ने शंख से क्षमायाचना की । गौतम ने पूछा—क्या शंख प्रव्रज्या ग्रहण करेगा ? भगवान् ने कहा—नहीं, वह श्रावकधर्म का ही पालन करेगा ।

प्रस्तुत कथानक में पौपध का उल्लेख हुआ है । पौपध के १ आहार-पौपध, २ शरीर-पौपध ३ ब्रह्मचर्य-पौपध और ४ अव्यापार-पौपध—ये चार प्रकार हैं । शंख श्रावक ने प्रतिपूर्ण पौपध किया था । आवश्यकवृत्ति में पौपधोपवास का लक्षण इस प्रकार किया गया है—“धर्म और अध्यात्म को पुष्ट करने वाला विशेष नियम धारण करके उपवास सहित पौपध में रहना ।”^१ पौपध शब्द संस्कृत के ‘उपवसथः’ शब्द से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—धर्माचार्य के समीप या धर्मस्थान में रहना । धर्मस्थान में निवास करते हुए उपवास करना पौपधोपवास है । दूसरे शब्दों में कहें तो पौपध व्रत का अर्थ पौपना, तृप्त करना है । शरीर को भोजन से तृप्त करते हैं वैसे ही आत्मा को व्रत से तृप्त करना । पौपध में आत्मचिन्तन, आत्मशोधन, आत्म-विकास का पुरुषार्थ किया जाता है । जत्र साधक आत्मचिन्तन करता है तो उसे अपने अन्तर् में रही हुई कमजोरियों का ज्ञान होता है और जिन शक्तियों की न्यूनता है, उनकी सम्पूर्ति के लिए वह प्रयास करता है । व्यक्ति दूसरों को सुधार नहीं सकता पर अपने आपको वह सुधार सकता है । पौपध में साधक सांसारिक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर धर्म-जागरण और आत्म-जागरण करना है ।

व्रह्मनागनप्तृक श्रमणोपासक—

वैशाली में व्रह्मनागनप्तृक श्रमणोपासक था । वह जीवादि तत्त्वों का परिज्ञाता था तथा व्रती था । छट्ठ-छट्ट की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ रहता था । राजा के आदेश से उसे रथमूल संग्राम में जाना पड़ा । उसने युद्ध में प्रवृत्त होते समय यह नियम लिया कि जो मुझ पर पहले वार करेगा, उसी को मुझे मारना योग्य है, दूसरे को नहीं । वह नियम लेकर संग्राम करने लगा । व्रह्मनागनप्तृक के मद्दण ही एक व्यक्ति समान वय और आकृति वाला वहाँ आया और कहा—मेरे पर प्रहार करो । उसने कहा—जब तक कोई मेरे पर प्रहार नहीं करता, वहाँ तक मैं भी प्रहार नहीं करता हूँ । उसने व्रह्मनागनप्तृक पर बाण का प्रहार किया जिसने वह घायल हो गया । उसके बाद ही व्रह्मनागनप्तृक ने उस व्यक्ति पर प्रहार किया जिसमें वह भूमि पर लुटका पड़ा । पुनः उसने प्रहार किया जिसमें व्रह्मनागनप्तृक के प्राण संकट में पड़ गये । जीवन की माध्यवेला ममज्ञ-कर उसने रथ को एकान्त स्थान में ले जाने का आदेश दिया । रथ ने उतरकर, धर्म का आसन चिछाकर व्रह्मनागनप्तृक के अग्रिष्ठे तो नमस्कार किया एवं जीवन पर्यन्त के लिए व्रतों को ग्रहण किया । कवच को खोला और शरीर में मे बाण का दाह निकाला तथा नम्राधिपूर्वक कावधर्म को प्राप्त हुआ ।

व्रह्मनागनप्तृक का चाल मित्र बुद्ध कर रहा था । वह भी घायल हुआ । व्रह्मनागनप्तृक के पीछे-पीछे आया और मथारण कर भुवु का वरण किया । मन्दिमट में रहे हुए देवों ने मुग्धित्त जन और पुण्यों की वर्षा की और गीत व गन्धर्व-नाद भी । नाना ने नमस्कार—जो संग्राम करने हुए मरने ह, वे देवोंक तो प्राप्त होते हैं, पर उन्हें यह पता नहीं कि कौसे व्यक्ति मरने में जाते ?

१. पौपधे उपवसथे पौपधोपवासः निवसथिमेयाभिधानं तद्वै पौपधोपवासः ।

गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! वरुणनागनप्लुक कहाँ गया ? भगवान् ने कहा—वह मोक्षमें देवलोके में गया और उसका मित्र मानव बना । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा ।

प्रस्तुत कथानक में, वैदिक परम्परा तथा लोक-धारणाओं में यह बात फ़ैली हुई थी कि रणक्षेत्र में मरने वाला व्यक्ति स्वर्ग को वरण करता है । इस दृष्टि में लोग युद्ध में मरने को श्रेयस्कार मानने थे ।^१ इस मिथ्याधारणा का उनमें निम्नत रिया गया है । रणक्षेत्र में भी मरने वाला व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है वगैरें वह पापों की आलोचना कर कपाय से मुक्त होकर समभाव में आयु पूर्ण करे । यदि कपाय की आग में नैतिक झुलस रहा है तो उसकी गति तर्क एवं तिर्यक ही होगी । वयूत का पेड़ बोकर आम की आशा करना मिथ्या है । वैसे ही कपाय भाव में मद्गति मुलभ नहीं है ।

सोमित ब्राह्मण—

वाणिज्यग्राम में सोमित ब्राह्मण था । वह वेदों का पारंगत विद्वान् था । उनके पांच नौ जिप्य थे । वहाँ पर भगवान् महावीर का आगमन हुआ । सोमित ब्राह्मण ने मोक्षा—में अपने जिप्यों के साथ भगवान् के पास जाऊँ, यदि वे मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकेंगे तो मैं उन्हें निरुत्तर कर दूँगा । इस प्रकार विचार कर वह महावीर के पास आया और पूछा—भगवन् ! आपके यात्रा, यापनीय, अध्यायाध और प्रामुक विहार क्या हैं ? भगवान् ने कहा—हाँ हैं । वह नप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान, और श्रावण्यक आदि योगों में मेरी जो यतना (प्रवृत्ति) है, वह मेरी यात्रा है । यापनीय दो प्रकार का है—उन्द्रिय यापनीय और नोउन्द्रिय यापनीय । पाँचों इन्द्रियां निरुपहृत (उपघात रहित) मेरे अधीन प्रवृत्ति करनी हैं, यह मेरा उन्द्रिय यापनीय है । प्रोध, मान, माया, लोभ आदि कपाय मेरे पूर्ण रूप में नष्ट हो गये हैं, वे उदय में नहीं हैं, यह मेरा नोउन्द्रिय यापनीय है । मेरे घात, पिना, कफ, और मन्निपान जन्य अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी दोष और रोगान्तक उपशान्त हो गये हैं, वे उदय में नहीं आते, यह मेरा अध्यायाध है । आराम, उद्यान, देवकुल सभा, प्रपा, विविध स्थानों में जो स्त्री, पशु, पंउक रहित वस्त्रियों में प्रामुक एपनीय घोट, फलक, शय्या, मंस्तारक आदि प्राप्त कर मैं विचरण करता हूँ, यह मेरे लिए प्रामुक विहार है ।

सोमित ने पुनः प्रश्न किया—मरिसव भक्ष्य है अथवा अनक्ष्य ?

भगवान्—सोमित ! ब्राह्मण ग्रन्थों में मरिसव दो प्रकार के बताये गये हैं—१. समान वय वाला मरिसव (महजय) —मिध २. धान्य मरिसव । जो मिध मरिसव है वह महजात, महवर्धित और महपांनुक्रीडित ये तीनों प्रकार के मरिसव श्रमणों के लिए अभक्ष्य है ।

धान्य मरिसव दो प्रकार का है—१. शम्भ्र-परिणत—अग्नि आदि में निर्जीव बना हुआ और २. अजम्भ्र परिणत—निर्जीव नहीं बना हुआ । जो अजम्भ्र परिणत है, वह अभक्ष्य है । शम्भ्र परिणत भी दो प्रकार का है—एपनीय और अनेपनीय । एपनीय मरिसव भी दो प्रकार का है—याचित और अयाचित । अयाचित श्रमणों के लिए व्याज्य है । याचित भी दो प्रकार का है—लवध और अलवध । अलवध श्रमणों के लिए अभक्ष्य है और लवध श्रमणों के लिए भक्ष्य है । उनलिये मरिसव मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी ।

सोमित ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की—मान भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? महावीर ने कहा—शास्त्रण ग्रन्थों में मान दो प्रकार का कहा गया है—अध्य मान और ताल मान । जो ताल मान है श्रावण, भाद्रपद आदि, यह श्रमण निव्रतियों के लिए अभक्ष्य है । अध्य मान दो प्रकार का है—अर्थ माप और धान्य माप । अर्थ माप दो प्रकार का है—स्वयं माप और शेष्य माप, या श्रमण निव्रतियों के लिए अभक्ष्य है । धान्य माप दो प्रकार का है—शम्भ्र परिणत माप और अजम्भ्र परिणत माप । ये स्वयं माप, जो शम्भ्र परिणत है यह मरिसव के समान भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ।

भगवन् ! कुलन्धा भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य है ? भगवान् ने कहा—कुलन्धा भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है । यह दो प्रकार का है—स्त्री कुलन्धा और धान्य कुलन्धा । स्त्री कुलन्धा तीन प्रकार की है—कुलन्धा, कुलन्धु, कुलन्धा । या कुलन्धा के लिए अभक्ष्य है । धान्य कुलन्धा के सम्बन्ध में धान्य मरिसव के समान समजता है । कुलन्धा भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी ।

सोमित ने पुनः पूछा—भगवन् ! जल एक है या अनेक ? जलव, जलव्य, अजलव, या कुलन्धा मरिसव ।

भगवान्—मे एव भी है और अनेक भी । मे जलव मे एक है । जल और जलव के अंतर का है । जलवदण्डन मे लवध है, अलवध है और अजलव भी । जलवोव की अतिता न अनेक भूत, अनेकाल और शारी परिणतो मे जलव है । जलवोव मे लवध श्रमणो भी है ।

सोमिल के अद्वैत, द्वैत, नित्यवाद और क्षणिकवाद जैसे गम्भीर प्रश्न जो लम्बे समय तक चर्चा करने पर भी सुलझ नहीं सकते थे, उन सभी प्रश्नों का भगवान् महावीर ने अनेकान्त दृष्टि से क्षण भर में समाधान कर दिया। सोमिल महावीर को शब्द जाल में फँसाना चाहता था, इसीलिए उसने श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया था, पर भगवान् तो केवलज्ञानी थे। अतः उनसे उसका वाक्छल किस प्रकार छिप सकता था? 'सरिसव' प्राकृत भाषा का श्लिष्ट शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया है—'सर्वप' और 'सदृशवया'। 'सर्वप' का अर्थ सरसों है और 'सदृशवया' का अर्थ समान उन्नत है। 'माम' भी प्राकृत का श्लिष्ट शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया है—'माष' और 'मास'। 'माप' का अर्थ उड़द है और 'मास' का महीना है। 'कुलत्था' भी प्राकृत का श्लिष्ट शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया है—'कुलस्था' और 'कुलत्था'? 'कुलस्था' का अर्थ कुलीन स्त्री और 'कुलत्था' का अर्थ है—कुलथी— धान्य विशेष।

भगवान् महावीर के तार्किक उत्तरों से सोमिल अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने श्रद्धापूर्वक भगवान् के उपदेश को सुना और कहा—मैं श्रमणधर्म स्वीकार नहीं कर सकता, अतः श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहता हूँ। सोमिल ने भगवान् महावीर से श्रावक धर्म ग्रहण किया और समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग का अधिकारी बना।

कूणिक का भगवान् महावीर के समवसरण में धर्मश्रवण

प्रस्तुत कथानक का प्रारम्भ चम्पानगरी में हुआ है। चम्पा का विस्तृत वर्णन किया गया है। जो सभी आगमों के नगरों के वर्णन का मूल आधार रहा है। वास्तुकला की दृष्टि से यह वर्णन बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्राचीन युग में नगरों का निर्माण किस प्रकार होता था, यह इस वर्णन से स्पष्ट है। नगर की शोभा गगनचुम्बी नव्य भव्य उच्च अट्टालिकाओं से ही नहीं होती बल्कि सघन वृक्षों की हरियाली से होती है। हरियाली लहलहाती है पानी की अधिकता से। इसलिए चम्पा नगरी के साथ पूर्णभद्र चैत्य का भी उल्लेख किया गया है। वन-खण्ड में विविध प्रकार के वृक्ष थे, लताएँ थी और नाना प्रकार के रंग-विरंगे पक्षियों का मधुर कलरव दर्शकों के दिल को लुभाता था। उन सभी वृक्षों में अशोक वृक्ष का स्थान अनूठा था। भारतीय साहित्य में अशोक वृक्ष का उल्लेख हजारों स्थलों पर हुआ है। जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं ने उसके सम्बन्ध में चिन्तन किया है। तोर्थकर भी अशोक वृक्ष के नीचे विराजित होते हैं।^१

चम्पा का अधिपति कूणिक सम्राट था। वह भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसकी भक्ति का जीता जागता चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है।^२ भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में शुभागमन होता है। उनका विराट समवसरण लगता है। सम्राट कूणिक भगवान् को वन्दन के लिए पहुँचता है और उसकी सुभद्रा आदि देवियाँ भी। भगवान् धर्मोपदेश देते हैं। सम्राट कूणिक जैन था या बौद्ध? इस प्रश्न पर हमने अन्यत्र चिन्तन किया है, अतः विशेष जिज्ञासु वहाँ देखें।^३

अम्बड परिव्राजक—

भगवती सूत्र में अम्बड परिव्राजक के सम्बन्ध में संक्षेप में उल्लेख है।^४ औपपातिक में विस्तार से निरूपण है। अम्बड परिव्राजक नामक एक अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख हुआ है^५ जो अगामी चौबीसी में तीर्थकर होगा। औपपातिक में आये हुए अम्बड महाविदेह में मुक्त होंगे।^६ इसलिए दोनों अलग-अलग व्यक्ति होने चाहिए। अम्बड परिव्राजक के सात सौ शिष्य थे। वे कम्पिलपुर नगर से पुरिमताल नगर के लिए प्रस्थित हुए। भयानक जंगल में साथ का जल समाप्त हो गया, किन्तु वहाँ कोई भी व्यक्ति जल देने वाला न होने से उन्होंने शान्त चित्त से भगवान् महावीर को और अपने धर्मचार्य अम्बड परिव्राजक को नमस्कार किया। महान्रतों को ग्रहण कर संलेखना सहित आयु पूर्ण किया। अम्बड परिव्राजक को वीर्यलब्धि एवं वैक्रिय-लब्धि के साथ अवधि-ज्ञान-लब्धि भी प्राप्त थी। वह कम्पिलपुर के सौ घरों में आहार करता था। उसकी आचार-संहिता श्रमणाचार से मिलती-जुलती थी। यद्यपि कच्चे पानी आदि का उपयोग ऐसी बातें हैं, जो श्रमणाचार से मेल नहीं खातीं, इसीलिए अम्बड परिव्राजक को श्रमणोपासक

१. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०.

२. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०—२४.

३. देखिए—औपपातिक सूत्र प्रस्तावना, ले० देवेन्द्रमुनि, पृ० २०—२४. सम्राट कूणिक : एक अनुचिन्तन

४. भगवती सूत्र, शतक १४, उद्देशक ८.

५. एस णं अज्जो ! कण्हे वासुदेवे, रामे वलदेवे, उदये पेढालपुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावड, दारए नियंटे, सच्चइ नियंठीपुत्ते : साविय बुद्धे अंबडे परिव्वायए, अज्जा वि णं सुपासा पासावच्चिज्जा । आगमेस्साए उरसप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पणवत्तिता सिज्जिंहिति जाव—अंतं कांहिति । —स्थानांग सूत्र ६ स्था०, सूत्र ६६२. मुनि कमल संपादित

६. यश्चौपपातिकोपांगे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति सम्भाव्यते ।

—स्थानांगवृत्ति, पत्र ४३४.

माना है। उसने श्रावक व्रत ग्रहण किये थे। अम्बड की भगवान् महावीर के प्रति अनन्य आस्था थी। अन्न में मानिक सद्व्यवस्था के साथ आयु पूर्ण कर ब्रह्म देवलोक में पैदा हुआ और वहाँ ने च्युत होकर महाविदेह में इंद्रप्रतिज कुमार होगा। वहाँ ने निद्र, बुद्ध और मुक्त होगा।

स्थानांग में जो अम्बड परिव्राजक है? उसने भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में धर्मोपदेश प्रथम किया। वहाँ में यह राजगृही की ओर प्रस्थित होने लगा तब भगवान् के अम्बड ने कहा—श्राविका मुनसा को कुशल समाचार कहना। अम्बड बोली लगा—वह महान् पुण्यवती है, जिसे भगवान् स्वयं कुशल समाचार प्रेषित कर रहे हैं। मुनसा में ऐसा कौन सा पुण्य है? मैं उसके सम्भवत्व की परीक्षा लूँगा।

परिव्राजक के वेष में ही अम्बड मुनसा के वहाँ पहुँचा और बोना—आयुष्मती ! मुझे आहार-दान दो। तुम्हें धर्म लीगा। मुनसा ने कहा—किसको देने में धर्म है, वह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। अम्बड आकाश में पचानन की मुद्रा में स्थित होकर जन-जन के मानस को विस्मित करने लगा। लोगों ने भोजन के लिए उसे निमन्त्रण दिया। उसने किसी का भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और कहा—मैं मुनसा के वहाँ पर ही भोजन ग्रहण करूँगा। लोग हर्ष में विभोर होकर वधाट्या देने के लिए पहुँचे। मुनसा ने कहा—मुझे पाखण्डियों से कुछ भी लेना-देना नहीं है। लोगों ने मुनसा की बात अम्बड से कह दी। अम्बड ने कहा—यदि विगुह मध्यगृहर्जन की धारिका है, उसके अन्तर्मानस में किंचित् मात्र भी व्यामोह नहीं है। वह स्वयं मुनसा के वहाँ पर गया। मुनसा ने उसका स्वागत किया। उसमें वह प्रतिबुद्ध हुआ।

शीघ्रनिकाय के अम्बडमुन में अम्बड नाम के एक पण्डित ब्राह्मण का वर्णन है। निजीपक्षिणी पीठिका में प्रथम है—भगवान् महावीर अम्बड को धर्म में स्थिर करने के लिए राजगृह पधारि थे।^१

मद्रुक धमणोपासक—

राजगृह के गुणशीलक उद्यान के नन्दिकट कालादायी, जौलोदायी आदि अन्यनीर्धी रहते थे। राजगृह में मद्रुक धमणोपासक था, जो जीवादि तन्त्रों का जाना था। भगवान् महावीर के आगमन को सुनकर वह उनको वन्दन करने के लिए जा रहा था। मार्ग में अन्यनीर्धीको ने पूछा—तुम्हारे धर्माचार्य भगवान् महावीर पंचास्तिकाय को प्ररूपणा करते हैं, पर उसे कैसे माना जाय?

मद्रुक—यन्तु के कार्य में उसका अस्तित्व जाना और देखा जा सकता है। बिना कार्य के कारण दिखाई नहीं देता।

अन्यनीर्धी—तू कैसा धमणोपासक है, जो पंचास्तिकाय को जानता, देखता नहीं; तथापि मानता है।

मद्रुक—पवन बहती है यह नश्य है न?

अन्यनीर्धी—हां, बहती है।

मद्रुक—बहती हुई पवन को तुम देखते हो?

अन्यनीर्धी—यह दिखाई नहीं देता।

मद्रुक—पवन में सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों का अनुभव होता है न? उन सुगन्ध और दुर्गन्ध वाले पक्षियों को क्या तुम देखते हो?

अन्यनीर्धी—सही देखते।

मद्रुक—अग्नि की लकड़ी में जलिन नहीं हुई है, क्या उसे देखते हो?

अन्यनीर्धी—नहीं।

मद्रुक—समुद्र के पार जाय, जलन, जलन आदि वस्तु से पदार्थ है, क्या उन्हें तुम देखते हो?

अन्यनीर्धी—क्या।

मद्रुक—वज्रसीमे में विविध प्रकार के पदार्थ हैं, क्या उन्हें तुम देखते हो?

अन्यनीर्धी—नहीं।

मद्रुक ने विपिन की परत करत हुए कहा—जिन पदार्थों को तुम नहीं देखते, वे यदि जलन, जलन, ही जलन, जलन को पतारी हाट से जल में पतारी का जलन ही जलन है। उन सुगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, दुर्गन्ध, ही जलन, जलन को जलन में देखते, वे जलन जलन का मूल ही जलन हैं।

मद्रुक भगवान् के समवसरण में पहुँचा। भगवान् ने मद्रुक को सम्बोधित कर कहा—तुमने अन्यतीर्थियों को उचित उत्तर दिया है। यह सुनकर श्रमणोपासक मद्रुक अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने कहा—यह श्रमणोपासक रह करके ही जीवन के अन्त में संथारा कर अरुणाभ विमान में देव बनेगा।

प्रस्तुत कथानक में मद्रुक श्रमणोपासक का गम्भीर ज्ञान उजागर हुआ है। श्रमणोपासक बनना ही पर्याप्त नहीं है, श्रमणोपासकों को तत्त्वों का परिज्ञान होना भी आवश्यक है, जिससे वे अन्य दार्शनिकों के आक्षेपों का परिहार कर सकें। अन्य श्रमणोपासक भी इस दृष्टि से आगे बढ़ें, उन्हें भी प्रेरणा प्राप्त हो, इसलिए भगवान् महावीर ने अपनी भरी सभा में मद्रुक की प्रशंसा कर अन्य को प्रेरणा दी। आधुनिक युग के श्रमणोपासक भी मद्रुक के जीवन से प्रेरणा लें और वे तत्त्वदर्शन का गहन अभ्यास कर जैन धर्म की प्रबल प्रभावना करें।

प्रवचन निह्व—

चतुर्थ स्कन्ध में भगवान् पार्श्व और महावीर के तीर्थ में होने वाले श्रमणोपासकों की कथाएँ दी गई हैं। वे सभी कथाएँ अपने आप में एक अभिनव प्रेरणा लिए हुए हैं। उसके बाद प्रवचन निह्वों का उल्लेख है। स्थानांग सूत्र में प्रवचन निह्व सात बताये हैं—१. जमालि २. तिष्यगुप्त ३. आपाढ़ ४. अश्वमित्र ५. गंग ६. रोहगुप्त और ७. गोष्ठाहाहिल। इन सातों ने क्रमशः बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, समुच्छेदिक, वैक्रिय, त्रैराशिक और अवद्विक मत की संस्थापना की थी।

सुदीर्घकालीन परम्परा में विचार-भेद होना अस्वाभाविक नहीं है। जैन परम्परा में भी इस प्रकार विचार-भेद के उल्लेख प्राप्त हैं। जिन श्रमणों ने जैन परम्परा का परित्याग कर अन्य धर्म को स्वीकार कर लिया, उन्हें निह्व नहीं कहा है। निह्व वे हैं, जिनका वर्तमान परम्परा के साथ मतभेद हुआ किन्तु उन्होंने किसी अन्य मत को स्वीकार नहीं किया। जैन शासन में रहकर ही किसी एक विषय का अपलाप करने वाले निह्व की अभिधा से अभिहित किये गये हैं। सप्त निह्वों में से दो निह्व भगवान् महावीर का कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् हुए और शेष पाँच भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् हुए।^१ निह्वों का अस्तित्व काल श्रमण भगवान् महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदहवें वर्ष से निर्वाण के पश्चात् पाँच सौ चौरासी वर्ष तक का है।^२

जमालि निह्व—

भगवान् महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के चौदह वर्ष पश्चात् श्रावस्ती में बहुरतवाद की उत्पत्ति हुई।^३ इस मत के संस्थापक जमालि थे। वे कुण्डपुर के रहने वाले थे। भगवान् महावीर की बड़ी बहन सुदर्शना उनकी माँ थी और भगवान् महावीर की पुत्री प्रियदर्शना के साथ जमालि का पाणिग्रहण हुआ था। जमालि ने पाँच सौ पुरुषों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की और उनकी पत्नी प्रियदर्शना भी हजार महिलाओं के साथ दीक्षित हुई। जमालि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। विविध प्रकार की वे तपस्याएँ करने लगे। एक बार पृथक विहार की उन्होंने भगवान् से अनुमति मांगी किन्तु प्रभु मौन रहे। वे अपने पाँच सौ निर्ग्रन्थों के साथ पृथक विहार करने लगे। विहार करते हुए वे श्रावस्ती पहुँचे। तिन्दुक उद्यान के कोष्ठक चैत्य में विराजे। तप से उनका शरीर अत्यन्त क्रुश हो गया था तथा पित्त ज्वर से शरीर जलने लगा। वे बैठने में असमर्थ हो गये। एक दिन तीव्रतम वेदना से पीड़ित होकर उन्होंने श्रमणों को आदेश दिया—विछौना करो। पित्तज्वर की वेदना से एक-एक पल उन्हें बहुत ही भारी लग रहा था। उन्होंने पूछा—विछौना कर लिया है अथवा किया जा रहा है ?^४ श्रमणों ने कहा—विछौना किया नहीं, किया जा रहा है। यह सुनकर जमालि के मन में विचिकित्सा हुई—भगवान् महावीर क्रियमाण को कृत कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष

१. णाणुप्पत्तीय दुवे, उप्पण्णा णिन्दुए सेसा।

—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८४

२. चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोणिसया। अट्ठावीसा य दुवे, पंचेव सया उ चोयाला ॥ पंचसया चुलसीया....

—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ७८३, ७८४.

३. चउदस वासाणि तथा जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्सा। तो बहुरयाणदिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ता। —आवश्यकभाष्य, गाथा १२५

४. आचार्य मलयगिरि ने घटनाक्रम और सिद्धान्त पक्ष का जो निरूपण किया है। वह भगवती के निरूपण से जरा पृथक है। उनकी दृष्टि से जमालि ने श्रमणों से पूछा—विछौना किया या नहीं ? श्रमणों ने कहा—कर लिया। जमालि ने उठकर देखा कि विछौना अभी पूरा नहीं किया गया है, वह क्रुद्ध हो उठा। उसने चिन्तन किया—क्रियमाण को कृत कहना मिथ्या है। अर्द्धसंस्तृत संस्तारक असंस्तृत ही है। उसे संस्तृत नहीं माना जा सकता। —देखें, आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पृ. ४०२.

निहार रहा हूँ—विछोना किया जा रहा है, उसे कृत कैसा माना जाये ? तात्कालिक धरमा के आधार पर उसमें निश्चय किया 'क्रियमाण को कृत नहीं कहा जा सकता'। जो कार्य सम्पन्न हो चुका है उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य ही निर्णय अन्तिम क्षणों में होनी है, प्रथम, द्वितीय प्रभृति क्षणों में नहीं। उन्होंने अपने जिन्य समुदाय को बुलाकर कहा—भगवान् महावीर जो चलायमान है उसे चर्चित, जो उदीर्यमान है, उसे उदीरित और जो निर्जीर्यमान है उसे निर्जीर्य कहते हैं, परन्तु अपने प्रभुभार के आधार पर कहता हूँ कि यह धारणा मिथ्या है। विछोना क्रियमाण है किन्तु कृत नहीं, संतोष्यमाण है किन्तु सम्पन्न नहीं है।

कितने ही निर्ग्रन्थ श्रमण जमानि के कथन से महमत हुए तो कितने ही निर्ग्रन्थ श्रमणों को उनका कथन उचित लगा। स्थविर निर्ग्रन्थों ने जमानि को समझाने का भी उपक्रम किया, और जब देखा कि वे कितनी भी स्थिति में अपनी मिथ्या धारणा को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं तो वे जमानि को छोड़कर भगवान् महावीर की शरण में पहुँच गये।

महागती प्रियदर्शना श्रावस्तो में ही ढंके कुम्भकार के यहाँ टहरी हुई थी। जब वह जमानि के दर्शनार्थ आई तो जमानि ने अपनी गारी बात उससे कही। अनुराग के कारण प्रियदर्शना को भी जमानि की बात नहीं प्रतीत हुई। उसने अन्य गारीयों को भी जमानि का सिद्धान्त समझाया। प्रियदर्शना ने ढंके कुम्भकार को भी जमानि के सिद्धान्त से परिभय कराया। शक ने कहा—जमानि वाला सिद्धान्त मुझे यथाथ नहीं लगता; सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रभु महावीर की वाणी सत्य है।

एक बार प्रियदर्शना स्वाध्याय में रत थी। ढंके ने एक अंगारा उन पर फेंका, उसकी संघाटी [गार्डी] तापत होना शुरू गया। माध्वी ने कहा—ढंके ! तुमने मेरी संघाटी क्यों जलायी ? उसने कहा—संघाटी कहाँ जाती, यह तो जब नहीं है। इन्होंने क्रियमाण कृत का रहस्य समझाया। प्रियदर्शना को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। उसने जमानि ही समझाने का प्रयत्न किया। जब जमानि न समझा तो वह हजार माध्वियों के साथ भगवान् महावीर के संघ में चली गई।

जमानि एक बार भग्ना नगरी गये, वही पर भगवान् महावीर भी विराज रहे थे। वे भगवान् के सन्निहित पदों की ओर कहा—आपके अन्य जिन्य अमर्षज वणा में ही आप से पृथक हुए हैं, पर मैं सर्वज्ञ होकर आपसे अलग हुआ हूँ। प्रतीकार भी हुए किन्तु जमानि अपनी धारणा पर ही अटिग रहे। 'क्रियमाण कृत नहीं है,' उन सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। वे महावीर के संघ में सम्मिलित नहीं हुए।

बहुरथवारी द्रव्य की निष्पत्ति में दीर्घकाल की अपेक्षा स्वीकार करते हैं, किन्तु क्रियमाण को कृत नहीं मानते। सर्व निष्पन्न होने पर ही उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

जीवप्रार्थेशिकवाद के संस्थापक : "तिष्वमुप्त"—

भगवान् महावीर के वैयर्थ्य-प्राप्ति के सोलह वर्ष पञ्चान् ऋषभपुर में जीव प्रार्थेशिकवाद ही उपनिषद् हुई। यह ऋषभपुर का प्राचीन नाम ऋषभपुर था। एक एक बार आचार्य वसु राजगृह आये। ये जोरत पूर्व के धारक थे। अपने जिन्य निष्पन्नता का आत्मपराद पूर्व का अध्ययन करा रहे थे। उनमें भगवान् महावीर और गोविम का संवाद था। गोविम ने कहा—भगवान् महावीर के एक प्रदेशार्थो जीव कहा जा सकता है ?

भगवान्— नहीं ! श्री, तीन वाच्यन् नरवान प्रदेश को भी जीव नहीं कह सकते हैं। इस से म पत प्रसन्न हुए तो जीव नहीं कहा जा सकता। जीव अण्ड भवन रूप है।

प्रदान की है। आगश्री अग्निम प्रदेण का ही वास्तविक मानते हैं, दूसरे प्रदेणों को नहीं, उगलिण मने प्रत्येक पदार्थ का अन्तिम भाग आगको को दिया है।

तिष्यगुप्त को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। मिथश्री ने अच्छी तरह ने गिदा बहगई। तिष्यगुप्त पुनः भगवान् महावीर के शासन में सम्मिलित हो गया।^१

जीव के असंख्य प्रदेण होते हैं। किन्तु जीवप्रार्थनिकवाद के मतानुसार जीव के चरम प्रदेण को ही जीव माना जाता था, शेष प्रदेणों को नहीं।

अव्यक्तवाद के प्ररूपक : "आचार्य आपाड़"—

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ चौदह वर्ष पश्चान् ज्वेताम्बिका नगर में 'अव्यक्तवाद' की उत्पत्ति हुई।^२ इस वाद के प्रवर्तक आचार्य आपाड़ के शिष्य थे। एक वार ज्वेताम्बिका नगरी के पोनाम उद्यान में वे अपने शिष्यों को योगाभ्यास करा रहे थे। एकाएक आचार्य आपाड़ को हृदयजूल उत्पन्न हुआ और वे उन्मी क्षण मर गये। शीघ्रम कल्प में देव बने। अवधिज्ञान से अपने मृत कलेवर को और योग-माधना में लीन शिष्यों को देखा। योग-माधना में शिष्य इतने तल्लीन थे कि गुरु के मरने का भान भी उन्हें नहीं था। देव रूप आचार्य सोचने लगे—मेरे बिना शिष्यों को कौन वाचना देगा ? अतः उन्होंने पुनः अपने मृत शरीर में प्रवेश किया। जब शिष्यों की योगमाधना का क्रम पूरा हो गया तो आचार्य आपाड़ ने देव रूप में प्रकट होकर कहा—श्रमणों ! मुझे क्षमा करना। मैं असंयती था तथापि संयतियों से नमस्कार करवाया। मृत्यु की नारी घटना उन्होंने शिष्यों के सामने रख दी। श्रमणों को यह सन्देह हो गया कि कौन श्रमण है और कौन देव है ? यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, इसलिए सभी अव्यक्त है। स्थविरों ने समझाने का प्रयास किया, पर वे नहीं समझे।

एक वार वे विहार करते हुए राजगृह आये। वहाँ पर मौर्यवंशीय राजा बलभद्र श्रमणोपासक था। उसने उन शिष्यों के सम्बन्ध में सुन रखा था। उन्हें प्रतिबोध देने के लिए अपने चार व्यक्तियों को कहा—उन श्रमणों को यहाँ पर बुलाकर लाओ। जब श्रमण वहाँ पहुँचे तो राजा ने कहा—इन्हें कोड़े लगाओ। राजा के आदेश से कोड़े लगाये गये। उन श्रमणों ने कहा—हम तो तुम्हें श्रावक समझकर आये थे, पर तुम तो हमें पिटवा रहे हो। राजा ने कड़क कर कहा—तुम तस्कर हो या गुप्तचर हो या अन्य कुछ हो, यह कौन जानता है ? उन श्रमणों ने कहा—हम तो साधु हैं। राजा ने कहा—तुम साधु हो या चारक हो, यह निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है ? मैं श्रावक हूँ या नहीं हूँ, यह भी निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है ?

श्रमणों को अपनी भूल का भान हुआ। उन्होंने अपने अज्ञान पर खेद जाहिर किया। राजा ने कहा—मैंने आपको प्रतिबोध देने हेतु ही यह उपक्रम किया था, अतः आप मुझे क्षमा करें। अव्यक्तवाद का यह अमिमत्त या कि सभी कुछ अनिश्चित है, अव्यक्तव्य है। निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते। यह पूर्ण स्पष्ट है कि अव्यक्तवाद के प्रवर्तक आचार्य आपाड़ नहीं थे। आचार्य आपाड़ का देव रूप इस वाद का निमित्त बना था, इसीलिए वे इस वाद के प्रवर्तक रूप में विश्रुत हुए। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि आचार्य आपाड़ के शिष्यों ने अव्यक्तवाद का प्रचलन किया। जिस समय प्रस्तुत घटना या प्रस्तुत प्रसंग उद्दंकित किया गया, उस समय उन शिष्यों का नाम स्मरण न होने से सांकेतिक रूप में अभेदोपचार की दृष्टि से आचार्य आपाड़ का नाम दिया गया। आचार्य अभयदेव का अभिमत्त है—आचार्य आपाड़ अव्यक्त मत की संस्थापना करने वाले श्रमणों के आचार्य थे, इसीलिए वे अव्यक्तवाद के आचार्य के रूप में विश्रुत हुए।^३

समुच्छेदवाद के प्ररूपक : "आचार्य अश्वमित्र"—

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ वीस वर्ष पश्चात् मिथिलापुरी में 'समुच्छेदवाद' की उत्पत्ति हुई।^४ इसके प्रवर्तक आचार्य अश्वमित्र थे। एक वार मिथिला नगरी के लक्ष्मीगृह चैत्य में आचार्य महागिरि अवस्थित थे। उनके शिष्य का नाम कौंडिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। दशवें अनुप्रवाद [विद्यानुप्रवाद] पूर्व के नैपुणिक वस्तु का अध्ययन चल रहा था। उसमें छिन्नछेद नय की दृष्टि से यह आलापक था, कि प्रथम समय में समुत्पन्न सभी नारक विच्छिन्न हो जायेंगे। द्वितीय-तृतीय आदि

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०५, ४०६.

२. चउदस दो वाससया तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स।

अव्यक्तगाण दिट्ठी सेअविआए समुप्पन्ना ॥

३. सोउपव्यक्तमतधर्माचार्यो, न चायं तन्मतप्ररूपकत्वेन किन्तु प्रागवस्थायामिति।

४. वीसा दो वाससया तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स।

सामुच्छेदइअदिट्ठी, मिहिलपुरीए समुप्पन्ना ॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १२६.

—स्थानांगवृत्ति, पत्र ३६१.

—आवश्यकभाष्य, गाथा १३१.

समय में उत्पन्न नैरयिक भी विच्छिन्न हो जायेंगे। इसी तरह सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे। इस प्रकार पर्यायवाद के प्रकरण को श्रवण कर अश्वमित्र का मन शंकित हुआ। वह चिन्तन करने लगा—वर्तमान समय में समुत्पन्न सभी जीव विच्छिन्न हो जायेंगे तो सुकृत और दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा? उत्पन्न होने के पश्चात् सब की मृत्यु हो जायेगी।

महागिरि ने कहा—वत्स ! ऐसा नहीं है। यह जो कथन किया गया है, एक नय की अपेक्षा से है, सर्व नयों की अपेक्षा से नहीं। निर्ग्रन्थ प्रवचन सर्वनय सापेक्ष है, इसीलिए शंका करना उचित नहीं। वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, पर एक पर्याय के नष्ट होने पर वस्तु नष्ट नहीं होती। आचार्य के समझाने पर भी जब वह नहीं समझा तो उन्होंने उसे संघ से पृथक् कर दिया।

एक बार अश्वमित्र कम्पलपुर पहुँचा। वहाँ पर 'खण्डरथा' नाम श्रावक चुंगी अधिकारी था। उसे अश्वमित्र की विचार-धारा का परिज्ञान था, अतः उसने उसे पकड़ा और पिटाई की। अश्वमित्र ने कहा—मैंने सुना था कि तुम श्रावक हो। श्रावक होकर तुम साधुओं को पीटते हो, क्या यह उचित है?

श्रावक—आपके अभिमतानुसार वे श्रावक भी विच्छिन्न हो गये और जो प्रव्रजित श्रमण है वे भी विच्छिन्न हो गये। न हम श्रावक रहे और न आप साधु ! लगता है आप चोर हैं।

अश्वमित्र समझ गया, उसे अपनी भूल का परिज्ञान हो गया। वह प्रतियुद्ध हाँकर पुनः भगवान् महावीर के संघ में सम्मिलित हो गया।

समुच्छेदवादी प्रत्येक पदार्थ का सम्पूर्ण विनाश मानते थे। वे एकान्त समुच्छेद का निरूपण करने के कारण निह्वन कहलाये।^१

द्विक्रियावाद के प्रवर्तक : "आचार्य गंग"—

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के दो सौ अट्ठाईस वर्ष पश्चात् उल्लूकातीर नगर में 'द्विक्रियावाद' की उत्पत्ति हुई।^२ इसके प्रवर्तक आचार्य गंग थे। उल्लूका नदी के एक तट पर खेड़ा वसा हुआ था तो दूसरे तट पर उल्लूकातीर नामक नगर था। वहाँ पर आर्य महागिरि के शिष्य आर्य धनगुप्त थे। उनके शिष्य का नाम गंग था। जो खेड़े में ठहरा हुआ था, वह आचार्य को वन्दन करने के लिए चला। मार्ग में उल्लूका नदी थी। पैरों में पानी की ठण्डक का अनुभव हो रहा था तो सिर चिलचिलाती धूप से गरम हो रहा था। वह सोचने लगा—आगमों में वर्णन है—एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो क्रियाओं का नहीं। किन्तु मुझे दोनों क्रियाओं का साथ में वेदन हो रहा है। वह आचार्य देव के पास पहुँचा और अपनी बात कही। आचार्य ने कहा—वत्स ! एक समय में एक क्रिया का वेदन होता है। मन का क्रम बहुत ही सूक्ष्म है। इसीलिए हमें उसकी पृथक्ता का अनुभव नहीं होता। विविध प्रकार से समझाने पर भी गंग नहीं माना तो आचार्य ने उसे संघ से पृथक् कर दिया। आचार्य गंग विचरण करता हुआ राजगृह पहुँचा। राजगृह में 'महातपतीरप्रभ' नामक एक झरना था। वहाँ 'मणिनाग' नामक नाग का चैत्य था। आचार्य गंग वहीं पर ठहरे। धर्म श्रवणार्थ परिपद उपस्थित हुई। आचार्य ने द्विक्रियावाद का अपने प्रवचन में समर्थन किया। मणिनाग ने गंग को समझाने के लिए कोई तर्क नहीं दिया। इसलिए वह पूर्वकथित अव्यक्तवाद, समुच्छेदवाद आदि के समान द्विक्रियावाद को किसी प्रबल तर्क द्वारा परास्त नहीं कर पाया। तब मणिनाग ने परिपद को सम्बोधित करके कहा—यह कुशिष्य है क्योंकि यहाँ पर एक बार भगवान् महावीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है। तो क्या यह प्रभु महावीर से अधिक ज्ञानी है? तू अपनी विपरीत प्ररूपणा का परित्याग कर ! तभी तेरा कल्याण होगा। मणिनाग की बात को सुनकर गंग घबराया। अपने गुरु के सन्निकट आकर प्रायश्चित्त लिया तथा वे भगवान् महावीर के संघ में सम्मिलित हो गये।^३

द्विक्रियावादी एक ही समय में दो क्रियाओं का अनुवेदन मानते थे।

त्रैराशिकवाद के प्रवर्तक : "आचार्य रोहगुप्त"—

श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के पाँच सौ चोमालीस वर्ष बाद अन्तरञ्जिका नगरी में 'त्रैराशिक' मत का प्रवर्तन

१. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति, पत्र ४०८, ४०९.

२. अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स । दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे सम्पुप्पन्ना ॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १३३.

३. (क) आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति पत्र ४०९, ४१०.

(ख) मणिनागेणारद्धो भयोववत्ति पडिवोहितोवोत्तु । इच्छामो गुरुमूलं गंतुण ततो पडिवकंतो ॥

—विशेष आवश्यकभाष्य, गाथा २४५०.

हुआ।^१ इसके प्रवर्तक आचार्य रोहगुप्त थे जिनका अपर नाम 'पड्लुक' भी था। अन्तरञ्जिका नगरी का राजा 'वलश्री' था। भूतगृह नामक चैत्य था। आचार्य श्रीगुप्त वहाँ पर ठहरे हुए थे। रोहगुप्त उनका संन्यासार्थीय भाणजे या। वह एक बार आचार्य को बन्दन करने के लिए जा रहा था। उसे एक परिव्राजक मिला, जिसका नाम 'पोट्टशाल' था। उसने अपना पैट बांध रखा था और उसके हाथ में जम्बूवृक्ष की टहनी थी। उसने कहा—कहीं जान मे पैट न फट जाय, इसीलिए मैंने इसे बांध रखा है। जम्बूद्वीप में मेरा कोई भी प्रतिवाद करने वाला नहीं है। अतः जम्बूवृक्ष की शाखा हाथ में घुमा रहा हूँ। सभी धार्मिकों को मैं चुनौती देता हूँ कि ये मुझे पराजित करें पर आज दिन तक किसी ने भी मेरी चुनौती को स्वीकार नहीं किया है। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया और आचार्य के पास पहुँचा। आचार्य से निवेदन किया—मैंने पोट्टशाल की चुनौती को स्वीकार किया है। आचार्य ने कहा—वत्स ! तेने विना मांने-ममझे ही यह स्वीकृति दी हे क्योंकि पोट्टशाल परिव्राजक वृश्चिक विद्या, सर्पविद्या, भूपकविद्या, मृगीविद्या, बराहीविद्या, कागविद्या, पोताकीविद्या इन गान विद्याओं में पारंगत है। इसीलिए वह तेरे से अधिक बलवान है।

रोहगुप्त भय से कांप उठा—भगवन् ! अब मैं क्या करूँ ? क्या यहाँ मे अन्वय भागकर चला जाऊँ ?

आचार्य ने कहा—अब भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। मैं तुझे उन नाना विद्याओं की प्रतिपक्षी विद्या बता देता हूँ। रोहगुप्त को मायूरी, नाकुली, विडाली, व्याथ्री, सिंही, अन्की और उलावकी ये नात विद्यायें मियाई। साथ ही रजोहरण को अभिमन्त्रित कर कहा—तू इन सात विद्याओं से उसको पराजित कर सकेगा। यदि इन विद्याओं के अतिरिक्त अन्य किसी विद्या की आवश्यकता हो तो रजोहरण को घुमाना, जिससे कोई भी शक्ति तुझे पराजित नहीं कर सके।

गुरुदेव के अशीर्वाद को लेकर रोहगुप्त राज-सभा में पहुँचा। पोट्टशाल भी उधर से आया। पोट्टशाल ने अपने पक्ष की संस्थापना करते हुए कहा—राशि दो हैं—जीव राशि और अजीव राशि। रोहगुप्त ने कहा—राशि तीन हैं—जीव, अजीव और नोजीव। घट-पट आदि अजीव हैं, मनुष्य, तिर्यच, नारक आदि जीव हैं, छिपकली की कटी हुई पूँछ नोजीव है।

पोट्टशाल को विविध युक्तियों से उसने पराजित कर दिया।

रोहगुप्त से पराजित होकर पोट्टशाल अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, उसने विद्याओं का प्रयोग किया। प्रतिपक्षी विद्याओं से उसकी सारी विद्याएँ विकल हो गईं। अन्त में परिव्राजक ने गर्दभीविद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने आचार्य द्वारा दिये गये अभिमन्त्रित रजोहरण से उस विद्या को भी निष्फल कर दिया। सभी सभासदों ने पोट्टशाल परिव्राजक को पराजित घोषित कर दिया।

विजय प्राप्त कर रोहगुप्त आचार्य के पास आया और सम्पूर्ण वृत्त से उन्हें परिचित किया। आचार्य ने उपालम्भ देते हुए कहा—तेने असत्य प्ररूपणा की है। राशि तीन नहीं, दो ही हैं। अभी भी समय है। राजसभा में जाकर अपनी भूल स्वीकार करो। पर रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसे तो अपनी प्रज्ञा पर अहंकार था। आचार्य ने विविध रूपकों के द्वारा उसे समझाया, पर जब वह बिल्कुल ही अपनी मिथ्या बात को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ तो आचार्य को लगा—यह स्वयं तो भ्रष्ट हुआ ही है, दूसरों को भी भ्रष्ट करेगा। इसलिए राज-सभा में जाकर मैं इसका निग्रह करूँ। आचार्य राजसभा में पहुँचे और राजा वलश्री से कहा—मेरे शिष्य रोहगुप्त ने विपरीत तथ्य की स्थापना की है। हम जैनी दो ही राशि मानते हैं। पर वह अहंकार से ग्रसित होकर इस सत्य को स्वीकार नहीं कर रहा है। आप उसे राजसभा में बुलायें। मैं उससे चर्चा करूँगा। राजा ने रोहगुप्त को राज-सभा में बुलाया। छह महीने तक चर्चा चलती रही। राजा वलश्री भी परेशान हो गया। उसने आचार्य देव से निवेदन किया—भगवन् ! इस चर्चा के कारण राजकार्य में बाधा आ रही है। आचार्य ने कहा—मैं आज ही इसका निग्रह करूँगा। वाद प्रारम्भ हुआ आचार्य ने कहा—यदि तीन राशि वाली बात सही है तो हम कुत्रिकापण चले। राजा आदि सभी को लेकर आचार्य कुत्रिकापण पहुँचे। वहाँ अधिकारी देव से कहा—हमें जीव, अजीव और नोजीव के पदार्थ प्रदान करो। उस देव ने जीव, अजीव के पदार्थ लाकर दिये और कहा—नोजीव का पदार्थ इस विश्व में नहीं है। राजा को आचार्य के कथन की सत्यता प्रतीत हुई। आचार्य देव ने एक सौ चौमासीस प्रश्नों के द्वारा रोहगुप्त को निग्रह कर पराजित किया।^२

१. पंच सया चोयाला तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स । पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठ उप्पन्ता ॥

—आवश्यकभाष्य, गाथा १३५.

२. आवश्यक नियुक्तिदीपिका में १४४ प्रश्नों का विवरण इस प्रकार प्राप्त है—

वैशेषिक षट् पदार्थ का निरूपण करते हैं—१. द्रव्य २. गुण ३. कर्म ४. सामान्य ५. विशेष ६. समवाय ।

द्रव्य के नौ भेद हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, मन और आत्मा ।

राजा बलश्री ने आचार्य का अत्यधिक सम्मान किया। रोहगुप्त का तिरस्कार हुआ। राजा ने आदेश दिया—मेरे राज्य से चला जा। आचार्य ने उसे संघ से पृथक् कर दिया। रोहगुप्त अपने मत का प्ररूपण करता रहा। उसके अनेक शिष्यों ने उसके तत्त्व का प्रचार किया जिससे “त्रैराशिक” मत प्रचलित हुआ।

अबद्धिकवाद के प्रवर्तक : “आचार्य गोष्ठामाहिल”—

श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के पाँच सौ चौरासी वर्ष पश्चात् दशपुर नगर में गोष्ठामाहिल ने “अबद्धिक मत” की संस्थापना की।^१

दशपुर नगर में आर्यरक्षित ब्राह्मणपुत्र था। वह अनेक विद्याओं में पारंगत होकर घर लौटा। माता के द्वारा प्रेरित होकर वे आचार्य तोसलीपुत्र के पास दीक्षा ग्रहण कर दृष्टिवाद का ऊध्ययन करते हैं। उसके पश्चात् आर्य वज्र से नौ पूर्वों का अध्ययन कर दशवें पूर्व के चौबीस यविक ग्रहण किये। दुर्बलिका पुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल—ये आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे। दुर्बलिका पुष्यमित्र एक वार अर्थ की वाचना प्रदान कर रहे थे। विध्य उनकी वाचना के पश्चात् उस पर चिन्तन एवं पुनरावृत्ति कर रहा था। विषय था—जीव के साथ कर्मों का बंध तीन प्रकार से होता है—१. स्पृष्ट—कितने ही कर्म जीव-प्रदेशों के साथ स्पर्श करते हैं और स्थिति का परिपाक होने पर वे उनसे अलग हो जाते हैं। उदाहरण के रूप में—दीवाल पर फँकी गई धूल दीवाल का स्पर्श कर नीचे गिर जाती है। २. स्पृष्टवद्ध—कितने ही कर्म जीव प्रदेशों का स्पर्श कर बद्ध होते हैं और वे कुछ समय के पश्चात् पृथक् हो जाते हैं। दीवाल पर गीली मिट्टी फँकने पर कितनी ही मिट्टी चिपक जाती है और कितनी ही नीचे गिर पड़ती है। ३. स्पृष्टवद्ध निकाचित—कितने ही कर्म जीवप्रदेशों के साथ गाढ़ रूप से बंध जाते हैं। वे कालान्तर में पृथक् हो जाते हैं।^२

इस विवेचन को सुनकर गोष्ठामाहिल के मन में यह विचार पैदा हुआ—यदि कर्म को जीव के साथ बद्ध माना जायेगा तो मोक्ष का अभाव हो जायेगा। कर्म जीव के साथ स्पृष्ट होते हैं, बद्ध नहीं, वे कालान्तर में वियुक्त हो जाते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मक रूप से बद्ध नहीं हो सकता। विध्य ने गोष्ठामाहिल से कहा—जैसा आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र ने मुझे बताया है वैसा ही मैं कह रहा हूँ, पर उसे समझ में नहीं आया।

नौवें पूर्व में प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में वाचना चल रही थी। गोष्ठामाहिल ने सोचा—अपरिमाण प्रत्याख्यान अच्छा है। परिमाण प्रत्याख्यान में वाञ्छा दोष उत्पन्न होता है। एक व्यक्ति परिमाण प्रत्याख्यान की दृष्टि से पौरुषी, उपवास, आदि विविध प्रकार के तप करता है किन्तु ज्योंही कालमान पूर्ण होता है, उसमें आहार की इच्छा तीव्र हो जाती है। इसलिए वह दोष-युक्त है। गोष्ठामाहिल ने अपने विचार विध्य को कहे। विध्य ने उधर ध्यान नहीं दिया तब दुर्बलिका पुष्यमित्र से उसने कहा। दुर्बलिका पुष्यमित्र ने समाधान करते हुए कहा—अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त अनुचित है। अपरिमाण का अर्थ यावत् शक्ति है या भविष्यतकाल है? यदि तुम यावत् शक्ति अर्थ ग्रहण करते हो तो हमारे मत को ही स्वीकार करना है। यदि द्वितीय अर्थ स्वीकार करते हो तो व्यक्ति मरकर देवरूप में उत्पन्न होता है। उसमें सभी ब्रतों के भंग का प्रसंग उपस्थित हो जायेगा। इसीलिए अपरिमित प्रत्याख्यान का सिद्धान्त ठीक नहीं है। आचार्य ने गोष्ठामाहिल को विविध प्रकार से समझाया, पर वह अपने आग्रह पर दृढ़ रहा। उसने विभिन्न स्थविरों से यह पूछा, स्थविरों ने भी गोष्ठामाहिल को जिनेश्वर देव की आशातना न करने का संकेत किया। पर गोष्ठामाहिल अपने मत से किञ्चित् मात्र भी विचलित नहीं हुआ। स्थविरों ने संघ को एकत्रित किया और शासनदेव से कहा—

गुण के सतरह भेद हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

कर्म के पाँच भेद हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, प्रसारण, आकुञ्चन और गमन।

सत्ता के पाँच भेद हैं—सत्ता, सामान्य, सामान्य विशेष, विशेष और समवाय।

इन भेदों का योग $[६ + १७ + ५ + ५] = ३३$ होता है। इनको पृथ्वी, अपृथ्वी, तो पृथ्वी, तो अपृथ्वी—इन विकल्पों से गुणित करने पर $३३ \times ४ = १४४$ भेद प्राप्त होते हैं।

आचार्य ने इसी प्रकार के १४४ प्रश्नों के द्वारा रोहगुप्त को निरुत्तर कर उसका निग्रह किया।

—आवश्यकनियुक्ति दीपिका पत्र १४५, १४६.

१. पंचसया चूलसीआ तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स । अबद्धिगाण दिट्ठि दसपुरनयरे समुप्पन्ना ॥

—आवश्यकभाष्य, गाया १४१.

२. आवश्यक, मलयगिरिवृत्ति पत्र ४१६ में इनके स्थान पर बद्ध, बद्धस्पृष्ट, और बद्धस्पृष्ट निकाचित—ये शब्द दिये गये हैं।

सीमन्धर स्वामी से जाकर पूछो— गोष्ठामाहिल का कथन सत्य है अथवा दुर्बलिका पुष्यमित्र का ? देव ने तीर्थंकर से पूछा— किसका कथन सत्य है ? भगवान् ने कहा—दुर्बलिका पुष्यमित्र का । गोष्ठामाहिल ने देव के कथन की भी उपेक्षा की । आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र ने पुनः विचार करने के लिए कहा, पर वह तैयार नहीं हुआ । तब उसे सध से पृथक् कर दिया ।^१

अबद्धिक मतवादियों का मन्तव्य था—कर्म आत्मा का स्पर्श करते हैं पर वे आत्मा के साथ एकीभूत नहीं होते ।

सप्त निह्ववों में जमालि, रोहगुप्त, गोष्ठामाहिल ये तीन अन्त समय तक अलग रहे और शेष चार निह्वव पुनः जैन शासन में सम्मिलित हो गये । स्थानांग सूत्र में सप्त निह्ववों के नाम आदि का निर्देश है, पर वहाँ अन्य इतिवृत्त के सम्बन्ध में सूचन नहीं है । जमालि निह्वव का निरूपण भगवती सूत्र, शतक-६ और उद्देशक-३३ में विस्तार से आया है । पर अन्य निह्ववों के सम्बन्ध में मूल आगम साहित्य में वर्णन नहीं है । आवश्यकनियुक्ति, मलयगिरिवृत्ति में अन्य निह्ववों का निरूपण है । हमने प्रचुद्ध पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ पर उनकी चर्चा की है ।

आजीवक तीर्थंकर : गौशालक—

श्रमण भगवान् महावीर के जीवन में गौशालक एक प्रमुख चर्चास्पद व्यक्ति रहा है । भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में उसके जीवन की गाथायें दी गई हैं । आवश्यकनियुक्ति, आवश्यकचूर्ण, आवश्यक हारभट्टीया वृत्ति और मलयगिरिवृत्ति, महावीरचरिय में उसके जीवन के अनेक प्रसंग हैं । वह प्रारम्भ में भगवान् महावीर का शिष्य बना और बाद में प्रतिस्पर्धी और विद्रोही बना । आजीवक मत का आचार्य बनकर स्वयं को तीर्थंकर भी उसने घोषित किया ।

गौशालक के नाम और व्यवसाय के सम्बन्ध में विभिन्न व्याख्याएँ हैं । भगवती, उपासकदशांग, आदि आगम-साहित्य में 'गोशाले मंखलिपुत्ते' इस शब्द का प्रयोग हुआ है । गौशालक मंख कर्म करने वाला 'मंखलि' नामक व्यक्ति का पुत्र था । 'मंख' शब्द का अर्थ कहीं पर 'चित्रकार' और कहीं पर 'चित्रविक्रेता' किया है । नवागी टीकाकर आचार्य अभयदेव ने लिखा है—'चित्रफलकं हस्तेगतं यस्य स तथा'—जो चित्रपट्टक हाथ में रखकर अपनी आजीविका चलाता है । हमारी अपनी दृष्टि से प्रस्तुत अर्थ विशेष संगत है । 'मंख' एक जाति विशेष थी । उस जाति के लोग शिव, ब्रह्मा या अन्य किसी देव का चित्रपट्ट हाथ में रखकर अपनी आजीविका चलाते थे । जिस प्रकार आज भी दाकोत जाति के लोग शनि देव की मूर्ति या चित्र रखकर अपनी आजीविका चलाते हैं ।

बौद्ध साहित्य में भी 'मखली गौशाल' को आजीवक नेता कहा है । इस सम्बन्ध में एक कथा है—गौशालक एक दास था । वह स्वामी के आगे तेल का घड़ा लेकर चल रहा था । कुछ दूर जाने पर ढलाऊ चिकनी भूमि आई । मखली के स्वामी ने कहा—'तात ! मा खलि, तात ! मा खलि'—अरे खलित मत होना, अरे खलित मत होना ! किन्तु गौशालक का पैर फिसल गया और तेल भूमि पर गिर पड़ा । मखली स्वामी के भय से भागने लगा, पर स्वामी ने भागते हुए का वस्त्र पकड़ लिया । वह वस्त्र छोड़कर नंगा ही भाग गया । इस प्रकार वह नग्न हो गया और लोग उसे 'मंखलि' कहने लगे ।^२

प्रस्तुत कथा बौद्ध परम्परा में उत्तर कालीन साहित्य में आई है, इसलिए विज्ञों ने उसका अधिक महत्त्व नहीं माना है ।^३ पाणिनी ने इसे 'मस्करी' शब्द माना है । 'मस्करी' शब्द का सामान्य अर्थ—परिव्राजक किया है ।^४ भाष्यकार पतंजलि ने लिखा है—'मस्करी' वह साधु नहीं है जो हाथ में मस्कर या बाँस की लाठी लेकर चलता है तथापि वह क्या है ? मस्करी वह है—जो उपदेश देता है, कर्म मत करो ! शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है ।^५ पाणिनी और पतंजलि ने गौशाल के नाम का निर्देश नहीं किया है, किन्तु उनका लक्ष्य वही है । 'कर्म मत करो'—यह व्याख्या उस समय प्रचलित हुई जब गौशालक एक धर्माचार्य के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था । जैन आगम व आगमेतर साहित्य में गौशालक को मंखलि का पुत्र तो माना ही है साथ ही उसे गौशाला में उत्पन्न भी माना है । जिसकी पुष्टि पाणिनी 'गौशालायां जातः गोशालः' [४/३/३५] की व्युत्पत्ति इस व्युत्पत्ति नियम से करते हैं । आचार्य बुद्धघोष ने सामञ्जस्यसुत्त की टीका में गौशालक का जन्म 'गौशाला' में हुआ, ऐसा माना है ।^६

१. आवश्यक, मलयगिरि वृत्ति, पत्र ४१५-४१८

२. (क) धम्मपद, अट्ठकथा, आचार्य बुद्धघोष १/१४३
(ख) मज्झिम निकाय—अट्ठकथा १/४२२

३. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ० ४१

४. मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः ।

५. न वै मस्करोऽस्यासाति मस्करी परिव्राजकः किं तर्हि ? माकृत कर्माणि माकृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः ॥
—पाणिनी व्याकरण ६/१/१५४

६. सुमंगल त्रिलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) पृ० १४३-४४

आधुनिक शोधकर्त्ताओं ने गौशालक और आजीवक मत के सम्बन्ध में नवीन स्थापना करने का प्रयास किया है। पर परिताप है नवीन स्थापना करते समय इतिहास और परम्परा की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। जिससे उनकी स्थापना सही स्थापना न होकर मिथ्या स्थापना हो गई। श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार गौशालक के गुरु श्रमण भगवान् महावीर थे।^१ दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से गौशालक भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का एक श्रमण था। वह भगवान् महावीर की परम्परा में आकर गणधर बनना चाहता था, किन्तु जब उसे गणधर पद नहीं मिला तो वह पृथक् होकर श्रावस्ती में आया और अपने आपको 'तीर्थकर' कहने लगा।^२

डा० वेणीमाधव बरुवा ने लिखा है—यह तो कहा ही जा सकता है कि जैन और बौद्ध परम्परा में मिलने वाली जान-कारी से यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि जैसे—जैन गौशालक को महावीर के दो ढोंगी शिष्यों में से एक शिष्य बताते हैं। प्रत्युत उन जानकारियों से विपरीत यह प्रमाणित होता है—उन दोनों में एक दूसरे का कोई ऋणी है तो वस्तुतः गुरु ही ऋणी है न कि जैनियों के द्वारा माना गया उनका ढोंगी शिष्य।^३ डा० बरुवा आगे लिखते हैं—भगवान् महावीर पहले पार्श्वनाथ की परम्परा में थे, किन्तु एक वर्ष के पश्चात् जब वे अचेलरु हुए तब आजीवक पन्थ में चले गये।^४ गौशालक भगवान् महावीर से दो वर्ष पूर्व जिन पद प्राप्त कर चुके थे।^५ डा० बरुवा यह स्वीकार करते हैं कि ये सभी कल्पना के ही महान् प्रयोग कहे जा सकते हैं तथापि इन कल्पनाओं ने गोपालदास जीवाभाई पटेल^६, धर्मानन्द कौशाम्बी आदि को भी प्रभावित किया। इस मान्यता के मूल सर्जक डा० हरमन जैकोबी रहे हैं।^७ उसी का अनुसरण करते हुए डा० वाशम ने अपने महानिबन्ध 'आजीविकों का इतिहास और सिद्धान्त' में विस्तार से प्रकाश डाला है। इस मूल मनोवृत्ति का आधार—किसी भी पार्श्वनाथ विचारक ने जो कुछ भी लिख दिया है वही सही है, यह भ्रान्त धारणा है। जो भी मुर्धन्य मनीषी गौशालक के सम्बन्ध में लिखते हैं, उनका मूल आधार जैन और बौद्ध ग्रन्थ ही है। उनमें से कितनी ही बातों को सही और कितनी ही बातों को बलत मानना, यह ऐतिहासिक दृष्टि नहीं हो सकती। जो तथ्य जैन साहित्य में दिये गये हैं उन तथ्यों को बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों ने भी मान्य किया है। जहाँ पर उन्होंने आजीवक मत की आलोचना की वहाँ उसकी प्रशंसा के अन्दर उसे वारहवें देवलोक और मोक्षगामी कहा है। जो यह मानते हैं कि गौशालक महावीर का गुरु था, यह विल्कुल ही निराधार और कपोल कल्पित बात है। गौशालक ने स्वयं यह स्वीकार किया—“गौशालक तुम्हारा शिष्य था, पर मैं वह नहीं हूँ। मैंने गौशालक के शरीर में प्रवेश किया है यह शरीर उस गौशालक का है, पर आत्मा भिन्न है।” इस प्रकार विरोधी प्रमाणों के अभाव में विद्वानों ने जो अर्थशून्य कल्पनाएँ की हैं, वे भ्रम में डालने वाली हैं। आधुनिक विद्वान् इस सम्बन्ध में जागरूक हो रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है।

एक बार गणधर गौतम भिक्षा के लिए श्रावस्ती में गये। उन्होंने नगरी में यह जन-प्रवाद सुना—श्रावस्ती में दो तीर्थकर विचर रहे हैं—एक श्रमण भगवान् महावीर और दूसरे गौशालक। वे भगवान् के चरणों में पहुँचे और इस विषय में सत्य-तथ्य जानना चाहा। भगवान् ने गौशालक का पूर्व परिचय दिया—इसके पिता का नाम 'मंखलि' था। माता का नाम 'भद्रा' था। चित्रपट्ट बनाकर आजीविका चलाता था। वह 'गौवहुल' ब्राह्मण की गौशाला में ठहरा हुआ था, वहाँ इसका जन्म हुआ। गौशाला में जन्म होने से इसका नाम 'गौशालक' रखा गया। मेरा द्वितीय वर्षवास राजगृह के तन्तुवायशाला में था। वहीं पर गौशालक भी दूसरा स्थान न मिलने से आकर ठहरा। मैं मासखमण के पारणे के लिए राजगृह के 'विजय गाथापति' के यहाँ पहुँचा। उसने उत्कृष्ट भावना से दान दिया। जिससे पाँच दिव्य प्रकट हुए—वसुधारा की वृष्टि, पाँच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि, ध्वजा और

१. भगवती १५वाँ शतक

२. मसयरि पूरणारिसिणो उप्पणो पासणाहत्तित्थम्मि । मिरिओर समवसरणे अगहियज्जुणिया नियत्तेण ॥

बहिण्णिग्गएण उत्तं मज्झं एयार साग्ंधारिस्स । णिग्गइ ज्जुणीण अरुहो णिग्गय विस्सात्त सीसत्त ॥

ण मुणइ जिणकहिय सुयं संपइदिक्खाय गहिय गोयमओ । विप्पो वेयम्भासी तम्हा मोवखं ण णाणाओ ॥

—भावसंग्रह गा. १७६-१७८

३ The Ajivikas, J. D. L. Vol. II, 1920, PP. 17-18

४ The Ajivikas, J. D. L. Vol. II, 1920, PP. 18.

५ The Ajivikas, J. D. L. Vol. II, 1920, P. 21.

६ महावीर स्वामीनो संयमधर्म [सूत्रकृतांग का गुजराती अनुवाद, पृष्ठ ३४.]

७ S. B. E. Vol. XLV, Introduction PP. XXIX to XXXII.

वस्त्र की वृष्टि, देव दुन्दुभि और आकाश में 'अहोदानं—अहोदानं' की दिव्य ध्वनि। जन-मानस से यह बात सुनकर गौशालक वहाँ पहुँचा और वसुधारा आदि देखकर प्रभावित हुआ। मेरे को नमस्कार कर 'मैं धर्म शिष्य हूँ और आप मेरे धर्माचार्य हैं' इस प्रकार बोला। मैंने दूसरे मासखमण का पारणा 'आनन्द' गाथापति के वहाँ किया और तीसरे मासखमण का पारणा 'सुनन्द' गाथापति के वहाँ किया। चतुर्थ मासखमण का पारणा कोल्लाक सन्निवेश में 'बहुल' ब्राह्मण के वहाँ हुआ। गौशालक ने मुझे तन्तुवायशाला में न देखा तो मेरी अन्वेषणा करता हुआ कोल्लाक सन्निवेश में आया। मैं उस समय मनोज्ञ भूमि में ध्यानस्थ था। गौशालक ने मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और 'मैं आपका शिष्य हूँ' इस प्रकार बोला। टीकाकार आचार्य अभयदेव ने 'अभ्युपगच्छामि' का अर्थ 'मैंने कूर्मग्राम जा रहा था। रास्ते में एक तिल का पौधा था। उसने मेरे से पूछा—तिल का पौधा निष्पन्न होगा या नहीं? मैंने कहा—'होगा। ये सात तिल पुष्प के जीव इसी पौधे की एक फली में सात तिल रूप में उत्पन्न होंगे।' मेरी बात पर विश्वास न होने से पीछे हककर उस पौधे को मिट्टी सहित उखाड़कर एक ओर फेंक दिया। उसी समय वर्षा हुई और वह पौधा जमीन में स्थिर हो गया। मेरे कथनानुसार वह पौधा पुनः सात तिलों के रूप में उत्पन्न हुआ।

एक बार गौशालक मेरे साथ कूर्मग्राम नगर आया। कूर्मग्राम के बाहर 'वैश्यायन' नामक बालतपस्वी छट्ठ-छट्ठ तप कर रहा था। दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य के सम्मुख खड़े होकर आतापना ले रहा था। उसके सिर से गर्मी के कारण जूँए नीचे गिर रही थीं और वह पुनः उठा-उठाकर उन्हें सिर में रख रहा था। गौशालक ने पीछे रहकर उससे कहा—तुम तत्त्वज्ञ मुनि हो या जूँओं के शय्यातर हो? तीन बार कहने पर वैश्यायन कुपित हुआ और तेजो समुद्घात कर तेजोलेश्या बाहर निकाली तथा गौशालक पर प्रक्षिप्त की। गौशालक पर अनुकम्पा कर मैंने तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने के लिए शीतललेश्या निकाली। वैश्यायन ने कहा—हे भगवन्! मैंने जाना यह आपका शिष्य है। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि यह आपका शिष्य है तो मैं यह नहीं करता। गौशालक तेजोलेश्या को देखकर प्रभावित हुआ।

गौशालक ने मेरे से पूछा—संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है? मैंने कहा—'तब सहित वन्द की हुई मुट्ठी में जितने उड़द के बाकुले आवें उतने मात्र से तथा चुल्लु भर पानी से छट्ठ-छट्ठ की तपस्या के साथ दोनों हाथ ऊँचे रखकर आतापना लेने वाले पुरुष को छह माह के पश्चात् तेजोलेश्या प्राप्त होती है।

एक बार वह मेरे साथ पुनः कूर्मग्राम से सिद्धार्थ ग्राम की ओर जा रहा था, तब उसने कहा—आपने 'तिल पुष्प के जीव सात तिल के रूप में उत्पन्न होंगे'—यह कहा था सो वह बात पर मिथ्या हो गई। मैंने पौधे की ओर संकेत किया। उसे मेरी बात पर पर विश्वास नहीं था। अतः तिल-फली को तोड़कर सात तिल बाहर निकाले और उसे यह विश्वास हुआ कि 'सभी जीव मर कर पुनः उसी योनि में पैदा होते हैं।' गौशालक मेरे से अलग हुआ और उसने तेजोलेश्या की साधना की। इसीलिए गौशालक जिन नहीं किन्तु जिन-प्रलापी है। यह बात श्रावस्ती में प्रसारित हो गई। मंखलिपुत्र गौशालक ने भी यह बात सुनी। उसे बहुत क्रोध आया। वह आतापना भूमि से कुम्भकारापण में आया और आजीवक संघ के साथ अत्यन्त अमर्श से बैठे।

भगवान् महावीर के शिष्य आनन्द भिक्षा के लिए श्रावस्ती में गये हुए थे। वे भिक्षा लेकर लौट रहे थे। गौशालक ने आनन्द को अपने पास बुलाकर कहा—तुम जरा मेरी बात सुनकर जाओ। कुछ व्यापारी भयंकर अटवी में पहुँचे। वे अपने साथ जो पानी लाये थे, वह समाप्त हो गया। जंगल में आगे पहुँचने पर एक विशाल बल्मिक दिखाई दिया। उममें चार शिखर थे। उन्होंने एक शिखर को तोड़ा। उममें से बढ़िया मधुर जल प्राप्त हुआ। सभी तृप्त हो गये। दूसरा शिखर तोड़ा, उममें से स्वर्ण-राशि प्राप्त हुई। उनकी लोभवृत्ति प्रबल हुई। उन्होंने तीसरा शिखर तोड़ा, उममें से मणि-रत्न निकले। उन व्यापारियों ने सोचा—चौथा शिखर तोड़ने पर बज्र रत्न निकलेंगे। चतुर व्यापारी ने शिखर को तोड़ने का निषेध किया, किन्तु दूसरे व्यापारियों ने उसके कथन की उपेक्षा की। ज्यों ही शिखर तोड़ा, उममें से भयंकर दृष्टिविष मर्ष निकला। मारे व्यापारी जलकर भस्म हो गये। सर्प ने केवल एक व्यापारी को बचाया और उसे सम्मान सहित घर पहुँचा दिया। इसी तरह हे आनन्द! मेरे नमन्ध में महावीर कुछ भी कहेंगे तो मैं उन्हें अपने तपस्तेज से भस्म कर दूँगा। उम हितैषी व्यक्ति की तरह तुझे बचा लूँगा। आनन्द अत्यधिक भयभीत हुआ। वह भगवान् महावीर के पास आया और मारा वृत्तान्त कह सुनाया। क्या भगवान्! वह भस्म कर सकता है? भगवान् ने कहा—वह भस्म कर सकता है किन्तु अग्रिन्त प्रभु को नहीं। वह जला तो नहीं सकता किन्तु परिनाप अवश्य दे सकता है। अतः तुम जाओ और गीतम आदि निर्ग्रन्थों को कह दो कि गौशालक डर आ रहा है, उममें बहुत ही दुर्भाग्य है, इमीनिए उनकी बातों का कोई भी जवाब नहीं दें। आनन्द ने सभी मुनिवरों को सूचना दे दी।

गौशालक वहाँ आ पहुँचा । उसने कहा—अपका शिष्य गौशालक मर चुका है, मैं दूसरा हूँ । भगवान् ने कहा—अन्य न होते हुए भी तुम अपने को अन्य बता रहे हो, यह योग्य नहीं है । गौशालक ने क्रुद्ध होकर कहा—तू आज ही नष्ट हो जायेगा, तेरा जीवन नहीं रहेगा । भगवान् के सारे शिष्य चुप रहे । सर्वानुभूति अणगार, जिनका भगवान् पर अत्यधिक अनुराग था, उन्होंने कहा—भगवान् महावीर ने आपको शिक्षा और दीक्षा दी । उन धर्माचार्य के प्रति इस प्रकार के वचन कह रहे हो ? यह सुनते ही गौशालक का चेहरा तमतमा उठा, उसने सर्वानुभूति अणगार को तेजोलेश्या के एक ही प्रहार से जलाकर भस्म कर दिया । वह पुनः प्रलाप करने लगा । सुनक्षत्र अणगार से भी न रहा गया, उन्होंने भी गौशालक को समझाने का प्रयत्न किया । गौशालक ने सुनक्षत्र अणगार को भी जलाकर भस्म कर दिया ।

भगवान् महावीर ने गौशालक को समझाना चाहा । गौशालक का क्रोधित होना स्वाभाविक था । वह सात-आठ कदम पीछे हटा । भगवान् महावीर को भस्म करने के लिए उसने तेजोलेश्या का प्रहार किया । पर प्रभु के अमित तेज से तेजोलेश्या उनको जला न सकी, वह प्रदक्षिणा कर पुनः गौशालक के शरीर को जलाती हुई उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई । गौशालक ने भगवान् से कहा—काश्यप ! मेरी तेजोलेश्या से पराभूत व पीड़ित होकर तू छह मास की अवधि में मृत्यु को प्राप्त होगा । महावीर ने कहा—मैं तो सोलह वर्ष तक तीर्थकर-पर्याय में विचरण करूँगा और तू अपनी तेजोलेश्या से पीड़ित होकर सात रात्रि के अन्दर ही छद्मस्थ अवस्था में काल-धर्म को प्राप्त होगा ।

अब गौशालक का तेज नष्ट हो चुका था । भगवान् महावीर के आदेश से स्थविरों ने विविध प्रकार के प्रश्न किये । गौशालक उत्तर नहीं दे सका । अन्य अनेक आजीवक स्थविर भगवान् महावीर के सघ में सम्मिलित हो गये । सारे नगर में चर्चा फैल गई कि किसका कथन सत्य है और किसका असत्य ? लब्ध प्रतिष्ठित लोगों ने कहा—भगवान् महावीर का कथन सत्य है ।

गौशालक के शरीर में भयंकर वेदना हुई । विक्षिप्त सा इधर-उधर निश्वास छोड़ता हुआ वह कुम्भकारापण में पहुँचा । वह अपने दोष को छिपाने के लिए चार पानक षेय और चार अपानक अपेय प्ररूपित कर रहा था । वे चार पानक ये हैं—१. गाय के पृष्ठ भाग से गिरा हुआ २. हाथ से उलीचा हुआ ३. सूर्य-ताप से तपा हुआ ४. शिलाओं से गिरा हुआ । चार अपानक ये हैं, जो पीने के लिए ग्राह्य नहीं है किन्तु दाह आदि के उपशमन के लिए व्यवहार योग्य हैं जैसे १. स्थाल पानी से आर्द्र हुए ठण्डे छोटे-बड़े वर्तन—इन्हें हाथ से स्पर्श करे, किन्तु पानी न पीए । २. त्वचा पानी—आम, गुठली और वैर आदि कच्चे फल मुँह में चवाना परन्तु उसका रस नहीं पीना । ३. फलों का पानी—उड़द, मूँग, मटर आदि की कच्ची फलियाँ मुँह में लेकर चवाना परन्तु उसका रस नहीं पीना । ४. शुद्ध पानी ।

श्रावस्ती में 'अयंपुल' आजीवकोपासक था । उसे 'हृत्ला' वनस्पति के आकार के सम्वन्ध में जिज्ञासा हुई । वह रात्रि में ही गौशालक के पास पहुँचा । उस समय गौशालक मद्यपान किये हुए हँस रहा था और नाच रहा था । वह लज्जित होकर पुनः लौटने लगा । गौशालक ने स्थविरों को भेजकर उसे बुलाया और कहा—तुम मेरे पास आये हो, पर मेरी यह स्थिति देखकर लौटना चाहते थे किन्तु मेरे हाथ में कच्चा आम नहीं, आम की छाल है । निर्वाण के समय इसका पीना आवश्यक है । निर्वाण के समय नृत्य, गीत आदि भी आवश्यक हैं, अतः तुम भी वीणा बजाओ ।

गौशालक को लगा कि अब मैं लम्बे समय का मेहमान नहीं हूँ, अतः उसने अपने स्थविरों को बुलाकर कहा—यदि मेरी मृत्यु आ जाय तो मेरे शरीर को सुगन्धित पानी से नहलाना, गेरूक वस्त्र से शरीर को पाँछना, गोशीर्ष चन्दन का लेप करना, बहुमूल्य श्वेत वस्त्र धारण करवाना और सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित करना ! एक हजार व्यक्ति उठा सकें, ऐसी शिविका में बैठकर यह उद्घोषणा करना—चौबीसवें तीर्थकर मंखलिपुत्र गौशालक सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये हैं ।

सातवीं रात्रि व्यतीत हो रही थी । उसका मिथ्यात्व नष्ट हुआ और सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई । गौशालक को अपने दुष्कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ । मैं जिन नहीं हूँ किन्तु जिन होने का मैंने दावा किया । अपने धर्माचार्य से द्वेष किया और श्रमणों की हत्या की । यह मैंने भयंकर भूल की । उसी समय स्थविरों को बुलाकर गौशालक ने कहा—मेरी भयंकर भूलें हुई हैं, इसलिए मेरी मृत्यु के बाद मेरे बाँये पैर में रस्सी बाँधना और मेरे मुँह में तीन बार थूकना । श्रावस्ती के राजमार्ग पर से मुझे ले जाते हुए यह उद्घोषणा करना—गौशालक जिन नहीं, भगवान् महावीर ही जिन हैं । मरे हुए कुत्ते की तरह मुझे घसीट कर ले जाना । उसने स्थविरों का शपथ दिलाई और उसी रात्रि में गौशालक की मृत्यु हो गई ।

स्थविरों ने सोचा—यदि हम गौशालक के कथनानुसार करेंगे तो हमारी और हमारे धर्माचार्य की प्रतिष्ठा धूल में मिल

जायेगी। यदि उसके कथन की उपेक्षा करेंगे तो गुरु-आज्ञा का भंग होगा। यह सोचकर उन्होंने कुम्भकारावण को वन्द कर आंगन में श्रावस्ती का चित्र बनाया तथा गौशालक के कथनानुसार सारा कार्य किया। उसके बाद गौशालक के प्रथम आदेश के अनुसार उसकी अर्चा की और धूमधाम से उसकी शवयात्रा निकाली तथा अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया।

इस तरह हे गौतम ! मेरा कुशिय गौशालक जीवन के अन्तिम क्षणों में प्रशस्त भावना के कारण वारहवें देवलोक अच्युत कल्प में देव बना। वहाँ से च्युत होकर अनेक भवों में परिभ्रमण करते हुए इसे सम्यक्त्व की उपलब्धि होंगी और दृढ़प्रतिज्ञ केवली बनकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक में गौशालक का व्यवस्थित जीवन-चरित्र दिया गया है।

अनुसंधानकर्त्ताओं को इसमें विपुल सामग्री प्राप्त होगी।

गौशालक निह्वन नहीं था, मिथ्यात्वी था। भगवती के अतिरिक्त आगम के व्याख्या साहित्य में उसके अमानवीय कृत्यों की लम्बी सूची दी गई है। गौशालक ने अपने लौकिक प्रभाव से जन-मानस को आकर्षित किया था। कितने ही महानुभाव यह शंका उपस्थित करते हैं—भगवान् महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में गौशालक की रक्षा की जबकि समवसरण में गौशालक ने तेजोलेश्या से सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि पर प्रहार किया, तब महावीर ने उन्हें क्यों नहीं वचाया ? टीकाकार ने स्पष्ट किया है—भगवान् उम समय वीतरागी थे। वे जानते थे उसके निमित्त से मुनियों का मरण है। केवली अवस्था में लब्धि का प्रयोग नहीं करते। छद्मस्थ अवस्था में अनुकम्पा से उन्होंने गौशालक को वचाया था। कितने ही लोगों का यह भी मानना है कि गौशालक पर अनुकम्पा दिखाकर भगवान् महावीर ने भूल की। यदि भगवान् ऐसा नहीं करते तो कुम्भ का प्रचार नहीं होता और न मुनि-हत्या ही होती। पर उन्हें यह सोचना चाहिए कि महापुरुष बिना भेद-भाव के सभी का उपकार करते हैं। प्रतिफल की कामना से वे कभी भी सौदेवाजी नहीं करते। भगवान् ने छद्मस्थ अवस्था में ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिसमें प्रमाद और पाप-कर्म हों।^१ भगवान् महावीर के द्वारा शीतललेश्या का प्रयोग एक परम कारुणिक भावना का निदर्शन है। जब सामने पंचेन्द्रिय प्राणी जल रहा हो और दूसरा व्यक्ति निरपेक्ष भाव से उसे निहारता रहे, उसके अन्तर्मानस में अनुकम्पा की लहर न उठे, वह कैसे सम्भव है ? आचार्य भीखणजी ने इस अनुकम्पा-प्रसंग को भगवान् महावीर की भूल बताया है। उन्होंने कहा—“छद्मस्थ चूक्या तिण समै”—अर्थात् महावीर ने गौशालक को वचाकर भूल की। हमारी दृष्टि से यह अहिंसा का एकान्तिक आग्रह या एकांगी चिन्तन है। भगवान् महावीर की अहिंसा नकारात्मक ही नहीं, क्रियात्मक भी थी। गौशालक की प्राण रक्षा कर भगवान् ने एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया।

इस प्रकार पंचम खण्ड निह्वनों तथा गौशालक की चर्चा के साथ समाप्त हुआ। छठे स्कन्ध में प्रकीर्णक कथाएँ हैं।

श्रमण-श्रमणियों का निदान—

पूर्व पृष्ठों में हमने अनाथी मुनि के द्वारा सम्राट श्रेणिक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ था, यह उल्लेख किया है। यहाँ पर भगवान् महावीर का साक्षात् सम्पर्क और उनके प्रति असाधारण श्रद्धा का प्रतिपादन किया है।

महाराजा श्रेणिक ने कौटुम्बिक (राजकर्मचारी) पुरुषों को बुलाकर यह आदेश दिया—राजगृह नगर के बाहर जितने भी आराम, उद्यान, शिल्प-शालायें, आयतन, देवकुल, सभायें, प्रपायें, उदकशालायें, पान्थशालायें, भोजनशालायें, चूने के भट्टे, व्यापार की मंडियाँ, लकड़ी आदि के टेके, मूँज आदि के कारखाने आदि के जो अध्यक्ष हैं उनसे जाकर कहो—जब श्रमण भगवान् महावीर इस नगर में पधारें, तुम लोग स्थान, शयनासन, आदि ग्रहण करने की आज्ञा दो और उनके पधारने का संवाद मेरे तक पहुँचाओ। कौटुम्बिक पुरुषों ने ऐसा ही किया।

भगवान् महावीर का जब राजगृह में पदार्पण हुआ, तब राजा श्रेणिक को सूचना दी। तब राजा श्रेणिक बहुत ही हर्षित हुआ तथा संवाददाताओं को पारितोषिक दिया। महाराणी चेलना के साथ स्नानादि से निवृत्त हो बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण कर राजा श्रेणिक भगवान् की धर्म-सभा में पहुँचा। भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश दिया। परिषद् विसर्जित हुई। श्रेणिक की दिव्य ऋद्धि को देखकर कितने ही श्रमणों के मन विचार में आया—धन्य है यह श्रेणिक विम्बसार ! जो चेलना जैसी रानी और मगध जैसे राज्य का उपभोग कर रहा है। हमारी भी तपःसाधना का फल हो तो हम भी इसी प्रकार के मनोरम कामभोगों को प्राप्त करें। चेलना

१. 'छउमत्थोवि परवकममाणो ण पमायं सइ'पि कुवित्था'।

की दिव्य ऋद्धि देखकर कितनी ही श्रमणियों के मन में यह विचार आया कि हम भी चलना की तरह ही कामभोगों का उपभोग करें।

भगवान् महावीर से यह रहस्य कब छिप सकता था ? उन्होंने अपने दिव्य ज्ञान-बल से श्रमण-श्रमणियों के निदान की बात जानी। उन्हें निदान के दुष्परिणाम से परिचित कराया। श्रमण-श्रमणियों ने अपने दुःसंकल्प की आलोचना की। प्रस्तुत कथानक से यह स्पष्ट है कि श्रेणिक की भगवान् महावीर के प्रति अपूर्व भक्ति थी। साथ ही इस बात का भी संकेत मिलता है कि वह प्रथम बार भगवान् महावीर के पास गया था। जैन परम्परा की दृष्टि से श्रेणिक पहले अन्य धर्मविलम्बी था। चलना तो पितृपक्ष में भी निर्ग्रन्थ धर्म को मानने वाली थी। उसके प्रयत्न से ही सम्राट् श्रेणिक निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक एवं जैन बना था। सम्भव है, इसीलिए चलना को आगे किया हो !

श्रमण और श्रमणियों ने जो निदान करने का सोचा, वह प्रथम सम्पर्क में ही सम्भव है। बार-बार मिलने के पश्चात् वह भावना नहीं हो सकती।

रथमूसल संग्राम—

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—रथमूसल संग्राम क्या है ? उसमें कौन जीता और कौन हारा ?

भगवान् महावीर ने समाधान करते हुए कहा—इस युद्ध में इन्द्र, असुरेन्द्र, असुरकुमार, चमरेन्द्र ये जीते थे और नौ मल्लवी, नौ लिच्छवी ये राजा-गण पराजित हुए थे। कोणिक भूतानन्द नामक पट्टहस्ती पर आसीन होकर रथमूसल संग्राम में आया था। उसके आगे देवराज शक्र थे, उसके पीछे असुरकुमारराज चमर थे। लोहे से निर्मित एक विशिष्ट प्रकार के कवच की विकुर्वणा की। इस युद्ध में देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र ये तीन इन्द्र एक साथ युद्ध कर रहे थे। गौतम ने पुनः जिज्ञासा की—भगवन् ! इस संग्राम को रथमूसल संग्राम क्यों कहा ? भगवान् ने उत्तर दिया—जिस समय यह संग्राम हो रहा था, उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित और मूसल सहित रथ अत्यन्त जन-संहार, जन-वध, जन-मर्दन और रक्त से भूम को रञ्जित करता हुआ चारों ओर दौड़ रहा था। इसीलिए उसे 'रथमूसल' संग्राम कहा है। उस संग्राम में छियानवें लाख योद्धा मारे गए। उनमें से दश हजार योद्धाओं के जीव एक मछली के उदर में पैदा हुए। उनमें से एक वरुणनागनप्तृक देवलोक में उत्पन्न हुआ। उसका बाल मित्र मनुष्य बना और अवशेष मानवों के जीव नरक और तिर्यच योनि में पैदा हुए।

गणधर गौतम ने पुनः जिज्ञासा व्यक्त की—देवेन्द्र शक्र ने और असुरकुमार चमरेन्द्र ने कोणिक राजा को किस कारण से सहायता प्रदान की ? भगवान् ने कहा—देवेन्द्र देवराज शक्र तो कोणिक राजा का 'कार्तिक' सेठ के भव में मित्र था और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर कोणिक राजा का 'पूरण' नामक तापस की अवस्था का साथी था। इसीलिए इन दोनों इन्द्रों ने कोणिक की सहायता की।

रथमूसल संग्राम में काल आदि कुमारों की मृत्यु—

राजगृह में राजा श्रेणिक का राज्य था। उसकी रानी चलना से 'कूणिक' का जन्म हुआ। श्रेणिक की दूसरी रानी काली से 'काल' नामक राजकुमार का जन्म हुआ। एक बार काल कूणिक के साथ रथ-मूसल संग्राम में पहुँचा। उस समय भगवान् महावीर चम्पानगरी में पधारें। काली महारानी ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन् ! मेरे पुत्र काल की युद्ध में विजय होगी या पराजय ? महावीर ने कहा—तेरा पुत्र रथमूसल संग्राम में वैशाली के राजा चेटक के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा। तू उसे देख नहीं सकेगी।

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक का राज्य था। उसकी नन्दा रानी से 'अभयकुमार' का जन्म हुआ। श्रेणिक की रानी चलना को अपने पति के उदर के मांस को खाने का दोहद पैदा हुआ। दोहद पूर्ण न होने से वह उदास रहने लगी। अंग परिचारिकाओं से राजा श्रेणिक को ज्ञात हुआ। अभयकुमार के पूछने पर राजा ने मारा वृत्तान्त सुनाया। अभयकुमार ने विज्वन्त अनुचर को भेज कर मांस और रुधिर मंगवाकर राजा श्रेणिक के उदर पर रखवा दिया। इस तरह वस्त्र ने आच्छादित कर दिया कि जिससे ज्ञात नहीं हो सके। दूर प्रासाद में बैठी हुई महारानी चलना सब देखती रही। अभयकुमार ने मांस को काटने का वहाना किया और राजा को सूच्छित स्थिति में बताकर महारानी चलना का दोहद पूर्ण किया। बौद्ध परम्परा के अनुसार वैद्य ने राजा की बाहु का रक्त निकलवाकर दोहद की पूर्ति की। रानी को ज्योतिषी ने बताया कि यह पुत्र पिता को मारने वाला होगा। इसलिए रानी उसे नष्ट करने का प्रयत्न करती है। चलना के मन में संतोष न था। वह मन ही मन में दुःखी हो रही थी कि इस बालक के गर्भ में आते ही पति का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। अतः इस दुष्ट गर्भ को गिरा देना ही श्रेयस्कर

है। रानी ने गर्भपात के लिए अनेक प्रयोग किये किन्तु कोई भी उपाय कारगर नहीं हुआ। जन्म लेने पर नवजात शिशु को महारानी चेलना ने कूड़ी [रोड़ी] पर फिकवा दिया। जब राजा श्रेणिक को पता चला तो उन्होंने शिशु को मंगवाया। कूड़ी पर पड़े हुए शिशु की अंगुली में कुक्कुट की चोंच से चोट आ गई थी, जिससे उसकी अंगुली छोटी रह गई, अतः उसका नाम 'कूणिक' रखा गया।

कूणिक का नाम जैन और बौद्ध दोनों परम्परा में मिलता है। जैन परम्परा में उसे 'कोणिक' या 'कूणिक' कहा गया है तो बौद्ध परम्परा में उसे 'अजातशत्रु' लिखा है। कूणिक नाम 'कूणि' शब्द से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है—अंगुली का घाव।^१ 'कूणिक' का अर्थ हुआ अंगुली के घाव वाला व्यक्ति। आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस बात को स्वीकार किया है।^२

उपनिषद्^३ और पुराणों में 'अजातशत्रु' नाम व्यवहृत हुआ है। यह अधिक सम्भव है 'कूणिक' उनका मूल नाम रहा होगा और 'अजातशत्रु' उपाधि विशेषण रहा होगा। मूल नाम से कभी-कभी उपाधि विशेष प्रचलित हो जाती है। यहीं कारण है कि भारतीय साहित्य में उसका 'अजातशत्रु' नाम विशेष रूप से व्यवहृत हुआ है। मथुरा के संग्रहालय में एक शिलालेख में उसका नाम 'अजातशत्रु कूणिक' उद्धृत है।^४ 'अजातशत्रु' शब्द के दो अर्थ किये जा सकते हैं—(१) 'न जातः शत्रुर्यस्य' जिसका कोई शत्रु जन्मा ही नहीं हो।^५ (२) 'अजातोऽपि शत्रुः' अर्थात् जन्म से पूर्व ही (पिता का शत्रु) शत्रु।^६ द्वितीय अर्थ आचार्य बुद्धघोष ने किया है। यह अर्थ पूर्ण रूप से संगत भी है। अजातशत्रु प्रतापी नरेश था। उसके नाम से बड़े-बड़े वीर कांपते थे इसलिए यह नाम गर्हा का प्रतीक न होकर उसकी वीरता का प्रतीक है। जिनदास गणी महत्तर ने कूणिक को 'अशोकचन्द्र' भी लिखा है। कहते हैं—जब कूणिक को 'असोगवणिया' नाम के उद्यान में फँक दिया गया तो वह उद्यान चमक उठा। इसलिए कूणिक का नाम 'अशोकचन्द्र' रखा गया।

कूणिक की अंगुली पक जाने से उसमें से मवाद निकलती और उससे वह चिल्लाता था। अपने पुत्र की वेदना को शान्त करने के लिए राजा श्रेणिक अंगुली को मुँह में रखकर चूसता जिससे बालक चुप हो जाता। बौद्ध परम्परा की दृष्टि से जन्मते ही बालक को राजा के कर्मचारी वहाँ से हटा देते हैं कि कहीं महारानी उसे मार न दें। कुछ समय के पश्चात् उस बालक को महारानी को सौंपते हैं। पुत्र-प्रेम से महारानी उसमें अनुरक्त हो जाती है। एक बार अजातशत्रु की अंगुली में फोड़ा हो जाता है, बालक रोने लगता है जिससे कर्मकर उसे राजसभा में ले जाते हैं। राजा उसकी अंगुली को मुँह में रख लेता है। फोड़ा फूट जाता है। पुत्र-प्रेम से पागल बना हुआ राजा उस रक्त और मवाद को धूकता नहीं, किन्तु निगल जाता है।

कूणिक के अन्तर्मानस में यह विचार पैदा हुआ कि राजा श्रेणिक के रहते हुए मैं राजा नहीं बन सकता। इसलिए वह अपने अन्य भ्राताओं को अपने साथ मिलाकर स्वयं राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है और राजा श्रेणिक को गिरफ्तार कर कारागृह में बन्द कर देता है। बौद्ध परम्परा की दृष्टि से अजातशत्रु जीवन के उपाकाल से ही महत्वाकांक्षी था। उसकी महत्वाकांक्षा को उभारने वाला देवदत्त था। जिसके कारण उसने पिता को धूमगृह (लौह-कर्म करने का घर) में डलवा दिया।

जैन दृष्टि से एक दिन कूणिक अपनी माँ को नमस्कार करने पहुँचा। माँ को चिन्तासागर में डुबकी लगाते हुए देखकर कूणिक ने कहा—माँ ! क्यों चिन्तित हो रही हो ? मैं तुम्हारा पुत्र राजा बन गया हूँ, फिर भी तुम चिन्तित हो ? मुझे कारण बताना होगा। माँ ने श्रेणिक के प्रेम की घटना सुनाई और कहा—तुझे धिक्कार है। अपने महान् उपकारी पिता को तेने कष्ट दिया है। कूणिक के मन में पिता के प्रति प्रेम जागृत हुआ। उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ और हाथ में परशु लेकर पितृ-मोचन

१. Apte's Sanskrit—English Dictionary, Vol. 1, p. 580.

२. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, पर्व १०, सर्ग ६, श्लोक ३०६.

३. Dialogues of Buddha, Vol. II, p. 78.

४. वायुपुराण, अ० ६६, श्लोक ३१६; मत्स्यपुराण, अ० २७१, श्लोक ६.

५. Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. V, Part IV, Pp. 550-51.

६. Dialogues of Buddha, Vol. II, p. 78.

७. दीर्घनिकाय, अट्ठकथा—१, १३३

के लिए चल पड़ा। श्रेणिक ने दूर से देखा—कूणिक परशु हाथ में लेकर मुझे मारने के लिए आ रहा है। यह मुझे बुरी तरह से मारेगा। इससे तो यही श्रेयस्कर है कि मैं स्वयं ही प्राणों का अन्त कर लूँ। श्रेणिक ने उसी समय तालपुट विष खाकर अपने प्राणों का अन्त किया।^१

बौद्ध ग्रन्थों में बताया है—धूमगृह में कोशलदेवी के अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता था। अजातशत्रु अपने पिता को भूखा और प्यासा रखकर मरवाना चाहता था; क्योंकि देवदत्त ने अजातशत्रु को कहा था—पिता को शस्त्र से न मारें, किन्तु भूखे और प्यासे रखकर मारें। जब कोशलदेवी राजा से मिलने जाती तो उत्संग में भोजन छिपाकर ले जाती और राजा को दे देती। अजातशत्रु को ज्ञात होने पर उसने कर्मकरों से कहा—मेरी माता को उत्संग बाँध कर मत जाने दो। तब महारानी जूड़े में भोजन छिपाकर ले जाने लगी। उसका भी निषेध हुआ। तब वह स्वर्ण पादुका में छिपाकर भोजन ले जाने लगी। जब उसका भी निषेध किया गया तो महारानी गंदोदक से स्नान कर शरीर पर मधु का लेप कर राजा के पास जाने लगी। उसके शरीर को चाटकर राजा कुछ दिन तक जीवित रहा। अन्त में अजातशत्रु ने माता को भी धूमगृह में जाने का निषेध किया।

राजा श्रेणिक अब श्रोतापत्ति के सुख पर जीने लगा। अजातशत्रु ने देखा—राजा मर नहीं रहा है इसलिए नाई को बुलाकर कहा—मेरे पिता राजा के पैरों को तुम पहले शस्त्र से छील दो, उस पर नमक युक्त तेल का लेपन करो और फिर खैर के अंगारे से उस पर सिकताव करो? नापित ने वैसा ही किया, जिससे राजा मर गया।

जैन परम्परा की दृष्टि से माता से पिता के प्रेम की बात को सुनकर कूणिक के मन में पिता की मृत्यु से पूर्व ही पश्चात्ताप हो गया था। जब कूणिक ने देखा—पिता ने आत्महत्या करली है तो वह मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। कुछ समय के बाद जब उसे होश आया तो वह फूट-फूट कर रोने लगा—“मैं कितना पुण्यहीन हूँ, मैंने अपने पूज्य पिता को बन्धनों में बाँधा और मेरे निमित्त से ही पिता की मृत्यु हुई है।” वह पिता के शोक से संतप्त होकर राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी पहुँचा और उसे मगध की राजधानी बनाया।

बौद्ध दृष्टि से जिस जिन विम्बिसार की मृत्यु हुई; उस दिन अजातशत्रु के पुत्र हुआ। संवादप्रदाताओं ने लिखित रूप से संवाद प्रदान किया। पुत्र-प्रेम से राजा हर्ष से नाच उठा। उसका रोम-रोम प्रसन्न हो उठा। उसे ध्यान आया—जब मैं जन्मा था, तब मेरे पिता को भी इसी तरह आह्लाद हुआ होगा। उसने कर्मकरों से कहा—पिता को मुक्त कर दो। संवाददाताओं ने राजा के हाथ में विम्बिसार की मृत्यु का पत्र थमा दिया। पिता की मृत्यु का संवाद पढ़ते ही वह आँसू बहाने लगा और दौड़कर माँ के पास पहुँचा तथा माँ से पूछा—माँ! क्या मेरे पिता का भी मेरे प्रति प्रेम था? माँ ने अंगुली चूसने की बात कही। पिता के प्रेम की बात को सुनकर वह अधिक शोकाकुल हो गया और मन ही मन दुःखी होने लगा।

कूणिक का दोहद, अंगुली में ब्रण, कारागृह आदि प्रसंगों का वर्णन जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में प्राप्त है। परम्परा में भेद होने के कारण कुछ निमित्त पृथक् हैं। जैन परम्परा की घटना 'निरयावलिका' की है, जिसका रचनाकाल पं० दलमुखभाई मालवणिया वि० सं० के पूर्व का मानते हैं।^२ बौद्ध परम्परा में यह घटना 'अट्ठकथाओं' में आई है। इसका रचनाकाल विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है।^३ जिस परम्परा को जो कथा का स्रोत मिला उसी के आधार पर वह ग्रन्थों में आई है।

जैन परम्परा में कूणिक की क्रूरता का चित्रण हुआ है। पर वह बौद्ध परम्परा की तरह स्पष्ट नहीं है। बौद्ध परम्परा में 'अजातशत्रु' अपने पिता के पैरों को छिलवाता है और उसमें नमक भरवा कर अग्नि से सेक करवाता है। यह उसका अमानवीय रूप बहुत ही स्पष्टता से उजागर हुआ है। जैन परम्परा में उसे (श्रेणिक को) कारागृह में डालने की बात तो कही है, पर पिता को बेरहमी से भूखे मारने की बात नहीं कही है। जैन दृष्टि से श्रेणिक की मृत्यु स्वयं ने की तो बौद्ध परम्परा की दृष्टि से 'अजातशत्रु' ने।

१. (क) जेणंतरेण ताला संपुडिज्जंति तेणंतरेण मारयतीति तालपुंडं

—दशवैकालिक चूणि ८, २६२.

(ख) छह प्रकार का विषपरिणाम बताया है—दृष्ट, भुक्त, निपतित, मांसानुसारी, जोणितानुसारी, सहत्वानुपानी।

—स्थानांग सूत्र, पृष्ठ ३५५ अ.

२. आगम-युग का जैन दर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९६६, पृष्ठ २६

—पं० दलमुख मालवणिया

३. आचार्य बुद्धघोष—महाबोधिसत्ता, सारनाथ, वाराणसी, १९५६

जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं में कूणिक की माता का नाम अलग-अलग मिलता है। जातक की दृष्टि से कोशलदेवी कौशल के अधिपति 'महाकौशल' की पुत्री थी और प्रसेनजित' की बहिन थी।^१ विवाह के सुनहरे अवसर पर काशी का एक ग्राम उसे दहेज के रूप में दिया गया था। किन्तु जब विविसार का वध कूणिक के द्वारा किया गया तो प्रसेनजित ने वह ग्राम पुनः ले लिया। अजातशत्रु प्रसेनजित का भानजा था, इसलिए युद्ध के मैदान में उन्होंने उसको नहीं मारा तथा अपनी पुत्री 'वजिरा' का पाणिग्रहण अजातशत्रु के साथ कर दिया और ग्राम पुनः कन्यादान के रूप में अजातशत्रु को दे दिया।^२ संयुक्तनिकाय में अजातशत्रु को 'प्रसेनजित' का भानजा और 'विदेहीपुत्र' ये दोनों कहे गये हैं।^३ किन्तु गहराई से चिन्तन करने पर इन दोनों नामों में संगति का अभाव है। आचार्य बुद्धघोष ने 'विदेही' का अर्थ विदेह देश की राजकन्या न कर 'पण्डिता' किया है।^४ जैन दृष्टि से चलना वैशाली गणतन्त्र के अध्यक्ष चेटक की कन्या थी, इसलिए वह 'वैदेही' थी।^५ सम्भव है, प्रसेनजित की बहिन कोशलदेवी अजातशत्रु की कोई विमाता रही हो। तिव्रती परम्परा^६ तथा 'अमितायुध्यानसूत्र'^७ में 'वैदेही वासवी' यह उसकी माँ का नाम आया है और उसका कारण विदेह देश की राजकन्या बताया है।^८

जैन आगम साहित्य में कूणिक के लिए 'विदेहपुत्र' शब्द व्यवहृत हुआ है।^९ 'राईस डेविड्स' के अभिमतानुसार विविसार राजा की दो रानियाँ थीं—एक प्रसेनजित की बहिन कोशलदेवी और दूसरी विदेहकन्या। विदेहकन्या का पुत्र 'अजातशत्रु' था।^{१०}

हम पूर्व बता चुके हैं कि राजा विविसार जब धूमगृह में था, उस समय 'अट्ठकथा' के अनुसार उसकी सेवा में रानी 'कोशला' थी। 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ बुद्धिज्म' में रानी का नाम 'खेमा' लिखा है और उसे कौशलदेश की राजकन्या लिखा है।^{११} 'श्रेरीगाथा' के अनुसार वह 'मद्र' देश की थी।^{१२} 'अमितायुध्यानसूत्र' के अनुसार रानी का नाम 'वैदेही वासवी' था। डा० राधाकुमुद मुखर्जी का अभिमत है—वैदेही वासवी सम्भव है—चेलना थी।^{१३}

कूणिक राजगृह को छोड़कर चम्पा में आकर बस गया। कूणिक के दो लघुभ्राता थे—हल्ल और विहल्ल। निरयावलिका की टीका, भगवती की टीका और भरतेश्वर वाहुवली वृत्ति में हल्ल और विहल्ल ये दो नाम आये हैं। अनुत्तरीपपातिक में 'विहल्ल' और 'वेहायस' चेलना के पुत्र बताये हैं और हल्ल को धारिणी का पुत्र लिखा है। निरयावलिकावृत्ति और भगवतीवृत्ति में 'हल्ल' और 'विहल्ल' दोनों चेलना के पुत्र कहे हैं। शोधार्थियों के लिए यह विषय अन्वेषणीय है।

राजा श्रेणिक ने अपनी प्रसन्नता से 'सिचनक' हस्ती और देव द्वारा दिया गया 'अठारहसरा' हार हल्ल और विहल्ल को दे दिये। उत्तराध्ययनचूर्णि,^{१४} 'आवश्यकचूर्णि'^{१५} आदि में इनकी उत्पत्ति की रोचक घटना है। आवश्यकचूर्णि के अनुसार इन दोनों वस्तुओं का मूल्य श्रेणिक के सम्पूर्ण राज्य के बराबर था।

विहल्लकुमार 'सिचनक' हस्ति पर आरूढ़ होकर अपने अन्तःपुर के साथ गंगा तट पर जाता और हाथी मूँड पर लेकर कभी रानी को उछालता तो कभी विहल्ल को। कभी दाँतों पर लेकर सूँड से जल की वर्षा करता। इस प्रकार उनकी विविध क्रीड़ाओं को देखकर नगर में यह चर्चा होने लगी कि राजश्री का मच्चा उपभोग विहल्लकुमार कर रहा है। कूणिक की पत्नी पद्मावती ने मुना। उसने कूणिक से कहा—मेरे पास दोनों अमूल्य वस्तुएँ नहीं हैं। कूणिक ने उसे कहा—पिताश्री ने पहले से ही उनको सौंप दी हैं। किन्तु रानी के अत्याग्रह से कूणिक ने हल्ल और विहल्ल कुमारों को बुलाकर कहा—हार और हाथी मुझे सौंप दो। उत्तर में उन्होंने निवेदन किया—पूज्य पिताश्री ने हमें दोनों वस्तुएँ दी हैं। हम आपको कैसे दे सकते हैं? इस उत्तर को सुनकर कूणिक क्रोध हो गया। समय देखकर वे अपने अन्तःपुर के माथ वैशाली चेटक राजा के पास पहुँच गये। कूणिक को जात होने पर चेटक को दूत भजकर

१. Jataka, Ed by Fausboll, Vol. III, p. 121

२. जातक अट्ठकथा, सं० २४६, २३३।

३. वैदेहिपुत्रो ति वैदेहीत पण्डिताधिवचनं एतं. पण्डितित्थियापुत्तो ति अत्थो।

—संयुक्तनिकाय, अट्ठकथा—१, १२०

४. आवश्यकचूर्णि, भाग २, पृ. १३४

५. Rockhill : Life of Buddha, p. 63

६. S. B. E. Vol. XLIX, p. 166

७. Rockhill : Life of Buddha, p. 63

८. भगवती सूत्र, जतक ७, उद्देजक ६, पृष्ठ ५३६

९. Buddhist India, p. 3

१०. Encyclopaedia of Buddhism, p. 316

११. श्रेरीगाथा, अट्ठकथा, १३६-१३७।

१२. हिन्दू मन्वन्ता, पृष्ठ १५३

१३. उत्तराध्ययनचूर्णि

१४. आवश्यकचूर्णि—उत्तराद्य, पृ. १३७

१५. आवश्यकचूर्णि—उत्तराद्य, पृ. १३७

हार और हाथी, हल्ल तथा विहल्ल को चम्पा भेजने ? लिए कहलाया। चेटक ने सूचन किया—आधा राज हल्ल तथा विहल्ल को दे दो तो मैं हार और हाथी भिजवा दूँगा। कूणिक ने पुनः कहलवाया—हल्ल और विहल्ल मेरी विना आज्ञा के हार तथा हाथी ले गये हैं, वह मगध की सम्पत्ति है। अतः आप लौटा दें अथवा युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ।

दूत के अभद्र व्यवहार से और पत्र को पढ़कर चेटक भी उत्तेजित हो गये। उन्होंने गलहत्या देकर उसे निकाल दिया और कहा—मैं अन्याय सहन नहीं कर सकता। शरणागत की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। यदि वह युद्ध के लिए तैयार है तो मैं भी पीछे हटने वाला नहीं हूँ।

कूणिक ने अपने काल आदि भाइयों को बुलाकर युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दिया और वे सभी वैशाली पहुँचे। इधर राजा चेटक ने भी काशी के नौ मल्लवी और कौशल के नौ लिच्छवी इस प्रकार अठारह गण-राजाओं को बुलाकर मंत्रणा की। सभी ने यही कहा—हार और हाथी को लौटाना उचित नहीं। शरणागत की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। दोनों सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। कूणिक ने 'गरुडव्यूह' रचा तो राजा चेटक ने 'शकटव्यूह' की रचना की। राजा चेटक भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसका यह अभिग्रह था—मैं एक दिन में एक से अधिक वाण नहीं चलाऊँगा। उसका वाण अमोघ था। पहले दिन कूणिक की ओर से कालकुमार सेनापति वनकर आया। वह चेटक के वाण से धराशायी हो गया। दूसरे दिन मुकालकुमार तीसरे दिन महाकाल, चौथे दिन कण्ह, पाँचवें दिन सुकण्ह, छठे दिन महाकण्ह, सातवें दिन वीरकण्ह, आठवें दिन रामकण्ह, नौवें दिन पिउसेणकण्ह और दसवें दिन महासेणकण्ह की क्रमशः राजा चेटक के हाथ से मृत्यु हुई। उस समय भगवान् महावीर चम्पा नगरी में विराज रहे थे। दशों राजकुमारों की माताओं ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—कालकुमार आदि जीवित रहेंगे या मृत्यु का वरण करेंगे? भगवान् ने प्रत्युत्तर में कहा—वे सभी मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं। दशों रानियों ने दीक्षा ग्रहण की।

महाशिलाकंटक संग्राम—

महाशिलाकंटक-संग्राम का निरूपण भगवती में हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ 'दीघनिकाय' के महापरिनिव्वाणसुत्त तथा उसकी 'अट्ठकथा' में 'वज्जी-विजय' कहा है। युद्ध का कारण, उसकी प्रक्रिया और उसकी निष्पत्ति परम्परा की पृथक्ता से भिन्न-भिन्न रूप में मिलती है। पर यह स्पष्ट है कि मगध की वैशाली गणतन्त्र पर विजय हुई थी। इस युद्ध के समय भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध ये दोनों विद्यमान थे। दोनों से युद्ध के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये। दोनों ने उनके उत्तर दिये। इस युद्ध के वर्णन से उस समय की राजनैतिक स्थितियों का भी परिज्ञान होता है।

यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं—राजा कूणिक के सेनापति राजा चेटक के अमोघ वाण से मर रहे थे। राजा कूणिक को लगा—अब मेरी पराजय निश्चित है। उसने तीन दिन का उपवास करके शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। वे दोनों इन्द्र प्रकट हुए। उनके सहयोग से पहले दिन महाशिलाकंटक संग्राम की योजना हुई। शक्रेन्द्र द्वारा निमित्त अमेघ वज्र रूप कवच को कूणिक ने धारण किया, जिससे राजा चेटक का अमोघ वाण उसे मार न सका। परस्पर भयंकर युद्ध हुआ। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक की सेना पर कंकड़, तृण, पत्र आदि जो कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता। उस प्रथम दिन के युद्ध में ही चौरासी लाख मानव मारे गये। द्वितीय दिन रथमूसल संग्राम की विकुर्वणा हुई। देव निमित्त रथ पर चमरेन्द्र स्वयं आसीन हुआ तथा मूसल से चारों ओर प्रहार करने लगा।^१ दूसरे दिन में छियानवे लाख मानवों का नष्टार हुआ। इस प्रकार दो दिन के संग्राम में 'एक करोड़ अस्सी लाख' मानवों का विनाश हुआ। चेटक तथा नौ मल्लवी और लिच्छवी—इन अठारह काशी-कौशल के गणराजाओं की पराजय हुई और कूणिक की विजय हुई।^१

राजा चेटक पराजित होकर वैशाली में चला गया। नगर के द्वार बन्द कर दिये गये। कूणिक ने प्राकार तोड़ने का बहुत प्रयास किया पर मफल न हो सका। उसने वैशाली के बाहर सेना का घेरा डाल दिया।

एक दिन उसे आकाशवाणी सुनाई दी—श्रमण कूलवालक^४ जब मागधिका वेश्या में अनुरक्त होगा तब कूणिक

१. भगवती सूत्र, मटीक, सूत्र २६६, पत्र ५७=

२. भगवती सूत्र, मटीक, शतक ७, उद्देशक ६, सूत्र ३००, पृ० ५=४

३. भगवती, शतक ७, उद्देशक ६, सूत्र ३०१

४. 'कूलवालुक' तपस्वी नदी के कूल के समीप जातापना लेता था। उसके तपःप्रभाव से नदी का प्रवाह थोड़ा मुट्ट गया। उससे उसका नाम 'कूलवालुक' हुआ।

—उत्तराध्ययन सूत्र, लक्ष्मीवल्लभ कृत वृत्ति, (गुजराती अनुवाद सहित), अहमदाबाद, १९३५, प्रथम खंड, पत्र =

(अशोकचन्द्र) वैशाली नगरी का अधिग्रहण करेगा ।' कूणिक ने कुलबालक की खोज की । मागधिका वेश्या को बुलाया गया । मागधिका ने कपट से श्राविका का रूप बनाकर कूलबालक को अपने में अनुरक्त किया । कूलबालक नैमित्तिक वेष को धारण कर किसी तरह वैशाली पहुँचा । उसे ज्ञात था कि मुनिसुव्रतस्वामी के स्तूप के कारण ही यह नगरी बची हुई है । नागरिकों ने नैमित्तिक समझकर उससे उपाय पूछा । नैमित्तिक वेश्याधारी कूलबालक ने नागरिकों को बताया—स्तूप के कारण ही शत्रु तुम्हें परेशान कर रहे हैं । यदि स्तूप टूट जायेगा तो शत्रु यहाँ से भाग जायेंगे । लोगों ने स्तूप तोड़ना प्रारम्भ किया । कूलबालक के संकेतानुसार कूणिक की सेना पीछे हटी और जब स्तूप पूर्ण रूप से टूट गया तो कूणिक ने एकाएक आक्रमण कर वैशाली के प्राकार को नष्ट कर दिया ।^१

शत्रु से वचने के लिए हल्ल और विहल्ल कुमार हार तथा हाथी को लेकर चले, किन्तु खाई में प्रच्छन्न रूप से आग थी । सेचनक हाथी को विभंगज्ञान से आग का पता लग गया था, अतः वह आगे नहीं बढ़ रहा था । उसको बलात् आगे बढ़ने के लिए उत्प्रेरित किया गया तो उसने अपनी सूँड़ से हल्ल और विहल्ल को नीचे उतार दिया और स्वयं अग्नि में प्रवेश हो गया । हाथी शुभ अध्यवसाय में आयु पूर्ण कर देव बना । देवप्रदत्त हार को देव उठाकर चल दिया । शासनदेव हल्ल और विहल्ल को महावीर के पास ले गये और वहाँ वे दोनों दीक्षित हुए ।^३

राजा चेटक ने आमरण अनशन कर सद्गति प्राप्त की ।^४

बौद्ध परम्परा में मगध विजय का प्रसंग इस प्रकार है—गंगा के एक पट्टन के सन्निकट पर्वत में रत्नों की खान थी ।^५ 'अजातशत्रु' और लिच्छवियों में यह समझौता हुआ था कि आधे-आधे रत्न परस्पर ले लेंगे । अजातशत्रु ढीला था । आज या कल करते हुए वह समय पर नहीं पहुँचता । लिच्छवी सभी रत्न लेकर चले जाते । अनेक वार ऐसा होने से उसे बहुत ही क्रोध आया पर गणतन्त्र के साथ युद्ध कैसे किया जाय ? उनके बाण निष्फल नहीं जाते ।^६ यह सोचकर वह हर वार युद्ध का विचार स्थगित करता रहा, पर जब वह अत्यधिक परेशान हो गया, तब उसने मन ही मन निश्चय किया कि मैं वज्जियों का अवश्य ही विनाश करूँगा । उसने अपने महामन्त्री 'वस्सकार' को बुलाकर तथागत बुद्ध के पास भेजा ।^७

तथागत बुद्ध ने कहा—वज्जियों में सात बातें हैं—१. सन्निपात-बहुल हैं अर्थात् वे अधिवेशन में सभी उपस्थित रहते हैं ।

२. उनमें एकमत है । जब सन्निपात भेरी वजती है तब वे चाहे जिस स्थिति में हों, सभी एक हो जाते हैं ।

३. वज्जी अप्रज्ञप्त (अवैधानिक) वात को स्वीकार नहीं करते और वैधानिक वात का उच्छेद नहीं करते ।

४. वज्जी वृद्ध व गुरुजनों का सत्कार-सम्मान करते हैं ।

५. वज्जी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों के साथ न तो बलात्कार करते हैं और न बलपूर्वक विवाह करते हैं ।

६. वज्जी अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते ।

७. वज्जी अर्हतों के नियमों का पालन करते हैं, इसलिए अर्हत् उनके वहाँ पर आते रहते हैं ।

ये सात नियम जब तक वज्जियों में हैं और रहेंगे, वहाँ तक कोई भी शक्ति उन्हें पराजित नहीं कर सकती ।^८

प्रधान अमात्य 'वस्सकार' ने आकर अजातशत्रु को कहा—और कोई उपाय नहीं है, जब तक उनमें भेद नहीं पड़ता, वहाँ तक उनको कोई भी शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती । वस्सकार के संकेत से अजातशत्रु ने राजसभा में 'वस्सकार' को इस आरोप से निकाल दिया कि यह वज्जियों का पक्ष लेता है । वस्सकार को निकालने की सूचना वज्जियों को प्राप्त हुई । कुछ अनुभवियों ने कहा—उसे अपने यहाँ स्थान न दिया जाये । कुछ लोगों ने कहा—नहीं, वह मगधों का शत्रु है इसलिए वह हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है । उन्होंने 'वस्सकार' को अपने पास बुलाया और उसे 'अमात्य' पद दे दिया । वस्सकार ने अपने बुद्धि-बल

१. समणे जह कूलवालए, मागहिअं गणिअं रमिस्सए । राया अ असोगचंदए, वेसालि नगरी गहिस्सए ॥ —वही, पत्र १०

२. उत्तराध्ययन सूत्र, लक्ष्मीवल्लभ कृत वृत्ति, पत्र ११ ३. भरतेश्वर बाहुवली वृत्ति, पत्र १००-१०१

४. आचार्य भिक्षु, भिक्षु-ग्रन्थ रत्नकर, खण्ड २, पृष्ठ ८८

५. बुद्धचर्या (पृष्ठ ४८४) के अनुसार "पर्वत के पास बहुमूल्य मुगन्ध वाला माल उतरता था ।"

६. दीघनिकाय अट्ठकथा (मुमंगल विलासिनी), खण्ड २, पृष्ठ ५२६; Dr. B. C. Law : Buddhaghosa, p. 111, हिंदू नभ्यता, पृष्ठ १८८

७. दीघनिकाय, महापरिनिव्वाणसुत्त, २/३ (१६)

८. दीघनिकाय, महापरिनिव्वाणसुत्त, २/३ (१६)

से वज्जियों पर अपना प्रभाव जमाया । जब वज्जी गण एकत्रित होते, तब किसी एक को वस्सकार अपने पास बुलाता और उसके कान में पूछना—क्या तुम खेत जोतते हो ? वह उत्तर देता—हाँ, जोतता हूँ । महामात्य का दूसरा प्रश्न होता—दो बैल से जोतते हो अथवा एक बैल से ?

दूसरे लिच्छवी उस व्यक्ति को पूछते—वताओ, महामात्य ने तुम्हारे को एकान्त में ले जाकर क्या बात कही ? वह सारी बात कह देता पर वे कहते—तुम सत्य को छिपा रहे हो । वह कहता—यदि तुम्हें मेरे पर विश्वास नहीं है तो मैं क्या कहूँ ? इस प्रकार एक-दूसरे में अविश्वास की भावना पैदा की गई और एक दिन उन सभी में इतना मनोमालिन्य हो गया कि एक लिच्छवी दूसरे लिच्छवी से बोलना भी पसन्द नहीं करता । सन्निपात भेरी बजाई गई, किन्तु कोई भी नहीं आया । 'वस्सकार' ने अजातशत्रु को प्रच्छन्न रूप से सूचना भेज दी । उसने ससैन्य आक्रमण किया । भेरी बजायी गयी पर कोई भी तैयार नहीं हुआ । अजातशत्रु ने नगर में प्रवेश किया और वैशाली का सर्वनाश कर दिया ।^१

इस प्रकार जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने मगध विजय और वैशाली नष्ट होने का विवरण प्रस्तुत किया है । जैन दृष्टि से चेटक अठारह गण देशों का नायक था । बौद्ध परम्परा उसे केवल प्रतिपक्षी ही मानती है । जैन दृष्टि से कृष्णिक के पास तीस करोड़ सेना थी तो चेटक के पास सत्तावन करोड़ सेना थी । और दोनों ही युद्धों में एक करोड़ अस्मी लाख मानवों का संहार हुआ । बौद्ध दृष्टि से युद्ध का निमित्त है—रत्न राशि ! जैन परम्परा में जैसे चेटक का प्रहार अमोघ बताया है, वैसे ही बौद्ध ग्रन्थों की दृष्टि से वज्जी लोगों के प्रहार अचूक थे । नगर की रक्षा का मूल आधार जैन दृष्टि से स्तूप को माना है तो बौद्ध दृष्टि से पारस्परिक एकता, गुरुजनों का सम्मान आदि बताया गया है । जितना व्यवस्थित वर्णन जैन परम्परा में है, उतना बौद्ध परम्परा में नहीं हो पाया है । वैशाली की पराजय में दोनों ही परम्पराओं में छद्म भाव का उपयोग हुआ है । वैशाली का युद्ध कितने समय तक चला ? इस सम्बन्ध में जैन दृष्टि से एक पक्ष तक तो प्रत्यक्ष युद्ध हुआ और कुछ समय प्राकार-भंग में लगा । बौद्ध दृष्टि से 'वस्सकार' तीन वर्ष तक वैशाली में रहा और लिच्छवियों में भेद उत्पन्न करता रहा । डा० राधाकुमुद मुखर्जी के अभिमतानुसार युद्ध की अवधि कम से कम सोलह वर्ष तक की है ।^२

विजय तस्कर—

साधना की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है—पर-पदार्थों के प्रति आसक्ति ! और जब तक आसक्ति है, तब तक आत्मानन्द का अनुभव नहीं होता । जब इन्द्रियों के विषयों में राग-द्वेष का विष मिल जाता है, तब समाधिभाव नष्ट हो जाता है । श्रमण अपने शरीर पर भी ममत्व न रखे । वह आहार और पानी के द्वारा शरीर का संपोषण किस प्रकार करता है ? यह दृष्टान्त के माध्यम से इस प्रकार बताया है—

राजगृह में धन्ना सार्थवाह था । उसकी पत्नी भद्रा थी । अनेक मनौतियों के पश्चात् उसके पुत्र हुआ । उसका नाम 'देवदत्त' रखा । एक बार पंथक देवदत्त को बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर खेलने के लिए ले जा रहा था । देवदत्त बालकों के साथ खेलने लगा । उधर से 'विजय' नामक तस्कर चोर आया और देवदत्त को उठाकर चला दिया । उसने आभूषण उतार लिये और देवदत्त को कुएँ में फेंक दिया, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये । पंथक अनुचर का तो ध्यान ही नहीं रहा । जब उसे ध्यान आया तो बालक नदारद था । उसने बहुत ढूँढ़ा, जब वह नहीं मिला तो रोता-रोता घर पर आया । धन्ना सार्थवाह ने नगर-रक्षकों को सूचना दी । खोजने पर उन्हें अन्धकूप में बालक का शव मिला । पैरों के चिह्नों को निहारते हुए वे सधन झाड़ियों में छिपे हुए विजय चोर के पास पहुँचे और उसे पकड़कर खूब मारा तथा कारागृह में बन्द कर दिया ।

साधारण से अपराध के लिए धन्ना सार्थवाह को भी एक दिन कारागृह में बन्द कर दिया गया । विजय तस्कर और धन्ना सार्थवाह दोनों एक ही वेड़ी में बद्ध थे । धन्ना सार्थवाह की पत्नी भद्रा ने बड़िया भोजन कारागृह में भेजा । धन्ना सार्थवाह जब भोजन करने बैठा तो विजय तस्कर ने उस भोजन में से कुछ पदार्थ खाने के लिए माँगे । धन्ना सार्थवाह अपने पुत्र-घातक को उसमें से भोजन कैसे दे सकता था ? उसने इन्कार कर दिया । जब धन्ना सार्थवाह को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उपस्थित हुई तो उन्होंने विजय तस्कर को कहा । क्योंकि वे दोनों एक ही वेड़ी में आवद्ध थे । वे एक दूसरे के बिना जा नहीं सकते थे, अतः विजय चोर ने कहा—मे तो भूखा-प्यासा हूँ । तुम्हें जाना हो तो जाओ । कुछ समय तक वह मल-मूत्र रोकने का प्रयास करता रहा पर कब तक सकता ? अन्त में

त्रिवश होकर धन्ना सार्थवाह ने विजय चौर को आहार-पानी देने का वचन दिया, तब वह साथ में जाने लगा। आहार-पानी लाने का कार्य पंथक अनुचर का था। उसने सेठ को आहार देते हुए देखकर विचार किया—यह कैसा सेठ है? जो अपने पुत्र के हत्यारे को आहार दे रहा है। उसने सेठानी को कहा। सेठानी का अत्यधिक क्रोध आया कि सेठ पुत्र के हत्यारे का पोषण कर रहे हैं। कुछ समय के बाद सेठ को कारागृह से मुक्ति मिली। वह घर पर पहुँचा किन्तु सेठानी की मुद्रा को देखकर सेठ ने कहा—क्या तुझे मेरा कारागृह से मुक्त होना अच्छा नहीं लगा? भद्रा सार्थवाही ने कहा—आपने मेरे लाड़ले लाल के हत्यारे विजय चौर को आहार आदि दिया। यही मेरे कोप का कारण है। श्रेष्ठी ने कहा—कर्तव्य, धर्म या प्रत्युपकार की दृष्टि से नहीं, अपितु मल-मूत्रविसर्जन में सहायक होने की दृष्टि से आहारादि दिया था। यह सुनकर भद्रा को सन्तोष हुआ।

प्रस्तुत कथा-प्रसंग को देकर शास्त्रकार ने कहा—सेठ को त्रिवशता से पुत्र-घातक को भोजन देना पड़ा, वैसे ही साधक को संयम निर्वाह के लिए आहार आदि शरीर को देना पड़ता है। श्रेष्ठी ने तस्कर को अपना परम हितैषी समझ कर भोजन नहीं दिया, पर कार्य-सिद्धि के लिए दिया, वैसे ही श्रमण भी ज्ञान, दर्शन की सिद्धि के लिए आहार ग्रहण करता है। आगम साहित्य में श्रमण के आहार ग्रहण करने के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। उम गुरुतम रहस्य को यहाँ कथा के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

मयूरी के अण्डे

आध्यात्मिक समुत्कर्ष के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। गीता में 'श्रद्धावान् लभते ज्ञान' कहा है। इस विश्व में ज्ञान सबसे महान् है। वह ज्ञान श्रद्धा से प्राप्त होता है। भगवान् महावीर ने श्रद्धा को दुर्लभ ही नहीं, किन्तु परम दुर्लभ कहा है। अतः साधक को यह प्रेरणा दी है—“तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहि पवेइयं।” जिसका चित्त चंचल है, मन डांवाडोल है, वह सिद्धि को वरण नहीं कर सकता। सफलता के लिए श्रद्धा अनिवार्य है।

चम्पानगरी में जिनदत्त-पुत्र और सागरदत्त-पुत्र ये दो सार्थवाह-पुत्र थे। दोनों अभिन्न मित्र थे। वे धूप-छाया की तरह साथ रहते थे। पर दोनों की वृत्ति एक दूसरे से विपरीत थी। एक बार वे गणिका देवदत्ता के साथ सुरभि उद्यान में पहुँचे। स्नान, भोजन, संगीत, नृत्य का आनन्द लेते हुए वे सघन झाड़ियों में बने हुए 'मालूकोकच्छ' में गये। उन्हें यकायक निहार कर एक मयूरी घबराहट से केकारव करती हुई वृक्ष की शाखा पर जा बैठी। सार्थवाहपुत्रों को वहाँ पर दो अण्डे दिखाई दिये। दोनों ने एक-एक अण्डा उठा लिया। सागरदत्त-पुत्र का मन शंकालु था, वह पुनः पुनः अण्डे को उलट-पुलट कर देखता कि कव अण्डे में से वच्चा बाहर निकलेगा। बार-बार हिलाने से अण्डा निर्जीव हो गया। जिनदत्त-पुत्र ने वह अण्डा मयूर-पालकों को सौंप दिया। वच्चा हुआ। उसे विविध प्रकार की नृत्यकलायें सिखाईं। सारे नगर में उसकी प्रसिद्धि हो गई।

प्रस्तुत रूपक के माध्यम से यह बताया है कि “संशयात्मा विनश्यति” और जो श्रद्धाशील होता है, वह सिद्धि का वरण करता है। इसी तरह चाहें श्रमण हो, चाहें श्रमणी हो, उन्हें श्रद्धानिष्ठ होकर साधना करनी चाहिए। जो श्रद्धा के साथ साधना करता है, वह सफलता को सम्प्राप्त होता है।

इस कथा के वर्णन से यह भी परिज्ञात होता है कि उस युग में भी मानव आज की तरह पशु-पक्षियों को प्रशिक्षण देता था। प्रशिक्षण देने पर पशु-पक्षी गण ऐसी कला प्रदर्शित करते, जिससे दर्शक मन्त्रमुग्ध हो जाते। पशु-पक्षी, जिनका जीवन विकल है, वे भी प्रशिक्षण से कलावान बन सकते हैं। यदि मानव शिक्षण के क्षेत्र में आगे बढ़े तो वह स्व और पर दोनों के जीवन का कल्याण कर सकता है।

कूर्म कथानक—

वाराणसी के बाहर मृतगंगा तीर नामक द्रह (तालाव) था जिसमें रंग-बिरंगे कमल के फूल खिल रहे थे। अनेक प्रकार के मच्छ, कच्छप, मगर, ग्राह, प्रभृति जलचर प्राणी उस तालाव में थे। एक समय दो कूर्म तालाव में से बाहर निकले और आसपास आहार की खोज में घूमने लगे। उसी समय दो सियार वहाँ आ पहुँचे। सियारों को देखकर कूर्म भयभीत हुए। उन्होंने अपने पैर, गर्दन और शरीर को छिपा लिया। सियारों की दृष्टि उन कछुओं पर पड़ी। वे उन पर झपटे। छेदन-भेदन करने का बहुत कुछ प्रयास किया, पर वे सफल न हो सके। सियार बहुत ही चालाक जानवर होता है। सियारों ने सोचा—जब तक वे अपने अंगों का गोपन किये हुए रहेंगे तब तक हम इनका बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे। अतः हमें चालाकी से काम लेना चाहिए। वे दोनों सियार कूर्मों के पास से हट गये और झाड़ी में छिप गये। उन दोनों में से एक कूर्म चंचल प्रकृति का था। उसने धीरे-धीरे अपने श्वयव बाहर निकाले। सियार उस पर झपटे और उसे मारकर खा गये। दूसरे कूर्म ने दीर्घकाल तक अपने अंगों को गोपन करके

रखा। जब सियार चले गये तब वह शीघ्रता से तालाब में पहुँच गया। सियार उस कूर्म का बाल भी बाँका नहीं कर सके। इसी तरह जो साधक अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में रखता है, उसकी किञ्चित् भी क्षति नहीं होती। सूत्रकृतांग^१ में भी अत्यन्त संक्षेप में कूर्म के रूपक को साधक के जीवन के साथ निरूपित किया है। श्रीमद् भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कछुए का दृष्टान्त दिया है।^२ तथागत बुद्ध ने भी साधक के जीवन के लिए कूर्म का रूपक प्रस्तुत किया है। इस तरह कूर्म का रूपक जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों ही परम्पराओं में इन्द्रियनिग्रह के लिए दिया गया है। कथा के माध्यम से देने के कारण यह रूपक अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है।

रोहिणीजात—

राजगृह नगर में धन्य सार्थवाह के धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित—ये चार पुत्र थे। उनकी उज्जिका, भोगवती रक्षिका और रोहिणी—ये चारों क्रमशः पत्नियाँ थीं। धन्य सार्थवाह अत्यन्त दूरदर्शी था। जब वह वृद्धावस्था से ग्रसित हो गया तो उसे अपने कुटुम्ब की सुव्यवस्था की चिन्ता हुई। चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा के लिए उसने एक समारोह में पाँच-पाँच शालि के दाने उन्हें दिये और कहा—जब भी मैं माँगू तब मुझे पुनः देना। प्रथम पुत्रवधू ने सोचा—श्वसुरजी की बुद्धि मारी गई है, यही कारण है कि इतना बड़ा समारोह करके केवल पाँच दाने दिये हैं और उस पर भी पुनः लौटाने की बात ! यहाँ दानों की क्या कमी है, वे जब भी माँगें उस समय मैं इन्हें दे दूँगी। यह सोचकर उन दानों को उसने फेंक दिया। द्वितीय पुत्रवधू से सोचा—यद्यपि दानों का मूल्य नहीं है तथापि पूज्य श्वसुर का यह दिव्य प्रसाद है, यह सोचकर उसने वे दाने खा लिये। तृतीय पुत्रवधू ने सोचा—किसी विशिष्ट अभिप्राय से ये दाने दिये गये हैं, अतः इन्हें सम्भाल कर रखना उपयुक्त है। चतुर्थ पुत्रवधू बुद्धिमती थी। उसने सोचा—कोई न कोई गूढ़ रहस्य इसमें छिपा हुआ है। उसने पाँचों दाने मायके भेज दिये। उसकी सूचना के अनुसार वे दाने खेत में बो दिये गये। पाँच वर्षों में दानों के अम्बार लग गये। पाँच वर्ष के पश्चात् श्रेष्ठी ने दाने माँगे। सभी ने सत्य कह दिया। पहली पुत्रवधू को घर की सफाई का कार्य सौंपा। द्वितीय पुत्रवधू को भोजनशाला का कार्य दिया गया क्योंकि वह खाने में दक्ष थी। तृतीय पुत्रवधू को कोषाध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। चतुर्थ पुत्रवधू ने पाँच दाने माँगने पर जब अनाज का ढेर लगा दिया तो उसे गृहस्नामिनी के पद पर आसीन किया और कहा—तू वस्तुतः यशस्विनी पुत्रवधू है। तरे कारण ही यह घर फलेगा-फूलेगा।

प्रस्तुत रूपक के माध्यम से शास्त्रकार ने कहा—जो साधक प्रथमपुत्रवधू की भाँति महाव्रतों को ग्रहण करके फैंक (छोड़) देते हैं, वे इस भव और परभव में सर्वत्र अवहेलना के भाजन होते हैं। जो महाव्रतों को ग्रहण कर सांसारिक उपभोगों में लग जाते हैं, वे भी निन्दा के पात्र हैं। जो साधक रक्षिता की भाँति महाव्रतों की सुरक्षा करते हैं वे प्रशंसा के पात्र होते हैं और जो साधक रोहिणी की भाँति सद्गुणों की अभिवृद्धि करता है, वह परमानन्द का भागी बनता है।

प्रोफेसर टाइमन ने अपनी जर्मन पुस्तक “बुद्ध और महावीर” में वाइविल की मैथ्यू और लूक की कथा के साथ इस कथा की तुलना की है। वहाँ पर शालि के दानों के स्थान पर ‘टेलेन्ट’^३ शब्द का प्रयोग किया है। टेलेन्ट उस युग का मितका विशेष था। एक व्यक्ति ने विदेश जाते समय अपने तीन पुत्रों को दश-दश टेलेन्ट दिये थे। एक ने व्यापार के द्वारा उनकी अत्यधिक वृद्धि की, दूसरे पुत्र ने उन्हें जमीन में गाड़ दिये और तीसरे ने खर्च कर दिये। लौटने पर पिता प्रथम पुत्र पर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

आकर्णः उत्तम जाति का अश्व—

जो साधक इन्द्रियों के वशवर्ती होकर अनुकूल विषयों की उपलब्धि होने पर उसमें लुब्ध हो जाते हैं, वे रागवृत्ति के कारण भव-भ्रमण करते हैं। उन्हें अनेक प्रकार की व्यथायें भी सहन करनी पड़ती हैं और जो उनमें आमत्त नहीं होते, वे मानसिक यातनाओं से वच जाते हैं। जैसे—हस्तिशीर्ष नगर के कुछ व्यापारी नौका में बैठकर जा रहे थे। एकएक तृफान में नौका उगमगाने लगी। नौकाएँ कालिक द्वीप के किनारे जा लगी हैं। वहाँ उन्होंने हीरे-पन्ने, स्वर्ण और चाँदी की खदानें देखीं। उन्होंने बड़ा बड़िया भोजन भी देखा। उन्हें धोड़ों से कोई प्रयोजन नहीं था। अतः पर्याप्त धन लेकर वे अपने नगर लौट आये। जब व्यापारिणण राजा समस्तनृ के पास बहुमूल्य उपहार लेकर पहुँचे तो राजा ने पूछा—तुमने कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या ? उन्होंने कालिक द्वीप के घाटों की

१ जहा कुम्भसंभागाई, सए देहे समाहरे। एवं पावाइं महावीर, अज्जपेण समाहरे ॥ —सूत्रकृतांग. प्र० अ० २०. अ० २०, भाषा ४२६
 २ यदा त्रहरते चायं कूर्मो गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थैर्ब्यस्तन्य प्रजा प्रतिपिप्ता ॥ —श्रीमद् भगवद्गीता = ५= ३.
 ३. टेलेन्ट (talent) शब्द का वास्तविक अर्थ बुद्धि तथा मानसिक विजिष्ट शक्ति होता है।

वान कही। राजा के आदेश से व्यापारी पुनः कालिक द्वीप पहुँचे। उन्होंने मुगन्धित और मुम्बादु पदार्थ चारों ओर विखेर दिये। इन्द्रियों के वशीभूत हाँकर कुछ घोड़े उन पदार्थों का उपभोग करने के लिए उधर आये और वे उनके जाल में फँस गये। जो घोड़े उन पदार्थों के प्रति आकर्षित नहीं हुए वे अपने आपको मुक्त रख सके। इसी तरह जो साधक इन्द्रियों के अधीन हो जाता है, वह पथभ्रष्ट हो जाता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि व्यापारी अश्वों को पकड़ने के लिए जब गये तब बल्लकी, भ्रामरी, कच्छभी, बम्बा, पटभ्रमरी, आदि विविध प्रकार की वीणायें, विविध प्रकार के चित्र, मुगन्धित पदार्थ, गुड़िया-मत्स्यसंज्ञिका जवकर, मत्स्यसंज्ञिका पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर प्रकार की शर्कराएँ और विविध प्रकार के वस्त्र लेकर पहुँचे थे। इससे यह स्पष्ट है कि भारत में विविध प्रकार की कलायें तथा साधन-सामग्री उपलब्ध थीं जो यहाँ की सस्कृति की उत्पत्ति का सहज प्रतीक हैं।

मृगापुत्र—

जैन साहित्य में कर्म-सिद्धान्त का बहुत ही विस्तारपूर्वक सांगोपांग वर्णन किया गया है। वह वर्णन जिज्ञासुओं के लिए रसप्रद होने पर भी सहज सुगम नहीं है। प्रस्तुत कथानक में कथा के द्वारा इस विषय को बहुत ही सुगम और सुबोध शैली में प्रस्तुत किया गया है तथा कर्म-विपाक की प्ररूपणा की है। मृगापुत्र प्रकृष्ट पापकर्म के उदय से जब रानी के गर्भ में आया तो रानी राजा की अप्रिय हो गई। राजा उसे देखना भी पसन्द नहीं करता। रानी सोचने लगी—मैं राजा की इतनी अधिक प्रिय-पात्र थी कि मुझे बिना निहारे राजा को चँन नहीं पड़ती थी। एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया? सम्भव है, गर्भ ने अपना प्रभाव दिखाया हो! वच्चे का जन्म हुआ। वह अन्धा, बहरा, लूला, लँगड़ा और हुण्डक संस्थानी था। उसके शरीर में हाथ, पैर, कान, नाक आदि अवयवों का अभाव था। केवल उनके चिह्न मात्र थे। मृगादेवी ने उसे घूर पर फिकवाना चाहा, पर राजा के समझने से उसने उस बालक को गुप्त रूप से भू-गृह में रख दिया। उस नगरी में एक जन्मान्ध भिखारी था। उसे निहार कर गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! क्या किसी स्त्री के कोई वच्चा जन्म से ही अन्धा होता है? भगवान् ने मृगापुत्र की बात बताते हुए कहा—वह लूला, लँगड़ा, अन्धा और बहरा है। प्रभु की आज्ञा से गौतम उसे देखने के लिए पहुँचे। उसके शरीर में से मृत सर्प की तरह भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। वह जो भी आहार करता, रक्त और मवाद बनाकर बाहर निकलता और उसे वह पुनः खा जाता। उसको देखते ही गणधर गौतम को नारकीय दृश्य स्मरण हो आया। भगवान् ने उसके पूर्वभव का वर्णन करते हुए कहा—इस जीव ने पूर्वभव में अनेक पापकृत्य किये थे। जिसके फलस्वरूप उसे उस जन्म में सोलह महारोग हुए। वहाँ से मरकर यह नरक में गया। नरक से निकलकर यह 'मृगापुत्र' हुआ है। यहाँ भी यह पाप-फल भोग रहा है। इसके पश्चात् भी अनेक जन्मों तक यह पाप का फल भोगेगा।

प्रस्तुत कथा में यह बताया है—शासन या सत्ता प्राप्त होने पर जो उसका दुरुपयोग करता है, प्रजा पर अनुचित कर लादता है, रिश्वत लेता है, उसे इस प्राप का फल इस प्रकार भोगना पड़ता है। आधुनिक वातावरण में पले-पुसे सत्ता के लोभी शासकों के लिए यह कथा सर्चलाइट की तरह उपयोगी है।

उज्जितक कथानक—

गौ-मांसभक्षण, मद्यपान और विषयासक्ति के दुःखद फलों को बताने के लिए 'उज्जितक' कुमार की कथा दी गई है। 'उज्जितक' वाणिज्यग्राम के विजयमित्र सार्थवाह का पुत्र था। गौतम गणधर वाणिज्यग्राम में भिक्षा के लिए पधारे। उन्होंने अत्यधिक कालाहल सुना। उन्हें मालूम हुआ कि राजा के अधिकारी गण किसी व्यक्ति को बाँधकर मारते-पीटते हुए ले जा रहे हैं। गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया—इसे इतना कष्ट क्यों दिया जा रहा है? भगवान् ने उत्तर में कहा—हस्तिनापुर में 'भीम' नामक एक कूटग्रह अर्थात् पशुओं का तस्कर रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'उत्पला' था। जब वह गर्भवती हुई तब उसे गाय, बैल आदि के मांस खाने की इच्छा हुई। उसकी पूर्ति की गई। गायों को त्रास देने के कारण उसका नाम 'गौत्रास' रखा गया। वह जीवन भर गौ-मांस का उपयोग करता रहा। वहाँ से मरकर वाणिज्यग्राम में 'विजयमित्र' के यहाँ पर यह 'उज्जितक' नाम का पुत्र हुआ। जब यह बड़ा हुआ तब इसके माता-पिता का देहान्त हो गया। नगर-रक्षक ने इसे घर से निकाल दिया। कुसगति में पड़ने से चूतगृह, वेश्यागृह, मद्यगृह आदि में घूमने लगा। वाणिज्यग्राम में 'कामध्वजा' वेश्या थी। वह अत्यन्त रूपवती और कवाओं में दक्ष थी। उनके अनुपम सौन्दर्य पर उज्जितक आसक्त हो गया। कामध्वजा वेश्या राजा को भी प्रिय थी। अतः राजा ने अपने अनुचरों से उसे पकड़वाया और उसकी खूब मरम्मत की। उसे शूली पर चढ़ाया गया। पाप कर्म के कारण यह नरक आदि गतियों में परिभ्रमण करेगा। यह विषयासक्ति का कटु परिणाम है।

प्रस्तुत कथानक में यह बात प्रतिपादित की गई है कि हँसते हुए व्यक्ति पाप कृत्य करता है, उसका फल जत्र प्राप्त होता है तब रो-रोकर भुगतने पर भी वह छूटता नहीं है ।

अभग्नसेन—

पाप की दारुण कथा का इसमें चित्रण हुआ है । पुरिमतालशालाटवी चोरपल्ली में 'विजय' नाम का एक तस्कर अधिपति रहता था । उसकी पत्नी का नाम 'खंदसिरी' था । उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'अभग्नसेन' रखा गया । गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने उनका पूर्वभव सुनाते हुए कहा—अभग्नसेन पूर्वभव में 'निन्नअ' नामक अण्डों का व्यापारी था । वह कवूतरी, मुर्गी, मोरनी आदि के अण्डों को स्वयं एकत्रित करता, दूसरों से करवाता, फिर उन अण्डों को आग पर तलता, भूनता और उन्हें बेचकर अपना जीविकोपार्जन करता तथा स्वयं अण्डों का भक्षण भी करता था, जिसके फलस्वरूप वह तृतीय नरक में उत्पन्न हुआ और वहाँ से आयु पूर्ण होने पर 'अभग्नसेन' तस्कर हुआ है । इसने प्रजा के तन, धन, जन का अपहरण कर उन्हें विविध यातनाएँ दीं जिससे राजा ने क्रुद्ध होकर पकड़ने के लिए अनेक प्रयास किये, पर वह सफल न हो सका । एक बार विराट उत्सव का आयोजन कर उसे आमंत्रित किया गया । अनेक प्रकार की यातनाएँ देकर उसे शूली पर चढ़ाया गया । पाप का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है ।

शकट—

'शकट' साहंजनी ग्राम के 'सुभद्र' नामक सार्थवाह का पुत्र था । गणधर गौतम ने देखा—राजपथ पर अनेक व्यक्तियों से घिरा हुआ एक व्यक्ति खड़ा है और उसके पीछे एक महिला भी । उन दोनों के नाक कटे हुए थे तथा गाढ़ बन्धनों में वे जकड़े हुए भी थे । उच्च स्वर से वे पुकार रहे थे—हम अपने पाप का फल भोग रहे हैं । गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—ये कौन हैं ? और इन्होंने ऐसा कौन सा पापकृत्य किया है जिसका ये फल भोग रहे हैं ? भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—'छगलपुर' नगर में 'छन्निक' नामक कसाई था । वह विविध प्रकार के पशुओं का मांस बेचता था । इस पाप के फलस्वरूप वह मरकर चतुर्थ नरक में गया और वहाँ से निकलकर वैश्य सुभद्र की पत्नी 'भद्रा' की कुक्षि से पैदा हुआ तथा सप्त कुव्यसनों का सेवन करने लगा । 'सुदर्शना' नामक वेश्या से वह प्रेम करता था । प्रधान-अमात्य 'सुपेण' भी उस वेश्या पर अनुरक्त था । सुपेण ने एक बार वेश्या के साथ उसे देखा और उस पर कुपित हो गया । सुपेण की आज्ञा से एवं पूर्वकृत पाप कर्मों के कारण इन दोनों को यह स्थिति हुई है । इस प्रकार हिंसकवृत्ति व दुराचार के कारण यह अनेक जन्मों में दुःख पायेगा ।

यह सत्य है कि किये हुए कर्मों को भोगना पड़ता है । यद्यपि नास्तिक या भौतिकवादी व्यक्तियों को यह विश्वास नहीं होता । "कृतस्य कर्मणो नूनं, परिणामो भविष्यति" व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है किन्तु फल भोगने में परतंत्र है । यदि उसे यह ध्यान हो जाये कि मुझे कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा तो वह कर्म बाँधने से अपने आपको बचाने का प्रयास करेगा ।

प्रस्तुत कथानक में यही रहस्य व्यक्त किया गया है ।

बृहस्पतिदत्त—

बृहस्पतिदत्त कोशाम्बी के 'सोमदत्त' पुरोहित का पुत्र था । वह पूर्वभव में 'महेश्वरदत्त' नाम का राजपुरोहित था । वह राजा की बलवृद्धि और स्वास्थ्य लाभ के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के बालकों को मारकर नरमेध यज्ञ करता था । जिस पाप के फलस्वरूप वहाँ से मरकर वह पाँचवीं नरक में गया और वहाँ से निकलकर यह 'बृहस्पतिदत्त' हुआ है । राजकुमार का 'बृहस्पतिदत्त' पर अत्यधिक स्नेह था । अतः राजा की मृत्यु के बाद यह राजपुरोहित बना । महारानी पर अनुरक्त हो जाने से राजा ने उसे मृत्यु दण्ड दिया । इस प्रकार पूर्वकृत कर्मों के कारण यह विविध योनियों में परिभ्रमण करता रहेगा ।

इस कथा में भी हिंसा और व्यभिचार के कटु परिणामों को व्यक्त किया गया है ।

नन्दीवर्द्धन कुमार—

नन्दीवर्द्धन 'श्रीदाम' राजा का पुत्र था । वह पूर्वभव में किसी राजा के यहाँ कोनवान था । अपराधियों को अत्यधिक क्रूर दण्ड देकर वह आनन्द की अनुभूति करता था । जिस पाप के फलस्वरूप वह मरकर छठी नरक में गया । नरक में निरन्तर कर राजा का पुत्र 'नन्दीवर्द्धन' हुआ । उसने अपने पिता को मारकर स्वयं राज्य लेना चाहा और उन पर्यन्त में उसने एक राई का महयोग लिया । समय के पूर्व ही रहस्य खुल जाने से राजा ने अपने हत्यारे पुत्र नन्दीवर्द्धन को प्राणदण्ड दिया । पूर्वकृत कर्मों के

कारण इसे अनेक जन्मों तक भयंकर दुःख भोगना पड़ेगा। कथा का सार यह है कि अपराधी व्यक्ति को भी निर्दयता से दण्ड नहीं देना चाहिए और दण्ड देकर आह्लादित नहीं होना चाहिए।

उम्बरदत्त—

उम्बरदत्त 'सागरदत्त' सार्थवाह का पुत्र था। पूर्वभव में वह एक कुशल वैद्य था तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा में निष्णात था। वह हृण व्यक्तियों को मद्य, मांस, मत्स्य भक्षण का उपदेश देता और कहता—इससे तुम्हें शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होगा। इस पाप के फलस्वरूप वह छठी नरक में पैदा हुआ और वहाँ से मरकर यह 'उम्बरदत्त' हुआ है। दुराचार के सेवन से और पूर्वकृत पाप कर्मों के कारण इसके शरीर में सोलह महारोग पैदा हुए। यहाँ से मरकर यह अनेक जन्मों में दुःख प्राप्त करेगा। इस प्रकार पूर्व में कृत पाप कर्मों का फल प्रत्येक जीव को भोगना ही पड़ता है—यह बात कथा के साध्यम से स्पष्ट की गई है।

शौरिकदत्त—

शौरिकदत्त समुद्रगुप्त नामक एक धीवर का पुत्र था। शौरिकदत्त पूर्वभव में किसी राजा के यहाँ भोजन निर्माण का कार्य करता था। वह भोजन में विविध प्रकार के पशु-पक्षी व मत्स्य के मांस को तैयार कर स्वयं भी खाता और राजा को भी खिलाकर आनन्दित होता था जिसके फलस्वरूप वह मरकर छठी नरक में पैदा हुआ और वहाँ से निकल कर यह 'शौरिकदत्त' हुआ। यह एक दिन मछली को भूनकर खा रहा था कि मछली का काँटा इसके गले में चुभ गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह काँटा नहीं निकला। भयंकर वेदना से कष्ट पाकर इसने आयु पूर्ण किया और मरकर नरक आदि गतियों में परिभ्रमण करेगा। प्रस्तुत कथानक में भी पाप के फल का ही चित्रण किया गया है और यह सन्देश दिया गया है कि पाप के कार्यों से बचा जाय।

देवदत्ता

देवदत्ता 'दत्त' नामके गृहपति की कन्या थी। 'वेश्रमणदत्त' राजा के पुत्र 'कुशनन्दी' के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। कुशनन्दी माता का परम भक्त था। वह तेल आदि से माता का मर्दन करता। उसकी हर प्रकार की सुख-सुविधा का ध्यान रखता पर देवदत्ता को यह बात पसन्द नहीं थी, इसीलिए रात्रि में सोती हुई सास को देवदत्ता ने मार दिया। राजा को ज्ञात होने पर उसने देवदत्ता के वध की आज्ञा दी। इस प्रकार वह पूर्वकृत पाप के कर्मों के कारण अनेक जन्मों तक दारुण वेदना का अनुभव करती रहेगी।

अंजू कथानक

अंजू 'धनदेव' सार्थवाह की कन्या थी। 'विजय' नामक राजा के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। गृह्य स्थान पर भयंकर शूल रोग पैदा होने से अंजू को अपार कष्ट हुआ। नाना प्रकार के उपचार करवाये, किन्तु रोग शान्त नहीं हुआ। जिससे उसके शरीर की कान्ति नष्ट हो गई। एक वार गणधर गौतम ने उसकी अस्थि-पंजरसम काया देखी तो भगवान् से जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवान् महावीर ने उसके पूर्वजन्म का वर्णन करते हुए कहा—यह पूर्वभव में वेश्या थी। उस पाप के कारण ही इस जन्म में इसे कष्ट भोगना पड़ रहा है। इसके पश्चात् भी इसे अनेक जन्मों तक कष्ट भोगने पड़ेंगे।

इस प्रकार 'भृगापुत्र' से लेकर 'अंजू' कथानक तक दश कथार्ये दी गई है। इनका मूल आधार विपाक सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध है। इन दशों कथाओं के सभी पात्र ऐतिहासिक ही हों, यह बात नहीं है। किन्तु पौराणिक और प्राग् ऐतिहासिक काल के पात्र हैं। इन सभी कथाओं में हिंसा, म्लेय और अत्रह्य के कटुक परिणाम प्रतिपादित किये गये हैं, पर अमत्य और महापरिग्रह के परिणामों की चर्चा नहीं हुई है। शास्त्रकार का मूल उद्देश्य यही है कि साधक पाप से निवृत्त हों और शुभ भावों में परिणति करें तथा शुद्धता की ओर अग्रसर हों।

इसी दृष्टि से गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने विविध प्रसंग दत्ताकर जीवन का महान तथ्य उजागर किया।

पूरण बाल तपस्वी—

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर को दिव्य देव ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई ? भगवान् ने कहा—ब्रह्मेल सन्निवेश में 'पूरण' गृहपति था। उसने तामली तापस की तरह अपने उषेष्ट पुत्र को गृहभार सम्भलाकर 'दानामा' प्रव्रज्या ग्रहण की। ब्रह्मे के चारणे में चार खण्ड वाला लकड़ी का पात्र लेकर वह भिक्षा के लिए निकलता।

प्रथम खण्ड में आने वाली भिक्षा पथिकों को देता, दूसरे खण्ड की भिक्षा कौबे और कुत्तों को खिलाता, तीसरे खण्ड की भिक्षा मछलियों और कछुओं को खिलाता और चतुर्थ खण्ड की भिक्षा स्वयं ग्रहण करता। इस प्रव्रज्या में दान की प्रधानता होने से यह प्रव्रज्या 'दानामा' कहलाती थी। क्योंकि वह तीन खण्डों में से तो दान दे देता तथा केवल एक खण्ड का ही आहार करता और वह भी दो दिन के वाद में। जब 'पूरण' वालतपस्वी का शरीर अत्यन्त कृण हो गया, उसे यह अनुभव हुआ कि अब मैं साधना करने में समर्थ नहीं हूँ तब उसने पादपोषगमन संधारे के द्वारा अपनी आत्मा को भावित किया। भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—हे गौतम ! मैं उस समय छदरस्थ अवस्था में था। मुझे दीक्षा ग्रहण किये हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। ग्रामानुग्राम विचरता हुआ मैं 'सुपमापुर' नगर के अशोक वनखण्ड में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर अट्ठम तप कर और एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर कर तथा एक रात्रि की महाप्रतिमा को धरण कर ध्यानस्थ था। उस समय 'पूरण' वालतपस्वी साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर 'चमरेचंचा' राजधानी में इन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उसने सौधर्म कल्प में शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते हुए अवधिज्ञान से देखा। चमरेन्द्र के मन में आकांक्षा पैदा हुआ कि यह कौन है ? सामानिक देवों ने कहा—वे शक्रेन्द्र हैं। चमरेन्द्र ने कहा—वह दुरात्मा मेरे सिर पर बैठा हुआ है ? सामानिक देवों ने निवेदन किया—शक्रेन्द्र ने पूर्व अर्जित पुण्यों के प्रभाव से यह विपुल ऋद्धि और अतुल पराक्रम प्राप्त किया है। इतना सुनते ही चमरेन्द्र का क्रोध अति प्रवल हो उठा। वह युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुआ। सभी देवों ने ऐसा न करने के लिए आग्रह किया, पर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा।

चमरेन्द्र ने सोचा—शक्रेन्द्र महान् पराक्रमी है तो मैं पराजित होकर किसकी शरण लूंगा ? वह मेरे पान आया और कहने लगा—मैं अपनी शरण से शक्रेन्द्र को जीत लूंगा। अतः उसने एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाया और अपने शस्त्र को घुमाता हुआ तथा गम्भीर गर्जना से देवों को भयभीत करता हुआ सौधर्मेन्द्र पर लपका। उसने एक पैर सौधर्मवितंसक विमान की वेदिका पर रखा और दूसरा पैर सुधर्मा सभा पर। उसने शस्त्र से इन्द्रकील पर तीन बार प्रहार किया और सौधर्मेन्द्र को अप-शब्द कहे।

सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से सब कुछ जान लिया। उसने चमरेन्द्र पर प्रहार करने के लिए वज्र को फँका। चमरेन्द्र भय से भयभीत बना हुआ अपने शरीर का संकोच करता है और "आपकी शरण है—आपकी शरण है" इस प्रकार चिल्लाता हुआ अपना सूक्ष्म रूप बनाकर मेरे पैरों में छिप गया। शक्रेन्द्र ने देखा—विना अरिहन्त की शरण के असुर यहाँ आ नहीं सकता। यह भगवान् महावीर की शरण लेकर यहाँ आया और पुनः उनकी शरण में पहुँच गया है। वज्र भगवान् के अत्यन्त निकट पहुँच चुका है, केवल चार अंगुल दूर रहने पर शक्रेन्द्र ने उसका संहरण कर लिया। शक्रेन्द्र ने भगवान् को वन्दन कर चमरेन्द्र से कहा—तुम भगवान् महावीर की असीम कृपा से बच गये हो। अब भयभीत मत बनो। यह कहकर शक्रेन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

गणधर गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया—देव, जो दिव्य शक्ति का धनी है, वह किसी पुद्गल को पहले फँककर फिर उस पुद्गल को पीछे से जाकर पकड़ने में समर्थ है या नहीं ? भगवान् ने कहा—वह समर्थ है, क्योंकि जो पुद्गल प्रक्षिप्त किया जाता है उसकी गति पहले शीघ्र होती है तथा बाद में मन्द हो जाती है किन्तु दिव्य ऋद्धि वाले देव की गति पहले भी शीघ्र होती है और बाद में भी।

गौतम ने दूसरी जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! यदि देव पीछे से पुद्गल को पकड़ने में समर्थ है तो शक्र असुरेन्द्र को क्यों नहीं पकड़ सका ? भगवान् ने फरमाया—असुरेन्द्र की नीचे जाने की गति तीव्र होती है और ऊपर जाने की गति मन्द और मन्दतर होती है। वैमानिक देवों की ऊर्ध्व गति तीव्र होती है और अधोगति मन्द होती है। असुरेन्द्र एक समय में जितने क्षेत्र नीचे जा सकता है उतने क्षेत्र नीचे जाने में शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं और वज्र को तीन समय लगते हैं। इस कारण से शक्रेन्द्र असुरेन्द्र को पकड़ने में समर्थ नहीं है।

असुरेन्द्र अपने स्थान पर पहुँचा। उसने सोचा—मैंने ठीक नहीं किया। शक्रेन्द्र ने मेरा भयंकर अपमान किया है। सामानिक देवों ने कहा—आप चिन्तामुक्त हों। असुरेन्द्र ने कहा—जिन महाप्रभु भगवान् महावीर की शरण लेकर मैं बच गया हूँ उनका मेरे पर महान् उपकार है, अतः हम सब वहाँ चले। वह अपनी दिव्य ऋद्धि के साथ भगवान् महावीर के पास आया और बत्तीम प्रकार के नाट्य दिखाकर स्व-स्थान को लौट गया। गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या असुरेन्द्र मुक्त होगा ? भगवान् ने उत्तर दिया—हाँ, यह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्त होगा।

स्थानांग में दश आश्चर्यों का वर्णन है। आश्चर्य का अर्थ है—कभी-कभी होने वाली विशेष घटना ! सामान्य रूप में जो घटना नहीं होती पर अनन्त काल के पश्चात् स्थिति विशेष में जो घटना होती है, उसे आश्चर्य ही कहा जा सकता है। अतः कभी नौधर्म सभा में जाते नहीं और वे गये, यह आश्चर्य है।

महाशुक्र देवों का आगमन—

एक बार महाशुक्र देवलोक से दो देव आये और भगवान् महावीर को वन्दना करके बोले—भगवन् ! आपके कितने शिष्य सिद्ध गति को प्राप्त करेंगे ? महाप्रभु महावीर ने उत्तर दिया—मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे । यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे ।

गणधर गौतम ने प्रथम ध्यान समाप्त कर द्वितीय ध्यान में प्रवेश करने के पूर्व यह सोचा—ये दो महाऋद्धि और महा प्रभावशाली देव कौन आये हैं ? मैं उन्हें नहीं जानता । ये किस विमान से और किसलिये आये हैं ? भगवान् महावीर ने गौतम के अन्तर्मानस की बात बताते हुए कहा—तेरे मन में इस प्रकार के विचार उद्बुद्ध हुए थे, अतः तू उन्हीं देवों से पूछ । गौतम ज्योंही देवों के सामने जाने लगे, देवों ने उठकर गौतम को वन्दन किया और कहा—भगवन् ! हम महाशुक्र नामक सातवें स्वर्ग से आये हैं । हमने भगवान् से प्रश्न किया—आपके कितने शिष्य सर्व दुःखों का अन्त कर मुक्त होंगे ? भगवान् ने मन से ही उत्तर दिया—मेरे सात सौ शिष्य सिद्धि को वरण करेंगे । गणधर गौतम तथा अन्य शिष्यों को भगवान् के दिव्य ज्ञान पर आश्चर्य हुआ । इस लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी से छिपा हो, वे हस्तामलकवत् सभी पदार्थों को स्पष्ट रूप से जानते देखते हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य में से एक सौ चौदह कथाओं का प्रस्तुत ग्रन्थ मे संकलन हुआ है । चक्रवर्ती पट्खण्डों पर विजय पताका फहराता है, वैसे ही इस ग्रन्थ में भी छह खण्ड हैं जो साधक के अन्तर्जीवन पर विजय वैजयन्ती फहराने के लिए हैं । इन खण्डों में निम्न आगमों से कथाएँ उद्धृत की गई हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक-सिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिया, वृष्णिदशा, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, दशाश्रुतस्कंध, कल्पसूत्र । आगम साहित्य में जहाँ भी कथाएँ प्राप्त हुई हैं या उस सम्बन्धी स्रोत उपलब्ध हुए हैं, उन सभी का यह श्रेष्ठ आकलन-संकलन है । प्राचीन आगमों की सूचियों के अनुसार आगमों में कथाओं का अक्षय कोष था । ज्ञातासूत्र में ही हजारों आख्यायिकाएँ थीं ।

ज्ञाताधर्मकथा के दो श्रुतस्कंध हैं । प्रथम श्रुतस्कंध में उन्नीस कथाएँ हैं ।

[१] उत्क्षिप्त ज्ञात—मेघकुमार [२] संघाट [३] अण्डक [४] कूर्म [५] शैलक [६] रोहिणी [७] मल्ली [८] माकंदी [९] चन्द्र [१०] दावद्रववृक्ष [११] तुम्ब [१२] उदक [१३] मंडूक [१४] तैतलीपुत्र [१५] नन्दीफल [१६] अमरकंका (द्रौपदी) [१७] आकीर्ण [१८] सुषमा [१९] पुण्डरीक-कण्डरीक ।

दूसरे श्रुतस्कंध में अनेक कथाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं—

[१] काली [२] राजी [३] रजनी [४] विद्युता [५] मेघा [६] शुंभ [७] निसुंभा [८] रंभा [९] निरंभा [१०] मदणा [११] ईला [१२] सतेरा [१३] सौदामिनो [१४] इन्द्रा [१५] घना [१६] विद्युता [१७] रुचा [१८] सुरुचा [१९] रुचांशा [२०] रुचकावती [२१] रुचकान्ता [२२] रुचप्रभा [२३] कमला [२४] कमलप्रभा [२५] उत्पला [२६] सुदर्शना [२७] रूपवती [२८] बहुरूपा [२९] सुरुपा [३०] सुभगा [३१] पूर्णा [३२] बहुपुत्रिका [३३] उत्तमा [३४] भारिका [३५] पद्मा [३६] वसुमती [३७] कनका [३८] कनकप्रभा [३९] अवतंसा [४०] केतुमती [४१] वज्रसेना [४२] रतिप्रिया [४३] राहिणी [४४] नवमिका [४५] ह्री [४६] पुष्पवती [४७] भुजगा [४८] भुजंगवती [४९] महाकच्छा [५०] अपराजिता [५१] सुघोषा [५२] विमला [५३] सुस्वरा [५४] सरस्वती [५५] सूर्यप्रभा [५६] आतपा [५७] अचिमाली [५८] प्रभंकरा [५९] चन्द्रप्रभा [६०] दोषीनाभा [६१] अचिमाली [६२] प्रभंकरा [६३] पद्मा [६४] शिवा [६५] सती [६६] अंजू [६७] रोहिणी [६८] नवमिका [६९] अचला [७०] अप्सरा [७१] कृष्णा [७२] कृष्णरानी [७३] रामा [७४] रामरक्षिता [७५] वसु [७६] वसुगुप्ता [७७] वसुमित्रा [७८] वसुन्धरा ।

इस प्रकार सम्प्रति कुल ९७ कथाएँ हैं । उनमें कितनी ही कथाएँ तो केवल नाम मात्र की हैं । उन कथाओं में सूचनाओं के अतिरिक्त घटनाओं का अभाव है ।

भाषा की दृष्टि से इन कथाओं में कितनी ही कथाओं की भाषा तो इतनी लालित्यपूर्ण है कि पाठक को सहसा संस्कृत के कादम्बरी ग्रन्थ का स्मरण हो आता है । इन कथाओं की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है । इन कथाओं का मूल उद्देश्य अहिंसा, सत्य,

अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, श्रद्धा, इन्द्रियविजय आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का सरल शैली में निरूपण करना है। इन कथाओं में धर्म और वैराग्य का ही विशेष रूप से उपदेश दिया गया है।

समस्त कथाओं का आलोड़न करने पर यह स्पष्ट परिजात होता है कि कथाओं में विभिन्नता होने पर भी कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, जो विभिन्नता में भी समानता बनाये हुए हैं। हम स्थूल रूप से उन प्रवृत्तियों को निम्न रूप से विभक्त कर सकते हैं—

१. शील, सदाचार और संयम का विश्लेषण।

२. आत्मा के प्रति निष्ठा और उसके विशोधन के विभिन्न उपाय।

३. मानवता की पुण्य प्रतिष्ठा के लिए जातिभेद और वर्गभेद की निस्सारता का निरूपण करना।

४. उच्च गति की प्राप्ति के लिए अहार-विहार की विशुद्धि और स्वयं के पापों की आलोचना।

५. आत्म-संशुद्धि के लिए आलोचना-प्रतिक्रमण के साथ ही प्रायश्चित्त और विविध प्रकार के तपो का निरूपण।

६. साधना मार्ग के स्वरूप को समझाने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र्य का विश्लेषण।

७. आचार की विशुद्धि अहिंसा से और विचार की विशुद्धि अनेकान्त—स्याद्वाद से ही सम्भव है। अतः उन सिद्धान्तों की प्ररूपणा।

८. भौतिकवाद की मृग-मरीचिका अध्यात्मवाद की वास्तविकता से ही मिट सकती है। इस बात का अनेक दृष्टियों में निरूपण किया गया है। दया, ममता, करुणा आदि सद्गुणों के उद्घाटन से मानवता की प्रतिष्ठा हो सकती है। राग, द्वेष आदि के संस्कार अनात्म भाव के प्रतीक हैं। मानव स्वयं का भाग्य विधाता है। वह परोक्ष शक्ति का परला छोड़कर अपने पुण्यार्थ में विश्वास करता है।

९. हिंसामूलक वैदिक क्रियाकाण्डों का वैचारिक विरोध है।

१०. यात्रा सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी।

११. कर्मवाद की गुरु ग्रन्थियों की कथाओं के द्वारा सुगम रीति से व्यक्त किया गया है। पुण्य और पाप का सफ़्त चित्रण भी इसमें विवेचित है।

१२. शोषित और शोषक में समता लाने हेतु अपरिग्रह एवं संयम का निरूपण।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के सांस्कृतिक इतिहास के विकास में इस आगमिक कथा साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। उस युग की उदात्त संस्कृति का इन कथाओं में यत्र-तत्र निरूपण हुआ है। इन कथाओं में कितने ही पात्र प्राग् ऐतिहासिक काल के हैं तो कितने ही पात्र ऐतिहासिक काल के हैं। और कितने ही पात्र पौराणिक और काल्पनिक भी हैं।

इन कथाओं में तात्कालिक सामाजिक और सांस्कृतिक जन-जीवन का पता चलता है। आर्य और अनार्य के रूप में दो मुख्य जातियाँ थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे। जैन दृष्टि से जो व्यक्ति सदाचारी है, वह आर्य है। यदि ब्राह्मण भी सदाचारी रहित है तो वह अनार्य है। जातिमद में उन्मत्त बने हुए ब्राह्मणों का विरोध करते हुए स्पष्ट कहा—'कर्म ने व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होता है।' केवल मिर मूँडा लेने से श्रमण नहीं होता, ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जगल में रहने मात्र से मुनि नहीं होता, कुश और जीवर को धारण करने से तपस्वी नहीं होता; अपितु समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है। इस तरह जातिवाद एवं वर्णवाद का गूँथन कर कर्म की महत्व दिया गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए उच्च कुलारपन्न शब्द व्यवहृत हुआ है। वैश्य का मुख्य कार्य व्यापार था, उनका लिए 'वणिक' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। शूद्रों की स्थिति जोचनीय थी, किन्तु भगवान् महावीर ने शूद्रों को साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने का अधिकार दिया। 'हरिकेशवल' चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु उन्होंने उच्च पद प्राप्त किया। पारिर्वाहिक जीवन में मुख्य रूप से पुरुष ही जानक होता था। अपवाद रूप से स्त्रियों भी जानक करती थी, जैसे—'वापश्चात्पुत्र की माया' श्रवण में नारी के मन्त्री रूप प्रकट हुए हैं—माता, पत्नी, बहन, बधू, पुत्री, पुत्रबधू, बन्ध्या आदि। नारी के पतिव्रत और आदर्श से संशोषण बसाये गये हैं। नारी जहाँ वासना के दलदल में फँसती है, वहाँ वह स्वयं भी पतित होती है और दूसरों को भी पतित करती है और जब नारी अपने स्वरूप को पहचानती है तो वह पुरुषों को समान पर लाती है, जैसे—'रथनेति यो राजमर्ता ने दुष्कार रथनी को

रानी कमलावती ने प्रतिबुद्ध किया। उस युग में पशुधन पर्याप्त था। पशु विविध कार्यों में उपयोगी थे, हाथी और घोड़ों का उपयोग युद्ध में होता था। हाथियों में 'गंधहस्ती' सर्वश्रेष्ठ था और घोड़ों में कम्बोज देशोत्पन्न घोड़े सुशिक्षित, युद्धोपयोगी और श्रेष्ठ माने जाते थे। कालिकद्वीप के अश्व भी उत्तम नस्ल के माने जाते थे। आनन्द आदि श्रावको के पास हजारों गावों के गोकुल थे। पशुओं को शिक्षण भी दिया जाता था। शिक्षित पशु-पक्षी जन-जन का मनोरंजन भी करते थे। व्यापार सुदूर प्रदेशों में भी चलता था। समुद्र यात्रायें भी होती थीं पर आज की तरह उस युग में समुद्र यात्रा सरल नहीं थी। कई बार संचालक मार्ग भूलकर दिशाभ्रमित हो जाता था। तूफान आने पर रक्षा के लिए समुचित साधन नहीं थे। मुख्य रूप से उस समय सोलह महारोग प्रचलित थे। बहुत से चिकित्सक भी थे, जिनमें वमन, विरेचन, औषधि सेवन, धूम्रप्रदान, नेत्रस्नान, सर्वापधिस्नान, मन्त्र विद्या आदि के द्वारा चिकित्सा करते थे। उस युग में मन्त्र-तंत्र, शक्ति तथा शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले तन्त्रों में भी विश्वास था। समाज में सुख-शांति बनाये रखने के लिए शासन व्यवस्था थी। शासन करने वाला राजा कहलाता था। वे प्रायः एक देश के स्वामी होते थे। वे अपने देश की उन्नति के लिए प्रयत्न करते थे। सभी देशों पर एकछत्र राज्य करने वाला 'चक्रवर्ती' कहलाता था। सभी राजागण चक्रवर्ती को नमस्कार करते थे। लावारिस सम्पत्ति का अधिकारी राजा होता था। राजागण अपनी कोपवृद्धि के लिए जागरूक रहते थे। चोर आदि को दण्ड दिया जाता था। भयंकर अपराध होने पर मृत्युदण्ड का भी विधान था। वधस्थान पर ले जाते समय अपराधी की एक निश्चित वेशभूषा थी। उसे शहर में घुमाया जाता, जिससे अन्य लोग वैसा कार्य न करें। शरणार्थी की रक्षा के लिए प्राणों की भी वाजी लगाई जाती थी। नाट्यकला, स्थापत्यकला, संगीतकला, चित्रकला आदि कलाओं के विकास में राजा और श्रेष्ठियों का योगदान होता था। जन-मानस की प्रवृत्ति भोगविलास की ओर अधिक थी। उस प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करने के लिये साधुगण कठिन परीपह सहन कर ग्रामानुग्राम विचरण करते और अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को त्यागमार्ग का पावन उपदेश प्रदान करते थे। इस प्रकार प्रस्तुत धर्मकथानुयोग में उस युग के समाज और संस्कृति का परिचय मिलता है। किसी एक काल विशेष की रचना न होने से इसमें चित्रित समाज और संस्कृति को एक कालविशेष का पूर्ण चित्र नहीं कह सकते तथापि तात्कालिक समाज और संस्कृति की झलक विभिन्न प्रसंगों में अवश्य मिलती है।

पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' स्थानकवासी समाज के प्रकृष्ट प्रतिभासम्पन्न, आगम साहित्य के मर्मज्ञ और धुन के धनी सन्त हैं। उन्होंने कठिन श्रम कर बत्तीस आगमों में आये हुए अनुयोगों का पृथक्करण किया। यह कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य है। जहाँ तक मुझे स्मरण है सन् १९५३ से भी पूर्व वे इस कार्य में लगे हुए हैं। उन्होंने अनेक बार प्रेस-कापियाँ तैयार कीं, किन्तु लगा कि यह क्रम ठीक नहीं है। इसमें इस प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए। जिस किसी भी मूर्धन्य मनीषी ने उनको सुझाव दिया, उसके सुझाव को स्वीकार कर पूर्व योजना को स्थगित कर नवीन रूप से वर्गीकरण में जुट जाते रहे हैं। इस प्रकार भागीरथ प्रयत्न के पश्चात् गणितानुयोग के वाद वे धर्मकथानुयोग को प्रस्तुत कर रहे हैं।

धर्मकथानुयोग ग्रन्थ में स्वयं मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' का अपनी ओर से कुछ भी नहीं है पर इसमें उनका अथक श्रम है। वर्षों तक आगम साहित्य का मंथन कर जो अमृत निकाला है, वह प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। मंथन में जो श्रम होता है, वह अनुभवी ही जान सकता है और वही उसका मूल्यांकन कर सकता है। वस्तुतः मुनिश्री का यह मंथन समुद्र के मंथन की तरह ही कठिन रहा है, पर आह्लाद है कि उन्होंने अमृत सर्वजनों के लिए सुलभ कर दिया। यह सही है कि इस मंथन में उन्होंने अपने स्वास्थ्य का भोग दिया। कठिन श्रम से स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है, किन्तु उसकी उपेक्षा कर वे दिन-रात इस कार्य में लगे रहे जिसका सुफल धर्मकथानुयोग है।

पं० मुनिश्री के प्रेम भरे आग्रह को सन्मान देकर मैंने प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति दी। मेरी परमादरणीया, साध्वी रत्न, मातेश्वरी, महासती श्री प्रभावती जी का संधारे के साथ खैरोदा ग्राम में अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। मेरा स्वयं का स्वास्थ्य भी ज्वर, आदि के कारण काफी अस्वस्थ रहा। इसलिए मैं जिस रूप में और जिस विस्तार के साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था, स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण नहीं लिख पाया तथापि जो कुछ लिख गया हूँ, वह पाठकों को धर्मकथानुयोग को समझने में पूर्ण सहायक होगा, ऐसा मेरा स्पष्ट मत है।

मेरी दृष्टि से जैन कथा साहित्य का वैदिक और बौद्ध साहित्य के साथ तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन होना चाहिए। उस अध्ययन में बहुत कुछ नये तथ्य प्रकट हो सकते हैं। आज आवश्यकता है—शोधार्थियों को व्यापक दृष्टि से अनुसंधान करने की। मैंने अपनी प्रस्तावना में कुछ कथाओं का इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। इस कार्य को अधिक व्यापक रूप देने की आवश्यकता है।

धर्मकथानुयोग के प्रस्तुत संस्करण में केवल मूल आगमानुसारी कथायें दी जा रही हैं, इसलिए प्रत्येक पाठक कथा के हार्द को समझ सके इस दृष्टि से मैंने प्रत्येक कथा का सारांश फलितार्थ प्रस्तावना में देने का प्रयास किया है और जहाँ भी मुझे लगा, वहाँ विषय को स्पष्ट किया है। प्रस्तावना के पृष्ठों की भी एक सीमा है, उस दृष्टि से चाहते हुए भी अनेक विषयों की चर्चाएँ मैंने नहीं की हैं। जैसे—भौगोलिक दृष्टि से नगरियों का परिचय, वर्तमान में उनकी अवस्थिति आदि। जिज्ञासु पाठक मेरे अन्य ग्रन्थों में उस सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। परम श्रद्धेय, सद्गुरुवर्य, राजस्थान केसरी, अध्यात्मयोगी, उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जो म० जो 'कमल' मुनिजी के अनन्य सहयोगी व स्नेही साथी रहे हैं, उन्हीं के मार्गदर्शन में मैं कुछ लिख गया हूँ। आशा ही नहीं विषय है कि यह शानदार कृति भारती के भण्डार की शोभा में चार चांद लगायेगी।

मुझे प्यु कि वहना !

विजयादशमी

देवेन्द्रमुनि "शास्त्री"

२७ अक्टूबर, १९५२.

सिंहपोल, जैनस्थानक, जोधपुर (राज०)

□ □

धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ । धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ ।
पवयणपभावे णं जीवे आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबन्धइ ।

—उत्तरा० २९/२८

—भन्ते ! धर्मकथा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

धर्मकथा से निर्जरा होती है। जिन प्रवचन की प्रभावना करता है।
प्रवचन की प्रभावना करने वाला जीव भविष्य में कल्याणकारी फल देने
वाले कर्मों का अर्जन करता है।

धर्मकथानुयोग की सांकेतिक शब्दसूचि

अ०	अध्ययन	निर०	निरयावलिका सूत्र
अणु०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र	प०	पद, पर्व
अणुत्त०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र	पडि०	प्रतिपत्ति
आया०	आचारांगसूत्र	पण्ण०	प्रज्ञापना
आया० सु०	आचारांग श्रुतस्कन्ध	पण्ण० प०	प्रज्ञापना पद
आव०	आवश्यक सूत्र	पा०	पाहुड (प्राभूत)
उ०	उद्देशक	पुष्फि०	पुष्फिया (पुष्पिका)
उत्त०	उत्तराध्ययन सूत्र	प्रव०	प्रवचनसारोद्धार
उत्तर०	उत्तराध्ययन सूत्र	भा०	भाग
उवा०	उपासकदृशांग सूत्र	भग०	भगवती सूत्र
उवं०	उपांग	भग० स०	भगवती सूत्र शतक
औव०	औपपातिक सूत्र	महा० प०	महावीरचरियं पर्व
अंत०	अन्तकृद्दशा सूत्र	रायप०	राजप्रश्नीय सूत्र
अंत० व०	अन्तकृतदृशा वर्ग	व०	वर्ग, वक्षस्कार
कप्प	कल्पसूत्र	वग्धि०	वग्धिदृशा सूत्र
कप्पव०	कल्पावतंसिका (कप्पवडंसिया)	विवाग सु०	विपाक सूत्र श्रुतस्कन्ध
गा०	गाथा	विज्ञे०	विज्ञेपावश्यक भाष्य
चु०	चूर्णि०	श०	शतक
जीवा०	जीवाभिगमसूत्र	स०	समवाय, शतक
जम्बु०	जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति	सम०	समवायांग सूत्र
जम्बु० व०	जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार	सु०	सुयखन्ध (श्रुतस्कन्ध), सुत्त (सूत्र)
ठा०	स्थानांग सूत्र	सम० स०	समवायांग समवाय
ठाणं०	स्थानांग सूत्र	सत्त० स्था०	सत्ततिशतस्थानप्रकरणम्
णाया०	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र	सप्त० स्था०	" " "
दस०	दशर्वकालिक सूत्र	संव०	संवत्सरद्वार
दसा सुय०	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र,	सुय० सू०	सूत्रकृतान् श्रुतस्कन्ध
द्वा०	द्वार	सूरि०	सूर्यप्रज्ञप्ति
नि०	नियुक्ति	जाता०	ज्ञाताधर्मकथांग

विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
प्रथम स्कन्ध [उत्तमं पुरुष कथानक]	१-६६६	१-२५७
मंगलसूत्र	१-४	४
१ कुलकर	५-१७	४-६
२ ऋषभ-चरित्र	१८-१४१	६-४४
१ कल्याणक नक्षत्र	१८	६
२ गर्भोत्पत्ति	१९	७०
३ जन्म-कल्याणक	२०	७
४ अधोलोकवासी दिशाकुमारियों द्वारा कृत जन्म-महोत्सव	२१-२५	७
५ ऊर्ध्वलोकवासी दिशाकुमारीकृत जन्म-महोत्सव	२६-२७	१०
६ रुचकपर्वतवासी दिशाकुमारीकृत जन्म-महिमा	२८-३२	११
७ मध्यमरुचकपर्वतवासी दिशाकुमारीमहत्तरिकाओंकृत नाभिनालकर्तन	३३	१२
८ दिशाकुमारीकृत माता-पुत्र का मज्जनादि कृत्य	३४-३५	१३
९ देवेन्द्र शक्र का तीर्थकरके जन्म नगर में गमन	३६-६६	१४
१० ईशानेन्द्र आदि इन्द्रों द्वारा कृत-जन्म-महोत्सव	६७-७३	२३
११ असुरेन्द्र चमर कृत जन्म-महोत्सव	७४	२४
असुरेन्द्रवलि आदि कृत जन्म-महोत्सव	७५-७६	२४
अच्युत-देवेन्द्र कृत तीर्थकराभिषेक	८०-८६	२६
ईशानेन्द्रादि कृत तीर्थकराभिषेक	८७-८८	३०
देवेन्द्र शक्र कृत तीर्थकराभिषेक	१००-१०७	३०
भ. ऋषभद्वारा लेखनादि कलाओं का उपदेश	१०८	३३
भ. ऋषभ की प्रव्रज्या	१०९-१११	३३
भ. ऋषभदेव का अचेलकत्व एवं उपसर्ग-सहस्र	११२-११३	३४
भ. ऋषभ का अनगार-स्वरूप	११४	३५
भ. ऋषभदेव के प्रतिबन्ध का अभाव	११५	३६
भ. ऋषभदेव का विहार	११६	३७
भ. ऋषभदेव को केवलज्ञान	११७-११८	३७
भ. ऋषभदेव का तीर्थ-प्रवर्तन	११९	३८
भ. ऋषभदेव की गणधरादि संपदा	१२०-१२१	३८
भ. ऋषभदेव के काल में होने वाले सिद्ध	१२२	३९
भ. ऋषभदेव के अणुगणों का वर्णन	१२३	३९
अनकूलभूमि	१२४-१२६	३९
भ. ऋषभदेव के संहननादि, कुमारवान और निर्वान	१२७-१२९	४०
शक्रादि देवेन्द्र कृत निर्वान-महिमा		
३ मरुती भगवति जिन-चरित्र	१४२-१४३	४१-४२
१ मरुत राजा और उसके छ बाल मिथ	१४४-१४५	४३
२ मरुत आदि की प्रव्रज्या	१४६	४३

धर्मकथानुयोग-प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
३ महवल की तप सम्बन्धी माया	१४७	४६
४ तीर्थंकर नामकर्म-उपार्जन के हेतु (निर्वर्तन)	१४८	४६
५ महवल आदि की विविध तपश्चर्या	१४९	४७
६ महवल आदि का पुनर्जन्म	१५०	४८
७ भगवती मल्ली का गर्भ में आगमन (गर्भावतरण)	१५१-१५३	४८
८ भ. मल्ली तीर्थंकर-जन्म	१५४-१५७	४९
९ भ. मल्ली द्वारा मोहनघर का निर्माण	१५८-१६०	५०
१० प्रतिबुद्धि राजा और पद्मावतीदेवी द्वारा नाग-यज्ञ	१६१-१६५	५१
१२ भ. मल्ली के श्री दामकाण्ड (पुष्पहार) की प्रशंसा	१६६	५३
१२ मल्ली-रूप की प्रशंसा	१६७	५३
१३ प्रतिबुद्धिराजा के दूत का मिथिला में आगमन	१६८	५४
१४ अर्हन्तक वणिक की समुद्रयात्रा	१६९-१७१	५४
१५ ताल-पिशाचादि के उत्पातों का प्रादुर्भाव	१७२-१७३	५६
१६ अर्हन्तक को पिशाच का उपसर्ग	१७४	५८
१७ अर्हन्तक की धार्मिक दृढ़ता	१७५-१७६	५८
१८ देव का पिशाच रूप-संहरण और स्ववृत्तांत कथन	१७७	५९
१९ अर्हन्तक का मिथिला में आगमन	१७८	६१
२० अर्हन्तक का चम्पा में आगमन	१७९-१८०	६२
२१ भ. मल्ली से रूप की प्रशंसा	१८१	६१
२२ चन्द्रच्छाय राजा के दूत का मिथिला में आगमन	१८२	६२
२३ रुक्मी राजा	१८३	६२
२४ सुवाहु (कन्या) का स्नान (मज्जनक)	१८४-१८५	६३
२५ भ. मल्ली-मज्जनक की प्रशंसा	१८६	६३
२६ चन्द्रच्छाया राजा के दूत का मिथिला-गमन	१८७	६४
२७ शंख राजा	१८८	६४
२८ भ. मल्ली के कुण्डल-युगल का संधि-विघटन	१८९	६४
२९ सुवर्णकारों को देशनिकाले का दण्ड	१९०	६५
३० सुवर्णकारों का वाराणसी में आगमन	१९१	६५
३१ भ. मल्ली के रूप की प्रशंसा: शंख राजा के दूत का मिथिला में आगमन	१९२-१९३	६६
३२ अदीन शत्रु राजा	१९४	६६
३३ मल्लदिन का चित्रसभा कराना	१९५-१९६	६६
३४ चित्रकार द्वारा भ. मल्ली के समान रूप का चित्रण	१९७-१९९	६७
३५ चित्रकार को देश निष्कासन का दण्ड	२००	६८
३६ चित्रकार का हस्तिनापुर में आगमन	२०१	६९
३७ अदीनशत्रु राजा को भ. मल्ली के चित्र का दर्शन कराना	२०२	६९
३८ अदीनशत्रु राजा के दूत का मिथिला में आगमन	२०३-२०४	७०
३९ जितशत्रु राजा	२०५	७०
४० चोस्र्या परिव्राजिका	२०६	७०
४१ भ. मल्ली द्वारा चोस्र्या के मन का निरसन	२०७-२०८	७०
४२ चोस्र्या परिव्राजिका का कम्पिनपुर में आगमन	२०९-२१०	७१
४३ चोस्र्या परिव्राजिका कथित रूपमन्त्रक का दृष्टान्त	२११	७१
४४ भ. मल्ली के रूप की प्रशंसा	२१२	७१

	सूत्रांक	पृष्ठांक
धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची		
४५ जितशत्रु राजा के दूत का मिथिला में आगमन	२१३	७३
४६ दूत का संदेश निवेदन	२१४	७३
४७ कुम्भराजा द्वारा दूत का असत्कार	२१५	७४
४८ जितशत्रु प्रमुख राजाओं से कुम्भ राजा का युद्ध	२१६-२१८	७४
४९ भ. मल्ली ने चिता का कारण पूछा	२१९	७४
५० कुम्भराजा ने चिता का कारण कहा	२२०	७६
५१ भ. मल्ली ने उपाय कहा	२२१	७६
५२ भ. मल्ली ने जितशत्रु प्रमुख राजाओं को बोध दिया	२२२-२२५	७७
५३ जितशत्रु प्रमुख राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान	२२६-२२७	७८
५४ भ. मल्ली और जितशत्रु प्रमुख राजाओं का प्रव्रज्या संकल्प	२२८	७९
५५ भ. मल्ली का निष्क्रमण महोत्सव	२२९-२३७	८०
५६ भ. मल्ली को केवलज्ञान	२३८	८५
५७ जितशत्रु प्रमुख राजाओं की प्रव्रज्या	२३९	८५
५८ भ. मल्ली-जिन की शिष्य सम्पदा	२४०	८६
५९ भ. मल्ली जिन का निर्वाण	२४१	८६
४ म. अरिष्टनेमि-चरित्र	२४२-२५२	८७-९०
१ कल्याणक	२४२	८७
२ गर्भ में आगमन और स्वप्नदर्शन	२४३	८७
३ जन्मादि	२४४	८७
४ प्रव्रज्या	२४५	८८
५ केवलज्ञान	२४६	८८
६ गृणधरादि-सम्पदा	२४७-२५०	८९
७ अन्तकृतभूमि	२५१	९०
८ कुमारवास आदि और निर्वाण	२५२	९०
५ म. पारश्वनाथ-चरित्र	२५३-२६६	९०-९४
१ कल्याणक	२५३	९०
२ गर्भ में आगमन	२५४-२५५	९१
३ जन्मादि	२५६	९१
४ प्रव्रज्या	२५७-२५८	९१
५ उपसर्ग-सहन	२५९	९२
६ केवलज्ञान	२६०	९२
७ गणधरादि-सम्पदा	२६१-२६४	९३
८ अन्तकृतभूमि	२६५	९४
९ आगारवासादि और निर्वाण	२६६	९४
६ म. महावीर-चरित्र	२६७-३७६	९५-१५०
१ पूर्वभय में पोट्टिल	२६७	९७
२ कल्याणक	२६८	९७
३ देवानन्दा के गर्भ में आगमन	२६९	९८
४ गर्भ में तीन ज्ञान	२७०	९८
५ गर्भ-नाहरण	२७१-२७६	९८

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
६ जन्मकल्याणक काल		
७ जन्म-काल में देवकृत उद्योत	२७३	१००
८ देवकृत अमृतादि की वर्षा	२७४	१०७
९ देवकृत तीर्थकर जन्माभिषेक	२७५	१०७
१० सिद्धार्थकृत जन्मोत्सव	२७६	१०७
११ वर्द्धमान नामकरण	२७७-२७९	१०८
१२ बालसंवर्धन	२८०	११०
१३ यौवन	२८१	१११
१४ तीन नाम	२८२	१११
१५ माता-पिता का देवलोक	२८३	१११
१६ भ. वर्द्धमान के स्वजन	२८४	१११
१७ अभिनिष्क्रमण का अभिप्राय और संवत्सरदान	२८५	११२
१८ देवेन्द्र शक्रकृत देवछंदक मज्जनादि और शिविका की रचना	२८६	११२
१९ अभिनिष्क्रमण	२८७-२९१	११३
२० पंचमुष्टिलोच करना	२९२	११५
२१ सामायिक चारित्र्य ग्रहण करना	२९३-२९४	११५
२२ मनःपर्यवज्ञान की उत्पत्ति	२९५	११५
२३ तेरह मास के अनन्तर अचेलकत्व	२९६	११७
२४ अणुगार स्वरूप की प्रशंसा	२९७	११७
२५ प्रतिबंध का अभाव	२९८	११७
२६ भ. महावीर का अभिग्रह	२९९	११७
२७ भ. महावीर का विहार	३००	११८
२८ परीपह-विजय	३०१	११८
२९ दस स्वप्नों का फल	३०२	११८
३० स्वप्नफल	३०३-३०४	११८
भगवान का दीर्घ तप	३०५	१२०
३१ भगवान् की चर्या	३०६-३२६	१२२-१३०
३२ भगवान् की शय्या	३०६-३१३	१२२
३३ भगवान् के परीपह-उपसर्ग	३१४-३१८	१२५
३४ भगवान् का चिकित्सादि-वर्जन	३१९-३२१	१२७
३५ भगवान् की आहार चर्या	३२२	१२८
३६ केवलज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति	३२३-३२६	१२८
३७ देवताओं का आगमन	३२७	१३०
३८ भवनवर्मा देवों का आगमन	३२८	१३१
३९ वाणव्यन्तर देवों का आगमन	३२९-३३०	१३१
४० ज्योतिष्क देवों का आगमन	३३१	१३२
४१ वैमानिक देवों का आगमन	३३२	१३२
४२ अप्सराओं का आगमन	३३३-३३४	१३३
४३ भ. महावीर का वर्णक	३३५	१३४
४४ भ. महावीर के अन्तर्वासी अनेक श्रमण-भगवन्त	३३५-३३८	१३५
	३३९-३५०	१३६

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक	
४५	भ. महावीर ने एक आसन पर बैठे हुए चौपन प्रश्नों के समाधान कहे	३५१	१४४
४६	भ. महावीर कृत पर्युपण	३५२	१४५
४७	वर्षावास-गणना	३५३	१४५
४८	निर्वाण समय देवों का उद्योत करना	३५४-३५७	१४६
४९	भ. महावीर की आयुकाल गणना और अन्तिम उपदेश	३५८	१४६
५०	गीतमस्वामी को केवलज्ञान	३५९	१४७
५१	गणराजाओं द्वारा कृत उद्योत	३६०	१४७
५२	निर्वाण के अनन्तर भस्मराशि-ग्रह और उसका प्रभाव	३६१-३६३	१४८
५३	निर्वाण के अनन्तर संयम का दुराराधन	३६४	१४८
५४	भ. महावीर की श्रमणादि सम्पदा	३६५-३६८	१४८
५५	भ. महावीर के अनुत्तरदेवलोकगामी शिष्य	३६९	१४९
५६	भ. महावीर की अन्तकृत भूमियाँ	३७०	१५०
५७	भ. महावीर से दीक्षित राजा	३७१	१५०
५८	भ. महावीर के तीर्थ में तीर्थकर-कर्म बांधने वाले	३७२	१५०
५९	भ. महावीर के तीर्थ में प्रवचन-निन्द्वह	३७३	१५०
६	भ. महापद्म-चरित्र	३७४-४०३	१५१-१५६
१	श्रेणिक का नरक गमन	३७४	१५१
२	आगामी उत्सर्पिणी में नरक से निकलकर श्रेणिक का कुलकर-गृह में जन्म	३७५	१५१
३	महापद्म नामकरण	३७७	१५१
४	राज्याभिषेक	३७८-३७९	१५१
५	द्वितीय नाम-'देवसेन'	३८०-३८१	१५२
६	तृतीयनाम-विमलवाहन	३८२	१५२
७	भ. महापद्म की प्रव्रज्या	३८३	१५२
८	उपसर्ग सहन करना	३८४	१५२
९	प्रतिबंध का अभाव	३८५	१५३
१०	केवलज्ञान और केवलदर्शन	३८६-३८७	१५३
११	भ. महावीर और भ. महापद्म की देशना में साम्य	३८८-४००	१५४
१२	गणधरादि की समान सम्पदा (सम्पत्ति साम्य)	४०१	१५६
१३	आयु की समानता	४०२	१५६
१४	अरहन्त महापद्म से आठ राजा दीक्षित होंगे	४०३	१५६
७	तीर्थकरों का सामान्य (संक्षिप्त) कथन	४०४-४६२	१५७-१८८
१	अडाई द्वीप में अर्हन्तादि वंशों की उत्पत्ति	४०४-४०८	१५७
२	अडाई द्वीप में अर्हन्तादि की उत्पत्ति	४०९-४१४	१५७
३	जम्बूद्वीप के भरत-ऐरवत क्षेत्रों में उत्तम पुरुष	४१५	१५८
४	धानवीचण्ड में उत्तम पुरुष	४१६-४१७	१५८
५	पुष्करवर द्वीपार्थ में उत्तम पुरुष	४१८-४१९	१५८
६	जम्बूद्वीप के महाविदेह में अर्हन्तादि की उत्पत्ति	४२०-४२१	१५८
७	जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में (एक अयनपिणी में हुए) तीर्थकर	४२२	१५८
८	जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में भावी तीर्थकर	४२३	१५८
९	जम्बूद्वीप में तीर्थकर	४२४	१५८
१०	जम्बूद्वीप के तीर्थकरों की उत्कृष्ट संख्या	४२५	१५८

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

सूत्रांक

११	जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में (इसी अवसर्पिणी में हुए) तीर्थकरों के नाम	४२६
१२	(इस अवसर्पिणी में हुए तीर्थकरों के) पिता	४२७
१३	(इस अवसर्पिणी में हुए तीर्थकरों की) मातायें	४२८
१४	(इस अवसर्पिणी में हुए तीर्थकरों के) पूर्वभव (के नाम)	४२९
१५	पूर्वभव का श्रुतज्ञान	४३०
१६	पूर्वभव की पदवियाँ	४३१
१७	तीर्थकरों के वर्ण	४३२
१८	तीर्थकरों के (देह) की ऊँचाई	४३३
१९	(तीर्थकरों का) गृहस्थावास (काल)	४३४
२०	(तीर्थकरों का) कुमारकाल	४३५
२१	(तीर्थकरों का) गृहवास	४३६
२२	(तीर्थकरों का) सर्वायु	४३७
२३	भ. चन्द्रप्रभ का छद्मस्थ काल	४३८
२४	कल्याणक	४३९
२५	शिविका और शिविकावाहक	४४०
२६	दीक्षानगरियाँ	४४१
२७	दीक्षाकाल में एक (वस्त्र) द्रव्य	४४२
२८	सह दीक्षितों की संख्या	४४३
२९	दीक्षा के पूर्व किया हुआ तप	४४४
३०	सर्व प्रथम भिक्षा देने वाले	४४५
३१	प्रथम भिक्षा का काल	४४६
३२	चैत्यवृक्ष	४४७
३३	प्रथम शिष्य	४४८
३४	प्रथम शिष्या	४४९
३५	केवलज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति का काल	४५०
३६	तीर्थकरों के अतिशय	४५१-४५२
३७	चातुर्यामिधर्म (चार महाव्रत) के उपदेशक	४५३
३८	कृष्णादि भावी तीर्थकर चातुर्यामिधर्म के उपदेशक होंगे	४५४
३९	आगामी उत्सर्पिणी के तीर्थकरों के नाम	४५५
४०	पूर्व भव के नाम	४५६
४१	तीर्थकरों के माता-पिता आदि	४५७
४२	तीर्थकरों के उपदेश की दुर्गमता एवं सुगमता	४५८
४३	श्रमण-सम्पदा	४५९
४४	श्रमणी-सम्पदा	४६०
४५	श्राविका-सम्पदा	४६१
४६	(वादी) लब्धि सम्पत्त-सम्पदा	४६२
४७	वैक्रिय लब्धि-सम्पत्त-श्रमण-सम्पदा	४६३
४८	चोदह पूर्वधारी श्रमण-सम्पदा	४६४
४९	अवधिजानी श्रमण-सम्पदा	४६५
५०	मनःपराजानी-सम्पदा	४६६
५१	तीर्थकरों की विद-सम्पदा	४६७

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
५२ अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले श्रमणों की सम्पदा	४६८	१७८
५३ तीर्थंकरों का अन्तर काल	४६९	"
५४ ऋषभादि तीर्थंकरों से पर्युपण-कल्प-स्थापन-समय-निरूपण	४७०	"
५५ गण और गणधर	४७१	१८२
५६ भ. महावीर के गण व गणधर (गणधरों से प्राप्त वाचनावाले श्रमणों की संख्या)	४७२	१८३
५७ भ. महावीर के गणधरों का गृहवास काल	४७३	१८४
५८ मण्डितपुत्र गणधर का श्रमणपर्याय काल	४७४	१८४
५९ भ. महावीर के गणधरों का सर्वायु	४७५	१८५
६० राजगृह में भ. महावीर का आगमन	४७५-४७८	"
६१ इन्द्रभूती गौतम (गणधर वाचना)	४७९-४८१	१८६
६२ आशचर्य (दस)	४८२	१८८
६. भरत चक्रवर्ती-चरित्र	४८३-५८४	१८९-२७७
१ भरतचक्रवर्ती का वर्णक	४८३	१८९
२ राजा का वर्णक (द्वितीय वर्णक)	४८४	"
३ चक्ररत्न की उत्पत्ति	४८५-४८६	१९०
४ चक्ररत्न का अष्टाङ्गिका महामहोत्सव-करण	४८७-४९०	१९१
५ चक्ररत्न का मागधतीर्थ की ओर प्रयाण	५०१	१९५
६ अभिषिक्त-हस्तिरत्न-आरूढ-भरत का चक्ररत्नानुगमन	५०२-५०३	१९६
७ मागधतीर्थ में भरत ने अष्टमभक्त पीपध किया	५०४	१९७
८ अश्वरथारूढ भरत का लवणसमुद्र में अवगाहन (प्रवेश)	५०५-५०६	१९८
९ भरत द्वारा चलाये हुए वाण का मागधतीर्थाधिपति देव के भवन में गिरना	५०७	"
१० नामांकित वाण को देखकर मागधतीर्थाधिपति का भरत के सम्मुख आना	५०८-५१०	१९९
११ भरत के अष्टम भक्त का पारणा और मागधतीर्थाधिपति का प्रमत्त होकर अष्टाङ्गिक महोत्सव का आदेश देना	५११	२०१
१२ चक्ररत्न का वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण	५१२	"
१३ भरत का वरदाम तीर्थ की ओर गमन	५१३-५१४	२०२
१४ भरत का प्रभाम तीर्थदेव पर विजय प्राप्त करना	५१६	२०३
१५ भरत का निन्धुदेवीकृत भेंट ग्रहण	५१७-५१८	"
१६ भरत का वीताङ्गगिरिकुमार देवकृत भेंट ग्रहण करना	५१९	२०४
१७ भरत का तिमिरगुफाधिप-कृतमालदेव द्वारा अर्पित भेंट ग्रहण करना	५२०	"
१८ समीप्य मुनेष-सेनापति के साथ भरत का नौकारूप चर्मरत्न द्वारा निन्धु नदी पार	५२१-५२३	२०५
१९ मुनेष सेनापति द्वारा निहल आदि देशों पर विजय प्राप्त करना	५२४	२०६
२० विजय प्राप्त कर आये हुए मुनेष सेनापति द्वारा भरत के सम्मुख भेंट अर्पण	५२५	२०६
२१ मुनेष सेनापति कृत तिमिरगुफा-द्वार का उद्घाटन	५२६-५२७	२०७
२२ मथिरत्न सहित भरत का तिमिरगुफा-द्वार की ओर प्रयाण	५२७-५२८	२०७
२३ शक्तिशी रत्न सहित भरत का तिमिरगुफा में प्रवेश	५२९	२०८
२४ तिमिरगुफा के मध्यभाग में उन्मत्त-जला निम्न-जला महानदियों	५३०	२०८
२५ उन्मत्त-जला और निम्न-जला महानदियों ने अर्धशीतल द्वारा निन्धु नदी	५३१	२०९
निर्माण तथा समीप्य भरत का (नदियों की) पार करना	५३२	२०९
२६ तिमिरगुफा के उत्तर द्वार के कर्मादों द्वारा स्वयमेव मार्गदर्शन	५३३	२१०

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक
२७ उत्तरार्ध भरत में सुसेन सेनापति कृत आपात-चिलात-पराजय	५३३-५३६
२८ आवाड़-किरातों की प्रार्थना से भरत की सेना पर नागकुमार देव कृत महामेघ वर्षा	५३७-५४०
२९ भरत द्वारा छत्ररत्न से आच्छादन	५४१
३० गाथापतिरत्न कृत भरत-सेना को सप्त दिवकीय व्यवस्था	५४२
३१ हजारों देवों ने नागकुमार को भरत की शरण में जाने के लिए कहा	५४३
३२ नागकुमार के कहने से किरातों का भरत की शरण में आगमन	५४४-५४७
३३ झुल्लहिमवंत गिरिकुमार देव पर विजय प्राप्त किया	५४८-५४९
३४ भरत चक्रवर्ती ने काकिणी रत्न से ऋषभकूट पर्वत के पूर्वी किनारे पर अपना नाम लिखा	५५०
३५ चक्र का अनुगमन करते हुए भरत का वैताड्यगिरि के उत्तरापाश्वर्क की ओर गमन	५५१-५५२
३६ विद्याधरों के राजा नभि-विनभि ने भरत को स्त्री रत्न आदि समर्पित किये	५५३
३७ भरत को गंगादेवी ने दो स्वर्ण-सिंहासन समर्पित किये	५५४
३८ खण्डप्रपातगुफा में नृत्यमालदेव ने भरत को पारितोषिक दिया	५५५
३९ भरत ने सुसेन सेनापति का सत्कार किया	५५६
४० जिस मार्ग से भरत का आगमन हुआ उसी मार्ग से वह वापिस गया	५५७
४१ नवनिधियों की उत्पत्ति	५५८-५५९
४२ विनिता राजधानी की ओर लौटना	५६०-५६७
४३ भरत ने देवादिका सत्कार किया और उनका विसर्जन किया	५६८
४४ भरत का राज्याभिषेक संकल्प	५६९-५७०
४५ देवों द्वारा अभिषेक मण्डप की रचना	५७१-५७२
४६ सिंहासन की रचना	५७३
४७ भरत ने अभिषेक मण्डप में प्रवेश किया	५७४-५७५
४८ भरत का महाराज्याभिषेक	५७६
४९ नगर में द्वादशवर्षीय महोत्सव की घोषणा	५७७
५० भरत का प्रासाद प्रवेश	५७८-५७९
५१ रत्नमहानिधियों का उत्पत्ति स्थान	५८०
५२ भरत का शामन	५८१
५३ भरत को आदर्श घर में केवलज्ञान	५८२
५४ भरत का अष्टापदगमन और वहाँ निर्वाण	५८३-५८४
१० चक्रवर्ती-सामान्य	५८५-६१३
१ अडाईद्वीप में चक्रवर्ती-विजय	५८५-५८९
२ जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में वारह चक्रवर्तियों के ओर उनके माता-पिता तथा स्त्री-रत्नों के नाम	५९१-५९३
३ जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले चक्रवर्तियों के नाम	५९४-५९५
४ जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले चक्रवर्ती आदि की संख्या	५९६
५ जम्बूद्वीप में चक्रवर्ती आदि	५९७
६ तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए	५९८
७ सुभूम और ब्रह्मरत्न चक्रवर्ती नरक में गये	५९९
८ दश चक्रवर्ती मुक्त हुए	६०१-६०२
९ नगर चक्रवर्ती मुक्त हुए	६०३
१० क्षत्रिय चक्रवर्ती मुक्त हुए	६०४
११ भवनाशिते नरों की उँपाई	६०५

धर्मकथानुयोग प्रथमस्कन्ध—विषय-सूची		सूत्रांक	पृष्ठांक
१२	चक्रवर्ती का हार	६०५	२११
१३	चक्रवर्ती के ग्राम-पुर-पट्टण की संख्या	६०६	"
१४	निधि-रत्न	६०७-६०८	"
१५	चक्रवर्ती के चौदह रत्न	६०९-६१०	"
१६	काकिणी रत्न की आकृति	६११	२१२
१७	जम्बूद्वीप में एकेन्द्रिय रत्नों की संख्या और उनके परिभोग का निरूपण	६१२	२१३
१८	जम्बूद्वीप में पंचेन्द्रिय रत्नों की संख्या और उनके परिभोग का निरूपण	६१३	२१४
११	वलदेव-वासुदेव सामान्य	६१४-६३६	२१२-२५७
१	वलदेव-वासुदेवों के माता-पिता आदि	६१४-६२१	२१२
२	जम्बूद्वीप में आगामी उत्सपिणी में होने वाले वलदेव-वासुदेव सम्बन्धी विविध प्ररूपण	६२२-६२८	२१५
३	वलदेवों की ऊँचाई और सर्वायु	६२५-६३१	२१६
४	वासुदेव प्रकीर्णक	६३२-६३६	२१६
□□			
द्वितीय स्कन्ध : श्रमण कथानक [अध्ययन १-५०]		१-६६५	१-३७६
१	भ. विमलनाथ के तीर्थ में महावल श्रमण	१-४६	५-२२
१	वाणिज्य ग्राम में भ. महावीर का आगमन	१-२	५
२	सुदर्शन सेठ ने धर्म-श्रवण किया	३-४	५
३	सुदर्शन सेठ ने काल के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे	५-१६	६
४	सुदर्शन सेठ ने पत्योपमादि के क्षय और अपचय आदि के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे	१७	६
५	भ. महावीर ने सुदर्शन सेठ के पूर्व भव के वर्णन में महावल की कथा कही	१८-१६	६
६	प्रभावतीदेवी ने स्वप्न में सिंह देखा	२०-२१	८
७	वलराजा ने स्वप्न-फल कहा	२२-२४	१०
८	स्वप्न-लक्षण पाठकों ने स्वप्न-फल कहा	२५-२७	११
९	वलराजा ने प्रभावती देवी को पुनः स्वप्न-फल कहा	२८	१२
१०	वलराजा को महावल के जन्म की सूचना दी	२९-३२	१३
११	जन्म-महोत्सव	३३-३४	१४
१२	महावल का नामकरण और अन्य संस्कार	३५-३६	१५
१३	निक्षायग्रहण और पाणिग्रहण	३७-४०	१६
१४	धर्मपोष अणगर का आगमन	४१	१८
१५	महावल ने धर्म-श्रवण किया	४२	१९
१६	महावल ने प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की	४३-४४	१९
१७	महावल की प्रव्रज्या, देयभय, और सुदर्शन के रूप में अन्त	४५-४७	२१
१८	सुदर्शन की जातिस्मरण ज्ञान और प्रव्रज्या ग्रहण	४८-४९	२१
२	भ. मुनिमुद्रत के तीर्थ में कार्तिक सेठ आदि के कथानक	५०-६०	२२-२६
१	भ. महावीर के नमस्करण में शक्र की मृत्यु विधि	५०	२२
२	शक्र का पूर्व-भव के सम्बन्ध में प्रश्न	५१	२३
३	शक्र: पूर्व-भव में कार्तिक भेष्यी था	५२	२३
४	भ. मुनिमुद्रत का हरि त्नापुर में आगमन	५३	२४

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक
५ कार्तिक श्रेष्ठी का प्रव्रज्या संकल्प	५४-५७
६ एक हजार व्यापारियों के साथ कार्तिक श्रेष्ठी का प्रव्रज्या ग्रहण	५८
७ कार्तिक का शक्र होना और भविष्य में सिद्ध होना	५९-६०
३ भ. मुनिसुव्रत के तीर्थ में गंगदत्त श्रमण	६१-६७
१ गंगदत्त देव के पूर्वभव के सम्बन्ध में प्रश्न	६१-६२
२ हस्तिनापुर में भ. मुनिसुव्रत का आगमन और गंगदत्त का धर्मश्रवण	६३-६४
३ गंगदत्त की प्रव्रज्या और देवत्व	६५-६६
४ गंगदत्त की सिद्धी	६७
४ भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में चित्त-संभूति का कथन	६८-७६
१ ब्रह्मदत्त और चित्त का जन्म कथन	६८
२ कम्पिलपुर में चित्तसंभूति का आगमन और पूर्वभव कथन	६९
३ कर्म-फल का चिन्तन	७०
४ ब्रह्मदत्त ने चित्त को भोग भोगने के लिए आमन्त्रित किया	७१
५ चित्तमुनि ने काम भोग की निन्दा की	७२
६ ब्रह्मदत्त ने अपने निदान का वर्णन किया	७३
७ चित्तमुनि ने आर्यकर्म करने का उपदेश दिया	७४
८ ब्रह्मदत्त का नरक निवास	७५
९ चित्त श्रमण की सिद्ध गति	७६
५ भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में निपट्टादि श्रमण	७७-८७
१ निपट्टादि वारह श्रमण	७७
२ द्वारिका में श्रीकृष्ण वासुदेव	७८
३ द्वारिका में बलदेव राजा	७९
४ बलदेव की रेवती देवी का पुत्र निपट्टकुमार	८०
५ भ. अरिष्टनेमि तीर्थकर का आगमन और श्रीकृष्ण की पर्युपासना	८१-८२
६ निपट्ट ने श्रावक धर्म ग्रहण किया	८३
७ वरदत्त अणगार ने निपट्ट के पूर्वभव के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा. और भ. अरिष्टनेमि ने पूर्वभव कहा	८४
८ निपट्ट पूर्वभव में वीरांगद कुमार था	८५
९ सिद्धार्थ आचार्य के उपदेश से वीरांगद का प्रव्रज्या ग्रहण करना और ब्रह्मलोक में उत्पन्न होना	८६-८७
१० ब्रह्मलोक से व्यवकर निपट्टकुमार हुआ	८८-८९
११ निपट्ट की भ. अरिष्टनेमि के दर्शन की इच्छा	९०
१२ निपट्ट की इच्छा को जानकर भ. अरिष्टनेमि का आगमन	९१
१३ निपट्ट की प्रव्रज्या और समाधिमरण	९२
१४ भ. अरिष्टनेमि से वरदत्त ने निपट्ट की गति के सम्बन्ध में पूछा—भगवान् ने सवार्थ सिद्धिमान में उत्पन्न होने का कहा	९३
१५ भ. अरिष्टनेमि ने निपट्ट के महाविदेह में उत्पन्न होकर निड होने की कही	९४
३ भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में गोतम आदि अणगार	९५-१०६
१ संग्रहणी गाथा	९५
२ द्वारिका में श्रीकृष्ण वासुदेव	९६-१०१
३ अंधकृष्ण राजा का पुत्र गोतम कुमार	१०२

धर्मकयानुयोग-द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची	नूत्रांक	पृ.अंक
४ भ. अरिष्टनेमि का धर्मोपदेश और गौतम की प्रव्रज्या	१०२	४०
५ शत्रुञ्जय पर्वत पर गौतम की सिद्धी	१०३	४१
६ समुद्रादि	१०४	"
७ अक्षोभादि कुमार अणगार	१०५-१०६	४१
७ भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में अणोयस कुमार और अन्य अणगार	१०७-१२२	४२-४३
१ अणोयसादि अणगारों के नाम	१०७	४२
२ भद्रिलपुर में नाग गाथापति का पुत्र "अणोयस"	१०८-१०९	४२
३ भ. अरिष्टनेमि के समीप अणोयस की प्रव्रज्या और शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्धी	११०	४३
४ अनन्तसेन आदि कुमार अणगार	१११	४३
५ सारणकुमार श्रमण	११२	"
८ भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में गजमुकुमार आदि अणगार	११३-१५६	४३
१ छह अणगारों का तप संकल्प भ. अरिष्टनेमि की आज्ञा	११४	४४
२ छहों का क्रमशः देवकी के घर में प्रवेश	११५-११६	"
३ देवकी को एक संघाटक के ही पुनरागमन की शंका	११६	४४
४ देवकी का शंका-समाधान	१२०	४५
५ देवकी के मन में अतिमुक्त कुमार के वचनों में शंका	१२१	४७
६ भ. अरिष्टनेमि ने सुलसा का चरित्र कहकर शंका का समाधान किया	१२२-१२४	४७
७ छ सहोदर अणगार देवकी के ही पुत्र हैं यह जानकर देवकी हर्षित हुई	१२५	४८
८ देवकी के मन में पुत्र के लालन-पालन की अभिलाषा और चिन्ता	१२६	४८
९ श्रीकृष्ण ने चिन्ता का कारण पूछा	१२७	४८
१० देवकी ने चिन्ता का कारण कहा	१२८	४९
११ श्रीकृष्ण द्वारा देवाराधन और देव ने लघुभ्राता होने के लिए कहा	१२९-१३१	४९
१२ श्रीकृष्ण ने देवकी को आशवासन दिया	१३२	४९
१३ गजमुकुमार का जन्म	१३३	४९
१४ गजमुकुमार की भाषा करने के लिये सोमिल ब्राह्मण की लड़की को कुमारिकाओं के अन्न-पुर में रखा	१३४-१३६	४९
१५ भ. अरिष्टनेमि ने धर्मदेशना दी.	१३७	४९
१६ गजमुकुमार का प्रव्रज्या संकल्प.	१३८	४९
१७ गजमुकुमार का माता-पिता को निवेदन.	१३९-१४०	४९
१८ देवकी की शोकाकुल दशा.	१४१	४९
१९ देवती और गजमुकुमार का परिचय	१४२-१४३	४९
२० गजमुकुमार के प्रति श्रीकृष्ण का राज्य ग्रहण प्रस्ताव.	१४४	४९
२१ गजमुकुमार का एक दिवस का राज्य	१४५	४९
२२ गजमुकुमार की प्रव्रज्या	१४६	४९
२३ गजमुकुमार का महाप्रतिभा दर्शकार करना.	१४७	४९
२४ सोमिलवृत्त उपसर्ग.	१४८	४९
२५ गजमुकुमार की सिद्धगति.	१४९	४९
२६ श्रीकृष्ण ने बुद्ध की महायज्ञा की.	१५०	४९
२७ श्रीकृष्ण की गजमुकुमार-दर्शन-अभिलाषा.	१५१	४९

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची		सूत्रांक
२८	भ. अरिष्टनेमि ने गजसुकुमार की सिद्धगति कही.	१५५
२९	उपसर्ग श्रवण से श्रीकृष्ण का क्रुद्ध होना.	१५६
३०	उपसर्ग करने वाले ने सहायता ही की है यह जानकर क्रोध शान्त हुआ	१५७
३१	उपसर्ग करने वाले को कृष्ण ने जाना.	१५८
३२	सोमिल की अकाल मृत्यु.	१५९
६	भ. अरिष्टनेमि तीर्थ में सुमुख आदि कुमार श्रमण	१६०-१६१
१०	जालि आदि श्रमण	१६२
११	भ. अरिष्टनेमि के तीर्थ में थावच्चापुत्र और अन्य श्रमण	१६३-२१०
१	द्वारिका में श्रीकृष्ण वासुदेव	१६३
२	गाथापत्नी थावच्चा और उसका पुत्र थावच्चापुत्र	१६४
३	भ. अरिष्टनेमि का समवसरण	१६५
४	श्रीकृष्ण की पर्युपासना	१६६
५	थावच्चापुत्र का प्रव्रज्या-संकल्प	१६७
६	श्रीकृष्ण और थावच्चापुत्र का परिसंवाद	१६८
७	श्रीकृष्ण की योगक्षेम-घोषणा	१६९
८	थावच्चापुत्र का अभिनिष्क्रमण	१७०
९	शिष्यरूपभिक्षा का दान	१७१
१०	थावच्चापुत्र का प्रव्रज्या-ग्रहण	१७२
११	थावच्चापुत्र की अणगार-चर्या	१७३
१२	थावच्चापुत्र का जनपद विहार और सेलगपुर में समवसरण	१७४
१३	सेलगराजा का आगमन	१७५
१४	सेलग का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना	१७६
१५	सेलग की श्रमणोपासक चर्या	१७७
१६	सौगंधिका में सुदर्शन श्रेष्ठी	१७८
१७	सौगंधिका में शुक परिव्राजक का आगमन	१७९
१८	शुक परिव्राजक ने शौचमूलक धर्म का उपदेश दिया	१८०
१९	सुदर्शन का शौचमूलक धर्म स्वीकार करना	१८१
२०	शौचमूलक धर्म के सम्बन्ध में थावच्चापुत्र का सुदर्शन से संवाद और चातुर्यामिक धर्म का उपदेश	१८२-१८३
२१	सुदर्शन का विनयमूलक धर्म स्वीकार करना	१८४
२२	शुक ने सुदर्शन को प्रतिबोध दिया	१८५-१८६
२३	शुक का थावच्चापुत्र के साथ संवाद	१८७
२४	यात्रादि पदों की विचारणा ^१	—
२५	सरिसवों की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा	१८८
२६	कुलथों की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा	१८९
२७	माषों की भक्ष्याभक्ष्य विचारणा	१९०
२८	एक अक्षयादि पद-विचारणा	१९१
२९	शुक का हजार परिव्राजकों के साथ प्रव्रजित होना	१९२
३०	शुक का जनपद विहार	१९३
३१	थावच्चापुत्र का परिनिर्वाण	१९४

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
३२ शुक का शैलकपुर में आगमन और सेलक की अभिनिष्क्रमण-अभिलाषा	१६५-१६६	८४
३३ शैलक पुत्र मंडुक का राज्याभिषेक	१६७	८५
३४ शैलक की प्रव्रज्या	१६८	८५
३५ शुक का पुंडरीक पर्वत पर निर्वाण	१६९	८६
३६ शैलक का रोग से आतंकित होना	२००	८६
३७ मंडुक ने शैलक की चिकित्सा करवाई	२०१	८७
३८ शैलक का प्रमत्त विहार	२०२	८८
३९ पंथक अणगार को सेवा के लिए रखकर शैलक शिष्यों का विहार करना	२०३	८८
४० मद्य से प्रमत्त शैलक का पंथक से चातुर्मासिक क्षमापना	२०४	८८
४१ शैलक का कुपित होना और पंथक की क्षमा याचना	२०५	८९
४२ शैलक का पुनः अभ्युद्यत विहार	२०६	८९
४३ शैलक कथा के उपसंहार से उपदेश	२०७	९०
४४ शैलक के समीप शैलक शिष्यों का पुनः आगमन	२०८	९०
४५ पुण्डरीक पर्वत पर शैलकादि सबका निर्वाण	२०९	९०
४६ वृत्तिकार उद्धृत निगमन गाथा	२१०	९१
१२ रथनेमी श्रमण का राजीमती द्वारा उद्धार	२११-२१४	९१-९५
१३ भ. पारश्वनाथ के तीर्थ में अंगई सुप्रतिष्ठ और पूर्णभद्रादि श्रमण	२१५-२२६	९५-९९
१ दस अष्टयथनों के नाम	२१५	९५
२ भ. वर्धमान के समवसरण में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र ने नृत्य किया	२१६	९६
३ ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के पूर्वभव वर्णन में अंगई कथा	२१७	९६
४ चन्द्र की स्थिति और उसकी महाविदेह में सिद्धी (पारश्व तीर्थ में सुप्रतिष्ठित अनगार)	२१८	९७
५ भ. वर्धमान के समवसरण में सूर्य ने नृत्य किया	२१९	९७
६ सूर्य का पूर्वभव	२२०	९७
७ भ. वर्धमान की परिपद् में पूर्णभद्र देव ने नृत्य किया (पूर्णभद्र अनगार)	२२१	९८
८ पूर्णभद्र देव का पूर्वभव	२२२-२२३	९८
९ भ. वर्धमान के समवसरण में माणिभद्र देव ने नृत्य किया (मणिभद्र श्रमण)	२२४	९९
१० माणिभद्र देव का पूर्वभव	२२५	९९
११ दत्तआदि अन्य अणगार	२२६	९९
१४ जितशत्रु और सुबुद्धि का कथानक	२२७-२४६	१००-१०८
१ चम्पा नगरी में जितशत्रु राजा और सुबुद्धि अमात्य	२२७	१००
२ परिखा के उदक का वर्णक	२२८	१००
३ जितशत्रु ने पान-भोजन की प्रशंसा की	२२९	१००
४ सुबुद्धि ने पुद्गल का शुभाशुभ परिणमन कहा	२३०	१०१
५ जितशत्रु ने परिखोदक की निन्दा की	२३१	१०१
६ सुबुद्धि ने पुनः पुद्गल स्वभाव का वर्णन किया	२३२	१०२
७ जितशत्रु ने विरोध किया	२३३	१०३
८ सुबुद्धि ने जल का शोधन किया	२३४	१०३
९ सुबुद्धि ने जल प्रेषित किया	२३५	१०४
१० जितशत्रु ने उदगरत्न की प्रशंसा की	२३६	१०४

धर्मकथानुयोगः द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
११ जितशत्रु ने पानी लाने वाले से पूछा	२३७	१०५
१२ सुबुद्धि ने उत्तर दिया	२३८	१०५
१३ जितशत्रु ने जल शोधन करवाया	२३९	१०५
१४ जितशत्रु का प्रश्न	२४०	१०६
१५ सुबुद्धि का उत्तर	२४१	१०६
१६ जितशत्रु का श्रमणोपासक होना	२४२	१०६
१७ जितशत्रु और सुबुद्धि की प्रव्रज्या	२४३-२४५	१०६
१८ वृत्तिकार उद्धृत निगमन गाथा	२४६	१०८
१५ नमिरार्जषि	२४७-२४९	१०८
१ मिथिला के राजा नमी और उसका अभिनिष्क्रमण	२४७	१०८
२ शक्र के साथ नमिरार्जषि का संवाद	२४८-२४९	१०९-११३
१६ भ. महावीर के तीर्थ में ऋषभदत्त और देवानन्दा का चरित्र	२५०-२५९	११३-११८
१ ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण	२५०	११३
२ ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा ^१	—	११३
३ ऋषभदत्त और देवानन्दा की महावीर-दर्शनभिलाषा ^२	२५१	११३
४ ऋषभदत्त और देवानन्दा का दर्शनार्थ आगमन	२५२	११५
५ पूर्वपुत्र भ. महावीर के दर्शन-स्नेह एवं राग से देवानन्दा के स्तनों में दूध आ गया	२५३	११५
६ देवानन्दा का यह रूप देखकर गौतमस्वामी ने प्रश्न किया और भ. महावीर ने समाधान किया	२५४	११६
७ भ. महावीर ने धर्म कहा	२५५	११६
८ ऋषभदत्त की प्रव्रज्याभिलाषा	२५६	११६
९ भ. महावीर ने ऋषभदत्त को प्रव्रज्या दी	२५७	११७
१० ऋषभदत्त की सिद्धगति	२५८	११७
११ देवानन्दा की भी प्रव्रज्या और सिद्धगति	२५९	११८
१७ बालतपस्वी मौर्यपुत्र तामली अणगार	२६०-२७५	११८-१२७
१ भ. महावीर के समवसरण में ईशान देवेन्द्र ने नृत्य किया	२६०	११८
२ देवद्युति के प्रवेश के सम्बन्ध में प्रश्न और समाधान	२६१	११९
३ ईशान देवेन्द्र का पूर्वभव	२६२	११९
४ मौर्यपुत्र तामली गाथापति और उसकी प्रव्रज्या ग्रहणाभिलाषा	२६३	१२०
५ तामली ने प्रणामा प्रव्रज्या ग्रहण की	२६४	१२१
६ प्रणामा प्रव्रज्या का विवरण	२६५	१२२
७ तामली ने पादोपगमन संलेखना ग्रहण की	२६६	१२२
८ बलिचंचा राजधानी निवासी असुरकुमार देवों ने इन्द्र होने के लिए प्रार्थना की और तामली का निदान करना	२६७-२६८	१२३
९ तामली का ईशानेन्द्र के रूप में उत्पन्न होना	२६९-२७०	१२५
१० ईशानेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ जानकर असुरकुमार देवों को रोष आया और तामली के शरीर की हीलना की	२७१	१२५
११ तामली के शरीर की हीलना जानकर ईशानेन्द्र ने बलिचंचा राजधानी को भस्मीभूत कर दिया	२७२	१२६
१२ असुरकुमार देवों ने ईशानेन्द्र से प्रार्थना की और क्षमायाचना की	२७३	१२६

१. इसी सूत्र के अन्तर्गत है

२. सूत्रांक पृष्ठ ११४ पर दिया है; किन्तु इस शीर्षक के नीचे देना उचित था। (संशोधन करें)

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची		सूत्रांक
१३	तदनन्तर असुरकुमार ईशानेन्द्र की आज्ञा मानने लगे	२७४
१४	ईशानेन्द्र की स्थिति और महाविदेह में सिद्धी	२७५
१५	आर्द्रक का अन्यतीर्थिक के साथ वाद	२७६-२८३
१	भ. महावीर की जीवनचर्या के सम्बन्ध में गोशालक का आक्षेप	२७६
२	आर्द्रक का उत्तर	—
३	गोशालक ने कहा-शातोदग आदि के सेवन में पाप नहीं है	२७७
४	आर्द्रक का उत्तर	—
५	वाद करने वालों की परस्पर (एक दूसरे की) निन्दा करते हो । गोशालक का आक्षेप	२७८
६	आर्द्रक का उत्तर	—
७	मेघावी पुरुषों के प्रश्नों के भय से महावीर आरामगृह में नहीं ठहरता है । गोशालक का आक्षेप	२७९
८	आर्द्रक का उत्तर	—
९	महावीर वणिक जैसा है—गोशालक का आक्षेप ^१	—
१०	आर्द्रक का उत्तर	—
११	बुद्ध भिक्षुओं की हिंसा-अहिंसा के विषय में शाक्यवादियों का मत	२८०
१२	आर्द्रक का उत्तर	—
१३	स्नातकों को भोजन कराने से पुण्यार्जन होता है—यह वेदवादियों का मत है	२८१
१४	आर्द्रक का उत्तर	—
१५	सांख्य परिव्राजकों के अव्यक्त पुरुष-सम्बन्धि मन्तव्य	२८२
१६	आर्द्रक का उत्तर	—
१७	हस्तितापसों के अभिप्राय का निरूपण	२८३
१८	आर्द्रक का उत्तर	—
१९	भ. महावीर के तीर्थ में अतिमुक्तकुमार श्रमण	२८४-२८९
१	पोलासपुर के राजा का पुत्र अतिमुक्तकुमार	२८४
२	गौतम की भिक्षाचर्या	२८५
३	गौतम और अतिमुक्त कुमार का संवाद	२८६
४	अतिमुक्त कुमार की प्रव्रज्या	२८७
५	अतिमुक्त कुमार श्रमण की क्रीड़ा	२८८-२८९
२०	भ. महावीर के तीर्थ में अलक्षराजपि	—
१	अलक्षराजा की प्रव्रज्या	२९०
२१	भ. महावीर के तीर्थ में मेघकुमार श्रमण	२९१-३७६
१	राजगृह में श्रेणिक राजा	२९२
२	श्रेणिक-भार्या धारिणी	२९२
३	धारिणी का स्वप्न-दर्शन	२९३
४	श्रेणिक को स्वप्न-निवेदन	२९४
५	श्रेणिक ने स्वप्न की महिमा कही	२९५
६	धारिणी की स्वप्न-जागरणा	२९६
७	स्वप्नपाठनों को निमंत्रण दिया	२९७
८	श्रेणिक ने स्वप्न-फल पूछा	२९८
९	स्वप्न-फल कथन	२९९

१. सूत्रांक लगाना छूट गया है ।

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
१० स्वप्नपाठकों का विसर्जन	३००	११४५
११ श्रेणिक ने स्वप्न-प्रशंसा की	३०१	१४५
१२ धारिणी का दोहद	३०२	१४५
१३ धारिणी की चिन्ता	३०३	१४८
१४ परिचारिकाओं ने चिन्ता का कारण पूछा	३०४	१४८
१५ परिचारिकाओं ने श्रेणिक को कहा	३०५	१४९
१६ श्रेणिक ने चिन्ता का कारण पूछा	३०६	१४९
१७ धारिणी ने चिन्ता का कारण कहा	३०७	१५०
१८ श्रेणिक ने आश्वासन दिया	३०८	१५०
१९ अभयकुमार ने श्रेणिक को चिन्ता का कारण पूछा	३०९	१५१
२० श्रेणिक ने चिन्ता का कारण कहा	३१०	१५१
२१ अभयकुमार ने आश्वासन दिया	३११	१५२
२२ अभयकुमार ने एक देव की आराधना की	३१२	१५२
२३ देव का आगमन हुआ	३१३	१५३
२४ देव ने अकाल (वर्षाकाल के अभाव में) मेघ की रचना की	३१४	१५५
२५ धारिणी का दोहद पूर्ण हुआ	३१५-३१६	१५५
२६ अभयकुमार ने देव को विदाई दी	३१७	१५७
२७ धारिणी की गर्भचर्या	३१८	१५७
२८ मेघकुमार का जन्म होने पर वधाई दी	३१९-३२०	१५८
२९ मेघकुमार का जन्मोत्सव	३२१	१५८
३० मेघकुमार के नामकरण आदि संस्कार	३२२	१५९
३१ मेघकुमार का लालन-पालन	३२३-३२४	१६०
३२ मेघकुमार का कला-ग्रहण	३२५-३२६	१६०
३३ मेघकुमार का पाणिग्रहण	३२७	१६२
३४ प्रीतिदान	३२८	१६३
३५ भ. महावीर का समवसरण	३२९	१६४
३६ मेघकुमार की जिज्ञासा	३३०	१६४
३७ कंचुकी पुरुष द्वारा निवेदन	३३१	१६४
३८ मेघकुमार का भ. महावीर के समीप जाना	३३२	१६५
३९ धर्मदेशना	३३३	१६५
४० मेघकुमार का प्रव्रज्या ग्रहण करने का संकल्प	३३४	१६५
४१ मेघकुमार का माता-पिता को निवेदन	३३५	१६६
४२ धारिणी की शोकाकुल दशा	३३६	१६६
४३ धारिणी और मेघकुमार का परिसंवाद	३३७-३३८	१६७
४४ मेघकुमार का एक दिवस का राज्य	३३९	१७०
४५ मेघकुमार के निष्क्रमण प्रायोग्य उपकरण	३४०	१७२
४६ काश्यप (नापित) ने मेघकुमार के वालों के अग्रभाग कतर दिये	३४१-३४२	१७२
४७ मेघकुमार का अलंकरण किया गया	३४३	१७३
४८ मेघकुमार का अभिनिष्क्रमण महोत्सव	३४४-३४६	१७४
४९ शिष्य रूप भिक्षा का दान	३४७-३४८	१७७
५० मेघकुमार का प्रव्रज्या-ग्रहण	३४९-३५०	१७८
५१ मेघकुमार का मानसिक-संक्लेश	३५१	१७९

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

सूत्रांक

५२	मेघकुमार का सम्यक् बोध	३५२
५३	भगवान् द्वारा पूर्वभव में हुए सुमेरुप्रभ नामक हाथी के भव का निरूपण .	३५३-३५५
५४	भगवान् द्वारा मेरुप्रभ नामक हाथी के भव का निरूपण	३५६-३५७
५५	मेरुप्रभ ने मण्डल का निर्माण किया	३५८
५६	दवाग्नि से भयभीत श्वापदों का और मेरुप्रभ का मण्डल प्रवेश	३५९
५७	मेरुप्रभ का पैर ऊँचा रखना	३६०-३६१
५८	मेघकुमार का भव और उसमें तितिक्षा का उपदेश	३६२
५९	मेघकुमार को जातिस्मरण	३६३
६०	मेघकुमार की पुनः प्रव्रज्या	३६४
६१	मेघकुमार की निर्ग्रन्थ चर्या	३६५
६२	भ. महावीर का राजगृह से बाहर जनपद-विहार	३६६
६३	मेघकुमार-श्रमण की भिक्षु-प्रतिमा-आराधना	३६७
६४	मेघकुमार-श्रमण द्वारा गुणरत्नसंवत्सर तप का आराधन	३६८
६५	मेघकुमार-श्रमण की शारीरिक स्थिति	३६९
६६	मेघकुमार-श्रमण का विपुलगिरि पर्वत पर अनशन	३७०-३७२
६७	मेघकुमार श्रमण का समाधि-मरण	३७३
६८	स्थविरों ने मेघकुमार श्रमण के आचार भाण्ड समर्पित किये	३७४
६९	गौतम का प्रश्न. भगवान का उत्तर	३७५
७०	वृत्तिकार-उद्धृत-निगमन (निष्कर्ष) गाथा	३७६
२२	भ. महावीर के तीर्थ में मकाई आदि श्रमण	३७७-३७८
	१ संग्रहणी गाथा	३७७
	२ मकाई श्रमण और किंकिम श्रमण	३७८-३७९
२३	भ. महावीर के तीर्थ में अर्जुनमालाकार	३८०-३८३
	१ राजगृह में मुद्गर पाणि यक्ष का आयतन	३८०
	२ अर्जुन की यक्ष-पयुं पासना	३८१
	३ गोष्ठिकों ने अर्जुनमालाकार को बांधा और वन्धुमति भाषा के साथ अनाचार किया	३८२
	४ अर्जुन की चिन्ता और उसके शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष का प्रवेश	३८३
	५ राजगृह में आतंक	३८४
	६ भगवान् का समवसरण	३८५
	७ सुदर्शन का वन्दनार्थ-गमन	३८६
	८ सुदर्शन को अर्जुन कृत उपसर्ग	३८७
	९ उपसर्ग-निवारण	३८८
	१० सुदर्शन और अर्जुन ने भगवान् की पयुं पासना की	३८९
	११ अर्जुन की प्रव्रज्या	३९०
	१२ अर्जुन अपगार की तितिक्षा	३९१-३९२
	१३ अर्जुन अपगार की सिद्धगति	३९३
२४	भ. महावीर के तीर्थ में काश्यपादि श्रमण	३९४
२५	भ. महावीर के तीर्थ में धोणिकपुत्र जाली आदि श्रमण	३९५-३९६
	१ संग्रहणी गाथा	३९५
	२ जाली अणगार	३९६-३९७

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
३ मयाली आदि श्रमण	३६८	२०७
भ. महावीर के तीर्थ में दीर्घसेन आदि श्रमण ^१	३६६-४००	२०७
१ दीर्घसेन श्रमण	४००	२०७
२६ भ. महावीर के तीर्थ में सार्थवाह पुत्र धन्य अणगार	४०१-४१६	२०८-२१६
१ संग्रहणी गाथायें	४०१	२०८
२ धन्य का गृहवास	४०२	२०८
३ धन्य की प्रव्रज्या	४०३-४०४	२०९
४ धन्य की तपश्चर्या	४०५-४०८	२१०
५ धन्य का तपजनित शरीर लावण्य	४०९-४१२	२१२
६ श्रेणिक ने महान् दुष्कर तप करने वाले के सम्बन्ध में पूछा	४१३	२१७
७ भगवान् का उत्तर	४१४	२१७
८ श्रेणिक ने धन्य अणगार की स्तुति की	४१५	२१८
९ धन्य अणगार का सर्वार्थ सिद्धगमन और महाविदेह में उत्पत्ति तथा सिद्धगति	४१६	२१८
२७ भ. महावीर के तीर्थ में सुनक्षत्र आदि श्रमण	४१७-४२०	२१९
१ सुनक्षत्र श्रमण ^२	४१७-४१९	२१९
२ ऋषिदास आदि की कथानकों का निर्देश	४२०	२२०
२८ भ. महावीर के तीर्थ में सुवाहुकुमार श्रमण	४२१-४३२	२२१-२२६
१ संग्रहणी गाथा	४२१	२२१
२ सुवाहुकुमार का जन्म और परिणय	४२२-४२३	२२१
३ सुवाहुकुमार का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना	४२४	२२२
४ सुवाहुकुमार के पूर्वभव के सम्बन्ध में प्रश्न	४२५	२२२
५ सुवाहुकुमार के 'सुमुखभव' का कथानक	४२६	२२२
६ अणगार की भिक्षा वेला में पांच दिव्यों का प्रादुर्भाव	४२७	२२३
७ सुमुख का सुवाहु भव	४२८	२२४
८ सुवाहुकुमार की प्रव्रज्या	४२९-४३०	२२५
९ सुवाहुकुमार के आगामी भव और महाविदेह में सिद्धि	४३१-४३२	२२६
२९ भ. महावीर के तीर्थ में भद्रनंदी आदि श्रमणों के कथानक	४३३-४४१	२२७-२२९
१ भद्रनंदी 'श्रमण'	४३३	२२७
२ सुजात 'श्रमण'	४३४	२२७
३ सुवासव 'श्रमण'	४३५	२२७
४ जिनदास 'श्रमण'	४३६	२२८
५ धनपति 'श्रमण'	४३७	२२८
६ महवल 'श्रमण'	४३८	२२८
७ भद्रनंदी 'श्रमण'	४३९	"
८ महचन्द 'श्रमण'	४४०	"
९ वरदत्त 'श्रमण'	४४१	२२९

१. अध्ययन का क्रमांक और अध्ययन का शीर्षक लिखना छूट गया है।
यहाँ केवल अध्ययन का शीर्षक दिया है।
२. शीर्षक छूट गया है।

धर्मकथानुयोगः द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक
३० म. महावीर के तीर्थ में श्रेणिक का पौत्र पद्म श्रमण और महापद्म धमण	४४२-४४५
१ पद्मकुमार का जन्म	४४३
२ पद्मकुमार की प्रव्रज्या	—
३ म. महावीर के तीर्थ में श्रेणिक के पोते महापद्म आदि श्रमण	४४४-४४५
३१ म. महावीर के तीर्थ में हरिकेशवल श्रमण	४४६-४५५
१ यज्ञवाडे में भिक्षार्थ गमन	४४६
२ हरिकेशी को देखकर ब्राह्मणों को रोस आया	४४७
३ यक्ष ने हरिकेशी की प्रशंसा की	४४८
४ यक्ष का ब्राह्मणों से संवाद	४४९
५ कुमारों ने हरिकेशी को पीटा	४५०
६ भद्रा (राजकुमारी) ने उनको रोका और मुनि की प्रशंसा की	४५१
७ यक्षों ने भी उनको रोका और असुरों ने कुमारों को पीटा	४५२
८ भद्रा ने मुनि की पुनः प्रशंसा की	४५३
९ ब्राह्मणों ने क्षमायाचना की	४५४
१० मुनि ने यज्ञ स्वरूप का प्ररूपण किया	४५५
३२ महावीर तीर्थ में जयघोष-विजयघोष	४५६-४६२
१ वाराणसी के उद्यान में जयघोष का आगमन	४५६
२ वेद एवं यज्ञमुख आदि विषय में जयघोष मुनि की वक्तव्यता	४५८
३ श्रमण-ब्राह्मण तपस्वी के स्वरूप विषयक चर्चा	४५९
४ कर्म-प्रधानता का निरूपण	४६०
५ जयघोष मुनि की स्तवना	४६१
६ भोग निवृत्ति का उपदेश	४६२
३३ म. महावीर के तीर्थ में अनाथी महा निर्ग्रन्थ	४६४-६६
१ श्रेणिक ने मुनि-दर्शन किया	४६४
२ मुनि ने अपना अनाथत्व प्ररूपित किया	४६५
३ अनाथपत्ने को जानकर प्रव्रज्या का संकल्प किया और इससे वेदना का क्षय हुआ	४६६
४ प्रव्रज्या ग्रहण करने से सनाथत्व प्राप्त हुआ	४६७
५ कुशीलाचरण निरूपण पूर्वक संयम पालन का उपदेश दिया	४६८
६ श्रेणिक का प्रसन्न होना और क्षमायाचना करना	४६९
३४ म. महावीर के तीर्थ में समुद्रपालीय का कथानक	४७०-४७३
१ पालित श्रावक ^१	४७०
२ समुद्र में जन्म और परिणय आदि	४७१
३ बध्य पुरुष के दर्शन से वैराग्य और प्रव्रज्या	४७२
४ परीषह-सहन और निन्दी	४७३
३५ म. महावीर के तीर्थ में मृगापुत्र बलश्री धमण	४७४-४७६
१ बलश्री मृगापुत्र ^२	४७४
२ धमण को देखकर जाति-स्मरण ज्ञान हुआ	४७६

१ शीर्षक छूट गया है

२ शीर्षक छूट गया है

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध—विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
३ मृगापुत्र का प्रव्रज्या-संकल्प और माता-पिता से निवेदन	४७६	२४६
४ माता-पिता ने श्रमणजीवन दुष्कर कहा और प्रव्रज्या लेने से रोका	४७७	२४१
५ मृगापुत्र ने नरक के दुखों का वर्णन किया और श्रमण जीवन की दुष्करता का निराकरण किया	४७८	२४२
६ माता-पिता ने कहा—श्रमण जीवन में चिकित्सा निषिद्ध है	४७९	२४४
७ मृगापुत्र का उत्तर	४८०	२४५
८ मृगापुत्र की प्रव्रज्या	४८१	२४५
३६ म. महावीर के तीर्थ में गर्दभाली और संजय राजा	४८२-४८६	२५६-२६१
१ संजय राजा ने मुनि के समीप मृगवध किया	४८२	२५६
२ संजय ने क्षमायाचना की	४८३	२५७
३ गर्दभाली मुनि ने उपदेश दिया	४८४	२५७
४ मुनि के समीप राजा की प्रव्रज्या	४८५	२५८
५ क्षत्रियमुनि के प्रश्न	४८६	२५८
६ संजय मुनि ने आत्मकथा कही	४८७	२५८
७ क्षत्रिय मुनि ने अपना पूर्वभव कहा	४८८	२५९
८ क्षत्रिय मुनि ने पूर्व प्रव्रजित भरतादिक का निरूपण किया	४८९	२५९
३७ म. महावीर के तीर्थ में इषुकार राजा आदि छ श्रमण	४९०-४९५	२६१-२६६
१ इषुकार नगर में पुरोहित तथा उसके पुत्रादि	४९०	२६१
२ जातिस्मरण ज्ञान से पुरोहित पुत्रों को विरति, प्रव्रज्या का संकल्प और निवेदन	४९१	२६१
३ राजा आदि की प्रव्रज्या	४९५	२६६
३८ म. महावीर के तीर्थ स्कंदक परिव्राजक	४९६-५१९	२६६-२८२
१ कृतंगला नगरी में भ. महावीर का समवसरण	४९६	२६६
२ श्रावस्ती नगरी में स्कंदक परिव्राजक	४९७	२६७
३ पिगल निर्गन्ध ने लोकादि के सम्बन्ध में प्रश्न किये	४९८	२६७
४ स्कंदक का उत्तर देने में असामर्थ्य	४९९	२६७
५ अनेकजन कृतंगला नगरी गये	५००	२६८
६ भ. महावीर के दर्शनार्थ स्कंदक का कृतंगला जाना	५०१	२६८
७ भ. महावीर ने गौतम को स्कंदक के आगमन का निर्देश दिया	५०२	२६९
८ गौतम ने स्कंदक का स्वागत किया और स्कंदक ने अपने आने का कारण कहा	५०३	२६९
९ भ. महावीर के ज्ञान के सम्बन्ध में स्कंदक को आश्चर्य हुआ	५०४	२७०
१० स्कंदक की महावीर-पयुं पासना	५०५	२७०
११ भ. महावीर ने स्कंदक के मनोगत भाव कहे	५०६	२७१
१२ भ. महावीर ने चार प्रकार से लोक की प्ररूपणा की	५०७	२७१
१३ चार प्रकार से प्राण की प्ररूपणा की	५०८	२७२
१४ चार प्रकार से मिट्टि की प्ररूपणा की	५०९	२७२
१५ चार प्रकार से मिट्टी की प्ररूपणा की	—	२७३
१६ (चौक नगर से) मरण की प्ररूपणा की	५१०	२७३
१७ स्कंदक का अन्त-धर्म	५११	२७५

पृष्ठांक

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

- २४६ स्कन्दक की प्रव्रज्या
- २४७ भ. महावीर का जनपद विहार
- २४८ स्कन्दक ने भिक्षु-प्रतिमा ग्रहण की
- २४९ स्कन्दक ने गुणरत्नसंवत्सर तप किया
- २५० राजगृह में भ. महावीर का समवसरण और स्कन्दक का समाधिमरण का वृत्तर
- २५१ स्कन्दक की संलेखना
- २५२ स्कन्दक के पात्र-वस्त्र ले आना
- २५३ स्कन्दक का अच्युतकल्प में उपपात और महाविदेह में सिद्धि
- ३६ भ. महावीर के तीर्थ में मोद्गल परिव्राजक
- १ आलभिका नगरी में मोद्गल परिव्राजक
- २ मोद्गल का विभंगज्ञान
- ३ देव-स्थिति के सम्बन्ध में मोद्गल का विभंगज्ञान
- ४ भ. महावीर का समवसरण और देव-स्थिति के सम्बन्ध में यवार्थ कथन
- ५ मोद्गल के विभंगज्ञान का पतन और भ. महावीर के समीप गमन
- ६ मोद्गल का प्रव्रज्या
- ७ सिद्ध होने वाले के संहनन के सम्बन्ध में गौतम के प्रश्न
- ४० भ. महावीर के तीर्थ में शिवराज ऋषि
- १ हस्तिनापुर में शिवराज
- २ शिव का दिशाप्रोक्षिक-तापस-प्रव्रज्या का संकल्प
- ३ शिवभद्रकुमार का राज्याभिषेकः
- ४ शिव की दिशाप्रोक्षिक-तापस-प्रव्रज्या
- ५ शिव का सात द्वीप विषयक विभंगज्ञान
- ६ भ. महावीर ने समवसरण में शिव के विभंगज्ञान के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर
- ७ भ. महावीर द्वारा असंख्य द्वीप-समुद्र की प्रत्यप्ता^१
- ८ शिव को अपने ज्ञान के सम्बन्ध में शंका और भ. महावीर की पर्युपासना
- ९ शिव की प्रव्रज्या और निर्वाणगमन
- ४१ भ. महावीर के तीर्थ में उदायन का कथानक
- १ चम्पा नगरी में भ. महावीर का समवसरण
- २ वीतिभय नगर में उदायन राजा
- ३ उदायन की महावीर वन्दनाभिलाषा
- ४ भ. महावीर ने अभिलाषा जानी
- ५ वीतिभय नगर में भ. महावीर का समवसरण
- ६ उदायन का प्रव्रज्या-संकल्प
- ७ अपने पुत्र अभीचिकुमार को छोड़कर केनोचुमार (भानुज) का राज्याभिषेक
- ८ उदायन की प्रव्रज्या
- ९ अभीचिकुमार का उदायन के प्रति वैर भाव और कोनिक के कथीय वचन
- १० अभीचिकुमार की अमुर देवी में उदरति
- ४२ भ. महावीर के तीर्थ में जिनपाल जिनरक्षित का उदाहरण
- १ चम्पा में माकंदी सार्ववाह के पुत्र

१ शीर्षक छूट गया है.

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
२ जिनपाल-जिनरक्षित की समुद्र यात्रा	५५०	३०३
३ नौका-भंग	५५१	३०४
४ माकंदी-पुत्र फलक खण्ड से रत्न द्वीप पहुँचे	५५२	३०६
५ रत्नद्वीप की देवी के साथ भोग भोगे	५५३	३०७
६ रत्नद्वीप की देवी का लवणसमुद्र को स्वच्छ करने के लिए जाना और वनखंड में रमण करने का आदेश देना	५५४	३०८
७ रत्नद्वीप की देवी का माकंदी पुत्रों को दृष्टिविष सर्प के समीप जाने का निषेध	५५५	३१०
८ माकंदी पुत्रों का वनखण्ड में गमन	५५६	३१०
९ माकंदी पुत्रों का देवी-निपिद्ध स्थान में गमन	५५७	३११
१० वनखण्ड में देवी द्वारा शूलीपर आरोपित पुरुष के दर्शन	५५८	३११
११ माकंदी पुत्रों ने (निस्तार) संकट-मुक्त होने के सम्बन्ध में पूछा	५५९	३१२
१२ माकंदी पुत्रों ने शैलक यक्ष की उपासना की	५६०	३१३
१३ शैलक यक्ष ने रक्षण का उपाय कहा	५६१	३१३
१४ माकंदी-पुत्रों का शैलक यक्ष के पृष्ठ पर आरोहण करना	५६२	३१४
१५ रत्नद्वीप की देवी ने प्रतिकूल उपसर्ग किये	५६३	३१४
१६ रत्नद्वीप की देवी ने अनुकूल उपसर्ग किये	५६४	३१५
१७ जिनरक्षित की मृत्यु	५६५	३१६
१८ जिनपालित का चम्पागमन	५६६	३१७
१९ जिनपालित की प्रव्रज्या	५६७	३१८
४३ भ. महावीर के तीर्थ में कालास्यवेपि पुत्र	५६८-५७०	३१९-३२१
१ कालाशवैश्यपुत्र श्रमण का चातुर्यामि धर्म से पंचमहाव्रत धर्म स्वीकार करना	५६९	३२१
४४ भ. महावीर के तीर्थ में उदक पेढाल पुत्र	५७१-५९६	३२२-३३६
१ नालंदा में लेप नाम का श्रमणोपासक था	५७१	३२२
२ लेप की उदक शाला के समीप गौतम ठहरे हुए थे	५७२	३२२
३ गौतम के समीप प्रश्न के लिए पार्श्वपत्यश्रमण उदकपेढाल पुत्र का आना	५७३	३२३
४ उदकपेढालपुत्र का श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में प्रश्न	५७४	३२३
५ भगवान गौतम का उत्तर	५७५	३२४
६ उदकपेढाल पुत्र का प्रति प्रश्न	५७६	३२४
७ "वस भूत प्राणी वस हैं, और वस प्राणी वस हैं. ये दोनों वाक्य समान अर्थ वाले हैं" ऐसा गौतम ने कहा	५७७	३२४
८ उदकपेढाल पुत्र की स्वपक्ष स्थापना	५७८	३२५
९ भगवान गौतम का प्रत्युत्तर	५७९	३२६
१० श्रमण का दृष्टान्त	५८०	३२६
११ प्रत्याख्यान का विषय उपदर्शन	५८३	३२९
१२ नौ भागों में प्रत्याख्यान के विषय-दियाना	५८२	३३४
१३ वन-स्थान पर प्राणिपों की अद्भुच्छित्ति-व्यवच्छेद (विनाश) का अभाव	५८३	३३८
१४ उपनिषद्	५८४	३३८
१५ उदक का प्रत्याख्यान धर्म से पंचमहाव्रत धर्म ग्रहण करना	५८६	३३९

धर्मकथानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

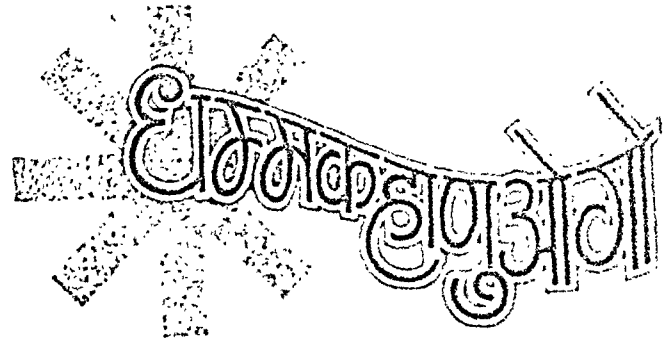
सूचांक

३०३			
३०४			
३०६	४५	भ. महावीर के तीर्थ में नन्दीफल का उदाहरण	५६७-६०४
३०७	१	चम्पानगरी में धनसार्थवाह	५६७
	२	धन (सार्थवाह) की अहिच्छन्ना जाने की घोषणा	५६८
३०८	३	धन (सार्थवाह) ने नन्दीफल वृक्षों के उपभोग का निषेध किया	५६९
३०९	४	निषेध के अनुसरण का फल	६००
३१०	५	निषेध का पालन न करने पर मृत्यु	६०१
३१०	६	धन (सार्थवाह) का अहिच्छन्ना जाना	६०२
३११	७	धन (सार्थवाह) का प्रव्रजित होना	६०३
३११	४६	महावीरतीर्थ में धन्यसार्थवाह का कथानक.	६०५-६३१
३१२	१	राजगृह में धन्य सार्थवाह की पुत्री सुंमुमा	६०५
३१३	२	चिलातदासपुत्र ने कुमार कुमारिकाओं को क्रीडाकाल में मारा-पीटा	६०६
३१३	३	चिलात को घर से निकाल दिया	६०८
३१४	४	चिलात की दुर्व्यसनों में प्रवृत्ति	६०९
३१४	५	राजगृह के समीप चोरपल्ली और उसमें विजय चोर सेनापति	६१०
३१५	६	चिलात का चोरपल्ली में गमन और चोर सेनापति विजय ने उसे चोर विधायें सिखाई	६१३
३१६	७	चोर सेनापति विजय की मृत्यु	६१४
३१७	८	चिलात का चोर सेनापति होना	६१५
३१८	९	चिलात का धन्य सार्थवाह का घर लूटना और सुंमुमा का अवश्य करना	६१६
३१९-३२१	१०	नगररक्षकों ने चोरों का निग्रह किया	६१८
३२१	११	चिलात का चोरपल्लि से सुंमुमा को लेकर भागना और सुंमुमा को मार देना	६२०
३२२-३२६	१२	धन्य सार्थवाह का सुंमुमा के लिये क्रन्दन करना	६२४
३२२	१३	उम अटवी में भूय से व्याकुल धन्य सार्थवाह आदि ने सुंमुमा के मांन रख का आश्रय किया	६२५
३२२	१४	धन्य सार्थवाह का प्रव्रजित होना	६३०
३२३	१५	अंगवंश के नितंतर राजा दीक्षित हुये	६३१
३२३	४७	कालोदाई (आदि अनेक अन्यतीर्थियों) के कथानक	६३२-६४६
३२३	१	राजगृह-स्थित कालोदाई आदि का अस्तित्काय के विषय में संदेह	६३२
३२४	२	कालोदाई आदि का गौतम के प्रति अस्तित्काय सम्बन्धी संका का विरूपण	६३४
३२४	३	गौतम ने कालोदाई आदि की संकाओं का समाधान किया	६३५
३२४	४	कालोदायी के पंचास्तित्काय संश्र्डी-विविध प्रश्नों के ज्ञानद्वारा भ. महावीर का समाधान	६३६
३२५	५	कालोदाई का निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण और विहरण	६३६
३२६	६	भ. महावीर का जनपद विहार	६३८
३२६	७	कालोदाई के पापकर्म फलविनाश संश्र्डी और कल्याण करने (धर्म) कर विनाश सम्बन्धी प्रश्नों का भ. महावीर ने समाधान किया	६४१
३२६	८	कल्याण कर्मों के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर	६४३
३२७	९	कालोदाई के अविचार जनने और बुद्धि से होने वाले कर्मकर्म सम्बन्धी प्रश्नों का भ. महावीर ने समाधान किया	६४४
३२८	१०	कालोदाई के अविचार बुद्धि के प्रभाव उलोदाई संश्र्डी प्रश्नों का (भ. महावीर) ने समाधान किया	६४५
३२८	११	कालोदाई का निर्वाण गमन	६४६

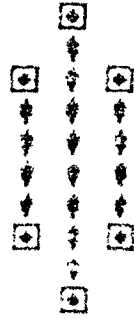
१. धन्यसार्थवाह के कथानक में यह सुत्र सर्वथा निरव है। अतः इस सूत्र को हटा दिया है।

धर्मकयानुयोग द्वितीयस्कन्ध-विषय-सूची

	सूत्रांक	पृष्ठांक
४८ पुण्डरीक कंडरीक कयानक	६४७-६५६	३६२-३६६
१ महाविदेह में पुण्डरीकिणी नगरी में राजपुत्र पुण्डरीक और कण्डरीक	६४७	३६२
२ महापद्म राजा की प्रत्रज्या और पुण्डरीक का अभिषेक	६४८	३६२
३ कंडरीक की प्रत्रज्या	६४९	३६३
४ कंडरीक की वेदना	६५०	३६४
५ कंडरीक की चिकित्सा	६५१	३६४
६ कंडरीक का प्रमत्त विहार	६५२	३६५
७ पुण्डरीक ने (कंडरीक को) प्रतिबोध दिया	६५३	३६५
८ कंडरीक का प्रत्रज्या परित्याग	६५४	३६५
९ पुण्डरीक की प्रत्रज्या	६५५	३६५
१० कंडरीक की मृत्यु	६५६	३६७
११ पुण्डरीक की आराधना	६५८	३६८
४९ भ. महावीर के तीर्थ में स्थविरावली	६६०-६६५	३६९-३७६
१ आर्य सुधर्मा के श्रमण-निर्ग्रन्थों की परम्परा (अपत्य स्थानीयत्व)	६६१	३६९
२ आर्य सुधर्मा से आर्य यशोभद्र पर्यन्त स्थविरावली	६६२	३७०
३ आर्य यशोभद्र से संक्षिप्त स्थविरावली	६६३	३७०
४ आर्य यशोभद्र से विस्तृत स्थविरावली	६६४	३७१
५ नन्दीसूत्रान्तर्गत स्थविरावली	६६५	३७७



[धर्मकथानुयोग]



षट्मो खंडो

[प्रथम स्कन्ध]



धम्मकहाणुओगो

(धर्मकथानुयोग)

प्राथमिक

- जैन आगमों में वर्णित चरित्र-कथाओं का संकलन प्रस्तुत धर्मकथानुयोग में किया गया है।
- प्रथम स्कंध में उत्तम पुरुषों के जीवन-चरित्रों से सम्बन्धित वर्णन संकलित है।
- संसार में जो पूज्य, श्रेष्ठ या सम्माननीय माने जाते हैं, उन्हें 'उत्तम पुरुष' कहा जाता है। जैन परिभाषा में इन्हें 'शलाका-पुरुष' भी कहा गया है। शलाका-पुरुष का भी अर्थ यही है—वे विशिष्ट प्रशंसनीय पुरुष, जिनकी गणना अंगुलियों पर की जाती है।
- २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव तथा ६ प्रतिवासुदेव—इस प्रकार त्रैसठ शलाका पुरुष या उत्तम पुरुष बताये गये हैं।
- 'कुछ आचार्यों ने ६ प्रतिवासुदेव को उत्तम पुरुष नहीं माना है। उनकी गणना में 'चोपन महापुरुष' का ही उल्लेख है।
- प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से पूर्व कुलकर व्यवस्था थी। वैसे तृतीय आरे के अन्तिम (तृतीय) भाग में कुलकर व्यवस्था प्रारम्भ होती है। कुलकर का अर्थ है—मानवसमूह कुल की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष। इन्हें मानव कुलका नेता भी कह सकते हैं। वृक्षों से मनुष्यों की आवश्यकता-पूर्ति होती रहती है, अतः युगल काल में वृक्षों का सर्वाधिक महत्व है, इसलिए दस प्रकार के वृक्षों का वर्णन भी उनके वर्णन में अन्तर्निहित है।
- इस प्रकार प्रथम स्कंध में कुलकर तथा उनके पश्चात् तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, भगवती मल्ली, अर्हत् अरिष्टनेमि, पुरुषादानी पार्श्वनाथ, श्रमण भगवान महावीर, महापद्म तीर्थंकर (आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले श्रेणिक जीव—) आदि का वर्णन है। तीर्थंकर सामान्य में तीर्थंकरों की संख्या, अवगाहना, आगारवास, श्रमण-श्रमणी आदि का वर्णन संकलित है। इसके पश्चात् चक्रवर्ती भरत, तथा अन्य चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि उत्तम पुरुषों का वर्णन संग्रहीत है।
- यह वर्णन किसी एक ही आगम (सूत्र) में नहीं है, आगमों में प्रसंगानुसार यत्र-तत्र विकीर्ण है। इसलिए इसमें प्रवाहबद्धता नहीं मिलेगी। फिर भी समग्रता व सर्वांगता लाने का प्रयत्न किया गया है, और इस समग्रता में प्रवाह-बद्धता भी माला में सूत्र की भाँति अनुस्यूत है।

पढमो खंधो

प्रथम स्कंध

उत्तमपुरिसकहाणगाणि

उत्तमपुरुषकथानक

अडिक्कयणा

मंगलमुत्ताजि

१. कुलगरा
२. उताह-परियं
३. मलिन-परियं
४. जिरट्टेनेम-परियं
५. पाग-परियं
६. महावीर-परियं
७. महापउम-परियं
८. तिरुवयर-सामण्ण
९. भरहचबकवट्टि-परियं
१०. पबनवट्टि-सामण्ण
११. वनदेव-वामुदेव-सामण्ण

अट्टय्यन्न

मंगलमुत्त

१. कुलकर
२. प्रत्यम-परियं
३. मलिन-परियं
४. जिरट्टेनेम-परियं
५. पाग-परियं
६. महावीर-परियं
७. पय-परियं
८. नोर्षकर-सामण्ण
९. भरहचबकवट्टि-परियं
१०. पबनवट्टि-सामण्ण
११. वनदेव-वामुदेव-सामण्ण

संगलसुत्ताणि

१. णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्जायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं ॥^१

—भग० स० १, उ० १, सु० १ ।

गाहा—एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसि, पढमं हवइ मंगलं ॥^२

—आव० नि० गा० १०१८ ।

२. (१) अरिहंता मंगलं, (२) सिद्धा मंगलं, (३) साहू मंगलं,
(४) केवलपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।
३. (१) अरिहंता लोगुत्तमा, (२) सिद्धा लोगुत्तमा, (३) साहू
लोगुत्तमा, (४) केवलपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।
४. (१) अरिहंते सरणं पवज्जामि, (२) सिद्धे सरणं पवज्जामि
(३) साहू सरणं पवज्जामि, (४) केवलपन्नत्तं धम्मं सरणं
पवज्जामि ।

—आव० अ० ४, सु० १२, १३, १४ ।

१. कुलगरा—

१. जंबुद्वीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त
कुलगरा होत्था, तं जहा—गाहा—
मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

—ठाणं० अ०७, सु० ५५६ सम० सु० १५७ ।

६. जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा
होत्था तं जहा—गाहा—
सयंजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अमितसेणे य ।
तक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ॥१॥
दढरहे, दसरहे, सपरहे ॥

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७ । सम० सु० १५७ ।

१. सूरि० पा० १, सु० १ । आव० अ० १, सु० १ ।

३. मानव समूह (कुल) की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष । समूह का नेता ।

संगल-सूत्र

१. अरिहंतों को नमस्कार हो ।
सिद्धों को नमस्कार हो ।
आचार्यों को नमस्कार हो ।
उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
लोक में स्थित सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

यह पंच नमस्कार सर्व पापों का नाश करने वाला और
सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है ।

२. (१) अरिहंत मंगलरूप है (२) सिद्ध मंगलरूप है (३) साधु
मंगलरूप है (४) केवल-प्ररूपित धर्म मंगलरूप है ।
३. (१) अरिहंत लोक में उत्तम है (२) सिद्ध लोक में उत्तम है
(३) साधु लोक में उत्तम है (४) केवल-प्ररूपित धर्म लोक
में उत्तम है ।
४. (१) अरिहंतों की शरण लेता हूँ (२) सिद्धों की शरण लेता हूँ
(३) साधुओं की शरण लेता हूँ (४) केवल-प्ररूपित धर्म
की शरण लेता हूँ ।

१. कुलकर—

१. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात
कुलकर^३ हुए थे; यथा—गाथा—
१. मित्रदाम; २. सुदाम, ३. सुपार्व, ४. स्वयंप्रभ,
५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष ।

६. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर
हुए थे, यथा—गाथा—

१. शतंजल, २. शतायु, ३. अनन्तसेन, ४. अमितसेन,
५. तर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढरथ, ९. दशरथ,
१०. शतरथ ।

२. विसे० गा० ३६२५ ।

७. अंबुहीवे वीवे भारहे वासे आगमेस्ताए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्सन्ति, तं जहा—गाहा—
मिस्सवाहणे सुद्धमे य, सुप्पमे य तयंपमे ।
दत्ते, सुद्धमे, सुबधू य, आगमेस्ताण होवन्ति ॥१॥
—ठाण० अ० ७, सु० ११६ । सम० सु० ११८ ।
८. अंबुहीवे वीवे भारहे वासे आगमेस्ताए उस्सप्पिणीए दत्त कुलगरा भविस्सन्ति, तं जहा—
सीमंकरे, सीमंधरे, घेमंकरे, घेमंधरे, विमलवाहणे, संमुत्ती, पडिमुत्ते, वदधणू, दत्तधणू, सत्तधणू ॥
—ठाण० अ० १०, सु० ७६७ ।
९. अंबुहीवे णं वीवे एरवए वासे आगमेस्ताए उस्सप्पिणीए दत्त कुलगरा भविस्सन्ति, तं जहा—गाहा—
विमलवाहणे, सीमंकरे, सीमंधरे, घेमंकरे, घेमंधरे, वदधणू, दत्तधणू, सत्तधण, पडिमुद्धं, संमुद्धं ति ॥१॥
—सम० सु० ११८ ।
१०. विमलवाहणे णं कुलकरे णवधणुमत्ताइं उद्धं उच्चत्तेणं हत्वा ॥
—ठाण० अ० ६ सु० ६६६ ।
११. विमलवाहणे णं कुलकरे नत्तपिधा एत्ता उवभोगस्ताए हृषमगाण्णित्तु, तं जहा—गाहा—
सत्तंगया य भिगा, चित्तंगया येव होति चित्तरमा, णियंगया य जणियणा, सत्तमगा कण्णदवया य ॥१॥
—ठाण० अ० ७, सु० ११६ ।
१२. अभिषये णं कुलकरे छ धणुनवाइं उद्धं उच्चत्तेणं हत्वा ॥
—ठाण० अ० ५, सु० ११८ । सम० सु० १०६, १ ।
१३. अंबुहीवे वीवे भारहे वासे इमीति जीयाप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्वा, तं जहा—गाहा—
पटमेत्थ विमलवाहणे, अरुद्धमं जवमं अउत्तमभियधरे ।
तत्तां य पत्तेणए, मरुदेवे येव नाभी य ॥१॥
१४. एतेतं णं सत्तहं कुलवगणं मत्तं वाणियाजी हत्वा, तं जहा—
गाहा—अरुत्तं अउत्तं, सुद्धं पाइत्तं पच्छुद्धं ता य ।
विणिकाया मरुदेवी, कुलपरहत्थेणं एताइं ता ॥
—ठाण० अ० ७, सु० ११६ । सम० सु० ११७ ।
१५. सीमे य तवए पोरुत्तं विजाणुं पत्तिजावधुत्तं तावन्ते एत्थं णं इमे पण्णरसे कुलगरा तनुयाणं कत्तां तं जहा—
३. अम्बुहीव के मरुदेवे मे जावामी उस्सप्पिणी ए वाउ कुलकर होमि, यथा—
१. मिस्सवाहन, २. सुद्धम, ३. सुबध, ४. सुवदधण, ५. दत्त, ६. सुधम, ७. सुबधु ।
४. अम्बुहीव के मरुदेवे मे जावामी उस्सप्पिणी ए दत्त कुलकर होमि, यथा—
१. सीमंकर, २. सीमंधर, ३. घेमंकर, ४. घेमंधर, ५. विमल वाहन, ६. संभूति, ७. पडिभू, ८. वदधण, ९. दत्तधणु, १०. सत्तधणु ।
५. अम्बुहीव के एरवत धीव मे जावामी उस्सप्पिणी ए दत्त कुलकर होमि, यथा—
१. विमलवाहन, २. सीमंकर, ३. सीमंधर, ४. घेमंकर, ५. घेमंधर, ६. वदधणु, ७. दत्तधणु, ८. सत्तधणु, ९. पडिमुद्धं, १०. संमुद्धं ।
६. अम्बुहीव के एरवत धीव मे जावामी उस्सप्पिणी ए दत्त कुलकर होमि, यथा—
१. विमलवाहन, २. सीमंकर, ३. सीमंधर, ४. घेमंकर, ५. घेमंधर, ६. वदधणु, ७. दत्तधणु, ८. सत्तधणु, ९. पडिमुद्धं, १०. संमुद्धं ।
७. विमलवाहन कुलकर (सीमे) उरवएवा सी हएवा एव वी सी धणुय जीव पे ।
८. विमलवाहन कुलकर के मरुदेव मे जाव एताइं ए दत्त कुलकर के विण उरवएवा एव पे, यथा—
१. मरुदेव, २. सुद्धं, ३. विमल, ४. विमलवाहन, ५. मरुदेव, ६. अरुद्धं, ७. अउत्तं ।
९. अम्बुहीव कुलकर छ वी धणुय जीव पे ।

मंगलसुत्ताणि

१. णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्जायाणं
णमो लोए सब्बसाहूणं ॥^१

—भग० स० १, उ० १, सु० १ ।

गाहा—एसो पंच णमोक्कारो, सब्बपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सब्बेसि, पढमं ह्वइ मंगलं ॥^२

—आव० नि० गा० १०१८ ।

२. (१) अरिहंता मंगलं, (२) सिद्धा मंगलं, (३) साहू मंगलं,
(४) केवलपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।
३. (१) अरिहंता लोगुत्तमा, (२) सिद्धा लोगुत्तमा, (३) साहू
लोगुत्तमा, (४) केवलपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।
४. (१) अरिहंते सरणं पवज्जामि, (२) सिद्धे सरणं पवज्जामि
(३) साहू सरणं पवज्जामि, (४) केवलपन्नत्तं धम्मं सरणं
पवज्जामि ।

—आव० अ० ४, सु० १२, १३, १४ ।

१. कुलगारा—

५. जंबुद्वीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त
कुलगारा होत्था, तं जहा—गाहा—
मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

—ठाणं० अ०७, सु० ५५६ सम० सु० १५७ ।

६. जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए दस कुलगारा
होत्था तं जहा—गाहा—
सयंजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अमितसेणे य ।
तक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ॥१॥
दढरहे, दसरहे, सयरहे ॥

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७ । सम० सु० १५७ ।

१. सूरि० पा० १, सु० १ । आव० अ० १, सु० १ ।

३. मानव समूह (कुल) की व्यवस्था आदि करने में समर्थ व विशिष्ट बुद्धि सम्पन्न पुरुष । समूह का नेता ।

मंगल-सूत्र

१. अरिहंतों को नमस्कार हो ।
सिद्धों को नमस्कार हो ।
आचार्यों को नमस्कार हो ।
उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
लोक में स्थित सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

यह पंच नमस्कार सर्व पापों का नाश करने वाला और
सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है ।

२. (१) अरिहंत मंगलरूप है (२) सिद्ध मंगलरूप है (३) साधु
मंगलरूप है (४) केवल-प्ररूपित धर्म मंगलरूप है ।
३. (१) अरिहंत लोक में उत्तम है (२) सिद्ध लोक में उत्तम है
(३) साधु लोक में उत्तम है (४) केवलप्ररूपित धर्म लोक
में उत्तम है ।
४. (१) अरिहंतों की शरण लेता हूँ (२) सिद्धों की शरण लेता हूँ
(३) साधुओं की शरण लेता हूँ (४) केवल-प्ररूपित धर्म
की शरण लेता हूँ ।

१. कुलकर—

५. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात
कुलकर^३ हुए थे; यथा—गाथा—
१. मित्रदाम, २. सुदाम, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ,
५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष ।

६. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर
हुए थे, यथा—गाथा—
१. शतंजल, २. शतायु, ३. अनन्तसेन, ४. अमितसेन,
५. तर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढरथ, ९. दशरथ,
१०. शतरथ ।

२. विसे० गा० ३६२५ ।

७. जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति, तं जहा—गाहा—
मित्तवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्त, सुहमे, सुबंधू य, आगमेस्साण होक्खति ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ । सम० सु० १५८ ।
८. जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—
सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू ॥
—ठाणं० अ० १०, सु० ७६७ ।
९. जंबुद्वीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—गाहा—
विमलवाहणे, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, दढधणू, दसधणू, सयधण, पडिसुई, संमुइ त्ति ॥१॥
—सम० सु० १५८ ।
१०. विमलवाहणे णं कुलकरे णवधणुसताइ उड्डं उच्चत्तेणं हुत्था ॥
—ठाणं० अ० ६ सु० ६६६ ।
११. विमलवाहणे णं कुलकरे सत्तविधा खवा उवभोगत्ताए हव्वमार्गिच्छु, तं जहा—गाहा—
मत्तं गया य भिगा, चित्तं गा चैव हौति चित्तरसा, मणियंगं य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ ।
१२. अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइ उड्डं उच्चत्तेणं हुत्था ॥
—ठाणं० अ० ६, सु० ५१८ । सम० सु० १०६, ५ ।
१३. जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था, तं जहा—गाहा—
पढमेत्थ विमलवाहणं, चक्खुमं जसमं चउत्थमभिचंदे । तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चैव नाभी य ॥१॥
१४. एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था, तं जहा—गाहा—चंदजसा चंदकंता, मुरूव पडिख्व चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलगरइत्थीण णामाइ ॥१॥
—ठाणं० अ० ७, सु० ५५६ । सम० सु० १५७ ।
१५. तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्टभागावसेसे एत्थ णं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्या तं जहा—
७. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे, यथा—
१. मित्रवाहन, २. सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबंधु ।
८. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. सीमंकर, २. सीमंधर, ३. क्षेमंकर, ४. क्षेमंधर, ५. विमलवाहन, ६. संभूति, ७. प्रतिश्रुत, ८. दृढधनु, ९. दशधनु, १०. शतधनु ।
९. जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर होंगे, यथा—
१. विमलवाहन, २. सीमंकर ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढधनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति, १०. सुमति ।
१०. विमलवाहन कुलकर (शरीर अवगाहना की दृष्टि से) नौ सौ धनुष ऊँचे थे ।
११. विमलवाहन कुलकर के समय में सात प्रकार के वृक्ष उपभोग के लिए उपलब्ध हुए थे, यथा—
१. मत्तांगक, २. भृङ्ग, ३. चित्रांग ४. चित्ररसांग, ५. मण्यंग, ६. अनग्न, ७. कल्पवृक्ष ।
१२. अभिचन्द्र कुलकर छ सौ धनुष ऊँचे थे ।
१३. जम्बूद्वीप के भरतवर्ष में इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हो चुके हैं, यथा—
१. विमलवाहन, २. चक्षुष्मान, ३. यशस्वी, ४. अभिचंद्र, ५. प्रसेनजित, ६. मरुदेव, ७. नाभि ।
१४. इन सात कुलकरों की सात भायार्यिणी, वे इस प्रकार हैं—
१. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकांता, ३. सुरूपा, ४. प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्कांता, ६. श्रीकांता, ७. मरुदेवी ।
१५. उस समय में पश्चिम त्रिभाग में पल्योपम के आठ भाग शेष रहने पर (तीसरे आरे नुपम-द्रुपम के अन्तिम त्रिभाग की समाप्ति होने में पल्योपम का आठवां भाग मात्र समय शेष रहता है, तब) पन्द्रह कुलकर उत्पन्न हुए थे, उनके नाम ये हैं—

१. सुमई २. पडिस्तुई ३. सीमंकरे ४. सीमंधरे ५. खेमंकरे
६. खेमंधरे ७. विमलवाहणे ८. चक्षुमं ९. जसमं
१०. अभिचंदे ११. चंदाभे १२. पसेणई १३. मरुदेवे
१४. णाभी १५. उसभे ति ॥ —जंबु० व० २ सु० २८ ।

१६. सत्तविधा दंडनीति पणत्ता, तं जहा—
हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मंडलबंधे, चारए,
छविच्छेदे ॥

—ठाण० अ० ७, सु० ५५७ ।

१७. तत्थ णं सुमइ-पडिस्तुइ-सीमंकर-सीमंधर-खेमंकराणं एएंसि
पंचण्हं कुलगराणं हक्कारे नामं दंडणीई होत्या—
ते णं मणुआ हक्कारेणं दंडेणं ह्या समाणा लज्जिया
विलज्जिया वेड्ढा भीया तुसिणीया विणओणया चिट्ठं ति ।

तत्थ णं खेमंधर-विमलवाहण-चक्षुमं-जसमं-अभिचंदाणं-
एएंसि णं पंचण्हं कुलगराणं मक्कारे णामं दंडणीई होत्या—
ते णं मणुआ मक्कारेणं दंडेणं ह्या समाणा-जाव-चिट्ठं ति ।

तत्थ णं चंदाभ-पसेणइ-मरुदेव-णाभि-उसभाणं एएंसि णं
पंचण्हं कुलगराणं धिक्कारे णामं दंडणीई होत्या—
ते णं मणुआ धिक्कारेणं दंडेणं ह्या समाणा-जाव-चिट्ठं ति ॥

—जंबु० व० २ सु० २९ ।

यथा—१. सुमति, २. प्रतिश्रुति, ३. सीमंकर, ४. सीमंधर
५. क्षेमंकर, ६. क्षेमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान
९. जसम, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. प्रसेनजित,
१३. मरुदेव, १४. नाभि, १५. ऋषभ ।

१६. सात प्रकार की दंडनीति कही गई है, यथा—

१. हक्कार, २. मक्कार, ३. धिक्कार, ४. परिभाषण,
५. मंडलबंध, ६. चारक, ७. छविच्छेद ।

१७. उनमें सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमंधर, क्षेमंकर—इन
पांच कुलकरों की 'हाकार' नामक दण्ड-नीति थी ।

उस काल में मनुष्य हाकार दण्ड-नीति से शासित होने पर
लज्जित, विशेष लज्जित, कंपित भयभीत और चुप हो जाते थे
तथा विनय से नीचा मुँह करके खड़े रह जाते थे ।

उनमें क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, जसम, अभिचंद्र—
इन पांच कुलकरों की 'माकार' नामक दंडनीति थी ।

उस काल में मनुष्य माकार (मत करो) दंड से शासित होने
पर (लज्जित) यावत् खड़े रह जाते थे ।

उनमें चन्द्राभ, प्रसेनजित, मरुदेव, नाभि, ऋषभ—इन पांच
कुलकरों की 'धिक्कार' नामक दण्ड नीति थी ।

उस काल में मनुष्य धिक्कार दण्ड से शासित होने पर
(लज्जित)—यावत्—खड़े रह जाते थे ।

२. उत्तरासाढा-चरियं

कल्लाणग-नक्खत्ताइं—

१८. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसहे णं अरहा कोसलिए चउ-
उत्तरासाढे अभीइ-पंचमे होत्या, तं जहा^१—

१. उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गवभं वक्कंते,

२. उत्तरासाढाहिं जाए,

१. उसभे णं अरहा कोसलिए पंचउत्तरासाढे अभीइछट्ठे होत्या, तं जहा—

१. उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गवभं वक्कंते,

२. उत्तरासाढाहिं जाए,

३. उत्तरासाढाहिं रायाभिसेयं पत्ते,

४. उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,

५. उत्तरासाढाहिं अणंते-जाव-केवल-वर-नाणदंसणे समुप्पन्ने,

६. अभिइणा परिणिव्वुए ।

२. ऋषभ-चरित्र

कल्याणक नक्षत्र

उस काल और उस समय में (कौशलिक कौशल देश में जनमे)
अर्हत् ऋषभ के चार कल्याणक उत्तराषाढ नक्षत्र में और पांचवां
अभिजित नक्षत्र में हुआ था, यथा—

१. उत्तराषाढ नक्षत्र में च्यवन हुआ और च्यवकर गर्भ में
आये ।

२. उत्तराषाढा नक्षत्र में जन्म लिया ।

—जंबु० वक्ष० २ सु० ३२ ।

३. उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,
४. उत्तरासाढाहिं अणंते अणत्तरे निव्वाघए निरावरणे किसिणे पडिपुत्ते केवलवर-नाण-दंसणे समुप्पत्ते,
५. अभिङ्गणा परिणिव्वुए । —कप्प० सु० १६० ।

३. उत्तरापाढ नक्षत्र में मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगोकार की ।
४. उत्तरापाढ नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर अनावाध, निरावरण समग्र, प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ ।
५. अभिजित नक्षत्र में निर्वाण को प्राप्त हुए ।

गढभवकंती—

१६. णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुच्छंसि एत्थ णं उसभे णांमं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढम-केवली पढमतित्थयरे पढमधम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्ठी समुप्पज्जित्था ।^१

—जंबु० व० २ सु० ३० ।

गर्भावतरण—

१६. यहां पर नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवी की कुक्षि में प्रथम राजा, प्रथमजिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर, प्रथम धर्म-वर चातुरंत चक्रवर्ती और कौशलिक अर्हत ऋपभ समुत्पन्न हुए ।

जम्म-कल्लाणयं—

२०. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्त-बहुलस्स अट्टमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अट्टमाणा य राईदियाणं-जाव-आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोगं दारयं पयाया ।^२

—कप्प० सु० १६३ ।

जन्म कल्याणक—

२०. उस काल और उस समय में ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास में, प्रथम पक्ष में अर्थात् चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर-यावत्—आषाढा नक्षत्र के योग में स्वस्थ माताने आरोग्य पूर्वक स्वस्य कौशलिक अर्हत ऋपभ को जन्म दिया ।

अहोलोगीय-दिसाकुमारी-कय-जम्म-महिमा—

२१. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसा-कुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणोहिं, सएहिं सएहिं पासायवडैसएहिं, पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं, सत्ताहिं अणिएहिं, सत्ताहिं अणियाहिं वडैहिं सोलसएहिं आय-रक्खदेवसाहस्सीहिं अणोहिं य वडैहिं भवणवड-वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडाओ महंया हय-णट्ठ-गोय-

अधोलोकवासी दिशाकुमारियों द्वारा कृत जन्ममहोत्सव—

२१. उस काल और उस समय में अधोलोक में निवास करने वाली आठ प्रमुख दिशाकुमारियां अपने कूटों पर अपने अपने भवनों में अपने अपने प्रसादावतंसों में प्रत्येक चार हजार सामानिक देवों, चार सपरिवार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों, (सेनापतियों) सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे अनेक भवनपति वाणव्यंतर देव-देवियों से घिरी हुई सुमधुर नाट्य-गीत-वाद्य आदि की कर्णप्रिय ध्वनियों से-यावत्-

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे आसाढवहुले तस्स णं आसाढवहुलस्स चउत्थो पक्खेणं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीससागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुदीवे दीवे भारहे वासे इक्खागंभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहारवक्कंतीए-जाव-गच्चत्ताए वक्कंते ॥

—कप्प० सु० १६१ ॥

उसभे णं अरहा कोसलिए तिन्नाणोवगए होत्था तं जहा—चइस्सामि ति जाणइ-जाव-मुमिणे पासइ, तं जहा—गाहा— गय उसह-जाव-सिंहि च ।

सव्वं तहेव, नवरं सुविणपाढगा णरियि । नाभी कुलगरो वागरेइ ॥—कप्प० सु० १६२ ॥

उसभे णं अरहा कोसलिए कासवगुत्तेणं, तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—

उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिकखाचरे इ वा, पढमजिणे इ वा, पढमतित्थकरे इ वा ॥ कप्प० सु० १६४ ॥

२. तं चव-सव्वं-जाव-देवा देवीओ य वसुहारेवासं वात्तिसु सेत्तं तहेव चारगत्तोहणं, नाणुन्माणवड्ढणं, उस्सुं ककमादीयं, टिट्ठपडिपुण्णं सव्वं भाणियव्वं ॥ —कप्प० सु० १६३ ॥

वाइय-जाव-भोगभोगाङ्गं भुंजमाणीओ विहरंति, तं जहा—
गाहा-
भोगंकरा, भोगवई, सुभोगा, भोगमालिणी ।
तोयधारा, विचिन्ता य, पुष्पमाला, अणिविया ॥१॥

२२. तए णं तासिं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्टण्हं दिसाकुमारीणं महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाङ्गं चलंति ।

तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ट दिसाकुमारीओ महत्तरियाओ पत्तेयं पत्तेयं आसणाङ्गं चलियाङ्गं पासन्ति, पासिन्ता ओहं पउंजंति, पउंजिन्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अण्णमण्णं सद्दविन्ति, सद्दविन्ता, एवं वयासी—

“उप्पण्णे खलु भो ! जम्बुद्वीवे दीवे भयवं तित्थयेरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्टण्हं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेत्तए,

तं गच्छामो णं अम्हे वि भगवओ जम्मणमहिमं करेमो” त्ति कट्ठए एवं वयंति, एवं वइत्ता पत्तेयं पत्तेयं आभिओगिए देवे सद्दवेत्ति, सद्दविन्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखम्भसय-सण्णिविट्ठे लोलट्टियसालभंजिआकलिए एवं विमाणवण्णओ भाणियव्वो-जाव-जोयणवित्थिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह” त्ति ।

२३. तए णं ते आभियोगा देवा अणेगखम्भसय-सण्णिविट्ठे-जाव-पच्चप्पिणति,

तए णं ताओ अहेलोग-वत्थव्वाओ अट्ट दिसाकुमारी-महत्तरियाओ हट्ट-तुट्ट-चित्तमाणदियाओ-जाव-पायपीढाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहिन्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहं सामाणिय-साहस्सीहं चउहं महत्तरियाहं-जाव-अण्णेहं बहूहं देवेहं देवोहं य सद्दि संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाणविमाणे दुरुहंति,

भोगोपभोग भोगने में-रत थी, उनके नाम इस प्रकार हैं—
गाथार्थ—

१. भोगंकरा २. भोगवती ३. सुभोगा ४. भोगमालिनी
५. तोयधारा ६. विचित्रा ७. पुष्पमाला ८. अनिन्दिता ॥१॥

२२. उस समय उन अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिक्कुमारिकाओं के आसन चलायमान (कंपित) हुए ।

उस समय उन अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिक्कुमारिकाओं ने अपने-अपने आसन चलायमान होते हुए देखे, आसनों को कंपायमान होते देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त किया, प्रयुक्त करके अवधिज्ञान के द्वारा भगवान तीर्थंकर को देखती है, दर्शन करके परस्पर एक दूसरे को बुलाती है और बुलाकर ऐसा कहती है—
हे दिक्कुमारिकाओ ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भगवान तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं, तो भूत, भविष्य और वर्तमान काल की अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिशाकुमारियों का यह परंपरागत आचार (जीतकल्प) है कि वे भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करें ।

तो चलो, हम भी भगवान का जन्म महोत्सव करें” ऐसा कहकर प्रत्येक अपने अपने आभियोगिक (सेवक) देवों को बुलाती हैं बुलाकर इस प्रकार कहती हैं—

“हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही, जिसमें सैंकड़ों खंभे हों और उन पर ऋषी करती हुई अनेक पुतलियाँ बनी हुई हों आदि विमानों का वर्णन कहना चाहिए, यावत् जो एक योजन विस्तार वाला हो, ऐसे दिव्ययान विमान की विकुर्वणा करो, करके आज्ञा पूर्ति हो जाने की हमें सूचना दो ।

२३. उसके बाद वे अभियोगिक देव सैंकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट यावत् (पूर्वानुसार) सूचित करते हैं ।

तब वे अधोलोकवासिनी आठों प्रधान दिशाकुमारियाँ हृषित तुष्ट और चित्त में आनन्दित होकर यावत्-पादपीठिकाओं (सीड़ियों) से चढ़ती हैं चढ़कर प्रत्येक अपने अपने चार हजार सामानिक देवों, चार महत्तरिकाओं—यावत्—और दूसरे अनेक बहुत से देव-देवियों से घिरी हुई उस दिव्य विमान में बैठती हैं ।

१. अट्ट अहेलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—

गाहा—भोगंकरा भोगवई सुभोगा भोगमालिणी ॥ सुवच्छा वच्छमिन्ता य वारिसेणा बलाहगा ॥१॥

—ठाणं० अ० ८, सु० ६४३ ।

दुहहिता सव्वड्ढीए सव्वजुईए घण-मुइंग-पणव-पवाइय-
रवेण ताए उविकट्टाए—जाव—देवगईए जेणेव भगवओ
तित्थयरस्स जम्मण-णगरे जेणेव तित्थयरस्स जम्मण-भवणे
तेणेव उवागच्छन्ति,

उवागच्छत्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहि
दिव्वेहि जाणविमाणेहि तिव्वुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति,
करित्ता उत्तरपुरत्थिमे विसीभाए ईसि चउरंगुलमसंपत्ते
धरणिगतले ते दिव्वे जाणविमाणे ठव्विंति,

ठव्वित्ता पत्तेयं पत्तेयं चउरिं सामाणियसहस्सेहि—जाव—
सिद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिं जाणविमाणेहितो पच्चोरुहंति,
पच्चोरुहिता सव्वड्ढीए—जाव—दुं दुहि-निग्घोस-णाइएणं
जेणेव भगवं तित्थयरं तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति,
उवागच्छत्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिव्वुत्तो
आयाहिण-पयाहिणं करेति, करित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयल-
परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु एवं वयाती—

२४. “णमोऽस्यु ते रयणकुच्छिधारिए जगप्पईवदाईए सव्वजग-
मंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजग-जीव-वच्छलस्स हिय-
कारगमग-देसिय-चागिद्धि-विभु-पभुस्स जिणस्स णाणिस्स
णायगस्स वुहस्स बोहगस्स सव्वलोग-णाहस्स सव्वजग-
मंगलस्स-णिम्ममस्स पवरकुलसमुवभवस्स जाईए खत्तिवस्स
जं सि लोमुत्तमस्स जणणी धण्णा सि तं पुण्णा सि कयत्था सि ।

“अहं णं देवानुप्पिए ! अहेलोगवत्थव्वाओ अट्टु विसा-
कुमारोमहत्तरियाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं
करिस्सामो । तण्णं तुव्वेहिं ण भाइयव्व” ति कट्ठु उत्तर-
पुरत्थिमं विसीभागं अवककमन्ति ।

२५. अवकमिन्ता वेउट्ठियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता
संखिज्जाइं जोयणाइं डंडं णिसिरंति, तं जहा—रयणणं—
जाव—संवट्टगवाए विउव्वंति, विउट्ठित्ता तेणं सिवेणं मउ-
एणं मारुएणं अणुदुएणं भूमितलविमलकरणेणं मणहरेणं
सव्वोउय-सुरहि-कुसुम-गंधाणुवासिएणं पिण्डम-णीहारिमेणं
गंधुदुएणं तिरियं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-
भवणस्स सव्वओ समंता जोयणंपरिमण्डलं,

(यान—विमान में) बैठकर सर्वं ऋद्धि सर्वद्युति सहित एवं
डोल-मृदंग आदि वाद्यों को बजाती हुई, गाती हुई अपनी
उत्कृष्ट गति—यावत्—देवगति से जहाँ तीर्थकर भगवान
का जन्म-नगर है जहाँ तीर्थकर का जन्म-भवन है वहाँ
आती हैं,

वहाँ आकर तीर्थकर भगवान के जन्म-भवन के (चारों ओर)
उन दिव्य देव विमानों से तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा—
वाएँ से वाएँ प्रदक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा करके, उत्तर-पूर्व
दिशिभाग (ईशानकोण) में पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर अधर
दिव्य यान विमान को खड़ा करती हैं (ठहराती हैं)

(विमान को) ठहराकर प्रत्येक अपने चार हजार सामानिक
देवों से यावत्—(संपूर्ण पूर्वकथन)संपरिवृत्त दिव्ययान विमान
से उतरती हैं, उतरकर सर्वं ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभि-निघोप-
निनाद से दिशाओं को (गुंजायमान करती हुई) जहाँ भगवान
तीर्थकर और तीर्थकर की माता है वहाँ आकर भगवान
तीर्थकर और तीर्थकर माता की तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा
करती हैं । आदक्षिण प्रदक्षिणा करके प्रत्येक अपने अपने हावों
की अंजलि बनाकर मस्तक पर घुमाकर और नमस्कार
करके इस प्रकार कहने लगीं—

२४. हे रत्नकुक्षिधारिणी ! जगत को प्रदीपदायिनी ! आपको
नमस्कार है, समस्त जगत को मंगलरूप, मुक्ताभिलाषियों को
नेत्र के समान, समस्त जगत् के जीवों के वत्सल, हितकारी,
मार्गदर्शक, वाग्ऋद्धि-विभु, प्रभु, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध,
बोधक, संपूर्ण लोक के नाथ, समस्त जगत के लिए मंगलरूप,
निर्मल, उत्तमकुल में उत्पन्न, जाति से क्षत्रिय, एवं लोको-
त्तम पुत्र की जननी—आप धन्य हैं ! आप पुण्यशालिनी
हैं ! कृतार्थ हैं !

हे देवानुप्रिये ! हम अधोलोकवासिनी आठ प्रधान दिशा-
कुमारियाँ भगवान तीर्थकर का जन्म महोत्सव करेंगीं ।
अतएव आप भयभीत न हों, ऐसा कहकर वे ईशानकोण में
गयीं ।

२५. वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्रघात किया समुद्रघात करके संग्राम
योजन लंबा दंड निकालती है, यथा वह दण्ड रत्नों का था—
यावत्—संवर्तक वायु की विकुर्वणा की । वह वायु निव
(कल्याणकर) मृदु, अनुदधत—नीचे की ओर चलने वाला
भूमितल को निर्मल करने वाला, मनोहर, सभी ऋतुओं के पुष्पों
की सुरभि से सुगन्धित, घनीभूत गंध से सर्वत्र सुगन्ध फैलाने
वाला एवं तिरछा बहते हुए (चलते हुए) भगवान तीर्थकर के
जन्म भवन के चारों ओर योजन पर्यन्त मफाई करने वाला था ।

से जहा णामए—कम्मगरदारए सिया—जाव—तहेव जं तत्थ तणं वा, पत्तं वा, कट्टं वा, कयवरं वा, असुइमचोखं पूइयं दुब्भि-गंधं तं सख्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेंति, एडित्ता जेणेव भगवं तित्थयरं तित्थयरमाया य तेणं उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयर-मायाए य अट्टरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११२ ।

उड्डलोगीय-दिसाकुमारी-कय-जम्म-महिमा—

२६. तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्डलोगवत्थव्वाओ अट्टु दिसा-कुमारीओ महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडेंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्तीहिं एवं तं चेव पुच्चवणियं—जाव—विहरंति तं जहा—गाहा—

मेघंकरा, मेघवई, सुमेघा, मेघमालिणी ।

सुवच्छा, वच्छमित्ता य, वारिसेणा, बलाहगा^१ ॥१॥

२७. तए णं तासिं उड्डलोगवत्थव्वाणं अट्टुण्हं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलन्ति, एवं तं चेव पुच्चवणियं भाणियव्वं—जाव—अम्हे णं देवाणुत्पिए ! उड्डलोगवत्थव्वाओ अट्टु दिसाकुमारीमहत्तरियाओ जेणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता—जाव—अवभवह्लए विउव्वन्ति, विउव्वित्ता—जाव—तं णिहयरयं णट्टरयं भट्टरयं पसंतरयं उवसंतरयं करंति, करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति ।

एवं पुप्फवह्लंसि पुप्फवासं वासंति, वासित्ता—जाव—कालागरूपवर—जाव—सुरवराभिगमणजोगं करंति, करित्ता जेणेव भयवं तित्थयरं तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता—जाव—आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११३ ।

जिस प्रकार एक कर्मकरदारक—सेवकपुत्र हो—यावत्—उसी तरह उस वायु ने वहाँ जो तृण, पत्ते, काष्ठ तथा कचरा एवं अशुचि, अपवित्र, सड़ा-गला पदार्थ था उस सब को उड़ाकर एकान्त स्थान में डाल दिया (फेंक दिया), उसको डालकर वे दिशाकुमारियाँ जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थीं वहाँ आईं, वहाँ आकर भगवान तीर्थंकर और माता से न तो अति दूर और न अति पास अपने उचित स्थान पर गीत गाती हुई खड़ी हो गई ।

ऊर्ध्वलोकवासी दिशाकुमारियों कृत जन्ममहोत्सव—

२६. उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ प्रधान दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों (पर्वत-शिखरों) पर अपने-अपने भवनों में अपने-अपने प्रासादावतंसकों में प्रत्येक अपने-अपने चार हजार, सामानिक देवों इत्यादि पूर्व में किये गये वर्णनानुरूप रहती है, उनके नाम इस प्रकार हैं—गाया—

१ मेघंकरा २ मेघवती ३ सुमेघा ४ मेघमालिनी

५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ वारिपेणा ८ बलाहका ।

२७. उस समय उन ऊर्ध्वलोकवासिनी आठ मुख्य दिशाकुमारियों के आसन चलायमान हुए । यहाँ भी पूर्वोक्त वर्णन कहना चाहिए—यावत्—हे देवानुप्रिये ! हम ऊर्ध्वलोकवासिनी आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ हैं, हम भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेंगी, इसलिये आप भयभीत न हों, इस प्रकार कहकर वे ईशानकोण में चली गई । वहाँ जाकर—यावत्—उन्होंने आकाश में मेघों की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके यावत्—रज-धूलि को बिठा दिया, धूलि को नष्ट कर दिया, धूलि को दूर कर दिया, प्रशांत-उपशांत कर दिया, ऐसा करने से धूलि शीघ्र ही शांत हो जाती है ।

इसी प्रकार पुष्प वर्षा करने वाले बादलों से पुष्पों की वर्षा की । पुष्प वर्षा करके यावत् काले अगरु की उत्तम धूप द्वारा सुगन्धित करके—यावत्—उत्तम देवों के आगमन योग्य बना देती है, बनाकर जहाँ भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थीं, वहाँ आईं, वहाँ आकर—यावत्—मंद-मंद मधुर स्वर में गीत गाती हुई खड़ी हो गई ।

१ अट्ट उड्डलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहा—

मेघंकरा मेघवई सुमेघा मेघमालिणी । तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अर्णदिया ॥१॥

रुचकवासि-दिसाकुमारो-कय-जम्म-महिमा—

रुचकवासिनी दिशाकुमारियों-कृत जन्म-महिमा—

२८. तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिम-रुचग-वत्थव्वाओ अट्टु
दिसाकुमारोमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडोहिं तहेव—
जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

२८. उस काल उस समय में पूर्व दिग्वर्ती रुचक पवंतवासिनी
आठ दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर पूर्ववत्—यावत्
—रहती हैं। उनके नाम यह हैं—गाथा—

णंदुत्तरा य, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा ।
विजया य, वेजयंती, जयंती, अपराजिया ॥१॥

१ नन्दोत्तरा २ नन्दा ३ आनन्दा ४ नन्दिवर्धना ।
५ विजया ६ वैजयन्ती ७ जयन्ती ८ अपराजिता ।

सेसं तं चेव—जाव—तुव्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु
भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पुरित्थिमेणं आयंस-
हत्थ-गयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

शेष पूर्ववत्—यावत्—आप डरें नहीं, कहकर भगवान तीर्थकर
एवं तीर्थकर-माता के सामने (पूर्व तरफ) हाथ में दर्पण
लेकर मंद-मंद स्वर में मंगल गीत गाती हुई खड़ी हो गई ।

२९. तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिण-रुचग-वत्थव्वाओ अट्टु दिसा-
कुमारोमहत्तरियाओ तहेव—जाव—विहरंति, तं जहा—
गाहा—

२९. उस काल उस समय दक्षिण रुचकवासिनी आठ दिशा-
कुमारियाँ पूर्वोक्त वर्णनानुसार—यावत्—रहती हैं। जिनके
नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

समाहारा, सुप्पइण्णा, सुप्पबुद्धा, जसोहरा,
लच्छिमई, सेसवई, चित्तगुत्ता, वसुन्धरा ॥१॥

१ समाहारा २ सुप्रतिज्ञा ३ सुप्रबुद्धा ४ यशोधरा
५ लक्ष्मीमति ६ शेषवती ७ चित्रगुप्ता ८ वसुन्धरा ।

तहेव—जाव—तुव्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ
तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य दाहिणेणं भिगारहत्थगयाओ
आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

शेष पूर्ववत्—यावत्—आप भयभीत न हों, कहकर भगवान
तीर्थकर और तीर्थकर-माता की दक्षिण तरफ हाथ में झारी
लेकर गीत गाती हुई खड़ी होती हैं ।

३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिम-रुचग-वत्थव्वाओ अट्टु
दिसाकुमारोमहत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडोहिं—जाव—
विहरंति, तं जहा—गाहा—

३०. उस काल उस समय में पश्चिम दिशावर्ती रुचक पवंत पर
रहनेवाली आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों
(पवंत-शिखर) पर—यावत्—रहती हैं। उनके नाम इस
प्रकार हैं—गाथा—

इलादेवी, सुरादेवी, पुहवी, पउमावई ।
एगणासा, णवमिया, भद्दा, सीया य अट्टुमा^१ ॥१॥

१ इलादेवी २ सुरादेवी ३ पृथ्वी ४ पद्मावती ।
५ एकनासा ६ नवलिका ७ भद्रा और ८ सीता ।

सेसं तहेव—जाव—तुव्भाहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु—
जाव—भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य पच्चत्थिमेणं
तालियंठहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ
चिट्ठंति ।

शेष पूर्ववत् (कथन)—यावत्—आप डरें नहीं, यह कहकर
भगवान तीर्थकर और तीर्थकर की माता के पीछे हाथ में
पंखा लेकर गीत गाती हुई खड़ी हो जाती हैं ।

३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरित्तल-रुचग-वत्थव्वाओ—
जाव—विहरंति, तं जहा—
गाहा—

३१. उस काल उस समय में उत्तरदिशा के रुचक पवंत पर
निवास करने वाली आठ मुख्य दिशाकुमारियाँ—यावत्—
रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

अलंबुसा, मिस्सकेसी, पुण्डरीया य वारुणी ।
हासा, सब्बप्पभा, चेव सिरि, हिरि, चेव उत्तरओ^२ ॥१॥

१ अलंबुसा २ मिश्रकेशी ३ पुण्डरीका ४ वारुणी ।
५ हासा ६ सर्वप्रभा ७ ह्री और ८ श्री ।

१. ठाणं० अ० ८, सु० ६४३ ।

२. तत्थ णं अट्ठदिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ—जाव—पल्लिवोवमट्ठिड्डियाओ परिवसंति, तं जहा—गाहा—
अलंबुसा मितकेसी पोंडरि गीयवारुणी । आसा य सब्बगा चेव, सिरि हिरी चेव उत्तरओ ॥१॥

तहेव —जाव—वंदिता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए
य उत्तरेण चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमा-
णीओ चिट्ठंति ।

३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसि रयग-वत्थव्वाओ चत्तारि
दिसाकुमारीमहत्तरियाओ—जाव—विहरंति, तं जहा—
गाहा—

चित्ता य, चित्तकणगा, सतेरा, य सोदामिणी^१ ।

तहेव—जाव—ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स
तित्थयरमाऊए य चउसु विदिसासु दीविया-हत्थगयाओ
आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति त्ति ।

मज्झिम-रयगवासि-दिसाकुमारी-महत्तरिया-कय-णाभि-
णालकत्तणं—

३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिम-रयग-वत्थव्वाओ चत्तारि
दिसाकुमारीमहत्तरियाओ सएहं सएहं कूडेहं तहेव—
जाव—विहरंति, तं जहा—गाहा—

रूया, रूआसिया, चेव, सुरूआ, रयगावई^२ ।

तहेव—जाव—तुवभाहं ण भाइयव्वं ति कट्टु भगवओ
तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभि-णालं कप्पन्ति, कप्पेत्ता
वियरगं खणन्ति खणित्ता वियरगे णाभि णिहणंति, णिह-
णित्ता रयणाण य, वइराण य पूरंति, पुरित्ता हरियालियाए
पेढं बंधंति, बंधित्ता तिदिंसि तओ कयलीहरए विउव्वंति ।

तए णं तेसि कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ
चाउस्सालए विउव्वंति,

तए णं तेसि चाउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे
विउव्वंति,

शेष पूर्व की तरह—यावत्—भगवान तीर्थकर और तीर्थकर
माता के समीप उत्तर दिशा में हाथ में चामर लेकर, मन्द-
मन्द मधुर स्वर में गीत गाती हुई खड़ी हो गई ।

३२. उस काल उस समय में विदिशाओं के रुचक पर्वत पर रहने
वाली चार प्रमुख दिशाकुमारियाँ—यावत्—रहती हैं, उनके
नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ चित्ता २ चित्रकनका ३ शेतारा ४ सीदामिनी ।

शेष वर्णन पूर्वकथानुसार समझना चाहिये—यावत्—भयभीत
न हों, ऐसा कहकर भगवान तीर्थकर और तीर्थकर-माता के
समीप चार विदिशाओं में दीपक हाथ में लेकर सुमधुर स्वर
में गीत गाती हुई खड़ी हो जाती हैं ।

मध्यवर्ती रुचकवासी दिशाकुमारी-महत्तरिकाओं-कृत
नाभिनाल-कर्तन—

३३. उस काल उस समय में मध्य रुचक पर्वत पर रहने वाली
चार महत्तरा दिशाकुमारियाँ अपने-अपने कूटों पर पूर्ववत्
—यावत्—रहती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—गाथा—

१ रूपा, २ रूपाश्रिता, ३ सुरूपा, और ४ रूपकावती ।

शेष पहले कहे अनुसार—यावत्—आप भयभीत न हों, ऐसा
कहकर तीर्थकर भगवान (बाल) की नाभिनाल को चार
अंगुल छोड़कर काटती हैं । काटकर गड्ढा खोदती हैं,
खोदकर खड्डे में नाभिनाल को दबा देती हैं, दबाकर उस
गड्ढे को रत्नों से और वज्ररत्नों से पूर देती हैं, पूर कर
उस पर हरी-हरी दूर्वा से पीठिका बनाती हैं, पीठिका
बनाकर उसके तीन दिशाओं में एक-एक कदलीगूह की
विकुर्वणा करती हैं ।

अनन्तर उन प्रत्येक कदलीगूहों के ठीक मध्य भाग में वे
चतुःशालाओं की विकुर्वणा करती हैं ।

तदनन्तर उन चतुःशालाओं के बीचोबीच सिंहासन
बनाती हैं ।

१. इमाइ चत्तारि नामाइ ठाणगे चउत्थे ठाणे पढमे उद्देसे विज्जुकुमारिमहत्तरियाणं संति,

चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पणत्ताओ तं जहा—१ चित्ता, २ चित्तकणगा, ३ सएरा, ४ सोयाम्पणी ॥

—ठाणं० अ० ४, उ० १, सु० २५६ ॥

२ छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पणत्ताओ, तं जहा—१ रूवा, २ रूवसा, ३ सुरूवा, ४ रूववई, ५ रूवकंता, ६ रूवप्पभा ॥

—ठाणं० अ० ६, सु० ५०७ ॥

—ठाणं० अ० ६, सु० ५०७ ॥

तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते ।
सव्वो वण्णगो भाणियव्वो ॥ —जंबु० व० ५, सु० ११४ ।

दिसाकुमारी-कथ-माया-पुत्ताणं मज्जणाइ-किच्चं—

३४. तए णं ताओ मज्ज-रुयग-वत्यव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तराओ जेणेव भयवं तित्थयरं तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता भगवं तित्थयरं करयल-संपुडेणं गिण्हन्ति । तित्थयरमायरं च वाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हत्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छत्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता सयपाग-सहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगित्ता सुर-भिणा गंधवट्टएणं, उव्वट्टेंति, उव्वट्टित्ता भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं तित्थयरमायरं च वाहासु गिण्हन्ति, गिण्हत्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए, जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति

णिसियावेत्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति, तं जहा—
१ गन्धोदएणं, २ पुष्पोदएणं, ३ सुद्धोदएणं ।

मज्जावित्ता सब्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च वाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हत्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छत्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता आमिओगे देवे सद्दावित्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवन्ताओ वासहर-पव्वयाओ गोत्तोसचंदणकट्ठाइं साहरह ।’

तए णं ते आभिओगा देवा ताहिं मज्जरुयगवत्यव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारीमहत्तरियाहिं एवं वुत्ता तमाणा हट्ट-तुट्ट—जाव—विणएणं वयणं पडिच्छन्ति, पडिच्छत्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोत्तोसचंदणकट्ठाइं साहरन्ति ।

इन सिंहासनों का जो वर्ण-गंध बताया है, वह सब वर्णन पहले कहे हुए वर्णन के अनुसार कहना चाहिये ।

दिशाकुमारियों कृत माता-पुत्र के स्नानादि कार्य—

३४. उसके पश्चात् वे मध्य रुचक पर्वतवासिनी चारों महत्तरा दिशाकुमारियाँ जहाँ भगवान तीर्थकर एवं तीर्थकर की माता थीं वहाँ आईं, वहाँ आकर भगवान तीर्थकर को करसंपुट (हथेलियों) में लेती हैं और तीर्थकर की माता को हाथ का सहारा देकर उठाती हैं । सहारा देकर जहाँ दक्षिण दिशावर्ती कदली मंडप है उसमें जहाँ चतुःशाला है और उसमें भी जहाँ सिंहासन है, वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान तीर्थकर और तीर्थकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं, बैठाकर शतपाक-महस्रपाक तेल से उनका अगमर्दन (मालिश) करती हैं, मालिश करके मुंगंधित उवटन (पीठी) से उवटन करती हैं, उवटन करके भगवान तीर्थकर को हथेलियों में लेती हैं और तीर्थकर की माता को हाथ का सहारा देकर जहाँ पूर्व दिशावर्ती कदली मंडप है । उसमें जहाँ चतुःशाला है और चतुःशाला में जहाँ सिंहासन है, वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान तीर्थकर तथा तीर्थकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं ।

बैठाकर तीन प्रकार के जल जैसे—१ गंधोदक (मुंगंधित जल), २ पुष्पोदक (पुष्पमिश्रित जल), ३ सुद्ध जल से स्नान कराती हैं ।

स्नान कराके सभी प्रकार के आभूषण-अलंकारों से विभूषित (श्रृंगार) करती हैं, विभूषित करके भगवान तीर्थकर को हथेलियों में लेती हैं और तीर्थकर की माता की वाहें पकड़ती हैं, वाजुओं को पकड़कर जहाँ उत्तरदिशावर्ती कदलीमंडप है, जहाँ चतुःशाला है और उनमें भी जहाँ सिंहासन है वहाँ आती हैं, वहाँ आकर भगवान तीर्थकर और तीर्थकर की माता को सिंहासन पर बैठाती हैं, सिंहासन पर उन्हें बैठाकर आभियोगिक देवों को बुलाती हैं और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहती हैं—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही धुद्र हिमवन्त नामक पर्वत पर्वत से गोशीर्ष चंदन काष्ठ लेकर आओ ।’

तदनन्तर वे आभियोगिक देव उन मध्यवर्ती कयल पर्वत-वासिनी चार प्रधान दिशाकुमारियों की आज्ञा सुनकर हर्षित और नंतुष्ट हुए—यावत्—विनयपूर्वक आज्ञा की स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके शीघ्र ही धुद्र हिमवन्त नामक पर्वत से सर्व गोशीर्ष चंदन काष्ठ की लेकर आते हैं ।

तए णं ताओ मज्झम-स्यग-वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सरगं करेन्ति, करित्ता अरणि घडेंति घडित्ता सरएणं अरणि महिति महित्ता अग्गि पाडेंति, पाडित्ता अग्गि संधुखंति, संधुखित्ता गोसीसचन्दणकट्टे पविखवन्ति, पविखवित्ता अग्गि उज्जालंति, उज्जालित्ता, समिहाकट्ठाइं पविखवन्ति, पविखवित्ता, अग्गिहोमं, करेन्ति, करित्ता भूइकम्मं,^१ करेन्ति, करित्ता रक्खा^२-पोट्टलियं^३ बंधन्ति, बंधित्ता णाणा-मणि-रयण-भत्तिचित्ते डुविहे पाहाणवट्टणे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्ठियावन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए पव्वयाउए ।

३५. तए णं ताओ मज्झम-स्यग-वत्थव्वाओ चत्तारिदिसाकुमारी-महत्तरियाओ भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं तिथ्यरमायरं च वाहाहिं गिण्हन्ति, 'गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता तित्थ-यरमायरं सयणिज्जंसि णिसीयावन्ति, णिसीयावित्ता भयवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति त्ति ॥

—जंबु व० ५, सु० ११४ ।

देविन्द्र-सकस्स तित्थयर-जम्मनगरे गमणं—

३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सकके णामं देविदे देवराया वज्ज-पाणी पुरंवेरे सतवकतू सहस्सवसे मघवं पागसासणे दाहिण-ड्डलोगाहिवई, वत्तीसविमाणवासासय-सहस्साहिवई ऐरावण-वाहणे सुरिदे अरयंवरवत्थधरे आलइय-मालमउडे णवहेम-चारु-चित्त-चंचलकुण्डल-विलिहिज्जमाणगंडे

इसके पश्चात् वे चारों मध्य रुचक पर्वतवासिनी प्रधान दिशाकुमारियाँ शरक (अग्नि को उत्पन्न करने वाला काष्ठ-विशेष—चकमक) तैयार करती हैं, तैयार करके अग्नि से उसे घिसती हैं, संयोजित करती हैं, शरक और अग्नि की रगड़ से आग की चिनगारी पैदा करती हैं, अग्नि की चिनगारी पैदा करके धौंकती हैं, धौंककर उसमें गोशीर्ष चन्दनकाष्ठ डालती हैं, काष्ठ डालकर अग्नि को प्रज्वलित करती हैं, प्रज्वलित करके समिधा काष्ठों^४ को डालती हैं, समिधाकाष्ठों का प्रक्षेप करके अग्निहोम करती हैं, अग्निहोम करके भूतिकर्म (राख) करती हैं, भूतिकर्म करके उसकी रक्षा-पोटली (तावीज) बनाकर बाँधती हैं, बाँधने के अनन्तर अनेक प्रकार की मणि-रत्नों से चित्र-विचित्र दो गोल वटकियों (गोलियों) को हाथ में लेकर भगवान् तीर्थकर के कानों के पास ले जाकर टिक-टिक ध्वनि करके 'हे भगवन् ! आप पर्वत के समान आयु वाले हों । पर्वत के समान सुदीर्घजीवी हों'—आशीर्वाद दिया ।

३५. इसके बाद ये चारों मुख्य दिशाकुमारियाँ भगवान् तीर्थकर को करसंपुट में लेकर और तीर्थकर-माता की वाजुओं को पकड़कर जहाँ तीर्थकर भगवान् का जन्म-भवन है, वहाँ आती हैं, आकर तीर्थकर की माता को बैठा देती हैं । बैठाकर भगवान् तीर्थकर को माता के पास सुलाकर मंगल गीत गाती हुई खड़ी हो गई ।

देवेन्द्र शक्र का तीर्थकर के जन्म-नगर में गमन—

३६. उस काल उस समय में वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, शक्र^५ नामक देवेन्द्र देवराज जो दक्षिणार्धलोक का अधिपति हैं । वत्तीस लाख विमानों का स्वामी है, ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, सुरेन्द्र है, आकाशवत् निर्मल स्वच्छ श्वेत वस्त्रों को जिसने धारण किया है, झूमकों वाले मुकुट से जिसका मस्तक शोभित हो रहा है, हेम (दीप्तमान) सुवर्ण से बने हुए सुन्दर, चित्त के समान चंचल और गालों को स्पर्श करने वाले कुण्डल कानों में शोभित हो रहे हैं,

१ जेण कम्मेण कट्ठाइं भस्सरुवाइं भवन्ति तं तारिमं ।

२ भस्सेति वा भप्पेति वा भूईति वा रक्खाति वा एगट्ठा ।

३ जीयंति काऊण बंधिज्जंती भस्सपोट्टिलिया तं ।

४ यज्ञ, होम आदि के उपयोग में आने वाली छोटी-छोटी लकड़ियाँ ।

५ इन्द्र के ये लोक प्रतिष्ठ सात नाम हैं ।

मासुरबोदो पलम्बवणमाले महिड् डोए महज्जुईए महाबले
महापसे महाणुनागे महासोक्खे सोहम्मकप्पे सोहम्मवाडित्तए
विमाणे सभाए सुहम्माए तक्कंसि सोहासणंसि—

जिसका शरीर कांतिमान है, जिसके गले में मालाएँ लटक रही हैं, जो अतिशय वैभवशाली कांतिमान, बलिष्ठ यज्ञस्त्री, सोभाग्यशाली, सुख संपन्न है, जो नौघर्मकल्प में सोधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मा नामक सभा में शक्र नाम के निहासन पर बैठता है।

से णं तत्थ वत्तोसाए विमाणावात्सयसाहस्तीणं, चउरासीए
सामाणियसाहस्तीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं
लोगपालाणं अट्टण्हं अगमहिस्तीणं, सपरिवाराणं तिण्हं परि-
साणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिर्वईणं, चउण्हं
चउरासीणं आयरक्ख-देव-साहस्तीणं, अण्णोसि च बहूणं
सोहम्मकप्प-वासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं
सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगतं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारे-
माणे पालेमाणे महया ह्य-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-त्तल-
ताल-त्तुडिय-घण-मुड्ग-पडु-पडह-वाइय-रवेणं दिव्वाइं भोग-
भोगाइं धुंजमाणे विहरइ ।

ऐसा वह शक्र वत्तीस लाख विमानवासियों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रयस्त्रिंशक देवों, चार लोकरूपानों, आठ सपरिवार पटरानियों, तीन परिपदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, चतुर्गुणित चौरासी हजार (२४००० × ४ = ३३६०००) आत्मरक्षक देवों का तथा और भी अनेक वैमानिक देव-देवियों का अधिपति, अग्नेसर (प्रमुख), स्वामी, भर्ता, महत्तर, आज्ञादाता, सेनापति है, उनका पालन-पोषण एवं शासनकर्ता है, सुमधुर नृत्य, गीत, वाद्य, जीजा, तल, ताल, त्रुटित, मृदंग, डोल, नगाड़ों आदि की ध्वनिपूर्वक दिव्य भोगोपभोगों को भोगने में निमग्न था।

३७ तए णं तत्स सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो आसणं चलइ ।

३७. उस समय उस देवेन्द्र देवराज शक्र का आसन कंवाय-मान होता है ।

तए णं से सक्के—जाव—आसणं चलयं पासइ, पासित्ता
ओहि पडंजइ, पडंजित्ता भगवं तित्तययरं ओहिणा आभोईई,
आभोइत्ता हट्ट-तुट्ट-चित्ते आणंदिए पोइमणे परमसोम-
णस्सिए हरिसवसविसव्पमाणहियए धाराहय-कयंब-कुसुम-
चंचुमालइय-ऊसविय-रोमकूवे वियसिय-वर-कमल-णयण-
वयणे पयलियवरकडग-त्तुडिय-केऊर-मउडे, कुण्डलहार-विरा-
यंत वच्छे, पालम्ब-पलम्ब-माण-घोलंत-भूसणधरे ससंभमं
तुरियं चवलं सुरिदे सोहासणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता,
पायपीडाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिक्का वेरुलिय-वरिड्ड-रिड्ड-
अंजण-णिउ-णोविय-मिसिमिसित्त-मणि-रयण-मंडियाओ पाउ-
आओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंग करेइ,
करित्ता अंजलि-मउयिग्गहरे तित्तययारामिमुहे सत्तट्ट
पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेई, अंचित्ता
दाहिणं जाणुं धरणीयलंसि साहट्टु

उस समय, वह शक्र—यावत्—आसन को चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान का प्रयोग करता है, प्रयुक्त करके भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान (दर्शन) द्वारा देखता है, दर्शन करके हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, प्रसन्नमन बाना होता है, हर्षातिरेक से उसका हृदय उछलने लगता है, मेघवर्षा होने पर जैसे कदम्ब पुष्प ऊपर की ओर मुझ वाले (विकस्वर) हो जाते हैं, वैसे ही उसके रोम-रोम विरलित होकर ऊर्ध्वमुखी हो गये, मुन्दर कमल जैसे मेन और मुख विकसित हो उठे, शरीर की विरलन से पहले हुए थोड़े कटक-केयूर, त्रुटित (वाजूवंद) मुकुट चंचल हो उठे, अनेक वक्षस्वलय पर हार और कानों में कुण्डल शोभित हो रहे हैं और लटकते हुए झूमकों से गले में पहने हुए आभूषण-हार आदि टकरा रहे हैं, ऐसा वह देवेन्द्र देवराज शक्र उरुमृता-पूर्वक चपलता से अपने निहासन से गड़ा हो जाता है, धके होकर पादपीठ से नीचे उतरता है, उतरकर समसमाने वैदूर्य-वरिष्ट-रिष्ट-अंजन रत्न विद्योयों से घबिल पादुकाओं को उतारता है, उतारकर ओढ़े हुए उत्तरीय पर्य (दुपट्टा) का उत्तरासंग बनाकर दोनों हाथों की अंबलि बनाकर तीर्थंकर की अभिमुख दिशा में मान-आठ टग भरें, उन भरकर बाये घुटने को मोड़कर ऊपर उठाया और दाहिने घुटने को बर्नान पर टिकाकर

तिवधुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता ईसि
पच्चुण्णमइ, पक्खुण्णमित्ताकडगतुडियथंभियाओ) भुयाओ
साहरइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए
अंजिल कट्टु एवं वयासी—

३८ “णमोऽत्थु णं अरहन्ताणं, भगवन्ताणं, आइगराणं तित्थ-
यराणं सयंसंबुद्धाणं,

पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवर-
गन्धहत्थीणं,

लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोग-
पज्जोयगराणं,

अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं,
बोहिदयाणं,

धम्मदयाणं धम्मसदेसयाणं धम्मणाथगाणं धम्मसारहीणं
धम्मवरचाउरन्तच्चक्खवट्टीणं

दीवो ताणं सरणं-गई-पइट्ठा अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-
धराणं वियट्टुउमाणं,

जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं
मुत्ताणं मोयगाणं, सव्वण्णुणं सव्वदरिसीणं,

सिवभयलभरुयमणन्तमक्खयमव्वावाहमपुणरावित्ति सिद्धिग-
इणामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जियभयाणं ।

णमोऽत्थु णं भगवओ तित्थगरस्स आइगरस्स-जाव-
संपाविउकामस्स ।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भयवं !
तत्थगए इहगयं”

ति कट्टु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता सीहास-
णवरंसि पुरत्याभिमुहे सण्णित्तणे ।

३९ तएणं तस्स सक्कस्स देविदस्स देवरण्णो य अवमेयाह्वे—
जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था ।

उप्पण्णे खत्तुमो ! जंबुद्वीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जोयमेय
तोप पच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविदाणं देव राईणं
तित्थयराणं जन्मणमहिमं करेत्तए ।

तीन बार मस्तक को नमाकरधरती पर रखता है, रखकर
सहज ऊँचा होता है, ऊँचा होकर कटक और त्रुटित से
स्तम्भित अपनी भुजाओं को संभालकर फिर हाथों की अंजलि
बनाई और मस्तक पर घुमाकर इस प्रकार कहता है—

३८. नमस्कार हो अरिहंत भगवन्तों को, धर्म के आदि संस्थापक
को, तीर्थकर को, स्वयंसंबुद्ध को,

पुरुषोत्तम को, पुरुषसिंह को, पुरुषवर पुण्डरीक (कमल) को,
गंधहस्तीवत् पुरुषों में उत्तम को,

लोकोत्तम को, लोक के नाथ को, लोकहितकारी को, लोक-
प्रदीप को, लोकप्रद्योतक को,

अभयदाता को, दृष्टिदाता को, मार्गदर्शक को, शरणदाता को,
जीवनदाता को, ज्ञान (बोधि) दाता को,

धर्मदाता को, धर्मोपदेशक को, धर्मनायक को, धर्मसारथी
को, सार्वभौम धर्मचक्रवर्ती को ।

जो दीपक रूप है, जो त्राणरूप है, शरणागत को आश्रयरूप
है, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले हैं,
छद्मों (घातिकर्मों) का क्षय करने वाले हैं,

जिन है, दूसरों को जीतने का उपाय बताने वाले हैं, स्वयं संसार
सागर से तिरनेवाले—पार होने वाले हैं और दूसरों को
भी पार कराने वाले हैं, बुद्ध हैं, बोधक हैं, मुक्त हैं, मुक्त
कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, तथा—

जो शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्यावाध, अपुनरा-
वृत्ति वाली (पुनः जन्म न धारण करनेरूप) सिद्धगति
नामक स्थान को प्राप्त करने वाले हैं, ऐसे जीतभय (भय-
विजेता जिन) को नमस्कार है ।

इसीप्रकार तीर्थकर भगवान को, आद्य धर्मसंस्थापक को
—यावत्—(मोक्ष) प्राप्त करने के आकांक्षीको नमस्कार है ।

यहाँ रहा हुआ मैं तत्र विराजित भगवान् तीर्थकर की वन्दना
करता हूँ; वहाँ विराजमान हे भगवन् ! यहाँ रहे हुए
(अवस्थित विद्यमान) मुझे देखें ।

इस प्रकार कहकर वह वन्दन करता है, नमस्कार करता
है, वन्दना नमस्कार करके सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर
मुख करके बैठ गया ।

३९. तत्पश्चात् उस देवेन्द्र देवराज शक्र के मन में इस प्रकार
का—वाक्य— संकल्प उत्पन्न होता है—

अज्ञो जम्बूद्वीप में भगवान तीर्थकर उत्पन्न हुए हैं, तो भूत
भावेष्य और वर्तमान काल के देवेन्द्र देवराज शक्र का ऐसा
परम्परागत आचार है कि तीर्थकर का जन्म महोत्सव करें,

तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमि त्ति कट्टु एवं संपेहेई, संपेहिता हरिणेगमेसि पायत्ताणीयाहिवई देवं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहन्माए मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुरयर-सद्दं जोयणपरिमण्डलं सुघोसं नूसरं घटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देषं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—

“आणवेइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्वीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करित्तए, तं तुव्भे वि णं देवाणु-प्पिया ! सत्त्विड्डीए सत्त्वजुईए सत्त्ववलेणं सत्त्वसमुदएणं सत्त्वायरेणं सत्त्वविभूईए सत्त्वविभूसाए सत्त्वसंभमेणं सत्त्वणा-डएहिं सत्त्वोवरोहेहिं सत्त्व-पुक्क-गंध-मल्लालंकार-विभूसाए सत्त्व-दिव्व-नुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्डीए जाव रवेणं णियय-परियाल-संपरिवुडा सयाइं सयाइं जाणविमाण-वाहणाइं दुरुद्धा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स-जाव-अंतियं पाउडभवह ।”

४०. तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं देवि-देणं देवरण्णा -जाव- एवं वुत्ते समाणे हट्ठ तुट्ठ -जाव- एवं देवो त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणिता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णे अंतियाओ पडिणिकखमइ पडिणिकखमित्ता जेणेव सभाए सुहन्माए मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुरयरसद्दा जोयण-परिमण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता तं मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुरयर-सद्दं जोयण-परि-मण्डलं सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ ।

तए णं तोसे मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुरयर-सद्दाए जोयण-परिमण्डलाए सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए सोहन्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं वत्तीस-विमाणायास-सयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं वत्तीसं घण्टा-सय-सहस्साइं जमगतमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति ।

तए णं सोहन्मे कप्पे पासाय-विमाण-णिकखुटावडिय-सद्द-समुड्ठिय-घण्टा-पडिसुय-सय-सहस्संतकुत्ते जाए यावि होत्था इति ।

इसलिये मैं भी भगवान् तीर्थंकर की जन्म-महिमा कहूँ, इस प्रकार का विचार करता है, विचार करके पदाति-सेना के अधिपति हरिणैगमेपी नामक देव को बुनाता है, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

“हे देवानुप्रिय ! नुधर्मा सभा में जो मेघ नमूह की गर्जना सदृश गम्भीर और मुमधुर ध्वनि करने वाली, एक योजन परिधि वाली सुन्दर स्वर वाली नुघोपा नामक घंटा है, उसे तीन बार बजा-बजाकर उच्च स्वर में घोषणा करने हुए तुम इस प्रकार आज्ञा प्रसारित करो—

‘देवेन्द्र देवराज शक्र यह आज्ञा देते हैं कि देवेन्द्र देव-राज शक्र जम्बुद्वीप में भगवान् तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करने जा रहे हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम सभी अपनी-अपनी समस्त ऋद्धि, कांति, वन, नमुदाय, सम्मान, विभूति, विभूषा (आडम्बर) नर्तकों, नाटकों से सज-धजकर अन्तःपुर और अलंकारों के साथ सब प्रकार के पुष्प, गन्ध, माना अलंकारों से विभूषित होकर सर्व दिव्य द्रुटित कटक केयूर आदि एवं वाद्यों की तुमुल ध्वनि के साथ सब प्रकार की वाधाओं पर ध्यान न देकर—यावत्-अपने-अपने परिवार के साथ, अपने-अपने यानविमानों, वाहनों पर आरूढ़ होकर, क्षण मात्र का भी विनम्व न करके शक्र के सामने उपस्थित हो जाओ ।

४०. उसके बाद इस प्रकार देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा आज्ञापित-पदाति-अनीकाधिपति हरिणैगमेपी देव हृष्ट-नुष्ट होकर जैसी देव की आज्ञा कहकर, सविनय आज्ञा वचनों को स्वीकार करता है, स्वीकार करके देवेन्द्र देवराज शक्र के पाम से विदा होता है, वहाँ से निकल कर जहाँ नुधर्मा सभा में मेघ नमूह की गर्जना जैसी गम्भीर और मुमधुर आवाज वाली, एक योजन विस्तार वाली, नुघोपा नामक घंटा है, वहाँ आता है, वहाँ आकर वह मेघ नमूह की गर्जना सदृश गम्भीर और मुमधुर आवाज वाली नुघोपा घंटा को तीन बार बजाता है ।

तब मेघनमूह की गर्जना सदृश गम्भीर महुरयर आवाज करने वाली और एक योजन विस्तार वाली नुघोपा घंटा को तीन बार बजाने पर नुधर्मेत्तव के एक सय वत्तीस नाय विमानायानों ने एक एक दूसरी-दूसरी साथ-साथ घंटियाँ एक साथ टनटनाहट करने लगीं, टनटना उठी ।

इस प्रकार धानादो-विमानों के निकट प्रदोषी मेघ होने वाली घंटाघंटी की नाचों प्रतिध्वनियों ने इस नुधर्मेत्तव कव्य ध्याय (संक्रुत) ही पदा ।

४१. तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्त-रइ-पसत्तणिच्च-प्पमत्त-विसय-सुह-मुच्छियाणं सुसर-घण्टारसिय-विडल-बोल-पूरिय-चवल-पडिबोहणे कए समाणे घोसण-कोऊहल-दिण्ण-कण्ण-एगग्ग-चित्त-उवउत्त-माणसाणं से पायत्ताणीयाहिबई देवे तंसिं घण्टारवंसिं णिसंतपडिसंतंसिं समाणंसिं तत्थ तत्थ तर्हिं तर्हिं देसे महया महया सहेणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—

“हन्त ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणियदेवा देवीओ य सोहम्मकप्पवइणो, इणमो वयणं हिय-सुहत्थं आणावइ णं भो ! सक्के तं चेव-जाव-अंतियं पाउवभवह त्ति ।”

४२. तए णं ते देवा देवीओ य एयमट्ठं सोच्चा हट्ठनुट्ठ - जाव-हिययाअ प्पेगइया वन्दणवत्तियं, णमंसणवत्तिय एवं पूअणवत्तियं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं, दंसणवत्तियं जिणभत्तिराणेणं । अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्ठमाणा, अप्पेगइया अण्ण-मण्णमणुयत्तमाणा । अप्पेगइया तं जीयमेयं एवमाइ त्ति कट्ठ-जाव- पाउवभवन्ति त्ति ।

४३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते वेमाणिए देवे देवीओ य अकालपरिहीणं चेव अंतियं पाउवभवमाणे पासइ पासइत्ता हट्ठे पालयं णामं आभिओगियं देवं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेग-खम्भ-सय-सणिणविट्ठं लीलट्ठिय-सालभंजियाकलियं ईहामिय-उसभ-नुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुह-सरभ-चमर-कुंजर-वणलप्र-पउमलय-भत्तिचित्तं खंमुग्गय-वइर-वेइया-परिगयाभि-रामं विज्जाहर-जमल-जुयल-जंत-जुत्तं-पि व अच्चो-सहस्स मालिणीयं हवग-सहस्सकलियं भिसमाणं भिबिसमाणं चक्खु-ल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरुवं घण्टावलि-चलिय-महुर-मणहर-सरं सुहं कन्तं दरिसणिज्जं णिउणोविय-मित्तिमित्त-मणि-रयण-घंटिया-जाल-परिखित्तं जोयण-सहस्स-वित्थिण्णं पंच-जोयण-सयमुव्विद्धं सिग्घं तुरियं जइणणिव्वाहिदिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पि-णाहि ।”

—जंबु० व० ५, सु० ११५ ।

४१. उस समय इस सौधर्मकल्प में रहने वाले अनेकानेक वैमानिक देव-देवियों को, जो कि केवल विषय सुख में आसक्त और नित्य प्रमत्त एवं मूर्च्छित रहते थे, इन घंटाओं की सुमधुर टनटनाहटों से उत्पन्न कोलाहल द्वारा यकायक जगाया गया, तब उन्होंने घोषणा सुनने की ओर अपने चित्त को एकाग्र किया, उनके एकाग्रचित्त होने और घंटिकाओं की ध्वनि शान्त होने पर पदाति-अनीकाधिपति देव ने धीर गम्भीर स्वर में घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—

“हे सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देव-देवियो ! आप सौधर्मकल्प के अधिपति की यह हितकर एवं सुखकर आज्ञा सुनो—यावत्—आप सब शीघ्र ही शक्र के सामने उपस्थित हो जायें ।

४२. तदनन्तर इस घोषणा को सुनकर वे देव-देवियाँ हृदय में हृष्ट-तुष्ट प्रसन्न हृदय हो गईं और उनमें से अनेक (कुछ-एक) वन्दना करने के अभिप्राय से, अनेक नमस्कार करने के अभिप्राय से, अनेक पूजा सत्कार करने के अभिप्राय से, अनेक सम्मान करने के अभिप्राय से, अनेक देखने के अभिप्राय से, जिनभक्ति के अनुराग से, अनेक शक्र की आज्ञा पालन करने के अभिप्राय से, अनेक परस्पर एक-दूसरे की देखा-देखी के अभिप्राय से, अनेक यह हमारा परम्परागत आचार है, इत्यादि के अभिप्राय से शक्र के समक्ष उपस्थित हो गये ।

४३. देवेन्द्र देवराज शक्र क्षण मात्र का भी विलम्ब न करके अपने आप समक्ष हाजर हुए देव-देवियों को देखता है, देखकर हर्षित होकर पालक नाम के आभियोगिक देव को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही एक सैकड़ों खंभों से युक्त, जिन पर लीला करती हुई पुतलियाँ बनी हों, ईहामृग, वृषभ, घोड़े, मनुष्य, मगर, पक्षी, व्याल (सर्प), किन्नर, रूह (मृग विशेष), सरभ (अष्टापद) चमर, कुंजर, वनलता, पञ्चलता आदि के चित्रों की रचना हो, प्रत्येक खंभे की वज्र की वेदिका हो, जिस पर विद्याधर युगलों की ऐसी पुतलियाँ हों, जो यन्त्रों से जुड़ी हुई-सी दिखती हों, जो सहस्ररश्मि सूर्य की तरह चमचमाहट करने वाला हो, जो हजारों रूपकों वाला हो, जो अतिशय देदीप्यमान हो, जो आँखों को सुहावना और आर्कषित करने वाला हो, जिसका स्पर्श सुखद हो, शोभा सम्पन्न हो, जिसकी घंटावलि के स्वर मधुर और मनोहर हों, जो शुभ-कान्त-दर्शनीय नियमोपेत हो, जिसके चारों तरफ चमचमाते मणिरत्नों से जड़ी हुई घंटियों की माला गुंथी हुई हो, जो एक हजार योजन लम्बा और पाँच सौ योजन ऊँचा हो, शीघ्र त्वरित गति वाला हो, ऐसे दिव्ययान

५३. तस्सुवार् मंह एगे विजयद्वसे सव्वरयणामए वण्णओ ।

५४. तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे । एत्थ णं मंह एगे कुम्भिके मुत्तादामे, से णं अण्णेहिं तदद्दुच्चत्त-प्पमाण-मित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिकेहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खत्ते ।

ते णं दामा तवणिज्ज-लंबूसगा सुवण्ण-पयरग-मण्डिया णाणा-मणि-रयण-विविह-हारद्धहार-उवसोभिया समुदया ईसि अण्ण-मण्णमसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं मन्दं एइज्जमाणा एइज्जमाणा-जाव-निव्वुइकरेणं सट्ठेणं ते पएसे आपूरेमाणा आपूरेमाणा-जाव-अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति त्ति ।

५५. तस्स णं तीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स देविदस्स देवरण्णे चउरासीए सामाणिय-साहस्सीणं चउरासीइ-भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अगमहिंसीणं ।

एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अम्भंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणेणं मज्झमाए चउदसण्हं देवसाहस्सीणं, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं ति ।

तए णं तस्स तीहासणस्स चउट्ठिसि चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं ।

एवमाई विभासियव्वं सूरियाभगमेणं-जाव-पच्चप्पि-णन्ति त्ति ।

—जंबु० व० ५, सु० ११६ ।

५६. तए णं से सक्के -जाव- हट्ट-हियए दिव्वं जिणोदाभिगमण-जुग्गं सव्वालंकार-विभूसियं उत्तरवेउव्वियं ह्वं विउव्वइ, विउव्वित्ता अट्ठहिं अगमहिंसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गण्धवाणीएण य तद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुधियत्तेणं तिसोवाणेणं दुहहइ, दुहहित्ता-जाव-तीहासणंसि पुरत्थ्याभिमुहे तण्णिणसण्णे त्ति ।

५३. उसके ऊपर रत्नजटित एक विजयदूष्य का वर्णन भी यहाँ कर लेना चाहिये ।

५४. उसके बीचोंबीच वज्रमणि से निर्मित अंकुश था । उसमें घड़े जितने बड़े मोतियों की एक बड़ी माला लटकती थी, उसके आसपास चारों तरफ और ऊँचाई में उससे आधी एवं अर्धकुम्भ प्रमाणवाली चार मोतियों की मालायें लटक रही थीं ।

ये मालायें सुवर्ण निर्मित गेंद जैसे आभरण विशेषों से युक्त थीं, सुवर्ण के पतरों से मंडित थी, विविध मणिरत्नों के अनेक हारों और अर्ध हारों से उपशोभित एवं समुदय-वाली थी (सुन्दर रीति से घड़ी गई थीं) और एक दूसरे से बहुत पास-पास नहीं थी, एक दूसरे से थोड़ी-थोड़ी दूर थी, पुरवाई हवा से मन्द-मन्द हिल रही थी—यावत्—इनके आपस में टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि कानों को बड़ी प्रिय-सुहावनी लगती थी—यावत्—इस प्रकार शोभायमान हो रही थीं ।

५५. उस सिंहासन के वायव्यकोण में (पश्चिमोत्तर दिशा में) उत्तर में और उत्तर पूर्व दिशा में (ईशानकोण) में देवेन्द्र देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देवों के चौरासी हजार भद्रासन, पूर्वदिशा में आठ पटरानियों के भद्रासन थे ।

इसी प्रकार दक्षिण पूर्व दिशा में आभ्यन्तर परिपदा के वारह हजार देवों के, दक्षिण दिशा में मध्यम परिपदा के चौदह हजार देवों के, दक्षिण पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) में बाह्य परिपदा के सोलह हजार देवों के और पश्चिम में सात सेनापतियों के भद्रासन थे ।

उसके अतिरिक्त उस सिंहासन की चारों दिशाओं में चौरासी-चौरासी हजार आत्म-रक्षक देवों के भद्रासन थे ।

इत्यादिरूप से यह सब वर्णन सूर्याभदेव के आगमन प्रमाण के पाठानुसार 'प्रत्यर्पयन्ति' क्रिया पद तक कर लेना चाहिए ।

५६. तदन्तर वह शक्र हृष्ट-नुष्ट इत्यादि होकर जितेन्द्र भगवान के सम्मुख जाने के योग्य सर्व अलंकारों से विभूषित दिव्य उत्तर वैक्रिय रूप की विक्रुर्वणा करता है, विक्रुर्वणा करके अपनी आठ सपरिवार पटरानियों के साथ नतक वृन्द और गंधर्ववृन्द के साथ उस विमान की प्रदक्षिणा करते-करते पूर्व दिशा के तीन सोपानों से होकर उसमें चढ़ता है, चढ़कर—यावत्—पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है ।

५७. एवं चेव सामाणिया वि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुहहंति
दुहहिता पत्तेयं पत्तेयं पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति ।

अवसेसा य देवा देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं
दुहहंति दुहहिता तहेव -जाव- णिसीयति ।

५८. तए णं तस्स सबकसस्स तंसि दुहहस्स इमे अट्टट्टमंगलगा पुरओ
अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

५९. तयणंतरं च णं पुण्णकलसंभंगारं दिव्वा य छत्तपडागा
सच्चामरा य दंसण-रइय-आलय-दरिसणिज्जा वाउद्धुय-
विजयवेजयन्ती य समूसिया गगणतलमणुलिहंति पुरओ
अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

६०. तयणन्तरं च णं छत्तिभंगारं ।

६१. तयणंतरं च णं वइरामयवट्ट-लट्ठ-संठिय-सुत्तिलिट्ट-परिघट्ट-
पट्ट-सुपइट्टिए विसिट्ठे अणे गवरपंचवण्णकुडभो-सहस्स-
परिमण्डियाभिरामे वाउद्धुय-विजय-वेजयन्ती-पडागा-
छत्ताइच्छत्त-कलिए तुंगे गयण-तलमणुलिहंत-सिहरे जोयण-
सहस्समूसिए महइमहालए मंहिदज्जए पुरओ अहाणुपुव्वीए
संपट्ठिए त्ति ।

६२. तयणन्तरं च णं सरुव-णे वत्थ-परियच्छिय-सुत्तज्जा
सव्वात्तंकारविभूसिया पंच अणिया पंच अणियाहिवइणो
-जाव- संपट्ठिया ।

६३. तयणन्तरं च णं बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य सएहि
सएहि हवेहि -जाव- णिओगेहि सबकं देविदं देवराणं पुरओ
य मग्गओ य पासओ अ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए त्ति ।

तयणन्तरं च णं बहवे सोहम्मरूपवात्ती देवा य
देवीओ य सव्विड्डीए-जाव-दुहहा समाणा मग्गओ य -जाव-
संपट्ठिया ।

६४. तए णं ते सस्के तेणं पंचाणियपरिक्खत्तेणं जाव-
महिदज्जएणं पुरओ पक्खिदज्जमाणेणं चउरात्तीए
सामाणिय-जाव-परियुत्ते । सव्विड्डीए-जाव-रवेणं सोहम्मस्स
रूपस्स मज्झं मज्जेणं तं दिव्वं देविड्डीओ-जाव-उपदत्तेमाणे
उपदत्तेमाणे जेणेय सोहम्मस्स रूपस्स उत्तरित्ते निज्जाण-
मग्गे तेणेय उवागच्छइ, उवागच्छिता जोयणतयताहस्तिएहि

५७. इसी प्रकार सामानिक देव भी उत्तर दिशा के तीन सोपानों
पर होकर चढ़े और चढ़कर प्रत्येक उसी प्रकार पहले से रखे
गये अपने-अपने भद्रासनों पर बैठते हैं ।

अवशिष्ट देव और देवियाँ भी दक्षिण दिशाओं की तीन
सोपानों से होकर चढ़ती हैं और चढ़कर पूर्ववत्—पश्च-
वैठ गईं ।

५८. इसके बाद शक्र के उस विमान पर चढ़ने ही आठ-आठ मदन
द्रव्य यथाक्रम से आगे चलने लगे ।

५९. तत्पश्चात् पूर्वकलश, भृंगारक (झारी), चामर सहित शिव
छत्र पताका और फहराहट के कारण दर्शनीय एवं विम-
दर्शनी, अपनी जँचाई से आकाश को छूने वाली और वायु
से लहराती हुई विजय बैजयन्ती पताका (ध्वजा) अनुक्रम से
आगे चलने लगी ।

६०. तदनन्तर छत्र और झारी भी ।

६१. उसके पश्चात् अनुक्रम से वज्ररत्न से बना हुआ मान सुन्दर
सुस्थित, सुश्लिष्ट परिमार्जित, रमणीय, सुप्रतिष्ठित, शिथिल
हजारों पंचरंगी छोटी-छोटी ध्वजाओं से सजाया होने से
नयनाभिराम, हवा से लहराहती विजय बैजयन्तीपताका
पताकाओं से युक्त छत्रातिछत्रों से कल्पित गगनतल के शिखर
को स्पर्श करे उतना जँचा, हजार योजन जँचा, मण्डित उद-
ध्वज आगे चलने लगा ।

६२. उसके पीछे अनुक्रम से अपने अपने गणेशों की पार्श्व पुर
सुसज्जित और सर्व अलंकारों से विभूषित पाँच मेनाये पाँच
सेनापति आगे चलने लगे ।

६३. तत्पश्चात् अनुक्रम से अनेक आभियोगिक देव और देवियाँ
अपने-अपने रूपों-वाहन-निषेणों से श्रेष्ठ देवराज रूप के
आगे और पीछे जाहू-वाहू से चलने लगे ।

उनके बाद अनेक नोदमंरत्नकारी देव और देवियाँ
अपनी-अपनी समस्त श्रुद्धि-वैभवं आदि के साथ विमानों से
आहूट होकर आगे पीछे उतरादि चलने लगे ।

६४. तत्पश्चात् यह शक्र पाँच प्रकार की सेनाओं से शिखर पुर से
वायव्य—जिनके अंगे-अंगे उद्वध्वज, उद्वध्वज, उद्वध्वज, उद्वध्वज
चौरागी तथा नामान्वित देवी से प्राप्त हैं, उद्वध्वज, उद्वध्वज,
वैभवं—वायव्य—उद्वध्वज के साथ नोदमंरत्नकारी देवों-देवियों
होकर अस्सी उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज
नोदमंरत्न से वायव्य उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज उद्वध्वज

विगर्हेहि ओवयमाणे ओवयमाणे ताए उक्किट्ठाए -जाव-
देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीव-
समुद्धानं मज्झं मज्झेणं जेणेव णंदीसरवरे दीवे जेणेव दाहिण-
पुरत्थिमिल्ले रइफरग-पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया। णवरं सक्काहिगारो
वत्तव्वो इति, -जाव- तं दिव्वं देविड्डं -जाव- दिव्वं जाण
विमाणं पडिसाहरमाणे पडिसाहरमाणे -जाव- जेणेव भगवओ
तित्थयरस्स जम्मण-गगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स
जम्मण-भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवओ
तित्थयरस्स जम्मण-भवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं
तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ
तित्थयरस्स जम्मण-भवणस्स उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभागे
चउरंगुलमसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ
ठवित्ता अट्ठहि अगमहिंसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएण
य णट्ठाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ
पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ।

तए णं सक्कस्स देविदस्स देवरणो चउरासीइसामा-
णियसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं
तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति,

अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाण-
विमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति
त्ति।

६५. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए सामाणिय-
साहस्सिएहिं-जाव-सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए-जाव-दुन्दुहि-
णिग्घोसणाइय-रवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरसाया य
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आलोए चेव पणामं करेइ,
करित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो
आयाहिणपयाहिणं करयल -जाव- एवं वयासी-

“णमोऽत्थु ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसा-
कुमारीओ -जाव- धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थाऽसि,

“अहण्णं देवाणु प्पिए ! सक्के णामं देविन्दे देवराया
भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि, तं णं
तुब्भाहिं ण भाइयव्वं”-

वहाँ आता है, वहाँ आकर एक लाख योजन प्रमाण डगों
की भरता-भरता अपनी उत्कृष्ट देवगति से गमन करते हुए
तिर्यंग्लोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचोंबीच से
होता हुआ जहाँ पर नन्दीश्वर द्वीप था, जहाँ उसके आग्नेयकोण
में रतिकर (रुचक्र) पर्वत था, वहाँ आता है, वहाँ आकर
इसके बाद सूर्याभदेव के आगमन के वर्णनानुसार कहना
चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि सूर्याभदेव के स्थान
पर शक्र का नाम जोड़कर कथन करना चाहिये और दिव्य-
देव ऋद्धि—यावत्—दिव्ययान विमान का प्रतिसंहरण-
संकोचन करके—यावत्—जहाँ भगवान तीर्थकर का जन्म
नगर है, जहाँ तीर्थकर भगवान का जन्म भवन है, वहाँ आता
है, वहाँ आकर उस दिव्ययान विमान द्वारा भगवान तीर्थकर
के जन्म भवन की तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके
भगवान तीर्थकर के जन्म भवन के उत्तर पूर्व दिग्भाग
(ईशानकोण) में जमीन से चार अंगुल ऊपर अथवा उस
दिव्य यान विमान को खड़ा करता है, खड़ा करके आठ
पटरानियों, दो सेनाओं और नर्तकवृन्द एवं गन्धर्ववृन्द के
साथ उस दिव्य यान विमान में से पूर्व दिशावर्ती तीन
सोपानों से होकर नीचे उतरता है। तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज
शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव दिव्ययान विमान के
उत्तर दिशावर्ती तीन सोपानों से होकर नीचे उतरते हैं।

शेष रहे हुए देव और देवियाँ उस दिव्ययान विमान के
दक्षिण दिशावर्ती तीन सोपानों से नीचे उतरे।

६५. इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक-
देवों आदि से संपरिवृत एवं सर्वऋद्धि आदि से सज-धजकर—
यावत्—दुन्दुभि की घोष ध्वनिपूर्वक, जहाँ भगवान तीर्थकर
और तीर्थकर की माता थी वहाँ आता है, प्रणाम करके
भगवान तीर्थकर और तीर्थकर की माता को तीन बार
प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके अंजलि आदि रचकर
इस प्रकार कहता है—

‘हे रत्नकुक्षिधारिणी ! तुम्हें मेरा नमस्कार है आदि
पहले जैसा दिक्कुमारियों के प्रसंग में वर्णन किया गया,
वैसा ही यहाँ भी कहना चाहिए—यावत्—आप धन्य हैं,
पुण्यशालिनी हैं, कृतार्थ हैं’।

‘हे देवानुप्रिये ! मैं शक्र नामक देवेन्द्र देवराज तीर्थकर
भगवान का जन्म महोत्सव करूँगा इसलिए आप भयभीत
न हों’।

ति कट्टु ओतोर्वाणि दलयइ, दलयित्ता तित्थयर-
पडिह्ववं विउव्वइ, विउव्वित्ता तित्थयरमाउयाए पासे ठवेइ,
ठवित्ता पंच सक्के विउव्वइ ।

विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं
गिणहइ । एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ । दुवे सक्का
उभओ पांसि चामरुखेवं करेन्ति । एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी
पकड्ढइ त्ति ।

६६. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया अण्णेहि वहूहि भवणवइ-
वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहि देवेहि देवीहि य सद्धि
संपरिवुडे सध्विइदीए-जाव-णाइएणं ताए उक्किट्ठाए-जाव-
वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव मन्दरे पव्वए जेणेव
पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थामिमुहे
सणिसण्णे त्ति ॥

—जंयु० व० ५, सु० ११७ ।

इसाणाइ-इंद-कय-जम्म-महिमा—

६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविन्दे देवराया मूल-
पाणी वसभवाहणे सुरिन्दे उत्तरइड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस-
विमाणावास-सयसहस्ताहिवई अरयंवरवत्थधरे एवं जहा
सक्के ।

इमं णाणत्तं-महाघोसा घण्टा लहुपरयकमो पायत्ताणि-
याहिवई, पुष्फओ विमाणकारी, दक्खिणे निज्जाणमग्गे,
उत्तरपुरत्थिमिल्लो रड्ढकरगपव्वओ मन्दरे समोत्तरिओ -जाव-
पज्जुवासइ त्ति ।

६८. एवं अवसिट्ठा वि इंदा भाणियव्वा -जाव- अच्चुओ त्ति ।
इमं णाणत्तं - गाहा—

चउरासोइ अत्तोई, वावत्तरि, सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा बीसा दत्त सहस्ता ॥ १ ॥

६९. एए सामाणिपाणं :—गाहा—

यत्तोत्तइत्ठावीसा, वारसट्ठ चउरो नयसहस्ता ।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्ता सहस्तारे ॥ १ ॥

ऐसा कहकर अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग करता है,
करके उसने माता को मायामयी निद्रा में मुक्त किया। मुक्त-
कर तीर्थंकर सद्यः प्रतिरूप को विकुर्वणा की, विकुर्वणा करने
तीर्थंकर माता के पास उस प्रतिरूप विष्णु को रखता है, रख-
कर फिर पाच गर्कों की विकुर्वणा की ।

विकुर्वित गर्कों में से एक भगवान् नीलंकर को
करसंपुट में लेता है एक गन्ध पीछे में छत्र नानका है, से एक
दोनों बाजुओं में खटे होकर चामर टोन्ते है, एक गन्ध
हाथ में वज्रदंड लेकर आगे आगे चलता है ।

६९. इसके पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र अथ अनेक भवनवति,
वाणव्यंतर ज्योतिष्क और वैमानिक देव-देवियों के साथ
सर्व ऋद्धि—वावत्—दुन्दुभिनाद के साथ अपनी उत्कृष्ट
देवगति से—वावत्—गमन करता करता जहाँ मद्रगावज पर्यंत
(मरुपवंत) है जहा पंडक वन है, जहाँ अभिषेक किया है और
उस जिला पर जहाँ अभिषेक मिश्रामन है, वहाँ जाता है, वहाँ
आकार पूर्व दिशा की ओर मुग्ध करके मिश्रामन पर
बैठता है ।

ईशानेन्द्र आदि इन्द्रों द्वारा कृत जन्म महोत्सव—

६७. उस काल उस समय में मूलपाणि वृषभवाहन ईशान देवराज
ईशान नामक सुरेन्द्र को उत्तर लोहाधं हा अभिषेकित
अट्ठाईस लाख विमानों का स्वामी है और आताप के मन्त्र
निर्मल वस्त्र धारण करता है उसदि सदा के पर्यंत ही वस्तु
यहाँ भी वर्णन करना चाहिये; दोनों के वर्णन में इतना कहा
है कि महाघोषा नामक घंटा है, वर्ष पराशम नामक वस्त्र-
सेनापति है, पुष्पक नामक विमान है, वावर विमानों का
भागं दक्षिण दिशा में है, उत्तर-पूर्व दिशा में (विमानवाहन
में) रत्नकर पर्यंत है, मद्रगावज पर्यंत पर जाता—वारा—
पर्युपानना करता है ।

६८. इसी प्रकार जयपुरेन्द्र शक्र के साथ मनी २५० के उत्तरवत्
का वर्णन करना चाहिये ।

इसके वर्णन में जो उल्लेख है, इस उस प्रकार समझना

चाहिये—गाथा—

चौदसी, अर्धरी २५०००, २५०००, २५०००, २५०००,
वीस, दोन, इन लोहाधं परमाणु २५०००

६९. इस वर्णन में सामाणियों को मद्रगा में उल्लेख है, उल्लेख

समस्तता गाथा—

(२५०००) दक्षिण उत्तरदिशा २५०००, २५०००, २५०००,
वराण २५०००, २५००००—(१६)

७०. आणय-पाणयकप्ये चत्तारिसयाऽऽरणञ्चुए तिण्णि ।

७१. एए विमाणानं इमे जाणविमाणकारी देवा, तंजहा -
गाहा—

पालय, पुफ्फे, य सोमणसे, सिरिवच्छे य, णंदियावत्ते ।
कामगमे, पीङ्गमे, मणोरमे, विमल, सच्चओभट्टे ॥ १ ॥

७२. सोहम्मगाणं सणकुमारगाणं वंभलोगगाणं महासुक्कयाणं पाणय-
गाणं इंदाणं सुघोसा घण्टा, हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई,
उत्तारिल्ला णिज्जाणभूमि, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरग-पव्वए ।

७३. ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सार-अच्चुयगाणं य इंदाणं
महाघोसा घण्टा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई, दक्खिणिल्ले
णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए ।

सेसं तं चेव परिसा णं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा
सामाणियचउग्गुणा, सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयण-
सयसहस्सवित्थिण्णा उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा, माहिंदज्जया
सव्वेसिं जोयणसाहस्सिया, सक्कवज्जा मन्दरे समोयरंति-
जाव-पज्जुवासंति रि ।

—जंबु० व० ५, सु० ११८ ।

असुरिंद-चमर-कय-जम्म-महिमा—

७४. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिन्दे असुरराया चमरचंचाए
रायहाण्णेए, सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउ-
सट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं,
चउहिं लोणपालेहिं, पर्चाहिं अग्गमहिंसीहिं, सपरिवाराहिं,
तिंहिं परिसाहिं, सत्ताहिं अणिएहिं, सत्ताहिं अणियाहिवईहिं,
चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खदेव-साहस्सीहिं, अण्णेहिं य जहा
सक्के ।

णयरं-इमं णाणत्तं-दुमो पायत्ताणीयाहिवई, ओघस्सरा
घण्टा, विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइं, माहिंदज्जओ पंचजोय-
णसमाइं, विनाणकारी आग्निओगिओ देवो, अवसिट्ठं तं
चेव-जाव-मन्दरे समोसरइ पज्जुवासइ रि ।

—जंबु० व० ५, सु० ११९ ।

आसुरिंदवली-आइ-कय-जम्म-महिमा—

७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं वली असुरिन्दे असुरराया एवनेव
णयरं सट्ठीं सामाणियसाहस्सीओ, चउग्गुणा आयरक्खा,

७०. आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ और आरण-अच्युत कल्पों
में तीन सौ विमान हैं ।

७१. यान विमान के निर्माणकर्ता देव क्रमशः इस प्रकार हैं—
गाथा—

१ पालक २ पुष्पक ३ सौमनस ४ श्रीवत्स ५ नन्दावर्त-
६ कामगम ७ प्रीतिगम ८ मनोरम ९ विमल १० सर्वतोभद्र

७२. सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशक्र और प्राणत के इन्द्रों
की घंटा का नाम सुघोषा, पदातिसेना के अधिपति का
नाम हरिणैगमेषी, बाहर निकलने का मार्ग उत्तरदिशा में
और रतिकर पर्वत दक्षिण पूर्वदिशा (आग्नेयकोण) में हैं ।

७३. ईशान, माहेन्द्र, लान्तक, सहस्वार और अच्युत इन्द्रों की
घंटा का नाम महाघोषा, पदाति-अनीकाधिपति का नाम
लघु पराक्रम, बाहर निकलने का मार्ग दक्षिण दिशा में और
रतिकर पर्वत उत्तर पूर्व दिशा (ईशानकोण) में हैं ।

इनके अतिरिक्त परिपदाओं में आत्मरक्षक देवों की
संख्या उनके सामानिक देवों की संख्या से चार गुणी
समझनी चाहिये, इन सब इन्द्रों के यान-विमानों का विस्तार
एक लाख योजन का और ऊँचाई अपने-अपने विमान
प्रमाण होती है, सबका इन्द्रध्वज एक हजार योजन ऊँचा
है और शक्रेन्द्र के सिवाय शेष इन्द्र मन्दर पर्वत पर उतरते
हैं और पर्युपासना करते हैं ।

असुरेन्द्र चमरकृत जन्म-महोत्सव—

७४. उस काल उस समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर अपनी
चमरचंचा नाम की राजधानी में, मुधर्मा नामक सभा में,
चमर नामक सिंहासन पर चौसठ हजार सामानिक देवों,
चार लोकपालों, परिवार सहित पाँच पटरानियों, तीन
परिपदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, चतुर्गुणित
चौसठ हजार ६४००० × ४ = २५६००० आत्मरक्षक देवोंसे
और अनेक शक्र की तरह, लेकिन अन्तर इस प्रकार है कि—
इसके पदाति—अनीकाधिपति का नाम द्रुय, घंटा का नाम
ओघस्वरा, विमान का विस्तार पचास हजार योजना का, इन्द्र
ध्वज की ऊँचाई पाँच सौ योजन की, विमान निर्माता आग्नि-
योगिक देव—शेष और नव वर्णन शक्र के अधिकार में किये
गये वर्णन के अनुसार समझना चाहिए—यावत—मंदर पर्वत
पर आता है और पर्युपासना करता है ।

असुरेन्द्रवली आदि कृत—जन्म-महोत्सव—

७५. उस काल उस समय में वली नामक असुरेन्द्र असुरराज
भी इसी प्रकार परन्तु, जो अन्तर है, वह इस प्रकार है कि

महाद्रुमो पायत्ताणीयाहिवई, महाओहस्सरा घण्टा तेसं तं
चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे इति ।

७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव ।

७७. णाणत्तं- छ सामाणियत्ताहस्सोओ, छ अग्गमहिस्सोओ,
चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घण्टा, भद्दसेणो पायत्ताणी-
याहिवई, विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं, महिदज्जओ,
अड्डाइज्जाइं जोयणसयाइं । एवमसुरिन्द्ववज्जिवाणं भवण-
वासिइंदाणं । णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा, णामाणं
मेघस्सरा, सुवण्णाणं हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं
मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा, उवहीणं सुस्सरा, दीवाणं
महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणियाणं णंदिघोसा ।

गाहा—

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च तहस्सा उ अमुरवज्जाणं ।
सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ १ ॥

७८. दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई भद्दसेणो, उत्तरिल्लाणं
वपखो त्ति ।

७९. याणमन्तर-जोइत्तिया पेयव्वा एवं चेव ।

णयरं चत्तारि सामाणियत्ताहस्सोओ, चत्तारि अग्गमहिस्सोओ,
सोत्तस आयरक्खसहस्सा, विमाणा तहस्सं, महिन्दज्जाया
पणवीसं जोयणसयं, घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं
मंजुघोसा, पायत्ताणीयाहिवई विमाणकारी य आभिओगा
येवा । जोइत्तियाणं सुस्सरा-सुत्तराणिघोसाओ घण्टाओ,
मन्दरे तमोत्तरणं-जाय-वज्जुपात्तति त्ति ॥

—बुद्ध ५०२, पृ. १६६ ।

इसके साठ हजार सामानिक देव है, आत्मरक्षक देवों की संख्या
इससे चौगुनी अर्थात् सामानिक देवों की संख्या में चौगुनी
है, पदाति सेना के अधिपति का नाम महाद्रुम है, घंटा का
नाम महाओघस्वरा है, नेप परिवारा आदि का स्थान दूर
में किये गये वर्णनानुसार समझना चाहिए ।

७६. उस काल उस समय में धरण नामक अनुमन्त्र भी नेप
वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए ।

७७. लेकिन अंतर यह है कि—इसके सामानिक देव छह हजार,
पटरानियां छह, आत्मरक्षक देव सामानिक देवों में चौगुन
है, घंटा का नाम मेघस्वरा है, पदातिकेता के अधिपति का
नाम भद्रसेन, विमान का विस्तार पणवीस हजार
योजन का, इन्द्रध्वज की ऊंचाई अठारह नौ योजन की है ।
इसीप्रकार अनुमन्त्र के नियम हमारे सभी भयवर्गी
इन्द्रों से संबन्धित वस्तुव्यवस्था समझना चाहिए । अंतर के अंत
इतना है—अनुरकुमारों की घंटा का नाम ओघस्वरा,
नागकुमारों की घंटा का नाम मेघस्वरा, सुवर्णकुमारों की
घंटा का नाम हनस्वरा, विष्णुकुमारों की घंटा का नाम
श्रोंचस्वरा, अग्निकुमारों की घंटा का नाम मधुस्वरा,
दिककुमारों की घंटा का नाम मधुपीया, इर्मधुमारों की
घंटा का नाम मुन्वरा, द्वीपकुमारों की घंटा का नाम
मधुरस्वरा, वायुकुमारों की घंटा का नाम नदिस्वरा और
स्तनिकुमारों की घंटा का नाम नदिघोषा है ।

गाथायं :—

अनुर के अनिर्दिष्ट नेप भयवर्गी इन्द्रों के सामानिक
देवों की संख्या समस्त भौत, साठ और छह हजार है और
आत्मरक्षक देवों की संख्या अपने अपने भयवर्गीय देवों में
चौगुनी है ।

७८. इसी प्रकार शीघ्र दिशावर्ती इन्द्रों के पश्चात्-अग्गीणोओओओ
का नाम भद्रसेन और उत्तर दिशावर्ती इन्द्रों के पश्चात्-
या नाम वज्र है ।

७९. पुरोहित भयवर्गीयों के शीघ्र का पश्चात्-अग्गीणोओओओ
अग्गीणोओओओ देवों के शीघ्र में लक्ष्मी शक्ति का नाम वज्र वज्र
वपख में अग्गी वज्र व अमरक इम वज्र व वज्र वज्र वज्र
हजार सामानिक देव, पाण परमाणु, महिन्दज्जका नाम
मेघस्वरा, सुवर्ण व विमान परमाणु, सुवर्णस्वरा की
ऊंचाई सठ नौ योजन, अणुर इन्द्रसेना की घंटा का नाम
मधुस्वरा और विष्णुस्वरा की घंटा का नाम
मधुपीया है और द्वीप दिशावर्तीयों के घंटा का नाम
नदिस्वरा और नदिघोषा है ।

अच्युत-देविद-कय-तित्थयराभिसेओ—

८०. तए णं से अच्युए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवडुवेह ।”

८१. तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठ-तुट्ठ-जाव-पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं द्विसीभागं अवक्कमन्ति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं-जाव-समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवणियकलसाणं,

एवं रूपमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरूपमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रूपमणिमयाणं सुवण्णरूपमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चन्दणकलसाणं ।

एवं भिगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं वायकरगाणं पुप्फचंगेरीणं एवं जहा सूरिआभस्स सव्व चंगेरिओ सव्व पडलगाइं विसेसियतराईं भाणियव्वाइं ।

सीहासण-छत्त-चामर-तेल्लसमुग्ग-जाव-सरिसव-समुग्गा तालिपंटा-जाव-अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति विउव्वित्ता साहाविए वेउव्विए य कलसे-जाव-कडुच्छुए य गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं-जाव-सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हन्ति ,

एवं पुक्खरोदाओ-जाव-भरहेरवयाणं दुमागहाइतित्थाणं उदगं मट्ठियं च गिण्हन्ति ।

एवं गंगाईणं महाणईणं-जाव-चुल्लहिमवन्ताओ सव्वतुवरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले-जाव-सव्वोत्तहीओ सिद्धत्थए य गिण्हन्ति, गिण्हित्ता पउमद्दाओ दहोदगं उप्पलाईणि य ।

चन्द्र की घंटा का नाम सुस्वरा और सूर्य की घंटा का नाम स्वर निर्घोषा है, ये सभी मन्दर-पर्वत पर आते हैं—यावत-पर्युपासना करते हैं ।

अच्युत—देवेन्द्रकृत तीर्थकराभिषेक—

८०. तत्पश्चात् उपस्थित सब देव-देवेन्द्रों में लब्ध प्रतिष्ठित अच्युत नामक देवेन्द्र देवराज आभियोगिक देवों को बुलाता है और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम अतिसार्थक महा मूल्यवान, महोत्सव के योग्य विशाल ऐसे तीर्थकराभिषेक की शीघ्र ही तैयारी करो ।

८१. अनन्तर वे अभियोगिक देव स्वामी की आज्ञा सुनकर हर्षित, तुष्ट होकर ईशानकोण की ओर जाते हैं, वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात-यावत-करके वे एक हजार आठ सुवर्ण कलशों की—

इसीप्रकार रूप्यमय, मणिमय, सुवर्णरूप्यमय, सुवर्णमणिमय, रूप्यमणिमय, सुवर्णरूप्यमणिमय कलशों की एक हजार आठ मिट्टी के कलशों की, एक हजार आठ चंदन के कलशों की—

एवं झारियों की, दर्पणों की, थालों की, पात्रियों की, सुप्रतिष्ठकों की, चित्रों की, रत्नकरण्डकों की, पूजा के योग्य जलपात्रों (कलशियों) की, पुष्प-चंगेरिकाओं (फूलों को रखने की छोटी-छोटी टोकनियों, डलियों) की उसके अतिरिक्त जिस तरह सूर्याभदेव की वक्तव्यता में विशिष्ट समस्त चंगेरिकाओं की, समस्त पुष्प पटलों आदि की विकुर्वणा कही गई, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये ।

इसी तरह सिंहासन, छत्र, चामर, तेलसमुद्गकों (तेल की कुप्पी) -यावत-सरसों के डिब्बों पंखों-यावत-एक हजार आठ धूपदानों की विकुर्वणा करते हैं, विकुर्वणा करके वे स्वाभाविक एवं विक्रिया से बनाये गये कलशों से लेकर धूपदानों पर्यन्त सभी चीजों को लेकर जहाँ क्षीरोदक-समुद्र है, वहाँ आकर क्षीरोदक लेते हैं, लेकर वहीं जो उत्पल, पद्म-यावत-सहस्रपत्र हैं उनको लेते हैं । इसी प्रकार पुष्करोदक-यावत-भरत एरावतवर्षा मागध आदि तीर्थों का जल और मिट्टी लेते हैं ।

इसी तरह गंगा आदि महानदियों-यावत्-क्षुद्र हिमवन्त पर्वत से समस्त कपिले पदार्थों, सभी फूलों, सभी सुगन्धित द्रव्यों, सभी माल्य-यावत्-सभी औपधियों और सफेद सरसों को लेते हैं, लेकर पद्म द्रह का जल व उत्पल आदि लेते हैं ।

८२. एवं सव्वकुल-पव्वएसु वट्टवेयट्ठेसु सव्वमहद्दहेसु सव्ववात्तेसु
सव्वचक्क-वट्ठिविजएसु वक्खार-पव्वएसु अंतर-णइसु
विभासिज्जा-जाव-उत्तरकुल्लु-जाव-मुदसण-भद्दसालवणे सव्व-
तुवरे-जाव-सिद्धत्यए य गिण्हन्ति ।

८३. एवं णंदणवणाओ सव्वतुवरे-जाव-सिद्धत्यए य सरत्तं
गोसीसचन्दणं दिव्वं च सुभणदामं गेण्हति ।

एवं सोमणस-पंडगवणाओ य सव्वतुवरे-जाव-
सुभणदामं दद्दर-मलय-सुगन्धे य गिण्हन्ति गिण्हत्ता एगओ
मिलन्ति, मिलित्ता जेणेव तामी तेणेव उवागच्छन्ति
उवागच्छत्ता महत्थं-जाव-तित्थयराभित्थेयं उवट्ठवेत्ति त्ति ।

—जंयु० व० ५, सु० १२० ।

८४. तए णं से अच्चुए देविन्दे वत्तहि सामाणियसाहस्तीहि, तावत्ती-
साए तावत्तीसएहि, चउहि लोगपालेहि, तिहिं परिसाहि,
सत्ताहिं अणिएहि, सत्ताहिं अणियाहिवईहि, चत्तालोत्ताए
आयरवखदेवसाहस्तीहि सद्धिं संपरिवुडे तेहिं सामाविएहि
वेउव्विएहि य वरकमलपड्डाणेहि सुराभिवरवारिपड्डिणुण्णेहि
चन्दण-कयचच्चाएहि आविद्धकण्ठेणुणेहि पउमुप्पलपिहाणेहि
करयलसुकुमालपरिग्गएहि अट्टसहस्तेणं सोवणियाणं
फलसाणं-जाव-अट्टसहस्तेणं भोमेज्जाणं-जाव-सव्वोदएहि
सव्वमट्ठियाहिं सव्वतुवरेहिं-जाव-सव्वोत्तहिं-सिद्धत्यएहिं
सव्विड्ढीए-जाव- रवेणं महया महया तित्थयराभित्थेणं
अभिसिचइ ।

८५. तए णं तामिस्त महया महया अभित्थेयन्ति पट्टमाणत्ति
इंदाइया देवा छत्ता-चामर-भूय-कडुच्छुअ-पुष्प-गंध-जाव-
फलत्त-हत्थगया हट्ट-तुट्ठ-जाव-वज्जमूलपाणीपुरओ चिट्ठत्ति
पंजत्तिउडा इति ।

एयं विजयाणुत्तारेणं -जाव-अप्पेणइया देवा तामिय-
संभज्जितोपत्तित्तानुइत्तम्मट्ठरत्तंतराअणमीहिं चरेन्ति-
जाव-गन्धवट्ठिभुयं त्ति ।

अप्पेणइया हिरण्यवानं यात्ति ।

एयं सुअप्प-रयल-पइर-आवरण-रत्ता-सुअ-क-काल-वीप-

८२. इसी प्रकार ममन्त हून पर्वणों, वृत्तवेवाइयों, ममी महद्दहो,
समस्त वपों, नमी चक्रवर्ती विजयों वक्खार पर्वणों, जावर
नदियों में से जन आदि को लेकर-जाव-उत्तरकुल्लु साहिं
क्षेत्रों-यावत-मुदगंन-भद्दसालवन में से नमी करीब पयन्दे-
यावत-सरत्तों लेते हैं ।

८३. इसीतरह नन्दनवन में से ममन्त करीब पयर्षी-जावत-
सरत्तों और सरन गोवीर्य चन्दन और दिव्य पुष्प का सत्तों
को लेते हैं ।

इसी तरह सोमनस-पंडगवन में से नमी करीब पयर्षी
-यावत-सरत्तों और पुष्पमाया सपनमलय सुगन्ध को लेते हैं,
लेकर वे एक स्थान पर एकत्रित होके हैं, एकत्रित होकर
जहाँ उनके स्वामी के यहाँ जाते हैं, वहाँ जाकर उनका
सायंक-यावत- तीर्थकर के अभियेक की सेवाही करते हैं ।

८४. तब (अभियेक योग्य मामलों की प्राप्ति और नैशामी हो जाने
के बाद) वह देवेन्द्र अच्चुव इस प्रकार सामानित देवा,
तेतीन यावस्त्रिय देवों, चार कोटियाओ, तीन पायसाओ,
सात सेनाओं, नान नैनपत्तियों, चत्तीम हजार जाव-यावत
देवों से परित्यक्त होकर उन स्थानाधिक एव विजयया द्वारा
निमित्त, उत्तम कमलों पर स्थापित श्रेष्ठमुण्डित जिन न भरे
हुए चन्दन में चञ्चित, कंठ में पंथरंग का मे (मो हिन) सिपडे
हुए, पय और उप्पल में इके हुए मुट्टमाइ मण्डियों में चिरे करे
आठ हजार सुवर्ण कमलों-यावत-आठ हजार मट्टा व उवया
द्वारा-यावत-नमी प्रकार के जन द्वारा, नमी इए की मट्टी
द्वारा—नमी प्रकार के करीब पयर्षी द्वारा-यावत-नमी प्रकार
की औपधियों तथा सरत्तों द्वारा करीब पयर्षी मट्टा मट्टा-
वाय धमियों और तीर्थकर इके करे आठको के अभियेक
प्रभ का अभियेक कराया है ।

मल्ल-गन्ध-वण्ण जाव चुण्णवासं वासति ।

अप्पेगइया हिरण्णविहिं भाइति ।

एवं-जाव-चुण्णविहिं भाइति ।

८६. अप्पेगइया चउव्विहं वज्जं वाएन्ति, तं जहा—

१ ततं, २ वित्ततं, ३ घणं, ४ झुसिरं ।

८७ अप्पेगइया चउव्विहं गेयं गायन्ति, तं जहा—

१ उक्खित्तं, २. पायत्तं, ३ मन्दाइयं, ४ रोइयावसाणं ।

८८. अप्पेगइया चउव्विहं णट्ठं णच्चन्ति, तं जहा—

१ अंचियं, २ दुयं, ३ आरभडं, ४ भसोलं ।

अप्पेगइया चउव्विहं अभिणयं अभिणयन्ति, तं जहा—

१ दिट्ठंतियं, १ पाडिस्सुइयं, ३ सामण्णोवणिवाइयं, ४ लोग-
मज्जावसाणियं ।

अप्पेगइया वत्तीसइविहं दिव्वं णट्ठविहिं उवदंसेन्ति ।

अप्पेगइया उप्पयनिवयं निवयउप्पयं संकुच्चियपसारियं -जाव-
भन्तसंभन्तणामं दिव्वं णट्ठविहिं उवदंसेतीति ।

८९. अप्पेगइया तंडवेंति, अप्पेगइया लासेन्ति, अप्पेगइया पीणेन्ति
एवं बुक्कारेन्ति, अप्फोडेन्ति, वगन्ति, सीहणायं णदन्ति,
अप्पेगइया सव्वाइं करेन्ति,

९०. अप्पेगइया हयहेसियं । एवं हत्थियुलुगुलाइयं, रइघणघणाइयं
अप्पेगइया तिण्णि वि, अप्पेगइया उच्छोलन्ति, अप्पेगइया
पच्छोलन्ति अप्पेगइया तिवइं छिदन्ति, पायदहरयं करेन्ति,
भूमिचवेडे दलयन्ति, अप्पेगइया नहया महया सदेणं रावेंति ।
एवं संजोगा विभासियव्वा ।

अप्पेगइया हक्कारेन्ति । एवं पुक्कारेन्ति थक्कारेन्ति
ओवयंति उप्पयंति परिवयंति जलन्ति तवंति पतवंति गज्जन्ति
विज्जुयावंति वासिन्ति अप्पेगइया देवकलियं करेन्ति । एवं
देवकहकहगं करेन्ति, अप्पेगइया बुदुदुगं करेन्ति ।

आभूषण पत्र, पुष्प, फल, बीज माला, सुगन्धित पदार्थ-यावत-
सुगन्धित चूर्ण की वर्षा करते हैं ।

कितने ही देव सोने-चाँदी से मार्गों को सजाते हैं ।

इसी प्रकार कितने ही देव सुगन्धित चूर्णों इत्यादि से
रास्तों का शृंगार करने हैं ।

८६. कितने ही देव चार प्रकार के वाजे बजाते हैं—

१. तत २. वितत ३. घन ४. गुषिर ।

८७. कितने ही देव चार प्रकार के गीत गाने हैं—

१. उक्खित्त २. पादान्त ३. मंदायित ४. रोचितावसान ।

८८. कितने ही देव चार प्रकार के नृत्य करते हैं—

१. अंचित २. द्रुत ३. आरभट ४. भसोल ।

कितने ही देव चार प्रकार का अभिनय करते हैं—

१. टाण्टान्तिक २. प्रतिश्रुतिक ३. सामान्यतो विनिपातिक
४. लोकमध्यावसानिक ।

कितने ही देव वत्तीस प्रकार की दिव्यनाट्य विधियों
का प्रदर्शन करते हैं ।

कितने ही देवों ने उत्पत्त-निपत्तन,—निपत्तन-उत्पत्तन
संकुचित-प्रसारित—यावत्—भ्रान्त-संभ्रान्त नामक नाट्य
विधियों का प्रदर्शन किया ।

८९. कितने ही देव तांडव नृत्य करते हैं, कितने ही रास-लीला
करते हैं । कितने ही देवों ने हर्ष-उल्लास उत्पन्न करने वाला
अभिनय कर, गर्जना की । कितने ही तालियाँ बजाकर
या मल्ल की तरह ताल ठोककर फट-फट ध्वनि करते हैं,
कितने ही आपस में एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर झूमने
लगते हैं, सिंहगर्जना करते हैं तो कितने ही यह सब
करते हैं ।

९०. कितने क देव घोड़ों की तरह हिनहिनाहट करते हैं । इसी
प्रकार कितने ही हाथी की तरह चिंघाड़ते हैं, रथ की तरह
घनघनाहट करते हैं और कितने ही देव इन तीनों बातों को
करते हैं, कितने ही सामने से रंग गुलाल उछालने लगे,
कितने ही पीछे से उछालते हैं, कितने ही चुटियाँ लेते हैं
जमीन पर पैर पटकते हैं भूमि पर थाप मारते हैं, कितने
ही जोर-जोर से चिल्लाने हैं । इसी प्रकार और भी बातों
को समझ लेना चाहिये ।

कितने ही देव हा-हू करने हैं । इसी प्रकार कितने ही
देव मुंह से फू-फू, था-था आवाज निकालते हैं, नीचे
आते हैं, ऊँचे उठते हैं, चक्कर लगाने हैं, जनते हैं, तपते
हैं, धकधकाने हैं, मेघ की तरह गर्जना करने हैं, धिगली की
तरह चमचमाहट करते हैं, कितने ही देवों को एक बादल

६१. अप्पेगइया विकियभूयाइं रुवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति ।

६२. एवमाइ विमासेज्जा जहा विजयस्स -जाव- सव्वओ समन्ता आधावेत्ति परिधावेत्ति त्ति ।

—जंबु० व० ५, सु० १२१ ।

६३. तए णं से अच्चुइं दे सपरिवारे सांमि तेणं महया महया अभित्तेएणं अभित्तिचइ, अभित्तिचित्ता करयत्तरिग्गहिंयं-जाव- मत्थए अंजलिं कट्ठु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता ताहि इट्ठाहिं-जाव-जयजयसइं पउंजइ, पउंजित्ता- जाव -पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गन्धकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता—

६४. एवं- जाव -रूपरुक्खगं पिव अलं कियविभूतियं करेइ, करित्ता - जाव - णट्ठविहिं उवदंसेइ, उवदंत्तित्ता अच्चेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्चरसतण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठमंगलगे आलिहइ, तं जहा :

गाहा—

दप्पण, भद्दासण, वद्धमाण, वरकलत्त, नच्छ, सिरिवच्छा ।
सोत्थिय, णन्दावत्ता, लिहिआ अट्ठमंगलगा ॥ १ ॥

६५. लिहिअण करेइ उवगारं, कि ते ? पाडल-मल्लिअ-वंपग- असोग-पुन्नाग-वूअमंजरी-णवमालिअ-वउल-तिलय-कणवीर- कुन्द-कुब्जक-कोरंटक-पत्त-दमणग-वर-सुरभिगंध-गंधिअस्स कयग्गाहगहिअ-करयल-पठभट्ठ-विप्पमुक्कस्स दसद्धवणस्स कुसुमणिअरस्स तत्थ चित्तं जणुत्सेहप्पमाणमित्तं ओहिंनिकरं करेत्ता चंदप्पभ-रयण-वइर-वेहलिय-विमलदण्डं, कंचण- मणि-रयण-भत्तिचित्तं, कालागुरुपवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव- गंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्ठिं विणिम्मुअंतं वेहलियं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयत्तेणं धूवं दाअण जिणवरिदस्स सत्तट्ठययाइं ओसरित्ता दसंगुत्तियं अंजलिं करिय मत्थयमि पयओ अट्ठसयविसुद्धगंधजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्यजुत्तेहिं संथुणइ ।

में खड़ा करते हैं, कह कहे लगाते हैं कितने ही दुह दुहाट करते हैं ।

६१. कितने ही अनेक रूपों की विकुर्वणा करके नाचते हैं ।

६२. इसी प्रकार शेष वर्णन भी विजयदेव के वर्णन के अनुसार चारों तरफ, सर्वत्र दौड़ भाग करते हैं तक समझना चाहिये ।

६३. उस समय अपने परिवार सहित अच्युनेन्द्र महान अभिषेक द्वार प्रभु का अभिषेक करता है अभिषेक करके हाथों की अंजलि करके—यावत्—नतमस्तक हो नमस्कार करके जय हो ! विजय हो ! शब्दों द्वारा बधाता है, वधाई देकर इष्ट-मिष्ट इत्यादि वाणी से जय जयकार करते हैं, जय-जयकार करके—यावत्—कमल जैसे सुकोमल, सुगंधित, गंधकापायिक वस्त्र (तौलिया) से शरीर को पौछता है पौछकर—

६४. फिर कल्पवृक्ष की तरह अलंकृत और विभूषित करता है, विभूषित करके—यावत्—नाट्य प्रयोग दिखाता है, दिखाने के पश्चात् स्वच्छ, स्निग्ध, चांदी के सदृश श्वेत, अक्षरस (सरस-सुन्दर अक्षत) तंदुलों (चावलों) से तीर्थकर प्रभु के सन्मुख आठ-आठ मंगल द्रव्यों का आलेखन करता है । उनके नाम हैं—(गाथार्थ—)

१. दर्पण २. भद्रासन ३. वर्धमान ४. कलस ५. मत्स्य-युगल ६. श्रीवत्स ७. स्वस्तिक ८. नन्दावर्त, ९. इन आठ मंगलों का आलेखन किया ।

६५. मंगलों का आलेखन करके वह भगवान की पूजा करता है, किसरीति से ? तो पाटल (गुलाब), मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, आम्रमंजरी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक कनेर, कुन्द, कुब्जक, कोरंटक पत्र (मरवा) दमनक पुष्पों की श्रेष्ठ सुगन्ध से वासित हाथ में से नीचे गिर जाने वाले पुष्पों का त्याग कर शेष रहे उन चित्र विचित्र पचरंगी पुष्पों से एक जानु (घुटने) जितना ऊँचाई का ढेर बनाता है, बनाकर चंद्रकांत कर्कतनादिरत्न-वच्च-वैडूर्यमणि से निर्मित विमल दंड (हत्या) वाली सुर्वण मणि-रत्न आदि से रचित चित्र विचित्र विविध चित्रों से युक्त, कृष्णागुरु, कुन्दरुक्क, तुरुक्क जैसी उत्तम सुगंधवाली धूपों की सुगंध की लहरियों को फैलाने वाली धूपदानों में धूपक्षेप करता है, धूपक्षेप करके जिनेन्द्र भगवान से सात-आठ डग दूर खिसक कर दसों अंगुलियों को जोड़कर बनाई गई अंजलि को मस्तक से लगाकर एक सौ आठ विशुद्ध ग्रन्थों (पाठों) से युक्त उत्तम छन्दों में रचित, अर्थ समृद्ध अपुनरुक्त स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता है ।

६६. संयुजिता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता - जाव करयल-परिग्गहियं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

“णमोऽत्थु ते सिद्ध-बुद्ध णीरय समण समाहिय समत्त समजोगि सल्लगतण णिब्भय णीरागदोस णिम्मम णिस्संग णिसल्ल माणमूरण गुणरयण सीलसागरमणंतमप्पमेय भविय धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्ठी !

“णमोऽत्थु ते अरहओ त्ति” कट्टु एवं वन्दइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्ससमाणे-जाव -पज्जुवासइ ।

—जंबु० व० ५, सु० १२२ ।

ईसाणाइ-कय-तित्थयराभिसेओ—

६७. एवं जहा अच्चयस्स तहा - जाव - ईसाणस्स भाणियव्वं ।

६८. एवं भवणवइ-वाणमन्तर-जोइसिया य सूरपज्जवसाणा सएण परिवारेणं पत्तेयं पत्तेयं अभिसिंचंति ।

६९. तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पंच इसाणे विउव्वइ, विउव्वित्ता—

एणे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयल-संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे तणिसण्णे ।

एणे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ ।

दुवे ईसाणा उभओ पांसि चामरुक्खेवं करेन्ति ।

एणे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ ।

—जंबु० व० ५ सु० १२२ ।

देविंदसक्क-कय-तित्थयराभिसेओ—

१००. तए णं सक्के देविन्दे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एतो वि तह चेव अन्निसेयाणांसि देइ, तेज्वि तह चेव उवणेन्ति ।

१०१. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउट्ठिसि चत्तारि धवल-असने विउव्वेइ तेए संतवल-

६६. स्तुति करके बायाँ घुटना मोड़कर ऊँचा करता है ऊँचा करके—यावत—दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर अंजलि-रूप करके इस प्रकार कहता है—

‘हे सिद्ध, बुद्ध, नीरज, श्रमण, समाहित (संकल्प-विकल्प से रहित, समाधियुक्त, अनाकुल चित्तवाले) समाप्त (अवि-संवादि वचनवाले) समयोगी शक्तियों का उन्मूलन करने वाले, निर्भय, रागद्वेष से मुक्त, निर्मम (मोहरहित) निस्संग, निःशक्त्य, मानमर्दक, गुण-रत्नों के भंडार, शील के सागर अनन्त अप्रमेय भव्य धर्मराज्य के सार्वभौम चक्रवर्ती ! आपको नमस्कार है ।’

‘नमस्कार हो अरिहन्त की’ इस प्रकार कहकर वह प्रभु की वन्दना करता है, नमस्कार करता है वंदना-नमस्कार करके न तो अतिनिकट और न अतिदूर यथोचित स्थान पर खड़े होकर सेवा-भक्ति करके—यावत—उपासना करता है ।

ईशानादि—कृत—तीर्थकराभिषेक—

६७. इसी प्रकार जिस तरह अच्युतेन्द्र के सम्बन्ध में कहा उसी तरह ईशानेन्द्र द्वारा किये गये अभिषेककृत्य के बारे में कहना चाहिये ।

६८. इसी प्रकार भवनपति वाणव्यतर और सूर्य तक के ज्योतिष्क देव अपने-अपने परिवार के साथ प्रत्येक अभिषेक करते हैं ।

६९. इसके पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र पाँच ईशानेन्द्र की विकुर्वणा करता है, विकुर्वणा करके—

एक ईशानेन्द्र भगवान तीर्थकर को अपने करतलसंपुट (हथेलियों) में लेता है, लेकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठता है ।

एक ईशानेन्द्र पीछे खड़ा होकर छत्र तानता है ।

दो ईशानेन्द्र दोनों वाजुओं में खड़े होकर चामर ढोरते हैं ।

एक ईशानेन्द्र हाथ में शूल धारण करके सम्मुख खड़ा होता है ।

देवेन्द्र शक्रकृत—तीर्थकराभिषेक—

१००. इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र आभियोगिक देवों को बुलाता है, बुलाकर ये भी उसी प्रकार (पूर्ववत्) अभिषेक सामग्री आदि लाने की आज्ञा देता है वे भी उसी तरह लेकर आते हैं ।

१०१. तत्पश्चात् देवराज शक्र भगवान तीर्थकर की चार दिशाओं में चार धवल (श्वेत) वृषभों (बैलों) की विकुर्वणा करता

विमल-णिम्मल-वधि-घण-गोखीर-फेण-रययणिगर-प्पगासे
पासाईए वरिसणिज्जे अभिह्वे पडिह्वे ।

तए णं तेसि चउण्हं धवल-वसभाणं अट्ठहिं सिंगेहितो
अट्ठ तोअधाराओ णिगगच्छति ।

तए णं ताओ अट्ठ तोयधाराओ उड्ढं वेहासं
उप्पयन्ति, उप्पइत्ता एगओ मिलायन्ति, मिलाइत्ता भगवओ
तित्थयरस्स मुट्ठाणंति णिवयंति ।

१०२. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीईए सामाणिय-
साहस्सीहि एयस्स वि त्हेव अभिसेओ भाणियव्वो
- जाव - णमोत्थु ते अरहओ त्ति कट्टु वन्दइ णमंसइ
- जाव - पज्जुवासइ ।

—जंबु० व० ५, सु० १२२ ।

१०३. तए णं से सक्के देविन्दे देवराया पंच सक्के विउव्वइ,
विउव्वित्ता—

एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ ।

एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ ।

दुवे सक्का उभओ पांसि चामरुखेवं करेति ।

एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पकड्ढइ ।

१०४. तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहि- जाव
-अण्णेहि य भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहि देवेहि
देवीहि य सिद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए - जाव - णाइय-
रवेणं ताए उक्किट्ठाए दिव्वाए देवगईए अइवयमाणे
अइवयमाणे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-णयरे
जेणेव जम्मण-भवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ,
ठवित्ता तित्थयरपडिह्वगं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता
ओसोर्वाणं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता एगं महं खोम-
जुअलं कुण्डलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले
ठवेइ, ठवित्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं
सुवण्णपरगमंडियं णाणामणि-रयण-विविह-हारद्धहार-

है, ये वृषभ शंखदल (शंखों के समूह) के सदृश विमल
रुह के समान निर्मल, गाय के दूध के फँस और चाँदी के
ढेर जैसे प्रकाशमान श्वेत, मन को प्रसन्न करने वाले,
दर्शनीय, सुरूपवान् एवं सुन्दर थे ।

इन चारों श्वेत वृषभों के आठ सींगों में से आठ
जलधारायें निकलती हैं ।

ये आठों जलधारायें ऊपर आकाश में उछलती हैं,
उछलकर एकत्रित होती हैं, एकत्रित होकर फिर वे
भगवान तीर्थकर के मस्तक पर पड़ती हैं ।

१०२. उस समय वह देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार
सामानिक देवों के साथ इसका अभिषेक कार्य भी पूर्व
की तरह कहना चाहिये—यावत्—नमस्कार हो अर्हन्त
प्रभु को ऐसा कहकर वंदना करता है, नमस्कार करता
है—यावत्—पर्युपासना करता है ।

१०३. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र पांच शक्तों की
विकुर्वणा करता है, विकुर्वणा करके—

एक शक्र भगवान तीर्थकर को अपने करसंपुट में
लेता है ।

एक शक्र पीछे खड़ा होकर छत्र तानता है ।

दो शक्र दोनों बाजुओं में खड़े होकर चामर
धोरते हैं ।

एक शक्र हाथ में वज्र लेकर सन्मुख खड़ा
रहता है ।

१०४. उसके बाद वह शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों
—यावत्—अन्य दूसरे भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क,
वैमानिक देव और देवियों से घिरा हुआ अपनी पूर्ण
ऋद्धि-वैभव के साथ—यावत्—वाद्यों के निर्घोष पूर्वक
अपनी उत्कृष्ट दिव्य देव गतिसे चलते-चलते जहाँ भगवान
तीर्थकर का जन्म नगर है, जहाँ जन्म भवन है, जहाँ
तीर्थकर माता है, वहाँ आ पहुँचता है, पहुँचकर भगवान
तीर्थकर को माता के पास रखता है, रखकर तीर्थकर की
प्रतिकृति का प्रतिसंहरण (लोप) करता है, लोप करके
अवस्वापिनी (मायामयी निद्रा) को वापस समेट लेता है,
समेटकर एक महामूल्यवान क्षीमयुगल (रेशमी कपड़े का
जोड़ा) और कुण्डलयुगल को भगवान तीर्थकर के
सिरहाने (उसीका की तरफ) रखता है रखकर सोने के
झूमकों वाला सोने के पतरे से मंडित, अनेक प्रकार के
मणि-रत्नों और छोटी-मोटी मालाओं के समूह से
सुशोभित, सुन्दर घड़ावट वाला एक श्रीदामगंड

देवरणो अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमिन्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-णगरंसि सिघाडग-जाव- एवं वयासी-

“हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ -जाव- जे णं देवाणुप्पिया ! तित्थयरस्स-जाव-फुट्टिही” ति कट्टु घोसणं घोसंति, घोसित्ता, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

१०७. तए णं ते बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करंति, करित्ता जेणेव नंदिस्से दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करंति, करित्ता जामेव दिंसि पाउब्भूया तामेव दिंसि पडिगया ।

—जंबु० व० ५, सु० १२३ ।

उसहेण लेहाइ-उवएसो—

१०८. तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महाराय-वासमज्जे वसइ,

तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्जे वसमाणे लेहाइ-याओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ^१ चोसट्ठिं महिलामुणे^२ सिप्पसयं च^३ कम्माणं तिण्णि^४ वि पयाहियाए उवदिसइ, ति ।

उसहस्स पव्वज्जा—

१०९. उवदिसित्ता पुत्तसयं^५ रज्जसए^६ अभिसिचइ,

अभिसिचित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्जे वसइ,

वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे, पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं, चइत्ता सुवण्णं, चइत्ता कोसं, चइत्ता कोट्ठागारं, चइत्ता बलं, चइत्ता वाहणं, चइत्ता पुरं, चइत्ता अंतेउरं, चइत्ता जणवयं, चइत्ता विउल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-संतसार-सावइज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता, दायं दाइया णं परिभाएत्ता मुदंसणाए सीयाए सदेवमणुयामुराए परिसाए सज्जणुग्गम माणमरगे संखिय-चयिकय-णंगलिय-मुहमंगलिय-पूसमाणग-वद्धमाणग-आइक्खग-लंख-मंख-घंटिय-गणेहि ताहि इट्ठाहि कंताहि पियारिहि मणुणारिहि मणामारिहि उरालारिहि कल्लारिहि सिवारिहि धरारिहि मंगल्लारिहि सस्तिरियारिहि हिययगमणिज्जारिहि हिययपल्हायणिज्जारिहि गंभीरारिहि कणमणिव्वुडकरारिहि अट्ठसइ-

स्वीकार करके देवेन्द्र देवराज शक्र के पास से बाहर आते हैं, बाहर आकर शीघ्र ही भगवान तीर्थकर के जन्म नगर के श्रृंगारों में यावत-इस प्रकार घोषणा करते हैं—

‘अरे ओ ! अनेकानेक भवनपति इत्यादि—हे देवानुप्रियो ! जो कोई तीर्थकर—यावत—टुकड़ा-टुकड़ा हो जाएगा ? इस प्रकार घोषणा करते हैं, घोषणा करके आदेशानुसार कार्य होने की सूचना देते हैं ।

१०७. तत्पश्चात् वे अनेकानेक भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव भगवान तीर्थकर का जन्म महोत्सव करते हैं, करके जहाँ नन्दीश्वर द्वीप था वहाँ आते हैं, वहाँ आकर आप्टान्हिक महा महोत्सव करते हैं और महोत्सव करके फिर वे जिस-जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में वापिस लौट गए ।

ऋषभ द्वारा लेखनादि कला का उपदेश

१०८. उसके बाद कौशलिक अर्हत् ऋषभ बीस लाख पूर्व तक कुमार-अवस्था में रहे, और इस कुमारवस्था में रहने के पश्चात् त्रैसठ लाख पूर्व पर्यन्त महाराजा रूप में रहे ।

त्रैसठ लाखपूर्व पर्यन्त महाराजा पद पर रहते हुए उन्होंने जिनमें गणित प्रथम है और शकुन-स्त अन्तिम है, ऐसी लेखन आदि बहत्तर पुरुष कलाओं, चौसठ स्त्री कलाओं और सौ शिल्पकर्मों— इन तीनों का लोकहितार्थ उपदेश दिया ।

ऋषभ की प्रव्रज्या—

१०९. उपदेश देने के पश्चात् उन्होंने अपने सौ पुत्रों का पृथक-पृथक सौ राज्यों में राज्याभिषेक किया, अभिषेक करके तेरासी लाख पूर्व पर्यन्त वे महाराजा पद पर रहे, महाराजा पद पर रहते हुए जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष, अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष, उस पक्ष की नवमी तिथि के दिन का पिछला भाग (अन्तिम प्रहर) आया तब हिरण्य (चाँदी) त्यागकर, सुवर्ण त्यागकर, कोप त्यागकर, कोष्ठागार (धान्य-भंडार) त्यागकर, सेना त्यागकर, वाहन त्यागकर, नगर त्याग कर, अन्तःपुर त्यागकर, देश त्यागकर, विपुल धन, सुवर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, माणिक तथा उत्तम साररूप द्रव्य त्यागकर तथा ये सब घृणा योग्य है, निन्दनीय है, ऐसा विचार करके और संबंधित स्वजनों में उन्हें वाँटकर सुदर्शना नामक रमणीय शिविका (पालखी) में बैठे, उसके पीछे-पीछे देव, असुर और मनुष्यों की परिपद चल रही थी, साथ में चल रहे शंखवादक, चक्रधारी, हलधारी, मुख से मंगलवचन बोलने वाले, मंगल पाठक वधाई गाने

१. सम० स० ७२, सु० ७ ।

२. जंबु० व० २, सु० ३०, टीका ।

३. जंबु० व० २, सु० ३० टीका ।

४. जीवाभि० पडि० ३, उ० ३ सु० १११

५. जंबु० व० २ सु० ३०, टीका ।

६. जंबु० व० २, सु० ३०, टीका ।

याहि अपुणस्तुत्ताहि वग्गुहि अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी—

“जय जय नंदा ! जय जय भद्रा ! धम्मेषं अभीए परीसहोव-सग्गाणं खंतिखमे भय-भेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ,” ति कट्टु अभिणंदंति य अभिथुणंति य ।

११०. तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहि पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं-जाव-णिग्गच्छइ, जहा उववाइए -जाव-आउलवोलवहुलं णमं करंते विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ ।

१११. आसिय-सम्मज्जिय-सित्त-मुइक-पुष्फोवयार-कलियं तिद्धत्य-वणविउलरायमग्गं करेमाणे हय-गय-रह-पहकरेण पाइक्कचउ-करेण य मंदं मंदं उद्धयरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्यवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ ।

ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ,

पच्चोरहित्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुयइ,

ओमुइत्ता सयमेव चउर्हि अट्टाहिं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तियाणं चउर्हि सहस्सेहिं सद्धि एणं देवदूषमादाय मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पवइए ।

—जंदु० व० २, सू० ३० ।

उसहस्स अचेलयत्तं उवसग्गसहणं य—

११२. उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छर - साहियं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए ।

११३. जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पवइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जति, तं जहा - दिव्वा वा - जाव - पडिलोमा वा अणुलोमा वा तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा - जाव - कसेण वा काए आउट्टेज्जा, अणुलोमा वंदेज्ज वा - जाव - पज्जुवासेज्ज वा ।

वाले कथक, रज्जु पर नाचने वाले चित्रपट दिखाने वाले, घंटा बजाने वाले, अपनी झण्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनहर, उदार, कल्याणकर, शिवंकर, धन्य, मांगलिक, सश्रीक हृदयगम—हृदय में आल्लाह उत्पन्न करने वाली, गंभीर, कर्ण और मन को सुखद अर्थ-पूर्ण (सार्थक) अपुनरुक्त (पुनरुक्त दोष से रहित) मुन्दर वाणी से अविच्छिन्नरूप से अभिनन्दन और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे (बोले) । ‘जय-जय नन्दा ! जय-जय भद्रा (हे आनन्द-दायिन् ! हे भद्र कल्याणशालिन् ! आप जयशाली हैं), धर्मारोधना में परिपह और उपसर्गों से भयभीत न होने वाले ! भीषण भयों को क्षमाभाव से सहन करने वाले ! आपकी धर्मसाधना निर्विघ्न सम्पन्न हो’, इस प्रकार वे भगवान का अभिनन्दन करते हैं, स्तुति करते हैं ।

११०. उस समय कौशलिक अर्हत ऋषभ चारंवार हजारों नेत्रों से देखे जाते हुए—यावत—निकलते हैं । यहाँ औपपातिक सूत्र के वर्णानुसार सर्व कथन समझना चाहिए—यावत्—जहाँ का गगन मंडल जनसमूह के कोलाहल से गुंजायमान हो रहा है, उस विनीता राजधानी के बीचों बीच निकलते हैं ।

१११. उस समय सिद्धार्थवन नामक उद्यान को जाने वाले मार्ग पानी से सींचे गए थे, साफ स्वच्छ किये गये थे, पुनः सुगंधित जल से छिड़काव किया गया था, पुष्पों से सजाए गये थे और जिन पर हाथी, घोड़े, रथों और पैदल चलने वाले लोगों के कारण धीमे-धीमे रज उड़ रही थी, इस प्रकार के मार्गों से होते हुए जहाँ सिद्धार्थवन था, जहाँ अशोक तख्तर था, वहाँ आते हैं, वहाँ पहुँचकर अशोक वृक्ष के नीचे शिविका खड़ी करते हैं । खड़ी करके शिविका में से नीचे उतरते हैं, उतरकर अपने हाथों से आभरण और अलंकारों को उतार देते हैं, उतारकर अपने हाथों से चारमुष्टि लोच करते हैं, लोच करके निर्जल षष्ठ-भक्त (उपवास) पूर्वक आषाढ नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने के समय में चार हजार उग्र, भोग और राजन्य वंशीय क्षत्रियों के साथ केवल एक देवदूष्य को लेकर, मुंडित होकर गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या स्वीकार कर ली ।

ऋषभ का अचेलकत्व एवं उपसर्ग सहन—

११२. कौशलिक अर्हत ऋषभ एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वस्त्रधारी रहे बाद में वे अचेलक हो गये थे ।

११३. जब से कौशलिक अर्हत ऋषभ मुंडित होकर गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हो गये थे, तब से कौशलिक अर्हत ऋषभ ने शरीर की शूश्रुषा करना छोड़ दिया था, देह का ममत्व छोड़ दिया था, जो कोई उपसर्ग आते जैसे कि देवकृत—यावत—प्रतिकूल या अनुकूल । उनमें वैंत—यावत्—चातुक से शरीर पर प्रहार ये प्रतिकूल उपसर्ग, वंदन यावत्—पर्युपासना करना, ये अनुकूल उपसर्ग ।

ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे अणाइले अव्वहिते अहीण-
माणसे तिविहमण-वयण-कायगुत्ते सम्मं सहइ-जाव-अहियासेइ ।

समुत्पन्न इत्त सभी उपसर्गों को उन्होंने समभाव पूर्वक,
कलुषित मना होकर (निर्मल), दुखी हुए बिना, अक्षुब्ध भाव से
मन, वचन, काया को संयमित रखकर शांतिपूर्वक अच्छी तरह
सहन किया—यावत्—अविचल—अडिग रहे ।

उसहृस्स अणगार-सरूव्हं—

ऋषभ का अनगार-स्वरूप—

११४. तए णं से भगवं समणे जाए इरियासमिए - जाव-
पारिट्ठावणिआसमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते -
जाव - गुत्तवंभयारी अकोहे - जाव -अलोहे । संते पसंते उवसंते
परिणिव्वुडे छिण्णसोए निरुव्वेलेवे ।

११४. जब से भगवान श्रमण हुए, वे ईर्या समिति—यावत्—
परिष्ठापनिका समिति, मनःसमिति, वचनसमिति, कायसमिति
से समित थे, मनोगुप्ति—युक्त-यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य को
सुरक्षित रखना) थे, क्रोध रहित—यावत्—लोभ रहित थे ।
शांत, प्रशांत, उपशांत परिनिवृत शोकरहित और अलिप्त थे ।

—जंबु० व० २, सू० ३१ ।

१. सुविमल-वर-कंस-भायणं व मुक्कतोए^१

१. अतिनिर्मल उत्तम कांसे का वर्तन जैसे पानी के संपर्क
से मुक्त रहता है वैसे ही आसक्ति पूर्ण सम्बन्ध से मुक्त ।

२. संखे विव निरंजणे विगय-राग-दोस-मोहे,

२. शंख की तरह रागादि अंजन की कालिमा से रहित
तथा राग-द्वेष और मोह से विरक्त ।

३. कुम्मो इव इंदिएसु गुत्ते,

३. कट्युए के समान इन्द्रियों का गोपन करने वाले ।

१ समणस्सोवमाकमे उवमासंखामु य एगरूव्वया नत्थि । एत्थ दट्ठव्वा पण्हावागरण —संव० ५, सु० १ । उववाइय सु० १०७ ।

- (क) १ संखमिव निरंजणे,
२ जच्चकणगं जायरूवे,
३ आदरिसपडिभागे इव पागडभावे,
४ कुम्मोइव गुत्तिदिए,
५ पुक्खरपत्तमिव निरुव्वेलेवे,
६ गगणमिव निरालंवणे,
७ अणिले इव णिरालए,

- ८ चंदो इव सोमदंसणे,
९ सूरौ इव तेअंसी,
१० विहग इव अपडिवद्धगामी,
११ सागरो इव गंभीरे,
१२ मंदरो इव अकंपे,
१३ पुढवीविव सव्वफासविसहे,
१४ जीवो इव अप्पडिहयगइत्ति ।

—जंबु० वक्ख० २ सु० ३१

- (ख) १ कंसपातीव मुक्कतोआ,
२ संख इव निरंजणा,
३ जीवो इव अप्पडिहयगइ,
४ जच्चकणगं पिव जातरूवा,
५ आदरिसफलगाविव पागडभावा,
६ कुम्मो इव गुत्तिदिया,
७ पुक्खरपत्तं व निरुव्वेलेवा,
८ गगणमिव निरालंवणा,
९ अणिलो इव निरालया,
१० चंद इव सोमलेस्सा,
११ सूर इव दित्तेआ,

- १२ सागरो इव गंभीरा,
१३ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का,
१४ मंदरइव अप्पकंपा,
१५ सारयसलिलं व सुद्धहियया,
१६ खगिदिसाणं व एगजाया,
१७ भारंडपक्खी व अप्पमत्ता,
१८ कुंजरो इव सोंडीरा,
१९ वसभो इव जायत्थामा,
२० सीहो इव दुद्धरिसा,
२१ वसुन्धरा इव सव्वफासविसहा,
२२ सुहुअहुआसणे इव तेअसा जलंता ।

—उव० सु० १७ ।

४. जच्चकंचणनं व जायरूवे,

५. पोषखरपत्तं व निखलेवे,

६. चंदो इव सोमभावयाए,

७. सूरौ व्व दित्तेए,

८. अचले जह मंदरे गिरिचरे,

९. अवलोभे सागरो व्व थिमिए,

१०. पुढवी व सव्वफासविसहे,

११. तवसा वि य भासरासिछन्नि व्व जाततेए,

१२. जलियहुयासणो विव तेयसा जलंते,

१३. गोसीसचंदणं पिव सीयले, सुगंधे य

१४. हरयो विव समियभावे,

१५. उगोसिय सुनिम्मल व आयंसमंडलतलं व पागडभावेण
सुद्धभावे,

१६. सोंडीरे कुंजरोव्व,

१७. वसभेव्व जायथामे,

१८. सीहे वा जहा मिगाहिवे होति दुप्पधरित्से,

१९. सारयसलिलं व सुद्धहियए,

२०. भारंडे चेव अप्पमत्ते,

२१. खगिगविसाणं व एगजाते,

२२. खाणुं चेव उड्डकाए,

२३. सुन्नागारे व्व अप्पडिकम्मे,

२४. सुन्नागारावणस्संतो निवाय-सरणप्पदीपज्जाणमिव
निप्पकप्पे,

२५. जहा खुरो चेव एगधारे,

२६. जहा अही चेव एगदिट्ठी,

२७. गगणमिव निरालंबे,

२८. विहग इव सव्वओ विप्पमुक्के,

२९. कय-परनिए जहा चेव उरए,

३०. अनिलो व्व अप्पडिबद्धे,

३१. जोवो व्व अप्पडिहय-गई ति ।

—पण्हावागरण, संवर० ५ सूत्र १ ।

उसहस्स पडिबंधाभावो—

११५. णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे । से पडिबंधे,
चउव्विहे भवइ तं जहा—

१ दव्वओ, २ खित्तओ, ३ कालओ, ४ भावओ ।

४. शुद्ध सुवर्ण के समान शुद्ध आत्मस्वरूप की शोभा को
प्राप्त करने वाले ।

५. कमल के पत्ते की तरह निर्लेप ।

६. चन्द्रमा के समान सौम्य स्वभाव वाले ।

७. सूर्य की तरह तेज से दैदीप्यमान ।

८. पर्वतों में प्रधान मेरु पर्वत की तरह अचल ।

९. समुद्र के समान क्षोभ रहित एवं स्थिर ।

१०. पृथ्वी की तरह सर्व प्रकार के स्पर्शों को सहन करने
वाले ।

११. तप के कारण भस्मराशि से ढकी हुई अग्नि की तरह ।

१२. प्रज्वलित अग्नि की तरह तेज से जाज्वल्यमान ।

१३. गोशीर्ष चंदन की तरह शीतल एवं सुगंधित ।

१४. हृद—सरोवर के समान शांत स्वभावी ।

१५. अच्छी तरह घिसकर चमकाए हुए निर्मल दर्पण मंडल
के तल के समान सहज स्वभाव से शुद्ध परिणाम वाले,

१६. हाथी के समान शूरवीर ।

१७. वृषभ की तरह वलिष्ठ—समर्थ ।

१८. मृगाधिपति सिंह की तरह दुर्द्धर्ष—अजेय ।

१९. शरद्वक्तु के जल के समान शुद्ध हृदय ।

२०. भारंडपक्षी की तरह प्रमाद रहित—अप्रमत्त ।

२१. गेंडे के सिंग की तरह एकाकी ।

२२. स्थाणु (ठूठ) की तरह ऊर्ध्वकाय ।

२३. सूने घर के समान शृंगार शोभा से रहित ।

२४. सूने घर के अन्दर पवन रहित स्थान में रखे हुए दीपक
की लौ की तरह निष्कंप ।

२५. जैसे छुरे की एक सरीखी धार होती है वैसे ही ध्यान
की एकाग्र धार वाले ।

२६. सर्प की तरह स्थिर दृष्टि वाले ।

२७. आकाश की तरह आलंबन रहित ।

२८. पक्षी की तरह सर्वत्र मुक्तविहारी अथवा पक्षी की
तरह सब प्रकार से परिग्रह से मुक्त ।

२९. सर्प के समान दूसरे के बनाये स्थान (आवास घर)
में निवास करने वाले ।

३०. वायु की तरह प्रतिबन्ध से रहित ।

३१. जीव की तरह अप्रतिहत गति वाले ।

ऋषभ का प्रतिबंधाभाव—

११५. उन भगवान को किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था ।
वह प्रतिबंध चार प्रकार का होता है—

१. द्रव्य-निमित्तक २. क्षेत्र-निमित्तक ३. काल-निमित्तक
४. भाव-निमित्तक ।

द्व्वओ—इह खलु माया मे, पिया मे, भाया मे, भगिणी मे, जाव-संगथसंथुआ मे, हिरण्णं मे, सुवण्णं मे-जाव-उवगरणं मे अहवा—समासओ सच्चित्ते वा, अचित्ते वा, मोसए वा द्व्वजाए—एवं तस्स ण भवइ ।

खित्तओ—गामे वा, णयरे वा, अरण्णे वा, खेत्ते वा, खले वा, गेहे वा, अंगणे वा—एवं तस्स ण भवइ ।

कालओ—समए वा, आवलियाए वा, आणापाणुए वा, थोवे वा लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरात्ते वा, पक्खे वा, मासे वा, उऊए वा, अयणे वा, संवच्छरे वा, अन्नयरे वा दीहकाले पडिबंधे—एवं तस्स ण भवइ ।

भावओ—कोहे वा-जाव-लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ ।

उसहस्स विहारो—

११६. से णं भगवं वासावासवज्जं हेमंतगिन्हासु गामे एगराइए, णयरे पंचराइए ववगय-हास-सोग-अरइ-भय-परित्तासे णिम्ममे णिर-हंकारे लहुभूए अंगथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुम्मि कंचणम्मि य समे इहलोए परलोए य अपडिबद्धे जीविय-मरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए अब्बुट्ठिए विहरइ ।

उसहस्स केवलनाणं—

११७. तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वास-सहस्से विड्वक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नयरस्स वहिया सगडमुहंति उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे ज्ञाणंतरियाए वट्टमाणस्स फग्गुणवहुलस्स इक्कारसीए पुट्टवण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं णाणेणं जाव-अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं अणुत्तराए भावणाए खंतीए, गुत्तीए, मुत्तीए, तुट्ठीए अणुत्तरेणं अज्जवेणं मट्ठवेणं लाघवेणं सुचरियसोवचिय-फल-निव्वाणमगेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिउण्णे केवलवरनाणदंतणे समुप्पणे ।

११८. जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी

सणेरइय-तिरिय-नरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तं जहा—

द्रव्य प्रतिबंध—यह मेरी माता है, यह मेरे पिता है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बहन है—यावत्—यह मेरे स्वजन, संबंधी परिचित है, यह मेरा हिरण्य है, यह मेरा सुवर्ण है—यावत्—उपकरण है । अथवा संक्षेप में इसका वर्णन करते हैं—यह सचित्त, अचित्त या मिश्रद्रव्य मेरे हैं—ये संकल्प उनको नहीं होते थे ।

क्षेत्र प्रतिबंध—गांव अथवा नगर, अथवा अरण्य, अथवा खेत, अथवा खलिहान, अथवा घर, अथवा आंगन—मेरा है, ऐसा उनको समत्व नहीं था ।

काल प्रतिबंध—समय, आवली, श्वासोच्छ्वास, स्तोत्र, लव मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा उससे भी दीर्घ काल में उनको प्रतिबंध—समत्व भाव नहीं था ।

भाव प्रतिबंध—क्रोध—यावत्—लोभ, भय, हास्य आदि—इन सब के बारे में उन्हें कोई प्रतिबंध—समत्व भाव नहीं था ।

ऋषभ का विहार—

११६. वे भगवान वर्षावास के अतिरिक्त हेमन्त और ग्रीष्मऋतु में एक रात और नगर में पांच रात रहते थे, वे हास्य, शोक, अरति, भय, त्रास से मुक्त होकर, निर्मम (समत्व रहित) निरहंकार, लघुभूत (हल्के-निर्लोभी) परिग्रह रहित रंसे से छीलने वाले के प्रति द्वेष रहित और चन्दन का लेप करने वाले के प्रति राग-रहित, मिट्टी के ढेले या कंचन में समभावी । इहलोक और परलोक के बंधन से रहित, जीवन और मरण के प्रति निःस्पृह, संसार-पार-गामी (संसार से पार होने वाले) और कर्म सम्बन्ध का नाश करने के लिए उद्यत होकर विहार करते थे ।

ऋषभ को केवलज्ञान—

११७. इस तरह विहार करते हुए एक हजार वर्ष वीत जाने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख उद्यान में श्रेष्ठ वट वृक्ष के नीचे ध्यानान्तरिका में लीन रहते हुए फाल्गुन कृष्णा एकादशी के पूर्वाह्नकाल में जब उन्होंने निर्जल अष्टमभक्त किया हुआ था उस समय उत्तरापादा नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग हो गया था तब सर्वोत्कृष्ट ज्ञान—यावत्—सर्वोत्कृष्ट चारित्र की साधना करते हुए सर्वोत्कृष्ट तप, बल, वीर्य, निर्दोष वसतिकाम में विहार करते सर्वोत्कृष्ट भावना, क्षमा, गुप्ति, इन्द्रिय निग्रह मुक्ति—निष्पृहता-तुष्टि—सन्तोष, सर्वोत्कृष्ट आर्जव, मार्दव और लाघव के माथ मुचरित एवं सुपुष्ट फल वाले निर्वाण मार्ग की साधना करते हुए आत्मचिन्तन में लीन हो रहे थे, उस समय भगवान को अनन्त, अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) आवरण रहित, अखंड, प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवल ज्ञान—केवलदर्शन उत्पन्न हुए ।

११८. वे जिन, केवली; सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए ।

वे नरक लोक, तिर्यग् लोक, मनुष्य लोक और देवलोक के समस्त पदार्थों के स्वरूपों को जानने—देखने लगे । यथा—

आगई गई ठिई चवणं उववायं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं
रहोकम्मं तं तं कालं मण-वय-काए जोगे एवमादी ।

जीवाण वि सव्वभावे अजीवाण वि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स
विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलुं मोक्खमग्गे मम
अणोसि च जीवाणं हिय-सुह-णिस्सेयसकरे सव्वदुक्ख-विमोक्खणे
परमसुहसमाणे भविस्सइ^१

उसहेण तित्थपवत्तणं—

११६. तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य पंच
महव्वयाइं सभावणगाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसेमाणे विहरइ,
तं जहा—

पुढवीकाइए भावणागमेणं पंच महव्वयाइं सभावणगाइं
भाणियव्वाइं^२ ति ।

—जंबु० व० २ सू० ३१ ।

उसभेणं अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पणीए णवहि
सागरोवमकोडाकोडीहि वीइक्कंताहि तित्थे पवत्तिन्ते ॥

—ठाणं अ० ६, सु० ६६७ ।

उसहस्स गणहराइसंपया—

१२०. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरात्ती गणा गणहरा
होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण-पामोक्खाओ
चुलसीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी-सुंदरी-पामोक्खाओ
तिण्ण अज्जियासयसाहस्सीओ अज्जियासंपया होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जंस-पामोक्खाओ तिण्ण
समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया
समणोवासगसंपया होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभद्दा-पामोक्खाओ पंच
समणोवासिया सयसाहस्सीओ चउपणं च सहस्सा उक्कोसिया
समणोवासिया संपया होत्था ।

१२१. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं जिणसंकासाणं
सव्ववखर-संनिवाईणं जिणो विव अचित्तहं वागरमाणाणं चत्तारि

किसी का आगमन, गमन, स्थिति, च्यवन, उत्पत्ति, भोजन, क्रिया,
सेवन, प्रकट किए हुए कर्म, गुप्त रूप से किए हुए कर्म, उस समय
के मन, वचन और काया के सभी व्यापारों आदि को ।

जीवों के सभी भावों, अजीवों के सभी भावों तथा 'ग्रह
मोक्षमार्ग मेरे लिए तथा अन्य जीवों के लिए हितकर, सुखकर,
कल्याणकर, सर्व दुःखों से मुक्ति दिलाने वाला और परम सुखरूप
होगा ।' इस प्रकार मोक्षमार्ग के विशुद्धतर भावों को जानने-
देखने लगे ।

ऋषभ का तीर्थ प्रवर्तन—

११६. तव वे भगवान श्रमण निर्ग्रन्थियों को और निर्ग्रन्थियों को
भावना सहित पांच महाव्रतों का तथा छह जीवनिकाय की
रक्षारूप धर्म का उपदेश देते हुए विचरने लगे, यथा—

यहाँ पृथ्वीकायिक आदि छहजीवनिकायों एवं भावना सहित
पांच महाव्रतों का स्वरूप वर्णन (आचारांग के अनुसार) करना
चाहिए ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ ने इस अवसर्पिणी में नी सागरोपम
कोटाकोटि वर्ष वीतने के पश्चात् तीर्थ प्रवर्तन किया ।

ऋषभ की गणधरादि संख्या—

१२०. कौशलिक अर्हत ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी
गणधर थे ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार
श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के ब्राह्मी, सुन्दरी प्रमुख तीन लाख
आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पांच
हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के सुभद्रा प्रमुख पांच लाख चौपन
हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका संपदा थी ।

१२१. कौशलिक अर्हत ऋषभ के संघ में चार हजार सात सौ
पचास जिन नहीं पर जिन सदृश सर्वाक्षर संयोगवेदी, जिन

१ उसभे णं अरहा कोसलिए एणं वाससहस्सं निच्चं वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा -जाव-अप्पाणं भावेमाणस्स एक्कं
वाससहस्सं विइक्कंतं तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणवहुलस्स तस्स णं फग्गुणवहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं
पुव्वण्हकालसमयांसि पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं
आसाढाहि नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं ज्ञाणंतरियाए वट्ठमाणस्स अणंते- जाव -जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

—कप्प० सु० १६६ ॥

२ आया० सु० २ अ० १५, सु० ७३३-७६२ ।

चउद्दसपुव्वीसंहस्सा अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिया चउद्दसपुव्वीसंपया होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स णव ओहिणाणि-सहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणिसंपया होत्था ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं जिणसहस्सा, वीसं वेउव्विय-सहस्सा छच्च सया उक्कोसिया जिणसंपया वेउव्वियसंपया होत्था ।

वारस विउलमइ-सहस्सा छच्च सया पण्णासा,
वारस वाइसहस्सा छच्च सया पण्णासा ।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स गइकल्लाणाणं डिइकल्लाणाणं आगमेसिभट्ठणं बावीसं अणुत्तरोव-वाइयाणं सहस्सा णव य सया उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था ।

उसहकाले सिद्धा—

१२२. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा,

चत्तालीसं अज्जियासहस्सा सिद्धा,
सट्ठिअंतेवासिसहस्सा सिद्धा ।

उसह-अणगाराण वण्णओ—

१२३. अरहओ णं उसभस्स बह्वे अंतेवासी अणगारा भगवंतो अप्पेगइया मासपरियाया—जहा उववाइए सव्वो अण-गारवण्णओ जाव-उद्धं जाणू अहो सिरा ज्ञाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।^१

अंतकरभूमि—

१२४. अरहओ णं उसभस्स दुविहा अंतकरभूमी होत्था तं जहा—

१ जुगंतकरभूमी य, २ परियाअंतकरभूमी य ।

जुगंतकरभूमी-जाव-असंखेज्जाइं पुरिसजुगाइं ।

परियाअंतकरभूमी अंतोमुहुत्तपरियाए अंतमकासी ।^२

—जंबू० व० २, सूत्र ३१ ।

उसहस्स संघयणाइं कुमारवासाइं णिव्वाणं च—

१२५. उसभे णं अरहा कोसलिए वज्जरिसहनारयत्तंघयणे समचउरंस-संठाणसंठिए पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था ।^३

१२६. उसभेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसित्ता तेसंठिं पुव्वसयसहस्साइं महारज्जवासमज्जे वसित्ता^४

भगवान की तरह यथार्थ प्रतिपादन करने वाले चौदह-पूर्व के ज्ञाताओं की उत्कृष्ट शिष्य संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के नौ हजार अवधिज्ञानी मुनियों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के बीस हजार जिन और बीस हजार छह सौ वैक्रिय लब्धिधारी शिष्यों की उत्कृष्ट संपदा थी ।

इसी प्रकार बारह हजार छह सौ पचास विपुलमति मनः पर्यायज्ञानियों और बारह हजार छह सौ पचास वाद-कला में निपुण शिष्यों की संपदा थी ।

कौशलिक अर्हत ऋषभ के कल्याणकारी गति और स्थिति वाले तथा जिनका भविष्य भद्र है और आगामी भव में अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले हैं ऐसे शिष्यों की उत्कृष्ट संपदा वीस हजार नौ सौ थी ।

ऋषभ के काल में सिद्ध—

१२२. कौशलिक अर्हत ऋषभ के बीस हजार ध्रमण शिष्य सिद्ध हुए थे ।

चालीस हजार आर्यिकार्ये सिद्ध हुई थी ।

साठहजार शिष्य सिद्ध हुए थे ।

ऋषभ के अनगारों का वर्णन—

१२३. ऋषभ अर्हत के अनेकानेक अनगार शिष्यों में से कितने ही एक मास की दीक्षा-पर्यायवाले थे—यावत्—(औपपातिक सूत्र के अनुसार वर्णन) वे सभी शिष्य ऊर्ध्वजानु, मस्तक झुकाये हुए, ध्यान रूपी कोठ में प्रविष्ट होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

अन्तकर भूमि—

१२४. ऋषभ अर्हत की दो प्रकार की अन्तकर भूमि थी, वे इस प्रकार—

१—युगान्तकरभूमि २—पर्यायान्तकरभूमि ।

युगान्तकर भूमि असंख्य पुरुष युग तक चलती रही ।

पर्यायान्तकर भूमि का-अन्तर्मुहूर्त में अंत आया ।

ऋषभ का संहननादि कुमारवान एवं निर्वाण—

१२५. कौशलिक अर्हत ऋषभ का वज्रऋषभनाराच संहनन था, समचतुस्रसंस्थान था और पांच सौ धनुष की उनकी ऊंचाई थी ।

१२६. ऋषभ अर्हत बीस लाख पूर्व तक कुमार-वय में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष महाराजा रूप में रहे, इस प्रकार तेरासी लाख

३ ठाणं अ० ५, उ० २, सु० ४३५ । सम० स० ५०० सु० ३ ।
४ सम० स० ६३, सु० १ ।

१ कप्प० सु० १६७ ।

२ कप्प० सु० १६८ ।

तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्जे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए^१

उसभे णं अरहा एगं वासहस्सं छउमत्थ-परियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वास-सहस्सुणं केवल्लिपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वहुपडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता^२—

जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसी पक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावय-सेलसिहरंसि चोदसमेणं भत्तेणं अपणुणएणं संपलियं क-निसण्णे पुव्वण्हकाल-समयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसम-इसमाए समाए एगुण-णवऊइईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइवकंते-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ।^३

सककाइदेविद-कय-निव्वाणमहिमा—

१२७. जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगएवीइवकंते समुज्जाए छिण्ण-जाइ-जरा-मरण-बंधणे सिद्धे बुद्धे-जाव-सव्वदुक्ख-प्पहीणे तं समयं च णं सककस्स देविदस्स देवरण्णे आसणं चलिए ।

तए णं से सकके देविदे देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउजइ, पउजित्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता एवं वयासीः—

“परिणिव्वुए खलु जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए—तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पणमणगयाणं सककाणं देविदाणं देवराईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिमं करेतए ।

तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाण-महिमं करेमि त्ति” कट्ठु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तोसाए तायत्तोसएहिं चउहिं लोगपालेहिं - जाव - चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं य वहीहिं सोहम्मकप्प-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए- जाव- तिरियमसखेज्जाणं दीवसमुदाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विमणे णिराणं दे अंसुपुण्ण-णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णज्जवासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमःणे - जाव - पज्जुवासइ ।

पूर्व वर्ष गृहवास में रहकर मुंडित हुए और गृह को त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए ।

ऋषभ अर्हत एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व वर्ष पर्यन्त केवली पर्याय में रहे, इस प्रकार समग्ररूप से चौरासी लाख पूर्व का पूर्ण आयुष्य भोग करके—

जव हेमन्त ऋतु का तीसरा मास, पाँचवा पक्ष अर्थात् माघ मास का कृष्ण पक्ष आया, उस माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन पूर्वान्ह में दस हजार अनगारों के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर चौदह भक्त (६ उपवास) का तप करते हुए चन्द्र का अभिजित नक्षत्र के साथ योग होते ही सुषम-दुषम काल के नवासी पक्ष शेष थे तब कालधर्म को प्राप्त हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए ।

शक्रादि देवेन्द्र-कृत निर्वाण महोत्सव—

१२७. जिस समय कौशलिक ऋषभ अर्हत काल धर्म को प्राप्त हुए, उनके जन्म, जरा, मरण के बंधन छिन्न हुए, सिद्ध, बुद्ध हुए—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुए, उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र का आसन चलित हुआ ।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र अपना आसन चलायमान होता हुआ देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त करता है, प्रयोग करके अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थकर के दर्शन करता है, दर्शन करके इस प्रकार कहता है—

‘जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरतवर्ष में कौशलिक ऋषभ अर्हत निर्वाण को प्राप्त हुए हैं; तो भूत, वर्तमान और भविष्य काल के देवेन्द्र देवराज शक्रों का ऐसा परंपरागत आचार है कि तीर्थकर का निर्वाण महोत्सव करें तो मैं भी भगवान तीर्थकर का निर्वाण महोत्सव करने जाऊँ—ऐसा सोचकर वह वंदना करता है नमस्कार करता है, वंदना-नमस्कार करके चौरासी हजार सामानिक देवों, तैतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों—यावत्—चतुर्गुणित (८४००० × ४ = ३,३६,०००) चौरासी हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे अनेकानेक सीधर्म कल्पवासी वैमानिक देव और देवियों के साथ उत्कृष्ट गति से—यावत्—तिर्यक्लोक के असंख्य द्वीप समुद्रों के ठीकमध्य भाग में होकर जहाँ अष्टापद पर्वत है, जहाँ तीर्थकर भगवान का शरीर है, वहाँ आया; वहाँ आकर विपण्णमन, निरानन्द अश्रुपुरितनेत्रों से तीर्थकर शरीर की तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा करके न अतिदूर और न अति समीप बैठकर श्रुश्रु पा—यावत्—पर्युपासना करने लगा ।

१ सम० म० ८३, सु० ४ ।

२ सम० म० ८६, सु० १ । कण्ठ० सु० १६६ ।

३ सम० म० ८४, सु० ३ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तर-
ड्डलोगाहिवई अट्ठावीस-विमाण-सयसहस्साहिवई सुलपाणी
वसह्वाहणे सुरिंदे अरयंवर-वत्थधरे-जाव-विउलाइं भोगभोगाइं
भुंजमाणे विहरइ ।

१२८. तए णं तस्स ईसाणस्स देविंदस्स देवरणो आसणं चलइ,

तए णं से ईसाणे -जाव -देवराया आसणं चलियं पासइ,
पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थगरं ओहिणा
आभोएइ, आभोइत्ता जहा सक्के नियगपरिवारेणं भाणयव्वो
- जाव - पज्जुवासइ ।

१२९. एवं सव्वे देविंदा - जाव - अच्चुए गियग-परिवारेणं
आणयव्वा, एवं-जाव-भवणवासीणं वीस इंदा, वाणमंतराणं सोलस,
जोइसियाणं दोण्णि, गियग-परिवारा णयव्वा !

१३०. तए णं सक्के देविंदे देवराया ते बहुवे भवणवइ-वाणमंतर-
जोइस-वेमाणिए देवे एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुपिप्पया ! णंदणवणाओ सरसाइं
गोसीसवरचंदणकट्ठाइं साहरह, साहरित्ता तओ चिइगाओ रएह-
१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं
अणगाराणं ।

तए णं ते भवणवइ -जाव -वेमाणिया देवा णंदणवणाओ
सरसाइं गोसीस-वर-चंदणकट्ठाइं साहरंति, साहरित्ता तओ
चिइगाओ रएंति, १ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं,
३ एगं अवसेसाणं अणगाराण ।

१३१. तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ,
सद्दावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पया ! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं
साहरह ।”

तए णं ते आभिओगा देवा खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं
साहरंति ।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं
पहणेइ, पहाणित्ता सरसेणं गोसीस-वर-चंदणेणं अणुलिंइ,
अणुलिंपित्ता हंसलक्खणं पडसाडयं गियंसई, गियंसित्ता सव्वालंकार
-विभूतियं करेइ ।

तए णं ते भवणवइ - जाव - वेमाणिया-गणहर-सरीरगाइं
अणगार सरीरगाइं पि खीरोदगेणं पहावेंति. पहावित्ता सरसेणं
गोसीस-वर-चंदणेणं अणुलिंपति अणुलिंपित्ता अहयाइं दिव्वाइं

उस काल उस समय में ईशान देवेन्द्र देवराज जो उत्तरार्ध-
लोक का अधिपति, अट्ठाईस लाख हजार विमानों का स्वामी,
जिसके हाथ मेंशूल था, वृषभ जिसका वाहन था, रजरहित आकाश
जैसे निर्मल वस्त्र पहने हुए था—यावत्—विपुल भोगों को
भोगता हुआ रह रहा था ।

१२८ उस समय उस देवेन्द्र देवराज ईशान का आसन चलायमान
हुआ ।

तव ईशान देवेन्द्र देवराज अपना आसन चलायमान
होता हुआ देखकर अवधिज्ञान का प्रयोग करता है, प्रयोग करके
तीर्थकर भगवान को अवधिज्ञान से देखता है, देखकर जैसे शक्र
अपने परिवार के साथ आया आदि कहा है उसीप्रकार यहाँ भी
वर्णन करना चाहिए—यावत्—पर्युपासना करने लगा ।

१२९. इसी प्रकार सभी इन्द्र—यावत्—अच्युतेन्द्र पर्यन्त अपने
परिवार सहित आये । इसी प्रकार भवनवासी देवों के वीस इन्द्र,
वाणव्यंतर देवों के सोलह इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के दो इन्द्र, अपने
परिवार सहित आये; ऐसा जानना चाहिये ।

१३०. उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र उन अनेक भवनपति
वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों को इस प्रकार
कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही नन्दनवन से सरस श्रेष्ठ
गंशीर्ष चन्दन के काष्ठ लाओ, लाकर चितायें बनाओ—१. एक
तीर्थकर भगवान की, २. एक गणधरों की, ३. एक शेष
अनगरों की।’

तव वे भवनपति यावत्-वैमानिक-देव, नन्दनवन से सरस
श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन काट लाते हैं, लाकर तीन चिताएँ रचते हैं,
१. एक भगवान तीर्थकर की, २. एक गणधरों की, ३. एक
शेष अनगरों की ।

१३१. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र आभियोगिक देवों को
बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक
लाओ ।

तव वे आभियोगिक देव क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक लेकर
आते हैं ।

इसके बाद वह देवेन्द्र देवराज शक्र तीर्थकर के शरीर को
क्षीरोदक से स्नान कराता है, स्नान कराके सरस श्रेष्ठ गोशीर्ष
चन्दन से लेप करता है, लेप करके हंस समान श्वेत वस्त्र
पहिनाता है और सर्व अलंकारों से विभूषित करना है ।

तव भवनपति यावत् वैमानिक देव गणधरों एवं अनगरों के
शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराते हैं, स्नान कराकर सरस
गोशीर्ष चन्दन से लेप करते हैं, लेप करके नंपूर्ण दिव्य देव रूप

देवदूसजुयलाइं णियंसंति, णियंसित्ता सव्वालंकारविभूसियाइंकरेति ।

१३२. तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते वहवे भवणवइ - जाव - वेमाणिए देवे एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ईहाभिग-उत्तभ-तुरय-जाव-वणलय-भत्तिचित्ताओ तओ सिवियाओ विउव्वह,

“१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं ।”

तए णं ते वहवे भवणवइ- जाव -वेमाणिया तओ सिवियाओ विउव्वंति—

१ एगं भगवओ तित्थगरस्स, २ एगं गणहराणं, ३ एगं अवसेसाणं अणगाराणं ।

१३३. तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणं दे असुपुण्ण-णयणे भगवओ तित्थगरस्स विणट्ठ-जम्म-जरा-मरणस्स सरीरगं सीयं आरुहेइ, आरुहित्ता चिइगाए ठवेइ ।

तए णं ते वहवे भवणवइ- जाव -वेमाणिया देवा गणहराणं, अणगाराणं य विणट्ठ-जम्म-जरा-मरणाणं सरीरगाइं सीयं आरुहेति, आरुहित्ता चिइगाए ठवेति ।

१३४. तए णं से सक्के देविंदे देवराया अग्गिकुमारे देवे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वह, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिण्ह ।”

तए णं ते अग्गिकुमारा देवा विमणा णिराणं दा असुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अगणिकायं विउव्वंति ।

१३५. तए णं से सक्के देविंदे देवराया वाउकुमारे देवे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अ वाउक्कायं विउव्वह, विउव्वहइत्ता अगणिकायं उज्जालेह, तित्थगरसरीरगं गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइं च ज्ञामेह ।”

तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा णिराणं दा असुपुण्ण-णयणा तित्थगरचिइगाए-जाव-विउव्वंति अगणिकायं उज्जालेति तित्थगरसरीरगं-जाव-अणगारसरीरगाणि अ ज्ञामेति ।

युगल (जोडी) वस्त्र पहिनाते हैं, पहिनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित करते हैं ।

१३२. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र उन अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों को इस प्रकार कहता है—

हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही ईहामृग, वृषभ, तुरंग—यावत्—वनलता आदि के चित्रोंवाली ऐसी तीन शिविकायें बनाओ—

एक भगवान् तीर्थकर के लिये, दूसरी गणधरों के लिये और तीसरी शेष अनगारों के लिये ।

तव वे अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव तीन शिविकाओं की विकुर्वणा करते हैं—

१. एक भगवान् तीर्थकर के लिए, २. एक गणधरों के लिए, ३. एक अवशेष अनगारों के लिए ।

१३३. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र उदास, आनन्द रहित और अश्रुपूरित नयनों से जिनके जन्म, जरा, मरण नष्ट हो गये हैं ऐसे तीर्थकर भगवान् के शरीर को शिविका में रखता है रखकर चित्ता में स्थापित करता है ।

उसी प्रकार वे अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देव जिनके जन्म, जरा और मरण नष्ट को हो चुके हैं ऐसे गणधरों और अनगारों के शरीरों को शिविकाओं में रखते हैं और रखकर चित्ता में स्थापित करते हैं ।

१३४. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र अग्निकुमार देवों को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तीर्थकर की चित्ता हैं—यावत्—अनगारों की चित्ताओं में विकुर्वणा शक्ति से अग्नि प्रकट करो प्रकट करके मुझे सूचित करो ।’

तव वे अग्निकुमार देव विषण्णमन, निरानन्द चित्त—अश्रुपूरितनयनवाले होकर तीर्थकर की चित्ता—यावत्—अनगारों की चित्ताओं में अग्निकाय की विकुर्वणा करते हैं ।

१३५. तदनन्तर वह देवेन्द्र देवराज शक्र वायुकुमार देवों को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही तीर्थकर की चित्ता में—यावत्—अनगारों की चित्ताओं में वायुकाय की विकुर्वणा करो, विकुर्वणा करके अग्नि को प्रज्वलित करो और तीर्थकर के शरीर को, गणधरों के शरीरों को और अनगारों के शरीरों को जलाओ ।

तव वे वायुकुमार देव विमना—खिन्न मना, निरानन्द और साश्रुनयन होकर तीर्थकर चित्ता में—यावत्—विकुर्वणा करके अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और तीर्थकर शरीर को यावत्—अनगारों के शरीरों को जलाते हैं ।

१३६. तए णं से सक्के देविदे देवराया ते बह्वे भवणवइ-जाव-वेमाणिए देवे एणं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगाए-जाव-अणगारचिइगाए अगुरु-तुरुक्क-घय-मधुं च कुं भग्गतो भारग्गतो अ साहरह ।”

तए णं ते भवणवइ-जाव-तित्थगर-जाव-भारग्गतो अ साहरंति ।

१३७. तए णं से सक्के देविदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थगरचिइगं-जाव-अणगारचिइगं च खीरोदणेणं णिव्वावेह ।”

तए णं ते मेहकुमारा देवा तित्थगरचिइगं-जाव-णिव्वावेति ।

१३८. तए णं से सक्के देविदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोअणदे वइरोअणराया हिट्ठिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ-जाव-वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तोए केइ जीअमेअं ति कट्टु केइ धम्मो ति कट्टु गेण्हंति ।

१३९. तए णं से सक्के देविदे देवराया बह्वे भवणवइ-जाव-वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सव्वरयणाए महइमहालए तओ चेइअथूमे करेह, एणं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एणं गणहरचिइगाए, एणं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए ।”

तए णं ते बह्वे-जाव-करंति ।

१४०. तए णं ते बह्वे भवणवइ-जाव-वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करंति, करित्ता जेणेव नंदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति ।

१४१. तए णं से सक्के देविदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगव्वए अट्टाहिअं महामहिमं करेति ।

तए णं सक्कस्स देविदस्स देवरणो चत्तारि लोगपाला चउमु दहिमुहगपव्वएसु अट्टाहिअं करंति, ईसाणे देविदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्टाहिअं, तस्स लोगपाला चउमु दहिमुहगेसु अट्टाहिअं, चमरो अ दाहिणिल्ले अंजणगे, तस्स लोगपाला, दहिमुहगपव्वएसु, बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे, तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु ।

१३६. तदनन्तर उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों को इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तीर्थकर की चिता में—यावत्—अनगारों की चिताओं में अगुरु, तुरुष्क, घृत, मधु को अनेक कुम्भ प्रमाण और भार प्रमाण लेकर डालो ।’

तब वे भवनपति—यावत्—तीर्थकर की चिता में—यावत्—भार प्रमाण डालते हैं ।

१३७. इसके बाद वह देवेन्द्र देवराज शक्र मेघकुमार देवों को बुलाकर इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही तीर्थकर की चिता को यावत्—अनगारों की चिता को क्षीरोदक से बुझा दो, शत कर दो ।’

तब वे मेघकुमार देव तीर्थकर की चिता को—यावत् बुझा देते हैं, ठंडा कर देते हैं ।

१३८. तदनन्तर उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने तीर्थकर भगवान की ऊपर की दाहिनी दाढ़ ग्रहण की, ईशान देवेन्द्र देवराज ने उपर की बायी दाढ़ ग्रहण की, चमर असुरेन्द्र असुरराज ने निचली दाहिनी बाजू की दाढ़ ग्रहण की, बलि नामक वैरोचनेन्द्र ने नीचे की बायी दाढ़ा ग्रहण की और शेष भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों में से कोई जिनभक्ति से, कोई यह हमारा परंपरागत आचार है के विचार से, कोई हमारा धर्म है इस अभिप्राय से यथा योग्य अवशिष्ट अंगोपांगो की अस्थियां लेते हैं ।

१३९. इसके बाद उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने अनेक भवनपति—यावत्—वैमानिक देवों को यथायोग्य इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो । तुम शीघ्र ही समग्रत्त्व से रत्नमय दशनीय महा-आलय वाले तीन चैत्यस्तूपों को बनाओ, इनमें से एक तीर्थकर भगवान की चिता पर, दूसरा गणधरों की चिता पर और तीसरा अवशेष अनगारों की चिता पर ।

तब वे अनेकानेक-स्तूप यावत्-निर्माण करते हैं ।

१४०. तदनन्तर वे अनेकानेक भवनपति-यावत्-वैमानिकदेव तीर्थकर का परिनिर्वाण महोत्सव करते हैं, महोत्सव करके जहां नंदीसर द्वीप था, वहाँ आते हैं ।

१४१. तत्पश्चात् वह देवेन्द्र देवराज शक्र पूर्व दिशा के अंजनक पर्वत पर आठ दिन का महोत्सव करता है ।

उस शक्र देवेन्द्र देवराज के चार लोकपाल चार दधिभुग पर्वतों पर आठ दिन का महोत्सव करते हैं, ईशान देवेन्द्र देवराज ने उत्तर दिशा के अंजनक पर्वत पर, आठ दिन का महोत्सव किया, उसके लोकपालों ने चार दधिभुग पर्वतों पर चमरने दक्षिण दिशा के अंजनक पर्वत पर, उनके लोकपालों ने दधिभुग पर्वतों पर, बलि ने पश्चिम दिशा के अंजनक पर्वत पर और उनके लोकपालों ने दधिभुग पर्वतों पर आठ दिन का महोत्सव किया ।

तए णं ते वहवे भवणवइ-वाणमंतर-जाव-अट्टाहिआओ
महामहिमाओ करेति, करित्ता जेणेव साइं साइं विमाणाइं,
जेणेव, साइं साइं भवणाइं, जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ,
जेणेव सगा सगा, माणवगा चेइअखंभा तेणेव उवागच्छंति
उवागच्छत्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण-सकहाओ
पविखवन्ति, पविखवित्ता अग्गेहिं वरोहिं गंधेहिं अ मल्लेहिं अ
अच्चेति, अच्चित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

—जंबु० व० २ सु० ३३

। इइ उसह-जिण-चरियं ।



इसके बाद वे अनेक भवनपति वाणव्यंतर आदि आठ दिन
का महोत्सव करते हैं, महोत्सव करके जहाँ अपने-अपने विमान हैं,
जहाँ अपने-अपने भवन हैं, जहाँ अपनी-अपनी सुधर्मा सभाये हैं,
जहाँ अपने-अपने माणवक चैत्यस्तभ हैं वहाँ आते हैं, आकर वज्र
रत्नों से निर्मित गोल डिब्बों में जिन भगवान की अस्थियों को
रखते हैं, रखकर उत्तम और उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थों एवं मालाओं
से उनकी अर्चना करते हैं, अर्चना करके विपुल भोगोपभोगों को
भोगते हुए विचरण करते हैं ।

। ऋषभ-जिन-चरित्र समाप्त ।



३. मल्ली-जिण-चरियं

महब्बले राया तस्स य छ बालवयंसा—

१४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे महाविदेहे वासे
मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, निसदस्स वासहर-पव्वयस्स
उत्तरेणं, सीओदाए महानदीए दाहिणेणं, सुहावहस्स वक्खार-
पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिम-लवणसमुदस्स पुरत्थिमेणं एत्थ
णं सलिलावई नामं विजए पणत्ते ।

तत्थ णं सलिलावईविजए वीयसोगा नामं रायहाणी पन्नत्ता,
नव-जोयण-वित्थिण्णा-जाव-पच्चक्खं देवलोगभूया । तीसे णं
वीयसोगाए रायहाणीए उतरपुरत्थिमे विसीभाए इंदकुंभे नामं
उज्जाणे । तत्थ णं वीयसोगाए रायहाणीए वले नामं राया ।
तस्स धारिणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्था ।

तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे
पासित्ताणं पडिबुद्धा-जाव-महब्बले दारए जाए उम्मुक्क-
वालभावे-जाव-भोग-समत्थे ।

तए णं तं महब्बलं अम्मा-पियरो सरिसियाणं कमलसिरि-
पामोक्खाणं पंचण्हं रायवर-रत्ता-सयाणं एग-दिवतेणं पाणि
णेह्वावेति । पंच पासाय-सया पंच-सओ दाओ-जाव-भाणुस्सए
काम-भोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

१४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसडा ।
परिसा निग्गया । बलो वि निग्गओ । धम्मं सोच्चा निसम्म
हट्ठ-तुट्ठे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ
नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-

३. मल्ली-जिन-चरित्रं

महावल राजा और उसके छह बालमित्र—

१४२. उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप में महाविदेह वर्ष
(क्षेत्र) में मंदर पर्वत की पश्चिम दिशा में, वर्षधर निषध पर्वत
की उत्तरदिशा में, सीतोदा महानदी की दक्षिणदिशा में
सुखावह वक्षस्कार पर्वत की पश्चिम दिशा में, पश्चिम लवणसमुद्र
की पूर्व दिशा में सलिलावती नामक विजय था ।

उस सलिलावती विजय में नौ योजन विस्तार-वाली-यावत्-
प्रत्यक्ष में देवलोक के समान प्रतीत होने वाली वीतशोका नामक
राजधानी हैं । उस वीतशोका राजधानी की उत्तर-पूर्व दिशा-
ईशानकोण—में इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान है । उस वीतशोका
राजधानी में बल नामक राजा हैं । धारिणी आदि एक हजार
रानियों का उसकाअन्तःपुर हैं ।

किसी एक समय सिंह का स्वप्न देखकर बहू धारिणी रानी
जाग गई—यावत्—महावल नामक पुत्र को जन्म दिया जो
को बाल्यावस्था पूर्णकर-यावत्-भोग भोगने में समर्थ हुआ ।

तदनन्तर माता-पिता ने उस महावल का एकही दिन, समान
कुल-वयवाली कमलश्री आदि पाँच सौ राजकन्याओं के साथ
पाणिग्रहण कर दिया । पाँच सौ प्रासाद, पाँच सौ प्रमाण दाय-
दहेज प्राप्त हुआ-यावत्-मनुष्य भव सम्बन्धि काम-भोगों का भोगो-
पभोग करते हुए समय-यापन करने लगे ।

१४३. उस काल एवं उस समय में इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविरों
का पदार्पण हुआ । परिपदा (धर्म सुनने को) निकली । बल राजा
भी निकला । धर्म का श्रवण एवं ग्रहण कर हृष्ट-तुष्ट होकर
स्थविरों को तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदना-नम-
स्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

सहहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जं-नवरं महव्वलं कुमारं ठावेमि । तओ पच्छा-देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि

‘अहासुहं देवाणुप्पिया’ ! -जाव-एक्कारसंग-वी । बहूणि वासाणि, सामण्णपरियायं पाउणित्ता, जेणेव चारु-पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मासिएणं भत्तेणं सिद्धे ।

१४४. तए णं सा कमलसिरी अण्णया कयाइ सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा-जाव-बलभद्दो कुमारी जाओ । जुवराया यावि होत्था ।

१४५. तस्स णं महाव्वलस्स रण्णो इमे छ-प्पिय बाल-वयंसगा रायाणो होत्था, तं जहा-

१ अचले, २ धरणे, ३ पूरणे, ४ वसू ५ वेसमणे ६ अभिचंदे । सह-जायया, सह-वड्डियया, सह-पंसुकीलियया, सह-दार-दरिसी, अण्णमण्णमणुरत्तया, अण्णमण्णमणुव्वयया, अण्णमण्ण-च्छंदाणुवत्तया, अण्णमण्ण-हियइच्छिय-कारया, अण्णमण्णेसु रज्जेसु किच्चवाइं करणिज्जाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

तए णं तेसि रायाणं अण्णया कयाइं एगयओ सहियाणं समुवागयाणं, सण्णिसण्णाणं, सण्णिविट्ठाणं इमेयारूवे मिहो-कहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था-‘जण्णं देवाणुप्पिया ! अहं सुहं वा दुवखं वा पव्वज्जा वा विदेस-गमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अम्मैहि एगयओ समेच्चा नित्यरियव्वे त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्टुं पडिसुणंति ।

महव्वलादीणं पव्वज्जा—

१४६. तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा । परिसा निग्गया । महव्वले णं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ट-नुट्ठे । जं नवरं-छ-प्पिय बाल-वयंसए आपुच्छामि, बलभद्दं च कुमारं रज्जे ठावेमि, -जाव-ते छ-प्पिय बालवयंसए आपुच्छइ ।

तए णं ते छ-प्पिय बाल-वयंसगा महव्वलं रायं एवं वयासी-‘जइ णं देवाणुप्पिया ! तुव्वे पव्वयह, अहं के अण्णे आहारे वा आलंवे वा ? अह्हे वि य णं पव्वयामो ।

‘हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ-यावत्-यहाँ इतना विशेष कि महावल कुमार का राज्याभिषेक करूंगा । तत्पश्चात् आप देवानुप्रियों के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगारत्व स्वीकार करूंगा ।’

‘हे देवानुप्रिय !’ जैसा अनुकूल हो-यावत्-एकादश अंगवित्त हो एवं अनेकावर्षों की श्रमण पर्याय का पालनकर जहाँ चारु पर्वत था, वहाँ आया, वहाँ आकर एकमास के भक्त-प्रत्याख्यान पूर्वक सिद्ध हुआ ।

१४४. उसके बाद किसी एक समय वह कमल श्री स्वप्न में सिंह को देखकर जागी-यावत्-उसने बलभद्र नामक कुमार को जन्म दिया जो युवराज भी हो गया ।

१४५. उस महावल राजा के ये छह प्रिय बालमित्र (वचन के मित्र) राजा थे —

१ अचल २ धरण ३ पूरण ४ वसू ५ वैश्रमण और ६ अभिचन्द्र । जो साथ-साथ पैदा हुए, साथ साथ बड़े हुए, साथ-साथ धूल में खेले-कूदे-लौटे, साथ-साथ विवाहित एवं बाल-वच्चे वाले हुए, परस्पर में अनुरक्त थे, एक दूसरे का अनुसरण करने वाले थे, समान विषय-भोग—रुचि—इच्छा वृत्तिवाले थे, एक दूसरे के हिताकांक्षी थे, एकदूसरे के प्रेमी थे और अपने-अपने कर्त्तव्य योग्य कार्यों को करते हुए समय व्यतीत करते थे ।

इस प्रकार से कालयापन करते हुए वे सभी राजा किसी एक समय एक स्थान पर एकत्रित हुए तो परस्पर में उन्होंने ऐसा विचार किया कि—‘हे देवानुप्रिय ! चाहे हमारा सुख का कार्य हो, दुःख का कार्य हो, हमें प्रब्रज्या लेना हो या परदेश जाना हो इत्यादि किसी भी प्रकार का कार्य हो तो हम सब एक साथ मिलकर उस कार्य को करेंगे ।’ इस प्रकार का निश्चय करके वे सब आपस में वचनवद्ध हो गये अर्थात् अपने निर्णय को उन्होंने स्वीकार किया ।

महावलादि की प्रब्रज्या—

१४६. उस काल और उस समय इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्वयिंरों का पदार्पण हुआ । परिपदा निकली । महावल भी धर्म को श्रवण, ग्रहणकर हृष्ट-नुष्ट हुआ । इतना अन्तर है कि छहों बालमित्रों से पूछ लूँ और बलभद्र कुमार का राज्याभिषेक कर दूँ—यावत्—वह छहों बालवयस्क मित्रों से पूछता है ।

तब उन छहों बालमित्रों ने महावल राजा से ऐसा कहा—‘हे देवानुप्रिय ! यदि तুম दीक्षा लेना चाहते हो तो फिर सोच दूसरा हमारा आधार एवं अवलंबन होगा । हम भी प्रब्रज्या स्वीकार करेंगे ।’

तए णं से महब्बले राया ते छ-प्पिय वाल-वयंसए एवं वयासी-

‘जइ णं तुम्भे मए सद्धि पव्वयह, तं गच्छह, जेदु-पुत्ते सएहि-सएहि रज्जेहि ठावेह, पुरिससहस्स-वाहिणीओ सीयाओ बुद्धा समाणा मम अंतियं पाउवभवह ।

तेवि तहेव पाउवभवन्ति ।

तए णं से महब्बले राया छ-प्पिय वाल-वयंसए पाउवभूए पासइ, पासित्ता हट्ट-तुट्ठे कोडुविय-पुरिसे सदावेइ-जाव-वलभदस्स अभिसेओ । -जाव-वलभदं रायं आपुच्छइ ।

तए णं से महब्बले छहिं वाल-वयंसगेहिं सद्धि महया इड्ढीए पव्वइए । एक्कारसंग-वी । वहीहिं चउत्थ-छट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्ध-मास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

महब्बलस्स तवविसये माया—

१४७. तए णं तेसिं महब्बल-पामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अणया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयाख्वे मिहो-कहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—

‘जणं अम्हं देवाणुप्पिया ! एगे तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तण्णं अम्हेहिं सर्वेहिं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ताए’ त्ति कट्टु अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेंता वहीहिं चउत्थ-छट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धनास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरन्ति ।

तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थि-नाम-गोयं कम्मं निव्वत्तिसु—जइ णं ते महब्बल-वज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरन्ति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । जइ णं ते महब्बल-वज्जा छ अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरन्ति, तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । एवं—अह अट्ठमं, तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसमं ।

तित्थयरनामकम्मनिव्वत्तणं—

१४८. इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेविय-बहुलीकएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिसु—

तव वह महावल राजा उन छट्ठीं वाल वयस्कों मे इस प्रकार कहता है—

‘यदि तुम भी मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो अपने-अपने राज्य में जाओ और अपने-अपने राज्यों का अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राजा बनाकर, तत्पश्चात् पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं में आरूढ़ होकर मेरे पास आओ ।

वे सभी कथनानुसार कार्य करके महावल के पास आये ।

महावल राजा मित्रों को देखता है, देखकर हृष्ट-तुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है—यावत्—वलभद्र कुमार का राज्याभिषेक करता है । —यावत्—वलभद्रराजा से पूछता है ।

तदनन्तर वह महावल अपने छट्ठीं वाल मित्रों के साथ महान ऋद्धि युक्त उत्सव आदि नमारोह पूर्वक दीक्षित हुआ । ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । अनेक चतुर्थ, पष्ठ, अष्टम, दशम द्वादश, मास, अर्धमास आदि विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता है ।

महावल की तपविषयक माया—

१४७. इसके बाद एक स्थान पर एकत्रित हुए उन महावल आदि सातों अनगारों को किसी एक समय आपस में वार्तालाप करते हुए इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ—

‘हे देवानुप्रियो ! यदि हममें से जो भी कोई जिस तपःकर्म को अंगीकार करेगा तो हम सभी उसी तप की साधना करेंगे । इस प्रकार का निश्चय करके परस्पर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया । स्वीकार करके वे सभी चतुर्थ, पष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास, अर्धमास आदि विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

तदनन्तर महावल अनगार के अलावा यदि शेष वे छह अनगार चतुर्थभक्त की तपस्या करते तो महावल अनगार षष्ठ भक्त तपस्या करता । यदि उस महावल अनगार के अतिरिक्त शेष छह अनगार षष्ठभक्त तप की साधना करते तो वह महावल अनगार अष्टमभक्त तपस्या करता । इस प्रकार यदि अष्टम तो दशम, दशम तो द्वादश इत्यादि । परिणाम स्वरूप उक्त वक्ष्यमाण कारण (माया सेवन) से महावल अनगार ने स्त्री—नाम—गोत्र कर्म का उपार्जन किया ।

तीर्थकर नामकर्म-निर्वर्तन—

१४८. (स्त्री-नाम-गोत्र-कर्म के उपार्जन के अतिरिक्त : शुद्धि होने के पश्चात्) निम्नलिखित बीस स्थानों की वारंवार साधना, आसेवना करने से तीर्थकर गोत्र कर्म का भी उपार्जन किया—

तं जहा-संगहणी-गाहा—

अरहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसि, अभिक्ख नाणोवओगे य ॥ १ ॥

दंसण-विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो ।
खण-लव-तवच्चिचयाए, वेयावच्चे समाही य ॥ २ ॥

अपुव्वनाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पहावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीओ ॥ ३ ॥

महव्वलादीणं विविह-तवचरणं—

१४६. तए णं ते महव्वल-पामोवखा सत्त अणगारा मासियं
भिक्खु-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति-जाव—एगराइयं ।

तए णं ते महव्वल-पामोवखा सत्त अणगारा खुड्डागं
'सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति ।

तए णं ते महव्वल-पामोवखा सत्त अणगारा खुड्डागं
सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं दोहि संवच्छरेहिं अट्ठवीसाए अहो-
रत्तोहि अहा-सुत्तं - जाव - आणाए आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते
तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति,
वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामो णं भंते ! महालयं
सीहनिक्कीलियं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।

तए णं ते महव्वल-पामोवखा सत्त अणगारा महालयं
सीहनिक्कीलियं अहा-सुत्तं-जाव- आराहित्ता जेणेव थेरे भगवंते
तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति,
वंदित्ता नमंसित्ता वहुणि चउत्थ-छट्ठम-दसम-दुवालसेहिं
मासद्धमास-खमणोहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

तए णं ते महव्वल-पामोवखा सत्त अणगारा तेणं उरालेणं तवो-
कम्मणं सुक्का, भुक्खा, निम्मंसा, किडिकिडियाभूया, अट्ठिचम्म-
वणद्धा, कित्ता, धमणिसंतथा जाया या वि होत्था । जहा खंदओ
नवरं—थेरे आपुच्छित्ता चारु-पव्वयं सणियं सणियं दुव्हंति
-जाव-दो- मासियाए संलेहणाए अप्पाणं ज्ञोसेत्ता, सबीसं भत्त-सयं
अणत्ताए छेएत्ता, चतुरासीइं वात्त-सय सहस्साइं सामण्ण-परियारं
पाउणित्ता, चुलसीइं पुव्व-सय-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते
विमाणे देवत्ताए उववणा ।

जैसे—संग्रहणी गाथा—

अरिहन्त; सिद्ध; 'प्रवचन; 'गुरुस्थविर, बहुश्रुत और तपस्वी
के प्रति वात्सल्य भाव रखना, भक्ति भाव प्रदर्शित करना, गुणो
त्कीर्तन करना, और निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना । १ ।

दर्शन विशुद्धि रखना, विनयसंपन्नता, आवश्यक क्रियाओं को
करना, निरतिचार शील व व्रतों का पालन करना, क्षण मात्र के
लिए तपः साधना से विरत न होना, वैयावृत्य करना, समाधि में
लीन रहना । २ ।

अपूर्वत्साह पूर्वक ज्ञानाभ्यास करना, श्रुत भक्ति, एवं प्रवचन-
प्रभावना करना । इन-इन स्थानों की आराधना करने से जीव
तीर्थकरत्व (नाम—गोत्र—कर्म) का उपाजन करता है । ३ ।

महावलादि की विविध तपश्चर्या—

१४६. तत्पश्चात् वे महावल आदि सातों अनगार एक मासिक
भिक्षुप्रतिमा—यावत्—एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा की उपासना
करते हुए विचरते हैं ।

तव वे महावल प्रभुख सातों अनगार क्षुल्लकसिंह निष्क्रीडित
तपोकर्म स्वीकार कर विचरने लगे ।

इसके बाद वे महावल प्रनुख सातों अनगार दो वर्ष और
अट्ठाईस दिन में पूर्ण होने वाले क्षुल्लक (लघु) सिंह निष्क्री-
डित तप की यथामूर्त्त—यावत्—आज्ञा प्रमाण आराधना करके
जहाँ स्थविर भगवन्त विराजमान थे, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर
स्थविर भगवान की वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वंदना—
नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन करते हैं—'हे भद्रन्त ! हम
महासिंह निष्क्रीडित तपोकर्म करने की भावना करते हैं ।'

तव वे महावल आदि सातों अनगार महामिहनिष्क्रीडित
तप को सूत्रानुसार—यावत्—आराधना करके जहाँ स्थविर
भगवान थे, वहाँ आये, वहाँ आकर स्थविर भगवान को वंदना
नमस्कार करते हैं; वंदना-नमस्कार करके यहूत ने चतुर्थे,
पष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास, अर्धमास की तपःसाधना द्वारा
आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं ।

उक्त प्रकार की उग्र तपःसाधना करने के फलस्वरूप महावल
आदि सातों अनगार शरीर ने शृष्क व शुभक्षिप्त हो गये; शरीर
मांस विहीन जैसा कड़कड़ाहट ध्वनि वाले, अस्थिचर्मविरण
मात्र कृश, लोहार की धीकनी मट्टय हो गये थे । जैसे मन्थक
अनगार; लेकिन इतना विनियम है—स्थविरों ने आज्ञा प्राप्त करके
जनैः जनैः चारु नामक पर्वत पर चढ़ने हैं, चढ़कर—यावत्—दो
मास की मंत्लेखना द्वारा आत्मा को तपाने हुए, एक सौ धीम
भक्तों (भोजन, आहार) का अनशन के द्वारा छेदन—प्राण एव
चौरामी लाख वर्ष की श्रामण्यन्वय का शपथ कर श्री
चौरामी लाख वर्ष की नमस्त आप भोगकर ब्रह्मन् शिवाय मे
देव रूप में उत्पन्न हुए ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं वत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । तत्थ णं महव्वल-वज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं वत्तीसं सागरोवमाइं ठिई । तत्थणं महव्वलस्स देवस्स य पडिपुण्णाइं वत्तीसं सागरोवमाइं ठिइ ।

महव्वलादीण पच्चायाति—

१५०. तए णं ते महव्वल-वज्जा छप्पि य देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, ठित्ति-क्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे विमुद्ध-पिड-माइ-वसेसु रायकुलेसु पत्तेयं-पत्तेयं कुमारत्ताए पच्चायाया, तं जहा—

- १ पडिबुद्धी इक्खागराया, २ चंदच्छाए अंगराया,
३ संखे कासिराया, ४ रूपी कुणालाहिबइ,
५ अदीणसत्तू कुरुराया, ६ जियसत्तू पंचालाहिबई ।

मल्लिस्स गवभावकमणं—

१५१. तए णं से महव्वले देवे तिहिं नाणेहिं समग्गे उच्च-ट्ठाण-ट्ठिएसुं गहेसुं, सोमासु दिसासु विट्ठिमिरासु विमुद्धासु, जइएसु सउणेसु, पयाहि णाणुकूलंसि भूमिसिप्पिसि मारुयंसि पवारयंसि, निप्फण-सस्स-मेइणीयंसि कालंसि, पमुइय-पक्कील्लिएसु जणवएसु अद्धरत्त-काल-समयंसि, अस्सिणी-नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, जे से हेमंताणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे, तस्स णं फग्गुणमुद्धे चउत्थी-पक्खेणं जयंताओ विमाणाओ वत्तीसं सागरोवमठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्वीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए रायहाणीए, कुम्भगस्स रण्णे पभावतीए देवीए कुच्चिसि आहार-वक्कंतीए, भववक्कंतीए, सरीरवक्कंतीए गवभत्ताए वक्कंते ।

१५२. जं रयाणि च णं महव्वले देवे पभावतीए देवीए कुच्चिसि गवभत्ताए वक्कंते, तं रयाणि च णं सा पभावती देवी चोद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा भत्तार-कहणं । सुमिणपाडग-पुच्छा-जाव - विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ।

१५३. तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हं-मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं इमेयारूवे-डोहले पाउब्भूए—

‘धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जल-यलय-भासर-प्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्युय-पच्चवत्तुयंसि सयणिज्जंसि

वहां कितनेक देवों की वत्तीस सागर प्रमाण स्थित होती हैं । वहां महाबल के अतिरिक्त जेप छःहों देवों की कुछ कम वत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई और महाबल देव की परिपूर्ण वत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई ।

महावलादिकों की प्रत्यायाति—

१५०. इसके बाद महाबल को छोड़कर वे छहों देव आयुक्षय भवक्षय एवं स्थितिक्षय होने के अनन्तर जयन्त देव लोक से च्यवित होकर इसी जम्बुद्वीप के भारतवर्ष में विशुद्ध मातृ-पितृ वंशवाले राजकुलों में प्रत्येक पृथक्-पृथक् पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, यथा—

- १ इक्ष्वाकुराज प्रतियुद्ध २ अंगराज चन्द्रछाया
३ काशीराज संख । ४ कुणालाधिपति रूपी
५ कुरुराज अदीनशत्रु ६ पंचालाधिपति जितशत्रु ।

मल्लि का गर्भावतरण—

१५१. इसके पश्चात् जब सूर्यादि ग्रह उच्चस्थान में थे दिशाओं शांत-प्रशांत सौम्य, अंधकारविहीन विशुद्ध थीं, पक्षियों द्वारा जयसूचक शब्दारव हो रहा था, वायु पृथ्वी को स्पर्श करते हुए अनुकूल होकर बह रही थी, खड़ी फसल से पृथ्वी हरी भरी हो रही थी, जिससे प्रजाजन आनन्दमग्न होकर विविध प्रकार की क्रीडाओं में रत थे, तब अंगराज के समय, अश्विनीनक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर हेमन्त ऋतु के चतुर्थ मास आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुण शुक्ला चतुर्थी के दिन जयन्त विमान की समग्र वत्तीस सागरोपम आयु भोग लेने के अनन्तर (आहार, भव एवं शरीर स्थिति का अंत होने से, इसी जम्बुद्वीप के भरतवर्ष में मिथिला राजधानी में कुम्भकराजा की भार्या प्रभावती रानी की कुक्षि में वह महाबल राजा का जीव देव तीन ज्ञानों के साथ गर्भरूप से उत्पन्न हुआ ।

१५२. जिस रात्रि में वह महाबल देव प्रभावती देवी की कुक्षि में गर्भरूप से अवक्रमित हुआ, उस रात्रि में वह प्रभावती देवी चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी । पति से कहा । स्वप्न पाठकों से पूछा—यावत्—विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करती हैं ।

१५३. इसके बाद उस प्रभावती देवी के तीन मास जब सुख-पूर्वक पूर्ण हो चुके तब उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ—

धन्य हैं वे मातायें, जो जल एवं थल में उत्पन्न, विकसित, रंगविरंगे प्रभूत पुष्पों और उनकी मालाओं से अच्छी तरह से आच्छादित, सजीसजाई शैया पर बैठती हैं, सुखपूर्वक शयन

सणिसण्णाओ, सन्निसण्णाओ य विहरंति, एगं च महं सिरि-दाम-गंडं पाडल-मल्लिय-चंपग असोग-पुत्ताग-नाग-मरुधग-दमणग-अणो-ज्जकोज्जय-पउरं, परम-सुह-फासं, दरिसणिज्जं, महया गंधद्धणि मुयंतं अग्घायमाणोओ डोहलं विणेंति ।

तए णं तीसे पभावईए देवीए इमं एयारूवं डोहलं पाउवभूयं पासित्ता अहा-सणिणहिया वाणमंतरा देवा खिप्पामेव जल-थलय-भासर-प्पभूयं दसद्ध-वण्णं मल्लं कुं भगसो य भारगसो य कुं भगस्सरण्णो भवणंसि साहरंति, एगं च णं महं सिरि-दाम-गंडं - जाव - गंधद्धणि मुयंतं उवणेंति ।

तए णं सा पभावई देवी जल-थलय-भासर-प्पभूएणं, दसद्ध-वण्णं मल्लेणं दोहलं विणेइ । तए णं सा पभावई देवी पसत्य-दोहला, सम्माणिय-दोहला, विणीय-दोहला, संपुण्ण-दोहला संपत्त-दोहला विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं पचचणुभवमाणो विहरइ ।

मल्ली-तित्थयर-जम्मणं—

१५४. तए णं सा पभावई देवी नवण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइदियाणं वीइक्कंताणं, जे से हेमंताणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे मग्गसिरमुद्धे, तस्स णं मग्गसिरमुद्धस्स एक्कारसीए पुव्वरत्तावरत्त-काल-समयांसि अस्सिणी-नक्खत्तेणं, जोगमुवागएणं, उच्चट्ठाणं ट्ठिठएमु गहेसु-जाव - पमुइय-पक्कीलिएसु जणवएसु आरोयारोयं एगणवीसइमं तित्थयरं पयाया ।

१५५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोग-वत्यव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ - जहा जंबुद्वीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं-उसहस्स जम्मणुस्सवं नवरं-मिहिलाए कुम्भयस पभावईए अभिलाओ संजोएयव्वो - जाव नंदीसरवरदीवे महिमा ।

१५६. तया णं कुंभए राया वूर्हाहं वज्रणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहि देवेहि तित्थयर-जम्मणाभिसेय-महिमाए कयाए समाणीए, पच्चूस-काल-समयांसि नगर-गुत्तिए सहावेइ, जायकम्मं - जाव - नामकरणं—'जम्हा णं अम्हं इमीसे दारियाए माऊए मल्ल-सयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउ णं अम्हं दारिया नामेणं मल्ली ।

करती है, एवं परमसुखदायक स्पर्शवाले, दर्शनीय तृप्तिकारक महा सुरभिगंध गुणवाले पुद्गलों को फैलाने वाले गुलाब, मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, नाग, मरवा, दमनक और सुन्दर अनवद्य निर्मल कुञ्जक पुष्पों के द्वारा निर्मित एक अद्वितीय श्रीदामकांड को सूंघती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती हैं ।

तदनन्तर उस प्रभावती देवी के इस प्रकार के उत्पन्न दोहद को जानकर निकट में रहने वाले वाणव्यंतर देवों ने शीघ्र ही जल और थल में उत्पन्न पंचवर्णों के पृष्प कुम्भ प्रमाण और भार प्रमाण अर्थात् बहुत अधिक परिमाण में लाकर कुम्भ राजा के भवन में रख दिये, इसके साथ ही एक बहुत बड़ा भारी—यावत्—मुरभिगंध से युक्त श्रीदामकांड को रखते हैं ।

तत्पश्चात् उस प्रभावती देवी ने जल-थल-के विकसित पंचवर्णी प्रभूत पुष्पों के द्वारा अपने दोहद की पूर्ति की और उसके बाद यह प्रशस्त दोहलेवाली, संमाननीय दोहले वाली, संपन्न दोहलेवाली, संपूर्ण दोहलेवाली, संप्राप्त दोहलेवाली, प्रभावती देवी मनुष्य योग्य विपुल भोगों को भोगती हुई समय बिताने लगी ।

मल्लि—तीर्थकर—जन्म—

१५४. इसके बाद मुखपूर्वक नौ मास और साठे सात रात्रि दिन का समय व्यतीत हो गया एवं हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, दूसरा पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष आया तब उस मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन मध्यरात्रि में अश्विनी नक्षत्र का योग प्राप्त होने पर, ग्रहों के उच्च स्थान में स्थित होने—यावत्—प्रजाजनों के प्रमुदित होकर आमोद-प्रमोद में निमग्न होने के समय में आरोग्यवती उस प्रभावती देवी ने आरोग्यपूर्वक नीरोग उन्नीमर्षे तीर्थकर को जन्म दिया ।

१५५. उस काल उस समय में अधोलोकवासिनी आठ प्रधान दिक्कुमारिकाओं आदि ने ऋषभ भगवान के जन्मोत्सव की तरह जन्मोत्सव किया । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ने समस्त वर्णन जानना चाहिए । उसमें और इसमें अन्तर यह है कि यहाँ मिथिला नगरी, कुम्भकराजा और प्रभावती के नामों का उल्लेख करना चाहिए—यावत्—नंदीश्वर द्वीप में महोत्सव किया ।

१५६. अनेक भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के द्वारा जन्मोत्सव संनम हो जाने के पश्चात् कुम्भकराजा ने प्रातःकाल होने पर नगररजक को बुलाया, जायकर्म किया—यावत्—नामकरण किया—'वर्षोकि गर्भं मे रक्षते पर इमं पुत्री की माता को पुष्पों की मालाओं ने आच्छादित गया पर उठने सोने आदि का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसलिये हमारे इस पुत्री का नाम मल्ली हो ।'

१५७. तए णं सा मल्ली पंचधाईपरिखित्ता - जाव - सुहंसुहैणो परिचड्ढई । जहा महावले नाम-जाव - - परिचड्ढमा, सा वद्धती भगवती विचलीयचुता अणोवमसिरीया । वासी-वासपरिवुडा परिक्किन्ना पीढमद्देहि ॥ १ ॥

असिय-सिरिया लुनयणा विवोट्ठी अवलदंतपंतीया । वरकमलकोमलंगी फुल्लुप्पलगंधनीसासा ॥२॥

तए णं सा मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना उम्मुक्क-वाल-भावा विण्णाय-परिणय-मेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य अईव-अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठ-सरीरा जाया यावि होत्था ।

मल्लिणा मोहनघर—निर्माणं—

१५८. तए णं सा मल्ली देसूण-वास-सय-जाया ते छ-प्पिय रायाणो विउलेण ओहिणा आभोएमाणी-आभोएमाणी विहरइ, तंजहा-पडिवुद्धि इक्खागरायं, चंदच्छायं अंगरायं, संखं कासिरायं, र्छिप्प कुणालाहिबई, अदीणसत्तुं कुहरायं, जियसत्तुं पंचालाहिबई ।

१५९. तए णं सा मल्ली कोडु विव-पुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एव वयासी-

'तुव्वे णं देवाणुप्पिया ! असोवणियाए एगं महं मोहन-घरं करेह अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठं । तस्स णं मोहन-घरस्स बहु-मज्झ-देस-भाए छ गव्व-घरए करेह । तेसि णं गव्व-घरगाणं बहु-मज्झ-देस-भाए जाल-घरयं करेह । तस्स णं जाल-घरयस्स बहु-मज्झ-देस-भाए मणि-पेढियां करेह; करेत्ता एयमाणत्तियां पच्च-प्पिणह ।' तेवि तहेव-जाव-पच्चप्पिणंति ।

१६०. तए णं सा मल्ली मणिपेढियाए उर्वारि अप्पणो सरिसियं, सरि-त्तयं, सरि-व्वयं, सरि-लावण-रूव-जोव्वण-गुणोव्वेयं, कणगामई, मत्थय-विच्छिड्ढं-पउमुप्पल-विहाणं पडिमं करेइ, करेत्ता जं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारेइ, तओ मणुण्णाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ कल्लाकल्लि एगमेगं विडं गहाय तीसे कणगामईए, मत्थय-छिड्ढाए, पउमुप्पल-विहाणाए पडिमाए मत्थयंसि पक्खिक्खमाणी-पक्खिक्खमाणी विहरइ ।

तए णं तीसे कणगामईए, मत्थय-छिड्ढाए, पउमुप्पल-विहाणाए पडिमाए एगमेगंति विडे पक्खिक्खमाणे-पक्खिक्खमाणे तओ गंधे पाउव्ववेइ ।

१५७. इसके बाद वह मल्लि पांच धायमाताओं द्वारा लालित-पालित होकर—यावत्—सुखपूर्वक बढ़ने लगी । जैसे महाबल का वर्णन है, उसी प्रकार उसकी वृद्धि जानना । शाश्वत—

देव लोक से आई हुई, उत्तम शोभा वाली वह भोगवदातस-दासी एवं पीठ मर्दक आदि से घिरी हुई वृद्धि को प्राप्त हो रही थी ॥१॥

उसके बाल काले, आंखें सुन्दर ओंठ त्रिम्व फल की तरह लाल दांतों की पंक्ति उज्ज्वल थी । कमल पुष्प की तरह उसका शरीर अत्यन्त कोमल तथा पुष्पगंध की तरह उसके श्वास-निश्वास से महक आती थी ॥२॥

तब वह विदेहवर राजकन्या मल्लि बाल्यावस्था को व्यतीत करने के बाद योग्य कलाओं से मुशिक्षित हो, युवावस्था को प्राप्त कर शनैः शनैः यौवन एवं लावण्य से युक्त सर्वोत्कृष्ट शरीर संपदा संपन्न हो गई ।

मल्लि के द्वारा मोहनगृह—निर्माण—

१५८. कुछ कम सौ वर्ष की आयु हो जाने पर राजकन्या मल्लि ने अवधिज्ञान से जाना कि वे छहों बालमित्र राजा इक्ष्वाकुराज, प्रतिबुद्ध, अंगराज चन्द्रछाय, काशीराज संख, कुणालाधिपति रक्खमी, कुहराज अदीनशत्रु, पंचालाधिपति जितशत्रु के रूप में उत्पन्न हुए हैं ।

१५९. इसके बाद मल्लि ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—

'हे देवानुप्रियो ! अशोक वाटिका में तुम सैकड़ों खंभों से शोभायमान एक भव्य मोहनगृह का निर्माण करो । उस मोहनगृह के ठीक बीच में छह गर्भगृह बनाओ । उन गर्भगृहों के भी बीचो बीच जालगृह बनाओ । उन जालगृहों के अति मध्य भाग में (बीचोबीच) मणिमय पीठिका बनाओ और यह कार्य संपन्न होने के अनन्तर मुझे सूचना दो । वे आज्ञा अनुसार कार्य करने के बाद सूचित करते हैं ।

१६०. तत्पश्चात् उस मणिपीठिका पर मल्लि ने अपनी जैसी, समवयवाली, स्वशरीर सदृश लावण्य, रूप, यौवन आदि गुणोपेत पद्म एवं उत्पलों से आच्छादित सच्छिद्र मस्तकवाली एक सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाई, प्रतिमा बनकर तैयार हो जाने के बाद विपुल मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य स्वाद्य करती, उस मनोज्ञ अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आहार में से प्रतिदिन एक-एक ग्रास को लेकर उस पद्म उत्पल से आच्छादित सच्छिद्र मस्तक वाली कनकमयी पुत्तलिका के उस मस्तक के उपरि भागवती छेद में डालती हैं ।

इस प्रकार पद्म—उत्पल से आच्छादित सच्छिद्र मस्तकवाली कनकमयी प्रतिमा में एक-एक ग्रास डालने पर उससे दुर्गन्ध उत्पन्न होती है ।

से जहा णामए—अहि-मडे इ वा, गो-मडे इ वा सुणह-मडे इ वा, मज्जार-मडे इ वा, मणुस्स-मडे इ वा, महिस-मडे इ वा, मूसग-मडेइ वा, आस-मडे इ वा हत्थि-मडे इ वा, सीह-मडे इ वा, वग्घ-मडे इ वा, विग-मडे इ वा दीविग-मडे इ वा, । मय-कुहिय-विणठ्ठ-दुरभिवावण्ण-दुड्ढिगंधे किमि- जालाउल-संसत्ते असुइ-विलीण-विगय-बीभच्छ-दरिसणिज्जे भवे-याह्वे सिया ? नो इण्ठ्ठे सम्दठ्ठे । एत्तो वि अणिठ्ठतराए चेव अकत्तराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव ।

पडिबुद्धिरण्णो पउमावईए देवीए नाग-जण्णए—

१६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसला नामं जणवए । तत्थ णं सागेए नामं नयरे । तस्स णं उत्तरपुरत्थिमे विसी-भाए, एत्थ णं महं एगे नाग-घरए होत्था-दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिय-पाडि-हेरे । तत्थ णं सागेए नयरे पडिबुद्धी नामं इक्खामुराया परिवसइ । पउमावई देवी । सुबुद्धी अमच्चे साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-नीति-सुपउत्त-नय-विहण्णू विहरई ।

१६२. तए णं पउमावईए देवीए अण्णया कयाइ नाग-जण्णए यावि होत्था ।

तए णं सा पउमावई देवी नाग-जण्णमुवट्ठिठं जाणित्ता जेणवे पडिबुद्धी राया तेणवे उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिगहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विज-एणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

“एवं खलु सामी ! मम कल्लं नाग-जण्णए भविस्सइ । तं इच्छामि णं सामी ! तुद्वेहि अद्वमणुण्णया समाणी नाग-जण्णयं गमित्तए । तुद्वे वि णं सामी ! मम नाग-जण्णयंति समो-सरह ।

तए णं पडिबुद्धी पउमावईए एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

तए णं पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अद्वमणुण्णया तंमाणी, हट्ठ-तुट्ठा कोडुं विय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्त एवं वयासी—

“एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम कल्लं नाग-जण्णए भविस्सइ, तं तुद्वे मालागारे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वदाह—“एवं खलु पउमावईए देवीए कल्ल नाग-जण्णए भविस्सइ, तं तुद्वे णं देवाणुप्पिया ! जल-यत्तय-भात्तरप्पभूयं दत्तइ-वण्णं मत्तं नाग-घरयंति साहरह, एणं च णं महं त्तिरि-शम-गंडं उवणेह ।”

तए णं जल-यत्तय-भात्तर-प्पभूएणं दत्तइ-वण्णेणं नत्तेणं नापाविह-भत्ति-नुविरइयं, हंस-निय-मपूर-कोच-त्तरत्त-चरकवाय-

वह दुर्गन्ध ऐसी थी—मरे हुए सर्प जैसी, या मृत गाय जैसी, या मरे हुए कुत्ते जैसी, या मरी विल्ली जैसी, या मृत मनुष्य जैसी, या मरे हुए भैंसा जैसी, या मरे हुए चूहे जैसी, या मरे हुए घोड़े जैसी, या मृत हाथी जैसी, या मृत सिंह जैसी, या मृत बाघ जैसी, या मृत चीते जैसी आदि । मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, कीड़ों से व्याप्त और जानवरों द्वारा खाए हुए किसी मृतकलेवर के समान दुर्गन्ध वाली थी, कृमियों के समूह से परिपूर्ण थी अगुचि विकृत, विरस और क्या देखने में बीभत्स डरावनी थी, क्या यह ऐसे रूपवाली थी ? इससे भी अधिक अनिष्ट अरमणिय, अप्रिय अमनोज्ञ और अमन आमतार थी ।

प्रतिबुद्ध राजा की पद्मावती रानी का नागयज्ञ (यात्रा) —

१६१. उस काल एवं उस समय में कौशल नामक जनपद था । उसमें साकेत नाम का नगर था । उसके उत्तरपूर्व दिग्भाग— ईशान कोण में दिव्य, कामनापूर्ण करने वाला अतिशययुक्त एक विशाल नागगृह था । उस साकेत नगर में प्रतिबुद्धि नामक इक्ष्वाकुराज रहता था । उसी भार्या का नाम पद्मावती था । साम, दंड, भेद आदि राजनीतियों में कुशल, नयविज्ञ सुबुद्धि नामक अमात्य था ।

१६२. किसी एक समय उस पद्मावती रानी का नागयज्ञ (नाग-यात्रा) हुआ था ।

नागयज्ञ होने के दिन को जानकर वह पद्मावती देवी जहां प्रतिबुद्धि राजा था वहाँ आई, वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक को स्पर्श करके नमस्कार किया, जय-विजय शब्दों से वधाया और वधाकर इस प्रकार बोली—

‘हे स्वामिन् ! कल मेरा नागमहोत्सव होगा । मैं भी उनको मनाना चाहती हूँ । अतः आप यदि आज्ञा दे तो नाग महोत्सव मनाने के लिए जाऊँ । हे स्वामिन् ! आप भी मेरे नागयज्ञ (यात्रा) में पधारें ।’

प्रतिबुद्धि राजा ने पद्मावती की बात को सुना ।

इसके बाद प्रतिबुद्धि राजा द्वारा अपनी प्रार्थना को स्वीकार कर लिये जाने पर हृष्टतुष्ट हूँ । पद्मावती देवी कोटुम्बिक पुराण को बुलाती है—बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! कल मेरा नागमहोत्सव होगा, तो तुम मालाकारों को बुनाओ और बुनाकर ऐसा करो—“कल पद्मावती देवी का नागयज्ञ होगा तो हे देवानुप्रियो ! उत्तर-पूरव में उत्तर-विक्रान्त पंचवर्णों के पुत्रों और उनकी नावर्ण कण्ठ में पहुँचाओ और नाथ में एक महामोना मंत्रधारी राजावापस भी माना ।’

वत्तज्जलं जल-यत्तय-भात्तर-प्पभूएणं दत्तइ-वण्णेणं नत्तेणं नापाविह-भत्ति-नुविरइयं, हंस-निय-मपूर-कोच-त्तरत्त-चरकवाय-

मयणसाल-कोइल-कुलोववेयं, ईहामिय-उसभ-नुरय-नर-मगर-विहग-
वालग-किनर-रुह-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-मत्ति-चित्तं,
महग्घं, मह्रिहं, विउलं, पुष्प-मंडवं विरएह ।

तस्स णं बहु-मज्झ-वेस-भाए एगं महं तिरि-दाम-गंडं-जाव-
गंधर्द्धाणिं मुयंतं उल्लोयंसि ओलवेह, ओलवित्ता पउमावइं देवि
पडिवालेमाणा पडिवालेवाणा चिट्ठह ।”

तए णं ते कोडुंविद्या-जाव-पउमावतिं देवि पडिवालेमाणा
पडिवालेमाणा चिट्ठंति ।

१६३ तए णं सा पउमावई देवी कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, -
जाव - उद्विठयम्मि सूरे, सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते,
कोडुंविए पुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सागेयं नयरं सन्निभतर-
वाहिरियं आसिय-सम्मज्जि ओवलित्तं - जाव - गंधवट्टिमूयं करेह,
कारवेह य, करेत्ता, कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

ते वि तहेव - जाव - पच्चप्पिणंति ।

तए णं सा पउमावई देवी दोच्चं पि कोडुंविद्यपुरिसे सद्दावेइ,
सद्दावेत्ता एवं वयासी-

“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खिप्पामेव लहु-करण-जुत्तं -
जाव - धम्मियं जाण-प्परं जुत्तामेव उवट्ठवेह ।” तए णं ते
वि तहेव उवट्ठवेत्ति ।

१६४. तए णं सा पउमावई देवी अंतो अंतेउरंसि ण्हाया - जाव -
धम्मियं जाणं दुख्खडा ।

तए णं सा पउमावई देवी नियग-परियाल-संपरिवुडा सागेयं
नयरं मज्झमज्जेणं निज्जाइ, निज्जाइत्ता जेणेव पोक्खरणी तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोक्खरणिं ओगाहत्ति, ओगाहित्ता
जलमज्जणं करेइ- जाव - परम-सुइभूया उल्ल-पड-साडया, जाइं तथ
उप्पलाई - जाव-ताइं नेण्हइ, जेणेव नाग-घरए तेणेव पहारेत्थ
गमणाए ।

तए णं पउमावईए देवीए दासचेडीओ बहूओ पुष्पपडलग-
हत्थगयाओ, धूवकडच्छुय-हत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति ।

तए णं पउमावई देवी सव्विड्डीए जेणेव नाग-घरए तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाग-घरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता
लोमहत्थयं परामुसइ - जाव - धूवं उहइ, उहित्ता पडिबुद्धिं
पडिवालेमाणी-पडिवालेमाणी चिट्ठइ ।

कोकिल, ईहामृग, वृषभ-तुरग, नर, मकर, विहग, ब्दाल, किन्नर,
सस, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि आदि के
आश्चर्यजनक चित्रों से शोभायमान, लौकिक वैभवशाली, महर्घ
महापुरुषों के योग्य, विशाल पुष्प मंडप बनाये ।

उसके बीचोबीच चंदेवा में एक महनीय—यावत्—अपनी
सुरभिगंध से वातावरण को सुगंध मय बनाने वाला श्रीदाम
काण्ड लटकाया और लटकाकर पद्मावती देवी की प्रतीक्षा करते
हुए वहां बैठे ।

इसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—पद्मावती देवी की
प्रतीक्षा करते हुए बैठते हैं ।

१६३. उसके बाद रात्रि के अंधकार से आच्छादित प्रभावले
—यावत्—सहस्ररश्मि दिनकर तेज से दीप्तमान सूर्य के उदित
होने पर वह पद्मावती देवी कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाती हैं;
बुलाकर ऐसा कहती हैं—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही अन्दर बाहर सुगंधित जल का
सिंचन कर, बुहारकर, लीपकर साकेत नगर को—यावत्—सुगंध
की डिविया या वतिका जैसा कर दो, करवाओ और यह कार्य
करने-कराने के बाद आज्ञापूर्ति होने की मुझे सूचना दो ।

वे वैसा करके सूचना देते हैं ।

उसके बाद पद्मावती देवी पुनः दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों
को बुलाती है बुलाकर उनसे इस प्रकार कहती है—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही तेजी से चलनेवाले—यावत्
—योग्य श्रेष्ठ रथ को लाओ ।’ वे भी वैसा ही रथ लाते हैं ।

१६४. इसके बाद पद्मावती देवी ने अन्तःपुर के अन्दर स्नान
किया—यावत्—सजे सजाये रथ पर बैठी ।

तत्पश्चात् अपने परिवार के साथ वह पद्मावती देवी साकेत
नगर के मध्यातिमध्यभाग से होती हुई जहाँ पुष्करिणी थी
वहाँ आती है वहाँ आकर पुष्करिणी में घुसती है घुसकर स्नान
करती है—यावत्—नरमशुचिभूत होकर गीली साड़ी पहने
पुष्करिणी में उत्पन्न कमलों को चुनती है और उसके बाद फिर
जहाँ नागगृह था उस ओर चल दी ।

तत्पश्चात् पद्मावती देवी की दास-चेटिकायें बहुत से पुष्पकरंड
के धूपदानों को लेकर उसके पीछे-पीछे चलती हैं ।

तत्पश्चात् वह पद्मावती देवी सर्व ऋद्धि—वैभव के साथ
जहाँ नागगृह था वहाँ आती है, वहाँ आकर नागगृह में प्रविष्ट
होती है, मयूर पंखों से बनी मार्जनी (बुहारी) से परिमाजित करती
है—यावत्—धूप जलाती है, प्रतिबुद्धि (राजा) की प्रतीक्षा
करती हुई बैठती हैं ।

१६५. तए णं पडिबुद्धी ण्हाए हत्थि-खंध-वर-गए स-कोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेय-वर-चामराहिं विड्ज्जमाणे ह्य-गाय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महया भड-चडगर-रह-पहकर-विद-परिक्खित्ते सागेयं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ. निग्गच्छित्ता जेणेव नाग-घरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि-खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ, करेत्ता पुप्फ-मंडवं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पासइ तं एगं महं सिरि-दाम-गंडं ।

मल्लीए सिरिदामगंडस्स पसंसा—

१६६. तए णं पडिबुद्धी तं सिरि-दाम-गंडं सुचिरं कालं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता तंसि सिरि-दाम-गंडंसि जाय-विग्गए सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—‘तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम दोच्चेणं बहुणि गामगार-जाव - सण्णिवेसाइं आहिंसि, बहूण य राईसर-जाव-सत्थवाह-पभिईणं गिहाइं अणुप्पविससि, तं अत्थि णं तुमे कहिंवि एरिसए सिरि-दाम-गंडं दिट्ठ-पुव्वे, जारिसए णं इमे पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे ?’

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धि रायं एवं वयासी—

‘एवं खलु सामी ! अहं अण्णया कयाइ तुवमं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणि गए । तत्थ णं मए कुंभयस्स रण्णे धूयाए पन्नावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए संवच्छर-पडिलेहणयंसि दिव्वे सिरि-दाम-गंडे दिट्ठ-पुव्वे । तस्स णं सिरि-दाम-गंडस्स इमे पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे सय-सहस्सइमं पि कलं न अग्घइ ।’

मल्ली-रुव-पसंसा—

१६७. तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—

‘केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! मल्ली विदेहराय-वर-कन्ना, जस्स णं संवच्छर-पडिलेहणयंसि सिरि-दाम-गंडस्स पउमावईए देवीए सिरि-दाम-गंडे सय-सहस्सइमं पि कलं न अग्घइ ?’

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिं इयत्तागुरायं एवं वयासी—

‘एवं खलु सामी ! मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना नुपइदिठय-कुम्मुण्णय-चारुवरणा - जाव - पडिरुवा वन्नओ ।’

तए णं पडिबुद्धी सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म सिरि-दाम-गंड-जणिय-हात्ते दूयं तदावेइ, तदावेत्ता एवं वयासी—

‘गच्छाहि ण तुमं देवाणुप्पिया ! मिहिलं रायहाणि । तत्थ णं

१६५. इसके बाद प्रतिबुद्धि ने स्नान किया और श्रेष्ठ हाथी पर बैठा तब छत्रधारियों ने कोरेंट पुष्पों की मालाओं से गोभित छत्र को तान दिया । चामरधारियों ने श्वेत धवल श्रेष्ठ चामरों को ढोरना प्रारंभ कर दिया एवं अश्व-गज-रथ, शूरवीर योद्धाओं ने युक्त चतुरंगिणी सेना तथा बहुत से सुभटों, विद्वानों, रथ, पैदल चलने वालों आदि के समूह के साथ साकेत नगर के बीच-बीच में से गुजरता है, गुजरकर जहाँ नागगृह था वहाँ पहुँचता है वहाँ पहुँचकर हाथी से नीचे उतरता है, उत्तरकर प्रणाम करता है, प्रणाम करके पुष्प मंडप में प्रविष्ट होता है और प्रविष्ट होकर उस महान श्रीदामकाण्ड को देखता है ।

मल्लि के श्रीदामकाण्ड की प्रशंसा—

१६६. तत्पश्चात् प्रतिबुद्धि उस श्रीदामकाण्ड का बहुत समय तक सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता है । अनन्तर उस श्रीदामकाण्ड से आश्चर्य चकित होकर, सुबुद्धि अमात्य से कहता है—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दूत बनकर बहुत से ग्रामों आकरों—यावत्—सन्निवेशों में घूमते हो, अनेक राजाओं, ईश्वरों—यावत्—सार्थवाहों इत्यादि के घरों में भी जाते हो तो इससे पूर्व तुमने कहीं ऐसा श्रीदानकाण्ड देखा है जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?’

तव सुबुद्धी मंत्री प्रतिबुद्धि राजा ने बोला—

‘हाँ स्वामिन् ! देखा है, किसी एक समय में आपका दूत बनकर मिथिला राजधानी में गया था । वहाँ मैंने कुम्भ राजा की पुत्री प्रभावती देवी की आत्मजा मल्लि की वरप गांठ पर दिव्य श्रीदामकाण्ड को पहले देखा है । उस श्रीदामकाण्ड के नामने को पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखों अंग के बराबर भी नहीं है ।’

मल्लि-रूप—प्रशंसा—

१६७. सुबुद्धि अमात्य की यह बात सुनकर प्रतिबुद्धि ने उसने इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! कैसी है वह विदेहराज राजकन्या मल्लि जिन्की वरप गांठ पर बनाये गये श्रीदामकाण्ड की पद्मावती देवी का श्रीदामकाण्ड लाखों अंग भी बराबर नहीं करता है ?’

तव सुबुद्धि ने देवानुप्रिय प्रतिबुद्धि ने इस प्रकार कहा—

‘हे स्वामी ! विदेहराज राजकन्या मल्लि सुप्रसिद्धि रूप—पृष्ठ के मध्य रमणीय धरज—यावत्—सन्निवेशों में घूमते हैं वहाँ वरपक करता है ।’

सुबुद्धि अमात्य की इस बात को सुनकर श्रीदामकाण्डकाण्ड नामने ने तपित दूत प्रतिबुद्धि राजा की वरपगांठ पर दिव्य श्रीदामकाण्ड को पहिले देखा है । उस श्रीदामकाण्ड के नामने को पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड लाखों अंग के बराबर भी नहीं है ।’

‘हे देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी में गये और राजा

कुंभगस्स रण्णो धुयं पभावईए अत्तयं-मल्लिं विदेह-राय वर-कन्तं सम भारियत्ताए वरेहि जइ वि य णं सा संयं रज्ज-सुंका ।

भी जिसके लिये न्यूँठावर किया जा सकता है, ऐसी (महान् कुलम्भ) कुम्भ राजा की पुत्री प्रभावती की आत्मजा विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो ।

पडिबुद्धि-रण्णो दूयस्स मिहिलागमणं—

प्रतिबुद्धि राजा के दूत का मिथिलागमन—

१६८. तए ण से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे, हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव चाउ-ग्घटे आस-रहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता चाउ-ग्घटं आस-रहं पडिकप्पावेइ, पडिकप्पावेत्ता दुरूढे हय-गय-रह-पवर-जोह कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भड-वडगरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेणेव विदेह-जणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

१६८. तदनंतर दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस अभिप्राय को हृष्ट-तुष्ट होकर सुना, मुनकर जहाँ अपना घर था, जहाँ चार घंटों से सज्जित अश्व-रथ था, वहाँ आया वहाँ, आकर चार घंटों वाले अश्व-रथ को सुसज्जित करवाया, सुसज्जित करवा कर बैठा और हाथी, घोड़े, रथ, सुभटों आदि से युक्त सेना को साथ में लेकर बहुत से भांडों, विदूषकों आदि के साथ निकलता है, निकलकर जहाँ विदेह राज्य था, जहाँ मिथिला राजधानी थी, उस और चल पड़ा ।

अरहण्णग-वाणियगस्स समुद्ध-जत्ता—

अर्हन्नक वणिक की समुद्रयात्रा—

१६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं अंगा-नामं जण होत्था । तत्थ णं चंपा नामं नयरी होत्था । तत्थ णं चंपाए नयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था । तत्थ णं चंपाए नयरीए अरहण्णग-पामोक्खा वहवे संजत्ता नावा-वाणियगा परिवसंति-अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूरा । तए णं से अरहण्णगे समणोवासए या वि होत्था—अहिगयजीवाजीवे-वण्णओ ।

१६९. उस काल उस समय अंगनामक जनपद राज्य था । उसमें चंपा नाम की नगरी थी । उस चंपानगरी में चन्द्रछाय नामक अंगराज था । उस चंपानगरी में अर्हन्नक आदि साथ-साथ व्यापार के निमित्त समुद्रयात्रा करने वाले अनेक पोतवणिक वसते थे । वे धन धान्य से सम्पन्न थे—यावत्—दूसरे अनेक लोगों के द्वारा भी पराजित किया जाना अशक्य था । उनमें अर्हन्नक श्रमणोपासक-श्रावक था, जो जीवाजीव स्वरूप का जाता था । आदि पूरा वर्णन करना चाहिए ।

१७०. तए णं तेसि अरहण्णग-पामोक्खाणं संजत्ता नावा-वाणियगार्णं धण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेधारूवे मिहो-कहा-समुल्लावे सनुप्पजित्था—

१७०. किसी एक दिन एकत्रित हुए उन अर्हन्नक आदि पोतवणिकों का आपस में बात-चीत करते हुए यह विचार उत्पन्न हुआ—

“तेयं खलु अर्हं गणिमं च, धरिमं च, मेज्जं च परिच्छेज्जं च । भंडगं गहाय लवणसमुद्धं पोयवहणेणं ओगाहितए” त्ति कट्टु अण्णत्तणं एयमट्ठं पडिसुणेत्ति, पडिसुणेत्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हति, गेण्हित्ता सगडी-सागडयं सज्जेत्ति, सज्जेत्ता गणिमस्स, धरिमस्स, मेज्जस्स, पारिच्छेज्जस्स य भंडगस्स सगडी-सागडयं भरेंति, भरेंत्ता सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउत्तं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, उवक्खडावेत्ति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं भोयणवेलाए भुंजावेत्ति, भुंजावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं आपुच्छंति, आपुच्छंत्ता सगडी-सागडयं जोयंति, जोइत्ता चंपाए नयरीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छिता जेणेव गंभीरए पोय-पट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता सगडी-सागडयं नोयंति, पोय-वहणं सज्जेत्ति, सज्जेत्ता य गणिमस्स धरिमस्स मेज्जस्स पारिच्छेज्जस्स य भंडगस्स भरेंति, तंडुलाण य, समियस्स य, तेलस्स य, घयस्स

यह श्रेय है कि हम गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य आदि वस्तुओं को लेकर पोतवाहनों से लवणसमुद्र को पार करें । इस बात को सभी ने सुना और स्वीकार किया, स्वीकार करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य वस्तुओं को लेते हैं लेकर गाड़ियों-गाड़ों को सजाते हैं, सजाकर गणिम, धरिम, मेय, और परिच्छेद्य वस्तुओं को गाड़ी-गाड़ों में भरते हैं, भरकर शुभ तिथी, करण, नक्षत्र, मूर्त आदि देखकर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों को तैयार करवाते हैं, तैयार करवाकर मित्र, जाति, निजी सम्बन्धी, परिजनों आदि को आमंत्रित कर भोजन करवाते हैं, भोजन करवाकर मित्रों, जाति, निजी सम्बन्धियों और परिचित आदि जनों से पूछते हैं, पूछकर गाड़ी-गाड़ों को जोतते हैं जोतकर चंपानगरी के बीचोबीच होकर निकलते हैं, निकलकर जहाँ गंभीरक पोतपट्टन (वंदरगाह) था वहाँ आते हैं, वहाँ आकर गाड़ी-गाड़ों को छोड़ते हैं, पोतवाहन को सजाते हैं सजाकर गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य पदार्थों को भरते हैं इनके माय ही चावल, गेहूँ, तेल, घी, गुड़,

वेगेहिं संखुब्भमाणी संखुब्भमाणी उम्मी-तरंग-माला-सहस्साइं समइच्छमाणी समइच्छमाणी कइवएहिं अहोरत्तेहिं लवण-समुद्दं अणेगाइं जोयण-सयाइं ओगाढा ।

तालपिसायादीणं उप्पायाणं पाउब्भावो—

१७२. तए णं तेसि अरहण्णग-पामोक्खाणं संजत्ता-नावा-वाणियगाणं लवण-समुद्दं अणेगाइं जोयण-सयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइय-सयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—

अकाले गज्जिए, अकाले विज्जुए, अकाले थणियसद्दे, अब्भक्खणं-अब्भक्खणं आगासे देवयाओ नच्चंति ।^१

तए णं ते अरहण्णग-वज्जा संजत्ता-नावा-वाणियगा एगं च णं महं ताल-पिसायां पासंति—ताल-जंघं, दिवंगयाहिं बाहाहिं फुट्ट-सिरं, भमर-निगर-वरमासरासि-महिस-कालगं, भरिय-मेह वण्णं, सुप्प-णहं, फाल-सरिस-जीहं, लंबोठं, धवलवट्ट असिलिट्ठ-तिक्ख-थिर-पीण-कुडिल-डाढोवगूढ-वयणं, विकोसिय-धारासिजुयल-सम-सरिस-तणुय-चंचल-गालंतरस-लोल-चवल-फुरुफुरेते निल्लालियग-जीहं,

हुई अपने ऊपर वायु संग्रहार्थ बांधे गये श्वेत पालों से पांखों को पसार कर आकाश में उड़ती हुई गरुड़; युवती की तरह हजारों और तरंगमाला उर्मियों को पार करती हुई कई दिनों तक चलते चलते लवणसमुद्र में अनेक योजनों तक पहुँच गई ।

तालपिशाचादि के उत्पातों का प्रादुर्भाव—

१७२ तदनन्तर अर्हन्नक आदि सांयात्रिक पोतवणिक जब सैकड़ों योजन तक लवण समुद्र को पार कर चुके तब बहुत से सैकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत होने लगे, यथा—

अकाल में मेघगर्जना, अकाल में बिजली चमकना, अकाल में मेघों की गड़गड़ाहट, बारंबार आकाश में देवता नाचते हुए दिखलाई देना ।

तब अर्हन्नक को छोड़कर शेष सांयात्रिक पोतवणिक एक विशाल काय पिशाच को देखते हैं—जिसकी जंघायें तालवृक्ष के समान लंबी थीं, दोनों हाथ आकाश को छूते थे, बिखरे हुए वालों से युक्त वेडोल सिर था, भँवरों के समूह, व अतिकृष्ण वर्ण वाली काजल की राशि के समान, भैंस के रंग जैसा, मेघघटाओं से भी अधिक कृष्ण शरीर वाला था, सूप जैसा नख वाला था, जिसकी जीभ फाल के समान लंबी थी, ओठ लंबे थे, मुख गोल मटोल, तलवार के समान नुकीली—मजबूत—मोटी और टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ों से युक्त था, उसकी जीभ का अग्रभाग म्यान से निकली हुई तलवार के समान तीक्ष्ण पैनी, पतली चंचल थी और विषय रस को ग्रहण करने के लिये अत्यन्त लोलुप एवं आतुर होने से जिससे लार टपक रही थी, चपलता के कारण फर-फराहट कर रही थी और मुख से बाहर लटक रही थी;

१ अत्र द्वयोर्वाचनयोः संमिश्रण जातमिति प्रतिभाति । पाठान्तर इत्थमस्ति—एगं च णं महं पिसायरूवं पासंति—‘तालजंघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मसिमुसगमहिसकालगं भरियमेहचन्नं लंबोठं निग्गयगदंतं निल्लालिय-जमलजुयलजीहं आऊसियवयण-गंडदेसं चीणचिपिटनासियं विगयन्नुग भग्गमुयं खज्जोयगदित्तचक्खुरागं उत्तासणं विसालवच्छं विसालकुच्चिं पल्लवकुच्चिं प्हसियपयलियपयडियगत्तं पणच्चमाणं अप्फोडंतं अभिवयंतं अभिगज्जंतं बहुसो बहुसो अट्टहासे विणिम्मुयंतं नीलुप्पलगवलमुलिय असिसिकुसुम्पगासं खुरधारं असि गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति ।

—तब एक महान् पिशाचरूप को देखते हैं—वह पिशाच ताड़ के समान लंबी जांघों वाला था, उसकी बाहु—भुजाएँ आकाश को छू रही थी । वह काजल, काले चूहे और भैंसे व जल भरे मेघ के समान अत्यन्त काला लग रहा था । उसके होठ लंबे और दांत बाहर निकले हुए थे । उसने अपनी एक-सी दोनों जीभें मुँह से बाहर निकाल रखी थीं, उसके गाल जवड़े भीतर धंसे हुए थे । नाक छोटी और चिपटी थी । उसकी भृकुटि डरावनी और अत्यन्त वक्र थी । आँखें जुगनू के समान लाल-लाल चमक रही थी । जो देखने वाले को त्रासदायक थी । उसकी छाती चौड़ी, कुक्षि विशाल और लंबी थी । हँसते और चलते समय उसके शरीर के अवयव ढीले—लटकते हुए दिखाई देते थे । वह नाचता हुआ मानो आकाश को फोड़ रहा था—सामने आ रहा था, गर्जना कर रहा था, बार-बार अट्टहास कर रहा था । उस काले कमल, भैंस के सींग फोड़े की तलवार के समान काली तथा छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण तलवार लेकर सामने आते हुए पिशाच को देखते हैं ।

अवयत्थिय-महल्ल-विगय- वीभच्छ - लालपगलंत -रत्ततालुपं,
हिगुलय-सगम्म-कंदर-विलं व अंजण-गिरिस्स अगिज्जालुगिगलंत-
वयणं,

आऊसिय-अक्खच्चम्म-उड्ढ-गंडदेसं, चीण-चिमिड-वंक-भग्ग-
नासं, रोसागय-धमधमेतं मास्य-निट्ठुर-खर-फहस-झुसिरं ओभुग्ग
नासियपुडं - धाडुदभड-रइय-भोसण-मुहं, उद्ध-मुह-कण्ण-सक्कुलिय
महंत-विगय-लोम-संखालग-लंबंत-चलिय-कण्णं, पिगल-दिप्पंत-
लोयण, मिउडि-तडि-निडालं, नर-सिर-माल-परिणद्धाचिंधं,
विचित्तगोणस-मुवद्धपरिकरं, अवहोलंत-फुफ्फुयंत-सप्प-विच्छुय-
गोधुंदुर-नउल-सरड-विरइय-विचित्त-वेयच्छ-मालियागं, भोग-कूर-
कण्हसप्प-धमधमेत-लंबंत-कण्णपूरं,

मज्जार-सियाल-लइय-खंधं, दित्त-धुयुयंत-धूय-कय-कुंतल-
सिरं, घंटारवेणं भोमं-भयंकरं, कायर-जण-हियय-फोडणं दित्तं
अट्ट-हासं विणिम्मयुयंतं, वसा-रुहिर-पूय-मंस-मल-मलिण-पोच्चड-
त्तणुं, उत्तासणयं,

विसाल-वच्छं, पेच्छंता भिन्न-नख-मुह-नयण-कण्ण-वर-वग्घ-
चित्त-कर्त्ता गियंसणं, सरस-रुहिर-गयच्चम्म-वियय-ऊसविय-वाहुजुयलं
ताहि य खर-फहस-असिणिद्ध-दित्त-अणिट्ठ-दित्त-असुभ-अप्पिय-अकंत
यगूहि य तज्जयंतं तं तालपिसाय-हवं एज्जमाणं पात्तंति, पात्तित्ता
भोया, तत्था, तसिया, उच्चिग्गा, संजायभया अण्णमण्णत्त कायं
समत्तुरंगेमाणा-समत्तुरंगेमाणा ।

बहूणं इंदाण य, खंदाण य, हद्दाण य, तिवाप य, वेसमणाण
य, नागाण य, भूयाण य, जक्खान य अज्ज-कोट्टिकिरियाण य बहूण
उवाइयसपाणि उवाइमाणा चिट्ठंति ।

वारंवार मुख के फाड़ने पर दिखने वाला तातु महाविकरान
वीभत्स—भयावना, नार से गोला और लाल वन का भा, मुख
अंजनगिरि (कृष्ण-पर्वत) में हिगुलु से भरी हुई तंदरा—गुफाएन
विल के समान था, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो अंजन-
गिरि से अग्नि की ज्वालानें ही निकल रही हों ।

दोनों गाल सूखे हुए चरन (पानी निकालने का चमड़े का
पात्र) की तरह अन्दर धंसे हुए थे, नाक छोटी टेढ़ी-मेढ़ी और
चपटी थी और उस नासिका के छेदों से निकलने वाली रसानोच्छ-
वास ऐसी प्रतीत होती थी कि क्रोध के कारण फूँफाट कर रही
हो, जिससे श्वात्त लेते समय धाँकनी के जैसा धनधम शब्द होता
था, वह शब्द-ध्वनि अति तीव्र कंकश, कठोर एवं दुःमह थी,
उसके दोनों कान शुक्कुली के समान ऊँचे फूले हुए थे, उन पर
लंबे-लंबे बाल उग रहे थे, महाविकराल थे, आँधों तक फूले हुए
होने से बड़े लंबे और चंचल थे, आँखें विल्ली के समान पिगल—
(भूरी) और चमकीली थीं, ललाट की भृकुटिया विजली के समान
बक्र थीं, गले में परिचय-चिन्ह के रूप में नरमुण्डों की माना
पहन रखी थी, कवच के रूप में अनेक वर्णवाले महाविषधर
सर्प शरीर से लिपटे हुए थे, कंधों पर इधर उधर गरकने हुए,
फूत्कार करते हुए सर्पों, विच्छुओं, गोंदों, चूहों, तट्टुओं, नरदों
की रंग-विरंगी मालायें धारण कर रखी थीं, कुण्डलों के स्थान
पर महाभयंकर फण वाले और फूत्कार करते हुए जाने जागे
को कान में पहना है ।

कन्धों पर विल्लियाँ और नियार उछल-भूद कर रहे हैं, और-
जोर से धू-धू करने वाले उल्लुओं की मुटुट के रूप में मस्सक पर
धारण किया है, वारम्बार महाभयंकर घंटा बज रहा था,
कायरजनों के हृदय का हृचमचा देनेवाला महाभयंकर अट्टम
कर रहा था, जिसका शरीर चर्बी, हृधिर, पीर, नाभ एवं मल
से लिपटा हुआ और दधाने पर पच-मच शब्द दिखने निकलता
था, देखते ही कंप-कंपी छूट जाती थी ।

उनका वसस्थान बहुत विनाश था, उनमें जो योगिन
पहन रखी थी उनमें स्पष्टरूप में ज्वात्र के उच्छिन्न रूप, रोम-
मुत्र, नयन और कान दृष्टिगत हो रहे थे, जैसे उधर उधर जेवा
तायों में पूल से नयन-य एक विनाश जागी के चमड़े से बंधे रखा
था, ऐसे बात विनाश से भयंकर अस्फोट करने, स्फोटक
अनिष्ट, अनुभ, अत्रिय, अस्मोत जागे से काम देव हुए ज्वात्र
और आते हुए देखते हैं, देखकर वे सब भयभीत हो गए, उ-
नमें, उद्विग्न हो गये और भयभीत होकर एक-दूसरे के शरीर से
निष्कम-चिपककर बैठ गए ।

यहूत में उद्वेग की, स्फोट की, बर्दों हुए, उद्वेग की, उद्वे-
गी, डेरभल की, नाग की, भूड की, मल की और बर्दों उद्वे-
स्वभावात्तों देखियों कि बौद्धों उद्वेग की शरीरों का अस्फोट

१७३. तए णं अरहणए समणोवासए तं दिव्वं पिसाय-रूवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अमीए, अतत्थे, अचल्लिए, असंभंते, अणाउत्ते, अणुव्विग्गे, अभिण्ण-मुह-राग-नयन-वण्णे, अदीण-विमण-माणसे, पोय-वहणस्स एगदेसंसि वत्थंतेणं भूमि पमज्जइ, पमज्जित्ता ठाणं ठाइ, ठाइत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासि—

‘नमोऽत्थु णं अरहंताणं-भगवंताणं—जाव—सिद्धि-गइ-नामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं ।

जइ णं हं एत्तो उवसग्गाओ मुं चामि तो मे कप्पइ पारित्तए, अहं णं एत्तो उवसग्गाओ न मुं चामि तो मे तहा पच्चवखाएयव्वे’ त्ति कट्टु सागारं भत्तं पच्चवखाइ ।

अरहणगस्स पिसाय-वाहा—

१७४. तए णं से पिसाय-रूवे-जेणेव अरहणगे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहणगं एवं वयासी—

‘हंभो अरहणगा ! अपत्थिय-पत्थया ! दुरंत-पंत-लवखणा ! हंण-पुण्ण-चाउट्टसिया ! तिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! नो खलु कप्पइ तव सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चवखाण-पोसहोव-वासाइं चालित्तए वा, खोभित्तए वा, खंडित्तए वा, भंजित्तए वा, उज्झित्तए वा, परिच्चइत्तए वा ।

तं जइ णं तुमं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चवखाण-पोसहोव-वासाइं न चालेसि, खोभेसि, न खंडेसि, न भंजेसि, न उज्जेसि; न परिच्चयसि, तो ते अहं एयं पोय-वहणं दोहि अंगुलियाहिं गेण्हामि, गेण्हित्ता-सत्तट्ट-तल-प्पमाण-मेत्ताइं उड्डं वेहासं उट्ठिहामि. उट्ठिहत्ता अंतोजलसि तिट्ठोलेमि, जेणं तुमं अट्ट-डुहट्ट-वसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

अरहणगस्स दढधम्मत्तं—

१७५. तए णं से अरहणगे समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी—

‘अहं णं देवानुप्पिया ! अरहणए नामं समणोवासए अहिगय-जीवाजीवे । नो खलु अहं सक्के केणइ देवेण वा, दाणवेण वा, जक्खेण वा, रक्खसेण वा, कित्तरेण वा, किगुरित्तेण वा, महोरणेण वा, गंधव्वेण वा, निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा । तुमं णं जा सद्धा तं करेहि’ त्ति कट्टु अमीए,—जाव—अभिन्न-मुह-राग-नयण-वण्णे अदीण-विमण-माणसे, निच्चत्ते, निष्फंदे, तुत्तिणांए धम्मज्ज्ञाणोवगए विहरइ ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहणगं समणोवासगं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—

‘हंभो अरहणगा ! —जाव—धम्मज्ज्ञाणोवगए विहरइ ।

१७३. इसके बाद अर्हन्नक श्रमणोपासक उस दिव्य (देव सम्बन्धी) पिशाचरूप को अपनी ओर आते हुए देखता है, देखकर वह भय-भीत नहीं हुआ, उद्विग्न नहीं हुआ, मुख और आँखों का रंग फीका नहीं पड़ा, मन में दोनता और उदासीनता नहीं आई, किन्तु पोतवाहन—नौका के एक योग्य स्थान पर वसनांचल से भूमि को साफ करता है, साफ करके बैठता है, बैठकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक को झुकाकर अंजलि करके इस प्रकार कहता है—

‘अरहंत भगवन्तो को नमस्कार है—यावत्—सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने वालों को ।

यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊँ, तब तक का प्रत्याख्यान करता हूँ और यदि इस उपसर्ग से नहीं बचा तो यावज्जीवन का प्रत्याख्यान करता हूँ ।’ ऐसा कहकर सागार भक्त प्रत्याख्यान करता है ।

अर्हन्नक को पिशाच-वाधा—

१७४. तदनन्तर वह पिशाचरूप जहाँ अर्हन्नक श्रमणोपासक था, उस ओर आता है, वहाँ आकर इस प्रकार कहता है—‘अरे अर्हन्नक ! अरे अकाल मौत को चाहने वाले ! हे दुरंत पंत लक्षण ! हे अभागे चतुर्दशी को जन्म लेने वाले ! श्री, ह्री, धृति, कीर्ति परिवर्जित ! यदि तुम शीलव्रत, गुणव्रत, त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध, आवश्यक आदि से चलायमान नहीं होओगे, क्षुभित नहीं होओगे, खंडित नहीं करोगे, भंग नहीं करोगे, त्याग-परित्याग नहीं करोगे तो मैं इस पोतवाहन को दो अंगुलियों से पकड़कर सात आठ ताल प्रमाण ऊपर आकाश में ले जाऊँगा, ले जाकर (वहाँ से पटककर) गहरे जल में डुवो दूँगा, जिससे तुम आर्त-रीद्र-ध्यान के वशवर्ती होकर असमाधि को प्राप्त कर अकाल मौत से मरकर जीवन-रहित हो जाओगे ।’

अर्हन्नक की धमंदूढ़ता—

१७५. इसके बाद अर्हन्नक श्रमणोपासक ने अपने मन में ही उस देव से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! जीवाजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता मैं अर्हन्नक श्रमणोपासक हूँ । किसी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किपुत्य, महोरग या गंधर्व की यह ताकत नहीं जो मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित करदे, क्षुभित करदे, विपरिणामी—उन्मुख कर सके । अतः जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा तुम करो ।’ ऐसा कहकर निर्भय—यावत्—मुख और नेत्रों की कांति में किंचिन्मात्र भी परिवर्तन न करके, अदीन निरपेक्षमना होकर निश्चल, निष्कंप, निःशब्द, और ज्ञातिपूर्वक धर्मध्यान में स्थिर रहता है ।

इसके बाद वह दिव्य पिशाचरूप अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार तीसरी बार भी इस प्रकार कहता है—

‘हे अर्हन्नक ! —यावत्—वह धर्मध्यान में स्थिर रहता है ।

एवं सतु देवाणुप्पिया ! सक्के, देविंदे, देवराया सोहम्मं कप्पे, सोहम्म-उडिसए विमाणे, सभाए सुहम्मए, चहणं देवाणं मज्झमए, महया-महया सट्ठेण एव आइयलइ, एव भासेइ, एवं पण्णवेइ, एव पहेवेइ—

“एवं सतु देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीपे देवि, भारहेवासो, चंपाए नयरोए, अरहण्णए ममणोयासए अभिगय-जोवाजीये । नो सतु सक्के केणइ देवेण वा, वाणवेण वा, जवणेण वा, रत्तसेण वा, किन्नरेण वा, किपुरिसेण वा, महोरगेण वा, गंधवेण वा, निगं-याओ पाज्जणाओ चालित्तए वा, लोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा ।”

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! सक्कस्स, देविस्स, देवरणो नो एयमट्ठं सट्ठहामि, पत्तियामि, रोएमि । तए णं मम इमेयारुवे अज्झरिथए, चित्तिए, पत्तिए, मणोए संकप्पे समुत्पजित्वा—

“गच्छामि णं अहं अरहण्णस्स अतियं पाउन्नवामि, जाणामि ताव अहं अरहण्ण-किं पियधम्मं, नो पियधम्मं ? दठधम्मं, नो दठधम्मं ? सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चवत्ताण-पोसहओ-ववात्ताइं किं चालेइ, नो चालेइ ? खोभेइ, नो खोभेइ ? खंडेइ, नो खंडेइ ? भंजेइ, नो भंजेइ ? उज्झइ, नो उज्झइ ? परिच्चयइ, नो परि-च्चयइ ?” त्ति कट्ठए एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता ओहिं पउंजामि, पउं-जित्ता देवाणुप्पियं ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभाग अब्वक्कमामि उत्तर-वेउव्विय हवं विउव्वामि, विउ-व्वित्ता ताए उडिरुट्ठाए देवगईए जेणेव लवणसमुट्ठे, जेणेव देवाणु-प्पिए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवाणुप्पियस्स उवसगं करेमि, नो च्चेव णं देवाणुप्पिया, भीया वा तत्था वा, चलिया वा, संभता वा, आउत्ता वा. उव्विगा वा निण्ण-मुह-राग-दयण-वयणा, दोण-विमण-माणसे जाया ।

तं जं णं सक्के, देविंदे, देवराया एवं वपइ, सच्चं णं ! एस-मट्ठे । तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियस्स इड्ढी, जुई, जसो, वलं, वीरियं पुरिसकार-परवक्कमे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णाए । तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमेसु णं देवाणुप्पिया ! खंतुनरिहसि ण देवाणु-प्पिया ! नाइ भुज्जो-भुज्जो एवं करणयाए’ त्ति कट्ठए पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, खामेत्ता अरह-ण्णस्स य दुवे कुण्डलजुयले दलयइ, दलइत्ता जामेव दिसि पाउ-व्वभूए, तामेव दिसि पडिगए ।

तए णं से अरहण्णए निरुवसगमिति कट्ठए पडिमं पारेइ ।

हे देवानुप्रिय ! देवेंद्र देवराज शक्र ने मोक्षमंथन में, मोक्षपा-कर्मकाण्ड विमान में, भुज्जोमंथन में बहुत से देवों के बीच उन्नत-तर से भाव देकर इस प्रकार कहा और बताया, मन्वीकृत किया—

‘हे देवानुप्रिय ! जंबुद्वीप में भारतवर्ष में नगणकरो में जीवा जीव का जाना करने का श्रमणोत्सव है । इसे किसी भी देव, यामव, यश, रायम, किन्नर, किपुर, महोरग वा मंत्रों द्वारा निर्गन्थ प्रयत्न में नयापमान नहीं किया जा सकता है ।’

नव हे देवानुप्रिय ! देवेंद्र देवराज शक्र की इस बात पर मुझे विश्वास नहीं हुआ, प्रतीति नहीं हुई और न यथाकार लगी । नव मुझे इस प्रकार का विचार उन्नत हुआ, मैंने विचार किया और मन में संकल्प पैदा हुआ—

‘मैं अर्हन्नक के समीप जाऊँ और जानूँ कि अर्हन्नक को धर्म प्रिय है अथवा धर्म प्रिय नहीं है ? गीत, प्रस, गुण, दिसादि त्याग, प्रत्याख्यान, पीपथ, आचर्यक आदि से नयापमान होता है अथवा चलित नहीं होता है, मुक्क होता है या रात रहता है, प्रती को पंडित करता है या पंडित नहीं करता है, मंजन करता है वा नहीं करता है, आणिक रूप से छोड़ता है वा नहीं छोड़ता है, पूर्ण हर्षण त्यागता है वा नहीं त्यागता है ?’ इस प्रकार का विचार किया, विचार करके अवधिज्ञान उपयोग लगाया, उपयोग लगाकर आप देवानुप्रिय को देखा-जाना; देख-जानकर उत्तर-पूर्व दिग्भाग-ईशानकोण में जाकर उत्तरवर्किय शरीर की विहुर्वणा की, विकुर्वणा करके उत्कृष्ट देवगति से जिस ओर लवणसमुद्र था जहाँ आप देवानुप्रिय थे, वहाँ आया और वहाँ आकर आप देवानुप्रिय पर उपसर्ग किए फिर भी आप देवानुप्रिय उस उपसर्ग से भीत, त्रस्त, चलित, संभ्रांत, व्यग्र, उद्विग्न, भिन्नमुखराग नयन वर्ण वाले, दीन, विमनस्क नहीं हुए ।

अतएव देवेंद्र देवराज शक्र ने जो कहा था वह सब कथन सत्य सिद्ध हुआ, मैंने आपको वैसे ही देखा, पाया । मैंने देखा है कि आप देवानुप्रिय को ऋद्धि, धुति, यश, वल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उन्हें अभिसमन्वित किया है । देवानुप्रिय ! मैं खमाता हूँ । आप देवानुप्रिय ! मुझे क्षमा करें । हे देवानुप्रिय आप क्षमा देने के योग्य हैं । मैं अब पुनः ऐसा नहीं कहूँगा । इस प्रकार कहकर अंजलिपूर्वक चरणों में नमस्कार करके सविनय अपने अपराध की पुनः पुनः क्षमायाचना करता है और क्षमायाचना करके भेंटस्वरूप अर्हन्नक को कुण्डलों की जोड़ी अर्पित करता है, भेंट करके जिस दिशा में प्रगट हुआ था उसी दिशा में लौट गया ।

तदनन्तर उपसर्ग दूर हो गया है, ऐसा जानकर अर्हन्नक अपनी प्रतिमा (सागारी संधारे) को पारता है ।

अरहणगस्स मिहिला-आगमणं—

१७८. तए णं ते अरहणग-पामोवखा-संजत्ता-नावा-वाणियगा दविखणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोय-वट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेति, लंबेत्ता सगाडि-सागडं सज्जेति-सज्जेत्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं परिच्छेज्जं च सगडि-सागडं संकामेति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए वहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएति, मोएत्ता महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डल-जुयलं च गेण्हति, गेण्हित्ता मिहिलाए रायहाणीए अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव कुम्भए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहिंयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डल-जुयलं च उवणेति ।

तए णं कुम्भए राया तेसि संजत्ता-नावा-वाणियगणं तं महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं, दिव्वं कुण्डल-जुयलं च पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लि विदेह-वर-राय-कन्नं सदावेइ, सदावेत्ता तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं मल्लीए विदेहवरराय-कन्नगाए पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से कुम्भए राया ते अरहणग-पामोवखे संजत्ता-नावा-वाणियगे विपुलेणं वत्थ-गंध-मल्लाल-कारेण य सवकारेइ, सम्माणेइ, सवकारेत्ता; सम्माणेत्ता उस्सुंबकं वियरइ, वियरित्ता रायमग्गमो-गाडे य आवासे वियरइ, वियरित्ता पडिविसज्जेइ ।

अरहणगस्स चंपाए आगमणं—

१७९. तए णं अरहणग-पामोवखा संजत्ता-नावा-वाणियगा जेणेव रायमग्गमोगाडे आवासे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेति, पडिमंटे गेण्हति, गेण्हित्ता सगडि-सागडं भरति, भरत्ता जेणेव गंभीरए पोय-वट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयं वहणं सज्जेति, सज्जेत्ता भंडं संकामेति, संकामेत्ता दविखणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव चंपाए पोय-वट्टणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोयं लंबेति लंबेत्ता सगडि-सागडं सज्जेति, सज्जेत्ता तं गणिमं, धरिमं, मेज्जं, परिच्छेज्जं च सगडि-सागडं संकामेति, संकामेत्ता सगडि-सागडं जोविंति, जोवित्ता जेणेव चंपा-नगरी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता चंपाए रायहाणीए वहिया अग्गुज्जाणंसि सगडि-सागडं मोएति, मोएत्ता महत्थं, महग्घं,

अर्हन्तक का मिथिला-आगमन—

१७८. तदनन्तर वे अर्हन्तक आदि नायाधिक पौत्रपति के राजपुत्रिता के अनुकूल पवन के कारण जहा गंभीर नामक पौत्रपति (पुत्रपति) था वहा आते है। वहा आकर पौत्र पति के नगर उतारना, नगर डालकर गाड़ी-गाड़ों को नैवार करते है, नैवार करते उनमे धरिम, धरिम, मेय और परिच्छेय व्यापार योग्य वस्तुओं के भांडों को खरीद है खरकर गाड़ी गाड़ों को जोतते है, जोतकर जहा मिथिला की वहां आते है, वहा आकर मिथिला राजधानी के वाहन अथ-उद्योग में गाड़ी गाड़ों को मेलते है, छोड़ते है, छोड़कर महार्थक, मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, विपुल परिमाण मे राजा के योग्य भेंट और कुण्डल गुगल को लिया, लेकर मिथिला राजधानी में प्रवेश करते है, प्रवेश करते जहा कुम्भ राजा था, राजा आकर वहां आकर हाथ जोड़ नमस्कार करके महार्थक, मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, राजा के योग्य विपुल भेंट एवं कुण्डल गुगल नामने रखते है ।

तत्पश्चात् कुम्भराजा उन नायाधिक पौत्रपति की उस महार्थक, मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य, विपुल राजा के योग्य भेंट और दिव्य कुण्डल गुगल को स्वीकार करता है, स्वीकार करके विदेहवर राजकन्या मल्लि को दुवासा, दुवासा उन विदेह कुण्डल गुगल को विदेहवर राजकन्या मल्लि को पढ़ाता है, पढ़नाकर विदा करता है ।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने उन अर्हन्तक आदि नायाधिक पौत्र पतिकों का विपुल वस्त्र, माना, जनकार में नमस्कार किया, सम्मान किया, नमस्कार सम्मान करके उनके भाव पर नमस्कार कर दिया, नमस्कार करके राजमार्ग पर उनको उद्दण्ड का प्रदण्ड किया और प्रदण्ड करके उन्हें विदा किया ।

अर्हन्तक का चंपा में आगमन—

महरिहं, विउलं रायारिहं पाहुडं, दिव्वं च कुण्डल-जुयलं गेण्हति, गेण्हिता जेणव चंदच्छाए अंगराया तेणव उवागच्छति, उवागच्छिता तं महत्थं, महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं, पाहुडं, दिव्वं च कुण्डल-जुयलं उवणंति ।

१८०. तए णं चंदच्छाए अंगराया तं महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुण्डलजुयलं पडिच्छइ, पडिच्छिता ते अरहण्णग-पामोक्खे एवं वयासी—

‘तुम्हे णं देवानुप्पिया ! वहूणि गामागर-जाव-सण्णिवेसाइं आहिउह, लवण-समुदं च अभियलणं-अभिकलणं पोय-वहणेहि ओगाहेह तं अत्थि पाइं भे केइ कहिचि अच्चेरए दिट्ठुव्वे ।

मल्ली रूव-पसंसा—

१८१. तए णं ते अरहण्णग-पामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी—

‘एवं खलु सामी ! अम्हे इहेव चंपाए नयरीए अरहण्णग-पामोक्खा वहवे संजत्तगा-नावा-वाणियगा परिवसामी । तए णं अम्हे अण्णया कयाइ गणिमं च, धरिमं च, मेज्जं च, परिच्छेज्जं च गेण्हामो, तहेव अहीणं-अइरित्तं-जाव-कुम्भगस्स रण्णो उवणेमो । तए णं से कुम्भए मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता पडिउत्तज्जेइ । तं एस णं सामी ! अम्हेहि कुम्भगराय-भवणंसि मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना अच्चेरए दिट्ठे । तं नो खलु अण्णा का वि तारिसिया देव-कन्ना वा, अमुर कन्ना वा, नागकन्ना वा, जक्ख-कन्ना वा, गंधव्व-कन्ना वा, राय-कन्ना वा, जारिसिया णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना ।’

तए णं चंदच्छाए अरहण्णग-पामोक्खे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता उस्सुंक्कं वियरइ, वियरित्ता पडिविस-ज्जेइ ।

चन्द्रच्छाय-रण्णो दूयस्स मिहिला-गमणं—

१८२. तए णं चंदच्छाए वाणियग-जणिय-हासे दूयं सद्दवेइ, सद्दवेत्ता एवं वयासी—

‘गच्छाहि णं तुमं देवानुप्पिया-जाव-मल्लि विदेह-राय-वर-कन्ना मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका’

तए णं से दूए चंदच्छाएणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-पहारेत्थ गमणाए ।

रूपो राया—

१८३. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुणाला नाम जणवए होत्था । तत्थ णं सावत्थी नाम नयरी होत्था । तत्थ णं रूपी कुणालाहिर्वई नाम राया होत्था । तस्स णं हप्पिस्स धूया धारिणीए देवीए

के योग्य, विपुल राजाओं के योग्य भेंट और दिव्य कुण्डल युगत को लेने हैं, नेकर जहाँ अंगराय चन्द्रच्छाया या वहाँ जाय, वहाँ आकर उन महायंत्रक, महायंत्र, महान पुत्रों के साथ-ही विपुल राजा के योग्य भेंट एवं दिव्य कुण्डल-युगत को सामने रखने हे ।

१८०. तदनन्तर चन्द्रच्छाया अंगराय उन महायंत्रक भेंट एवं दिव्य-कुण्डल को स्वीकार करवा हे, स्वीकार करके उसने अर्हन्नक आदि ने इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! आप लोग बहुत से ग्रामों में, जातों में—यावत्—संनिर्गणों आदि में परिभ्रमण करने लगे और बार-बार पोतवाहन में लवण समुद्र भी जाते लगे तो आपने वहाँ किसी जगह कोई भी अश्चर्य पहले देखा हे ?’

मल्लिरूप-प्रशंसा—

१८१. तब उन अर्हन्नक आदि ने चन्द्रच्छाया अंगराय ने इस प्रकार कहा—

‘हे स्वामिन् ! हम अर्हन्नक आदि बहुत से नायात्रिक पोत-वहिक दूरी चंपानगरी में निवास करते हे । हम लोग किसी एक समय गणिम, धरिम, मेय, परिच्छेद्य आदि पूर्ववत् न न्यून और न अधिक—यावत्—कुम्भ राजा के पास पहुँचे तब उस कुम्भ राजा ने विदेहवर राजकन्या को वे दिव्यकुण्डल युगत पहनाये, पहनाकर विदा किया । तो हे स्वामिन् ! हमने कुम्भ राजा के भवन में विदेहवर राजकन्या मल्लि को आश्चर्य के रूप में देखा हे । इससे पहले कभी भी वैसी दूसरी देवकन्या, या अनुरकन्या, या नागकन्या, या यक्षकन्या, या गन्धर्वकन्या या राजकन्या नहीं देखी हे जैसी विदेहवर राजकन्या मल्लि हे ।’

तत्पश्चात् चन्द्रच्छाया ने अर्हन्नक आदि का सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके कर-मुक्त कर दिया और शुल्क मुक्त करके विदा किया ।

चन्द्रच्छाया राजा के दूत का मिथिला गमन—

१८२. तदनन्तर वणिकों के कथन से हर्षविभोर हुए चन्द्रच्छाया ने दूत को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहता है—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो, यदि उसके लिय सारे राज्य को शुल्क के रूप में देना पड़े तो भी स्वीकार करना ।

तब वह दूत चन्द्रच्छाया के इस वृत्तान्त को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होकर—यावत्—चल दिया ।

हक़िम राजा—

१८३. उस काल उस समय में कुणाल नामक जनपद था । उसमें श्रावस्ती नाम की नगरी थी । उस नगरी में कुणालाधिपति हक़िम नाम का राजा था । उस हक़िम राजा की पुत्री, धारिणी रानी

अत्तया मुवाहू नाम दारिया होत्वा सुकुमाल-पाणिपाया ह्वेण य, जोध्वणेण य, लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्वा ।

मुवाहूए मज्जणए—

१८४. तीसे णं मुवाहूए दारियाए अण्णया चाउम्मासिय-मज्जणए जाए यावि होत्वा । तए णं से रूपी कुणालाहिबई मुवाहूए दारियाए चाउम्मासिय-मज्जणयं उवट्ठियं जाणइ, जाणित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु देवाणुप्पिया ! मुवाहूए दारियाए कल्लं चाउम्मासिय-मज्जणए भविस्सइ, तं कल्लं तुव्हे णं जायमग्गमोगाडंसि चउक्कंसि जल-थलय-दसद्धवण्णं मल्ल साहरह-जाव-एगं महं सिरि-दाम-गंडं गंधद्वीणि मुयंतं उल्लोयंसि ओलएह ।

ते वि तहेव ओलयंसि ।

तए ण से रूपी कुणालाहिबई सुवण्णमार-तेणि सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

‘विप्पामेय भो देवाणुप्पिया ! रायमग्गमोगाडंसि पुष्क-मंडवंसि नाणाविह-पंचवण्णेहि तंडुलेहि नगर आलिहह, तस्स बह-मज्जवेस-भाए पट्टयं रएह, रएत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।’

ते वि तहेव पच्चप्पिणंसि ।

१८५. तए णं से रूपी कुणालाहिबई हृत्वि-संध-वरणए चाउरंगिणीए तेणाए महया भड-चडगर-रह-पहकर-त्तिद-परिपिलत्ते अंतेउर-वरियाल-संवरिवुडे, मुवाहूं दारियं पुरओ कट्टु, जेणेव रायमग्गे, जेणेव, पुष्कमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हृत्वि-संधाओ पच्चोहहइ, पच्चोहहिता पुष्क-मंडवे अनुप्पवित्तइ, अणुप्पवित्तत्ता तीहात्तण-वर-णए पुरत्थाभिमुहे सग्गिसण्णे ।

तए णं ताओ अंतेउरियाओ मुवाहू दारियं पट्टयमि उरहेति. उरहेत्ता तेवासीवएहि कलत्तेहि प्हाणेति, प्हाणेतत्ता नव्वात्तंकार-विभूत्तियं करेति, करेत्ता रिडगो पाव-पडियं उज्जेति । तए ण मुवाहू दारिया जेणेव रूपी राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पाय-ग्गहणं करेइ ।

मल्ली-मज्जणग-पत्तंता—

१८६. तए णं से रूपी राया मुवाहू दारियं तजे विरोइ, विरोत्तित्ता मुवाहूए दारियाए रूपेण य, जोध्वणेण य, लावण्णेण य, जायविहूए धरिनधरं सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

की अंगजा मुवाहू नामक कन्या थी, जिसके शरीर-रंग सदा सर्वांग सुकोमल थे एवं जो कर में, जोवन में, शरीर में सुसज्ज थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी ।

मुवाहू का मज्जणक—

१८४. उस मुवाहू बालिका का विनी नमक चातुर्मासिक म्मान (जलकीड़ा) का उत्सव आया । तब उस कुणालाहिबई नाम के मुवाहू बालिका के चातुर्मासिक म्मान का उत्सव आया तब, जानकर कीटम्बिक पुष्पों को बुलाया, बुलाकर उस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तब मुवाहू बालिका के चातुर्मासिक म्मान का उत्सव होगा, इसलिये तुम तब राजमार्ग के मध्य में नीचे में जल और धन में उदात्त पंचवर्णों के फूलों को लाओ—पारु— एक महान सुगन्ध से भण्णुर श्री दामकाण्ड लटकाओ ।’

वे भी उसी प्रकार लटकाने हैं ।

तदन्तान् वह कुणालाधिपति रश्मि सुसंसार प्रेमी (समूह) को बुलाता है, बुलाकर उसमें एक प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! नीचे ही राजमार्ग के मध्य में पुष्प मंडप में अनेक प्रकार पंचवर्णों का फूलों से नगर का अतिशय कर्णो उचित ठीक बीच में एक पाट रखा, आदेश पूर्ण होने से आपस बुलाओ ।’

वे भी वैसा करके आदेश पूर्ण हो बुलाए देते हैं ।

१८५. तदन्तान् वह कुणालाधिपति रश्मि सुसंसार प्रेमी के शरीर पर घंटकार चतुरंगिणी मेवा, रश्मिदे कोड़ाओ एवं रश्मि मण्डप में विना हुआ और अन्तःपुर परिहार के मान, सुसज्ज सी रथा या आगे करके उरी राजमार्ग पर, जहाँ पुष्पमंडप का रथो असे है, वहाँ आकर अन्तिमस्थ में नीचे उतरा, उतरकर पुष्पमंडप में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर पूर्ण विना से कर मुच करके उत्सव निहायन पर आसीन हुआ ।

‘तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम दोच्चे णं बहूणि गामागार-नगर-जाव-सण्णिवेसाइं आहिडसि, बहूण य राईसर-जाव-सत्य-वाहपभिईणं गिहाणि अणुप्पविससि, तं अत्थि याइं तं कस्सइ रण्णो वा, ईसरस्स वा कर्हिच्चि एयारिसए मज्जणए विट्ठपुब्बे, जारिसए णं इमीसे सुवाहूए दारियाए मज्जणए ?’

तए णं से वरिसधरे रुप्पि रायं करयल-परिगहियं सिरसावत्त मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-

‘एवं खलु सामी ! अहं अण्णया तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं गए । तत्थ णं मए कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मत्थीए विदेह-राय-वर-कन्नगाए मज्जणए विट्ठे । तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुवाहूए दारियाए मज्जणए सय-सहस्सइमं पि कलं न अघइ ।’

रुप्पिरण्णो दूयस्स मिहिला-गमणं—

१८७. तए णं से रूपी राया वरिसधरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म मज्जणग-जणिय-हासे, दूयं सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया !-जाव-मल्लि विदेहरायवरकन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जसुंका ।’

तए णं से दूए रुप्पिणा एवं बुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

संख-राया—

१८८. तेणं कालेणं तेणं समएणं कासी नामं जणवए होत्था । तत्थ णं वाणारसी नामं नयरी होत्था । तत्थ णं संखे नामं कासीराया होत्था ।

मल्लीए कुण्डल-जुयलस्स संधिविघटणं—

१८९. तए णं तीसे मल्लीए विदेह-वर-राय-कन्नगाए अण्णया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था ।

तए णं से कुम्भए राया सुवण्णगार-सेणी सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इमस्स दिव्वस्स कुण्डल-जुयलस्स संधि संघाडेह ।’

तए णं सा सुवण्णगार-सेणी एयमट्ठं तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दिव्वं कुण्डल-जुयलं गेण्हइ, गेण्हत्ता जेणेव सुवण्णगार-भिसियाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुवण्णगार-भिसियासु निवेसेइ, निवेसेत्ता वहाँहि आएहि य, उवाएहि य,

‘हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे दीत्यकार्य से अनेक ग्रामों, आकरों, नगरों—यावत्—सन्निवेशों में परिभ्रमण करते हो और बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति के गृहों में प्रवेश करते हो, तो तुमने कहीं पर किसी राजा या ईश्वर के यहाँ भी ऐसा मज्जनक पूर्व में देखा है । जैसा इस सुवाहु वालिका का मज्जनक है ?’

तत्र उस वर्षधर ने दोनों हाथ जोड़ एवं नतमस्तक हो अंजलि करके रुक्मि राजा से इस प्रकार कहा—‘हे स्वामिन् ! मैं किसी एक समय आपके दीत्यकार्यवश मिथिला गया था । वहाँ पर मैंने कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की अंगजा विदेहवर राजकन्या मल्लि का मज्जनक (स्नान महोत्सव) देखा था । उस मज्जनक को यह सुवाहु वालिका का मज्जनक लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता है ।’

रुक्मिराजा के दूत का मिथिला-गमन—

१८७. तदनन्तर वर्षधर की इस बात को सुनकर और विचार करके तथा मज्जनक के वृत्तान्त से आश्चर्यचकित हुए रुक्मिराजा ने दूत को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहवर राजकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो, यदि उसके लिये राज्य भी देना पड़े तो तो भी स्वीकार करना ।’

तब वह दूत रुक्मि की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो—यावत्—जिस ओर मिथिला नगरी थी, उस ओर चल दिया ।

शंख राजा—

१८८. उस काल उस समय काशी नामक जनपद था । उसमें वाराणसी नाम की एक नगरी थी । उसमें शंख नाम का काशी-राज था ।

मल्लि के कुण्डल युगल का संधि विघटन—

१८९. तदनन्तर अन्य किसी एक समय उस विदेहवर राजकन्या मल्लि के उस दिव्य कुण्डल युगल की संधि का विघटन हो गया अर्थात् उनका जोड़ खुल गया ।

तब कुम्भराजा ने सुवर्णकार श्रेणी को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! इस दिव्य कुण्डल युगल के जोड़ को सांध दो ।’

तत्पश्चात् उस सुवर्णकार श्रेणी ने तथास्तु कहकर कुण्डल युगल की संधि को सांधने रूप अर्थ (आदेश) को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस कुण्डल युगल को लेते हैं; लेकर जहाँ सुवर्णकारों के बैठने के स्थान हैं, वहाँ आते हैं, वहाँ आकर सुवर्णकारों के स्थानों पर बैठते हैं, बैठकर अनेक साधनों से, उपायों से और

तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी-
'कि णं तुभ्भे देवानुप्पिया ! कुम्भएणं रण्णा निव्विसया
आणत्ता ?'

तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी-

"एवं खलु सामी ! कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए
अत्तयाए मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए कुण्डल-जुयलस्स संधी
विसंघडिए । तए णं से कुम्भए राया सुवण्णगारसेणि सद्दावेइ-जाव-
निव्विसया आणत्ता । तं एएणं कारणेणं सामी ! अम्हे कुम्भएणं
रण्णा निव्विसया आणत्ता ।"

तए णं से संखे कासीराया सुवण्णगारे एवं वयासी-

केरिसिया णं देवानुप्पिया ! कुम्भगस्स रण्णो धूया पभावई-
देवीए अत्तया मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना ?'

मल्ली-रूव-पसंसा संखदूयस्स मिहिला-गमणं—

१२२. तए णं ते सुवण्णगारा संखं कासीरायं एवं वयासी—

नो खलु सामी ! अण्णा का वि तारिसिया देव-कन्ना वा,
असुरकन्ना वा, नाग-कन्ना वा, जक्ख-कन्ना वा, गंधव्व-कन्ना वा,
राय-कन्ना वा जारिसिया णं मल्ली विदेह-वर-राय-कन्ना ।"

तए णं से संखे कासीराया कुण्डल-जुयल-जणिय-हासे दूयं
सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छाहि णं तुमं देवानुप्पिया !
-जाव-मल्लि विदेह-राय-वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ
वि य णं सा सयं रज्जसुंका ।"

१२३. तए णं से दूए संखेणं एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ठे-जाव-जेणेव
मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थे गमणाए ।

अदीणसत्त-राया—

१२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं कुरुनामं जणवए होत्था । तत्थ
णं हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था । तत्थ णं अदीणसत्तू नामं राया
होत्था-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

मल्लदिन्न चित्त-समा-कारवणं—

१२५. तत्थ णं मिहिलाए कुम्भगस्स रण्णो पुत्ते पभावईए देवीए
अत्तए मल्लीए अणुमग्ग-जायए मल्लदिन्ने नामं कुमारे सुकुमाल-
पाणि-पाए-जाव-जुवराया यावि होत्था ।

१२६. तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ कोडुं-बिय-पुरिसे-
सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

'गच्छह णं तुभ्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्त-सभं करेह
अणेग-खंभ-सय-सण्णिविट्ठं—एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह' ।

तव काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से ऐसा पूछा—
'हे देवानुप्रियो ! किस कारण कुम्भराजा ने तुम लोगों को
देश त्याग करने की आज्ञा दी ?'

तव उन सुवर्णकारों ने काशीराजा शंख से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की आत्मजा
विदेहवर राजकन्या मल्लि के कुण्डल युगल का जोड़ चुल गया
था । तव कुम्भराजा ने स्वर्णकार श्रेणी को बुलाया—यावत्—देश
त्याग करने की आज्ञा दी । वस इसी कारण हे स्वामिन् ! कुम्भ-
राजा ने हम लोगों को देश-त्याग करने की आज्ञा दे दी ।'

तदनन्तर काशीराज शंख ने सुवर्णकारों से इस प्रकार
कहा—

'हे देवानुप्रियो ! कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावती देवी की
आत्मजा, विदेहवर राजकन्या मल्लि कैसी है ?'

मल्लिरूप प्रशंसा, शंख के दूत का मिथिला-गमन—
१२२. तव उन सुवर्णकारों ने काशीराज शंख से इस प्रकार
कहा—

'हे स्वामिन् ! जैसी विदेहवर राजकन्या मल्लि है, वैसी न
तो कोई देवकन्या है, अथवा असुरकन्या है, अथवा नागकन्या
है, अथवा यक्षकन्या है, अथवा गंधर्वकन्या या राजकन्या है ।'

इसके बाद कुण्डलजनित हर्ष से आश्चर्यचकित हुआ काशी-
राज शंख ने दूत को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार
कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ—यावत्—विदेहवर राजकन्या-
मल्लि की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो । यदि उसके शुल्क
के रूप में राज्य भी देना पड़े तो दे देना ।'

१२३. तत्पश्चात् शंख की इस बात को सुनकर दूत हृष्ट तुष्ट
होता हुआ—यावत्—जहाँ मिथिला नगरी थी उस ओर चल
दिया ।

अदीनशत्रुराजा—

१२४. उस काल, उस समय में कुरु नामक जनपद था । वहाँ
हस्तिनापुर नामक नगर था । उसमें अदीनशत्रु नामक राजा था—
यावत्—जो राज्य शासन करता था ।

मल्लदिन्न द्वारा चित्रसभा कार्यान्वयन—

१२५. उस मिथिला में कुम्भराजा का पुत्र, प्रभावती देवी का
आत्मज, मल्लि का अनुज सुकुमाल पाणिपाद वाला मल्लदिन्न
नामक राजकुमार—यावत्—युवराज था ।

१२६. उस समय किसी एक दिन मल्लदिन्नकुमार ने कौटुम्बिक
पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'तुम लोग जाओ और मेरे प्रमदवन में अनेक खंभों से युक्त
एक विशाल चित्रसभा का निर्माण करो—आदेश पूर्ति होने की
सूचना दो ।'

१६६. तए णं से मल्लदिने कुमारे मल्लीए-विदेह-राय-वर-कन्नाए तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्जत्तियए-जाव-समुप्पज्जित्था—‘एस ण मल्ली, विदेह-राय-वर-कन्न’ ति कट्टु लज्जिए विलिए, वेड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ ।

तए णं तं मल्लदिन्नं कुमारे अम्म-धाई सणियं सणियं पच्चोसक्कंत पासित्ता एवं वयासी—

‘किण्णं तुमं पुत्ता ! लज्जिए, विलिए, वेड्डे सणियं सणियं पच्चोसक्कसि ?’

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्म-धाई एव वयासी—

‘जुत्तं णं अम्मो ! मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवय-भूयाए-लज्जणिज्जाए मम चित्तसभं अणुपविसित्ताए ?’

तए णं अम्म-धाई मल्लदिन्नं कुमारे एवं वयासी—

‘नो खलु पुत्ता ! एस मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना । एस णं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए चित्तगरएणं तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए’ ।

चित्तगरस्स निव्विसयकरणं—

२००. तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे अम्म-धाईए एयनट्ठं सोच्चा निसम्म आसुहत्ते एवं वयासी—

‘केस णं भो ! से चित्तयरए अपत्तिय-पत्थए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीण-पुण्ण-चाउट्टसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए, जे णं मम जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवय-भूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्त-सभाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए’ ति कट्टु तं चित्तगरं वज्जं आणवेइ ।

तए णं सा चित्तगर-सेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल-परिगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु सामी ! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगर-लद्धी लद्धा, पत्ता अभिसमण्णागया—जस्स णं दुपयस्स वा, चउपयस्स वा, अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं रूवं निव्वत्तेइ । तं मा णं सामी ! तुब्भे तं चित्तगरं वज्जं आणवेह । तं तुब्भे णं सामी ! तस्स चित्तगरस्स अण्णं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह ।’

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिदावेइ, छिदावेत्ता निव्विसयं आणवेइ ।

१६६. तदनन्तर वह मल्लदिन्न कुमार विदेहवर राजकन्या मल्लिके अनुरूप बने चित्र को देखता है, चित्र को देखने पर उसके मन में इस प्रकार का संकल्प आया—यावत्—उत्पन्न हुआ कि यह तो विदेहवर राजकन्या मल्लिके ही है, ऐसा विचार कर लज्जित हुआ, विशेष लज्जित हुआ, दुःखित होकर शनैः-शनैः वहां से चल दिया ।

तब मल्लदिन्न कुमार को शनैःशनैः जाते देखकर धायमाता! इस प्रकार बोली—

‘हे पुत्र ! किस कारण तुम लज्जित, पीड़ित और व्यथित होकर धीरे-धीरे चले जा रहे हो ?’

तब मल्लदिन्न कुमार ने धाया माता से इस प्रकार कहा—

‘हे माता ! मुझे इस चित्रसभा में प्रवेश करना क्या उचित था, जहाँ गुरु और देवता के समान एवं जिनके सामने जाने में मुझे लज्जित होना चाहिये; मेरी ज्येष्ठ भगिनी बैठी हुई है ?’

तब धायमाता ने मल्लदिन्न कुमार से इस प्रकार कहा—

‘हे पुत्र ! निश्चय ही यह साक्षात् विदेहवर राजकन्या मल्लिके नहीं हैं । यह तो चित्रकार के द्वारा विदेहवर राजकन्या मल्लिके का बनाया गया तदनु रूप चित्र है ।’

चित्रकार का निर्वासनकरण—

२००. तब धायमाता को इस बात को सुनकर और विचार करके मल्लदिन्नकुमार क्रुद्ध होकर इस प्रकार बोली—

‘कौन ऐसा अप्रार्थित प्रार्थित (अकालमरण का इच्छुक) दुरन्त-मन्त लक्षण, हीन पुण्य चानुर्दशिक, श्री, ह्री, धृति, कीर्ति-से विहीन चित्रकार है, जिसने गुरुदेवभूत और जिसके समक्ष जाने पर मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ ऐसी मेरी ज्येष्ठ भगिनी का मेरी चित्रसभा में तदनु रूप चित्र बनाया है’, इस प्रकार कहकर उस चित्रकार के वध की आज्ञा दे दी ।

तत्पश्चात् चित्रकार श्रेणी को इस कथन के समाचार ज्ञात हुए तब जहाँ मल्लदिन्नकुमार था वहाँ आकर दोनों हाथों को जोड़ सिर नमा और मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से वधाया, वधाकर इस प्रकार बोली—

‘हे स्वामिन् ! उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकार लब्धि लब्ध हुई है, प्राप्त हुई, अधिगत हुई है, कि जिस किसी भी द्विपद अथवा त्रुपद अथवा अपद का एकदेश भी देख लेता है उस एकदेश के अनुसार तदनु रूप चित्र को चित्रित कर देता है । इसलिये हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार को मारने की आज्ञा मत दीजिये, किन्तु स्वामिन् ! आप उस चित्रकार को दूसरा कोई योग्य दण्ड दीजिये ।’

तब मल्लदिन्न कुमार ने उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेदन करवा दिया और छेदन करवा के देश-निर्वासन की आज्ञा दे दी ।

अदीणसत्तुणो द्वयस्स मिहिलागमणं—

२०३. तए णं से अदीणसत्तू पडिरूव-जणिय-हासे द्वयं सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी—

‘गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया ! -जाव-मल्लि विदेह-राय-वर-कन्नं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि य णं सा सयं रज्जुसुंका ।’

२०४. तए णं से द्वए अदीणसत्तूणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे-जाव-जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्य गमणाए ।

जियसत्तू राया—

२०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं पंचाले जणवए । कंपिलपुरे नयरे । जियसत्तू नामं राया पंचालाहिवई । तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्या ।

चोक्खा परिव्वाइया—

२०६. तत्य णं मिहिलाए चोक्खा नामं परिव्वाइया—रिउव्वेय-यजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहास-पंचमणं निघंटु-छट्ठाणं संगोवंगणं सरहस्साणं चउण्हं वेदाणं-सारगा-जाव-वंभण्णएसु य सत्थेसु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्या । तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर-जाव-सत्यवाह-पभिईणं पुरओ दाण-धम्मं च, सोय-धम्मं च, तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पणवेमाणी परूवेमाणी, उवदंसेमाणी विहरइ ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया अणया कयाइं तिवंडं च कुंडियं च-जाव-धाउरत्ताओ य गेण्हइ गेण्हत्ता परिव्वाइगावसहाओ पडिनिकखमइ, पडिनिकखमित्ता पविरल-परिव्वाइया-सद्धि संपरिवुडा मिहिलं रायहारिणं मज्झंमज्जेणं जेणेव कुम्भगस्स रण्णो भवणे, जेणेव कन्नंतेउरे, जेणेव मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता उदय-परिफासियाए दम्भोवरि-पच्चत्युयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए पुरओ दाण-धम्मं च सोय-धम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पणवेमाणी, परूवेमाणी, उवदंसेमाणी विहरइ ।

मल्लीए चोक्खामय-निरासो—

२०७. तए णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी—

‘तुव्वभण्णं चोक्खे ! किं मूलए धम्मे पण्णत्ते ?’

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लि विदेह-राय-वर-कन्नं एवं वयासी—

अदीणशत्रु के दूत का मिथिला-गमन—

२०३. उसके बाद प्रतिरूपजनित अनुराग से आश्चर्यचकित हुए अदीणशत्रु ने दूत को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ—यावत्—विदेहराजवरकन्या मल्लि की मेरी भार्या के रूप में याचना करो और यदि उसके मूल्य के रूप में राज्य की मांग की जाये तो यह बात भी स्वीकार कर लेना ।

२०४. तदनन्तर अदीणशत्रु की इस बात को सुनकर दूत दृष्ट तुष्ट होकर—यावत्—मिथिला नगरी की ओर जाने के लिये प्रवृत्त हो गया ।

जितशत्रु राजा—

२०५. उस काल में और उस समय में पांचाल जनपद था । कंपिलपुर नगर था । उसमें पंचालाधिपति जितशत्रु नामक राजा था । उस जितशत्रु के अन्तःपुर में धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं ।

चोक्खा परिव्राजिका—

२०६. उस मिथिला नगरी में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, निघंटु आदि वेद वेदांगों के रहस्यों की ज्ञाता—यावत्—ब्राह्मण शास्त्रों की जानकर चोक्खा नाम की परिव्राजिका रहती थी । वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरी में अनेक राजेश्वरों—यावत्—सार्धवाह आदि के सामने दानधर्म, शौच-धर्म और तीर्थाभिषेक का कथन करती, समझाती, प्ररूपणा करती, उपदेश देती थी ।

किसी एक समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड और कमण्डल—यावत्—गेरुए वस्त्रों को लेकर परिव्राजिकाओं के साथ निकली, निकलकर कुछ एक परिव्राजिकाओं सहित मिथिला राजधानी के मध्य में होती हुई जहाँ कुम्भराजा का भवन था, जहाँ कन्या-अन्तःपुर था, जहाँ विदेहराजवर कन्या मल्लि थी, वहाँ आई, वहाँ आकर भूमि को जल से सिंचित किया, दर्भ को बिछाया और आसन रखकर बैठ गई, बैठकर विदेहराजवर कन्या मल्लि के सामने दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थाभिषेक धर्म का कथन करती है, समझाती है, प्ररूपणा करती है, उपदेश करती है ।

मल्लि के द्वारा चोक्खा का मत-निरास—

२०७. इसके बाद विदेहराजवर कन्या मल्लि ने चोक्खा परिव्राजिका से इस प्रकार कहा—

‘हे चोक्खा ! तुम्हारे यहाँ धर्म का मूल क्या बताया है ?’

तब वह चोक्खा परिव्राजिका विदेहराजवर कन्या मल्लि से इस प्रकार बोली—

भवणे जेणेच, जियसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, अणुपविसइ, अणुपविसिता जियसत्तू जएणं विजएणं वद्धावेइ ।

तए णं से जियसत्तू चोक्खं परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासिता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता चोक्खं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता आसणेणं उवनिमंतेइ ।

तए णं सा चोक्खा उदग-परिफासियाए दग्गोवरि पच्चत्थुयाए भिसियाए निविसइ, निविसिता जियसत्तू रायं रज्जे य, रट्ठे य, कोसे य, कोट्ठागारे य, बले य, वाहणे य, पुरे य, अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ ।

तए णं सा चोक्खा जियसत्तूस्स रण्णे दाण-धम्मं च, सोय-धम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी, पणवेमाणी, परूवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ ।

चोक्खा कहिओ अगडददुुर दिट्ठंतो—

२११. तए णं जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जाय-विम्हए चोक्खं एवं वयासी—

‘तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर-जाव-सण्णिवेसंसि आहिं-डसि, बहूण य राईसर-सत्थवाह-प्पभिईणं गिहाइं-अणुप्पविससि, तं अत्थि याइं ते कस्सइ रण्णो वा, ईसरस्स वा कहिंहि एरिसए ओरोहे दिट्ठ-पुव्वे, जारिसए णं इमे मम ओइहे ?’

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुणा एवं वुत्ता समाणी ईसिं विहसियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

‘सरिसए णं तुमं देवाणुप्पिया ! तस्स अगड-ददुुरस्स ।

‘के णं देवाणुप्पिए ! से अगड-ददुुरे ?’

‘जियसत्तू ! से जहा-नामए अगड-ददुुरे सिया । णं से तत्थ जाए, तत्थेव वुड्ढे अणं अगडं वा, तलागं वा, वहं वा, सरं वा, सागरं वा अपासमाणे चेंवं मण्णइ—“अयं चेंव अगडे वा, तलागे वा, दहे वा, सरे वा, सागरे वा ।”

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए ददुुरे हव्वमागए ।

तए णं से कूव-ददुुरे तं सामुद्दयं ददुुरं एवं वयासी—“से के तुमं देवाणुप्पिया ! कत्तो वा इह हव्वमागए ?”

तए णं से सामुद्दए ददुुरे तं कूव-ददुुरं एवं वयासी—“एवं सलु देवाणुप्पिया ! अहं सामुद्दए ददुुरे ।”

जहां जितशत्रु राजा था, वहां आई, वहाँ आकर भीतर प्रविष्ट हुई, प्रवेश कर जय-विजय शब्दों से जितशत्रु को बधाया ।

तब जितशत्रु ने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा, देखकर सिंहासन से उठा, उठकर चोक्खा का सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके आसन पर बैठने का निमन्त्रण दिया ।

तदनन्तर चोक्खा ने जल से भूमि को सींचा, दूर्वासन को विछाया, और फिर आसन पर बैठ गई, बैठकर जितशत्रु राजा से राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, सेना, वाहन, नगर और अन्तः-पुर की कुशल-क्षेम पूछी ।

इसके बाद चोक्खा ने जितशत्रु राजा को दानधर्म, शौच-धर्म, तीर्थाभिषेक धर्म का कथन किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, उपदेश दिया ।

चोक्खा कथित अगड ददुुरं दृष्टान्त—

२११. इसके बाद अपने अन्तःपुर से हर्षोन्मत्त हुए जितशत्रु ने चोक्खा से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिये ! तुम बहुत से ग्राम-आकर-यावत्-सन्निवेशों में परिभ्रमण करती हो, अनेकों राजा, ईश्वर, सार्थवाह आदि के गृहों में प्रवेश करती हो, तो किसी राजा का अथवा ईश्वर का अथवा अन्य किसी का ऐसा अन्तःपुर पूर्व में देखा है, जैसा कि मेरा यह अन्तःपुर है ?’

तब वह चोक्खा परिव्राजिका जितशत्रु की इस बात को सुन कर कुछ मुस्कराई, मुस्कराकर इस प्रकार बोली—

‘हे देवानुप्रिय ! तुम तो अगड ददुुर (कूपमंडूक) के समान हो ।’

‘हे देवानुप्रिये ! अगड ददुुर के समान कैसे ? अथवा कूप-मंडूक कैसा होता है ?’

‘हे जितशत्रु ! (मैं तुम्हें इसका अर्थ समझाती हूँ कि) जैसे कोई एक कुए का मेंढक था, जो कि उसी में उत्पन्न हुआ था, उसी में पल-पुसकर बड़ा हुआ, वह जैसे अपने कुए के सिवाय और किसी कुए को, तालाव को, सरोवर को, द्रह को, समुद्र को नहीं देखने के कारण यही मानता है कि मेरा यही कुआ, तालाव है, द्रह है, सरोवर है अथवा समुद्र है, इसके सिवाय और दूसरा कुछ भी नहीं है ।’

इसके बाद उस कुए में एक समुद्रवासी मेंढक आया ।

तब उस कुए के मेंढक ने समुद्र के मेंढक से इस प्रकार कहा—‘हे देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? और यहाँ कहाँ से आये हो ?’

तब वह समुद्र का मेंढक उस कुए के मेंढक से इस प्रकार बोला—‘हे देवानुप्रिय ! मैं समुद्र का मेंढक हूँ ।’

करेंति करेता मिहिलं रायहाणि अणुप्पविसंति, अणुप्पविसत्ता जेणेव कुम्भए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता पत्तेयं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु साणं-साणं राईणं वयणाइं निवेदेंति ।

कुम्भएण दूयाणं असक्कारे—

२१५. तए णं से कुम्भए तेसिं दूयाणं अंतियं एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते, रुट्ठे, कुविए, चंडिकिए, मिसिमिसेमाणे, तिवलियं भिज्जोड निडाले साहट्टु एवं वयासी—

‘न देमि णं अहं तुम्भं मल्लि विदेह-राय-वर-कन्नं’ ति कट्टु ते छप्पि दूए असक्कारिय, असम्माणिय, अवहारेणं निच्छुभावेइ । तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया-कुम्भएणं रण्णा असक्कारिया, असम्माणिया अवहारेणं निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगा-सगा जणवया, जेणेव सयाइं-सयाइं नगराइं, जेणेव सया-सया रायाणो, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—

‘एवं खलु सामी ! अम्हे जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमग-समगं चेव जेणेव मिहिला, तेणेव उवागया, जाव-अवहारेणं निच्छुभावेइ । तं न देइ णं सामी ! कुम्भए मल्लि विदेह-राय-वर-कन्नं । साणं-साणं राईणं एयमट्ठं निवेदेंति ।

जियसत्तु-पामोक्खाणं कुम्भएणं जुज्झं—

२१६. तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म आसुरुत्ता, रुट्ठा, कुविया, चंडिकिया, मिसिमिसेमाणा, अणमणस्स दूय-संपेसणं करेंति, करेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु देवानुप्पिया ! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमग-समगं चेव मिहिला तेणेव उवागया - जाव-अवहारेणं निच्छूढा । तं सेयं खलु देवानुप्पिया ! अम्हं कुम्भगस्स जत्तं गेण्हित्तए’ ति कट्टु अणमणस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेंत्ता प्हाया, सण्णद्धा हत्थि-खंध-वर-गया, सकोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, सेयं-वर-चामराहिं वीइज्जमाणा, महया हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपुरिवुडा, सव्विड्डीए - जाव - दुडुभि-नाइय-रवेणं सएहितो - सएहितो नगरेहितो निग्गच्छंति, निग्गच्छत्ता एगयओ मिलायंति, जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

में प्रत्येक ने अपने-अपने स्कंधावार (तम्बू गाड़कर ठहरने योग्य स्थान) बनाये, बनाकर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ कुम्भ राजा था वहाँ आये, आकर प्रत्येक ने हाथ जोड़ अंजलि कर नतमस्तक हो अपने-अपने राजा के संदेश का निवेदन किया ।

कुम्भ द्वारा दूतों का असत्कार—

२१५. तत्पश्चात् उन दूतों के संदेशों को सुनकर कुम्भ क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंडिका रूप हो गया और क्रोध से मिसमिसाते हुए ललाट में तीन सल डालकर, भृकुटि को टेढ़ी करके इस प्रकार बोला—

‘मैं तुममें से किसी को भी विदेहराजवरकन्या मल्लि को नहीं दूंगा’—ऐसा कहकर उन छहों दूतों का असत्कार कर, असम्मानकर, पीछे के द्वार से निकाल दिया, (इसके बाद) कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और पिछले द्वार से निष्कासित जितशत्रु आदि छहों राजाओं के दूत जहाँ-जहाँ अपने जनपद थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, जहाँ अपने-अपने राजा थे वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ और अंजलिपूर्वक नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

‘हे स्वामिन् ! हम जितशत्रु आदि छहों राजाओं के दूत एक ही समय में जहाँ मिथिला थी वहाँ पहुँचे—यावत्—अपद्वार (पिछले द्वार) से निकाल दिये गये । तो ‘हे स्वामिन् ! कुम्भ विदेहराज वरकन्या मल्लि को नहीं देगा’—अपने-अपने राजा से यह वृत्तान्त निवेदन किया ।

जितशत्रु आदि का कुम्भ से युद्ध—

२१६. तदनन्तर वे जितशत्रु आदि छहों राजा उन दूतों के वृत्तान्त को सुनकर और विचारकर एकदम क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंडिका रूप हो उठे, क्रोधाभिभूत होकर मिसमिसाते हुए एक-दूसरे के पास अपने दूतों को भेजते हैं, भेजकर यह सन्देश कहलाया—

‘हे देवानुप्रिय ! हम छहों राजाओं के दूत एक साथ जहाँ मिथिला थी, वहाँ पहुँचे—यावत्—अपद्वार (पिछले द्वार) से निकाल दिये गये । अतएव हे देवानुप्रिय ! अब हमें कुम्भ के साथ युद्ध करना योग्य है,’ इस प्रकार कहकर एक-दूसरे के विचार को सुनकर निश्चय किया, निश्चय करके स्नान किया, शस्त्रसज्जित होकर हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ हुए, कोरेंट पुष्प की माला वाला छत्र धारण किया, श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोरे जाने लगे, बड़े-बड़े हाथी, घोड़ों, रथों और प्रवर योद्धाओं से शोभित चतुरंगिणी सेना से परावृत्त होकर सर्व ऋद्धि के साथ—यावत्—दुन्दुभिनाद की ध्वनि सहित अपने-अपने नगरों से निकलते हैं, निकलकर एक स्थान पर एकत्रित होते हैं और मिलकर जहाँ मिथिला नगरी थी, वहाँ जाने के लिए तत्पर हुए ।

‘एवं खलु देवानुप्पिया ! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं-सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेत्ता चिट्ठामो ।’

२२४. तए णं मल्ली विदेह-राय-वर-कन्ना ते जियसत्तु-पामोक्खे एवं वयासी—

‘जइ ता देवानुप्पिया ! इमीसे कणगमईए, मत्थय-छिड्डाए, पउमुप्पल-पिहाणाए पडिमाए-कल्लाकल्लिं ताओ मणुणाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ एगमेगे पिडे पक्खिप्पमाणे-पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोगल-परिणामे, इमस्स पुण ओरालिय-सरीरस्स, खेलासवस्स, वंतासवस्स, पित्तासवस्स, सुक्कासवस्स, सोणिय-पूयासवस्स, डुरूव-ऊसास-नीसासस्स, डुरूव-मुत्त-पूइय-पुरीस-पुण्णस्स, सडण-पडण-छेयण-विद्धंसण-धम्मस्स केरिसए य परिणामे भविस्सइ ? तं मा णं तुव्भे देवानुप्पिया ! माणुस्सएसु काम-भोगेषु सज्जह, रज्जह, गिज्जह, मुज्जह, अज्जोववज्जह । एवं खलु देवानुप्पिया ! तुम्हे अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे, अवर-विदेह-वासे, सल्लिलावतिसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए, महब्बल-पामोक्खा सत्त वि य वाल-वयंसया रायाणो होत्या-सहजाया-जाव-पव्वइया ।

२२५. तए णं अहं देवानुप्पिया ! इमेणं कारणेणं इत्थी-नाम-गोयं कम्मं निव्वत्तेमि-जइ णं तुव्भे चउत्थं उवसंपज्जित्ता णं विहरह, तए णं अहं छट्ठं उपसंपज्जित्ता णं विहरामि सेसं वहेव सव्वं । तए णं तुव्भे देवानुप्पिया ! काल-मासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा । तत्थ णं तुव्भं देसुणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई । तए णं तुव्भे ताओ देव-लोगाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे दीवे-जाव-साइं-साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह । तए णं अहं देवानुप्पिया ! ताओ देव-लोगाओ आउक्खएणं-जाव-दारियत्ताए पच्चायाया ।

गाहा—

किं थ तयं पम्हुट्ठं, जं थ तया भो ! जयंत-पवरम्मि ।
वुत्था समय-णिबद्धं देवा तं संभरह जाइं ॥

जियसत्तु पामोक्खाणं जाइसरणं—

२२६. तए णं तेसि जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं मल्लीए विदेह-राय-वर-कन्नाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेणं अज्जवसाणेणं, लेसाहिं विसुज्जमाणीहिं,

‘हे देवानुप्रिये ! इस अशुभ गंध से अभिभूत होकर घबराकर अपने अपने उत्तरीय से मुख को ढककर विमुख हो गये हैं ।’

२२४. उनकी इस बात को सुनने के पश्चात् विदेहराजवर-कन्या मल्लि ने उन जितशत्रु प्रभृति से इस प्रकार कहा—

‘यदि ऐसा है तो हे देवानुप्रियो ! जब सच्छिद्र मस्तकवाली और जो पद्मोत्पल से ढकी ऐसी कनकमयी प्रतिमा में प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार में से डाला गया एक-एक ग्रास इस प्रकार का मनोविकृतिजनक अशुभ पुद्गल परिणामस्वरूप हो गया तो फिर कफ के आश्रयभूत, वमन, पित्त, शुक्र, शोणित, पीव के आश्रयभूत एवं जिसके श्वास-उश्वास-दुरूप-अनिष्टतर गंधवाले हैं तथा जो सदा जुगुप्सा—घृणाजनक मूत्र, पीव, पुरीष (विष्ठा, मल) से भरा रहता है, सड़न-गलन-विध्वंसन धर्म वाले इस औदारिक शरीर का परिणमन कैसा होगा ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग इस मनुष्य संबंधी कामभोगों में फँसो मत, राग मत करो, गृद्धि मत करो, मोहित मत होओ और उनका विचार भी मत करो । हे देवानु-प्रियो ! तुम और मैं इससे पहले के तीसरे भव में पश्चिम विदेह क्षेत्र में, सल्लिलावती नामक विजय में, वीतशोका नामक राजधानी में महाबल प्रभृति सात बालवयस्क-मित्र—राजा थे— जो एक साथ जन्मे थे—यावत्—दीक्षित हुए थे ।

२२५. तदनन्तर हे देवानुप्रियो ! उस भव में मैंने इस कारण स्त्री नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया था कि यदि तुम लोग चतुर्थभक्त तप करते तो मैं षष्ठभक्त तप की आराधना करता हुआ विचरण करता था, शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् । इसके बाद देवानुप्रियो ! आप लोग यथासमय काल करके जयन्त विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ तुम्हारी कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई । तत्पश्चात् आप उस देवलोक से च्यवित होकर इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में—यावत्—अपना-अपना राज्य शासन करते हुए विचर रहे हो । हे देवानुप्रिये ! तत्पश्चात् मैं भी उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर—यावत्—कन्यारूप में उत्पन्न हुआ ।

गाथार्थ—क्या आप लोग उस पूर्वभव को भूल गये हो ? जब हम सब जयंत नामक विमान में वास करते थे । समय आने पर हम परस्पर एक दूसरे को प्रतिबोधित करेंगे, वहाँ इस प्रकार की प्रतिज्ञा से बद्ध हुए थे । अतः आप उस देवभव का स्मरण करो ।

जितशत्रु आदि को जातिस्मरण—

२२६. इसके बाद विदेहराज वरकन्या मल्लि से इस पूर्वभव के वृत्तान्त को सुन और समझकर शुभ परिणामों से, प्रशस्त अध्यवसायों से विशुद्ध लेश्याओं तथा तदावरण कर्मों के क्षयोप-

तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं, ईहापूहमग्गण-गवेसणं
करेमाणणं सण्णिजाइस्सरणे समुप्पण्णे, एयमट्ठं सम्मं
अभिसमागच्छंति ।

२२७. तए णं मल्ली अरहा जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो
समुप्पण्ण-जाइस्सरणे जाणित्ता गव्व-घराणं दाराइं विहाडावेइ ।

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मल्ली
अरहा, तेणेव उवागच्छंति । तए णं महव्वल-पामोक्खा सत्त वि
य बाल-वयंसा-एगयओ अभिसमण्णागया वि होत्था ।

मल्लीए जियसत्तु-पामोक्खाणं रण्णं य पव्वज्जासंकप्पो—

२२८. तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो
एवं वयासी—

‘एवं खलु अहं देवानुप्पिया ! संसार-भउव्विग्गा-जाव-
पव्वयामि । तं तुब्भे णं किं करेह ? किं ववसह ? किं वा भे
हियसामत्थे ?’

तए णं जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लि अरहं एवं
वयासी—

‘जइ णं तुब्भे देवानुप्पिए ! संसार-भउव्विग्गा-जाव-पव्वयह,
अहं णं देवानुप्पिए ! के अण्णे आलंघणे वा, आहारे वा, पडिबंधे
वा ? जह चेव णं देवानुप्पिया तुब्भे अम्हं इओ तच्चे भवग्गहणे
वहसु कज्जेसु य मेढी पमाणं-जाव-धम्म-धुरा होत्था, तह चेव णं
देवानुप्पिया इण्हि पि-जाव-धम्म-धुरा भविस्सह । अम्हे वि णं
देवानुप्पिए ! संसार-भउव्विग्गा,—जाव-मीया जम्मण-मरणणं
देवानुप्पिया णं सद्धिं मुण्डा भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं
पव्वयामो ।’

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खे छप्पि रायाणो
एवं वयासी—

‘जइ णं तुब्भे संसार-भउव्विग्गा-जाव-मए सद्धिं पव्वयह, तं
गच्छह णं तुब्भे देवानुप्पिया ! सएहि-सएहि रज्जेहि जेट्ठ-उत्ते
रज्जे ठावेह, ठावेत्ता पुरिस-सहस्स-वाहिणोओ सीयाओ दुरुहह
वुरुडा समाणा मम अंतियं पाउडभवह ।’

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो मल्लिस्स
अरहओ एयमट्ठं पडिसुणंति ।

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो
गहाय जेणेव कुम्भए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुम्भगल्ल
पाएसु पाडेइ ।

शम से, ईहा, अपोह, मार्गण और गवेपण करने से उन जितशत्रु
आदि छहों राजाओं को संज्ञी जीवों को उत्पन्न होने वाला जाति-
स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे उन्होंने इस बात को सम्यक्
प्रकार से समझ लिया ।

२२७. तत्पश्चात् जब मल्लि अर्हन्त ने यह जाना कि जितशत्रु
आदि छहों राजाओं को जातिस्मरणज्ञान समुत्पन्न हो गया
तो गर्भगृह के द्वार खुलवा दिये ।

तब वे जितशत्रु आदि छहों राजा जहाँ मल्लि अर्हन्त थे,
वहाँ आये । उस समय तब महाबल प्रभृति वे सातों बालमित्र एक
स्थान पर एकत्रित हो गये ।

मल्लि और जितशत्रु आदि राजाओं का प्रव्रज्या संकल्प—

२२८. इसके पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने उन जितशत्रु आदि छहों
राजाओं से इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! संसार से उद्विग्न मैं तो—यावत्—
प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ । तो आप क्या करेंगे ? क्या
कैसे रहेंगे ? क्या आप में अपना हित करने की सामर्थ्य है ?’

तब जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्लि अर्हन्त से
इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिये ! यदि संसार भय से उद्विग्न होकर
—यावत्—आप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हैं तो हे
देवानुप्रिय ! फिर हमारे लिये अन्य दूसरा कौन अवलंबन अथवा
आधार अथवा प्रतिबंध होगा ? हे देवानुप्रिये ! जैसे आज से
पूर्व तीसरे भव में अनेक कार्यों में आप मेढीभूत, प्रमाणभूत—
यावत्—धर्मधुरी—धर्मोपदेशक—रूप थीं, उसी प्रकार हे देवानु-
प्रिये ! इस भव में भी—यावत्—धर्मधुरीण होंगे । हे देवानु-
प्रिय ! संसार से उद्विग्न जन्म-मरण से भयभीत हम भी
देवानुप्रिय के साथ मुंडित होकर गृहवास त्यागकर अनागारिक
प्रव्रज्या अंगीकार करेंगे ।’

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने जितशत्रु आदि छहों राजाओं से
इस प्रकार कहा—

‘यदि आप भी संसार-भय से उद्विग्न हैं—यावत्—मेरे
साथ दीक्षित होने के जाकांभी हैं तो हे देवानुप्रियो ! आप
अपने-अपने राज्यों में जाकर जेट्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित
करो, प्रतिष्ठित करके पुत्र्य सदृशवाहिनी गिर्विकाजी (गन्धारी)
पर आरुढ़ होकर मेरे पास आओ ।’

तब उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्लि अर्हन्त को
इस बात की—विचार हो स्वीकार किया ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं
को साथ लेकर जहाँ कुम्भ था, वहाँ आई, बाहर कुम्भ के
चरणों में नमस्कार करना करवाई ।

तए णं कुम्भए ते जियसत्तु-पामोक्खे विजलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेता, सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं ते जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो कुम्भएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइ-साइं रज्जाइं जेणेव साइ-साइ नगराइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता सगाइं-सगाइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति ।

मल्लीए निक्खमणमहोच्छवो—

२२६. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरावत्ताणे निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्कस्स आसणं चलइ । तए णं से सक्के, देविंदे, देवराया आसणं चलयं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता मल्लि अरहं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता इमेयाह्वे अज्जत्थिए, चित्थिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे समुप्पज्जित्था—

‘एवं खलु जंबुद्वीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए नयरीए, कुम्भगस्स रण्णो धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ । तं जीयमेयं तीय-पच्चुप्पण-मणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं अरहंताणं भगवंताणं निक्खमणाणं इमेयाह्वं अत्थसंपयाणं दलइत्ताए, तं जहा—संगहणी-गाहा—

त्तिण्णेव य कोडि-सया, अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ ।

असिइं च सय-सहस्सा, इंदा दलयंति अरहाणं ॥१॥

एवं संपेहेइ, सपेहेत्ता वेसमणं एवं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

‘एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवे दीवे, भारहे वासे, मिहिलाए रायहाणीए, कुम्भगस्स रण्णो धूया, पभावईए देवीए अत्तया मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ-जाव-इंदा दलयंति अरहाणं । तं गच्छह णं देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवं दीवं, भारहे वासे, मिहिला रायहाणिं, कुम्भगस्स रण्णो भवणंति इमेयाह्वं अत्थसंपयाणं साहराहिं, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ।’

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदे, देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे करयल-परिग्गहियं दस-गहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठइ—‘एवं देवो ! तहत्ति’ आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जंमए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तव कुम्भ ने उन जितशत्रु आदि का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन से तथा पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके विदा किया ।

इसके बाद कुम्भराजा के द्वारा विदा किये गये वे जितशत्रु आदि छहों राजा जहाँ अपने-अपने राज्य थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर अपने-अपने राज्यों का शासन करते हुए विचरने लगे ।

मल्लि का निष्क्रमण महोत्सव—

२२६. तत्पश्चात् एक वर्ष के बाद मैं निष्क्रमण करूंगी, दीक्षा लूंगी इस प्रकार मल्लि अर्हन्त ने मन में निश्चय किया ।

उस काल, उस समय शक्र का आसन चलायमान हुआ । तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र अपने आसन को चलायमान होते देखता है, देखकर अवधिज्ञान को प्रयुक्त किया, प्रयुक्त करके अवधिज्ञान से मल्लि अर्हन्त को देखा, देखकर उसके मन में इस प्रकार का प्रशस्त संकल्प, विचार उत्पन्न हुआ—

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में, मिथिला नगरी में कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावतीदेवी की आत्मजा मल्लि अर्हन्त इस प्रकार का मन में विचार कर रही हैं कि मैं दीक्षा लूंगी । तो अतीत, वर्तमान और अनागत शक्तों का, देवेन्द्रों तथा देवराजाओं का यह परंपरागत आचार है कि दीक्षा के लिये समुद्यत अर्हन्त भगवन्तों के घर पर इतने परिमाण में अर्थ संपत्ति प्रदान करें, यथा—

(गाथार्थ)—इन्द्र तीन सौ अठासी करोड़ अस्ती लाख द्रव्य (स्वर्णमुद्रा) अर्हन्त को प्रदान करते हैं ।’

ऐसा विचार किया, विचार कर वैश्रमणदेव (कुवेर) को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में कुम्भराजा की पुत्री, प्रभावतीदेवी की आत्मजा मल्लि अर्हन्त ने दीक्षा लूंगी इस प्रकार का मन में विचार कर लिया है—यावत्—इन्द्र अर्हन्तों को देते हैं । तो हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुम्भराजा के भवन में इस परिमाण में अर्थ संपत्ति का संहरण करो—यह संपत्ति पहुँचाओ, संहरण करके शीघ्र ही मेरी आज्ञा को वापस सौंपो अर्थात् आज्ञापूर्ति की मुझे सूचना दो ।’

इसके बाद उस वैश्रमणदेव ने देवेन्द्र देवराज शक्र की इस बात को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो दोनों हाथों को जोड़ सिर झुकाकर और मस्तक पर अंजलि करके—हे देव ! तथास्तु—ऐसा ही होगा, विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके जम्भक देवों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

'गच्छं णं तुब्भे देवानुप्पिया ! जंबुद्वीवं दीवं, भारहं वासं, मिहिलां रायहाणं, कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णिण कोडिसया अट्टासीइं च कोडीओ असीइं सय-सहस्साइं-इमेयाह्वं अत्य-संपयाणं साहरहं, साहरित्ता मम एयमागतियं पच्चप्पिणह ।'

२३०. तए णं ते जंमगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा-जाव-पडिमुणेत्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसो-नागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुघाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, -जाव-उत्तर-वेउव्वियाइं ह्वाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्टाए-जाव-देवगईए वोईवयमाणा-वोईवयमाणा, जेणेव जंबुद्वीवे, दीवे, भारहे वासे, जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुम्भगस्स रण्णो भवणे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि तिण्णिण कोडिसया-जाव-साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिगहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्यए अंजलि कट्टु तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविदे, देवराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिगहियं-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

२३१. तए णं मल्लो अरहा कल्लाकल्लिं-जाव-मागहओ पायरासो ति व्हूणं सणाहाण य, अणाहाण य, पंथियाण य, पहियाण य, करोडियाण य, कप्पडियाण य, एगमेणं हिरण्ण-कोडि अट्ट य अण्णाइं सय-सहस्साइं-इमेयाह्वं अत्य-संपयाणं दलयइ । तए णं से कुम्भए राया मिहिलाए रायहाणीए तत्थ-तत्थ, तहि-तहि, देसे-देसे व्हूओ महाणस-सालाओ करेइ । तत्थ णं व्हवे मणुया दिण्ण-भउ-भत्त-वेयणा विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उव्वखडेंति, उव्वखडेंत्ता । जे जहा आगच्छंति, तं जहा-पंथिया वा, पहिया वा, करोडिया वा, कप्पडिया वा, पात्तंडत्या वा, गिहत्या वा, तस्स य तथा आसत्थस्स, योत्तत्थस्स, सुहात्तण-पर-गयस्स तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं परिनाएमाणा, परिवेसेमाणा पियरंति ।

तए णं मिहिलाए नयरोए 'सिपाडग-तिग-चउरु-चउवर-बउम्भुह-महापह-रहेसु बहु-उपो अणमण्णस्स एवनाइसुइ—एवं ससु देवानुप्पिया ! कुम्भगस्स रण्णो भवणंसि सज्ज-काम गुणियं, किमिच्छियं, विपुलं अमण-पाण-खाइम-साइमं व्हूणं सपयाण य, महाजाण य, सणाहाण य, अणाहाण य, पंथियाण

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष में, मिथिला राजधानी में, कुम्भराजा के भवन में तीन सौ अठ्ठासी करोड़ अस्तीलाख—इस प्रकार की अर्घ्य संपत्ति का संहरण करो—इतनी संपत्ति वहाँ पहुँचाओ, संहरण करके मेरी आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ ।'

२३०. तत्पश्चात् वे जम्भकदेव वैश्रमणदेव के इस वृत्त को सुनकर—यावत्—उत्तर पूर्व दिशा भाग में गये, जाकर वैक्रिय सनुद्धात किया, समुद्धात करके संख्यात योजन प्रमाण का दंड निकाला—यावत्—उत्तर वैक्रियरूपों की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके फिर वे उत्कृष्ट—यावत्—देवगति से चलते हुए जहाँ जम्बूद्वीप था, भरतक्षेत्र था, जहाँ मिथिला राजधानी थी, जहाँ कुम्भराजा का भवन था, वहाँ आये, वहाँ आकर कुम्भराजा के भवन में तीन सौ करोड़—यावत्—संहरण किया, संहरण करके जहाँ वैश्रमणदेव था, वहाँ आये, आकर दोनों हाथों को जोड़ नतमस्तक हो मस्तक पर अंजलि करके उसकी आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

तब वह वैश्रमणदेव जहाँ शक्र देवेन्द्र देवराज था, वहाँ आया आकर दोनों करतलों को जोड़—यावत्—उसकी आज्ञा को प्रत्यावर्तित किया ।

२३१. तत्पश्चात् मल्लि अहंन्त प्रतिदिन—यावत्—मागधिक-मगध देश के प्रातराण (प्रातः से लेकर दोपहर का भोजनकाल) के समय तक बहुत से सनायों को, अनायों को, पंथिकों (भिद्यमंगों) को, राहगीरों को, करोटिकों (छप्परधारियों) को और कार्पाटिकां (कंधा, कौपीन, कपायवस्त्रधारियों) को एक करोड़ आठ लाख—इस प्रकार अर्घ्यसंपत्ति देती हैं । इनके बाद कुम्भराजा ने मिथिला राजधानी में जहाँ वहाँ अर्थात् बहुत से स्थानों में भोजनशालाएँ खुलवा दीं । उन भोजनशालाओं में बहुत से मनुष्य निम्नों भोजन और वेतन मिलता था, प्रतिदिन विपुल परिमाण में अन्न, पान, चादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे । भोजन बनाकर वहाँ जो जैम आते जैसे कि पंथिक अथवा पथिक अथवा करोटिक अथवा कार्पाटिक अथवा पाचंडी अथवा मूत्थ उर्हें आत्तन देकर, विश्राम देकर, सुग्द आत्तन पर बैठाकर वह विपुल अन्न पान, चादिम, स्वादिम भोजन दिया जाता था, परीमा श्रया य ।

तत्पश्चात् मिथिला नगरी में भृंगाटक (शेर), त्रिक (किरहा), चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग, मार्ग जादि स्थलों पर जहाँ भी अनेक व्यक्ति लोग मिलते, वे एक दूसरे से अर्घ्य नगते—हे देवानुप्रिय ! कुम्भराजा के भवन में अर्घ्यसंपत्ति अर्थात् संप्रकार ने सुखकारी और स्व, उच, उच एवं स्वर्ग से सुन्दर सर्वेन्द्रिय सुधकारी विपुल अन्न, पान, चादिम, स्वादिम भोजन बहुत से यन्त्रों को, नाहणों को, सनायों को, अनायों

य, पहियाण य, करोडियाण य, फप्पडियाण य, परिभाइज्जइ, परिवेसिज्जइ । संगहणी-गाहा—

वरवरिया घोसिज्जइ, किमिच्छयं दिज्जए बहुविहीयं ।

सुर-असुर-देव-दानव-नरिंद-महियाण निक्खमणे ॥१॥

२३२. तए णं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिण्णि कोडि-सया अट्ठासीइं च कोडीओ असीइं च सय-सहस्साइं-इमेयाह्वं अत्य-संपयाणं दलइत्ता निक्खमामि त्ति मणं पहारेइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतिया देवा वंभलोए कप्पे, रिट्ठे विमाण-पत्थडे, सएहि-सएहि विमाणेहि, सएहि-सएहि पासाय-वंडिसएहि पत्तेयं-पत्तेयं चउहि सामाणिय-साहस्सीहि, तिहि परिसाहि, सत्तहि अणिएहि, सत्तहि अणियाहिवईहि, सोलसहि आयरक्ख-देव-साहस्सीहि, अण्णेहि य वहाँहि लोगंतिएहि देवेहि देवीहि य सद्धि सपरिवूडा महायाऽऽहय नट्ट-गोय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-प्पवाइय-रवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, तं जहा—

संगहणी-गाहा—

सारस्सयमाइच्चा, वण्णी वरुणा य गट्ठोया य ।

तुसिया अब्वावाहा, अग्गिच्चा चैव रिट्ठा य ॥१॥

२३३. तए णं तेसि लोगंतियाणं देवाणं पत्तेयं-वत्तेयं आसणाइं चलंति तहेव-जाव-तं जीयमेयं लोगंतियाणं देवाणं अरहंताण भगवंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करित्तए त्ति । तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमो त्ति कट्ठु एवं संपेहेति, संपेहेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुदघाएणं समोहणंति, समोहणित्ता सखेज्जाइं जोयणाइ दंडं निसिरंति, एवं-जहा-जंभगा-जाव-जेणेव मिहिला रायहाणी, जेणेव कुम्भगस्स-रण्णे भवणे, जेणेव मल्ली अरहा, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिखिणियाइं दसद्ध-वण्णाइं वत्थाइं पवर-परिहिया, करयल-परिगहियं दस-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्ठु ताहि इट्ठाहि कंताहि पियाहि मणुण्णाहि, मणामाहि, वग्गुहि एवं वयासी—

‘बुद्धाहि भगवं लोग-णाहा ! पवत्तेहि धम्मोत्तथं, जीवाणं हिय-सुह-निस्सेयस-करं भविस्सइ’ त्ति कट्ठु दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयंति, वइत्ता मल्लि अरहं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिंसि पाउब्भूया, तामेव दिंसि पडिगया ।

पंथिकों को, पथिकों को, करोटिकों को, कार्पाटिकों को विलाया जाता है, दिया जाता है ।

(गाथार्थ)—सुर, असुर, देव, दानव और नरेन्द्रों द्वारा पूजित तीर्थंकरों के अभिनिष्क्रमण के अवसर पर वारंवार यह घोषणा कराई जाती है कि मांगो, जो जिसकी इच्छा हो वह मांगो, इस प्रकार किमिच्छक (इच्छानुसार) दान दिया जाता है ॥१॥

२३२. तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने वर्षादान के रूप में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख जितनी अर्थ संपदा देकर में स्वीकार करूँ, यह मन में निश्चय किया ।

उस काल उस समय में ब्रह्मलोककल्प के अरिष्ट विमान प्रतर (मंजिल, पायड़े) में निवास करने वाले लोकान्तिक देव अपने-अपने विमानों में अपने-अपने प्रासादावतंसकों में प्रत्येक अपने-अपने चार हजार सामानिक देवों, तीन परिपदों, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों और दूसरे भी अनेक लोकान्तिक देवों तथा देवियों से परिवृत होकर जोर-जोर से वज्रिय जाने वाले नृत्य, गीत, वाद्य, तंत्री, ताल, द्रुटित, घन, मृदंग, पटह नगरों आदि की ध्वनियों के साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए विचरते हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

(गाथार्थ) १—सारस्वत २—आदित्य ३—वन्हि ४—वसण ५—गर्दंतोय ६—तुपित ७—अव्यावाघ ८—आग्नेय—ये आठे लोकान्तिक अरिष्ट प्रतर मे रहते हैं ।

२३३. तत्पश्चात् उन लोकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए इत्यादि पूर्ववत्—यावत्—अभिनिष्क्रमण के इच्छुक अरिहन्त भगवन्तों को संबोधित करना यह लोकान्तिक देवों का जीत कल्प है । अतएव हम जायें और मल्लि अर्हन्त को संबोधित करें, यह विचार किया, विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग में गये, जाकर वैक्रिय समुद्रघात किया, समुद्रघात करके संख्यात योजन प्रमाण का दंड निकाला और शेष कथन जृम्भक देवों की तरह—यावत्—जहाँ मिथिला राजधानी, जहाँ कुम्भराजा का भवन, जहाँ मल्लि अर्हन्त, वहाँ आये, आकर धुंधरुओं से युक्त पंचरंगी वस्त्राभूषणों को धारण करके अन्तरिक्ष में अधर खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक हो अंजलि करके इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर स्वरों से इस प्रकार बोले—

‘हे भगवन् ! हे लोकनाथ ! बोध पाओ, भव्य जीवों को संबोधित करो, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो जो जीवों को हित-सुख निःश्रेयस्कर होगा ।’ इस प्रकार कहकर दूसरी बार तीसरी-बार भी इसी प्रकार कहा, कहकर मल्लि अर्हन्त की वंदना की, नमस्कार किया वंदना; नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये ।

२३४. तए णं मल्लो अरहा तेहि लोगतिएहि देवेहि सबोहिए समाणे, जेणेव अम्मापियरो, तेणेव उवागच्छइ, उवाच्छित्ता कर-यलपरिगहियं दत्त-णहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी-

‘इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्नेहि अब्भणुण्णाए समाणे मुंडे नवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।’

‘अहासुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ।’

तए णं कुम्भए राया कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अट्ठ-सहस्सं सोवणियाणं कलसाणं-जाव-अट्ठ-सहस्सं भोमेज्जाणं कलसाणं अण्णं च महत्थं, महग्घं, महुरिहं, विउलं, तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह । ते वि-जाव-उवट्ठवेति ।’

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिदे-जाव-अच्चुय-पज्जावत्ताणा आगया ।

तए णं सक्के देविदे, देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अट्ठ-सहस्सं सोवणियाणं कलसाणं-जाव-अण्णं च महत्थं, महग्घं, महुरिहं, विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह ।’ ते वि-जाव-उवट्ठवेति । ते वि कलसा ‘ते चैव कलसे’ अणुपविट्ठा ।

तए णं से सक्के, देविदे, देवराया, कुम्भए य राया मल्लि अरह सौहासणंति पुरत्याभिमुहं निवेसंति, अट्ठ-सहस्सेणं सोवणियाणं कलसाणं-जाव- तित्थयराभिसेयं अभिसिच्चंति ।

तए ण मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सत्तिनतर-वाहिरियं जाव-सच्चओ समंता आधावति परिधावति ।

२३५. तए ण कुम्भए राया दोच्चंपि उत्तरावक्कमणं सौहासणं रसावेइ, -जाव-सच्चालंकारविभूतियं करेइ, करेत्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! मणोरमं सोयं उवट्ठवेह ।’ ते वि उवट्ठवेति ।

तए णं सक्के देविदे देवराया अभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-

‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! अच्चेम-खंभ-सय-पण्णिविट्ठ-आद-मणोरमं सोयं उवट्ठवेह, ते वि-जाव-उवट्ठवेति । मा वि सत्ता वं देव सोयं अणुप्पावट्ठा ।’

२३४. तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों द्वारा संबोधित हुए मल्लि अर्हन्त जहाँ माता पिता थे, वहाँ आये, आकर दोनों करतलों को जोड़ नतमस्तक हो अंजलिपूर्वक इन प्रकार बोले—

‘हे अम्ब, हे तात ! मैं आपकी आज्ञा लेकर मुंडित हो गृह-वास त्यागकर अनगारस्व स्वीकार करने को इच्छुक हूँ ।’

इस बात को सुनकर उन्होंने कहा—‘जैसा सुचकर प्रतीत हो वैसा करो, हे देवानुप्रिय विलम्ब मत करो ।’

इसके बाद कुम्भराजा ने कोटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक हजार आठ सुवर्ण कलशों—यावत्—एक हजार आठ मिट्टी के कलशों को तथा अन्य महार्थक, महर्घं, महापुरुषों के योग्य विपुल तीर्थकर के अभिपेक योग्य सामग्री को शीघ्र ही उपस्थित करो ।’ वे भी—यावत्—उपस्थित करते हैं ।

उस काल उस समय में चमरेन्द्र असुरेन्द्र यावत् अच्युत कल्प तक के इन्द्र अभिपेक महोत्सव करने के लिये आये ।

तब वह शक्र देवेन्द्र, देवराज आभियोगिक देवों को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक हजार आठ स्वर्णकलशों यावत्—एक हजार आठ मिट्टी के कलशों को तथा अन्य महार्थक, महामूल्य वाले, महापुरुषों के लिए योग्य विपुल, तीर्थकर के अभिपेक को उपयुक्त सामग्री उपस्थित करो । वे दिव्यहस्त भी कुम्भराजा के द्वारा उपस्थित कलशों के साथ एक स्थान पर मिलाकर रख दिये गये ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुम्भराजा ने मल्लि अर्हन्त को पूर्वाभिमुख करके सिंहासन पर बैठाया, बैठाकर एक हजार आठ सुवर्णमयी कलशों से—यावत्—तीर्थकर का अभिपेक किया ।

इस प्रकार जब मल्लि अर्हन्त का अभिपेक हो रहा था तो कितने ही देव मिथिला के अंदर-बाहर—यावत्—चारों ओर इधर-उधर दौड़ने लगे, फिरने लगे, उछल-पूद मचाने लगे ।

२३५. इसके बाद कुम्भ राजा ने दूसरी ओर उत्तराभिमुख करके मल्लि अर्हन्त को निरासन पर बैठाया—यावत्—सर्व-जल-कारों से विभूषित किया, विभूषित करके कोटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इन प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही मणोरमा मिथिला जाओ ।’ वे भी जाते हैं ।

उत्तमन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र ने अर्धभवाभिपेक देव को बुलाया, बुलाकर उनसे इन प्रकार कहा—

‘हे देवसुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अर्ध-भवाभिपेक देवों को उपस्थित—यावत्—मणोरमा मिथिला जाओ ।’ वे भी—यावत्—जाते हैं । यत्-प्रतिष्ठा भी उप-प्रतिष्ठा ने समी-परी ।

तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव मणोरमा सीया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणीकरेमाणे मणोरमं सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तए णं कुम्भए अट्ठारस सेणि-प्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

‘तुड्ढे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया-जाव-सव्वालंकारविभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह ।’ ते वि-जाव-परिवहंति ।

तए णं सक्के देविदे देवराया मणोरमाए सीयाए दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, चमरे दाहिणिल्लं हेट्ठिल्लं, वली उत्तरिल्लं हेट्ठिल्लं, अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति ।

संगहणी-गाहा—

पुविं उक्खित्ता, माणुसेहिं तोहट्ठ, रोम-कूवेहिं ।

पच्छा वहंति सीयं, असुरिंद-सुरिंद-नागिदा ॥१॥

चल-चवल-कुण्डल-धरा, सच्छंद-विउव्वियाभरण-धारी ।

देविंद-दाणविदा, वहंति सीयं जिणिदस्स ॥२॥

तए णं मल्लिस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरुहस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ-मंगला पुरओ अहाणुपुव्वीयए संपत्थिया—एवं निग्गमो जहा जमालिस्स ।

तए णं मल्लिस्स अरहओ निक्खममाणस्स अप्पेगइया देवा मिहिलं रायहाणिं अविभतर-बहिरं आसियं संमज्जिय संमट्ठ-मुइ रत्थंतरावण-वीहियं करंति-जाव-परिधावंति ॥

२३६. तए णं मल्ली अरहा जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव असोण-वर-पायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता आभरणालंकारं ओमुयइ ।

तए णं पभावई हंस-लक्खणेणं पडसाडएणं आभरणलंकारं पडिच्छइ ।

तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ ।

तए णं सक्के, देविदे, देवराया, मल्लिस्स केसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता खीरोदग-समुद्वे पक्खिवइ ।

तए णं मल्ली अरहा ‘नमोत्थु णं सिद्धाणं’ ति कट्ठ समाइय-चरित्तं पडिवज्जइ । जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइय-चरित्तं पडिवज्जइ, तं समयं च णं देवाण माणुसाण य

इसके बाद मल्लि अर्हन्त सिंहासन से उठी, उठकर जहाँ मनोरमा शिविका थी, वहाँ आई, आकर मनोरमा शिविका की प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिविका पर आलूढ़ हुई, आलूढ़ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान हुई ।

तब कुम्भ राजा ने अठारह श्रेणियों—प्रश्रेणियों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—

‘हे देवानुप्रियो ! तुम लोग स्नान करके—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्लि-कुमारी की शिविका वहन करो ।’ वे भी—यावत्—वहन करते हैं ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र ने मनोरमा शिविका की दक्षिण तरफ की ऊपरी बाह्य ग्रहण की, ईशानेन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपरी बाह्य ग्रहण की, चमर ने दक्षिण तरफ की निचली, वली ने उत्तर तरफ की निचली बाह्य ग्रहण की, शेष देवों ने यथायोग्य मनोरमा शिविका को वहन किया ।

(गाथार्थ) हर्ष के कारण जिनके रोम कूप विकस्वर हो रहे हैं ऐसे मनुष्यों ने सर्वप्रथम शिविका को उठाया, उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र, नागेन्द्र शिविका को वहन करते हैं ॥१॥

चलायमान चपल कुण्डलों को धारण करने वाले, स्वेच्छानुसार विकुर्वीत आभूषणों को धारण करने वाले देवेन्द्र दानवेन्द्र जिनेन्द्र भगवान की शिविका वहन करते हैं ॥२॥

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त जब मनोरमा शिविका में बैठ चुके तब उनके सामने अनुक्रम से यह आठ—आठ मंगल द्रव्य चलने लगे । जमाली के निर्गमन की तरह यहाँ भी वर्णन करना चाहिये ।

तत्पश्चात् जब मल्लि अर्हन्त का निष्क्रमण हो रहा था तब कितने ही देवों ने मिथिला राजधानी को अन्दर बाहर जल से सिंचित कर दिया, साफ कर दिया, चुना कलई आदि से पोत दिया—यावत्—वे इधर उधर दौड़-भाग, उछलकूद करने लगे । २३६. इसके बाद मल्लि अर्हन्त जहाँ सहस्राभ्रवन उद्यान था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ आये, वहाँ आकर शिविका से नीचे उतरे, आभरण अलंकारों को त्याग किया ।

तब प्रभावती से हंस लक्षण (हंस जैसे श्वेत) पटशाटक (वस्त्र) में आभरणालंकारों को रख लिया ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया—तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने मल्लि के केशों को ग्रहण किया—ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र में प्रक्षिप्त कर दिया ।

तत्पश्चात् मल्लि अर्हन्त ने ‘सिद्धों को नमस्कार हो’ यह कहकर सामायिक चारित्र स्वीकार किया । जिस समय मल्लि अर्हन्त ने सामायिक चारित्र स्वीकार किया, उस समय

पडिगया । कुम्भए समणोवासए-जाए-जाव-पडिगए, पभावई य । तए णं जियसत्तु-पामोक्खा छप्पि रायाणो धम्मं सोच्चा निसम्म एवं वयासी-

‘आलित्तए णं भंते ! लोए, पलित्तए णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्तए णं भंते ! लोए जराए, मरणेण य-जाव-पव्वइया-जाव-चोद्दसपुब्बिणो । अणंते वर-नाण-दंसणे केवले समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा ।

मल्लिजिणस्स सिस्स-संपदा—

२४०. तए णं मल्ली अरहा सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ।

मल्लिस्स णं अरहओ भिसग-पामोक्खा अट्ठावीसं गणा, अट्ठावी संगणहरा होत्था ।

मल्लिस्स णं अरहओ चत्तालीसं समण-साहस्सीओ उक्कोसिया समण-संपया होत्था, बंधुमइ-पामोक्खाओ पणपन्नं अज्जिया-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ।

सावयाणं एगा सय-साहस्सी चुलसीइं सहस्सा, सावियाणं तण्णि सय-साहस्सीओ पण्णट्ठिं च सहस्सा, छस्सया, चोद्दसपुब्बिणं, वीसं सया ओहिनाणीणं, वत्तीसं सया केवल-नाणीणं, पणत्तीसं सया वेउच्चियाणं अट्ठ-सया मणपज्जव-नाणीणं चोद्दस-सया वाईणं, वीसं सया अणुत्तरोववाइयाणं ।

मल्लिस्स णं अरहओ दुविहा अंतकर-भूमि होत्था, तं जहा-जुगंतकर-भूमी परियायंतकर-भूमी य-जाव-वीसइमाओ पुरिस-जुगाओ जुगंतकर-भूमी दुवास-परियाए अंतमकासी ।

मल्लिजिणस्स निव्वाणं—

२४१. मल्ली णं अरहा पणुवीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णेणं पियंगु-सामे, सम-चउरंस-संठाणे, वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणे मज्जदेसे, सुहंसुहेणं विहरित्ता जेणेव सम्मेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सम्मेय-सेल-सिहरे पाओवगमणं-णुवत्ते ।

मल्ली णं अरहा एगं वास-सयं अगार-वासं, पणपण्णं वास-सहस्साइं वास-सयऊणाइं केवलपरियागं पाउणित्ता, पणपण्णं वास-सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, जे से गिम्हाणं पढमे भासे, दोच्चे पक्खे, चेत्तमुद्धे, तस्स णं चेत्त-मुद्धस्स चउत्थीए पक्खेणं, भरणीए नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अद्वरत्त-काल-समयंसि, पंचहिं

गई । कुम्भ श्रमणोपासक हुआ—यावत्—लौट गया, और प्रभाव-वती श्रमणोपासिका हुई, वह भी लौट गई । तत्परचात् जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं ने धर्म श्रवण कर और समझकर इस प्रकार कहा—

‘हे भगवन् ! यह लोक आलिप्त है, प्रलिप्त है, आलिप्त-प्रलिप्त है, जरा-मरण से व्याप्त है—यावत्—दीक्षित हो गये—यावत्—चौदह पूर्वों के ज्ञाता हुए । उत्तम अनन्त केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त करके बाद में वे सिद्ध हुए ।

मल्लिजिन की शिष्य संपदा—

२४०. इसके बाद मल्लि अर्हन्त सहस्राश्रवण उद्यान से बाहर निकले, बाहर निकलकर जनपद में विहार करने लगे ।

मल्लि अर्हन्त के शिष्य आदि अट्ठाईस गण और अट्ठाईस गणधर थे ।

मल्लि अर्हन्त की चवालीस हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण-संपदा थी । बंधुमती आदि पचपन हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका संपदा थी ।

एक लाख चौरासी हजार श्रावकों की, तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाओं की, छहसौ चौदह पूर्वधारियों की, दो हजार अवधिज्ञानियों की, वत्तीस सौ केवल-ज्ञानियों की, पैंतीस सौ वैक्रिय लब्धिधारियों की, आठ सौ मन-पर्यवज्ञानियों की, चौदह सौ वादियों की, बीस सौ अनुत्तरोप-पातिकों की उत्कृष्ट शिष्यसंपदा थी ।

मल्लि अर्हन्त की दो प्रकार की अन्तकर भूमि हुई यथा—युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि—यावत्—युगान्तकर भूमि बीस पुरुष युग प्रमाण हुई अर्थात् बीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की और पर्यायान्तकर भूमि का दो वर्ष के बाद अन्त हुआ अर्थात् मल्लि अर्हन्त को केवलज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत होने पर भवपर्याय का अन्त करने वाले-मोक्ष जाने वाले साधु हुए यानी दो वर्ष बाद मोक्ष जाने का क्रम चालू हुआ ।

मल्लिजिन का निर्वाण—

२४१. मल्लि अर्हन्त पच्चीस धनुष ऊँचे थे, शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था, समचतुरस्र सस्थान एवं वज्रऋषभनाराच संहनन वाले थे, मध्यदेश में सुखपूर्वक विचरण करके जहाँ सम्मेदशिखर पर्वत था, वहाँ आये, वहाँ आकर सम्मेदशैल के शिखर पर पाद-पोगमन संथारा अंगीकार किया ।

मल्लि अर्हन्त एक सौ वर्ष गृहवास में रहे, सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवली पर्याय पालकर, इस प्रकार पचपन हजार वर्ष की सर्व आयु का भोगकर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष, अर्थात् चैत्र शुद्ध (सुदी, शुक्ल) पक्ष और उस चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि में भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर अर्धरात्रि के समय पाँच सौ आर्यिकाओं की

अज्जिया-त्तएहि—अद्विभतरियाए परिसाए, पंचहि अणगार-त्तएहि-
वाहरियाए परिसाए, मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं, वघारियपाणी
धीणे वेयाणज्जे, आउए, नाम-नोए, सिद्धे । एवं परिनिव्वाण-
महिमा भाणियव्वा जहा जंबुद्वीवपण्णत्तीए (उत्तहस्ततित्थयरस्त)
नंदीसरे अट्ठाहियाओ पडिगयाओ ।^१

—णाया० सु० १, अ० ८, सु० ६४-७८

॥ इइ मल्लि-जिण चरियं ॥

आन्वन्तर परिपद और पांच सौ अनगारों की वायु परिपद के
साथ निजल एक मास के अनगन तःपूर्वक वेदतीय, अत्तु, नाम,
गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर निवृत्त हुए । इस प्रकार परिनिर्वाण
महोत्सव का यहाँ वर्णन करना चाहिए जिस प्रकार जम्बूद्वीप
प्रज्ञाप्त में ऋषभ तीर्थंकर के प्रकरण में किया गया है नदीपर
द्वीप में आध्यात्मिक महोत्सव किया और बाद में अग्नि-अग्ने
स्थान पर चले गये ।

मल्लि-जिन-चरित्र समाप्त



४. अरिट्ठनेमि चरियं

कल्याणगाणि—

२४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते
होत्था, तं जहा—

चित्ताहि चुए चइत्ता गढमं वक्कंते, तहेव उक्खेवो-जाव-
चित्ताहि परिनिव्वुए^२ ।

गढभवक्कंती सुमिणदंसणाइं यं—

२४३. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं
चउत्थे मात्ते, सत्तमे पवत्ते, कत्तियवहुले तस्स णं कत्तियवहुलस्स
बारत्तीपक्खेणं^३ अपराजियाओ महाविमाणाओ वत्तीसं
सागरोपमदिठतीयाओ^४ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे दीवे
भारहे घाने तोरियपुरे नगरे^५ नमुइविजयस्स रत्तो^६ भारियाए सिवाए
देवीए^७ पुट्टयरत्तावरत्तकालसमयंसि-जाव-चित्ताहि गढभत्ताए
वक्कंते^८, सद्यं तहेव, सुमिण-दंसण-इविण-सहरणाइयं एत्थं
अणियत्थं^९ ॥

—कप्प० सु० १६२

जम्माइं—

२४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी^१ जे से
वासाणं पठमे मात्ते वोक्खे पवत्ते सावणमुट्ठे तस्स णं सावणमुट्ठस्स

१. अतिशुद्धा समुद्रता निगमनगाथा—

उत्तगतपमंअमवओ, पग्गिइक्कनासहस्स वि जयित्थ । धम्मविसए वि सुहमा वि, हाइ नाया अणत्थाय ॥१८॥

अह मल्लिस्स महाइल-भबम्मि वित्थयरनामवधे वि । उय-वित्थय-पोवनाया जाया सुवदत्त-हेइस्स ॥२॥

२. टाप० अ० ५, उ० १, सु० ४११ ।

३. कप्प० स्या० १४, पा० ६२ ।

४. कप्प० स्या० ११, पा० २८ ।

५. कप्प० स्या० २८, पा० ६४ ।

४. अरिष्टनेमि चरित्र

कल्याणक—

२४२. उस काल उस समय में अर्हत अरिष्टनेमि पांच विधा-
युक्त थे, यथा—

चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में
आये—उसी प्रकार सब कथन करना—यावत्—चित्रा नक्षत्र
में वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।

गर्भावतरण और स्वप्नदर्शन आदि—

२४३. उस काल उन समय में अर्हत अरिष्टनेमि अथ यहाँ
ऋतु का चतुर्थ मास, सातवा पक्ष अर्थात् कार्तिकमास के कृष्ण
पक्ष का समय जाया, तब कार्तिककृष्णा द्वादशी के दिन, अर्थात्
सागरोपम की आचुष्य मर्यादा वाले अपराजित नामक महा-
विमान से च्यवकर इमी जम्बूद्वीप में, भारतार्य के मोरियपुर
नामक नगर में नमुद्रविजय राजा की पत्नी गिवादेमी की मुक्ति में,
रात्रि के पूर्व और अथर भाग की मन्धि-धना में, अर्थात् नम्र-
रात्रि में चित्रा नक्षत्र का योग होने पर गर्भ रूप में उत्पन्न हुए ।
उनके पश्चात् का गर्भ पलन पूर्ववत् स्वप्नदर्शन धन-धान्य का
वृद्धि इत्यादि के नामान यहाँ पर भी कहना चाहिये ।

जन्मदि—

२४४. उस काल उस समय में यहाँ ऋतु का अथर मास,
द्वितीय पक्ष, अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष जाया, तब

६. कप्प० स्या० ३०, पा० ६८ ।

७. कप्प० स्या० २६, पा० ६६ ।

८. टाप० अ० ५, उ० १, सु० ४११ ।

९. कप्प० सु० ३०-३४ ।

१०. कप्प० स्या० २१, पा० ८१ ।

पंचमीपक्षेणं नवणं मासाणं-जाव-चित्ताहि नखत्तेणं
जोगमुवागएणं^१ अरोगा अरोगं पयाया । जम्मणं समुद्धविजया-
भिलावेणं नेतव्वं-जाव^२ तं होउ णं कुमारे अरिष्टनेमी
नामेणं ॥ —कप्प० सु० १६३

पञ्चज्जा—

२४५. अरहा अरिष्टनेमी दक्खे-जाव-विणोए तित्ति वाससयाइं
कुमारे अगारवासमज्जे वसित्ता^३ णं पुणरवि लोयंतिएहिं
जीयकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-दायं दाइयाणं
परिभाएत्ता^४

जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणमुद्धे
तस्स णं सावण-मुद्धस्स^५ छट्ठीपक्खेणं^६ पुव्वण्हकालसमयंसि^७
उत्तरकुराए सीयाए^८ सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमगे
-जाव-बारवईए नगरीए^९ मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता
जेणेव रेवयउज्जाणे^{१०} तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावइ, सीयं ठावित्ता
सीयाए पच्चोरुहइ, सीयाए पच्चोरुहित्ता सयमेव
आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं
लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं^{११} चित्ताहिं
नखत्तेणं जोगमुवागएणं^{१२} एणं देवदूसमादायं^{१३} एणेणं
पुरिससहस्सेणं सिद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं
पव्वइए ।^{१४} —कप्प० सु० १६४

केवलनाणं—

२४६. अरहा णं अरिष्टनेमी चउप्पन्नं राइंदियाइं^{१५} निच्चं
वोसट्ठकाए चियत्तदेहे तं चेव सव्वं-जाव^{१६} -पणपन्नइमस्स

समय श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नौ मास—यावत्—चित्रा-
नक्षत्र का योग होते ही आरोग्य युक्त माता ने आरोग्यपूर्वक
अर्हत् अरिष्टनेमि को जन्म दिया । जन्म का वृत्तान्त 'समुद्र-
विजय' इस पाठ के साथ पूर्ववत् समझ लेना चाहिये—यावत्—
इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि हो इत्यादि सभी कथन करना
चाहिये ।

प्रव्रज्या—

२४५. अर्हत् अरिष्टनेमि दक्ष थे—यावत्—वे तीन सौ वर्ष
तक कुमार अवस्था में गृहवास में रहे । उसके पश्चात् जिनके
कहने का आचार है ऐसे लोकान्तिक देवों ने आकर के उनसे
प्रार्थना की, इत्यादि पूर्व में जो कथन आया है वसा ही यहाँ
पर भी कहना—यावत्—अभिनिक्रमण के पूर्व एक वर्ष तक
दान दिया ।

जब वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष, अर्थात् श्रावण-
मास का शुक्ल पक्ष आया, उस श्रावणशुक्ला छट्ठ के दिन,
पूर्वाह्न के समय जिनके पीछे देव, मानव और असुरों की मंडली
चल रही है, ऐसे अरिष्टनेमि उत्तराकुरा नामक शिविका में
बैठकर—यावत्—द्वारिका नगरी के मध्य-मध्य में होकर
निकलते हैं । निकलकर जिस तरफ रैवत नामक उद्यान है,
वहाँ आते हैं, आकर के उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, शिविका
को खड़ी रखते हैं । खड़ी रखकर शिविका से उतरते हैं, उतर
कर अपने ही हाथों से आभरण, मालायें और अलंकारों को
उतारते हैं । उतार कर अपने ही हाथों से पंचमुष्टि लोच करते
हैं, लोच करके, पानी रहित, षष्ठभक्त करके चित्रा नक्षत्र का
योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर हजार पुरुषों के साथ
मुंडित होकर गृहवास को त्यागकर अनगरत्व को स्वीकार
करते हैं ।

केवलज्ञान—

२४६. अर्हत् अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिन ध्यान में रहे ।
उन्होंने शरीर के लक्ष्य को छोड़ दिया । शारीरिक वासना त्याग

१. सप्त० स्या० २२, गा० ८२ ।

२. कप्प० सु० ६३-१०३ ।

३. कप्प० सु० ११० ।

४. कप्प० सु० ११०-१११ ।

५. सप्त० स्या० ५६, गा० १४५ ।

६. सप्त० स्या० ५६, गा० १४७ ।

७. सप्त० स्या० ७१ गा० १५७ ।

८. सम० स० १५७, सु० १० ।

९. सप्त० स्या० ६७, गा० १५६ ।

१०. सम० स० १५७, सु० १४ ।

११. ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ४११ ।

१२. सप्त० स्या० ७२, ७३, गा० १५८ ।

१३. सप्त० स्या० ६५, गा० १५३ ।

१४. सप्त० स्या० ८४, गा० १७३ ।

राइद्विस्स अंतरा वट्टमाणे, जे ते वाताणं तच्चे मासे पंचमे पक्के अस्सोयवहुत्ते तस्स णं अस्सोयवहुत्तस्स पन्नरसीपक्केणं^१ दिवसस्स पच्छिमे भागे^२ उप्पि उज्जितसेलसिहरे^३ वडपायवत्त अहे^४ छट्ठेणं भत्तेणं अपाणणं^५ चित्ताहि नक्खत्तेणं जोगमुवाणणं^६ ज्ञाणंतरियाए वट्टमाणस्स-जाव-अणते अणुत्तरे-जाव-सध्वलोए सज्जोवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।
—कप्प० सु० १६५

गणहराइसंपया—

२४७. अरहो णं अरिष्टनेमिस्स अट्ठारस गणा गणहरा होत्था ।

अरहो णं अरिष्टनेमिस्स वरदत्त-पामोवखाओ अट्ठारस समणसाहस्सोओ उक्कोत्तिया समण-संपया होत्था^७ ।

अरहो णं अरिष्टनेमिस्स अज्ज-जक्खणि-पामोवखाओ चत्तासीतं अज्जियासाहस्सोओ उक्कोत्तिया अज्जया-संपया होत्था^८ ।

अरहो अरिष्टनेमिस्स नंद-पामोवखाणं समणोवात्तगणं एवा गयणाहस्सोओ अणत्तरिं च सहस्सा उक्कोत्तिया समणोवात्तगसंपया होत्था^९ ।

अरहो अरिष्टनेमिस्स महानुद्धया-पामोवखाणं त्तिन्नि गयणाहस्सोओ छत्तीमं च सहस्सा उक्कोत्तिया समणोवात्तगणं संपया होत्था^{१०} ।

२४८. अरहो अरिष्टनेमिस्स चत्तारि तथा चोद्दसपुव्वीणं अज्जिणाणं जिणसंकासाणं सत्तपववर-जाव-होत्था^{११} ।

पण्णरस-तथा ओहिनाणीणं^{१२}, पन्नरस-तथा केवलनाणीणं^{१३} ।

२४९. पन्नरस-तथा वेउद्वियाणं^{१४}, दस-तथा धिउत्तवतीणं^{१५}, अट्ठ-तथा चाईणं^{१६} ।

२५०. सोलम-तथा अणुत्तरोयवाट्टयाणं^{१७}, पन्नरस समणमया सिद्धा, तीसं अज्जियामयाई सिद्धाई ।

—कप्प० सु० १६६

दी थी । इत्यादि पूर्व में जो वर्णन आ चुका है, वही भी समझ लेना चाहिये, इस प्रकार रहते हुए जब ये पचत्तरे रात्रि-दिन में वर्तमान थे तब वर्षा ऋतु का तृतीय भाग, पाचरा पञ्च, अर्थात् आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन अथवाह्न में उत्तरायण शैल सिखर पर वेंत के वृक्ष के नीचे पानी रहित अष्टम भस्म तप किये हुए थे, इसी समय चित्रा नक्षत्र का योग प्रायः होने पर ध्यानान्तरिका में तीन रहे हुए उन्हें अन्त-सायन्-इसमें केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । अब ये समस्त लोक और सब जीवों के भावों को जानते-देखते हुए विचरने लगे ।

गणधरादि संपदा—

२४७. अहंत् अरिष्टनेमि के तीर्थ में अट्ठारह गण और अट्ठारह गणधर थे ।

अहंत् अरिष्टनेमि के समुदाय में वरदत्त आदि अट्ठारह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी ।

अहंत् अरिष्टनेमि के संघ में आर्षा—यशिनो आदि गायत्री हजार आशिकाओं की उत्कृष्ट आशिका-संपदा थी ।

अहंत् अरिष्टनेमि के समुदाय में 'नन्द' आदि एक लाख उनहत्तर हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी ।

अहंत् अरिष्टनेमि के समुदाय में महानुद्धया आदि तीन लाख छत्तीस हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी ।

२४८. अहंत् अरिष्टनेमि के संघ में जिन नहीं, किन्तु दिन के समान तथा सभी अक्षरों के संयोग को यथायं प्राप्त करते ऐसे चार ही चौदह पूर्वधारियों की संपदा थी ।

इसी प्रकार पन्द्रह ही प्रथिजानियों की, पन्द्रह ही वेद-जानियों की ।

२४९. पन्द्रहों वैश्वजिघ्रिधारियों की, एक हजार विदुष-मति मनःपरिजानियों की, आठ ही दादकास में शिषुओं की ।

२५०. सोलह ही अणुत्तरोयवाट्टियों की—उत्कृष्ट तपस की । श्रमण समुदाय में वे पन्द्रह ही श्रमण सिद्ध हुए, जिन १४०० श्रमणियों सिद्ध हुईं ।

अंतकडभूमि—

२५१. अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतकडभूमि होत्था, तं जहा—

१. जुगंतकडभूमि य, २. परियायंतकडभूमि य-जाव-अट्टमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमि, दुवासपरियाए अंतमकासी^१ ।

—कप्प० सु० १६७ ।

कुमारवासाइं निव्वानं य—

२५२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी तित्ति वाससयाइं कुमारवासमज्जे वसित्ता^२, चउप्पन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता^३, देसुणाइं सत्त वाससयाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता^४, पडिपुन्नाइं सत्त वाससयाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता, एगं वाससहस्सं सव्वाउयं पालइत्ता^५, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओत्तप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढमुद्धे तस्स णं आसाढमुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पि उज्जित्तसेलसिहरंसि पंचाहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सिद्धि मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवामएणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि नेत्तज्जिए कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे ॥

—कप्प० सु० १६८

॥ इइ अरिट्ठनेमि चरियं ॥

अन्तकृत भूमि—

२५१. अहंत् अरिष्टनेमि की अन्तकृतभूमिका दो प्रकार की थी, यथा—

१—युगान्तकरभूमि २—पर्यायान्तकरभूमि—यावत्—युगान्तकरभूमि आठवें पुरुष तक चलती रही और दूसरी पर्यायान्तकर भूमि का दो वर्ष के पश्चात् अन्त आया ।

कुमारवासादि और निर्वाण—

२५२. उस काल उस समय में अहंत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे । चौपन-रात-दिन छप्रस्थ पर्याय में रहे । कुछ कम सात सौ वर्ष तक केवलजानी अवस्था में रहे । यों पूर्ण सात सौ वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके और कुल एक हजार वर्ष का आयुष्य भोग करके, वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नामकर्म और गोत्रकर्म इन चारों अघाती कर्मों को पूर्णतया क्षीण करके, दुःपमा-मुपमा नामक अवसर्पिणी काल के बहुत से वीत जाने पर जब ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास का आठवां पक्ष, अर्थात् आसाढ़ मास का शुक्ल पक्ष आया, तब आसाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन उज्जित (उज्जयंत) शैल शिखर पर दूसरे पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ उन्होंने निर्जल मासिक ता किया । उस समय चित्रा नक्षत्र का योग आने पर रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धिवेला में, अर्थात् मध्यरात्रि को निपद्या में रहे हुए, (वैदे-वैदे) अहंत्-अरिष्टनेमि कालगत हुए—यावत्—सभी दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए ।

॥ अरिष्टनेमि चरित्र समाप्त ॥

**५. पास-चरियं****कल्लाणगाणि—**

२५३. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे होत्था, तं जहा—

१. विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते,

२. विसाहाहिं जाए,

३. विसाहाहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए,

१ सप्त० स्था० १२३ गा० २६६ ।

२ (क) ठाणं० अ० ८, सु० ६२० ।

(ख) सप्त० स्था० १५८, ५६ गा० ३२३, ३२४ ।

३ सप्त० स० ३० सु० २ ।

५. पार्श्व-चरित्र**कल्याणक—**

२५३. उस काल उस समय पुरुषादानीय अहंन्त पार्श्व पंच विशाखा वाले थे । यथा—

१—(पार्श्व अरहन्त) विशाखा नक्षत्र में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में आये ।

२—विशाखा नक्षत्र में जन्म ग्रहण किया ।

३—विशाखा नक्षत्र में मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगारस्व ग्रहण किया ।

४ सम० स० ५४, सु० २ ।

५ सम० स० ७०० सु० ४ ।

६ सम० स० १०००, सु० ७ ।

४. विसाहाहि अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुत्रे केवलवरनाणदंसणे समुप्पत्ते,

५. विसाहाहि परिनिव्वए^१ ।

—कण्ण० सु० १४८

गढभवकन्ती—

२५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे ते गिमहाणं पट्टमे मासे पट्टमे पक्खे चित्तवहुले तस्स णं चित्तवहुलस्स चउत्तरोपवखेणं^२ दाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठित्तायाओ^३ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे दीवे नारहे पासे वाणारसीए नयरीए^४ आससेणस्स रत्तो वम्माए देवीए^५ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि विसाहाहि नक्खत्तेणं जोगमुवाणएणं^६ आहारवकन्तीए भवयवकन्तीए सरीरवकन्तीए कुच्छिसि गढमत्ताए वकन्ते ।

—कण्ण० सु० १४९

२५५. पासि णं अरहा पुरिसादाणीए तिण्णाणोवगए यावि होत्था । चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुए मि त्ति जाणइ. तेणं चैव अभितावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं-जाव-निययं गिहं अणुप्पट्ठिटा-जाव-मुहं नुहेणं त गढं परिवहइ^७ ।

—कण्ण० सु० १५० ।

जम्माइ—

२५६. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासि अरहा पुरिसादाणीए जे ते हेमंताणं वोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसवहुले, तस्स णं पोसवहुलस्स वसधोपवखेणं नयणं मासाणं बहुपडिपुत्राणं अट्ठट्ठमाण य राइरियाण थिइकताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहि नक्खत्तेणं जोगमुवाणएणं^८ अरोगा अरोगे पयाया ।

अण्णं गढं पासिअभितावेण भाणियव्वं—जाव-त्त होउ णं जुमारि पासि नाभेणं ।

—कण्ण० सु० १५१ ।

परइइआ—

२५७. पासि णं अरहा पुरिसादाणीए दइइ दइइवरत्तणे पडिक्खे जणोणे अए पियीए तोसि पासिइ अवारत्तमक्खे वनिता^९ ण

१. टाणं ५० ५, उ० १, सु० ४११ ।

२. मण्ड० २५० १८, मा० ६३ ।

३. मण्ड० २५० १२, मा० २६, २८ ।

४. मण्ड० २५० १८, मा० ६४ ।

५. (क) मण्ड० २६, २०, मा० २५, २८ ।

४—विशाया नक्षत्र में उन्हें अनन्त, उत्तमोत्तम, व्यापार-रहित, आवरणरहित, सम्पूर्ण, प्रतिभूत केवलमान, केवलसंन उत्पन्न हुए ।

५—भगवान् पार्वं विशाया नक्षत्र में ही नियोग को प्राप्त हुए ।

गर्भावतरण—

२५४. उस काल उस समय में पुरुषादानीय अर्हेत पार्वं, २४ ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष था, उस चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन बीच सागरोत्तम की आयु वाले प्राणत नामक कला से आयुष्य पूर्णकर दिव्य प्राणत, दिव्य जन्म और दिव्य शरीर छूटते ही गीघ्र अच्यवन करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की वाराणसी नगरी में अवसरेन राधा की रानी वामादेवी की कुक्षि में, जब रात्रि का पूर्वभाग समाप्त हो रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उन सन्धिबेला में—मध्यरात्रि में विशाया नक्षत्र का योग होने ही गर्भ रूप में उत्पन्न हुए ।

२५५. पुरुषादानीय पार्वं अर्हेत् तौन ज्ञान ने सुना ये । मे यहाँ से च्युत होऊँगा यह-जानते थे, वर्तमान में स्वप्नमात्र में पट नहीं जानते थे और च्युत हो गया हूँ—यह जानते थे । यहाँ से निकल स्वप्न दर्शन आदि से सम्बन्धित मार्ग वर्तन पूर्ववत् समझना चाहिए ।—यावत्—माना अपने पर में प्रेम करती है और मुद्यपूर्वक गर्भ को धारण करती है ।

जन्मादि—

२५६. उस काल उस समय हेमन्त ऋतु का द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पौष मास के कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन, जो माह पूर्ण होने पर और माह मास रात-दिन पर्याप्त होने पर रात्रि का पूर्व भाग समाप्त होने जा रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उन सन्धिबेला में, अर्थात् मध्यरात्रि में विशाया नक्षत्र का योग होने ही, प्राणत वाली माता ने आरोहण-पूर्वक पुरुषादानीय अर्हेत पार्वं नामक पुत्र को जन्म दिया ।

जन्म सम्पत्तौ अन्य सम्पत्तौ विशरण पार्वं के नामान्तरण पूर्वक पूर्वोक्त पुत्राण्ड के समान यथा भी समझना चाहिए—यावत्—इस कुमार का नाम 'पार्वं' ही ।

प्रयत्ना—

२५७. पुरुषादानीय अर्हेत् पार्वं दत्त वे, दत्त प्रयत्ना दत्त वे. उनमें जब बाले, सर्व पुत्रों ने पुत्र अर्हक विधीत थे । य-य-य

(क) मण्ड० सु० १५७, सु० ४२५ ।

१. टाणं ५० ५, उ० १, सु० ४११ ।

२. मण्ड० सु० ३, २४-२८ ।

३. टाणं ५० ५, उ० १, सु० ४११ ।

४. मण्ड० २५० २०, सु० १३ ।

पुनरवि लोयतिएहि जियकप्पिएहि देवेहि ताहि इट्ठाहि-जाव-
एवं वयासी-

जय जय नंदा, जय जय भद्रा, भद्रं ते—जाव-जय जय सहं
पउंजंति ।

—कप्प० सु० १५२

२५८. पुंविं वि णं पात्तस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ
गिहत्थधम्ममाओ अणुत्तरे आहोहियए तं चेव सव्वं-जाव-दायं दाइ-
याणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे
पोसवहुले, तस्स णं पोसवहुलस्स एवकारसीदिवसेणं पुव्वण्हकाल
समयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव
सव्वं । नवरं वाणारंसि नगरि मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ,
निग्गच्छत्ता, जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे
तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छत्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं
ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहत्ता
सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव
पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं
भत्तेणं अपाणएणं^१ विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं^२ एणं
देवदूसमायाय^३ तिहि पुरससएहिं सद्धि मुण्डे भवित्ता अगाराओ
अणमारियं पव्वइए^४ ।

—कप्प० सु० १५३

उवसगसहणं—

२५९. पासे ण अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं
वोत्तट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा-
दिव्वा वा, माणुस्सा वा, तिरिखज्जोणिया वा, अणुलोमा वा,
पडिलोमा वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे-जाव-सम्मं सहइ
तित्तिवखइ खमइ अहियासेइ ।

—कप्प० सु० १५४ ।

केवलनाणं—

२६०. तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए-जाव-
अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासीइमस्स
राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पडमे मासे पडमे
पस्से चित्तयहुले. तस्स णं चित्तयहुलस्स चउत्थोपक्खेणं
पुव्वण्हकालसमयंसि धायति-पायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं
विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आणंतरियाए वट्टमाणस्स

१. सम० स० १५७, सु० १४ ।

२. जग० अ० ५, उ० १, नु० ४११ ।

वर्ष तक गृहवास में रहे । उसके पश्चात् अपनी परम्परा का
पालन करते हुए लोकांतिक देवों ने आकर के इष्टवाणी के द्वारा
इस प्रकार कहा—

'हे नन्द ! (आनन्दकारी) तुम्हारी जय हो, विजय हो !
हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो ! —यावत्—इस
प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग करते हैं ।

२५८. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म
से पहले (गृहवास में) भी उत्तम आभोगिकज्ञान (अवधिज्ञान) था ।
वह सारा वर्णन पूर्व वर्णन के समान यहाँ समझना चाहिये—
यावत्—वर्षी दान दे करके हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय
पक्ष, अर्थात् पोष मास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व
भाग के समय विशाला शिविका में बैठकर देव, मानव और
असुरों के विराट् समूह के साथ (पूर्वोक्त वर्णन के समान)
वाराणसी नगरी के मध्य में होकर निकलते हैं । निकलकर जिस
ओर आश्रमपद नामक उद्यान है, जहाँ पर अशोक का उत्तम
वृक्ष है, उसके निकट जाते हैं । निकट जाकर के शिविका को
खड़ी रखवाते हैं । शिविका खड़ी रखवाकर के शिविका के नीचे
उतरते हैं । नीचे उतरकर, अपने ही हाथों से आभूषण, मालायें,
और अलंकार उतारते हैं । अलंकार आदि उतारकर, स्वयं के
हाथ से पंच-मुष्टि लोच करते हैं । लोच करके निर्जल अष्टम
भक्त पूर्वक विशाखा नक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र
को लेकर दूसरे तीन सौ पुरुषों के साथ मुडित होकर गृहवास से
निकलकर अनगार अवस्था को स्वीकार करते हैं ।

उपसर्ग सहन—

२५९. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी दिन तक नित्य शरीर
की ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किए हुए थे । अर्थात् उन्होंने शरीर
को त्याग दिया हो इस प्रकार रहे, इस साधनाकाल में
जो कोई भी उपसर्ग हुए, जैसे देव अथवा मनुष्य अथवा तिर्यक्
सम्बन्धी अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आते, उनको सम्यक्
प्रकार से सहन करते, तितिक्षा पूर्वक, (सहिष्णुता से अन्य
किसी की अपेक्षा के विना) क्रोधरहित, मन को स्थिर कर सहन
करते ।

केवलज्ञान—

२६०. इसके पश्चात् भगवान् पार्श्व अनगार हुए,—यावत्—
ईयांसमिति से युक्त हुए और इस प्रकार आत्मा को भावित करते-
करते तिरासी रात्रि-दिन व्यतीत हो गये । चौरासीवां दिन चल
रहा था । ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र
मास का कृष्ण पक्ष आया, उस चैत्र की चतुर्थी को, पूर्वाह्न में
आँवले (धातकी) के वृक्ष के नीचे पष्ठ तप किये हुए, शुक्लध्यान

३. सम० स० १५७, सु० ११ ।

४. सम० स० १५७, सु० १३ ।

अणंते अपुत्तरे निष्वापाए निरावरणे-जाव-लेवल-वर-नाण-इमणे
समुधत्ते-जाव-जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

—कप्प० सु० १५५ ।

गणहराइत्तंपया—

२६१. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ
गणहरा होत्था, तं जहा—गाहा—

मुग्गे य अज्जघोमे य, वमिट्ठे वंमयारि य ।

गोमे निरिहरं चेत्त धीरमहे जने वि य^१।—कप्प० सु० १५६

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्ण-सामोवलाओ
तोमस्स ममणसाहस्सोओ उक्कोत्तिया समणसंपया होत्था^२ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुक्कचूला-सामोवलाओ
अट्ठत्तोमं अज्जिजासाहस्सोओ उक्कोत्तिया अज्जिजासंपया
होत्था^३ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स मुनंद-सामोवलाणं
समणोपामाणं पणा सयसाहस्सो चउत्तट्ठि च सट्ठस्सा
उक्कोत्तिया मयसोवासणसंपया होत्था^४ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स मुनंदा-सामोवलाणं
समणोपामिणाणं तिप्पि सयसाहस्सोओ नत्तावीरं च सट्ठस्सा
उक्कोत्तिया समणोपामिणाणं संपया होत्था^५ ।

२६२. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठुमया चोइम-
पुट्ठोथ अज्जिणाण जिणमंकाणाणं सत्थसवर-जाव-पोइमपुट्ठोणं
संपया होत्था^६ ।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोइस सया
ओइसाणीण^७ ।

इस सया केवलनाणीणं^८ ।

२६३. पुग्गारात्त मया वेउत्थियथाण^९, अट्ठममया विउत्तमईण^{१०},
एवमया आईणं^{११}, छ मया रिउमईणं^{१२},

२६४. पासस्स मया अपुत्तरीयजाइयाणं संपया होत्था^{१३} ।

—कप्प० सु० १५७

ने लीन थे । उस समय विजाया राजव का योग प्राप्त होने
पर उन्हें उत्तमोत्तम केवलनाण केवलस्सेन प्रसन्न हुआ—
जावन्—४ मनुजों को कानास के भागों की देवद गुरु देवस्स
लगे ।

गणधरादि (गिण्य) मंत्रदा—

२६१- पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में जाइ पावरे ३ ।
ये इन प्रकार हे—

सापाये १—मुग्ग, २—अज्जघोमे जायेपोव, ३—समण
४—पक्कचाली, ५—तोम, ६—धीरम, ७—सोवला म—यव ।

पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में मयसोवला
(भार्येय) आदि गोवह द्वारा प्रसन्नो हो उट्ठस्स मयसो—
सम्पदा थी ।

पुक्कचालीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में पुक्कचाली यदि
अट्ठवीम द्वारा प्रायिकारों की उट्ठस्स जायिका—सम्पदा थी ।

पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में मुनंद और एक
नाथ चोमठ द्वारा अमणोपामणों की उट्ठस्स अमणोपामण—
सम्पदा थी ।

पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में मुनंदा और तीन
नाथ और नत्तावीम द्वारा अमणोपामिणाओ की उट्ठस्स
अमणोपामिणा—सम्पदा थी ।

२६२. पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में गाइ तीन गो इम
नही, किन्तु जिनके नदम मयोवर मयोवी हो कामन गाइ—
जावन्—चोइह—पुट्ठोथियों की सम्पदा थी ।

पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में चोइस की
अपिसानियों की सम्पदा थी ।

पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में एक द्वारा केवल-
नाणियों की सम्पदा थी ।

२६३. पुग्गारादीय अहेत्तु पावरे के समुदाय में पुग्गारा जो
वेत्थिय मयिथयाओ की उपा छद की अट्ठमईय जाव काउ का
सम्पदा थी । गाइ नाउ की सिपुत्ताओओ की रिउमईय मय
पवेव जान जाओ की) (सम्पदा थी)

२६४. छत्त गो साइय की और साइय की अट्ठमईय उट्ठस्स
अवोत्तु अट्ठस्स विमाल में जाव जाव की सम्पदा थी ।